[illegible]

नान्नदानात्परं दानं, किंचिदस्ति नरेश्वर ! । अन्नेन धार्यते कृत्स्नं [illegible] ।।१।।
सर्वेषामेव भूतानामन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । तेनान्नदो विशां श्रेष्ठ ! प्राणदाता स्मृतो बुधैः ।।२।।
दद्यादन्नं दद्यादन्नं दद्यादन्नं नराधिप ! । धर्मभूमौ गतो भूयो यदि स्वर्गमभीप्ससि ।।३।।
दातव्यं मन्यते पात्रे निमित्तेषु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः ।।४।।
दुःखं ददाति योऽन्यस्य भूयो दुःखं च विन्दति । तस्मान्न कस्यचिद्दुःखं दातव्यं दुःख भीरुणा ।।५।।
पात्रेऽस्वल्पमपि दानं काले दानं युधिष्ठिर ! । मनसा सुविशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम ।।६।।
पात्रे दत्वा दानं प्रियाण्युक्त्वा च भारत ! । अहिंसाविरतः स्वर्गं गच्छेदिति मतिर्मम ।।७।।
साधूनां दर्शनं स्पर्शः कीर्तनं स्मरणं तथा । तीर्थानामिव पुण्यानां सर्वमेवेह पावनम् ।।८।।
साधूनां दर्शनं पुण्य तीर्थभूता हि साधवः । कालतः फलते तीर्थ सद्यः साधुसमागमः ।।९।।
आरोहस्व रथं पार्थ ! गाण्डीवं च करे कुरु । निर्जितां मेदिनी मन्ये निर्ग्रन्थो यदि संमुखः ।।१०।।
श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुंजरो वृषः । प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकाए मताः ।।११।।
पद्मिनी राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः । य देशमुपसर्पन्ति तत्र देशे शुभं वदेत् ।।१२।।

धर्म रूपी नगर मे दान राजा है । जैसे स्वाति नक्षत्र मे सीप में गिरा हुआ जल बहुमूल्य मोती बनता है इसी प्रकार सुपात्र को दान देना बहुत फल देता है । इत्यादि दान के अनेक गुण है और इस प्रकार सुपात्र को दान देकर अनेक भव्यों ने अपना कल्याण किया है ।

१—भगवान् ऋषभदेव के जीव धना सारथवाह के भव में एक मुनि को घृत का दान दिया अत. वे तेरहवें भव में ऋषभदेव तीर्थङ्कर हुये । और जो भव किया है वे वड़े ही सुख के लिये ।

२—शालीभद्र सेठ ने ग्वालिये के भव मे एक मुनि को खीर का दान दिया

३—अमरजस राजकुँवार ने पूर्व ग्वालिये के भव में एक मुनि को वस्त्र दान दिया जिसने दूसरे भव में अपार ऋद्धि का धणी राजकुँवार अमरजस हुआ ।
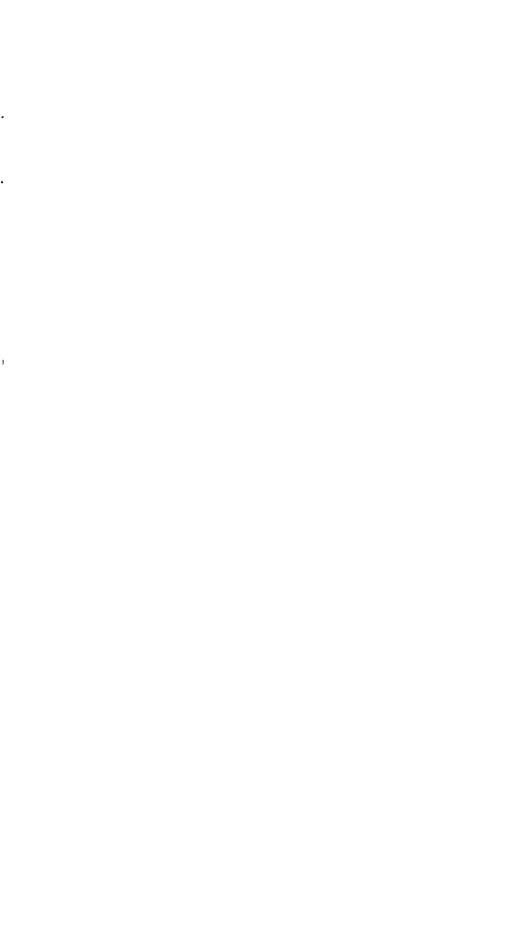
सूरिजी ने कर्मा को दीक्षा देकर उसका नाम धर्मविशाल रख दिया था। मुनि धर्मविशाल ने सूरिजी की विनय भक्ति कर जैनागमों के ज्ञान का अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर उस समय के वर्तमान साहित्य व्याकरण न्याय काव्य तर्क छन्द ज्योतिष एवं अष्टांग महानिमित्तादि सर्वशास्त्रों का पारगामी होगया सूरिजी महाराज ने एक समय विहार करते हुये पद्मावती नगरी में पदार्पण किया। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था। एक दिन के व्याख्यान में पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुञ्जय का वर्णन आया जिसको सूरिजी ने इस प्रकार प्रति-पादन किया कि उसी सभा में प्राग्वटवंशीय शाह रावल ने प्रार्थना की कि पूज्यवर! आप यहाँ विराजें मेरा विचार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने का है। सूरिजी ने कहा 'जहासुखम' रावल ने श्रीसंघ की अनुमति लेकर संघ की तैयारियें करनी शुरू करदीं। आमंत्रण पत्रिकायें भेज कर बहुत दूर दूर से संघ को बुलाया। इस संघ में कई चार हजार साधुसाध्वी और सवा लक्ष यात्रीगण की संख्या थी। आचार्यश्री के नायकत्व में संघपति रावल ने संघ निकाल कर अनंत पुण्य संचय किया। इस संघ में शाह रावल ने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। क्रमशः रास्ते में जितने तीर्थ आये सब यात्रा पूजा कि। जिर्णोद्धार और गरीबों की सहायता में खूब धन व्यय किया।

संघ ने तीर्थ पर जाकर यात्रा पूजा प्रभावना साधर्मीवात्सल्य कर लाभ प्राप्त किया कई मुनियों के साथ संघ लौट कर वापिस आगया और सूरिजी कच्छ, सिन्ध, पांचाल आदि प्रदेश में विहार करते हस्तनापुर पहुँचे। वहाँ से बप्पभट्ट गोत्रिय शाह नन्दा के निकाले हुए सम्मेत शिखर तीर्थ का संघ के साथ पूर्व के तमाम तीर्थों की यात्रा की वहाँ से लौटकर पुनः हस्तनापुर पधारे। वह चतुर्मास सूरिजी का हस्तनापुर में ही हुआ। सूरिजी के विराजने से धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। बाद चतुर्मास के विहार करते हुये मथुरा सोरीपुर आदि नगरों में होते हुये पुनः मरुधर में पधारे। जब सूरिजी शाकम्भरी नगरी में पधारे तो आपके शरीर में अकस्मात वेदना हो आई। सूरिजी ने शाकम्भरी में मुनि धर्मविशाल को अपने पद पर आचार्य बनाकर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया और आपने अनशनव्रत धारण कर लिया और पंच दिन में ही समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षा

१—सोपार पट्टन	के बलाहागो०	शाहदेदा	ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
२—[illegible]	के बाप्पनाग	शाहपुनड़	ने	,,	,,
३—देवपट्टन	के भूरिगो०	शाहनाया	ने	,,	,,
४—[illegible]	के भाद्रगो०	शाहगुणपाल	ने	,,	,,
५—[illegible]	के आदित्यनाग	शाहसहजपाल	ने	,,	,,
६—[illegible]	के सुचंतिगो०	शाहदेहल	ने	,,	,,
७—[illegible]	के श्रेष्टिगो०	शाहपेथा	ने	,,	,,
८—[illegible]	के चिंचटगो०	शाहकल्हा	ने	,,	,,
९—[illegible]	के [illegible]	शाहगंगा	ने	,,	,,
१०—[illegible]	के [illegible]	शाहदेवा	ने	,,	,,

११—करणावती	के तप्तभट्ट	शाहपुनड़ा	ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
१२—कुच्चर्पुर	के मोरीक्ष	शाहवीजा	ने	,,	,,
१३—स्थानापुर	के चोरलिया	शाहवागा	ने	,,	,,
१४—चन्द्रावती	के पोकरणा	शाहगांगा	ने	,,	,,
१५—चैतराली	के कुलभद्र	शाहपद्मा	ने	,,	,,
१६—पद्मावती	के वीरहट	शाहफुवा	ने	,,	,,
१७—कोरंटपुर	के अदित्यनाग	शाहलाछा	ने	,,	,,
१८—शिवपुरी	के बाप्पनाग	शाहनारायण	ने	,,	,,
१९—वल्लभी	के वोहरा	शाहगाड़ा	ने	,,	,,
२०—स्तम्भनपुर	के भीयाणी	शाहनारा	ने	,,	,,
२१—भरोंच	के श्रेष्ठिगौ०	शाहगेंदा	ने	,,	,,
२२—माडव्यपुर	के कुंमटगौ०	शाहहंसा	ने	,,	,,
२३—मुग्धपुर	के कनोजिया	शाहहीरा	ने	,,	,,
२४—खटकुपनगर	के भूपाला	शाहमुम्फल	ने	,,	,,
२५—अशिकादुर्ग	के सुचंतिगौ०	शाहपीरा	ने	,,	,,
२६—हर्षपुर	के सुचंतिगौ०	शाहनाथा	ने	,,	,,
२७—नागपुर	के पाराकरा	शाहकर्मण	ने	,,	,,
२८—उपकेशपुर	के नागगौत्ता	शाहधर्मा	ने	,,	,,
२९—रांधण	के चरडगौत्ता	शाहरावल	ने	,,	,
३०—संखण	के सुघड़गौ०	शाहरावण	ने	,,	,,
३१—मदनपुर	के मलगौ०	शाहमाला	ने	,,	,,
३२—पाल्हिका	के प्राग्वटवंशी	शाहचतुरा	ने	,,	,,
३३—दान्तिपुरा	के श्रीमालवंशी	शाहखेमा	ने	,,	,,
३४—राणकदुर्ग	के प्राग्वटवशी	शाहनोंधण	ने	,	,,

आचार्य श्री के शासन मे यात्रार्थ संघादि शुभ कार्य—

१—उपकेशपुर	से	लुग गौत्रीय	शाह जसा ने	शत्रुञ्जय का	संघ	निकाला
२—नागपुर	से	अदित्य नाग०	शाह सहदेवने	,,	,,	,,
३—हँसावली	से	बाप्प नाग०	शाह हौना ने	,,	,,	,,
४—पद्मावती	से	दलदा गौ०	शाह नागदेव ने	,	,,	,,
५—आनन्दपुर	से	भूरि गौ०	शाह पद्मा ने	,,	,,	,,
६—रिहुनगर	से	चोरलिया०	शाह नेता ने	,,	,,	,,
७—मेंदनीपुर	से	सुघड़ गौ०	शाहसुलतान ने	,,	,,	,,

८—कोरंटपुर से प्राग्वट वंशीय पोकर ने शत्रुंजय का संघ निकाला
९—शिवपुरी से प्राग्वट वंशीय हापा ने „ „ „
१०—नारदपुरी से श्रेष्टि० मंत्री यशोदेव ने „ „ „
११—देसलपुर से प्राग्वट माधुरा ने „ „ „
१२—साधाटनगरसे चिंचट० देपाल ने „ „ „
१३—चित्रकोट से चोरलिया० नागदेव ने „ „ „
१४—उज्जैननगरीसे श्रीपाल शाखला ने „ „ „
१५—कोलापुर से क्षत्री वीर वीद ने „ „ „
१६—राजपुर का चरड़-नारायण युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१७—षोपडनगर का सुचंती मंत्री गहलड़ा युद्ध में मारा गया उसकी स्त्री सती हुई
१८—नारदपुरी का राव माथुर संग्राम में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१९—मादड़ी का श्रेष्टि शार्दुल युद्ध में मारा गया उसकी स्त्री सती हुई
२०—राटकुम्प नगर का मंत्री भारमल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२१—नागपुर का अदित्य नाग रामदेव युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२२—दमरेल नगर का कोष्टि गणपत युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२३—कोराट कुम्प का सुचेती सपरथ संग्राम में मारा गया उसकी स्त्री सती हुई
२४—पाल्हिका नगरी का वाप्य नाग मंत्री धंघल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२५—चित्रकोट का भाद्र गौ० मंत्री महकरण युद्ध में मारा गया उसकी स्त्री सती हुई
२६—धोलागढ़ का बलाह गौ० मंत्री रघुवीर युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२७—उपकेशपुर का श्रेष्टि० हाना ने सं० ३०२ के दुकाल में शत्रुकार दिया
२८—पद्मावती के प्राग्वट मुक्ताने दुकाल में एक बड़ा तलाव खुदाया
२९—चन्द्रावती के भाद्र गौ० शालाखा ने सं० ३०२ दुकाल में शत्रुकार खोल दिया
३०—विसर नगर का श्रेष्टिवर्य्य रुघनाथ ने दुकाल में शत्रुकार खोल दिया
३१—शंखपुर का कुमट गौत्री दोला ने दुकाल में शत्रु कार दिया—
३२—माडव्यपुर का डिड्डू गौ० मंत्री धरण ने युद्ध में वीरता से विजय की जिसको १२ ग्राम इनाम में मिले—

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ

१—उज्जैननगरी के अदित्यनाग० करमण ने पार्श्व० मन्दिर प्रतिष्ठा
२—पद्मावती के सुंचंति० कजल ने „ „ „
३—नागपुर के श्रेष्टि गो० कल्हण ने महावीर „ „
४—उपकेशपुर के वाप्पनाग० पुखा ने „ „ „
५—नारदपुरी के चोरलिया० हापा ने „ „ „

६—पाल्हिकापुरी के विंचट गो० शाह साना ने ऋषभ० मन्दिर प्रतिष्ठा
७—कोरंटपुर के चरड़ गो० ,, जगा ने ,, ,, ,,
८—चन्द्रावती के भूरि गो० ,, जैसल ने शान्त ,, ,,
९—शिवपुरी के भाद्र गो० ,, जोजर ने पार्श्व ,, ,,
१०—टेलीग्राम के मल्ल गो० ,, नाथा ने सुपार्श्व ,, ,,
११—नन्दपुर के सुघड़ गो० ,, आदू ने चंद्र० ,, ,,
१२—ब्राह्मणपुर के कुमट गो० ,, ओटा ने धर्मनाथ ,, ,,
१३—विजयपुर के कनौजिया० ,, गेदा ने महावीर ,, ,,
१४—देवपतन के तप्तभट्ट ,, डूडमल ने ,, ,, ,,
१५—पंचासरा के लघुश्रेष्टि० ,, धीरा ने पार्श्व० ,, ,,
१६—पोतनपुर के डिडू गो० ,, धंघला ने ,, ,, ,,
१७—रत्नपुर के पोकरणा० ,, चूड़ा ने अजीत० ,, ,,
१८—हुनपुर के लुंग ,, चोला ने आदीश्वर ,, ,,
१९—चपटनगर के श्रेष्टि० ,, छाजू ने ,, ,, ,,
२०—सागापुर के श्रेष्टि गो० ,, चहाड़ ने महावीर ,, ,,
२१—श्रीनगर के बलाह गो० ,, तोला ने ,, ,, ,,
२२—धावला के प्राग्वट वंशी ,, थाना ने ,, ,, ,,
२३—कलकोड़ी के प्राग्वट वंशी ,, देदा ने पार्श्व ,, ,,
२४—खेटीपुर के श्रीमाल वंशी ,, देपाल ने ,, ,, ,,
२५—खोखड़ के श्रीमाल वंशी ,, जोजा ने चन्द्र ,, ,,
२६—खीजुरी के श्री श्रीमाल गो० ,, नागदा ने पार्श्व ,, ,,
२७—हेमड़ी के सुघड़ गो० ,, पेथा ने चोमुख ,, ,,
२८—दानीपुर के सोमांवत ,, फूवा ने पार्श्व ,, ,,
२९—दुजाणा के कुमट गो० ,, सारंग ने महावीर ,, ,,
३०—वसावती के बाप्पनाग० ,, सलखण ने ,, ,, ,,
३१—फूसीग्राम के आदित्यनाग ,, सूढ़ा ने ,, ,, ,,
३२—नागपुर के श्रेष्टि गो० ,, महादेव ने पार्श्व ,, ,,
३३—शाकम्भरी के लुंग गो० ,, धनदेव ने पार्श्व ,, ,,

पट्ट सतावीस यक्षदेव गुरु, भूरिगोत्र दिपाया था ।
तप जप ज्ञान अपूर्व करके, जैन झण्ड फहराया था ॥
संघ चतुर्विध के थे नायक, सुरनर शीश झुकाते थे ।
सुन करके उपदेश गुरु का, मुमुक्ष दीक्षा पाते थे ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २७ वें पट्टपर आचार्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

२८—आचार्य श्री कक्कसूरि (पांचवां)

श्रेष्ठीत्याख्य कुले तु लब्ध महिमः कक्काख्यसूरिः कृती ।
आभाख्यान्नगरात्तु संघपतिना सार्धं ययौ पत्तने ॥
दीक्षां चाप्युपकेश पूर्वक पुरे संघं प्रति द्वन्द्विनः ।
जित्वा जैनमत प्रचार निपुणो ग्रन्थान् वहून् निर्ममौ ॥
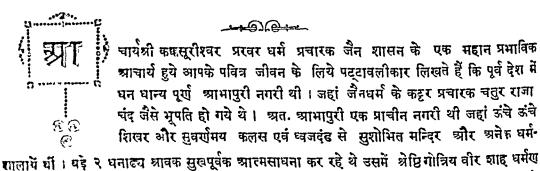
आचार्यश्री कक्कसूरीश्वर प्ररवर धर्म प्रचारक जैन शासन के एक महान प्रभाविक आचार्य हुये आपके पवित्र जीवन के लिये पट्टावलीकार लिखते हैं कि पूर्व देश में धन धान्य पूर्ण आभापुरी नगरी थी। जहां जैनधर्म के कट्टर प्रचारक चतुर राजा चंद जैसे भूपति हो गये थे। अत. आभापुरी एक प्राचीन नगरी थी जहां ऊंचे ऊंचे शिखर और सुवर्णमय कलस एवं ध्वजदंड से सुशोभित मन्दिर और अनेक धर्मशालायें थीं। बड़े २ धनाढ्य श्रावक सुखपूर्वक आत्मसाधना कर रहे थे उसमें श्रेष्ठिगोत्रिय वीर शाह धर्मण नाम का एक बड़ा भारी व्यापारी था आपके जेती नाम की भार्या थी आपके पूर्वज मरुधर से व्यापारार्थ आये थे पर व्यापार की वाहुल्यता के कारण आभापुरी को ही अपना निवास स्थान बना लिया। शाह धर्मण के ग्यारह पुत्र थे जिसमें कर्मा नाम का पुत्र बड़ा ही धर्मात्मा था। शाह धर्मण ने अपने जीवन में तीन बार तीर्थों का संघ निकाला। आभापुरी में एक आदीश्वर भगवान का मन्दिर बनाया संघ को तिलक करके पहिरामणी दी इत्यादि शुभकार्य्यों मे लाखों द्रव्य व्यय किया। अन्त में अपने पुत्र कर्मा को घर का भार सोंप आप सम्मेतशिखर तीर्थ पर अनशन कर स्वर्ग में वास किया। पीछे कर्मा भी सुपुत्र था उसने अपने पिता की उज्ज्वल कीर्ति और धवलयश को खूब बढ़ाया था कारण कर्मा भी बड़ा ही उदार चित्त वाला था शुभकार्य्यों में अग्र भाग लेता था। शाह कर्मा ने अपने व्यापारिक व्यवसाय एवं व्यापार क्षेत्र को खूब विशाल बना दिया। केवल भारत में ही नहीं पर भारत के बाहर पाश्चात्य देशों के साथ भी कर्मा का व्यापार चलता था। साधर्मी भाइयों की ओर कर्मा का अधिक लक्ष्य था। शाह कर्मा के सात पुत्र और चार पुत्रियें थीं। शाह कर्मा देवगुरु का परम भक्त था, धर्म साधना में हमेशा तत्पर रहता था। उस जमाने की यही तो खूबी थी थी कि उनके पीछे इतना बड़ा कार्य लगा होने पर भी वे अपना जीवन बड़े ही संतोष में व्यतीत करते थे। इतना व्यवसाय होने पर भी वे एक धर्म को ही उपादेय समझते थे।

एक समय शाह कर्मा अर्द्ध निद्रा में सो रहा था कि रात्रि में देवी सचायिका आकर कर्मा को कह रही है कि कर्मा तू उपकेशपुर स्थित भगवान महावीर की यात्रा कर तुझको बड़ा भारी लाभ होगा। बस इतने में तो कर्मा की आंखें खुल गई। उसने सोचा कि यह कौन होगी कि मुझे सूचित करती है कि तू उपकेशपुर स्थित महावीर की यात्रा कर। खैर, शाहकर्मा ने बाद निद्रा नहीं ली। सुबह अपनी स्त्री और पुत्र वगैरह को एकत्रित कर रात्रि का सब हाल सुनाया। महान लाभ के नाम से सब सम्मत हो गये कि अपने

पूर्वज बातें भी किया करते थे कि एक बार जननी जन्म भूमि की स्पर्शना करनी है वे नहीं कर पाये। जब ऐसा संकेत हुआ है तो अपने सब कुटुम्ब के साथ उपकेशपुर की यात्रा अवश्य करनी चाहिये। शाह कर्मा ने सोचा कि उपकेशपुर भी एक तीर्थ ही है। अव्वल तो अपनी जन्म भूमि है दूसरे महावीर के दर्शन तीसरे अपनी कुलदेवी सच्चायिका। अतः संघ के साथ ही यात्रा करनी चाहिये। जब काम बनने को होता है तब निमित्त भी सब अनुकूल मिल जाता है। इधर से पूर्व मे विहार करने वाले उपकेशगच्छीय वाचनाचार्य देवप्रभ अपने शिष्य परिवार से आभापुरी पधार गये। शाह कर्मा ने अपने विचार वाचकजी के सामने रक्खे। वाचकजी ने तुरत ही आपके सम्मत होकर उपदेश दिया कि कर्मा समय का विश्वास नहीं है धर्मका कार्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये।

कर्मा ने संघ की तैयारियें करनी शुरू करदीं और अंग वंग मगध कलिंग वगैरह प्रान्तों में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवादीं। कारण उस समय पूर्व देश मे मरुधर से आये हुये उपकेशवंशी लोगों की काफी संख्या थी और उपकेशपुर का संघ निकालने का यह पहला ही अवसर था अतः ऐसा सुअवसर हाथो से कौन जाने देने वाला था। ठीक शुभ मुहूर्त मे कर्मा शाह को संघपति पद प्रदान कर दिया और वाचनाचार्य देवप्रभ के नायकत्व मे संघ ने प्रयाण कर दिया। रास्ते में जितने तीर्थ आये सबकी यात्रा की ध्वजमहोत्सव वगैरह शुभकार्य करते हुए संघ उपकेशपुर पहुँचा। शासनाधीश चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की यात्रा का लाभ तो मिला ही पर विशेष में उपकेशगच्छाधीश धर्मप्राण आचार्य यक्षदेवसूरि भी अपने शिष्य मण्डल के साथ उपकेशपुर विराजते थे उनके दर्शन का भी संघ को लाभ अनायास मिल गया जिसकी संघ को बड़ी भारी खुशी थी तत्पश्चात् देवी सच्चायिका के दर्शन किये। इधर वाचनाचार्यजी ने भी आकर अपने पूज्य आचार्य देव को वन्दना की और चिरकाल से मिलने से साधुओं के समागम से बड़ा भारी आनन्द हुआ।

संघ ने स्थावर तीर्थ के साथ जंगम तीर्थ की यात्रा की तो उपदेशश्रवण की भावना होना तो स्वभाविक ही था। सूरिजी ने दूसरे दिन व्याख्यान दिया तो नगर के अलावा संघपति कर्मा तथा संघ के सब लोग व्याख्यान मे उपस्थित हुये। सूरिजी ने अपने व्याख्यान मे फरमाया कि मोक्षमार्ग की आराधना के लिये प्रवृति और निर्वृति एवं दो मार्ग है। प्रवृति कारण है तब निवृति कार्य है। कार्य को प्रगट करने के लिये कारण मुख्य साधन है। जैसे एक मनुष्य को मकान पर चढ़ना है तो सीढ़ी के आलम्बन की जरूरत है। बिना सीढ़ी मकान के ऊपर पहुँच नहीं सकता है पर केवल सीढ़ी को ही पकड़ के बैठ जाना एव संतोष करलेना ठीक नहीं है, पर आगे बढ़कर मकान पर जल्दी पहुँचजाने की कोशिश करना चाहिये। कारण, विलम्ब करने में कई अन्तरायें उपस्थित होजाती हैं। इसी प्रकार प्रवृति मार्ग में प्रवृति करता हुआ निर्वृति प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये जैसे पूजा, प्रभावना, स्वामी वात्सल्य, मन्दिर मूर्ति बनाना, तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकालना। यह सब प्रवृति मार्ग है इसका उद्देश्य निर्वृति प्राप्त करने का है जैसे सीढ़ी पर रहा हुआ मनुष्य मकान पर चढ़ता है इसी प्रकार मनुष्य को प्रवृति से ऊँचा चढ़ निर्वृति मार्ग को स्वीकार कर उसकी ही आराधना करनी चाहिये। जब तक आरम्भ और परिग्रह को न छोड़ा जाय तब तक निर्वृति आ नहीं सकती है अतः निर्वृति के लिये सर्वोत्कृष्ट मार्ग तीर्थङ्कर कथित भगवती जैनदीक्षा है इसकी आराधना किये बिना मोक्ष हो नहीं सकती है। क्योंकि गृहस्थ ज्यादा से ज्यादा पांचवें गुणस्थान का स्पर्श कर सक्ता है तब मोक्ष है चौदहवें गुणस्थान के अन्त में! भावुको! अभी आपको बहुत दूर जाना है।

चेतना हो तो चेत लो यह सुअवसर हाथों से जाता है। आयुष्य का क्षण मात्र भी विश्वास नहीं है। यदि आपको जन्म मरण के दुःख मिटा कर अक्षय सुखी बनना है तो आज लो कल लो देरी से लो या भवान्तर में लो दीक्षा अवश्य लेनी पड़ेगी पर भविष्य में न जाने कैसे संयोग एवं साधन मिलेंगे वे दीक्षा लेने में साधक होंगे या बाधक ? अतः मेरी सलाह तो यही है कि क्षणमात्र का विलम्ब न करके अभी दीक्षा लेकर मोक्ष को नजदीक कर लेना चाहिये इत्यादि। सूरिजी के उपदेश ने तो मोह-निद्रा में सोते हुये भावुकों को जागृत कर दिया। संघपति कर्मा ने सोचा कि क्या सूरिजी ने आज मुझे ही उपदेश दिया है पर आपका कहना अक्षरशः सत्य है चाहे द्रव्य दीक्षा लो चाहे भाव दीक्षा लो पर यह तो निश्चय है कि दीक्षा बिना मोक्ष नहीं है तो मुझे तो आज ही सूरिजी के पास दीक्षा लेलेनी चाहिये। बस, फिर तो देरी ही क्या थी मनुष्य की भावना ही फिरनी चाहिये। कर्मा को जिधर देखे संसार असार लगने लग गया। उन्होंने उठकर सूरिजी से अर्ज की प्रभो ! आपका कहना सत्य है और मै उसे स्वीकार करने को भी तैयार हूँ। परिषदा के लोग शाह कर्मा के शब्द सुन कर चकित रह गये कि संघपति यह क्या कह रहा है ? कई लोगों ने सोचा कि संघपति दीक्षा लेने को तैयार है तो अपने को ऐसा अवसर हाथों से क्यों जाने देना चाहिये। पहिले भी इनके साथ तीर्थयात्रा की तो अब भी संयम यात्रा करनी चाहिये कई ३० नरनारी कर्मा के साथ होगये और कर्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र धन्ना को संघपति की माला एवं सब घर का भार सुपुर्द करके आपने ३० नरनारियों के साथ भगवान् महावीर के मन्दिर में सूरिजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली। क्षयोपशम इसका ही नाम है जैसे समुदानी कर्म एक साथ बँधते हैं वैसे ही पूर्वभव के शुभकर्म से कर्मों का क्षयोपशम भी एक साथ में होजाता है। जम्बुकुँवर के साथ ५२७ जनों का सम्बन्ध था व इन्द्रभूति आदि के साथ ४४०० ब्राह्मणों का सम्बन्ध था एक साथ मे ही दीक्षित हुये थे। आचार्य श्री ने सबको दीक्षा देकर संघपति कर्मा का नाम धर्मविशाल रख दिया था। तदान्तर मुनि धर्मविशाल ने ज्ञानाध्ययन कर धुरंधर विद्वान होगये तथा सर्वगुण शम्पादित कर लिये तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने शाकम्भरी नगरी में श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक मुनि धर्मविशाल को सूरिपद से विभूषीत कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। जो नाम के पट्टपरम्परा से क्रमशः चला आ रहा था—

आचार्य कक्कसूरि बड़े ही विद्वान प्रतिभाशाली और धर्मप्रचारक आचार्य हुये। आचार्य कक्कसूरि मरुधरादि प्रान्त में सर्वत्र विहार करते हुये नागपुर पधारे। वहाँ के बाप्पनाग गोत्रिय शाह पुनड़ ने सवा लक्ष रुपये व्यय करके सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया। सूरिजी का व्याख्यान [illegible] होता था और जनता पर प्रभाव भी खूब ही पड़ता था। एक दिन सूरिजी ने उपकेशपुर का वर्णन करते हुये फरमाया कि जैसे शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थ हैं वैसे ही मरुधर में उपकेशपुर भी एक तीर्थ है जिसमें महाजन संघ के लिये तो उपकेशपुर की भूमी और भी विशेष है। कारण, वहाँ पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से महाजन संघ और भगवान् महावीर के मन्दिर की स्थापना हुई थी। महाजन संघ की सहायक देवी सच्चायिका का स्थान भी उपकेशपुर में ही है। अतः महाजन संघ का कर्तव्य है कि साल में एक वार उपकेशपुर की स्पर्शना कर भगवान महावीर का स्नात्र महोत्सव करके लाभ उठावें इत्यादि। सूरिजी के उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। चरड़ गोत्रिय शाह कपर्दी ने उपकेशपुर की यात्रार्थ संघ निकालने का विचार कर सूरिजी एवं श्रीसंघ से प्रार्थना की कि मेरी इच्छा है कि मैं उपकेशपुर का संघ निकाल कर

श्रीसंघ के साथ यात्रा करूँ। सूरिजी ने फरमाया कदर्पि तू भाग्यशाली है। तीर्थयात्रा का लाभ कोई साधारण लाभ नही है पर इस पुनीत कार्य से कई भव्यों ने तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन किया है क्योकि श्रीसंघ रत्नों की खान है इसमें मोक्षगामी जीव भी शामिल है न जाने किस जीव के इस निमित्त कारण से किस प्रकार से भला हो जाता है इत्यादि वाद मे संघ अग्रेश्वरों ने भी कहा कदर्पि आपके यह विचार सुन्दर और शुभ हैं। आप खुशी से सघ निकाले श्रीसंघ आपके सहमत है। बस, फिर तो था ही क्या नागपुर के घर-घर मे आनंद मंगल छागया। कारण गुरुदेव के साथ छरी पाली यात्रा का करना कौन नहीं चहाता था। सेठ कदर्पि ने संघ के लिये आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी और सब तरह की तैयारियें करने में लग गया। कदर्पि जैसे विपुल सम्पत्ति का मालिक था वैसे ही बहुकुटुम्बी भी था। और दिल का भी उदार था—

सूरिजी के दिये हुये शुभ मुहूर्त में शाह कदर्पि को संघपति पद अर्पण कर सूरिजी के नायकत्व में संघने प्रस्थान कर दिया। मुग्धपुर, कुर्च्चपुर, फलवृद्धि, मेदनीपुर खटकूप शंखपुर, हर्षपुर, आसिकापुरी और माडव्यपुर होते हुये जब संघ उपकेशपुर पहुँचा तो वहाँ के लोगों को ज्ञात हुआ कि आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज नागपुर से संघ के साथ पधार रहे है अतः संघ मे उत्साह का पार नहीं रहा। संघ की ओर से नगर प्रवेश का बड़े ही समारोह के साथ महोत्सव किया। भगवान् महावीर की यात्रा कर सबने अपना अहो भाग्य समझा तत्पश्चात् पहाडी पर भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की यात्रा और देवी सच्चायिका के दर्शन एवं आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज के स्थूंभ की यात्रा की। संघपति ने पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि अनेक शुभ कार्य किये अष्टान्हिका महोत्सव और ध्वजारोहणमें संघपति ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर खूब ही पुन्योपार्जन किया।

वहाँ भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में फरमाया कि यों तो मोक्ष मार्ग की आराधना के अनेक कारण हैं पर साधर्मी भाइयो के साथ में वात्सल्यता रखना उनकी सहायता एवं सेवा उपासना करना विशेष लाभ का कारण है शास्त्रों में भी कहा है कि

"रागत्थ सव्व धम्मा, साहम्मिअ वन्छलं तु एगत्थ" । बुद्धि तुलाए तुलिया, देवि अतुल्लाइं भणिआइं ॥

श्रोताओ! इसी वात्सल्यता के कारण जो महाजन संघ लाखों की सख्या मे था वह करोड़ों तक पहुँच गया है। आपने सुना होगा कि जिस समय महाराजा चेटक और कोणिक के आपस में युद्ध हुआ उस समय काशी कौशल के अट्ठारह गण राजा केवल एक साधर्मी भाई के नाते से चेटक राजा की मदद में अपने २ राज्य का बलिदान करने को तैयार होगये। इतना ही नहीं पर उन्होने अपने २ राज वलिदान कर भी दिया था। अतः साधर्मी भाइयों की ओर सदैव वात्सल्यता रखनी चाहिये।

यात्रार्थ संघ निकलना भी एक साधर्मी वात्सल्यता ही है पूर्व जमाने में भरत सागर चक्रवर्ती व राम पाण्डव जैसे भाग्यशालियो ने सघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को तीर्थों की यात्रा करवाई थी। महाराज उत्पलदेव, सम्राट सम्प्रति और राजा विक्रमादि अनेक भूपतियो ने तथा इस महाजन सघ के अनेक भाग्यशालियो ने भी सम्मेत शिखर शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों के सघ निकाल कर अपने साधर्मी भाइयों को यात्रा करवाई थी। इसका अर्थ यह नहीं होता है कि एक धनाढ्य संघ निकाले और साधारण लोग उसमें शामिल होकर यात्रार्थ आवें। पर साधारण मनुष्य के निकाले हुये संघ में धनाढ्य लोग भी आवें और उसके दिये हुये स्वामीवात्सल्य एवं पहरावणी को वे धनाढ्य बड़ी खुशी से लेते थे और आज भी ले रहे

हैं तथा भविष्य में लेंगे जैनधर्म की यही तो एक विशेषता है कि द्रव्य की अपेक्षा भावकों ही विशेष स्थान दिया है इत्यादि सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर अच्छा असर हुआ और साधर्मी भाइयों की वात्सल्यता पर विशेष भाव जागृत हुए। शाह कदर्पिने अपनी उदारता से इस शुभ कार्य में पुष्कल द्रव्य व्यय किया और सूरिजी को वन्दन कर संघ वापिस लौट कर नागपुर गया। सूरिजी कई अर्सा तक उपकेशपुर में स्थिरता कि जिससे धर्म की खुबही प्रभावना हुई। बाद वहाँ से विहार कर आस-पास के ग्रामों में भ्रमन करते हुए कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे।

उस समय कोरंट संघ में एक ऐसा विग्रह उत्पन्न हुआ था कि सूरिजी के पधारने की न तो किसी ने खबर मंगाई न स्वागत ही की तैयारियें कीं। किंतु वहाँ पर कोरंटगच्छीय उपाध्याय मेरुशेखर विराजते थे। उन्होंने सुना कि आचार्य कक्कसूरिजी महाराज पधार रहे हैं। संघ को बुला कर कहा कि यह क्या बात है कि संघ निश्चिन्त बैठा है हाँ, साधुओं को तो इस बात की जरूरत नहीं है पर इसमें संघ की क्या शोभा है कि कक्कसूरि जैसे प्रभाविक आचार्य कृपा कर आपके नगर की ओर पधार रहे हैं जिसमें तुम्हारा कुछ भी उत्साह नहीं। यह बड़े अफसोस की बात है। संघ अग्रेश्वरों ने कहा पूज्यवर ! यहाँ एक उपकेशवंशी व्यक्ति ने राजपूत की कन्या के साथ शादी करली है जिसका विग्रह फैल रहा है। उपाध्यायजी ने कहा कि ऐसे पूज्य पुरुष के पधारने से विग्रह शाँत हो जायगा अतः सूरिजी का स्वागत कर नगर-प्रवेश कराओ। उपाध्यायजी महाराज अपने शिष्यों को लेकर सूरिजी के सामने गये और श्री संघ ने भी अच्छा स्वागत किया सूरिजी-भगवान महावीर के दर्शन कर उपाध्यायजी के साथ उपाश्रय पधारे। और थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्जन हुई। जब संघ का झगड़ा सूरिजी के पास आया तो सूरिजी ने मधुर वचनों से सबको समझाया कि राजपूत की कन्या के साथ विवाह करने से आपको क्या नुकसान हुआ है। एक अजैन कन्या आपके घर में आई है आपके धर्म की आराधना करेगी और आप स्वयं राजपूत ही थे वैवाहिक क्षेत्र जितना विशाल होता है उतनी ही सुविधा रहती है। जब से क्षेत्र संकुचित हुआ है तब से फायदा नहीं किन्तु नुकसान ही हुआ है अतः बिना ही कारण संघ में विग्रह डालना सिवाय कर्मबंद के कुछ भी लाभ नहीं है। यदि राजपूत की पुत्री जैनधर्म का वासक्षेप लेवे एवं शिक्षा दीक्षा लेकर भगवान महावीर की स्नात्र महोत्सव करलें फिर तो संघ में किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहना चाहिये।

बस. सूरिजी का कहना दोनों पक्ष वालों ने स्वीकार कर लिया। कारण, उस समय जैनाचार्यों का संघ पर बड़ा भारी प्रभाव था। आचार्यश्री से कहना सब संघ शिरोधार्य कर लेता था। कोरंट संघ में शान्ति हो गई। राजपूत कन्या ने सूरिजी से वासक्षेप लेकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया और भगवान् महावीर का स्नात्र महोत्सव कर अपना अहोभाग्य समझा। हां, कलिकाल ने तो श्री संघ में फूट कुसम्प के बीज बोने का प्रयत्न किया था पर आचार्य श्री हाथ में दंड लेकर खड़े कदम रहते थे।

[illegible] एक ब्राह्मण के विषय में भी मतभेद चलता था उसको भी सूरिजी ने शान्ति कर दी थी [illegible] ब्राह्मण को बड़े ही समारोह से दीक्षा देकर सूरिजी ने अपना शिष्य बना कर उसका नाम [illegible] रख दिया था—यह सब सूरिजी की कार्य कुशलता एवं [illegible] का ही प्रभाव था।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था। व्याख्यान एक शांति और वैराग्य का मुख्य कारण था। व्याख्यान से अनेक भावुकों का कल्याण होता है त्यागियों के व्याख्यान का जनता पर अवश्य

प्रभाव पड़ता है । एक समय सूरिजी महाराज ने अपने व्याख्यान में अनादि संसार का वर्णन करते हुये फरमाया कि मोह कर्म के जोर से जीव अनादि काल से जन्म मरण करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता आया है । मोहनीय कर्म की उत्कृष्टी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ सागरोपम की है जिसमें गुनंतर कोड़ाकोड़ सागरोपम मिथ्यात्व दशा में ही क्षय करता है जब धर्म प्राप्ती करने के योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव का निमित्त कारण मिलता है तत्पश्चात् सात प्रकृतियों का क्षय करता है जैसे—

१—मिथ्यात्व मोहनीय–कुदेव, कुगुरु, कुधर्म पर श्रद्धा विश्वास रखना ।

२—मिश्रमोहनीय–सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को एकसा ही मानना ।

३—सम्यक्त्व मोहनीय–क्षायक दर्शन आने में रुकावट करना । पर दर्शन का विरोधी न हो ।

४—अन्तानुबंधी क्रोध–जैसे पत्थर की रेखा वैसे ही जावत जीव क्रोध रखना ।

५—अन्तानुबन्धो मान जेसे वज्र का थंभ वैसे ही जावत् जीव मान रखना ।

६—अन्तानुबन्धी माया–जैसे बांस की गांठ वैसे ही जावत जीव माया रखना ।

७—अंतानुबंधी लोभ–जैसे किरमिची रंग वैसे ही जावत् जीव लोभ रखना ।

इन सात प्रकृति का क्षय करने से दर्शन गुण (सम्यक्त्व) प्राप्त होता है । जब जीव को क्षायक दर्शन की प्राप्ति हो जाती है तो वह फिर संसार में जन्म मरण नहीं करता है । यदि किसी भव का आयुष्य नहीं बंधा हो तो उसी भव में मोक्ष जाता है किंतु आयुष्य पहिले बंध गया हो तो एक भव बंधा हुआ आयुष्य का करता है और दूसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है । शास्त्र में जो तीन भव कहा है इसका कारण यह है कि यदि तिर्यंच का आयुष्य बंधा हुआ हो तो उसको तिर्यंच में जाना पड़ता है और सम्यग्दृष्टि तिर्यंच सिवाय विमानीक देव के आयु बंध नहीं सकता है अतः तिर्यंच से विमानीक देवता का भव करे और वहां से मनुष्य का भव कर मोक्ष जाता है । दर्शन के साथ ज्ञान चारित्र की भी आवश्यकता रहती है और इन तीनों की आराधना करने से ही जीव की मोक्ष होती है । श्री भगवतीजी सूत्र के आठवें शतक के दशवें उद्देश्य में विस्तार से उल्लेख मिलता है कि—

आराधना तीन प्रकार की होती है, ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना इनके भी तीन २ भेद बतलाये हैं जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टा—जो निम्न लिखित हैं—

१—ज्ञानाराधना के तीन भेद

१—जघन्य ज्ञानाराधना अष्ट प्रवचन की आराधना करना । या मति श्रुति ज्ञान की आराधना करना

२—मध्यम ज्ञानाराधना-एकादशांग की आराधना करना । अवधि० मन. पर्यव ज्ञान की ,, ,,

३—उत्कृष्ट ज्ञानाराधना-चौदह पूर्व एव दृष्टिवाद की आराधना या केवल ज्ञान की ,, ,,

इनके अलावा ज्ञान पढ़ने में उद्यमापेक्षा थोड़ा परिश्रम करना यह जघन्य आराधना है मध्यमोद्यम करना यह मध्यम आराधना है और उत्कृष्ट—प्रबल्य परिश्रम करना यह उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है । चाहें पूर्व भवोपार्जित ज्ञानावर्णिय कर्मोदय होने से ज्ञान नहीं चढ़ता हो पर उत्कृष्ट परिश्रम करने से ज्ञानवर्णिय कर्म का क्षय हो सकता है । जैसे एक मुनि को परिश्रम करने पर एक पद भी नहीं आसरा परंतु उसने उद्यम नहीं छोड़ा अर्थात रुचि पूर्वक उद्यम करता रहा । अंत में उसको केवल ज्ञान उत्पन्न होगया ।

२—दर्शन आराधना के तीन भेद

दर्शनाराधना भी तीन प्रकार की है। जैसे कि—

१—जघन्य दर्शनाराधना-जघन्य क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

२—मध्यम दर्शनाराधना-उत्कृष्ट क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

३—उत्कृष्ट दर्शनाराधना-क्षायक सम्यक्त्व की प्राप्ति होना।

उद्यमापेक्षाजघन्य दर्शनाराधना देवदर्शन एवं पूजन करना गुरुदर्शन, स्वाधर्मियों से वात्सल्यता आदि जिनशासन की उन्नति के कार्य्यों में शामिल होना। मध्यम दर्शनाराधना तीर्थङ्करों का मंदिर बनाना मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाना, साधर्मी भाइयों को सहायता पहुँचा कर धर्म में अस्थिर होते हुए को स्थिर करनादि। उत्कृष्ट दर्शनाराधना तीर्थों का बड़ा संघ निकालना यअजैनों को जैनधर्म में दीक्षित करनादि।

३—चारित्र आराधना के तीन भेद

१—जघन्य चारित्र आराधना सामयिक चारित्र, देशव्रत एवं सर्वव्रत धारणकर आराधना करना।

२—मध्यम चारित्र आराधना-प्रतिहार विशुद्ध एवं सूक्ष्म संपराय चारित्र की आराधना।

३—उत्कृष्ट चारित्र आराधना-यथाख्यात चारित्र की आराधना।

उद्यम की अपेक्षा चारित्रवान को उपकरण वगैरह सहायता पहुँचानी यह जघन्य चारित्र आराधना, चारित्र का अनुमोदन करना चारित्र लेने वालो को भावों की वृद्धि करना यह मध्यम चारित्र आराधना और चारित्र लेना या चारित्र से पतित होते हुये को चारित्र में स्थिर करना यहउत्कृष्ट चारित्र आराधना है।

इन ज्ञान दर्शन चारित्र की जघन्य आराधनाकरने वाले जीव पन्द्रह भव में अवश्य मोक्ष जाता हैं तथा इन रत्नत्रिय की मध्यम आराधना करने से तीन भव में तथा उत्कृष्ट आराधना करने से उसी भव में मोक्ष जाता है। अतएव आप लोगों को इस भव में सब सामग्री अनुकूल मिलगई है तो ज्ञान दर्शन चारित्र की जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टि जैसी बने वैसी आराधना अवश्य करनी चाहिये इत्यादि खूब विस्तार से उपदेश दिया जिसका श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। और आत्मकल्याण की भावना वालों की अभिरुचि आराधना की ओर झुक गई। सूरिजी ने कोरंटपुर में स्थिरता कर वहाँ के श्रीसंघ में शान्ति स्थापन करदी और उनको इस प्रकार समझाया कि उनका दिल उदार एवं विशाल बन गया।

एक समय चन्द्रावती नगरी के संघ अग्रेश्वर सूरिजी के दर्शनार्थ आये और प्रार्थना की कि प्रभो! चन्द्रावती का सकल श्रीसंघ आपके दर्शनों की अभिलाषा कर रहा है अतः आप शीघ्र ही चन्द्रावती पधारें आपके पधारने से बहुत उपकार होगा। सूरिजी ने फरमाया कि हमको विहार तो करना हीहै और इस प्रदेश में आये हैं तो चन्द्रावती की स्पर्शना भी करनी ही है पर आप शीघ्रता करने को कहते हो ऐसा वहाँ क्यालाभ है? श्रावकों ने कहा यह तो आप वहाँ पधारेंगे तब मालूम हो जायगा। सूरिजी ने कहा क्या कोई दीक्षा लेने वाला है या मंदिर की प्रतिष्ठा करवानी हैं तथा तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालना है ऐसा कौनसा लाभ है? श्रावकों ने कहा कि दीक्षा श्रावक ही लेते है मंदिर श्रावक ही करवाते है और संघ भी श्रावक ही निकालते हैं। आप चंद्रावती पधारें सब होगा। सूरिजी ने कहा क्षेत्र स्पर्शन। बस, चंद्रावती के श्रावक सूरिजी को वंदन करके चले दिये। तदनंतर सूरिजी कोरंटपुर से विहार करके आस पास के ग्रामों में धर्मोपदेश करते

हुये चंद्रावती पधारे। श्रीसंघने बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत किया। सूरिजी महाराज ने मंगलाचरण में ही फरमाया कि जिनशासन की प्रभावना। जिनशासन की उन्नति और मिथ्या दृष्टियो को प्रतिबोध करने से जीव तीर्थङ्कार नाम कर्मोपार्जन करता है। इस विषय में कई उदाहरण बतला कर जनता पर अच्छा प्रभाव डाला तत्पश्चात् भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्ज्जन हुई।

दोपहर के समय जो कोरंटपुर आये थे वे श्रावक आये। सूरिजी को वन्दन करके अर्ज की कि प्रभो! यह दुर्गा श्रीमाल है इसने भगवान शान्तिनाथ का मंदिर बनाया है इसकी इच्छा है कि प्रतिष्ठा करवा कर श्रीशत्रुंजय का संघ निकालू और उस तीर्थ की शीतल छाया में दीक्षा ग्रहण करूं इसलिये हम आपके पास विनती करने को आये थे। सूरिजी ने कहा दुर्गा बड़ा ही भाग्यशाली है। जो श्रावक के करने योग्यकृत्य है उनको करके कृतार्थ होना चाहिये! दुर्गा ने जो कार्य करने का निश्चय किया यह तो बहुत अच्छा है कल्याणकारी है पर। दुर्गा के कुटुम्ब में कौन है? उन्होने कहा दुर्गा के औरत तो गुजर गई तीन पुत्र और पौत्रे वगैरह है पर वे भी धर्मिष्ठ हैं उन्होने कह दिया कि आप अपने कमाये द्रव्य को धर्म-कार्य मे व्यय करें इसमें हमारा कोई उजर नहीं है इतना ही नहीं बल्कि जरूरत हो तो हम अपने पास से भी दे सकते है आप खुशी से धर्म-कार्य करावें इत्यादि। सूरिजी ने कहा कि शाल का वृक्ष के परिवार भी शाल का ही होता है पर धर्म्म कार्य में विलम्ब न होना चाहिये। श्रावकों ने कहा गुरुदेव! मन्दिर तो तैयार होगया। आप शुभ मुहूर्त निकाल दें सब सामग्री तैयार है संघ के लिये अभी तो ऋतु गरमी की है आप चतुर्मास करावे और बाद चतुर्मास के संघ निकाल कर दुर्गा दीक्षा लेने को भी तैयार है। उम्मेद है कि दुर्गा का अनुकरण करने को और भी कई भावुक तैयार होजायगे। सूरिजी ने फरमाया कि क्षेत्र स्पर्शन सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ हो रहा था श्री संघ ने चतुर्मास की विनती की और सूरिजी ने स्वीकार करली। सूरिजी ने आर्वुदाचलादि प्रदेश मे घूम कर पुनः चन्द्रावती आकर चतुर्मास कर दिया। व्याख्यान में आगम वाचना के लिये श्रीभगवती सूत्र वाचने का निश्चय होने पर शाहदुर्गा ने रात्रि जागरणादि आगम पूजा का लाभ हासिल किया कारण दुर्गा के एक यही काम शेष रहा था। सूरिजी की कृपा से वह भी होगया चन्द्रावती नगरी के लिये यह सुवर्ण समय था कि एक तो सूरिजी का चतुर्मास और दूसरे महा प्रभाविक पंचमागम का सुनना जिसके लिये मनुष्य तो क्या पर देवता भी इच्छा करते हैं। प्रत्येक शतक ही नहीं पर प्रत्येक प्रश्न की पूजा सुवर्ण मुद्रिका से होती थी जनता को बड़ा ही आनन्द आरहा था, क्यों नहीं सूरिजी जैसे विद्वान के मुँह से श्रीभगवती सूत्र का सुनना। यो तो भगवती सूत्र ज्ञान का समुद्र ही है और इसमें सब विषयों का वर्णन आता है पर त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण की और विशेष विवेचन किया जाता था जिससे कई मुमुक्षुओ के भाव ससार से विरक्त होगये थे सूरिजी के चतुर्मास से जनता को बहुत लाभ मिला, तप संयम की आराधना भी बहुत लोगो ने की। इधर शाह दुर्गा ने अपनी ओरसे संघ की तैयारियें करनी शुरू करदी। बड़ी खुशी की बात है कि मन्दिर की प्रतिष्टा और संघ प्रस्थान का मुहूर्त नजदीक २ में ही निकला कि जनता को और भी सुविधा होगई। दुर्गा ने आमंत्रण भी दूर २ प्रदेश तक भिजवा दिये थे। अतः चतुर्विध श्रीसंघ बहुत गहरी संख्या में उपस्थित हुआ। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त में मन्दिरजी की प्रतिष्टा करवा कर शाह दुर्गा को संघपति बनाया और संघ यात्रा के लिये प्रस्थान कर दिया। रास्ते में मन्दिरों के दर्शन पूजा प्रभावना ध्वजारोहण और स्वामिवात्सल्यादि कई शुभ कार्य्य करते हुये संघ श्रीशत्रुंजय पहुँचा।

दर्शन स्पर्शन कर सब लोगों ने अपना अहोभाग्य समझा। अष्टान्हिका महोत्साव ध्वजारोहणादि के पश्चात शाह दुर्गा ने संघपति की माला अपने ज्येष्ठ पुत्र कुंभा को पहना दी और आपने एकादश नरनियों के साथ सूरिजी के चरण कमलो भगवति जैनदीक्षा स्वीकार करली। इस सुअवसर पर सूरिजी ने उन मुमुक्षुओं की दीक्षा के साथ अपने शिष्यों में से मुनि पूर्णनन्दादि पांच साधुओं को उपाध्याय पद राजसुन्दरादि ५ साधुओं महत्तर पद कुँवारहंसादि पांच साधुओं को पण्डित पद प्रदान किया। बाद संघ शाह कुंभा के संघपतित्व में वापिस लौट कर चन्द्रावती आया।

सूरिजी महाराज ने कई अर्सा तक तीर्थ की शीतल छाया में निर्वृति का सेवन किया बाद विहार कर सौराष्ट्र भूमि में सर्वत्र भ्रमण कर धर्म जागृति एवं धर्म का प्रचार बढ़ाया इत्यादि अनेक प्रान्तों में घूम कर अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को द्रुतगति से चलाकर हजारो लाखों मांस भक्षियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर उनका उद्धार किया। कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाई। कई मौलिक ग्रन्थों का भी निर्माण किया और अपने कच्छ सिन्ध में विहार कर पंजाब की भूमि को पावन की। कई अर्सा तक वहाँ विहार कर जैनधर्म की प्रभावना की तत्पश्चात् हस्तनापुर मथुरादि तीर्थों की यात्रा कर बुंदेल खण्ड एवं आवन्ति मेदपाट होते हुये मरुधर मे पधारे। आपके आज्ञावृति साधु साध्वयों की संख्या बहुत थी। अपने भी कई नरनारियों को दीक्षा थी अतः वे साधु साध्वियों प्रत्येक प्रान्त में विहार करते थे। अपने अपने २१वर्षों के शासन में जैनधर्म की खूब सेवा बजाई। अन्त में आप उपकेशपुर पधारे और कुमट गौत्रिय शाह लाधा के महा महोत्सव पूर्वक तथा देवी सच्चायिका की सम्मति से उपाध्याय पूर्णनन्द को आचार्यपद से विभूषित कर अपना सर्व अधिकार नूतन आचार्य देवगुप्तसूरि को सौंप कर आप अन्तिम सलेखना में लगगये और अन्त में १६ दिन का अनशन कर समाधि पूर्वक स्वर्ग पधारे।

आचार्य श्री के शासन में भावुकों की दीक्षा

१— चन्द्रावती	के उपकेश वंशीये	रामादि कई भावुकों ने	सूरिजी से	दीक्षा ली
२—चुड़ा	के प्राग्वट वंशीये	विमला ने	,,	,,
३—पद्मावती	के प्राग्वट वंशीय	थेरू ने	,,	,,
४—गरोली ग्राम	के श्रीमाल	शाह सुखा ने	,,	,,
५—टेली ग्राम	के सुचंति गौत्रीय ,,	मादा ने	,,	,,
६—वडवोली	के भूरि गौत्रीय ,,	आदू ने	,,	,,
७—उपकेशपुर	के श्रेष्टि गौत्रीय ,,	कुम्पा ने	,,	,,
८—नागपुर	के बाप्पनाग गौत्रीय ,,	बागा ने	,,	,,
९—जंगालु	के भाद्र गौत्रीय ,,	भीमा ने	,,	,,
१०—जसोली	के चरड गौत्रीय ,,	देवा ने	,,	,,
११—शंखपुर	के चोरलिया गौत्रीय ,,	जोगड़ ने	,,	,,
१२—हारदा	के कुम्मट गौत्रीय ,,	नोंधण ने	,,	,,
१३—घोबा	के कनोजियागौत्रीय ,,	लाधा ने	,,	,,

१४—भरोंच के चिंचटगौत्रीय शाह सारंग ने सूरिजी से दीक्षाली
१५—भीयाणी के मोराक्षगौत्रीय „ शोभा ने „ „
१६—भुजपुर के मल्लगौत्रीय „ करमण ने „ „
१७—वीरपुर के सुघड़गौत्रीय „ रांणा ने „ „
१८—खोखर के तप्तभट्टगौत्रीय „ माथुर ने „ „
१९—नरवर के करणाटगौत्रीय „ फागु ने „ „
२०—कीराटकुम्प के अदित्य नाग गौ० „ पेथा ने „ „
२१—मथुरा के श्रेष्टिगौत्रीय „ कल्याणने „ „
२२—मीमावती के कुलभद्रगौत्रीय „ सूपण ने „ „
२३—विसट के विरहटगौत्रीय „ हरदेव ने „ „
२४—चन्देरी के सोनावतगौत्रीय „ देसल ने „ „
२५—मांडव्यपुर के सुसाणिया गौत्रीय „ हाला ने „ „
२६—मधुमति के भाद्रगौत्रीय „ डुगर ने „ „
२७—मधिमा के बाप्पनाग गौत्रीय „ भैंसा ने „ „
२८—ठाकुरपुर के डिडुगौत्रीय „ हरराज ने „ „
२९—दशपुर के वोहरागौत्रीय „ करमाण ने „ „
३०—देवली के श्रेष्टिगौत्रीय „ नारायण ने „ „
३१—देवपट्टन के प्राग्वटवंशीगोंत्रीय „ पन्ना ने „ „
३२—कानड़ा के राव क्षत्री गौत्रीय „ सूघा ने „ „

पूज्याचार्य देव के शासन में सद्कार्य्य

१—नागपुर के अदित्यनाग गौत्रीय शाह दीपा ने श्री उपकेशपुर स्थिति भगवान् महावीर की यात्रार्थ छरी पाली संघ निकाला साधर्मी भाइयों को स्वामिवात्सल्य एवं एक एक सुवर्ण मुद्रिका की पहरामणी दी। इस संघ में शाह दीपा ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर शुभ कर्मों का संचय किया।

२—उपकेशपुर का श्रेष्टि गौत्रीय शाह रावल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

३—सोपार पाटण का पलाह गौत्रीय शाह राणा ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

४—माडवगढ़ के मोरक्ष गौत्री मंत्री नागदेव ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

५—दशपुर के सुचंति गौत्र का शाह भारमल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

६—वीरपुर के भूरि गौत्रीय शाह भाला ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

७—चंदेरी के कुम्मट गौत्रीय शाह कल्हण ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

८—लोहाकोट के बाप्प नागगौत्रीय मंत्री रणवीर ने श्री सम्मेतशिखरजी का सङ्घ निकाला।

९—तक्षशिला से करणाट गौत्रीय शाह रावल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

१०—देवपट्टन से श्रेष्टिगौत्रीय मंत्री गोकल ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला।

११—भरोंच नगर से प्राग्वटवंशीय मन्त्री जल्हण ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला ।
१२—पोतनपुर से प्राग्वटवंशीय महरा ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला ।
१३—कोरंटपुर के श्रीमालवंशीय शाह देदा ने श्री शत्रुंजय का सङ्घ निकाला ।
१४—भिन्नमाल के श्रेष्टि गौत्रीय शाह चैना ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला ।
१५—जावलीपुर के अदित्य नाग गौत्रीय शाह भुरा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला ।
१६—शिवगढ़ के श्रेष्टि गौत्रीय मन्त्री खूमाण युद्ध में काम आया उनकी स्त्रिी सती हुई ।
१७—चावों का वाप्पनाग गौत्रीय शाह सूघा युद्ध में मारा गया उनकी दो स्त्रिीं सती हुई ।
१८—मेदनीपुर का भाद्र गौत्रीय नारायण युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई ।
१९—डिड्डु नगर का तप्तभद्र गौत्रीय गुणपाल युद्ध में काम आया उनकी दो स्त्रिीं सती हुई ।
२०—चन्द्रावती का प्राग्वट मन्त्री हाथी युद्ध में मारा गया उसकी स्त्री सती हुई ।
२१ उपकेशपुर का श्रेष्टि वीर वीरम युद्ध मे मारा गया उसकी स्त्री सती हुई ।
२२—शक्खपुर का विरहट गौत्रीय वीर जाल्हण युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई ।
२३—खटकुंप के चरड गौत्रीय शाह तेजा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई ।
२४—जंगालु के कनोजिया शाह कुका युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई !
२५—सत्यपुर के श्रीमाल वंशी दूधा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई ।
२६—पीपाणा का श्रेष्टि गौत्रीय रावल की विधवा पुत्री ने एक तलाव खुदाया ।
२७—नारदपुरी के प्राग्वट लाखा ने वि० सम्वत ३४७ दुकाल में शत्रुकार दिया ।
२८—कीराटकुंप के कुलभद्र गौत्रीय शाह नेना ने ३४७ दुकाल में शत्रुकार दिया ।
२९—हर्षपुर का बलाह गौत्रीय भीम ने सम्वत ३४७ शत्रुकार तथा पशुओं ने घास देकर दुकाल को सुकाल बना दिया ।

भीमा रे घर भुलो आवे अन्न जल घास तुरत ही पावे ।
भीम भीम में अन्तर न आणो, कलि नहीं पर सतयुग जाणो ॥

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ ।

१—विजयपट्टन	के	अदित्यनाग०	धरण ने	भ०	महावीर	म०	प्र०
१—भिन्नमाल	के	वाप्पनाग गौ०	अजरा ने	„	„	„	„
३—सत्यपुर	के	श्रीमाली वंशी	गोपाल ने	„	पार्श्व	„	„
४—सोढेराव	के	प्राग्वट वंशी	रहाप ने	„	„	„	„
५—चन्द्रपुर	के	चरड़ गौ०	जोरा ने	„	„	„	„
६—राजपुर	के	मल्ल गौ०	दोला ने	„	सुपार्श्व	„	„
७—रेणकोट	के	भूरि गौ०	साद्दा ने	„	चन्द्र०	„	„
८—रेवाड़ी	के	पोकरणा गौ०	दुरगा ने	„	महावीर	„	„
९—हालड़ी	के	डिड्डुगौत्र	चंचग ने	„	„	„	„

१०—सिलोरा के श्रेष्टि गौ० चूड़ा ने भ० महावीर म० प्र०
११—डामरेल के भूरि गौ० जाला ने ,, शितल० ,, ,,
१२—आलोर के अदित्य नाग० जोधा ने ,, वासपूज ,, ,,
१३—जाबलीपुर के चोरलिया० मुकन्द ने ,, विमल ,, ,,
१४—गगरकोट के बलाह गौ० मुरार ने ,, धर्म० ,, ,,
१५—त्रिभुवनगीरि के कुंमट गौ० भाखर ने ,, शान्ति० ,, ,,
१६—मारोटगढ के कनोजिया० जैहिग ने ,, महावीर ,, ,,
१७—नारायणगढ़ के चिचट गौ० नागड़ ने ,, ,, ,, ,,
१८—देवलकोट के सुचंति गौ० पर्वत ने ,, ,, ,, ,,
१९—कानपुर के श्री श्रीमाल अमाराने ,, आदीनाथ ,, ,,
२०—दुनारी के श्री श्रीमाल वोपा ने ,, पार्श्व ,, ,,
२१—कोटीपुर के तप्तभट्ट गौ० डुंगर ने ,, ,, ,, ,,
२२—वदनपुर के वाप्पनाग गौ० उरजणने ,, गोडीपार्श्व ,, ,,
२३—घूसीग्राम के करणाट गौ० कचरा ने ,, ,, ,, ,,
२४—देपालपुर के कुलभद्र गौ० नोधणने ,, महावीर ,, ,,
२५—अटालू के विरहट गौ० लुद्रा ने ,, ,, ,, ,,
२६—भरणी के चरण गौत्र० टेका ने ,, सीमंधर ,, ,,
२७—पाल्हिका के सुघड़ गौ० दुर्गा ने ,, शान्ति० ,, ,,
२८—पुष्कर के लुंग गौत्र० मुकना ने ,, ,, ,, ,,
२९—झासी के प्राग्वट गौ० वच्छा ने ,, महावीर ,, ,,
३०—जैतलपुर के प्राग्वट गौ० नानग ने ,, ,, ,, ,,
३१—सिद्धपुर के श्रीमाल गौ० हाडूमंत ने ,, ,, ,, ,,
३२—वटनगर के श्रेष्टि गौ० पृथुसेन ने ,, ,, ,, ,,
३३—आकांणी के डिडु गौत्र० नाथा ने ,, ,, ,, ,,

वीरा अठ पट्ट कक्कसूरि हुये, श्रेष्टि कुल उद्धारक थे।
वादी गंजन वन केसरी, जैनधर्म प्रचारक थे ॥
जैन मन्दिरों की करी प्रतिष्ठा, दर्शन खूब दिपाया था।
जिनके गुणों को कहे बृहस्पति, फिर भी पार न पाया था ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २८ वें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरिजी महान् आचार्य हुये ॥

२६—आचार्य देवगुप्तसूरि (पांचवा)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पदयुक् श्रीमाल वंशे बुधः ।
रोगग्रस्त तयाऽपि यो न विजहौ धर्मे प्रतिज्ञां च स्वाम् ॥
दीक्षानन्तरमेव येन रविणा तेजस्तथा दीपितम् ।
वादि ध्वान्त विनाशनं च विहितं तस्मै नमः शास्वतम् ॥

आचार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज जैसे जैनागमों के पारगामी थे वैसे ही तपस्या करने में बड़े ही शूरवीर थे । आपकी तपस्या के कारण कई देवी देवता आपके चरण कमलों की सेवा में रहना अपना अहोभाग्य समझते थे । आपको कई लब्धियें एवं विद्यायें तो स्वयं वरदाई थी । जैनधर्म का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये आप खूब देशाटन करते थे । आपके आज्ञावृति हजारों साधु साध्वियां प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जनता को धर्मोपदेश दिया करते थे । आपका प्रभावोत्पादक जीवन बड़ा ही अनुकरणीय था ।

आप श्रीमान् कोरंटपुर नगर के श्रीमालवंशी शाह लुम्बा की पुन्य पावना भार्या फूलों के लाड़ले पुत्र थे आपका नाम वरदत्त था । शाह लुम्बा अपार सम्पत्ति का मालिक था । आपका व्यापार क्षेत्र इतना विशाल था कि भारत के अलावा भारत के बाहर पाश्चात्य प्रदेशों में जल एवं थल दोनों रास्तों से पुष्कल व्यापार था । साधर्मी भाइयों की ओर आपका अच्छा लक्ष था । शाह लुम्बा ने पांचवार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिका की पहरामणी दी थी । उस जमाने में तीर्थों के संघ का खूब ही प्रचार था । श्रीसंघ को अपने यहां बुला कर उनको अधिक से अधिक पहरामणी में द्रव्य देना बड़ा ही गौरव का कार्य समझा जाता था, मनुष्य अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी इस प्रकार शुभ कार्य एवं विशेष साधर्मी भाइयों को अर्पण करने में अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझते थे । यों तो शाह लुम्बा के बहुत कुटुम्ब था पर वरदत्त पर उसका पूर्ण प्रेम एवं विश्वास था कि मेरे पीछे वरदत्त ही ऐसा होगा कि धर्म कर्म करने में जैसे मैंने अपने पिता के स्थान, मान, एवं गौरव की रक्षा की है वैसे ही मेरे पीछे वरदत्त करेगा, यों भी वरदत्त सर्व प्रकार से योग्य भी था !

एक समय अशुभ कर्मोदय वरदत्त के शरीर में ऐसा रोग उत्पन्न होगया कि उसके शरीर में जगह २ रक्त चिकने लग गया । वरदत्त के भगवान् महावीर के स्नात्र करने का अटल नियम था जिस दिन से वरदत्त ने यह नियम लिया था उस दिन से अखण्डपने से पाला था पर न जाने किस भव के कर्मोदय हुआ होगा । जहां तक शरीर में थोड़ा रक्त चीकता था वहां तक तो वरदत्त अपने नियमानुसार भगवान् महावीर का स्नात्र करता रहा पर जब कुछ अधिक विकार हुआ तो लोगों मे चर्चा होने लगी कि वरदत्त के शरीर में रक्त चीक रहा है । इससे स्नात्र करने से भगवान की आशातना होती है । अतः वरदत्त को पूजा नहीं करनी चाहिये । तब कई एकों ने कहा कि वरदत्त के अखण्ड नियम है वह पूजा किये विना मुँह में अन्नजल तक भी नहीं लेता है । श्रीपालजी को कुष्टरोग होने पर भी पूजा की है मुख्य तो भावों की शुद्धि होनी

चाहिये। इस प्रकार की चर्चा हो रही थी परन्तु कलिकाल के प्रभाव से चर्चा ने उग्र रूप धारण कर लिया कि दो पार्टियां बनगई। इस हालत में वरदत्त ने सोचा कि केवल मेरे ही कारण से संघ में फूट कुसम्प पैदा होना अच्छा नहीं है। दूसरे प्राण चले जाने पर भी मै अपने नियम को खण्डित करना नहीं चाहता हूँ। इससे तो यही उचित है कि जहां तक मै स्नात्र नहीं करलूं वहां तक मुंह में अन्न जल नहीं लूं वरदत्त का यह विचार विचार ही नहीं था परन्तु उसने तो कार्य के रूप में परिणित कर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया जिसको करीब नौ दिन व्यतीत होगये न वरदत्त का रोग गया न उसने पूजा की और न उसने नौ दिनो में मुह मे अन्नजल ही लिया। इस बात की नगर में खूब गरमा गरम चर्चा भी चल रही थी।

ठीक उसी समय धर्मप्राण आचार्य कक्कसूरि का शुभागमन कोरंटपुर में हुआ। श्री संघ मे जैसे वरदत्तकी चर्चा चल रही थी वैसे एक उपकेशवंशी ने राजपूत की कन्या के साथ शादी करली थी इसका भी विग्रह चल रहा था परन्तु सूरिजी के पधारने से एवं उपदेश से राजपूत की कन्या को जैनधर्म की दीक्षाशिक्षा देकर उस झगडे को शान्त कर दिया पर वरदत्त का एक जटिल प्रश्न था। इसके लिये सूरिजी ने सोचा कि इसमें निश्चय तो स्नात्र करने में कोई हर्ज है नही पर व्यवहार से ठीक भी नही है। अतः इस प्रश्न का निपटारा कैसे किया जाय। दूसरे संघ की दोनो पार्टी अपनी २ बात पर तुली हुई है अतः आपने देवी सचायिका का स्मरण किया। बस, फिर तो क्या देरी थी। सूरिजी के स्मरण करते ही देवी ने आकर वन्दन किया और अर्ज की प्रभो! फरमाइये क्या काम है ? सूरिजी ने कहा देवीजी! वरदत्त का यहां बड़ा भारी बखेड़ा है इसको किस प्रकार निपटाया जाय ? देवी ने अपने ज्ञान से उपयोग लगा के देखा तो वरदत्त के वेदनीय कर्म का अन्त हो चुका था। अतः देवी ने सूरिजी से कहा प्रभो! आप बडे ही भाग्यशाली हैं आपके यश रेखा जबरदस्त है और यह पूर्ण यश आपको ही आने वाला है। वरदत्त की वेदना खत्म हो चुकी है। सुबह आप वरदत्त को वासक्षेप देंगे तो इसका शरीर कंचन जैसा हो जायगा और वह महावीर स्नात्र करवाकर पारणा भी कर लेगा और भी कुछ सेवा हो तो फरमाइये ? सूरिजी ने कहा देवीजी आप समय २ पर इस गच्छ की सार सँभाल करती हो अतः यह कोई कम सेवा नही है। देवी ने कहा पूज्यवर! इसमें मेरी क्या अधिकता है। यह तो मेरा कर्त्तव्य ही है। पर इस गच्छ का मेरे पर कितना उपकार है कि जिसको मै वर्णन ही नहीं कर सकती हूँ इत्यादि। सूरिजी को वंदन कर देवी वरदत्त के पास आई और कहा कि वरदत्त! तू सुबह जल्दी उठकर सूरिजी का वासक्षेप लेना कि तेरी वेदना चली जायगी। वरदत्त ने कहा तथाऽस्तु। बस, देवी तो अदृश्य हो गई। वरदत्त ने सोचा कि यह अदृश्य शक्ति कौन होगी कि मुझे प्रेरणा की है ? खैर उसके दिलो मे तो परमात्मा के स्नात्र की लगन लगही रही थी उसने रात्रि में निद्रा ही नहीं ली। सुबह उठ कर सीधा ही सूरिजी के पास गया और प्रार्थना की कि प्रभो! कृपा कर वासक्षेप दिरावें। ज्योंही सूरिजी ने वरदत्त पर वासक्षेप डाला त्यों ही वेदना चोरों की भाँति भाग छूटी और वरदत्त का शरीर कंचन सा हो गया। वह सूरिजी को वन्दन कर सीधा ही महावीर के मन्दिर गया और स्नान कर स्नात्र कराने लग गया। इस बात की जब लोगों को खबर हुई तो आपस में चर्चा करते हुये सब लोग चल कर सूरिजी के पास आये और अपना २ हाल कहा। सूरिजी ने कहा महानुभावो! आपने बिना हि कारण संघ में अशान्ति फैला रखी है ? तीर्थङ्करो का धर्म स्याद्वाद है। जैनधर्म कषाय जीतने से धर्म कहलाता है न कि कषाय बढाने में। धन्य हो है वरदत्त को कि कषाय बढ़ने के भय से उसने तपस्या करना शुरू कर दिया कि जिसके

न तो अपना व्रत खण्डित हो और न संघ में कषाय बढ़े। कई ने कहा गुरुदेव ! वरदत्त भद्रिक स्वभाव वाला है उसने तपस्या तो की है पर आज किसी की बहकावट में आकर मन्दिर में स्नात्र करा रहा है। इसलिये हम सब लोग आपकी सेवा में आये हैं जैसा आप फरमावें हम शिरोधार्य करने को तैयार हैं। सूरिजी ने कहा वरदत्त का शरीर निरोग है उसके पूजा करने में कोई भी हर्ज नहीं है। सूरिजी के वहाँ बातें हो रही थीं इतने में वरदत्त सूरिजी को वन्दन करने के लिये आया तो सब लोगों ने देखा कि उसका शरीर कंचन की भाँति निर्मल था। उपस्थित लोगो ने सोचा कि यह सूरिजी महाराज की कृपा का ही फल है। बस, फिर तो था ही क्या सब लोगों ने वरदत्त को धन्यवाद देकर अपने अपने अपराध की माफी माँगी। वरदत्त ने कहा कि मेरे अशुभकर्मोदय के कारण आप लोगों को इतना कष्ट देखना पड़ा, अतः मैं आप लोगों से माफी चाहता हूँ। इतने में व्याख्यान का समय हो गया था सूरिजी ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। उस दिन के व्याख्यान में सूरिजी ने चार कषाय का वर्णन करते हुये फरमाया कि क्रोध और मान द्वेष से उत्पन्न होते हैं तथा माया एवं लोभ राग से पैदा होते हैं और राग द्वेष संसार के बीज हैं। अन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ मूल सम्यक्त्वगुण की घात करता है। जब अप्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ देशव्रतिगुण की रुकावट करता हैं तथा प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ सर्वव्रतिगुणस्थान को आने नहीं देता हैं और संजल का क्रोध मान माया लोभ वीतराग गुण की हानि करता हैं। अब इन चारों प्रकार के क्रोधादि की पहचान भी करवादी जाती है कि मनुष्य अपने अन्दर आये हुए क्रोधादि को जान सकें कि मैं इस समय कौनसी कषाय में वरत रहा हूँ और भवान्तर मे इसका क्या फल होगा।

१—अन्तानुबधी क्रोध—जैसे पत्थर की रेखा सदृश अर्थात् पत्थर की रेखा टूट जाने से पिच्छी मिलती नहीं है वैसे ही अन्तानुबन्धी क्रोध आने पर जीवन पर्यन्त शान्त नहीं होता है।

२—अन्तानुबन्धीमान—जैसे वज्रका स्तंभसदृश्य अर्थात् वज्रकास्तम्भ तुटजाता है पर नमता नहीं है।

३—अन्तानुबन्धी माया—जैसे बांस की गंठी अर्थात् बांस के गंठ गंठ में गंठ होती है।

४—अन्तानुबन्धी लोभ—जैसे करमचीरंग को जलादेने पर भी रंग नहीं जाता है। इन चारों की स्थिति यावत् जीव, गति नरक की, और हानि समकित की अर्थात् यह चोकड़ी मिथ्यात्वीक के होती है।

५—अप्रत्याख्यानी क्रोध—जैसे तालाब की तड़ जो बरसाद से तड़े पड़ जाती है पर वे एक वर्ष में मिट जाती है। वैसे ही क्रोध है कि सांवत्सरि प्रतिक्रमण समय उपशान्त हो जाता है।

६—अप्रत्याख्यानी मान—जैसे काष्ट का स्तंभ।

७—अप्रत्याख्यानी माया—जैसे मिंढा का सींग।

८—अप्रत्याखानी लोभ—जैसे गाड़ा का खंजन।

इन चारों की स्थिति एक वर्ष की, गति तिर्यंच की, हानि श्रावक के व्रत नहीं आने देता है।

९—प्रत्याख्यान क्रोध—जैसे गाड़ा की लकीर।

१०—प्रत्याख्यान मान—जैसे वेंत का स्तभा

११—प्रत्याख्यान माया—जैसे बांस की छाती।

१२—प्रत्याख्यान लोभ—जैसे आंखों का काजल।

इन चारों की स्थिति चार मास की, गति मनुष्य की, हानि मुनि के पांच महाव्रत नहीं आने देता है।

१३—संज्वल का क्रोध—जैसे पानी की लकीर।
१४—संज्वल का मान—जैसे तृण का स्तंभा।
१५—संज्वल का माया—जैसे चलता बलद का पेशाव
१६—संज्वल का लोभ—जैसे हल्दी का रंग !

इनमें क्रोध की दो मास, मान की एकमास, माया की पन्द्रह दिन, और लोभ की अन्त मुहूर्त की स्थिति है गति देवतो की ? हानि वीतरागता नहीं आना देती है।

इस प्रकार क्रोधादि सोलह कषाय हैं इसमें भी एक एक के चार चार भेद होते हैं जैसे १—अन्तानुबन्धी क्रोध अन्तानुबन्धी क्रोध जैसा २—अन्तानुबन्धी क्रोध अप्रत्याख्यानी क्रोध जैसे ३—अन्तानुबन्धी क्रोध प्रत्याख्यानी क्रोध जैसे और ४—अन्तानुबन्धी,क्रोध संज्वल जैसा उदाहरण-जैसे एक मिथ्यातवी प्रथम गुणस्थान वाला जीव है। और वह इतनी क्षमा करता है कि उसको लोग मारे पिटे कटू शब्द कहे तो भी क्रोध नहीं करता है ! पर उसका मिथ्यत्वमय पहिला गुनस्थान नही छुटा है अतः अन्तानुबन्धी कषाय मौजुद है हाँ यह अन्तानुबन्धी क्रोध संज्वल सदृश है ! तथा एक मुनि छठे गुणस्थान वाला है ! परन्तु उसका क्रोध इतना जोर दार है कि जिसको अन्तानुबन्धी क्रोध कहा जाता है ! परन्तु तीन चौकड़ीयों का क्षय होने से उस क्रोध को संज्वल का क्रोध अन्तानुबन्धी जैसा ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार शेष कषायोको भी समझ लेना !

महानुभावो ! संसार में परि भ्रमन कराने वाला मुख्य कषाय ही है श्री भगवतीजी सुत्र के बारहवें शतक के पहले उद्देशे मे शक्ख श्रावक ने भगवान महावीर को पुच्छा था कि जीव क्रोध करे तो क्या फल होता है ? उत्तर में भगवान महावीर ने फरमाया कि शंक्ख क्रोध करने से जीव आयुष्य कर्म साथ में बन्धे तो आठो कर्मों का बन्धकरे शायद आयुष्य कर्म न बन्धे तो सात कर्म निरान्तर बन्धता है जिसमें भी क्रोध करने वाला शिथल कर्मों को मजबूत करे. मन्द रस को तीव्र रस वाला करे अल्पस्थिति वाला कर्मों को दीर्घ स्थिति करे। अल्पप्रदेशो को बहु प्रदेशों वाला बनावे असाता वेदनी बार बार बन्धे और जिस संसार की आदि नही और अन्त नहीं उस संसार में दीर्घ काल तक परि-भ्रमन करे इसी प्रकार मान माया और लोभ के फल बतलाये है। इससे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं ? कि क्रोध मान माया और लोभ करना कितना बुरा है और भवान्तर मे इसके कैसे कटु फल मिलते है। उदाहरण लीजिये—

टेली ग्राम मे चंडा नाम की बुढ़िया रहती थी उसके आरण नाम का पुत्र था वे निर्धन होने पर भी बड़े ही क्रोधी थे बुढ़िया सेठ साहुकारों के यहां पानी पीसनादि मजूरी कर दुख' पुर्ण अपना गुजारा करती थी आरुण भी बाजार में मजूरी करता था पर क्रोधी होने से उसे कोई अपने पास आने नहीं देता था ! एक समय चंडा रसोई बना कर अपने बेटे की राह देख रही थी कि वह भोजन करले तो मैं किसी मजुरी पर जाऊं पर आरुण घर पर नहीं आया ! इतने ही में किसी सेठ के यहाँ से बुलावा आया कि हमारे यहाँ पर महमान आये हैं पानी ला दो ! बुढ़िया ने सोचा कि बेटे का स्वभाव क्रोधी है वह भोजन कर जावे तो मैं जाऊ पर साथ में यह भी सोचा की सेठजी का घर मातम्बर है मेरा गुजारा चलता है इस वक्त इन्कार करना भी अच्छा नहीं है चंडाने बनाई हुई रसोई एक छींके पर रख पानी भरने को चली गई पिछे आरुण आया माता को न देख लाल पंडुल बन गया जब माता आई तो बेटाने कहा रे पापनी तुझे शुली चढ़ाहूँ कि तु कहाँ चली गई थी मैं तो भुखो मर रहा हूँ इत्यादि बेटे के कठोर वचन सुन कर माता को भी क्रोध आगया

कर वरदत्त अपने मकान पर आया और अपने पिता एवं कुटुम्ब वालों को कह दिया कि मेरा भाव सूरिजी के पास दीक्षा लेने का है पर कुटुम्ब वाले कब अनुमति देने वाले थे। जैसे भड़भूँजा की भाड़ में चने पचते हैं यदि उससे कोई एक चना उछल कर बाहर पड़ता है तो चने सेकने वाला उसे उठा कर भाड़ में डाल देता है। इसी प्रकार जीव संसार में कर्मों से पच रहे हैं यदि कोई जीव संसार का त्याग करना चाहे तो कुटुम्ब वाले उसको कब जाने देते हैं पर जिसके वैराग्य का सच्चा रंग लग गया हो वह जान बूझ कर संसार रूपी कारागृह में कब रह सकता है। आखिर वरदत्त ने अपने माता पिता स्त्री वगैरह कुटुम्ब को ऐसा उपदेश दिया कि वे वरदत्त को घर में रखने में समरथ नहीं हुये। आखिर शाह लुम्बा ने वरदत्त की दीक्षा का बड़ा भारी महोत्सव किया और वरदत्त के साथ उसके सात साथियों ने भी वरदत्त का अनुकरण किया और सूरिजी महाराज ने उन आठ वीरो को शुभ मुहूर्त में दीक्षा देदी और वरदत्त का नाम मुनि पूर्णानन्दर खा।

मुनि पूर्णानन्द बड़ा ही भाग्यशाली था। सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा थी। पूर्णानन्द ने बहुश्रुतीजी महाराज का विनय व्यावच्च और भक्ति कर वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया और गुरुकुलवास में रहकर सर्वगुण सम्पन्न होगया। अतः आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में उपकेशपुर में महामहोत्सवपूर्वक उपाध्याय पूर्णानन्द को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्तसूरि बड़े ही प्रतिभाशाली थे। आप जैसे स्वपर मत के शास्त्रों के मर्मज्ञ थे वैसे ही तप करने में बड़े भारी शूरवीर थे। आपको जिस दिन से सूरि बनाये उसी दिन से छट छट तपस्या करने की प्रतिज्ञा करली थी। अतः आप श्री निरन्तर छट छट की तपश्चर्या करते थे तपस्या से आत्मा निर्मल होता है, कर्मों का नाश होता है अनेक लब्धियें उत्पन्न होती हैं देव देवी सेवा करते हैं तपस्या का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव भी पड़ता है। और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ती भी होती है।

सूरिजी महाराज ने अपने विहार क्षेत्र को इतना विशाल बना लिया था कि अपने पूर्वजों की पद्धति के अनुसार जहां जहां अपने साधु साध्वियों का विहार होता था एवं उपकेशवंश के श्रावक रहते थे वहाँ वहाँ घूम घूम कर उन लोगों को धर्मोपदेश श्रवण का लाभ प्रदान करते थे। पूर्वाचार्य्यों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को यों तो जितने आचार्य हुये उन्होने तीव्र एवं मंदगति से चलाई ही थी पर आपने उस मशीन के जरिये हजारों मांस भक्षियों को दुर्व्यसन से छुड़ाकर जैन संघ में वृद्धि की थी।

सूरिजी महाराज के शिष्यों में कई तपसी कई विद्यावली साधु भी थे। एक देवप्रभ पंडित आकाशगामिनी विद्या और योनि प्रभृत शास्त्र का ज्ञाता था। वह हमेशा शत्रुञ्जय गिरनार की यात्रा करके ही अन्न जल लेता था। एक समय शत्रुञ्जय की यात्रा कर वापिस लौट रहा था रास्ते में एक संघ शत्रुञ्जय जा रहा था। मार्ग में मलेच्छों की सेना ने संघ पर आक्रमण कर दिया जिससे संघ महासंकट में आ पड़ा। सब लोग अधिष्ठायिक देव को याद कर रहे थे। पण्डित देवप्रभ ने संघ को दुखी देख योनिप्रभृत शास्त्र की विद्या से अनेक हथियारवद्ध सुभट बनाकर उन मलेच्छो का सामनाकिया। पर विद्यावल के सामने वे मलेच्छ बिचारे कहां तक ठहर सकते थे ? बस, मलेच्छ बुरी तरह पराजित होकर भाग छूटे और संघ उस संकट से बचकर शत्रुञ्जयतीर्थ पर पहुँच गया। उस संघ ने सोचा कि अधिष्ठायक देव ने हमारी सहायता की है। पर वह अधिष्ठायक सूरिजी का शिष्यमुनि देवप्रभ ही था।

मलेच्छों ने पुनः अपना संगठन कर शत्रुञ्जय पर धावा बोल दिया। उस समय भी देवप्रभ शत्रुञ्जय

की यात्रा करने को आया था। म्लेच्छो को देख कर उसको गुस्सा आया तो उसने अपने विद्याबल से एक शेर का रूप बनाकर मलेच्छों की ओर छोड़ दिया। कई मलेच्छो को मारा कई को घायल किया और शेष सब भा। छूटे जिससे संघ एवं तीर्थ की रक्षा हुई। मुनिदेवप्रभ ने अपनी विद्याशक्ति से संघके कईकार्य किये।

दूसरा सूरिजी का एक शिष्य सोमकलस था जिसको देवी सरस्वती ने वचन सिद्धि का वरदान दिया था। एक दिन उनके सामने से एक मिसरी (शक्कर) की बालद जारही थी। आपने पूँछा कि बालद में क्या है उसने कर के भय से कह दिया कि मेरी बालद में नमक है। मुनि ने कह दिया अच्छा भाई नमक ही होगा। आगे चलकर बालदियो ने देखा तो सब बालद में नमक होगया। तब वे दौड़कर मुनि के पास आये और प्रार्थना की कि प्रभो! हम गरीब मारे जायंगे हम लोगो ने तो केवल हासल के बचाव के लिये ही शकर को नमक बतलाया था परन्तु आप सिद्ध पुरुष के वचन कभी अन्यथा नहीं होते हैं हमारी बालद का सब शकर नमक होगया। कृपा कर उसे पुनः शकर बनादें। मुनिजी ने दया लाकर कह दिया अच्छा भाई मिसरी होगी। अतः सब बालद का नमक मिसरी होगया। इसी प्रकार एक साहूकार के कंकरो के रत्न होगये। पट्टावलीकारो ने ऐसे कई उदाहरण लिखा है कि जिससे मुनिजी ने हजारों नही पर लाखो जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा देकर जैनों की संख्या बढ़ाई।

सूरिजी के तीसरे शिष्य गुणनिधान को वचन लब्धि प्राप्त थी कि आप का व्याख्यान सुन कर राजा महाराजा मंत्रमुग्ध बन जाते थे। केवल मनुष्यही क्यों पर देवताभी आपके व्याख्यान का सुधापान कियाकरते थे आप जहाँ जाते वहाँ राज सभा में ही व्याख्यान दिया करते थे। जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

सूरिजी के चतुर्थ मुनि पुरंधरहंस जो आगमों के पारगामी थे और साधुओं को आगमों की वाचना दिया करते थे। स्वगच्छके अलावा अन्य गच्छके कई साधु एवं आचार्य वगैरह आगमों की वाचनार्थ आया करते थे। और पुरंधर मुनि बड़ी उदारता से सबको वाचना दिया करते थे आपने शासन मे ज्ञान का खुब ही प्रचार कियाथा।

इस प्रकार जैसे समुद्र में अनेक प्रकार के रत्न होते हैं। उसी प्रकार सूरिजी के गच्छ रूपी समुद्र में अनेक विद्वान मुनि रूपी रत्न थे। जिन्हो ने स्वगच्छ एवं शासन की खूब उन्नति की।

आचार्य श्री देवगुप्तसूरि मरुधर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध पांचाल, शूरसेन 'मत्स' आवन्ती आदि मे भ्रमण करते हुऐ मेदपाट मे पधारे। आपका चतुर्मास चित्रकूट में हुआ। यह केवल चित्रकोट के लिये ही नहीं पर अखिल मेदपाट के लिये सुवर्ण समय था कि पूज्याराध्य धर्मप्राण धर्म प्रचारक आचार्य श्री का चतुर्मास मेदपाट की राजधानी चित्रकोट में हुआ ? आपश्री ने अपने मुनियो को आस पास के नगरों में चतुर्मास के लिये भेज दिये थे ? जिसमे चारों और धर्मोन्नति एवं धर्म की खुब जागृति हो रही थी ? चित्रकोट तो एक यात्रा का धामही बन गया था ? सैकड़ो हजारो भावुक सूरिजी के दर्शनार्थ आरहे थे और वे लोग सूरिजी की अमृतमय देशना सुन अपना अहोभाग्य समझते थे। एक समय सूरिजी ने आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि एवं यक्षदेवसूरिका जीवनके विषयमें व्याख्यान करते हुऐ फरमाया कि महानुभावों इन महापुरुषों ने किस २ प्रकार कठिनाइयों को सहन कर इन दुर्व्यसन सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की स्थापना की और उनके सन्तान परम्परा के आचार्यों ने इस संस्था का किस प्रकार रक्षण पोषण और वृद्धि की इसमें आचार्यों का तो मुख्य उद्योग था ही पर साथ में बड़े २ राजा महाराजा एवं सेठ साहुकारों

का भी सहयोग था उन्होंने समय २ पर अपने नगर में सभाओं करके धर्म प्रचार के लिये जनता को खुब उत्तेजित की थी सभा एक धर्म प्रचार एवं संगठन का मुख्य साधन है इस से अनेक साधु, साध्वियों, श्रावक और श्राविकाएं का आपस में मिलना समागम होना विचार-सलाह करना एक दूसरे को मदद करना जिसमे धर्म प्रचारकों का उत्साह में वृद्धि होती है ? और वे अपना पैर धर्म प्रचार में आगे बढ़ा सकते थे उपकेशपुर, चन्द्रावती, कोरंटपुर, पाल्हिक आदि स्थानों मे कई बार संघ सभा हुई थी और उसमें अच्छी सफलता भी मिली थी इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा उपदेश दिया जिसको सुनकर उपस्थित लोगों की भावना हुई कि अपने वहाँ भी एक ऐसी सभा की जाय कि चतुर्विध श्रीसंघ को आमन्त्रण कर बुलाया जाय जिससे सूरिजी महाराज के कथानुसार धर्म प्रचार का कार्य सुविधा से हो सके इत्यादि उस समय तो यह विचार २ ही रहा व्याख्यान समाप्त हो गया और सभा विसर्जन हो गई । परन्तु मंत्री ठाकुरसीजी के हृदय में सूरिजी के व्याख्यान ने घर कर लिया उनकों चैन कहाँ था भोजन करने के बाद पन्द्रह वीस मातम्बरों को लेकर मंत्री सूरिजी के पास आया और सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्याराध्य । यहाँ का श्रीसंघ यहाँ पर एक संघ सभा करना चहाता है ! अतः यह कार्य किस पद्धति से किया जाय जिसका रास्ता कृपा कर बतावें ? सूरिजी ने फरमाया मंत्रीश्वर यह कार्य साधारण नहीं पर शासन का बिशेष कार्य है इससे धर्मप्रचार की महान् रहस्य रहा हुआ है ? पूर्व जमाने में धर्म प्रचार की इतनी सफलता मिली वह इस प्रकार के कार्य से ही मिली थी पर आप पहले इस बात को सोच लीजिये कि इस कार्य मे जैसे पुष्कल द्रव्यकी आवश्यकता है वैसे आगन्तुओं के स्वागत के लिये कार्य कर्ताओं की भी आवश्यकता है । साथ में यह भी है कि बिना कष्ट लाभ भी नहीं मिलता है जितना अधिक कष्ट है उतना अधिक लाभ है ।

मंत्रीश्वर ने कहा पूज्यवर ! आप लोगों की कृपा से इन दोनों कामों में यहां के संघ को किसी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है . कारण यहां का संगठन अच्छा है कार्य करने में सब लोग उत्साही है और द्रव्य के लिये तो यदि संघ आज्ञा दीरावे तो एक आदमी सब जुम्मा ले सकता है इतना ही क्या पर यदि श्री संघ की कृपा मेरे उपर हो जाय तो मैं मेरा अहोभाग्य समझ कर इस कार्य में जितना द्रव्य खर्च हो उसको मैं एकला उठा लुंगा । पास में बैठे हुए सज्जनों में से शाह रघुवीर ने कहा पूज्यवर ! मंत्रीश्वर बड़े ही भाग्यशाली है संघ के प्रत्येक कार्य में आप अग्रेश्वर होकर भाग लिया करते है पर इस पुनीत कार्य का लाभ तो यथाशक्ति सकल संघ को ही मिलना चाहिये ।

सूरिजी ने उन सब की बातें सुन कर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक कहा कि मुझे उम्मेद नहीं थी कि यहां के संघ में इतना उत्साह है खैर आपके कार्य में अवश्य सफलता मिलेगी । सूरिजी का आशीर्वाद मिलगया फिर कमी ही किस बात की थी संघ अग्रेश्वर सूरीजी को वन्दन कर वहां से चले गये और किसी स्थान पर एकत्र हो इस कार्य के लिये एक ऐसी स्कीम बनाली कि कार्य ठीक व्यवस्थित रूप से हो सके क्यों न हो वे लोग राजतंत्र चलाने में कुशल और व्यापार करने में दीर्घ दृष्टि वाले थे उनके लिये यह कार्य कौन सा कठिन था ।

मंत्रीश्वर वगैरह सूरिजी के पास आकर सभा के लिये दिन निश्चय करने की प्रार्थना की उस पर सूरिजी ने फरमाया कि ऐसा समय रखना चाहिये कि जिसमें नजदीक और दूर से सब मुनि आ सके कारण यह सभा ही खास मुनियों के लिये ही की जाती है और धर्म प्रचार के लिये मुनियो का उत्साह बढ़ाना है । मेरे ख्याल मे पोष वदी १० भगवान पार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक है । अतः वही दिन सभा का

रखा जाय तो अच्छा है यदि इससे आगे बढ़ना हो तो माघ शुक्ल पूर्णिमा का रखा जाये कि सिन्ध पंजाब और सौराष्ट एवं महाराष्ट प्रान्त के साधु भी आ सकें। इस पर संघ की इच्छा हुई की माघशुक्ल पूर्णिमा का समय रखा जाये तो अधिक लाभ मिल सकता है ! अतः उन्होंने अर्ज की कि पूज्यवर ! सभा का समय माघशुक्लपूर्णिमा का ही रखा जाय तो अच्छी सुविधा रहेगी ? सूरिजी ने कहा ठीक है जैसे आपको सुविधा हो वैसा ही कीजिये। श्रीसङ्घ ने भगवान-महावीर की जय ध्वनी से सूरिजी के वचन को शिरोधार्य कर अपने कार्य में लग गये। आचार्य श्री के विराजने से चित्रकोट एवं आस पास के प्रदेश में धर्म की बहुत प्रभावना हुई। बाद चर्तुमास के सूरिजी विहार कर मेदपाट भूमि में खूब ही भ्रमन किया और जहां आप पधारे वहां धर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। इधर चित्रकोट के श्रीसंघ अग्रस्वेर ने अपने कार्य को खुब जोरों से आगे बढ़ा रहे थे। नजदीक और दूर २ आमन्त्रण पत्रिकाऐं भिजवा रहे थे और मुनियो कों आमन्त्रण के लिये श्रावक एवं आदमियों को भेज रहे थे। इधर आगन्तुओ की स्वागत के लिए खूब ही तैयारियां कर रहे थे जिनके पास बिपुल सम्पत्ति और राज कारभार हाथ में हो वहां कार्य करने में कौनसी असुविधा रह जाती है दूसरे कार्य करने वाले बड़े ही उत्साही थे यह पहिले पहल का ही काम था सब के दिल में उमंग थी।

ठीक समय पर सूरिजी महाराज इधर उधर घूमकर वापिस चित्रकोट पधार गये इधर मुनियों के झुण्ड के झुण्ड चित्रकोट की ओर आ रहे थे इसमें केवल उपकेशगच्छ के मुनि ही नहीं पर कोरंट गच्छ कोटी गच्छ और उनकी शाखा प्रशाखा के आस पास में विहार करने वाले सब साधु साध्वियों बड़े ही उत्साह के साथ आ रहे थे ऐसा कौन होगा कि इस प्रकार जैनधर्म के महान प्रभाविक कार्य से वंचित रह सके चित्रकोट के श्री संघ ने विना किसी भेद भाव के पूज्य मुनिवरों का खूबही स्वागत सत्कार किया जैसे श्रमण संघ आया वैसे श्राद्द वर्ग भी खुब गहरी तादाद में आये थे उसमें कई नगरों के नरेश भी शामिल थे और इन नरेशों की सहायता से ही धर्म प्रचार बढा और बढता है चित्रकोट का राजा वैरेसिंह यों ही सूरिजी का भक्त था कई बार सूरिजी का उपदेश सुना था जब चित्रकोट में इस प्रकार महामंगलिक कार्य हुआ तो राजा कैसे वंचित रह सके ! बाहर से आये हुये नरेशों की राजा ने अच्छी स्वागत की और भी आने वालों के लिये राजा की ओर से सब प्रकार की सुविधा रही थी।

ठीक समय—अर्थात माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन आचार्य देवगुप्तसूरि के अध्यक्षत्व में विराट सभा हुई उस सभा में कई पांच हजार साधु साध्वियों और एक लक्ष भावुक उपस्थित थे इतनी बड़ी संख्या होने पर भी वातावरण बहुत शान्त था सूरिजी की बुलंद आवाज सबको ठीक सुनाई देती थी ! सूरिजी ने अपने व्याख्यान में जैनधर्म का महत्व और उसकी उपादयता के विषय में फरमाया कि जैन धर्म के स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद में सब धर्मों का समावेश हो सकता है अहिंसा सत्य अस्तय ब्रह्मचर्य निस्पृही और परोपकार में किसी का भी मतभेद नहीं है अर्थात् यह विश्वधर्म है। इसकी आराधना करने से जीवों का कल्याण होता है ! जन्ममरण के दुखों का अन्त कर सकते हैं पुर्व जमाने में तीर्थंकर देवो ने इस धर्म का जोरों से प्रचार किया था परन्तु कलिकाल के प्रभाव से कई प्रान्तों में मुनियों के उपदेश के अभाव से पाखंडी लोगों ने धर्म के नाम पर इतना अधर्म बढ़ा दिया कि मांस मदिरा और व्यभिचार में ही दिन सुख और मोक्ष मान लिया ! फिर तो दुनियां की वैसी कौनसी कामना शेष रह जाती कि जनता धर्म के नाम पर पुरी नहीं कर सके परन्तु कल्याण हो आचार्य स्वयंप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि आदि का कि उन्होंने हजारों सहस्रों

को सहन कर चार चार मास तक भूखे प्यासे रह कर उन अधर्म की जड़ उखेड़ कर धर्म के बीज बो दीये और पिछले आचार्य ने उनका सीचन कर उसे हरा भरा एवं फला-फूला उपवन की भाति समृद्धशाली बना दिया है आर्य सुहस्ती सूरिने सम्राट सम्प्रति जैसे को जैन धर्म का प्रचारक बना कर अनार्य देशों तक जैन धर्म का प्रचार करवा दिया ! यही कारण है कि उन पूर्वाचार्य के प्रभाव से आज हम सुख पूर्वक विहार कर रहे हैं आज जो उपकेशवशं आदि महाजनसंघ मेरे सामने विद्यमान है यह उन आचार्यों के उपकार का ही सुमधुर फल है पर हमको केवल उन आचार्यों के बनाये हुए संघ पर ही हमारी जीवन यात्रा समाप्त नहीं कर देनी है ! पर हम भी उन पूज्य पुरुषों का थोड़ा बहुत अनुकरण करे ! प्यारे श्रमण गण आज आपके लिये सुवर्ण समय है पूर्व जमाने की अपेक्षा आज आपको सब प्रकार की सुविधा है ! यदि आप कमर कस कर तैयार हो जावें तो चारों ओरं धर्म का प्रचार कर सकते हो और यहां के संघ ने यह सभा इसी उपदेश को लक्ष में रख कर की है ! मुझे आशा ही नहीं पर दृढ़ विश्वास है आप मेरे कथन को हृदय में स्थान देकर धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध तैयार हो जायेगें ! शासन का आधार मुख्य आप पर ही है ! हां श्रावक वर्ग अपके कार्य में सहायक जरूर बन सकते है ! और इस प्रकार दोनों के प्रयत्न से धर्म का उत्कर्ष बढ़ सकता है ! इत्यादि सूरिजी ने उपदेश दिया और श्रवण करने वाले चतुर्विध श्री संघ में धर्म प्रचार की बिजली एक दम चमक उठी कई साधु तो भरी सभा में उठ कर अर्ज की कि पूज्यवर ! आपने हमारा कर्तव्य बतला कर हमारे जीवन में एक नयी शक्ति पैदा कर दी है जिससे हम लोग धर्म प्रचार के लिये हमारा जीवन अर्पण करने में कटीबिद्ध एवं तैयार बैठे है । आप जिस प्रदेश के लिये आज्ञा फरमावे उसी प्रदेश में हम विहार करने कों तैयार है । फिर वहाँ सुविधा हो या कठनाइयों इसकी तनिक भी परवाह नहीं ।

इस प्रकार श्राद्धवर्ग ने भी सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! पूर्व जमाने में भी मुनियों ने धर्म प्रचार किया और आज भी मुनिवर्ग आप का हुक्म शिरोधार्य करने को तैयार है इसमें जो हमारे से बने वह हमें भी फरमाईये कि हम को भी लाभ मिले ।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि यह तो मुझे पहले से ही विश्वास था कि जिस त्यागवैराग्य से मुनिवरों ने स्वपर कल्याण कि भावना से दीक्षा ली है तो शासन सेवा करने में कब पिछे पैर रखेगें ! फिर भी आपके वीरता पूर्वक वचन सुन मुझे विशेष हर्ष होता है ! इसी प्रकार श्राद्ध वर्ग के लिए भी कहा।

प्रायः देश से पशुबली रुपी यज्ञप्रथ के पैर तो उखड़ गये है ! परन्तु बोद्धों का प्रचार कई प्रान्त में बढ़ता जा रहा है ! इस लिये आप लोगों को तत् विषय के साहित्य का अध्ययन कर प्रत्येक प्रान्त में विहार कर स्वधर्म की रक्षा और प्रचार करे यह जुम्मेवारी आप लोगों पर छोड़ दी जाती है ! इत्यादि उप देश के अन्त में सभा विसर्ज्जन हुई इस सभा से चित्रकोट के लोगो का दिल को बड़ा ही संतोष हुआ कारण जिस उपदेश को लक्ष में रख सभा का आयोजन किया गया था उसमें आशातीत सफलता मिल गई इससे बढ़ कर खुशी ही क्या हो सकती है !

आचार्य देवगुप्तसूरि ने आये हुए श्रमण संघ के अन्दर कई योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित बना कर उनके योग्य गुणों की कद्र की एवं उनके उत्साह को बढाया जिसमें—

७—योगीन्द्र मूर्ति आदि सात साधुओं को पंडित पद

१२—महेन्द्र विमलादि बारह " " वांचनाचार्य पद

१५-निधान कलसादि पन्द्रह " " गणि पद
५-शान्ति शेखरादि पांच " " उपाध्याय"

इत्यादि पदवियो प्रधान की और सूरिजी इन पदवियों की जुम्मेवारी के विषय उनका कर्त्तव्य भी विस्तार से समझाया तथा त्याग का महत्व और दीक्षा से आत्म कल्याण पर खुब ही प्रभाव डाला फलस्वरूप में उसी सभा में कई ८ नरनारी सूरिजी के चरण कमलो मे दीक्षा लेने को तैयार होगये। श्री संघने पुनःमहोत्सव किया और मोक्षाभिलाषियो को सूरिजी ने दीक्षा देकर उनका उद्धार किया और कइ दानवीरों ने संघ को पहरावणी भी दी तत्पश्चात सब लोग भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जय ध्वनी के साथ अपने २ नगरो की ओर प्रस्थान किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि का चतुर्मास चित्रकोट में होने से मेदपाट मे आपका बहुत जबर्दस्त प्रभाव पड़ा बहुत ग्राम नगरो के संघ ने अपने २ नगर की ओर पधारने की विनती करी! सूरिजी ने फरमाया कि— वर्तमान योग। आखिर सूरिजी ने वहाँ से विहार किया और छोटे बड़े ग्राम मे विहार करते हुए आघाट नगर की ओर पधार रहे थे जब वहां के श्रीसंघ को समाचार मिला तो उनके हर्ष का पारावार नही रहा बड़े ही समारोह के साथ सूरिजी का स्वागत किया सूरिजी ने मन्दिर के दर्शन कर मंगलाचरण के पश्चात सारगर्भित देशना दी! सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था वहां के श्रेष्टिगोत्री मंत्री नाहरु ने भगवान पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनाया था जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के करकमलो से करवाई इस प्रतिष्ठा का प्रभाव मेदपाट की जनता पर बहुत अच्छा हुआ था पांच पुरुष और तीन बहिनो ने सूरिजी के पास दीक्षा भी ली थी। जिसमे जैन धर्म की काफी प्रभावना हुई।

जब सूरिजी मेदपाट को पावन बनाकर मरुधर मे पधार रहे थे तो मरुधर वासिओ के उत्साह का पार नहीं रहा जिस ग्राम मे सूरिजी पधारते वहां एक यात्रा का धाम ही बनजाता था सैकड़ों हजारों नरनारी दर्शनार्थ आया करते थे इस प्रकार क्रमश आप शाकम्भरी पदमावती हंसावली मुग्धपुर होते हुऐ नागपुर पधारे आपका प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था कई लोगो ने त्याग वैराग्य एवं तपश्चय कर लाभ उठाया वहां से सूरिजी खेमकुशल बटपार हर्षपूर माडव्यपुर पधारे। वहाँ पर डिडूगोत्रीय शाह ठाकुरशी के महामहोत्सव पूर्वक मुनि आशोकचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर उसका नाम सिद्धसूरि रखा तत्पश्चात् सूरिजी ने सात दिन के अनसन एवं समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि महाप्रभाविक और जैनधर्म के प्रचारक हुए आपने अपने तेरह वर्ष के शासनकाल में खूब देशाटन कर जैनधर्म की उन्नति की अनेक मांस मदिरा सेवियो को जैनधर्म में दीक्षित किये कई मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्टाए करवाई इत्यादि अनेक ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे काम किये कि आपश्री की धवलकीर्ति आज भी विश्व में अमर है ऐसे प्रभाविक आचार्यो से ही जैन शासन पृथ्वी पर गर्जना कर रहा है इन महापुरुषों का केवल जैनों पर ही नही पर विश्व पर उपकार हुआ है जिसको क्षणभर भी भुला नहीं जा सकता है।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—कोरंटपुर	के	बलाह गौ०	शाह	भूराने	सूरि०	दीक्षा ली
२—वडनगर	के	अदित्य० गौ०	,,	नाहराने	,,	,,

३—स्तम्भनपुर	के	बापना गौ०	शाह	दानाने	सूरि०	दीक्षा ली
४—देवपुर	के	श्रेष्टि गौ०	”	चन्द्राने	”	”
५—भरोंच	के	श्रेष्टि गौ०	”	डुगरने	”	”
६—बाड़ली	के	भूरि गौ०	”	देपालने	”	”
७—करणावती	के	नाग०गौ०	”	देदाने	”	”
८—सत्यपुर	के	भाद्र गौ०	”	चूड़ाने	”	”
९—नन्दपुर	के	कनोजिया गौ०	”	चतराने	”	”
१०—ब्रह्मणपुर	के	चिंचट गौ०	”	खेमाने	”	”
११—शिवपुरी	के	कुमट गौ०	”	डावरने	”	”
१२—वर्द्धमानपुर	के	डिड्डू गौ०	”	कुम्भाने	”	”
१३—प्रतिष्टनपुर	के	ब्राह्मण०	”	कल्हणने	”	”
१४—उजैन	के	प्राग्वट०	”	यशोदेवने	”	”
१५—महेश्वरी	के	प्राग्वट०	”	भालाने	”	”
१६—खण्डपुर	के	तप्तभट्ट०	”	नागदेवने	”	”
१७—करकोली	के	बाप्पनाग०	”	धन्नाने	”	”
१८—दसपुर	के	आदित्य०गौ०	”	धर्मसीने	”	”
१९—हँसावली	के	सुचंति गौ०	”	रूपसीने	”	”
२०—कुर्चपुर	के	चोरलिया०	”	गेंदाने	”	”
२१—मुग्धपुर	के	चरड़गौ०	”	जैताने	”	”
२२—डिड्डूनगर	के	मल्लगौ०	”	जैमलने	”	”
२३—जंगालु	के	कुलहट०	”	रूघनाथने	”	”
२४—पादिल्हका	के	बीरहटगौ०	”	नाखणने	”	”
२५—करजोड़ा	के	प्राग्वटव०	”	नन्दाने	”	”
२६—मादड़ी	के	श्रीमालवंशी	”	नोंधणने	”	”
२७—नारदपुरी	के	श्री श्रीमालगौ०	”	देशलने	”	”

इनके अलावा अन्य प्रान्तों में तथा बहुतसी बहिनों ने भी संसार को असार समझ कर आचार्यश्री या आपके आज्ञा वृति मुनि एवं साध्वियों के पास दीक्षा ग्रहन कर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण किया

सूरिजी महाराज के शासन में तीर्थों के संघादि सद् कार्य—

१—उपकेशपुर से	भाद्र गौत्रीय	शाह	जगा	ने श्री शत्रुंजय	का संघ	निकाला
२—भिन्नमाल का	प्राग्वट	”	पद्मा	ने	”	”
३—भावड़ी से	बाप्पनाग०	”	हाप्पा	ने	”	”
४—शंखपुर से	श्रेष्टि गौ०	”	काना	ने	”	”

५—हर्षपुर से कुम्मट गौ०	,,	काल्हण ने	,,	,,
६—आघाट नगर से श्रीमाल	,,	चतरा ने	,,	,,
७—मथुरा से बलाह गौ०	,,	नरदेव ने	,,	,,
८—शालीपुर से श्रेष्टि	,,	पृथुसेन ने	,,	,,
९—डामरेल से भूरि गौ०	,,	ॐकार ने	,,	,,
१०—भुजपुर से प्राग्वट वंशी	,,	जाला ने	,,	,,
११—चन्द्रावती से श्रीमाल वंशी	,,	मादू ने	,,	,,
१२—सोपार पट्टन से कुलभद्रगौ०	,,	फागु ने	,,	,,
१३—डाणापुर से करणाट गौ०	,,	झाला ने	,,	,,
१४—चँदेरी से श्रेष्टि	,,	मंत्री हाला ने	,,	,,
१५—सत्यपुर से प्राग्वट	,,	मंत्री नारा ने	,,	,,

१६—खटकूँप का अदित्यनाग सुलतान युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१७—नागपुर का अदित्यनाग वीर भारमल युद्ध मे० ,, ,,
१८—पद्मावती का चरड़ गौ० वीर हनुमान ,, ,, ,,
१९—रानीपुर का तप्तभट्ट गौ० शाह लुम्बो ,, ,, ,,
२०—हिड्डु नगर का मल्ल गौ० शाह देदो ,, ,, ,,
२१—कन्याकुब्ज का श्रेष्टि० वीर शादूल ,, ,, ,,
२२—खटकुंप नगर मे सुचंति गौ० नोधण की स्त्री ने एक कुँवा खुदाया
२३—हँसावली का श्रेष्टि धनदेव की विधवा पुत्री ने एक तलाव खुदाया
२४—विराट नगर के चोरलिया नाथा ने दुकाल मे शत्रुकार दिया

इत्यादि वंशावलियो में उपकेश वंश के अनेक दान वीर उदार नर रत्नो ने धर्म सामाज एवं जन कल्याणार्थ चोखे और अनोखे कार्य कर अनंत पुन्योपार्ज्जन किये जिन्हो की धवल कीर्ति आज भी अमर है।

यह नोध वंशावलियों से नमूना मात्र ली गई है परन्तु इस उपकेशवंश मे जैसे उदार दानेश्वरी हुए हैं वैसे अन्य वंशो में भी बहुत से नर रत्न हुए हैं। उस समय के उपकेश वंशी मंत्री महामंत्री सेनापति आदि पदको सुशोभित कर अपनी वीरता का परिचय दिया करते थे यदि वे कहीं युद्ध मे काम आजाते तो उनकी पत्नियों अपने सतीत्त्व की रक्षा के लिये अपने पतिदेव के पिछे प्राणापर्ण कर अपना नाम वीरांगणने में विख्यात कर देती थी। जिनके नमूने मात्र यहां बतलाया है।

सूरीश्वरजी महाराज के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ

१—झाबोजी	के चिंचट गौत्र	शाह जुझार	ने	पार्श्वनाथ	प्रतिमाए
२—जैनपुर	के बाप्पनाग०	,, कासा	ने	महावीर	,,
३—नारदपुरी	के आदित्यनाग	,, कर्मा	ने	,,	,,
४—मादड़ी	के करणाट०	,, हाना	ने	,,	,,

५—रानपुर के बीरहट गौत्र ,, माना ने पार्श्वनाथ ,,
६—शिवपुरी के कुलभद्र गौत्र ,, धन्ना ने शान्तिनाथ ,,
७—ठाणापर के श्रेष्टि गौ० ,, धाकड़ ने महावीर ,,
८—कुंतिनगरी के चरड़ गौ० ,, भाखर ने ,, ,,
९—चक्रपुर के लुंग गौ० ,, नादा ने पार्श्व० ,,
१०—चंद्रपर के मल्ल गौ० ,, दाहड़ ने ,, ,,
११—चरपटपुर के सुघड़ गौ० ,, बीरम ने सुपार्श्व ,,
१२—घंगाणी के लघुश्रेष्टि गौ० ,, उतावलिया ने शान्ति ,,
१३—उच्चकोट के कनोजिया गौ० ,, पोपा ने आदीश्वर ९ ,,
१४—कीराटकुंप के हिडु गौ० ,, गोमा ने चंद्र प्रभु ,,
१५—राजपुर के कुंमट गौ० ,, जैता ने विमल ,,
१६—रत्नपुर के चोरलिया० ,, फुवा ने धर्म० ,,
१७—रेणुकोट के प्राग्वट वंशी ,, भिखा ने महावीर ,,
१८—वीरपुर के ,, ,, वीराव ने ,, ,,
१९—भद्रावती के ,, ,, बड़वीर ने ,, ,,
२०—दान्तीपुर के ,, ,, चांचग ने पार्श्व० ,,
२१—करमाव के श्रीश्रीमाल गौ० ,, रूपा ने ,, ,,
२२—सालणी के श्रीमाल वंशी ,, बनारस ने ,, ,,
२३—जाजुपुर के बलाह गौ० ,, तारा ने ,, ,,
२४—मालपुरा के बोहरा गौ० ,, थेरू ने ऋषभ० ,,
२५—राहोल के बाप्पनाग० ,, दाहड़ ने नेमिनाथ ,,
२६—शुड़नगर के श्रेष्टि गौ० ,, जेसल ने पार्श्व० ,,
२७—ऊकारपुर के ,, ,, नागड़ ने महावीर ,,
२८—माडवगढ़ के लघु श्रेष्टि गौ० ,, आदू ने ,, ,,

इनके अलावा भी कई प्रान्तों में नगर देरासर एवं घर देरासर की बहुत प्रतिष्टाए हुई थी। यहां पर केवल एकेक मन्दिर का नाम लिखा है पर पट्टावलियों वंशावलियों में एकेक मन्दिर के लिये अनेक मूर्तियों की अञ्जनसिलाका करवाइ का उल्लेख भी मिला है ग्रन्थ बढ़जाने के भय से यहां संक्षित से ही लिखा है।

श्री श्रीमाल गौत्र के भूषण देवगुप्त सूरि था नाम।
सुविहित आप थे पूर्वधर धर्म प्रचार करना था काम ॥
जैनेत्तरों को जैन बनाकर, नाम कमाल कमाया था।
मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, ज्ञानकों खूब बढ़ाया था ॥

इति श्री पार्श्वनाथ भगवान् के २९ पट्टधर आचार्य देवगुप्त सूरि प्रभाविक आचार्य हुए

३०—आचार्य सिद्धसूरि (पांचवां)

गोत्रे मोरख नाम के समभवत् सिद्धेति सूरिर्महान् ।
भ्रान्त्वा देश मनेकशो जिनमतं लोके तथा ख्यापितम् ॥
येनासन् वहुलब्धयोऽथ च सदा दासाः स्वयं सिद्धयः ।
दीक्षित्वा स जनान् बहून् विहितवान् मोक्षाध्वयात्रा परान् ॥

चार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक सिद्ध पुरुष ही थे। आपने अपने शासन समय में जैनधर्म की खूब ही उन्नति की। कई जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा दी कई मुमुक्षुओं को संसार से मुक्त किये और कई वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर जैनधर्म का झंडा सर्वत्र फहराया था। आपके जीवन के विषय पट्टावलीकार लिखते हैं कि जावलीपुर नगर में मोरख गोत्रिय पुष्करणा शाखा में जगाशाह नाम का धनकुबेर सेठ था। आपके गृहदेवी का नाम जैती था। माता जेती ने एक समय अर्द्ध निद्रा के अन्दर देखा कि उसका पतिदेव बड़ी ठकुराई के साथ बैठा हुआ है और किसी ने आकर उसको रत्न भेंट किया है। सुबह होते ही अपना शुभ स्वप्न शाह जगा को कह सुनाया। शाह जगा धर्मीष्ठ था। मुनियो की सेवा उपासना कर व्याख्यान सुनता था। वह स्वप्नशास्त्र का भी जानकार था अपनी प्रिय पत्नी का स्वप्न सुनकर विचार करके कहा कि हे प्रिय—तू बड़ी भाग्यशालिनी है। इस स्वप्न से पाया जाता है कि तेरी कुक्ष में कोई उत्तम जीव गर्भपने अवतीर्ण हुआ है इत्यादि जिसको सुन जेती ने बहुत हर्ष मनाया और जिन मन्दिरों मे अष्टान्हिक महोत्सव पूजा प्रभावना और स्वामिवात्सल्यादि शुभ-कार्य किया। पहिले जमाने मे हर्ष एवं आफत में धर्मक्षेत्रों को विशेष याद किया करते थे।

जब माता के गर्भ तीन मास पूरे हुये और चतुर्थमास चल रहा था तो एक दिन उसको दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं संघ के साथ तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा कर प्रभु आदीश्वर की पूजा करूं इत्यादि। जेती ने इस दोहले को अपने पतिदेव को कह सुनाया। फिर तो देरी ही क्या थी, शाह जगा ने स्वीकार कर लिया। उस समय उपकेशगच्छ के पण्डित विवेक निधान का शुभागमन जावलीपुर में हुआ। शाह जगा ने पण्डित जी से प्रार्थना की कि आप संघ में पधार कर श्रीसंघ को यात्रा का लाभ दीरावें पण्डित जी ने लाभालाभ का कारण समझ कर जगा का कहना स्वीकार कर लिया फिर तो देरी ही क्या थी शाह जगा ने संघ को आमन्त्रण करके बुलाया। पंडितजी ने जगा को संघपति पद से विभूषित किया और पण्डित विवेक निधान के नायकत्व में शुभ मुहूर्त एवं अच्छे शकुनों से संघ ने प्रस्थान कर दिया। माता जेती सुखासन पर बैठी हुई ज्यों २ संघ को देखती थी त्यों २ उसको बड़ा ही आनन्द आता था। क्रमशः रास्ता के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ संघ शत्रुंजय पहुंचा और भगवान आदीश्वर की भक्ती सहित पूजा कर शाह जगा और आपकी पत्नी जैती ने अपना अहोभाग्य मनाया और माता ने अपना दोहला पूर्ण किया। शाह जगा ने तीर्थ पर पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य एवं ध्वजारोहण करने में खुल्ले दिल से पुष्कल द्रव्य व्यय

कर पुन्योपार्जन किया पट्टावलीकार लिखते हैं कि इस संघ में ७०० साधु साध्वियां और बीस हजार भावुक थे आठ दिनों की स्थिरता के बाद संघ वहाँ से लौट कर पुनः जाबलीपुर आया। शाह जगा ने स्वामिवात्सल्य कर एक एक सोना मुहर और वस्त्रादि की प्रभावना कर संघ को विसर्जन किया।

अहाहा ! वह जमाना आत्मकल्याण और धर्मभावना के लिये कैसा उत्तम था कि धर्म के नाम पर बात की बात में हजारों लाखो रुपये व्यय कर डालते थे। यही कारण था कि उन लोगों के पूर्वभव के पुन्योदय और इस भव में पुन्य बढ़ते थे कि वे सर्व प्रकार से सुखी रहते थे। लक्ष्मी की तो उन लोगों को कभी परवाह तक नहीं थी तथापि वह उन भाग्यशालियों के घरों में स्थिर वास कर बैठ जाती थी जब कभी वे लोग इस प्रकार के कार्य्यों में लक्ष्मी को विदा करना चाहते थे तो लक्ष्मी गुस्सा कर दुगुणी चौगुणी होकर उन भाग्यशालियों के घर में जमाव डाल कर रहती थी। लक्ष्मी का स्वभाव एक विलक्षण ही था जहाँ इस को चाहते हैं आशा एवं तृष्णा रखते हैं वहाँ जाने में आनाकानी करती है पर जहाँ लक्ष्मी को न तो कभी याद करते हैं और न इसका आदर करते हैं वहाँ रहने में खुशी मनाती है और चिरस्थायी रहती है।

माता जेती को कभी अपनी साथणियो को भोजन करवा कर पहरामणी देने का तथा कभी गुरुमहाराज के व्याख्यान सुनने का एवं दान देने का और कभी परमेश्वर की पूजा करने का मनोरथ उत्पन्न होता था। जिसको शाह जगा आनन्द पूर्वक पूर्ण करता था। क्रमशः माता जेती ने शुभ वक्त में एक पुत्र रत्न को जन्म दिया जिससे शाह जगा के हर्ष का पार नहीं रहा। याचकों को दान और सज्जनों को सम्मान दिया। जिन मन्दिरों में अष्टन्हिका महोत्सव प्रारंभ किया। कहा है कि:—

रण जीतण कंकणबँधन, पुत्र जन्म उत्साव। तीनों अवसर दान के, कौन रंक को राव ॥

जन्मादि महोत्सव करते हुए बाहरवें दिन दशोटन कर पुत्र का नाम ठाकुरसी रक्खा गया। बाल कुँवर ठाकुरसी क्रमशः बड़ा हो रहा था, उसकी बालक्रीड़ायें भावी होन हार की सूचना कर रही थीं। उसके हाथ पगों की रेखा एवं लक्षण उसका अभ्युदय बतला रहे थे और शाह जगा और माता जैती ठाकुरसी के लिये बड़ी बड़ी आशाओं के पुल बाँध रहे थे।

जब ठाकुरसी आठ वर्ष का हुआ तो उसको महोत्सव के साथ विद्यालय में प्रवेश किया पर ठाकुरसी ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद की एवं सरस्वती देवी की उज्ज्वल चित्त से आराधना की हुई थी कि अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेश्वर ही रहता था व्यवहारिक विद्या के साथ ठाकुरसी को धार्मिक ज्ञान पर विशेष रुचि थी। उनके माता पितादि सब कुटम्ब पहिले से ही जैनधर्मोपासक एवं जैनधर्म की क्रिया करने वाले थे। जब ठाकुरसी बालक था तब ही माता जेती उसको स्नान करवाकर अच्छे वस्त्र पहना कर मन्दिर उपाश्रय लेजाया करती थी अतः ठाकुरसी के धार्मिक संस्कार शुरू से ही जमे हुये थे अब धार्मिक पढ़ाई करने से और उसके भावों को समझने में तो और भी अधिक आनन्द आने लगा जिससे वह अपनी माता को धार्मिक क्रिया के लिये प्रेरणा किया करता था जिसको देखकर कभी कभी तो माता शंका करने लग जाती थी कि ठाकुरसी कहीं दीक्षा न ले ले ? अतः ठाकुरसी की माता चाहती थी कि ठाकुरसी का विवाह जल्दी कर दिया जाय। उसने अपने पतिदेव को कहा कि क्या ठाकुरसी की शादी नहीं करनी है ? सेठ जी ने कहा कि ठाकुरसी की शादी के लिये तो बहुत प्रस्ताव आये हैं पर अभी ठाकुरसी की उम्र सोलह वर्ष की है मेरी इच्छा है कि २० का

होजाय तब शादी करनी ठीक है । सेठानी ने कहा कि १६ वर्ष के की शादी करना कौनसा अनुचित है । सोलह वर्ष के की शादी तो सब जगह होती है । मेरी इच्छा है कि ठाकुरसी की शादी जल्दी की जाय। ष्य का क्या विश्वास है एक बार पुत्रबधू को आँखों से दाख तो लूं इत्यादि । सेठानी का अत्याग्रह होने सेठजी ने उसी नगर में बलाह गोत्रिय शाह चतरा की सुशील लिखी पढी विनयादि गुणवाली जिनदासी साथ बड़ी ही धामधूम से ठाकुरसी का विवाह कर दिया । बस, अब तो माता की शंका मिट गई और व मनोरथ सिद्ध होगये । इधर तो ठाकुरसी माता का सुपुत्र था और उधर जिनदासी विनयवान लज्जावान् लेखी पढ़ी चतुर और गृहकार्य में दक्ष बहू आगई फिर तो माता जैती फूली ही क्यो समावे । संसार मे सुख कहा जाय वह सब माता जैती के घर पर आकर एकत्र ही होगये ।

ठाकुरसी के लग्न को पूरे छः मास भी नहीं हुये थे कि धर्मप्राण धर्ममूर्त्ति लब्धप्रतिष्ठित धर्मप्रचारक नेक विद्वान मुनियो के साथ आचार्य देवगुप्तसूरि का शुभागमन जावलीपुर की ओर हुआ । जब वहाँ के संघ को यह शुभ समाचार मिले तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा । उन्होंने सूरिजी का स्वागत एवं नगर-वेश का महोत्सव बड़े ही समारोह से किया जिसमे शाह जगा एवं ठाकुरसी भी शामिल थे । सूरिजी का गलाचरण इतना सारगर्भित था कि श्रवण करने वालों को बड़ा ही आनंद आया । सूरिजी का व्याख्यान मेशों त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण पर विशेष होता था एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार असारता बतलाते हुये फरमाया कि तीर्थङ्करदेवो ने संसार को दुःखो का खजाना इस वास्ते बतलाया है कि—

दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य । अहो ! दुक्खो हुं संसारों, जत्थ किस्सं तिजंतुणो ॥
। मरण कंतारे चाउरंते भयागरे । मए सोढ़ाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥

यह दुःख उत्पन्न होता है इन्द्रियो से । इन्द्रिय के विषय को दो विभाग मे विभाजित करदिया जाय एक काम और दूसरा भोग—जैसे श्रोत्रइन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय और र्शेन्द्रिय भोगी हैं । इस काम और भोग से ही जीव दुख परम्परा का संचय कर संसार मे भ्रमण कर ा है । जब जीव को अज्ञान एवं भ्रान्ति होजाती है तब वे दुःख को भी सुख मान लेते हैं अर्थात् हलाहल को अमृत मान लेते हैं जैसे कि—

जहां किंपाकफलाणं, परिणामो ण सुंदरो । एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो ॥
सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा । कामेय पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥

कई काम भोग से विरक्त होते हुये भी माता पिता स्त्री आदि कुटुम्ब परिवार की माया में फँस कर बंध करते हैं जैसे—

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा । नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतितस्स सकम्मुणा ॥

पर यह नहीं सोचते हैं कि जब कर्मोदय होगा तब यह माता पितादि मेरी रक्षा कर सकेंगे या मैं ला ही कर्म भुक्तुंगा । जैसे एक हलवाई ने किसी राजा के यहाँ घेवर बनाया पर उसके दिल में बेईमानी गई कि गरमागरम चार घेवर चुरा कर अपने लड़के के साथ घर पर भेज दिये । औरत ने समझा कि मैं पुत्री और पति एवं घर मे चार जने हैं, और चार घेवर हैं एक एक घेवर हिस्से में आता है तो फिर गरम न खाकर स्वाद क्यो गमावें । उन तीनो ने तीन घेवर खा लिये, एक हलवाई के लिये रख दिया

परन्तु भाग्यवसात् घर पर जमाई आगया अतः चौथा घेवर उसको खिला दिया। बाद हलवाई घेवर की उम्मेद पर स्नान कर मकान पर आया। औरत ने कहा कि तीन घेवर तो अपने २ हिस्से के हम सबने खा लिये एक आपके लिये रक्खा था पर जमाई घर पर आगये, आपके हिस्से का घेवर उनको खिला कर घर की इज्जत बढ़ाई। यह सुन कर हलवाई निराश होगया। उधर राज में घेवर तोला गया वो चार घेवर कम आये। बस, एक दूत को हलवाई के पीछे भेजा और हलवाई को बुलाकर खूब पीटना शुरू किया। उसने कहा कि घेवर मैंने चुराये पर मैंने खाये नहीं, खाये घरवालों ने अतः पीटना हो तो उन्हें पीटो। जब घरवालों को बुलाया तो उन्होंने कहा कि हमने कब कहा था कि तुम चुराकर घेवर लाना अतः हम निर्दोष हैं। आखिर सजा हलवाई को सहन करनी ही पड़ी। इस उदाहरण से आप समझ सकते हो कि कर्म करेगा वसे ही दुःख भोगना पड़ेगा। अतः कर्म करते समय इस उदाहरण को खयाल में रखे—

श्रोतागण ! कई मनुष्य जन्मादी लेकर तृष्णा के वशीभूत हो धन एकत्र करने में हिताहित का भान भूल जाते हैं पर उन लोभानन्दी को कितना ही द्रव्य देदिया जाय तो भी उनकी तृष्णा शान्त नहीं होती है।

सुवन्नरुप्पस्सउपव्या भावे, सियाहु केलास समा असंखाय ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छाहु आगाससमा अणंताय ।।

न सहस्राद्भवे तुष्टिर्न लक्षन्न च कोटिना । न राज्यान्ने देवत्वा न्नेन्द्रत्वादपि देहिनाम् ।।

धन संसार में असंख्य है पर तृष्णा अनंत है वह कब शान्त होने वाली है अतः मनुष्य को चाहिये कि संसार के मोहजाल को तिलांजलि देकर शीघ्रातिशीघ्र आत्मकल्याण सम्पादन करने में लगजावे फिर इसमें भी विशेषता यह है कि स्वकल्याण के साथ पर कल्याण की भावना वाले को कुँवार अवस्था एवं तारुण्यपने में चेतना चाहिये। शास्त्रकारों ने कहा है कि:—

"परि जूरइ ते सरीरयं केसा, पंडुराय हवंतिते। से सव्व वलेय हावई, समयं गोयमा ! मा पमायए
"जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ। जाविंदिया न हावंति, तावधम्मं समायरे ।।

महानुभावों ! कालरूपी चक्र शिरपर हमेशा घूमता रहता है न जाने कहाँ किस समय धावा बोल दे अतः विलम्ब करने की जरूरत नहीं है। ऐसा सुअवसर हाथों से चले जाने पर कोटि उपाय करने से भी शायद् ही मिलसके ? फिर पछताने के सिवाय कुछ भी नहीं रहेगा। इसलिये तीर्थङ्करों गणधरों और पूर्वाचार्य्य ने पुकार पुकार कर कहा है कि आत्म कल्याण की भावना वाले मुमुक्षुओं को क्षणमात्र की देरी नहीं करनी चाहिये

"अरई गंडं विसुईया अयंके विविहा फुसंतिते। विहडइ विद्ध ंसइ ते सरीरंयं समय गोयमा। मा पमायए ।।
वोच्छिद सिणेहमप्पणो, कुमुदं सारइयं च पाणियं। से सव्व सिणेहवज्जिए, समयं गोयमा। मा पमायए।।

यदि संसार त्याग कर आत्म कल्याण न करेगा उसको आखिर पश्चाताप करना पड़ेगा जैसे

अवले जह भार वाहए, मामग्गे विसमेऽवगाहिया। पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम। मा पमायए।।

इत्यादि सूरिजी ने वैराग्यमय देशना दी जिसको सुनकर जनता एक दम चौंक उठी और संसार की तरफ उनको घृणा आने लगी। ऐसा वैराग्य रहता क्षणमात्र ही है। हाँ, जिसके भवस्थिति परिपक्व होगई है संसार परत होगया हो और मोक्ष जाने की तैयारी हो उसके रोम रोम में खून के साथ वैराग्य मिश्रि

होजाता है। ऐसा था नवयुवक ठाकुरसी। सूरिजी ने जितने पोइन्ट बतलाये ठाकुरसी ने उस पर खूब विचार किया और आखिर उसने निश्चय कर लिया कि अनुकूल सामग्री के मिलने पर भी कल्याणमार्ग साधन नहीं किया जाय तो भवान्तर में अवश्य पश्चाताप करना पड़ेगा ? जब अनंत काल से भी यह जीव विलास से तृप्त नहीं हुआ तो एकभव से तो होने वाला भी क्या है ? अतः इन विषय भोगों को तिलांजलि देकर सूरिजी के चरण कमल की शरण लीजाय की अपने को सूरिजी भव समुद्र से पार पहूँच देंगा इत्यादि।

सूरिजी का व्याख्यान समाप्त हुआ तो सूरिजी की प्रशंसा एवं वंदन कर परिषद् विदा हुई पर ठाकुरसी अपने विचार में इतना तल्लीन होगया की उसके माता पिता चले गये जिसकी भी उसे सुधी नहीं रही। सब लोगों के जाने पर ठाकुरसी ने कहा पूज्यवर ! आज तो आपने बड़ी भारी कृपा की कि मोह निद्रा में सोते हुओं को जागृति कर दिये मेरी इच्छा है कि मैं आपश्री के चरणों में दीक्षा लेकर अपना कल्याण सम्पादक करूँ। सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम' पर धर्म कार्य में विलम्ब मत करना क्योकि अच्छे कार्य में कई विघ्न उपस्थित होने की संभावना रहती है अतः शास्त्र मे कहा है 'धर्मस्यत्वरतागति'

सूरिजी को वंदन कर ठाकुरसी अपने मकान पर आरहा था पर उसके दिल में सूरिजी का व्याख्यान रम रहा था। भाग्यवसात् चलते २ उसके पैरों के बीच अकस्मात् एक दीर्घकाय सर्प आनिकला जिसकी ठाकुरसी को खबर तक नहीं पड़ी पर जब सर्प पैरों के बीच आया तब जाकर मालूम हुआ। वह दूर होकर सोचने लगा कि यदि यह सर्प काट खाता तो मैं यों ही मरजाता। अतः ठाकुरसी का वैराग्य दुगणित होगया। वहाँ से चलकर घर पर आया और माता को सर्प की बात कही जिसको सुन माता ने बहुत फिक्र किया और कहा बेटा ! गुरु महाराज की कृपा से आज तू बच गया है। बेटा ने कहा हाँ माता तेरा कहना सत्य है मैं गुरुदेव की कृपा से ही बचा हूँ अतः आप आज्ञा दीरावें कि मैं गुरु महाराज की सेवा करूँ ! माता ने कहा बेटा इसमें आज्ञा की क्या जरूरत है। तू खुशी से गुरु महाराज की सेवा कर बेटा। ऐसे गुरु महाराज का संयोग कब मिलता है इत्यादि। माताविचारी भद्रिक थी बेटा की गूढ़ बात को वह जान नहीं सकी। बेटा ने कहा बस माता मैं तेरी आज्ञा ही चाहता था इतना सुनते ही माता बोली कि बेटा किस बात की आज्ञा चाहता था ? बेटा ने कहा गुरु महाराज के चरणों की सेवा करने की। बेटा तू क्या कहता है मैं समझ न सकी गुरु महाराज की सेवा तो सब ही करते हैं। माता ! मैं जीवनपर्यन्त गुरु महाराज के चरणों में रह कर सेवा करना चहता हूँ। जैसे उनके और शिष्य करते है।

माता—तब क्या तू गुरु महाराज का चेला बनना चाहता है ?

पुत्र—हाँ माता, मैंने जब ही तो आज्ञा मांगी थी और तुमने आज्ञा देदी है। मां बेटा बात करते ही थे इतने मे शाह जगा घर पर आगया। सेठानी ने कहा आपका बेटा क्या कहता है, सेठानी के आंखों से आँसुओ की धारा बहने लग गई जिसको देख कर सेठजी ने कहा बेटा क्या बात है ? सेठानी ने कहा आज ठाकुरसी के पैरों के बीच साप आगया था मैंने कहा कि गुरु महाराज की कृपा से तू बच गया अतः गुरुदेव की सेवा किया कर बस इतनी बात पर यह दीक्षा लेने को तैयार होगया है। आप अपने बेटे को समझाइये वरना मेरा प्राण छुट जायगा। शाह जगा ने ठाकुरसी को बहुत समझाया पर ठाकुरसी के वैराग कच्चा नहीं था पर वैराग्य था अन्तरंग का। ठाकुरसी ने कहा पिताजी यदि मैं सांप के कारण मर जाता तो आप किसको समझाते ? भला थोड़ी देर के लिये आप मुझे मर गया ही समझ लीजिये। मैं तो प्यार से और

अपनी माँ से भी कहता हूँ कि आपका मेरे प्रति पक्का प्रेम है तो आप भी गुरु महाराज के चरणों की शरण लेकर आत्म कल्याण करें । किसका बेटा और किसके मां बाप यह तो एक स्वप्न की माया है न जाने किस गति से आये और किस गति में जावेंगे यह मनुष्य जन्मादि अनुकूल सामग्री बार बार मिलने कि नहीं है। आपने सुना होगा सच्ची प्रीति तो जम्बुकूँवर के माता पिता और स्त्रियों थीं की उन्होंने अपने प्यारे पुत्र के साथ दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया इत्यादि।

ठाकुरसी अपने माता पिता से बातें कर रहा था और एक तरफ उसकी छः मास की परणी हुई स्त्री बैठी थी और अपने पतिदेव की सब बात सुन रही थी। जिससे उनको बड़ा ही दुःख हो रहा था।

शाह जगा ने कहा बेटा तू भी जम्बुकुँवर बनना चाहता है। बेटा ने कहा पिताजी जम्बुकुँवर तो तद्भव मोक्षगामी था परन्तु भावना तो एक मेरी क्या पर सब की ऐसी ही होनी चाहिये। शाह जगा तो ठाकुरसी के वचन सुन मंत्रमुग्ध बन गया। अब ठाकुरसी को क्या जवाब दे इसके लियें वह विचार समुद्र में गोता लगा रहा था आखिर में कहा चलो भोजन तो करलो फिर इसके लिये विचार किया जायगा! बाप बेटा ने साथ में बैठकर भोजन कर लिया बाद बाप तो गया दुकान पर और बेटा गया अपने महल मे वहाँ पर ठाकुरसी की स्त्री थी उसने अपने पति को खूब कहा पर ठाकुरसी ने उसे इस कदर समझाई कि उसने अपने पतिदेव का साथ देना स्वीकार कर लिया। रात्रि के समय सेठ सेठानी ने आपस में विचार किया कि अब क्या करना चाहिये। ठाकुरसी ने तो दीक्षा का हट पकड़ लिया है। सेठानी ने कहा कि केवल ठाकुरसी ही क्यों पर ठाकुरसी की बहू भी दीक्षा लेने को तैयार होगई है। सेठ ने कहा यदि ऐसा ही है तो फिर अपने घर में रहकर क्या करना है आखिर एक दिन मरना तो है ही जब ठाकुरसी और उसकी औरत इस तरुणावस्था में भोग विलास छोड़ दीक्षा लेते हैं तो अपन तो मुक्त भोगी हैं इत्यादि। सेठानी ने कहा दीक्षा का विचार तो करते हो पर दीक्षा पालनी सहज बात नहीं है। इसका पहिले विचार कर लीजिये। सेठजी ने कहा कि इसमें विचार जैसी क्या बात है। इतने हजारों साधु साध्वियां दीक्षा पालते हैं वे भी तो एक दिन गृहस्थ ही थे। दूसरे हम व्यापार में भी देखते हैं कि थोड़ा बहुत कष्ट बिना लाभ भी तो कहां है इत्यादि दोनों का विचार पुत्र के साथ दीक्षा लेने का होगया। बस शाहजगा ने अपने पुत्र जोगा को सब अधिकार देदिया और जो सात क्षेत्र में द्रव्य देना था वह देदिया तथा जोगा ने अपने माता पिता एवं लघु बान्धव की दीक्षा का महोत्सव किया और सूरिजी ने ठाकुरसी उनके माता पिता स्त्री तथा १२ नरनारी एवं १७ मुमुक्षुओं को शुभ मुहूर्त में दीक्षा देदी और ठाकुरसी का नाम अशोकचन्द्र रख दिया। मुनि अशोकचन्द्र बड़ा ही त्यागी वैरागी जितेन्द्रिय था उसको ज्ञान पढ़ने की तो पहिले से ही रुचि थी। सरस्वती देवी की पूर्ण कृपा थी अतः विनय भक्ति करके थोड़े ही दिनों में वर्तमान् साहित्य का अध्ययन कर धुंरधर विद्वान् बन गया आपकी व्याख्यान शैली इतनी मधुर और प्रभावोत्पादक थी कि बड़े बड़े राजा महाराजा आपके व्याख्यान सुनने को लालायित रहते थे। शास्त्रार्थ में तो आप इतने सिद्ध हस्त थे कि कई राजाओं की सभा में वादियों को पराजित कर जैन धर्म की ध्वजा पताका फहराई थी। आचार्य देवगुप्त सूरि ने अपनी अन्तिमवास्था में देवी सच्चायिका की सम्मति से माडव्यपुर के डिडु गौत्रीय शाह ठाकुरसी आदि श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनि अशोकचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरि महान प्रभाविक एवं जैनधर्म के कट्टर प्रचारक हुये। आप विहार करते हुए एक

समय उजैन नगरी मे पधारे। श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया तथा श्रीसंघ की आग्रह पूर्वक विनती होने से वह चतुर्मास आपने उज्जैन मे ही किया। आपके विराजने से कई प्रकार से धर्म की प्रभावना हुई। उज्जैन के चतुर्मास में आपने विचार किया कि कई वर्ष होगये हैं आचार्यों का दक्षिण की और विहार नहीं हुआ है। वहां कई मुनि विचरते हैं उनका क्या हाल है ? अतः दक्षिण की ओर विहार करना जरूरी है। उस अवसर पर देवी सच्चायिका भी सूरिजी को वंदन करने को आई थी। सूरिजी ने देवी की भी सम्मति ली तो देवी ने बड़ी खुशी के साथ सम्मति देदी और कहा पूज्यवर ! जितना आपका विहार अधिक क्षेत्रों में होगा उतना ही धर्म का प्रचार अधिक बढ़ेगा। आप खुशी से दक्षिण की ओर विहार करें। बस चतुर्मास समाप्त होते ही आप श्री ने अपने पांचसौ साधुओं के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया।

उस समय के आचार्य अपने पास अधिक मुनियो को इस गर्ज से रखते थे कि जिस प्रान्त में आप विहार करते उस प्रान्त के छोटे बड़े सब ग्रामों मे लोगों को उपदेश मिल जाता कारण, छोटे २ ग्रामों में थोड़े २ साधुओं को भेज देते और बड़े नगरों में सब साधु शामिल हो जाते थे इससे एक तो गौचरी पानी की तकलीफ उठानी नहीं पड़ती और दूसरे ग्राम वालों को उपदेश भी मिलजाता। अतः उस समय के साथ जैनाचार्यों के कम से कम एक सौ साधु और ज्यादा से ज्यादा ५०० साधु तक भी रहते थे। उस समय जैनों की संख्या बहुत थी और भग्यशाली दीक्षा भी बहुत लेते थे। उन आचार्यों के त्याग, वैराग्य निस्पृहता एव परोपकार का प्रभाव भी तो दुनियां पर बहुत पड़ता था।

सूरिजी महाराज अपने ५०० शिष्यो के साथ यूथपति की भांति ग्रामोग्राम विहार करते हुये एव धर्मोपदेश देते हुये और धर्म जागृति करते हुये पधार रहे थे। जिस प्रदेश में आपश्री का पदार्पण होता वह प्रदेश धर्म से नवप्लव बन जाता था कारण आपश्री का उपदेश ही ऐसा था कि क्या राजा और क्या प्रजा धर्म के अनुरागी बन जाते थे कइ माहानुभाव संसार त्याग कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग जाते थे। सूरिजी का पहला चतुर्मास मानखेट राजधानी में हुआ यहाँ भी धर्म की खुब प्रभावना हुई बाद चतुर्मास के सूरिजी आस पास के प्रदेश में विहार कर बहुत अजैनों को जैन बनाये बहु-मुमुक्षुओ को दीक्षा दी तत्पश्चात् आप मदुरा में पधारे वहाँपर एक श्रमण सभा की गई जिसमें उस प्रान्त में विहार करने वाले सब मुनि एकत्र हुए थे। सूरिजी ने उन मुनियो के धर्म प्रचार कार्यों की खुब सहराना की और योग्य मुनियों को पदवियों प्रधान कर उनके उत्साह को बढ़ाया दूसरा चतुर्मास सूरिजी ने मथुरा में किया वहाँ पर श्रेष्टि यशदेव ने भगवान् महावीर का बहुतर देहरी वाला मन्दिर बनाया उस की प्रतिष्टा करवाई इस शुभअवसर पर बारह नर नारियो को भगवती जैन दीक्षा ली तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः ग्राम नगरों की स्पर्शना करते हुए सोपारपट्टन पधारे वहाँ के श्री संघ ने सूरिजी का बहुत समारोह से स्वागत किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था लोकजन को बड़ा भारी आनन्द आता था श्रीसंघ ने सूरिजी से चतु-र्मास की प्रार्थना की और लाभालाभ का कारण जान कर सूरिजी ने स्वीकार करली। सूरिजी के चतुर्मास से श्रीसंघ में धर्म जागृत अच्छी हुई। कई शुभ कार्य हुये। पांच महिला और तीन श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली। तदनन्तर आस पास के प्रदेश में भ्रमण करते हुए सूरिजी सौराष्ट्र में पधार कर गिरनार मण्डन भगवान नेमिनाथ की यात्रा की। वहाँ पर एक योगियों की जमात आई हुई थी उनमें एक टम्पट साधु अच्छा लिखा पढ़ा था पर उसको अपने ज्ञान का बड़ा ही घमंड था यहाँ तक कि दूसरे विद्वानों को

तृणवत् ही समझता था। एक समय सूरिजी का एक लघु शिष्य कई साधुओं के साथ थंडिले भूमि को गया था। भाग्यवसात् तापस भी वहाँ आगया। अतः दोनों की आपस में भेंट हुई तथा वार्तालाप भी हुआ दोनों के चेहरे पर भाग्य रेखा चमक रही थी।

"तापस ने पूछा कि मुनिजी! आपके धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है?

"मुनि ने कहा हमारे धर्म का मुख्य सिद्धान्त स्याद्वाद है। इसका दूसरा नाम अनेकान्तवाद भी है।

तापस—स्याद्वाद आप किसको कहते हैं?

मुनि—वस्तु में अनंतधर्म है जिसमें से एकधर्म की अपेक्षा लेकर कथन करना उसको स्याद्वाद कहते हैं।

तापस—इस विषय का कोई उदाहरण बतला कर समझाइये।

मुनि—एक महिला है उसमें अनेक गुण हैं जैसे वह माता है वहिन है पुत्री है औरत है इत्यादि अनेक स्वभाव वाली हैं। पर जब उसको माता कहेंगे तो पुत्र की अपेक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी, कि पुत्र की अपेक्षा माता है पर माता कहने से शेष वहिन पुत्री और औरत के गुण हैं उनका नाश न होगा क्योंकि भाई की अपेक्षा उसे वहिन पिता की अपेक्षा पुत्री, और पति की अपेक्षा औरत भी कह सकते हैं इसको स्याद्वाद, अनेकान्त एवं अपेक्षावाद कहा जाता है इसी प्रकार जिस समय जिस गुण की अपेक्षा लेकर वर्णन करेंगे वह सत्य है जैसे आत्मा ज्ञानी है उस समय आत्मा में दर्शनादि दूसरे गुण भी विद्यमान हैं।

तापस—आपके मत में आत्मा का क्या स्वरूप और आत्मा को कैसे माना है।

मुनि—आत्मा नित्य अक्षय सच्चिदानंद असंख्याता प्रदेशी शाश्वता नित्य द्रव्य माना है।

तपसी—यदि आत्मा अक्षय एवं नित्य शाश्वताद्रव्य है तो फिर जीव मरता जन्मता क्यों है?

मुनि—आत्मा न तो कभी जन्मता है और न कभी मरता ही है।

तापस—आपके इस कथन पर कैसे विश्वास किया जाय। कारण, प्रत्यक्ष में हम देखते हैं कि जीव मरता है और जन्मता भी है। और व्यवहार में सब लोग भी यही कहते है।

मुनि महात्मा! आप हम और जनता जिस जीव को मरता जन्मता देख रहे एवं कहते है वह जीव नहीं पर स्थूल शरीर की अपेक्षा से ही कहा जाता है। जीव नाम कर्म के उदय से शरीर प्राप्त करता है आयुष्य के साथ इसका सम्बन्ध रहता है उस की स्थिति पूर्ण होने से जीव पूर्व शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को धारन कर लेता है जैसे एक मुसाफिर एक कमरा दो मास के लिये किराया पर लिया है जब दो मास की मुद्दित खतम हो जाति है तब उस कमरा को छोड़ दूसरा कमरा किराये लेना पड़ता है। यही संसारी जीवों का हाल हैं।

तापस—कहा जाता हैं कि पांच तत्वों एवं पाँच भूतों से शरीर बनता है

मुनि—हाँ इसमें भी अपेक्षा रही हुइ है पर आपके कहने पर भी आप ध्यान लगाकर सोचिये कि जब पांच तत्वों ने शरीर बना है तो जब तत्वों का नाश होने से शरीर का नाश हो जाता हैं फिर भी जीव तो अनादि शास्वता ही रहाँ पांच तत्वों वालों ने जो कल्पना की है वह इस प्रकार है कि शरीर में अस्थि-हाड वगैरे कठिन द्रव्य है उसके लिये पृथ्वी तत्व, खून वगैरह द्रव्य ढीला पदार्थ है उनको पानी तत्व, जेठ रानि को तेजस तत्व, शासोंशास की वायुतत्व और इन तत्वा का भाजन को आकाशतत्व मान लिया है और इन्को ही स्थूल शरीर कहा जाता है जिसके नाश होने पर भी जीव अनाशमान् शास्वता रहता है

तापस—आप स्थूल शरीर कहते हो तो क्या दूसरा कोई सूक्ष्म शरीर भी होता है!

मुनि-हां शरीर पांच प्रकार के होते हैं जैसे कि औदारिक शरीर, वैक्रय शरीर, आहारीक शरीर, तेजस शरीर, और कारमाण शरीर जिसमे पहिले तीन स्थूल और अन्त के दो सूक्ष्म शरीर हैं। इन पांच शरीरो से एक आहारिक शरीर लब्धिपात्र मुनियों के ही होते हैं शेष चार शरीर सर्वसाधारण जीवों के होते हैं। उसमें औदारिक और वैक्रय दो शरीर उत्पन्न होते हैं और इनका विनाश भी होता है। उत्पन्न होने को जन्मना और विनाश होने को मरना कहते हैं शेष तेजस और कारमाण शरिर जीव के सदैव साथ रहता है। ये दोनों शरीर जिस समय जीव से सर्वथा अलग होजाते हैं, वे शरीर भी छुटजाते हैं तब जीव की मोक्ष होती है अर्थात् मोक्ष होने से जीव अशरीर होजाता है जिसको निरंजन निराकार कहते हैं।

तापस-जीवात्मा से शरीर अलग है तब शरीर को कष्ट होने पर जीव को सुख दुख क्यों होता है ?

मुनि—जीवात्मा के साथ कर्मों का संयोग है और शरीर कर्म की प्रकृति है। जीव ने भ्रांति से शरीर को अपना कर माना है उस अपनायत के कारण शरीर के साथ जीव को भी दुखी होना पड़ता है। जैसे एक वृद्ध तपसी ने शीत ताप से बचने के लिये घास की झोपड़ी बना रक्खी थी, एक समय तपसी जंगल में गया था पीछे से किसी ने उसकी झोपड़ी को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दी जब। तपसी वापिस आया तो झोंपड़ी नष्ट हुई देख बहुत दुःख किया यद्यपि तपसी को कुछ भी तकलीफ नहीं दी थी पर तपसी ने उस झोंपड़ी को अपनी कर मानली थी अतः झोंपड़ी के नष्ट होने से तपसी को दुःख हुआ इसी प्रकार जीव ने शरीर को अपना मान लिया इसलिये उसे दुःखी होना पड़ता है।

तापस—शरीर में जीवात्मा किस प्रकार और किस जगह पर रहता है ?

मुनि—जैसे तिलों में तेल, दूध मे घृत, पुष्पो मे सुगन्धी रहती है वैसे शरीर मे जीवात्मा रहता है अर्थात् सब शरीर में खीर नीर की माफिक मिला हुआ रहता है।

तापस—जीवात्मा और शरीर के कब से संयोग हुआ है ?

मुनि—जीव और शरीर के नय संयोग नहीं होता है पर अनादि काल का संयोग है।

तापस—जब संयोग नही तो उसका वियोग भी नहीं होगा और वियोग नहीं तब तो जीव की मोक्ष भी नहीं होगी।

मुनि—जीव के साथ शरीर का अनादि संयोग है फिर भी उसका वियोग हो सकता है जैसे तिलों में तेलका कब संयोग हुआ अर्थात् तिलों में तेल किसने डाला इसकी आदि नहीं है परंतु यंत्र मशीन घाणि वगैरह के प्रयोग से तिलों से तेल का वियोग होसकता है। इसी प्रकार जीव और शरीर की आदि नहीं है पर सम्यक् ज्ञानदर्शन चारित्र रूपी यंत्र मिलने से वियोग हो सकता है।

तापस—तब तो सब जीवों की मोक्ष हो जायगी ?

मुनि—नहीं सब जीवों की मोक्ष नहीं होती है।

तापस—इसका क्या कारण है ?

मुनि—मोक्ष उसकी ही होसकती है कि सम्यक्, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना कर सके।

तापस—तो क्या सब जीव आराधना नहीं कर सकते हैं ?

मुनि—नहीं, कारण सब जीवों को ज्ञान दर्शन की आराधना का समय ही नहीं मिलता है। देखिये संसार में जीव चार प्रकार के हैं जैसे उदाहरण :—

१—एक सधवा औरत कि जिसके पुत्र होने का स्वभाव है और पति भी पास में है उसके पुत्र की प्राप्ती जल्दी होती है ।

२—सधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव भी है पर उसका पति घर पर नहीं जब पति घर पर आवेगा तब पुत्र होगा । अतः पुत्र होने में विलम्ब है ।

३—विधवा औरत है पुत्र होने का स्वभाव है पर उसका पति गुजर गया है इसके कभी पुत्र होगा ही नहीं केवल पुत्र होने का स्वभाव जरूर है ।

४—चौथी सधवा है पर बांझ है । उसका पति चाहे घर पर हो चाहे प्रदेश में हो उसके कभी पुत्र नहीं होगा ।क्योकि उसमें पुत्र होने का स्वभाव ही नहीं है ।

इस उदाहरण का उपनय यह है कि चार औरतों के स्थान चार प्रकार के जीव हैं ।-पुत्र होने के स्वभाव के स्थान मोक्ष जाने का स्वभाव है। पति के स्थान ज्ञान दर्शन चारित्र समझ लीजिये । अब इसका शरांशः—

१— पहिला जीव निकट भावी यानी जल्दी मोक्ष जाने वाला है । कारण, मोक्ष जाने का स्वभाव है और ज्ञान दर्शन का संयोग एवं आराधना भी है ।

२— दूसरा दुर्भावी इसमें मोक्ष जाने का स्वभाव है पर कर्मोदय ज्ञान दर्शन की आराधना का साधन नहीं है । जब कभी आराधना का संयोग मिलेगा तब मोक्ष होगा ।

३—तीसरे जातिभव्य के मोक्ष जाने का स्वभाव है पर उसको ज्ञानादि की आराधना का समय ही नहीं मिलता और न वह मोक्ष ही जायगा केवल स्वभाव मात्र है ।

४—चौथा अभव्य कि मोक्ष जाने का स्वभाव ही नहीं है उसको ज्ञानादि आराधना का समय ही नहीं मिले कदाचित् समय मिले वो आन्तरिक भावों से नहीं आराधे उसकी मोक्ष भी कभी नहीं होगी ।

इस उदाहरण से आप समझ सकते हो कि यह कभी न तो हुआ न होगा कि सब जीव मोक्ष चले जाय ।

तापस— इसका क्या कारण है कि जातिभव्य और अभव्य को ज्ञानादि की आराधना का संयोग नहीं मिले ?

मुनि—जीव के आठ कर्मों में एक मोहनीय नाम का कर्म है कि जातिभव्य और अभव्य जीवों के आत्म प्रदेश से कभी हट ही नहीं सकता है । उसके बिना हटे ज्ञानादि की आराधना हो नहीं सकती है । अतः वह मोक्ष जा नहीं सकता है ।

तापस—ज्ञान दर्शन चारित्र किसको कहते हैं और इसकी आराधना किस प्रकार होती है ?

मुनि— ज्ञान वस्तु तत्त्व को सम्यक् प्रकार अर्थात यथार्थ समझना उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं इसके भी पांच भेद हैं । जैसे कि :—

१—मतिज्ञान-जो स्वयं मगज से ज्ञानशक्ति पैदा होनी ।

२—श्रुतिज्ञान-दूसरों से सुनना या पुस्तकादि का पठन पाठन करने से ज्ञान होता है ये दोनों ज्ञान ऐसे हैं कि साथ में ही रहते हैं और आपस में एक दूसरे के सहायक भी हैं ।

३—अवधिज्ञान—इसके अनेक भेद हैं और यह है भी अतिशय ज्ञान कि इससे भूत भविष्य और वर्तमान की बात जान सकता है पर है मर्यादित ।

४—मनपर्यवज्ञान— इस ज्ञान से दूसरे के मन की बात कह सकता है ।

५—कैवल्य-ज्ञान यह सर्वोत्कृष्ट महाज्ञान है । इससे सकल लोकालोक के चराचार को एक समय मात्र में जान सकते हैं । इस ज्ञान से जीव की मोक्ष होजाती है फिर उस जीव को संसार में जन्म मरण नहीं करना पड़ता ।

दर्शन-जाने हुये भावो को यथार्थ सरद्धना अर्थात् आत्मा के प्रदेशो पर मिथ्यात्मा मोहनीय कर्म लगे हुये है जिसको समूल क्षय करने से क्षायक दर्शन और कुछ प्रकृतियो का क्षय और कुछ उपसम करना से क्षयोपसम दर्शन होता है । तथा शुद्ध देव गुरु धर्म को पहिचान कर उसकी आराधना करना और भी आत्मवाद, ईश्वरवाद, सृष्टिवाद, कर्मवाद और क्रियावाद इनको यथार्थ समझ कर उस पर श्रद्धा रखना ये व्यवहार दर्शन है एवं दर्शन की आराधना है ।

चारित्र—आरम्भ सारम्भ सर्व कनक कामिनी का सर्वथा त्याग कर पांच महाव्रत का पालन करना और अध्यात्म मे रमणता करना चारित्र की आराधना है । स्याद्वाद इनसे भी गंभीर है ।

महात्माजी ! दूसरा हमारा सिद्धान्त है अहिंसा परमोधर्मः और कहा है कि "एवं खु नाणीणो सार जंन हिंसे ही किचणं" "नाणस्स सारं वृति ।" ज्ञान का सार यही है कि किंचित मात्र हिंसा नहीं करना । इसलिये ही साधु जीवसहित कच्चा जल तथा अग्नि और वनस्पति का स्पर्श मात्र भी नहीं करते हैं । प्रत्येक कार्य में अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है । आत्म कल्याण का सर्वोत्कृष्ट यही मार्ग है ।

तापस थोड़ी देर विचार कर सोचने लगा कि मुनिजी का कहना तो सोलह आना सत्य है । आत्मा के कल्याण का रास्ता तो यही है । जब तक इस सड़क पर नहीं आवें तब तक कल्याण होना असभव है । क्योंकि हम लोग साधु होते हुये भी अनेक प्रकार के आरम्भ सारम्भ करते है । कच्चे पानी में जीव होना तो अपने शास्त्र में भी लिखा है कि 'जले विष्णु थले विष्णु' तथा कन्द मूल वनस्पति में भी बहुत जीव बतलाया है, जैसे :—

मूलकेन समंचान्नं यस्तु भुङ्क्ते नराधमः । तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥
यस्मिन्गृहे स दानार्थं मूलकः पच्यते जनैः । श्मशान तुल्यं तद्वेश्य पितृभिः परिवर्जितम् ॥
पितृणां देवतानां च यः प्रयच्छति मूलकम् । स याति नरकं घोरं यावदाभृतसंप्लवम् ॥
अज्ञानेन कृतं देव ! मया मूलक भक्षणम् । तत्पापं यातु गोविंद! गोविन्द इति कीर्तनात् ॥

हम स्नान करते हैं, कच्चा जल पीते है, अग्नि जलाते है, कन्द मूलादि वनस्पति का भक्षण करते हैं इत्यादि सम्पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकते हैं फिर भी साधु कहलाते हैं इत्यादि विशुद्ध विचार करने से तापस के चेहरे पर वैराग्य की कुछ झलक झलकने लगी जिसको देख कर मुनि ने कहा महात्माजी ! क्या विचार करते हो आत्म कल्याण के लिये मतबन्धन या वेशबन्धन का जरा भी ख्याल नहीं करना चाहिये पर जिस धर्म से आत्मकल्याण होता हो उसको स्वीकार कर उसकी ही आराधना करनी चाहिये कहा भी है कि —

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं । उभयंपि जाणई सोच्चा जं सेयं तं समायरे ॥ १ ॥

इनके अलावा नीति कारों ने धर्म की परीक्षा के लिये भी कहा है ।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन ताप ताडनैः ।
तथैव धर्मो विदुषा परिक्ष्यते श्रुतेन शीलेन तपो दयागुणैः ॥

पुनः महार्थियों ने कहा है कि

कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते । कथं च स्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥१॥
सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते । क्षमयाऽवस्थाप्यते धर्मः क्रोध लोभाद्विनश्यति ॥

इन सब बातों को आप सोच लीजिए फिर जिसमें आपको कल्याण मार्ग दीखता हो उसे ही स्वीकार कर लीजिये ? तापस ने कहा ठीक है मुनिजी ! अब आप कहाँ पधारेंगे ?

मुनि—हमारे आचार्य महाराज जहाँ विराजते हैं हम वहाँ जायगे ।

तापस—क्या मैं भी आपके आचार्य के पास चल सकता हूँ ।

मुनि—अवश्य, आप बड़ी खुशी से चल सकते हैं । चलिये मेरे साथ । तापस अपने साथ १० तापसों जो उस समय उसके पास थे उनको लेकर मुनिजी के साथ चलकर सूरिजी महाराज के पास आया। सूरिजी महाराज ने तापस की भव्य आकृति देख कर उसका यथोचित सत्कार किया और मधुर बचनों से इस प्रकार समझाया कि वह वापिस अपने गुरु के पास भी नहीं जासका किन्तु सूरिजी महाराज के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार होगया । सूरिजी ने उन ११ तापसों को दीक्षा देदी और मुख्य तापस का नाम मुनि शान्तिमूर्ति रख दिया । मुनि शांतिमूर्ति आदि ज्यों २ जैनधर्म की क्रिया और ज्ञान करने लगा त्यों २ उन सबको बड़ा भारी आनन्द आने लगा । मुनि शांतिमूर्वि पहिले ही लिखा पढ़ा था । फिर उसको पढ़ने में क्या देर लगती थी थोड़े ही समय में उसने जैनसाहित्य का अध्ययन कर लिया । मुनि शांतिमूर्ति जैसा लिखा पढ़ा विद्वान था वैसा ही वह वीर भी था उसने सम्यक् ज्ञान पाकर मिथ्यान्धकार को समूल नष्ट करने का निश्चय कर लिया और इसके लिये भरसक प्रयत्न भी किया जिसमें आपश्री को सफलता भी काफी मिली । तत्पश्चात् सूरिजी महाराज अपने शिष्यों एवं शांतिमूर्ति के साथ विहार करते हुए पुनीत तीर्थ श्री सिद्धगिरिजी पधारे । वहां की यात्रा कर शांतिमूर्ति तो आनन्दमय हो गया ।

तदनन्तर सूरिजी महाराज अनेक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया । सौराष्ट्र, लाट, कच्छ, सिन्ध, पंजाब तो आपके विहार के क्षेत्र ही थे । आपके पूर्वजो ने इन प्रान्तों में विहार कर महाजनसंघ-उपकेशवंश की खूब वृद्धि की थी तो आप ही कब पीछे रहने वाले थे । आपने भी इन प्रान्तों में विहार कर कई मांस भक्षियों को सदुपदेश देकर जैनधर्म की राह पर लगाये । कई मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर श्रमणसंघ में वृद्धि की । कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर तथा कई ग्रंथों का निर्माण कर जैनधर्म को चिरस्थायी बनाया । कई बार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकलवा कर भावुकों को यात्रा का लाभ दिया । कई वादियों के साथ राजसभाओं में शास्त्रार्थ कर जैनधर्म का झंडा फहराया इत्यादि आपने अपने दीर्घ समय अर्थात ३० वर्ष के शासन में जैनधर्म की कीमती सेवा बजाई जिसका पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने यहां पर संक्षिप्त से नाम मात्र का ही उल्लेख किया है कि आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक महान युगप्रवर्तक आचार्य हुये हैं । आप अपनी अन्तिम अवस्था के समय मरुधर में विहार करते हुये माडव्यपुर पधारे और अन्तिम चतुर्मास भी वहीं

किया था वहां आपना आयुष्य नजदीक जानकर मुनि शांतिसागर को सूरिमंत्र की आराधना करवा कर देवी सहायिका की सम्मति से तथा श्रेष्ठि गोत्रीय शाह पारस के महामहोत्सवपूर्वक मुनि शांतिसागर को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया था। पश्चात आप आलोचना एवं सलेखना करते हुये १९ दिनों के अनशनव्रत पूर्वक समाधि के साथ नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। देवी सहायिका द्वारा श्रीसंघ को ज्ञात हुआ कि आप पांचवां स्वर्ग मे पधारे और महाविदेह मे एक भव कर मोक्ष पधारेंगे। ऐसे जैनधर्म का उद्योत करने वाले सूरिजी के चरण कमलों में कोटि कोटि वन्दन हो।

आचार्यदेव के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षा

१—वीरपुर के श्रेष्टिगो० शाहा राजडा ने सूरि० दीक्षा०
२—उज्जैन के भूरिगो० ,, काना ने ,, ,,
३—दसपुर के भाद्रगो० ,, शाखला ने ,, ,,
४—चंदेरी के मल्लगो० ,, सुरजण ने ,, ,,
५—विराटपुर के चरडगो० ,, राणा ने ,, ,,
६—हमीरपुर के ब्राह्मण ,, शंकरादि ७ ने ,, ,,
७—माधुपुर के रावबीर ,, गोकल ने ,, ,,
८—वीरमपुर के आदित्य० शाह रावल ने ,, ,,
९—पुलाइ के कुमटगो० ,, मुजल ने ,, ,,
१०—फेफावती के करणाटगो० ,, भारत ने ,, ,,
११—चेनपुरा के बलाहगो० ,, धन्ना ने ,, ,,
१२—वल्लभी के प्राग्वटवंशी ,, कुंभा ने ,, ,,
१३—भवानीपुर के श्रीमालवंशी ,, कल्हण ने ,, ,,
१४—चन्द्रावती के तप्तभट्टगो० ,, संगण ने ,, ,,
१५—कोरंटपुर के बाप्पनागगो० ,, सारंग ने ,, ,,
१६—पाल्हिका के श्रेष्टिगो० ,, भालु ने ,, ,,
१७—सोनापुर के सुचंतिगो० ,, समरा ने ,, ,,
१८—भोजपुर के करणाटगो० ,, समरथ ने ,, ,,
१९—कुंविनगरी के वीरहटगो० ,, मेघा ने ,, .
२०—हापड़ के कुलभद्रगो० ,, देवा ने ,, ,,
२१—हुनपुर के शंखगो० ,, दसरथ ने ,, ,,
२२—दुर्दपुर के नागवंशी ,, पुना ने ,, ,,
२३—आनंदपुर के श्रेष्टिगो० , जवल ने ,, ,,
२४—आसावरी के सुंचंतिगो० ,, गोगड़ा ने ,, ,,
२५—[illegible]पुर के प्राग्वटवंशी ,, [illegible] ने ,, ,,

२६—नालपुर के प्राग्वटवंशी ,, मुलहा ने ,, ,,
२७—चुंदडी के चिंचटगौ० ,, भूजार ने ,, ,,

पाठक सोच सकते हैं कि वह जमाना कैसा लघुकर्मियों का था कि थोड़ा सा उपदेश लगता कि चट से दीक्षा लेने को तैयार हो जाते थे। और इस प्रकार दीक्षा लेने से ही साधुओं की बहुल्यता थी प्रत्येक प्रान्त में साधुओ का विहार होता था। और करोड़ों की संख्या वाले समुदाय में इस प्रकार दीक्षा का होना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी।

आचार्यश्री के शासन में तीर्थों के संघादि सद्कार्य

१—जावलीपुर	से	वाप्पनाग गौत्रीय	शाह	पुनड़	ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला	
२—फलवृद्धि	से	भूरिगौ०	,,	सरवाण ने	,,	,,
३—ईडर नगर	से	वीरहटगौ०	,,	सांगण ने	,,	,,
४—नारणपुर	से	श्रेष्टिगौ०	,,	हडमल ने	,,	,,
५—नागपुर	से	अदित्य० गौ०	,,	आशा ने	,,	,,
६—मंगलपुर	से	श्रेष्टिगौ०	,,	मुकुन्द ने	,,	,,
७—रत्नपुर	से	कुलभद्रगौ०	,,	पुनड़ ने	,,	,,
८—गुड़नगर	से	राववीर	,,	चुड़ा ने	,,	,,
९—देवपट्टन	से	मल्लगौ०	,,	केसा ने	,,	,,
१०—डीसांणी	से	चरडगौ०	,,	भीखा ने	,,	,,
११—दशपुर	से	श्रेष्टिगौ०	,,	डुगर ने	,,	,,
१२—चंदेरी	से	सुघड़गौ०	,,	भैसा ने	,,	,,
१३—पोतनपुर	से	डिडुगौ०	,,	मलुक ने	,,	,,
१४—रानीपुर	से	करणाट०	,,	मेकरण ने	,,	,,
१५—रावदुर्ग	से	तप्तभट्ट०	,,	सुंमण ने	,,	,,
१६—लोद्रवापट्टन	से	बापनाग०	,,	लाला ने	,,	,,
१७—शाकम्भरी	से	सुचंति०	,,	नाथु ने	,,	,,
१८—मुग्धपुर	का	श्रीमालवंशी	,,	गंगा युद्ध में काम आये, उसकी स्त्री सती हुई,		
१९—भवानीपुर	का	प्राग्वटवंशी	,,	पाल्हा	,,	,,
२०—अर्गला	का	कनोजिया०	,,	ठाकुरसी	,,	,,
२१—दन्तिपुर	का	ठिडुगौ०	,,	धींगो	,,	,,
२२—पटकुंप	का	वाप्प नाग०	,,	पासड़	,,	,,
२३—लाडपुरा	का	श्रेष्टिगौ०	,,	आम्रदेव	,,	,,

तीर्थों के संघ निकाल कर यात्रा करना और भावुकों को यात्रा करवाना यह साधारण कार्य नहीं पर पुन्यानुबन्धी पुन्य एवं तीर्थंकर नाम कर्मोंपार्ज्जन का मुख्य कारण है यही कारण था कि उस जमाना में

कम से कम एक बार संघ को अपने घर पर बुलाकर उनका सत्कार करना प्रत्येक व्यक्ति अपना खास कर्तव्य ही समझते थे और अपने पास साधन होने पर हरेक महानुभाव संघ निकालकर तीर्थयात्रा करते करवाते थे। यहां पर तो थोड़े से नाम लिखे हैं कि उन महानुभावो का अनुमोदन करने से ही कर्मों की निर्ज्जरा होगी। साथ में थोड़े से जैनवीरो और वीरांगणाओ के भी नाम लिख दिये हैं कि जैन क्षत्री अपनी वीरता से देश समाज एवं धर्म की किस प्रकार रक्षा करते थे:—

आचार्यदेव के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ

१—आसलपुर	के	मल्लगौ०	शाह	पादा ने	भ० महावीर के	म० प्र०
२—आभापुरी	के	श्रेष्ठिगौ०	,,	भोजदेव ने	,,	,,
३—धंधाणी	के	सुघड़गौ०	,,	नागदेव ने	,,	,,
४—जैनपुर	के	बाप्पनागगौ०	,,	नारायण ने	पार्श्व०	,,
५—आमेर	के	लघुश्रेष्ठिगौ०	,,	इन्द्रा ने	,,	,,
६—मथुरा	के	चरड़गौ०	,,	अनड़ ने	,,	,,
७—चित्रकोट	के	अदित्यनाग०	,,	लाड़ण ने	सीमंधर०	,,
८—मधिमा	के	सुचंतिगौ०	,,	लुणा ने	आदीश्वर	,,
९—ऊकारपुर	के	कुलभद्रगौ०	,,	नंगदेव ने	पार्श्व०	,,
१०—पोतनपुर	के	चिचटगौ०	,,	लाखण ने	महावीर	,,
११—देवपट्टन	के	मोरक्षगौ०	,,	विजल ने	,,	,,
१२—दसपुर	के	श्रेष्ठिगौ०	,,	लोला ने	,,	,,
१३—चंदेरी	के	डिड्डगौ०	,,	निंबा ने	,,	,,
१४—गुडोली	के	करणाटगौ०	,,	पर्वत ने	शान्ति	,,
१५—मुलेट	के	लघुश्रेष्ठिगौ०	,,	दाप्पा ने	,,	,,
१६—रोहड़ा	के	डिड्डगौ०	,,	भांभण ने	विमल०	,,
१७—कुंकुमपुर	के	भाद्रगौ०	,,	रोड़ा ने	महावीर	,,
१८—काच्छली	के	भूरिगौ०	,,	कल्हण ने	,,	,,
१९—जैनपुर	के	सुवर्णकार	,,	खेता ने	,,	,,
२०—जैतलकोट	के	ब्राह्मण	,,	देदा ने	,,	,,
२१—कीराटकुंप	के	प्राग्वटवंशी	,,	कानड़ ने	पार्श्व०	,,
२२—नदकुलपट्टन	के	प्राग्वटवंशी	,,	खीवसी ने	,,	,,
२३—वीरपल्ली	के	श्रीश्रीमाल	,,	चचरा ने	पद्मप्रभु	,,
२४—मारोटकोट	के	श्रीमालवंशी	,,	गधा ने	शान्ति०	,,
२५—पादलिप्तपुर	के	प्राग्वटवंशी	,,	करमण ने	,,	,,
२६—भिन्नमाल	के	बलाहगौ०	,,	[illegible] ने	महावीर	,,

२७—हटोड़ी के श्रेष्टिगो० ,, वीरदेव ने ,, ,,
२८—कुंतिनगरीके प्राग्वटवंशी ,, वोहरा ने ,, ,,

अहा-हा ! उस जमाना में जैन श्रीसंघ की मन्दिर मूर्तियों पर कैसी श्रद्धा थी कि प्रत्येक जैन के घर में घर देरासर तो थे ही पर वे नगर मन्दिर बनाकर अपनी लक्ष्मी का किस प्रकार सद् उपयोग करते थे ? यही कारण था कि तक्षशिला में ५०० मन्दिर थे । कुन्तीनगरी में ३०० चन्द्रावती में ३०० मथुरा में ३०० मन्दिर ७८० स्तूम्भः शौर्यपुर, राजगृह, चम्पा, उपकेशपुर नागपुर भिन्नमाल पद्मावती हंसावली पादलिप्तपुर वगैरह बड़े-बड़े नगरों में सेकड़ों मन्दिर थे इतने ही प्रमाण में मन्दिरो के सेवा पूजा करने वाले जैन श्रावक वसते थे इतना ही क्यों पर जैनवसति वाला छोटा से छोटा ग्राम में भी जैन मन्दिर अवश्य होता था—और जैन मन्दिर होने से गृहस्थों के पुन्य बढ़ता था कारणमन्दिर के निमित कारण से गृहस्थों के घर से शुभ भावना से कुछ न कुछ द्रव्य शुभक्षेत्र में लगही जाता था यही कारण था कि वे लोग धन धान पुत्र कलित्र और इज्जत, मान प्रतिष्टा से सदैव समृद्धशाली रहते थे । कहा भी है कि कुओं में पुष्कल पानी होता है तव गृहस्थों के घरों में भी खुब गहेरा पानी रहता है इसी प्रकार जिनके पूज्य ईष्टदेव के मन्दिर में खूब रंगराग महोत्सव रहता है तव उनके भक्तों के घरोंमें भी अच्छी तरह से रंगराग हर्ष आनन्द मंगल और महोत्सव बना ही रहता है । जब हम पट्टावलियों वंशावलियो वगैरह ग्रन्थ देखते है तो इस बात का पत्ता सहज ही में मिल जाता है कि उस जमाना के जैन लोग सब तरह से सुखी थे । एकेक धार्मिक कार्यों में लाखों रुपये लगादेना तो उनके लिये साधारण कार्य ही था यह सब मन्दिरों की भक्ति का ही सुन्दर एवं मधुर फल था—

तीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर, तपकर सिद्धि पाई थीं ।
नत मस्तक बन गये वादीगण, विजय भेरी बजाई थी ॥
किये ग्रन्थ निर्माण अपूर्व, प्रतिष्ठायें खूब कराई थी ।
अमृत पी कर जिन वाणी का कई एक दीक्षा पाई थी ॥

॥ इति श्री पार्श्वनाथ के ३० वें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरीश्वर महान प्रभाविक आचार्य हुये ॥

वल्लभी नगरी का भंग और रांका जाति की उत्पत्ति

वल्लभी नगरी सौराष्ट्रप्रान्त की प्राचीन राजधानी थी। वल्लभी नगरी के साथ जैनियों का घनिष्ठ सम्बन्ध था, पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय की तहलेटी का स्थान वल्लभी नगरी ही था जैनाचार्यों के चरण कमलों से वल्लभी अनेकवार पवित्र बन चुकी थी एक समय वल्लभी के राजा प्रजा जैन धर्म के उपासक एवं अनुरागी थे। उपकेशगच्छीय आचार्यों का आना जाना एवं चतुर्मास विशेष होते थे, आचार्य सिद्धसूरि ने वल्लभी नगरी के राजा शिलादित्य को उपदेश देकर शत्रुंजय का परम भक्त बनाया था और उसने शत्रुञ्जय का उद्धार भी करवाया था तथा पर्युषणादि पर्व दिनो में राजा सकुटुम्ब शत्रुञ्जय पर जाकर अष्टान्हिका महोत्सवादि धर्म कृत्यकर अपना कल्याण साधन किया करता था इत्यादि। यही कारण है कि जैनग्रन्थकारो ने वल्लभी नगरी के लिये बहुत कुछ लिखा है। वल्लभी का इतिहास पढ़ने से पाया जाता है कि भारतीय व्यापारिक केन्द्रों में वल्लभी भी एक है। वहाँ पर बड़े बड़े व्यापारी लोग थोकबन्द व्यापार करते थे। यहाँ का जत्था बन्द माल पाश्चात्य प्रदेशो मे जाता था वहाँ का माल यहाँ आया करता था जिसमें वे लोग पुष्कल द्रव्य पैदास करते थे उन व्यापारियो में विशेष लोग महाजन संघ के ही थे। कई विदेशी लोग यात्रार्थ भारत में आते थे और भारतीय कला कौशल व्यापार वगैरह भारतीय सभ्यता देख देख कर अपने देशों में भी उनका प्रचार किया करते थे उनके यात्रा विवरण की पुस्तको से पाया जाता है कि उस समय वल्लभी नगरी धन धान्य से अच्छी समृद्धशाली नगरी थी।

विक्रम संवत पूर्व कई शताब्दियों से विदेशियों के भारत पर आक्रमण हुआ करते थे और कभी कभी तो धनमाल लूटने के साथ कई नगरों को ध्वंश भी कर डालते थे। इस प्रकार के आक्रमणों से वल्लभी नगरी भी नहीं बच सकी थी इस नगरी को भी विदेशियो ने कई वार नुकशान पहुँचाया था जिसके लिये इतिहासकारो ने वल्लभी का भंग नाम से कई लेख लिखे हैं और उनका समय अलग अलग होने से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वल्लभी पर एक वार ही नहीं पर कई वार आक्रमण हुआ होगा। इतना ही क्यों पर कई उदाहरण तो ऐसे ही मिलते हैं कि भारत में आपसी विद्रोह एवं सत्ता का अन्याय के कारण भारतीयों ने अपने ही देश पर आमन्त्रण करवाने को विदेशियों को लाये थे जैसे उज्जैन के गर्दभिल्ल का अत्याचार के कारण कालकाचार्य ने शकों को लाये थे। तथा कई देवादि के कोप से भी पट्टन दट्टन होगये थे कई आपसी झगड़ों से और कई दुष्कालादि के कारण भी नगर विध्वंश होगये थे जिन्होंके स्मृति चिन्ह आज भी भूगर्भ से उपलब्ध हो रहे हैं जैसे हराप्पा मोहनजाडेरा और नालंदादि के खोद काम में नगर के नगर भूमिसे निकले है। अत आज मैं वल्लभीभंग के विषय में यहाँ पर कुछ लिखूंगा। जो जैन इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थो मे लिखा हैं।

यह तो मै ऊपर लिख आया हूँ कि वल्लभी का भंग एक वार नहीं पर कई वार हुआ है कई विक्रम की चतुर्थ शताब्दी तो कई छटी शताब्दी एवं कई आठवी शताब्दी मे वल्लभी का भंग हुआ लिखते हैं जैसे उपकेशगच्छ पट्टावली में लिखा है कि वल्लभी का भंग वि० सं० ३७५ में हुआ था और यही बात आचार्य मेरुतुंग ने अपनी प्रबन्ध चिंतामणि एवं विचार श्रेणी मे लिखी है। जैसे कि—

"पण सयरी वासाइं तिन्निसया समन्नियाइं अकमिउं ।
विक्कम कालाउतओ वल्लभी भंगो समुप्पन्नौ ॥"

इसी प्रकार आचार्य धन्नेश्वरसूरि ने शत्रुञ्जय महात्म में भी वि० सं० ३७५ में वल्लभी का भंग हुआ लिखा है तथा भारत भ्रमन करने वाला डॉ० टॉड सावने राजपूताने का इतिहास नामक पुस्तक में लिखा है कि वल्लभी सं० २०५ (वि० सं० ५८०) में वल्लभी का भंग हुआ तब कई लोगों का अनुमान है कि वल्लभी का भंग विक्रम की आठवीं शताब्दी मे हुआ होगा। उपरोक्त मान्यता का समय अलग अलग होने पर भी वल्लभी के भंग के समय वहाँ का राजा शिलादित्य का शासन होना सब लेखक मानते हैं इसका कारण यह है कि वल्लभी के शासन कर्त्ताओं में शिलादित्य नाम के बहुत से राजा हो गये हैं अतः उपरोक्त संवत् में शिलादित्य राजा माना गया हो तो कोई विरोध की बात नहीं है।

जैनग्रन्थकारो के लेखानुसार यदि वल्लभी भंग का समय वि० सं० ३७५ का माना जाय तो इस समय के पश्चात् भी वल्लभी में अनेक घटनाए घटी के उल्लेख मिलते हैं जैसे आचार्य जिनानन्द का वल्लभी में ठहरना दुर्लभादेवी और उनके जिनयश, यक्ष, और मल्ल एवं तीन पुत्रों को दीक्षा देना। आचार्य मल्लवादी ने बोधो को पराजय करना तथा श्रीदेवऋद्धिगणि क्षमाश्रमण ने वल्लभी में जैनागमो को पुस्तकारूढ़ करना और उपकेशगच्छाचार्यों का वल्लभी में बार-बार जाना आना एवं चतुर्मास करना और अनेक भावुकों को दीक्षा देना इत्यादि वल्लभी के आस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं अतः इस समय के बाद वल्लभी का भंग हुआ मानना चाहिये ?

उपरोक्त सवाल वि० सं० ३७५ में वल्लभी का भंग मानने में कुच्छ भी बाधा नहीं कर सकता है कारण वल्लभी का भंग होने से यह तो कदापि नहीं समझा जा सकता है कि वल्लभी के मकानादि तमाम इमारतें ही नष्ट हो गई थी भंग का मतलब तो इतना ही है कि म्लेच्छ लोगों ने वल्लभी पर आक्रमण कर वहां का धन माल लूटा एवं वहाँ का राजा भाग गया। बाद फिर से वल्लभी को आबाद करदी और वह आज भी विद्यमान है जो 'वला' के नाम से प्रसिद्ध है। जैसे उज्जैन तक्षशिला को विदेशियों ने उच्छेदकर दिया था और वे पुनः आबाद हुए इसी प्रकार वल्लभी का भंग होने के बाद पुनः वहाँ पर जैनों का आगमन एवं जैनागम पुस्तकारूढ़ हुआ हो वह सर्वथा संभव हो सकता है अतः ऊपर दिये हुए जैन ग्रन्थकारों के प्रमाण से वल्लभी नगरी का सबसे पहिला भंग वि० सं० ३७५ में होना युक्तियुक्त ही समझना चाहिये।

वल्लभी नगरी का भंग किस कारण से हुआ जिसके लिये यों तो प्रबन्ध चिन्तामणि एवं शत्रुञ्जय महात्म में सूचित ने लिखा है पर उपकेशगच्छ पट्टावली में इस घटना को कुच्छ विस्तार से लिखी है अतः पाठकों की जानकारी के लिये उस घटना को यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत करदी जाती है।

पाल्हिका नगरी (पाली) में उपकेशवंशीय बलाह गौत्र के काकु और पातक नामके दो सहोदर बसते थे वे साधारणस्थिति के गृहस्थ होने पर भी बड़े ही धर्मीष्ठ थे एक समय उसी पाल्हिका नगरी से बाप्पनाग गौत्रीय शाह लुणा ने श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रार्थ विराट्संघ निकाला जिसमें काकु और पतक सकुटम्ब यात्रा करने के लिये उस संघमें शामिल हो गये जब संघ यात्रा कर वापिस लौट रहा था तो वल्लभी नगरी के कई उपकेशवंशी लोगों ने काकु पातक को धर्मीष्ट जानकर वहाँ रखलिये। और आर्थिक सहायता

ही कि जिससे वे दोनों भाई वल्लभी में रहकर व्यापार करने लगगये उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा करली थी कि प्रत्येक मास की पूर्णिमा के दिन तीर्थ श्री शत्रुँजय की यात्रा करनी और उस प्रतिज्ञा को अखण्ड रुपसे पालन भी किया करते थे। इस प्रकार धर्म क्रिया करने से उनके अशुभ एवं अन्तराय कर्म का क्षय होकर शुभकर्मो का उदय होने लगा। कहाँ है कि नर का नसिव किसने देखा हैं। एक ही भवमे मनुष्य अनेक अवस्थाओं को देख लेता है। काकुऔर पातक पर लक्ष्मी देवी की सैने सैने कृपा होरही थी कि वे खूब धनाल्य बनगये उन्होंने अपनी पूर्व स्थिति को याद कर न्यायोपार्जित द्रव्य से वल्लभी में एक पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और भी कई शुभकार्यों मे लक्ष्मी का सदुपयोग किया फिर भी लक्ष्मी तो बढ़ती ही गई काकुपातक के जैसे लक्ष्मी वढ़ती थी वैसे परिवार भी बढ़ता गया। काकु के पुत्रों में एकमल्ल नाम का पुत्र था तथा मल्लके पुत्र थोभण और थोभण के रांका और वांका नाम के पुत्र हुए परम्परा से चली आई लक्ष्मी रांका वांका से रूष्ठमान हो उनसे किनारा कर लिया अतः रांका वांका फिर से साधारण स्थितिमे आ पहुँचे शायद लक्ष्मी ने उनकी परीक्षा करने को ही कुच्छ दिनों के लिये मुशाफरी करने कों चली गई होगी। र रांका वांकाने इस ओर इतना लक्ष नहीं दिया—

एक योगीश्वर यात्रार्थ भ्रमन करता हुआ वल्लभी में आ पहुँचा उसके पास एक सुवर्ण सिद्धिरस की तुंबी थी उनकी रक्षण करने में वह कुच्छ दुःखी होगया, ठीक है योगियों के और इस झंझाल के आपस में वन नहीं सकता है फिर भी उसकी सर्वथा ममत्व नहीं छुट सकी अतः वह चाहता था कि मैं इस तुंबी को कही इनामत रख जाउ कि वापिस लौटने के समय ले जाऊंगा, भाग्यवसात् रांकां से उसकी भेट हुई और तुंबी उसको इस शर्तपर देदी कि मै वापिस आता ले जाउगा। रांकाने उस तुंबी को लेजाकर अपने रसोई बनाने का घास से छाया हुआ मकान की छातमें एक वांस से बान्ध कर लटकादी योगीश्वर तो चला गया बाद किसी कारण उस तुंबी से एक बुन्द रसोई के तपा हुआ तवा पर गिर गई जिससे वह लोहा का तवा सुवर्ण बनगया। रांका गया था शत्रुँजय यात्रा के लिये। वांका था घर पर उसने लोहा का तवा को सुवर्ण का हुआ देख उस तुंबी कों हजम करने का उपाय सोचकर अपने मकान कों आग लगादी और रूदन करने लग गया अज्ञात लोगों ने उसको असास्वन दिया और वांकाने दूसरा घर बनाकर उसमे निवास कर दिया और लोहाका सुवर्ण बनाना शुरु कर दिया जब रांका घर पर आया और वांका की सब हकीकत सुनी तो उसने बड़ा भारी पश्चाताप कर वांका कों बड़ा भारी उपालम्भ दिया कि ऐसा जघन्यकार्य करना तुमको योग्य नहीं था अब भी इस तुंबी को इनामत रख दो जब योगीश्वर आवे तो उसको संभला देना पर न आया योगीश्वर न संभला तुंबी क्योंकि तुंबी तो रांका वाका के तकदीर मे ही लिखी हुई थी बस उस तुंबी से रांका वांकाने पुष्कल सुवर्ण बनाकर वे बड़े भारी धनकुबेर ही बनगये। न जाने इनयुगल भ्राताओं ने किस भाव में ऐसे शुभ कर्मोपार्जन किया होगे। कि उस जमा वंदी को इस भाव में इस प्रकार वसुल किया। अस्तु।

शाहरांका के एक चंपा नामकी पुत्री थी रांकाने उसके बाल समारने के लिये किसी विदेशी से एक जड़िता बहुमूल्य कांगसी खरीद कर चंपा को देदी वह कांगसी क्या भी एक अपूर्व जैवरात का पूंज्या जिसको भारत की एक आदर्श सभ्यता एवंशिल्प कही जा सकती है चंपाके वह कांगसी एक दूसरा प्राण ही बनाई थी।

एक समय राजा शिलादित्य की कन्या रत्नकुँवरी अपनी सहेलियों को लेकर बगीचा में खेलने के लिये एवं स्नान मज्जन करनेको गई थी चम्पा भी वहाँ आगई जब वे खेल कूद के स्नान किया तो सबने अपने

बाल संमारे इस हालत चम्पा ने भी अपनी कांगसी से बाल समारने लगी और राजकन्याने चमकती हुई कांगसी चम्पा का हाथ में देखी तो उसका मन ललचा गया उसने चम्पा के हाथ से कांगसी लेकर सब सहेलियों को देखाई तो सबने मुक्तकण्ठ से चम्पा की प्रशंसाकी जिसको राजकन्या सहन नहीं करसकी और चम्पा को कहा चम्पा। यह कांगसी मुझे देदे ? चंपा ने कहा बाईजी मेरे यह एकही कांगसी है अतः इसको तो मैं दे नहीं सकती हु यदि आप फरमावे तो मेरे पिता से कह कर आपके लिये भी एक कांगसी मंगा दूँगी। राजकन्या ने कहा कि चंपा यह तेरी कांगसी तो मुझे देदे तुँ दूसरी मंगा लेना जिसका खर्चा लगेगा वह मैं दीज़ा दूँगी परन्तु चम्पा भी तो महाजन की लड़की थी वह अपनी कांगसी कब देने वाली थी। राजकन्या के हाथ से कांगसी खीच ली और वह वहाँ से भाग कर अपने मकान पर आगई इससे राजकन्या को वडा भारी गुस्सा आया कुच्छ भी हो पर वह थी राज की कन्या। अपने महल में आकर अपनी माता को कहा कि चंपा के पास कांगसी है वह मुझे दीलादे वरन मैं अन्न जल नहीं लुंगी। बालकों का यही तो हाल होता है जिसमें भी बाल हट, स्त्री हट, और राजहट एवंतीन हट एक स्थान मिल गया। रानीने कन्या को बहुत समझाया पर उसने एक भी नहीं सुनी इस हालत में रानी राजा को कहा और राजा ने रांका कों बुला कर कहाँ कि तुमारी पुत्री के पास कांगसी है वह ला दो और उसका मूल्य हो वह ले जाओं। रांकाने सोचा कि 'समुद्र में रहना और मगरमच्छसे वैर करना' ठीक नहीं है वह चल कर चंपा के पास आया और उससे कांगसी मांगी परंतु एक तो चंपा को कांगसी प्यारी थी दूसरा था बालभाव जो राजकन्या के साथ हटकर के आई थी तीसरा उस कांगसी के कारण भविष्य में एक बड़ा भारी अनर्थ होने वाला भी था इस भविव्यता को कौन मिटा सकता था, चम्पा ने हठ पकड़ लिया कि मैं मर जाऊं पर कांगसी नहीं दूंगी। लाचार होकर रांका राजा के पास जाकर कहा हजूर मैं कासीद को भेजकर आपको कांगसी शीघ्र ही मंगा दूंगा। राजा ने कहा रांका कांगसी की कोई बात नहीं है पर मेरी कन्या ने हट पकड़ रखा है अतः तू कांगसी जल्दी से ला दे। रांका ने कहा गरीपरवर ! यही हाल मेरा हो रहा है चम्पा कहती है कि मैं मरजाऊं पर कांगसी नहीं दूं अब आपही बतलाइये कि इसके लिये मैं क्या करूं। राजा ने कहा तुम कुछ भी करो कांगसी तुमको देनी पड़ेगी। रांका ने कहा ठीक है मैं फिर जाता हूँ। बस रांका ने अपनी पुत्री को खूब कहा पर चम्पा टस की मस तक भी नहीं हुई। रांका अपनी दुकान पर चला गया। राजकन्या ने शाम तक अन्न जल नहीं लिया अतः राजा ने अपने आदमियों को रांका के वहां भेजा और कहा कि ठीक तरह से दे तो कांगसी ले आना वरन बल जवरी से कांगसी ले आना। राजा के आदमी आकर रांका को बहुत कहा जवाब में रांका ने कहा कि जैसे राजा को अपनी पुत्री प्यारी है वैसे मुझे भी मेरी पुत्री प्यारी है यदि राजा इस प्रकार का अन्याय करेगा तो इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा ? आखिर राजा के आदमियों ने चम्पा से जबरन कांगसी छीन कर ले गये। चम्पा खूब जोर २ से रोई पर सत्ता के साम्ने उसका क्या चलने का था चम्पा का दुःख रांका से देखा नहीं गया वह था अपार लक्ष्मी का धनी उसने चम्पा को धैर्य दिला कर अपने घर से निकल गया और म्लेच्छों के देश में जाकर उनको एक करो सोनइयें देने की शर्त पर वल्लभी का भंगा करवाने का निश्चय किया पर शाह रांका ने कहा कि दूसरा सब माल आपका है पर एक मेरी कांगसी मुझे देनी होगी म्लेच्छों ने स्वीकार कर लिया और वे असंख्य सेना लेकर वहां से रवाना हो गये क्रमशः वल्लभी पर धावा बोल दिया उन्होंने वल्लभी को खूब लूटा तथा राजमहलों में जाकर राजकन्या से कांगसी छीन कर शाह रांका को दे दी और रांका ने उस कांगसी।

लेकर चम्पा को दे दी जब जाकर चम्पा को संतोष आया। इस प्रकार एक मामूली बात पर नगर एवं नागरिकों को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ा और विदेशियो को सहज ही में मौका हाथ लग गया पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है इस प्रकार स्वर्ग सदृश वल्लभीपुरी का भंग हुआ—इस घटना का समय वि० सं० ३७५ का है जो उपरोक्त प्रमाणों से साबित होता है उस दिन से शाह रांका की संतान रांका, और बांका की संतान बांका कहलाई। एवं ये दोनो जातिया आज विद्यमान हैं जो उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा स्थापित महाजन संघ के अठारह गोत्रो में चतुर्थ बलाहा गोत्र की शाखा रूप है उस रांका जाति के संतान परम्परा में एक धवल शाह नामक प्रसिद्ध पुरुष हुआ था वि० सं० ८०२ में आचार्य शील-गुणसूरि की सहायता से वनराज चावडा ने गुजरात में अणहिल्लपट्टन बसाई थी उस समय वल्लभी से शाह धवल को सन्मानपूर्वक बुला कर पाटण का नगर सेठ बनाया था उस दिन से शाह धवल की संतान सेठ नाम से मशहूर हुए जो अद्यावधि विद्यमान हैं जैतारन पीपाड़ वगैरह में जो रांका हैं वे सेठ नाम से बतलाये जाते हैं अर्थात बलाह गोत्र राका शाखा और सेठ विरूद से सर्वत्र प्रख्यात है इन गौत्र जाति और विरूद के दान वीर नररत्नो ने जैनधर्म एवं जनोपयोगी कई चोखे और अनोखे कार्य करके अपनी उज्वल कीर्ति एवं अमरयश को इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्ण के अक्षरों से अंकित करवा दिये थे जिसके कई उदाहरण तो हम पूर्व के प्रकरणों में लिख आये हैं और शेष आगे के प्रकरणो मे लिखेंगे। पर दुःख है कि कई लोग इतिहास के अनभिज्ञ और गच्छ कदागृह के कारण इस प्रकार प्राचीन इतिहास का खून कर प्राचीन जातियों कोन्यूतन बतला कर इन जातियो के पूर्वजों के सेकड़ों वर्षोंके किये हुए देश समाज एवं धार्मिक कार्यों के गौरव को मिट्टी में मिलाने की कोशिश करते हैं इतना ही क्यों पर कई इस जाति के अनभिज्ञ लोग अपनी जाति की उत्पत्ति न जानने के कारण वे स्वयं अपने को अर्वाचीन मान लेते हैं पर वे विचारे क्या करें उनके संस्कार ही ऐसे जम गये कि स्पष्ट इतिहास मिलने पर भी उन मिथ्या संस्कारों को हटाने में वे इतने निर्बल एवं कमजोर हैं कि उनके पूर्वजों को मांस मदिरा एवं व्यभिचार जैसे दुर्व्यसन छुड़ाने वाले परमोपकारी महात्माओं का नाम लेते भी शरमाते हैं इतना ही क्यो पर कई तो इतने अज्ञानी हैं कि उस उपकार का बदला अपकार से देते हैं उन पर दया भाव लाने के अलावा हम और क्या कह सकते हैं यही कारण है कि आज उन्हों की यह दशा हो रही है कि जो कृतघ्नी लोगो की होती या होनी चाहिये—

प्यारे ! बलाहगौत्री रांका जाति एवं सेठ विरूद वाले भाइयो अब भी आपके लिये समय है कि आप अपने प्राचीन इतिहास को पढ़कर इन महान् उपकारी पूज्याचार्यदेव का उपकार को याद करो और उन्होंने जो आपके पूर्वजों को शुरू से रास्ता बतलाया था उस पर श्रद्धा विश्वास रख कर चलो चलो कि फिर आपके लिये वे दिन आवें कि आप सब प्रकार से सुख शांति में आत्म कल्याण कर सदैव के लिये सुखी बनो इत्यादि।

३१—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि (षष्टम्)

तातेडान्वय रत्नतुल्य महितः सूरिस्तु रत्नप्रभः ।
यस्यसीच्चरितं विभाव्यममलं यल्लौकिकं पूजितम् ॥
ज्ञातो यः परमः सुदर्शन गणे रत्नप्रभाख्यान च ।
षष्टे नैव समः स वादिजयने गोत्रा तलेऽभून् महान् ॥

आचार्य रत्नप्रभसूरिश्वरजी महाराज एक अद्वितीय प्रतिभाशाली धर्म प्रचारक आचार्य थे आप षष्टम रत्नप्रभसूरि षट्दर्शक के परम ज्ञाता थे जैसे चक्रवर्ति छः खण्ड में वैरी एवं वादियों का अन्त कर एक छत्र से अपना राज स्थापन करते हैं ! इसी प्रकार षष्टम रत्नप्रभसूरि वादियों को नत मस्तक कर सर्वत्र अपना शासन स्थापित किया था इतना ही क्यो पर आपका नाम सुनने मात्र से ही वादी दूर दूर भाग छुटते थे यही आपकी विजय थी आपश्री ने अपने शासनकाल में जैन धर्म की खूब प्रभावना और उन्नति की थी आपका जीवन परम रहस्यमय था पट्टावल्यादि ग्रन्थो में खूब विस्तार से वर्णन किया है । परन्तु में यहां संक्षिप रूप से पाठकों के सामने रख देता हूँ ।

मरुधर प्रान्त में शंखपुर नाम का एक नगर था जो राजा उत्पलदेव की संतान में राव शङ्ख ने आबाद किया था और वहां पर उस समय राव कानड़देव राज करता था और वह परम्परा से जैन धर्म का परम उपासक था । उसी शंखपुर में यों तो उपकेश वंशीयों बड़े बड़े व्यापारी एवं धनाढ्य लोग वसते हैं । पर उसमें तप्तभट्ट गोत्री शाह धन्ना नाम का साहूकार भी एक था और उनके गृह शृङ्गार धर्म परायणा फेंफों नाम की स्त्री थी शाह धन्ना जैसा धनाढ्य था वैसा बहु कुटम्बी भी था शाह धन्ना के १३ पुत्र थे जिसमें एक भीमदेव नाम का पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली एवं होनहार था । बच्चापन से ही वह अपने मात पिता के साथ मन्दिर उपासरे जाया करता था और साधु मुनियों की सेवा उपासना कर प्रतिक्रमण जीवचारादि नौ तत्व और कर्म सिद्धान्त का ज्ञान भी कर लिया था । संसार की असारता पर भी आप कभी कभी विचार किया करता था और जन्म मरण के दुखों का अनुभव करने से कभी कभी आपको वैराग्य का समागम भी होता था । एक समय आप अपने साथियों के साथ जंगल में जा रहे थे इक्षु रस की चरखियां चारों ओर चल रही थी खेत वाले किसान लोगों ने उन सब को आमन्त्रण किया वोहराजी पधारिये यह इक्षु रस तैयार है कुँवर भीमदेव अपने साथियों के साथ इक्षु रस का पान किया ।

शाम की टाइम होगई वे जंगल से घूम कर वापिस नगर में आ रहे थे कुछ अंधेरा पड़ रहा था भागवशात् रास्ते में एक दीर्घ काय काला सर्प पड़ा था परन्तु वे सब लोग अपनी अपनी बातों में मग्न थे कि किसी को भी सर्प नजर नहीं आया और एक दम सर्प पर किसी का पैर पड़ गया पर सर्प ने किसी को काटा नहीं सब लोग भय भ्रांत हो हो-हा करने लगे । भीमदेव ने सोचा कि यदि यह सर्प किसी को काट खाता तो काल के कबलिय बन खाली हाथ चलना पड़ता जो कि इस प्रकार की उत्तम सामग्री मिलने पर

भी अभी तक मैंने कुछ भी आत्म कल्याण सम्पादन नहीं किया इत्यादि जब भीमदेव अपने घर पर आया तब सब हाल अपने माता पिता को कहा उन्होने बहुत फिक्र किया और कहा आइन्दा से तुम ऐसे समय कभी बाहर नहीं जाना। इत्यादि पर भीम के हृदय मे वैराग्य ने घर बना लिया !

इधर लब्ध प्रतिष्ठित धर्म प्राण आचार्य सिद्धसूरजी भ्रमन करते करते शंखपुर नगर में पधार गये श्रीसंघ ने आपका बड़े ही धाम धूम से नगर प्रवेश कराया। आचार्यश्री ने मंगलाचरण के पश्चात् भव भंजवी देशना दी जिसमें बतलाया कि—

"असख्यं जीवियं भापमायए जरोवणीयस्सहु णत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहिं जणे पमत्ते, कन्नू वि हिंसा अजय गहिति ॥ २ ॥"

ससांर की समाम-चिजों तुटने के बाद किसी न किसी तरह से मिला दी जाती है। पर एक आयुष्य ही ऐसी चीज है कि इसके तूटने पर पुनः नही मिलता है। जिस सामग्री के लिए सुरलोक में रहे हुए सुरेन्द्र भी इच्छा करते है वह सामग्री आप लोगों को सहज ही में मिल गई है। अब उसका सदुपयोग करना आपके ही हाथ मे है। यदि कई लोक बाल युवक एवं वृद्ध पना का विचार करते है तो यह निरर्थक है। कारण सब जीव अपने २ कर्म पूर्व जन्म मे ही ले आये है उससे थोड़ा सा भी न्यूनधिक हो नहीं सकता है। कई लोग स्त्री पुत्रादि के मोह की पास मे जकड़े हुए है। उसका रक्षण पोषण में अपना कल्याण भूल जाते हैं पर उनको यह मालुम नही है कि भावान्तर मे जब कर्मोदय होगे उस समय वे लोग जो जिन्हो के लिये में कर्मोपार्जन कर रहा हूँ मेरे दुःख मे भाग लेगा या नहीं ? जैसे कि—

तेणे जहां सधिं मुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पाव कारी ।
एवं पया पेच्चइहंच लोय, कडाण कम्माण नमोक्खअत्थि ॥ २ ॥

एक चोर किसी साहूकार के यहां चोरी करने को गया था उसने भींत फोड़ी पर वह ऐसी तरीय सेकि अष्ट कली फूल की तरह फोड़ी थी पर इतने में घरधणी जाग गया और हाथ में एक रस्सी लेकर दम्पति खड़े हो गये ज्योहि चोर ने पैर अन्दर डाला त्योहि सेठ सेठानी ने रस्सा से खुब जोर से बांध दिया चोर न तो अन्दर आ सका और न बहार ही जा सका जब सुर्योदय होने में थोड़ा समय रहा तो चोर की औरत और माता उसको सोधने के लिये गई सेठ की भीत मे फसा हुआ चोर को देखा अत: सोचा की यदि राज इसको पकड़ लेगा तो अपने सबको दुःख एवं फांसी देगा इसलिये उन्होंने बाहर से उसका शिर खेचां पर अन्दर से सेठ ने छोड़ा नहीं इस हालत में चोर की स्त्री एवं माताने चोर का शिर काट कर अपने वहा ले आयी अहा-हा ससार को धिक्कार !! धीक्कार २ !!! संसार कि जिस स्त्री माता के लिए चोर ने उमर भर चोरियाँ की वे ही माता और स्त्री चोर का शिर काट डाला। जब इस भव में ही इस प्रकार अपने किये कर्म आप ही को भुगतने पड़ते हैं तब परभव का तो कहना ही क्या है ? इत्यादि सूरिजी ने बड़े ही ओजस्वी शब्दो में उपदेश दिया जिसका प्रभाव जनता पर बहुत अच्छा हुआ जिसमें भी कुंवर भीमदेव के लिए तो मानो सीप के मुह मे आसोज का जल पड़ने की भांति अमूल्य मुक्तारत्न ही पैदा हो गया। भीमदेव ने सोचा की आज का व्याख्यान सूरिजी ने खास मेरे लिये ही दिया है और जयध्वनी के साथ सभा विसर्ज्जन हुई।

सब लोग चले जाने पर भी भीमदेव सूरिजी की सेवा में मूर्तिमान बैठा ही रहा सूरिजी ने पूछा तेरा [क्या नाम है :—

भीम—साहिबजी मेरा नाम भीमा है ?

सूरिजी—क्या ध्यान लगा रहा है ?

भीम—आप श्री के व्याख्यान का विचार कर रहा हूँ।

सूरिजी—क्या तुझे संसार से भय आया है ?

भीम—जी हां।

सूरिजी—तो फिर क्या विचार कर रहा है ?

भीम—मैं विचार करता हूँ कि मेरा कल्याण कैसे हो सके ?

सूरिजी—कल्याण का सरल और सीधा रस्ता यह है कि संसार को तिलांजलि दे और दीक्षा लेकर आराधना करे कि जन्म मरण के दुःख का अन्त हो एवं अक्षय सुख प्राप्त हो जाय। बस सबसे बढ़िया यह एक ही रास्ता कल्याण का है।

भीम—पूज्यवर मेरा दिल तो इस बात को बहुत चाहता है पर कुटुम्ब बंधन ऐसा है कि वे अन्तराय डाले बिना नहीं रहते हैं।

सूरिजी—भीम! हम लोग भी अकेले नहीं थे पर हमारे पीछे भी कुटुम्ब वाले थे जब हमारे अन्तरंग के भाव थे तो उसको कौन बदला सके! हमारा यह कहना नहीं है कि कुटुम्ब वालों को लात मार कर अनीति से काम करे। पर कुटम्ब वालों को समझा कर बन सके तो जम्बु कुंवर की भांति उनका भी उद्धार करे। और यह तुम्हारा कर्तव्य भी है।

भीम—पूज्यवर! आपका फरमाना सत्य है बन सकेगा तो मैं अवश्य प्रयत्न करूंगा! वरना मैं मेरे कल्याण के लिये तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपके चरणकमलों में दीक्षा लेकर यथा साध्य आराधना करूंगा।

सूरिजी—जहासुखम पर भीमा घर जाकर प्रतिज्ञा को भूल न जाना।

भीमदेव—नहीं गुरुदेव! प्रतिज्ञा भी कहीं भूली जा सकती है बाद सूरिजी को वंदन कर भीम अपने घर पर आया जिसकी माता पिता राह देख रहे थे। माता ने पूछा कि बेटा व्याख्यान कब का ही समाप्त हो गया तू इतनी देर कहां ठहर गया तुम्हारे बिना सब भोजन किये बिना बैठे हैं ? भीम ने कहा माता मैं आचार्यश्री की सेवा में बैठा था। भीम के वचन सुनते ही माता को कुछ शंका हुई और कहने लगी कि बेटा जब सब लोग चले गये तो एक तेरे ही ऐसा क्या काम था कि इतनी देर वहां ठहर गया ?

भीम—माता बिना काम एक क्षण भर भी कौन ठहरता है। माता को विशेष शंका हुई और उसने कहा ऐसा क्या काम था ?

भीम—माता मैं सूरिजी का व्याख्यान सूना जिसमे सूरिजी से कल्याण का मार्ग पूछा था! बस! माता की धारणा सत्य हो गई उसने कहा बेटा मन्दिर जाकर भगवान की पूजा करो, समायिक प्रतिक्रमण और दान पुन्य करो, गृहस्थों के लिये यही कल्याण का मार्ग है।

बेटा—हां माता यह कल्याण का मार्ग अवश्य है पर मैं कुछ इनमें विशेष मार्ग के लिये पूछा था।

माता—मुझे यह तो बता कि सूरिजी ने तुझे क्या मार्ग बतलाया है ?

बेटा—सूरिजी ने जो मार्ग बतलाया है वह मुझे अच्छा लगा है और मैं उसी रस्ते पर चलने की प्रतिज्ञा भी कर आया हूँ केवल आपकी अनुमती की ही देर है ।

माता—क्या तू पागल तो नहीं हो गया है । साधुओ के तो यह काम है कि लोगो को बहकाना और अपनी जमता बढ़ाना । खबरदार है आइन्दा से साधुओ के पास एकान्त में बैठ कर कभी बात मत करना ले आ जीमलो (भोजन कर लो)

भीम—(अपने मन मे) अहो २ मोह विकार कैसा मोहनीय कर्म है । कि यदि कोई मर जाय तो रो पीट कर बैठ जाते है पर दीक्षा का नाम तक भी सहन नहीं होता है । विशेषता यह है कि धर्म को जानने वाले धर्म की क्रिया करने वालो की यह बात है तो अज्ञ लोगो का तो कहना ही क्या ? पर अपने को तो शांति से काम लेना है । माता के साथ भीमादि सबने भोजन कर लिया बाद भी मां बेटा के खासी चर्चा हुई—वह भी बड़ी गंभीरता पूर्वक—

भीमदेव की वैराग्य की बात सर्वत्र फैल गई । शाम को बहुत से लोग सेठ धन्ना के वहां एकत्र हो गये । कइएको को दुख तो कईएको को मजाक हो रही थी पर भीमदेव वैरागी बनड़ा बना हुआ सबको यथोचित उत्तर दे रहा था और कहता था कि जब मेरे पैरों में सर्प आया था वह काट गया होता और मैं मर गया होता तो आप क्या करते भला । इस समय भी आप समझ लीजिये कि भीमदेव मर गया है मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि मैं इस संसार रूपी कारागृह मे रहना नहीं चाहता हूँ इतना ही क्यों पर मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि यदि आपका मेरे प्रति अनुराग है तो आप भी इसी मार्ग का अनुसरण कर आत्म कल्याण करावे क्योकि ऐसा सुवर्ण अवसर बार २ मिलना मुश्किल है और यह कोई नई बात नहीं है पूर्व जमाने में हजारों महापुरुषो ने इस मार्ग का अवलम्बन कर स्वकल्याण के साथ अनेक आत्माओं का कल्याण किया । आप दूर क्यों जावें आज हजारो मुनि भूमि पर विहार कर रहे हैं वे भी तो पूर्वावस्था में अपने जैसे गृहस्थ ही थे । जब बाल एव कुंवारावस्था में भी विषय भोग छोड़ दीक्षा ली है तो भुक्त भोगियों के लिये तो यह जरूरी बात है अतः जिसको आत्म कल्याण करना हो वह तैयार हो जाय ।

भीमदेव के सारगर्भित एवं आन्तरिक वचन सुनकर सब समझ गये कि अब भीमदेव का घर में रहना मुश्किल है और इनका वैराग्य बनावटी नहीं है पर आत्मिक है ।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा बचता था त्याग वैराग्य और आत्म कल्याण आपका मुख्य ध्येय था जनता पर प्रभाव भी खूब पड़ता था इधर भीमदेव वैरागी बन रहा था और कई लोग उसका अनुकरण करने को भी तैयार हो रहे थे ।

एक समय शाह धन्ना और फेफोदेवी सूरिजी के पास आये और भीमदेव के विषय में कुछ अर्ज की इस पर सूरिजी ने कहा कि भीमदेव के लिये तो मै क्या कह सकता हूँ पर मैं आप से कहता हूँ कि जब आपकी कुक्ष मे उत्पन्न हुआ नवयुवक भीमदेव अपना कल्याण करना चाहता है तो आपको क्यों देरी करनी चाहिये एक दिन मरना तो निश्चय है फिर खाली हाथे जाना यह कहां की समझदारी है, अतः आप मेरी सलाह मानते हो तो बिना विलम्ब दीक्षा लेन को तैयार हो जाइये भीम के माता पिता ने सूरिजी से कुछ भी नहीं कहा और वन्दन कर अपने घर पर आगये और भीम को बुला कर कहा कि क्यों बेटा तेरी क्या इच्छा है तूं अपने माता पिता को इस प्रकार रोते हुए छोड़ देगा क्या तुमको हमारी जरा भी दया नहीं

आती है ? भीम ने कहा नहीं पिताजी आपका तो मेरे पर बहुत उपकार है और मैं जब ही थोड़ा बहुत ऋण अदा कर सकूंगा कि आप दीक्षा ले और मैं आपकी सेवा करू ? माता पिता ने सूरिजी के उपदेश की और लक्ष दौराते हुए कहा अच्छा भीम हम दोनों दीक्षा लेने को तैयार हैं।

बस ! फिर तो कहना ही क्या था नगर में बिजली की तौर खबर फैल गई और सूरिजी ने दीक्षा के लिये दिन माघ शुक्ल १३ का मुकर्रर कर दिया और भी कई १३ पुरुष १८ महिलाए दीक्षा लेने को तैयार होगये शाह धन्ना का जेष्ठ पुत्र रामदेव ने जिन मन्दिरो में अष्टान्हिका महोत्सव या और इस कार्य के लिये जो कुछ करना था वह सब बड़े ही ठाठ से किया और सूरिजी ने ठीक समय पर उन मोक्ष भिलाषियों को भगवती जैन दीक्षा देकर उनका उद्धार किया तथा वीर भीमदेव का नाम मुनि शांतिसागर रख दिया। मुनि शान्तिसागर बड़ा ही त्यागी वैरागी और तपस्वी था ज्ञानाभ्यास की रुची पहले से भी अब तो बिलकुल निर्वृति मिल गई इधर सूरिजी की भी पूर्ण कृपा थी मुनिजी ने स्वल्प समय में ही वर्तमान आगमों के साथ व्याकरण न्याय छन्द तर्क अलंकरादि शास्त्रों का अध्ययन कर लिया आपने निमित्त ज्ञान में भी पूर्ण निपुणता हांसिल करली थी योग विद्या में तो आप इतने निपुण थे कि कई जैन जैनेतर आपकी सेवा में रह कर योगाभ्यास किया करते थे। एक समय आचार्यश्री भूभ्रमन करते हुए सिन्ध प्रान्त की ओर पधारे। उस समय सिन्ध में जैनों की खूब आबादी थी और उपकेशगच्छाचार्यों का अच्छा प्रभाव था सिन्ध के बहुत वीरों ने दीक्षा लेकर वहां भ्रमन भी किया था सूरिजी के पधारने से जनता का उत्साह बढ़ रहा था जहां आप पधारते वहां व्याख्यान का अच्छा ठाठ लग जाता था जैन जैनेत्तर काफी संख्या में सूरिजी का उपदेश सुन अपना अहोभाग्य समझते थे क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी डमरेल नगर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार वहां के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा महामहोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने मंगलाचरण के पश्चात् देशनादी और भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था तथा सूरिजी की प्रशंसा नगर भर में फैल रही थी वहा का राव चणोट भी आचार्य श्री का उपदेश सुनकर मांस मदिरा का त्याग कर दिया था इतना ही क्यों पर उसने अपने राज में जीव हिंसा बन्ध करवादी थी। परन्तु कहा है कि खल मनुष्य दूसरों की प्रशंसा को सुन नहीं सकता हैं अतः वहां पर एक सन्यासी आया हुआ था और वह कुछ रसायन विद्या भी जानता था उसने जनता को कुछ लोभ देकर कई लोगों को अपने वश में कर जैन धर्म और आचार्य श्री की निन्दा करने लगा कि जैन धर्म नास्तिक धर्म है राजपूतों को मांस मदिरा छोड़ा कर उनके शौर्य पर कुठार घात कर रहे है इनका आचार विचार इतना भद्दा है कि कभी स्नान भी नहीं करते हैं इत्यादि।

एक समय मुनि शान्तिसागर कई मुनियों के साथ जंगल (थडिले) जाकर वापिस आरहा तो रास्ता मे सन्यासी मिल गया वह भी अपनी जमात के साथ था सन्यासी ने मुनि शान्तिसागर को सम्बोधन कर कहा-अरे सेवड़ाओं ! तुम जनता को मिथ्या उपदेश देकर नास्तिक क्यों बनाते हो बणियों को तो ठीक परन्तु क्षत्रियों को मांस एवं शिकार छोड़ा कर कायर क्यों बनाते हो और तुम बिना स्नान अर्थात शुद्धि क्रिया बिन परमात्मा का भजन कैसे करते हो ?

मुनि शान्तिसागर ने कहां प्रिय महात्माजी ! आप नास्तिक आस्तिक किसको कहते हो पहला इसका अभ्यास करो ? जैनधर्म नास्तिक नहीं पर कट्टर आस्तिक धर्म है जैन ईश्वर को आत्मा को सृष्टि को मानता

है स्वर्ग नरक को मानता हैं सुकृत के शुभ और दुकृत के अशुभ फल अर्थात पुन्य पाप को मानता है ऐसा पवित्र धर्म को नास्तिक कहना अनभिज्ञाता नहीं तो और क्या हैं ? महात्माजी ! क्षत्रियों का धर्म शिकार करना एवं मांस खाने का नहीं है किन्तु चराचर जीवों की रक्षा करने का है कोई भी धर्म विना अपराध विचारे मुक् जीवो को मारना एवं मांस खाने की आज्ञा नहीं देता हैं बल्कि 'अहिंसा परमोधर्म' की उद्घोषणा करता है। अफसोस है कि आप धर्म के नेता होते हुए भी शिकार करना एवं मांस भक्षण की हिमायत करते हो ? महात्माजी ! साधु सन्यासी तप जप एवं ब्रह्मचर्य से सदैव पवित्र रहते है उनको स्नान करने की आवश्यकता नहीं है और गृहस्थ लोगों को पट्कर्म में पहला देवपूजा है वह स्नान करके ही की जाती है और यह गृहस्थो का आचार भी है इसके लिये कोई इन्कार भी नहीं करते है फिर समझ मे नही आता है कि आप जैसे संसार त्यागी व्यर्थ ही जनता मे भ्रम क्यो फैलाते हो। इत्यादि मधुर वचनों से इस प्रकार उत्तर दिया कि सन्यासीजी इस विषय में वापिस कुछ भी नही बोल सके। फिर सन्यासीजी ने कहां कि आपलोग केवल भूखे मरना जानते हो पर योग विद्या नही जानते है जो आत्मकल्याण एवं मोक्ष का खास साधन है।

मुनि ने कहा महात्माजी ! योग विद्या का मूल स्थान ही जैन धर्म है दूसरो ने जो अभ्यास किया है वह जैनों से ही किया है कइ लोग केवल हट योग को ही योग मान रखा है पर जैनों में हटयोग की बजाय सहज समाधि योग को अधिक महत्त्व दिया हैं। महात्माजी ! योग साधना के पहला कुछ आत्म ज्ञान करना चाहिये कि योग की सफलता हो वरन् हटयोग केवल काया क्लेश ही समझा जाता है इत्यादि मुनिजी की मधुरता का सन्यासीजी की भद्र आत्मा पर खुब ही प्रभाव पड़ा।

सन्यासीजी के हृदय में जो जैनधर्म प्रति द्वेष था वह रफूचक्र होगया और आत्मज्ञान समझने की जिज्ञासा पैदा होगई अतः आपने पूछा कि मुनिजी आप आत्मज्ञान किसको कहते हो और उसका क्या स्वरूप है यदि आपको समय हो तो समझाइये मैं इस बात को समझना चाहता हूँ।

मुनि शान्तिसागर ने कहा सन्यासीजी बहुत खुशी की बात है मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप आत्म का स्वरूप को समझने की जिज्ञासा करते हो और मेरा भी कर्तव्य है कि मैं आपको यथाशक्ति समझाऊँ पर इस समय हमको अवकाश कम है कारण दिन बहुत कम रहा है हमें प्रतिक्रमणादि अवश्यक क्रिया करनी है यदि कल आप हमारे वहां अवसर देखे या मैं आपके पास आजाऊँ तो अपने को समय काफी मिलेगा और आत्मादि तत्व के विषय चर्चा की जायगी इत्यादि कहकर शान्तिसागर चला गया। प्रतिक्रमण क्रिया करने के बाद सब हाल सूरिजी को सुना दिया।

रात्रि में सन्यासीजी ने सोचा कि जहां तक आत्म ज्ञानप्राप्त न किया जाय वहां तक मेरी क्रियायें किस काम की है? यदि मुनिजी आवे या न आवें मुझे सुबह जैनाचार्य के पास जाना और आत्म ज्ञान सुनाना चाहिये। क्योकि आत्म के विषय जैनो की क्या मान्यता है? सन्यासीजी ने अपने शिष्यों को भी कह दिया और दिन उदय होते ही अपने शिष्यो के साथ चल कर सूरिजी के मकान पर आये उस समय सूरिजी अपने शिष्यो के साथ सब मौनपने से प्रतिलेखन क्रिया कर रहे थे सन्यासीजी को किसी ने आदर नहीं दिया तथापि सन्यासीजी जैन श्रमणों की क्रिया देखते रहे जब क्रिया समाप्त हुई तो मुनि शान्तिसागर ने सूरिजी से कहा कि यह सन्यासीजी आ गये हैं आप बड़े ही सज्जन एवं जिज्ञासु है। सूरिजी ने बड़े ही स्नेह एवं वात्सल्यता के साथ सन्यासीजी का यथोचित सत्कार किया और अपने पास बैठाया। सूरिजी बड़े

ही समयज्ञ थे आपने मुनि शांतिसागर को आज्ञा दे दी कि तुम सन्यासीजी को आत्मा और कर्मों के विषय में अच्छी तरह समझाओ। जैसे भगवान महावीर ने गौतम को कहा था कि तुम जाओ इस किसान को समझा कर दीक्षा दो। खैर सूरिजी महाराज तो इतना कह कर जंगल में चले गये। तत्पश्चात मुनि शांतिसागर ने सन्यासीजी को कहा महात्माजी यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आत्मा के प्रदेशों से मिथ्यात्व के दलक दूर होते हैं तब उस जीव को सत्य धर्म की खोज करना एवं श्रवण करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है जैसे आपको हुई है। महात्माजी आत्मा नित्य शाश्वता द्रव्य है यह नतो कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी इसका विनाश ही होता है। परन्तु जैसे तिलों में तेल, दूध में घृत, धूल में धातु, फूलों में सुगन्ध और चन्द्रकान्ता में अमृत अनादि काल से मिला हुआ है वैसे आत्मा के साथ कर्म लगे हुए हैं और उन कर्मों के कारण संसार में नये नये रूप धारण कर उच्चनीच योनियों में आत्मा परिभ्रमन करता है परन्तु जैसे तिलों को यंत्र का संयोग मिलने से तेल और खल अलग हो जाता है और तेल खल का अनादि संयोग छूट जाने पर फिर वे कभी नहीं मिलते हैं वैसे ही जीवात्मा को ज्ञान दर्शन चारित्र रूप यंत्र का संयोग मिलने से अनादि काल से जीव और कर्मों का संयोग था वह अलग हो जाता है उन कर्मों से अलग हुए जीव को ही सिद्ध परमात्मा परमेश्वर कहा जाता है। फिर उस जीव का जन्म मरण नहीं होता है जैसे बन्ध मुक्त जीव सुखी होता है वैसे कर्ममुक्त जीव परम एवं अक्षय सुखी हो जाता है। जिन जीवों ने संसारिक एवं पौदगलिक सुखों पर लात मार कर दीक्षा ली है और ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना की और कर रहे हैं उन सबका यही ध्येय है कि कर्मो से मुक्त हो सिद्ध पद को प्राप्त करना फिर वे उसी भव में मोक्ष जावे या भवान्तर में परन्तु उस रास्ते को पकड़ा वह अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सदैव के लिये सुखी बन जाता है संसार में बड़े से बड़ा दुख जन्म मरण का है उससे मुक्त होने का एक ही उपाय है कि वीतराग देवों की आज्ञा का आराधना करना अर्थात् दीक्षा लेकर रत्नत्रिय की सम्यक आराधना करना।

सन्यासी ने कहा गुरु महाराज आपका कहना सत्य है और मेरी समझ में भी आ गया पर कर्म क्या वस्तु है और उसमें ऐसी क्या ताकत है कि जीवात्मा को दबा कर संसार में परिभ्रमन करता है इसको आप ठीक समझाइये ?

मुनिजी ने कहा सन्यासीजी। कर्म परमाणुओं का समूह है और परमाणुओं में वर्ण गन्ध रस स्पर्श की इतनी तीव्रता होती है कि चेतन का भांन भुला देता है जैसे एक अच्छा लिखा पढ़ा समझदार मनुष्य भंग पी लेता है भंग परमाणुओं का समूह एवं जड़ पदार्थ है पर चेतन को बेभान बना देता हैं भंग के नशा की मुदित होती है जब भंग का नशा उतरता है तब मनुष्य अपना असली रूप में सावधान हो जाता है वैसे ही कर्मों के पुद्गलों में रसादि होते है और उसकी मुद्दत भी होती है वे कर्म मूल आठ प्रकार के हैं और उनकी उत्तरप्रकृतिये १५८ जैसे हलवाई खंड के खिलोने बनाते हैं उन खिलौनों के लिये सांचे होते हैं जिस सांचे में खांड का रस डालते हैं वैसे आकार के खिलोने बन जाते हैं वैसे ही कर्मों के आठ सांचे हैं। १—किसी ने ज्ञान की विराधना की उसके ज्ञानावर्णिय कर्म बन्ध जाते हैं जब वह कर्म उदय में आता है तब उस जीव को सद्ज्ञान से अरुचि हो जाती है अर्थात् सद्ज्ञान प्राप्ति नहीं होने देता है। २—इसी प्रकार दर्शन की विराधना करने से दर्शनावर्णिय कर्म बन्ध जाता है। ३—जीवों को तकलीफ देने से असातावेदनी और आराम पहुँचाने से साता वेदनी कर्म बन्ध जाते हैं। ४—कुदेव कुगुरु कुधर्म के सेवन से मिथ्यात्व मोहनी

अच्छे बुरे देवगुरु धर्म को एकसा समझनेसे मिश्रमोहनीय क्रोध, मान, माया, लोभ हँसादिसे चारित्र मोहनीय कर्म बन्धते है। ५—जैसे परिणाम वैसा आयुष्कर्म। ६—देवगुरु की सेवा उपासनादि शुभकर्म करने से शुभ नाम और अशुभ कर्म करने से अशुभनाम कर्म बन्धता है ७—जातिकुल बल,रूप, लाभादि का मद करने से नीच गोत्र और मद नही करने से उच्च गौत्र बन्धता है। ८—किसी जीव के दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य की अन्तराय देने से अन्तराय कर्म बन्धजाता है। इस प्रकार आठ कर्म तथा इनकीउत्तर प्रकृतियें हैं जैसे २ अध्यवसायो की प्रेरणा से कार्य किया जाता है वैसे-वैसे कर्म बन्ध जाता है फिर उदय आने पर उन कर्मों को भोगना पड़ता है। जो लोग कर्मों का स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जान कर समभाव से भोगते हैं वे कर्मों की निर्जरा कर देते हैं और नये कर्म नहीं बन्धते हैं तब अज्ञानता के वस होकर आर्तध्यान करते है वे फिर नये कर्मोपार्जन कर लेते हैं अतः कर्म परम्परा से छुट नहीं सकते। इसलिये कर्मों की निर्ज्जरा करने के लिये दीक्षा लेकर ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना करनी चाहिये इत्यादि।

सन्यासी जी ने इस प्रकार अपूर्व ज्ञान अपनी जिन्दगी में पहला ही सुना था और भी जिस-जिस विषय में आप शंका करते उसका मुनिजी अपनी शान्त प्रकृति से ठीक समाधान कर देते थे जिससे सन्यासी जी को अच्छा संतोष हो गया इतना में सूरिजी भी वापिस पधार गये थे सन्यासीजी ने सूरिजी से प्रार्थना की कि मुनिजी ने आत्मा एवं कर्मों का स्वरूप मुझे समझाया जिसको मैंने ठीक तौर से समझ लिया पर कृपा कर आप मुझे आत्म कल्याण का रास्ता बतलावें कि जिससे जन्म मरण के दु.ख मिट जाय ? सूरिजी ने कहा यदि आपको जन्म मरण के दु.ख मिटाना है तो जिनेन्द्रदेव कथित दीक्षा लेकर तप, संयम की आराधना करो सबसे उत्तम यही मार्ग है। बस फिर तो देरी ही क्या थी। सन्यासी ने अपने शिष्यों के साथ सूरिजी के चरणकमलो मे भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली अह-हा। जब जीव के कल्याण का समय नजदीक आता है तब वे किस प्रकार उल्टे के सुल्टे बन जाते हैं एक व्यक्ति द्वारा जैनधर्म की निन्दा होती थी वही व्यक्ति जैन धर्म की दीक्षा ले इससे अधिक क्या लाभ एवं प्रभावना हो सकती है। सूरिजी ने उन सत्योपासक सन्यासीजी को दीक्षा देकर आपका नाम "आनन्दमूर्ति" रख दिया मुनि आनन्दमूर्ति आदि ज्यो ज्यो जैनधर्म के आगमों का अध्ययन एवं क्रिया कॉड करते गये त्यों-त्यों उनकी आत्मा के अन्दर आनन्द की तरंगो उछलने लग गई थी यह कार्य नया ही नहीं था पर पहले भी शिवराजर्षि पोग्गल एवं स्कन्धक सन्यासी आदि अनेक सन्यासियों ने जैनदीक्षा स्वीकार कर स्व-परात्माओं का कल्याण के साथ जैनधर्म का खूब ही उद्योत किया था डामरेल नगर के श्री संघ का उत्साह खूब बढ़ गया अत श्री संघ ने सूरिजी से साग्रह विनती की कि पूज्यवर! यह चतुर्मास यहीं करके हम लोगों को कृतार्थ करावें आपके विराजने से बहुत उपकार होगा— इत्यादि। सूरिजी ने लाभा-लाभ का कारण जन श्रीसंघ की विनती स्वीकार करली बस! फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह नदी का वेग की भाँति खूब बढ़ गया।

मुनि आनन्दमूर्ति पर सूरिजी एवं मुनि शान्तिसागर की पूर्ण कृपा थी आपको ज्ञान पढ़ने की रुचि थी आप पहिले से ही विद्वान् थे केवल उल्टे से सुल्टे होने की ही जरूरत थी आप थोड़ा ही समय में जैनागमों का ज्ञान प्राप्त कर धुरंधर विद्वान् बन गये दूसरा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन होता है तब उनके उत्साह का वेग कई गुना बढ़ जाता है और स्वीकार धर्म का प्रचार की [illegible]

जाती है तीसरा उनको यह भी अनुभव रहता है कि जैसे मैं अज्ञान दशा में आत्मा का अहित करता था इसी प्रकार मेरे भाई कर रहे हैं उनका मैं उद्धार करूँ इत्यादि :—

जैसे रत्नागर भाँति-भाँति के अमूल्य रत्नों से शोभा देता है इसी प्रकार आचार्यरत्नप्रभसूरि का गच्छ अनेक विद्वान् मुनियों से शोभा दे रहे थे उन मुनि समूह में मुनि शान्ति सागर सर्व गुण सम्पन्न था सूरिजी के वृद्धावस्था के कारण व्याख्यान मुनि शान्तिसागर ही दिया करते थे आपका व्याख्यान विशेष तात्त्विक एवं दार्शनिक विषयपर होताथा तथा त्याग वैराग्य तो आपके नस-नसमें ठूस-ठूस कर भरा हुआ था कि जिसको श्रवण कर मनुष्यो के रुवाटे खड़े होजाते थे अतः नगरमें मुनि शान्तिसागर की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी इतना ही क्यों पर श्रीसंघ की भावना तो यहाँ तक हो गई कि मुनि शान्तिसागर को आचार्य पद दिया जाय तो बहुत अच्छा है कारण आप सूरि पद के सर्वथा योग्य है अतः श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यों तो आपके सर्व शिष्य योग्य हैं और आत्मकल्याण के लिये तत्पर है परन्तु यहाँ के श्रीसंघ की प्रार्थना है कि मुनि शान्तिसागर को सूरिपद दिया जाय और यह कार्य हमारे नगर में हो कि हम लोगों को भी लाभ मिले साथ में एक यह भी अर्ज है कि यदि आपका शास्त्र स्वीकार करना हो तो आनन्दमूर्ति को भी पदस्थ बनाना चाहिये। कारण आनन्दमूर्तिजी अच्छे विद्वान एवं योग्य पुरुष हैं ऐसों का उत्साह बढ़ाने में जैनधर्म को तो लाभ है ही परन्तु दूसरे सन्यासियों पर भी इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ेगा। पूज्यवर ! कई लोग तो इस कारण से जानते हुये भी मतबन्धन एवं वेशबन्धन छोड़ नहीं सकते हैं कि हम जैन साधु बने तो सबसे छोटा बनना पड़ेगादि ? दूसरा योग्य पुरुषों का सत्कार करना अपना कर्तव्य भी है। इस पर सूरिजी ने कहा श्रावको ! आपका कहना ठीक है मैं इसको स्वीकर करता हूँ मुनि शान्ति सागर को सूरिपद देने का तो मैंने पहले से ही निश्चय कर रखा है दूसरे आनन्दमूर्ति भी योग्य पुरुष हैं जैन शास्त्रों में योग्य पुरुषों का सत्कार करने की मनाई नहीं है इतना ही क्यों पर योग्य हो तो जिस दिन दीक्षा दी उसी दिन आचार्य पदादि पद देने का फरमान है अतः मैं आनन्दमूर्ति के लिये भी विचार अवश्य करूँगा। श्रीसंघ ने कहा पूज्यवर ! आप शासन के स्तम्भ है दीर्घदर्शी हैं जो कुछ करेंगे वह शासन के लिये हित का ही कारण होगा परन्तु यहाँ के श्रीसंघ का बहुत आग्रह है कि यह पुनीत कार्य इस नगर में ही होना चाहिये अतः स्वीकृती फरमावे ?

सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर स्वीकृति दे दी। बस फिर तो कहना ही क्या था आज डामरेल नगर के घर घर में उत्साह एवं हर्ष की तरंगों उछलने लग गई हैं और तन मन तथा धन से उच्छव करने में लग गये। शुभ मुहूर्त में मुनि शान्तिसागर को आचार्य पद देकर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया तथा मुनि सोमप्रभादि ५ मुनियों को उपाध्यायपद, राजसुन्दर एवं आनन्दमूर्ति आदि ११ मुनियों को पण्डित पद, मुनिकल्याणकलसादि सात मुनियों को वाचनाचार्य पद, मुनि रत्नशिखरादि नौ मुनियों को गनि पद दिया पूर्व जमाना में योग्यता की पूरी परीक्षा करके ही पदवियाँ दी जाती थीं और पदवियां लेने वाले भी अपनी जुम्मावारी का पूरा पूरा खयाल रखते थे यही कारण है कि आचार्यों का शासन उन पदवी धरों से शोभायमान दीखता था जैसे समुद्र कमलों से तथा चन्द्र महनक्षत्र और तारों से शोभायमान दीखता है:—

एक समय आचार्य सिद्धसूरि रात्रि समय धर्म कार्य एवं आत्म ध्यान की चितवना करते समय

विचार कर रहे थे कि अब मेरा आयुष्य शायद् नजदीक ही हो इतने मे तो देवी सच्चायिका एवं मातुला आकर सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि पूज्यवर ! अब आपका आयुष्य केवल एक मास का रहा है। आपने मुनि शान्तिसागर को सूरि पद दिया यह भी अच्छा ही किया है इत्यादि सूरिजी ने देवियो को अन्तिम धर्म लाभ दिया अतः वे वन्दन कर आदश्य होगई :—

सुबह सूरिजी ने आचार्य रत्नप्रभसूरि आदि श्रीसंघ को कहा कि मेरी आयुः नजदीक है। मेरी इच्छा अनशन करने की है। इसको सुनकर सब लोग उदास होगये और कहने लगे कि पूज्यवर ! आप हमारे शासन के स्तम्भ है हमारे शिर छत्र हैं। आपकी तन्दुरुस्ती अच्छी है ! श्रीसंघ यह नहीं चाहते कि आप इस समय अनशन करे ! हां जब समय आवेगा तो श्रीसंघ स्वय विचार करेगा। इस प्रकार नौ दिन निकल गये आखिर सूरिजी ने अनशन कर लिया और २१ दिन समाधि पूर्वक आराधना कर आप परम समाधि से स्वर्ग धाम पधार गये। इस अवसर पर सिंध के ही नहीं पर कई प्रान्तो के भावुकजन सूरिजी के दर्शनार्थ आये हुये थे उन सब के चेहरे पर ग्लानी छाई हुई थी ! फिर भी निरानन्द होते हुए भी उन सबने करने योग्य सब क्रिया की और संघ अपने अपने नगरों की ओर चले गये।

आचार्य सिद्धसूरि का सिंध भूमि पर महान उपकार हुआ है। अतः सूरिजी की चिर स्मृति के लिये आपके शरीर का अग्नि संस्कार हुआ था उस स्थान पर एक विशाल स्तम्भ बनाया और आश्वन शुक्ल नौमि के दिन जो सूरिजी के स्वर्गवास का दिन था वहां एक बड़ा मेला भरना मुकर्रर कर दिया कि साल साल मेला भरता रहे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि महान प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं आपने डामरेलपुर से कई ४०० मुनियों के परिवार से विचार कर सिन्ध भूमि मे अपनी ज्ञान सूर्य की किरणों का प्रकाश चारो ओर डालते हुए जैनधर्म का खूब उद्योत किया।कई अर्सा सिन्ध में विहारकर आप श्रीजी पंजाब की ओर पधारे छोटेबड़े ग्रामो में भ्रमन कर सावत्थी नगरी की ओर पधारे वहां के श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया आपश्री का व्याख्यान हमेशा तात्त्विक एवंदार्शनिक विषय पर होता था षट दर्शन के तो आप पूर्ण अनुभवी थे जिस समय आप एक एक दर्शन का तत्त्व एवं मान्यता बतलाकर व्याख्यान करते थे तो अच्छे अच्छे पण्डित आश्चर्य मे डुब जाते थे आचार्यश्री की प्रतिपादन शैली इतनी उत्तम थी कि बीच मे किसी को तर्क करने का अवकाश ही नहीं मिलता था कारण आप स्वयं तर्क कर उसका समाधान कर देते थे। जिससे लोगों की मिथ्या धर्म मे असूची और सत्य धर्म की ओर रुचि बढ़ जाती थी।

एक समय सूरिजी के व्याख्यान मे एक क्षणक वादी ने आकर प्रश्न किया कि जिस नरक का आप भय बतलाते हैं और स्वर्ग का लालच देते हो कि जिससे जनता का विकाश की रुकावट हो जाती है ! वे नरक एवं स्वर्ग क्या वस्तु है और कहां पर है उन नर्क स्वर्ग को किसने देखी और कौन अनुभव कर आया ! इस विषय में क्या आप कुच्छ साबुती दे सकते हो ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि वस्तु का ज्ञान करने के लिये दो प्रकार के प्रमाण होते हैं एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष जो नजरों के सामने पदार्थ है। उसको प्रत्यक्ष देख सकते है पर जो दूर रहा हुआ पदार्थ है उसको जानने के लिये परोक्ष प्रमाण ही काम देता है। यदि कोई व्यक्ति सवाल करे कि एक सौ कोस पर नगर है वहां एक सुन्दर वटवृक्ष है,परन्तु इसके लिये खुद नजरों से देखने वाला भी परोक्ष प्रमाण से बतला सका

बता सकता है इसी प्रकार स्वर्ग नरक जिन्होंने स्पष्ट देख कर कथन किया है उनके वचन ही प्रमाण सावुति है । चोरी करने वाले को दंड और सेवा करने वाले को इनाम मिलता है इसी प्रकार पाप करने व को नरक और पुन्य करने वाले को स्वर्ग मिले इसमें शंका ही क्या हो सकती है इत्यादि सूरिजी ने बहुत युक्तियोंकर समझाया परन्तु क्षणक वादी ने कहा कि मैं ऐसे परोक्ष प्रमाणकों नहीं मानता हूँ मुझे तो प्रत्ये प्रमाण बतलाओं कि यह स्वर्ग नरक है ?

पास ही में सूरिजी महाराज का एक भक्त वैठा था उसने कहा पूज्य गुरु महाराज यदि आप आज्ञा तो मैं इसको समझा सकता हूँ । सूरिजी ने कहां ठीक समझाओं । भक्त ने उस क्षणक वादीकों मकान बाहर ले जाकर उस के मुँह पर जोर से एक लप्पड़ लगाया जिससे वह रो कर चिल्लाने लगा ।

"भक्त ने पुच्छा कि भाई तुँ रोता क्यों है ?

"क्षणक—तुमने मुझे मारा जिससे मुझे वड़ा ही दुःख हुआ है ।

"भक्त—भलो थोड़ा सा दुःख को निकाल कर मुझे बतला दें कारण में परोक्ष प्रमाण कों नहीं मान हूँ अतः आप प्रत्यक्ष प्रमाण से बतलावें की दुःख यह पदार्थ है !

"क्षणक—अरे दुःख कभी वतलाया जा सकता है यह तो मेरे अनुभव की वात है

"भक्त—जब आप हमारे अनुभव की बात नर्क स्वर्ग को नहीं मानते हो तो हम आपके अनुभवकी ब कैसे मान लेंगे? दूसरा आप मुझे उपालम्ब भी नहीं दे सकते हो कारण आपकी मान्यतानुसार आत्मा क्षण-क्ष में उत्पन्न एवं विनाश होती हैं अतः लप्पड़ की मारने वाली आत्मा विनाश होगई और जिसके लपड़ की मा थी वह आत्मा भी विनाश होगई इसलिये आपको दु'ख भी नहीं होना चाहिये क्योंकि आपकी और मे आत्मा नयी उत्पन्न हुई है विनाश हुई आत्मा का सुख दुःख नयी उत्पन्न हुई आत्मा मुक्त नहीं सकती इत्यादि युक्तियों से इस प्रकार समझाया कि क्षणक वादी की अकल ठिकाने आगई और उसने सोचा यदि आत्मा चण-चण में विनाश और उत्पन्न होती हो तो जिस चणमें मुझे दुःख हुआ वह अब तक क्यों अतः इसमें कुच्छ समझने का जरूर है चलो गुरु महाराज के पास बस क्षणकवादी और भक्त दो सूरिजी के पास आये—

क्षणकवादी ने सरिजी से पुच्छा कि गुरु महाराज आत्मा क्या वस्तु है और जन्ममरण क्यों होता मरके आत्मा कहां जाती है और नयी आत्मा कहासे आकर उत्पन्न होती हैं और आत्माकों अक्षयसुख कै मिलता है? सूरिजीने कहा आत्मा का, न विनाश होता है और न उत्पन्न ही होता है जीवके अनादिकालसे शुभ शुभ कर्म लगा हुआ है और उन कर्मों से नये-नये शरीर धारण करता हुआ चतुर्गति में भ्रमन करता है य जिनेन्द्रदेव कथित दीक्षा ग्रहन कर सम्यक् ज्ञानदर्शन चारित्र की आराधना करलें तो जन्ममरण रूपी कर्मों मुक्त हो आत्मा परमात्मा वन कर सदैव सुखी बन जाता है

क्षणकवादी क्या में दीक्षा लेकर ज्ञानदर्शन चारित्र की आराधना कर सकता हूँ ?

सूरिजी-क्यों नहीं । आप खुशी से कर सकते हो ।

क्षणकवादी—तब दीजिये दीक्षा और बतलाइये रास्ता ?

सूरिजी—उसी समय क्षणकवादी को दीक्षा देदी ।

इस प्रकार आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अनेक अन्यमतियो को जैनधर्म की दीक्षा देकर उनका उद्धार किया इतना ही क्यो पर उन अन्यमति साधुओ ने जैनधर्म मे दीक्षित हो एवं जैन सिद्धान्त का अभ्यास करके क्षणक वादी बोधों का और वाममार्गी एवं यज्ञवादियो के अखाड़े उखेड़ दिये थे। आचार्य रत्नप्रभसुरि षट्दर्शन के मर्मज्ञ एवं अनेक विद्या एवं लब्धियो के ज्ञाता थे और उस समय बौद्धवेदान्तियो और वाममार्गियों के आक्रमण के सामने जैन धर्म जीवित रह सका यह उन विश्वोपकारी आचार्य रत्नप्रभसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्यों का ही उपकार समझना चाहिये।

सूरिजी ने सावत्थी नगरी से विहार कर क्रमश तक्षशिला पधारे तक्षशिला का तुर्कों के द्वारा भंग होने से पहले वाली तक्षशिला नही पर सर्वथा जैनो से निर्वासित भी नहीं थी वहाँ उस समय बहुत से जैन बसते भी थे कई मन्दिरो पर बोद्धो ने अपना कब्जा कर लिया था पर आचार्य रत्नप्रभसूरि के पधारने से जैनों में पुनः जागृति हो आई थी आचार्यश्री ने तक्षशिला का हाल देख वहाँ पर एक चतुर्विध संघ की सभा करने का विचार किया वहाँ के श्रीसंघ को कहाँ तो उन्होंने सूरिजी का कहना स्वीकार तो कर लिया पर उनके दिल में यह भय था कि यहाँ बोद्धो का जोर अधिक है फिर भी उनका गुरुदेव पर विश्वास था पंजाब सिंध शूरसेनादि कइ प्रान्तो मे आमन्त्रण भेज दिये ठीक समय पर चतुर्विध संघ खूब गेहरी तादाद में एकत्र हुआ और आचार्य श्री के नायकत्व मे सभा हुई सबसे पहला यह प्रस्ताव रखा गया कि बोद्धों ने अपने मन्दिर दबा लिया है उनको पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये दूसरा जैनधर्म का प्रचार करने के लिये मुनियों का विहार और श्रावकों को भी प्रयत्न करना जरूरी है इत्यादि इस सभा का जनता पर काफी प्रभाव पड़ा बहुत से मन्दिर बोद्धों से वापिस लेकर उनकी पुनः प्रतिष्ठा करवाई। वहाँ के श्री संघ की अत्याग्रह होने से वह चतुर्मास सूरिजी ने तक्षशिला में ही किया भाद्र गोत्रीय शाह पंचग के महा महोत्सव पूर्व व्याख्यान में महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र फरमाया जिनका जैन जैनेतर जनता पर बहु असर हुआ विशेषता यह थी कि श्रेष्ठिगोत्रीय शाह हाप्पा ने सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकलने का निश्चय किया उसने बहुत दूर-दूर तक आमन्त्रण पत्रिका भेज कर श्री संघ को बुलाया तथा आत्मकल्याण की भावना वाले बहुत लोग ठीक समय पर आ भी गये और चतुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी की अध्यक्षत्व मे सघ यात्रार्थ प्रस्थान कर दिया संघपति की माला शाह हाप्पा का कण्ठ मे सुशोभित थी रास्ता के तीर्थों की यात्रा करते हुए संघ सम्मेत शेखरजी पहुँचा तीर्थ का दर्शन स्पर्शन कर सबने आनन्द मनाया सूरिजी ने शाह हाप्पा को उपदेश दिया कि यह बीस तीर्थङ्करो एवं आचार्य कक्कसूरि की निर्वाणभूमि है मन्त्री पृथुसेन के पुत्र ने यहाँ पर दीक्षा ली है ऐसा सुअवसर बार बार मिलना मुश्किल है प्रवृति में सबसे बडा कार्य सघ निकालने का है तब निवृति में दीक्षा लेना है। सूरिजी के उपदेश का भाव हाप्पा समझ गया और अपने जेष्ठ पुत्र कुम्भा को संघपति की माला पहना कर शाह हाप्पा सूरिजी के पास दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया आपके अनुकरणरूप में कई ११ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। सूरिजी ने उन सबको दीक्षा दे दी। कई मुनियों के साथ संघ वापिस लौट गया और सूरिजी अपने ५०० मुनियो के साथ पूर्व मे विहार किया और बोद्धों के बढ़ता हुआ जोर को हटा कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया-पाटलीपुत्र, चम्पा, अयोध्या, राजगृह, तुंगिया वाणियाग्राम, काकंदी, वैशाला और हेमाला एवं कपिलवस्तु तक विहार कर जनता को जैनधर्म का उपदेश दिया बाद कलिंग की ओर विहार कर उदयगिरि खण्डगिरि जो शत्रुंजय गिरनार अवतार के नाम से तीर्थ कहलाते थे

वहाँ की यात्रा कर क्रमशः मथुरा आकर चतुर्मास किया इन तीन वर्षों के भ्रमन में सूरिजी ने हजारों अजैनों को जैन बनाये और जैनो को धर्म में स्थिर किये।

जिस समय सूरिजी मथुरा में विराजमान थे उस समय मथुरा में बोद्धों का भी खूब जोर जमा हुआ था पर सूरिजी और आपके विद्वान् शिष्यों के सामने बोद्धों की कुछभी दाल नहीं गल सकती थी सूरिजीका व्याख्यान हमेशा त्याग, वैराग्य एवं तत्त्वज्ञान पर होता था जिसका प्रभाव जनता पर खूब ही जोरदार होता था कइ भावुकों ने जैन मन्दिर बनाये थे उनकी प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई तथा कइ महानुभावों ने जैन दीक्षा भी ली वहाँ से विहार कर सूरिजी महाराज क्रमशः मरुधर मे पधार रहे थे उस समय चंदेरी नगरी पे मरकी का रोगा ने बड़ा भारी उपद्रव मचा रखा था श्रीसंघ ने सुना कि आचार्य रत्नप्रभसूरि महा प्रभाविक है उनके आने से रोग की शान्ति हो जायगी अतः संघ अग्रेसर लोग मिलकर विराट नगर में आये और सूरिजी से अपनी दुख गाथा कह सुनाई। परोपकारी महात्माओं का तो जन्म ही जनता का कल्याण के लिये होता है सूरिजी विहार कर चंदेरी पधारे और वहाँ वृहद शान्ति स्नात्र पढ़ाई कि उपद्रव शान्त हो गया जिससे जैनधर्म की प्रभावना हुई जैन जैनेत्तर सूरिजी का उपकार माना। कई दिनों की स्थिति के बाद, बुंदेलखंड एवं आवंती प्रदेश में विहार करते हुए आपने दशपुर में चतुर्मास किया वहाँ भी आप श्री के विराजने से धर्म की खूब ही प्रभावना हुई वहाँ से चित्रकोट नगरी देवपट्टन, आघाट, विराट वगैरह छोटे बड़े ग्रामों मे भ्रमन करते हुए सूरिजी ने मरुधर में पदार्पण किया। आप षष्टम रत्नप्रभसूरि थे पर जनता को आद्य रत्नप्रभसूरि की स्मृति हो रही थी। आचार्य श्री ने शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावली, कुर्चपुरा, मुग्धपुर भवानीपुर, नागपुर, आशिकादुर्ग, हर्षपुर, मेदनीपुर, क्षत्रीपुर, वगैरह ग्राम नगरों में विहार करके जब शंखपुर पधारे तो वहाँ के श्री संघ में खूब उत्साह फैल गया कारण सूरिजी की यह जन्म भूमि थी जैसे सूरिजी को अपनी जन्म भूमिका का गौरव था वैसे ही नगर निवासियों को भी गौरव था कि हमारे नगर में ऐसे अमूल्य रत्नोत्पन्न हुए कि संसार भर में शंखपुर को पावन एवं प्रसिद्ध कर दिया श्री संघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश क महोत्सव बड़े ही समारोह से किया सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर धर्म दर्शना दी। जिसका जैनजैनेत्तर जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् श्री संघ ने सूरिजी से चतुर्मास की प्रार्थना की कि पूज्यवर ! आप आचार्यहोने के बाद अब ही पधारे है कमसे कम एक चतुर्मास तो अवश्य करना चाहिये। अतः सूरिजी ने श्रीसंघ की विनती स्वीकार कर वह चतुर्मास जन्म भूमि में कर दिया आपके विराजने से धर्म का अच्छा उद्योत हुआ कई ब्राह्मण वगैरह जो जैनधर्म के विषय में अज्ञात रहकर भ्रम में गोथे खारहे थे सूरिजी ने उनका समाधान कर जैन धर्म के अनुरागी बनाये कइ मांस भक्षियों का उद्धार कर उनको जैनधर्मोपासक बनाये और भी कइ प्रकार से धर्म की प्रभावना हुइ चतुर्मास समाप्त होते ही पाच पुरुष और ७ बहिनों ने सूरिजी के चरणों में दीक्षाली तत्वपश्चात् सूरिजी विहारकर छोटे बडे ग्रामों में भ्रमण करते हुए भाद्रव्यपुर होते हुए उपकेशपुर की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार सुना तो श्रीसंघ के उत्साह का पर नहीं रहा श्रीसंघ ने नगर प्रवेश का बड़ा ही आलीशान महोत्सव किया और सूरिजी चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान् महावीर एवं आचार्यरत्नप्रभसूरिजी की यात्रा की और श्रीसंघ को थोडी पर सारगर्भित धर्म देशना सुनाई आज उपकेशपुर के घर-घरमें आनन्द मंगल छारहा है क्यो नही सत्कारल्प वृक्षका शुभागमन हुआ इससे बढ़कर आनन्द क्या हो सकता है। देवी सच्चायिका भी समय समय सूरिजी को वन्दन करने को आया करती थी और यह

भी प्रार्थना की थी कि पूज्य आचार्य देव आपने मरुधर की पवित्र भूमि पर जन्म लेकर केवल मरुधर पर ही नहीं पर भारत पर बड़ा भारी उपकार किया है यह वही उपकेशपुर है कि आपके पूर्वजों ने जैनधर्म का बीज बोया और पिच्छले आचार्यों ने उसको जलसिंचन कर नवप्लव बनाया। कृपा कर यह चतुर्मास यहां कर के यहाँ की जनता पर उपकार करावे आपके विराजने से मुझे भी दर्शनो का लाभ मिलेगा। सूरिजी ने कहाँ देवीजी क्षेत्रस्पर्शना होगा तो मुझे तो कही न कही चतुर्मास करना ही है। यह कब हो सकता है कि इस गच्छ के आचार्य आपकी विनती स्वीकार नही करे। दूसरे हमारे लिये तो यह एक पवित्र तीर्थ धाम है आचार्य रत्नप्रभसूरि के शुभ हाथों से शासनाधीश चरमतीर्थंकर की स्थापना हुई जिसकी उपासना तो प्रबल्य पुन्योदय से ही मिलती है इत्यादि सूरिजी के कहने से देवी को बड़ा ही संतोष होगया।

उस समय उपकेशपुर का शासन कर्ता महाराजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा के राव आल्हन देव था आप वंश परम्परा से ही जैन धर्म के परमोपासक थे सूरिजी के पधारने से आपको बड़ा ही हर्ष था कारण आपका लक्ष आत्मकल्याण की ओर विशेष रहता था। अतः एक दिन श्रीसंघ एकत्र हो सूरिजी से चतुर्मास की प्रार्थना की जिस पर सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान श्रीसंघ की विनति को स्वीकार करली। दूसरे यह भी था कि उपकेश गच्छ के आचार्य उपकेशपुर पधारे तो कम से कम एक चतुर्मास तो वहां अवश्य करते ही थे जिसमे सूरिजी की तो अवस्था ही वृद्ध थी।

रावजी ने महामहोत्सव पूर्वक श्री भगवतीजी सूत्र को अपने वहां लाकर रात्रि जागरण पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य किया और हस्ति पर सूत्रजी विराजमान कर वरघोड़ा चढ़ा कर सूरिजी को अर्पण किया और सूरिजी ने उस महाप्रभाविक शास्त्रजी को व्याख्यान मे बांचकर श्रीसंघ को सुनाया जिसको सुन कर जनता ने अपूर्व लाभ उठाया। सूरिजी के विराजने से धर्म का खूब ही उद्योत हुआ अपनी २ रूची के अनुसार सब लोगो ने यथाशक्ति लाभ लिया। एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में आचार्य रत्नप्रभसूरि का जीवन सुनाते हुए फरमाया कि महानुभावों! जिन महापुरुष ने इसी उपकेशपुर में धर्म रूपी वृक्ष का बीज बोया था और पिछले आचार्यों ने उसको जल सिंचन कर नवप्लव बनाया जिसके ही मधुरफल है कि आज हम जहां जाते है वहां उपकेशवंश उपकेशवश ही देखते है और वे भी देवी सचायका का वरदान से 'उपकेशे बहुल द्रव्य' धन धान एव परिवार से समृद्ध और धर्म करनी में तत्पर नजर आते है और वे भी केवल मरुधर में ही नहीं पर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध कुनाल पांचाल शुरसेन पूर्व बंगाल बुन्देलखण्ड आवन्ति मेदपाट तक हमने भ्रमन करके देखा है कि कोई भी प्रान्त उपकेशवंश से शुन्य नहीं पाया उनको पूछने से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रायः वे लोग अपनी व्यापार सुविधा के लिये ही वहां गये थे बाद मे जैनाचार्यों ने वहां के अजैनो को जैन बना कर उनके शामिल मिलाते गये थे कि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई। इस पवित्र कार्य में उन आचार्यों का प्रयत्न तो था ही पर साथ मे महाराजा उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ादि धर्मवीर गृहस्थों एवं उनकी सन्तान परम्परा का भी सहयोग था तथा देवी सच्चायिका की भी पूर्ण कृपा थी जिससे इस पुनीत कार्य में आशातीत सफलता मिलती गई पूर्वाचार्यों की यह भी एक पद्धति थी कि वे जैनों के केन्द्र में समय समय सभाएँ करके चतुर्विध श्रीसंघ को और विशेषतया श्रमण संघ को जैनधर्म का प्रचार के लिये प्रेरणा एवं उत्साहित करते थे तथा कोई भी प्रान्त जैन साधुओं के विहार बिन नहीं रहने दे। दूसरा यह भी था कि जहां नये जैन बनाये वहां उनके आत्मकल्याण के लिये जैन मन्दिर एवं विद्यालय की प्रतिष्टा

करवा ही देते थे कि श्रद्धा एवं ज्ञान की वृद्धि और धर्म के संस्कार मजबूत जम जाते थे। समय समय तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकलवा कर भी जनता में धर्म उत्साह फैलाया करते थे इत्यादि कारणों से ही वह धर्म वृक्ष अपनी शाखा प्रति शाखा से फला फूला आनन्द में आत्मकल्याण साधन कर रहा है। इत्यादि सूरिजी ने जनता पर अच्छा प्रभाव डाला। जिससे राजा एवं प्रजा के हृदय में धर्म प्रचार की बिजली सतेज होगई।

एक समय राव आल्हणदेवादि संघ अग्रसर एकत्र होकर सूरिजी के पास गये वन्दन करके धर्म प्रचार के विषय मे बातें कर रहे थे राजा ने कहां पूज्यवर ! आपश्रीजी का पधारना हो गया है यहां पर एक सभा की जाय कि जिसमें चतुर्विध श्रीसंघ को बुलाया जाय और धर्म प्रचार के लिये प्रयत्न किया जाय। यहां पर पहले भी कईवार सभाए हुई थी जिसमें अच्छी सफलता मिली थी इस समय भी श्रीसंघ की यही भावना हैं। केवल आपकी सम्मति की ही जरूरत है।

सूरिजी ने फरमाया कि रावजी आपकी भावना एवं धर्म प्रचार की योजना बहुत अच्छी हैं और हमारे और आपके पूर्वजों ने इसी प्रकार धर्म प्रचार बढ़ाया था सभाए धर्म प्रचार का मुख्य कारण हैं मैं मेरी सम्मति देता हूँ कि आप धर्म प्रचार को बढ़ाइये। बस फिर तो क्या देर थी श्रीसंघ ने बहुत दूर दूर प्रान्तों तक आमन्त्रण भेजवा दिया और आगन्तुओं के लिये सब तरह का प्रबन्ध कर दिया। सभा का समय माघ शुक्ल पूर्णिमा का रखा जो आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्ग रोहण दिन था। समय तीन मास जितना लम्बा रखा गया था कि नजदीक एवं दूर से साधु साध्वियों आ सके। अर्थात् ठीक समय पर कइ तीन हजार साधु साध्वियां उपकेशपुर को पावन बनाया इसमें केवल उपकेशगच्छ के ही साधु साध्वियां आदि नहीं थे पर कोरंटगच्छ एवं वीर सन्तानिये सौधर्मगच्छ के साधु साध्वियों भी शामिल थे तथा श्राद्धवर्ग भी बहुत संख्या में आये थे इसका कारण एक तो भगवान् महावीर की यात्रा दूसरा आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास दिन तीसरा हजारों साधु साध्वियों के दर्शन चतुर्थ लाखों स्वधर्मी भाइयों का समागम, पांचवा धर्म प्रचारार्थ सभा, छटा आचार्य रत्नप्रभसूरी की वृद्धावस्था में दर्शन एवं सेवा, चलो ! ऐसा पुनीत कार्य में पिच्छे रहना कौन चाहता था ? अर्थात कोई नहीं चाहता। ठीक समय पर सभा हुई आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि और वाममार्गियों वगैरह मरुधर का इतिहास समझाया और वर्तमान में प्रत्येक प्रान्तों में अपने भ्रमन का हाल सुनाया। बोद्ध लोग अपना प्रचार किस प्रकार बढ़ा रहे है साथ में जैनों का क्या कर्तव्य है जैन श्रमणों को क्या करना चाहिये जैन गृहस्थ जैन धर्म का किस प्रकार सहायक बन सकते है इत्यादि आप श्री ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा मार्मिक शब्दों में इस प्रकार उपदेश दिया कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में जैन धर्म का विशेष प्रचार की भावना जागृत होगई। अतः जैन श्रमण एवं श्राद्धवर्ग उत्साह पूर्वक अर्ज की कि पूज्यवर ! धर्म प्रचार के लिये हम हमारा सर्वस्व अर्पण करने को तैयार है जिस प्रान्त में जाने की आज्ञा फरमावे हम विहार करने को कटिबद्ध तैयार है इत्यादि। भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्ज्जन हुई।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने देवी सहायिका की सम्मति लेकर आये हुए संघ के समीक्ष मुनि प्रमोदरत्न को अपने पट्ट पर आचार्य बना दिया तथा अन्य भी योग्यतानुसार कई मुनियों को पदवियों प्रदान कर उनके उत्साह को बढ़ाया और योग्य स्थान के लिये आज्ञाएँ देदी कि अमुक मुनि अमुक प्रान्तों में विहार कर धर्म प्रचार करे। राजा आल्हणदेव वगैरह उपकेशपुर का श्रीसंघ अपने कार्य की सफलता देख बड़ा ही आनंद

मनाया आये हुए श्रीसंघ को पेहरामणी वगैरह देकर विसर्ज्जन किया कार्य की सफलता से उनके दिल में भी हर्ष का पार नहीं था।

पाठको! आज कांग्रेसो, कान्फरन्से, मीटिंगे, कमेटिये और सभाए कोई नयी बातें नहीं है पर प्राचीन समय से ही चलती आई थी उसके पहले धर्म प्रचार के लिये तीर्थङ्करो के समवसरण रचा जाता था वे भी एक प्रकार की सभाए ही थी उस जमाने में और आज के जमाने मे केवल इतना ही अन्तर है कि पूर्व जमाना मे जो कार्य करना चाहते थे सर्व सम्मति से निश्चय कर कार्यकर्त्ता तन मन एव धन से उस कार्य को करके ही निद्रा लेते थे तब आज प्रस्ताव पास कर रजिस्टरो में बान्ध कर रख दिया जाता है। विशेपता यह है कि काम करना कोई चाहते नही है पर एक दूसरे पर व्यर्थ अक्षेप करके मतभेद खड़ा कर देते है जिससे कार्य करना तो दूर रहा पर उल्टी पार्टियों बन जाती है और जनता का भला के स्थान बुरा हो जाता है।

खैर आचार्य रत्नप्रभसूरि अपनी वृद्धावस्था के कारण उपकेशपुर के श्रीसंघ की अति आग्रह होने से वहां ही विराजमान रहे नूतनाचार्य यक्षदेवसूरि भी आपकी सेवा में ही थे सूरिजी ने गच्छ का सर्व भार यक्षदेवसूरी के सुपर्द कर आप अन्तिम सलेखना करने में लग गये अन्त में लुणाद्री पहाड़ी पर १६ दिन का अनसन कर समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये।

आचार्य रत्नप्रभसूरी महान प्रभाविक एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए है आप उपकेशगच्छ में पट्टम् आचार्य अर्थात इस नाम के अन्तिमाचार्य हुए है। आपश्री ने अपने २४ वर्प का दीर्घ शासन में प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का खूब ही प्रचार किया आपने बहुत से मुमुक्षुओ को दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी अच्छी वृद्धि की यही कारण है कि अपने प्रत्येक प्रान्त में मुनियो का विहार करवा कर जैन धर्म का प्रचार बढ़ाया था पट्टावलियो वंशावलियो, आदि ग्रंथो में आपके शासन में धर्म कार्यो के कई उल्लेख मिला है।

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ—

१—शंखपुर	के	श्री श्रीमालगौ०	शाह	जैता ने	दीक्षा ली
२—धासिकादुर्ग	के	आदित्य नागगौ०	,,	भारमल ने	,,
३—अरजुनपुर	के	भाद्रगोत्रीय	,,	भाणा ने	,,
४—नागपुर	के	कुमटगौत्रीय	,,	चूड़ा ने	,,
५—उपकेशपुर	के	डिडूगौत्रीय	,,	सालगने	,,
६—शाम्भावतरी	के	लघुश्रेष्टिगौ०	,,	सखला ने	,,
७—फलवृद्धि	के	चिंचटगौ०	,,	पोलाक ने	,,
८—कोरंटपुर	के	श्रेष्टिगौत्री०	,,	जिनदास ने	,,
९—सत्यपुर	के	आदित्यनाग०	,,	[illegible] ने	,,
१०—सांगली	के	बाप्पनाग०	,,	[illegible] ने	,,
११—[illegible]नगर	के	भूरिगौत्रीय०	,,	फागु ने	,,
१२—[illegible]पुर	के	करणाटगौ०	,,	[illegible] ने	,,

१३—नरवर	के	तप्ताभट्टगौ०	शाह	भैरा ने	दीक्षा ली
१४—वीरपुर	के	चरड़गौत्रीय	,,	भूला ने	,,
१५—मुनपुर	के	मल्लगौत्रीय	,,	मेहराज ने	,,
१६—चन्दोली	के	सु चतिगौ०	,,	गागर ने	,,
१७—मराठेकोट	के	सुघड़गौ०	,,	हाप्पा ने	,,
१८—त्रिभुवन	के	सुंगगौ०	,,	देपाल ने	,,
१९—जोगनीपुर	के	कुलभन्द्रगौ	,,	जसा ने	,,
२०—बावलपुर	के	करणाटगौ०	,,	नागदेव ने	,,
२१—लोद्रवापट्टन	के	लघु श्रेष्टिगौ०	,,	रामा ने	,,
२२—चौवाटन	के	श्रेष्टिगौ०	,,	घंघा ने	,,
२३—हनुमानपुर	के	बलाहगौ०	,,	गेंदा ने	,,
२४—करणावती	के	कनोजियागौ	,,	पाता ने	,,
२४—मांड	के	ब्राह्मण	,,	महादेव ने	,,
२५—अयोध्या	के	क्षत्रीवीर	,,	नेतसी ने	,,
२६—पाडलीपुत्र	के	प्राग्वटवंशी	,,	नोंधण ने	,,
२७—मादड़ी	के	प्राग्वटवंशी	,,	शांखला ने	,,
२८—सोमावा	के	श्रीमालवंशी	,,	पदमा ने	,,
२९—कयोली	के	सुघड़गौत्री०	,,	जिनदास ने	,,
३०—कुनणपुर	के	श्रेष्टिगौत्री०	,,	पारस ने	,,
३१—बीलपुर	के	बाप्पनागगौ०	,,	जोगड़ा ने	,,
३२—मथुरा	के	श्रेष्टिगौत्री०	,,	माथुर ने	,,
३३—चंदेरी	के	सुचंतिगौ०	,,	मोकल ने	,,

यह तो वंशावलियों से केवल एकेक नाम ही लिखा है पर इन एकेक भावुकों के साथ अनेक मुमुक्षुओं ने तथा कई महिलाएँ ने भी सूरिजी तथा आपके मुनिवरों के पास दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया था। यदि इन दीक्षा वालों का विवरण लिखा जाय तो एक अलग ग्रंथ बन जाता है कारण जैनों की करोड़ों की संख्या थी चौवीस वर्ष का भ्रमण में दो चारसौ दीक्षा हो गई हो तो कौन बड़ी बात है।

आचार्य श्री के शासन में तीर्थों के संघादि शुभ कार्य—

१—सोपार पट्टन से श्रेष्टिगौत्रीय साह खेतसी ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

२—देवगिरि से	मल्लगौ०	शाह नाया ने	,,	,,
३—भरोंच नगर से	प्राग्वट	पेथा ने	,,	,,
४—पद्मावती से	मंत्री	देदा ने	,,	,,
५—नरवर से	श्री श्रीमाल०	खेवा ने	,,	,,

६—पोतनपुर से बाप्पनाग० माणा ने " "
७—उज्जैन से भाद्रगो० रघुवीर ने " "
८—चित्रकोट से कुंभटगो० टावा ने " "
९—चन्द्रावती से करणावट गौ० डावर ने " "
१०—कन्याकुब्ज से प्राग्वट राणा ने " "
११—मथुरा से श्रेष्ठिगो० जैतल ने " "
१२—उपकेशपुर के राव आल्हणने वि० सं० ४१३ का दुकाल में शत्रुकारदिया
१३—चन्द्रावती के प्राग्वट मंत्री नारायण ने सं० ४१२ " "
१४—शिवगढ़ के कुलभद्रगो० शाह खेमाने वि० सं० ४२० कादु काल "
१५—भिन्नमाल के श्रीमल गुँगला ने एक वडा तलाव खुदाया
१६—करणावती के श्रीमाल देवाने २२ वर्ष की उमर में दम्पति चोथा व्रत लिया
१७—जिसमें श्रीसघ को सवासेर का लाडू और पांच पांच सोना मुहर पेरामणी दी
१८—खेतड़ी का मंत्री मोहण युद्ध में काम आया।
१९—उपकेशपुर का श्रेष्टि भूम्मार युद्धमे काम आया " " " "
२०—नागपुरका प्राग्वट वीर हरदेव " " "
२१—जंगालुका वीरहरगो० नानग " " "
२२—मेदनीपुरका भूरिगो० प्रह्लाद " " "
२३—पद्मावतीका श्रेष्ठिगो० मोकल " " "
२४—सत्यपुरका श्रेष्ठिगो० गोसल " " "
२५—वीरपुरका भाद्रगौत्र शादूल " " "
२६—हर्षपुरका कनोजिया० चटान " " "
२७—मुग्धपुरका डिड्डुगो० नरसिंह " " "
२८—पट्कुंपका प्राग्वट० जिनदास " " "

इनके अलावा भी आचार्य श्री के शासनमे कई जानने योग्य बात हुई थी पर स्थान के अभाव उन सबको यह उद्धृत कर नहीं सकने हैं

सूरीश्वर जी के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ

१—पटहडी के प्राग्वटवंशी शाह धर्मसीने भ० महावीर म० प्र०
२—सुधानगर के रकोशिया० " कुम्भाने " " " "
३—केरलिया के मलगो० " आल्हणने " " " "
४—मानरेखनगर के भूरिगो० " इंदाने " पार्श्व " "
५—रानीपुर के चरडगो० " गोसलने " " " "
६—जाबोली के कुमटगो० " पारसने " " " "

७—त्रिभुवनपुर	के	सुघड़गौ०	शाह	सुरजणने	भ०	महावीर	म०	प्र०
८—विरशाली	के	लुंगगौ०	"	होनाने	"	"	"	"
९—पुनाकोट	के	श्रेष्ठिगौ०	"	करणाने	"	"	"	"
१०—रेणुकोट	के	बाप्पनाग	"	रावलने	"	"	"	"
११—जानाकोट	के	अदित्यनाग	"	रामाने	"	रिषभ	"	"
१२—परोली	के	लुंगगौत्री	"	स्वंगारने	"	धर्म०	"	"
१३—मथुरा	के	भाद्रगौ०	"	भैराने	"	शान्ति	"	"
१४—कपीलवस्तु	के	कुमटगौ०	"	रोड़ाने	"	सीमंधर	"	"
१५—विशाला	के	चिंचटगौ०	"	कानड़ने	"	पद्मनाभा	"	"
१६—खण्डगिरि	के	बाप्पनाग०	"	लाधाने	"	महावीर	"	"
१७—तोसली	के	श्रेष्ठिगौ०	"	फुवाने	"	"	"	"
१८—चासोर	के	सुचंतिगौ०	"	जैसिघने	"	"	"	"
१९—मावोली	के	डिड्डुगौ०	"	बालाने	"	पार्श्व	"	"
२०—बनारस	के	कनोजिया०	"	पेथाने	"	"	"	"
२१—टेलीपुर	के	चिंचड़गौ०	"	मगतुलाने	"	"	"	"
२२—माण्डवदुर्ग	के	चोरलिया०	"	तोलाने	"	"	"	"
२३—दसपुर	के	चरडगौ०	"	जोंगाने	"	"	आदीश्वर	"
२४—खापोटी	के	मंत्री	"	यशधरने	"	"	पार्श्व	"
२५—सापोटी	के	आदित्य०	"	लछमणने	"	"	"	"
२६—शाकम्भरी	के	श्रेष्ठिगौ०	"	विजाने	"	नेमि	"	"
२७—पाल्हिका	के	बाप्पनाग०	"	भोलाने	"	मल्ली	"	"
२८—रत्नपुर	के	बलाहगौ०	"	देवाने	"	महावीर	"	"
२९—रणस्थम	के	प्राग्वट०	"	धुडाने	"	सीमंधर	"	"
३०—चरपटनगर	के	प्राग्वट०	"	खुमाने	"	पार्श्व	"	"
३१—चन्द्रावती	के	श्रीमाल	"	खीवाने	"	चंद्र०	"	"

इनके अलावा बहुत से घर देरासरों की भी प्रतिष्ठा करवाई थी जिन्हों का उल्लेख वंशावलियों पट्टावलियों वगैरह चरित्र ग्रन्थों में मिलता है पर स्थानाभाव उन सबका उल्लेख करने में हम असमर्थ हैं केवल नमूना मात्र की नामावली लिख दी है पाठक अनुमोदन कर पुन्योपार्जन करें।

एक तीस पट्टसूरि शिरोमण, रत्नप्रभ उद्योत किया।
षट् दर्शन के थे वे ज्ञाता, ज्ञान अपूर्व दान दिया ॥
सिद्ध हस्त अपने कामों में जैन ध्वजा फहराया था।
देश-देश में धवल कीर्त्ति, गुणों का पद न पाया था ॥

इति श्री पार्श्वनाथ के ३१ वें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि महन् आचार्य हुए।

३२—आचार्य श्री यक्षदेव सूरि (पष्टम्)

सूरि र्नायक यक्षदेव पद्माक्कनौजियाख्यान्वये ।
त्रात्व बन्धुगणं महाधन व्यया दुष्काल पीड़ा बहम् ॥
सोऽयं सूरिरनेक भव्य जनतोद्धारे रतो ग्रन्थकृत् ।
म्लेच्छात्नीतिपदातु रक्षण परो देवालया नाभयम् ॥

चार्य श्री यक्षदेव सूरीश्वरजी महाराज यक्षपूजित महा प्रतिभाशाली उग्रविहारी धर्मप्रचारी और सुविहितशिरोमणि आचार्य हुए आपश्री चन्द्र की भांति, शीतल, सूर्य सदृश तेजस्वी, मेरु की तरह अकम्प, धरनी के सदृश धीरे, एवं सहनशील, मेघ की तरह चराचर जीवो के उपकारी, जन शासन के स्तम्भ, एक महान् आचार्य हुए है आप का जीवन जन कल्याणार्थ ही हुआ था पट्टावलीकारों ने आपका जीवन विस्तार से लिखा है तथापि पाठको के कर्णपावन के लिये यहां पर संक्षप्त से लिख दिया जाता है। जिस समय का हाल हम लिख रहे है उस समय भारत के भूषण रूप करणावती नगरी अनेक जिनमन्दिरो से शोभायामन थी व्यापार का तो एक केन्द्र ही था वहाँ के व्यापारी लोग भारत के अलावा जल एवं स्थल रास्ता से पाश्चात्य प्रदेशों में भी व्यापार किया करते थे जिसमें अधिक व्यापारी उपकेशवंश के ही थे 'उपकेशे बहुत द्रव्य' इस वरदान के अनुसार उन व्यापारियो ने न्याय नीति एवं सत्यता के कारण व्यापारमे बहुत द्रव्य पैदा किया था और वे लोग उस द्रव्यको आत्मकल्याणार्थ एव धर्म कार्य में व्यय कर पुन्यानुबन्धी पुन्य का भी सचय किया करते थे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन सघ के जो आगे चल कर अठारह गौत्र हुए थे उसमें कन्नौजियागौत्र भी एक था। उस कन्नौजिया गौत्र मे शाह सारंग नामका धनकुबेर सेठ था जिसकी धवलकीर्ति चारो ओर प्रसरी हुई थी शाह सारंग बड़ा ही उदार एवं धर्मज्ञ था पांच वार तीर्थों का सघ निकालकर संघ को सोना मुहरों और वस्त्रों की पेहरामणी दी थी सात बडे यज्ञ जीमणवार किये थे याचकों को तो इतना दान दिया कि वे हर समय सारंग के यशोगान गाया करते थे शाह सारग के गृहदेवी धर्म की प्रतिमूर्ति रोहणी नाम की स्त्री थी। माता रोहणी ने तेरह पुत्र और सात पुत्रियो को जन्म देकर अपना जीवन को सफल बनाया था जिसमें पात्ता नामका पुत्र बड़ाही तेजस्व एवं होनहार पुत्र था माता रोहणी ने भगवान वासुपूज्य की [illegible] करणावती में एक आलीसांन मन्दिर बनाकर वासुपूज्यतीर्थंकर की प्रतिष्ठा भी करवाई थी।

जब पात्ता के माता पिता का स्वर्गवास हुआ तो घर का सब भार पात्ता के सिर [illegible] पात्ता व्यापार में बड़ाही दक्ष था उसने अपना व्यापारक्षेत्र को इतना विशाल बना दिया कि पाश्चात्य [illegible] [illegible] जावा जापान और चीनादि के साथ जल एव स्थल रास्ते [illegible] व्यापार किया करता था [illegible] [illegible] तो आप अपनी दुकानें भी खोली थी। देवी सच्चायिका की कृपा का यही [illegible] कि [illegible]

पुष्कल द्रव्य पैदा किया। शाह पात्ता जैसे द्रव्योपार्जन करने में दक्ष था इसी प्रकार न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने मे भी निपुण था जिसमें भी साधर्मि भाइयों की ओर आपका विशेष लक्ष था आपकों उपदेश भी इसी विषय का मिलता था। व्यापार में भी अग्रस्थान साधर्मी भाइयों को ही दिया करता था एक ओर तो जैन चार्यों का उपदेश और दूसरी ओर इस प्रकार की सहायता यही कारण था कि जैनेत्तर लोगों को जैन बना कर सुविधासे जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया जाता था शाह पात्ता बहुकुटम्ब वाला होने पर भी उनके वहाँ सम्पथा यही कारण था कि लक्ष्मी बिना आमन्त्रण किये ही पात्ता के वहाँ स्थिर स्थाना डालकर रहती थी।

जब वि० सं० ४२९ में एक जन संहारक भीषण दुकाल पड़ा तो साधारण लोगों में हा हा कार मचगया मनुष्य अन्न के लिये और पशु घास के लिये महान् दुःखी हो रहे थे शाह पाता से अपने देशवासी भाइयों का और मुक् पशुओं का दुःख देखा नहीं गया। उसने अपने कुटम्ब वालों की सम्मति लेकर दुकाल पीड़ित जीवों के लिये अन्न और घास के कोठार खुल्ला रख दिया कि जिस किसी के अन्न घास की जरूरत हो बिना भेदभाव के ले जाओं फिर तो क्या था दुनियां उलट पड़ी पर इतना संग्रह कहा था कि पाता मुल्क कों अन्न एवं घास दे सके ? जहां तक मूल्य से धान घास मिला वहां तक तो पाता ने जिस भाव मिला खरीद कर आगत कर आये हुए लोगों को अन्न घास देता रहा। जब आस पास में धन देने पर भी अन्न नहीं मिला इसका तो उपाय ही क्या था पर आये हुए दुःखी लोगो को ना कहना तो एक बड़ी शरम की बात थी शाह पात्ता की औरत ने कहा कि इन दु खियो का दुःख मेरे से भी देखा नहीं जाता है अतः मेरा जेवर ले जाओं पर इन लोगों को अन्न दिया करो। पात्ता ने अपने भाइयों को और गुमास्तों को भेज दिया कि देश एवं प्रदेश में जहां मिले वहां से अन्न एवं घास लाओं। बस चारों ओर लोग गये और जिस भाव मिला उस भाव से देश और प्रदेशों से पुष्कल धान लाये पर दुःकाल की भयंकरता ने इतना उग्र रूप धारण कियाकि शाह पात्त के पास जितना द्रव्य था वह सब इस कार्य में लगा दिया पर दुकाल का अन्त नहीं आया। औरतों का जेवर तक भी काल के चरणों में अर्पण कर दिया कारण पात्ता की उदारता मे सब दुनियां पात्ता के महमान बन गई थी अतः पात्ता ने अपने पास करोड़ों की सम्पति को वह सब इस कार्य में लगा दी जिसका तो कुछ भी रंज नहीं था पर शेप थोड़ा समय के लिये आये हुए आशाजन को निराश करने का बड़ा भारी दुःख था। आखिर शाह पात्ता ने तीन उपवास कर अपनी कुलदेवी सच्चायिका से प्रार्थना की कि यातो मुझे शक्ति दे कि शेप रहाहुआ दुकाल को सुकाल बना दूँ। या इस संसार से बिदा दें। देवी ने पात्ता की परोपकार परायणता पर प्रसन्न होकर एक कोथली (थेली) देदी कि जितना द्रव्य चाहिये उतना निकालले जाओं तुमारा कार्य सिद्ध होगा। बस देवी तो अदृश्य होगई शाहपात्ता ने पहिले दुःखी लोगों की सार संभाल ली बाद पारणा किया, अब तो पात्ता के पास अखूट खजाना आगया और शेप रहा हुआ दुकाल का शिर फोड़ कर उसको निकाल दिया जब वर्षाद पानी हुआ तो जनता पात्ता को आशीर्वाद देकर अपने २ स्थान को चली गई। शाहपात्ता अपने कार्य में सफल हुआ और पुनः तीन उपवास कर देवी की आराधना की जब देवी आई तो पात्ता ने कहा भगवती यह आपकी थेली संभाल लीजिये। देवी ने ने कहा पात्ता मैं तुझे थेली दे चुकी हूँ, इसको तुम अपने काम में ले। पात्ता! तूँ बड़ा ही भाग्यशाली है तेरे पुन्ब से संतुष्ट हो यह थेली तुझे दी है इत्यादि। पात्ता ने कहा देवीजी आपने बड़ी भारी कृपा की पर

मेरा काम निकल गया अब इस थेली की जरूरत नहीं है अतः आप अपनी थेली ले जाइये। पात्ता के निस्पृही शब्द सुन देवी बहुत खुश हुई और कहा कि पात्ता तेरे पास थेली रहगी तो इसका दुरुपयोग नहीं पर सद्उपयोग ही होगा। देवो की दी हुई प्रासादी वापिस नहीं ली जाति है इस थेली को तुं खुशी से रख। इत्यादि देवी की अत्याग्रह से पाता ने थेली रखली पर उस थेली को अपने काम में नहीं ली। पाता ने पुनः व्यापार करना शुरु किया थोड़े ही समय मे पात्ता ने बहुत द्रव्य पैदा कर लिया और जवेरात वगैरह के व्यापार में धन बढ़ते क्या देर लगती है चाहिये मनुष्य के पुन्य खजाना में। पात्ता पहिले की तरह पुन: कोटी धीश बनगया कहा है कि समय चला जाता है पर बात रह जावि है शाह पात्ता की धवल कीर्ति अमर होगई जो आकाश मे चन्द्र सूर्य रहगा वहां तक पाता की यशः पताका विश्व में फहराती रहगी किसी कवि ने ठीक कहा है कि

" माता जिणे तो ऐसा जीण, के दाता के शूर, नहीं तो रही जे वांझड़ी मती गमाजे नूर। "

धर्म पाण लब्ध प्रतिष्ठित पूज्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरि अपने शिष्यमण्डल के साथ विहार करते हुए करणावती नगरी की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार करणावती के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। जनता आपके पुनीत दर्शनो की कई अर्सो से अभिलाषा कर रही थी श्रीसंघ ने बड़ा ही आलीसान महोत्सव कर सूरिजी को नगर प्रवेश कराया सूरिजी ने थोड़ी पर सार गर्भित देशना दी जिसमें त्रिलोक्य पूजनीय तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा के पूर्व दिया हुआ वर्षीदान का इस प्रकार वर्णन किया कि परिषदा पुन्यशाली पात्ता की ओर टीकटकी लगा कर देखने लगी। किसी एक व्यक्ति से रहा नहीं गया उसने कहा पूज्यवर! तीर्थङ्कर भगवान् तो एक अलौकिक पुरुष होते है उनकी माता विश्व भर में ऐसे एक पुत्र रत्न को ही जन्म देती हैं उनकी बराबरी तो कोई देव देवेन्द्र भी नहीं कर सक्ते है पर इस कलिकाल में हमारे नगरी का भूषण शाहपात्ता अद्वितीय दानेश्वरी है इसने भयंकर दुकाल में करोड़ों रुपये नहीं पर अपनी औरतो का जेवर तक अपने देशवासी भाइयो के प्राण रक्षणार्थ वोच्छावर कर दिये ? इत्यादि सूरिजी ने भी नी प्रकार का पुन्य वतला कर शाह पात्ता के उदारता की खूब ही प्रशंसा की बाद मे सभा विसर्जन हुई।

आचार्य श्री का व्याख्यान प्रति दिन होता था आप जिस समय वैराग्य की धून में ससार की असारता का वर्णन करते थे तब जनता की यही भावना हो जाति थी कि इस घोर दुःखमय संसार को तिलाञ्जली देकर सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया जाय तो अच्छा है। एक समय सूरिजी ने चक्रवर्ति की ऋद्धि का वर्णन करते हुए फरमाया कि महानुभावों! मनुष्यों के अन्दर सब से बड़ी ऋद्धि चक्रवर्ति की होती है जिनके चौदह रत्न और नवनिधान तथा इनके अधिष्ठायिक पच्चीस सहस्र देवता हाजरी मे रहते हैं उन चौदह रत्नो में सात रत्न पांचेन्द्रिय है जैसे --

१. सेनापति—चक्रवर्ति की दिग्विजय मे सैना का संचालन करता है।
२. गाथापति—खान पान वगैरह तमाम आवश्यक पदार्थ की व्यवस्था करता है।
३. वढ़ाई रत्न—जहां जरूरत हुई वहां मकान वगैरह की व्यवस्था करे।
४. पुरोहित—तुष्टि पुष्टि वगैरह शान्ति कार्य का करने वाला।
५ गजरत्न—युद्ध एवं संग्राम में विजय प्राप्त कराने वाला पट्टदो हस्ति।

६. अश्वरत्न--चक्रवर्ति के खास सवारी करने के काम में आवे।

७. स्त्री रत्न- चक्रवर्ति के भोग विलास के काम में आवे।

ये सात पंचेन्द्रिय रत्न अब सात एकन्द्रिय रत्न कहते हैं:—

१. चक्ररत्न- षट् खण्ड विजय के समय मार्ग दर्शक।

२. छत्ररत्न—चक्रवर्ति पर छत्र तथा वरसाद समय सैना का रक्षण करे।

३. चामररत्न —नदी समुद्र से पार होने में काम आवे।

४. दण्डरत्न—तमस्त्र गुफा के द्वारा खोलने में काम आवे।

५. खण्डगरत्न—दुश्मनों का शिर काटने में काम आवे।

६. मणिरत्न—अंधेरा में उद्योत करने के काम में आवे।

७. काकणिरत्न—तामस गुफा में ४९ मांडना करने के काम में आवे।

इस प्रकार चौदह रत्न होते है तथा चक्रवर्ती के नौ निधांन होते है उनके नाम और काम।

१. नैसर्पः निधान—नये नये ग्राम नगर पट्टनादि स्थान बनाने की विधि।

२. पाण्डुक निधान—चौवीस जाति का धान उत्पन्न करना बीज बोनादि की विधि।

३. पिंगल निधान—गीनत विषय एवं सर्व प्रकार के व्यापार करने का विधान।

४. सर्वरत्न निधान—सर्व जाति के रत्नों की परीक्षा पहचान विषय की विधि।

५. महापद्म निधान—सर्व जाति के वस्त्र बुनना रंगना धोना वगैरह की विधि।

६. काल निधान—भूत भविष्य वर्तमान काल का शुभाशुभ फल वगैरह की विधि तथा शिल्पादि हुन्नर उद्योग वगैरह स्त्री एवं पुरुषों की तमाम कलाएँ।

७. महाकाल निधान—लोहा तांबा सोना रूपा मणि मुक्ताफलादि की उत्पति और भूषणादि की विधि।

८. मणवक निधान—शूरवीर योद्धा बनाना उनके सर्व प्रकार के शस्त्र बनाना चलाना की विधि।

९. शंख निधान—सर्व प्रकार के नाटक गाना वजाना तथा धर्मार्थ काम मोक्ष एवं चारों पुरुषार्थ वगैरह की विधि। अतः इन नौ निधान में सब संसार के कार्यक्रम की विधि वतलाई है। और संसार में जितने न्याय नीति व्यापार कृषीकर्म खाने पीने भोग विलास सन्तानोत्पति आदिके साधन वगैरह जितने कार्य है उन सब का विधान इन नौ निधान में आ जाता है।

चक्रवर्ति के चौदहरत्न और नौनिधान तो अपने सुन लिया है पर इनके अलावा भी बहुतसी ऋद्धि है।

१—चौरासी लक्ष हस्ति इतने ही अश्व और रथ होते है।

२—छनुवें करोड़ पायदल हथियार बद्ध पैदल सिपाई होते है।

३—तेवीस करोड़ ऊँट और तीन करोड़ पोटिया भार वहने वाले बलद।

४—बत्तीस हजार मुगटबद्ध राजा चक्रवर्ति की सेवा में रहते है।

५—चौसट हजार अन्तेवर (रानियों) इनके साथ दो दो वरगणाए थी उन सब की गनती की जाय तो एक लक्ष और बराणु हजार १९२००० और इतने ही रूप चक्रवर्ति वैक्रय बनाया करते है कि कोई रानी का महल चक्रवर्ति शून्य नहीं रहे।

६—बत्तीस हजार नाटक करने वाली मण्डलियां थी।

७—देश ३२००० पट्टन ४८००० मण्डप २४००० सन्निवेश ३६००० और ग्राम ९६००००००० (एक ग्राम में कम से कम दशहजार घर होना लिखा है।)

८—गायों के गोकुल ३ करोड़। तीन करोड़ हल जमीन खड़ने के।

९—सेठ तीन करोड़ कोटवाल चौरासी लक्ष, वैद्य तीन करोड़, रसोइया ३६० मैला १४००० राजधानी ३६००० बाजा तीन लाख।

१०—सोने के आगह २०००० रूपा को २४००० रत्नों की १६०००।

११—चक्रवर्ति का लस्कर ४८ कोश मे स्थापन होता था।

इत्यादि चक्रवर्ति की ऋद्धि ग्रन्थान्तर कही है हां वर्तमान अल्पऋद्धि वाले लोग इन ऋद्धि को सुनकर शायद् विश्वास नहीं करते होगें पर जब मनुष्य के पुन्योदय होता है तब ऐसी ऋद्धि प्राप्त होना कोई असंभव सी बात नहीं है यह तो अखिल भारत की ऋद्धि बतलाई है पर आज देश विदेशों में एक-एक प्रान्त एवं राजधानी में भी देखी जाय तो बहुत सी ऋद्धि पाई जाति है तब असंख्य काल पूर्व उपरोक्त ऋद्धि हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कई लोग चक्रवर्ति के हस्ती अश्व रथ पैदल वगैरह की संख्या सुन कर संदह करते है पर भरतक्षेत्र के छखण्डो का क्षेत्र फल का हिसाब लगा कर देखा जाय तो स्वयं समाधान हो सकता है। खैर इन ऋद्धि को भी चक्रवर्तियों ने असार समझी थी।

इस प्रकार की ऋद्धि एवं सुख थे पर आत्मिक सुखों के सामने उन पद्गलिक सुखों की कुछ भी कीमत नहीं थी अतः चक्रवर्तियो ने उन भौतिक सुखों पर लात मार कर दीक्षा लेली थी तब ही जाकर वे संसार भ्रमन एवं जन्म मरण के दुःखो से छुटकारा पाकर मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त हुए थे और जिन चक्रवर्तियों ने आत्मा की ओर लक्ष नहीं दिया और पुद्गलिक सुखों को ही सुख मान लिया वे सातवी नरक के महमान बनगये कहा है कि 'खीणमात सुखा बहुकाल दुःखा' अर्थात् उस नरक के पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य के सामने मनुष्य की आयुः क्षण मात्र है अतः क्षणमात्र सुखों के लिये दीर्घ काल के दुःख सहन करना पड़ता है। अब इस पर आप लोग स्वयं विचार कर सकते हो कि प्राप्त हुई शुभ सामग्री का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये इत्यादि सूरिजी ने बड़े हो वैराग्योत्पादक व्याख्यान दिया।

यों तो सूरिजी की देशना सुन अनेक भावुको का दिल संसार से हट गया था। परन्तु शाह पाता ने तो निश्चय ही कर लिया कि मिली हुई उत्तम सामग्री का सदुपयोग करना ही मेरे लिये कल्याण का कारण हो सकता है शाहपाता ने उसी व्याख्यान में खडा हो कर कहा पूज्यवर। आपने व्याख्यान देकर मोह निद्रा में सोये हुए हम लोगों को जागृत किया है दूसरो की म नहीं कह सकता हूँ पर मैं तो आपश्री जी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को तैयार हूं। सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' पर शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना कारण 'श्रेयंसैवहुविघ्नानि' तथाऽस्तु बाद भगवान महावीर और सूरिजी की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। पर आज तो करणावती नगरी में जहां देखो वहा दीक्षा की ही बातें हो रही है जैसे कोई वरराज की बरात के लिये तयारियें होती हो इसी प्रकार शाह पाता के साथ दिक्षरमणी के लिये तैयारियें होने लग गयी। शाह पाता की उस समय ५० वर्ष की उमर थी और पाच पांडवो के सदृश पाता के पांच पुत्र थे पाता के बारह बन्धु और उनके पुत्रादि बहुत सा परिवार भी था सबको कह दिया कि संसार असार है एक दिन मरना अवश्य है परन्तु दीक्षा लेकर मरना समझदारो के लिये कल्याण का कारण है ? पाता के एक

पुत्र चार भाई और उनकी स्त्रियें दीक्षा लेने को तैयार होगये तथा करणावती नगरी और आसपास के दर्शनार्थी आये हुए भावुकों से कई ७२ नर नारी दीक्षा रूपी शिवसुन्दरी के गले में वरमाल डालने को आतुर बन गये। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिकादि अनेक प्रकार से महोत्सव करवाया जिस समय उन मोक्ष के उम्मेदवारों के साथ वरघोड़ा चढ़ाया गया तो मानों एक इन्द्र की सवारी ही निकली हो कारण सबके दिल में बड़ा भारी उत्साह था इस प्रकार की दीक्षा का ठाठ में ऐसा कौन व्यक्ति हतभाग्य है कि जिनके हृदय में आनन्द की लहर नहीं उठती हो। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में उन सबको विधि विधान के साथ भगवती जैन दीक्षा देकर संसार समुद्र से उनका उद्धार किया शाह पाता का नाम मुनि मोदरत्न रख दिया। शाह पात्ता संसार में बड़ा ही भाग्यशाली एवं उद्धार रत्न था। अब तो आपकी कान्ति एवं कीर्ति खूब ही बढ़ गई। सूरिजी महाराज की भी आप पर पूर्ण कृपा थी मुनि प्रमोदरत्न ने स्थविर भगवान् का विनय भक्ति कर वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया व्याकरण न्याय तर्क छन्द काव्य तथा ज्योतिष एवं अष्टाङ्ग महानिमितादि शास्त्रों के भी आप धुरंधर विद्वान एवं मर्मज्ञ बन गये शास्त्रार्थ में तो आप सिद्धहस्त थे कई स्थानो पर क्षणकवादी बोद्धों को आपने इस प्रकार परास्त किये कि आपश्री का नाम सुनकर वे घबरा उठते थे। विशेषता यह थी कि आप गुरुकुल वास से एक क्षण भर भी अलग रहना नहीं चाहते थे यही कारण है कि सोपरपट्टन के वाप्यनागगौत्रय शाह दुर्जण के महामहोत्सव पूर्वक आपको उपाध्याय पद से सुशोभित किया। तदान्तर आप सूरिजी के साथ अनेक प्रान्तों में भ्रमन कर जैनधर्म का प्रचार किया।

एक समय आचार्य रत्नप्रभसूरि विहार करते हुए उपकेशपुर में पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी महाराज की वृद्धावस्था के कारण व्याख्यान उपाध्याय प्रमोदरत्न दे रहे थे जिनका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा था सूरिजी के उपदेश से धर्म प्रचार के लिये चतुर्विध श्रीसंघ की सभा हुई थी उस समय सूरिजी विचार कर रहे थे कि अब मेरी आयुष्य नजदीक है तो मैं मेरे पट्ट पर योग्य मुनि को सूरिपद दे दू ठीक उसी समय देवी सच्चायिका ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्म लाभ देकर देवी से सम्मति ली तो देवी ने उपाध्याय प्रमोदरत्न के लिये अपनी सम्मति दे दी यही विचर सूरिजी के थे बस सुबह श्री संघ को सूचित कर दिया अतः वहां के श्रेष्टि गौत्रीय शाह गोसल ने अपने न्यायोपार्जित नौ लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरि पद का महोत्सव किया और सूरिजी ने उपाध्याय प्रमोदरत्न को आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया तथा और भी कई योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान की बाद गोशल ने बाहर से आया हुआ संघ को अनेक प्रकार की पेहरावनी देकर विसर्ज्जन किया। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपने चौवीस वर्ष के शासन में जैन धर्म का खूब ही प्रचार किया अन्त में उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर २७ दिन का अनशन कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

आचार्य यक्षदेवसूरिजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली थे धर्म प्रचार बढ़ाने में विजयी चक्रवर्ति की भांति सर्वत्र अपना धर्मचक्र वरता रहेथे। आपश्री ने उपकेशपुर से विहार कर मरुधर के छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्मोपदेश करते हुए आर्बुदाचल की यात्रार्थ पधारे वहाँ निर्वृति का स्थान देख कुछ अर्सा स्थिरता कर दी एक दिन आप मध्यन्ह में ध्यान कर रहे थे तो वहाँ की अधिष्टायिका चक्रेश्वरी एवं सच्चायिका दोनों देवियों आकर सूरिजी को वन्दन किया सूरिजी ने 'धर्मलाभ' दिया दोनों देवियों तथाऽस्तु कहकर सूरिजी की सेवा में ठहर गई। सूरिजी ने कहा कहो देवीजी भविष्य का क्या हाल है ? देवियों ने कहा पूज्यवर ! आप

भाग्यशाली है शासन के हितचिंतक एवं गच्छ का अभ्युदय करने वाले है पर यह पंचम आरा महाक्रूर है इनके प्रभाव से कोई भी बचना बड़ा ही मुश्किल है। पूज्यवर! आपके पूर्वजो ने महाजन संघ रूपी एक संस्था स्थापन करके जैनधर्म का महान् उपकार किया है अगर यह कह दिया जाय कि जैन धर्म को जीवित रक्खा है तो भी अतिशय युक्ति नहीं है और उनके सन्तान परम्परा में आज तक बड़ी सावधानी से महाजन संघ का रक्षण पोषण एवं वृद्धि की है इसका मुख्य कारण इस गच्छ में एक ही आचार्य की नायकता में चर्तुविध श्री संघ चलता आया है पर भविष्य में इस प्रकार व्यवस्था रहनी कठिन है तथापि आप भाग्यशाली है कि आप का शासन तो इसी प्रकार सुख शान्ति में रहेगा इत्यादि। सूरिजी ने कहा देवीजी आप का कहना सत्य है पूर्वाचार्य्यों ने इसी प्रकार महान उपकार किया है और इसमे आप लोगो की भी सहायता रही है इत्यादि वार्तालाप हुआ बाद वन्दन कर देवियां तो चली गई पर सूरिजी को बडा भारी विचार हुआ कि देवियों ने भले खुल्लमखुल्ला नहीं कहा है पर उनके अभिप्रायों से कुछ न कुछ होने वाला अवश्य है पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है।

जिस समय आचार्य यक्षदेवसूरि आर्बुदाचल तीर्थ पर विराजते थे उस समय सौराष्ट्र में विहार करने वाले वीर सन्तानिये मुनि देवभद्रादि बहुत से साधुओ ने सुना कि आचार्य यक्षदेवसूरि आर्बुदाचल पर विराजते है अतः वे दर्शन करने को आये भगवान आदीश्वर के दर्शन कर सूरिजी के पास वन्दन करने को आये। सूरिजी ने उनका अच्छा सत्कार किया। देवभद्रादि ने कहा पूज्याचार्य देव आप बड़े ही उपकारी है आपके पूर्वजों ने अनेक कठनाइयों को सहन कर अनार्य जैसे वाममार्गियो के केन्द्र देशों में जैन धर्म रुपी कल्पवृक्ष लगाया और आप जैसे परोपकारी पुरुषों ने उनको नवपल्लव बनाया जिनके फल आज प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहे है अतः हम एवं जैन समाज आपके पूर्वजो एवं आपका जितना उपकार माने उतना ही थोड़ा है इत्यादि। सूरिजी ने कहा महानुभावो! आप और हम दो नहीं पर एक ही है उपकारी पुरुषो का उपकार मानना अपना खास कर्तव्य हैं साथ में उन पूज्य पुरुषों का अनुकरण अपने को ही करना चाहिये आप जानते हो कि आज बौद्धो का कितना प्रचार हो रहा हैं यदि अपुन लोग धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध होकर प्रत्येक प्रान्त में विहार नहीं करे तो उन पूर्वाचार्यों ने जिस जिस प्रान्त में धर्म के बीज बोये है वे फला फूला कैसे रह सकेंगे। इत्यादि वार्तालाप के पश्चात् जिन २ मुनियों के गोचरी करनी थी वे भिक्षा लाकर आहार पानी किया परन्तु अधिक साधुओ के तपस्या ही थी—

अहा हा पूर्व जमाना में साधुओ मे कितनी वात्सल्यता कितनी विशाल उदारता और कितनी शासन एवं धर्म प्रचार की लग्न थी जहां कभी आपस मे साधुओ का मिलाप होता वहां ज्ञान ध्यान एवं धर्म प्रचार की ही बातें होती थी आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने शिष्यो के साथ आये हुए मुनियों को भी आगमो की वाचनादि अनेक प्रकार से अध्ययन करवाया जिससे उन मुनियो को बड़ा भारी आनन्द हुआ तथा वे मुनि सूरिजी की सेवा मे रहकर और भी ज्ञान प्राप्ति करने का निश्चय कर लिया। इतना ही क्यों पर वे सूरिजी के विहार में भी साथ ही रहे सूरिजी आर्बुदाचल से विहार कर शिवपुरी पधारे और वहां पर प्राग्वट गोत्रीय शाह शोभन ने एक क्रोड़ द्रव्य व्यय कर भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर बना था जिसकी प्रतिष्ठा करवा कर शाह शोभनादि बहु नर नारियो को दीक्षा दी जिस समय सूरिजी मरुधर आर्बुदाचल के आस पास में भ्रमन कर रहे थे ठीक उस समय कभी कभी विदेशी म्लेच्छों का भी आक्रमण पर आक्रमण हुआ करते थे

धर्मान्ध लोग धनमाल के साथ पवित्र मन्दिर मूर्त्ति पर भी दुष्ट परिणामों से हमले किया करते थे परन्तु वे धर्मप्राण आचार्य मन्दिरों के लिये अपने प्राणों की वोच्छावर करते देर नहीं करते थे कही उपदेश से कही विद्या बल से कही यंत्रादि से और कभी कभी अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो जाते थे इससे पाठक समझ सकते है कि उस समय श्रीसंघ की मन्दिर मूर्त्तियों पर कैसी दृढ़ श्रद्धा और हृदय में कैसी भक्ति थी यदि यह कह दिया जाय की इन मन्दिर मूर्त्तियों के जरिये ही जैन धर्म जीवित रह सका है तो भी कुच्छ अतिशय युक्ति नहीं है। इतना ही क्यो पर आज हम देखते है कि जैन धर्म की प्राचीनता के लिये सब से श्रेष्ट साधन है तो एक प्राचीन मन्दिर मूर्त्तियों ही है पाश्चत्य प्रदेशों में एक समय जैन धर्म का काफी प्रचार था इसकी सावुति के लिये भी आज वहाँ के भूगर्भ से मिली हुई मूर्ति के अलावा और क्या साधन है। इत्यादि मन्दिर मूर्तियों धर्म का एक खास अंग ही समझा जाता था।

जिस समय सूरिजी महाराज मरूधर भूमि में विहार कर जैन धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे उस समय मेदपाट में कुच्छ बोद्धों के साधु आये और अपने धर्म का प्रचार वढ़ाने लगे क्रमशः वे आघाट नगर में पहुंचे और अपने धर्म की महिमा के साथ जैन धर्म की निन्दा भी कर रहे थे कारण आघाट नगर में प्रायः राजा प्रजा सब जैनधर्मोपासक ही थे। इस हालत में संघ अग्रेसरों ने मरुधर में आकर आचार्यय यक्षदेवसूरि से प्रार्थना की कि पूज्यवर! आप शीघ्र ही मेदपाट में पधारें जिसका कारण भी बतला दिया सूरिजी ने बिना विलम्ब मेदपाट की ओर विहार कर दिया और क्रमशः आघाट नगर के नजदीक पधारगये जिसको सुनकर बोद्ध भिक्षु पलायन करगये कारण पहिले कई वार सूरिजी के हाथों से वे परास्त हो चूके थे। श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिजी आघाटनगर में पधारे और अपने पास के बहुत साधुओं को मेदपाट में विहार करने की आज्ञा देदी। धर्म का प्रचार एवं रक्षण केवल बातें करने से ही नहीं होता है पर परिश्रम एवं पुरुषार्थ करने से होता है हम उपकेशगच्छचार्यो के विहार को देखते है तो ऐसा एक भी आचार्य नहीं था कि किसी एकादी प्रान्त में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त करदी हो। इसका एक कारण तो यह था कि उपकेशवंश प्राग्वटवंश और श्रीमालवंश आपके पूर्वजों के स्थापित किया हुआ था और इन वंशों की वृद्धि भी प्रायः उपकेशगच्छ के आचार्यों ने ही की थी उनका रक्षण पोषण और वृद्धि करना उनके नसों में ठूस ठूस कर भरा था दूसरे उपकेशवंशादि महाजन संघ भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में फैला हुआ था। क्योंकि इन वंशों में अधिकतर लोग व्यापारी थे और वे अपनी व्यापार सुविधा के कारण हरेक प्रान्त में जाकर बस जाते थे अतः उनको धर्मोपदेश देने के लिये मुनियों को एवं आचार्यों को भी उन प्रान्तों में विहार करना ही पड़ता था—

आचार्य यक्षदेवसूरि ने आघाट नगर में चतुर्मास करदिया और आस पास के क्षेत्रों में अपने साधुओं को भी चतुर्मास करवा दिया कि मेदपाट प्रान्त भर में जैन धर्म की अच्छी जागृति एवं उन्नति हुई कई मन्दिरों की प्रतिष्टा करवाई कई भावुकों को भवतारणी दीक्षा दी वाद चतुर्मास के मेदपाट आवंति और बुन्देलखण्ड में विहार करते हुए। आप मथुरानगरी में पधारे। वहां पर भी बोद्धों का खासा जोर जमा हुआ था और जैनों की भी अच्छी आवादी थी आचार्य यक्षदेवसूरि के पधारने से वहां के श्रीसंघ में धर्म की खूब जागृति हुई सूरिजी का व्याख्यान हमेशा तात्विक दार्शनिक एवं त्याग वैराग्य पर इस प्रकार होता था कि जैन जैनेत्तर जनता सुनकर बोधको प्राप्त होती थी—

आचार्य यक्षदेवसूरि की वादियों पर बड़ी भारी धाक जमी हुई थी मथुरा में बोद्धो का बड़ा भारी जोर होने पर भी आचार्यश्री एवं जैनधर्म के सामने वे चू तक भी नही करते थे।

जिस समय आचार्यश्री मथुरा मे विराजमान थे उस समय काशी की ओर से एक कपालिक नाम का वेदान्तिकाचार्य अपने ५०० शिष्योके साथ मथुरा मे आया हुआ था उस समय वेदान्तिकों का जोर बहुत फीका पड़ चुका था तथापि आचार्य कपालिक बड़ा भारी विद्वान् था एव आडम्बर के साथ आया था अतः वहां के भक्त लोगों ने उनका अच्छा सत्कार किया उन्होने भी अपने धर्म की प्रशंसा करते हुए जैन और बोद्ध को हय बतलाया। इस पर बोधो ने तो कुच्छ नही कहां पर जैनो से कब सहन होता जिसमे भी आचार्य यक्षदेवसूरि का वहां विराजना। जैनो ने आल्हान कर दिया कि आचार्य कपालिक में अपने धर्म की सच्चाई बताने की ताकत हो तो शास्त्रार्थ करने को तैयार होजाय। इसकों वेदान्तियों ने स्वीकार कर लिया और दोनों ओर से शास्त्रार्थ की तैयारी होने लगी। शर्त यह थी कि जिसका पक्ष पराजय होवे विजयिता का धर्म को स्वीकार करले।

ठीक समय पर मध्यस्थ विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ हुआ पूर्व पक्ष जैनाचार्य यक्षदेवसूरि ने लिया आपका ध्येय 'अहिंसा परमोधर्म' का था और यज्ञ मे जो मुक् प्राणियो की बली दी जाती है ये धर्म नहीं पर एक क्रूर अधर्म एव नरक का ही कारण है विदान्तिक आचार्य ने यज्ञ की हिंसा वेद विहित होने से हिंसा नहीं पर अहिंसा ही है इसको सिद्ध करने को बहुत युक्तियें दी पर उनका प्रतिकार इस प्रकार किया गया कि शास्त्रार्थ की विजयमाल जैनों के शुभकण्ठ मे ही पहनाई गयी। आचार्य कापालिक जैसा विद्वान् था वैसा ही सत्योपासक भी था आचार्य यक्षदेवसूरि के अकाट्य प्रमाणो ने उनपर इस प्रकार का प्रभाव डाला कि उसकी भद्रात्मा ने पलटा खाकर अहिंसा भगवती के चरणोंमें शिर झुका दिया और उसने अपने पांचसौ शिष्यों के साथ आचार्य यक्षदेवसूरि के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली जिससे जैन धर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई आचार्य श्री ने कपालिका को दीक्षा देकर कपालिक का नाम मुनि कुंकुंद रख दिया इतना ही क्यों पर इस शास्त्रार्थ के बाद ३२ बौद्ध साधुओ को भी सूरिजी ने दीक्षा दी तत्पश्चात् मथुरा के संघ की ओर से बनाये हुए कई नूतन मन्दिरो की प्रतिष्टा करवाई और भाद्र गौत्रीय शाह सरवण ने पूर्व प्रान्त की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला सूरिजी एवं आपके मुनिगण जिसमें नूतन दीक्षित (वेदान्तिक एवं बोध) सब साधु साथ मे थे सघ पहले कलिंग के शत्रुञ्जय गिरनार अवतार की यात्र की बाद बंगाल प्रान्त (हेमाचल) की यात्रा करते हुए विहार मे राजगृह के पांच पहाड़ पावापुरी चम्पापुरी वगैरह तीर्थों की यात्रा कर बीस तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेशिखर तीर्थ के दर्शन स्पर्शन एवं यात्रा की वहा से सघ भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याणभूमि काशी आया और बनारस तथा आस पास की कल्याणक भूमि की यात्रा की इन यात्राओं से सकल श्रीसंघ को बड़ा ही आनन्द आया और सब ने अपना सौभाग्य समझा।

सूरिजी हस्तनापुर होते हुए पंजाब में पधार गये शेष साधु वापिस सघ के साथ मथुरा आये। सूरिजी पंजाब सिन्ध और कच्छ होते हुए सौराष्ट्र मे आकर श्री शत्रुंजय की यात्रा की इस विहार के अन्दर मुनि कुंकुंद जैनागमो का अध्यापन कर धूरंधर विद्वान हो गया था इतना ही क्यो पर पंजाबादि प्रदेशों में अपने अहिंसा धर्म का खूब प्रचार भी किया था इस विषय मे तो आपकी खूब ही गति थी कारण आपके व्याख्यान [illegible] देते हुए थे। सूरिजी महाराज ने मुनि कुकुंदको ५०० साधुओं के साथ बंगालादि प्रदेश मे विहार की [illegible]

दी थी और आप सौराष्ट्र एवं लाठ प्रदेश में विहार करते हुए आर्बुदाचल पद्मावती चन्द्रावती होते हुए पाल्हिका नगरी में पधारे वहाँ के श्रीसंघ के अत्यग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास पाल्हिका नगरी में ही किया आप श्रीजी के विराजने से धर्म की अच्छी उन्नति हुई। चतुर्मास के पश्चात् एक संघ सभा भी की गई थी जिसमें बहुत से साधुसाध्वियों नजदीक एवं दूर से आये परन्तु मुनि कुंकुंद नहीं आया जिसका चतुर्मास सोपार पट्टन में जो कि अधिक दूर नहीं था फिर भी सूरिजी ने इस पर अधिक विचार नहीं किया। संघ सभा के अन्दर धर्मप्रचार एवं मुनियों का विहार वगैरह विषय पर उपदेश दिया गया और कई योग्य मुनियों को पदवियों भी दी गई जिसमें मुनि सोमप्रभादि को उपाध्याय पद से विभूषीत किए बाद मुनियों को योग्य क्षेत्रों में विहार की आज्ञा दी और सूरिजी मरुधर प्रान्त में विहार किया और क्रमशः आप उपकेशपुर पधारे श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। देवी सच्चायिका भी सूरिजी को वन्दन करने को आई सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया देवी की एवं वहाँ के श्रीसंघ की बहुत आग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास उपकेशपुर में करना निश्चित कर दिया इधर तो सूरिजी का चतुर्मास उपकेशपुर में हुआ उधर मुनि कुंकुंद एक हजार मुनियों के परिवार से मरुधर में आ रहा था जब वे भिन्नमाल आये तो वहाँ के श्रीसंघ ने अत्याग्रह से विनति की जिससे उन्होंने भिन्नमाल नगर में चतुर्मास कर दिया। कुछ मुनियों को आस पास के क्षेत्रों में चतुर्मास करवा दिया। मुनि कुंकुंद बड़ा भारी विद्वान एवं धर्मप्रचारक था आपने अनेक स्थानों पर यज्ञ वादियों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी एवं असंख्य प्राणियों को अभयदान दीलाया था इतना ही क्यों पर आप अपनी प्रज्ञा विशेष के कारण लोग प्रिय भी बन गये थे परन्तु कलिकाल की कुटलगति के कारण आपके दिल में ऐसी भावना ने जन्म ले लिया था कि मैं वेदान्तिक मतमें भी आचार्य था अतः यहाँ भी आचार्य बनकर वेदान्तियों को बताता हूँ कि गुणीजन जहाँ जाते है वही उनका सत्कार होता है इत्यादि आपकी भावना दिन व दिन बढ़ती ही गई और इसके लिये आप कई प्रकार के उपाय भी सोचने लगे। खैर मुनि कुंकुंद भिन्नमाल में श्रीमालवंशीय शाह देशल के महामहोत्सवपूर्ण श्री भगवतीजी सूत्र व्याख्यान में वाचना प्रारम्भ किया दिया जो उस जमाना में बिना आचार्य की आज्ञा सामनसाधु व्याख्यान में श्री भगवती जी सूत्र नहीं वाच सकता था और श्रावक लोग भी इसके लिये आग्रह नहीं किया करते थे

भिन्नमाल और उपकेशपुर के लोगों में आपस का खासा सम्बन्ध था तथा व्यापारादि कारण से बहुत लोगों का आना जाना हुआ ही करता था जब आचार्य श्री ने सुना कि भिन्माल में मुनि कुंकुंद का चतुर्मास है और व्याख्यान में श्री भगवतीजी सूत्र वाच रहा हैं। उस समय आपकों आर्बुदाचल में कही हुई देवियों की बात याद आई। खैर भवितव्यताकों कौन मिटा सकता है।

आचार्य श्री व्याख्यान में श्री स्थानायांग जी सूत्र फरमा रहे थे जिसके आठवाँस्थानक में आचार्य पद एवं आचार्य महाराज की आठ सम्प्रदाय का वर्णन आया था जिसको सुनाने के पूर्व प्रसंगोपात सूरिजी ने कहा कि महानुभावों! आचार्य कोई साधारण पद नहीं है पर एक बड़ा भारी जुम्मावारी का पद है जैसे जनता की जुम्मावारी राजा के शिर पर रहती है इस प्रकार शासन की एवं गच्छ की जुम्मावारी आचार्य के जुम्मा रहती है। यही कारण है कि तीर्थङ्कर देव एवं गणधर महाराज ने फरमाया है कि आचार्य पद प्रदान करने के पूर्व उनकी योग्यता देखनी चाहिये जिसके लिये सबसे पहिला—

१—जातिवान् माता का पक्ष निर्दोष एवं निष्कलंक होना चाहिये।

२—कुलवान्—पिता का पक्ष विशुद्ध होना चाहिये कारण मातपिता के वंश का असर उसकी सन्तान पर अवश्य पड़ता है। दूसरा जातीवान् कुलवान् होगा तो अकार्य नहीं करेगा। अकृत्य करते हुए को अपनी जातिकुल का विचार रहेगा अतः सबमे पहिला जातिवान् कुलवान् हो उसको ही आचार्य बनावे—

३—लज्जावान्—लोकीक एवं लोकोतर लज्जावान हो लज्जावान् अनुचित कार्य नहीं करेगा

४—बलवान्—शरीर आरोग्य—तथा उत्साह और साहसीकता हो।

५—रूपवान् शरीर की आकृति शोभनीक एवं सर्वांगसुन्दराकारहो

६—ज्ञानवान्—वर्तमान साहित्य यानि स्व-परमत के शास्त्रो का ज्ञाता है उत्पतिकादि बुद्धि हो कि पुच्छे हुए प्रश्नो के योग्य उत्तर शीघ्रता से दे सके

७—दर्शनवान्—षट्दर्शन के ज्ञाता और तत्त्वोपर पूर्णश्रद्धा

८—चारित्रवान—निरतिचार यानि अखण्ड चारित्रकों पालन करे

९—तेजस्वी—प्रताप नामकर्म का उदय हो कि आप शान्त होने पर भी दूसरो पर प्रभाव पड़े

१०—वचनस्वी—माधुर्यतादि वचन में रसहो जनता को प्रिय लगे वचन निः सफल न हो

११—ओजस्वी—क्रान्तिकारी स्पष्ट और प्रभावोत्पादक वचन हो।

१२—यशस्वी—यशः नामकर्म का उदय हो कि प्रत्येककार्य मे-यश मिले

१३—अप्रतिबद्ध—रागद्वेष एवं पक्षपात रहित निस्पृही-ममत्व मुक्त हो

१४—उदारवृति—ज्ञानदान करने मे एवं साधु समुदाय कानिर्वाह करने मे उदार हो

१५—धैर्य हो गाम्भिर्य हो विचारज्ञहो दीर्घदर्शी हो सहनशीलताहो।

इत्यादि गुण वाले को ही आचार्य पद दिया जा सकता है सामान साधुमे उपरोक्त गुण हो या उनमे न्यून हो तब भी वे अपना कल्याण कर सकता है क्योंकि उसके लिये इतनी जुम्मावारी नहीं है कि जितनी आचार्य के लिये होती है। अब आचार्य की आठ सम्प्रदाय बतलाते हैं कि आचार्य के अवश्य होनी चाहिये

१—आचार सम्प्रदाय—जिसके चार भेद हैं

१—पांच आचार "ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपाचार और वीर्याचार" पांच महाव्रत, पांच समिति, तीनगुप्ति, सतरह प्रकार संयम, बारह प्रकार तप दश प्रकार यति धर्म, आदि आचार में दृढ़ प्रतिज्ञा वाला हो और धारणा सारणा वारणा चोयणा प्रतिचोयणा करके चतुर्विध संघ को अच्छे आचार में चलावे अर्थात आप अच्छा आचारी हो तब ही संघ को चला सके।

२—अष्ट प्रकार का मद और तीन प्रकार का गर्व रहीत हो अर्थात बहुत लोग मानने से अहङ्कार नहीं करे और न मानने से दीनता न लावे। यह भी आचार्य के खास आचार है।

३—अप्रतिबद्ध जैसे द्रव्य से वस्त्र पात्रादि उपकरण, क्षेत्र से ग्राम नगर देश और उपाश्रयादि मकान, काल से शीतोष्णादि और भाव से राग द्वेष इनका प्रतिबन्ध नहीं रखे।

४—चंचलता, चपलता, अधैर्यता न रखे पर स्थिर चित से इन्द्रियोका दमन एव दृढ़ प्रकृति रखे

२—सूत्र सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—बहुशास्त्रों के ज्ञाता-नमरा-पदा हो-गुरु नम्रता से पढ़ा हो। अपने शिष्यों को भी अच्छा सूत्र पढ़ावे।

२—स्वसमय पर समय अर्थात् स्वमत परमत के सर्व शास्त्रों का जानकर हो कि प्रश्न करने वाले को अपने शास्त्रों से या उनके शास्त्रों से समझा सके—

३—पढ़ा हुआ या सुना हुआ ज्ञान को बार बार याद करे यानि कभी भुले नहीं।

४—उदात अनुदातादि शब्दों को शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण करे।

३—शरीर सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—प्रमाणपेत शरीर अर्थात् न घणा लम्ब, ओच्छा स्थुल कृश हो पर शोभानिय हो।

२—दृढ़ संहनन-शरीर कमजोर न हो शिथिल न हो पर मजबूत हो।

३—अलज्जित-अंगोपांग हीन जैसे कांना अन्धा वेहरा मुकादि न हो।

४—लक्षणवान्-हस्तपदादि में शुभ रेखा शुभ लक्षण वगैरा हो।

४—वचन सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—आदय वचन-वचन निकलते ही सब लोग आदर के साथ प्रमाण करे।

२—माधुर्य सुस्वर कोमल और गभिंय वचन बोले कि सब को प्रिय लगे।

३—राग द्वेष मर्म कठोर अप्रिय वचन नहीं बोले।

४—स्पष्ट-ऐसा वचन बोले कि सब सुनने वालों के समझ में आजाय।

५—वाचना सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—योग्य शिष्य-विनयवान को आगम वाचना देने का आदेश दे (वाचना उपाध्यायजी देते हैं) आगम क्रमशः पढ़ावें जैसे आचारांग पढ़ने के बाद सूत्रकृतांग इत्यादि।

२—पहले दी हुई वाचना ठीक धारण करली हो तब आगे वाचना दें।

३—आगम वाचना का महत्त्व बतला कर शिष्य का उत्साह बढ़ावें।

४—वाचना निरान्तर दे विच में खलेल न करे। सिद्धान्त का मर्म भी समझावे।

६—मति सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—उग्गह-सुनना। कोई भी बात सुनने पर उसको अनेक प्रकार से शीघ्र ग्रहन करना।

२—इहा विचार करना अर्थात। द्रव्य क्षेत्र काल भाव से उसका विचार करना।

३—आपाय-निश्चय करना। शंका रहित निःसंदेह निश्चय करना।

४—धारण-स्मृति में रखना। थोड़ा समय या बहुतकाल ति में रखना।

७—प्रयोग सम्प्रदाय—जिसके चार भेद हैं

कभी किसी वादी प्रतिवादी से शास्त्रार्थ करना हो तो पहिले इस प्रकार विचार करना।

१—अपनी शक्ति एवं ज्ञान का विचार करे कि मैं वादी को पराजय कर सकूंगा ?

२—क्षेत्र-यह क्षेत्र कैसा है किसकी प्रबलता है राजा प्रजा किस पक्ष के हैं इत्यादि।

३—भविष्य-शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करने पर भी भविष्यों में क्या नतीजा होगा।

४—ज्ञान वादी किस विषय का शास्त्रार्थ करना चाहता है मेरे में कितना ज्ञान है। यह समवाद है या विताड़ा वाद है। इत्यादि विचार पूर्वक ही शास्त्रार्थ करे।

८—संग्रह सम्प्रदाय—जिसके चार भेद

१—क्षेत्रसंग्रह-वृद्ध ग्लानी रोगी तपस्वी आदि साधुओ के लिये ऐसे क्षेत्र ध्यानमें रखे कि जहाँ स्थिरवास करने से साधुओ की संयमयात्रा सुख पूर्वक व्यतित हो और गृहस्थों को भी लाभ मिले। कारण आचार्य गच्छ के नायक होते हैं अतः साधुओं को योग्य क्षेत्र में भेजें।

२—शय्या संस्तार संग्रह-आचार्यश्री के दर्शनार्थ दूरदूर से आने वाले मुनियो के लिये मकान पाट पाटले घास तृण वगैरह ध्यान मे रखे कि आगुन्तुओं का स्वागत करने में तकलीफ उठानी नही पड़े। अतः पहिले से ही इस प्रकार काध्यान रखना आचार्य का कर्तव्य है।

३—ज्ञानसंग्रह-नया नया ज्ञान का संग्रह करे क्योकि शासनका आधार ज्ञान पर ही रहता है।

४—शिष्यसंग्रह-विनयशील विद्वान शासन का उद्योत करने वाले शिष्यो का सग्रह करें

इत्यादि आचार्यपद के विषय मे सूरिजी ने बहुत ही विस्तार से कहा कि सुयोग्याचार्य होने से ही शासन की प्रभावना एवं धर्म का उद्योत होता है तीर्थङ्कर भगवान् अपने शासन की आदि में गणधर स्थापन करते हैं वे भी आचार्यही थे तीर्थङ्करों के मोक्षपधार जाने के पश्चात् शासन आचार्य ही चलाते हैं। गच्छ नायक आचार्य एक ही होना चाहिये कि संघ का संगठन बल बना रहै हाँ किसी दूर प्रान्तो मे विहार करना हो तो उपाचार्य बनासकते है पर गच्छ नायक आचार्य तो एक ही होना चाहिये। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में आज पर्यन्त एक ही आचार्य होता आया है हाँ आचार्यरत्नप्रभसूरि के समय आपके गुरुभाई कनकप्रभसूरि को कोरट संघ ने आचार्य बना दिया पर उस समय जैन श्रमणो मे अहंपद का जन्म नहीं हुआ था कि रत्नप्रभसूरि ने सुना कि कोरंट सघने कनकप्रभ को आचार्य बनादिया तब वे स्वयं चलकर कोरटपुर गये परन्तु कनकप्रभसूरि भी इतने विनय वान् थे कि अपना आचार्य पद रत्नप्रभसूरि के चरणो में रख कर कहा कि मैं तो आपका अनुचर हूँ हमारे शिरपरनायक तो आप ही आचार्य हैं अहाहः यह कैसा विनय विवेक और शिष्टाचार। पर रत्नप्रभसूरि की उदारता भी कम नहीं थी वे अपने हाथो से कनकप्रभ को आचार्य बना कर कोरंट सघ का एवं कनकप्रभ का मान रखा यही कारण है कि जिस बात को आज आठसौ से भी अधिक वर्ष होगया कि केवल गच्छ नाम दो कहलाया जाता है। पर वास्तव मे वे एकही हैं दोनो गच्छ के आचार्य एवं श्रमण संघ मिलजुल कर रहते हैं एव शासन की सेवा और धर्म प्रचार करते है मरधर में इतनी सभाएँ हुई पर एक भी सभा का इतिहास यह नहीं कहता है कि जहाँ कोरंट गच्छ के आचार्य एव मुनिवर्ग सभामें आकर शामिल नहीं हुए हो ? साधुओं के बारह संभोग दोनोगच्छ के साधुओं में परम्परा से चला आरहा है। यदि भविष्य में भी एक ही नहीं पर सब गच्छो के नायक इसी प्रकार चलता रहेगा तो वे अपनी आत्मा के साथ अनेक भव्य जीवो का कल्याण करने में सफलता प्राप्त कर सकेगा। इत्यादि सूरिजी महाराज का व्याख्यान श्रोताओ को बड़ा ही हृदयग्राही हुआ।

एक समय देवी सच्चायिका सूरिजी को वन्दन करने के लिये आई थी सूरिजी ने कहा देवीजी अब मेरी वृद्धावस्था है आयुष्य का विश्वास नहीं है मैं मेरे पट्टपर किसी को आचार्य बनाना चाहता हूँ। मेरे साधुओं में

उपाध्याय सोमप्रभ मेरे पद के योग्य हैं इसमें आपकी क्या सम्मति है। देवी ने कहा प्रभो आपका आयुष्य तो दो मास और ११ दिन का शेष रहा है और उपाध्याय सोमप्रभ आपके पट्ट के सर्वथा योग्य है आप यहां पर ही इनको आचार्य पद प्रदान कर के उपकेशपुर को ही कृतार्थ बनावे। तथा एक और भी प्रार्थना है कि अब काल दिन दिन गीरता आरहा अब आत्मभावना एवं वैराग्य की अपेक्षा जाति कुल की लज्जा से ही धर्म चलेगा। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपने पूर्वों एवं श्रुत ज्ञान से भविष्य का जान कर महानलाभ महाजन सघ स्थापन करके जैनधर्म को स्थायी बना दिया है इसी प्रकार इस समुदाय में आचार्य भी उपकेश वंश में जन्म लेने वाले सुयोग्य मुनिकोही बनाया जाय और ऐसा नियम कर लिया जाय तो भविष्य मे शासन का अच्छा हित होगा। कारण इस वंश में जन्मे हुए वेशुरु से जैन धर्म के संस्कार होते हैं अतः वे आत्म भाव से त्याग वैराग्य से एवं जाति कुल की मर्याद से भी लिया हुआ भारकों आखिर तक निर्वाह सकेगा इस लिये मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप ऐसा नियम वनादें कि इस गादी पर उपकेशवंश में जन्मा हुआ सुयोग्य मुनि ही आचार्य वनसकेगा इत्यादि। सूरिजी ने देवी के वचन को तथाऽस्तु' कह कर स्वीकार कर लिया बाद देवी सूरिजी को वन्दनकर चली गई।

सुबह आचार्यश्री ने श्रीसंघ को सूचीत कर दिया कि मैं मेरे पट्ट पर उपाध्याय सोमप्रभ कों आचार्य बनाना निश्चय कर लिया है और देवी की सम्मति से यह भी निर्णय कर लिया है कि आचार्यरत्नप्रभसूरि की पट्ट परम्परा में आचार्य उपकेशवंश में जन्मा हुआ सुयोग्य मुनिको ही बनाया जायगा और इसमें प्राग्वट एवं श्रीमाल वंशकाभी समावेश हो सकेगा। श्री संघ ने सूरिजी महाराज का हुक्म को शिरोधार्य करलिया। पर श्रीसंघ ने प्रार्थना की कि प्रभो ! आपकी वृद्धावस्था है अतः अब आपश्री यहीं पर स्थिरवास कर विराजे जिस शुभमुहूर्त में आप उपाध्यायजी को आचार्यपदार्पण करेंगे श्री संघ अपना कर्तव्य अदा करने को तैयार है सूरिजी ने कहाकि अब मेरा आयुष्य केवल दो मास ग्यारह दिन का रहा है अतः मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी का शुभ दिन मे मैं उ०सोमप्रभ को सूरिपददेने का निश्चय कर लिया है यह सुनकर श्रीसंघ को बड़ा ही रंजहुआ पर आयुष्य के सामने किस की क्या चल सकती है। वहां का आदित्यनाग गौत्रीय शाह वरदत्तने आचार्य पद के लिये महोत्सव करना स्वीकार कर लिया और नजदीक एवं दूर दूर श्रीसंघ को आमन्त्रण भेजदिया बहुत से ग्राम नगरों के संघ आये जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सव प्रारम्भ होगया और ठीक समय पर विधि विधान के साथ चतुर्विध श्रीसंघ के समीक्ष भगवान महावीर के मन्दिर में सूरिजी के करकमलों से उपाध्याय सोमप्रभ को आचार्यपद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया और गच्छ का सर्व अधिकार नूतनाचार्य कक्कसूरि को सुपुर्द कर दिया।

शाह वरदत्त ने पूजा प्रभावना स्वामि वत्सल्य और आया हुआ संघ को पहरामणि दी जिसमें अपने नौ लक्ष द्रव्य व्यय कर कल्याण कारी कर्मोपार्जन किया—

आचार्यश्री यक्षदेवसूरि लुणाद्री पहाड़ी पर अन्तिम सलेखना करने में सलग्न होगये जब बराबर एक मास शेष आयुष्य रहा तब श्रीसघ कों एकत्र कर क्षमपना पूर्वक आर अनसनव्रत धारण करलिया और तीस दिन समाधि में बिताया अन्त में आप पांच परमेष्टी का स्मरण पूर्वक स्वर्ग पधार गये। जिसमे श्रीसंघ में सर्वत्र शोक के बादल छागये पर इस के लिये उनके पास इलाज ही क्या था उन्होंने निरानन्दता से पूज्याचार्यदेव के शरीर का बड़े ही समारोह से अग्नि संस्कार किया उस समय आकाश में खूब केसर वर्सी

र जलती हुई चिता पर पुष्पों की बरसात हुई और आकाश मे यह उद्घोषणाहुई कि अब इस भरतक्षेत्र आचार्य रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि जैसे आचार्य नहीं होगा। जिसको सुनकर श्रीसंघ केशोक में और भी द्धि हुई बाद श्रीसंघ चलकर आचार्य ककसूरि के पास आये और सूरिजी निरानन्द होते हुए भी श्रीसंघ कों न्ति का उपदेश देकर मंगलिक सुनाया।

आचार्य यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक धर्म प्रचारी एवं जिन शासन के एक सुदृढ़ स्तम्भ समान चार्य हुए है आप अपने सोलह वर्ष के शासन में मरुधर मेदपाट आवंति बुलेदखण्ड मत्स्य शूरसेन उड़ीसा ाल विहार कुरू पंचाल सिन्धु कच्छ सौराष्ट्र कांकण लाटादि प्रान्तो में विहार कर अनेक प्रकार से उपकार ये कइ स्थानों पर विधर्मियो के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजयपता का फहराई कई विषयों पर अनेक थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिर स्थायी बनाया कइ नर-नारियों को दीक्षा देकर एवं कइएकों के मांस देरादि दुर्व्यसन छोड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित किये कइ मन्दिर मूर्त्तियो की प्रतिष्टा करवाई कइ तीर्थों के निकला कर यात्राए की इत्यादि पट्टावलियों वंशावलियों आदि मे विस्तार से उल्लेख मिलते है तथापि में ां पर कतीपय कार्यों की केवल नामावली ही लिख देता हूँ।

आचार्य श्री के शासन समय भावुकों की दीक्षा—

१—उपकेशपुर के भूरि गौत्रीय शाह नानगदि ने सूरि के पास दीक्षा ली
२—भाडव्यपुर के श्रेष्टि ,, ,, दूधा ने ,, ,,
३—सुरपुर के डिडू ,, ,, आदू ने ,, ,,
४—शंखपुर के ब्राह्मण ,, ,, शिवदेव ने ,, ,,
५ खटकूम्प के राव ,, ,, भोजा ने ,, ,,
६ आसिका के अदित्य० ,, ,, शोभण ने ,, ,,
७—हालोड़ी के श्रेष्टि गौत्र ,, ,, गुणराज ने ,, ,,
८—हर्षपुर के भाद्र गौत्रीय शाह भाखर ने ,, ,,
९—नागपुर के बलाह गौत्रीय ,, भीमा ने ,, ,,
१०—मुग्धपुर के चरड ,, ,, नोधण ने ,, ,,
११—चावट के चिचट ,, ,, चाहड़ ने ,, ,,
१२—आघाट के लुंग ,, ,, चणाटे ने ,, ,,
१३—नारायणपुर के कर्णाट ,, फागु ने ,, ,,
१४—बीनाइ के बोहरा ,, ,, पारस ने ,, ,,
१५—दशपुर के मल्ल ,, ,, पद्मा ने ,, ,,
१६—डूगरील के तप्तभट्ट ,, धन्ना ने ,, ,,
१७—मथुरा के बाप्पनाग ,, धोकल ने ,, ,,
१८—मरजड़ा के लघु श्रेष्टि ,, वर्द्धन ने ,, ,,
१९—नारोली के वीरहट गौत्रीय ,, देवसी ने ,, ,,

२०—कावरोल के कुलभद्र ,, शाह खीमड़ ने सूरि के पास दीक्षा ली

२१—जंगालु प्राग्वट वंशी ,, फूवा ने ,, ,,

२२—डामरेल प्राग्वट वंशी ,, रूपा ने ,, ,,

२३—श्रीनगर श्रीमाल वंशी ,, मेहराज ने ,, ,,

२४—कीराटकुम्प क्षत्रीवीर ,, रावल ने ,, ,,

२५—ऊँकारपुर ब्राह्मण ,, पोकर ने ,, ,,

२६—उज्जैन मौरक्ष गौत्रीय शाह नन्दा ने ,, ,,

इनके अलावा कइ जैनेतर जातियों के तथा बहुतसी बहिनोंने भी दीक्षा लेकर स्वपरका उद्धार किया।

आचार्यश्री के शासन में तीर्थों के संघादि शुभकार्य—

१—भरोंच से भाद्र गौत्रीय शाह देपाल ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला

२—देलावल से श्रेष्टि गौत्रीय शाह वीरदेव ने ,, ,,

३—चांदोला से चरड़ गौत्रीय शाह यशोदेव ने ,, ,,

४—चक्रावती से मल्ल गौत्रीय शाह नागदेव ने ,, ,,

५—स्तम्भनपुर से मंत्री शाह वरदेव ने ,, ,,

६—भवानीपुर से श्रेष्टि० शाह कानड़ ने ,, ,,

७—नागपुर से सुचंति गौत्रीय शाह केसा ने ,, ,,

८—शाकम्भरी से चिंचट गौत्रीय शाह धर्मा ने ,, ,,

९—वीरपुर से लघु श्रेष्टि शाह पारस ने ,, ,,

१०—टकोल से कुमट गौत्रीय शाह लाखण ने ,, ,,

११—सारंगपुर से कनौजिया शाह शांवला ने ,, ,,

१२—चचकोट से चोरलिया शाह पावा ने ,, ,,

१३—मथुरा से लुंग गौत्रीय शाह मेहराज ने ,, ,,

१४—भीयानी से चरड गौत्रीय जैदेव युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।

१५—विनोट के तप्तभट्ट मंत्री जोगड़ा ,, ,, ,, ,,

१६—चरपटपुर के श्रेष्टि सुरजण ,, ,, ,, ,,

१७—दांतिपुर के सुचंति गौत्रीय टीलो ,, ,, ,, ,,

१८—कोरंटपुर के श्रीमाल सोमा ,, ,, ,, ,,

१९—मादड़ी के भूरि गौत्रीय भीम ,, ,, ,, ,,

२०—पद्मावती के मल्ल गौत्रीय पेथो ,, ,, ,, ,,

२१—हंसावली के बापनाग० पुनड़ ,, ,, ,, ,,

२२—रत्नपुर में आदित्यनाग गौत्री मंत्री सालगने दुकाल में शत्रुकार दिया—

इनके अलावा भी कई महानुभावो ने अपनी चंचल लक्ष्मी को जनकल्याणार्थ व्यय करके जैन शासन की प्रभावना के साथ अपना कल्याण साधन किया ।

आचार्यश्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं—

१—धनपुर में श्रेष्टि गौ०	शाह खूमा ने	भ० पार्श्व०	म० प्र०
२—हर्षपुर मे बलाह गौ०	,, कल्हण ने	,,	,,
३—नागपुर में भाद्र गौ०	,, करमण ने	महावीर	,,
४—जानपुर मे चिचट गौ०	,, फूवा ने	,,	,,
५—देवपट्टन मे चरड गौ०	,, पद्मा ने	,,	,,
६—कुकुरवाडा मे भूरि गौ०	,, राणा ने	शांति	,,
७—गटवाल मे कनोजिया०	,, नारा ने	,,	,,
८—गुगालिया में कु-ट गौ०	,, रावल ने	आदीश्वर	,,
९—चन्द्रावती में आदित्य ना०	,, हाप्पा ने	नेमिनाथ	,,
१०—टेलीपुर में बाप्पनाग०	,, राजा ने	पार्श्व	,,
११—मारोटकोट में श्रेष्टि गौ०	,, माला ने	,,	,,
१२—हापड़ा में लघु श्रेष्टि गौ०	,, वागा ने	,,	,,
१३—कोसी में चरडा गौ०	,, बाप्पा ने	विमल०	,,
१४—भोजपुर में मल्ल गौ०	,, भैसा ने	महावीर	,,
१५—रामसण मे लुग गौत्रीय	,, गेदा ने	,,	
१६—आभानगरी में प्राग्वटवन्शी	,, कर्पि ने	,,	
१७—करकली में ,,	,, झामण ने	,,	
१८—खेखरवाडा में भाद्र गौत्रीय	,, गोसल ने	पार्श्वनाथ	
१९—फेफावती में श्रीमाल वंशी	,, लाखण ने	,,	
२०—हर्षपुर में सुचति गौत्रीय	,, कल्हल ने	,,	
२१—मेदनीपुर में कुलभद्र ,,	,, अवड ने	महावीर	
२२—मथुरा में प्राग्वटवंशी ,,	,, आमदेव ने	,,	

इनके अलावा दूसरे श्रावको ने बहुत से मन्दिरो की एवं घर देरासर की प्रतिष्ठाए करवा कर कल्याणकारी पुन्योपार्जन किया था। जिन्हो का वंशावलियों मे खूब विस्तार से वर्णन है।

पट्ट बतीसवें यक्षदेव गुरु, त्यागी वैरागी पूरे थे।
वीर गंभिर उदार महा, फिर तप तपने मे शूरे थे ॥
धर्म अन्ध म्लेच्छ मन्दिरों पर दुष्ट आक्रमण करते थे।
उनके सामने कटिबद्ध हो, प्रण से रक्षा करते थे ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के ३२ वें पट्ट पर आचार्य यक्षदेवसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए।

३३-आचार्य कक्कसूरि (षष्टम्)

आचार्यस्तु स कक्कसूरिर भवदादित्य नागा न्वये ।
शाखा चोर लिया धिपोऽथ कुशलो योगासने बन्धने ॥
सिद्धोयेन समः स्वरोदय विचारे चापि नासीज्जनः ।
यान्तं पर्वत मार्बुदं तु जनता संघं सिपेवे अयात् ॥
नाम्नो ऽ स्यैवच सोमशाह निगड़ श्छिन्नः स्वतोगच्छके ।
एकाचार्य ममुं तु ह्यागतवती देवी सुसच्चायिका ॥
सायाता कुकुदा मुने रनुशया च्छारवा कुकुदा पृथक् ।
प्रत्यक्षा गमनं तु कार्य करणं देव्या स्वयं स्वीकृतम् ॥

चार्य श्रीकक्कसूरीश्वरजी महाराज महम् प्रतिभा शाली सुविहित शिरोमणि अनेक अलौकीक विद्या एवं लब्धियों के आगर योगासन स्वरोदय के मर्मज्ञ, तेजस्वी, ओजस्वी, यशःस्वी, वचस्वी इत्यादि अनेन शुभ गुणों से विभूषीत जैनधर्म के एक चमकता हुआ सतारा सदृश आचार्य हुये थे, देवी सच्चायिका के अलावा जया विजया पद्म वती अम्बिका मातुला लक्ष्मी और सरस्वती देवियों और कइ देवता आपके गुणों से आकर्पित होकर दर्शनार्थ एवं सेवा में आये करते थे। आपकी प्रतिभा का प्रभाव जनता पर अच्छा पड़ता था धर्मप्रचार करने में आप सिद्धहस्त थे अनेक मांस मदिरा सेवियों को आपने जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की वृद्धि की थी आपका जीवन जनता के कल्याण के लिये हुआ था जिसकों श्रवण मात्र से ही जीवों का कल्याण होता है।

पट्टावली कारों ने आपका जीवन विस्तार से लिखा है पर यहाँ तो संक्षिप्त से ही लिखा जारहा है उस समय शिवपुरी नाम की एक उन्नतशील नगरी थी जिसको राजा जयसेन के लघु पुत्र शिव ने बसाई थी और प्रारम्भ में वहाँ राजाप्रजा सब जैनधर्मोपासक ही थे उसी नगरी में आदित्यनाग गौत्रीय एवं चोरलिया शाखा के कीर्तिमान मंत्री यशोदित्य नाम का एक प्रसिद्ध पुरुष बसता था आपके गृहदेवी का नाम मैना था आपका गृह जीवन सुख एवं शान्ति में व्यतित होता था आपके घर में विपुल सम्पति थी एवं लक्ष्मी की पूर्ण कृपा थी परन्तु आपके सन्तान न होने से सेठानी को कभी कभी आर्तध्यान सताया करता था एक दिन सेठानी ने अपने पतिदेव से अर्ज की कि अपने घर में इतनी सम्पति है पर इसको संभालेगा कौन ?

सेठजी ने कहाँ यह तो पूर्व जन्म के किये हुए कर्म है इसके लिये मनुष्य क्या कर सकते है।

सेठानी—हाँ पूर्व जन्म के फल तो है पर उद्यम करना भी तो मनुष्य का कर्त्तव्य है ?

सेठजी—आपही बतलाइये इसका क्या उद्यम किया जाय।

सेठानी—मै देखती हूँ कि लोग देव देवियो को मनाते है और कई लोग अपनी आशा को पूर्ण भी करते है आपको भी इस प्रकार करना चाहिये।

सेठजी—आप हमेशाँ व्याख्यान सुनते हो सिवाय पूर्व कर्मों के कुच्छ नहीं हो सकता है। यदि देवदेवी कुच्छ दे सकते हो तो ससार में कोई दु:खी रह ही नहीं सके ? पर जो होता है वह सब पूर्व कर्मों के अनुसार ही होता है।

सेठानी—हाँ कर्म तो है ही पर केवल कर्मों पर ही बैठ जाने से कार्य नहीं बनता है पर साथ में उद्यम भी तो करना चाहिये ?

सेठजी—मैंने अभी चतुर्थव्रत नहीं लिया है जो तकदीर में लिखा होगा वो होजायगा।

सेठानी—पर देव देवियो को मनाना भी तो एक प्रकार का उद्यम ही है।

सेठजी—सेठानीजी देव देवी खुद नि.सन्तान है उनके पास बेटा बेटी जमा नहीं पड़ा है कि मानता करने वालों को देदे।

सेठानी—मैंने कई लोगों कों देखा है कि देवताओं ने भक्त लोगों की आशा पूर्ण की है।

सेठजी—मैं तो एक अरिहन्त देव को ही देव समझता हूँ और उनके सिवाय किसी को भी शिर नहीं झुकाता हूँ।

सेठानी—कहाँ जाता है कि अरिहन्त देव सर्व कार्य सिद्ध करने वाले है तो आप उनसे ही प्रार्थना क्यों नहीं करते हों ?

सेठजी—सेठानीजी आपने मन्दिर उपाश्रय जा जा कर वहां के पत्थर घीस दिये है पर अभी तक आप जैन धर्म के मर्म को नहीं समझे है। वीतराग देव की उपासना केवल जन्म मरण मिटा कर मोक्ष के लिये ही की जाति है। फिर भी वीतराग तो वीतराग ही है वे न कुच्छ देते है और न कुच्छ लेते है। उनकी उपासना से अपने चित की विशुद्धी होती है, जिनसे कर्मों की निर्जरा होकर मोक्षको प्राप्ती होती है यदि कोई धर्म का मर्म न जान ने वाला वीतराग से धन पुत्र मांगता है उसे लोकोत्तर मिथ्यात्व ल गता है इस भाव को आप अच्छी तरह से समझ कर कभी भूल चूक से धर्म करनी करके लौकीक सुख की याचना तो क्या पर भावना तक भी नहीं करना।

सेठानी—खैर वीतराग नहीं तो दूसरे भी तो अधिष्टायकादि बहुत देव देवियां है।

सेठजी—मैंने कह दिया था कि विधर्मी देव देवियो को शिर झुकाने में मिथ्यात्व लगता है उस मिथ्यात्व से ससार में भ्रमन करना पड़ता है जिसको न तो पति बचा सकता है न पत्नि और न पुत्रादी कोई भी नहीं बचा सकता है अतः आप कर्मों पर विश्वास कर सतोष ही रखे।

सेठानी – परन्तु पुत्र बिना पिच्छे नाम कौन रखेगा। और इस सम्पति का क्या होगा ?

सेठजी—नाम है उसका एक दिन नाश भी है सेठानी जी ! अपन तो किस गीनती मे है पर बड़े बड़े अवतारी पुरुष हुए है उनका भी वंश नही रहा है यदि नाम रखना हो तो कोई ऐसा काम करो कि जिससे नाम अमर हो जाय और इसके लिये या तो बंधाना मन्दिर या लिखाना ग्रन्थ है ! इन दो कार्यों से ही नाम रह सकता है।

सेठानी – ठीक है मन्दिर बनाना और ग्रन्थ लिखाना ये तो अपने स्वाधीनता के काम है पर अब

ही आरम्भ कर दीरावे। परन्तु मेरे दील में अर्तध्यान आया करता है इसके लिये क्या करना चाहिये। आप नहीं तो मुझे आज्ञा दे मैं किसी देव देवी की आराधना कर आशा को पूर्ण करूँ ?

सेठजी—मैं जिसको हलाहल जहर (विष) समझता हूँ भला आप मेरे आत्मीय सज्जन है तो आपको इस मिथ्यात्व कर्म की आज्ञा कैसे दे सकता हूँ। आप इस बात पर निश्चय कर लीजिये कि बिना तकदीर में लिखे देवी देवता कुछ भी दे नहीं सकते है हां इधर तो कार्य बनने वाला हो और उधर देवादि का कहना हो तो कार्य बन सके और एक दो ऐसा कार्य बनगया हो तो भद्रिक जनता को विश्वास हो जाता है परन्तु निश्चय तो यही बात है कि पूर्व संचित कर्मानुसार ही कार्य होता हैं दूसरा जैनधर्म का यह मर्म है कि एक पूर्व जन्म की अन्तराय दूसरा मिथ्यात्व का सेवन इससे अधिक कर्म बन्ध का कारण होता हैं यदि अन्तरायोदय के समय धर्म कार्य विशेष किया जाय तो स्वयं कर्मों की निर्ज्जरा होकर वस्तु की प्राप्ति हो सकती है अतः आपको तो धर्म करनी विशेष करनी चाहिये। आप नाराज न हो जैसे अच्छा खानदान की स्त्री अपने पति को छोड़ कर घर घर में पति करती फिरे तो क्या उसकी शोभा बढ़ सकती है। इसी प्रकार एक वीतराग देव को छोड़ कर अन्य देव देवियों की मान्यता करनेसे या शिर झूकाने से क्या इस लोक में और परलोक में भला हो सकता है ?

सेठानी—खैर मैं तो संतोष कर लुंगी पर आप से एक अर्ज है कि आप दूसरी सादी करलीरावे कि शायद उसके पुत्र हो जायगा तो भी पीछे नाम तो रह ही जायगा ?

सेठानी— वहा-वहा सेठानी जी ! आपने ठीक सलाहा दी क्या यह भी कभी हो सकता है कि मैं मेरा हृदय एक को दे चुका हूँ फिर क्या कभी दूसरी को दिया जा सकता है जैसे पत्नि को पतिव्रता धर्म पालने का अधिकार है वैसे ही पति को भी पत्निव्रत पालने का अधिकार है। और ऐसा होना ही चाहिये

सेठानी—स्त्रियों के तो एक ही पति है पर पुरुष तो अनेक पत्नियों कर सकते हैं ऐसा बहुत बार शास्त्रों में आता है तो आपको दूसरी सादी करने में क्या हर्ज है।

सेठजी—हाँ शास्त्रों में आता है और आपन सुनते भी हैं इसके लिये मैं इन्कार नहीं करता हूँ पर कुदरती कानून से देखा जाय तो यह पक्षपात के अलावा कुछ नहीं है जब स्त्रियों के लिये एक पत्नि का नियम है तो पुरुषों के लिये भी ऐसा ही होना चाहियं अगर पुरुष एक से अधिक पत्नि करता है वह सरासर अन्याय करता हैं क्योंकि एक पुरुष पांच स्त्रियों से सादी करता है वह चार पुरुषों को कुंवारा रखता है। इससे संसार का पतन और व्यभिचार का प्रचार बढ़ता है। दूसरे संसार में प्रभुत्व पुरुषों की ही रह थी उन्होंने स्वार्थ के वस मन मांने कानून बना लिये। यदि स्त्रियों की प्रभुत्व रहती तो क्या स्त्रियां यह कानून न बना लेती कि स्त्रियां अनेक पति बना सकती है। पर पुरुष एक पत्नि से अधिक न बना सके या पुरुष मर जाने पर स्त्री एक दो बार विवाह कर सके पर पुरुष के पत्नि मर जाने पर वह तमाम जिन्दगी विदुर ही रहे पर दूसरी सादी नहीं कर सके जैसे पुरुषों ने स्त्रियों के लिये नियम बनाये हैं। सेठानी जी! मैंने तो मेरा हृदय एक आपको दे चूका हूँ अब इस भव में तो दूसरी स्त्रियों को हर्गिज नही दिया जा सके भनो। आप सोचिये कि शायद् कोई पुरुष अपना व्रत भंग कर दूसरी सादी कर भी ले तो क्या पुत्र होना

रुसके हाथ की बात है पूर्व भव की अन्तराय हो तो एक क्यो पर दस पत्नियें कर लेने फिर भी पुत्र नहीं होता है। फिर व्रत भंग करने में क्या लाभ है ?

सेठानी—मैंने तो आज पर्यन्त ऐसा कोई पुरुष नही देखा है कि इस प्रकार का पत्निव्रत धर्म पालन किया एवं करता हो जैसे आप फरमाते हो ?

सेठजी—आपने व्याख्यान में युगल मनुष्यों का अधिकार नहीं सुना है कि वे अपने दीर्घ जीवन और वज्रऋषभनाराज संहनन मे भी एक पत्नि के अलावा दूसरी पत्नी नहीं की थी। वे ही क्यों पर कर्म भूमि में भी ऐसे बहुत से पुरुष हुए हैं देखिये-मैंने सुना है एक सेठ दिसावर जाने का विचार किया तो उसकी पत्नि ने कहाकि अच्छा आप वापिस कब आवेंगें ? सेठजी ने कहा कि मैं तीन वर्ष के बाद आऊंगा। सेठानी ने कहा कि मेरी युवावस्था है यदि तीन वर्ष के बाद भी आप नही पधारो तो मैं क्या करूं यह बतला जाओ ? सेठजी ने कहा यदि मैं तीन वर्ष तक में नहीं आऊँ तो नगर से दो माईल टटी जाने वाले के पास अपनी काम वासना शान्त कर सकती है। बस सेठजी दिसावर चले गये पर किसी जरूरी कार्य एवं लोभ दसा के कारण सेठजी तीन वर्ष के बाद भी वापिस नहीं आये। सेठानी ने तीन वर्ष तो ठीकानि काल दिये क्योंकि उसके पति ने वायदा किया था। सेठानी ने अपनी दासी से कहा कि यदि कोई नगर से दो माईल भर दूरी टटी जाने वाला हो उसको अपने यहां ले आना। सेठानी ने स्नान मज्जनादि सोलह श्रृंगार किया शय्या पलंगादि सब सजावट अच्छी तरह से की इधर दासी एक सेठ जो दूर जंगल जाने वाला था उसको बुलाकर ले आई सेठजी को इस बात की मालुम नहीं थी उन्होंने सोचा कि सेठजी बहुत दिनों से दिसावर गये हैं तो कोई पत्र लिखने वगैरह का काम होगा वे चले आये परन्तु मकान पर जाकर वहाँ का रंगढंग देखा तो उन्होने सोचा की मेरे तो पत्निव्रत है। सेठ ने अपने हाथ में जो मिट्टी का लोटा था उसको भूमि पर डाला कि वह फूट गया जिसको देख सेठजी बहुत पश्चताप किया। कामातुर सेठानी ने कहा सेठजी इस मिट्टी का बरतन के लिये इतना बड़ा पश्चाताप क्यो करते हो मैं आपको चान्दी या सोना का लोटा देदूंगी आप अन्दर पधारिये। सेठजी ने कहा कि मै मिट्टी का बरतन के लिये ये दुःख नहीं करता हूँ पर मेरा गुजप्रदेश मेरी पत्नि या इस मिट्टी का लोटा ने ही देखा है यह फूट गया तब दूसरे को दीखाना पड़ेगा इस बात का मुझे बडा भारी दुःख एवं लज्जाप्राति है। सेठानी ने सुनते ही विचार किया कि एक मर्द है वह भी अपना गुँज स्थान निर्जीव बरतन को दीखाने में इतनी लज्जा एवं दुःख करता है तो मैं एक कुलीनस्त्री मेरा गुँझ प्रदेश दूसरे पुरुष को कैसे दीखा सकती हूँ। बस सेठानी की अक्ल ठीकाने आगई और सेठजी को अपना पिता बना कर जाने की रजा दी। इस उदाहरण से आप ठीक समझ सकते हो कि संसार में पुरुष भी पत्निव्रत धर्म के पालने वाले होते है प्रिय सेठानी जी ! आपतो विद्यमान है परन्तु कभी आपका देहान्त भी हो जाय तो मैं मन से भी दूसरी पत्नि की इच्छा नहीं करूँगा। सेठानी सेठजी की दृढ़ता देख बहुत खुशी हुई। और सेठजी प्रति उनका स्नेह और भी बढ़ गया। सेठानी ने कहा-पतिदेव आपके कहने से हमें अच्छी तरह से संतोष हो गया है और मैं समझ भी गई हूँ कि पूर्व संचित कर्मों की अन्तराय है वहाँ तक कितने ही प्रयत्न करे कुछ भी नहीं होगा। खैर सेठानी ने सेठजी को कहा कि जो दिन नाम रहने के लिए दो कार्य बतलाये हैं वे तो प्रारम्भ कर दीजिये कि इसके अन्दर कोई बहुत लक्ष्मी [illegible]

लिये तो कुछ पुन्य संचय किया जाय। और आपके कथनानुसार पिछे नाम भी रह जायगा बस। मैं इतना से ही संतोष करलूंगी—

सेठजी–बहुत खुशी की बात हैं मैं आज ही इस बात का प्रबन्ध कर दूँगा। मेरे दिल में मन्दिर बनाने की बहुत दिनों से अभिलाषा थी पर विचार ही विचार में इतने दिन निकल गये फिर भी मैं आपका उपकार समझता हूँ कि आपने मुझे इस कार्य में सहायता दी अर्थात् प्रेरणा की है बस। सेठानी ने अपने अनुचरों द्वारा शिल्प शास्त्र के जानकार कारीगरो को बुला कर कहा कि एक अच्छा मन्दिर का नकशा कर के बतालाओं मुझे एक अच्छा मन्दिर बनवाना है। कारीगरों ने कहा आपको द्रव्य कितना खर्च करना है? सेठजी ने कहाँ द्रव्य का सवाल नही है मन्दिर अच्छा से अच्छा बनना चाहिये कई शिल्पाज्ञ एकत्र होकर चौरासी देहरी वाले विशाल मन्दिर का नकशा बना कर सेठजी के सामने रखा जिसको देख कर सेठजी खुश हो गये अच्छा मुहूर्त में मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इधर ज्यों-ज्यों मुनियों का पधारना होता गया त्यों-त्यों आगम लिखना भी शुरु कर दिया एवं दोनों शुभ कार्य खूब वैग से चल रहे थे जिससे सेठ सेठानी दीलचस्पी से एवं खुल्ले हाथ द्रव्य व्ययकर रहे थे। नगरी में सेठजी की अच्छी प्रशंसा भी हो रही थी।

एक समय सेठानी मैना अपने रंगमहल में सोरही थी अर्द्ध निशा में कुछ निद्रा कुछ जागृत अवस्थामें स्वप्न के अन्दर एक सिंह मुंहसे जिभ्या निकालता हुआ देखा। सेठानी चटमे सावधान होकर अपने पतिदेव के पास आई और अपने स्वप्न की बात सुनाई जिसपर सेठजी बडी खुशी मनाते हुए कहा सेठानीजी आपके मनोरथ सफल होगया है इस शुभ स्वप्न से पाया जाता है कि कोई भाग्यशाली जीव आपके गर्भ में अवतीर्ण हुआ है बस! आज सेठ सेठानी के हर्ष का पार नहीं था भला! जिस वस्तु की अत्यधिक उत्कण्ठा हो और अनायास वह वस्तु मिलजाय फिर तो हर्ष का कहना ही क्या है सुबह होते ही सेठजी ने सब मन्दिरों में स्नात्र महोत्सव किया–करवाया। ज्यों ज्यों गर्भ वृद्धि पाता गया त्यों त्यों सेठानी को अच्छे अच्छे दोहले मनोर्थ उत्पन्न होताग या अर्थात् परमेश्वर की पूजा करना गुरुमहाराज का व्याख्यान सुनना सुपात्रमें दान सावर्मी भाई और बहिनों को घर पर बुलाकर भोजनादि से सत्कार करना गरीब अनाथो कों सहायता और अमरी पडहादि जिसकों मंत्री यशोदित्य सानन्द पूर्ण करता रहा जब गर्भ के दिन पूरे हुए तो शुभ रात्रि में सेठानी ने पुत्र रत्नको जन्मदिया जिसकी खबर मिलते ही सेठजी ने मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव व याचकों को दान सज्जनों को सन्मान दिया और महोत्सव पूर्वक पुत्र का नाम 'शोभन' रक्खा। इधर तो मन्दिरजी का काम धूम धाम से बढ़ता जारहा था उधर शोभन लालन पालन से वृद्धि पाने लगा। सेठजी ने भगवान महावीर की सर्वधातुमय १०६ आंगुल प्रमाण की मूर्ति बनाई जिनके नेत्रों के स्थान दो मणियें लगवाई जोकि रात्रि को दिन बना देती थी तथा एक पार्श्वनाथ की मूर्ति पन्ना की आदीश्वर की हीरा की और शान्तिनाथ की माणक की मूर्तिएँ बनई दूसरी सब पाषाण की मूर्तियाँ बनाई इस मन्दिर का काम मे सोलह वर्ष लगगये इस सोलह वर्ष मे माता मैना ने क्रमशः सात पुत्रों का जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बना दिया था। नर का नसीब किसने देखा है एक दिन वह था कि माता मैना पुत्र के लये तरस रही थी आज सेठानी के सामने देव कुँवर के सदृश सात पुत्र खेल रहे हैं। अब तो सेठ सेठानी की भावना मन्दिरजी की प्रतिष्ठा जल्दी करवाने की ओर लग गई।

सेठ कुँवर शोभन एक समय आर्बुदा चला गया था वहाँपर आचार्य यक्षदेव सूरि का दर्शन किये

सूरिजी ने शोभन की भाग्य रेखा देख उसको उपदेश दिया शोभन ने सूरिजी के उपदेश को शिरोधार्य कर शिवपुरि पधारने की प्रार्थना की सूरिजीने शोभन की विनती स्वीकार करली और अपनी योग साधना समाप्त होने के पश्चात् विहार कर क्रमशः शिवपुरी पधारे वहा के श्री संघ एवं मंत्री यशोदित्य एवं शोभन ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत एवं नगर प्रवेश का बड़ा भारी महोत्सव किया, सूरिजी ने महामंगलीक एवं सारगर्भित देशनादी बाद सभा विसर्ज्जन हुई । आज तो शिवपुरी के घर-घरमें आनंद एवं हर्ष मनाया जा रहा है कारण गुरुमहाराज का पधारने के अलावा आनन्द ही क्या होता है ।

आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा होताथा जिसमें संसार की असारता, लक्ष्मीकी चंचलता, कुटम्बकी स्वार्थता, शरीरकी क्षण भगुरता और आयुष्य की अस्थिरता पर अच्छा पकाश डाला जाता था आत्म कल्याण के लिये सब से बढ़िया साधन दीक्षा लेना अगर गृहस्थावास मे रहकर कल्याण करने वालो के लिये यो तो पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य सामायिक प्रतिक्रमण उपवास व्रत पौषध वगैरह दैनिक क्रिया है पर विशेषता साधन सामग्री के होते हुए न्यायोपार्जित द्रव्यसे त्रिलोक्यपूजनीय तीर्थङ्करदेवों का मन्दिर बनाना चतुर्विध सघ को तीर्थों की यात्रा करने को संघ निकालना और महा प्रभाविक पचमाङ्ग भगवतीजी सूत्र का महोत्सव कर श्रीसंघ को सूत्र सुनाना इत्यादि पुन्यकार्य करके दीक्षा ले तो सोना और सुगन्ध वाली कहावत चरतार्थ हो जाती है इत्यादि सूरिजी ने बड़ाही हृदयग्राही उपदेश दिया जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा क्यो नहीं हलुकर्मी जीवों के लिये तो केवल निमित्त कारण की ही जरूरत है

मंत्री यशोदित्य और सेठानी मैना के मन्दिर की प्रतिष्टा करवानी ही थी उन्हेने सोचा की सूरिजी का व्याख्यान खास अपने लिये ही हुआ है तब शोभन के दिल में त्यागकी तरंगें उठ रही थी उसने सोचा की आजका व्याख्यान खास मेरे लिये ही है एक समय मंत्री यशोदित्य सूरिजी के पास आया और प्रार्थना की कि पूज्यवर । मन्दिर तैयार हो गया है कृपा कर इसके मुहूर्त का निर्णय कर एवं प्रतिष्टा करवाकर हम लोगों को कृतार्थ बनावें । सूरिजी ने कहा यशोदित्य तुँ बडा ही भाग्यशाली है । मन्दिर बनाने का शास्त्रो में बड़ा भारी पुन्य बतलाया है कारण एक पुन्यवान के बनाये मन्दिर से अनेक भावुक अनेक वर्षों तक अपनी आत्माका कल्याण कर सकते हैं । जब मन्दिर तैयार हो गया है तो प्रतिष्ठामें बिलकुल बिलम्ब नहीं होना चाहिये । मुहूर्त के लिये मै आजही निर्णय करदूगा । मन्त्रीश्वर तो वन्दन कर चलागया । पर बादमें शोभन आया सूरिजी को वन्दन कर अर्ज की कि पूज्यवर ! आपने व्याख्यान में फरमाया वह सोलह आना सत्य है मेरा विचार निश्चय हो गया है कि मैं आपके चरणार्बिन्द मे दीक्षा लूंगा । सूरिजी ने कहा शोभन मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री मिलने का यही सार है पूर्व जमाना मे बड़े बडे चक्रवर्तियोने राजऋद्धि पर लात मार कर भगवती दीक्षा की शरण ली तब ही जाकर उनका उद्धार हुआ था यदि तुम्हारी भावना है तो विलम्ब नहीं करना । शोभन ने गुरु महाराज के वचन को 'तथाऽस्तु' कहकर अपने घर पर आया और अपने मातपिता को स्पष्टशब्दो में कह दिया कि मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है अतः प्रतिष्टा के साथ मेरी दीक्षा भी हो जानी चाहिये । पुत्र के वचन सुनते ही माता पिता को मूर्छा आगइ और वे भान भूलकर भूमिपर गिर पड़े । जब जल वायु का प्रयोग किया तो वे रोते हुए गद्-गद् शब्दो से कहने लगे कि बेटा ! आज तो ऐसे शब्द निकाले है पर आईन्दा से हमारे जीते हुए कभी ऐसे शब्द न निकालना कारण हम ऐसे शब्द कानो में भी सुनना नहीं चाहते है । बेटा तुं मेरे सबसे बड़ा पुत्र है तेरे विवाह के लिए बड़ी उमेद है वह मन्-

कारों की लड़कियों के लिए प्रस्ताव आ रहे है अतः बेटा हम नहीं चाहते कि तूँ दीक्षा लेने की बात तक भी करे ? शोभन ने कहाँ कि माता संसार में मोह कर्म का ऐसा ही नशा है कि जिस कामको लोग अच्छे समझते हुए भी मोहकर्म के जोर से अन्तराय देने को तैयार हो जाते है। आप जानते हो कि इस संसार में जन्म-मरण का महान् दुःख है और बिना दीक्षा लिये वे दु ख छुट नहीं सकते है। और दीक्षा भी अच्छी सामग्री हो तब आ सकती है। माता पिता अपने बाल बच्चों के हित चिंतक होते है अतः आप हमारे हित चिंतके है फिर हमारे हित में आप अन्तराय क्यों करते हो ? इत्यादि नम्रतासे अर्ज की कि आप आज्ञा प्रदान करे कि मै सूरिजी के पास दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ ?

माता ने कहा—बेटा अभी दीक्षा लेने का समय नहीं है अभी तो तुम विवाह करो माता पिताकी सेवा करो जब तुमारे बाल बच्चा हो जाय हम लोग अपनी संसार यात्रा पूर्ण करलें बाद दीक्षा लेकर अपना कल्याण करना इसमें तुमको कोई रोक टोक नहीं करेंगा।

बेटाने कहा—माताजी वह किसको मालूम है कि मातापिता पहले जायगें या पुत्र पहले जायगा। माता ! विवाह सादी करना यह तो एक मोह पास में बन्धना है और विषय भोग तो संसार में रूलाने वाले है जिन जिन पुरुषो ने विषय भोग सेवन किया है वे नरकादि गति में दु ख सहन किया है वे उनकी आत्माही जानती है। क्या ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिका व्याख्यान आपने नहीं सुना है ? अतः आप कृपा — आज्ञा दे दिजिये—

माताने कहा—बेटा तुमको किसीने बहका दिया है अतः तुँ दीक्षा का नाम लेता है। पर दीक्षा पालन करना सहज नहीं है जिसमें भी तुँ इस प्रकार का सुखमाल है क्षुधा पीपासा शीत उष्णादि २२ परिसह सहन करना कठिन है जो तुँ सहन नहीं कर सकेंगा इत्यादि शोभन के माता पिता ने बहुत कुछ समझा दिया।

बेटाने कहा—माताजी नरक और तिर्यंच के दुःखोंकि सामने दीक्षा के परिसह किस गीनती में है ? एकेक जीव अनंती अनंतीवार सहन कर आया है। जब दीक्षा में तो साधु उल्टे उदिरणा करके दुःख सहन करने की कोशिश करते है। माता देख सूरिजी के साथ पांचसौ साधु है और वे भी अच्छे २ घराना के देवता के जैसी सुख साहबी छोड़कर दीक्षा ली है और आपके सामने दीक्षा पालतेहैं। इतना ही क्यों पर (सब साधनों वाले नागरोंको छोड़कर पहाड़ों में जाकर कठोर तपस्या करते हैं तो क्या तेरे जैसी माता के स्तन पान कर ने वला में दीक्षा पालन नहीं कर सकूँगा अतः आप पूर्ण विश्वास रखे और कृपा कर आज्ञा दीजिये कि मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूँ।

इत्यादि बहुत प्रश्नोत्तर हुए अर्थात् माता पिता ने शोभन की कसोटी लगाकर खूब जाँच एवं परीक्षा की पर शोभन तो एक अपनी बात पर ही अडिग रहा। मंत्री यशोदित्य ने कहा कि तुम दोनों चुप रहो मैं कल सूरिजी के पास जाकर उनकों कहदूंगा कि शोभनको दीक्षा न दें। बस मां बेटा चुप हो गये।

दूसरे दिन मंत्री सूरिजी के पास गया और वन्दन करके अर्ज की कि गुरु देव शोभन अभी बचा है किसी की बहकावट में आकर हट पकड़ लिया है कि मैं दीक्षा लुँगा। पर हमारे सात पुत्रों में यह सब में बड़ा है इसकी सादी करनी है इसकी माता रोती है इत्यादि हमारे प्रतिष्ठा कार्य में एक बड़ा भारी विघ्न खड़ा हो जायगा अतः आप शोभन को समझादें कि अभी दीक्षाकी बात न करे।

सूरिजी ने कहा यशोदित्य तुम्हारा घराना उपकेश गच्छ का उपासक है जिसमें भी तुँ हमारे अग्रेसर

भक्त श्रावक है तुम्हारी आज्ञा विनो तो हम शोभन को दीक्षा दे ही नहीं सकते हैं शोभन आज ही क्यों पर आर्बुदाचल आया था और मेरा उपदेश सुनाया था तब से ही कह रहा है कि मुझे दीक्षा लेनी है दूसरे आप यह भी सोच सकते हो कि इस कार्य मे साधुओ को क्या स्वार्थ है मेरे साधुओ की कोई कमती नहीं है तथा शोभन बिना हमारा काम भी रुका हुआ न्हीं है कि हम इस के लिये कोशीश करे। हाँ कई भी भव्य जीव अपना कल्याण करना चाहे तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसको दीक्षा देकर मोक्षमार्ग की आराधना करावे। मंत्रीश्वर बालाअवस्थामें दीक्षा लेना तो अमूल्य रत्नके तुँल्य हैं कारण एक तो इस अवस्था में दीक्षा लेने वाले के ब्रह्मचर्यगुण जबरदस्त होता है दूसरा पढ़ाई भी अच्छी होती है तीसरा चिरकाल संमय पालने से स्वपर आत्मा का अधिक से अधिक कल्याण कर सकता है। तथा शोभन की माता फिक्र क्यों करती है जब कि उसके एक भी पुत्र नही था आज सात पुत्र है उसमे एक पुत्र शासन का उद्धार के लिए देदे तो उसके कौनसा घाटा पड़ जाता है और शोभन जाता भी कहाँ है वहाँ तुम्हारे पासनहीं तो तुमारा गुरु के पास रहेंगे। मंत्री-मुग्धपुर के श्रावको ने शासन शोभा के लिए अपने पुत्रो को आचार्य श्री की सेवा में अर्पण कर दिये थे यदि शोभन दीक्षा लेगा तो आपका कुल एवं माता मैना की कुक्षको उज्ज्वाल बना देगा अतः शोभन की इच्छा हो तो तुम बिच में अन्तराय कर्म नहीं बान्धना इत्यादि। सूरिजी ने मधुर बचनों से ऐसा हितकारी उपदेश दिया कि यशोदित्य कुच्छ भी नहीं बोल सका। थोड़ी देर विचार कर कहा अच्छा गुरु महाराज मैं शोभन की माता को समझा दूगा और आप श्री व्याख्यान में ऐसा उपदेश दीरावे कि उसका चित शान्त हो जाय। मंत्रीश्वर सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आगया।

सेठानी ने पुछा कि आप सूरिजी को कह आये हो न ? सेठजी ने कहा कि मैं सूरिजी के पास गया था पर सूरिजी ने कहा है कि यदि शोभन दीक्षा लेना चाहता हो तो तुम बिच में अन्तराय कर्म नहीं बन्धना शोभन दीक्षा लेगा तो तुम्हारा कुल और उसकी माता की कुक्ष को उज्ज्वल बना देगा और शोभन जाता कहाँ है तुम्हारे पास नहीं तो गुरु के पास रहेगा इत्यादि। सेठानी ने कहा कि फिर आपने क्या कहा? सेठजी ने कहा मैं गुरु महाराज के सामने क्या कह सकता। सेठानी ने कहा क्या गुरु महाराज शोभन को दीक्षा दे देंगे। सेठ ने कहा हाँ उनके तो यही काम हैं। सेठानी ने कहा उनके तो यही काम है पर आप इंकार क्यों नहीं किया। सेठजी ने कहा कि गुरु महाराज ने कहा था कि अन्तराय कर्म नहीं बान्धना। क्या आप शोभन को दीक्षा लेने दोगे ? सेठजी—हाँ अपने छ पुत्र रहेगा यदि बटवार किया जायगा तो तीन-तीन पुत्र दोनों के रह जायगा फिर अपने क्या चाहिये। जब कि तुम्हारे एक भी पुत्र नहीं था शोभन दीक्षा लेगा तो भी छ एवं तीन पुत्र रह जायगा अत गुरु महाराज कह दिया तो लेने दो शोभन को दीक्षा सेठानी ने सोचा कि सूरिजी ने शोभन पर तो जादू डाल दी था परन्तु शोभन के बाप पर भी जादू डाल दिया ऐसा मालूम होता है तब मैं एकली क्या ही क्या सकूं।

मंत्रीश्वर ने मन्दिर की प्रतिष्ठा का मुहूर्त निकलवाया जो वैशाख शुक्ल ३ [illegible] के दिन स्थिर हुआ और उस दिन ही शोभन की दीक्षा का मुहूर्त निकला था। [illegible] जहाँ देखो वहाँ शोभन के दीक्षा की ही बातें हो रही थीं तथा इनके अनुकरण में कई नर नारी दीक्षा की तैयारियें भी करने लगे इधर मन्त्रीश्वर ने प्रतिष्ठा एवं पुत्र की दीक्षा के लिये आमन्त्रण ही नहीं पर बहुत दूर दूर [illegible] पत्रिका भेजवादी जिसमें बड़ा साधु साध्वियों और श्रावक श्राविकाएँ [illegible]

ओर आ रहे थे जिन मन्दिरों में अष्टाह्निका महोत्सव हो रहा था वैरागी शोभन वगैरह वंदोले खा रहे थे जिनके वैराग्य के वाजे चारों ओर वज रहे थे एक करोड़पति सेठके सोलह वर्ष का पुत्र दीक्षा ले जिसको देख किसके दिल में वैराग्य नहीं आता हो नगरी के तो क्या पर कई वाहर से आये हुए महमानों को ऐस वैराग्य हो आया कि वे भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। ठीक मुहूर्त पर ४२ नर नारियों के साथ शोभन को दीक्षा देकर सूरिजी ने शोभन का नाम सोमप्रभा रक्ख दिया वाद मूर्त्तियो की अंजनसिलाका एवं प्रतिष्ठा करवाई इस पुनीति कार्य में मंत्रीश्वर ने पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य और साधर्मीभाइयो को पेहरामगि वगैरह देने में एक करोड़ रुपये व्यय किया। इस पुनीति कार्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई थी मुनि सोमप्रभ क्रमशः धुरंधर विद्वान एवं सर्व गुण सम्पन्न हो गया आपके अखण्ड ब्रह्मचार्य और कठोर तपश्चर्य के प्रभाव से राजमहाराज तो क्या पर कई देवदेवियों भी आपके चरणों की सेवा कर अपना जीवन को सफल मना रहे थे यही कारण है कि आचार्य यक्षदेवसूरि ने उपकेशपुर के श्रीसंघ के महा-महोत्सव पूर्वक आपको आचार्य पद से अलंकृत वनाया था।

इस कलिकाल में सत्ययुग के सदृश कार्य वन जाना कुदरत से देखा नहीं गया भलो। क्रूर प्रकृति के कलिकाल में करीब ९०० वर्ष तक इस प्रकार का सम्प ऐक्यता के साथ हजारों साधु साध्वियों और करोड़ श्रावक श्राविकाएँ एक आचार्य की आज्ञा में चलना यह क्या साधारण वात है ? कलि के लिये ये एक वडी भारी कलंक एवं लज्जा की वातथी परन्तु इतने अर्सा तक उसका कहाँ पर ही जोर नहीं चल सका। यह अपना दाव पेच खेलता रहा और छेन्द्र देखता रहा पर कहाँ है कि दुष्टों का मनोरथ कभी कभी सफल हो ही जाता है यही कारण था कि भिन्नमाल में रहा हुआ मुनि कुंकुंद ने सुना कि उपदेशपुर में आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने पट्टपर उपाध्याय सोमप्रभ को आचार्य बना कर उसका नाम कक्कसूरि रखदिया और यक्षदेवसूरि का स्वर्गवास भी हो गया है अत. भिन्नमाल के संघ कों इस प्रकार समझाया कि उन्होंने मुनि कुंकुंद कों आचार्य पद देकर उपकेशगच्छ की चिरकाल से चली आई मर्यादा का भंग कर दिया। जब इधर आचार्य कक्कसूरि ने यह समाचार सुना कि भिन्नमाल में मुनि कुंकुंद आचार्य वनगया तो आपको वडा ही विचार हुआ कि पूर्वाचार्य वडे ही भाग्यशाली हुए कि अपना शासन एक छत्र से ही चला कर शासन की उन्नति की जव मैं ही एक ऐसा निकला कि इस गच्छ में दो आचार्यों का नाम सुन रहाहु खैर भवितव्यतो कों कौन मिटा सकता है परन्तु अब इस मामले को किस प्रकार निपटाया जाय कि भविष्य में इसके बुरे फल का अनुभव नहीं करना पड़े और गच्छ कों नुकशान न पहुँचे। आचार्य कक्कसूरि ने अनेक ओर दृष्टि लगा कर देखा जिससे यह ज्ञान हुआ कि जव एक वड़ा नगर का संघ ने आचार्य वना दिया है वह अन्यथा वो हो ही नहीं सकेगा। यदि मैं इसका विरोध करूँगा या संघ को उत्तेजित करूँगा तो यह नतीजा होगा कि मेरा उपदेश मानने वाले उनको आचार्य नहीं मानेगा पर इससे गच्छ में एवं संघ में फूट कुसम्प वढ़ने के आलावा कोई भी लाभ न होगा। कारण जव भिन्नमाल का संघ ने यह कार्य किया है तो वे उनके पक्ष में हो ही गये है दूसरा कुंकुंदमुनि विद्वान भी है और करीव एक हजार साधु भी उनके पास में है इसमे दो पार्टी अवश्य वन जायगी। इत्यादि शासन का हित के लिये आपने वहुत कुच्छ सोचा आखिर आपने आचार्य रत्नप्रभसूरि और कोरंट संघ एवं कनकप्रभसूरि का इतिहास की ओर अपना लक्ष पहुँचाया और यह निश्चय किया कि मुझे भिन्नमाल जाना चाहिये परन्तु इस विषय में देवी सहायिका की सम्मति लेनाभी आवश्

आवश्यक समझा अतः आप ने देवी का स्मरण किया और देवी आकर सूरिजी को वन्दन किया सूरिजी ने धर्मलाभ देकर सब हाल देवी को निवेदन किया और अपना विचार भी कह सुनाया तथा आपकी इसमें क्या राय है। देवी ने कहा पूज्यवर ! भवितव्यता को कौन मिटा सकता है पर यह भी अच्छा हुआ कि यह झमेला आपके सामने आया यदि किसी दूसरे के सामने आता तो गच्छ मे बड़ा भारी मत्तभेद खड़ा हो जाता पर आप भाग्यशाली एवं अतिशय प्रभावशाली है इस झमेला को आसानी से निपटा सकोगे। यह ही कारण है आप अपने मान अपमान का खयाल न करके भिन्नमाल पधारने का विचार कर लिया है। इस लिये ही शास्त्रकारों ने कहा है कि जातिवान कुलवान दीर्घदर्शी एवं उच्च संस्कार वाले कों आचार्य बनाया जाय। प्रत्यक्ष में देख लीजिये कि यदि मुनि कुंकुन्द थोड़ा भी विचारज्ञ होता तो केवल अपनी थोड़ी सी महिमा के लिये पूर्वाचार्यों की मर्यादा का भंग कर गच्छ एवं शासन में इस प्रकार फूट कुसम्प के बीज कभी नहीं बोते। खैर, पूज्यवर ! आपके इस शुभ विचारो से मै सर्वथा सहमत्त हूं और मै आपको कोटीश धन्यवाद भी देती हूँ कि आपने धर्म एवं गच्छ के गौरव की रत्ता के लिये चल कर भिन्नमाल जाने का उत्तम विचार किया है। और आप अपने विचारो में सफलता भी पाओगें। देवी सूरिजी को वन्दन करके चली गई पर देवी को आश्चर्य इस बात का था कि इस युवक व्यय में नूतनाचार्य कितने दीर्घदर्शी है कितने धैर्य एवं गम्भिर्य है ?

आचार्य ककसूरि अपने शिष्यों के साथ विहार कर विना विलम्ब चलते हुए भिन्नमाल की ओर पधार रहे थे। उस समय कोरंटगच्छ के आचार्य नन्नप्रभसूरि भी भिन्नमाल में विराजते थे जिन्हों को भिन्नमाल का संघ आमन्त्रण करके बुलाये थे शायद् इसमें भी कुँकुन्दाचार्य की ही करामात हो कि कोरंटगच्छ के आचार्यों को अपने पत्त मे ले ले कहा है कि विद्वान् जितना उपकार करता है उतना ही अपकार भी कर सकता है खैर भिन्नमाल का संघ एवं कोरंटगच्छ के आचार्य नन्नप्रभसूरि ने सुना कि आचार्य ककसूरि भिन्नमाल पधार रहे है इससे तो प्रत्येक विचारज्ञ के हृदय में नाना प्रकार की कल्पनाएँ ने जन्म लेना शुरु कर दिया। कई विचार कर रहे थे कि ककसूरि यहां क्यो आ रहे है ? कइने सोचा कि मुनि कुंकुन्द को आचार्य बना कर पूर्वाचार्यों की मर्यादा का भंग किया इसलिये ककसूरि आ रहा है कई यह भी विचार कर रहे थे कि यहां दोनों आचार्यो का बड़ा भारी क्लेश होगा ? इस प्रकार मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना एवं जितने मगज उतने ही विचार और जितने मुह उतनी बाते कहा है कि घर हानी और दुनियाँ का तमाशा जब जैनों का यह हाल था तो जैनेत्तरों के लिये तो कहना ही क्या था पाठक पिछले प्रकरणों में पढ़ आये है कि मरुधर में एक भिन्नमाल ही ऐसा क्षेत्र था कि वहा के ब्राह्मण शुरु से ही जैनो के साथ द्वेष रखते आये हैं जब उनको ऐसी बात मिल गई तब तो कहना ही क्या था। वे लोग भी विचार करने लगे कि ठीक है आज जैनो के विरोध पक्ष के दो आचार्य यहां शामिल हो रहे हैं। देखते हैं क्या होगा—

आचार्य नन्नप्रभसूरि ने संघ को कहा कि आचार्य ककसूरि पधार रहे है उन स्वागत के लिये जावेंगे आपको और कुंकुन्दाचार्य को भी सूरिजी का सत्कार एवं स्वागत करना चाहिये। कारण ककसूरिजी आचार्य होने के बाद आपके यहां पहिले पहिल ही पधार रहे है। इस पर ही संघ और कुंकुन्दाचार्य ने एकान्त में विचार किया जिसमें दो पार्टी बन गई एक पार्टी में कुंकुन्दाचार्य और कुच्छ उनके दृष्टिरागी भक्त तब दूसरी

पार्टी में शेष श्री संघ था पर आचार्य नन्नप्रभसूरि का कहना संघ को ठीक लगा अतः सकल श्रीसंघ ने यह निश्चय किया कि आचार्य कक्कसूरि का खूब धूमधाम के साथ नगर प्रवेश का महोत्सव पूर्वक स्वागत करना चाहिये आखिर कुंकुन्दाचार्यको संघ के सहमत होना पड़ा कारण आपके लिये अभी तो केवल एक भिन्नमाल का संघ ही था दूसरे कोरंटगच्छाचार्य का मत स्वागत करने का ही था अतः सकल श्री संघ और आचार्य नन्नप्रभसूरि एवं कुंकुन्दाचार्य मिलकर आचार्य कक्कसूरि का महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया आचार्य श्री भगवान महावीर की यात्रा कर धर्मशाला में पधारे तीनों आचार्य एक ही पाट पर विराजमान हुए उस समय उपस्थित जनता को यही भाँन हो रहा था कि ये तीनों आचार्य ज्ञान दर्शन चारित्र की प्रतिमूर्ति ही दीख रहे है। आचार्य कक्कसूरि ने आचार्य नन्नप्रभसूरि से सविनय अर्ज की कि पूज्यवर! देशना दीरावे। इस पर नन्नप्रभसूरि ने कहा सूरिजी सकल श्री संघ और हम आपके मुखार्विन्द की देशना के पीपासु है आप अपने ज्ञान समुद्र से सब लोगों को आमृतपान करावे। कक्कसूरि ने कहा कि आप हमारे वृद्ध एवं पूज्याचार्य है अतः आपको ही देशना देनी चाहिये ? मैं आपकी देशना का प्यासा हूँ पुनः नन्नसूरि ने कहां सूरिजी संसारी लोग कहते है कि 'परणी जो सो गाईजे' आज तो सब लोग आपकी ही देशना सुनना चाहते है। इस पर कक्कसूरि ने कुंकुन्दाचार्य को कहां सूरिजी आप फरमावे। कुंकुन्दाचार्य लज्जा के मारे मुँह नीचा कर लिया और कहां कि पूज्यवर! आज की देशना तो आपकी ही होनी चाहिये इत्यादि। इस विनयमय प्रवृति देख दुनियाँ का दील पलटा खागया और उनके जो विचार पहिले थे वे नहीं रहे।

आचार्य कक्कसूरि ने अपनी ओजस्वी गिरा से देशना देनी प्रारम्भ की जिसमें मंगलाचरण के पश्चात् शासन का महत्व बतलाते हुए कहा कि भगवान महावीर का शासन २१००० वर्ष पर्यन्त चलेगा। इस अनेक प्रभावशाली आचार्य हुए और होगा आचार्य का चुनाव श्री संघ करता है एक आचार्य की आवश्यकता हो तो एक और अधिक आचार्यों की जरूरत हो तो अधिक आचार्य भी बना सकते हैं इसके लि व्यवहारादि सूत्र में विस्तार से उल्लेख मिलता है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता है कि कि ग्राम नगर का संघ स्वच्छंदता पूर्व किसी को आचार्यबना कर शासन का संगठन दल काटुकड़ा टुकड़ा कर डाले पूर्वाचार्यों ने महाजन संघ स्थापन करने में तथा उस महाजन संघ की वृद्धि करने में जो सफलता पाई थ उसमें मुख्य कारण संगठन का ही था देखिये एक गृहस्थ के चार पुत्र हैं पर एक संगठन में ग्रन्थित है वह तक उनका प्रभाव कुछ और ही है यदि वे चारों पुत्र अलग अलग हो जाय तो उनका उताना प्रभाव नहीं रहता है यही हाल शासन नायकों का समझ लेना चाहिये। एक समय कोरंट संघ ने पार्श्वनाथ संतानियों में आचार्य रत्नप्रभसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्य होते हुए भी वेग में आकर कनकप्रभसूरि को आचार्य बना दिया पर आचार्य रत्नप्रभसूरि इतने दीर्घ दर्शी एवं शासन केशुभचिंतक थे कि वे चलकर शीघ्र ही कोरंटपुर पधारे। इस बात की खबर मिलते ही कोरंटसंघ एवं कनकप्रभसूरि ने आपका स्वागत किया। इतना ही क्यों पर कनकप्रभसूरिजी इतने योग्य एवं शासन के हितैषी थे कि कोरंटसंघ की दी हुई आचार्य पदवी रत्नप्रभसूरि के चरणों में रखदी परन्तु रत्नप्रभसूरि भी इतने दीर्घ दर्शी थे कि अपने हाथों से कनकप्रभसूरि को आचार्य पद देकर कोरंटसंघ एवं कनकप्रभसूरि का मान रखा इस प्रकार दोनों ओर की विनयमय प्रवृति का मधुर फल यह हुआ कि केवल नाम मात्र के (उपकेशगच्छ-कोरंटगच्छ) दो गच्छ कहलाते हैं पर वास्तव: दोनों गच्छ एक ही है इस बात को करीबन ८४० वर्ष ही गुजरा है पर इन दोनों गच्छ में इतना प्रेम स्नेह [illegible]

है कि कोई यह नहीं कह सकता है कि ये दो गच्छ है । इत्यादि मधुर एवं मार्मिक शब्दों से जनता पर इस कदर प्रभाव डाला कि कुन्कुन्दाचार्य पाट पर से उतर कर सबके समीक्षा कहाँ पूज्यवर ! मेरी गलती हुई है कि मैं अज्ञानता के कारण पूर्वाचार्यों की मर्यादा का उल्लंघन किया है जिसको तो आप क्षमा करावे और यह आचार्य पद में पूज्य के चरणो में रख देता हूँ । आप हमारे पूज्य है आचार्य हैं और गच्छ के नायक है । इत्यादि अहा हा आपके अलौकिक गुणों का मैं कहाँ तक वर्णन कर सकता हूँ—पूज्यवर ! आप वास्तविक शासन के शुभचिंतक एवं हितैषी है । साथ मे भिन्नमाल के श्री संघ ने भी कहाँ पूज्यवर ! इस कार्य मे अधिक गलती तो हमारी हुई है इस पर आचार्य कक्कसूरि ने कहा कि कुन्कुन्दाचार्य योग्य है विद्वान है इतना ही क्यो पर आप आचार्य पद के भी योग्य हैं और भिन्नमाल सघ ने भी जो कुछ किया है वह योग्य ही किया है गुणीजन की कदर करना यह श्री सघ का कर्तव्य भी है यदि यही कार्य हमारे पूज्याचार्य यक्षदेवसूरि एवं नन्नप्रभसूरि आदि की सम्मति से किया गया होता तो अधिक शोभनीय होता । खैर मैं कुन्कुन्दाचार्य कों कोटिश धन्यवाद देता हूँ कि इस कलिकाल मे भी आपने सत्ययुग का कार्य कर बतलाया है यह कम महत्त्व का कार्य नहीं है साथ में भिन्नमाल का श्री संघ भी धन्यवाद का पात्र है कारण जैन धर्म का मर्म यही है कि अपनी भूल को आप स्वीकार करले । तत्पश्चात् आचार्य कक्कसूरि ने आचार्य नन्नप्रभसूरि कों प्रार्थना की कि पूज्याचार्य देव यह चतुर्विध श्री सघ विद्यमान है आपके वृद्ध हस्तकमलो से कुन्कुन्दाचार्य को आचार्य पद अर्पण कर मेरे कन्धे का आधा वजन हलका कर दिरावे । कुन्कुन्दाचार्य ने कक्कसूरि से अर्ज की कि पूज्यवर ! आप हमारे प्रभावशाली आचार्य हैं और मैं आचार्य बनने के बजाय आचार्य का दास बन कर रहने मे ही अपना गौरव समझता हूँ इत्यादि । कक्कसूरि ने कहा प्रिय आत्म बन्धु ! मैं भिन्नमाल श्रीसंघ की दी हुई आचार्य पदवी लेने को नही आया हूँ पर भिन्नमाल श्री सघ का किया हुआ कार्य का अनुमोदन कर अपनी सम्मति देने को ही आया हूँ, भविष्य के लिए जनता यह नहीं कह दें कि उपकेश गच्छ में बिना आचार्य की सम्मति आचार्य बन गये । अतः मैं आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि आप आचार्य पद को स्वीकार कर लो । आचार्य नन्नप्रभसूरि और उपस्थित श्री सघ ने भी बहुत आग्रह किया अत आचार्य नन्नसूरि एवं कक्कसूरि के वासक्षेप पूर्वक मुनि कुन्कुन्द को आचार्य पद देकर कुन्कुन्दाचार्य बनाया उस समय श्री संघ ने भगवान महावीर की जयध्वनि से गंगन को गुंजाय दिया था । तत्पश्चात आचार्य कक्कसूरि ने कुन्कुन्दाचार्य और भिन्नमाल के श्री संघ को कहा कि संघ पचवीसवाँ तीर्थङ्कर होता है मगर आज मैंने 'छोटे मुँह बड़ी बात' वाली धृष्टता करता हुआ आपको उपालम्भ दिया है इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ । मुझे यह उम्मेद नहीं थी कि यहाँ इस प्रकार की शान्ति रहेगा । आपके धैर्य एवं गाम्भिर्य और सहनशी-लता का वर्णन मैं वाणिद्वारा कर ही नहीं सकता हूँ आपकी सम्यग्दृष्टि बड़ी अलौकिक है मुझे अधिक हर्ष तो महानुभाव कुंकुंदाचार्य के कोमलता पर है कि आपने कलिकाल के उन्नत हृदय पर लात मार कर साक्षात् सत्युग का नमूना बतला दिया है सज्जनो अपनी भूल को भूल स्वीकार कर लेना इनके बराबर कोई गुण है ही नहीं इस गुण की जितनी महिमा की जाय उतनी ही थोड़ी है मैं तो यहां तक ख्याल कर सकता हूँ कि जितने जीव मोक्ष मे गये हैं वे सब इस पुनित गुण से ही गये है क्योंकि जीव संसार मे परिभ्रमन करता है वह अपनी भूल से ही करता है जब अपनी भूल को भूल समझता है तब उस जीव की मुक्ति हो जाती है । सद्गृहस्थों आपके लिये भी यह एक अमूल्य शिक्षा है जितना राग द्वेष क्लेश कदाग्रह होते हैं उनमें

मौख्य रोग अपनी भूल स्वीकार नहीं करना ही है । एक तरफ या दोनों तरफ से भूल होने के कारण ही राग द्वेष पैदा होता है यदि अपनी अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है तब रागद्वेष चौरों की भांति भाग छुटता है इत्यादि सूरिजी ने अपने विचारों का जनता पर इस कदर प्रभाव डाला कि जिससे सबको सतोष हो गया।

कुंकुंदाचार्य और भिन्नमाल के संघ ने कहा पूज्यवर! स्वर्गस्थ आचार्य यक्षदेवसूरि ने आपको आचार्य पदार्पण कर गच्छ का सब भार आपको सुपर्द किया है यह खूब दीर्घ विचार करके ही किया था और आपश्री जी इस पद के पूर्ण योग्य भी है वैद्यराज की दवाई लेते समय भले कटुक लगती हो परन्तु इस प्रकार की कटुक दवाई बिना रोग भी तो नहीं जाता है यदि आप दीर्घ विचार कर यहाँ न पधारते तो न जाने भविष्य मे इनके कैसे जेहरीले-विष फल लगते पर आपके पधारने से कितना फायदा हुआ है कि भवि क्षेत्र बिलकुल निष्कण्टक बनगया है हमारे विशेष शुभकर्मों का उदय है कि उधर से आचार्य नन्नप्रभसूरि का और इधर से आपका पधारना हो गया । इत्यादि आपसमें विनय व्यवहार करके भगवान महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई

अहा-हा-आज भिन्नमाल में जहाँ देखो वहाँ जैनाचार्यों की भूरि भूरि प्रशंसा हो रही है । आज जैनों के हर्ष का पार नहीं है परन्तु वादी लोग दान्तों के तले आंगुलिये दबाकर निराश हो गये है उनके चेहरे फिके पड़गये है उनके दिल मे बूरी भावनाए थी जिनको जैनाचार्यों ने मिथ्या साबित करदी है और जहाँ देखो वहाँ जैनधर्म के ही यशोगायन हो रहा है ।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशाँ होता था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था । एक दिन भिन्नमाल के श्रीसंघ ने तीनों आचार्यों के चतुर्मास के लिये आचार्य नन्नप्रभसूरि से साग्रह विनती की और कहा कि पूज्यवर! यहाँ के श्रीसंघ की यह अभिलाषा है कि आप तीनों आचार्यों का यह चतुर्मास भिन्नमाल में ही हो । इसकी मंजुरी फरमा कर यहाँ के श्रीसंघ को मनोरथ पूर्ण करावे । सूरिजी ने कहाँ श्रावकों ! यदि तीनाचार्य तीनक्षेत्र में चतुर्मास करेंगे तो तीनक्षेत्रो का उपकार होगा अतः आपके यहाँ कक्कसूरिजी का चतुर्मास होना अच्छा है । श्रीसंघ ने कहा पूज्यवर ! आप जहाँ विराजे वहाँ उपकार ही है पर यह चतुर्मास तो यहाँ ही होना चाहिए सूरिजी ने दोनों आचार्यों की सम्मति लेकर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली बस । फिरतो कहना ही क्या था भिन्नमाल के श्रीसंघ का उत्साह खूब बढ़गया ।

श्रमणसंघ मे सर्वत्र धर्मस्नेह और संघ में शान्ति का सम्राज्य छायाहुआ था कुंकुंदाचार्य का गत चतुर्मास भिन्नमाल में ही था अतः मुनियों को वाचना का काम आपके जुम्मा कर दिया कि तीनों आचार्यों के योग्य साधुओं को आगम वाचना एवं वर्तमान साहित्याका अध्ययन करवाया करे आचार्य नन्नसूरि अवस्था में वृद्ध थे वे मुनियों की सार संभाल एवं अपनी सलेखना में लगरहे थे तब आचार्य कक्कसूरि व्याख्यान दे रहे थे । श्रीमालवंशीय शाह दुर्गा ने महाप्रभाविक पंचमांग श्री भगवतीजी सूत्र को महामहोत्सव पूर्व अपने मकान पर लेजाकर पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि कर हस्ति पर विराजमान कर वरघोड़ा चढ़ाया और हीरा पन्ना माणक मुक्ताफल से पूजा कर सूरिजी के करकमलों में अर्पण किया जिसको सूरिजी ने व्याख्यान में वाचना प्रारम्भ कर दिया जिसको सुनने के लिये केवल भिन्नमाल के लोग ही नहीं पर ग्राम-ग्राम एवं दूर दूर ग्राम नगरों के जैन जैनत्तर लोग आया करते थे सूरिजी महाराज की तात्विक विषय समझाने की शैली इतनी सरल सरस और हृदयग्राही थी कि श्रोताजनों को बड़ा ही आनन्द आरहा था । जिस समय

आप त्याग वैराग्य की धून में संसार के दुःखों का वर्णन करते थे तब अच्छे अच्छे लोग कांप उठते थे और उनकी भावना संसार त्याग ने की हो जाति थी । इतना ही क्यो पर कई महानुभावो ने तो सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने का भी निश्चय कर लिया ।

एक समय आचार्य कक्कसूरिजी आत्म ध्यान में रमणता के अन्त मे जैनधर्म का प्रचार के निमित विचार कर रहे थे ठीक उसी समय देवी सच्चायिका ने आकर वन्दन की उत्तर मे सूरिजी ने धर्मलाभ दिया । देवी ने कहाँ पूज्यवर ! आप बड़े ही प्रभावशाली हैं आपके पूर्ण ब्रह्मचर्य और कठोर तपश्चर्य का तपतेज बड़ा ही जबर्दस्त है कि भिन्नमाल जैसे जटिल मामला को आपश्री ने बड़े ही शांति के साथ निपटा दिया यह आपके गच्छ का भावि अभ्युदय का ही सूचक है । पूज्यवर ! यह भी आपने अच्छा किया कि तीनो आचार्यों ने शामिल चतुर्मास कर दिया, इत्यादि । सूरिजी ने कहा देवीजी आप जैसी देवियों इस गच्छ की रक्षिका है फिर हमको फिक्र ही किस बात का हैं । आचार्य रत्नप्रभसूरि के पुन्यप्रताप से सब अच्छा ही होता हैं । देवी जी आज मेरी यह भावना हुई है कि मै आज से पांचों विगई का त्याग कर छट छट पारण (आंबिल) करू कारण दुष्ट कर्मों की निर्ज्जरा तप से ही होता है ?—देवी ने कहा प्रभो ! आपका विचार तो सरयुतम है पर आप पर अखिल गच्छ का उत्तरदायित्व हैं आपके विहार एवं व्याख्यान से जनता का बहुत उपकार होता है यदि आप आहार करते हो तो भी आपके तो तपस्या ही है इत्यादि ! इसपर सूरिजी ने कहाँ देवीजी मेरी तपस्या मे विहार और व्याख्यान की रुकावट नही होगा अतः मेरी इच्छा है कि मैं आज से ही छट छट पारण करना प्रारम्भ करदूँ । देवीने कहाँ ठीक हैं गुरुदेव कर्म पुंज जलाने के लिये तप अग्नि समान हैं हम लोग तो सिवाय अनुमोदन के क्या कर सकती है । पर आप अपने शरीर का हाल देख लिरावे सूरिजी ने कहा कि शरीर तो नाशमान है इसके अन्दर से जितना सार निकल जाय उतना ही अच्छा है देवी ने सूरिजी की खूब प्रशंसा करती हुई वन्दन कर चली गई और आचार्य श्री ने उसी दिन से छट छट यानि दो दिन के अंतर पारण करना शुरु कर दिया । जिसकी किसी को मालुम नहीं पड़ने दी । परन्तु बाद में आचार्य रत्नप्रभसूरि को मालुम हुआ तो सूरिजी ने फरमाया कि आप हमारे शासन एवं गच्छ के स्तम्भ हैं आपके तो हमेशाँ तप ही है यदि आप विहार कर भव्यों को उपदेश करेंगे तो अनेक जीवों का उद्धार कर सकोगे इत्यादि । कक्कसूरि ने कहाँ कि आपका कहना बहुत अच्छा है मैं शिरोधार्य करने को तैयार हूँ पर जब तक मेरे विहार एवं व्याख्यान में हर्जा न पडे वहाँ तक निश्चय किया हुआ तप करता रहूँगा । आचार्य कक्कसूरि तप के साथ योग आसन समाधि और स्वरोदय के भी अच्छे विद्वान थे इतना ही क्यों पर अपने साधुओं के अलावा दूसरे गच्छो के एवं अन्य धर्म के मुमुक्षु लोक भी योग एव स्वरोदय ज्ञान के अभ्यास के लिए आपश्री की सेवा में रहा करते थे—जैसे आप ज्ञानी थे वैसे ज्ञान दान देने मे बड़े ही उदार थे आये हुए महमानों का अच्छा मान पान रखते थे और उनके सब आवश्यकता को भी आपश्री अच्छी सुविधा से पूर्ण करते थे । अतः आपके पास रहने से किसी को भी तकलीफ नही रहती थी । भिन्नमाल का श्रीसंघ तीनों आचार्यों का चतुर्मास कराने में खूब ही सफलता प्राप्त की थी पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य तप आदि सद कार्यों से धर्म की एवं शासन की खूब ही उन्नति की इतना ही क्यों पर सूरिजी का वैराग्य मय व्याख्यान सुनकर कइ १८ नर-नारी दीक्षा लेने को भी तैयार हो गया चतुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी ने कर कमलों से उन सबको भगवती दीक्षा देकर उनका उद्धार किया ।

तत्पश्चात आचार्य रत्नप्रभसूरि ने कोरंटपुर की ओर विहार किया तत्र कुंकुंदाचार्य को उपकेशपुर की ओर विहार का आदेश दिया और आप स्वयं शिवपुरी चन्द्रावती की ओर विहार कर दिया। आसपास के ग्रामों में भ्रमन कर शिवपुरी पधार रहे थे यह आपके जन्म भूमि का स्थान था यों ही शिवपुरी शिव (मोक्ष) पुरी ही थी परन्तु आज तो आचार्य कक्कसूरि का शुभागमन हो रहा है ऐसा कौन हृदय शून्य मनुष्य होगा कि जिसको अपने नगरी का गौरव न हो क्या राजा क्या प्रजा क्या जैन और क्या जनेत्तर सब नगरी ही सूरिजी के स्वागत में शामिल होकर महामहोत्सव पूर्वक सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर धर्मशाला मे पधारे और थोड़ी पर सारगर्भित भवभंजनी देशनादी मंत्री यशोदित्य और आपके गृहदेवी सेठानी मैना अपने पुत्र का अतिशय प्रभाव देख परमानन्द कों प्राप्त हुए। तत्पश्चात् परिषद् विसर्ज्जन हुई और मकान पर आने के बाद मंत्री ने अपनी औरत को कहा देख लिया नी अपने पुत्र को । पुत्र को पूछते तो सही कि आप सुख में हैं या दुःख में। सेठानीजी आपके कुक्ष से इतने पुत्र हुए हैं पर आपकी कुक्ष और हमारा कुलकों एक शोभन ने ही उज्वल बनाया है इत्यादि। जिसको सुनकर सेठानी बड़े ही हर्ष एवं आनन्द में मग्न होगयी। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिस को जैन जैनेतर सुनकर सूरिजी नहीं पर मंत्री मंत्री का कुल और शिवपुर नगरी की प्रशंसा कर रहे थे। एक समय मंत्री अपनी स्त्री एवं पुत्रों को लेकर सूरिजी के पास आये वन्दन कर माता मैना ने कहां कि आप हम लोगों को छोड़ गये एवं भूल भी गये। आपके तो नये २ नगर हजारों शिष्य और लाखों भक्त है जहां जाते वहाँ खमा खमा होती है फिर हम लोग आपको याद ही क्यों आवें खैर, अब थोड़ा बहुत रास्ता हमको भी बतलावे कि जिससे हमारा भी कल्याण हो ये आपके भाई है और ये इनकी विनणियां है ये सब आपको वन्दन कर सुख साता पूच्छती हैं सूरिजी ने सबको धर्मलाभ दिया और धर्म कार्य में उद्यमशील रहने का उपदेश दिया। साथ में माता मैना को कहा कि अब आपकी वृद्धावस्था है घर और कुटुम्ब का मोह छोड़ दो और आत्म कल्याण करो कारण यह धन माल और कुटुम्ब सब यहीं रह जायगा और अकेला जीव पर भव जायगा इत्यादि सेठानी मैंना ने कहा कि उस समय आप अपने माता पिता को भी दीक्षा देदे तो हमारा भी उद्धार हो जाता ? सूरिजी ने कहाँ कि अब भी क्या हुआ है लीजिये दीक्षा मैं आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। सेठानी ने कहा अब तो हमारी अवस्था आगई है तथापि आप ऐसा रास्ता बतलाओं कि घर में रह कर भी हम हमारा कल्याण कर सकें खैर सूरिजी ने गृहस्थों के करने काबिल कल्याण का मार्ग बतलाया जिसको मंत्री के कुटुम्ब ने स्वीकार किया। कुछ दिनों के बाद आप चंद्रावती पधारे। वह भी कइ अर्सा तक स्थिरता की सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर बहुत प्रभाव हुआ कई लोगों की इच्छा हुई कि गरमी के दिन एवं जेठ का मास है आर्बुदाचलजी की यात्रा कर कुछ समय वहाँ ठहर कर निर्वृति में ज्ञान ध्यान करे अतः उन्होंने सूरिजी से प्रार्थना की और सूरिजी ने स्वीकार भी करलिया चन्द्रावती में जैनों कि लाखों मनुष्यों की आवादी थी शिवपुरी पद्मावती वगैरह नगरों में खबर मिलने से वे लोग ऐसा सुवर्ण अवसर हाथों से कब जाने देने वाले थे बस हजारों भावुक गुरु महाराज के साथ छः री पाली यात्रा करने कों प्रस्थान कर दिया ‡ आबु का चढ़ाव भी बारह कोस का था रास्ता भी

‡ केनार्बुद गिरौसद्धो, ज्येष्ट मासि, समारुहन। पिपासितः प्राणतुलाः मारूढ़ पौढ़शक्तिना

विकट था इधर गरमी भी खूब पड़ती थी यात्री लोग साथ में पानी लिया वह बिच में ही पीकर खत्म कर दिया था। विशेषता, यह थी कि ऐसा गरमी का वायु चला कि पानी के विनो लोगों के प्राण जाने लगे जिभ्यातालुके चप गई उनकी बोलने तक की शक्ति नही रही। इस हालत में संघ अग्रेश्वरो ने आकर सूरीश्वरजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप जैसे जगम कल्पवृक्ष के होते हुए भी श्रीसघ इस प्रकार अकाल में ही काल के कवलिये बन रहे हैं। पूर्व जमाना में आपके पूर्वजो ने अनेक स्थानो पर संघ के संकटों को दूर किया है आचार्य व्रज स्वामी ने दुकाल रूप संकट से बचाकर संघ को सुकाल मे पहुँचा कर उनका रक्षण किया तो क्या आप जैसे प्रतिभाशालियों की विद्यमानता मे सघ पानी बिना अपने प्राण छोड़ देंगे, इत्यादि। आचार्य कक्कसूरिजी ने संघ की इस प्रकार करूणामय प्रार्थना सुन कर अपने ज्ञान एवं स्वरोदय बल से जान कर कहा कि महानुभावों! मैं यहां बैठकर समाधि लगाता हूँ यहाँ एक पाक्षी का संकेत होगा। वहाँ पर आपको पुष्कल जल मिल जायगा बस। इतना कह कर सूरिजी ने समाधि लगाई इतने में तो एक सुपेत पाखोवाला पाची आकाश में गमन करता हुआ आया और एक वृक्ष पर बैठा जल की आशा से सघ के लोग इस संकेत को देखा और वहां जाकर भूमि खोदी तो स्वच्छ, शीतल, निर्मल पानी निकल आया वह पानी भी इतना था कि अखूट बस फिर तो था ही क्या सब संघ ने पानी पीकर तरसा को शान्त की और आपके साथ जल पात्र थे वे सब पानी से भर लिये पर यह किसी ने भी परवाह न की कि सूरिजी समाधि समाप्त की या नहीं। इसी का ही नाम तो कलिकाल है। खैर सब काम निपट लेने के बाद सूरिजी ने अपनी समाधि समाप्त की। बाद संघ अग्रेश्वरों ने एकत्र होकर यह विचार किया कि यहाँ पर आज श्रीसंघ के प्राण बचे और सूरिजी की कृपा से सब लोग नूतन जन्म में आये हैं तो इस स्थान पर एक ऐसा स्मृति कार्य किया जाय कि हमेशो के लिये स्थायी बन जाय। अतः सब की सम्मति हुई कि यहाँ एक कुंड और एक मन्दिर बनाया जाय और प्रति वर्ष वहाँ मेला भरा जाय। बस यह निश्चय कर लिया चरित्रकार लिखते हैं कि उस स्थान आज भी कुंड है और प्रति वर्ष मेला भरता है खैर सघ आर्बुदा चल गया और भगवान् आदीश्वरजी की यात्रा की। आहाहा—पूर्व जमाने में जैनाचार्य कैसे करुणा के समुद्र थे और सघ रक्षा के लिये वे किस प्रकार प्रयत्न किया करते थे तब ही तो संघ हरा भरा गुल चमन रहता था और आचार्य श्री का हुक्म उठाने के लिये हर समय तत्पर था अस्तु। संघ यात्रा कर अपने २ स्थान को लौट गया और सूरिजी महाराज वहाँ से लाट प्रदेश की ओर पधार गये क्रमशः विहार करते हुए भरोच नगर की ओर पधारे वहाँ का श्रीसघ सूरिजी का अच्छा स्वागत किया सूरिजी महाराज ने भरोंच नगर के संघाग्रह से वहाँ कुच्छ अर्सा स्थिरता की आपका व्याख्यान हमेशा होता था—

मारोटकोट नगर मे उपकेशवशीय श्रावको की बहुत अच्छी आबादी थी जिस मे एक कोटिध्वज

पयाऽधःस्थ वटस्याधो, दंर सन्दर्श्य वायुतम्। सर्वोऽप्युज्झी व्याज्झके, किमनाप्यं नगन्दिनाम्
सहस्रसंख्यै रतल्लोकैः, पीयमान मनेकशः। जगाम न क्षयं वारि, मह. [illegible]
तत्कुण्ड वारि सम्पूर्ण, यथाप्यस्ति तदाद्यपि। प्रत्यब्दं वासरे तस्मि [illegible]
श्राद्धा श्चन्द्रावती सत्का, स्तत्र पयावटस्थिताः। [illegible]

[illegible]

सोमाशाह नाम का श्रद्धा सम्पन्न श्रावक भी बसता था आप धन में कुवेर और कुटम्ब में श्रेणिक ही कह- लाते थे। जैन धर्म में तो आपकी हाड़ हाड़ की मींजी रंगी हुई थी आपने कई बार श्रावक की प्रतिमा का भी आराधन किया अतः आप सिवाय देवगुरु के किसी को शिर नहीं झुकाते थे फिर भी आप संसार में बैठे थे। वहु कुटम्वी भी थे। कहां ही जाता आना पड़ जाय तो अपने हाथ की मुंदड़ी में आचार्य ककसूरि का छोटासा चित्र बनाकर मंडवा लिया था कभी कहीं शिर झूकाने का काम पड़ता तो उस मुदड़ी को आगे कर अपने गुरु देव को नमस्कार कर लेते थे। इस बात की प्रायः दूसरों को मालुम नहीं थी। कहा है कि कभी कभी सोना की परीक्षा के लिये उसको अग्नि में तपाया जाता हैं ताड़ना पीटना और शूलाक भी लगाई जाती हैं। इसी प्रकार धर्मी पुरुषों की परीक्षा का समय भी उपस्थित होजाता है किसी छेद्रगवेषी ने सोमा- शाह की वात को जान ली और इस फिराक में समय देख रहा था कि कभी मोका मिले तो सो. ाशाह की खबर लूँ। मारोट कोट के शासनकर्ता के पुत्र नहीं था जिसका राजा और प्रजा सव को वडा भारी फिक्र था कई समय निफल चुका था अन्तराय क्षय होने से एवंकुदरत की कृपा से राजा के पुत्र हुआ जिस वात की राज प्रजा में वड़ी खुशी हुई। नगर के सव लोग राजा के पास गये और राजा को नमस्कार कर अपनी अपनी भेट नजर की उस समय सोमाशाह भी गया उसने राजा को नमस्कार किया पर वह चित्रवाली मुंदड़ी उसके हाथ में पहनी हुई थी भाग्यवसात् वह छेद्रगवेषी भी वहां हाजर था सब लोगों के जाने के बाद राजा को कहा कि आपके पुत्र होने की सव नगर वालों को खुशी है और सबने आपको भक्ति के साथ नमस्कार भी किया है पर एक सोमाशाह नाम का सेठ है यों तो वह वड़ा ही धर्मी कहलाता है पर उसके दिल में इतना घमंड है कि वह किसी को नमस्कार नहीं करता है दूसरों को तो क्या पर वह तो आपको भी नमस्कार नहीं करता है ? राजा ने कहा कि तुमारा कहना गलत है कारण अभी सोमाशाह आया था और उसने मुझे नमस्कार भी किया था छेद्रगवेषी ने कहा हजूर यह तो आपको धोखा दिया है नमस्कार आपको नहीं किया पर उसके हाथ में मुंदड़ी है उसमें उनके गुरु का चित्र है उनको नमस्कार किया है आपको नहीं ? यह सुनकर राजा को वड़ा ही गुस्सा आया तत्काल ही दूत भेज कर सोमाशाह को बुलाया। सोमाशाह समझ गया परन्तु वह धर्म का पक्का पाबंद था हाथ में मुंदड़ी पहन कर राजा के पास जाकर नमस्कार किया तो राजा ने मुंदड़ी देखी और पुच्छा कि सोमा तुं नमस्कार किसको किया ? सोमाने कहा कि परम पूजनीय गुरु देव को। राजाने कहाँ कि क्या तुँ तेरे गुरु के अलावा दूसरे को नमस्कार नहीं करता है ? सोमा ने कहा नमस्कार करने योग्य एक गुरुदेव ही है। देखता हूँ तुमारे गुरु तुमारी कैसी सहायता करता है राजाने अपने अनुचरों को हुकम दिया कि इस सोमा को सात शांकलों में जकड़कर बन्ध दो और अंधेरी कोटरी में डालकर पक्का ताला लगादो। बस फिर तो क्या देर थी अनुचरों ने सोमाशाह को सात शांकलों में बन्ध कर अन्धेरी कोटरी में डाल कर कोटरी के एक बड़ा ताल लगा दिया और चाबी लाकर राजा के सामने रखदी। थोड़ी देर के लिये दुशमनों के मनोरथ सफल हो गये धर्मी लोगों को बड़ा भारी रंज हुआ पर राजा के सामने किसका क्या चलने वाला था कारण उस जमाना के कानून तो उन सत्ताधारियों के मुँह में ही रहते थे अर्थात् वे भला बुरा जो चाहते थे वे कर गुजरते थे। खैर। सोमाशाह कारागृह में बैठा हुआ यह सोच रहा था कि पूर्व भवमें संचित किये हुए शुभाशुभ कर्म भोगवते में तो मुझे उनक भी दुःख नहीं है पर मेरे कारण जैनधर्म की निंदा होगा इस बात का मुझे बड़ा ही दुःख है गुरुदेव बड़े ही अतिशयवाले हैं इसमें किसी प्रकार का

संदेह नहीं पर वे निस्पही है उनको इन संसारी बातें से कुच्छ भी प्रयोजन नहीं है परन्तु सोमाशाह कों गुरुवर्य्य कक्कसूरिजी महाराज का पक्का इष्ट था उसने कारागृह में रहा हुआ आचार्य कक्कसूरि के गुणो का एक अष्टक सरस कवितामय बनाया ज्यो ज्यो एक एक काव्य बनता गया और एक एक शांकल टुटती गई अतः सात शांकलो सात काव्यो बनाने से तुट गई और आठवा काव्य बनाते ही कोठरी का ताला तुट पड़ा और द्वार के कपट स्वयं खुल गये सोमाशाह राजा के सामने आकर खड़ा हुआ जिसको देख राजा और राज सभा के लोग आश्चर्य में मुग्ध वनगये और सोमाशाह के इष्ट की भूरि भूरि प्रशंसा कर सोमाशाह को लाख रुपयों का इनाम दिया। सोमाशाह राजा के पास से चलकर अपने घर पर नहीं आया पर सीधा ही भरोंच नगर की ओर रवाना होगया क्योकि उसने पहिले ही प्रतिज्ञा करली थी कि मैं गुरु कृपा से इस उपसर्ग से बच जाउ तो पहिले गुरुदेव के चरणो का स्पर्श करके ही घर पर जाउगा। हां दुःख मे प्रतिज्ञा करने वाले बहुत होते है पर दुःख जाने के बाद प्रतिज्ञा पालन करने वाले सोमाशाह जैसे विरले ही होते है। सोमाशाह अपनी प्रतिज्ञा को पालन करने के लिये चलकर भरोंचनगर आया जो मारोटकोट से बहुत दूर था परन्तु उस संकट को देखते वह कुच्छ भी दूर नहीं था—

पाठकों! आप आचार्य रत्नप्रभसूरि के जीवन मे पढ़ आये हैं कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने दीक्षा ली थी उस समय आप एक पन्ना की मूर्त्ति साथ मे लेकर ही दीक्षा ली थी और वह मूर्त्ति क्रमशः आपके पटधरो के पास रहती आई है और जितने आचार्य उपकेशगच्छ मे हुए है वे सब उस पार्श्वनाथमूर्त्ति की भाव पूजा अर्थात् उपासना करते आये हैं वह मूर्त्ति आज आचार्य कक्कसूरि के पास है जिस समय आचार्य श्री मूर्त्ति की उपासना करने को विराजते थे उस समय देवी सच्चायिका भी दर्शन करने को आया करती थी। भाग्य विसात् इधर तो सोमाशाह सूरिजी के दर्शन करनें को आता है और इधर भिक्षा का समय होने से साधु नगर में भिक्षार्थ जाते हैं देवी सच्चायिका एकान्त में सूरिजी के पास बैठी है और सूरिजी मूर्त्ति की उपासना कर रहा है सोमाशाह ने उपाश्रय साधुओ से शून्य देखा तथा एक ओर रूप योवन लावण्य सयुक्त युवा स्त्री के पास

"तत्पट्टे कक्कसूरि द्वादश वर्षयावत् षष्ठतपं आचाम्ल सहितं कृतवान् तस्यस्मरण स्तेविन मरोटकोटे सोमक श्रेष्टिस्य शृंखला त्रुटिता तेन चिंतितं यस्य गुरोनाम स्मरणेन बन्धन रहितो जातः एकवारं तस्य पादौ वन्दामि। स भरूकच्छे आगतः अटण वेलायां सर्वे मुनीश्वरा अटनार्थ गतास्ति। सचायका गुरु अग्रेस्थितास्ते द्वारो दतोस्ति तेने विकल्पं कृतं। सचायिका शिक्षा दत्ता मुखे रुधिरो वमति। मुनीश्वरा आगता वृद्धगणेशेन ज्ञातं भगवन् द्वारे सोमक श्रेष्टि पतितोस्ति आचार्य ज्ञातं अयं सचिका कृतं, सच्चिका आहुता। कथितं त्वया किं कृतं? भगवान मया योग्यकृत वे पापिष्ट यस्य गुरु नाम ग्रहणे वन्धनोनि शृंखलानि त्रुटितानि संति स अनाचारे रतो न भविष्यति एवं एतेन आत्मकृत लब्धं। गुरुणा उक्तो कोपं त्यज शान्ति कुरु! तया कथितं यदि अस्मा शान्ति भविष्यति तदा अस्माकं आगमन न भविष्यति प्रत्यक्षं। गुरुणाचिन्तितं भवितव्यं भवन्देव न मस्तौ कृतः सचायका वचनात् स्थानाम भण्डारे कृतः श्री रत्नप्रभसूरि अपर श्री यक्षदेवसूरि कृते मर्यादा एतदने हानि

"उपकेश पट्टावली"

आचार्य को एकान्तमें बैठे हुए देखे उसके परिणामोंने पलटा खाया वह दिल में सोचने लगा कि मेरी समझ में भ्राँति है क्या एकान्तमें युवास्त्री लेकर बैठने वालों का इतना प्रभाव हो सकता है कि लोहा की शांकले टूट जाय ? नहीं ! कदापि नहीं !! वह तो मेरे पुन्यका ही प्रभाव था कि शांकले टूट गई। जैसे ही सोमाशाह वापिस लौटने के लिये कदम उठाया वैसे ही वह भूमि पर गिर पड़ा और उनके मुँहसे रक्त धारा बहने लग गयी और शाह मुर्च्छित भी हो गया। जब मुनि भिक्षा लेकर आये तो उपाश्रयके द्वार पर सोमाशाह बुरी हालत में पड़ा हुआ देखा मुनियों ने सब हाल सूरिजी से निवेदन किया इस पर सूरिजी ने सोचाकी यह देवी का ही कोप है अतः सूरिजी ने देवी से कहा देवीजी सोमाशाह गच्छ का परम भव्य श्रावक है इस पर इतना कोप क्यो है ? देवीने कहा प्रभो ! इसकी मतिमें भ्रांति होगइ है जिसके ही फल भुक्त रहा है पूज्य वर ! इस दुष्टने आप जैसे महान् प्रभाविक आचार्य के लिये विना विचार दुष्ट भाव ले आया तो दूसरों के लिये तो कहनाही क्या है ? सूरिजी ने कहा देवीजी ! आप इसका अपराध को माफ करो और इसको पुनः सावचेत करदो ? देवीने कहाँ पूज्य ! यह दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य सावचेत करने काबिल नहीं है इस दुर्मति को तो इनसे भी अधिक सज्जा मिलनी चाहिये। सूरिजी ने सोमाशाह पर दया भाव लाकर देवीको पुनः साग्रह कहाँ देवीजी आप अपना क्रोध को शान्त करें और इस सोम को सावचेत करदो कारण उत्तम जनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि दुष्ट की दुष्टता पर खयाल कर उसके साथ दुष्टता का वरताव करे यदि ऐसा किया जाय तो दुष्ट और सज्जन में अन्तर ही क्या रह जाता है अतः आप मेरे कहने से ही शान्त होकर इसको सावचेत कर दो इत्यादि देवीने क्रोध में अपने आप को भूल कर कह दिया कि या तो आपकी सेवामें मैं ही प्रत्यक्ष रूप में आउगी, या सोमाशाह। यदि आप सोमाको सावचेत करावेंगें तो मै अब प्रत्यक्ष रुपमें नहीं आउगी अर्थात्

"देवताऽवसरसीन, सूरीणां पुरतः स्थितम्। स्त्रीरूत्र सत्यकांदेवीं, वीक्षा साद्योन्य वर्त्तते॥
व्याचिन्तय चा हा कष्टं, यदेवं विधि सूरयः। अभूवन् वशगाः स्त्रीणां, धुर्याश्चरि त्रिणामपि।
वंद्याः कथं भवन्त्ये ते विचिन्त्येतिन्य वर्तते। यावतावत् पपा तोर्व्यो, मुखेन रूधिरं वमन्॥
वद्धो मयूर वंधेन रार टीतिस्म कष्टतः श्रंतः स्थाः सूरयः श्रुत्वा, सद्यो पहि पुपा गताः
विलोक्य तं तथा वस्त्र, हेतु जिज्ञा सागुरुः यासद् दध्यौंसूरी तावत् सत्यकागुरु मब्रवीत्
प्रभो दुरात्मा श्रादौरऽसा वेत्र चिन्तित वानतः। मयंदृशी दर्शानी तो मारियष्यपि मां प्रतम्
सकलोऽपि पौर लोके लब्धो दन्तोऽस्तियोऽमिलत् सोऽपिविज्ञा पयमास देवी भून्यस्त मस्तकः॥
प्रसीद देवी ! ते दासो भक्तोऽयं सर्वदाऽविहि। कृताऽपराध मज्ञ त्वाद् विमुंच भगवत्य मुम्।
देवी मोचेन मुचामि पापिनं सभ्र गामिन परं करोमि किं पूज्य देशो वारमेत बलात्॥
इति सूरिगिरादेवी तुंमोच तमुपरसकम् सोऽपि नत्वागुरु पादौ, क्षमा माल माल मादरं।
अतःसूरिसुरी मुंचे सांप्रतं विषमयुगे। विपरी तं चिंतयतः किमतः शिक्षयिष्यमि॥
ततः प्रत्यक्ष रूपेण नागंतव्य मतः परम कार्य मादेश दानेन मोक्तव्यं स्मृतय त्वया।
देवता वमरे तुभ्यं धर्म लाभं मुदा वयम् दास्याम दूयतां दानी व्यवस्थाऽस्तुसदाऽयो॥
"उपकेश गच्छ चरित्र"

दोनों में से एक ही आवेगा ? सूरिजी ने सोचा कि अब दिन दिन गिरताकाल आ रहा है लोग तुच्छ बुद्धि और ओच्छाफोटावाले होगे। जब मेरे लिये एक श्रद्धा सम्पन्न श्रावक के विचार बदल गये तो भविष्य में न जाने क्या होगा अतः देवी को प्रत्यक्ष रूप में न आना ही अच्छा है बस सूरिजी ने कह दिया देवीजी आप प्रत्यक्ष रूप से आवे या न आवे पर सोमाशाह को तो सावचेत करना ही पड़ेगा। देवीने सूरिजी का आदेश को शिरोधार्य कर सोमा को सावचेत कर दिया। सोमाशाह ने आचार्य श्री के चरणो में शिर रख कर गद्गद स्वर से अपने अपराध की माफी मांगो साथ में देवी सच्चायिका से भी अपने अज्ञानता के बस कियाहुआ अपराध की क्षमा करने की बारबार प्रार्थना की। सूरिजी महाराज बड़े ही दयालु एवं उदारवृति वाले थे सोमा को हित शिक्षा देते हुए उसके अपराध कि माफि बक्सीस की तथा देवी को भी कहा देवीजी ये सोमा आपका साधर्मी भाई है अज्ञानता से आपका अपराध किया है पर ये अपराध पहिली वार है अतः इसको क्षमा करना चाहिये अतः सूरिजी के कहने से देवी शान्त होकर सोमाशाह को माफि दी। बाद सोमाशाह सूरिजी को वन्दन और देवी से शिष्टाचार कर अपने स्थान को गया और देवीने कहा पूज्यवर ! मैं हित भाग्यनी हूँ कि आवेश मे आकर प्रतिज्ञा करली कि अब मैं प्रत्यक्ष में नहीं आउगी अतः मै आपकी सेवा से वचित रहूगी यह भी किसी भव के अन्तराय कर्म होगा। खैर प्रभो ! मै आपकी तो सदा किंकरी ही हूँ प्रत्यक्ष में नहीं तो भी परोक्षपना में गच्छ का कार्य करती रहूँगा। सूरिजी ने कहा देवीजी यह लोक युक्ति ठीक है कि 'जो होता है वह अच्छा के लिये ही होता है' अब गिरता काल आवेगा दुर्बुद्धिये और छेद्रगवेषी लोग अधिक होगे। इस हालत मे आपका प्रत्यक्षरुप में आना अच्छा भी नहीं है। आप परोक्षपने ही गच्छ का कार्य किया करो और मैं देवता के अवसर पर आपको धर्मलाभ देता रहूँगा। देवीने सूरिजी के बचनो को 'तथाऽस्तु' कहकर सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! आपके दीर्घदृष्टि के विचार बहुत उत्तम है भविष्य काल ऐसा ही आवेगा कारण यह हुन्डासर्पिणी काल है न होने वाली बाते होगा अतः मै एक अर्ज और भी आपकी सेवा में कर देवी हूँ कि आपने गच्छ में आचार्य रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि आज पर्यन्त महाप्रभाविक हुए है अब ऐसे प्रभाविक आचार्य होने बहुत मुश्किल है अत. इन दोनो नामो को भडार कर दिये जाय कि भविष्य में होने वाले आचार्यों के नाम रत्नप्रभसूरि एव यक्षदेवसूरि नही रखा जाय और दूसरा इस गच्छ मे उपकेशवश में जन्मा हुआ योग्य मुनि को ही आचार्य बनाया जाय। देवी का कहना सूरिजी के भी जचगया और आपश्री ने कहा ठीक है देवीजी आपका कहना मैं स्वीकार करता हूँ और हमारे साधुओं तथा श्री संघ को सूचीत करदूँगा कि अब भविष्य में होने वाले आचार्यो के नाम रत्नप्रभसूरि एव यक्षदेवसूरि नहीं रखेगा। और उपकेश वंश में जन्मेहुए योग्य मुनि को आचार्य बनाने का पूर्वाचार्यों से ही चला आ रहा है अब और भी विशेष नियम बना दिया जायगा तत्पश्चात् सूरिजी को वन्दन कर देवी अपने स्थान को चली गई बाद आचार्य श्री ने विचार किया--कि भगवान् महावीर का शासन २१००० वर्ष तक चलेगा जिसमें अभी तो पूरा १००० वर्ष भी नहीं हुआ है जिसमें भी शासन की यह हालत हो रही है जैसे एक ओर तो कई वर्ष से [illegible] में कई गच्छ अलग अलग हो कर सगठन बल को छिन्न भिन्न कर रहा है दूसरी तरफ [illegible] की भी अलग अलग शाखाएँ निकल रही है जो उपकेश और कोरंट गच्छ ही था जिसमें [illegible] आचार्य बन गया। भले वह विद्वान एव समझ दार है पर उसकी सन्तान के न जानने भविष्य में वह [illegible] बना रहेगा या नहीं ! इधर देवी प्रत्यक्ष में आना भी बन्ध हो गया है इत्यादि दिन भर आपके शासन का

हित चिन्तवन में ही व्यतीत किया। आखिर आपने सोचा कि "जंनं भगवया। दिठा तंतं पणमि संति" इस पर ही संतोष करना पड़ा दूसरा तो उपाय ही क्या था ?

जिस समय कुंकुदाचार्य हुआ था उस समय आचार्य ककसूरि की आज्ञा में पांच हजार मुनि और पेंतीस सौ के करीबन साध्वियाँ थीं और वे मुनि कई शाखाओं में विभक्त थे जैसे १—सुन्दर २ प्रभ ३ कनक ४ मेरू ५ चन्द्र ६ मूर्ति ७ सागर ८ हंस ९ तिलक १० कलस ११ रत्न १२ समुद्र १३ कल्लोल १४ रंग १५ शेखर १६ विशाल १७ भूषण १८ विनय १९ राज २० कुंवार २१ आनन्द २२ रूची २३ कुम्भ २४ कीर्ति २५ कुशल २६ विजयादि। शाखा का मतलब यह है कि मुनियों के नाम के अन्त में यह विशेषण लगाया जाता है जैसे कि—

१ सोमसुन्दर
२ सुमति प्रभ
३ राज कनक
४ ज्ञानमेरू
५ कुशलचन्द्र
६ तपोमूर्ति
७ दर्शनसागर
८ दीपहंस
९ सागर तिलक
१० कीर्तिकलस
११ शोभाग्यरत्न
१२ आर्य समुद्र
१३ चारित्र कल्लोल
१४ विजयरंग
१५ शान्तिशेखर
१६ धर्मविशाल
१७ ज्ञान भूषण
१८ सुमतिविनय
१९ सदाराज
२० सुमतिकुंवार
२१ लोकानन्द
२२ विनयरूची
२३ मंगलकुम्भ
२४ धनकीर्ति
२५ शान्तिकुशल
२६ कपायविजय

इत्यादि नाम के साथ विशेषण को शाखा कहते है इस प्रकार मुनियों की विशाल संख्या होने से ही मे दूर दूर प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार एवं जैन धर्मोपासको को धर्मोपदेश देकर धर्म बगीचा को हरावर एवं फला फूला रखते थे। जब से जैन श्रमणों का विहार क्षेत्र संकीर्ण हुआ तब से ही जैन संख्या घटने का श्रीगणेश होने लगा और उनका उग्ररूप आज हमारी दृष्टि के सामने विद्यमान हैं। आचार्य ककसूरि के मुनियों का विहार पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक होता था इतना ही क्यों पर स्वयं आचार्य भी एक वार पृथ्वी प्रक्षिणा दिया ही करते थे इसका कारण उनके अंतरात्मा में जैन धर्म की लग्न थी।

भरोंच में इस प्रकार की घटना घटने के बाद सूरिजी का विचार वहां से विहार करने का हुआ पर वहां का श्रीसंघ घर आई गंगा को कब जाने देने वाला था। उन्होंने चतुर्मास की विनति की पर सूरिजी का दिल वहां ठहरना नहीं चाहता था अतः वहां अन्य मुनियों को चतुर्मास का निर्णय कर आप विहार कर दिया और क्रमशः कांकण प्रान्त मे पधार कर सोपारपट्टन में आपने चतुर्मास किया आपके विराजने से वहां की जनता को बहुत लाभ हुआ पर आचार्य श्री के मनमंदिर में भविष्य के लिये कई प्रकार के विचार होरहा था। एक समय देवी सत्यका सूरिजी को वन्दन करने को आई परीक्ष पने रह कर वन्दन किया। सूरिजी धर्मलाभ देकर अपने दिल के विचार देवी को कहाँ इस पर देवी ने कहाँ प्रभो ! यह काल हुन्डामर्पिणी है इसमें कइ बार उदय अस्त हुआ करेगा। फिर भी आप जैसे शासन के शुभचिंतक एवं शासन के स्तम्भ आचार्यों से शासन चलता ही रहेगा। अब आपका विहार दक्षिण एवं महाराष्ट्रीय की और हो तो विशेष लाभ का कारण होगा. इत्यादि वार्तालाप के अन्त देवी सूरिजी को वन्दन कर चली गई। सूरिजी ने सोचा कि ठीक है इधर तो बहुत मुनि विहार करते ही है कुंकुंदाचार्य भी इधर ही हैं बहुत असा हुआ दक्षिण में अभी कोई आचार्य नहीं गये हैं वहां पर बहुत से साधु भी विहार करते हैं अतः देवी का कथानुसार मेरा विहार दक्षिण

ही में लाभ कारी है अतः चतुर्मास समाप्त होते ही आस पास के सब साधु एकत्र होगये ५०० मुनि तो आप अपने साथ मे चलने वालो कों रखलिये शेष साधुओ कों कुंकुंदाचार्य के पास जाने की आज्ञा देदी और भी कुंकुंदाचार्य को समाचार कहलादिया कि सब साधुओं की सारसंभाल का भार आपके आधीन है इत्यादि। बाद सूरिजी ने दक्षिण की ओर विहार कर दिया। आपके विहार की पद्धति ऐसी थी कि एक रास्ता से जाते थे तब वापिस लौटते समय दूसरे ही मार्ग आते थे कि इधर उधर के सब क्षेत्रों की स्पर्शना एवं जनता को उपदेश का लाभ मिल जाताथा पट्टावली कर लिखते हैं कि आचार्य श्री ने तीन वर्ष तक उधर विहार किया जिससे जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया और वहां विहारकरने वाले मुनियो का उत्साह भी बढ़गया। तत्पश्चात् आपने आवंति प्रदेश मे पधार कर उज्जैननगरी में चतुर्मास किया। वहाँ पर खटकुंपनगर का शाह राजसी और आपका पुत्रधवल आया और उसने प्रार्थना की कि प्रभो! आप मरुधर की ओर पधारे। सूरिजी ने कहाँ राजसी मरुधर मे कुंकुंदाचार्य विहार करते हैं मेरी इच्छा पूर्व की यात्रा करने की है सब साधु भी पूर्व की यात्रा करने के इच्छुक हैं। राजसी ने कहां पूज्यवर। आपके इस लघु शिष्य ने मन्दिर बनाया है उसकी प्रतिष्ठा करवानी है हम लोगो ने कुंकुंदाचार्य से प्रार्थना की पर आपने फरमाया की मूर्तियों की अंजनसिलाका जैसा वृहद् कार्य तो हमारे गच्छ नायक सूरीश्वरजी ही करवा सकते हैं अतः हम आपश्री की सेवा में उपस्थित हुए हैं सूरिजी ने धवल की ओर देखा तो धवल की भाग्य रेखा होनहार की सूचना देरही थी। राजसी चारदिन ठहरकर सूरिजी का अमृत एवं त्यागवैराग्य मय व्याख्यान सुना। पर सूरिजी के व्याख्यान का धवल पर तो इतना प्रभाव हुआ कि वह संसार से विरक्त होकर सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो! आप शीघ्रही खट्कूंप पधारे जिससे हमलोगो को आत्मकल्याण का समय मिले। सूरिजी ने कहा क्यो धवल! हम लोग तुम्हारे वहां आवें तो सचही तुँ आत्मकल्याण सम्पादन करेगा? धवल ने कहा पूज्य पाद! आपके पधारने की ही देरी है पास में बैठा राजसी भी सुन रहा था पर उसने कुछ भी नहीं कहाँ। तथा सूरिजी ने राजसी एवं धवल को विश्वास दिलादिया कि क्षेत्र स्पर्शना हुइतो हम शीघ्रही मरुधर में आवेंगे।

राजसी एव धवल सूरिजी को वन्दन कर वापिस लौटगये। बाद सूरिजी को कुंकुन्दाचार्य की विनय-शीलता के लिये अच्छा संतोष हुआ। खैर उज्जैन का चतुर्मास से सूरिजी को अनेक प्रकार से लाभ हुआ चतुर्मास समाप्त होते ही आपने वहां से विहार कर दिया और रास्ते के ग्राम नगर में धर्मोपदेश देते हुए। मरुधर एवं पट्कूप नगर की ओर पधारे वहा का श्रीसघ एवं शाह राजसी एवं धवल ने सूरिजी का बड़ा भारी स्वगत किया। उधर से कुंकुन्दाचार्य ने सुना की गच्छनायक आचार्य ककसूरिजी महाराज खट्कूप पधार गये है अतः वे भी अपने शिष्यो के साथ सूरिजी को वन्दन करने को खटकूप नगर पधारे। सूरिजी ने आपका योग्य सत्कार किया और आपके कार्य कुशलता की सराहना कर आपका उत्साह में खूब वृद्धि की दोनों आचार्यों का मिलाप एवं वात्सल्या जनता के दील को प्रफुल्लित कर रहा था। दोनों आचार्यों के अध्यक्षत्व में मुमुक्षु धवल को दीक्षा देकर उसका नाम राजहंस रखदिया बाद इधर उधर भ्रमण कर पुनः खटकूप पधार कर शाह राजसी के बनाये मन्दिर की एव मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा धाम धूम से करवाई तत्पश्चात् पूर्व मर्सों से दोनो आचार्य अपने शिष्यो के साथ उपकेशपुर पधारे। वहां के श्रीसंघ को बड़ी खुशी हुई उन्होंने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया भगवान् महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा की। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था। वहाँ पर भिन्नमाल का संघ दर्शनार्थ आया था और उन्होंने चतुर्मास की

विनति की पर उपकेशपुर का संघ घर आई गंगा को कब जाने देने वाला था अतः कुंकुन्दाचार्य को भिन्नमाल चतुर्मास की आज्ञा दी और आपने उपकेश पुर में चतुर्मास करने का निश्चय किया। बात कुछ नही थी पर भवितव्यता बलवंती;होती है भिन्नमाल संघ के दिल मे कुछ द्वितीय भाव पैदा होगये । अतः उन्होने सोचा कि कुंकुंदाचार्य कों भिन्नमाल संघ ने आचार्य बनाये थे वह बात कक्कसूरिजी के दिल में अभी नहीं निकली है कि अपने लिये कुंकुंदाचार्य को आज्ञा मिली है । अतः वे इस विग्रह में ही चलकर अपने नगर को अये । बाद कुंकुंदाचार्य भी विहार करने की आज्ञा मांगी तो ककसूरि ने कहा कि मेरा विहार पूर्वकी ओर करने का हैं अतः पिछे साधुओ की सारसंभार आपके जुम्मा करदी जाती है कारण मेरी दक्षिण की यात्रा के समय भी आपने पीछे की व्यवस्थ अच्छी रखी थी । कुंकुंदाचार्य ने कहाँ पूज्यवर । मैं इतना तो योग्य नहीं हैं पर आपश्री का हूँकम शिरोधार्य कर मेरे से बनेगी मैं सेवा अवश्य करूँगा इस प्रकार वार्तालाप हुआ बाद सूरिजी की आज्ञा लेकर कुंकुंदाचार्य ने भिन्नमाल की और विहार कर दिया एवं वहाँ जाकर चतुर्मास भी करदिया । आचार्य कक्कसूरि का चतुर्मास उपकेशपुर में होगया जिससे धर्म की खूब जागृति एवं प्रभावनाहुई । बाद चतुर्मास के अपने पांचसौ शिष्यों के साथ पूर्व की यात्रार्थ विहार कर दिया । भिन्नमाल का संघ कुंकुंदाचार्य कों आचार्य कक्कसूरी के विरुद्द में कई उल्ट पुल्ट बातें कही पर कंकुंदाचार्य ने उनकी बातों पर ख्याल नहीं किया इतनाही क्यों पर उनकों यहाँ तक समझाया कि इस प्रकार मतभेद करने से भविष्य में हितनहीं पर अहित होगा । मैंने आचार्य पट्टी लेकर बड़ी भारी भुल की थी पर गच्छनायक आचार्य कक्कसूरि ने अपनी गंभीरता से उनको सुधारली अतः अब वह भूल यही खत्म करदेना चाहिये नकि इनको आगेबढ़ाई जाय । और यही बात कुंकुंदाचार्य ने कक्कसूरि को कही थी कि मैं मेरे पट्टपर कोइ भी आचार्य नहीं बनाऊंगा कि यह मतभेद यहीं समाप्त होजाय । आखिर कुंकुंदाचार्य विद्वान था कहा है किदुश्मन भी हो पर विद्वान हो । इत्यादि पर कुंकुंदाचार्य के कहने पर भिन्नमाल संघ को संतोष नही हुआ फिर भी उन्होंने अपना प्रयत्न को नहीं छोड़ा खैर चतुर्मास के बाद कुंकुंदाचार्य भिन्नमाल से विहार कर दिया और आस पास के प्रदेश में भ्रमन करने लगे । आपका प्रभाव जनता पर बहुत अच्छा पड़ा था । आपने कई भावुकों को दीक्षा भी दीयी । आपके पास कई २००० साधु साध्वि होगये थे । आप की अवस्था वृद्ध होगयी थी आप कई चौमास करने के बाद पुनः भिन्नमाल पधारे तो भिन्नमाल का श्रीसंघ फिर सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो। अब आपकी वृद्धावस्था है तो हमारे लिये आपके हाथों मे किसी योग्य मुनिको आचार्य बना दिजिये । कुंकुंदाचार्य ने कहाँ कि मैं आपने पहले ही कहचूका था कि मैं आचार्य कक्कसूरिजी को वचन देचूका हूँ कि मैं किसी को पट्टधर नहीं बनाऊंगा । अत. आप इस आग्रहको छोड़ दीजिये और एकही गच्छ नायक की आज्ञा का आराधन कीजिये । श्रीसंघ ने कहाँ पूज्यवर ! आपश्री के आग्रह मे यहां का श्रीसंघ गच्छ की बदनामी उठाकर आपको आचार्य बनाया और आपही इस गादी को खाली रखनी चाहते हो यह तो ऐक विश्वासघात जैसी बात है खैर । आप नहीं बनावेंगे तो भी यहां का श्रीसंघ अपनी बातको कभी नहीं जाने देगा । किसी दूसरे को लाकर गादीधर तो अवश्य बनावेंगे । श्रीसंघ का कथन सुन सूरिजी को बहुत दुख हुआ पर वे कर क्या सकते थे आखिर भवितव्यता पर संतोष कर अपनी अन्तिम सलेखना मे लग गये और अन्त समय २१ दिन का अनशन कर स्वर्ग पधार गये

भिन्नमाल श्रीसंघने कुंकुंदाचार्य के कई मुनियों को अपने विचारों के शामिल बना कर उनके अन्दर

मुनि कल्याणसुन्दर को कुंकुंदाचार्य के पट्टपर आचार्य बनाकर उनका नाम देवगुप्तसूरि रक्खदिया जब जाकर उनकों संतोष हुआ। वहा रे कलिकाल तुमको भी नमस्कार है एक अपनी बात के लिये धर्म शासन एवं गच्छ के हिताहित की कुछ भी परवाह नहीं की इतना ही क्यो पर स्वयं कुकुंदाचार्य के कहने को भी ठुकरादिया इस शाखा के बीज तो कुंकुंदाचार्य ने ही बोये थे पर भिन्नमाल श्रीसंघ ने उसमे जॉनडालकर चिरस्थायी बनाने का दुःसाहस करके उपकेशगच्छ के दो टुकड़े करदिये जो परम्परा से चले आरहे थे वे उपकेशपुर की शाखा और कुंकुंदाचार्य के अनुयायियो की भिन्नमाल शाखा नाम पड़ गये आगे चलकर इन दोनो शाखाओं के आचार्यों के नाम कक्कसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि रखेजाने लगे। जिससे पट्टावली मे इतना मिश्रण एवं गडबड़ हो गई, कि जिसका पता लगाना कठिन होगया। कारण पिछले लेखको ने उपकेशपुर शाखा में भिन्नमाल शाखा के आचार्यों की कई घटना लिखदी और कई भिन्नमाल शाखाकी पटावली में उपकेशपुर शाखा के आचार्यों की घटना लिखदी है इतना ही क्यो पर आगे चलकर एक सिद्धसूरिजी से खटकूँपनगर की और कक्कसूरिजी से चन्द्रावती शाखा निकाली उनके आचार्यों के भी वे ही तीननाम रखा गया कि जिससे मिश्रण की कठिनाइयो और भी बढगई जिसको हम आगे चलकर बतावेंगे कि इस उलझनो को सुलझाने मे अनेक प्रकार बारीकी से गवेषना करने पर भी पूर्ण सफलता मिलनी मुश्किल होगई है।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज पूर्व की यात्रा की जिसमें आपको पांच वर्ष व्यतीत होगया बाद वहां से बनारस हस्तनापुर वगैरह की यात्रा कर पंचाल कुनाल होते हुए सिन्ध में पधारे वहा आपको खबर मिली कि कुंकुंदाचार्य का स्वर्गवास होगया और भिन्नमाल संघ ने आपके पट्ट पर देवगुप्तसूरि नाम का आचार्य बना दिया है इत्यादि जिसको सुन कर आचार्यश्री को बहुत रंज हुआ! पर आपकी पहिले से ही धारणा थी कि कुंकुंदाचार्य भले विद्वान हो पर पीछे शायद कोई ऐसा निकल जाय इत्यादि। आखिर आपकी धारणा सत्य ही निकली। सूरिजी ने भवितव्यता पर ही संतोष किया। आपश्री ने कच्छ भूमि की स्पर्शना करते हुए सौराष्ट्र मे पधार कर तीर्थ श्रीशत्रुंजय की यात्रा की और वहां से मरुधर में पदार्पण किया और चन्द्रावती के श्रीसंघ की आग्रह से चन्द्रावती मे चतुर्मास कर दिया। चन्द्रावती का श्रीसघ शुरुसे ही उपकेशगच्छ का अनुरागी था सूरिजी वहा के श्रीसंघ से परामर्श किया कि उपकेशगच्छ की शाखा दो होगई यह तो अच्छा हुआ नहीं है पर भविष्य में जैसा उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ मे सम्प ऐक्यता रही इसी माफिक इन दोनों शाखा के आपस में सम्प ऐक्यता रहे तो अच्छी तरह मेल मिलाप से शासन सेवा बन सके इत्यादि। संघ अग्रेसरों ने कहा पूज्यवर! आप शासन के हितचिंतक है आपकी उदारता का पार नहीं है हम लोग अच्छी तरह से जानते है कि आप भिन्नमाल पधार के ऐक्यता बनी रहने के लिये बड़ा प्रयत्न किया पर [illegible] को पसन्द नहीं हुआ आखिर उसने अपना प्रभाव डाल ही दिया। अब इसके लिए तो केवल एक ही मार्ग है कि चतुर्मास के बाद यहां पर एक श्रमण सभा की जाय और श्रमण संघ एकत्र हो उनको भविष्य का हित समझाया जाय इत्यादि। सूरिजी ने स्वीकार कर लिया। सूरिजी का चतुर्मास अच्छी तरह से होगया [illegible] उपदेश सम्प ऐक्यता संगठन के विषय का दिया जाता था इधर श्रीसंघ ने संघ सभा की तैयारियें करनी आरम्भ करदी। और आमन्त्रण पत्रिकाएँ नजदीक एवं दूर दूर भेजदी तथा मुनियों के लिये खास खास श्रावकों को भेजे गये थे वही माघ शुक्ल पूर्णिमा का शुभ दिन मुकर्रर [illegible] नजदीक एवं दूर दूर प्रान्तो से भी मुनियो के आने में सुविधा रहे। बहुत वर्षों हुए आचार्यश्री भ्रमण करने से

ही रहे थे कारण आपश्री का विश्वास कुंकुंदाचार्य पर था और उन्होंने गच्छ की सार समाल भी अच्छी तरह से की थी पर अब तो सब व्यवस्था आपको ही करनी पड़ेगी ठीक समय पर उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ वीर सन्तानियों में चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति विद्याधर कुल के तथा अन्य भी आसपास में विहार करने वाले मुनिगण खूब गहरी तादाद में आये क्योंकि उस समय मुनियों की संख्या भी हजारों की थी पर कुंकुंदाचार्य के पट्ट धर अपने कई साधुओं को लेकर पूर्व की ओर यात्रार्थ प्रस्थान कर दिया था। शेष रहे हुए मुनि चन्द्रावती आ भी गये थे इसी प्रकार भिन्नमाल का संघ भी स्वल्प संख्या में ही आया था सूरिजी और चन्द्रावती का संघ समझ गया कि इसमें अधिक कारण भिन्नमाल संघ का ही है खैर। ठीक समय पर सभा हुई जिसमे अन्योन्या मुनियों के व्याख्यान के पश्चात् आचार्य कक्कसूरि का व्याख्यान हुआ जिसमें आपने आचार्य स्वयंप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि के समय का इतिहास बड़े ही महत्त्व पूर्ण एवं मार्मिक शब्दों में कह कर यह बतलाया कि उन महापुरुषों ने हजारों कठनाइयों को सहन कर अनेक प्रदेशों में धर्म के बीज बोये और पिछले आचार्यों ने जलसिंचन किया जिससे महाजन संघ रूपी एक कल्पवृक्ष आज फला फूल एवं हरावर विद्यमान है इसमें मुख्यकारण प्रेमस्नेह ऐक्यता का ही है आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय पार्श्वनाथ संतानियों की दो शाखाए हो गई थी जो उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ के माम से कहलाई जाती थी बाद में पूर्व प्रदेश में विहार करने वाले महावीर संतानियों का भी आवति लाट सौराष्ट एवं मरुधर में प्रधार ना हुआ पर इन सब गच्छों में धर्मस्नेह और ऐक्यता इस प्रकार की रही कि अन्य लोगों को यह ज्ञात नहीं हुआ कि ये दो पार्टि एवं दो गच्छ-समुदाय के साधु है। यही कारण है कि वे वाममार्गियों के थ तोड़ दिये शास्त्रार्थ में बोद्धों को एवं यज्ञवादियो को नतमस्तक कर दिये और लाखों करोड़ो जैनेत्तरों को जैनधर्म में दीक्षित कर चारों ओर जैनधर्म का झंडा फहरा दिया। प्यारे आत्मबन्धु श्रमण श्रमणियों यह आपकी कसोटी का समय है कलिकाल आपकी कई प्रकार की परीक्षा करें के कई ऐसे कारण भी उपस्थित करेंगे जो आपस में फूट डालने के अभेद्यर होंगे। पर आपकी नसों में भगवान महावीर का खून है तो तुम एक की परवाह मत करो और कलिकाल के शिरपर लात मार कर बतला दो कि हम सब जैन एक है हमारा कर्त्तव्य है कि हम किसी प्रकार की कठनई की परवाह न करके प्राणप्रण से धर्मप्रचार में लग जावेंगे। इतना ही क्यों पर धर्म के लिये हम हमारे प्राणों की भी परवाह नहीं करेंगे। हमारे अन्दर गच्छ समुदाप शाखा भले नाममात्र से पृथक्पृथक हो पर हम सबका ध्येय एक है ! लक्ष एक है !! कार्य एक है !!! हम भगवान वीर की सन्तान एक है इत्यादि अतः हम सब एक सुत्र में ग्रन्थित रहेंगे तब ही शासन की सेवा कर सकेंगे।

प्यारे मुनि पुंगवों ! पूर्व जमाना के अनेक जनसंहारक दुकाल और विधर्मियों के संगठित आक्रमण एवं विदेशियों के कठोर अत्याचार का इतिहास पढ़ने से रूवाटा कापने लग जाता है पर धन्य है उन शासन संरक्षकों को कि उस विकट समय में भी वे कटिबद्ध तैयार रहते थे इतना ही क्यों पर उन्होंने जैनधर्म को जीवित रखा है अतः आप के लिये तो समयानुकूल है सब साधन मौजूद है जहाँ देखो वहाँ आपका ही झंडा फहरा रहा है अतः आप लोगों को शीघ्रातिशीघ्र कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिये मुझे आशा ही नहीं पर दृढ़ विश्वास है कि जैनधर्म का प्रचार के लिये आप एक कदम भी पीछे न हटकर उत्साह पूर्वक आगे बढ़ने की कोशिश करेंगे। बस सूरिजी की ओजस्वी वाणी का चतुर्विध श्रीसंघ और विशेष श्रमणसंघ पर इस कदर का प्रभाव पड़ा कि उनकी अन्तरात्मा में एक नयी बिजली का ही संचार हो

गया कहा है कि वीरो की सन्तान वीर ही हुआ करती है सिंह भले थोड़ी देर के लिये गुफा मे बैठ जाय पर जब हाथ लपटक कर गर्जना करता है तब सबके दिल की बिजली जगृत हो जाती है सैना का संचालक वीर होता है वह केवल अपने वीर शब्दों से ही सैनिकों के हृदय में वीरता का संचार कर देता है आज हमारे सूरीश्वरजी ने भी उपस्थित श्रमण गण के हृदय मे धर्म प्रचार की बिजली भर दी है यही कारण है कि उन लोगों ने उसी सभा मे खड़े होकर अर्ज की कि पूज्यवर ! आज आपश्री ने सोये हुए श्रमण सघ को ठीक जागृत कर दिया है आप विकट से विकट प्रदेश मे जाने को आज्ञा फरमावे हम जाने को तैयार है ; सूरिजी ने कहा महानुभावो विकट प्रदेश तो पूर्वाचार्यों ने रखा ही नही है फिर भी आपका उत्साह भावि अभ्युदय की बधाई दे रहा है आपके इन शब्दों से चन्द्रावती के संघ का यह भागीरथ कार्य सफल हो गया है। सूरिजी ने श्रमण संघ के साथ दो शब्द श्राद्ध संघ के लिये भी कह दिया कि रथ चलता है वह दो पहियो से चलता है अतः श्रमण संघ के साथ आपको भी तैयार हो जाना चाहिये तन मन और धन से शासन सेवा ही करना आपका भी कर्त्तव्य है कहाँ पर भी मुनि अजैनों को जैन बनावे तो आपका भी कर्त्तव्य है कि उनके साथ सहानुभूति एवं सब प्रकार का व्यवहार और उनकी सहायता कर उनका उत्साह को बढ़ावे इत्यादि श्राद्धवर्ग ने सूरिजी का हुक्म शिरधार्य कर लिया बाद भगवान् महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

दूसरे दिन इधर तो श्रीसंघ की ओर से आगन्तुकों का बहुमान स्वामिवात्सल्य पहरामणि का अयोजन हो रहा था इधर आये हुए श्रमणसघ मे योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न हो रहा था सूरिजी ने बिना किसी भेद भाव के योग्य मुनियों को पदवियो प्रधान कर उनको प्रत्येक प्रान्त में विहार की आज्ञा देदी जिसको उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ स्वीकार कर प्रस्थान कर दिया

यों तो प्रत्येक आचार्य के शासन में धर्मप्रचार के निमित सभाएँ होती ही आई थी पर इस सभा का प्रभाव कुछ अजब ही था। इसका कारण एक तो आचार्य श्री कई वर्षों से भ्रमण मे लगे हुए थे यह बात स्वभाविक है कि बिना नायक के सेना में शिथिलता आ ही जाती है दूसरा सभा करने से सब साधुओं को उपदेश मिला अतः वे अपने कर्त्तव्य को समझकर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण एवं शासन की सेवा के कार्य में लग गये इत्यादि सभा होने से धर्म की बहुत जागृति हुई।

आचार्य कक्कसूरि एक महान् धर्म प्रचारक आचार्य हुए है आपके शासन में [illegible] ने अनेक प्रकार से आक्रमण किये पर आपकी विद्वता एवं कार्य कुशलता के सामने उनको हार खाकर नतमस्तक होना पड़ा। आपके सामने अनेकानेक कठिनाइयो उपस्थित हुई पर आपने उनकी थोड़ी भी परवाह न करते हुए अपने प्रचार कार्य को आगे बढ़ाते ही रहे हजारो नहीं पर लाखो अजैनो को जैन बनाकर तथा अनेक भव्य भावों को जैन धर्म की दीक्षा दे कर चतुर्विध श्रीसघ की वृद्धि की कइ मन्दिर मूर्तियो की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया आपने तीर्थ यात्रार्थ देशाटन भी बहुत किया एवं [illegible] ने करीबन ४० वर्ष के शासन मे जैन धर्म की बहुत कीमती सेवा की अतः आपकी अमर कीर्ति और [illegible] इतिहास के पृष्ठो पर सुवर्ण अक्षरो से लिखा हुआ चमक रहा हैं। जैन समाज पर आपका महान् उपकार हुआ है जिसको हम एक क्षण मात्र भी भूल नहीं सकते है। यदि हम हमारी [illegible] ऐसे परमोपकारी महा पुरुष के उपकार को एक क्षण भर भी भूल जाय तो हमारे जैसा कृतघ्नी ससार में कौन होगा [illegible]

चन्द्रावती नगरी में श्रमण [illegible]

जैन समाज का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि ऐसे महान् उपकारी पुरुषों के उपकार कों हमेशाँ स्मरण में रखे और सालोसाल उनकी जयन्तिया मनावे —

आचार्य श्रीकक्कसूरिजी महाराज अपनी वृद्धावस्था में उपकेशपुर के श्रेष्टिगौत्रीय शाह मंगला के संघपतित्व में प्रस्थान हुए श्रीशत्रुँजय के संघ में पधारे थे संघ श्रीशत्रुँजय पहुँचा उस समय रात्रि में देवी सच्चायिका ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! कहते बहुत दुख होता है पर कहे विना भी रहा नहीं जाता है कि आपका आयुष्य अब सिर्फ ३३ दिन का रहा है अतः आप अपने पट्टपर योग्य मुनि को आचार्य बनाकर यहींपर सलेखना करावे इत्यादि। सूरिजी ने कहा देवीजी आपने बड़ी भारी कृपा की है कि मुझे सावधान करदिया है मैं आपका बड़ा भारी उपकार मानता हूँ। देवीने कहा पूज्यवर । इसमें उपकार की क्या बात है यहतो मेरा कर्तव्य ही था जिसमें भी आप जैसे विश्वोपकारी महात्मा की जितनी सेवा की जाय इतनी ही कम हैं आपका और आप के पूर्वजों का मेरेपर जो उपकार हुआ है उसकी ओर देखाजाय तो उस कर्ज का व्याज भी मेरे से अदा नहीं होता है इत्यादि सूरिजी का अन्तिम 'धर्मलाभ' प्राप्त कर देवीतो अपने स्थान पर चलीगई और सुबह उपकेशपुर के संघ एवं उपस्थित सकल श्रीसंघ के अध्यक्षत्व में महा पुनीत सिद्धगिरि की शीतल छाया में उपाध्याय राजहंस कों अपने पट्टपर आचार्य बनाकर अपना सर्वाधिकार आचार्य देवगुप्तसूरि के सुपर्द कर दिया। अधिकार का अर्थ इतना ही था कि जो आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा लेते समय पन्नामय पार्श्वमूर्ति थी और वह परम्परा से पट्टानुक्रम आचार्य की उपासना के लिये रहती थी कक्कसूरि ने नूतनाचार्य देवगुप्तसूरि कों देदी तत्पश्चात् समय जान कर कक्कसूरि ने अनशन कर दिया और २७ दिन के अन्त में पांच परमेष्टीके ध्यानपूर्वक समाधि के साथ स्वर्गवास पधारगये। देवी सच्चायिका से श्री संघकों ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री दूसरे ईशान देवलोक में महर्द्धिक दो सागरोपम की स्थिति वाले देवता हुए हैं। आचार्यश्री के स्वर्गवास का समय पट्टावली कारने वि० सं० ४८० चैत्रशुक्ल चौदस का लिखा हैं अतः चैत्रशुक्ल चौदस का दिन हमारे लिये उन परमोपकारी आचार्य के स्मृति का दिन हैं। पट्टावलियों एवं वंशावलियों में आपके ४० वर्ष के शासन के शुभ कार्यों की विस्तार से नोंध की है पर मैं मेरे उद्देश्यानुसार यहाँ पर संक्षिप्त ही नामावली लिखदेता हूँ —

आचार्यश्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

१—उपकेशपुर—	के	श्रेष्टिगो०	शाह	देवाने	सूरिजी के पास	दीक्षाली
२—माडव्यपुर	के	बाप्पनागगो०	,,	जखड़ने	,,	,,
३—क्षत्रीपुरा	के	मल्लगो०	,,	जोगड़ाने	,,	,,
४—माराच्छपुर	के	चरड़गो०	,,	माखरने	,,	,,
५—देनापुर	के	अदित्यनाग०	,,	कल्हणने	,,	,,
६—राजपुर	के	भूरिगो०	,,	सारणने	,,	,,
७—बनाड़ी	के	सुचड़गो०	,,	सहजपालने	,,	,,
८—चरपट	के	बोहरागो०	,,	हरपालने	,,	,,
९—चन्द्रिका	के	कुंभगौत्र०	,,	देपालने	,,	,,

१०—नारदपुरी	के	सुचंतिगो०	,,	राणाने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
११—बघोसी	के	श्री श्रीमाल	,,	जाखड़ने	,,	,,
१२—कालोडी	के	प्राग्वटवंशी	,,	पेथाने	,,	,,
१३—मादरी	के	प्राग्वटवंशी	,,	पाताने	,,	,,
४—कोरंटपुर	के	श्रीमालवंशी	,,	जोधाने	,,	,,
१५—सिद्धपुर	के	ब्राह्मण	,,	शंकरने	,,	,,
१६—टेलीग्राम	के	लघुश्रेष्टि	,,	रूपणसीने	,,	,,
१७—शिवपुरी	के	करणाटगो०	,,	रावलने	,,	,
१८—भरोच नगर	के	कुंमटगो०	,,	भाखरने	,,	,,
१९—सोपार पट्टन	के	कनौजिया०	,,	भैराने	,,	,,
२०—हाकोड़ी	के	भाद्रगो०	,,	पाताने	,,	,
२१—हर्षपुर	के	श्रेष्ठिगो०	,,	कुबेराने	,,	,,
२२—उज्जैन	के	श्रेष्टिगो०	,,	सारंगने	,,	,,
२३—माहव्यपुर	के	चिंचटगो०	,,	सलखणने	,,	,,
२४—खटकूंप नगर	के	पुष्करणागो०	,,	सरवणने	,,	,,
२५—मुग्धपुरे	के	कुलभद्रगो०	,,	पृथुसेनने	,,	,,
२६—मेलसरा	के	विरहटगो०	,,	डावरने	,,	,,
२७—आशिका दुर्ग	के	भाद्रगो०	शाह	नागसेनने	,,	,
२८—नागपुर	के	चिंचटगो०	,,	सुरजणने	,,	,,
२९—हसावली	के	डिडूगोत्र०	,,	हाप्पाने	,,	,,
३०—शाकम्भरी	के	बाप्पनाग०	,,	हरराजने	,,	,,
३१—पद्मावती	के	श्रेष्टिगो०	,,	पोलाकने	,,	,,
३२—रोहती	के	चोरलिया०	,,	मुकन्दने	,,	.
३३—पुष्कर	के	भूरिगो०	,,	जोराने	,,	,,
३४—मथुरा	के	प्राग्वटगो०	,,	हुम्माने	,,	.
३५—नरगेटी	के	हंसभद्र०	,,	सेतसीने	,,	,,

यहां केवल एक एक नाम देखके पाठक यह नहीं समझ ले कि उपरोक्त नामवाले [illegible] व्यक्ति ने ही दीक्षा ली थी पर इनके साथ बहुत से भावुकों ने दीक्षा ली थी पर यहाँ [illegible] नुसार मुख्य पुरुष का ही नाम लिखा है यदि सूरिजी और आपके मुनियों के हाथों से [illegible] की दीक्षा हुई उन सबका नाम लिखा जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाता [illegible] पर तो मात्र उपकेशवंशियों के ही नाम उल्लेख किये हैं जहां इस नमूने से [illegible]

आचार्यश्री के शासन में तीर्थों के संघ

१—शाकम्भरी से भूरिगौत्री	शाह	नागड़ने	श्रीशत्रुंजय	का	संघ	निकाला
२—पद्मावती से बापनागगौ०	,,	दुर्गाने	,,	,,	,,	,,
३—रत्नावती से भाद्रगौ०	,,	रूगाने	,,	,,	,,	,,
४—कीराटकुप से अदित्यनाग०	,,	मालाने	,,	,,	,,	,,
५—मथुरा से श्रेष्टिगौत्राय	,,	पोलाकने	,,	,,	,,	,,
६—डामरेल से श्रेष्टिगौत्रीय	,,	यशोदित्यने	,,	,,	,,	,,
७—वीरपुर से भाद्रगौत्रीय	,,	नारायणने	,,	,,	,,	,,
८—सोवटी से तप्तभट्टगौ०	,,	लुम्बाने	,,	,,	,,	,,
९—भरोंचनगरसे करणागौट०	,,	हेमाने	,,	,,	,,	,,
१०—स्तम्भनपुर से प्राग्वट वंशी	,,	चताराने	,,	,,	,,	,,
११—चन्द्रावती से प्राग्वट वंशी	,,	गमनाने	,,	,,	,,	,,
१२—दशपुर से बापनागगौ०	,,	गोमाने	,,	,,	,,	,,
१३—मालपुरा से लघुश्रेष्टिगौ०	,,	वरधाने	,,	,,	,,	,,
१४—आघाटनगर से लुंगगौ०	,,	उमाने	,,	,,	,,	,,
१५—उपकेशपुर से श्रेष्टिगौ०	,,	मंगलाने	,,	,,	,,	,,

इनके अलावा भी कई छोटे बड़े तीर्थों के संघ निकले थे और भावुक भक्तलोगों ने संघस्वागत एवं पहरामणी देने में खुल्लेदील से लाखों रुपये खर्चकर अपनी आत्मा का कल्याण सम्पादन किया था—

आचार्यश्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्टाएँ

१—[illegible]पुर	के	मल्लगौत्री	शाह	चेनके	बनाये	महावीर	मं०	प्र०
२—नारायणपुर	के	श्रेष्टिगौ०	शाह	फूवाके	,,	,,	,,	,,
३—कर्पीलपुर	के	श्रेष्टिगौ०	,,	चूड़ाके	,,	पार्श्व	,,	,,
४—हावरवा	के	भूरिगौ०	,,	लुम्बाके	,,	,,	,,	,,
५—दुर्गपुर	के	चोरलिया०	,,	करणके	,,	शान्ति०	,,	,,
६—विराटपुर	के	बापनाग०	,,	खेमाके	,,	आदीश्वर	,,	,,
७—कंशोलिया	के	सुचंतिगौ०	,,	खूमाके	,,	सीमंधर	,,	,,
८—दान्तीपुर	के	श्रीश्रीमाल०	,,	वींगाके	,,	अष्टापदरू	,,	,,
९—रोहाट	के	लघुश्रेष्टि	,,	देवाके	,,	महावीर	,,	,,
१०—[illegible]	के	[illegible]गौ०	,,	धवलके	,,	,,	,,	,,
११—[illegible]	के	कुम्टगौ०	,,	पोमाके	,,	,,	,,	,,
१२—[illegible]	के	चिंचटगौ०	,,	मालाके	,,	,,	,,	,,

१३—श्रीनगर	के	चरडगो०	,,	नाराके	बनाये	महावीर	मं०	प्र०
१४—दुर्गापुर	के	भाद्रगो०	,,	गोल्हाके	,,	,,	,,	,,
१५—हाँसीपुर	के	लुगगो०	,,	सुखाके	,,	,,	,,	,
१६—कुन्तिनगरी	के	करणाटगो०	,,	वागाके	,,	नेमिनाथ	,,	,,
१७—सौपारपटन	के	कुलहटगो०	,,	भैरूके	,,	शान्तिनाथ	,,	,,
१८—चन्द्रावती	के	विरहटगो०	,,	विजाके	,,	संभवनाथ	,,	,,
१९—धोलपुर	के	मोरक्षगो०	,,	नवलाके	,,	शीतलनाथ	,,	,,
२०—भादलिर	के	बलाहगो०	,,	पोकरके	,,	महावीर	,,	,,
२१—घघनेर	के	प्रागवटवशी	,,	नोधणके	,,	,,	,,	,,
२२—वालापुर	के	प्राग्वट ,,	,,	ताल्हाके	,,	पद्मनाभादि	,,	,,
२३—चम्पापुर	के	प्राग्वट	,,	करमणके	,,	सीमंधर	,,	,,
२४—चंदेरी	के	श्रीश्रीमाल	,,	मदाके	,,	महावीर	,,	,,

इनके अलावा भी आपके आज्ञावर्ती मुनियों ने भी बहुत मन्दिरों की प्रतिष्टाए करवाई थी उस समय जनता की मन्दिर मूर्तियों पर अटल श्रद्धा एवं अलौकिक भक्ति थी।

पट्ट तेतीसवे कक्कसूरि आदित्य नाग प्रभो बढ़ाई थी
कुंकुंद आचार्य बनके गच्छ में शाखा दोय बनाई थी
अर्बुदाचल जाते श्रीसंघ के जीवन आप बचाये थे
सोमाशाह के बंधन टूटे, सहायक आप कहलाये थे

इति भगवान पार्श्वनाथ के ३३ वे पट्टधर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए

३४—आचार्य श्री देवगुप्तसूरि (षष्ट्म)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पदयुग् वीरो विशिष्टो गुणैः ।
गौत्रे स्वे करणाटनामकयुते ज्ञानप्रदानेन यः ॥
देवर्द्धि च मुनिं क्षमाश्रमण नाम्ना भूषया मास च ।
संख्यातीत मुनीन् विधाय कुशलान् जातो यशस्वी स्वतः ॥

आचार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वर—परम वैरागी, महान् विद्वान, उत्कृष्ट तपस्वी, अतिशय प्रभावशाली उग्रविहारी धर्मप्रचारी सुविहितशिरोमणि मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नाश करने में सूर्य की भांति प्रकाश करने वाले देवताओं से परिपूजित पूर्वधर एक युगप्रवृतक महान् आचार्य हुए है आपश्री जैसे साहित्य समुद्र के पारगामी थे वैसे ही ज्ञानदान देने में कुवेर की भांति उदार भी थे आपके पुनीत जीवन के श्रवण मात्र से पापियों के पाप क्षय हो जाते है । यों तो आपका जीवन महान् एवं अलौकिक है जिसका सम्पूर्ण वर्णन तो वृहस्तपति भी करने में असमर्थ है तथापि भव्य जीवों के कल्याणार्थ पट्टावल्यादि ग्रन्थों के आधार पर संक्षिप्त से यहां पर लिख दिया जाता हैं ।

मरुधरदेश में खट्कुंप नाम का प्रसिद्ध नगर था वह नगर ऊँचे २ शिखर और सुवर्णमय दंडकलस वाले मन्दिरों से अच्छा शोभायमान था वहाँ पर महाजन संघ एवं उपकेशवंश के बहुत से धनवान एवं व्यापारी साहुकारों की घनी वसति थी जहां व्यापार की बहुलता होती है वहां सब लोग सुखी रहते है कारण मनुष्यों की उन्नति व्यापार पर ही निर्भर है खट्कुंट नगर के व्यापार सम्बन्ध भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य प्रदेशों के साथ भी था जिसमें वे पुष्कलद्रव्य पैदा करते थे जैसे वे द्रव्योंपार्जन करने में कुशल थे वैसे ही उस न्ययोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने में भी दक्ष थे और उन पुन्य कार्यों से पसंद होकर लक्ष्मीदेवी भी उनके घरो में स्थिर वास कर रहती थी । आचार्यरत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन संघ के अष्टादश गोत्रों में करणाट नाम का उन्नत गोत्र था उस में राजसी नाम का एक सेठ था आपके गृहदेवी का नाम रुकमणी था शाह राजसी के तेरहपुत्र और चार पुत्रियां थी जिसमें एक धवल नामका पुत्र अच्छा होनहार उदार एवं तेजस्वी, था वच्चपन से ही उसकी धवल कीर्ति चारो ओर पसरी हुई थी शाह राजसी के यों तो बहुत व्यापार था परन्तु देश में आप के घृत और तेल का पुष्कल व्यापार था राजसी के एक हजार गायों भैंसे वगैरह तो हमेशां रहती थी और उसके वहां खेती भी खूब गेहरे प्रमाण में होती थी । उस जमाने में जितना महत्व व्यापार का था उतना ही खेती का भी था और गौ धन पालन करने का महत्व भी व्यापार से कम नहीं था इतना ही क्यों पर शास्त्रकारों ने तो व्यापार खेती और गौधनका पालन करना खास वैश्य का कर्तव्य ही वतलाया हैं क्योंकि खेती वैश्यवर्ण की उन्नति का मुख्य कारण है जबसे वैश्यवर्ण का खेती की ओर दुर्लक्ष हुआ तब से ही वैश्यवर्ण का पतन होने लगा था खेती करने वाला हजारों गायों का सुख पूर्वक निर्वाह कर सकता है और गायों को पालन करने से दूध दही घृत छास वगैरह प्रचुरता से मिलती है

जिससे शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता है दूसरा खेती से गृहस्थो के आवश्यकता की तमाम वस्तुओ सहज ही में पैदा हो सकती है जैसे गेहूँ बाजरी ज्वार मुग मोट चौरला चना तुरर गवार तिल सब तरह के शाक पात और कपास गुड वगैरह अत. खेती करने वाले को गृहकार्य के लिये प्राय: एक पैसा काटने की जरुरत नही रहती है इतना ही क्यो पर दरजी सुथार नाई तेली धोबी ढोली वगैरह जितने काम करने वाले हैं उनको साल भर मे धान के दिनो मे धान देदिया जाता था कि साल भर मे तमाम काम कर दिया करते थे। यह तो हुई गौरक्षण और खेती की बात अब रहा व्यापार जब व्यापार मे जितना द्रव्य पैदा किया जाता था वह सबका सब जमा होता था कि जिससे समझ दार आस्तिक लोग देश समाज एवं धर्म जैसे परमार्थ के कार्यों में लगा कर भविष्य के लिये कल्याण कारी पुन्योपार्जन करते थे। अत: उनका जीवन बड़ा ही शान्ति मय गुजरता था। यही हाल राजसी का था शाह राजसी जैसे खेती और गौ रक्षण करता करवाता था वैसे व्यापार भी बडे प्रमाण में करता था उसके व्यापार मे मुख्य घृत तैल का व्यापार था और लाखों मण घृत तैल खरीद करके विदेशो मे ले जाकर वेचता था इसका कारण यह था कि भारत में इतना गोधन था कि भारत की जनता पुष्कल दूध दही घृत काम मे लेने पर भी लाखों मन घृत बच जाता था इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस जमाना में भारत मे गौधन का रक्षण बहुत सख्या में होता था श्री उपासकदशागसूत्र में भगवान महावीर के दश गाथापति (वैश्य) श्रावको का वर्णन किया है जिसमें किसी के एक गोकुल, किसी के चार, किसी के छ, किसी के आठ गौकुल थे एक गौकुल में दश हजार गाये थी भले पिच्छले जमाना में काल दुकाल के कारण जैसे मनुष्यो की संख्या कम हुई वैसे गायों की सख्या भी कम हो गई होगी परन्तु वे कितनी कम हो सके ? मानों कि दश हजार गायों रखने वाला एक हजार तो रखता होगा या एक हजार नही तो भी एक सौ तो रखता ही होगी ? ×

+ एक अनुभवी का कहना है कि आधुनिक अर्थ शास्त्र के अनभिज्ञ लोगो ने खेती मे पाप बतला कर बेचारे भोले लोगों के त्याग करवा दिये हैं। और भद्रिक जनता पाप के डर से खेती से हाथ भी धो बैठी है। इससे पाप कम नहीं हुआ पर कई गुणा बढ़ गया है एक तो शरीर से परिश्रम किया जाता था जिससे शरीर का स्वास्थ्य अच्छा रहता था पर परिश्रम कम होने से शरीर अनेक प्रकार की व्याधियों का घर बन गया है। इससे सन्तान भी कम हो गई। दूसरा गृह कार्य के लिये तमाम आवश्यक पदार्थ खेती से प्राप्त होता था वह बन्द हो जाने से पैसा काट कर बाजार से खरीद करना पड़ता है इससे व्यापार से प्राप्त हुए पैसे जमा नही होते हैं बल्कि कभी कभी खर्च की पूर्ति न होने से आर्तध्यान करना पड़ता है और उस पूर्ति के लिये व्यापार में झूठ बोलना, नाना प्रपटाई करना, धोखाबाजी, और विश्वासघातादि अनेक प्रकार से पाप एवं अधर्म करना पड़ता है जिससे पापकर्मों का सचय तो होता ही है पर साथ में [illegible] [illegible]

[illegible]

खैर प्रत्येक मनुष्य एक गाय को रखते तो भी करोड़ों मनुष्य द्वारा करोड़ों गाया का रक्षण अवश्य होता था भारत में घृत खाने पीने के बाद भी करोड़ो मन घृत की बचत होती थी—तब विदेशों के लोग भारत का घृत आने से ही घृत के दर्शन करते थे ।

शाह राजसी छोटे बड़े ग्रामों के लोग घृत लाते थे उसको भी खरीद कर लिया करता था एक समय का जिक्र है कि एक गामड़े की औरत घृत का घड़ा लेकर राजसी की दुकान पर आई और उसने कहा सेठजी मैं आवश्यक कार्य के लिये शहर में जाती हूँ । आप मेरे घृत के घड़े से घृत तोलकर ले लिर वे मैं वापिस आती वरत मेरा घड़ा और घृत के रुपये ले जाउँगी । यह जमाना विश्वास का, न्याय का, नीति का, और धर्म का था प्रायः किसी पर किसी का अविश्वास नहीं था जिसमें भी व्यापारी लोगों का तो सर्वत्र विश्वास था । बस सेठजी घृत के घड़े से घृत निकाल कर तोलने लगे किन्तु घृत निकालने पर भी घड़ा खाली नहीं हुआ ज्यों-ज्यों घृत निकाल कर तोलता गया त्यों त्यों घड़े में घृत आता गया इसको देख सेठजी आश्चर्य में डूब गये कि क्या बात है करीब आध मण के घड़े से मैंने मण भर घृत तोल लिया फिर भी घड़ा रीता नहीं हुआ पर भरा ही पड़ा है इस पर सेठजी ने अपनी अकल दौड़ाई पर उनको कुछ भी पता नहीं लगा पास ही में सेठजी का पुत्र धवल बैठा था उसने विचार किया तो मालूम हुआ कि इस घड़े के नीचे आरी है शायद यह चित्रावली तो न हो ? मैंने चित्रवली देखी तो नहीं है पर व्याख्यान में कई बार सुनी थी कि जिस बरतन के नीचे चित्रावली रख दी जाय वह वस्तु अखूट हो जाती है धवल ने अपने पिताजी से कहा और पिताजी की सुरत उस आरी की ओर पहुँची । राजसी ने सोचा कि घृत वाली तो इस आरी को इधर उधर डाल देंगी अतः उसको मूल्य दे दिया जायगा अत राजसी ने उस चित्रावली वाली आरी को उठाकर अपने खजाना के नीचे रखदी जब घृतवाली औरत राजसी की दुकान पर आई और कहा सेठजी घृत के रुपये दो । राजसी ने कहा माता हमेशा तेरे घृत घड़े के जितने रुपये होते हैं उतने मेरे से ले जाओ । कारण मैं तेरे सब घृत को तोल नही सका ?इस पर डोकरी ने जितने रुपये मांगे उतने राजसी ने दे दिये । जब घड़ा हाथ में लिया तो उसके नीचे की आरी नहीं पाई डोकरी ने कहा सेठजी मेरे घड़े की आरी कहाँ गई ? सेठजी ने कहा आरी तो मैंने ले ली है । डोकरी तेरे तो ऐसी आरियाँ बहुत होंगी यदि तूँ कहे तो मैं तुझको पैसे दे दू जो तेरी इच्छा हो उतने ही माँग ले । डोकरी ने एक मामूली जंगल की वल्ली तोड़कर आरी बनाइ थी अतः उसने कहा लीजिये इसके आपसे क्या पैसा लूँ सेठजी ने कहा नहीं डोकरी मैं तेरी आरी मुफ्त नहीं रख सकता हूँ जो तू मुँह से माँगे वही मैं देने को तैयार हूँ । डोकरी ने कहा अच्छा आपकी यही इच्छा है तो थोड़ासा गुड़ मुझे दे दीजिये । सेठजी ने उठा कर पाँच सेर गुड़ दे दिया । परन्तु डोकरी इतना गुड कैसे ले सके कारण वह जानती थी कि मेरी आरी कुछ मूल्यवान नहीं है फिर मैं सेठजी का इतना गुड़ कैसे लूँ अत. उसने इन्कार कर दिया । सेठजी ने कहा माता तेरी आरी मेरे लिये बहुत कामकी है मैं खुशी से देता हूँ तूँ गुड़ लेजा ।

था कि एक मन बीज का सौमण माल पैदा कर सकते थे जैसे आज यूरोप में करते हैं जब खेती गौरक्षण और व्यापार अलग अलग हो गये तो सबकी दुर्दशा हो गई कारण खेती करने वाला खेती शिक्षा से अनभिज्ञ—अनपढ़ है और न उनको इतने साधन ही मिलते है अतः वे ऋण चुकाने के बाद अपना पेट भी मुश्किल से भरते हैं और गायों की भी यही भारी दुर्दशा होती है क्योंकि मूल्य का लाया हुआ चारा—घास डालने वाला उन खर्चों की पूर्ति करने के पहिले न तो दूध दही घृत अपने काम में ले सकता है और न उनको पुरी खुराक ही दे सकता है यही कारण है कि यूरोप में एक गाय का एक मन दूध होता है तब हमारे यहाँ दो सेर दूध होता है पूर्व जमाने में एक एक गाथापति के यहाँ हजारों गायों रहती थी तब आज हमारे भारत में गिनती की गायें रह गई है तीसरा व्यापार का भी अधो पतन हो गया अव्वल तो हमारे अन्दर पुरुषार्थ नहीं रहा कि हम स्वयं व्यापार कर सके । दूसरे हमारे पास व्यापार करने जितना द्रव्यभी नहीं रहा अत: सट्टा दलाली कमीशन ही हमारा व्यापार रह गया अर्थात् दश गांठ दूसरों से लाये और दश गांठ बेच दी । सौ बोरी लाये और सौ बोरी बेचदी । यही हमारा व्यापार रहा है सट्टा । इसमें क्या मुनाफा मिल सके कि जिससे अपने खर्चा की पूर्ति हो सके । जब घर खर्चा का भी यह हाल है तो देश समाज एवं धर्म कार्यों के लिये तो हम कर ही क्या सकते हैं ?

डोकरी बहुत खुश होकर गुड़ ले गई। बस सेठजी के भाग्य खुल गये इसमें मुख्य कारण सेठजी का पुत्र धवल ही था अतः राजसी ने अपने पुत्र धवल को भाग्यशाली समझा और कहा बेटा तेरे पुन्य से यह चित्रावली अपने घरमें आई है। इसका कुछ सदुपयोग किया जाय तो अच्छा है वरना जैसे जंगल मे पडी थी वैसे ही अपने घर में पडी रहेगी। धवलने कहा पूज्य पिताजी आप ही पुन्यवान हैं और आपके पुन्य प्रताप से ही चित्रावली आई और आपका कहना भी अच्छा है कि इसका सदुपयोग करना ही कल्याणकारी है मेरा ख्याल से तो जिन मन्दिर बनाना तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना महाप्रभाविक भगवत्यादि सूत्र का महोत्सव कर संघ को सुनाना साधर्मीभाइयों को सहायता देना और गरीब जीवों का उद्धार करना इसमे लक्ष्मी व्यय की जाय तो चित्राबल्ली का सदुपयोग हो सकता है। राजसी ने धवल के वचन सुनकर पूछा कि बेटा! तुझे यह किसने सिखाया? बेटे ने कहा कि गुरु महाराज हमेशां व्याख्यान में फरमाते है कि श्रावक के करने योग्य ये कार्य है। पिताजी अब इन कार्यों में विलम्ब नही करना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की स्थिति होती है वह अपनी स्थिति से अधिक एक क्षण भर भी नहीं ठहरती है दूसरा मनुष्य का आयुष्य भी अनिश्चित होता है इसलिये साधन के होते हुए कार्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये। राजसी ने कहा ठीक है बेटा। पर इस बात को अभी किसी को भी नहीं कहना। बेटा ने कहा ठीक है पिताजी।

भाग्य वशात् इधर से धर्मप्राण लब्ध प्रतिष्ठित कुन्कुन्दाचार्य महाराज उपकेशपुर से विहार करते हुए खटकूप नगर की ओर पधार रहे थे जिसके शुभ समाचार सुनते ही नगर भर में आनन्द, मंगल और सर्वत्र हर्ष छा गया जिसमें भी शाहराजसी के तो हर्ष का पार नही था क्योंकि उनको इस समय आचार्य देवकी पूर्ण जरूरत थी शाह राजसी ने अपने शुभ कार्य के मंगलाचरण में सूरिजी महाराज के नगर प्रवेश का महोत्सव किया जिसमें नौलाख रुपये व्यय कर दिये कारण साधर्मी भाईयों को सोना मुहरों एवं वस्त्रों की प्रभावना और याचकों को पुष्कल दान दिया। सूरिजी महाराज ने थोडी बहुत हृदय ग्राही देशनादी तत्पश्चात परिषदा विसर्जन हुई। एक समय शाहराजसी अपने पुत्र धवल को साथ लेकर सूरिजी के पास आया वन्दन कर अर्ज कि भगवान् धवल का इरादा है कि एक मन्दिर बनवाऊं और तीर्थों की यात्रार्थ एक संघ निकालूँ अतः इसके लिये खास आपकी सम्मति लेनी है कि आप हमको अच्छा रास्ता बतलावे सूरिजी ने कहा राजसी पहिले तो यह निर्णय हो जाना चाहिये कि तुमको इस शुभ कार्य में कितना द्रव्य व्यय करना है क्योंकि जितना द्रव्य व्यय करना हो उतना ही कार्य उठाया जाय। राजसी ने कहा प्रभो! आप गुरुदेवों की कृपा से सब आनन्द है कार्य अच्छा से अच्छा किया जाय इसमें जितने द्रव्य की आवश्यकता होगी उतना ही द्रव्य मैं लगा सकूंगा। बस फिर तो था ही क्या। सूरिजी ने कहा राजसी तूं और तेरा पुत्र धवल बड़ा ही भाग्यशाली है संसार में जन्म लेकर मरजाने वाले तो बहुत हैं पर अपने कल्याण के साथ शासन का उद्योत करने वाले विरले मनुष्य होते हैं। मन्दिर बनाना एक जैनधर्म को स्थिर करना है [illegible] संहार दुकाल और बडी बडी आफतों के समय जैनधर्म जीवित रह सका है इसमें मुख्य कारण मन्दिरों का ही है संघ निकाल कर सघ को तीर्थों की यात्रा करवाना यह भी एक पुण्यानुबन्धी पुन्य का कारण है इसमें उत्कृष्ट भावना आने से तीर्थंकर नाम कर्म भी उपार्जन कर सकता है तुमने इन दोनों पुनीत कार्यों का निश्चय किया है [illegible] तुम बड़े ही पुन्यशाल हो। राजसी ने कहा पूज्यवर! यह आप जैसे गुरुदेवों के उपदेश का ही फल है [illegible] एवं रत्नप्रभसूरि ने हमारे पूर्वजों को मिथ्यात्व से बचाकर जैनधर्म में दीक्षित कर महान उपकार किया है कि उनकी सन्तान परम्परा में आज हम इस स्थिति को प्राप्त हुए हैं। कृपा कर आप फरमावें कि [illegible] किस तीर्थंकर का मन्दिर बनाया जाय? और आपश्री यहां पर चतुर्मास करावें कि संघ निकालने का [illegible] सूरिजी ने कहा चतुर्मास की तो क्षेत्र स्पर्शना है पर [illegible] है। [illegible] को बुलाया और [illegible] से बढ़िया मन्दिर का नक्शा बनवा कर सूरिजी [illegible] मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् श्री संघ ने [illegible] चतुर्मास [illegible]

कुछ अर्से के लिये आस पास के प्रदेशों में विहार कर वापिस खटकुंप नगर पधार कर चतुर्मास कर दिया। शाहराजसी एवं धवल ने महा महोत्सव पूर्वक आगम भक्ति एवं हीरा पन्ना माणक मोतियों से ज्ञान पूजा कर महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सूरिजी के कर कमलों में अर्पण किया और आपने उसको व्याख्यान में वांच कर श्री संघ को सुनाना प्रारम्भ कर दिया जिससे जैन जैनेतर श्रोताजन को बड़ा भारी आनन्द आया। सूरिजी के विराजने से केवल खटकुंप नगर को ही नहीं पर आसपास के जैनों को भी अच्छा लाभ मिला विशेष धवल को तो ज्ञान पढ़ने की इतनी सुविधा मिल गई कि कई अर्से से उनके दिल में रूची थी अतः सूरिजी के विराजने से उसने अच्छा लाभ उठाया इधर राजसी सूरिजी से परामर्श कर श्री सम्मेतशिखरजी के संघ की तैयारियां करने लग गया। खूब दूर-दूर प्रदेशों में आमन्त्रण पत्रिकाएं भिजवा दी। मरुधर से सम्मेतशिखरजी का संघ कभी कभी ही निकलता था अतः संघ का अच्छा उत्साह था ठीक समय पर खूब गहरी संख्या में संघ का शुभागमन हुआ जिसका राजसी ने सुन्दर स्वागत किया और सूरिजी का दिया हुआ शुभ मुहूर्त मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को शाह राजसी के संघपतित्व एवं सूरिजी की अध्यक्षत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया जो आसपास में साधु साध्वियां थी वह शुरु संघ के साथ और भी आने वाले थे उनके लिये रास्ते में दो तीन ऐसे स्थान मुकर्रर कर दिये कि वहां आकर संघ में शामिल हो जाय। मार्ग में कई तीर्थ आये जिन्हों की यात्रा अष्टान्हिका एवं ध्वजमहोत्सव स्वामिवात्सल्य वगैरह शुभ कार्य करते हुए और इन कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय करते हुए संघ श्री बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि सम्मेतशिखरजी पहुँच गया दूर से तीर्थ का दर्शन होते ही संघ ने अपना अहोभाग्य मनाया। बीस तीर्थङ्करों के चरण कमलों की स्पर्शना पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य अष्टान्हिका एवं ध्वज महोत्सव वगैरह किया राजसी की ओर से द्रव्य की खुले दिल से छूट थी क्यों न हो जिसके पास चित्रावल्ली हो और चित्त उदार हो फिर कमी ही किस बात की श्री संघ ने पूर्व के और भी करने योग्य तीर्थ थे उन सबकी यात्रा कर वापिस लौटा और क्रमशः रास्ते के तीर्थों की यात्रा कर पुनः खटकुंप नगर की ओर आ रहा था वहां के श्री संघ ने संघ का अच्छा स्वागत कर बधाकर संघ को नगर प्रवेश करवाया। इस विराट संघ का केवल जैनों पर ही नहीं पर बड़े बड़े राजा महाराजा एवं जैनेतर जनता पर भी काफी प्रभाव पड़ा था जीर्णोद्धार और जीवदया की ओर संघपति का अधिक लक्ष था और सहधर्मी भाइयों के लिये तो कहना ही क्या था संघ लेकर वापिस आने के बाद राजसी ने तीन दिन तक संघ और तमाम नगर के लिये जीमणवार कर सबको मिष्टान्नादि से तृप्त किये बाद पुरुषों को सोने की कंठियां और बहिनों को सोने का चूड़ा और वस्त्रादि की पहरामणि दी और याचकों को तो इतना द्रव्य दिया कि उनके घरों का दारिद्रय ईर्षा करके चोरों की भांति नगर से ही नहीं पर देश से मुंह लेकर भाग गया शाह राजसी के पास रहने वाली लक्ष्मी और सरस्वती देवियों का स्वागत देखकर कीर्ति देवी कोपित हो अर्थात् ईर्षा कर भाग छूटी कि वह देश विदेश में घूमने एवं फिरने लगी।

शाह राजसी के द्वारा आरम्भ किया हुआ मंदिर खूब जोरों से तैयार हो रहा था मंदिर इतना विशाल था कि जिसके चौरासी देहारियां और कई रंग मण्डप बन रहे थे कारीगर और मजदूर बहुत संख्या में लगाये गये थे तथापि शिल्प कला का काम सुन्दर एवं विशेष होने के कारण अभी उसके लिये समय लगने की संभावना थी कुंकुंदाचार्य खटकुंप नगर से विहार कर शंखपुर आशिका दुर्ग वगैरह ग्राम नगरों को पवित्र बनाते हुए नागपुर पधारे और वह चतुर्मास नागपुर में कर दिया नागपुर में जैनों की संख्या विशेष थी आप श्री के विराजने से जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं जागृति हुई चतुर्मास के बाद कई मुमुक्षुओं ने सूरिजी के चरण कमल में भगवती जैन दीक्षा ग्रहण की तदनन्तर सूरिजी कुर्चपुर, चन्द्रावती, हंसावली, पद्मावती, मेदिनीपुर, भवानीपुर और शाकम्भरी आदि छोटे बड़े ग्राम नगरों में विहारकर भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया जिससे धर्म का खूब ही उद्योत हुआ। शाह राजसी ने मरुधर सूरिजी श्री सेवा में जाकर खटकूप नगर पधारने की साग्रह विनती की अतः सूरिजी खटकुंप पधारे। और मन्दिरजी की देख-रेख की राजसी ने प्रार्थना की कि पूज्यवर! अब मन्दिरजी तैयार होने में है थोड़ा काम रह आया जो मैं करवाता रहूँगा पर इसकी प्रतिष्ठा पूज्य के करकमलों से हो जाय तो मैं मेरे जीवन को सफल हुआ समझूँ आप श्री

तत्पश्चात् शाह राजसी एवं धवल चतुर शिल्पज्ञ कारीगरों को लेकर आया सूरिजी ने अपने साधु धर्म की मर्यादा में रह कर जो उपदेश देना था वह दे दिया राजसी की इच्छा ९६ अंगुल की सुवर्ण मय भगवान् महावीर की मूर्त्ति बनाने की थी, परन्तु सूरिजी ने कहा राजसी तेरी भावना और तीर्थङ्करदेव प्रति भक्ति तो बहुत अच्छी है पर दीर्घ दृष्टि से भविष्य का विचार किया जाय तो सुवर्णादि बहुमूल्य धातु की मूर्त्ति बनाना कभी आशातना का भी कारण हो सकती है कारण कई अज्ञानी जीव लोभ के वश मूर्त्तियों को ले जाकर तोड़फोड़ के पैसे कर लेते हैं यही कारण है कि पूर्व महर्षियों ने मणि की मूर्तियों को भण्डार कर सुवर्णादि धातुओं की मूर्तियां बनाई और इस पंचमआरे के लिये तो धातु पदार्थ को बंद कर पाषाण एवं काष्टादि की मूर्तियाँ बनाने का रखा है। राजसी ! जैन लोग सुवर्ण पाषाणादि के उपासक नहीं पर वीतराग देव के उपासक है मूर्ति चाहे सुवर्ण पाषाण काष्टादि की क्यो न हो पर उपासना करने वालों की भावना वीत-राग की आराधना करने की रहती है हाँ कहीं कहीं भक्त लोग अपनी लक्ष्मी का ऐसे कार्यों में सदुपयोग करने की भावना से सुवर्णादि धातु पदार्थों की मूर्तियां बनाते भी हैं पर उनकी दृष्टि केवल भक्ति की ओर ही रहती है उनके भावो का लाभ तो उनको मिल ही जाता है पर भविष्य का विचार कम करते हैं एक तरफ भारत में मतमतान्तरों की द्वन्द्वता दूसरे भारत पर विदेशियों का आक्रमण और तीसरा दिन दिन गिरता काल आ रहा है जो मन्दिर और मूर्त्तियों का प्रभाव एवं गौरव है वह अज्ञानी जीवों की आशातना से कम नहीं होता है पर बाल एवं भद्रिक जीवों के लिए श्रद्धा उतरने का कारण बन जाता है वे अपनी अल्पज्ञता से कह उठते हैं कि जिस देव ने अपनी रक्षा नहीं की वह दूसरो का क्या भला कर सकेगा ? यद्यपि यह कहना अज्ञान पूर्ण है कारण वीतराग की मूर्त्तियों रक्षा व रक्षण के लिये नहीं पर आत्म कल्याण के लिये ही स्थापित की जाती है इत्यादि सूरिजी ने भविष्य को लक्ष में रख राजसी को उपदेश दिया और यह बात राजसी एवं धवल के समझमें भी आगई अतः उन्होंने अपने विचारों को मुलतवी रख कर पाषाण की मूर्तियाँ बनाने का निश्चय कर लिया और चतुर शिल्पकारों को बुलवा कर सूरिजी की सम्मति लेकर मूल नायक शासनाधीश भगवान महावीर की १२० अंगुल की परकर अर्थात् अष्ट महाप्रतिहार्य संयुक्त मूर्त्ती बनाने का निश्चय कर लिया जो मूल गुम्भारा में एक ही मूर्त्ति रहै जिसको अरिहन्तों की मूर्त्ति कही जाती है बहुत सी मूर्त्तियां पहले से ही बन चुकी थीं। और भी जो शेष काम रहा था वह भी खूब जल्दी से होने लगा।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर होता था जिस समय सूरिजी जन्म मरण के एवं संसार के दुःखों का वर्णन करते थे उस समय श्रोतागण कांप उठते थे जिसमें शाह राजसी का पुत्र धवलने तो संसार से भय भ्रांत होकर सूरिजी के चरण कमलोंमें दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! आपका फरमाना सर्व सत्य है संसार दुःखों का घर है जब जीवों के स्वाधीन सामग्री होती है तब वो मोह में अन्धा बन जाता है जब अशुभ कर्मों का उदय होता है तब रोना पीटनादि क्लेश में केवल कर्मोपार्जन कर लेता है अतः इस चक्रवाल संसार का कभी अन्त नहीं होता है गुरुदेव मैंने तो निश्चय कर लिया है कि मैं पूज्य के चरणों में दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ आो पहिला उज्जैन में भी आपसे अर्ज की थी सूरिजी ने कहा धवल तू बड़ा ही भाग्यशाली है तेरी विचार शक्ति एवं प्रज्ञा बहुत अच्छी है धवल ! चाहे आज लो चाहे भवान्तर में लो पर बिना दीक्षा लिये सम्पूर्ण निवृत्ति मिल नहीं सकती है और बिना निवृत्ति आत्म कल्याण हो नहीं सकता है यही कारण है कि चक्रवर्ति जैसे

अतुल ऋद्धि वालों ने भी उस ऋद्धि पर लात मार कर दीक्षा ली है। अतः तेरा विचार बहुत अच्छा है पर इस कार्य मे विलम्ब नही होना चाहिये। धवल ने कहा 'तथाऽस्तु' गुरु महाराज मै इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के पूर्व ही दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। बस सूरिजी को वन्दन कर धवल अपने मकान पर आया।

धवल और उसके माता पितादि मे इस बात की खूब चर्चा एवं जवाब सवाल हुए पर आखिर जिनको वैराग्य का सच्चा रंग लग गया है वह इस संसार रूपी कारागृह मे कब रह सकता है उसने अपने माता पित ओ को बहुत समझाया पर वे अपने धवल जैसे सुयोग्य पुत्र को दीक्षा दीलाना कब चाहते थे राजसी ने कहा बेटा अपने घर मे चित्रावल्ली है इसका धर्म कार्यों मे सदुपयोग कर कल्याण करो। यह मन्दिर तैयार हो रहा है इसकी प्रतिष्ठा कराओ। श्रीसंघ को अपने आंगणे (घर पर) बुला कर उनका सत्कार पूजन कर खूब पहरामणीदो इत्यादि पर दीक्षा का नाम तो भूल चूक कर भी नही लेना। बेटा देख तेरी माता रो रही है इसने जब से तेरी दीक्षा की बात सुनी तब से ही अन्न जल का त्याग कर दिया है बेटा जैसा दीक्षा लेना धर्म है वैसा माता पिता की आज्ञा पालन करना भी धर्म है अतः तूं दीक्षा की बात को छोड़ दे और मन्दिर की प्रतिष्ठा के कार्य मे लग जाय? धवल ने अपने पिता से विनय पूर्वक कहा पूज्य पिताजी मन्दिर बनाना, श्री संघ का सत्कार करना यह भी धर्म का अंग है पर दीक्षा इसने भी विशेष है मैं क्षण भर भी संसार मे रहना नही चाहता हूँ यदि आप लोग भी दीक्षा लें तो मैं आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। राजसी ने धवल के अन्तःकरण को जान लिया अतः उन्होने बडे ही समारोह से दीक्षा महोत्सव किया और आचार्य कक्कसूरि ने धवल को उनके १४ साथियो के साथ भगवती जैनदीक्षा दे दी। सूरिजी ने धवल को दीक्षा देकर उसका नाम मुनि राजहंस रख दिया अभी प्रतिष्ठा के कार्य में कुछ देर थी अतः सूरिजी आस पास के प्रदेश में विहार कर श्रीउपकेशपुर स्थित भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि के दर्शनार्थ उपकेशपुर पधार गये तब कुंकुदाचार्य ने सूरिजी की आज्ञा से नागपुर की ओर विहार कर दिया। इधर शाहराजसी अपना कार्य खूब जल्दी से करवा रहा था जिसके वहां चित्रावल्ली हो द्रव्य की छुले हाथों से छुट हो वहां कार्य होने मे क्या देर लगती है जब कार्य सम्पूर्ण होने मे आया तो शाह राजसी ने दोनो आचार्यों को आमन्त्रण भेज कर बुलाये और सूरिजी महाराज पधार भी गये शाह राजसी ने प्रतिष्ठा के लिये खूब बड़े प्रमाण में तैयारियो की थी आस पास ही नहीं पर बहुत दूर दूर के प्रदेशों में आमन्त्रण भेज चतुर्विध श्री संघ को बुलाया जिन मन्दिरों मे अष्टान्हि का महोत्सव करवाया आचार्य कक्कसूरि के कर-कमलो से नूतन मूर्तियो की अञ्जनशिलाका करवाई और खूब धामधूम से मन्दिर की प्रतिष्ठा भी करवाई शाह राजसी ने संघ को सोने मुहरों और लड्डू एव वस्त्रो की पहरामणी दी और याचकों को मन इच्छित दान दिया। इधर चतुर्मास का समय भी नजदीक आगया था शाह राजसी एवं खटकूप नगर के [illegible] के [illegible] पर सूरिजी से विनती की अतः कुंकुदाचार्य को नागपुर और दूसरे नगरों मे [illegible] को चतुर्मास का आदेश दे [illegible] सूरिजी महाराज ने खटकूप नगर मे चतुर्मास [illegible] मुनि राजहंस भी सूरिजी के साथ मे ही थे।

यों तो खटकूप नगर के बड़े बड़े भाग्यशाली एव सम्यक्त्वधारी [illegible] शाह राजसी ने ही [illegible] महामहोत्सव एव [illegible] के बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान सूत्र बचाय, और भी अनेक प्रकार [illegible]

एक समय सूरिजी ने तीर्थों की यात्राका वर्णन इस प्रकार किया कि शाहराजसी की भावना श्रीशत्रुंजय तीर्थ का संघ निकालकर यात्रा करने की हुई अतः उसने सूरिजी की सम्मति ली तो सूरिजी ने फरमाया राजसी तेरे केवल शत्रुंजय का संघ निकालने का काम ही शेष रहा है कारण गृहस्थ के करने योग्य कार्य मन्दिर बनाना सूत्र वांचना और संघ निकालना ये तीनों कार्य तो तुं करही लिया है विशेषता में तेरे पुत्र ने दीक्षा भी ली है अतः तुँ बड़ा ही भाग्यशाली है फिर वह एक संघ का कार्य शेष क्यों रखता है। राजसी ने निश्चयकर लिया और संघकी सब तैयारियां करनी प्रारम्भ करदी चतुर्मास समाप्त होते ही सब प्रान्तों मे आमन्त्रण पत्रिका भेजवादी। साल भर में एक दो संघ तो निकल ही जाता था तब भी धर्मज्ञ पुरुषों की तीर्थ यात्रा के लिये भावना कम नहीं पर बढ़ती ही जारही थी इस का कारण यह था कि उस समय गृहस्थों के बड़ा ही संतोष था समय बहुत मिलता था परिवार भी बहुत था और धर्म भावना भी विशेष थी। तीर्थ यात्रा के लिये बहुत से साधु साध्वियों और लाखों श्रावक श्रविकाएं खटकूंपनगर को पावन बना रहे थे। आचार्य कक्कसूरि ने शाह राजसीको संघपति पद अर्पण कर दिया और मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के शुभ मुहूर्तमें संघ ने प्रस्थान कर दिया रास्ते में भी बहुत से लोग मिलते गये और ग्रामनगरों के मन्दिरों के दर्शन करते हुए क्रमशः संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पहुँच गया दूर से तीर्थ का दर्शन करते ही मुक्ताफल से पूजन किया और युगादिदेवकी यात्रा कर पापोंका प्रक्षालन किया। अष्टाह्निक महोत्सव ध्वज उच्छ्रव पूजाप्रभावना स्वामिवात्सल्यादि शुभकार्यों में शाहराजसी ने पुष्कलद्रव्यव्यय किया वहाँ से संघ वापिस लोटने वाला था उस समय मुनि राजहंस ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर। मेरी इच्छा है कि इस तीर्थ भूमिपर शाहराजसी और उनकी पत्नि को आप उपदेश दिरावे कि उन्होंनेप्रवृति कार्य तो सब कर लिया है अब निर्वृति कार्य कर अपने मनुष्य जन्म को विशेष सफल बनावे। सूरिजी ने कहा मुनि राजहंस—तुँ सच्चा कृतज्ञ है कि अपने मातापिता का कल्याण चाहता है। सूरिजी ने संघपति राजसी और उसकी पत्नि को बुलाकर कहा कि संघपति तेरे पुत्र मुनि राजहंस की इच्छा है कि आप दोनों इस पुनीत तीर्थ पर दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करें। वास्तव में मुनि का कहना सत्य भी है जब गृहस्थों के करने योग्य सब कार्य तुमने कर लिया है तो अब निवृति यानि दीक्षा लेकर कल्याण करना जरूरी है इत्यादि साथमें मुनिराजहंसने भी जोर देकर कहाकि जिसने जन्म लिया है उसको, मरना तो निश्चय ही है तो फिर सुअवसर को क्यों जाना देते हैं मेरा अनुभव से तो दीक्षा पालन कर मरना अच्छा है इत्यादि राजसी ने अपनी पत्नि के सामने देखा इतने में पुनः मुनि राजहंस बोलाकि इसमें विचार करने की क्या बात है यह तो अपने ही कल्याण का काम है अनन्तकाल हो गया जीव संसार में परिभ्रमन कर रहा है किसी भव के पुन्य मे यह अवसर मिला है इत्यादि। जिन जीवों के मोक्ष नजदीक हो उनको अधिक उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती है उस जगह बैठे बैठे ही दम्पति ने सूरिजी एवं अपने पुत्र के कहने को स्वीकार कर लिया और संघपति की माला अपने पुत्र खेतसी को पहना कर शाह राजसी और उसकी स्त्री ने सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा स्वीकार करली। अहाहा बेटा हो तो ऐसा ही होकि आपतो तरेही पर साथ में अपने मातापिता को भी तार देवें और मातापिता हो तो भी ऐसे हो कि पुत्र के थोड़े से कहने पर घर छोड़ दे राजसी ने घर और चित्रवल्ली जैसी अखूट लक्ष्मी को बातही बात में त्याग कर दीक्षा ले ली—इस आश्चर्यजनक घटना को देख संघमें कई भावुकों की भावना संघपति का अनुकरण करने की होगई वहाँ आठ दिनों में ६८ नरनारियोंने सूरिजी के हाथों मे दीक्षा ग्रहण करली।

शाह खेतसी के संघपतित्व में संघ वापिस लौटकर खटकुंप आया और सूरिजी महाराज ने सौराष्ट्रप्रान्त में विहार कर सर्वत्र धर्म प्रचार बढ़ाया। बाद आपने कच्छ भूमि को पावन की वहाँ से सिन्ध भूमि में पदार्पण किया इस प्रकार अनेक प्रान्तों में भ्रमण करते हुए सूरिजी महाराज ने जैनधर्म की खूबही प्रभावना की जो आप श्री के जीवन मे लिखा गया है और अन्त में श्री शत्रुंजय की शीतल छाया में श्रेष्टिगौत्रीय शाह देवराज के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य कक्कसूरिने देवी सच्चायिका की सम्मति पूर्वक मुनि राजहंस को अपने पट्टपर अचार्य बनाकर आपका नाम देवगुप्तसूरि रखदिया बाद २७दिन का अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये

आचार्य देवगुप्तसूरि महान् प्रभाविक उगते सूर्य की भांति ज्ञानप्रकाश करने वाले धुरंधर आचार्य हुए आपने गच्छ नायकत्व का भार अपने सिर पर लेते ही विजयी सुभटकी भाँति चारों ओर विहारकर आपने विजय डंका बजा दिया था आपश्री जी शत्रुंजय तीर्थ से ५०० मुनियों के साथ विहारकर क्रमशः कई प्रान्तों में भ्रमन कर वापिस मरुधरकों पावन बनाते हुए खटकुंपनगर पधारे जो आपकी जन्म-भूमि थी वहाँ के राजा—प्रजा ने आपका अच्छा सन्मान किया कारण एक तो आप इस नगर के सुपुत्र थे दूसरे आप स्वमतपरमत के साहित्य का गहरा अभ्यास कर धुरंधर विद्वान बनआयेथे तीसरा आचार्यपदपे शोभायमान थे भला नगर में ऐसा कौन हतभाग्य होगा कि जिसको अपने नगर का गौरव न हो अतः क्या राजा क्या प्रजा क्या जैन और क्या जैनतर सब लोग सूरिजी के स्वागत में शामिल थे जब सूरिजी ने नगर प्रवेश कर सबमे पहिले धर्म देशना दी तो सब लोग एक आवज से कहने लगे कि वाहरे धवल तूँ! इस नगरमें जन्म लिया ही प्रमाण है अरे धवल ने अपने मातापिता का कल्याण तो किया ही है पर इसने तो खटकुंपनगर ही नहीं पर मरुधर भूमि को उज्जवल मुखी बनादी है

आचार्य देवगुप्तसूरि ने मारवाड के छोटे वड़े ग्राम नगरों में सर्वत्र विहार कर अपनी ज्ञानप्रभा का अच्छा प्रभाव डाला आपने कई मन्दिरों की प्रतिष्टाएँ करवाई कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की दीक्षादी और कई जैनेतरों को जैनधर्म की राहपर लगाकर महाजनसंघ की भी खूब वृद्धि की इत्यादि आपश्री ने जैनधर्म की खूब ही तरकी की। जिस समय आप श्री का चतुर्मास पद्मावती पुष्कर में हुआ उस समय वहाँ सन्यासियों की जमाव आई सूरिजी ने उनके साथ शास्त्रार्थ कर उनमें से कई २०० सन्यासियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर श्रमण सघमें वृद्धि की थी। इस प्रकार सन्यासियो की दीक्षा होने का मुख्य कारण वेदान्तियों की हिंसा वृत्ति ही थी कारण ज्यों ज्यों जैनोने अहिंसाका प्रचार को खूब जोरो से बढाया त्यो त्यों ब्राह्मणों ने जहाँ वहाँ यज्ञादि में पशुबली देने रूप क्रिया काण्ड को इतना बढ़ादिया था कि जनता को नफरत एवं घृणा आने लग गई थी इतना ही क्यों पर सन्यासी लोग तो इस प्रकार की घोरहिंसा से विरक्त से ही [illegible] थे अतः जहाँ जैनाचार्य का संयोग मिलता वे जैनधर्म की दीक्षा स्वीकार कर ही लेते थे। [illegible] में आप पढ़आये है कि बहुत से सन्यासियो एवं तापसो ने जैनदीक्षा स्वीकार कर [illegible] जैनधर्म का खूब जोरो से प्रचार किया है। अस्तु।

आचार्यश्री ने एक समय [illegible] के दिन व्याख्यान में भगवान महावीर के [illegible] विषयक व्याख्यान करते हुए पूर्व के पुनीत तीर्थों के दर्शन से [illegible] भूमि [illegible] पावापुरी और राजगृह नगर के पांच पहाड़ो का दर्शन [illegible]

वतलाते हुए कहा कि पूर्व जमाने में इस मरुधर भूमि से कई भाग्यशालियो ने पूर्वकी यात्रार्थ वड़े वड़े संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ कों यात्र कराई और पुन्यानुबन्धी पुन्योपार्जन किया इत्यादि आपश्री के उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ और भावुको की भावना तीर्थों की यात्रा करने की होगई। उसी सभामे श्रेष्टिगौत्रीय मंत्री अर्जुन भी था उसके दिलमें आई कि जब सूरिजी ने उपदेश दिया है तो यह लाभ क्यों जाने दिया जाय अतः उसने खड़े होकर प्रार्थना की कि पूज्यवर। यदि श्रीसंघ मुझे आदेश दिरावे तो मेरी इच्छा पूर्व के तीर्थों की यात्रार्थ संघनिकालने की हैं। संघ निकालने का विचार तो और भी कई भावुकोंके थे पर वे इस विचार में थे कि घरवालों की सम्मति लेकर निश्चय करेंगे किन्तु मत्रीश्वर इतना भाग्यशाली निकलाकि सूरिजीका उपदेश होते ही हुक्म उठालिया आखिर श्री संघने मंत्री अर्जुन कों धन्यवाद के साथ आदेश दे दिया और भगवान महावीर एवं आचार्य देव की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

मंत्रीअर्जुन के अठारह पुत्र थे कई राज के उच्चपद पर कार्य करते थे तव कई व्यापार में लगे हुए भी थे शामकों जबसब एकत्रित हुए तो मंत्रीने सबकी सम्मति ली पर उसमें एकभी पुत्र ऐसा नहीं निकला कि जिसने इस पुनीत कार्य के खिलाफ अपना मत प्रगट किया हो अर्थात् सबने बड़ी खुशी से अपनी सम्मति देदी। बस फिर तो था ही क्या मंत्री के सब काम हुकम के साथ होने लग गये और दूर-दूर के श्रीसंघ को आमंत्रण भिज वा दिये। पूर्वका संघ कभी कमी ही निकलता था अतः जनता में उत्साह भी खूब बढ़गया था। उस समय इस प्रकार के धार्मिक कार्यों में जनता की रूची भी बहुत थी अतः चतुर्विध श्रीसंघ के आने से पद्मावती नगरी एक यात्रा का धाम बन गयी। सूरीश्वरजी ने संघ प्रस्थान का मुहूर्त भी नजदीक ही दिया कारण मामला बहुत दूर का था और रास्ते में भी कई तीर्थ भूमियों आती है समयानुकुल हो तो स्थिरतापूर्वक यात्रा बड़े ही आनन्द से होसके। पट्टावलीकार लिखते है कि मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन मंत्री अर्जुन के संघपतित्व में संघ प्रस्थान कर तीनदिन तक संघ नगरी के बहार ठहर गया पूजा प्रभावना स्वामि वात्सल्य वगैरह संघपति की ओर से होता रहा और भी बहुत से लोग सघ में शामिल होगये तत्पश्चात आचार्य देवगुप्तसूरि के नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया रास्तों के मन्दिरों के दर्शन जैसे मथुरा शौरीपुर हस्तनापुर सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा पूजा कर संघने वीसतीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि की स्पर्शना एवं दर्शन कर पूर्व संचित कइ भवों के पातक का प्रक्षालन कर दिया। तीर्थ पर ध्वजा अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि धर्म कार्यों में संघपति ने खूब खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय कर पुन्योपार्जन किया। बाद वहाँ से चम्पापुरी पावापुरी राजगृह वगैरह पूर्व के सब तीर्थों की यात्राकर संघ वापिस लौटकर पद्मावती आया और मंत्रीश्वर ने सवासेर लड्डू के अन्दर पांच पांच सुवर्णमुद्रिकाएँ तथा वस्त्रादि की संघकों पहरा-मणिदी तथा याचको को दान दिया बाद संघ विसर्ज्जन हुआ— अहाहा उस जमाने में जनता के हृदय में धर्म का कितना उत्साह धर्म पर कितनी श्रद्धा भक्ति थी वे जो कुच्छ समझते वे धर्म को ही समझते थे

कई मुनि तो संघ के साथ वापिस लौट आये थे परन्तु आचार्य देवगुप्त सूरि अपने पांचसौ मुनियों के साथ पूर्वमें धर्मप्रचार के निमित रह गये थे इन्होंने पूर्व में श्रीसम्मेत शेखर के आसपास की भूमि में विहार कर जनता को धर्मोपदेश दिया और जैन श्रावको की संख्या को खूब बढ़ाई जो आज सराक जाति के नाम से प्रसिद्ध है वहाँ से बंगाल की ओर विहार कर हेमाचल के मन्दिरों के दर्शन किया तत्पश्चात् आप विहार करते हुए कलिंग की ओर पधारे और खण्डगिरि उदयगिरि तीर्थ जो शत्रुञ्जय गिरनार अवतारके नाम से खूब

राहूर थे भगवान् पार्श्वनाथ और आपकी सन्तान परम्परा के आचार्यों ने वहां पर अनेक बार पधार कर धर्म का प्रचार किया था। वहां से विहार करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणक भूमि की स्पर्शना करते हुए कुरु-पंचाल और कुनाल प्रदेश में पधारे वहां पहले से ही उपकेश गच्छ के बहुत से मुनि गण विहार करते थे आपश्री ने उनके धर्म प्रचार पर खूब प्रसन्नता प्रगट की और कई अर्से तक वहां विहार कर जैन धर्म को खूब बढ़ाया वहां पर आप श्री ने कई मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई कई अजैनो को जैन बनाये और कई महानुभावों को दीक्षा भी दी। बाद वहां से आप ने सिन्ध भूमि की स्पर्शना की तो सिन्ध की जनता के हर्ष एवं आनन्द का पार नहीं रहा उस समय सिन्ध में उपकेश वंशियों की घनी बस्ती थी बहुत से साधु साध्वियां विहार कर उपकेश रूपी बगीचे को धर्मोपदेश रूपी जल का सींचन भी करते थे सूरिजी के पधारने से सर्वत्र आनन्द का समुद्र ही उमड़ उठा था जहां जहां आपके कुंकुंम मय चरण होते थे वहां वहां दर्शनार्थियों का खूब जमघट लग जाता था सब लोग यही चाहते थे एवं प्रार्थना करते थे कि गुरुदेव पहले हमारे नगर को पावन बनावें इत्यादि। सूरिजी ने सिन्धधरा में कई अर्से तक भ्रमण कर कई मन्दिरों की प्रतिष्ठाए करवाई, कई भावकों को दीक्षा दी कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार करते हुए जैनों की संख्या में खूब गहरी वृद्धि की। वहाँ से आचार्य देव कच्छ भूमि की ओर पधारे वहां भी आपश्री के आज्ञावर्ती बहुत से मुनि विहार कर रहे थे प्रायः वहाँ की जनता उपकेशगच्छोपासक ही थी क्योंकि इन प्रान्तों में जैनधर्म के बीज उपकेशगच्छाचार्यों ने ही बोया था इतना ही क्यों पर उपकेशगच्छाचार्य एवं मुनियों ने इन प्रान्तों में बार बार विहार कर धर्मोपदेशरूपी जल से सिंचन कर खूब हराभरा गुलचमन बना दिया कि जैनधर्म रूपी बगीचा सदैव फलाफूला रहता था आचार्यश्री ने अपनी सुधा वारि से वहाँ की जनता को खूब जागृत कर दी थी। कई अर्से तक आपने कच्छ भूमि में विहार कर के जनता पर खूब उपकार किया बाद वहाँ से आपके चरण कमल सौराष्ट्र भूमि में हुए सर्वत्र उपदेश करते हुए आपने तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय तीर्थ के दर्शन एवं यात्रा कर खूब लाभ कमाया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन परमोपकारी पूज्य आचार्य देव का जैन समाज पर कहाँ तक उपकार हुआ है कि जिसको न तो हम जिह्वा द्वारा वर्णन कर सकते हैं और न इस छोटे की तुच्छ लेखनी से लिख भी सकते हैं अर्थात् आपका उपकार अकथनीय हैं।

आचार्य देवगुप्तसूरि के शासन के समय जैन श्रमणों मे एकादशाग के अलावा पूर्वों का भी ज्ञान विद्यमान था। स्वयं आचार्य देवगुप्तसूरि सार्ध दो पूर्व के पाठी एवं मर्मज्ञ थे अतः आपकी सेवा में स्वगच्छ एवं परगच्छ के अनेक ज्ञानपीपासु ज्ञानाध्ययन करने के लिये आया करते थे उनमें आर्य देव वाचक भी एक थे आपकी विनय शीलता और प्रज्ञा से सूरिजी सदैव प्रसन्न रहते थे। सूरिजी की इच्छा थी कि मैं मेरा सब ज्ञान आर्य देववाचक को दे जाऊं पर कुदरत इसमें सहमत नहीं पर [illegible] ही थी जब आर्य देववाचक डेढ पूर्व सार्ध पढ चुके तो उनको थकावट आगई। प्रमाद ने घेर लिया उन्होंने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि पूज्यवर! अब शेष ज्ञान कितना रहा है। इस पर सूरिजी ने कहा कि वाचकजी अब थोड़े रहे क्योंकि इस ज्ञान के लिये एक आप ही पात्र हैं इत्यादि पर वाचकजी अपने धैर्य को [illegible] न रख सके जिसका आचार्यश्री को बड़ा ही दुःख हुआ कि परम्परा से चला आया हुआ एवं [illegible] पूर्व का ज्ञान

पात्र के अभाव से आचार्य अपने साथ ले गये और शेष दो पूर्व का ज्ञान रहा है इसको लेने में भी एक देववाचक के अलावा कोई दीखता नहीं है तब देववाचक का भी यह हाल है तो मैं क्या कर सकता हूँ। इस हालत में आपके हस्तदीक्षित एक मंगलकुम्भ नाम का बड़ा ही प्रभावशाली मुनि था उनको आप एक पूर्व मूल ज्ञान पढ़ा चुके थे पुनः उन मंगलकुम्भ को उसका अर्थ, पढ़ाना प्रारम्भ किया तो देववाचक की आत्मा में ज्ञान की विशेष जिज्ञासा पैदा हुई अतः देववाचक को देडपूर्व सार्थ और आधापूर्व मूल एवं दो पूर्व का अध्ययन करवाया। बाद सूरिजी महाराज विहार करते हुए भरोंच नगर में पधारे तो आपके उपदेश से वहां के श्रीसंघ ने वहां पर एक श्रमण सभा की जिसमें बहुत दूर दूर से श्रमण संघ तथा श्राद्ध वर्ग भरोंच नगर में एकत्रित हुए आये ठीक समय पर सभा हुई आचार्य देवगुप्तसूरि ने आये हुए चतुर्विध श्रीसंघ को शासन हित धर्मप्रचार एवं ज्ञान वृद्धि के लिये खूब ही ओजस्वी वाणी से उपदेश दिया और पूर्वाचार्यों का इतिहास सुनाकर उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव डाला। तदनन्तर चतुर्विध श्रीसंघ की समक्ष मुनि मंगलकुम्भादि ११ मुनियों को उपाध्याय पद, मुनिदेववाचकादि तीन मुनियों को गणिपद के साथ क्षमाश्रमण पद, मुनि देवसुन्दरादि १५ मुनियों को पण्डितपद मुनि आनंदकलसादी १५ मुनियों को गणि एवं गणविच्छेदक पद मुनिसुमतितिलकादि १५ मुनियों को वाचनाचार्य पद से विभूषित कर उनकी योग्यता की कदर कर उत्साह को विशेष बढ़ाया इत्यादि इस सभा से जैन धर्म की उन्नति श्रमण संघ में जागृति और स्वधर्म की रक्षा एवं प्रचार कार्य में अच्छी सफलता मिली तत्पश्चात् भरोंच श्रीसंघने सम्मानपूर्वक श्रीसंघ को विसर्जित किया और सूरिजी के आदेशानुसार पदवीधरों ने भी प्रत्येक प्रान्तों की ओर विहार कर दिया और भरोंचश्री संघ की आग्रह पूर्ण विनंती से आचार्य देवगुप्तसूरि ने भरोंच नगर में चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया। जब सूरिजी ने भरोंच नगर में चतुर्मास किया तो अन्य साधुओं को आस पास के ग्रामनगरों में चतुर्मास की आज्ञादेदी अतः उस प्रान्त में सर्वत्र जैनधर्म का विजय डंका बजने लग गया।

सूरिजी के विराजने से केवल एक भरोंचनगर की जैन जनता को ही लाभ नहीं हुआ पर जैनेतर लोगों को भी बड़ा भारी लाभ मिला आपश्री के मुखारविन्द से तात्विक दार्शनिक अध्यात्म योग समाधि वगैरह अनेक विषयों पर हमेशा व्याख्यान होता था कि जिसको श्रवण कर वहां के राजा एवं प्रजा अपना अहोभाग्य समझते थे और जैनधर्म की मुक्तकण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा करते थे जिस समय आप भरोंच में विराजते थे उस समय वहाँ बोद्धों के भी कई भिक्षु ठहरे हुए थे पर सूरिजी के सूर्य सदृश तप तेज के सामने वे चूँ तक भी नहीं करते थे इतना ही क्यों पर एक विद्वान बौद्ध साधु ने सूरिजी के पास जैन दीक्षा भी स्वीकार करली थी जिसमे बोद्धों में ठीक हलचल मच गई थी। सूरिजी ने जैनधर्म का प्रचार करते हुए भरोंच से विहार कर आवंति प्रदेश में पदार्पण किया तो वहाँ की जनता के हर्ष का पार नहीं रहा उज्जैन माण्डवगढ़, मध्यमिका, महेंद्रपुर, सीलचीपुर, दशपुर होते हुए मेद पाट में पधारे वहां पर भी चित्रकोट नगरी अघाट देवपट्टनादि नगरों में घूमते हुए आप मरुधर में पधारे और अनुक्रमे उपकेशपुर पधार रहे थे उस समय मरुधर वासियों के उत्साह का पार नहीं था उपकेशपुर के श्रीसंघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया सूरिजी ने भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर अपना अहो भाग्य समझा देवी सच्चायिका परोक्षपने आपकी सेवा में हाजर हो वन्दन किया करती थी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती से वह चतुर्मास सूरिजी ने उपकेशपुर में कर दिया जिसमे जनता को बड़ा भारी लाभ मिला और धर्म

 [आचार्य श्री का उपकेशपुर में चतुर्मास

का भी अच्छा उद्योत हुआ। एक समय सूरिजी ने अपने आयुष्य के लिये देवी को पूछा तो देवी ने कहा पूज्यवर ! कहते हुए बड़ा ही दुःख होता है कि आप की आयुष्य पाँच मास और तेरह दिन की रही है आप अपने शिष्य उपाध्याय मंगलकुम्भ को पट्टधर बना कर अन्तिम सलेखना में लग जाइये। सूरिजी ने देवी के वचन को 'तथाऽस्तु' कह कर उपाध्याय मंगलकुम्भ को पद प्रतिष्ठित करने का श्री संघ को सूचित कर दिया कि श्रीसंघ के आदेश से कुमटगौत्रीय शाह वरधा ने सूरिपद के महोत्सव मे पाँच लक्ष द्रव्य खर्च कर उच्छ्रव किया और आचार्यश्री ने चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय मंगलकुम्भ को अपने पट्टधर आचार्य बना कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया तथा उस अवसर पर और भी योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान की। बाद चातुर्मास के वहाँ से विहार कर आप खटकूंप नगर पधार रहे थे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया। विशेषता यह थी कि यह आपके जन्मभूमि का नगर था जनता में बहुत हर्ष एवं उत्साह था सूरिजी अन्तिम सँलेखना तो पहले से ही कर रहे थे पर जब देवी के कथनानुसार आपके आयुष्य के शेष ३२ दिन रहे तो सूरिजी ने चतुर्विध श्री संघ के सामने अनशन करने का कहा जिसको सुन कर संघ के हृदय को बड़ा ही आघात पहुँचा पर काल के सामने वे कर क्या सकते थे आखिर सूरिजी महाराजने आलोचना पूर्वक अनशन कर लिया और समाधि पूर्वक ३२ दिनों के अन्त में पांच परमेष्टी के स्मरण पूर्वक स्वर्ग धाम पधार गये। उस समय सकल श्री संघ मे ही नही पर नगर भर मे शोक के काले बादल छा गये थे श्री संघ ने निरानन्द होते हुए भी सूरिजी के शरीर का संस्कार किया जिस समय आपके शरीर का अग्नि संस्कार प्रारम्भ हुआ उस समय आकाश से केसर के रंग का थोड़ा थोड़ा बरसाद हुआ था तथा चिता पर कुछ पुष्प भी गिरे जिसकी सौरभ वायु से मिश्रित हो चारों और फैल गई थी श्री संघ के दुःख निवारणार्थ अदृश्य रहकर देवी ने कहा कि आचार्य देवगुप्त सूरि महान् प्रभावशाली हुए हैं आप सौधर्म देवलोक के सुदर्शन विमान मे पधारे और एकभव करके मोक्ष पधार जायँगे। जिसको सुनकर श्रीसंघ में बड़ा ही आनन्द मनाया गया और आपके अग्निसंस्कार के स्थान एक सुन्दर बहुमूल्य स्तम्भ बनाया गया जो आपके गुणो की स्मृति करवा रहा था—

सूरीश्वरजी के शासन मे भावुको की दीक्षाएँ

१—खटकूंपनगर	के	बाप्पनाग गो०	शाह	भाला ने	सूरि०	दीक्षा
२—राहोप	के	श्रेष्ठि गो०	,,	रामा ने	,,	,,
३—रोहीग्राम	के	भूरि गो०	,,	काना ने	,,	,,
४—सिन्धोड़ी	के	भूरि गो०	,,	करण ने	,,	,,
५—कुम्पपुर	के	कुमट गो०	,,	फुलह ने	,,	,,
६—गिलणी	के	कनोजिये०	,,	रतराने	,,	,,
७—कुनकपुर	के	चोरड़िया०	,,	फुरा ने	,,	,,
८—नागपुर	के	लाटा गो०	,,	देदा ने	,,	,,
९—नेवारी	के	मोलेचा०	,,	लला ने	,,	,,
१०—पद्मावती	के	करनाट गो०	,,	गेदा ने	,,	,,

११—राजोली	के	बाप्पनाग०	शाह	रावल ने	सूरि	दीक्षा
१२—रूणावती	के	सुचंति गौ०	,,	रामा ने	,,	,,
१३—मेदनीपुर	के	विरहट गौ०	,,	रांणा ने	,,	,,
१४—जोगणीपुर	के	श्रेष्टि गौ०	,,	सारंग ने	,,	,,
१५—विराटपुर	के	कुलभद्र गौ०	,,	सरवण ने	,,	,,
१६—गोवीन्दपुर	के	श्री श्रीमाल	,,	संगण ने	,,	,,
१७—चन्द्रावती	के	आदित्यनाग०	,,	साधु ने	,,	,,
१८—शिवपुरी	के	चोरड़िया०	,,	मोटा ने	,,	,,
१९—पाल्हिका	के	भाद्र गौ०	,,	मेकरण ने	,,	,,
२०—स्तम्भनपुर	के	करणाट गौ०	,,	माल्ला ने	,,	,,
२१—भरोंच	के	लुंग गौ०	,,	लाखण ने	,,	,,
२२—वर्द्धमानपुर	के	लुंग गौ०	,,	लाला ने	,,	,,
२३—राजपुर	के	मल्ल गौ०	,,	करमण ने	,,	,,
२४—करणावती	के	सुघड़ गौ०	,,	धन्ना ने	,,	,,
२५—सोपारपट्टन	के	लघुश्रेष्टि	,,	सालग ने	,,	,,
२६—भद्रपुर	के	डिड्डू गौ०	,,	घंघल ने	,,	,,
२७—भोजपुर	के	प्राग्वटवंशी	,,	धूरड़ ने	,,	,,
२८—खरखोट	के	,, ,,	,,	हाबर ने	,,	,,
२९—वीरपुर	के	,, ,,	,,	हाल्हण ने	,,	,,
३०—हापी	के	,, ,,	,,	फागुं ने	,,	,,
३१—हामरेल	के	श्रीमाल वंशी	,,	आखा ने	,,	,,
३२—नरवर	के	,, ,,	,,	वागा ने	,,	,,
३३—मारोटकेट	के	श्रीश्रीमाल गौ०	,,	मूवा ने	,,	,,

उपकेशवंश एवं महाजन संघ के अलावा भी कई प्रान्तों में सूरिजी एवं आपके शिष्य समुदाय के पास पुरुष एवं स्त्रियों ने गहरी तादाद में दीक्षा ली थी यही कारण है कि आपके शासन में हजारों साधु साध्वियाँ अनेक प्रान्तों में विहार कर रहे थे।

आचार्य देव के शासन में तीर्थों के संघादिसद् कार्य—

१—माडव्यपुर	से	डिड्डूगौत्री शाह	कालिया ने	श्रीशत्रुंजय का	संघ निकाला
२—मेदनीपुर	मे	करणाटगौत्री शाह	पुनड़ने	,,	,,
३—रूणावती	से	चिंचटगौत्री शाह	गुणपाल ने	,,	,,
४—डिड्डूपुर	मे	बलाहगौत्री शाह	मुलना ने	,,	,,
५—कनवृद्धि	मे	चाड़गौत्री शाह	नारा ने	,,	,,

६—देवपट्टन से लुंगगौत्री शाह धरमण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला
७—आघाट नगर से श्रेष्ठिगौत्री शाह फूवा ने " "
८—दशपुर से बालनाग० शाह लाखण ने " "
९—चन्देरी से बलादगौ० शाह भीमदेव ने " "
१०—हासारी से सुचंती गौ शाह पूर्ण ने " "
११—वीरपुर से मोरक्ष गौ० शाह मुकुन्द ने " "
१२—कीराटकूंप से कुमट गौ० शाह नागदेव ने " "
१३—सोपारपट्टन से सुचंती गौ० शाह खेतसी ने " "
१४—मथुरा से श्रीश्रीमाल गौ० शाह सहरण ने " "
१५—सजनपुर से प्राग्वट वंशी शाह गोकल ने " "
१६—गगनपुर से प्राग्वट वंशी शाह खीमसी ने " "
१७—सोनपुरा से श्रीमाल वंशी शाह नाथा ने " "
१८—उपकेशपुर से भाद्र गौत्रीय शाह नारायणने " "
१९—हर्षपुर का कुलचन्द्रगौत्री मंत्री लाला युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
२०—क्षत्रीपुर का श्रेष्ठि गौत्री मंत्री कानड़ " " " "
२१—राजपुर का मल्ल गौत्री शाह खुमाण " " " "
२२—चन्द्रावती का प्राग्वट वंशी राजसी " " " "
२३—उपकेशपुर का बलाह गौत्री शाह राघो " " " "
२४—नारदपुरी का प्राग्वटवंशी शाह जुजार " " " "
२५—शिवगढ़ का श्रेष्ठि गौत्री सलखण " " " "
२६—नागपुर का अदित्यनाग--मंत्री दूपा की स्त्री रेवती ने तलाब खुदाया
२७—विजयपुर का सुचति शाह वीरम की विधवा पुत्री ने तलाब खुदाया

इत्यादि जनोपयोगी कार्यों में जैन श्रावको ने लाखों करोड़ों रुपये खर्च कर देश सेवा की जिनका उपकार कभी भूला नहीं जा सकता है।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—शाकम्भरी नगरी के डिडूगौत्री शाह रूपा के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई
२—हसावली नगरी के बाप्पनाग० " माल्हा के " महावीर " "
३—पद्मावती नगरी के श्रेष्टि गौ० " खेमा के " " " "
४—रूपनेर के आदित्यनाग गौ० " देवल के " " " "
५—हरनाई के चरड़ गौत्रीय " गोपाल के " " " "
६—धोलापुर के लुंग गौत्रीय " सांखला के " पार्श्व " "
७—चन्द्रपुर के बाप्पनाग गौ० " त्रिभुवन के " " " "

८—लासोड़ी के नाहटा जाति	शाह	पाता के	बनाये	मन्दिर	की प्रतिष्ठा	कराई
९—रूणावती के गोलेचा जाति	,,	पेथा के	,,	आदि०	,,	,,
१०—दादोवी के रांका जाति	,,	ठाकुरसी के	,,	शान्ति०	,,	,,
११—पोतनपुर के भद्रगौत्रीय	,,	खीवसी के	,,	नेमिनाथ	,,	,,
१२—खीखोड़ी के भूरिगौत्रीय	,,	राजड़ा के	,,	महावीर	,,	,,
१३—उच्चकोट के कुमटगौत्रीय	,,	भादू के	,,	,,	,,	,,
१४—चणोट के करणाट गौ०	,,	जिनदेव के	,,	पार्श्व	,,	,,
१५—कालोड़ी के सुचंति गौ०	,,	नानग के	,,	,,	,,	,,
१६—नागपुर के डिडू गौत्री०	,,	पोलाक के	,,	चन्द्रप्रभ	,,	,,
१७—उपकेशपुर के श्रेष्ठिगौत्री०	,,	हरपाल के	,,	वासुपूज्य	,,	,,
१८—देवपट्टन के भाद्रगोत्रीय	,,	भादु के	,,	अजित	,,	,,
१९—आघाट के तप्तभट्ट गो०	,,	ऊंकार के	,,	महावीर	,,	,,
२०—श्रीनगर के प्राग्वट गौ०	,,	पारस के	,,	,,	,,	,,
२१—शालीपुर के प्राग्वट गौत्री	,,	आनन्द के	,,	,,	,,	,,
२२—जागोड़ा के श्री श्रीमाल गौ०	,,	आखा के	,,	श्री सीमंधर	,,	,,
२३—नेनापुर के श्रेष्ठिगौत्री	,,	चिचगदेव	,,	नन्दीश्वर पर	,,	,,
२४—पोलीसा के पोकरणा जाति	,,	फूलाणी के	,,	महावीर	,,	,,

इत्यादि यह तो केवल नाममात्र वंशावलियों पट्टावलियों से ही लिखा है पर उस जमाने के जैनियों की मन्दिर मूर्तियों पर इतनी श्रद्धा भक्ति और पूज्य भाव था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिन्दगी में छोटा बड़ा एक दो मन्दिर बना कर दर्शन पर की आराधना अवश्य किया करता था यही कारण था कि उस समय उच्च २ शेखर और सुवर्णमय दंड कलस वाले मन्दिरो से भारत की भूमि सदैव स्वर्ग सदृश चमक रही थी।

आचार्य देवगुप्तसूरि एक महान् युगप्रवर्त्तक युगप्रधान आचार्य हुए हैं इन्होंने ४० वर्ष के शासन में जो शासन के कार्य किये हैं उनको बृहस्पति भी कहने में समर्थ नहीं है। यह कहना भी अतिशय युक्ति पूर्ण न होगा कि उस विकट परिस्थिति में जैनाचार्यों ने जैन धर्म को जीवित रखा था कि आज हम सुख-पूर्वक जैन धर्म की आराधना कर रहे हैं ऐसे महान् उपकारी आचार्यों का जितना हम उपकार माने थोड़ा है मैं तो ऐसे महापुरुषों को हार्दिक कोटि कोटि वार धन्यवाद देता हूँ एवं वन्दन करता हूँ।

चौंतीसवें पट्टधर देवगुप्तसूरि, सूरि सूरिगुण भूरि थे।
पूर्वधर थे ज्ञान दान में कीर्ति कुवेर सम पूरि थे॥
देववाचक को दो पूर्व दे पद क्षमाश्रमण प्रदान किया।
करके आगम पुस्तकारूढ़, जैन धर्म को जीवन दिया॥

इतिश्री भगवान् पार्श्वनाथ के ३४वें पट्ट पर आचार्य देवगुप्त सूरि महा प्रभावी आचार्य हुए।

३५—आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी (षष्ठम्)

सिद्धाचार्य इहाभवद्विरहटे गौत्रे सुशोभायुत : ।
सम्मेतं विदधौ धनेन शिखिरं संघं तु कोट्यासुधीः ॥
निर्वाणालय नाके चम विहितो दीक्षायुतो यःस्वयं ।
नित्यं जैनमतं प्रचार्य बहुधा ख्यातोऽसकौ जातवान् ॥

चार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक प्रभावोत्पादक सिद्धपुरुष आचार्य थे आपश्री अपने कार्य मे बड़ेही सिद्धहस्त एवं जैनधर्म के प्रखर प्रचारक थे। आपश्री वर्तमान जैन साहित्य एव व्याकरण न्याय तर्क छन्द काव्य अलङ्कार ज्योतिष गणित और अष्टमहानिमित के पारगत थे आसन योग समाधी एवं स्वरोदय तथा अनेक विद्या लब्धियों को आपने हस्तामलक की तरह कर रक्खी थी। आपश्रीजी जैसे ज्ञानके समुद्र थे वैसे ही ज्ञानदान करने में धनकुबेर भी थे यही कारण था कि स्वगच्छ परगच्छ के अलावे बहुत से जैनेतर विद्वान भी आपश्री की सेवा में रहकर रुचि पूर्वक ज्ञानाध्ययन किया करते थे। शास्त्रार्थ मे तो आपश्रीजी इतने निपुण थे कि कई राजा महाराजाओं की सभाओं में वादियों को परास्त कर ऐसी धाक जमादीथी कि वे सिद्धसूरि का नाम श्रवणमात्र से दूरदूर भागते थे। आपके पूर्वजों से स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन चलाने मे तो आप चतुर ड्राइवर का ही काम करते थे, आपश्री का विहार क्षेत्र इतना विशाल था कि प्रत्येक प्रान्त मे आपका विहार हुआ करता था आपने अनेक भावुकों को दीक्षा दी लाखों मांसमदिरा सेवियों को जैनधर्म मे दीक्षित किये और भविष्य की प्रजा के लिये कई ग्रन्थों की रचनाएं भी आपश्री ने की आचार्य सिद्धसूरि अपने समय के एक युगप्रवर्तक आचार्य हुए है आपका पुनीत जीवन पूर्णरहस्यमय एवं जनकल्याणार्थ ही हुआ था पट्टावलीकारो ने आपश्री का जीवन खूब विस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से मै यहां पर केवल आपश्री के जीवन का संक्षिप्त दिग्दर्शन करवा देता हूँ।

भारत के विभूति रूप वीरप्रसूत मेदपाट भूमि के भूषण चित्रकोट नामका रम्य एव विशाल नगर था कवियों ने तो यहां तक ओपमा दे डाली है कि चित्रकोट सदैव स्वर्ग की ही स्पर्धा करता था परन्तु जहाँ अनेक प्रकार का रसवती-खाद्यपदार्थ पैदा होता हो व्यापार का केन्द्र हो और जहाँ के निवासी पर द्रव्यहरण करने में पंगु, पर रमणी देखने मे प्रज्ञाचक्षु, पर निंदा करने मे मूक और पर अवगुण सुनने में बेहरे हो वहाँ स्वर्ग क्या अधिकताइ रखता है कारण स्वर्ग में इन सब बातो का [illegible] है [illegible] स्वर्ग क्याही कर सके ? वहां के प्रजा जन स्वच्छे, निरोग्य, उद्योगी एवं [illegible] जीवन [illegible] से व्यतीत कर रहे थे चित्रकोट की जनता के कल्याण के लिये [illegible] मन्दिर थे उनकी सेवा पूजा भक्ति करने वाले हजारों [illegible] कई राज्य के मंत्री महामंत्री सेनापति वगैरह पद प्रतिष्ठित [illegible]

भारत में ही नहीं पर पाश्चात्य प्रदेशों में यथ्थावद्ध चलता था और उसमें वे पुष्कलद्रव्योपार्जन करते थे यही कारण है कि वे एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य लगाकर जैनधर्म की वृद्धि एवं प्रभावना किया करते थे उन व्यापारियों में विरहट गौत्री दिवाकर शाहा ऊमा भी एक था आपका व्यवसाय वहुत विशाल था आप के १२ पुत्र और ८ पुत्रियां तथा और भी वहुतसा कुटम्ब परिवार था आपका व्यापार भारत के अलावा पाश्चात्य प्रदेशों में भी था कई द्वीपोंमें तो आपकी दुकानें भी थी अर्थात शाह ऊमा एक प्रसिद्ध पुरुष था शाह ऊमाके गृहदेवी का नाम था नाथी शाहऊमाके १२ पुत्रों में एक सारंग नाम का पुत्र बड़ाही भाग्यशाली एवं होनहार था सारंग व्यापारार्थ कई वार विदेशों की मुसाफरी कर आया था और उसने करोड़ों रुपये व्यापार में पैदा भी किये था एकबार सारंगने जहाजों में करोड़ों रुपयो का माल लेकर विदेशमें जाने के लिये प्रस्थान करदिया जब उनकी जहाज समुद्र के बीचआई तो एक दम समुद्र तूफान पर आगया सारंगने सोचाकी वायु वगैरह का कोई भी कारण नहीं फिर यह उपद्रव क्यो हो रहा है ? सारंग अपने धर्म में खूबदृढ़ श्रद्धावाला था देव गुरु धर्म पर उसका पूर्ण विश्वास था देवी सच्चायिका का आपको इष्ट भी था जहाजों के सब लोग घबराने लगे और वे चल कर सारंग के पास आये सारंग ने उन अधीर लोगों कों धैर्य दिलाते हुए कहा महानुभावों! आप जानते हो कि "जं जं भगवयाद्दीट्ठा तं तं पणमिसन्ति" इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो जो भगवान ने भाव देखा है वह तो हुए विगर नहीं रहेगा फिर सोच फिक्र करने से क्या होने वाला है व्यर्थ आर्तध्यानकर कर्म क्यों बांधा जाय। जहाज के लोगों ने अपने अपने पिच्छे रहे हुए धन कुटम्ब की चिन्ता का हाल सारंग को सुनाया। सारंग ने उन सब को पुनः धैर्य दिलाया और कहाकि'जो होता है वह अच्छे के लिये होता है" किसी ने कहा सेठ साहिब आपका कहना भले ठीक हो परन्तु केवल निश्चय पर वैठ जाने से ही काम नहीं चलता है पर साथ में उद्यम भी तो करना चाहिये। सारंग ने कहा कि उद्यम भी तो निश्चय के पीछे ही होता है मैं ठीक कहता हूँ कि "जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है" लीजिये मैं आपको एक उदाहरण सुनाता हूँ वसंतपुर नगर के राजा जयशत्रु की किसी समय हाथ की एक अंगुली कटगई जिसके लिये राज सभा के लोगों ने वहुत फिक्र किया परन्तु राजाके एक शुभचिन्तक मंत्री के मुंहमे सहसा निकल गयाकि "जो होता है वह अच्छे के लिये" सौ सज्जनों में एक दो दुर्जन भी मिल जाते हैं अतः एक दुर्जन ने राजा से कहा कि आपकी अंगुली कटजाने का सबको दुःख है पर आपके शुभचिन्तक मंत्री को थोड़ा भी दुःख नहीं हुआ है इतना ही क्योंपर मंत्री तो आपकी अंगुली कटने को अच्छा वतलाता है इस पर राजा मंत्री पर नाराज हो गया किन्तु राजा के हृदय में मत्री के लिये इतना स्थान अवश्य था कि मंत्री ज्ञानी है शास्त्रों का जानकार एवं धर्मीष्ट है अतः वह मंत्री को कुच्छ भी नही कहसका। एक समय राजा एवं मंत्री जंगल की ओर हवा खोरी के लिये गये पर वे एक उजाड़ में जा पड़े तो राजाको प्यास लगी मंत्री राजा को एक झाड़ की शीतल छाया में बैठाकर आप पानी लेने को गया। भाग्यवशात् उस ही दिन देवी की कमल पूजा थी क्रूर लोग एक बत्तीस लक्षण वाले पुरुष की खोज में घूम रहे थे वे चलते चलते राजा के पास आये और राजा की सूरत देख निश्चय कर लिया कि यह बत्तीस लक्षण वाला पुरुष देवी को बलि देने योग्य है बस पातकी लोग राजा को पकड़ कर देवी के मन्दिर पर ले आये उस जंगल में सैकड़ों निर्दय दैत्यों के सामने राजा कर भी तो क्या सकता था? परन्तु पिच्छे से मंत्री ने आकर देखा तो राजा नहीं उसने उत्पातिक बुद्धि से सब हाल जान लिया उसने तुरंत ही वेश छोड़ कर एक भीलसा रूप बना कर देवी के मन्दिर में चला गया और

इन घातकी लोगों के साथ मिल गया। जब देवी के सामने राजा की बलि देने की तैयारी हुई तो सैना के वेश वाले मंत्री ने कहा कि जिसकी बलि दी जाती है उस के सब अंगोपाग तो देख लिये हैं या नहीं ? यदि कोई अंगोपांग खण्डित हुआ तो देवी कोप कर सब को मार डालेगी। बस इतना सुनकर राजा का शरीर देखने लगे तो उसकी एक अंगुली कटी हुई पाई तब सबने कहा कि इस खण्डित पुरुष की बलि देवीको नहीं दी जा सकती है इसको जल्दी से निकाल दो। बस फिर तो क्या देरी थी राजा को शीघ्र ही हटा दिया। जब राजा अपनी जान बचाने की गरज से देवी के मन्दिर से चूपचाप चल पड़ा तथा अवसर का जान मंत्री भी किसी बहाने से वहाँ से निकल गया और आगे चल कर वे दोनों मिल गये। राजाने कहा मंत्री तू ने आज मेरी जान बचाई है। मंत्री ने कहा नहीं हजूर 'जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है' राजाकी अकल ठीकाने आगई और नगर में आकर मंत्री को एकलक्ष सुवर्णमुद्रिका इनाम में दी। ठीक है दुखी लोगों का समय ऐसी बातों में ही व्यतीत होता है। सारंग ने कहा महानुभावों! आप ठीक समझ लीजिये कि 'जो होता है वह अच्छा के लिये है' इस पर आप विश्वास रक्खें यह आपकी—कसौटी-परीक्षा का समय है। जहाज के सब लोगों ने सारंग के कहने पर विश्वास कर लिया और यह देखने की उत्कण्ठा लगने लगी कि देखें क्या होता है ?—

थोड़ी देर हुई कि उपद्रव ने और भी जोर पकड़ा अब तो लोग विशेष घबराये। सारंग ने सोचा कि धन्य है संसार त्यागियों-साधुओं को कि जो संसार की तृष्णा त्यागकर व दीक्षा लेकर अपना कल्याण कर रहे है। यदि मैं भी दीक्षा ले लेता तो इस प्रकार का अनुभव मुझे क्यों करना पड़ता यद्यपि मुझे तो इस उपद्रव से कोई नुकसान नहीं है कारण यदि इस उपद्रव में धन या शरीर का नाश हो भी जाय तो यह मेरी निजी वस्तु नहीं है तथा इनका एक दिन नाश होना ही है परन्तु बिचारे जहाज के लोग जो मेरे विश्वास पर आये हैं; आर्तध्यान कर कर्मोपार्जन कर रहे है यद्यपि इस प्रकार के आर्तध्यान से होना करना कुछ भी नहीं है पर अभी इनको इतना ज्ञान नहीं है। खैर मेरा कर्तव्य है कि मैं इनको ठीक समझाऊँ। अतः सारंग ने इन लोगों को संसार की असारता एवं उपद्रव के समय मजबूती रखने के बारे में बहुत समझाया पर विपत्ति में धैर्य रखना भी तो बड़ा ही मुश्किल का काम है इतना ही क्यों पर इस विकटावस्था को देख सूर्यनारायण भी अस्ताचल की ओर शीघ्र पलायन करगया जब एक ओर तो रात्रि के समय अन्धकार ने अपना साम्राज्य चारो ओर फैला दिया तब दूसरी ओर जहाजो का कम्पना एवं चारों ओर गोता लगाना तीसरी ओर किसी अधार्मिक देव का अट्टहास्य करना इत्यादि की भयंकरता से सबके कलेजे कांपने लग गये जब लोगों ने प्रार्थना की कि यदि कोई देव दानव हो तो हम उनके हुक्म उठाने को तैयार हैं ? इस पर देव ने कहा कि तुम लोगों ने जहाजो को चलाया परन्तु प्रस्थान के समय हमारे बह बाकुल नहीं दिया है अतः तुम्हारी किसी की कुशल नहीं है अब तो सब लोग सारंग के पास आये और बलि देने की प्रार्थना की इस पर सारंग ने कहा हम अनेक बार जहाज को लाये और लेगये पर बलि कभी नहीं दी और अब भी नहीं दी जायगी हाँ जिसको बलि की आवश्यकता हो वह हमारे शरीर की बलि ले सकता है देव ने कहा तुम अनेक बार जहाजो को लाये होंगे पर इस रास्ते में जो कोई जहाजो को लाता या लेजाता है वह बिना बलि दिये कुशल नहीं जाता है अतः अब भी समय है यदि तुम कुशल रहना चाहते हो तो बलि चढ़ादो। जहाज के लोगों ने कहा सारंग! यदि एक जीव की बलि के बदले सब जहाज के लोग सुखी होते हों तो आपको हट नहीं करना चाहिये और इस बारे में आप लोगों के पाप लगने का भय हो तो

वह सब पाप हमको लगेगा आप बलि देकर हम सबको सुखी बनाइयें। सारंग ने कहा कि आपको अभी न तो तात्विक ज्ञान है और न पाप पुन्य का भी भान है। आपतो केवल अपना स्वार्थ करना ही जानते हैं भला मैं आपसे ही पूछता हूँ कि आपके अन्दर से अपने प्राणों की बलि देने को कौन २ तय्यार हैं ? बस सबने मुंह-मोड़ लिया। सारंग ने कहा देखिये जैसे आपको अपने प्राण प्रिय हैं वैसे ही सब जीवों के प्राण उनको भी प्रिय है भला केवल अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये दूसरों के प्राण नष्ट कर देना कितना अन्याय है इस प्रकार बातें हो रही थी इतने में तो देव हाथ में तलवार लेकर सारंग के पास आया और कहा कि—अरे मेरी आज्ञा का भंग करने वाला सारंग ! बोल तेरा कितना खण्ड करूं ? और तेरे जहाज को अभी समुद्र में डुबा दूंगा, इत्यादि भयंकर शब्दों से सारंग पर जोरों से आक्रमण किया। सारंग ने कहा कि मेरा खंडखंड करदे इसका तो मुझे तनिक भी रंज नहीं है पर देव ! आपकी मुझे बड़ी दया आ रही है कि पूर्व जन्म में तो बहुत जीवों को आराम पहुँचाया है कि जिस पुन्य से तुमने देवयोनि को प्राप्त की है और इस देवयोनि में इस प्रकार क्रूर कर्म करते हो तो इससे न जाने आपकी क्या गति होगी ? मैं जानता हूँ कि देव दानव इस प्रकार न तो बलि लेते हैं और न ऐसे घृणित पदार्थ देवताओं के काम ही आते हैं फिर समझ में नहीं आता है कि यह निरर्थक कर्म क्यों बान्धा जाता है इत्यादि मार्मिक शब्दों में ऐसा उपदेश दिया कि जिससे देव का भ्रम दूर हो गया और उसने कहा सारंग ! मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं किसी जीव की बलि नहीं लूंगा और आज से मैं आपको अपना गुरु समझूंगा। कृपा कर आप मुझे ऐसा कार्य फरमावें मैं उसको करके आपके उपकार रूपी ऋण को थोड़ा हलका कर दूं। सारंग ने कहा देव ! आप स्वयं ज्ञानवान हैं फिर भी आप ने बलि न लेने की प्रतिज्ञा की है यह हमारा बड़ा से बड़ा काम किया है दूसरा तो मेरे निज के लिये कुच्छ भी ऐसा काम नहीं है कि आपसे करवाया जाय। तथापि देवता ने कृतार्थ बनने के लिये एक दिव्य हार सारंग को दे दिया और कहा सारंग इस हार के प्रभाव से जहाज समुद्र में डुबेगा नहीं, चोर पास में आवेगा नहीं, और संग्राम में कभी पराजित होगा नहीं बाद देवता सारंग को नमस्कार कर के चला गया। जहाज वाले सब लोग सारंग की दृढ़ता से उसकी विजय को देख मुग्ध बन गये और सारंग के चरणों में नमन कर के उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। सारंग ने कहा कि आप लोग भी अपने धर्म पर इसी प्रकार दृढ़ता रखा करो कारण सब पदार्थ मिलते हैं पर एक धर्म मिलना मुश्किल है इत्यादि उपसर्ग शान्त होने के बाद जहाजें चली सब लोग इच्छित स्थान पर पहुँच गये उन जहाजों के माल विक्रय से सारंग एवं अन्य व्यापारियों को बहुत मुनाफा रहा और सकुशल सब लोग अपने नगर को पहुँच गये—एवं सुख मे रहने लगे।

आचार्य देवगुप्तसूरि धर्मोपदेश करते हुए एक समय चित्रकोट की ओर पधार रहे थे वहां के श्री संघ को खबर मिली तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा क्रमशः श्रीसंघ की ओर से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव किया गया सूरिजी ने मंगलाचरण के बाद थोड़ी पर सार गर्भित देशना दी शाह ऊमा एवं सारंग वगैरह तो सूरिजी की सेवा में रह कर अपना कल्याण सम्पादन करने लगे एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता लक्ष्मी की चंचलता कुटम्ब की स्वार्थता आयुष्य की अस्थिरता और शरीर की क्षण भंगुरता पर बड़ा ही प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। साथ में यह भी बतलाया कि महानुभावों ! आत्म कल्याण के लिये जो इस समय सामग्री मिली है वह बार बार मिलनी बहुत कठिन है। यदि उत्तम सामग्री

के होते हुए भी आत्महित न किया जाय तो लोहावनियें की भांति पश्चाताप करना पड़ेगा अतः समय जा रहा है जिस किसी को चेतना हो चेत लो हम लोग पुकार पुकार के कह रहे हैं इत्यादि। यों तो सूरिजी के उपदेश का बहुत भावुको पर असर हुआ पर विशेष शाह ऊमा के पुत्र सारंग पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि संसार से विरक्त हो सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेने का उसने निश्चय कर लिया। इधर शाह ऊमा को भी वैराग्य हो आया पर जब उसने कुटुम्ब की ओर दृष्टि डाली तो उसको मोह राजा के दूतों ने घार लिया। खैर व्याख्यान समाप्त होने पर सब लोग चले गये। सारंग भी अपने घर पर आया और अपने माता-पिता से कहा कि मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है यह देवदत्त हार वगैरह सब संभाले। ऊमा की आत्मा में पुनः वैराग्य की ज्योति जाग उठी और उसने कहा सारंग! मैं दीक्षा लूंगा तूं घर में रह कर कुटुम्ब का पालन कर ? सारंग ने कहा पूज्य पिताजी! बहुत खुशी की बात है कि आप दीक्षा ले रहे हैं पर मेरा भी तो कर्त्तव्य है कि मैं आपकी सेवा मे रहूँ। तथा आप कुटुंब का फिक्र क्यों करते हो सब जीव अपने-अपने पुन्य साथ में लेकर ही आये हैं इनके लिये आपका मोह व्यर्थ है आप तो दीक्षा लेकर अपना कल्याण करे। बस शाह ऊमा और सारंग ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया इस बात की खबर कुटुम्ब वालों को मिली तो वे कब चाहते थे कि शाह ऊमा एवं सारंग जैसे हमको तथा हमारे सब कार्यों को छोड़ कर दीक्षा लेलें। सेठानीजी ने अपने पति एवं पुत्र को समझाने की बहुत कोशिश की पर जिन्होंने ज्ञान दृष्टि से संसार को कारागृह जान लिया हो वे कब इस संसार रूपी जाल में फंस कर अपना अहित कर सकते हैं, आखिर शाह ऊमा के चार पुत्र और स्त्री दीक्षा लेने को तैयार हो गये इतना ही क्यों पर कई २७ नर-नारी और भी दीक्षा के लिये उम्मेदवार बन गये शाह ऊमा के पुत्र ने लाखों का द्रव्य व्यय कर दीक्षा का बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया और शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में सारंगादि ४२ नर-नारी को भगवती जैन दीक्षा देकर उन सबका उद्धार किया और सारंग का नाम मुनि शेखरप्रभ रख दिया इस प्रभावशाली कार्य से जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई और इस प्रभावना का प्रभाव कई जैनेतर जनता पर भी हुआ कि बहुत से लोगो ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया उन सबको महाजन संघ में सम्मिलित कर दिया। अहा-हा वह कैसा जमाना था कि जैनाचार्य जिस प्रान्त मे पदार्पण करते उसी प्रान्त में जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत होता था जैनेतरो को जैन बनाना तो उनके गुरु परम्परा ही मे चला आ रहा था यही कारण है कि महाजन संघ की संख्या लाखो की थी वह करोड़ो तक पहुँच गई थी और श्रमण संघ की संख्या भी बढ़ती गई कि कोई भी प्रांत ऐसा नहीं रहा कि जहाँ जैनश्रमणो का विहार नहीं होता हो क्या आज के सूरीश्वर इस बात को समझेंगे ?

जिस समय शाह ऊमा और सारंग गृहस्थ वास में थे उस समय उनकी इच्छा श्रीसम्मेतशिखरजी का संघ निकाल यात्रा करने की थी परन्तु सूरिजी के उपदेश से उन्होंने वैराग्य की धुन में दीक्षा ले ली फिरभी आपके दिल में यात्रा करने की उत्कंठता ज्यों की त्यों [illegible] रही थी शाह ऊमा ने दीक्षा ली तो उनका नाम उत्तमविजय रक्खा गया था उसने अपने पुत्र पुनड़ को उपदेश दिया और उसने बड़ी खुशी के साथ सम्मेत शिखरजी का संघ निकालना अपना अहोभाग्य समझ कर स्वीकार कर लिया इस [illegible] करना ही क्या था ? शाह पुनड़ बड़ा ही उदार दिल वाला था उसने [illegible] लेकर संघ आमन्त्रण की पत्रिकाएँ दूर दूर-दूर भिजवादी पट्टावलीकार लिखते हैं कि शाह पुनड़ [illegible]

में करीब डेढ़ लक्ष यात्री, एकवीस हस्ती, तीन राजा, और चार हजार साधु-साध्वियें थीं शाह पुनड़ ने इस संघ के निमित्त एक करोड़ द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की उन्नति के साथ आत्म कल्याण किया संघ सानंद यात्रा कर वापिस लौट आया और आचार्य देवगुप्तसूरि ने श्री सम्मेतशिखर की यात्रा कर अपने मुनियों के साथ पूर्व बंगाल कलिंग में कई अर्से तक विहार किया जिससे जैनधर्म का प्रचार हुआ और कई बौद्धों को जैनधर्म की दीक्षा भी दी ।

मुनि शेखरप्रभ ने सूरिजी की सेवा में रहकर वर्तमान साहित्य का गहरा अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आप सर्वगुण सम्पन्न हो गये यही कारण है कि आचार्य देवगुप्तसूरि भू भ्रमण करते हुए मथुरा में पधारे और वहां देवी सच्चायिका की सम्मति से एवं वहां के श्रीसंघ के अति आग्रह से मुनि शेखरप्रभ को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया ।

आचार्य सिद्धसूरि एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए आपके शासन समय में जैनधर्म अच्छी उन्नति पर था जैनों की संख्या भी करोड़ों की थी विशेषता यह थी कि आपके आज्ञावर्ती हजारों साधु-साध्वियें अनेक प्रान्तो में विहार कर धर्म-प्रचार बढ़ा रहे थे ऐसा प्रान्त शायद ही बचा हो कि जहाँ जैन साधु साध्वियों का विहार न होता हो । दूसरा उस समय के आचार्यों एवं साधुओं में गच्छभेद मतभेद क्रियाभेद भी नहीं था और किसी का लक्ष भेदभाव की ओर भी नहीं था वे आपस में मिल-जुल कर धर्म प्रचार को बढ़ा रहे थे वादियों को परास्त करने में वे सबके सब एक ही थे यही कारण है कि ऐसी विकट परिस्थिति में भी जैनधर्म जीवित रहकर गर्जना कर रहा था उस समय उपकेशगच्छाचार्यों का विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत था मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पंजाब शूरसेन पंचाल मत्स्य बुलंदखण्ड आवंती और मेदपाट तक उपकेशगच्छीय साधुओं का विहार होता था कभी-कभी महाराष्ट्र तिलंग विदर्भ और पूर्व तक भी उपकेशगच्छाचार्य विहार किया करते थे तब वीर सन्तानियों का विहार आवंती सौराष्ट्र मेदपाट मरुधर वगैरह प्रदेशों में होता था और कोरंटगच्छाचार्यों का विहार आबू के आस-पास का प्रदेश और कभी-कभी मथुरा तक भी होता था बहुत बार इन साधुओं की आपस में भेंट होती और परस्पर शामिल भी रहते थे परन्तु जनता यह नहीं जान पाती कि ये पृथक २ समुदाय के साधु हैं कारण उनके बारह ही संभोग शामिल थे विनय भक्ति का व्यवहार तो इतना उत्तम था कि पृथक् पृथक् आचार्यों के शिष्य होने पर भी वे एक गुरु के शिष्य ही दीख पड़ते थे ठीक है जिस गच्छ समुदाय व्यक्ति के उदय के दिन आते हैं तब ऐसा ही सम्प ऐक्यता रहती है ।

आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज धर्मप्रचार करते हुए एक समय चन्द्रावती की ओर पधार रहे थे यह संवाद वहां के श्रीसंघ को मिला तो उनके उत्साह का पार नहीं रहा अतः उन्होंने सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़े ही समारोह से महोत्सव किया सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर सारगर्भित देशना दी जिसका जनता पर काफी प्रभाव हुआ इस प्रकार सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था चन्द्रावती नगरी में एक सालग नामका अपार सम्पति का मालिक व्यापारी सेठ रहता था वह था वैदिकधर्मानुयायी । उसको ऐसी शिक्षा मिलती थी कि जैन धर्म नास्तिक धर्म है वैदिकधर्म की जड़ उखाड़ने में कट्टर है अतः जैनों की संगत करना भी नरक का मेहमान बनना है इत्यादि सेठ सालग भद्रिक था उन उपदेशकों की भ्रान्ति में आकर वह जैनों से बहुत नफरत करता था । जब सिद्धसूरि नगरी में पधारे और उनकी प्रशंसा सर्वत्र फैल गई थी तब कई जैन व्यापारियों ने सेठ सालग को कहा कि एक दिन चलकर व्याख्यान तो सुनो ? अतः उनकी लिहाज से सेठ सालग व्याख्यान में आया

उसदिन सूरिजी खास तौर पर धर्मों के लिये ही व्याख्यान देरहे थे कि इस भरतक्षेत्र मे धर्म की नाव चलाने वाले सबसे पहले भगवान् ऋषभदेव हुए है और उनकी शिक्षा को ग्रहनकर चक्रवर्ती भरत ने चारवेदों का निर्माण किया था और उन वेदोका अधिकार निर्लोभी निरहंकारी परोपकार परायण ब्राह्मणों को इस गरजसे दिया कि तुम इन वेदों की शिक्षा द्वारा जनता का कल्याण करो ।

जबतक ब्राह्मणो के हृदय के अन्दर निस्पृहता और उपकार बुद्धि रही वहां तक तो उन वेदों द्वारा जनता का उपकार होता रहा पर जबसे ब्राह्मणों के मन मन्दिर मे लोभ रूपी पिशाच घुसा उन दिनो से ही ब्राह्मणों ने उन पवित्र वेदों की श्रुतियो को रद्दबदल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दुनिया को लूटना शुरू करदिया इतना ही क्यो पर पूज्य परमात्मा के नाम से वेदों में यज्ञादि का ऐसा क्रियाकाण्ड रच लिया कि विचारे निरापराधी मूक प्राणियों के मांस से अपनी उदर पूर्ति करना शुरू कर दिया परन्तु यह बात एक सादी और सरल है कि क्या परमात्मा ऐसा निष्ठुर हुक्म कभी देसकते है कि तुम इन प्राणधारी प्राणियों के मांस से तुम्हारी उदरपूर्ति करो? नहीं;जब कोई दयावान् उन प्राणियों पर दया लाकर उन घातकी वृति का निषेध करते हैं तो अपनी आजीविका के द्वारबन्ध न होजाय इस हेतु से वे ब्राह्मण उन सत्यवक्ताओं को नास्तिक पापी पाखंडी कह कर अपने भद्रिक भक्तों के हृदय मे भय उत्पन्न कर देते हैं कि तुम जैनो की संगत ही मत करो। यही कारण है कि वह भद्रिक ऐसे पापाचारो मे शामिल हो कर अथवा उन यज्ञकर्ता हिंसकों को मददकर अपना अहित कर डालते हैं पर जिनको परभव का डर है सत्य असत्य का निर्णय कर सत्य स्वीकार करना है वे पराधीन नहीं पर स्वतंत्र निर्णय कर आत्मा का कल्याण करने में समर्थ है अतः उनको उसी धर्म को स्वीकार करलेना चाहिये जिससे अपना कल्याण हो ? प्यारे सज्जनों। सत्यधर्म स्वीकार करने में न तो परम्परा की परवाह रखनी चाहिये और न लोकापवाद का भय ही रखना चाहिये। परम चक्षुवाला प्रत्यक्ष में देख सकता है कि आजजनता का अधिक भाग अहिंसा धर्म का उपासक बन चुका है और जहाँ देखो अहिंसा का ही प्रचार होरहा है और वे भी साधारण लोग नहीं पर चारवेद अठारह पुराण के पूर्णाभ्यासी बड़ेबड़े विद्वान ब्राह्मण एवं राजा महाराजा हैं दूर क्यो जातेहो आपके श्रीमालनगर का राजा जयसेन एवं इसी चन्द्रावती नगरी को आबाद करनेवाला राजा चन्द्रसेनादि लाखो मनुष्यो ने धर्मका ठीक निर्णय कर अहिंसा भगवती के चरनों में सिरझुका दिया था अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वे आत्म कल्याणार्थ धर्मका निर्णय अवश्य करें इत्यादि सूरिजी ने वेद पुराण श्रुति स्मृति उपनिषदों की युक्तियों और आगमो के सबल प्रमाणों द्वारा उपस्थित जनता पर अहिंसा एवं जैनधर्म का खूबही प्रभाव डाला सूरिजी की ओजस्वी वाणी में न जाने जादू सा ही प्रभाव था कि श्रवण करने वालो को घृणित हिंसा के प्रति अरुचि होगई और अहिंसा के प्रति उनकी अधिक रुचि बढ़ गई अस्तु ।

सेठ सालग ने सूरिजी का व्याख्यान खूब ध्यान लगाकर सुना और अपने दिल में विचार किया कि शायद आजका व्याख्यान सूरिजी ने खास तौर पर मेरे लिये ही दिया होगा और [illegible] का कहना तो सोलह आना सत्य है कि दयालु ईश्वर ने जिन जीवों को उत्पन्न किया है वे सब ईश्वर के कुटुम्ब हैं उनकी हिंसा कर हम ईश्वर को कैसे खुश कर सकते है और इन कार्यों से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है। खैर जब कभी समय मिलेगा तब महात्माजी के पास जाकर निर्णय करेंगे। सभा विसर्जन हुई और सेठ सालग भी अपने घर पर चला गया पर उसके दिल से सूरि के व्याख्यान ने कहीं [illegible]

सेठ सालग ब्राह्मणों के उपदेश से उस समय एक वृहद् यज्ञ करने वाला था ब्राह्मण लोगों को बड़ी बड़ी आशाएं थी पर जब ब्राह्मणों ने सुना की सेठ सालग आज जैनों के व्याख्यान में गया है तो उनके दिल में कई प्रकार की शंकाएं उद्भव होने लगीं कि सेठ जैनों के वहां जाकर कहीं नास्तिक न बन जाय अतः वे चल कर सेठ के वहाँ आये और आशीर्वाद देकर कहने लगे क्यों सेठजी ? आप आज जैनों के वहाँ व्याख्यान सुनने गये थे ?

सेठजी—हाँ महाराज ! मैं आज बहुत लोगों के आग्रह से वहाँ गया था—

ब्राह्मण—भला ! आप हमारे धर्म के अग्रेसर होकर उन नास्तिक जैनों के व्याख्यान में चले गये तब साधारण लोग वहाँ जावें इसमें तो कहना ही क्या है ? और वहाँ सिवाय वेदधर्म एवं यज्ञ की निंदा के अलावा है क्या ? जैन एक नास्तिक धर्म है अतः आप जैसे श्रद्धासम्पन्न अग्रेसरों को नास्तिकों के पास जाना उचित नहीं है।

सेठजी—मैंने करीब दो घंटे तक महात्माजी का व्याख्यान सुना पर ऐसा एक भी शब्द नहीं सुनाकि जिसको निंदा कही जासके।

ब्राह्मण—यज्ञ में दी जाने वाली बलि को हिंसा बतलाकर उनका निषेध तो किया ही होगा ? वह वेद धर्म की निंदा नही तो और क्या है ? इसको ही आप जैसे श्रद्धासम्पन्न ने कानों से सुनी।

सेठजी—प्राणियों की हिंसा का तो वेद पुराण भी निषेध करता है और 'अहिंसापरमोधर्म' सब धर्मों का मुख्य सिद्धान्त है इसमें क्या वेद धर्म क्या जैनधर्म सब एकमत है।

ब्राह्मण—अहिंसा परमोधर्म के लिये कोई इन्कार नहीं करता है पर यज्ञ करना वेदे विहित होने से उसमें जो बलि दी जाती है वह हिंसा नही परन्तु अहिंसा ही कही जाती है।

सेठजी—क्या यज्ञ में बलि दिये जानेवाले पशुओंको दुःख नही होता होगा ? तब ही तो उन जीवों की बलि देने पर भी हिंसा नही किन्तु अहिंसा ही कही जाती है ?

ब्राह्मण—ऐसी तर्क करने का आप लोगों को अधिकार नहीं है जैसे वेद पाठी ब्राह्मण कहे वैसा आप लोगों को स्वीकार करलेना चाहिये। बतलाइये आपका विचार अश्वमेध यज्ञ करने का था उसके लिये अब क्या देरी है समय जा रहा है जल्दी कीजिये—

सेठजी—महाराज अभी तो मैंने निश्चय नहीं किया है और भी विचार करूंगा—

ब्राह्मणों को जो पहिले से शंका थी वह प्रायः सत्यसी होगई अतः उन्होंने कहा कि सेठजी आप कहते थे कि मैं एक क्रोड़ रूपये यज्ञ में खर्च करूंगा फिर आप फरमाते हैं कि निश्चय नहीं तथा विचार करूंगा तो क्या आपको नास्तिक जैनाचार्य से सलाह लेनी है ?

सेठजी—क्या जैनाचार्य की सलाह लेना लाच्छन की बात है कि आप ताना दे रहे हैं जैनाचार्य को राजा महाराजा और लाखो करोड़ों मनुष्य पूज्यदृष्टि से देखते हैं और मान रहे हैं।

ब्राह्मण—पर इसमें क्या हुआ वे है तो वेद निंदक एवं यज्ञ विध्वंसक; उनकी सलाह लेने पर वे कब कहेंगे कि तुम यज्ञ करवाओ। यदि आपको यज्ञ करवाना हो तो विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं हमारे कहने मुताबिक यज्ञ का कार्य प्रारंभ कर देना चाहिये।

सेठजी—ठीक है महाराज ! इसके लिये मैं विचार कर आपको जबाब दूंगा ।

ब्राह्मण—निराश होकर वहाँ से चले गये—

सेठजी—समय पा कर सूरिजी के पास गये और नमस्कार कर पूछा कि महात्माजी ! आत्मकल्याण के लिये धर्म दुनियां में एक है या अनेक—?

सूरिजी—महानुभाव ! आत्म कल्याण के लिये धर्म एक ही होता है अनेक नही । हाँ एक धर्म की आराधना के कारण अनेक हुआ करते हैं ।

सेठजी—फिर आज संसार मे अनेक धर्म, दृष्टि गोचर हो रहे हैं जिसमें भी प्रत्येक धर्म वाले अपने धर्म को सच्चा और दूसरे धर्म को झूठा बतलाते हैं फिर हम किस धर्म पर विश्वास रख कर अपना कल्याण करें?

सूरिजी—अनेक धर्म एक धर्म की शाखारूप है और अपने अपने स्वार्थ के लिये शुरु से तो थोड़ा थोड़ा भेद डाल कर अलग अखाड़े जमाये पर बाद में कई लोगों ने बिलकुल उल्टा रस्ता पकड लिया और धर्म के नामपर अधर्म और पाखण्ड चलादिये जैसे वाममार्गियों का एवं यज्ञ हवनादि । खैर दूसरी तरह से कहा जाय तो इसमें आप जैसों की कसोटी भी है कहा है कि "बुद्धि फलं तत्त्व विचारणंच" आप स्वयं विचार कर सकते है कि अनेक धर्मों मे से कौनसा धर्म कल्याण करने में समर्थ है । खैर जैन धर्म के विषय में आप जानते ही होंगे नही तो मैं संक्षिप्त मे परिचय करवा देता हूँ । जैन साधुओं में सब से विशेषता तो त्याग वैराग्य की है वे कनक और कामिनी से बिलकुल मुक्त है कंकर पत्थर उनके काम आ सकते है पर रुपया पैसा उनके काम में नही आते हैं छमास की लड़की को भी वे नहीं छूते हैं किसी भी जीवको वे कष्ट नही पहुँचाते हैं अर्थात् आप स्वयं कठिनाइयों को सहन जो करलेते हैं पर दूसरे चराचर जीवों को कष्ट नहीं पहुँचाते हैं अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अकिंचन धर्म को वे मन वचन काया से करण करावण और अनुमोदन एवं नौकोटी परिविशुद्ध पालन करते हैं तप तपने मे वे बडे ही शूरवीर होते हैं परोपकार के लिये तो वे अपना जीवन अर्पण कर चुके हैं । संसार की उपाधि से वे सर्वथा मुक्त है अपने कर्त्तव्य पालन में वे किसी प्रकार का मान अपमान एवं सुख दुःख का खयाल नहीं करते हैं किसी पदार्थ का संचय एवं प्रतिबन्ध नहीं रखते हैं उनके पास राजा रंक कोई भी आवे धर्मोपदेश देने में थोड़ा भी भेद भाव नहीं रखते हैं इत्यादि यह तो उनका आचार व्यवहार है । तत्वज्ञान में उनका स्याद्वाद नयवाद प्रमाणवाद कर्मवाद आत्मवाद क्रियावाद सृष्टिवाद परमाणुवाद योग आसन समाधि वगैरह सर्वोत्कृष्ट है कि दूसरे कहीं पर वैसे नहीं मिल सकेंगे अत आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म की आराधना करना ही सर्व श्रेष्ठ है । महानुभाव ! जैनधर्म किसी साधारण व्यक्ति का चलाया हुआ धर्म नहीं है पर यह धर्म अनादि अनन्त है । इस धर्म के प्रचारक बड़े बड़े तीर्थङ्कर हुए हैं एक समय जैनधर्म एक विश्व धर्म था और आज भी यह सर्व प्रान्तों में प्रचलित है हाँ जिस प्रान्त में जैन मुनियों का विहार एवं उपदेश नहीं हुआ है वहाँ स्वार्थी लोगो ने अपने स्वार्थ के लिये बिचारे भद्रिक लोगों को धर्म के नाम उल्टे रास्ते लगा दिये है आप स्वयं सोच सकते है कि एक तरफ [illegible] है पर लाखों प्राणियों की निर्दयता पूर्वक बलि चढ़ाकर हजारो लाखो [illegible] डालते हैं इत्यादि सूरिजी ने सेठ को अच्छी तरह समझाया ।

सेठजी—महात्माजी ! आपका कहना बहुत ठीक एवं सत्य [illegible]

चले आये धर्म का त्याग कैसे किया जाय इससे मेरी मान प्रतिष्ठा का भी भंग होता है ? फिर भी मैं आत्म कल्याण तो करना चाहता हूँ ?

सूरिजी—सेठजी ! मुझे यह उम्मेद नहीं है कि आप जैसे विचरज्ञ पुरुष केवल मान प्रतिष्ठा एवं वंश परम्परा की दाक्षिण्यता से अपना अहित करने को तैयार है जैसे शास्त्रों में लोहा बनिया का उदाहरण बतलाया है वह भी सुन लीजिये—एक नगर से कई व्यापारियों ने किराणे के गाडे भर कर व्यापारार्थ अन्य दिसावर के लिये प्रस्थान किया वे सब चलते जा रहे थे कि रास्ते में बढ़िया लोहे की खानें आई तो सब व्यापारियों ने लाभ जान कर किराणा वहां डाल दिया और लोहे से गाडे भर लिये फिर आगे चाँदी की खाने आई तो एक बनिये के अलावा सब ने लोहा डाल कर चांदी लेली। जिस एक बनिये ने लोहा नहीं डाला उसको सबने कहा भाई लोहा कम मूल्य वाला है अतः इसको यहां डाल कर बहुमूल्य चांदी ले ले। हम सबने ली है तू हमारे साथ आया है अतः तेरे हित के लिये ही हम कहते हैं लोहाबनिया ने जवाब दिया कि मैं आपके जैसा अस्थिर भाव वाला नहीं कि बार बार बदलता रहूँ। मैंने तो जो लिया वह ले लिया खैर आगे चलने पर सुवर्ण की खानं आई तो सबने चांदी डाल कर सुवर्ण ले लिया। लोहा बनिये को और भी समझाया गया पर वह तो था वंश परम्परा वादी उसने एक की भी नहीं सुनी फिर आगे चलने पर हीरेपन्ने की खाने देखी तो सब गाडे वालों ने सोने को डाल कर हीरे पन्ने भर लिये। और लोहा बनिया को बहुत समझाया कि अभी तक तो कुछ नहीं बिगड़ा है अब भी आप इस तुच्छ लोहे को डाल दो और इन हीरे पन्ने को लेलो कि अपन सब एक से होजाय वरना तुमको बहुत पश्चाताप करना पड़ेगा। पर लोहा बनिया ने एक की भी नहीं सुनी और जिस लोहा को पहले ग्रहन किया उसको ही पकड़ रखा खैर सब व्यापारी चल कर अपने वास स्थान पर आये सबने रत्न वेच कर अच्छे मकान और सब सामग्री खरीद कर देवताओं के सदृश आनन्द से सुख भोगवने लगे तब लोहाबनिया उसी हालत में रहा कि जैसी पहिले थी अब दूसरे व्यापारियों के वे अलौकिक सुख देख कर पश्चाताप करने लगा और अपनी की हुई शुरु से भूल पर रोने लगा पर अब क्या हो सकता ? सेठजी कभी आपको भी लोहा बनिया की भाँति पश्चाप न करना पड़े ?

सेठ सालग तो सूरिजी के पहिले ही व्याख्यान में समझ गया था पर सूरिजी के उपदेश एवं उदाहरण ने तो इतना प्रभाव डाला कि वह जैनधर्म स्वीकार करने को तैयार हो गया और कहा पूज्य गुरुदेव ! मैं मेरे सब कुटुम्ब वाले को लेकर कल व्याख्यान में आकर आम पब्लिक में जैन धर्म स्वीकार करूँगा कि मेरे कुटुम्ब में दो मत न हो सके ? सूरिजी ने कहा "जहा सुखम्"

सेठजी अपने मकान पर आये और रात्रि के समय अपने सब कुटुम्ब वालों को एकत्रित किया और उनको यह समझाया कि मनुष्यभव और ऋद्धि तो अनेक बार मिली और मिलेगी ही पर धर्म की आराधना बिना जीव का कल्याण नहीं होता है अतः मैंने धर्म का अच्छी तरह से निर्णय कर के जैनधर्म को पसंद किया है और कल सुबह जैन धर्म स्वीकार करने का भी निश्चय कर लिया है अतः आप लोगों का क्या विचार है ? इस पर बहुत लोगों ने तो सेठजी का अनुकरण किया पर कई लोग परम्परा धर्म को कैसे छोड़ा जाय भी कहा पर सेठजी ने हेतु युक्ति से उनको समझा बुझा कर अपने सहमत कर लिया और सुबह होते ही बड़े ही समारोह से सकुटुम्ब सेठजी चल कर आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हो गये इधर नगर

भर में बड़ी भारी हलचल मच गई हजारो नहीं बल्कि लाखो मनुष्य सेठजी को देखने के लिये उपस्थित हो गये। कारण एक कोट्याधीश सेठ अपने विशाल परिवार के साथ एक धर्म छोड़ कर दूसरे धर्म को स्वीकार करता है यह कोई साधारण बात नहीं थी ब्राह्मणो के तो पैरों तले से भूमि खिसक रही थी उनके आसन चलायमान होगये उन्होंने दौड़ धूप करने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कहा कि सौ वर्ष का गुमास्ता और बारह वर्ष का घर धणी। आखिर सूरिजी महाराज ने उस विशाल समुदाय में अपने मंत्रो द्वारा उन विशाल कुटुम्ब के साथ सेठ सालग को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बना लिये इस प्रकार सेठजी के धर्म परिवर्तन को देख अन्य भी बहुत से लोगों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन सबकी संख्या पट्टावलीकारो ने ५००० नरनारी की बतलाई है वहां के उपकेशवंशी संघ ने सेठ सालगादि सबको अपने साथ मिला लिया और उनके साथ उसी दिन से रोटी बेटी व्यवहार शुरू कर दिया।

जिस दिन से सेठ सालगादि को जैनधर्म की दिक्षा दी उस दिन से ही ब्राह्मणों का जैनो के प्रति अधिक द्वेष भभक उठा था पर इससे होना करना क्या था जैनो की शान्ति ने और भी ब्राह्मण धर्म पर प्रभाव डाला था कि और लोग और भी जैनधर्म स्वीकार करते गये इस कार्य मे विशेष प्रेरणा सेठ सालग की ही थी। सेठ सालग था भी बड़ा भारी व्यापारी एवं कोटीध्वज इनका व्यापार भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य सब देशों के साथ था। एक बड़े आदमी का इस प्रकार प्रभाव पड़ता हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यों तो आचार्य सिद्धसूरि बडे ही प्रभावशाली थे ही पर इस घटना से आपका प्रभाव और भी बढ़ गया चन्द्रावती और उसके आसपास के प्रदेश मे जैनधर्म का बड़ा भारी प्रचार हुआ।

एक समय परम भक्त सालग ने सूरिजी की सेवा मे अर्ज की कि गुरुदेव! मैंने यज्ञ के लिये एक करोड़ द्रव्य व्यय करने का संकल्प किया था पर आपकी कृपा से मै उस अनर्थ से तो बच गया पर अब वह संकल्प किया हुआ द्रव्य किस कार्य मे लगाना चाहिये। कारण कि संकल्प किया हुआ द्रव्य मैं मेरे काम में तो लगा ही नहीं सकता हूँ अतः आप आज्ञा फरमावें उसी कार्य में लगाकर संकल्प के विकल्प से मुक्त हो सकूं।

सूरिजी ने कहा सालग तू बड़ा ही भाग्यशाली है तेरे शुभ कर्मों का उदय है संकल्प किये हुये द्रव्य के लिये या तो त्रिलोक पूज्य तीर्थङ्करदेव का मन्दिर बनाने में या तीर्थयात्रार्थ संघ निकालने में या आगमवाचना आगम लिखाने एव विद्या प्रचार करने मे लगाना ही कल्याण का कारण हो सकता है जैनधर्म का प्रचार बढाना स्वधर्मी भाइयो को सहायता पहुँचाना भी शासन के कार्य का एक अंग है पर संकल्प किया हुआ द्रव्य पुनः गृहस्थ के काम नहीं आता है अब जिस कार्य में तुम्हारी रुची हो उसमें ही द्रव्य व्यय करके लाभ उठाना चाहिये इत्यादि—

सालग ने सोचा कि सूरिजी कितने निर्लोभी, कितने परोपकारी हैं कि करोड़ रुपयों के [illegible] अपने काम या अपने शिष्यो के लिये नहीं बतलाया क्या पुस्तक पन्ने [illegible] नहीं होती पर परोपकारी महात्माओ का यह खास तौर से लक्षण हुआ करते हैं कि "परोपकाराय सतां विभूतयः"। यदि सूरिजी महाराज यहां चतुर्मास करावें तो मैं [illegible] सालग ने संघ के साथ सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! आपके विराजने से [illegible] हुआ है पर कृपाकर यह चतुर्मास यहां करावें कि [illegible]

ने लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास की स्वीकृति देदी बस फिर तो कहना ही क्या था सब का उत्साह खूब बढ़ गया। शाह सालग ने चतुर शिल्पज्ञ कारीगरो को बुलाकर भगवान महावीर का बावन देहरी वाला आलीशान मन्दिर बनाना शुरु कर दिया दूसरी तरफ लिपीकारों को बुलाकर आगम लिखाना प्रारम्भ कर दिया और चतुर्मास की आदि में महा महोत्सव पूर्वक पंचमांग श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में बंचवाना शुरु करवा दिया। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्मिक कल्याण पर ही होता था जिससे जनता को बड़ा भारी आनन्द आया करता था शाह सालग तो सूरिजी का इतना भक्त बन गया कि उनका मन भ्रमरा सूरिजी के चरणों से एक क्षण भर भी पृथक रहना नहीं चाहता था उसके लिये केवल एक तीर्थों का संघ निकालना ही शेष कार्य रह गया तो एक दिन सालग ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! हमारे दो काम तो हो रहे हैं पर कृपाकर संघ के लिये बतलाइये क्या किया जाय सूरिजी ने कहा सालग "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" अच्छे कार्य में कई विघ्न आया करते हैं इसलिये शास्त्रकारों ने कहा है कि "धर्मस्य त्वरितागतिः" धर्म कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये अतः पहिले यह विचार करले कि संघ शत्रुंजय का निकलना है या सम्मेत शिखरजी का, इसपर सालग ने कहा यदि दोनों तीर्थों की यात्रा हो जाय तो अच्छा है सूरिजी ने कहा सालग एक साथ दोनों तीर्थों की यात्रा होना तो असंभव है कारण इन दोनों तीर्थों में अन्तर विशेष होने से साधु लोग पहुँच नहीं सकते हैं हाँ एक बार एक तीर्थ की और दूसरी बार दूसरे तीर्थ की यात्रा हो सकती है फिलहाल एक तीर्थ की यात्रा का निर्णय करलें? सालग ने कहा कि पहिले सम्मेत शिखर की यात्रा करनी ठीक होगी सूरिजी ने अपनी सम्मति दे दी और सालग ने अपने १९ पुत्रों को बुलाकर संघ सामग्री एकत्रित करने का आदेश दे दिया और चातुर्मास समाप्त होने के पूर्व ही सब प्रान्तों में आमन्त्रण भेज दिया साधु साध्वियों की भी विनती करली जब चातुर्मास समाप्त हुआ तो मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को सालग को संघपति पदार्पण कर आचार्य सिद्धसूरि के अध्यक्षत्व में संघने प्रस्थान कर दिया संघ बड़ा ही विशाल था कई पांच हजार साधु साध्वियों एक लक्ष से अधिक नरनारी ८४ देरासर चौदह हस्ती ११ आचार्य तीनसौ दिगम्बर साधु ७०० अन्य मत्त के साधु इत्यादि क्रमशः रास्ते के तीर्थों की यात्रा करता हुआ संघ सम्मेतशिखरजी पहुँचा वहाँ की यात्रा कर सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। एक समय सूरिजी ने कहा सालग अब अवसर आगया है यह बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि है चेतना हो तो चेतलो जो समय गया वापिस नहीं आता है बस। सालग की आत्मा पहिले से ही निर्मल थी उस पर भी सूरिजी का संकेत, फिर तो कहना ही क्या; सालग ने अपने सब पुत्रों को बुलाकर कह दिया कि मेरा विचार तो दीक्षा लेने का है पुत्रों ने बहुत कहा कि आपको दीक्षा ही लेना है तो पुनः संघ सहित चन्द्रावती पधारें वहां दीक्षा लीरावें पर सालग का आग्रह तीर्थ पर ही था सालग के बड़े पुत्र संगण को सब घर का भार एवं संघपति की माला देकर शाह सालग ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली अहाहा— मनुष्य के शुभ कर्मों का उदय होता है तब किस प्रकार कल्याण हो जाता है, एक यज्ञ करने वाला इतना बड़ा सेठ जिसकी भावना बदल जाने से कितने के कल्याण का कारण बना है।

संघपति संगण के अध्यक्षत्व में पूर्व के तीर्थों की यात्रा करते हुए बहुत से साधु साध्वियों के साथ संघ लौटकर पुनः मरुधर एवं चन्द्रावती आया और संगण ने स्वामिवात्सल्य करके संघ को प्रत्येक नर को पंच-पंच सुवर्ण मुद्रिका और बढ़िया वस्त्रों की प्रभावना देकर विसर्जन किया।

आचार्य सिद्धसूरि अपने ५०० शिष्यो के साथ जिसमे नूतन मुनिराज शेखरहंस (सालग) भी शामिल थे; पूर्व प्रान्त में रहकर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देने लगे तीर्थ श्रीसम्मेतशिखरजी के आस-पास के प्रदेश में बहुत जैनों की बसती थी आपके पूर्वजो ने कई बार वहाँ घूम घूम कर उन लोगों को धर्म में स्थिर किये थे उन लोगो ने कई जैन मंदिर बनाये जिसकी प्रतिष्ठाएं आचार्य सिद्ध सूरिने करवाई कइबार संघ निकाल कर बीस तीर्थंकरो के निर्वाण भूमि की यात्रा की । इत्यादि

जिस समय सूरि जी का बिहार पूर्वप्रान्त में हो रहा था उस समय बोद्धोंका प्रचार भी हो रहा था पर सूरिजी के प्रचार कार्य के सामने बौद्धो की कुछ भी चल नही सकती थी आप श्री ने तीन चातुर्मास पूर्व में करके जैनधर्म के प्रभाव को खूब बढ़ाया था बाद कलिंग की कुमार कुमारी तीर्थो की यात्रा करते हुए पुनः भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणक भूमि काशी पधार कर वहाँ तथा उनके आस पास के तीर्थों की यात्रा की और वह चातुर्मास बनारस नगरी में किया आपके विराजने से जैनधर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना हुई इतना ही क्यों पर वहां दो ब्राह्मण और ५ श्रावको को दीक्षा भी दी जिसका महोत्सव श्रेष्टिगोत्रीय शाह सलखणने सवालक्ष रुपये व्यय करके इस प्रकार किया कि जिसका प्रभाव वहाँ की जनता पर काफी हुआ था ।

वहाँ से सूरिजी महाराज बिहार कर पंजाब की ओर पधारे आपके मुनिगण पहले से ही वहाँ विहार करते थे जब उन्होंने सुनाकि आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज पंजाब में पधार रहे हैं तो उनका दीलदर्प के मारा उमड़ उठा बस सूरिजी महाराज जहाँ पधारते वह चतुर्विध श्रीसंघका का एक खासा मेला हो लगजाता था क्रमशः आप लोहाकोट पधारे वहाँ के श्री संघके आग्रह से सूरिजी ने वहाँ चतुर्मास भी कर दिया बाद चतुर्मास के वहाँ एक संघ सभा की गई जिसमें उसके बहुत से साधु साध्वियो तथा श्राद्ध वर्ग उपस्थित हुए । सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणि से जैनधर्म की परिस्थिति और प्रचार के विषय में बड़ा ही जोशीला व्याख्यान दिया कि जिसने उपस्थित जनता के हृदय में धर्म प्रचार की एक नयी बिजली पैदा हो गई यों तो पंजाब पहिले से ही वीर प्रसूत भूमि थी फिर सूरिजी जैसे धर्म प्रचारक के वीरता का उपदेश तब तो कहना ही क्या था ? वीरो की सन्तान वीर हुआ ही करती हैं मुनियोंने सूरिजी के उपदेश को शिरोधार्य कर कर्मक्षेत्र-मार्ग में कटिबद्ध होगये सूरिजीने वहाँ से बिहार करने वाले योग्य मुनियो को पदविया प्रदान कर उनके उत्साह में और भी वृद्धि कर दी तत्पश्चात संघ बिसर्जन हुआ सूरिजी महाराज दो वर्ष पंजाब में घूमकर सिन्ध की ओर पधारे सिन्ध में भी आपके बहुत से मुनि विहार कर रहे थे एक चतुर्मास डामरेल नगर में किया वहाँ भी धर्म की अच्छी प्रभावना हुई । ७ नर नारियो को दीक्षा दी ओर कई अजैनों को जैन बनाये बाद आपके चरण कमल सबन्ध भूमि में हुए वहाँ भद्रेश्वरतीर्थ की यात्रा कर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश दिया वहाँ भी आपके कई मुनि विहार करते थे उनकी सार सभाल की बाद सौराष्ट्र प्रदेश मे पदार्पण कर तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा की तदानन्तर सौराष्ट्र में भ्रमन करते हुए भरोच नगर मे पधार कर वह चतुर्मास वहाँ [illegible] किया कि जनता में धर्म की खूब ही जागृति हुई बाद चतुर्मास के [illegible] के [illegible] की [illegible] चन्द्रावती, पद्मावती, शिवपुरी मे मिलते ही हजारो लोग देवगुरु के दर्शनार्थ [illegible] पर आते और अपने अपने नगर की ओर पधारने की बिनती की सूरिजी वहाँ से विहार कर [illegible] [illegible] किया कि जहाँ आचार्य कक्कसूरिजी द्वारा संघ के [illegible] रहा हुआ था [illegible] देव का मंदिर भी बनाया गया था आचार्य श्री [illegible] चन्द्रावती नगरी की ओर पधार रहे हैं [illegible]

में इतना उत्साह एवं हर्ष छा गया था कि जिसका तुच्छ लेखनी द्वारा वर्णन ही नहीं किया जा सकता कारण एक तो सूरिजी का पधारना दूसरा मुनि शेखरहंस साथ में जोकि चन्द्रावती नगरी का कोट्याधीश सेठ सालग के नाम से मशहूर था। चन्द्रावती नगरी के श्रीसंघ और विशेष में सेठ सांगण ने नगर-प्रवेश का इस कदर से महोत्सव किया कि जिसमें उन्होंने सवालक्षद्रव्य व्यय कर डाला। इससे पाठक समझ सकते है कि उस समय की जनता के हृदय में धर्म भावना कहाँ तक बड़ी हुई थी।

आचार्य सिद्धसूरि का धारावाही व्याख्यान हमेशा होता था, जिसमें दार्शनिक तात्विक आध्यात्मिक विषय के साथ में अधिक जोर त्याग वैराग्य पर दिया जाता था जिसका प्रभाव जनता पर इस कदर पड़ता था कि वे क्षणिक संसार से विरक्त बन सूरिजी के चरणों में दीक्षा ले अपना कल्याण करने की भावना किया करते थे सूरिजी के व्याख्यान का लाभ केवल साधारण जनता ही नहीं लेती थी पर वहां के राजा एवं राजकर्मचारीगण भी उपस्थित होते थे और वे सूरिजी के व्याख्यान की सदैव भूरि भूरि प्रशंसा भी किया करते थे।

सेठ सालग के द्वारा प्रारंभ किया गया बावन देहरी वाला विशाल मन्दिर तैयार होने आया अतः सेठ सांगण ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! पूज्य पिताजी का प्रारम्भ किया मन्दिर तैयार हो गया है अतः इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनावें हमें विशेष हर्ष इस बात का है कि इस समय हमारे पूज्य पिताजी (शेखर हंस मुनि) आपकी सेवा में यहां विद्यमान हैं और यह हमारा अहोभाग्य है कि इनके हाथों से प्रारम्भ किये हुए मन्दिर की इनके ही हाथों से प्रतिष्ठा हो जाय ? सूरिजी ने कहा सांगण तुम्हारे पिता तो भाग्यशाली हैं ही पर तू भी बड़ा ही पुण्यशाली है कि पिता का आरम्भ किया कार्य बड़े ही उदार दिल से सम्पूर्ण करवा कर प्रतिष्ठा करवा रहा है। सांगण ! मन्दिर बनाना यह साधारण कार्य नहीं है यह एक विशेष कार्य है शास्त्रकारों ने कहा है कि मंदिर बनाने वाला बारहवां स्वर्ग तक पहुँच कर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है कारण एक महानुभाव के बनाये मन्दिर से अनेक भव्य अपना कल्याण कर सकते हैं जैसे एक मनुष्य कूप बनाता है उस समय उसको कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं पर जब कूप में पानी निकल आता है तब उसका सब कष्ट दूर हो जाता है, थकावट उतर जाती है और उस कूवे का पानी हजारों लोग पीकर अपनी तृषा रूपी आत्मा को शांत करते हैं, इतना ही क्यों पर कुवा बनाने वाले को आशीर्वाद भी दिया करते हैं इसी प्रकार मंदिर को भी समझ लीजिये कि मन्दिर बनाने में जल पत्थर चूना वगैरह लगते हैं पर जब भगवान की मूर्ति वस्त निशान होती है तब वे सब आरम्भ एक क्षण की भावना से विशुद्ध बना देते हैं और जहां तक वह मंदिर विद्यमान रहता है हजारों लाखों और करोड़ों भावुक उस मन्दिर में भी अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है इसलिये मंदिर बनाने वाला शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर सकता है यदि तुम्हारी भावना है तो धर्मकार्य में विलम्ब नहीं करना।

सेठ सांगण ने कहा पूज्यवर ! आप इस कार्य के लिये शुभ मुहूर्त दिरावे इतना ही विलम्ब है शेष सब कार्य तैयार है सूरिजी ने माघ शुक्ला पंचमी का मुहूर्त दे दिया जिसको सेठ सांगण ने बड़े ही हर्ष के साथ बधा कर ले लिया और करने लगा प्रतिष्ठा की तैयारियां सेठ सांगण को बड़ा ही उत्साह था इसने नजदीक और दूर दूर प्रदेशों में आमंत्रण पत्रिकाएं भिजवा दी। उस समय का चन्द्रावती एक समृद्धशाली नगरी थी। राजा प्रजा प्रायः जैनधर्मोपासक थे आस पास के प्रदेशों में भी जैनों का ही साम्राज्य था और

सेठ सालग के म० मन्दिर की प्रतिष्ठा

सिद्धसूरि जैसे प्रभावशाली आचार्य के अध्यक्षत्व मे प्रतिष्ठा का होना जिसमें भी विशेषता यह कि एक कोट्याधीश जैनेतर जैन बन कर तत्काल ही जैन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाना फिर तो कहना ही क्या था।

मुनि शेखरहंस के उपदेश से सेठ सांगण ने एक घर देरासर भी बनवाया था। उनके लिये माणक की पार्श्वमूर्ति तथा नगर मन्दिर के लिये १२० अंगुल प्रमाण सुवर्ण की महावीर मूर्ति बनाई इस मूर्ति के नेत्रों के स्थान दो बढ़िया मणियां लगवाई वे रात्रिको भी दिन बना देती थी शेष सर्व धातु एवं पाषण की मूर्तियां भी तैयार करवा ली थी इस प्रतिष्टा एवं स्वधर्मी भाइयों को पहरामणि मे सेठ सांगणने एककोटि द्रव्य व्ययकर खूब पुन्यानुबन्धी पुन्योपार्जन किया प्रतिष्टा बड़े ही धाम धूम के साथ हो गई जिससे जैनधर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ

सूरिजी चन्द्रावती से बिहार कर शिवपुरी कोरंटपुर, भिन्नमाल, सत्यपुर, शिवगढ़, पाल्हिक, धोलगढ़ परपट माहव्यपुर होते हुए जब उपकेशपुर पधार रहे थे तब इस खबर को सुन उपकेशपुर संघ के हर्ष का पार नहीं रहा। आदित्य नाग गौत्रीय गुलेच्छा शाखा के शाह पुरा ने तीनलाख द्रव्य व्ययकर सूरिजी के नगर प्रवेश का महोत्सव किया ।

"आधुनिक श्रद्धा बिहीन साधुओं के सामने आधा मील भी नहीं जाने वाले यह सवाल कर बैठते हैं कि एक नगर प्रवेश के महोत्सव में एक दो और तीन लक्ष रूपैये क्यों और किसमें खर्च किया होगा। यदि इतना ही द्रव्य किसी अन्य कार्य एवं साधर्मी भाइयो की सहायता में लगाया होता तो कितना उपकार होता ? इत्यादि ।

"इस निर्धनता के युग में ऐसा सवाल उत्पन्न होना स्वाभाविक है पर उस समय का इतिहास पढ़ने से मालुम होगा कि उस समय ऐसा कोई क्षेत्र ही नहीं था कि जिसके लिये किसी से याचना की जाय तथा ऐसा कोई साधर्मी भाई भी नहीं था कि वह दूसरो की आशा पर अपना जीवन गुजारता हो और न कोई साधर्मी भाईयो को इस प्रकार मंगता बनाना ही चाहता था यदि कोई किसी निर्बल साधर्मी भाई को देखे तो उसको धंधे रूजगार में लगा कर अपनी बराबरी का बना लेते थे। मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार एक एक व्यक्ति करवा देता था विद्या एवं ज्ञान प्रचार भी एक एक भावुक करता था तीर्थों की यात्रार्थ एक एक धर्म प्रेमी बड़े बड़े संघनिकाल कर यात्रा करवा देता था कालदुकाल में भी एक एक धनाढ्य करोड़ों द्रव्य व्यय कर देते थे फिर ऐसा कौनसा क्षेत्र रह जाता कि जिसमें वे अपना द्रव्य का सदुपयोग करें। आचार्यों के नगर प्रवेश महोत्सव मे दो तीन लक्ष द्रव्य व्यय करना तो उनके लिये एक मामूली बात थी पर इस प्रकार की उदारता से उस समय के धर्मज्ञों के अंदर रही हुई देवगुरु धर्म पर श्रद्धा का पता चल सकता है कि उनकी देवगुरु धर्म पर कितनी श्रद्धा थी कि मामूली बात मे वे लाखो रुपये व्यय कर देते थे—यही कारण था कि इस प्रकार शुभ भावना से उनके घरो में लक्ष्मी दासी बन कर रहती थी व अपने [illegible] [illegible] द्रव्य पैदा करते थे। इस प्रकार धन व्यय करते हुए भी उनके खजाने भरे हुए रहते थे [illegible] के पुन्य कितने जबर्दस्त थे आप पिछले प्रकरणो मे पढ़ आये हो कि किसी को पारस मिला [illegible] [illegible] मिली किसी को तेजमतुरी मिली तो किसी को सुवर्ण रस मिला किसी को [illegible] [illegible] किसी को देवी ने अखूट थैली देदी। इसपर भी वे कितने निस्पृही थे कि [illegible] [illegible]

जितना द्रव्य देव गुरुधर्म की भक्ति में खरचते उतने को ही वे अपना समझते थे वे पिछले कुटम्ब के लिये न तो इतना फिक्र करते थे और न इतना संचय ही करते थे कारण उनको यह विश्वास था कि जीव सब अपने २ पुन्य लेकर आते है 'पूत सपूतो क्या धनसंचय पूत कपूतो क्यों धनसचे ? इस सिद्धान्त पर उनकी अटल श्रद्धा थी इतना ही क्या पर उस जमाने के पुत्रादि कुटम्ब भी निश्चय वाले थे वे अपने पूर्वजों की सम्पति पर ममत्व या आशा तक नहीं रखते थे पर अपने तकदीर पर विश्वास रखते थे । हमने सैकड़ों दानेश्वरियों के जीवन पढ़े है पर एक भी उदाहरण ऐसा नही मिला कि किसी दानेश्वर पिता को अपना द्रव्य शुभकार्य में व्यय करते समय पुत्र ने इन्कार किया हो इतना ही क्यों पर ऐसे बहुत से पुत्र थे कि आपने पिता को दान करने में उत्साहित करते थे इत्यादि वह जमाना ही ऐसा था कि जनता अपने कल्याण की ओर अधिक लक्ष दिया करती थी ।"

आचार्य श्री ने चतुर्विध श्री संघ के साथ भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर थोड़ी पर सारगर्भित देशनादी जिसका उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ जिस समय सूरिजी उपकेशपुर नगर में पधारे थे उस समय उपकेशपुर के शासन करता महाराजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा में राव हुल्ला राजा था रावहुल्ला के पिता दोहड़ जैनधर्म का उपासक था पर वाममार्गियों के संसर्ग से रावहुल्ला वाममार्गियों की उपासना कर मांस मदिरा एवं व्यभिचार सेवी बन गया था बहुत से लोगों ने समझाया पर उसने किसकी भी नहीं सुनी एक जवानी दूसरी राज सत्ता तीसरा सदैव बाममार्गियों का परिचय ।

उपकेशपुर के अग्रेश्वर लोगों ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! उपकेशपुर का राजघराना शुरू से जैन धर्मोपासक था और इससे यहां के जैनों को जैनधर्म की आराधना में बड़ी ही सुविधा थी पर राव हुल्ला वाममार्गियों के अधिक परिचय में आकर मांस मदिरा सेवी बन गया अभी तो यह जैनधर्म से विरोध खिलाफ नहीं है पर भविष्य में न जाने इनकी संतान जैनधर्म के साथ कैसा वर्ताव रखेगी अतः आप राव हुल्ला को कभी एकान्त में उपदेश दीरावें इत्यादि ।

सूरिजी ने कहा ठीक है कभी रावजी आवेंगे तो मैं अवश्य उपदेश करूंगा । पर वाममार्गी इस बात को ठीक समझते थे कि रावजी जैनाचार्य के पास जावेंगे तो न जाने वे जादूगर रावजी पर जादूकर अपना बना बनाया काम मिट्टी में न मिला दे ? अतः उन्होंने रावजी पर ऐसा पहरा रखा कि उनको क्षण भर अकेला नहीं छोड़ते कभी रमत गम्मत तो कभी सिकार कभी खेल तमाशे में साथ ही साथ में रखते यथा राजा तथा प्रजा । राव हुल्ला का थोड़ा थोड़ा प्रभाव जनता पर भी पड़ने लगा राजा के मुख्य कार्यकर्ता (दीवान) बाप्पनाग गौत्रीय शाह मालदेव था और भी राजकर्मचारी सब महाजन ही थे पर वे रावजी को समझा नहीं सकते थे ।

एक समय किसी म्लेच्छ लोगों की सेना देश में लूट मार करती हुई उपकेशपुर की ओर आ रही थी, जिसको सुन कर रावजी घबराये वाममार्गियों से परामर्श किया तो उन्होंने समय पाकर कहा, रावजी आप शाक भाजी के खाने वाले महाजनों के भरोसे पर राज को छोड़ दिया है पर सिवाय कलम चलाने के ये लोग क्या कर सकते हैं आपको राज्य की रक्षा के लिये मांस भोगी वीरों को अच्छे पदों पर

नियुक्त करना चाहिये तब ही राज्य की रक्षा हो सकेगी । बस राजा कानो के कच्चे तो होते ही हैं उन वाममार्गियों के कहने से तमाम महाजनों को हटा कर मांस भोगी अर्थात् वाममार्गियो को उच्च-उच्च पदों पर नियुक्त कर दिये बस वाममार्गियो के मनोरथ सफल हो गये । पर महाजनो को इस बात का तनिक भी दुःख नहीं हुआ वे सूरिजी की सेवा में अधिक अवकाश मिलने से अपना अहोभाग्य समझने लगे ।

म्लेच्छों की सेना ने नजदीक आकर उपकेशपुर पर धावा बोल दिया इधर रावहुल्ला की ओर से भी सेना तैयार कर म्लेच्छों का सामना किया गया पर वे उसमें सफल न हो सके क्योंकि पहला तो उनमें शिक्षा का अभाव था दूसरे सेना का संचालन करने वाला भी इतना बुद्धिमान नही था पहिला दिन तो ज्यों त्यों कर बिताया पर रावहुल्ला घबरा गया और उसको विजय की आशा भी नही रही अतः वह हताश होकर विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये जब रावजी ने वाममार्गियों से परामर्श किया तो वे विचारे क्या करने वाले थे फिर भी उनके कहने से उत्साहित हो दूसरे दिन स्वयं रावजी सेना के संचालक बन म्लेच्छों से लड़ने लगे पर उसमें भी म्लेच्छों की पराजय नही हुई जब रावजी रनवासमें गये तो उनके चेहरे पर गहरी उदासीनता थी। रानियो ने पूछा तो रावजी ने सब हाल सुनाया इस पर एक रानी जो 'जैनधर्मोपासिका थी उसने कहा कि आपने महाजनों को रजा देकर बड़ी भारी भूल की है जिसका ही परिणाम है कि आज आपको हताश होना पड़ा है मेरा तो खयाल है कि अब भी आप महाजनों को बुलवाकर यह कार्य उनके सुपर्द कर दीजिये ? रावजी ने कहा कि महाजन लोग शाकबाजी के खाने वाले युद्ध में क्या कर सकेंगे वे केवल हुकूमत की बातें कर जानते हैं । रानी ने कहा खावन्दों ! यह तो आप का व्यर्थ भ्रम है महाजन लोग खास तो राजपूत ही हैं साथ मे कार्य कुशल भी है दूसरे मांस भोजियो में ताकत होना और शाकभोजियों में न होना यह भी भ्रम ही है । समय पर बल काम नहीं देता है उतना काम [illegible] बुद्धि दे सकती है अतः आप महाजनों को बुलाकर यह कार्य उनको सौंप दीजिये इत्यादि । रावजी ने रानी के कहने पर ध्यान देकर महाजनों को बुलाकर कहा कि नगर पर आफत आ पड़ी है इसमें आप लोग क्या मदद कर सकते हो ? महाजनों ने कहा कि हमारी नसो में जैसे राजपूतों का खून भरा है वैसे राज का अन्नजल भी हमारी नसों में भरा हुआ है आपने तो हम लोगो को बुलाकर कहा है पर हम लोगो ने [illegible] के लिये तैयारियां कर रखी हैं इत्यादि ।महाजनो के कथन को सुनकर रावजी को बड़ी खुशी हुई और वामियों के कहने से महाजनों को रजा देने का बड़ा पश्चाताप करना पड़ा और रावजी ने कहा आप स्वामी धर्मी हैं आप पर हमारे परम्परा गत पूर्वजों का पूर्ण विश्वास भी था और कईबार आपके पूर्वजों ने रण भूमि मे वीरता पूर्वक विजय भी प्राप्त की थी अब आप अपने २ आसन को संभालो और यह राज आपके ही भरोसे है इत्यादि सत्कार पूर्वक महाजनों को पुन. अधिकार सुपुर्द किया। बस फिर तो था ही क्या महाजन मुत्सद्दियों ने अपनी सेना को सज-धज कर मोरचा बांधा और आप उनके संचालक बन गये सूरीश्वर [illegible] एक ओर मन्दिरों मे रावजी की ओर से स्नात्र महोत्सव शुरू करवा दिया और दूसरी ओर [illegible] करवा दी बस सैनिक लोग [illegible] पहन कर रणभूमि में इस प्रकार टूट पड़े कि जैसे ढ़ाल के ऊपर तीतर टूट पड़ता है इधर [illegible] [illegible] [illegible]

छूटे तब कितनेक को जकड़ कर बांध लिया उनका सब सराजाम छीन लिया बस चारों ओर से विजय भेरी बाजने लगी जिसको देखकर रावजी को बहुत हर्ष हुआ और यह विश्वास हो गया कि जितनी वीरता एवं कार्य कुशलता महाजनों में है उतनी क्षत्रियों में नहीं है जिन म्लेच्छों को पकड़ लिये थे वे दांतों में तृण लेकर हिन्दुओं की गऊ बन गये कि उनको बन्धन मुक्त कर छोड़ दिये। तत्पश्चात महाजनो की वीरता के उपलक्ष में रावहुल्ला ने कईएकों को जागीरियों और कईएकों को इनाम देकर उनको जो पद पहले थे उन पर नियुक्त कर दिये।

एक समय रावहुल्ला आचार्य सिद्धसूरि के व्याख्यान में आया था सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे आपने महाराजा उत्पलदेव मंत्री ऊहडादि का इतिहास सुनाते हुए उन की परम्परा के भूपतियों मंत्रियों द्वारा की हुई जैनधर्म की सेवा का खूब जोशीली वाणी द्वारा वर्णन किया और साथ में यह भी फरमाया कि जैनधर्म वीरों का धर्म है और वीर ही मोहनीय कर्म रूपी पिशाच का पराजय कर मोक्ष रूपी अक्षय स्थान को प्राप्त कर सकते हैं इत्यादि रावहुल्ला समझ गया कि मेरी भूल हुई है मैंने वाममार्गियों के धोखे में आकर अपना ही अहित किया है खैर जो हुआ सो हुआ पर अब तो उस भूल को सुधार लेनी चाहिये उसी व्याख्यान में उठ कर रावहुल्ला ने सूरिजी के सामने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि पूज्य गुरुदेव आप श्री का फरमाना सत्य है कि संगत से जीव सुधरता है और संगत से जीव विगड़ता है उसमें मैं भी एक हूँ आपके पूर्वजों ने हमारे पूर्वजों को सत्यमार्ग की राह पर लगाये पर मेरे जैसे मोहित ने उस राह को छोड़ अन्य पन्थ का अवलम्बन कर सचमुच ही भूल की है खैर फिर भी आप जैसे परोपकार परायण महात्मा जगत के और विशेष मेरे भले के लिये ही यहाँ पधारे यह मेरा अहोभाग्य है। कृपा कर मुझको घोर नरक में पड़ते हुए को आप बचा लीजिये, अर्थात् मुझे जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दीजिये।

सूरिजी ने कहा कि शास्त्रकार फरमाते हैं कि "वत्थु सहावोधम्मों" वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहा जाता है थोड़ी देर के लिये उसमें भले विकार हो जाय पर आखिर वस्तु अपने धर्म को प्राप्त किये बिना नहीं रहती है आप भी उन वीरों की सन्तान हो कि जिन्होंने पूर्ण शोध खोज के पश्चात् आत्मकल्याण के लिये न रखी परम्परा की परवाह नरखी लोकापवाद की दाक्षिन्यता और न रखा, पाखण्डियों का लिहाज उन्होंने तो निडरता के साथ जैनधर्म को स्वीकार कर लियाथा इतना ही क्योंपर उन्होंने तो चारों ओर डंकेकी चोट जैन धर्म का प्रचार भी किया था जिसका ही फल है कि आज मरुधर सदाचार एवं सुख शान्ति और अहिंसामें पूर्ण बन गया है इतना ही क्यों पर मरुधर के आस पास के प्रदेशों में भी मरुधरों का काफी प्रचार हुआ है मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप बिना कुच्छ कोशिश के अपने आत्मा का कल्याण करने को निडरता पूर्वक तैयार हो रहा हूँ।

रावजी! पूज्यवर! इसमें कोशिश की तो जरूरत ही क्या है दूसरा आपका उपदेश ही इतना प्रभावोत्पादक है कि सुनने वालों का वज्र जमा हृदय हो तो भी पिगले बिना नहीं रहता है यदि कोई सहृदय व्यक्ति तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो उसको भी भू आसमान सा अन्तर मालूम होगा कि कहाँ अहिंसा प्रधान धर्म और कहां मांस मदिरा एवं व्यभिचार रूप घृणित धर्म अतः ऐसा कौन मूर्ख होगा कि अमूल्य रत्न मिलने पर भी कंकर को पकड़ रखता हो ? अतः आपश्री कृपा कर मेरे जैसे पामरप्राणी का उद्धार करावें।

सूरिजी ने उस आम सभा के अन्दर रावहुल्ला और उनके कई साथियों को पूर्व सेवित मिथ्यात्व की आलोचना करवा कर देवगुरुधर्म का स्वरूप बतला कर वासक्षेप के विधि विधान से जैन धर्म की दीक्षा दे दी। इससे जैनधर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ और जो पाखण्डियो का प्रचार बढ़ता जा रहा था वह रुक गया। इतना ही क्यो पर रावहुल्ला ने तो अपने राज मे कोई जीव की हिंसा न करे ऐसा अमर पट्टा भी पिटवा दिया। अहा-हा कए सेतार्धांश को प्रतिबोध करने से कितने जीवों का कल्याण हो सकता है जिसके लिये रावहुल्डा का उदाहरण हमारे सामने विद्यमान है।

रावहुल्ला सूरिजी का परम भक्त बन गया एक समय श्रीसंघ के साथ रावहुल्ला ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! अब आप की वृद्धावस्था है कृपा कर यह चतुर्मास यही करावें और बाद भी आप यही स्थिरवास करावें कि आप के विराजने से हम लोगों को बड़ा भारी लाभ होगा ? इस पर सूरिजी ने फरमाया कि आपकी इतनी आग्रह है तो इस चर्तुमास की स्वीकृति मैं दे सकता हूँ आगे के लिये जैसी क्षेत्र स्पर्शना। खैर अभी तो श्रीसंघ ने इतने से ही संतोष कर लिया।

सूरिजी का चतुर्मास उपकेशपुर में मुकर्रर होने से यों तो सकल श्रीसंघ को बड़ा ही हर्ष था पर रावहुल्ला के तो हर्ष एवं उत्साह का पार तक नहीं था और वे हर प्रकार से जैनधर्म की उन्नति एवं प्रचार के लिये कोशिस कर रहे थे। पर कुदरत कुछ और ही घटना घड़ रही थी जिसकी सूचना देने के लिये देवी सहायिका ने एक समय सूरिजी की सेवा में आकर परोक्षपने वन्दना के साथ अर्ज की कि प्रभो ! आप शासन के बड़े ही प्रभाविक आचार्य हैं। आपने अपने परोपकारी जीवन में बहुत उपकार किया है विशेष इस उपकेशपुर पर तो आपका महान उपकार हुआ है परन्तु कहते हुए दुःख होता है कि अब आपका आयुष्य केवल एक मास और १३ दिन का है अतः आप अपने पट्टधर बना दीजिये। देवी के वचन सुन कर सूरिजी ने कहा देवीजी आप ने मुझे सावचेत कर बड़ा ही उपकार किया है मेरे शिष्यों में उपाध्याय विनय सुन्दर इस पद के योग्य है और उसको ही मैं मेरे पद पर सूरि बनाना चाहता हूँ इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा पूज्यवर ! आपने जो निश्चय किया वह बहुत ही अच्छा है उ० विनय सुन्दर सर्व-गुण सम्पन्न एवं इस पद की जुम्मेवारी संभालने के लिये समर्थ भी है कृपा कर आप तो इनको ही सूरि बना दीजिये। बस दूसरे दिन सूरिजी ने श्रीसंघ को सूचित कर दिया कि मेरी इच्छा विनयसुन्दर को सूरि बनाने की है। श्रीसंघ इतना तो जानता ही था कि इस गच्छ में आचार्य बनाया जाता है वह प्रायः देवी की सम्मति से ही बनाया जाता है पर देवी ने इस चतुर्मास के अन्दर यह सम्मति क्यों दी होगी अतः संघ ने प्रार्थना की कि गुरुदेव ! उ० विनयसुन्दर को आचार्य पद दिया जाय इससे तो श्रीसंघ को बहुत खुशी है पर इस प्रकार चतुर्मास के अन्दर इतनी जल्दी से कार्य होना कुछ विचारणीय है अतः चतुर्मास के पश्चात् किया जाय तो हम लोगों को विशेष लाभ मिलेगा ? सूरिजी ने फरमा दिया कि मेरा आयुष्य नजदीक है अतः यह कार्य मेरे हाथों से शीघ्र ही हो जाना चाहिये। श्रीसंघ और रावहुल्ला बहुत [illegible] पर इनका उत्साह भी तो क्या था। श्रीसंघ ने जिन मन्दिरों मे अष्टान्हिका महोत्सवादि [illegible] यह सब विधान किया और महोत्सव हुआ। पूर्णिमा के शुभ दिन में उ० विनयसुन्दर को आचार्य पद [illegible] अन्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित आदि पदवियें प्रदान कीं। उ० विनयसुन्दर का नाम कक्क

सूरि रखा गया तत्पश्चात् सूरिजी ने सलेखना एवं अनशन व्रत धारण कर लिया और वि० सं० ९५८ की भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया—

सूरिजी के स्वर्गवास से उपकेशपुर में सर्वत्र शोक के काले बादल छा गये थे श्रीसंघ निरानन्द हो गया था रावहुल्ला की ओर से सूरिजी के शरीर को विमान में बैठा कर शानदार जुलूस निकाला तथा केवल चन्दन एवं अगर तगर के काष्ट से आग्निसंस्कार किया और उच्छला वगैरह में पांचलक्ष द्रव्य व्यय किया था सूरिजी के शरीर के अग्नि संस्कार के समय सर्वत्र केशर की बरसात हुई और जलती हुई चिता पर पंच वर्ण के पुष्पों की वर्षा भी हुई थी देवी सच्चायिका द्वारा श्रीसंघ को यह भी ज्ञात हो गया कि सूरीश्वरजी का जीव सौधर्म देवलोक में महाऋद्धिवान् दो सागरोपम की स्थिति वाला देवता हुआ है।

जब आचार्य श्री के मृत शरीर का अग्नि संस्कार कर सकल श्रीसंघ आचार्य कक्कसूरि के पास आये उस समय आचार्य कक्कसूरि बड़े ही उदासावस्था में बैठे हुए थे कि उनको संघके आने की खबर तक न रही। साधु यद्यपि निरागी एवं निस्नेही होते हैं पर छद्मस्थों का स्वभाव होता है कि वे गुरु विरह को सहन नहीं करते हैं मुनि सिंहा को महावीर के बीमारी की खबर मिलते ही वह रोने लग गया गौतम स्वामी को महावीर निर्वाण समय कई प्रकार के विलापात करना पड़ा कालकाचार्य; साध्वी सरस्वती के कारण पागल से बन गये इसी प्रकार आचार्य कक्कसूरि का अपने गुरु के विरह से उदासीन वन जाना स्वभाविक ही था पहले तो श्रीसंघ ने आचार्य कक्कसूरि को कहा गुरु महाराज आज हम शासन का एक जगमगाता सितारा खो बैठे हैं जिसका महान् दुःख है और वही दुःख आपको भी है परन्तु यह बात निजोर है इसमें किसी की भी चल नहीं सकती है तीर्थंकार महावीर और आचार्यरत्नप्रभसूरि जैसे महापुरुष भी चले गये काल ऐसा निर्दय है कि इसको किसी की भी दया नहीं आती है इत्यादि श्रीसंघ के शब्द सुन सूरिजी सावधान होकर श्रीसंघ को धैर्य एवं शान्ति का उपदेश देकर अन्त में मंगलीक सुनाया और संघ उदास अपने अपने स्थान पर चला गया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज के शासन में एक निधानकुशल नामक प्रभाविक उपाध्याय थे आचार्य देवगुप्त सूरि ने आपको उपाध्याय पदार्पण किया था आपके शिष्य समुदाय में धीरकुशल और राजकुशल नाम के दो धुरंधर विद्वान और विद्यावली मुनिथे आपकी योग्यता पर मुग्ध होकर आचार्य सिद्धसूरिने आप दोनों को पण्डित पद से भूषित किये थे आपका विहार क्षेत्र प्रायः सिन्ध भूमि था इस प्रांत में आपका जबर्दस्त प्रभाव भी था क्या राजा और क्या प्रजा आपको अपना गुरु मान कर अच्छा सत्कार किया करते थे बात भी ठीक है चमत्कार को सर्वत्र नमस्कार हुआ ही करता है। इन युगल मुनियों ने सिन्ध धरा में भ्रमन कर अनेक मांस मदिरा सेवियों को उपदेश एवं चमत्कारों से जैन धर्म के उपासक बना कर जैनों की संख्या में वृद्धि की।

जिस समय पण्डितजी रेणुकोट नगर में विराजते थे उस समय महाराष्ट्र प्रान्त का वादी कुन्जर केसरी बिरद धारक एक वादी विजय पताका के चिन्ह को लेकर सिन्ध धरा में पहुँचा और घूमता घूमता रेणुकोट में आया उसके साथ में खास आडम्बर भी था राजा ने आपका अच्छा स्वागत किया। वादी ने राजा से कहा कि आपके नगर में यदि कोई वादी हो तो लाइये उसके साथ वाद विनोद करें जिससे आपको महाराष्ट्र के सार्व भौम्य वादियों का ज्ञान हो जाय। राजा ने अपने गुरु धीर कुशल व राजकुशल से प्रार्थना

भी की पण्डितजी ने कहा—नरेश ! हम शास्त्रार्थ करने को तैय्यार हैं पर याद रहे कि वाद का विषय धर्म से सम्बन्ध रखने वाला हो कारण इससे उभयपक्ष को तत्त्व निर्णय ही का समय मिलता है और सब तरह से हितावही सिद्ध होता है । राजा ने कहा—ठीक है, मैं जाकर उनसे निर्णय कर लूँगा । राजा वहाँ से उठकर वादी के यहां आया और कहने लगा—यहां पर वाद करने वाले पण्डितजी तैय्यार हैं, पर वे शुष्कवाद न करके धार्मिक वाद की करेंगे । वादी ने पहिले तो कुछ आनाकानी की पर आखिर उन्होने धर्मवाद करना स्वीकार कर लिया । इस शास्त्रार्थ निर्णय के लिये कई योग्य पुरुषों को मध्यस्थ मुकर्रर किये गये ।

राजा ने दोनों ओर सम्मान पूर्वक आमन्त्रण पत्र भेज दिया । इधर वादी, प्रतिवादी, के आने के पूर्व ही नागरिकों एवं दर्शको से सभा खचाखच भर गई कारण, जनता को वादियों की विद्वत्ता एवं वाद विवाद की कुशलता देखने की पूर्ण उत्कण्ठा थी ।

इधर तो पं० वीरकुशल, राज कुशल अपने शिष्यों एवं भक्तों के साथ और उधर वादी ने अपने आडम्बर के साथ राज सभा मे प्रवेश किया और पूर्व निर्दिष्ट स्थानों पर अपने २ आसन लगाकर बैठ गये ।

वादी ने मंगलाचरण में ही शुष्कवाद करना प्रारम्भ किया, इस पर पं० राजकुशल ने कहा—ऐसे शुष्कवाद से आपका क्या प्रयोजन और क्या लाभ सिद्ध होने वाला है ? वाद ऐसा कीजिये जिससे जनता को तत्त्ववाद का ज्ञान हो एवं सब ओर से लाभ पहुँचे । अतः शास्त्रार्थ मे इस विषय की चर्चा की जाय कि आत्मा से परमात्मा कैसे हो सकते हैं ?

वादी ने कहा—आत्मा है या नहीं हम इस विषय का शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते हैं हम तो केवल चमत्कार वाद ही करना चाहते हैं । या तो आप इसको स्वीकार करो या अपनी पराजय मान लो ।

पं० राजकुशल ने कहा—कि हम पहिले ही बता चुके हैं कि धार्मिक विषय के विवाद मे जन समाज सत्य धर्म की ओर प्रवृत्त होता है जिससे जनता का कल्याण और धर्म का मान बढ़ता है । इन्द्रजालियो की भांति भौतिक चमत्कार बतला कर जनता को खुश करना उनमे मानपत्र लेना या कौतुक बता कर द्रव्य एकत्रित करना, इनमें आत्मिक क्या लाभ है ?

वादी—यह तो आपकी कमजोरी है । मालुम होता है आप जनता के लिये भारभूत ही हैं, यदि ऐसा ही है तो आप स्पष्ट शब्दो में क्यो नहीं कह देते हो कि हम वाद विवाद करने को तैय्यार नहीं हैं । शायद आप अपनी पराजय स्वीकार करने मे शरमाते हैं ?

पं० राजकुशल—हम कमजोर नहीं हैं, हमारे पास सब कुछ है पर हमें [illegible] । कारण, आज कल, प्रपञ्च द्वारा जनता को धोखा देकर जिस ढंग को रचा है व भौतिक चमत्कारों से जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उस आजीविका का भंग हो जाने से कहीं दुःखी न हो [illegible] ।

वादी ने कहा—ऐसा वितण्डावाद करना विद्वानों के लिये उचित नहीं है [illegible] आड़ में भद्रिक जनता को अपनी जाल में फंसाने का एक मात्र सरल उपाय है । [illegible] करते हैं कि न तो आत्मा है और न आत्मा से परमात्मा ही बनता है । दूसरी बात, इस [illegible] से जनता को लाभ ही क्या है ? यह तो भिन्न भिन्न मत वालों के [illegible] के लिये

भिन्न भिन्न कल्पना कर डाली है । यदि आपके अन्दर थोड़ी भी योग्यता हो तो जनता के सामने कुछ चमत्कार बतलाइये ।

पं० राजकुशल ने कहा—बड़ा ही अफसोस है कि आप जैसे विद्वानों की ऐसी मान्यता कि न आत्मा है और न आत्मा से परमात्मा ही बनता है फिर आत्मा को स्वीकार किये बिना चमत्कार की आशा रखना आकाश कुसुम वत ही समझना चाहिये । कारण 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' चमत्कार आत्मा से पैदा होता है, जब आत्मा ही नहीं तो चमत्कार कैसे हो सकता है ? महात्माजी ! या तो आपको आत्मा के विषय में पर्याप्त ज्ञान नहीं है या जान बूझ कर धोखा खा रहे हैं । यदि ऐसे शब्द किसी मूर्ख एवं अज्ञानी के मुंह से निकल जाते तो क्षतव्य थे पर आप जैसे विजयाकांक्षी विद्वानों के मुंह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते हैं । इस प्रकार पण्डितजी के निडरता पूर्वक वचनों को सुनकर सब लोग पण्डितजी के सामने टकटकी लगाकर देखने लगे । इतना ही क्या ? वादी स्वयं विचार सागर में निमग्न हो गया । शायद वादी के लिये यह एक भीषण समस्या बन गई होगी कि इसका क्या उत्तर दिया जाय ?

कुछ समय के पश्चात् मौन त्याग कर वादी ने कहा—मुझे दुःख इस बात का है कि स्वयं विवाद के लिये अयोग्य होते हुए भी दूसरों की मीमांसा करने जा रहे हैं । महात्माजी ! केवल वाग्युद्ध से ही मनुष्य को विजय नहीं मिलती है पर संसार में कुछ करके बतलाने से ही दुनियां को विश्वास होता है । यदि आप में कुछ योग्यता हो तो लीजिये मैं वाद का प्रथम प्रयोग करता हूँ । आप इसका प्रतिकार कीजिये । ऐसा कहकर वादी ने सभा में जितना अवकाश था उतने स्थान पर बिच्छुओं का ढ़ेर कर दिया । इसको देखकर सभा आश्चर्य के साथ भय भ्रान्त हो गई ।

पण्डितजी ने अपनी विद्या से मयूर बनाये कि बिच्छू को पकड़ २ कर आकाश में ले गये जिसको देख वादी को कोप हुआ उसने सर्प बनाये पण्डितजी ने नकुल बनाये कि सर्पों का संहार कर दिया । वादी ने मूषक बनाये पण्डितजी ने मंझार बनाये । वादी ने व्याघ्र बनाये पण्डितजी ने सिंह बनाये इत्यादि वादी ने जितने प्रयोग किये पण्डितजी ने उन सब का प्रतिकार कर दिया जिसको देख वादी का मान गल गया और राजा प्रजा को गुरुमहाराज के लिये बड़ी खुशी हुई कि हमारे देश में एवं हमारे धर्म में ऐसे-ऐसे विद्वान विद्यमान हैं कि विदेशी वादियों का पराजय कर सकते हैं ।

बस ! सभा का समय आ गया पण्डितजी की विजय घोषणा के साथ सभा विसर्जन हुई । वादी के दिल में कुच्छ भी हो पर ऊपर से पण्डितजी का सत्कार करने के लिये पण्डितजी के उपाश्रय तक पहुँचाने को गया पण्डित वीरकुशल ने वादी का सत्कार किया और साथ में आत्म कल्याण के लिये उपदेश भी दिया कि इस प्रकार की विद्याओं से जन मन रंजन के अलावा कुच्छ भी लाभ नहीं है यदि जितना परिश्रम इन कार्यों में किया जाता है उतना आत्म कल्याण के लिये किया जाय तो जीव सदैव के लिये पूर्ण सुखी बन जाता है इत्यादि । वादी कई अर्सा तक रेणुकोट में ठहर कर पण्डितजी के पास से आत्मीय ज्ञान हांसिल कर आखिर अपने छात्रों के साथ पण्डितजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली जिसका नाम सत्यकुशल रखा तदानन्तर पण्डितजी को लेकर महाराष्ट्रीय प्रान्त में पं०

और अपनी विद्या एवं जैनधर्म के सिद्धान्त का उपदेश कर अनेक भव्यों को जैन धर्म की दीक्षा दी सूरिजी के शासन में ऐसे अनेक मुनि रत्न थे वे सदैव शासोन्नति किया करते थे।

आचार्य सिद्धसूरि ने अपने ३८ वर्ष के शासन में जैनधर्म की कीमती सेवा की उन्होंने पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया अनेक भावुकों को दीक्षा दी कई अजैनों को जैन बनाये जिसमें सेठ सालग और रावहुल्ला का वर्णन पाठक पढ़ चुके हैं फिर साधारण जनता की तो संख्या ही कितनी होगी। तथा कई वार यात्रार्थ तीर्थों के संघ और अनेक मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई इन सब बातों का पट्टावली आदि ग्रन्थों के विस्तार से वर्णन मिलता है उनके अन्दर से मैं यहाँ कतिपय नामोल्लेख कर देता हूँ जिससे पाठक आसानी से समझ सकेंगे कि पूर्वाचार्य के मन मन्दिर में जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति करने की कितनी लग्न थी क्या वर्तमान के सूरीश्वर उनका थोड़ा भी अनुकरण करेंगे ?

आचार्य श्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ।

१—उपकेशपुर	के	श्रेष्टिगोत्र	शाह	जेहल ने	सूरिजी०	दीक्षा
२—माडव्यपुर	के	विरहटगो०	,,	खुमाण ने	,,	,,
३—क्षत्रीपुरा	के	भूरिगो०	,,	देशल	,,	,,
४—आसिकादुर्ग	के	श्रेष्टिगो०	,,	नारा ने	,,	,,
५—खटकुंप नगर	के	आदित्यनाग	शाह	नारद ने	,,	,,
६—मुग्धपुर	के	बाप्पनाग०	,,	रावल ने	,,	,,
७—नागपुर	के	चोरलिया०	,,	पुरा ने	,,	,,
८—पद्मावती	के	सुचंतिगो०	,,	खूमा ने	,,	,,
९—हर्षपुर	के	मल्लगो०	,,	देदा ने	,,	,,
१०—कुर्चपुर	के	चरडगो०	,,	नाथा ने	,,	,,
११—शाकम्भरी	के	बलदागो०	,,	दुधा ने	,,	,,
१२—मेदनीपुर	के	सुघड़ गो०	,,	पोला ने	,,	.
१३—फल वृद्धि	के	रांका जाति	,,	हीरा ने	.	,,
१४—विराटनगर	के	ततभद्रगो०	,,	लाला ने	,,	,,
१५—मथुरापुरी	के	करणाटगो०	,,	कुंभा ने	,,	,,
१६—बनारस	के	पोकरणा जाति	,,	मल्हण ने	,,	.
१७—चाबेली	के	कुलभद्रगो०	,,	नागदेव ने	.	.
१८—जाबोली	के	श्रीश्रीमाल	,,	पारस ने	,,	.
१९—लोहाकोट	के	श्रेष्टिगो०	,,	हरिदेव ने	.	.
२०—शालीपुर	के	भाद्र गौत्र	,,	[illegible] ने	,,	.
२१—चानदेल	के	चिंचटगो०	,,	नागड़ ने	,,	.

२२—वीरपुर के भूरि गौ० ,, पुनड़ ने ,, ,,
२३—उचकोट के कनोजिया ,, पोमा ने ,, ,,
२४—हाप्पा के डिडुगौत्र ,, लाखण ने ,, ,,
२५—शिवनगर के लघुश्रेष्टि ,, रणदेव ने ,, ,,
२६—मुजपुर के कुमट गौ० ,, पोलाक ने ,, ,,
२७—नागणा के करणाट्गौ० ,, अरुणदेव ने ,, ,,
२८—शत्रुंजय के बलाहा गौ० ,, हर्षदेव ने ,, ,,
२९—वर्द्धमानपुर के मोरख गौ० ,, चुड़ा ने ,, ,,
३०—खोखल के चोरलिया० ,, गेंदा ने ,, ,,
३१—भरौंच के बाप्प नाग गोत्र ,, गोल्ह ने ,, ,,
३२—सोपार के रांका जाति ,, पीरोज ने ,, ,,
३३—लोहारा के श्रेष्टि गौ० ,, फूवा ने ,, ,,
३४—मोखली के अदित्यनाग० ,, पाता ने ,, ,,
३५—कुलोरा के सुचंतीगौ० ,, जेकरण ने ,, ,,
३६—उज्जैन के बोहराजाति ,, नायक ने ,, ,,
३७—माण्डवदुर्ग के श्रीमाल वंश ,, जाकण ने ,, ,,
३८—चन्द्रावती के प्राग्वट वंश शाह वोदु ने ,, ,,
३९—चंदेरी के प्राग्वट वंश ,, राजा ने ,, ,,
४०—चापड के क्षत्री वंश वीर खेतसी ने ,, ,,
४१—कोरंटपुर के ब्राह्मण ,, शिवदास ने ,, ,,
४२—सत्यपुर के श्रीवंश जाति शाह करमण ने ,, ,,
४३—पाल्हिका के सुचंति गौत्र ,, भैंसा ने ,, ,,
४४—चरपट के कुलभद्र गौ० ,, सांजण ने ,, ,,

इनके अलावा पूर्व एवं दक्षिण में भी सूरिजी के चरण कमलों में बहुतसी दीक्षाएँ हुई थी तथापि यहाँ पर तो प्राय: उपकेश वंशियों की जो वंशावलियों में नामावली दी है उनके थोड़े से नामोल्लेख किये है:—

आचार्यश्री के शासन में तीर्थों के संघादि सद्कार्य:—

१—पाल्हिक नगरी से सुचंति गौ० शाह देदेने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला
२—कोरंटपुर से प्राग्वट नेना ने ,, ,, ,,
३—चन्द्रावती से सेठ सालग ने श्री सम्मेत शिखरजी का ,, ,,
४—पद्मावती से श्रेष्टि गौ० मेहराज ने श्री शत्रुंजय तीर्थ का ,, ,,
५—नागपुर से आदित्यनाग० शाह धन्ना ने ,, ,, ,, ,,
६—मेदनीपुर से कुमट गौ० लैहसी ने ,, ,, ,, ,,

७—उज्जैन नगरी से बाप्पनाग गौ० गोकल ने ,, ,, ,, ,,

८—आघाट नगर से चिंचट गौ० पेथा ने ,, ,, ,, ,,

९—कीराटकुंप से श्रेष्टि गौ० शाह झुंघा ने ,, ,, ,, ,,

१०–खटकुंप से सुचंती गौ० शाह चैना ने ,, ,, ,, ,,

११—वीरपुर नगर से भाद्र गौ० शाह सांकला ने ,, ,, ,, ,,

१२—स्तम्भनपुर से श्रीमाल शाह पूरण ने ,, ,, ,, ,,

१३—उपकेशपुर के श्रेष्टि गौत्रीय रावनारायण ने दुकाल मे शत्रुकार दिया

१४—चन्द्रावती का प्राग्वट काना ने दुकाल में शत्रुकार दिया

१५—सत्यपुर के भूरि गौ० भावडा ने दुकाल में शत्रुकार दिया

१६—भिन्नमाल के श्रीमाल केरा की पुत्री हाला ने एक तालाब खुदाया

१७—नागपुर के आदित्यनाग चाहड की स्त्री पहाडी ने एक तालाब बनाया

१८—उपकेशपुर के बाप्पनाग ऊमा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई

१९—माडव्यपुर के डिडू गौ० देपाल संग्राम में काम आया ,, ,, ,,

२०—मुग्धपुर के सुचंती गौ० मंत्री मोकल ,, ,, ,, ,,

२१—कोरंटपुर के प्राग्वट० टावा ,, ,, ,, ,,

२२—भिन्नमाल के चरड गौ० लाढ़क ,, ,, ,, ,,

२३—चन्द्रावती के भाद्र गौ० जैवा ,, ,, ,, ,,

२४—चित्रकोट के कुमट गौ० मूकार ,, ,, ,, ,,

२५—आघाट नगर के बलाह गौ० शाह भादू ,, ,, ,, ,,

२६—जावलीपुर के श्रेष्टि गौ० शाह नोंधण ,, ,, ,, ,,

२७—नारदपुरी के प्राग्वट मंत्री जिनदास ,,

इत्यादि पट्टावलीकारो ने अनेक उदार नररत्नों की उदारता और वीर योद्धों की वीरता का पूर्ण परिचय करवाया है इससे पाठक समझ सकेंगे कि पूर्व जमाने का जैनसमाज वर्तमान जैनसमाज के जैसा नहीं था पर वे जिस काम को हाथ में लेते थे उसको सर्वांग सुन्दर बना देते थे धन में तो वे कुबेर ही कहलाते थे तब युद्ध में राम लक्ष्मण का कार्य कर बतलाते थे व्यापार में तो वे इतने सिद्ध हस्त थे कि इनकी बराबरी करने वाला संसार भर में खोजने पर भी शायद ही मिला सकता था ? यही कारण है कि इस प्रकार से न्यायोपार्जित द्रव्य को वे सद्कार्य में खुल्ले दिलसे व्यय किया करते थे–इस समय धर्म कार्यों में मन्दिर बनाना, संघ निकालना, दुकाल आदि में देश वासी भाइयों की सहायता करना ही विशेष समझा जाता था अब यहाँ पर इन उदार पुरुषों की उदारता का थोड़ा परिचय करवा दिया जाता है ।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं—

१—शाकम्भरी के भाद्रगोत्रीय शाह ऊमर के [illegible] [illegible] प्रतिष्ठा कराई

२—पोतनपुर के श्रेष्ठि गौ० ,, [illegible] के [illegible] [illegible] ,, ,,

३—मेदनीपुर के अदित्यना० ,, सतरा के बनाये ,, ,, ,,
४—जोगनीपुर के सुचंती गौ० ,, खूमाण के ,, महावीर० ,, ,,
५—नारदपुरी के सुघड़गौत्री ,, दुर्गा के ,, महावीर० ,, ,,
६—कंटक के अदित्यानगागौ० ,, मांदा के ,, ,, ,, ,,
७—बोलाकी के श्रेष्टिगौ० ,, सांगण के ,, ,, ,, ,,
८—अरहणी के भूरिगौ० ,, सहजपाल के ,, ,, ,, ,,
९—मादरी के भाद्रगौ० ,, यशोदित्य के ,, ,, ,, ,,
१०—जोवासा के कुमटगौ० ,, यशपाल के ,, आदीश्वर ,, ,,
११—वल्लभीपुरी के कनोजिया० ,, मुकन्द के ,, ,, ,, ,,
१२—राजवाड़ी के डिडूगौ० ,, मथुरा के ,, महावीर ,, ,,
१३—उचकोट के बाप्पनाग० ,, रामदेव के ,, ,, ,, ,,
१४—मारोटकोट के चोरड़िया जाति ,, राजसी के ,, ,, ,, ,,
१५—धौलौना के रांकारजाति ,, ऊमा के ,, ,, ,, ,,
१६—मानपुर के पोकरणा जाति ,, अर्जुन के ,, ,, ,, ,,
१७—रत्नपुर के लघुश्रेष्टि ,, सोमा के ,, ,, ,, ,,
१८—रावोली के तप्तभट्टगौ० ,, शादूला के पार्श्वनाथ ,, ,,
१९—करहनेर के बाप्पनागगौ० ,, पन्ना के ,, ,, ,,
२०—दान्तिपुर के बलाहगौ० ,, मन्ना के ,, ,, ,,
१२—विरोणी के मोरक्षगौ० ,, धीरा के बिमल० ,, ,,
२२—विराटनगर के भूरिगौ० ,, कमला के ,, ,, ,,
२३—नागपुर के विरहटगौ ,, आइदान के महावीर ,, ,,
२४—पतोलिया के कुलभद्रगौ० ,, आसा के ,, ,, ,,
२५—भावनीपुर के प्राग्वटवंशी ,, कुप्पा के ,, ,, ,,
२६—सत्यपुर के प्राग्वटवंशी ,, जसा के ,, ,, ,,
२७—कोरंटनगर के श्रीमालवंशी ,, काल के

इनके अलावा और भी कई प्रान्तों में कइ मुनियों द्वारा विशाल मन्दिरों की एवं घर देरासर की प्रतिष्ठाएँ हुई थी क्योंकि वह जमाना ही ऐसा था कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में छोटा बड़ा एक मन्दिर बनाना अवश्य चाहता था:—

पट्ट पैंतीसवें सिद्धसूरीश्वर, विरहटगौत्र वर भूषणथे ।
चन्द्र स्पर्द्धा कर नहीं पाता, क्योंकि उसमें दूषणथे ॥
सालगसेठ और वीर हुल्लाकी, जैनधर्म में दीक्षित किये ।
क्रान्ती कारी उद्योत किया गुरु, युगप्रधान बहुलाभ लिये ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के ३५ वे पट्टधर आचार्य सिद्धसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए ।

भगवान महावीर की परम्परा—

२१ आचार्य मानतुंग सूरि के पट्ट पर आचार्य वीर सूरि हुए। आप श्री के जीवन के विषय का विशेष विवरण पट्टावलियों एवं प्रबंधो में नहीं मिलता। हां, इतना अवश्य उल्लेख है कि आचार्य वीर सूरि ने नागपुर में भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा कर अपनी धवल यश चन्द्रिका को चतुर्दिक मे विस्तृत की। इस घटना का समय वीर वंशावली में विक्रम स० ३०० का लिखा है।

नागपुरे नमिभवने-प्रतिष्ठया महित पाणि सौभाग्यः
अभवद्वीराचार्य स्त्रीभिःशतैः साधिके राज्ञः ॥ १ ॥

इस प्रतिष्ठा के समय आपके द्वारा बहुत से अजैनों को जैन बना कर उपकेश वंश में मिलाने का भी उल्लेख है, इससे पाया जाता है कि, आचार्य वीरसूरि जैन धर्म के प्रचारक महाप्रभाविक आचार्य हुए थे।

२२ आचार्य वीर सूरि के पट्ट पर आचार्य जयदेवसूरि हुए। आप श्री बड़े ही प्रतिभाशाली एवं जैन धर्म के प्रखर प्रचारक थे। आचार्य श्री ने रणस्थंभोर नगर के उत्तुंगगिरि पर भगवान् पद्मप्रभ तीर्थंकर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई, तथा देवी पद्मावती की मूर्ति की भी स्थापना की। आपका विहार क्षेत्र प्रायः मरुधर ही था। आपश्री ने अपने प्रभावशाली उपदेशामृत से बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेशवंश में सम्मिलित किये। उस समय जैसे उपकेशगच्छाचार्य एवं कोरंटगच्छाचार्य अजैनों की शुद्धि कर, जैन धर्म की दीक्षा देकर उपकेश वंश की संख्या बढ़ा रहे थे वैसे ही, वीर सतानिये भी इसमें सतत प्रयत्नों द्वारा हाथ बटा रहे थे ऐसा, उपरोक्त आचार्यों के संक्षिप्त जीवन से स्पष्ट ज्ञात होजाता है।

२३ आचार्य जयदेव सूरि के पट्टधर आचार्य देवानंद सूरि हुए। आप भी अतिशय प्रभावशाली थे। आपके चरण कमलों की सेवा कई राजा महाराजा ही नहीं अपितु कई देवी देवता भी किया करते थे। आपश्री ने देव (की) पट्टन में श्रीसघ के आग्रह से भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई साथ ही ही कच्छ सुथरी ग्राम के जैन मंदिर की प्रतिष्ठा भी बड़े ही समारोह के साथ करवाई। इन शुभवसरों पर बहुत से क्षत्रिय वगैरह को जैन बना कर उपकेशवंश मे सम्मिलित किये।

२४ आचार्य देवानंद सूरि के पट्ट पर आचार्य विक्रम सूरि हुए। आप धर्म प्रचार करने में विक्रमशाली अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान और कुरूढ़ियो का उन्मूलन करने में बड़े ही वीर थे। आप श्री का विहार क्षेत्र मरुधर, मेदपाट, आवंती, लाट और सौराष्ट्र था। एक समय आप गुर्जर प्रान्त में विहार करते हुए खरसाड़ी ग्राम जो सरस्वती नदी के किनारे था, पधारे। वहां आपने निर्वृत्ति के स्थान में रह कर सरस्वती देवी का आराधन प्रारम्भ किया। इस आराधन काल में आप श्री ने [illegible] पूरे दो मास तक किया। जिससे देवी सरस्वती ने प्रसन्न हो आचार्य श्री के चरणों में नमस्कार किया और कहा आचार्य देव! आपकी भक्ति पूर्ण आराधना से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूं और आपको वरदान देती हूं कि [illegible] में आपकी सदैव विजय होगी। आचार्य श्री ने देवी के वरदान को तथास्तु कह कर स्वीकार कर लिया। आचार्य श्री के तपः प्रभाव से [illegible] पीपल का वृक्ष जो वर्षों से [illegible] होगया। इससे जन समाज में आचार्य श्री के चमत्कार की खूब प्रशंसा होने लगी। तत्पश्चात् आचार्य श्री ने [illegible] आदि कई स्थानों में विहार कर, अनेक अजैनों को जैन धर्म की [illegible]

देकर, उपकेशवंश (महाजन संघ) में मिला कर जैनियों की संख्या में खूब वृद्धि की। आप श्री ने अपने ज्ञान रूपी किरणों का प्रकाश चारो ओर फैलाते हुए, अज्ञानांधकार का नाश कर धर्म के प्रचार क्षेत्र को सुविशाल बनाया। आप श्री के इतने प्रभावशाली होने पर भी आपके जीवन के विषय के साहित्य का तो अभाव ही है। इस (साहित्याभाव) का कारण (मुसलमानों की धर्मान्धता रूप) हम ऊपर लिख आये हैं।

२५ आचार्य विक्रम सूरि के पट्ट पर आचार्य नरसिंह सूरि धुरंधर आचार्य हुए। आप श्री ने कई प्रान्तों में विचर कर जैन धर्म का खूब प्रचार किया। एक समय आप नरसिंहपुर नगर में पधारे। वहां पर एक मिथ्यात्वी यक्ष भैंसे बकरों की बलि लिया करता था। और तद्ग्रामवासी भी मरणभय से भयभीत हो इस प्रकार की जीव हिंसा किया करते थे। अस्तु, आचार्य नरसिंहसूरि एक समय यक्षायतन में रात्रि पर्यन्त रहे जिससे यक्ष कुपित हो सूरिजी को उपसर्ग करने के लिये उद्यत हुआ। पर आचार्य श्री ने यक्ष को इस प्रकार उपदेश दिया कि उसने अपने ज्ञान से सोचकर जीवहिंसा छोड़ दी। ततः प्रभृति वह यक्ष आचार्य श्री का अनुचर होकर उपकार कार्य में सहायता पहुँचाने लगा। इस चमत्कार को देख बहुत से क्षत्रिय वगैरह अजैन लोग सूरिजी के भक्त बन गये। सूरिजी ने भी इन सबको जैनधर्म की दीक्षा देकर उपकेश वंश में मिला दिये। इसके सिवाय भी सूरिजी ने अनेक स्थानो में विहार कर क्षत्रियों को जैन बनाये। उनमें, खुमाण कुल के क्षत्रीय भी थे। इतना ही क्यों पर उसी राज्य कुलीय समुद्रनाम के क्षत्रिय को होनहार समझ अपना शिष्य बनाया और अपने पट्टपर आचार्य बनाकर अपना सर्वाधिकार उसके सुपर्द किया। आचार्य नरसिंहसूरि ने 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत को चरितार्थ कर अपना नाम सार्थक कर दिया।

२६ आचार्य नरसिंह सूरि के पट्ट पर आचार्य समुद्र सूरि बड़े ही चमत्कारी आचार्य हुए। आप एक तो क्षत्रिय कुल के थे दूसरे कठोर तपके करने वाले। तपस्या से अनेक लब्धियां प्राप्त होती है तथा देवी देव प्रसन्न हो तपस्वी महात्मा की सेवा में रहने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। तपस्वी का प्रभाव साधारण जनता पर ही नहीं पर बड़े २ राजा महाराजाओं पर भी पड़ता है। आचार्य समुद्रसूरि जैसे तपस्वी थे वैसे साहित्य के व ज्ञान के समुद्र भी थे। आपश्री ने अनेक ग्राम नगरों में विहार कर जैनधर्म का अच्छा उद्योत किया। भैंसे और बकरे की बलि लेने वाली चामुण्डा देवी को प्रतिबोध देकर मूक प्राणियों को अभयदान दिलाया। जिस समय आचार्य समुद्रसूरि का शासन था उस समय दिगम्बरों का भी थोड़ा २ जोर बढ़ गया था पर आचार्य समुद्रसूरि ने तो कई स्थानों पर शास्त्रार्थ कर, दिगम्बरों को पराजित कर श्वेताम्बर संघ के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। इतना ही क्यों पर श्वेताम्बरों के नागह्रद नाम के तीर्थ-जिसको कि दिगम्बरों ने दबा लिया था; आचार्य समुद्रसूरि ने पुनः (उस तीर्थ को) श्वेताम्बरों के कब्जे में करवा दिया। आचार्य समुद्रसूरि ने अपने शासन समय में जैनधर्म की अच्छी उन्नति की।

"खोमाण राजकुलजोऽपि समुद्रसूरि र्गच्छे, शशांककल्पः प्रवणः प्रमाणी ।
जित्वा तदा क्षपणकान् स्ववंश वितेने नागह्रदे भुजगनाथ नमस्तीर्थे ।।"

२७ आचार्य समुद्रसूरि के पट्टधर आचार्य मानदेवसूरि (द्वितीय) हुए। आप श्री बड़े ही

प्रतिभाशाली थे। आपने अनेक ग्राम नगरो में विहार कर जैन धर्म की खूब पभावना की। आपके शासन के समय का हाल जानने के लिये भी साहित्य का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। केवल पट्टावलियो मे थोड़ा सा उल्लेख मिलता है तदनुसार—आप अपने शरीर की अस्वस्थता के कारण सूरि मंत्र को विस्मृत कर चुके थे। पर जब आपका स्वास्थ्य अच्छा हुआ तो आपको बड़ा ही पश्चाताप हुआ। अत: पुन सूरि मंत्र प्राप्ति के लिये आप श्री ने गिरनार तीर्थ पर जाकर चौविहार तपश्चर्या करना प्रारम्भ किया। पूरे दो मास व्यतीत होने के पश्चात् आप श्री के तपः प्रभाव से वहां की अधिष्ठात्री देवी अम्बिका ने आपकी प्रशंसा की व सूरि मंत्र की पुन: स्मृति करवादी। वीर शासन परम्परा में आप पभाविक आचार्य हुए है।

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा एवं उपकेशगच्छाचार्यों के साथ सम्बन्ध रखने वाले वीर परम्परा के २७ आचार्यों के जीवन क्रमशः लिखे हैं। पर इसमे पाठक यह न समझलें कि महावीर की परम्परा में केवल ये सत्तावीस ही पट्टधर आचार्य हुए हैं। कारण, हम ऊपर लिख आये है कि, गणधर सौधर्म से आर्य भद्रबाहु तक तो ठीक एक ही गच्छ चला आया था पर आर्यभद्रबाहु के शासन समय से पृथक २ गच्छ निकलने प्रारम्भ हो गये। तथापि–आर्य संभूति विजय और भद्रबाहु के पट्टधर स्थूलभद्राचार्य हुए पर उसी समय आर्य भद्रबाहु के एक शिष्य गौदास से गौदास नामक एक गच्छ पृथक निकला था अत: उस गच्छ की शाखा कहां तक चली यह तो अभी अज्ञात ही है। आगे चलकर आर्य स्थूलभद्र के पट्टधर भी दो आचार्य हुए (१) महागिरी (२) सुहस्ती। महागिरि शाखा के आचार्य बलिस्सह हुए। इनकी परम्परा हम आगे चलकर लिखेंगे। दूसरे आर्य सुहस्ती—इनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी अतः इनके शासनकाल बहुत से पृथक २ गच्छ भी निकले जो आप श्री के जीवन के साथ ऊपर लिखे जा चुके [illegible] सुहस्ती के पट्टधर दो मुख्य आचार्य हुए (१) आर्य सुस्थी (२) आर्य सुप्रतिबुद्ध [illegible] चार शिष्यों से चार शाखाएं निकली और चार चन्द्रादि चार [illegible] हुए। इसमे ऊपर जो २७ पट्टधरो का जीवन हम लिख आये है वे केवल एक [illegible] के ही हैं। इनके अलावा नागेन्द्र, निर्वृत्ति, विद्याधर ये तीन [illegible] सुस्थी की जो गच्छ शाखाएं निकली उनका परिवार [illegible] कितना होगा, इसके जानने के लिये जितना चाहिये उतना साधन नहीं मिलता है। [illegible] एवं द्विपक्ष जितना साहित्य मुझे हस्तगत हुआ वह यह संगृहित कर दिया [illegible] है

आर्य देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण.— आप आगमो को पुस्तकारूढ़ करने [illegible] संसार में मशहूर हैं। आप श्री ने नंदीसूत्र और [illegible] स्थविरावली के [illegible] कई लेखको ने आपको आर्य [illegible] आपको लोहित्याचार्य के शिष्य [illegible] है। पर [illegible] की स्थविरावली से प्रतीत होता है [illegible] इस प्रकार की [illegible] [illegible] (२) गुणधर [illegible]। गुरु शिष्य परम्परा [illegible] स्थविरावली से [illegible] गुरु शिष्य [illegible] प्रभाविक आचार्य हुए [illegible]

की नहीं पर युग प्रधान क्रम की स्थविरावली हैं। इसमें एक शाखा के नहीं पर कई शाखाएँ के आचार्यों के नाम हैं। यही कारण है कि नंदी स्थविरावली मे दुष्य गणि के बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण का नाम आता है। वह युग प्रधान क्रम की गणना से ही है। कल्प स्थविरावली में आपको संडिल्याचार्य के शिष्य कहा है। दूसरे आचार्य मलयागिरि वगैरह ने तो आर्य देवर्द्धिगणि क्षमण जी को आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर बतलाये हैं पर, आप थे आर्य सुहस्ती की परम्परा के। आपश्री से करीब १५० वर्ष पूर्व आगम वाचना हुई थी एक मथुरा में आर्य स्कांदिल के अध्यक्षत्त्व में दूसरी वल्लभी नगरी में आर्य नागार्जुन के नायकत्व में। आर्य स्कांदिल आर्य सुहस्ती की परम्परा में थे तब आर्य नागार्जुन, आर्य महागिरि की परम्परा के आचार्य थे। इन दोनों स्थविरों ने दो स्थानों पर आगमवाचना की पर छद्‌मस्थावस्था के कारण कहीं २ अंतर रह गया बाद न तो वे दोनों आचार्य आपस में मिल सके और न उसका समाधान हो सका अतः उन पाठान्तरों के सामाधान के लिये ही पुनः वल्लभी नगरी में संघ सभा की गई और सभा में दोनों ओर के श्रमणों को एकत्रित किये गये। आर्य सुहस्ती एवं स्कांदिलाचार्य की संतान के मुख्य स्थविर थे आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण और आर्य महागिरि एवं आर्य नागार्जुन की परम्परा के श्रमणों में मुख्य आर्य कालकाचार्य थे। इन दोनों परम्पराओं में आगम वाचना के अन्तर के सिवाय एक दूसरा भी अन्तर था वह, भगवान् महावीर के निर्वाण के समय का। आर्य देवर्द्धिगणि की परम्परा में अपने समय (आर्य देवर्द्धि गणि के समय) तक महावीर निर्वाण को ९८० वर्ष हुए ऐसी मान्यता थी तब, कालकाचार्य की मान्यता ९९३ वर्ष की थी। अतः ये दोनों स्थविर पृथक् पृथक् शाखा के ही थे।

तीसरा-आचार्य मेरुतुङ्गसूरि ने अपनी स्थविरावली में आर्य देवर्द्धिगणि को आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर कहकर वीगत् सत्तावीसवें पट्टधर लिखा है। जैसे––

"सूरि बलिस्सह साई सामज्जो संडिलोय जीयधरो'अज्ज समुद्दो मंगु नंदिल्लो नागहत्थि य रेवइसिहो खंदिल हिमवं नागज्जुणा य गोविंद। सिरिभूइदिन्न—लोहिच्च दूसगणिणोयं देवड्ढी॥"

असौ च श्री वीरादनुसप्तविंशत्तमः पुरुषो देवर्द्धिगणिः सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढानकार्षीत्।

—मेरुतुंगीय स्थविरावली टीका ५

अर्थात्––(सौधर्म१, जम्बु२, प्रभव३, शय्यंभव४, यशोभद्र५, संभूति६, स्थूलभद्र७, महागिरि८, बलिस्सह९, स्वाति१०, श्यामाचार्य११, संडिल्य१२, जीतधर१३ समुद्र१४, मंगू१५, नंदिल१६, नागहस्ति१७, रेवति१८, सिंह१९, स्कंदिल२०, हेमवंत२१, नागार्जुन२२, गोविंद२३, भूतदिन्न२४, लोहित२५, दुष्यगणि२६ और देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण २७।

आर्य देवर्द्धिगणि ने नंदी स्थविरावली लिखी उसमें दुष्यगणि को ३१ वां पट्टधर लिखा है इससे देवर्द्धि ३२ वें स्थविर थे। तथाहि—

(१) आर्य सुधर्मा, (२) जम्बु, (३) प्रभव, (४) शय्यंभव, (५) यशोभद्र, (६) संभूतविजय, (७) भद्रबाहु, (८) स्थूलभद्र, (९) महागिरि, (१०) सुहस्ति, (११) बलिस्सह, (१२) स्वाति, (१३) श्यामाचार्य, (१४) सांडिल्य, (१५) समुद्र, (१६) मंगु, (१७) आर्य धर्म, (१८) भद्रगुप्त (१९) वज्र (२०) रक्षित (२१) आनंदिल

(२१) नागहस्ति (२३) रेवति नक्षत्र (२४) ब्रह्मद्वीपसिंह (२५) स्कंदिलाचार्य (२६) हिमवंत (२७) नागार्जुन (२८) गोविंद (२९) भूतदिन्न (३०) लौहित्य (३) दुष्य गणि (३२) देवर्द्धिगणि ।

इन दोनों स्थविरावलियों में गुरु शिष्य की नामावली नहीं पर युग प्रधान पट्टक्रम है। यही कारण है कि, उपरोक्त स्थविरावलियो मे आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति नामक दोनो परम्परा के जो युग प्रधान स्थविर हुए हैं; उन्हीं का समावेश दृष्टिगोचर होता है। जैसे नंदी स्थाविरावली में आर्य नागहस्ति का नाम आया है पर वे विद्याधर शाखा के आचार्य थे-यथाहि—

आसीत्कालिक सूरिः श्री श्रुताम्भोनिधि पारगः। गच्छे विद्याधराख्ये आर्य नागहस्ति सूरयः ॥

प्रभावक चरित्र पादलिप्त प्रबंध ४८

विद्याधर शाखा आर्य सुहस्ति के परम्परा की है जो आर्य विद्याधर गोपाल से प्रचलित हुई थी। दूसरा आर्य आनंदिल का नाम भी उपरोक्त नंदीसूत्र स्थविरावली में आता है वे भी सुहस्ति की परम्परा के आचार्य थे—

"आर्य रक्षित वंशीयः स श्रीमानार्यनंदिलः। संसारारण्य निर्वाह सार्थवाहः पुनातु वः ॥

'प्रभावक चरित्र

आगे नं० २५ मे ब्रह्मद्वीपीसिंह का नाम आया है। ब्रह्मद्वीपी शाखा आर्य सुहस्ति की परम्परा के श्री सिंहगिरि के शिष्य समिति से निकली थी। अतः आप भी सुहस्ति की परम्परा के आचार्य (स्थविर) थे। इसी प्रकार आर्य स्कंदिल और भूतदिन्न भी आर्य सुहस्ति की परम्परा के आचार्य थे।

उपरोक्त परम्परा से नंदी सूत्र की स्थविरावली न तो आर्य महागिरि के परम्परा की स्थविरावली है और न आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आर्य महागिरि की परम्परा के स्थविर ही थे। नंदीसूत्र की स्थविरा-वली तो युगप्रधान आचार्यो की स्थविरावली है। स्वयं क्षमाश्रमणजी ने नंदी सूत्र मे अपनी गुरु परम्परा का नहीं किन्तु अनुयोगधर युगप्रधान परम्परा का ही वर्णन किया है। देखिये स्थविरावली के अन्तिम शब्द—

जे अन्ने भगवन्ते कालिअ सुअ अणुयोगधरा धीरे। ते पणिमिऊण सिरसा नाणस्स परूवणं वोच्छं॥

इस गाथा से पाया जाता है कि आपने अनुयोगधारक युगप्रधानो को नमस्कार करने के लिये ही स्थविरावली लिखी है।

आर्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आर्य सुहस्ति की परम्परा के आर्यदत्त के तीसरे शिष्य आर्यरथ से निकली हुई जयंती शाखा के आचार्य थे। इसका उल्लेख स्वयं क्षमाश्रमणजी ने कल्पसूत्र की स्थविरावली मे किया है। यद्यपि इस स्थविरावली मे क्षमाश्रमणजी का नाम निर्देश नहीं है पर इस [illegible] के अन्त की एक गाथा किसी क्षमाश्रमणजी के शिष्य या अनुयायी की लिखी हुई पाई जाती है। जैसे—

"सुत्तत्थरयणभरिए, खमदमभद्दवगुणेहि संपन्ने। देवड्ढि खमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥

इस (कल्पसूत्र स्थविरावली से क्षमाश्रमणजी भगवान् महावीर के २७ वे पट्टधर नहीं किन्तु ३४ वे साबित होते हैं। जैसे—

(१) आर्य सुधर्मा (२) जम्बू (३) प्रभव (४) शय्यंभव (५) यशोभद्र (६) सम्भूति विजय-भद्रबाहु (७) स्थूलभद्र (८) सुहस्ति (९) आर्य सुस्थित सुप्रतिबुद्ध (१०) इन्द्रदिन्न (११) दिन्न (१२) सिंहगिरि (१३)

वज्र (१४) रथ (१५) पुष्पगिरि (१६) फल्गुमित्र (१७) धनगिरि (१८) शिवभूति (१९) भद्र (२०) नक्षत्र (२१) रक्ष (२२) नाग (२३) जेहिल (२४) विष्णु (२५) कालक (२६) संघपलित भद्र (२७) वृद्ध (२८) संघपालित (२९) हस्ति (३०) धर्म (३१) सिंह (३२) धर्म (३३) सांडिल्य (३४) देवर्द्धिगणि ।

इस गुरु क्रमावली के अनुसार देवर्द्धि गणि ३४ वे पुरुष थे और आर्य सांडिल्य के शिष्य थे।

श्री क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के आपस में मतभेद था। जब क्षमाश्रमणजी आर्य सुहस्ति एवं स्कांदिलाचार्य की परम्परा के थे तो कालकाचार्य किसी दूसरी परम्परा के होने चाहिये। पट्टावलियों से पाया जाता है कि कालकाचार्य आर्य महागिरि एवं नागार्जुन की परम्परा के आचार्य थे। पट्टावली निम्नलिखित है

(१) आर्य सुधर्मा (२) जम्बू (३) प्रभव (४) शय्यंभव (५) यशोभद्र (६) संभूतविजय (७) भद्रबाहु (८) स्थूलभद्र (९) महागिरि (१०) सुहस्ति (११) गुण सुंदर (१२) कालकाचार्य (१३) स्कांदिलाचार्य (१४) रेवतिमित्र (१५) आर्यमंगु (१६) धर्म (१७) भद्रगुप्त (१८) वज्र (१९) रक्षित (२०) पुष्पमित्र (२१) वज्रसेन (२२) नागहस्ति (२३) रेवतिमित्र (२४) सिंहसूरि (२५) नागार्जुन (२६) भूतदिन्न (२७) कालकाचार्य ।

कालकाचार्य भगवान् महावीर के २७ वें पट्टधर होने से; आपके समकालीन क्षमाश्रमणजी को भी सत्तावीसवां पट्टधर, लिख दिया गया है। पर ऊपर की तालिका से क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के समकालीन होने पर भी श्रमणजी चौंतीसवें और कालकाचार्य सत्तावीसवें पट्टधर थे।

क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य के परस्पर ऊपर बतायी हुई मुख्य दो बातों का ही मतभेद था। एक आगम वाचना में रहा हुआ अंतर, दूसरा भगवान् महावीर के निर्वाण समय (९८०—९९३) में। उक्त दोनों विषयों में परस्पर पर्याप्त वाद विवाद भी हुआ होगा कारण, अपनी २ परम्परा से चली आई मान्यताओं को सहसा छोड़ देना जरा अटपटासा ज्ञात होता है। जब वर्तमान में भी छोटी २ निर्जीवी बातों के लिये वाद नहीं पर वितंडा वाद मच जाता है और सच्ची बात के समझने आने पर भी मत हुराग्रह के कारण पकड़ी हुई बात को नहीं छोड़ी जा सकती है तो उस समय के उक्त दोनों प्रश्न तो अत्यन्त पेचीले एवं विकट महत्वपूर्ण समस्या को लिये हुए खड़े थे। अतः बिना वाद विवाद के सहज में ही प्रश्नों का हल होना माना जाना जरा अप्रासंगिक सा ही ज्ञात होता है तथापि उस समय के स्थविरों का हृदय अत्यन्त निर्मल एवं शासन हित की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं से भरा हुआ होता था। यही कारण है कि वे अपनी बात को पकड़ने या छोड़ने के पहिले शासन के हित का गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे।

दो व्यक्तियों के पारस्परिक मतभेद के समाधान के लिये एक तीसरे मध्यस्थ पुरुष की भी आवश्यकता रहती है। तदनुसार हमारे युगल नायकों के लिये गन्धर्ववादी वैताल शान्तिसूरि का मध्यस्थ बन कर समाधान करवाने का उल्लेख मिलता है। जैसे :

"वालब्भसंघकज्जे, उज्जमिअं जुगप्पहाण तुल्लेहिं ।
गन्धव्ववाइवेयाल संतिसूरीहिं वलहीए ।"

इसका भाव यह है कि युग प्रधान तुल्य गन्धर्ववादी वेताल शांतिसूरि ने वालभ्य संघ के कार्य के लिये वल्लभी नगरी में उद्यम किया।

गन्धर्व वादी शान्तिसूरि ने किस तरह समाधान करवाया इस विषय का तो कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता है परन्तु अनुमान से पाया जाता है कि इस मतभेद में क्षमाश्रमणजी का पक्ष बलवान रहा था। यही कारण है कि, दोनो वाचना को एक करने में मुख्यता माथुरी वाचना की रक्खी गई। जो वल्लभी वाचना मे माथुरी वाचना से पृथक् पाठ थे उनमें जो-जो समाधान होने काबिल थे उनको तो माथुरी वाचना में मिला दिये और शेष विशेष पाठ थे उनको वाचनान्तर के नाम से टीका मे और कहीं मूल में रख दिये। इसके कुछ उदाहरण मैंने इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४५८ पर उद्धृत कर दिये हैं। इससे वाचना सम्बन्धी दोनों पक्षों का समाधान हो गया। श्री वीर निर्वाण के समय के मतभेद का समाधान तो नहीं किया जा सका फिर क्षमाश्रमणजी का पक्ष बलवान होने से ९८० को मूल सूत्र में और ९९३ को वाचनान्तर में लिखकर इसका भी समाधान कर दिया गया। जैसे:

"समणस्सभगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स नववाससयाइं वइक्कंताइं, दसमस्स वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।" इति मूल पाठः।

"वायणांतरे पुणं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ।"

इस प्रकार वीर निर्वाण सम्बन्धी मतभेद का समाधान कर शासन में शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर दिया। बस, उस समय से ही माथुरी वाचना को अग्रस्थान मिला। यही कारण है कि क्षमाश्रमणजी ने अपने नन्दी सूत्र की स्थाविरावली मे माथुरी वाचना के नायक स्कंदिलाचार्य को नमस्कार करते हुए लिखा है कि आज उनकी वाचना के आगम अर्ध भारत में प्रसरित है: यथा

"जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जवि अड्ढभारहम्मि। बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए॥"

—"निमित्त वेत्ता आचार्य भद्रबाहु स्वामीः और वराहमिहिर"

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली भद्रबाहु के वर्णन में हम लिख आये हैं कि कई लोगों ने वराहमिहिर के लघुभ्राता निमित्तवेत्ता आचार्य भद्रबाहु को ही श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वीकार कर लिया है परन्तु श्रुतकेवली और निमित्त वेत्ता दोनों पृथक् २ भद्रबाहु नाम के आचार्य हुए। श्रुतकेवली भद्रबाहु का अस्तित्व वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी का है तब वराह मिहिर के लघु भ्राता भद्रबाहु का समय विक्रम की छठी शताब्दी का है अतः यहां मैं वराहमिहिर और भद्रबाहु के विषय में उल्लेख कर देता हूँ —

प्रतिष्ठितपुर नामक नगर के रहने वाले विप्रवंशीय वराहमिहिर व भद्रबाहु नामक दो सहोदरों ने आर्य यशोभद्र के उपदेश से प्रतिबोध पाकर भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की थी। वे [illegible] वेद पुराण, ज्योतिषादि विप्रवर्णीय शास्त्रों के तो पहिले से ही परम विचक्षण ज्ञाता थे [illegible] स्वीकार करने के पश्चात् जैन शास्त्रों का अभ्यास भी बहुत मनन पूर्वक करने लगे [illegible] के भी [illegible] विद्वान हो गये। इतना होने पर भी वराहमिहिर की प्रकृति [illegible] पूर्ण थी और भद्रबाहु की शान्त, धैर्य, गम्भीर्य, दूरदर्शिता गुणों से [illegible] लघु किन्तु गुणों से [illegible] भद्रबाहु मुनि को ही आचार्य पद दिया [illegible] वराहमिहिर

मुनि को कब सहन होने वाली थी ? वे तो क्रोध एवं अभिमान के वश में भविष्य का भी भान भूल गये। जैन दीक्षा का त्याग कर पुन: पूर्वावस्था को प्राप्त हो अपने महान् उपकारी गुरु एवं भद्रबाहुसूरि की भलती निन्दा करने लगे एवं आचार्यश्री को द्वेष बुद्धि पूर्वक नुकसान पहुँचाने का साहस करने लगे पर आचार्य श्री की प्रतिभा के सामने उनकी निन्दा ने जन समाज पर उतना असर नहीं डाला। क्रमश: उदर पूर्त्यर्थ व सांसारिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिये वराहमिहिर ने एक वराही संहिता नामक ज्योतिष विषयक ग्रन्थ बनाया। इस तरह निमित्त विद्या बल से उदर पूर्ति व कुछ प्रतिष्ठा के पात्र भी बन गये। वराहमिहिर के ज्योतिष विषयक अगाध पाण्डित्य को देख कर कई लोग उनसे पूछते भट्टजी ! आपने ज्योतिष का इतना ज्ञान किस तरह से प्राप्त किया है उत्तर में भट्टजी एक ऐसी कल्पित बात कहते कि एक दिन मैं नगर के बाहिर गया। वहां भूमि पर मैंने एक कुंडली को लिखी। पर नगर में आते समय उस कुण्डली को मिटाना मैं भूल गया। जब मुझे उस कुण्डली को नहीं मिटाने की स्मृति आई तो मैं तत्काल वहां गया। वहां जाते ही सिंह लग्न पर साक्षात् सिंह को खड़ा देखा। मैंने भी निडरता पूर्वक या भक्तिवश सिंह के पास जाकर सिंह के नीचे की कुण्डली को मिटा दिया। इससे प्रसन्न हो सिंह के स्वामी सूर्य ने मुझे कहा—मैं तेरी कुशलता पर बहुत ही सन्तुष्ट हूँ तेरी इच्छा के अनुसार तू कुछ भी मांग, मैं तेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण करूंगा। मैंने कहा मुझे आपके ज्योतिष मण्डल की गति-चाल देखनी है। बस, सूर्य देव मुझे अपने ज्योतिष मंडल में ले गये। और क्रमश: सब ग्रह नक्षत्रों को मुझे बतला दिये। इसलिये अब मैं तीनों कालों की बातों को हस्तामलक वत् स्पष्ट रूपेण जानता हूँ। बिचारे भद्रिक लोग वराहमिहिर की बात पर विश्वास कर पूजा करने लगे। यह बात क्रमश: फैलती हुई नगर के राजा के पास भी पहुँच गई और राजा भी उसका अच्छी तरह से सत्कार करने लगा।

एक समय आचार्य भद्रबाहु स्वामी फिरते हुए उसी नगर में पधार गये जहां पर वराहमिहर रहता था। श्रावक समुदाय ने बड़े ही उत्साह से नगर प्रवेश महोत्सव किया। इसको देख वराहमिहर की इर्षाग्नि पुनः भभक उठी। भद्रबाहु स्वामी को अपमानित करने की इच्छा से वह एक दिन राजा के पास जाकर कहने लगा—राजन् ! आज से पांचवें दिन पूर्व दिशा से वर्षा आवेगी। तीसरे प्रहर में वर्षा का प्रारम्भ होगा। इसके साथ में यहां कुण्डली करता हूँ इसमें ५२ पल का एक मच्छ भी पड़ेगा मेरे इस निमित्त को आप ध्यान में रखने की कृपा करें। इतना कह कर वराह मिहिर स्वस्थान चला गया जब यही बात क्रमश: आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी के कर्ण गोचर हुई तो आपने स्पष्ट फरमाया कि वराहमिहर का कथन सर्वथा सत्य नहीं है कारण, वर्षा पूर्व दिशा से नहीं पर इशान कौने से आवेगी। तीसरे प्रहर नहीं पर तीन मुहूर्त दिन शेष रहेगा तब बरसेगी। मच्छा ५२ पल का नहीं पर ५१॥ पल का गिरेगा। बस, श्रावकों ने भद्रबाहु स्वामी के भविष्य को व वराहमिहर व आपके निमित्त के पारस्परिक अन्तर को नगराधीश के पास में जाकर सुना दिया। राजा ने भी परीक्षार्थ दोनों के भविष्य को अपने पास में लिखवा लिया। क्रमश: पांचवां दिन आया तो आर्य भद्रबाहु स्वामी का सब कथन यथावत् सत्य हो गया और वराहमिहर का निमित्त झूठा निकल गया। इससे नगर भर में वराहमिहर की भर्त्सना एवं निन्दा होने लगी। राजा के हृदय में भी वराहमिहर के प्रति उतना सन्मान का स्थान नहीं रहा। आर्य भद्रबाहु की [illegible] [illegible] वाले वराहमिहर के प्रतिष्ठा मार्ग को एक दम अवरुद्ध कर दिया। वास्तव में [illegible] ठीक

युगप्रधान समय

सं०	युग प्रधान	समय	कहां से	कहां तक
	गौतम	१२		
१	श्री सुधर्मा स्वामी	८	१२	२०
२	,, जम्बु ,,	४४	२०	६४
३	,, प्रभवाचार्य	११	६४	७५
४	,, शय्यंभवाचार्य	२३	७५	९८
५	,, यशोभद्राचार्य	५०	९८	१४८
६	,, संभूतिविजय	८	१४८	१५६
७	,, भद्रबाहु	१४	१५६	१७०
८	,, स्थूलभद्र	४५	१७०	२१५
९	,, महागिरि	३०	२१५	२४५
१०	,, सुहस्ति	४६	२४५	२९१
११	,, गुणसुन्दर	४४	२९१	३३५
१२	,, श्यामाचार्य	४१	३३५	३७६
१३	,, स्कंदिलाचार्य	३८	३७६	४१४
१४	,, रेवतीमित्र	३६	४१४	४५०
१५	,, धर्माचार्य	४४	४५०	४९४
१६	,, भद्रगुप्ताचार्य	३९	४९४	५३३
१७	,, गुप्ताचार्य	१५	५३३	५४८
१८	,, वज्राचार्य	३६	५४८	५८४
१९	,, आर्यरक्षित	१३	५८४	५९७
२०	,, दुर्बलिकापुष्प	२०	५९७	६१७

युगप्रधान समय

२१	श्री वज्रसेन	३	६१७	६२०
२२	,, नागहस्ति	६९	६२०	६८९
२३	,, रेवतीमित्र	५९	६८९	७४८
२४	,, सिंहसूरि	७८	७४८	८२६
२५	,, नागार्जुन	७८	८२६	९०४
२६	,, भूतदिन्न	७९	९०४	९८३
२७	,, कालकाचार्य	११	९८३	९९४
२८	,, सत्यमित्र	७	९९४	१००१
२९	,, हरिलाचार्य	५४	१००१	१०५५
३०	,, जिनभद्राच र्य	६०	१०५५	१११५
३१	,, उमास्वाति	७५	१११५	११९०
३२	,, पुष्पमित्र	६०	११९०	१२५०
३३	,, संभूति	५०	१२५०	१३००
३४	,, संभूतिगुप्त	६०	१३००	१३६०
३५	,, धर्मसूरि	४०	१३६०	१४००
३६	,, ज्येष्ठागण	७१	१४००	१४७१
३७	,, फल्गुमित्र	४९	१४७१	१५२०
३८	,, धर्मसूरि	७८	१५२०	१५९८
३९	,, विनयाचार्य	८६	१५९८	१६८४
४०	,, शीलाचार्य	७९	१६८४	१७६३
४१	,, रेवती	७८	१७६३	१८४१
४२	,, सुमिण	७८	१८४१	१९१९
४३	,, हरिलाचार्य	४५	१९१९	१९६४

आचार्य उमास्वाति—नाम के दो आचार्य हुए हैं। एक आर्य महागिरि के शिष्य बलिस्सह और बलिस्सह के शिष्य उमास्वाति। दूसरे युगप्रधान पट्टावली के दूसरे उदय के आठवे आचार्य उमास्वाति जो आर्य जिनभद्र के बाद और पुष्पमित्र के पहिले हुए हैं। यहां पर तो बलिस्सह के शिष्य उमास्वाति के लिए ही लिखा गया है। पट्टावली मे आपका समय नहीं बताया गया है तथापि, आर्य महागिरि का समय वीरात् २१५ से २४५ तक का है तब आपके शिष्य श्यामाचार्य का समय वीरात् ३३५ से ३७६ का लिखा है। २४५ से ३३५ के बीच ९० वर्ष का अन्तर है। और इसी बीच बलिस्सह एवं उमास्वाति नाम के दो आचार्य हुए हैं। यदि ४५ वर्ष का समय बलिस्सह का मान लिया जाय तो २९० बलिस्सह और ३३५ तक उमास्वाति का समय माना जा सकता है। यह तो केवल मेरा अनुमान है पर इतना तो निश्चय है कि वीर नि० २४५ से ३३५ तक में दो आचार्य हुए हैं।

श्यामाचार्यः—आप आचार्य गुण सुन्दर के बाद और स्कांदिलाचार्य के पूर्व युगप्रधानाचार्य हुए। आपका समय वीर नि० ३३५ से ३७६ तक का है। आपका अपर नाम कालकाचार्य भी है।

आचार्य विमलसूरि—आपने विक्रम सं० ६० में "पउम चरियं" पद्म चरित्र की रचना की थी।

आचार्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध—आप दोनों आचार्य; आर्य सुहस्ति के पट्टधर थे। आपका समय भी पट्टावलीकारों ने नहीं लिखा है किन्तु कलिंगपति राजा खारवल के जीवन में लिखा है कि उसने अपने राज्य के बारहवें वर्ष मे मगध पर आक्रमण किया व कलिंग से नन्द राजा के द्वारा ले जाई गई जिनप्रतिमा को पुनः लाकार आर्य सुप्रतिबद्ध के द्वारा प्रतिष्ठा करवाई। अस्तु राजा खारवल का समय वीर नि० ३३० से ३६७ तक का है इससे यह कहा जा सकता है कि वीर नि० ३६७ मे आर्य सुप्रतिबुद्ध विद्यमान थे। आर्य सुहस्ति का समय वीर नि० २९१ का है इससे, आर्य सुस्थी का समय वीर नि. २९२ से प्रारम्भ होता है। जैसे स्थुलभद्र के पट्टधर दो आचार्य हुए और सुस्थी के गच्छ नायक हो जाने के बाद सुप्रतिबुद्ध नायक हुए इन्होंने ३६६ मे मूर्ति की प्रातिष्ठा करवाई हो तो आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध का समय वीर नि० [illegible] से ३६६ तक का माना युक्तियुक्त ही है।

आचार्य इन्द्रदिन्न—आप आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध के पट्टधर थे।

आर्यदिन्न—आप आर्य दिन्न के पट्टधर थे।

आर्य सिंहगिरिः—आप आर्य दिन्न के पट्टधर थे।

आर्य वज्र—आप आर्य सिंहगिरि के पट्टधर थे और आपका समय वीर नि० [illegible] से ५८४ तक बतलाया जाता है।

आचार्य वज्र—के पूर्व और आर्य सुप्रतिबुद्ध के बाद मे [illegible] वर्षों में [illegible] आचार्य हुए [illegible] यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कौन से आचार्य कितने वर्ष तक आचार्य पद पर रहे।

आर्य समिति और धनगिरि—इन दोनों का समय आर्य सिंहगिरि और आर्य वज्र के समय के अंतर्गत ही है।

आर्य कालकः—कालकाचार्य नाम के पांच आचार्य हुए हैं जिनमें—

१—राजा दत्त को यज्ञ फल कहने वाले कालकाचार्य का समय वी० नि० ३००-३३५।

२—निगोद की व्याख्या करने वाले कालकाचार्य का समय वी० नि० ३३५-३७६।

३—गर्दभिल्लविच्छेदक कालकाचार्य का समय वी० नि० ४५३—४६५।

४—रत्न संचय की गाथानुसार कालकाचार्य का समय वी० नि० ७२०।

५—वल्लभी में आगमवाचना में सम्मिलित होने वाले कालकाचार्य का समय वी० ९९३।

श्री खपटाचार्यः—आपका समय वी० नि० ४८४ का बतलाया जाता है।

श्री महेन्द्रोपाध्याय—आप खपटाचार्य के शिष्य थे और खपटाचार्य की विद्यमानता में ही आपने कई चमत्कार बतला कर बहुतसी जनता को (राजा प्रजा को) जैन बनाये थे। आचार्य खपट के स्वर्ग वास के पश्चात् आप उनके पट्टधर हुए अतः आपके सूरि पद का समय वीर नि० ४८४ से प्रारम्भ होता है।

आचार्य रुद्रदेव और श्रमणसिंह कब हुए इसका पता नहीं पर आचार्य पादलिप्त सूरि के जीवन में इनका उल्लेख होने से अनुमान किया जा सकता है कि खपटाचार्य और पादलिप्त के बीच में ये दोनो आचार्य हुए होंगे।

आचार्यपादलिप्तसूरि—आप आर्य नागहस्ति के शिष्य थे और आर्य नागहस्ति थे कालकाचार्य की संतान परम्परा के आचार्य। फिर भी पट्टावलियों में आपके लिये पृथक् २ उल्लेख मिलते हैं—

(१) माथुरी पट्टावलीमें आर्यआनंदिलकेबादऔर रेवतिमित्रके पूर्व आपको २२ वें पट्टधर लिखा है।

(२) नंदीसूत्रकी स्थविरावलीमें आनंदिल के बाद और रेवतिमित्र के पूर्व १७ वां स्थविरमाना है।

(३) आर्य महागिरि की स्थविरावली में १७ वां पट्टधर माना है।

(४) वल्लभीस्थविरावलीमें आपकोवज्रसेनकेबाद औररेवतिमित्र के पूर्व २२सवें स्थविर माना है।

(५) युगप्रधान पट्टावली में आपको आर्य वज्रसेनकेबादऔर रेवतिमित्र के पूर्व २२ वें०।

उक्त पट्टक्रम में २२–१८–१७ जो फरक हैं इसका कारण केवल पृथक २ पट्टावलियों का लिखना ही है। जैसे कई पट्टावलियों में आर्य यशोभद्र के पट्टपर संभूतिविजय और भद्रबाहु का एक नम्बर ही लिखा है, तब कई पट्टावलियों में (यु० प्र०) संभूतिविजय के पट्ट पर भद्रबाहु को लिख दिया। इसी प्रकार आर्य स्थूलभद्र के पट्टपर आर्य महागिरि और आर्यसुहस्ती के लिये लिखा है तब अन्य पट्टावलियों में इन दोनों को अलग २ पट्टधर लिखा है। अस्तु उक्त कारण को लेकर पट्टक्रम नम्बर में फरक आता है पर वास्तव में वह फरक नहीं है। दूसरी कई पट्टावलियों आर्य आनंदिल के बाद तो कई में आर्य वज्रसेन के बाद नागहस्ति का नम्बर आया है पर, इन दोनों आचार्यों का समकालीन होना ही पाया जाता है। कारण, आर्य आनंदिलो को ५॥ पूर्वधर कहा तब आर्य वज्रसेन के गुरु आर्य वज्रसूरि को दश पूर्वधर। अतः वज्रसेन के समय दश पूर्व या नव पूर्वका ज्ञान अवश्य था ही। अस्तु,

उक्त आधार से आर्य नागहस्ति का समय विक्रम की दूसरी शताब्दी माना जा सकता है पादलिप्त सूरि का समय नागहस्ति के बाद का है पर, कई चूर्णियों एवं भाष्यों में पादलिप्तसूरि को आर्य खपट के समकालीन होना लिखा है। यही नहीं, खपटाचार्य की सेवा में रह पादलिप्त को अनेक चमत्कारी विद्याएं

के प्राप्त होने का भी पट्टावलियो में उल्लेख मिलता है तब खपटाचार्य का स्वर्गवास तो वीर निर्वाण ४८४ मे ही हो गया था। इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि खपटाचार्य से विद्या हासिल करने वाले पादलिप्तसूरि पहले हुए है और नागहस्ति के शिष्य पादलिप्त बाद मे हुए। एक ही नामके अनेक आचार्यों के होने से; उन आचार्यों के नामो के साम्य को लक्ष्य मे रख पिछले लेखकों ने दोनो पादलिप्तसूरि को एक ही लिख दिया हो जैसे कि भद्रबाहु के लिये हुआ है—

नागहस्तिसूरि के पट्टधर पादलिप्तसूरि का समय विक्रम की दूसरी या तीसरी शताब्दी मानना ही ठीक है। कारण, खपटाचार्य के समय पादलिप्त के गुरु नागहस्ति का भी अस्तित्व नही था तो पादलिप्त का तो माना ही कैसे जाय ?

नागार्जुन—ये पादलिप्तसूरि के गृहस्थ शिष्य थे। जब पादलिप्तसूरि वि० की तीसरी शताब्दी के आचार्य थे तो नागार्जुन के लिये स्वतः सिद्ध है कि वे भी तीसरी शताब्दी के एक सिद्ध पुरुष थे।

आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेनदिवाकर—वृद्धवादी के गुरु आर्यस्कंदिल थे और आप पादलिप्तसूरि की परम्परा में विद्याधर शाखा के थे। इससे पाया जाता है कि आप पादलिप्तसूरि के बाद के आचार्य हैं। स्कंदिल नाम के भी तीन आचार्य हुए हैं जिनमे सब से पहिले के स्कंदिलाचार्य युगप्रधान के पट्टोदय के २० आचार्यों में १३ वे युगप्रधान माने जाते हैं। ये श्यामाचार्य के बाद और रेवतिमित्र के पूर्व के आचार्य हैं अत इनका समय ३७६ से ४१४ का है।

दूसरे स्कंदिलाचार्य का उल्लेख हेमवंत पट्टावली में है। इनका स्वर्गवास वि० २०२ में होना लिखा है अत ये भी वृद्धवादी के गुरु नहीं हो सकते हैं कारण, स्कंदिल पादलिप्त के पूर्व हो गये थे।

माथुरी वाचना के नायक तीसरे स्कंदिलाचार्य का समय वि ३५७ से ३७० तक का है। ये विद्याधर शाखा तथा पादलिप्तसूरि की परम्परा मे थे। इन स्कंदिलाचार्य को ही वृद्धवादी के गुरु मान लिया जाय तो और तो सब व्यवस्था ठीक हो जाती है पर हमारी पट्टावलियो, चरित्रो, प्रबन्धो तथा [illegible] वृद्धवादी के जीवन पर जिसको कि विक्रम के समकालीन होना लिखा है—इस [illegible] है। [illegible] ही परम्परा से चले आया उल्लेख मे—

"पंचसय वरिसंमि सिद्धसेणो दिवायरो [illegible]"

अर्थात्— वीर नि० सं० पांचसौ मे सिद्धसेन दिवाकर हुए—[illegible] है।

इन सबका समाधान तब ही हो सकता है जब कि हम राजा विक्रम के [illegible] विक्रम की चौथी शताब्दी मे होना मान ले तदनुसार गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त [illegible] हुए और उन्होंने विक्रम की उपाधि भी प्राप्त की [illegible] समय में, चन्द्रगुप्त विक्रम के [illegible] लिया जाय तो सब विरोध का परिहार [illegible] हो सकता है।

[illegible] विक्रम के लिए [illegible] कोई विक्रम नाम का राजा ही हुआ और न विक्रम के [illegible] पृष्ठ ४६७ मे किया है।

शायद सिद्धसेन नाम के और भी कई आर्य हुए हैं अतः साम्य नामधारी आचार्यों की घटनाएं और वृद्धवादी के विषय सिद्धसेनदिवाकर की घटनाओं का एकीकरण कर दिया गया हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। कारण, भरोंच और उज्जैन नगरी में बलमित्र भानुमित्र नाम के बड़े ही वीर पराक्रमी विक्रम राजा हुए। ये कालिकाचार्य के भानेज और कट्टर जैन थे। आर्य खपट एवं अन्य बहुत से आचार्य भरोंच उज्जैन नगर में रहते थे। बौद्धाचार्यों की पराजय भी उन्हीं के राज्य में हुई थी। उस समय भी कोई सिद्धसेनाचार्य हुए हो जिन्होने कि, बलमित्र, भानुमित्र को उपदेश देकर शत्रुंजय संघ का निकलवाया हो और धर्म की उन्नति करवाई हो। परन्तु इस विषय का कोई ठोस साहित्य हस्तगत न हो जाय वहां तक जोर देकर कुछ नहीं कहा जा सकता है। उपरोक्त प्रमाण से यह तो निश्चित ही है कि आचार्य वृद्धवादी एवं सिद्धसेन दिवाकर विक्रम की चौथी शताब्दी के आचार्य माने जा सकते हैं।

जीवदेवसूरि—प्रबन्धकार लिखते है कि राजा विक्रम के मंत्री लिम्बा शाह ने वायट नगर के महावीर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था और वि० सं० ७ में जीवदेवसूरि ने उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। इससे पाया जाता है कि जीवदेवसूरि विक्रम के समकालीन हुए होंगे। जीवदेवसूरि की प्राथमिक दीक्षा क्षपण (दिगम्बराचार्य) के पास हुई थी और उस समय आपका नाम सुवर्णकीर्ति रक्खा गया था।

जब हम देखते हैं कि दिगम्बर मत की उत्पत्ति ही विक्रम की दूसरी शताब्दी में हुई तो जीवदेव की दीक्षा इस समय के बाद ही हुई होगी। इतना ही क्यों पर दिगम्बर समुदाय में श्रुतकीर्ति या सुवर्णकीर्ति जैसे नाम भी पिछले समय में रक्खे जाने लगे थे। दूसरा यह भी कारण है कि प्रबन्धकार के लेखानुसार जीवदेवसूरि के समय यज्ञोपवीत धारण कर अभिषेक की विधि से आचार्य पद दिया जाता था। इससे पाया जाता है कि उस समय जैन श्रमणों में शिथिलाचार का प्रवेश हो गया था। इस प्रकार शिथिलाचार का समय विक्रम की चौथी पांचवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इन सब बातों का विचार करते हुए हम इस निर्णय पर आसकते हैं कि आचार्य जीवदेवसूरि का समय विक्रम की चौथी पांचवी शताब्दी का होना चाहिये। विक्रम के समय मन्दिर की प्रतिष्ठा करने वाले जीवदेवसूरि अन्य जीवदेवसूरि होंगे।

श्री वज्रसेन सूरि का समय वीर निर्वाण से ६२० का है।
श्री चंद्रसूरि का समय वीर निर्वाण　　६२०-६४३ तक का है।
श्री सामंतभद्र　　,,　　,,　　,,　　६४३-६७५ तक का है।
श्री प्रद्योतन सूरि ,,　　,,　　,,　　६७५-७२८ तक का है।
लघुशांतिकर्ता श्रीमानदेवसूरि का समय वीर निर्वाण से ७२८-७५० तक का है।
भक्तामर कर्ता मानतुङ्गसूरि का　　,,　　,,　　,,　　८२६ तक का है।

मल्लवादी सूरि:-आचार्य मल्लवादी का समय मैंने विक्रम की छट्ठी शताब्दी लिखा है पर प्रबन्ध देखने या अन्य ग्रन्थों के अवलोकन से पाया जाता है कि मल्लवादी का समय ठीक विक्रम की पांचवी शताब्दी का ही था। कारण, आचार्य विजयसिंह सूरि प्रबन्ध में इसका उल्लेख मिलता है कि—

श्री वीरवत्सरादथ शताष्टके चतुरशीति संयुक्ते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धस्तद् व्यंतरांश्चापि॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य मल्लवादी ने वीर निर्वाण सं० ८८४ में शास्त्रार्थ कर बौद्धों को

पराजित किया था। अतः आपका समय वीर निर्वाण की नवमी शताब्दी और विक्रम की पांचवी शता[illegible] मानना युक्ति संगत है। प्रस्तुत मल्लवादी सूरि ने ही नयचक्र ग्रन्थ की रचना की थी। यद्यपि वह ग्र[illegible] वर्तमान में कहीं नहीं मिलता है पर उस पर लिखी हुई टीका तो आज भी मिलती है। आचार्य हरि[illegible] सूरि ने भी अपने ग्रन्थों में मल्लवादी का नामोल्लेख किया है।

एक मल्लवादी विक्रम की दसवीं शताब्दी में हुए। उन्होने बौद्धग्रन्थ धम्मोत्तर पर टीका रची थी शायद बाद में और भी मल्लवादी नाम के आचार्य हुए होंगे पर यहां पर तो पहिले मल्लवादी का सम[illegible] लिखना है अतः आपका समय विक्रम की पांचवी शताब्दी है। शेष के लिये आगे—

जैनागमों को पुस्तकों पर लिखना—

पूर्व जमाने में आगमों को पुस्तक पर लिखने की परिपाटी के विषय में हमने आगम वाचना प्रकर[illegible] में बहुत कुछ स्पष्टीकरण कर दिया है पर वे जितने आगम लिखे गये थे; एक तरफ की वाचना के अनुस[illegible] ही लिखे गये थे। जब श्री क्षमाश्रमणजी एवं कालकाचार्य के आपस के मतभेद का समाधान हो गया [illegible] उन दोनों वाचना को एक करके पुनः आगमो को पुस्तक रूप में लिखवा दिये गये। यह वृहद् कार्य कि[illegible] समय पर्यन्त चला होगा इसके लिए निश्चयात्मक तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता पर अनुमानतः व[illegible] वर्षों तक चला होगा। यह कार्य केवल श्रमणों द्वारा ही नहीं पर वैतनी लहियों के द्वारा भी करवा[illegible] गया होगा। पर दुःख है कि उस समय का लिखा हुआ एक आगम या एक पत्र भी आज उपलब्ध न[illegible] होता है। इसका एक मात्र कारण यही हो सकता है कि मुसलमानों ने धर्मान्धता के कारण भारत [illegible] अमूल्य साहित्य नष्टभ्रष्ट कर डाला। इससे भी अधिक दुःख तो इस बात का है कि कितना हमा[illegible] उपयोगी प्राचीन साहित्य हम लोगों की बेपरवाही के कारण ज्ञान भण्डारों में ही सड़ गया। जो हु[illegible] हुआ सो तो हो गया पर अब भी रहे हुए साहित्य की सम्भाल रखें तो हमारे लिये इतना ही पर्याप्त होगा

"णमो सुयदेव या भगवईए"

अहाहा ! उन शासन शुभचिन्तकों की कितनी दीर्घ दृष्टि थी कि सैकड़ों वर्षों के चले आये [illegible] मतभेद को मिटा कर पृथक २ हुए दो पक्षों को मिनटों में एक कर दिये। यों तो हम दोनों [illegible] हृदय से अभिनंदन करते हैं। पर विशेष में पूज्य कालकाचार्य की क्षमावृत्ति को कोटि २ वंदन करते हैं [illegible] इसी तरह के उदार क्षमाभावों का हमारे पामरप्राणियों के हृदय में थोड़ा भी संचार हो जाय तो शासन [illegible] कितना हित हो सके ? जो आज हम थोड़ी २ बातों में मतभेद दिखाकर शासन के टुकड़े २ करने में [illegible] गौरव समझ बैठे हैं शासन देव कभी हमको भी सद्बुद्धि प्रदान कर इन महापुरुषों के [illegible] [illegible] करें—यही आन्तरिक मनोभावना है।

"जैन श्रमणों ने पुस्तकें रखना कब से प्रारम्भ किया"

यों तो आगम वाचना प्रकरण में इस विषय के बहुत कुछ लिखा जा चुका है पर कुछ [illegible] ऐसी बातें भी रह गई हैं कि पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ लिखी जाती है।

जैन निर्ग्रन्थ निस्पृही एवं निर्मोही होते हैं, [illegible]

और न लिखने की। कारण पुस्तकों को लिखने के लिये उनके साधनों की याचाना करना, उन्हें सम्भाल कर सुरक्षित रखना, पुस्तकों को बांधना छोड़ना यह सब उन निर्ग्रन्थों के लिये संयम का पलिमंथु-अर्थात् चारित्र गुण विघतक कहा जा सकता है। उक्त विषय का स्पष्टीकरण करते हुए शास्त्रकार फरमाते हैं :—

"पोत्थग जिण दिट्ठतो वग्गुर लेव जाल चेक्क य" निशीर्ण चूर्णी

अर्थात्-शिकारियों के जाल में फंसा हुआ मृग, मच्छ, तथा घृत तैलादि द्रव्यों में पड़ी हुई मक्षिका तो येन केन उपायेन निकल सकती है किन्तु पुस्तक रखने रूप पाश में फंसा हुआ जीव कदापि विमुक्त नहीं हो सकता है। इससे शायद शास्त्रकारों का अभिप्राय यह हो कि मृग, मच्छ एवं मक्षिकादि जीव तो अपने २ प्राण बचाने के लिये पाश के संकट से बच सकते हैं किन्तु पुस्तक रखने वाले श्रमणों को ऐसा दुःख एवं संकट नहीं हैं अतः वे अधिक से अधिक ममत्व के कीचड़ में फंसते जाते हैं ॐ

इस प्रकार मनाई होने पर भी यदि कोई साधु पुस्तकें रक्खे तो शास्त्रकारों ने उसके लिये सख्त दण्ड का विधान किया है :—

'जत्तिय मेता वारा मुंचति बन्धति व जत्तिय वारा।
जति अक्खराणि व लिहति तति लहुगा जं च आवज्जे ॥' निशीथ चूर्णी

इससे स्पष्ट है कि साधु पुस्तकें रक्खे या जितनी वार बांधे छोड़े उतनी वार साधु को लघु प्रायश्चित आता है। आगे देखिये।

"पोत्थएसु घेप्पंतएसु असंजमो भवई" दशवैकालिक चूर्णी

अर्थात्—पुस्तकें रखने से असंयम होता है। जब पुस्तकें रखने या लिखने की सख्त मनाई है तो क्या सब ही साधु प्रज्ञावन विद्वान ही होते थे कि शास्त्रीय सब ज्ञान वे कण्ठस्थ रख सकते थे ?

सब जीवों के कर्मों का क्षयोपशम एकसा नहीं होता है पर उसमें बुद्धि भेद से तारतम्य रहता ही है। फिर भी छट्ठे गुण स्थान को स्पर्श करने वाले को दीक्षा क्या वस्तु है ? इतना ज्ञान तो होता ही है। जिसको दीक्षा का स्वरूप ही मालूम नहीं उसको दीक्षा देना शास्त्र विरुद्ध है। हम देखते हैं कि उस समय साधु तो क्या पर साध्वियां भी एका दशांग पढ़ती थी। जैसे—देवानन्दादि साध्वी के लिये—

"समाइमाइ एक्कारस्सांग अहिज्जइ" श्री भगवतीसूत्र"

जब साध्वियें ही एकादशांग पढ़ती थी तब साधुओं का तो कहना ही क्या था ? वे तो एकादशांग के अलावा चौदह पूर्व का अध्ययन भी करते थे। इनके अलावा अष्ट प्रवचन पढ़ने के लिये आराधिक होते थे पर यह सब ज्ञान कण्ठस्थ ही रखते थे। यदि उस समय किसी अल्पज्ञ को भी दीक्षा दी जाती तो वह अकेला नहीं रह सकता था। जैन श्रमणों के लिये गण कुल, संघ की व्यवस्था भी इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर की गई थी। इनके अग्रगण्य पुरुष आचार्य कहलाते थे जैसे गणाचार्य, कुलाचार्य, वाचनाचार्य

ॐ त्रिकाल दर्शी शास्त्रकारों का कथन आज सोलह आना सत्य हो रहा है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि केवल मंदबुद्धि एवं वंचना से ज्ञानवृद्धि के हेतु पुस्तकें रखना स्वीकार करने वालों की संतानों के पास लाखों रुपयों की पुस्तकें मौजूद है जिनका न तो आप उपयोग करते हैं और न किसी को पढ़ने के लिये ही देते हैं। पर उन पुस्तकों के अन्दर असंख्य कीड़ों का कल्याण (!) अवश्य होता है—

पर थूकने वाले का थूंक उसी के मुंह पर गिरता है; बुरा करने वाले का ही बुरा होता है। जो दूसरों के लिये कूप खोदता है उसके लिये खाई अपने आप तैय्यार मिलती है।

जब राजा के पुत्र हुआ तो वराहमिहर ने नवजात शिशु की जन्म-पत्रिका बना कर उसका आयुष्य सौ वर्ष का बतलाया इससे राजा को बहुत ही प्रसन्नता हुई। इधर राजा के पुत्र होने से नागरिक लोग भेंट लेकर राजा के पास गये; ब्राह्मणादि आशीर्वाद देने गये पर आर्य भद्रबाहु स्वामी जैन शास्त्र के नियमानुसार कहीं पर भी नहीं गये। वराहमिहर तो ईर्ष्या के कारण पहिले से ही छिद्रान्वेषण कर रहा था अतः उस को यह अच्छा मौका हाथ लग गया। उसने एकान्त में राजा को विशेष भ्रम में डालते हुए कहा—राजन्! आप श्री के पुत्र जन्मोत्सव की सब नागरिकों को खुशी है पर एक जैन साधु भद्रबाहुस्वामी को प्रसन्नता नहीं है। वह आप के नगर में रहता हुआ भी अभिमान के वश शुभाशीर्वाद देने के लिये राज सभा में नहीं आया। राजा ने भी वराहमिहिर की बात सुनली पर कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। जब यह बात क्रमशः श्रावकों के द्वारा भद्रबाहु स्वामी को ज्ञात हुई तो आर्य भद्रबाहु ने कहा—राजकुमार का आयुष्य सात दिन का है। सातवें दिन वह बिल्ली (मंजारी) से मर जायगा। इसलिये मैं राजा के पास नहीं गया। श्रावकों ने इस बात को भी राजा के कानों तक पहुँचा दी अतः राजा को इस विषय की बहुत ही चिन्ता होने लगी। राजा ने कुमार को सुरक्षित रखने के लिये सब मार्जारों को शहर से बाहिर कर दिया और राजकुमार को ऐसे सुरक्षित मकान में रख दिया कि मंजारी आ ही नहीं सके। मकान के बाहिर पहिरेदारों को बैठा दिये जिससे मंजारी के आने का किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं रहा। पर भावी प्रबल है; ज्ञानियों का निमित्त कभी झूठा नहीं होता अतः भद्रबाहु स्वामी के कथनानुसार ही सातवें दिन दरवाजे के किवाड़ की अर्गल नूतन राजकुमार के मस्तक पर पड़ी और वह तत्काल मर गया। इस पर वराहमिहर ने कहा—मेरी बात सच्ची नहीं है पर भद्रबाहु की बात भी तो सच्ची नहीं है कारण उसने भी कहा था कि कुँवर बिलाड़ी (मंजारी) के योग से मरेगा—पर ऐसा तो हुआ नहीं। तब भद्रबाहु ने कहा—जिस लकड़ी के योग से कुंवर की मृत्यु हुई है उस पर बिलाड़ी का मुंह खुदा हुआ है देख कर निर्णय कर लीजिये। बस, भद्रबाहु स्वामी का कहना सत्य होगया। बेचारा वराहमिहिर लज्जित हो वहां से चला गया। बाद में तापस हो, कठोर तपश्चर्या करके नियाणे सहित मर कर वराहमिहिर व्यन्तर देव हुआ पर संस्कार तो भवान्तर में भी साथ ही चलता है अतः अपने दुष्ट स्वभावानुसार व्यन्तर देव के भव में भी वराहमिहिर ने जैन संघ पर द्वेष कर सर्वत्र मरकी का रोग फैला दिया। संघ ने जाकर भद्रबाहु स्वामी से प्रार्थना की तो आचार्य श्री ने रोग निवारणार्थ "उवसग्गहरं" [illegible] है) का एक स्तोत्र बनाया जिसको पढ़ने से सब उपद्रव शान्त हो गया। पर [illegible] समुदाय ने इसका दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। जब किसी को [illegible] उवसग्गहरं को स्मरण कर अपना काम निकालने लग गया। किसी [illegible] उवसग्गहर स्तोत्र। किसी को जंगल में काष्ठ का भारा उठाने [illegible] ऐसे अनेक काम भी धरणेन्द्र देवता से करवाने लग गये। स्तोत्र के [illegible] धरणेन्द्र देवता को बुलाने के लिए [illegible] करने लग गये।

एक समय की बात है एक स्त्री रसोई बना रही थी [illegible]

रोने लगा। स्त्री ने सोचा—यदि इस समय मैं जाऊँगी तो रोटी जल जायगी अतः उसने बैठे २ उवसग्गहरं स्तोत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। स्तोत्र के समाप्त होते ही धरणेन्द्र देवता अपनी प्रतिज्ञानुसार वहीं पर उपस्थित हुये और कहने लगे—कहो क्या काम है! स्त्री ने कहा—क्या तुझे दीखता नहीं है बच्चा रो रहा है। इन्द्र ने बच्चे को शौच क्रिया से निवृत्त कर उसके रोने को बन्द किया। पश्चात् ध देव आचार्य श्री के पास में आकर निवेदन करने लगे—प्रभो! अब तो मैं बहुत ही तंग हो चुका हूँ स्तोत्र के वास्तविक महत्व का दुरुपयोग कर जन समाज जघन्य से जघन्य कार्य को करवाने के लि मंत्र का स्मरण करती है अतः मैं न तो एक मिनिट ही देव भवन में ठहर सकता हूँ और न मन महत्ता ही रहती है। मनुष्यों के तुच्छ से तुच्छ कार्य भी मुझे करने पड़ते हैं। इन्द्र की वास्तविक वात को स्मरण कर आचार्य श्री ने उवसग्गहरं स्त्रोत को जलशरण करने को कहा पर कहा—पूर्व की पांच गाथा तो रहने दीजिये सिर्फ एक छट्टी गाथा ही भण्डार कर दीजिये कि— जरूरी काम होने पर मैं समयानुकूल उपस्थित हो सकूंगा। भद्रबाहु स्वामी ने भी ऐसा ही किया।

इस प्रकार आर्य भद्रबाहु स्वामी जैन संसार में परम प्रभावक निमित्त वेत्ता आचार्य हुए। अ समय विक्रम की छट्टी शताब्दी का कहा जाता है।

इस ग्रन्थ में जिन २ प्रभाविक आचार्यों का जीवन चरित्र लिखा गया है उनमें कई एक ऐ आचार्य हैं कि जिन के नाम के कई आचार्य हो गये हैं। इस सबों के समय में पृथकता होने पर भी पूर्व ले ने जो आचार्य विशेष प्रसिद्ध थे उनके नाम पर अन्याचार्यों (तन्नाम राशियों) की घटनाएं घटित हैं। जैसे:—भद्रबाहु नाम के तीन आचार्य हुए। एक वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी में, दूसरे दि मतानुसार विक्रम की दूसरी शताब्दी में, तीसरे भद्रबाहु विक्रम की छट्टी शताब्दी में हुए। पिछले लेखकों ने इन तीनों भद्रबाहु की पृथक २ घटना को एक ही भद्रबाहु के साथ घटित करदी। प्रकार पादलिप्त मानदेव, मानतुङ्ग, मल्लवादी, वगैरह आचार्यों की विद्यमानता का समय निर्णय बड़ी विकट समस्या सा दृष्टि गोचर होता है। मैंने पूर्वोक्त आचार्यों के जीवन लिखते समय जिन आच का ठीक निर्णय था उनका समय तो उसी समय लिख दिया। किन्तु, जिनके विषय में विशेष शोध करने की जरूरत थी, उनको छोड़ दिया था। कारण, उस समय न तो इतना समय था और न वे साधन ही अतः शेष रहे हुए आचार्यों का समय यहां लिख दिया जाता है।

सबसे पहिले तो हम युगप्रधान आचार्यों का समय जो, दुषमकाल श्रमण संघादि नामक पुस्त लिखा मिलता है, यंत्र द्वारा लिख देते हैं। जिसमे, शेष आचार्यों के समय निर्णय में सुविधा हो जा

"सिरि दुसमा काल समण संघ थुयं"

(दुषमा काल श्री श्रमण संघ स्तोत्रम्)

[कर्ता—श्री धर्मघोप सूरिः]

वीरजिण भुवण विस्सुअ पवयण गयणिक्कदिणमणि समाणो ।
वट्टन्त सुअनिहाणे थुणामि सूरि जुगप्पहाणे ॥ १ ॥
वीस तिवीस इनवई अडसयरी पञ्चसयरी गुण नवई। सउ सगसी पणनउइ सगसी छयस्सरी अडसयरी२
चउनवइ अठ तिअ सग चउ पन्नुरुत्तरसयं। तित्तिससयं सउ पणनउई नवनवई चत्त तेवीसुदय सूरी॥३
अह उदयाणं पढमे,जुगपवरे पणिवयामि तेवीसं। सिरिसुहस्म वयर पडिवय हरिस्सयं नंदिमित्तं च ॥४॥
सिरि सूरसेण रविमित्त सिरिपहं मणिरहं च जसमित्तं। धणसिंहं सच्चमित्तं धम्मिल्लं सिगिविजयाणंदं५
वंदामि सुमंगल धम्मसिंह जयदेवसूरि सूरदिन्नं । वइसाहं कोडिलं माहुर वणिपुत्त सिरिदत्तं ॥६॥
उदयांतिम सूरी पुसमित्त मरहमित्त वइसाहं । वंदे सुकीत्ति थावर रहसुअ जयमंगलमुणिंदं ॥ ७ ॥
सिद्धत्थं ईसाणं रहमित्तं भरणिमित्तं दढमित्तं। सिरिसंगयमित्तं सिरिधरं च मागह ममग्गरिं॥८॥
सिरि रेवइमित्तं कित्तिमित्तं सुरमित्तं फग्गुमित्तं च।कल्लाण देवमित्तं णमामि दुप्पगा मुणिरगदं९
वंदे सुहम्मं जंबूं पभवं सिज्जंभवं च जसभद्दं । संभूय विजय सिरिभद्द-नाग सिरिभूत्भद्दं च १०
महगिरि सुहत्थि गुणसुंदरं च सामज्ज खंदिलायरिउ। रेवइमित्तं धम्मं च भद्दगुत्तं सिरिगुत्तं ॥११॥
सिरिवयरमज्जरक्खिअ सूरिं पणामामि पूसमित्तं च। इअ सत्तकोडिनाने पढमसुदए थीर जुग पवरे॥१२॥
बीए तिवीस वइरं च नागहत्थिं च रेवइमित्तं । सीहं नागज्जुणं भूइदिन्नियं कालयं वंदे ॥१३॥
सिरिसच्चमित हारिलं जिणभद्दं वंदिमो उमासाइं ! पुसमित्तं संभूइं माढर संभूइ धम्मसिरिं ॥१४॥
जिट्टंग फग्गुमित्तं धम्मघोसं च विणयमितं च। सिरि सीलमित रेवइमित्तं [illegible] हरिमित्तं१५
इय सव्वोदय जुगपवर सूरिणो चरणसंजुए वंदे । पउनर दुसहस्सा दुप्पसहंते [illegible] ॥ १६ ॥
इय सुहम्म जंबू तब्भवसिद्धा एगावयारिणो सेसा । सह्टदुसोऽपसज्जे [illegible] ॥ १७
जुगपवर सरिस सूरी दुरीकय भवियमोह तमपसरे । वंदामि सोल [illegible] ॥ १८ ॥
पंचमअरम्मि पणवन्नलक्ख पणरस सहस कोडीसं । पंचन्नकोडिपसा [illegible] १९
तह सतरिकोडिलक्खा नवकोडिसय [illegible] कोडियं । [illegible] २० ॥
[illegible] कोडिलक्खा,तिसकोडिसहस्सा तिन्नि कोडिसया॥ [illegible] २१
पणतीसकोडिलक्खा [illegible] कोडिसहस्स [illegible] । [illegible]
एवं देविंदनयं निरिदिसाइ [illegible] धम्मसीहियं । [illegible] ॥ २३ ॥

॥ इय दुसम काल सिरि समण संघ थुयं ॥

त्रयोविंशत्युदययुगप्रधान काल यंत्रम्

उदय	युग प्रधानाः	उदयवर्ष प्रमाण संख्या	मास	दिन
१	२०	६१७	१०	२७ +
२	२३	१३८० ❀	१०	२९
३	९८	१५०० †	११	२०
४	७८	१५४५	८	२९
५	७५	१९००	३	२९
६	८६	१९५०	९	२२
७	१००	१७७०	७	२७
८	८७	१०१०	१०	१५
९	६५	८८०	१	१८
१०	८७	८५०	२	१२
११	७६	८००	३	१४
१२	७८	४४५	४	१९
१३	९४	५५०	७	२२
१४	१०८	५९२	५	२५
१५	१०३	९६५	६	२९
१६	१०७	७१०	९	२०
१७	१०४	६५५	६	२४
१८	११५	४९०	९	२
१९	१३३	३५६	१	१७
२०	१००	४०८ ‡	४	२ ÷
२१	९५	५७०	२	९
२२	९९	५९०	५	५
२३	४०	४४०	११	१७

युग प्रधान २००४ मध्यम युगसूरि ३३०४४९९ युगप्रधान मामना १११६०००

❀ १३६० व १३४३ भी है † १४६४ भी है ‡ ४८९ भी है + १७ भी है ÷ ७ भी है

'उदयादिम २३ युगप्रधान-यंत्र'

स०	आद्यसूरिनामानि	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल	सर्वायुः
१	सुधर्मा स्वामी	५०	४२	८	१००
२	वयर सेन	९	११६	३	१२८
३	पाडिवय	९	८२	९	१००
४	हरिस्सह	९	६०	१३	८२
५	नंदिमित्र	१३	३०	२४	६७
६	सूरसेन	१३	४०	१०	६३
७	रविमित्र	१३	४०	१०	६३
८	श्रीप्रभ	१३	४२	८	६३
९	मणिरथ	१३	४२	८	६३
१०	यशोमित्र	१४	४१	८	६३
११	धणसिंह	१४	४०	१०	६४
१२	सत्यमित्र	१४	४०	१२	६६
१३	धम्मिल	२०	३०	१२	६२
१४	विजयानन्द	१२	३०	१४	५६
१५	सुमगंल	१२	२०	२४	५६
१६	धर्मसिंह	१२	२०	१८	५०
१७	जयदेव	१२	२० ÷	१८ ≑	५०
१८	सुरदिन्न	१७	२७	१०	[illegible]
१९	वैशाख	१०	२०	२०	५०
२०	कौडिल्य	१० ×	२१	१९ +	५०
२१	माधुर	१०	२५	१५	५०
२२	वाणिपुत्त	१०	२०	[illegible]	[illegible]
२३	श्री दत्त	१०	१५	२५	५०

× ११ भी है ÷ २७ भी है ≑ ११ भी है + १८

उदयान्तिम युगप्रधान २३-यंत्रम्

उदय	सूरि नामानि	गृह वास	व्रत पर्यायः	युग प्रधान काल	सर्वायुः
१	दुर्बलिका पुष्यमित्र	१७	३०	१३ [1]	६० [6]
२	अरह मित्र	२०	१६	२५ [2]	६१ [7]
३	वैशाख	२५	१०	१९	५४
४	सत्कीर्ति	१६	२२	१८	५६
५	थावर	१३	२०	१७	५०
६	रहसुत	१३	२८	१३	५४
७	जय मंगल	१५	२०	१३	४८
८	सिद्धार्थ	१५	२०	१३	४८
९	ईशान	१५	३०	१०	५५
१०	रथमित्र	२२	२० [3]	८	५० [8]
११	भरणिमित्र	१०	२०	२०	५०
१२	दृढ़ मित्र	१४	१५	२६	५५
१३	संगत मित्र	१२	१५	२२	४९
१४	श्रीधर	१८	१० [4]	१८	४६ [9]
१५	मागध	१३	११	९	३३
१६	अमर	१५	२४	१३	५२
१७	रेवति मित्र	२२	१९ [5]	१८	५९ [10]
१८	कीर्ति मित्र	२०	१०	१०	४०
१९	सिंह मित्र	२०	१४	६	४०
२०	फल्गु मित्र	१३	१०	७	३०
२१	कल्याण मित्र	८	१६	१४	३८
२२	देव मित्र	१२	१२	१२	३६
२३	दुप्पमह सूरि	१२	४	४	२०

[1] २० भी है, [2] ४५ भी है, [3] १० भी है, [4] २० भी है, [5] २९ भी है, [6] ६७ भी है, [7] ८१ भी है, [8] ४० भी है, [9] ५६ भी हैं, [10] ६९ भी है।

प्रथमोदय युगप्रधान-यंत्रम्

उदय	प्रथमोदय युग प्रधान	गृहवास	व्रतपर्याय	युग प्रधान	सर्वायुः	मास	दिन
१	सुधर्मा स्वामी	५०	४२	८	१००	३	३
२	जंबु स्वामी	१६	२०	४४	८०	५	५
३	प्रभव ,,	३०	४४ [१]	११	८५ [१२]	२	२
४	शयंभव सूरि	२८	११	२३	६२	३	३
५	यशोभद्र	२२	१४	५०	८६	४	४
६	संभूति विजय	४२	४०	८	९०	५	५
७	भद्रबाहु	४५	१७	१४	७६	७	७
८	स्थूलभद्र	३०	२४	४५	९९	५	५
९	महागिरि	३०	४०	३०	१००	५	५
१०	सुहस्ति	३० [२]	२४ [४]	४६	१००	६	६
११	गुणसुंदरसूरि	२४	३२	४४	१००	२	२
१२	श्यामाचार्य	२०	३५	४१	९६	१	१
१३	स्कंदिल	२२ [५]	४८ [६]	३६ [७]	१०६ [८]	५	५
१४	रेवतिमित्र	१४	४८	३६	९८	५	५
१५	धर्मसूरि	१४ [९]	४० [१०]	४४	१०२	५	५
१६	भद्रगुप्त	२१	४५	३९	१०५	४	४
१७	श्रीगुप्त	३५	५०	१५	१००	७	७
१८	वज्रस्वामी	८	४४	३६	८८	७	७
१९	आर्य रक्षित	२२ [११]	४० [१२]	१३	७५	७	७
२०	दुर्वालिका पुष्पमित्र	१७	३०	१३ [१३]	६० [१४]	७	७

१ ६४ भी है ११ १०५ भी है २ २४ भी है ४ ३० भी है ५ १२ भी है ६ ५८ भी है ७ ३८ भी है ८ १०८ भी है ९ १८ भी है १० ४४ भी है ११ [illegible] भी है १२ [illegible] भी है १३ [illegible] भी है १४ ६७ भी है !

द्वितीयोदय युगप्रधान-यंत्रम्

उदय	द्वितीयोदय युग प्रधान	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायुः	मास	दिन
१	वयरसेन	९	११६	३	१२८	३	३
२	नागहस्ति	१९	२८	६९	११६	५	५
३	रेवतीमित्र	२०	३०	५९	१०९	२	२
४	सिंहसूरि (ब्रह्मदीपक)	१८	२०	७८	११६	३	३
५	नागार्जुन	१४	१९	७८	१११	५	५
६	भूति दिन्न	१८	२२	७९	११९	४	४
७	कालिकाचार्य	१२	६०	११	८३	७	७
८	सत्य मित्र	१०	३०	७	४७	५	५
९	हारिल	२७❀	३१†	५४	११२+	५	५
१०	जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण	१४	३०	६०	१०४	६	६
११	उमास्वाति वाचक	२०	१५	७५	११०	२	२
१२	पुष्प मित्र	८	३०	६०	९८	०	०
१३	संभूति	१०	१९	४९‡	७८×	२	२
१४	माढ़र सभूति गुप्त	१०	३०	६०	१००	५	५
१५	धर्म ऋषि (रक्षित)	१५	२०	४०	७५	४	४
१६	ज्येष्ठांगगणि	१२	१८	७१	१०१	३	३
१७	फल्गुमित्र	१४	१३	४९	७६	७	७
१८	धर्मघोष	८	१५	७८	१०१	७	७
१९	विनय मित्र	१०	१९	८६	११५	७	७
२०	शीलमित्र	११	२०	८९	११०	७	७
२१	रेवति मित्र	९	१६	७८	१०३	०	०
२२	सुमिणमित्र	१२	१८	७८	१०८	०	०
२३	हरि मित्र	२०	१६	४५	८१	०	०

❀ १७ भी है † ३० भी है ‡ १५० भी है × ७९ भी है + १०१ भी है।

इन सब के ऊपर एक संघचार्य होते थे। उन आचार्यों की आज्ञा से कुछ साधुओं को लेकर पृथक् विहार करने वाले गणावच्छेदक कहे जाते थे। गणावच्छेदक पद भी किसी गीतार्थ साधुको ही दिया जाता था और वे कम से कम दो साधुओं के साथ विहार करते थे और साथ में रहने वाले साधु को ज्ञान पढ़ा सकते थे।

दूसरा कारण यह भी था कि दीक्षा जैसी पवित्र वस्तु की जिम्मेवारी किसी चलते फिरते व्यक्ति को नहीं दी जाती थी किन्तु आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावना वाले एवं साधुत्वावस्था के लिये आवश्यक ज्ञान को करने वाले व्यक्ति को ही दीक्षा दी जाती थी। अतः उनको पुस्तकें लिखने या रखने की आवश्यक्ता ही प्रतीत नहीं होती थी।

आर्य भद्रबाहु के समय द्वादश वर्षीय दुष्कालान्तर पाटलीपुत्र में एक श्रमण सभा की गई जिससे, आगत मुनियों के अवशिष्ट कंठस्थ ज्ञान का संग्रह कर एकादशांग की संकलना की गई। दिष्टिवाद नामक बारहवां अंग किसी को कंठस्थ नहीं था अतः साधुओं के एक सिंघाड़े को नैपाल भेज भद्रबाहु स्वामी को बुलाया गया। * आर्य भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को दश पूर्व सार्थ एवं चार पूर्व मूल ऐसे चौदह पूर्व का अभ्यास करवाया। यहां तक तो जैन साधुओं को सब ज्ञान कण्ठस्थ ही रहता था अतः पुस्तकादिक साधनो की जरूरत ही नहीं थी।

आगे चलकर आर्य महागिरि एवं सुहस्ति के समय तथा उनके बाद आर्यवज्रसूरि † एवं वज्रसेन के समय ऊपरोपरि दुष्काल पड़ने से साधुओं को भिक्षा मिलनी भी दुष्कर हो गई थी तो उन हालात में शास्त्रों का पठन पाठन बंद हो जाना तो स्वाभाविक बात ही थी। इतना ही नहीं पर बहुत से गीतार्थ एवं अनुयोग धर भी इस कराल दुष्काल-काल के कवल बन गये थे। तथापि दुष्कालों के अन्त में सुकाल के समय आगमों की वाचना बराबर होती रही।

श्री आर्य रक्षित ने अवशिष्ट आगमो को चार विभागो मे विभक्त किये, ‡ तद्यथा—१ द्रव्यानुयोग २ गणितानुयोग ३ चरण करणानुयोग ४ धर्मकथानुयोग। इनके पूर्व एक ही सूत्र के अर्थ मे चारो अनुयोगों का अर्थ हो सकता था पर अल्पज्ञों की प्रज्ञा मंदता को ध्यान मे रख श्रमणों की अर्थ सुगमता के लिये चारों अनुयोग पृथक २ कर दिये जो अद्यावधि विद्यमान हैं। युगप्रधान पट्टावली के अनुसार आपका समय वीरात् ५८४ से ५९७ का है।

आपश्री से पूर्व भी कहीं २ पर आगम लिखने का उल्लेख मिलता है। जैसे आचार्य [illegible] के समय आगम वाचना और पुस्तक लिखने का उल्लेख मिलता है। यही नहीं [illegible]

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

आर्य पादलिप्त सूरि एवं सिद्धसेनदिवाकर को आर्यरक्षित के पूर्व माना जाय तो इनके समय में लिखी हुई पुस्तकें मिलने का प्रमाण मिल सकता है जैसे सिद्धसेन दिवाकर जब चित्तौड़ गये तब वहां के एक स्तम्भ में आपने बहुतसी पुस्तकें देखी। उसके अन्दर से एक पुस्तक आपने पढ़ी तथा आर्यपादलिप्तसूरि की तरंग लोल नाम की कथा का थोड़ा २ भाग कवि पंचाल ने राजा को सुनाया इसका उल्लेख पादलिप्त के जीवन से मिलता है। इससे पाया जाता है कि-उस समय पुस्तकों पर लिखना प्रारम्भ हो गया था।

हेमवंत पट्टावली के अनुसार आर्य स्कंदिल के उपदेश से ओसवंशीय पोलाक नामक श्रावक ने गंध हस्ति विवरण सहित आगमों की प्रतियें लिखकर जैन श्रमणों को भेंट की। इसका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी है, अतः यह ठीक है तो मानना चाहिये कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में जैनागमों को पुस्तक रूप में लिखना प्रारम्भ हो गया था।

अन्तिम द्वादश वर्षीय दुष्काल विक्रम की चौथी शताब्दी में पड़ा था। जब दुष्काल के अंत में सुकाल हुआ तो आर्य स्कंदिल सूरि ने मथुरा में और आर्य नागार्जुन ने वल्लभी में श्रमणों को आगमों की वाचना दी। उस समय भी आगमों को पुस्तकों पर लिखा गया था।

आर्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमणजी और कालिकाचार्य के समय पुनः वल्लभी नगरी में माथुरी और वल्लभी वाचना के अंदर जो-जो पाठान्तर रह गये थे; उनको ठीक व्यवस्थित करने के लिये सभा की गई।

एक समय वह था जब कि जैन श्रमण पुस्तकों को लिखने एवं रखने में सयम विराधना रूप पाप समझते थे परन्तु समय ने पलटा खाया और क्रमशः बुद्धि की मंदता होने लगी। अतः ज्ञानि को स्थिर रखने के लिये पुस्तक लिखना एवं रखना अनिवार्य समजाने लगा। इतना ही क्यों पर पुस्तकें संयम की रक्षा के अंग बन गये थे। ३।

जब पुस्तकें लिखने रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इन्हें ज्ञान का साधन व संयम का अंग समझ लिया तब यह सवाल पैदा हुआ कि पुस्तकें किस लिपि में किन साधनों द्वारा लिखी गई? साथ ही इस विषय का शास्त्रों में कहां २ उल्लेख है?

१, अत्थि महुराउरीए सुय समिद्धो खंदिलो नाम सूरि तहा वलहि नयरीए नागज्जुणो नाम सूरि। तेहिय आए बारस वरिसिए दुक्काले निव्व उभावओ विप्फुट्टि (१) वाउण पेसिया दिसो दिसि साहवो। गमिउंच कहवि दुत्थंते पुणो मिलिया सुगाले। जाव स ज्झायंति ताव खंडुखुरं डीहूयं पुव्वाहीयं। ततोमा सुय वोच्छित्ति होउत्ति पारद्धो सूरीहिं सिद्धुद्धारो। तत्थ विजं न विसरियंतं तहेव संठवियं। पम्हुट्ठाणं उण पुव्वावरवडंतु सुत्तत्थाणुसारओ कया संघडणा, पहारकी लिखित प्रति'

२—वल्लहि पुरम्मिनयरे देविड्ढी पमुह सयल संघेहिं।
पुत्थेआगम लिहिओ नवसय असिआओ वीराओ ॥

३ (क) घेप्पति पोत्थग पणगं, कालियणिज्जुत्ति कोसट्ठा ॥ निशीथ भाष्य—३-१२

(ख) मेहा ओगहण धारणादि परिहाणिं जाणिऊण कालियसुयणिज्जुत्ति णिमित्तं वा पोत्थग पणगं घेप्पति।
कोसो त्ति समुदाओ ॥ निशीथ चूर्णी

(ग) कालं पुण पडुच्च चरण करणट्ठा अवोच्छित्ति निमित्तं गेण्हमाणस्स पोत्थए संजमो भवइ।
दशवै कालिक चूर्णी

इसके लिये सबसे पहले हम श्रीराजप्रश्नीयसूत्र को देखते है। उसमें सूर्याभदेव के अधिकार में पुस्तक रत्न और उनके साधन निम्न बतलाये है।

"तस्सेणं पोत्थरयणस्स इमेया रूवे वण्ण वासे पण्णत्ते तंजहा रयणामयाइंपत्तगाइं, रिट्ठाम-इओकंबिआओ, तवणिज्जमएदोरे, नाणामणिमएगंठी, वेरुलियमणिलिप्पासणे, रिट्ठामए छंदणेः तवणिज्जमइसंकला, रिट्ठामइमसी, वइरामइलेहणी, रिट्ठामयाइंअक्खराइं धम्मिए सत्थे

"श्रीराज प्रश्नी सूत्र"

प्रस्तुत उल्लेख से लेखन कला के साथ सम्बन्ध रखने वाले साधनो में से पत्र कम्बिका (कांबी) डोरा, गांठ, दवात, दवात का ढक्कन, सांकल, स्याही, लेखनी आदि प्रमुख साधन बतलाये है। इन्ही साधनों को जैनश्रमणो ने पुस्तक लिखने के उपयोग मे लिये।

जैसे आज मुद्रित पुस्तको की साइज रोयल सुपरवाइल, डेमीइल, क्राउन है वैसे ही हस्त लिखित पुस्तकों की साइज के लिये निम्न पाट है:—

"पोत्थगपणगं—दीहोबाहल्लपुहजेण तुल्लो चउरंसो गंडीपोत्थगो अंतेतुतणुओ मज्झे पिहुलो, अप्पबाहल्लो कच्छ भी, चउरंगुलो दीहोवावत्ता कति मुट्ठि पोत्थगो, अहवा चउरंगुल दीहो चउरंसो मुट्ठिपोत्थगो। दुमादि फलगा सपुउगं। दीहो हस्सो वा पिहुलो अप्पबाहुल्लो छिवाडी, अहवातणु पतेहिं उस्सिओ छिवाड़ी"

गंडी पुस्तक—जो पुस्तक जाड़ाई और चौड़ाई मे सरीखी अर्थात चौखंटी लम्बी हो वह गंडी पुस्तक।

कच्छपी पुस्तक—जो पुस्तक दो बाजू से सकड़ी और बीच मे चौड़ी हो वह कच्छपी पुस्तक।

मुष्टि पुस्तकः—जो पुस्तक चार अंगुल लम्बी होकर गोल हो चौड़ी वह मुष्टि पुस्तक।

संपुट फलकः—लकड़ी के पटियो पर लिखी हुई पुस्तक का नाम संपुट फलक है।

छेदपाटी :—जिस पुस्तक के पत्र थोड़े हों ऊंचे भी थोड़े हो वह छेदपाटी पुस्तक है।

इन पांचो के अलावे भी कई प्रकार के साइज मे पुस्तकें लिखी गई थी।

पुस्तकों की लिपि—ऐसे तो अक्षर लिखने की बहुत सी लिपियां है परन्तु जैन पुस्तक लिखने मे प्रायः ब्राह्मी लिपि ही काम मे ली गई थी यही कारण है कि श्रीभगवतीसूत्र के आदि मे गणधर देवों ने 'नमो बंभीए लिवीए' अर्थात् ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है और समवायांगजी सूत्र मे ब्राह्मी लिपि के १८ भेद बतलाये है। यथा:—

'तथा वंभित्ति—ब्राह्मी आदिदेवस्य भगवतो दुहिता ब्राह्मी वा संस्कृतादिभेदा वाणी, तामाश्रित्य तेनेवबा दर्शिता अक्षर लेखन प्रक्रिया सा ब्राह्मी लिपिः ।'

उक्त लेख से सिद्ध होताहै कि जैन शास्त्र ब्राह्मी लिपि में ही लिखे गये थे।

जैन शास्त्र किस पर लिखे गये ? इसके लिये भोजपत्र, ताड़पत्र, कागज, कपड़ा, काष्ट फलक, पत्थर आदि पर लिखे जाने के प्रमाण मिलते हैं। तथाहिः—

भोजपत्र :—इसका उपयोग अधिकतर यन्त्र मन्त्रादि में ही हुआ परन्तु शास्त्र लिखा हुआ कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। हां, हेमवन्त पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि कलिंगाधिपति महाराजा खारवेल ने भोजपत्र पर शास्त्र लिखवाये थे।

ताड़पत्रः —इसके दो प्रकार होते हैं (१) खरताड़ (२) श्री ताड़। खरताड़ पुस्तकादि लेखन कार्य में नहीं आता है क्योंकि यह बरड़ होने से जल्दी टूट जाता है। दूसरा श्रीताड़ नरम और टिकाऊ होता है इसको संकुचित करने में (मरोड़ने में) भी टूटता नहीं है अतः यह ही पुस्तक लिखने में काम में आता है ॐ ताड़पत्र पर लिखना कब से प्रारम्भ हुआ ? इसके लिये निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है और न कोई प्राचीन लिखी हुई ही प्रति ही हस्तगत होती है।—परन्तु, जब पुस्तक लिखना विक्रम की १—२ शताब्दी से प्रारम्भ होता है तो वह ताड़ पत्र पर ही लिखा गया होगा। भारतीय प्राचीन लिपिमाला के कर्त्ता श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि—'ताड़पत्र पर लिखी हुई एक त्रुटक नाटक की प्रति मिली है वह ईस्वी सन् दूसरी शताब्दी के आस पास की है।"

भारत की प्राचीन लिपि माला में श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि भोजपत्र पर लिखा हुआ 'धम्मपद व संयुक्तागम' नामक बोध ग्रंथ मिले है वे क्रमशः इ० सं० की दूसरी तीसरी और तीसरी चोथी शताब्दी के हैं—

ताड़ पत्र एक प्रकार का झाड़ के पत्ते होते हैं। वे लम्बाई में खूब लम्बे होते हैं पर चोड़ाई में बहुत कम होते हैं। वर्तमान जैन ज्ञान भंडारों में कई ताड़ पत्र पर लिखी हुई जातियां हैं उनमें कई कई तो ३७ इंच लम्बी और ५ इंच चोड़ी है पर ऐसी बहुत कम संख्या में मिलती हैं। छोटी से छोटी चार पांच इन्च लम्बी और तीन इन्च चौड़ी पुस्तक भी मिलती हैं।

ताड़पत्र पर बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें लिखी जाती थी चीनी यात्री फाहियान इ० सं० चौथी सदी में भारत की यात्रा के लिये आया था। वह १५२० प्रतियाँ ताड़पत्र पर लिखी हुई भारत से चीन जाते समय ले गया तथा। इ० सं० की सातवी सदी में चीनी यात्री ह्यूयमेन भी १५०० प्रतियें ताड़पत्र की भारत से लेगया इनके अलावा जर्मनी एवं यूरोप के विद्या प्रेमी हजारों ताड़पत्र पर एवं कागजों पर लिखी हुई प्रतियां ले गये थे और वह प्रतियां अद्यावधि उन देशों में विद्यमान हैं।

ताड़ पत्र लिखने का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो अच्छी तरह रहा किन्तु बाद में कागजों की बहुलता से ताड़पत्र पर लिखना कम होगया। फिर भी थोड़ा बहुत लिखना पन्द्रहवीं शताब्दी तक

ॐ बहुविधं इदं [illegible] लिहितं ते चेव ता[illegible] पोत्थगता तेसु लिहितं वत्थे वा लिहितं। भ० सू०

(ख) इह पत्रकाणां तलता[illegible] समूहनिष्पन्ना [illegible] पुस्तकाः [illegible]।

अनुयोगद्वार सूत्र हारिभद्रा टीका

रहा था। पाटण के ज्ञान भन्डार मे चौदहवी शताब्दी का एक टूटा हुआ ताड़पत्र का पाना है जिसमें ताड़पत्र का हिसाब लिखा है कि उस समय एक ताड़पत्र के पाने पर छ आने का खर्च लगता था। यही कारण है कि ताड़पत्र का लिखना कम होगया। पाटण, खम्भात, लिम्बड़ी, अहमदाबाद, जैसलमेर आदि के जैन ज्ञान भण्डारों में ताड़पत्र की प्रतिये हैं, उन में विक्रम की बारहवी शताब्दी से प्राचीन कोई प्रति नहीं मिलती है। इसका कारण शायद मुसलमानों की धर्मांधता ही होनी चाहिये।

आचार्य मल्लवादी ने जो विक्रम की पांचवीं शताब्दी में हुए; नयचक्र ग्रन्थ बनाया था। उस ग्रन्थ को हस्ति पर स्थापन कर जुलूस के साथ नगर प्रवेश करवाया, इसका उल्लेख प्रभाविक चरित्रादि में— मिलता है इससे पाया जाता है कि उस समय या उसके पूर्व भी ग्रन्थ लेखन कार्य प्रारम्भ हो गया था।

कागज:—इस विषय मे निआर्कस, और मेगस्थनिस वे इंडिया नामक प्रत्येक पुस्तक में लिखते है कि भारत में ईसा से तीन सो वर्ष पूर्व रुई और पुराने कपड़ों को (चिथड़ो को) कूट कूट कर कागज बनाना प्रारम्भ हो गया था। दूसरा जब अरबों ने ईस्वी सन् ७०४ मे समरकंद नगर विजय किया तब रुई और चिथड़ो से कागज बनाना सीखा। परन्तु इसका प्रचार सर्वत्र न होने से जैनों ने पुस्तक लिखने मे इनका उपयोग नहीं किया। कागज पर लिखना जैनियो में विक्रम की बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ परन्तु उस समय की तो कोई भी पुस्तक ज्ञान भण्डार में उपलब्ध नहीं होती है। हां चौदहवीं शताब्दी की कई प्रतियें मिलती है। प्राचीन भारतीय लिपि के कर्ता श्रीमान् ओझाजी लिखते हैं कि—डा० वेबर को कागज पर लिखी हुई ४ प्रतियें मिली वे ईसा की पांचवीशताब्दी की लिखी हुई हैं। परन्तु जैन ग्रन्थो से [illegible] श्रीजिनमण्डन गणि कृत कुमारपाल प्रबन्ध जो सं० १४९२ मे उल्लेख मिलता है कि आचार्य हेमचंद्र सूरि ने कागजों पर ग्रन्थ लिखाये थे। जैसेकि —

'एकदा प्रातर्गुरुन सर्व साधूश्च वंदित्वा लेखक शालाविलोकनाय गतः लेखकाः कागद पत्राणि लिखंतो दृष्टाः। ततो गुरु पार्श्वे पृच्छा—गुरुभिरूचे श्रीचौलुक्यदेव! सम्प्रति श्री ताड़-पत्राणां त्रुटिरस्ति ज्ञान कोशे, अतः कागद पत्रेषु ग्रन्थ लेखन [illegible]।

इसी प्रकार श्री रत्नमन्दिर गणि ने उपदेश तरङ्गिनी ग्रन्थ मे वस्तुपाल तेजपाल के लिये लिखा है कि इन्होने कागज पर शास्त्र लिखवाये। तथाहि —

'श्री वस्तुपाल मन्त्रिणा सौवर्णमषिमयाक्षरा एका सिद्धान्त प्रतिर्लिखिता [illegible] श्री ताड़ कागद पत्रेषु मषीवर्णाङ्कितः ६ प्रतयः। एवं [illegible] लेखिताः।'

[illegible]

कपड़ाः— यद्यपि शास्त्र लिखने के कार्य मे [illegible] नहीं हुआ [illegible] ११ वीं सदी मे लिखा है कि "पुस्तकेषु [illegible]" इससे [illegible] है कि [illegible] पुस्तक लेखन कार्य किया जाता था। [illegible] पाटन मे [illegible] जैन ज्ञान [illegible] है उसमे 'धर्मविधिप्रकरण' वृत्ति सहित, कच्छुली रास और [illegible] विक्रम की चौदहवीं शताब्दी की कपड़े पर लिखी हुई [illegible] की है। [illegible]

द्वीप, नवपद ह्रींकार, घण्टाकर्ण, एवं जंत्र, मंत्र, चित्रपट वगैरह भी लिखे गये हैं; जो कई ज्ञान भण्डारों में मिलते हैं।

काष्ट फलकः— काष्ट फलक अर्थात् लकड़े की पाटी पर ग्रन्थ लिखा है यह तो असम्भव है फिर भी निशीथ सूत्र की चूर्णी में "दुम्मादि फलगा संपुडग" का उल्लेख मिलता है; इससे पाया जाता है कि कभी कभी साधारण कार्यों में—यंत्र मंत्र चित्रादिको में, लकड़े की पाटियां काम में ली गई हैं।

पाषाणः—पूर्व जमाने में बड़ी २ शिलाओं पर ग्रन्थ लिखे जाते थे। जैसे चित्तौड़ के महावीर मंदिर के द्वार पर दोनों बाजू जिनवल्लभसूरि ने संघ पट्टक व धर्मशिक्षा नाम के ग्रंथ पत्थरों पर खुदवाये थे। इनके सिवाय शिलालेख, तप पट्टक, कल्याणक भी पत्थरों पर खुदे हुए मिलते हैं। इसके प्रारंभ काल के लिये कहा जा सकता है कि सम्राट सम्प्रति एवं खारवेल के समय के शिलालेख इसके आदिकाल हैं।

इनके सिवाय ताम्रपत्र, रौप्यपत्र, स्वर्णपत्र भी लिखने के काम में लिये जाते थे। जैसे वसुदेव हिंड प्रथम खण्ड में ताम्र पत्र पर लिखने का उल्लेख मिलता है—"इयरेण तंबपत्तेसु तणुगेसु रायलक्खणं रएऊण तिहलारसेण तिम्मेऊण तंब भायणे पोत्थओ पक्खित्तो, निक्खित्तो, न परवाहिं दुब्भामेद मज्झे।"

प्रभास पाटन में खुदाई का काम करते समय भूगर्भ से एक ताम्र पत्र मिला है वह ईस्वी सन् पूर्व छ शताब्दी का बतलाया जाता है। उसकी लिपि इतनी दुर्गम्य है कि साधारण विद्वान व्यक्ति तो ठीक तौर से पढ़ ही नहीं सकते तथापि हिन्दू विश्व विद्यालय के अध्यापक, प्रखर भाषा शास्त्री श्रीमान् प्राणनाथजी ने बड़े ही परिश्रम पूर्वक पढ़ कर यह बतलाया है कि रेवा नगर के राज्य का स्वामी सु०······जाति के देव, ने बुसदनेझर हुए वे यदुराज (कृष्ण) के स्थान (द्वारिका) आया। उसने एक मंदिर सूर्व · देव नेमि' जो स्वर्ग समान रेवत पर्वत का देव है। उसने मन्दिर बनाकर सदैव के लिए अर्पण किया ?

इसके सिवाय रौप्य स्वर्ण पत्र प्रायः यंत्र मंत्र लिखने के काम मे आते थे।

स्याही—वर्तमान में ब्ल्यू स्याही के सिवाय दीपमालिका पर काली स्याही बनाई जाती है, वह न तो बहुत चमकदार ही होती है और न टिकाऊ ही। इतना क्यों पर वह थोड़े वर्षों के बाद फीकी भी पड़ जाती है! तब छ सात सौ वर्ष पूर्व की ताड़ पत्रादि पर लिखी हुई स्याही बहुत चमकदार एवं काली दिखाई पड़ती है अतः यह जानने की जिज्ञासा अवश्य होती है कि पूर्व जमाने में स्याही किन २ पदार्थों से बनाई जाती होगी ? इसके लिए प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि—

(क) "निर्यासात् पिचुमंदजाद् द्विगुणितो बोलस्ततः कज्जलं,
संजातं तिलतैलतो हुतवहे तीव्रातपे मर्दितम् ॥
पात्रे शूल्बमये तथा शन (?) जलैर्लाक्षार सैर्भावितः।
सद्भल्लातक भृङ्ग राजरसयुक् सम्यग् रसोऽयं मषी ॥

(ख) मष्यर्थे क्षिप मद्गुदं गुन्दार्थे बोलमेव च। लाक्षाबीयारसेनोच्चैर्मर्दयेत् ताम्रभाजनं ॥

(ग) जितना काजल उतना बोल, तेथी दूना गूंद झकोल।
जो रस भांगरनो पड़े, तो अक्षरे अक्षरे दीवा बले ॥

(घ) बीआबोल अनई लक्खारस कज्जल वज्जल (?) नई अंबारस।
'भोजराज' मिसी निपाई, पानऊ फाटई मिसी न विजाई।

(ङ) लाख टांक बीस मेल स्वाग टांक पांच मेल, नीर टांक दो सो लेई हांडी में चढ़ाइये।
ज्यों लों आग दीजे त्योंलो ओर खार सब लीजे,, लोदर खार वाल वाल, पीस के रखाइये॥
मीठा तेल दीप जाल काजल सो ले उतार, नीको विधि पिछानी के ऐसे ही बनाइये॥
चाहक चतुर नर, लिख के अनूप ग्रन्थ, बांच बांच बांच रिझ, रिझ भोज पाइये॥

(च) बोलस्य द्विगुणो गुन्दो गुंदस्य द्विगुणा मषी। मर्दयेद् यामयुग्मंतु मषी वज्रसमाभवेत्॥

"सोनेरी (सुनहली) रूपेरी स्याही"

सोने की अथवा चांदी की स्याही बनाने के लिये सोनेरी रूपेरी वरक लेकर खरल में डालने चाहिये। फिर उसमें अत्यन्त स्वच्छ बिना धूल-कचरे का धव के गोंद का पानी डालकर खूब घोटना चाहिये जिससे वरक वंटाकर के चूर्णवत हो जावे। इस प्रकार हुए भूके में शक्कर का पानी डालकर खूब हिलाना चाहिये। जब भूका बराबर ठहर कर नीचे बैठ जावे तब ऊपर के पानी को धीरे २ बाहर फेंक देना चाहिये किन्तु पानी फेंकते हुए यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि पानी के साथ सोने चांदी का भूका न निकल जाय। इस प्रकार तीन चार बार करने से गोंदा धोया जाकर सोना चांदी का भूका रह जावे उसे क्रमशः सोनेरी रूपेरी स्याही समझना।

किसी को अनुभव के लिये थोड़ी सोनेरी रूपेरी स्याही बनानी हो तो काच की रकाबी में धवके गोंद का पानी चोपड़ कर उस पर छूटे वरक डाल अंगुली से घोट कर उक्त प्रकारेण धोने से सोनेरी रूपेरी स्याही हो जायगी।

लाल स्याही—अच्छे से अच्छा हिंगलू, जो गांगड़े जैसा हो और जिसमें पारे का अंश रहा हुआ हो उसको खरल में डाल कर शक्कर के पानी के साथ खूब घोटना चाहिये। फिर हिंगलू के ठहर जाने पर जो पीला पड़ा हुआ पानी ऊपर तैर कर आजावे उसको शनैः शनैः बाहर फेंकना चाहिये। यहां भी पानी फेंकते हुए यह ध्यान रखना चाहिये कि पानी के साथ हिंगलू का अंश नहीं चला जावे। उसके बाद [illegible] फिर से शक्कर का पानी डालकर घोटना और ठहरने के बाद ऊपर आये हुए पीले पानी को पूर्ववत् बाहर फेंक देना। इस प्रकार जबतक पीलापन दृष्टिगोचर होता रहे तब करते रहना चाहिये। इस तरह बार [illegible] करने से शुद्ध लाल सुर्ख हिंगलू तैयार हो जायगा। फिर उस स्वच्छ हिंगलू में शक्कर और गोंद का पानी डालते जाना और घोटते जाना चाहिये। बराबर एकरस होने के बाद हिंगलू तैयार हो जाता है

अष्ट गंधः—१ अगर २ तगर ३ गोरोचन ४ कस्तूरी ५ रक्त चन्दन ६ चन्दन ७ सिन्दूर ८ केशर इन आठ द्रव्यों के सम्मिश्रण से यह अष्ट गंध स्याही बनती है। [illegible] १ कपूर २ कस्तूरी ३ गोरोचन ४ [illegible] ५ केसर ६ चंदन ७ अगर और ८ [illegible]। इन आठ द्रव्यों के सम्मिश्रण से भी अष्टगंध बनती है।

यक्ष कर्दमः—चंदन १ केसर २ अगर ३ बरास ४ कस्तूरी ५ मरचककोमु ६ गोरोचन ७ हिंग-लोक ८ रतवणी ९ सोनेरी वरक १० और अंबर ११ इन ग्यारह सुगंधी द्रव्यों के मिश्रण से यक्षकर्दम स्याही बनती है।

इन स्याहियों के सिवाय चित्र कार्यो में पीली स्याही के लिये हड़ताल सफेद के लिये सफेदा तथा हरा रंग भी बनाया जाता था। वर्तमान में कल्पसूत्र आदि में उक्त स्याही के चित्र पाये जाते हैं।

दवातः—स्याही रखने के भाजन (मसि पात्र) दवात (खड़िया) के नाम से प्रसिद्ध है। पहले के जमाने में मसि भाजन पीतल, ताम्र और मिट्टी के होते थे। कोई २ डिब्बियों में भी स्याही रखते थे। इस मसिभाजन के एक ढक्कन भी होता है तथा दवात के अन्दर एक सांकल भी डाली जाती है कि इधर-उधर लाने ले जाने में और ऊपर लटकाने में सुविधा रहे।

लेखनीः—लिखने के लिये लेखनी वस (नेजा) वंश-दालचीनी, दाड़म आदि की बनाई जाती थी। किन्तु इसमें भी लेखनी कैसी होनी ? कितनी लम्बी होनी ? और किस प्रकार से लिखना? इसमें भी शुभा-शुभपना रहा हुआ है। तथाहि:—

ब्राह्मणी श्वेतवर्णा च रक्तवर्णा च क्षत्रिणी। वैश्यणी पीतवर्णा च असुरी श्याम लेखनी ॥१॥
श्वेते सुखं विजानीयात् रक्ते दरिद्रता भवेत्। पीते च पुष्कला लक्ष्मीः असुरी क्षय कारिणी ॥२॥
चित्ताग्रे हरते पुत्रं मधोमुखी हरते धनम्। वामे च हरते विद्यं दक्षिणा लेखनी लिखेत् ॥३॥
अग्रग्रन्थिर्हरेदायु मध्यग्रान्थिर्हरेद्धनम्। पृष्टग्रन्थिर्हरेत् सर्वं निग्रन्थिर्लेखनी लिखेत् ॥४॥
नवांगुल मिता श्रेष्ठा अष्टौ वा यदि वाधिका। लेखिनी लेखयेन्नित्यं धनधान्य समागमः ॥५॥

इनके अलावा जुजवल, प्राकार और कम्बिक भी होती थी कि जो फांटिया पाड़ने में या चित्र करने में काम आते थे।

डोराः—ताड़ पत्र की पुस्तकों के बीच छिद्र कर दोनों और लकड़े की पट्टी लगा कर एक डोरा बंधा जाता कि जिससे वे पत्र पृथक न हो सकें और क्रमशः बराबर रहें।

इनके अलावा पुस्तक लिखने वाले लहिये के पास निम्न सामग्री भी रहती थी—

कुंपी १ कज्जल २ केश ३ कम्बल मही ४ मध्येच शुभ्रकुशं ५।
कांबी ६ कलम ७ कृपाणिका ८ कतरणी ९ काष्टं १० तथा कागलं ११
कीकी १२ कोटरि १३ कलमदान १४ क्रमणे १५ कटि १६ स्तथा कांकरो १७,
एते रम्यक ककारैश्च सहितः शास्त्रं च नित्यं लिखेत् ॥

ये सत्तरह ककार लेखक के पास रहने से लिखने में अच्छी सुविधा रहती है।

लिपि और लेखक के आदर्श गुण:—

अक्षराणि समशीर्षाणि वर्तुलानि घनानिच । परस्पर मलग्नानि यो लिखेत् सहि लेखकः ॥ १ ॥
समानि शमशीर्षाणि वर्तुलानि घनानिच । मात्रासु प्रति बद्धानि यो जानाति स लेखकः ॥ २ ॥
शीर्षोपेतान् सुसंपूर्णान् शुभश्रोणिगतान् समान । अक्षरान् वै लिखेद् यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः ॥ ३ ॥
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्व भाषाविविशारदः । लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ॥ ४ ॥
मेधावी वाक्पटुर्धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रियः । परशास्त्र परिज्ञाता एष लेखक उच्यते ॥ ५ ॥

लेखक के दोष:—

दलिया य मसिभग्गा य लेहिणी खरडियं चतलवट्टं । धिद्धित्ति कूड लेहय ! अज्ज विलेहत्तणे तण्हा,.
पिहुलं मसि भायणयं अत्थि मसी वित्थयं सितलवट्टं । अम्हारिसाण कज्जे तए लेहय ! लेहिणी भग्गा"
मसिगहिऊण न जाणसि लेहणगहणेण मुद्ध ! कलिओसि । ओसरसु कूडलेहय ! सुललिये पत्ते विणासेसि..

जो लेखक स्याही ढोलता हो, लेखनी तोड़ता हो, आसपास की जमीन बिगाड़ता हो, खड़िया का बड़ा मुंह होने पर भी जो उसमे डालते हुए लेखनी को तोड़ डालता हो, कलम पकड़ना व दवात में पड़नि· सर डालना न जानता हो फिर भी, लेखनी लेकर लिखने बैठ जाते हो तो उसे कूट लेखक अर्थात् अपलक्षण वाला लेखक जानना । वह लेखक तो केवल सुंदर पानों को बिगाड़ने वाला ही है ।

लिपि लेखन प्रकार: लिपि दो प्रकार से लिखी जाती है १ अग्र मात्रा २ पड़ी मात्रा ; अग्र मात्रा—परमेश्वर । पड़ी मात्रा—परामश्वर ।

लेखक—जैसे जैन श्रमणों ने पुस्तकें लिखी है वैसे कायस्थ, ब्राह्मण, वगैरह वेतनदारों ने भी लिखी है । इनका वेतन श्रावकों ने देकर अपना नाम अमर किया है । यथा:—

> श्री कायस्थ विशालवंश गगनादित्योऽत्र जानामिधः ।
> संजातः सचिवाग्रणीगुरुयशाः श्रीस्तम्भनतीर्थे पुरे ॥
> तत्सूनुर्लिखन क्रियैककुशलो भीमाभिधो मंत्रीराट् ।
> तेनायं लिखितो बुधावलिमनः प्रीतिप्रदः पुस्तकः ॥ [illegible]

अणहिल पाटक नगरे, सौवर्णिक नेमिचन्द्र सत्शालायाम् । [illegible] जयसिंह भूपस्य" (पाक्षिक सूत्र टीका यशोदेवीय ११८० सर्वेङ्गड)

"अणहिल पाटक नगरे, श्रीमज्जयसिंहदेव नृप राज्ये । [illegible]"

([illegible])

"अणहिल वाडपुरम्मी, सिरि जय [illegible] [illegible] पांच"

([illegible] ११४[illegible])

"श्रीमदणहिल पाटक नगरे, [illegible] [illegible] नृपतेरत्र सौराज्ये"

([illegible])

"अणहिल वडापतने, तयणु जिणवीर मन्दिरे। सिरि सिद्धराय जयसिंह देव राज्ये विजय माणे" (चन्द्रप्रभ चरित्र प्राकृत यशोदेवीय ११७८ वर्षे)

"अणहिल पाटक नगरे, दोहट्टि सच्छेष्टि सत्कवसतौच। संतिष्ठताकृतेयं नव कर हरवत्सरे ११२९ वर्षे कृतम्" (उत्तरा० लघु टीका नेमि चन्द्रीय)

"अणहिल्ल पाटकपुरे, श्रीमज्जयसिंहदेवनृप राज्ये। आशापुर वसत्यां वृति स्तेनय मारचित" (आगमिक वस्तुविचार सार प्रकरण हरिभद्रीय ११७२ वर्षे)

"अष्टाविंशति युक्ते, वर्ष सहस्त्रे शतेनचाभ्यधिके। अणहिल पाटक नगरे, कृतेय मच्छुप्त धनि वसतौ" (भगवती कृतिः अभय देवीय)

(ख) कामहृदायगच्छे, वंशे विद्याधरे समुत्पन्नः सद्गुण। विग्रह युक्तः सूरिः श्री सुमति विख्यातः ॥ तस्यास्ति पादसेवो सुसाधुजन सेवितो विनीतश्च। धीमानुपाधियुक्तः सद्वृत्तः पण्डितो वीरः ॥ कर्मक्षयस्य हेतोः, तस्यच्छिवी (?) मता विनीतेन। मदनाग श्रावकेणैषा लिखिता चारुपुस्तिका ॥

कर्मस्तव कर्मविपाक टीका।

(घ) विदुपाजल्हणेनेदं जिनपादाम्बुजालिना। प्रस्पष्टं लिखितं शास्त्रं वद्यं कर्मक्षय प्रदम् ॥

गणधर सार्ध शतकवृत्ति।

लेखक की निर्दोषता:—

अदृष्ट दोषान्मति विभ्रमाद् वा यदर्थहीनं लिखितं मयाऽत्र।
तत्सर्वमार्यैः परिशोधनीयं कोपं न कुर्यात् खलु लेखकस्य ॥
यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदिशुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥
भग्नपृष्टि कटि ग्रीवा वक्रदृष्टिरधोमुखम्। कष्टेन लिख्यते शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥
बद्धमुष्टि कटिग्रीवा मंददृष्टिरधोमुखम्। कष्टेन लिख्यते शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ॥
लेखनी पुस्तकं रामा परहस्ते गता गता। कदाचित् पुनरायाता कष्टा भ्रष्टा च चुम्बिता ॥
लघु दीर्घ पद हीण, व्यंजणहीण लखाणुहुइ। अजाण पणइ मूढ़पणइ, पंडित हुइ ते सुधकर भणज्यो ॥

इसके सिवाय भी लेखन कला के विषय में बहुतसी जानने योग्य बातें हैं वे भारतीय जैन श्रमण संस्कृति और लेखनकला नामक पुस्तक जो, प्रखर विद्वान पुरातत्त्ववेत्ता मुनिराज श्री पुन्यविजयजी म० सा० के द्वारा सम्पादित है—विस्तार से जान सकते हैं। यह लेख भी उक्त पुस्तक के आधार पर ही लिखा गया है।

राज्य—प्रकरण

इस ग्रन्थ के पूर्व प्रकरणों मे शिशुनागवंशीय, नन्दवंशीय, मौर्यवंशीय, चेटकवंशीय चेदीवंशीय राजाओं का वर्णन कर आया हूँ। उनके जीवन वृत्तान्त व घटनाओं को पढ़ने से यह सुष्ठु प्रकारेण ज्ञात हो जाता है कि वे सबके सब अहिंसा धर्म के परमोपासक व जैन धर्म के प्रखर प्रचारक थे। उन्ह ने केवल भारत मे ही नहीं अपितु पाश्चात्य प्रदेशों में भी जैनधर्म का पर्याप्त प्रचार किया था पाश्चात्य प्रदेशो में भूगर्भ से प्राप्त मन्दिर मूर्तियों के खण्डहर आज भी पुकार २ कर इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि वे जिन धर्मानुयाई परम भक्त के करवाये हुए और एक समय वहां जैनों की काफी वसति थी।

जब मौर्यवंशीय राजा बृहद्रथ के सेनापति सुंगुवंशीय पुष्यमित्र ने अपने स्वामी को धोके से मार कर राजसिंहासन ले लिया तब से ही जैन और बौद्धों पर घोर अत्याचार प्रारम्भ होने लगा। राजा पुष्यमित्र वेदानुयायी था उसने धर्मान्धता के कारण अन्य धर्मावलम्बियों पर जुल्म ढोना शुरु कर दिया। अपने सम्पूर्ण राज्य मे यह घोषणा करवा दी कि "जैन और बौद्ध श्रमणों के सिर को काट कर लाने वाले बहादुर [illegible] को एक मस्तक के पीछे १०० सौ-स्वर्ण दीनारें प्रदान की जायगी" इस निर्दयता पूर्ण घोर [illegible] ने [illegible] रुपयों के क्षणिक लोभ ने कई निर्दोष जैन, बौद्ध भिक्षुओं को मस्तक विहीन कर दिये।

क्रमशः इस अत्याचार का पता महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल को मिला तब उन्होंने [illegible] पर चढ़ाई कर पुष्यमित्र के दारुण पापो का बदला बहुत जोरो से चुकाया [illegible] खाई इससे पुष्य मित्र खारवेल की शक्ति के सन्मुख कुछ समय तक तो [illegible] रहा, पर [illegible] में उक्त दोनों धर्मों के प्रति रहे हुए द्वेष को वह त्याग नहीं सका उसका क्रोध अन्दर ही अन्दर [illegible] होता रहता पर चक्रवर्ती खारवेल की सैन्यशक्ति की स्मृति से पुन उसके क्रोध [illegible] क्रमशः द्वेषाग्नि की भयङ्कर ज्वाला [illegible] समय सब [illegible] सभी ओर पुष्यमित्र ने [illegible] क्रम पुनः प्रारम्भ कर दिया महामेघवाहन चक्रवर्ति महाराजा खारवेल ने भी दूसरी बार [illegible] आक्रमण किया। राजा पुष्यमित्र को पराजित कर मगध प्रान्त को खूब लूट [illegible] लाई हुई जिन प्रतिमा को उठाकर वह वह पुन कलिङ्ग ले आया। [illegible] एक वर्ष से [illegible] जीवित नहीं रह सका यहीं कारण था कि पुष्यमित्र का [illegible] पूर्वक होने लग गया इस अत्याचार की भयङ्करता एवं निर्दयता के कारण जैन एवं बौद्ध भिक्षु [illegible] पूर्व प्रदेश का त्याग करना पड़ा।

[illegible]

त्याग अवश्य किया था पर इस त्याग से पूर्व प्रांत में जैनश्रमणों का अभाव नहीं हुआ। हां, उतनी संख्या में व उतनी निर्भयतापूर्वक वे उस प्रान्त में जिनधर्म का प्रचार नहीं कर सके।

जैन तीर्थंकरों की प्राय: जन्म और निर्वाणभूमि पूर्व प्रान्त ही था अत: जैनधर्म का उस प्रान्त में ज्यादा प्रचार होना भी स्वाभाविक ही था। यही कारण था कि पुष्पमित्र के राक्षसीय अत्याचार भी जैनियों के अस्तित्व को सर्वथा मिटाने में असफल ही रहे। पुष्पमित्र का राज्य भी ३६ वर्ष पर्यन्त ही रहा अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् तो जैनश्रमणों को पूर्व प्रान्त में विचरण करने में इतना विघ्न का सामना नहीं करना पड़ा।

जिन श्रमणों ने पुष्पमित्र के उपद्रव से पूर्व प्रान्त का त्याग कर अन्य प्रान्तों की ओर विहार किया था वे जिन जिन प्रान्तो में गये वहां जैनधर्म का प्रचार कर अपना विहार क्षेत्र बना लिया वहां के राजा प्रजा पर धर्म का प्रभाव डाल उनको जैनधर्म के उपासक बना दिये। इधर मरुधरादि प्रांतों में पहले से ही भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये विहार करते थे वहां भी लाखों की संख्या में जैन विद्यमान थे इससे पूर्व से आने वाले श्रमणों को सब तरह की सुविधा भी थी।

जब पुष्पमित्र का देहान्त हो गया और साथ ही में उपद्रव की भी शांति हो गई। इस हालत में कई श्रमण बड़े-बड़े संघ निकलवा कर पूर्व के तीर्थों की यात्रा करने को पुनः पूर्व में गया और कई निर्ग्रंथों ने पूर्ववत् पूर्व प्रदेशों को स्थायी रूप से अपना विहार एवं धर्म प्रचार का कार्य करने लग गये इत्यादि पाठक सोच सकते हैं कि धर्म रक्षा के लिये जैन मुनियों ने कैसे-कैसे संकटों का सामना किया था—?

पट्टावलीकार लिखते हैं कि प्राचीन जमाने में मरुभूमि के राजा कई विभागों में विभक्त थे जैसे—भिन्नमाल, उपकेशपुर, कोरंटपुर, नागपुर, चन्द्रावती, नारदपुरी, शिवपुरी, माण्डव्यपुर, शंखपुर वगैरह स्थानों में पृथक २ राजाओं का राज्य था। इन सब राजाओं पर जैनाचार्यों का पर्याप्त प्रभाव था। उक्त जिन धर्मानुयायी नरेशों में से कई तो जिनधर्म के उपासक ही नहीं पर कट्टर प्रचारक भी थे। उस समय में जैनधर्म का चतुर्दिक में इतना विस्तृत प्रचार होने का एकमात्र कारण जैनधर्म के सिद्धान्तों की पवित्रता अहिंसा, स्याद्वाद कर्मवादादि अकाटय सिद्धान्तों की प्रामाणिकता ही था। वाममार्गियों के अत्याचार एवं यज्ञ की गर्हित हिंसा से सब ही घृणा करने लगे थे। मांस, मदिरा, व्यभिचार आदि पाप रूप वाममार्गियों के धार्मिक सिद्धान्तों को अधर्म समझ जनसमाज उससे घृणा करने लग गया था। धर्म की आड़ में पाप का पोषण उन्हें अरुचिकर प्रतीत हुआ, यही कारण था कि जैनियों की पवित्रता एवं उच्चता ने उनका प्रचार मार्ग एक दम अवरुद्ध कर दिया। वाममार्गियों की जुगुप्सनीय प्रवृत्ति के एकदम विपरीत जैन श्रमणों की कठोर त्याग परायणता, आचार व्यवहार एवं नियमों की दृढ़ता, शास्त्र ज्ञान अन्य विषय प्रतिपादन शैली की अपूर्वता ने जैनधर्म के प्रति सबके हृदय को आकर्षित करने में चुम्बक का काम किया। बस एक बार जैनियों का विजय डंका मारे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु पाश्चात्य प्रदेशों में भी बज गया। जैनियों की संख्या में दिन प्रति दिन अभिवृद्धि होती गई।

इन राजाओं में से कई तो ऐसे भी थे जिनकी कई पीढ़ियों पर्यन्त जैन धर्म का पालन बराबर चलता आया। इनमें उपकेशपुर चन्द्रावती, शंखपुर, विजयपुर शिवपुरी, कोरंटपुर, हामरेल, वीरपुर [illegible]

की वंश परम्परा विशेष उल्लेखनीय है। इनप्रान्तों में जैनश्रमणो का विहार भी अधिक था और जैनधर्म के पवित्र सिद्धान्तों का उपदेश भी बराबर मिलता रहता था अतः इन प्रान्तों में जैनधर्म एक राज धर्म बनचुका था।

खेद है कि एतद्विषयक जितने ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाण चाहिये थे उतने सम्प्रति, उपलब्ध नहीं हो सके तथापि जो कुछ हमे प्राप्त हुए हैं उन्हीं के आधार पर यत्किञ्चित रूप में यह लिखा जा रहा है। हमारी वंशावलियों एवं पट्टावलियो मे यत्र तत्र कुछ प्रमाण अवश्य मिलते हैं पर वे विशेष प्राचीन नहीं किन्तु अर्वाचीन समय के होने कारण उन पर इतना भार नहीं दिया जा सकता है। वे विद्वानों की दृष्टि से कम विश्वासनीय है फिर भी वंशालियां पट्टावलियां सर्वथा निराधार भी नहीं है। उसमे पूर्व परम्परा, गुरु कथन और धारणा से जो कण्ठस्थ ज्ञान चला आया था वह ही लिपिवद्ध किया गया है अतः ये सर्वथा सत्य से पराङ्मुख या युक्ति शून्य भी नहीं है।

वर्तमान में गवर्नमेण्ट सरकार के पुरातत्व शोध-खोज विभाग ने भूमि को खोद कर प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुओ को प्राप्त करने का एक परमावश्यक कार्य प्रारम्भ किया है। इस खोद काम की प्रामाणिकता एवं सफलता स्वरूप भूगर्भ से अनेक ताम्रपत्र, दानपत्र, सिक्के, मूर्तियां, खण्डहर तथा कई प्राचीन नगर भी मिले हैं। इस सूक्ष्म अन्वेषण कार्य से ऐतिहासिक क्षेत्र एवं प्राचीनता की शोध निकालने के कार्य में बड़ी ही सहायता मिली है। इतनाही नहीं हमारी वंशावलियों एवं पट्टावलियों पर भी प्रामाणिकता की खासी छाप पडगई है। जिनपट्टावलियों के प्रमाणिक कथन पर अर्वाचीनता के कारण सदेह करते थे; आज वे प्रायः निस्सदेह बन गये है। उदाहरणार्थ देखिये।

(१) हमारी पट्टावलियो मे कलिङ्ग पति भिक्षुराज का वर्णन विस्तार से मिलता है पर विद्वानों का उस पर (भिक्षुराज के जीवन वृत्त पर) उतना ही विश्वास था जितना कि उनका इन पट्टावलियों पर था अर्थात् उन्हें ऐतिहासिक मनीषी प्रायः अप्रामाणिक एवं युक्ति शुन्य समझते थे पर जब कलिङ्ग की उदयगिरि, खण्डगिरी पहाड़िया पर महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल (भिक्षुराज) का शिलालेख जो १५ फीट लम्बा ५ फीट चौड़ा है—प्राप्त हुआ तो उसमे वही बात पाई गई जो हमारी गुरु परम्परा से आई पट्टावलियों में वर्तमान है।

(२) हमारी पट्टावलियों बतला रही थी कि मथुरा में सैकड़ो जैन मन्दिर एवं जैन स्तूप थे अनेक बार जैनाचार्यों ने मथुरा में चतुर्मास किये थे इतनाही क्यों पर जैनागमों की वाचना भी मथुरा नगरी मे हुई थी पर वर्तमान में कोई भी चिन्ह नहीं पाने से वंशावलियों के [illegible] [illegible] पर मथुरा के कङ्काली टीले के खोद काम से वहा अनेक प्रतिमाएं एवं आयग पट्टादि निकले इससे सिद्ध हुआ कि मथुरा और उसके आस पास के प्रदेशो मे जैनधर्म का पर्याप्त प्रचार था।

(३) अजमेर के पास बली नामक ग्राम मे भगवान महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष के बाद का शिला लेख मिला है; इससे पाया जाता है कि, वीरात् ८४ वर्ष में इस प्रान्त में जैनधर्म का बहुत प्रचार था। हमारी पट्टावलियां भी बताती हैं कि वीरात् ७० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने उपकेश पुर में जैनधर्म की नींव डाली और वीरात् ८४ के वर्ष में [illegible] [illegible] हुआ [illegible] स्मृति का ही यह शिलालेख हो।

(४) सौराष्ट्र प्रान्त के प्रभास पट्टन में खुदाई का काम करते हुए एक ताम्र पत्र मिला है जिसमें लिखा है कि राजा ने बुसदनेज़र ने एक मन्दिर बनवा कर गिरनार मण्डन नेमिनाथ भगवान् को अर्पण किया। इसका समय विक्रम पूर्व पांच, छ शताब्दी का है इससे पाया जाता है कि इसके पूर्व भी वहां जैनधर्म का प्रचार था हमारी पट्टावलियां भी इसी बात को पुकार पुकार कर कह रही है कि लोहित्याचार्य ने पश्चिम से दक्षिण तकके प्रदेशों में जैनधर्म का प्रचार किया था।

(५) महाराष्ट्र प्रान्त में बहुत से ताम्रपात्र दान पत्र भूगर्भ से मिले हैं; तब हमारी पट्टावलियें कहती हैं कि विक्रम की छट्टी, सातवीं शताब्दी पूर्व लोहित्याचार्य ने महाराष्ट्र प्रान्त मे जैनधर्म का प्रचार किया था।

(६) तक्ष शिला के खोद काम से वहां अनेक जैन मूर्तियें एवं जैन मन्दिरों के खण्डहर मिले हैं तब जैन पट्टावलियां बताती है कि एक समय तक्षशिला में ५ ० जैन मन्दिर थे।

(७) केवल आर्यावर्त में हीं नहीं; पाश्चात्य प्रदेशों में भी जैन प्रतिमाओं एवं खण्डहरों के अखण्ड चिन्ह मिले हैं। अभी ही आस्ट्रिया प्रान्त के बुढ़पस्त ग्राम के एक कृषक के खेत में भगवान महावीर की अखण्ड मूर्ति उपलब्ध हुई है। अमरिका में सिद्धचक्र का ताम्र मय घट्टा व मंगोलिया प्रदेश में अनेक जैन मन्दिरों के खण्डहर प्राप्त हुए हैं। इसी बात को हमारे पट्टावली निर्माताओं ने लिखा है कि सम्राट् सम्प्रति ने पाश्चात्य प्रदेशों में जैनधर्म का विस्तृत प्रचार करवाया था। इत्यादि।

अन्वेषण के ऐसे सैकड़ो ऐतिहासिक साधन हमारी पट्टावलियों एवं वंशावलियों की सत्यता को अब भी सिद्ध कर रहे हैं। न जाने ऐसे कितने ही साधन भू गर्भ में अब भी गुप्त पड़े होंगे ? पर ज्यों-ज्यों शोध-खोज एवं अन्वेषण कार्य तीव्रता से बढ़ता जा रहा है त्यों २ प्राचीन एवं ऐतिहासिक पुण्य साधन भी उपलब्ध होते जा रहे हैं। इन प्राचीन सत्य प्रमाणों के आधार पर हमारी पट्टावलियों की प्रामाणिकता एवं सत्यता अपने आप ही सिद्ध होती जा रही है। अतः हमारा कर्तव्य है कि, हम हमारी वंशावलियों में विश्वास रखते हुए ऐतिहासिक साधनों के द्वारा पट्टावलियों की प्रामाणिकता को जनता के सन्मुख रखने का प्रयत्न करते रहें।

हमारी पट्टावलियों, वंशावलियों की सत्यता में संदेह रखने का कारण—वे घटना समय के सैकड़ों वर्षों के पश्चात् लिपिबद्ध की गई हैं। दूसरा—इतने दीर्घ समय के बीच एक ही नाम के अनेक राजा एवं आचार्य हो गये हैं अतः पीछे के लेखकों ने नामकी समानता के कारण एक दूसरे आचार्यों की घटना एक दूसरे समान नाम वाले आचार्यों के साथ जोड़ दी है। एक राजा की घटना दूसरे राजा के साथ सम्बन्धित करदी है। उदाहरणार्थ देखिये—

(१) उप्पलदेव नाम के कई राजा हुए हैं अतः भाटों-चारणों ने आबू के परमार राजा उत्पलदेव के साथ ओसियां बसाने वाले राजा उत्पलदेव की घटना को जोड़ दी है की वास्तव में ओसियों को आबाद करने वाले तो भिन्नमाल के सूर्यवंशी राजा उप्पल देव थे। आबू के उत्पल देव विक्रम की दशवीं सदी में हुए तब भिन्नमाल के सूर्यवंशी उत्पलदेव विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व हुए हैं।

(२) जैन समाज में पञ्चमी की सम्वत्सरी को चतुर्थी के दिन करने वाले कालिकाचार्य हुए हैं पर कालकाचार्य नाम के कई आचार्यों के हो जाने से पंचमी की सम्वत्सरी को चतुर्थी के दिन करने वाले

कालकाचार्य की घटना दूसरे कालकाचार्य के साथ जोड़ दी है। वास्तव मे तो चतुर्थी को सम्वत्सरी करने वाले कालकाचार्य विक्रम के समकालीन हुए हैं पर पीछे के लेखकों ने वीरात् ९९३ वर्ष में हुए कालकाचार्य के साथ उक्त घटना को जोड़ दी है तथा आचार्य मानतुंग मल्लवादी जीवदेव हरिभद्रादि के समय मे भी बहुत सा अन्तर है।

इस प्रकार नामों की समानता से घटनाओं की सत्यता एक दूसरे नाम वालों के साथ अवश्य जोड़ दी गई है पर घटनाएं सर्वथा असत्य नहीं है। नाम के साम्य के कारण इस प्रकार की उलझन में पड़ जाना नैसर्गिक ही था अतः ऐसी त्रुटियो के आधार पर पट्टावलियों के महान् उपयोगी साहित्य का अनादर व अवहेलना कर. अप्रमाणिक कह देना तो कर्तव्य पराङ्मुख होना ही है। पर हमारा यह फर्ज है कि ऐसी त्रुटियों के लिए अन्यान्य साधनों द्वारा घटनाओं का सम्वत निश्चित कर एतद्विषयक ठीक संशोधन करें न कि इतिहास के एक प्रामाणिक पुष्ट अंग को ही काट दें। मेरा तो यहां तक खयाल है कि पट्टावली आदि साहित्य को अप्रामाणिक कह कर उसको अलग रख दिया जायगा तो हमारा इतिहास सदैव के लिये अधूरा ही रह जायगा। जब ऐतिहासिक समय में या विशिष्ट घटनाओं में झमेला पड़ता है तब उन उलझनों को सुलझाने के लिये हमको उन पटावलियों एवं वंशावलियों की ही शरण लेनी पड़ती है। अभी तक जैन समाज के प्राचीन इतिहास या भारतवर्ष के इतिहास को ढूंढने के लिये जितने साधनों की आवश्यकता है उनमें से एक शतांश भी उपलब्ध नहीं हुए हैं जो कुछ प्राप्त हुए हैं वे भी भिन्नभिन्न वार क्रमानुकूल नहीं है अत. इन त्रुटियो की पूर्ति तो पटावलिया ही कर सकती हैं।

अब जरा इतिहास की ओर भी आँख उठा कर देखिये। पट्टावलियों के समान इतिहासों में भी पर्याप्त मतभेद है। एक ऐतिहासिक व्यक्ति बड़ी शोध खोज के साथ इतिहास लिखता है तब दूसरा उसके सामने विरोध के रूप में खड़ा हो ही जाता है उदाहरणार्थ—मौर्यवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त व राजा [illegible] के विषय में जो समय का मतभेद है वह अभी तक मिट नहीं सका है। इसी तरह अशोक के शिलालेखों एवं धर्मलेखों के विषय में भी मतभेद है—कोई इन धर्मलेखों को सम्राट अशोक के बतलाते हैं तो कोई सम्राट सम्प्रति के एवमेव इरानी बादशाह ने जिस समय भारत पर आक्रमण करके पाटलीपुत्र के पास अपनी छावनी डाली उस समय रात्रि के वक्त एक युवक छावनी में जाकर इरानी बादशाह से मिला था जिसके मिलने वाला युवक चन्द्रगुप्त था तब कोई इतिहासकार कहते हैं कि वह अशोक था। ऐसे एक दो ही नहीं पर परस्पर विरोध प्रदर्शक हजारों उदाहरण विद्यमान है।

उक्त उदाहरणों को लिखने से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि—ऐतिहासिक साधन [illegible] है। प्रत्युत साधन भारत के लिये बड़े उपयोगी एव गौरव के हैं, पर [illegible] [illegible] हमारी [illegible] [illegible] त्रुटियां भी सुधारते रहना चाहिये [illegible]—

"इतिहास [illegible] [illegible]
[illegible] पट्टावलियां आदि मिलती हैं, वे भी इतिहास के साधन हैं [illegible]"

[illegible]

श्रीमान् ओझाजी के मतानुसार इतिहास लिखने के अन्यान्य साधनों में जैन पट्टावलियाँ एवं वंशावलियां भी एक प्रमुख साधन हैं।

जैनाचार्यों ने अनेक प्रान्तों में बिहार कर कई छोटे बड़े राजाओं को उपदेश देकर अहिंसा परमोधर्म एवं जैन धर्म के परमोपासक एवं जैनधर्म के प्रचारक बनाये इसी प्रकार यथा राजास्तथा प्रजा इस न्याय से जहां राजा धर्मीष्ट होते हैं वहां प्रजा भी उसी धर्म की विशेषतम आराधना करती है और यह बात संभव भी है कि जिस धर्म के उपासक राजा हैं वह धर्म प्रजा मे खूब फैल जाता है। यही कारण था कि उस समय जैनधर्म की आराधना करने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी इसका मुख्य कारण राजाओं ने जैनधर्म को खूब अपनाया एवं चार बढ़ाया था जब मे राजाओं ने जैनधर्म से किनारा ले लिया तब से ही जैनों की संख्या कम होने लगी और क्रमशः आज बहुत अल्प संख्या रह गई। हमारी पट्टावलियों वंशावलियों में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि पूर्व जमाने में अनेक राजा महाराजा जैनधर्म के उपासक एवं प्रचारक थे इतना ही क्यों पर कई राजाओं की संतान परम्परा तक भी जैनधम पालन किया है जिन्हों का चरित्र बहुत विस्तृत है पर मैं यहां पर संक्षिप्त से ही लिख देता हूँ।

१—राजा उत्पलदेव—आप सूर्यवंशी महाराजा भीमसेन के पुत्र एवं उपकेशपुर आबाद आपने ही किया था आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपदेश देकर आपके साथ लाखों क्षत्रियों एवं हजारों ब्राह्मणों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी थी और आपके नायकत्व में ही महाजन संघ की स्थापना की थी। राजा उत्पलदेव ने जैन धर्म का प्रचार करने में खूब मदद की थी। अपने मरूधर प्रान्त से सब से पहला तीर्थ श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकाल तीर्थयात्रा का मार्ग खोल दिया था शहर के नजदीक पहाड़ी पर भगवान् पार्श्वनाथ का उतंग जिनालय बना कर उसको प्रतिष्ठा बड़े ही धाम धूम से करवा कर जनता में भक्ति भाव उत्पन्न किया था इतना ही क्यों पर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि जिस समय सिन्ध धरा में पधारने का विचार किया उस समय भी आपने ही सलाह एवं सहायता दी थी इत्यादि आप अपना शेष जीवन जैन धर्म का प्रचार करने में व्यतीत किया था

महाराजा उत्पलदेव के प्रधान मंत्री चन्द्रवंशीय ऊहड़ थे राजा के धर्म प्रचार कार्य में आपकी विशेष मदद थी आपका जीवन राजा के जीवन के साथ लिखा गया है आपके जीवन में विशेष घटना यह बनी थी कि उपकेशपुर की जनता पर श्रीमाल के ब्राह्मणों के लागत-दापा का जबर्दस्त टेक्स था उसको हटा कर उपकेशपुर के लोगों को उस जुल्मी टेक्स से मुक्त कर दिया जो आज पर्यन्त उपकेश वंशी (ओसवाल जाति) स्वतंत्र एवं सुख से जीवन व्यतित कर रहा है मंत्री ऊहड देव ने भी जैन धर्म का प्रचार कार्य में पूज्याचार्य देव एवं राजा का हाथ बेटाया था मंत्रेश्वर ने उपकेशपुर में भगवान् महावीर का मन्दिर बनवा कर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवा कर अपनी धवल कीर्ति को अमर बना दी जिस मन्दिर की यात्रा सेवा पूज्य कर अनेक भावुक अपना कल्याण कर रहे हैं। जिसका विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में हम कर आये हैं मंत्री ऊहड़ के पुत्रों मे जिस समय एक पुत्र ने आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा ली थी उस समय मंत्रेश्वर ने उस को मना नहीं कर लाखों रुपये व्यय कर दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया था यही कारण था कि मंत्रेश्वर को धर्म का सच्चा रंग था।

(अनुसंधान इसी ग्रन्थ के पृष्ट ७३५ (ख) से आया है)

नं०	राज का नाम	समय कहां से कहां तक	राजकाल	
१	विक्रमादित्य	इ० सं० पूर्व-५७ से इ० सं० ३	६०	वंशावली का समय त्रि० ले० शाह के पुस्तकानुसार दिया है ।
२	धर्मादित्य	,, ३ ,, ४३	४०	
३	भाइल	,, ४३ ,, ५४	११	
४	नाइल	,, ५४ ,, ६८	२४	
५	नाहड़	,, ६८ ,, ७८	१०	

आवंती प्रदेश पर विक्रमवंशी राजाओं के पश्चात चष्टानवंशी राजाओं का समय आता है चष्टानवंशी राजाओं को क्षत्रप महाक्षत्रप की उपाधि थी और तक्षशिला मथुरा और उज्जैन में इनका राज रहा था यद्यपि जितना चाहिये उतना इतिहास इन वंश का नहीं मिलता है तथापि इन राजाओं का कतिपय शिला-लेख और कई सिक्के जरूर मिलते हैं जिससे पाया जाता है कि इस जाति के लोग बाहर से भारत में आये थे और अपने भुजबल से भारत में राज किया था इनके सिक्काओं पर बहुत से ऐसे चिन्ह पाया गया कि जिससे ये जैनधर्म पालन करना साबित हो सकते हैं डाक्टर सर कैनिगहाम ने भी उन चिन्हों को बौद्धों का होने में शंका अवश्य की है तथापि कई विद्वानो की यह भी राय है कि चष्टानवंशी राजा बौद्ध धर्मी थे इसका कारण कई पाश्चात्य विद्वान बौद्ध धर्म और जैनधर्म को एक ही समझते तथा कई लोग जैनों को एक बौद्धों की शाखा ही समझती थी यद्यपि बहुत विद्वानो का यह भ्रम दूर हो गया है और वे निशंक मानने लग गये हैं कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र एवं बहुत प्राचीनधर्म है तथापि अभी ऐसे लोगों का भी अभाव नहीं है कि उन पुराणी लकीर के फकीर बन बैठे हैं इस विषय में किसी प्रकरण में खुलासा किया जायगा यहाँ तो सिर्फ इतना ही लिखा जाता है कि मथुरा का स्तूप को विद्वानों ने जैनधर्म का स्तूप होने की उद्घोषणा की है उस स्तूप की प्रतिष्ठा महाक्षत्रप राजा राजुवुल की पटरानी ने करवाई थी और उसमें महाक्षत्रप भूमक नहपाण वगैरह सब शामिल होकर प्रतिष्ठा महोत्सव किया था यदि इन्हि महाक्षत्रप बौद्ध होते तो इतना विशाल जैन स्तूप बना कर के प्रतिष्ठा क्यों करवाते ? दूसरा इनके सिक्कों पर भी जो चिन्ह है वे सब जैनधर्म से ही सम्बन्ध रखते हैं न कि बौद्ध धर्म के साथ [illegible] इन्हि महाक्षत्रप राजाओं की [illegible] दी जाती है ।

आवंती देश के नरेश

नं०	राजा	समय ई० सं०		वर्ष	नं०	राजा	समय ई० सं०		वर्ष
१	घ्समिति	१ ३	११७	१४	९	दामसेन	२४८	२६३	१५
२	चष्टान	११७	१५२	३५	१०	यशोदमन	२६३	२६५	२
३	रुद्रदमन	१५२	१८५	३३	११	विजयसेन	२६५	२७५	१०
४	दामजाद श्री	१८५	२०६	२१	१२	दामजाद श्री	२७५	२८०	५
५	रुद्रसिंह	२०६	२२२	१६	१३	रुद्रसेन (२)	२८०	३०१	२१
६	जीवदमन	२२५	२२५	३	१४	विश्वसिंह	३०१	३०४	३
७	रुद्रसेन	२२५	२४७	२२	१५	भर्तृदामन	३०४	३२०	१६
८	संघदमन	२४७	२४८	१					

—त्रि० ले० शाह के पुस्तकानुसार

पश्चिम के क्षत्रियों की वंशावली

	ई० सं		
१—नहापन		१५—विजयसेन	२३९—२४९
२—चसथान	१३०—१४०	१६—दमजादश्री	२५०—२५५
३—जयदमन	१४०—१४३	१७—रूद्रसेन	२५६—२७२
४—रूद्रदमन	१४३—१५८	१८—विश्वसिंह	२७२—२७८
५—दामजादश्री	१५८—१६८	१९—मर्तृदमन	२७८—२९४
६—जीवदामन	१६८—१८१	२०—विश्वसेन	२९४—३००
७—रूद्रसिंह (२)	१८१—१९६	२१—रूद्रसिंह	०००—३११
८—रूद्रसेन	२०३—२२०	२२—यशादमन	०००—३२०
९—पृथ्वीसेन	२ २—२२३	२३—दामश्री	३२०
१०—संघदमन	२२२—२२६	२४—रूद्रसेन	३४८—३७६
११—दामसेन	२२६—२३६	२५—रूद्रसेन	३७८—३८८
१२—दामजादश्री	२३६	२६—सिंहसेन	०००:००
१३—वीरदमन	२३६—२३८	२७—स्कन्द	०००:००
१४—यशादमन	२३८—२३९		

"वंबाई प्र० जै० स्मारक पृ. १८२ पर से मैंने इस विषय की कई वंशावलियों देखी पर उसमें समय का अन्तर सर्वत्र पाया जाता है।

+ श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ लिखित 'भारत का राजवंश' नामक पुस्तक में चष्टानवंशी राजाओं की वंशावली दी है पर ऊपर लिखे समय से कुछ अन्तर है इसका मुख्य कारण उस समय के इतिहास का अभाव है।

चष्टानवंशी क्षत्रिय महाक्षत्रप के पश्चात् आवंती की गादी पर गुप्तवंशी राजाओं ने भी राज किया है इन गुप्तवंशी राजाओं के भी बहुत से सिक्के मिले हैं जिसको हम सिक्का प्रकरण में उल्लेख करेंगे कि गुप्तवंशी राजाओं में भी जैनधर्म को अच्छा स्थान मिला था उन राजाओं की वंशावलियां निम्न लिखित है—

नं०	राजाओं के नाम	ई० सं० समय		वर्ष
१	श्री गुप्तराजा			
२	घटोत्कच्छ	३००	३२०	२०
३	चन्द्रगुप्त	३२०	३३०	१०
४	समुद्रगुप्त	३३०	३७५	४५
५	चन्द्रगुप्त (२)	३७५	४१३	३८
६	कुमार गुप्त	४१३	४५५	४२
७	स्कन्द गुप्त	४५५	४८०	२५
८	कुमार गुप्त (२)	४८०	४९०	१०
९	बुद्ध गुप्त			
१०	भानु गुप्त			

इस समयावली के साथ श्रीमान् पं० गौरीशंकरजी ओझा की दी हुई समयावलि का मिलान करने में बहुत अन्तर आता है शायद शाह ने अनुमान से समयावलि लिखी होगी विद्वान वर्ग इस पर विचार करेगा।

गुप्तो के बाद आवंती प्रदेश पर हूणों ने भी राज किया था।

१—हूण राजा तोरमाण ई० स० ४९० ५२०

२— ,, ,, मिहिरकुल ,, ५२० ५३०

हूणों के पश्चात आवंती पर प्रदेशियो की हुकूमत बिलकुल उठ गई और परमार जाति के राजपूतों ने सिंहासन को संभाला वे वर्तमान समय तक राज करते ही आये हैं जिन्हो की वंशावली फिर आगे के प्रष्टों पर दी जायगी।

१—गुप्तवंशी राजाओं ने अपना संवत् भी चलाया था विद्वानों का मत है कि ई० स० ३१९ [illegible] से गुप्तों ने अपना संवत् चलाया डा० बुलार [illegible] कहते हैं कि गुप्तवंश के राजाओं के तीन लेख मिला है जिसमें एक शिलालेख मथुरा की जैनमूर्ति पर है जिसका भावार्थ यह है कि 'जय हो कोटियगण विद्याधर शाखा के [illegible] के उपदेश से [illegible] महान शासक विख्यात चक्रवर्ती राजा कुमारगुप्त के राज्यकाल के बीसवें दिन कार्तिक मास के दिन [illegible] की पुत्री और [illegible] गृह मित्र [illegible] की पत्नि समाढ्या ने यह प्रतिमा पधराई थी" दूसरे लेखों की स्थिति ऐसी नहीं [illegible] साफ पढ़ा जाय तथापि इसमें मन्दिर बनाने का तथा जीर्णोद्धार करने का उल्लेख है।

२—गुप्तवंश के राजा हरिगुप्त और देवगुप्त के सिक्के मिले हैं हरिगुप्त-देवगुप्त के जैनधर्म की [illegible] की थी और हरिगुप्तसूरि के उपदेश से हूण तोरमण जैनधर्म का अनुरागी बना था तथा देवगुप्ताचार्य [illegible] एक कवि था इनके लिये कुवलयमाला कथा में उल्लेख मिलता है—

१—अंगदेश इस देश की राजधानी चम्पा नगरी कही जाती है जहां [illegible] का निर्वाण कल्याणक हुआ था पर वर्तमान में कई लोगों ने मगद देश की [illegible] की चम्पा नगरी मानली है [illegible] मगद देश की चम्पा नगरी कहा है [illegible] कहना है अतः यह कल्पना की गई है और इस प्रकार अपनी [illegible] कही जाती है वरना अंग देश मगद से पृथक [illegible] मगद के पड़ोस में [illegible] नगरी के स्थान वर्तमान में भागलपुर [illegible] वर्तमान में भी विद्यमान है कई लोगों का मत है कि भागलपुर [illegible]

बहुत प्रमाणों से उस स्तूप को जैन स्तूप साबित किया है इतना ही क्यों पर शाह ने तो यहां तक बतलाया है कि भ० महावीर को केवल ज्ञान इसी स्थान पर उत्पन्न हुआ था और उसकी स्मृति के लिये ही भक्त भावुकों ने यह स्तूप बनाया था राज प्रसेनजित्त और सम्राट कूणिक ने वहां पर स्तम्भ बना कर शिला लेख खुदवाया था वह आज भी विद्यमान है अतः उस स्तूप को जैन स्तूप मानने में किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाती है इस स्तूप के विषय में हम आगे चलकर स्तूप प्रकरण में विशेष उल्लेख करेंगे।

राजा श्रेणिक ने अपनी राजधानी राजगृह नगर में स्थापन की थी जब राजा कूणिक मगद पति बना तब उसने अपनी राजधानी चम्पा नगरी में ले आया था इसका कारण राजा कूणिक के जरिये राजा श्रेणिक की मृत्यु बहुत बुरी हालत में हुई थी अतः कूणिक का दिल राजगृह नगर में नहीं लगता था दूसरा चम्पा नगरी एक तीर्थ रूप भी था कारण भ० वासुपूज्य का निर्वाण कल्याणक तो था ही पर नजदीक के समय में भ० महावीर का केवल कल्याणक भी वही हुआ था अतः उसने अपनी राजधानी के लिये चम्पा नगरी को ही पसन्द की पर उस समय चम्पा नगरी एक भग्न नगर के खण्डहर के रूप में थी इसका कारण यह था कि—

चम्पा नगरी में राजा दधिवाहन राज करता था उसका विवाह भी वैशाला नगरी के राजा चेटक की पुत्री पद्मावती के साथ हुआ था जब रानी पद्मावती गर्भवती हुई तो उसको दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं राजा के साथ हस्ती की अंबाडी पर बैठ कर जंगल की सैर करूं। जब राणी ने अपने दोहला का हाल राजा को कहा तो राजा ने सब तरह से तैयारी करवा कर रानी के साथ हस्ती पर बैठ कर जंगल की सैर करने को गये पर न जाने क्या भवितव्यता थी कि हस्ती मद में आकर जंगल में इस प्रकार दौड़ना शुरू किया कि उसने महावत के अंकुश की भी परवाह नहीं की और खूब जोरों से दौड़ने लगा जब एक वृक्ष आया तो राजा ने उसकी शाखा पकड़ कर हस्ती से उतर गया पर रानी तो हस्ती की अंबाडी में बैठी ही रही और हस्ती ज्यों का त्यों मद में दौड़ता ही रहा—

जब अंग देश की सीमा को उल्लंघ हस्ती वंशदेश की सीमा में पहुँच गया तो थकावट के मारा हस्ती स्वयं खड़ा रह गया रानी उतर कर नीचे आई तो भयंकर जंगल ही जंगल दीखने लगा थोड़ी दूर गई तो तापसों के आश्रम आये रानी तापसों के पास जाकर अपनी सब हालत सुनाई इस पर तापसों ने रानी को नेक सलाह दी कि माता तुम यहां से वंश देश की राजधानी दान्तीपुर नगर चले जाओ वहां से अंगदेश जाने में आपको सुविधा रहेगी। रानी तापसों के कहने पर उसी रास्ते रवाना हो गई भाग्यवशात रास्ते में साध्वियाँ मिली रानी ने उनको भक्ति के साथ वन्दन किया बाद रानी को योग्य घराने की जान साध्वी ने उपदेश दिया जिसमें संसार का असारत्व और दीक्षा की उपादेयत्व बतलाया जिसका प्रभाव रानी की आत्मा पर इस कदर हुआ कि उसने उसी समय साध्वियों के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली और साध्वियों के साथ विहार कर दिया पर कुछ समय से साध्वी पद्मावती के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट होने लगे तब गुरुणी ने उसे पूछा साध्वी ने अपनी सब हिस्ट्री कह सुनाई इस पर गुरुणी ने कहा कि बहिन! ऐसा ही था तो हमको पहले कहना था ? पद्मावती ने कहा कि यदि मैं पहले कह देती तो आप मुझे दीक्षा कब दे देते यदि मुझे दीक्षा नहीं देते तो मेरे जैसी निराधार रूप सम्पन्न युवा स्त्री का क्या हाल होता इत्यादि। खैर गुरुणी अच्छी समयज्ञ थी कि किसी योग्य गृहस्थ को सूचित कर उसका प्रबन्ध करवा

दिया जब पद्मावती ने गर्भ के दिन पूरा होने से पुत्र को जन्म दिया तथा उसका कुछ पालन कर उसके साथ कुछ चिन्ह रख उसको श्मशान मे रख दिया और पद्मावती ने पुनः दीक्षा ले ली और अन्यत्र विहार कर दिया ।

इधर जब स्मशानरक्षक स्मशान में आकर देखा तो महान कान्ति वाला देव कुंवर सदृश बच्चा उसकी नजर आया वह भी बड़ी खुशी से उसे उठा कर अपनी औरत को सौंप दिया चण्डाल अपुत्रियां होने से उस नवजात पुत्र को अपना पुत्र समझ कर पालनपोषण किया और उसका नाम करकंडु रख दिया जब वह बड़ा हुआ तो एक समय जंगल मे अन्य बालकों के साथ खेल रहा था उस समय दो विद्वान भविष्यवेत्ता उस रास्ते से निकल आये उन्होंने लड़कों को कहा कि इस वंश जाल को छेदने वाला भविष्य में राजा होगा ? बस राज की आकांक्षा से वे लड़के वंश जाल छेदने की कोशिश की जिसमें करकंडु ने वंश जाल छेदन करदी पर दूसरे भी सब लड़के बोल उठे कि वंश जाल मैंने छेदी २ इससे आपस मे लड़ाइयां होने लगी यहां तक कि उन लड़को के वारस भी लड़ने लग गये मामला राजा के पास गया तो राजा ने फैसला दिया कि यदि करकंडु राजा हो तो एक ग्राम ब्राह्मणों के लड़के को दें। ब्राह्मणों के लड़के करकंडु चंडाल के लड़के से ग्राम मांगने लगे करकंडु ने कहा कि मुझे राज मिलेगा तब मैं तुमको ग्राम दूंगा ? पर अन्य लड़के तो ग्राम का तकाजा करते ही रहे इस कारण चण्डाल सकुटुम्ब दन्तिपुर का त्याग कर अन्यत्र वास करने को रवाना हो गये चलते २ कांचनपुर के पास आये वहां कांचनपुर में अपुत्रिया राजा मर गया जिसके पीछे राजा बनाने के लिये एक हस्तिनी की सूँढ में वर माला डाल घूम रहे थे [illegible] हस्तिनी ने आता हुआ करकंडु के गले मे वर माला डाल उसको सूँढ में उठा कर अपनी पीठ पर बैठा लिया बस फिर तो था ही क्या राज कर्मचारी और नागरिक मिल कर करकंडु का राज्याभिषेक कर दिया बस सो करकंडु कांचनपुर का राजा होकर राज करने लगा । इस बात की खबर जब दन्तिपुर के ब्राह्मणों को मिली तब पहिले तो उन्होंने कांचनपुर के लोगों को कहलाया कि करकंडु जाति का चाण्डाल है जिससे नगर मे काफी चर्चा फैल गई पर देवता ने आकाश में रह कर कहा अरे नगर के लोगो तुम व्यर्थ ही क्यों चर्चा करते हो करकंडु राज के सर्व गुण सम्पन्न है इत्यादि जिससे लोगों को संतोष हो गया । फिर दन्तिपुर के ब्राह्मण राजा करकंडु के पास आकर ग्राम की याचना की उस समय राजा करकंडु ने ब्राह्मणों को कहा कि तुम चम्पा नगरी में जाकर राजा दधिवाहन को मेरा नाम लेकर कहो जिससे तुमको एक ग्राम [illegible] ब्राह्मण चम्पा नगरी में जाकर राजा से ग्राम मांगा इस पर राजा दधिवाहन को बहुत गुस्सा आया और कहने लगा कि एक चाण्डाल का लड़का चलता फिरता राज बन कर मेरे पर हुक्म चलाता है [illegible] तुम उस चाण्डाल को कह देना कि ग्राम लेना हो तो संग्राम करने को तैयार हो [illegible] करकंडु [illegible] सब हाल राजा करकंडु को कह दिया जिसने करकंडु कोपित हो अपनी सेना लेकर चम्पा [illegible] धावा बोल दिया । उधर से दधिवाहन राजा भी सेना लेकर [illegible]—

साध्वी पद्मावती ने दोनों राजाओं की बातें सुन कर सोचा कि [illegible] [illegible] [illegible] के प्राण वृथा देगा बस साध्वी गुरुणीजी से आज्ञा लेकर वहां करकंडु के [illegible] [illegible] सब हाल कह सुनाया और कहा कि तुम [illegible] [illegible] [illegible] अपनी माता के वचन सुन कर पश्चात्ताप करने लगा और [illegible] [illegible]

कि आप ठहर जाइये पहले मैं जाकर राजा से मिलूँ । साध्वी चल कर राजा दधिवाहन के पास आई और राजा से भी सब हाल कहा राजा अपनी राणी को पहचान भी ली । बस । फिर तो था ही क्या दोनों राजा अर्थात् पिता पुत्र का मिलाप हुआ जिससे दोनो को बड़ा ही हर्ष हुआ दोनो ओर के सैनिकों एवं नागरिको का भय दूर हुआ और हर्ष का पार नहीं रहा तत्पश्चात सब लोग चम्पा नगरी में गये। राजा ने अपने राज का उत्तराधिकारी करकंडु को बना दिया कारण दूसरा पुत्र राजा के था नहीं खैर कुछ अर्सा ठहर कर करकंडु कांचनपुर आ गया ।

समयान्तर कौसंबी नगरी का राजा संतानिक चंपा पर चढ़ आया दोनों राजाओं में घोर युद्ध हुआ दधिवाहन राजा भाग गया नगर को ध्वंस किया और धन माल खूब लूटा । साथ में रानी धारणी और उसकी पुत्री वसुमती को भी पकड़ली रानी धारणी तो अपनी शील की रक्षा के लिए जबान निकाल कर प्राणों की आहुती दे दी और वसुमति को कौसुंबी नगरी में ले आये और उसको बाजार में पशु की भाँती बेच दी जिसको एक धन्ना सेठ ने खरीद की और अपने घर पर लाकर पुत्री की तरह रखी। पर धन्ना सेठ के मूला नाम की भार्या थी उसने कुँवारी कन्या वसुमति का रुप लावण्य देखकर विचार किया कि सेठजी इसको अपनी अर्द्धांगनी बना लेगा तो मेरा मानपान नहीं रहेगा इस गरज से एक दिन सेठजी किसी कारण वसात् बाहर ग्राम गये थे पिछे सेठानी ने वसुमति का सिरमुंडवा काछोटा पहना हाथों पावों में बेड़ियाँ डाल कर एक गुप्त घर में बंदकर आप अपने पीहर चली गई जिसको तीन दिन व्यतीत हो गए जब सेठजी ग्राम से आए तो घर में सेठानी नहीं व वसुमति नहीं पाई इस हालत में इधर उधर देखा तो एक बंद मकान में वसुमति के रुदन का शब्द सुना बस सेठजी ने मकान का कपाट खोल वसुमति को बाहर निकाल कर हाल पूछा तो उसने कहा मैं तीन दिन की भूखी प्यासी हूँ मुझे कुछ खाने को दो फिर पूछना सेठजी ने उधर इधर देखा पर खाने के लिए कुछ भी नहीं मिला सिर्फ तत्काल के किये उड़दों के बाकुल देखे पर परुसने को कोई बर-तन नहीं था सेठजी ने सूपड़ा में उड़दों के बाकुले डाल वसुमति को दिया कि बेटी । तूँ इसे खा मैं तेरी बेड़ियाँ काटने के लिए लुहार को ले आता हूँ । सेठजी लुहार को लाने के लिए गए पिछे वसुमति ने सोचा कि मैंने पूर्वभव में कुछ सुकृत नहीं किया अतः आज कोई महात्मा आ जाय तो मैं उसे दान देकर ही भोजन करूँ । इसलिए दरवाजे के एक पैर अन्दर एक पैर बाहर खड़ी रह कर महात्मा की प्रतीक्षा करने लगी इधर भ० महावीर ने ऐसा अभिग्रह किया था कि जिसको पाँच दिन कम छ मास व्यतीत हो गया सफल नहीं हुआ वह अभिग्रह ऐसा था कि जिसका मैं आहार लेऊ कि--१ सुबह की टाइम हो २ राजकन्या हो ३ तीन दिन की भूखी प्यासी हो ४ सिर मुंडा हो ५ काछोटा पहना हुआ हो ६ हाथों में हथकड़ी हो ७ पैरों में बेड़ियाँ हो ८ छाज का कौना में ९ उड़दों के बाकुल हो १० एक पैर दरवाजे के अंदर हो ११ दूसरा पैर दरवाजे के बाहर हो १२ एक आँख में हर्ष हो १३ दूसरी आँख में रुदन के आँसू पड़ते हो ऐसी हालत में मैं आहार ले सकता हूँ । वसुमति के नसीब ने न जाने भ० महावीर को खेंच लाए भ० महावीर के उक्त अभिग्रह के १२ बोल तो मिल गए पर एक आँख में आँसू नहीं पाये कारण वह बहुत दुःखी होने पर भ० महावीर के आने की खुशी थी जब अभिग्रह पूरा नहीं देखा तो भ० महावीर वापिस लौट गये जिससे वसुमति को इतना दुःख हुआ कि आँखों में आँसू पड़ने लगे फिर भी वसुमति रुदन करती बोली कि प्रभु आये हुए वापिस क्यों जाते हो एक बार मेरी ओर देखो तो सही भगवान फिर के वसुमति की ओर देखा तो

एक आँख में आँसू गिर रहे दूसरी आँख में हर्ष था जो भगवान पुनः पधारे बस भगवान ने वसुमति से उड़दों के बाकुले ले लिया कवि ने अपनी युक्ति लगाई कि वसुमति कन्या होने पर भी कितनी हुशियार निकली कि भगवान ने तो साढ़ा बारह वर्ष घोर उपसर्ग सहन किया तब मोक्ष मिली तब वसुमति ने एक मुट्ठी भर उड़दो के बाकुले देकर भगवान से मुक्ति ले ली। खैर भगवान तो बाकुला लेकर चल दिया पर पास ही में रहने वाले देवताओं ने साढ़ा बारह करोड़ सोनइयों की तथा पंच वर्ण पुष्प और सुगन्धी जल वस्त्रों की वृष्टी की और आकाश में उद्घोषना कर दान और वसुमति के यश गान गाये। इतने में इधर तो सेठजी आये उधर से मूला को तथा राजा प्रजा को खबर हुई कि सेठ धन्ना के यहाँ सोनइयों वगैरह की वृष्टि हुई सब लोग आकर देखा तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ देवताओं ने कहा अरे लोगो ? यह वसुमति सती है दीर्घ तपस्वी भ० महावीर को दान दिया है यह वसुमति चंदनबाला भगवान् की पहले शिष्यनी होगी यह सोनइया इनके दीक्षा के महोत्सव में लगाना इत्यादि नगर भर में अति मंगल हो गए।

जब भगवान् महावीर को कैवल्य ज्ञान हुआ तो उधर तो इन्द्रभूति आदि ११ गणधर और ४४०० ब्राह्मणों को दीक्षा दी और इधर चंदनबालादि को दीक्षा दी तथा श्रावक श्राविका मिल कर चतुर्विधसंघ की स्थापना की उस चंदनबाला साध्वी के मृगावत्यादि ३६००० शिष्यणियाँ हुई जिसमें १४०० साध्वियाँ तो उसी भव में मोक्ष हो गई थी।

इस प्रकार राजा दधिवाहन की चंपानगरी का ध्वंस हुआ था बाद जब मगद का राजमुकट कुणिक के सिर चमकने लगा तब राजा कुणिक ने पुनः चंपानगरी को आबाद कर अपनी राजधानी का नगर बनाया जैन शास्त्रों में चंपानगरी का बार बार वर्णन आता है। इसके कई कारण हैं प्रथम तो भगवान वासुपूज्य के निर्वाण कल्याण हुआ दूसरा भगवान् महावीर को यहाँ केवल ज्ञान होने से वहाँ एक विशाल स्तूप बनाया था और राजा प्रसेनजित – अजात शत्रु वगैरह वह रथ यात्रादि महोत्सव करते थे तथा उन्होंने अपनी ओर से स्तम्भ वगैरह बनाये थे तथा भगवान् महावीर भी यहाँ अनेक बार पधार कर इस भूमि को अपने चरण कमल से पवित्र बनाई थी और राजा श्रेणिक की कालि आदि रानियो ने इसी नगरी में भ० महावीर के पास दीक्षा ली थी इत्यादि कारणों से चपानगरी जैनों के लिए एक धाम तीर्थ माना जाता था।

५– वत्सदेश–इस देश की राजधानी कौसुंबी नगरी में थी इस देश पर भी जैन राजाओं ने राज किया था जिसमें राजा सहस्रानिक, सतानिक और उदाइ राजा जैन शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। राजा संतानिक का विवाह विशाल के राजा चेटक की पुत्री मृगावती के साथ हुआ था राजा सतानिक की बहिन का नाम जयंती था और वह जैन श्रमणो की परम उपासिका भी थी इसने अपना [illegible] श्रमणों के ठहरने के लिए ही रख छोड़ा था यही कारण है कि जैन शास्त्रों में जयंती को प्रथम शैय्यातरी [illegible] समान देने वाली बतलाया है बाई जयंती विधवा थी और [illegible] धर्म तत्व जानकर [illegible] भगवान महावीर देव के पास जाकर कई प्रकार के प्रश्न पूछा करती थी और अन्त में उसने भगवान महावीर के पास भगवती दीक्षा भी ले ली थी। राजा संतानिक की रानी [illegible] [illegible] पर उज्जैन का राजा चण्डप्रद्योतन मोहित हो उसको प्राप्त करने के लिए कई [illegible] उसमें वह सफल नहीं हुआ। मृगावती का पति राजा सतानिक [illegible] [illegible] बालक ही था [illegible] राजा संतानिक [illegible]

वत्सदेश—कौशुंबी नगरी

मौजुदगी में एक बार चंपा नगरी पर चढ़ाई की थी और चंपा नगर को बहुत बुरी तरह से ध्वंस करके उसको खूब लूटी थी उनके अत्याचारों से राणी धारणी ने अपघात कर प्राण छोड़ दिया था ओर उसकी पुत्री वसुमती को कौसुबी लेजा कर बाजार में वेच दी थी जिसका वर्णन हम अंग देश का वर्णन करते समय लिख आये हैं रानी मृगावती ने अपनी अन्तिमावस्था में भ० महावीर के पास दीक्षा ली थी इत्यादि इन राज का जैन शास्त्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है पर मैं तो यहाँ पर केवल राजाओं की नामावली ही लिख देता हूँ।

नं०	राजाओं के नाम	समय		वर्ष	
१	सुतीर्थ	इ०सं पू.७९६	७३६	६०	इन राजाओं की समयावली मैंने शाह के पुस्तक से लिखी है।
२	रूच	,, ,, ७३६	६९६	४०	
३	चित्रक्ष	,, ,, ६९७	६५१	४५	
४	सुखीलल	,, ,, ६५१	६११	४०	
५	सहस्रानिक	,, ,, ६११	५६६	४५	
६	संतानिक	,, ,, ५६६	५४३	२३	
७	उदाइ	,, ,, ५४३	४८५	५८	
८	मणिप्रभ	,, ,, ४८५	४६२	२३	

श्रीमान् शाह ने अपने प्राचीन भारत वर्ष में राजा उदाइ के लिए लिखा है कि जैन शास्त्रों में शिशु नागवंशी राजा उदाइ की मृत्यु एक दुष्ट के षड्यंत्र से खून के तोर पर हुई और वह अपुत्रिया मरा था पर शाह कहता है कि—यह ठीक नहीं है पर मेरे मतानुसार राजा उदाइ शिशुनाग वंशी नहीं पर उदर वत्सराज वत्सपति ही था और षड्यंत्र की घटना इसके ही साथ हुई थी दूसरा मगध का उदाइ राजा अपुत्रिया भी नहीं था उसके अनुरुद्ध और मुंड एवं दो पुत्र थे अपुत्रिया कहा जाय तो वत्सपति ही था जो इनके बाद मणिप्रभ का नाम आया है यह राजा उदाइ का पुत्र नहीं पर दत्तक लिया हुआ पुत्र था अतः मेरा अनुमान ठीक है ऐसा शाह लिखता है पर जैन परम्परा में षड्यंत्र से खून मगध के राजा उदाइ का होना ही लिखा है फिर तो प्रमाणिक हो वही मानना चाहिए।

९—कौशलदेश—इस देश की राजधानी कुशस्थल नगर में थी और इस देश के राजाओं में राजा प्रसेनजित का अधिकार जैन शास्त्रों में मिलता है कि वह भ० पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्ट पर आचार्य केशी श्रमण का भक्त राजा था राजा प्रसेनजित के पूर्व के राजा किस धर्म को मानने वाले थे इनके लिए निरा-

त्मिक कुछ भी नहीं कहा जाता है पर यह अनुमान किया जा सकता है कि जिसके पाड़ोस में काशी देश का राजकुमार पार्श्वनाथ ने दीक्षा लेकर तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया था तो उनके उपदेश का प्रभाव कौशल राजाओं पर अवश्य हुआ होगा अतः वे भी जैन धर्मोपासक ही होगा कौशल नरेशों की वंशावली निम्नलिखित है

नं०	राजावली	समय ई० सं० पूर्व		वर्ष
१	राजावृत-अंक	७९०	७३०	६०
२	,, रत्नजय	७३०	६९०	४०
३	,, दिवसेन	६९०	६४०	५०
४	,, संजय	६४०	५८५	५५
५	,, प्रसेनजित	५८५	५२६	५९
६	,, विदुरथ	५२६	४९०	३६
७	,, कुसुलिक	४९०	४७०	२०
८	,, सुरथ	४७०	४६०	१०
९	,, सुमित्र	४६०	४५०	१०

कौशलदेश एक समय जैनों के तीर्थ धाम कहलाता था और खूब दूर दूर से लोग यात्रार्थ आया करते थे दूसरा व्यापार के लिए भी यह देश बहुत प्रसिद्ध था अतः जैन साहित्य में कौशल का भी अच्छा स्थान है।

प्रस्तुत कौशलदेश की राजधानी के समय समयान्तर कई नाम रहे हैं कुशस्थल के अलावा अयोध्या अवधि नाम भी रहे हैं वर्तमान में सहेट महेट का किला के नाम से प्रसिद्ध है इसका इतिहास पत्र पत्र का स्थानों पर छापा गया है पर इन सबको एक स्थान संकलित करने की आवश्यकता है। यहाँ की भूमि खोद काम से कई स्मारक चिन्ह प्राप्त हुए हैं जिसमें कई ई० स० पूर्व के हैं तथा कभी कई जैन मन्दिरों की मूर्तियें भी मिली हैं उसमें पाँच मूर्तियों पर शिलालेख हैं जिसके निम्न लिखित संवत् हैं —

जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ	जैन राजाओं के नाम
१ भ० विमलनाथ की मूर्ति सं० ११२३	१ मयूरध्वज सं० ९००
२ भ० ,, ,, ११८२	२ हंसध्वज सं० ९२५
३ भ० नेमिनाथ की मूर्ति सं० ११२५	३ मकरध्वज सं० ९५०
४ पता नहीं मालुम हुआ सं० ११३२	४ सुधन्वध्वज सं० ९७५
५ भ० ऋषभदेव की मूर्ति सं० ११२४	५ सुहृदलिध्वज सं० १०००

यह नामावली जैन सत्य प्रकाश वर्ष ७ अंक ४ से लिखी गई है।

भूगर्भ से मिली हुई मूर्तियाँ—

७—सिन्धु सौवीर देश—इस देश की राजधानी वीतभय पाटण में थी और राजा उदाई वहाँ पर राज करता था राजा उदाई का विवाह भी विशाला नगरी के राजा चेटक की पुत्री प्रभावती के साथ हुआ था राणी प्रभावती बालपने से ही जैनधर्म की उपासना करने में सदैव तल्लीन रहती थी राणी प्रभावती के अन्तेवर गृह में एक जैन मन्दिर था जिसके अन्दर देवकृत भगवान महावीर की गौसीस चन्दन मयमूर्ति थी इस मूर्ति के विषय एक चमत्कारी कथा लिखी है वह अन्यत्र लिखी गई है यहाँ तो इतना ही कह दिया जाता है कि राजा उदाइ और राणी प्रभावती उस महावीर मूर्ति की त्रिकाल सेवा पूजा किया करते थे कभी कभी राणी नृत्य करती और राजा बीना बजाया करता था रानी प्रभावती के एक कुब्जा दासी थी जिसका रुप तो ऐसा सुन्दर नहीं था पर उसके अन्दर गुण अच्छे-सुन्दर थे विशेष में कुब्जा दासी जिन प्रतिमा की भक्ति तन मन से करती थी भाग्यवसात् एक श्रावक ने साधर्मीपने के नाते उस दासी को देव चमत्कृत ऐसी गुटका (गोलियाँ) दी कि जिसके खाने से दासी का रूप देवांगना जैसा हो गया था।

राजा उदाइ और राणी प्रभावती के एक अभीच नाम का कुँवर था तथा राजा उदाइ के बहिन का पुत्र केशीकुंवार नाम का भानेज भी था। जब रानी प्रभावती ने भगवान महावीर के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली तब महावीर मूर्ति की सेवा पूजा कुब्जा दासी किया करती थी जब उसका रूप सुंदर हो गया तो उसका नाम बदल कर सुवर्णगुलेका रख दिया था—

उज्जैन का राजा चण्ड प्रद्योतन ने सुवर्ण गुलिका दासी के रूप की बहुत प्रशंसा सुनी तो उसका दिल दासी को अपने वहाँ बुलाने का हुआ राजा ने किसी दूती के साथ कहलाया तो दासी ने कहा कि राजा स्वयं यहाँ आवे तो मैं उससे वार्तालाप करूँ। खैर गर्जवान् दर्जवान् क्या क्या नहीं करता है। राजा चण्ड प्रद्योत हस्ती पर सवार हो गुप्त रूप से वीतभय पट्टन गया और संकेत किया स्थान पर दासी से मिला राजा ने दासी का रूप देख विशेष मोहित हो गया और उसमे उज्जैन चलने के लिये प्रार्थना की दासी ने राजा की बात तो स्वीकार करली कारण राजा उदाई को तो दासी अपने पिता तुल्य समझती थी जब चण्ड प्रद्योतन जैसा राजा प्रार्थना करे दासी को ऐसा राजा कब मिलने का था फिर भी दासी ने कहा मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ पर मैं भगवान महावीर की मूर्ति की पूजा करती हूँ और मुझे अटल नियम भी है अतः मैं मूर्ति को छोड़ कर कैसे चल सकूँ ? इस पर राजा ने कहा कि मूर्ति को भी साथ में लेलो। मूर्ति साथ में लेने से तत्काल ही राजा उदाई को मालूम हो जायगा अतः इस मूर्ति के सदृश दूसरी मूर्ति बनवाई जाय कि इस असली मूर्ति के स्थान नकली मूर्ति रखदी जाय राजा ने दासी का कहना स्वीकार कर वापिस उज्जैन आया और चन्दन मय महावीर मूर्ति बना कर हस्ती पर लेकर पुनः वीतभयपट्टण आया असली मूर्ति के स्थान नकली मूर्ति रख दासी और मूर्ति को लेकर उज्जैन आ गये। पीछे दूसरे दिन राजा दर्शन करने को गया तो मूर्ति के कण्ठ में पुष्पों की माला कुमलाई हुई देखी तो उसे मालूम हुआ कि यह मूर्ति असली नहीं है जब दासी को बुलाया तो वह भी न मिली राजा उदाई ने सोचा कि सिवाय चण्डप्रद्योतन राजा के दासी एवं मूर्ति को लेजा नहीं सके खैर राजा उदाई ने इसकी खबर मंगाई तो उसकी धारणा सत्य ही निकली राजा उदाई अपनी सेना तथा दस मुकटबन्ध राजा जो अपने अधिकार में थे उनके साथ अवंती प्रदेश पर चढ़ाई करदी। राजा चण्ड को खबर हुई तो वह भी अपनी सेना लेकर सामने दिया [illegible]

राजाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ आखिर राजा उदाई के योद्धों ने राजा चण्ड को जीवित पकड़ लिया बाद मूर्ति और दासी को लेकर वापिस अपने देश को आ रहे थे पर वर्षा ऋतु होने के कारण रास्ते मे जीवों की उत्पत्ति बहुत हो गई तथा वर्षा भी बरस रही थी जहाँ पर आज मन्दसौर नगर है वहाँ आये कि राजा ने चलना बन्द कर जंगल में पड़ाव कर दिया दश राजाओं ने पृथक् २ अपनी छावनियां डालदी और वर्षाकाल वही व्यतीत करने लगे।

जब वार्षिक पर्व सवत्सरी का दिन आया तो राजा वगैरह सब लोगो ने सवत्सरी का उपवास किया हालत में रसोइया ने राजा चण्ड जो नजर कैद में था को जाकर पूछा कि आपके लिये आज क्या भोजन हम बनाऊं ? राजा ने पूछा कि इतने दिनो में कभी नही पूछा आज ही क्यो पूछा जा रहा है ? रसोईया ने कहा कि आज हमारे सवत्सरिक पर्व है सबके उपवास व्रत हैं केवल आप ही भोजन करने वाले हैं इससे आपको पूछा है इस पर राजा ने सोचा कि हमेशा राजा उदाई के साथ बैठकर भोजन करते थे अतः किसी प्रकार का अविश्वास नही था पर आज तो केवल मेरे ही लिए भोजन बनेगा शायद रसोइया भोजन मे कुछ विषादि न मिला दे इत्यादि विचार कर राजा चण्ड ने कहा कि जब सबके पर्व का व्रत है तो मै भी व्रत कर लूंगा मेरे लिये रसोई बनाने की जरूरत नहीं है। रसोइया ने जाकर राजा उदाइ को समाचार कह दिया जब सावत्सरिक प्रतिक्रमण का समय हुआ तो राजा चण्ड को भी बुलाया और क्षमापना के समय राजा उदाइ राजा चण्ड को क्षमापना करने को कहा पर उसने कहा मै आपसे क्षमापना नहीं करूंगा। यदि आप दासी और मूर्ति देकर मुझे छोड़दे तो मैं क्षमापना कर सकता हूं। राजा उदाइ ने सोचा कि यदि राजा चण्ड क्षमापना न करेगा तो इसका पाप तो मुझे नहीं लगेगा पर राजा चण्ड आज पर्व का व्रत किया है जिससे यह मेरा साधर्मी भाई बन गया है केवल मेरे ही कारण इसके कर्म बन्धन का कारण होता है तो मुझे दासी और मूर्ति देकर इसको बन्धन मुक्त करके भी क्षमापना करवा लेना चाहिये—दूसरा राजा उदाई ने निमित्तिया से यह भी सुन रखा था कि पट्टन दट्टन होने वाली है, फिर इस हालत में मूर्ति कैसे सुरक्षित रह सकेगा। तीसरा जब दासी अपनी इच्छा से राजा चण्ड के साथ आई है। यह बात पाठक पहले पढ आये हैं कि राजा उदाइ और चण्ड दोनों राजा, राजा चेटक की पुत्रियों के साथ लग्न किया। अतः वे आपस में साढू भी लगते थे। इत्यादि कारणों से विशेष साधर्मी भाई के नाते को लक्ष में रख कर युद्ध कर दासी और मूर्ति को लाया था पर अपनी उदारता से राजा चण्ड को देकर क्षमापना करवाना। 'सगपण मोटो साधर्मीतणो' इस कहवत को राजा उदाइ ने ठीक चरितार्थ कर बतलाया। राजा चण्ड दासी और मूर्ति को लेकर उज्जैन गया और राजा उदाइ अपने नगर आया।

राजा उदाइ संसार से उदास रहता हुआ धर्म कार्य साधन की ओर विशेष लक्ष [illegible] एक बार राजा उदाइ [illegible] तप कर पौषध किया था, उसमें राजा की भावना ऐसी हुई कि यदि [illegible] महावीर यहाँ पधार जाय तो मै दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूं। भगवान महावीर ने [illegible] राजा उदाइ के भावो को जानकर एक रात्रि [illegible] योजन का विहार कर [illegible] मे पधार गये। राजा उदाइ को खबर मिली तो उसने [illegible] और [illegible] आया। भगवान महावीर ऐसी देशना दी कि जिससे राजा की भावना [illegible] और दीक्षा लेने का अटल निश्चय कर लिया। [illegible]

तो उसको विचार हुआ कि अभीच कुँवर मेरे एक ही पुत्र है, यदि इसको राज दे दिया जाय तो या
विलास एवं राज में मूर्च्छित होकर संसार में परिभ्रमण करेगा, इससे तो उचित है कि मेरे भानेज
कुमार को राज देकर मैं भगवान महावीर के पास दीक्षा ले लूँ । यदि इस बात का खुलास कर
तो कुछ भी नहीं था पर बिना किसी को कहे अपने स्थान पर केशीकुमार को राज देकर राजा उदाई
समारोह से भगवान महावीर के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली । यह बात रा
अभीच को सहन न हुई । कारण जब राजा का पुत्र हकदार तो बैठा रहे और जिसका राज
कुछ भी हक नहीं वह राजा बन जाय । पर अभीचकुमार विनयवान पुत्र था, उस समय कुछ
कहा । बाद में भी जब उससे देखा नहीं गया तो वह अपना कुटुम्बादि सबको लेकर अंग देश की
नगरी जहां अपनी मासी का बेटा राजा कूणिक राज कर रहा था, वहां चला गया । कूणिक ने
कुमार का अच्छा स्वागत किया और आदर सत्कार के साथ अपने पास रख लिया । अभीचकुमार
के पास आनन्द में रहता था, जैनधर्म में उसकी अटल श्रद्धा थी पर राजर्षि उदाइ के साथ उनका
सद्भाव नहीं रहा । यों भी कहा जाता है कि अभीचकुमार जब नवकार मन्त्र का जाप करता
कहता था कि "नमोलोए सव्व साहूँण" उदाइ साधु को वर्ज कर सब साधुओं को नमस्कार हो ।
आरा में भी पंचम आरा की प्रभा पड़ गई थी कि उपकार के बदले में अपकार से पेश आया । आगे
उदाइ सिद्ध होगये तो भी अभीच का उनके प्रति द्वेष कम नहीं हुआ । वह सिद्धों को नमस्कार करते
भी उदाइ सिद्ध को वर्ज कर ही सब सिद्धों को नमस्कार करता था । यही कारण था कि अभीचकु
अभोगी देव का भव करना पड़ा । बाद में वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष को जायगा ।

राजर्षि उदाई दीक्षा लेकर अन्यत्र विहार कर दिया कितनेक समय के बाद राजा उदाई के श
बीमारी हो गई और वह चल कर पुनः वीतभय पट्टण में आकर एक कुम्भकार के मकान में ठहरा राजा
आदि वन्दन करने को आये और प्रार्थना की कि आप राज मकान में पधार जाइये आपके बीमारी
इलाज करवाया जायगा वैद्य हकीमों को भी ले गया वैद्यों ने राजा की बीमारी देख कर दही का
बतलाया पर कई धर्म द्वेषी लोगों ने राजर्षि उदाई को मरवा देने का दुष्टविचार कर के राजा केशी के
आकर कहा कि राजर्षि दुष्कार संयम पालन करने से पराङ्मुख हो वापिस राज लेने के लिये आये हैं
इनको मरवा देना ही अच्छा है ? इस पर राजा केशी ने कहा कि ऐसा हो नहीं सकता है इस पर भी
राज लेना चाहे तो यह राज उनका ही है खुशी से ले पर मुनि हित्या करना तो क्या पर कानों में सुन
भी पाप लगता है अतः ऐसी बात मेरे सामने कभी नहीं करना तथापि उन द्वेषियों ने दही के अन्दर
खिला देने की नीचता कर डाली जब राजर्षि उदाई दही लाकर खाया तो उसके सब शरीर में विष
हो गया उस समय देवता ने आकर राजर्षि को कहा कि आप इसके लिये प्रयोग करें कि विष अपना
नहीं करे पर राजर्षि ने इसको स्वीकार न कर अपने कर्म भोगने के लिये उस परिसह को सम्यक्
सहन कर शेष कर्मों की निर्जरा करते हुए नाशमान शरीर को छोड़ मोक्ष में पधार गये—

इस अकृत्य कार्य से देवता कुपित हो ऐसी धूल की वृष्टि की कि एक कुम्भकार का घर छोड़
सब नगर धूल के नीचे दब गया जिसको पट्टन दट्टन कहते हैं । जब पट्टन दट्टन हो गई तो सिन्धु
का राज राजा कूणिक ने अपने अधिकार में मिला लिया ।

कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्र सूरि के समय राजा कुमारपाल सिन्धु सौवीर के भूमि गर्भ से एक मूर्ति प्राप्त की थी जिसको हेमचन्द्र सूरि ने राजा उदाई के मन्दिर की महावीर मूर्ति बतलाई थी। तथा वर्तमान सरकार के पुरातत्व विभाग की ओर से भूमि का खोद काम हुआ जिसमें सिन्धु सौवार की भूमि से एक नगर निकला है। जिसका नाम मोहनजादरा एवं दूसरा नगर का नाव 'हराप्पा' रखा है यह वही नगर है जो राजा उदाइ के बाद देवताओं की धूल वृष्टि से भूमि में दब गये थे विद्वानों ने उन नगरों को ई० सं० पूर्व कई पाँच हजार पूर्व जितने प्राचीन बतलाये हैं। उन नगरों के अन्दर से निकलते हुए प्राचीन अनेक पदार्थों ने भारत की सभ्यता पर अच्छा प्रकाश डाला है विशेष में उन नगरों का हाल पढ़ने की सूचना कर इस लेख को समाप्त कर देता हूँ।

८—शूरसेन देश—इस देश की राजधानी मथुरा नगरी में थी मथुरा भी एक समय जैनों का बड़ा भारी केन्द्र था कई जैनाचार्यों ने मथुरा में चतुर्मास किये थे और मथुरा नगरी में जैन मन्दिर एवं स्तूप सैकड़ों की संख्या में थे जिनकी यात्रार्थ कई आचार्य बड़े २ संघ लेकर आते थे। मथुरा नगरी में एक समय बौद्धों के भी बहुत से संघाराम थे और सैकड़ों बौद्ध साधु वहाँ रहते थे कई बार जैनों और बौद्धों के बीच शास्त्रार्थ होना भी जैन पट्टावलियों में उल्लेख मिलते हैं दिगम्बर जैनों में एक माथुर नाम का मत है और श्वेताम्बर समाज में मथुरा नाम का गच्छ भी है जैन श्वेताम्बर में आगम वाचना मथुरा में हुई थी और आज भी वह माथुरी वाचना के नाम से मशहूर है। मथुरा में क्षत्रप और महाक्षत्रप राजाओं ने भी राज किया था उनके बनाया हुआ जैन स्तूप आज भी विद्यमान है और उन राजाओं के कई सिक्के भी मिले हैं उन पर भी जैन चिन्ह विद्यमान हैं जिसको हम स्तूप एवं सिक्का प्रकरण में लिखेंगे। मथुरा पर गुप्तवंशियों का भी राज रहा है उनका शिलालेख एक जैन मूर्ति पर मिला है। मथुरा पर कुशान वंशियों का भी शासन रहा है उनके शिलालेख एवं सिक्के भी मिले हैं उनके सिक्कों पर भी जैन चिन्ह खुदे हुए पाये जाते हैं पर खेद है कि कई विद्वानों ने जैन और बौद्धों को एक ही समझ कर उन स्तूप एवं सिक्के को बौद्धों के ठहरा दिये हैं पर वास्तव में उनके चिन्हों से वे जैनों के ही सिद्ध होते हैं महाराणि महाक्षत्रप राजुवुल की पट्टरानी ने जैन स्तूप की बड़ा ही समारोह से प्रतिष्ठा करवाई थी जिसमें भूमिक महाक्षत्रिप को भी आमंत्रण किया था और नहपाण वगैरह भी इस प्रतिष्ठा में शामिल हुए थे फिर समझ में नहीं आता है कि यह सूर्य जैसा प्रकाश होते हुये भी उन जैन स्तूप एवं सिक्कों को बौद्धों का कैसे बनाये जाते हैं और इस विषय में हम अगले पृष्ठों पर लिखेंगे यहाँ पर तो केवल मथुरा के कुशानवंशियों की वंशावली ही दी जाती है।

नं०	राजाओं के नाम	समय ई० स०	वर्ष	नं०	राजाओं के नाम	समय ई० सं०	वर्ष
१	कडफसीस (१)	२१ से ५१	४०	५	हुविष्क	[illegible]	[illegible]
२	कडफसीस (२)	५१ से १०३	३२	६	कनिष्क (२)	[illegible]	[illegible]
३	कनिष्क	१०३ से १२६	२३	७	वासुदेव	[illegible]	[illegible]
४	वसिष्क	१०६ से १३२	६	८	[illegible]	[illegible]	[illegible]

श्रीमान् डा० हे० राय के प्राचीन भारतवर्ष पुस्तक के आधार पर।

शिलालेख में भी आंध्र के राजा शतकरणी का उल्लेख आता है इनके अलावा आंध्र देश के राजाओं के शिला लेख तथा सिक्के भी मिले हैं जिसके कुछ ब्लॉक यह दे दिये गये हैं इस देश का आदि राजा श्रीमुख नन्दवंशी था जब नन्दवंशी राजा जैन थे तो राजा श्रीमुख जैन होने मे किसी प्रकार की शंका को स्थान ही नहीं मिलता है और उनकी वंश परम्परा में भी जैन धर्म चला ही आरहा था जो उनके शिलालेखों और सिक्कों से पाया जाता है दूसरा दक्षिण देश में राजा श्रीमुख से पूर्व कई शताब्दियों से जैन धर्म का प्रचार हो चुका था जिसके प्रचारक भ० पार्श्वनाथ के परम्परा में लोहित्याचार्य्य थे। इन आंध्र वंशी राजाओं के पश्चात् भी दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार बहुत लम्बा समय तक चला आया था वहाँ के राजवंश जैसे कदम्ब वंश कलचूरीवंश गंगवंश, पल्लववंश पाण्ड्यवंश राष्ट्रकूटवंश वगैरह भी जैन धर्म पालन करने वाले थे जो उनके शिला लेखों दान पत्रों एवं सिक्कों से स्पष्ट पाये जाते हैं जिनकी नामावली आगे के पृष्ठों पर दी जायगी यहाँ पर तो पहले आंध्र वंश के राजाओं की वंशावली दी जाती है:—

नं०	राजा	समय (ई० सं० पूर्व)	वर्ष	नं०	राजा	समय	वर्ष
१	श्रीमुख	४२[illegible]-४१४	१३	१७	अरिष्ट कर्ण	७२-४७	२५
२	गोत्रमीपुत्र यज्ञश्री	४१४-३८३	३१	१८	हाल सालिवाहन	४७-१८	६५
३	कृष्ण-वशिष्ट पुत्र	३८२-३७३	९	१९	मंतलक	१८-२५	६
४	मल्लिकर्णी	३७३-३१७	५६	२०	पुरिंद्रसेन	२६-३२	६
५	पूर्णोत्संग	३१७-२९९	१८	२१	सुन्दर	[illegible]	५
६	स्कन्द स्तंभ	२९९-२८१	१८	२२	चकोर	३२-३५	३
७	वस्टिपुत्र	२८१-२२५	५६	२३	शिवस्वाति	३५-७८	४३
	(शतकरणी)			२४	गोतमीपुत्र	७८-९९	२१
८	लम्बोदर	२२५-२०७	२८		(शतकरणी)		
९	आपिलिक	२०७-१९५	१२	२५	पल्लमण	९९-१२२	२३
१०	साति	१९५-१८३	१२	२६	पुलुमावी	१२२-१५३	३१
११	मेघस्वाति	१८३-१४५	३८	२७	शिवश्री	१५३-१८०	२७
१२	सौदास-संघस्वाति	१४५-११५	२९	२८	शिव स्कन्द	१८०-१८७	७
१३	मेघ स्वाति (२)	११५-११३	३	२९	यज्ञश्री	१८७-२१७	३०
१४	मृगेन्द्र	११३-९२	२१	३०-३२	तीन राजा [illegible]	[illegible]	[illegible]
१५	स्वाति वर्ण	९२-७५	१७				
१६	महेन्द्र	७५-७२	३				

[illegible]

११ वल्लभी नगरी के राजाओं की वंशावली—वल्लभी नगरी के राजाओं का जैनधर्म के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, जैनधर्म के कई महत्त्वपूर्ण कार्य इसी वल्लभी नगरी में हुए हैं। [illegible] भी शत्रुंजय के बहुत निकट आई हुई है [illegible]

थी। आचार्य सिद्धसूरि ने वल्लभी के राजा शिलादित्य को प्रतिबोध कर जैनधर्म का श्रद्धासम्पन्न श्रावक बनाया था और उसने शत्रुंजय तीर्थ की भक्तिपूर्वक यात्रा की तथा वहां का जीर्णोद्धार भी करवाया। वल्लभी नगरी के शासन कर्त्ता शिलादित्य नाम के कई राजा हुए थे। आचार्य धनेश्वरसूरि ने भी शिलादित्य राजा को प्रतिबोध कर शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करवाया था तथा आचार्यश्री ने वल्लभी नगरी में रह कर शत्रुंजय महात्म ग्रन्थ का निर्माण भी किया था जो इस समय विद्यमान है। राजा शिलादित्य की बहिन दुर्लभा देवी के पुत्र जिनायश, यक्ष और मल्ल इन तीनों पुत्रों ने जैनाचार्य जिनानन्दसूरि के पास जैनदीक्षा ग्रहण की थी और ये तीन मुनि बड़े ही विद्वान हुए, जिसमें भी आचार्य मल्लवादी सूरि का नाम तो बहुत प्रख्यात है। आचार्य मल्लवादीसूरि ने बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ कर उनको पराजय किया और शत्रुंजय तीर्थ बौद्धों की हाथों में गया हुआ पुनः जैनों के अधिकार में करवा दिया। आचार्य नागार्जुन की आगम वाचना इसी वल्लभी नगरी में हुई थी। जिस समय आचार्य नागार्जुन ने वल्लभी में श्रमणसंघ को आगम वाचना दी थी उसी समय आर्य्य स्कन्दिल सूरि ने मथुरा में आगम वाचना की थी अर्थात् ये दोनों वाचना समकालीन हुई थी। तदान्तर आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी और कालकाचार्य ने इसी वल्लभीनगरी में एक सघ सभा कर पूर्वोक्त दोनों वाचनायें में रहा हुआ अन्तर एवं पाठान्तर का समाधान कर आगमों को पुस्तकों पर लिखवाये गये। उपकेशगच्छाचार्य्यों ने इस वल्लभी को कई बार अपने चरण-कमलों से पावन बनाई और कई बार चातुर्मास भी किये तथा कई भावुकों को दीक्षा भी दी। इसी प्रकार और भी अनेक महात्माओं ने वल्लभी नगरी को पवित्र बनाई थी उस समय सौराष्ट्र एवं लाट देश में जैनधर्म का अच्छा प्रचार था राजा प्रजा जैनधर्म का ही पालन करते थे। यही कारण है कि ब्राह्मण-धर्मानुयायों ने इस देश को म्लेच्छों का वासस्थान बतलाकर अपने धर्म के अनुयायियों को वहां जाने आने की मनाई [illegible]। इस विषय में एक स्थान पर ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि—

४ चटभट-पुलिस सिपाही
५ ध्रुव-ग्राम का हिसाब रखने वाला नवंशज अधिकारी वलटीया कुलकरणी के समान
६ अधिकरणिक-मुख्य जज
७ दंड पासिक-मुख्य पुलिस सआफिर
८ चौरद्धर्णिक-चोर पकड़ने वाला
९ राजस्थानिय-विदेशी राजमंत्री
१० अमात्य-राज मंत्री
११ अनुत्पन्ना समुद्रमहक-पिच्छला कर वसूल करने वाला
१२ शौल्किक-चुंगी आफिसर
१३ भोगिक या भोगोद्धर्णिक-आमदनी या कर वसूल करने वाला
१४ वरर्मपाल-मार्ग निरीक्षक सवार
१५ प्रतिसरक-क्षेत्र या ग्रामों के निरीक्षक
१६ विषयपति-प्रान्त का आफिसर
१७ राष्ट्र पति-जिला का अफसर
१८ ग्रामकूट-ग्राम का मुखिया

इससे अनुभव लगाया जा सकता है कि उस समय राज व्यवस्था कितनी अच्छी थी।

वल्लभी राजवंश की नामावली—

इन राजाओ का चिन्ह वृषभ का है तथा ई० सं० ३१९ से वल्लभी सवत् भी चलाया था।

१ सेनापति भट्टारक	ई० सं०	५०९-५२०	(छः वर्ष का पता नहीं)
२ ध्रुवसेन (१)	,,	५२६-५३५	(चार वर्ष का पता नहीं)
३ ग्रहसेन	,,	५३९-५६९	
४ धारसेन	,,	५६९-५८९	नं० ३ का पुत्र
५ शिलादित्य (१)	,,	५९०-६०९	नं० ४ का पुत्र
६ खरग्रह	,,	६१०-६१५	नं० ५ का भाई
७ धारसेन (३)	,,	६१५-६२०	नं० ६ का पुत्र
८ ध्रुवसेन (२)	,,	६२०-६४०	नं० ७ का भाई
९ धारसेन (४)	,,	६४०-६४९	नं० ८ का पुत्र
१० ध्रुवसेन (३)	,,	६५०-६५६	देरा भट्ट का पुत्र
११ खरग्रह (२)	,,	६५६-६६५	नं० १० का भाई
१२ शिलादित्य (३)	,,	६६६-६७५	नं० ११ का भाई
१३ शिलादित्य (४)	,,	६७५-६९१	नं० १२ का पुत्र
१४ शिलादित्य (५)	,,	६९१-७२२	नं० १३ का पुत्र

१५ शिलादित्य (६) „ ७२२-७६० नं० १४ का पुत्र
१६ शिलादित्य (७) „ ७६०-७६६ नं० १५ का पुत्र

मरुधर देश के जैन नरेश—

मरुधर प्रदेश में आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज ने पदार्पण कर जैन धर्म की नींव डाली था से ही वहाँ के नरेशों पर जैन धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा सब से पहला उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव ने जैन धर्म को स्वीकार किया बाद तो क्रमशः अन्य नरेश भी जैन धम को अपनाते गये और समयान्तर सिन्ध कच्छ सौराष्ट्र लाट मेदपाट आवंती शूरसेन और पांचालादि देशों में भी उन आचार्यों ने घूम घम कर सर्वत्र जैन के प्रचार को खूब बढ़ाया जिसका उल्लेख वंशावलियों एवं पट्टावलियों में विस्तार से मिलता है।

उपकेशपुर के राजाओं की नामावली

१—राव उत्पलदेव—आप श्रीमाल नगर के राजा भीमसेन के पुत्र थे आपने ही उपकेशपुर को आबाद किया था आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सब से पहला आप को ही वासक्षेप के विधि विधान से जैन बनाये थे और जैन धर्म के प्रचार में भी आप का ही सहयोग था आपने उपकेशपुर की पहाड़ी पर भ० पार्श्वनाथ का विशाल एवं उतंग मन्दिर बनाया तथा मरुभूमि से सबसे पहला तीर्थ श्रीशत्रुंजय का संघ भी निकाला था इत्यादि मरुधर में वह सबसे पहला जैन नरेश हुआ।

२—राव सोमदेव—आप राव उत्पलदेव के पांच पुत्रों में बड़ा पुत्र है इसने भी जैन धर्म की उन्नति एवं प्रचार के लिये बड़ा ही भागीरथ प्रयत्न किया था।

३—राव कल्हणदेव—यह राव सोमदेव का पुत्र है आपने जैन धर्म की प्रभावना बढ़ाते हुए उपकेशपुर में भ० ऋषभदेव का मन्दिर बनाया था।

४—राव विजयदेव—यह राव कल्हण का लघु पुत्र है इसने उपकेशपुर से एक विराट् संघ तीर्थों की यात्रार्थ निकाल कर शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा की थी।

५—राव सारंगदेव—यह राव विजयदेव का पुत्र है इसके शासनकाल में उपकेशपुर में एक श्रमण एवं संघ सभा हुई थी जिसमें जैन धर्म का प्रचार के लिये खूब जोरों से उपदेश एवं प्रयत्न किया गया था।

६—राव धर्मदेव—यह राव सारंग का छोटा भाई था और बड़ा ही वीर था जैन धर्म का प्रचार के लिये आचार्य एवं श्रमणों का खूब हाथ बटाया था।

७—राव जेतसी—आप राव धर्मदेव के पुत्र हैं इसने भी जैन धर्म की उन्नति के लिये तन मन और धन से खूब कोशिश की थी अंत में आप अपने लौकाशा पुत्र के साथ आचार्य कक्कसूरि के पास जैन दीक्षा स्वीकार की थी।

८—राव [illegible]—आप राव [illegible] ... का प्रारंभ किया भ० महावीर के मन्दिर को पूरा करवा कर प्रतिष्ठा

९—राव [illegible]—आप राव ... [illegible] दुष्काल पड़ा ... राजसी के [illegible] से उपकेशपुर के [illegible] [illegible] भाइयों और ... [illegible] का पालन किया।

१०—राव रत्नसी—आप राव मोहणसी के पुत्र हैं आपके शासनकाल में कई विदेशियों के आक्रमण हुए थे आपके सेनापति आदित्यनाग गौत्रीय वीर भादू था और उनकी वीरता से ही आप विजयी हुये थे।

११—राव नाढसी—आप राव रत्नसी के लघु पुत्र हैं आपके शासन समय जैन धर्म अच्छी उन्नति पर था आप के एक पुत्र दो पुत्रियों ने जैन दीक्षा ली थी।

१२—राव हुला—यह राव नाढसी के पुत्र हैं आपके परम्परासे चला आया धर्म में आशंका करके पाखंडियों के अधिक परिचय के कारण जैन धर्म से परांमुख होगये थे पर आचार्य सिद्धसूरि के सद् उपदेश से पुनः जैन धर्म में स्थिर हो जैन धर्म की खूब प्रभावना की आपके एक पुत्र ने जैन दीक्षा भी ली थी।

१३—राव लाखो—आप राव हुल्ला के पुत्र और बड़े ही प्रतापी राजा थे।

१४—राव भूम्र—आप राव लाखा के पुत्र हैं आपके समय एक देशव्यापी दुःकाल पड़ा था जिसमें आपने बहुत द्रव्य व्ययकर अपनी प्रजा के प्राण बचाये थे और बहुत लोगों को जैनधर्म में स्थिर रखे।

१५—राव केतु—आप राव भूम के पुत्र हैं आप बड़े ही धर्मात्मा थे जैन श्रमणों की उपासना में आप हमेशा उपस्थित रहते थे आपने तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर यात्रा की तथा वहाँ पर एक जैन मन्दिर बनवाया और सधर्मी भाइयों को एक एक लड्डू में पांच पांच सोना मुहरें की प्रभावना दी थी

१६—राजा मूलदेव—आप राव केतु के पुत्र हैं आपने जैनधर्म का प्रचारार्थ उपकेशपुर में एक श्रमण सभा बुलाकर बड़ा ही स्वागत किया था एवं परामणी दी थी।

१७—राजा करणदेव—आप मूलदेव के लघु बान्धव थे आपके प्रधान मंत्री श्रेष्टि गौत्रीय वीर राजसी था और सेनापति बाप्पनाग गौत्रीय शाह सुरजन थे इनके प्रयत्नों से आप अपने राज की सीमा बहुत बढ़ायी और जैनधर्म का भी काफी प्रचार बढ़ाया था।

१८—राजा जिनदेव—आप करणदेव के पुत्र थे आपका शासन बड़ा ही शान्तमय था। आपका लक्ष राजकी अपेक्षा धर्म की ओर अधिक झुका हुआ था।

१९—राज भीमदेव—आप जिनदेव के पुत्र थे। आपने संघ के साथ शत्रुंजय गिरनार की यात्रा की और बारहमास तीर्थ खर्च के लिये भेंट किये थे।

२०—राव भोपाल—आप भीमदेव के पुत्र थे। आपके शासन समय विदेशियों के देश पर हमले होते थे एक जत्था उपकेशपुर पर भी आक्रमण किया किन्तु राव भोपाल उसका सामना करके [illegible] राव भोपाल वीर था वैसे ही उसकी सेना भी बड़ी लड़ाकू थी सेना में अधिक सिपाही उपकेशवंश के ही थे। इतना ही क्यों पर सेनापति वगैरह भी उपकेशवंश के वीर रहे थे।

२१—राव त्रिभुवनपाल—आप राव भोपाल के पुत्र थे आप भी जैनधर्म के प्रचारक थे आपने आचार्यदेव को बहुत आग्रह से उपकेशपुर में चतुर्मास करवाया था और आपने खूब तन मन और धन से लाभ उठाया आपका स्वधर्मी भाइयों की ओर बहुत अधिक लक्ष था।

२२ राव देवो—आप राव त्रिभुवनपाल के पुत्र थे। आपके समय [illegible] की जिसमें आप पर भी दोषा बहुत असर होगया था पर उपकेशपुर के [illegible]

जैनधर्म ही था वे कब चाहते कि हमारे राजा वाममार्गी हो पर राजा के सामने चलती भी किसकी थी एक बार विहार करते आचार्य रत्नप्रभ सूरि का पधारना उपकेशपुर में हुआ और लोगों ने राजा के लिये अर्ज भी की । इधर वाममार्गियों का भी उपकेशपुर में आना होगया । बस फिर तो था ही क्या उन्होंने राजाश्रय लेकर अपना प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया इस वाद विवाद ने इतना जोर पकड़ा कि जिसका निर्णय राजा की राजसभा में होना निर्धारित हुआ राजा ने भी दोनों पक्ष के अग्रेश्वर नेताओं को आमंत्रण कर सभा में बुलाया और उन दोनों का आपसी शास्त्रार्थ करवाया जिसमें विजय माला जैनों के ही कण्ठ में शोभायमान हुई और रावजी अपना लघु पुत्र—ऋषभसेन के साथ जैन धर्म को स्वीकार किया फिर तो था ही क्या राजा ने जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया ।

२३—राव सिहो—आप राव रेखा के पुत्र थे आपभी बड़े ही धर्मात्मा राजा हुए आपने उपकेशपुर में एक शान्तिनाथ का मन्दिर बनाकर सालग्राम पूजा के लिये भेंट देते थे और आपको जिनदेव की पूजा का अटल नियम था ।

२४—राव मूलीदेव (२) आप सिंहसेन के पुत्र थे आपके सात पुत्रियां होने पर भी कोई पुत्र नहीं था । आपके सच्चायिका देवी का पूर्ण इष्ट था पुत्र चिन्ता के कारण आप देवी के सामने प्राणों का बलिदान देने को तैयार हो गये अतः देवी अपने ज्ञान बल से जानकर वरदान दिया कि हे भक्त ! तेरे एक ही वर्षों पर सात पुत्र होंगे पर कोई दीक्षा ले तो रुकावट न करना फिर तो था ही क्या राजा के क्रमशः सात पुत्र होगये जिसमें पांच पुत्रों ने जैन दीक्षा ले ली थी राजा मूलदेव ने पांच लक्ष द्रव्य व्यय कर अपने पांचों पुत्रों को जैन दीक्षा दिलादी थी ।

२५—राव भीमदेव (२) आप राजा मूलदेव के सात पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र थे आप दीक्षा के रंग में रंगे हुये थे । भोगावली कर्म शेष रह जाने के कारण आप दीक्षा तो नहीं ले सके पर वे राज करते हुए भी जैन धर्म के अभ्युदय के लिये ठीक प्रयत्न किया आपने आचार्य कक्कसूरि का उपकेशपुर में चतुर्मास करवाकर एक विराट् श्री संघ सभा करवाई जिससे जैन धर्म की बहुत बड़ी उन्नत हुई ।

२६—राव अरुणदेव—आप राव भीमदेव के पुत्र थे आप बड़े ही शान्ति प्रिय थे ।

२७—राव-खूमाण—आप अरुणदेव के पुत्र थे आपकी वीरता की बड़ी भारी धाक जमी हुई थी आपने कई युद्धों में अपनी वीरता का परिचय दिया था दानेश्वरी तो आप इतने थे कि दान देते समय आगे पिछे का कोई विचार नहीं करते थे ।

२८—राव-मालो—यह राव खूमाण के पुत्र थे आप जैन धर्म पालन एवं प्रचार करने में अपने जीवन का अधिक हिस्सा दिया था । वंशावलियों में आचार्य सिद्धसूरि के समय तक उपकेशपुर के राजाओं की वंशावली राव माला तक ही है जिसको हमने यहाँ दर्ज कर दी है हाँ वंशावलियों में इन राजाओं का विस्तार से वर्णन लिखा है ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने यह संक्षिप्त में नामावली ही लिखा है ।

चन्द्रावती के राजाओं की वंशावली—

१—राजा चन्द्रसेन—आप राजा जयसेन के पुत्र थे पाठक ! पूर्व प्रकरणों में पढ़ आये हैं कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर के राजा जयसेन को प्रतिबोध देकर जैन धर्मी बनाया राजा जयसेन के दो पुत्र

थे भीमसेन-चन्द्रसेन भीमसेन ने श्रीमाल का राज किया और चन्द्रसेन ने चन्द्रावती नगरी बसा कर वहाँ का राज किया इन नया राज आबाद करने का कारण आपस में धर्म भेद ही था राजा चन्द्रसेन जैन धर्म का उपासक था तब भीमसेन ब्रांह्मण धर्मी एवं वाममार्गी था भीमसेन जैनों पर अत्याचार करने के कारण चन्द्रसेन ने जैनों के लिये नया नगर को आबाद कर उसका नाम चन्द्रावती रख वहां का राज किया चन्द्रावती में उस समय राजा प्रजा जैन ही थे और बाद में भी जैनों का ही अग्रेश्वर बना रहा था राजा चन्द्रसेन ने जैन धर्म का प्रचार के लिये खूब भागीरथ प्रयत्न किया अपने नूतन नगर के साथ भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर भी बनवाया इतना ही क्यों पर उस नगर के जितने वास—मुहल बसाया प्रत्येक वास में रहने वाले सेठ साहूकारों की ओर से एक एक जैन मन्दिर बना दिया था।

२—धर्मसेन—आप राजा चन्द्रसेन के पुत्र थे—आपने अपने पिता की तरह जैन धर्म की खूब सेवा की इस धर्म भावना के ही कारण आपका नाम धर्मसेन पड़ा है।

३—अर्जुनसेन—आप राजा धर्मसेन के पुत्र थे आपने चन्द्रावती से शत्रुंजय की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला था और साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रकाएं की परामणी तथा वस्त्रों की लेन दी थी

४—ऋषभसेन—आप राजा अर्जुनसेन के पुत्र थे

५ रूपसेन—आप राजा ऋषभसेन के पुत्र थे

६—आनन्दसेन—आप राजा रूपसेन के पुत्र थे आपने चन्द्रावती के पास एक तालाव खुदाया था जिसका नाम आनन्द सागर था—

७—वीरसेन—आप राजा आनन्दसेन के पुत्र थे

८—भीमसेन—आप राजा वीरसेन के पुत्र थे आपने यात्रार्थ तीर्थों का संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों का सुवर्ण मुद्रिकाओं से सत्कार किया था।

९—विजयसेन—आप राजा भीमसेन के पुत्र थे। आपने आबू पर्वत पर भगवान पार्श्वनाथ का मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई

१०—जिनसेन—आप राजा विजयसेन के पुत्र थे आपने आबु के मन्दिर के लिये चार ग्राम दान में दिया तथा कुछ व्यापार पर भी लगान लगाया था

११—सज्जनसेन—आप राजा जिनसेन के पुत्र थे आपने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला और प्रत्येक यात्री को पांच पांच तोला की कटोरी भावना में दी थी

१२—देवसेन—आप राजा सज्जनसेन के पुत्र थे

१३—केतुसेन—आप राजा देवसेन के पुत्र थे आपके [illegible] से [illegible] हुई थी

१४—मदनसेन—आप राजा केतुसेन के पुत्र थे आपने एक मन्दिर बनवाया था

१५—भीमसेन (२) आप राजा मदनसेन के पुत्र थे आप बड़े ही [illegible] थे

१६—[illegible]सेन—आप राजा भीमसेन के पुत्र थे आपने कई दफे [illegible] एक विराट संघ निकाला जिसमें कई पांच लाख गृहस्थ थे १५२ देरासर १००० साधु [illegible] थे [illegible] साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिकाओं की परामणी दी आपने और भी जैन धर्म के [illegible] और [illegible] किये थे

१७—गुणसेन—आप राजा कनकसेन के पुत्र थे आपके दो पुत्र आचार्य के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में आपने नौलक्ष द्रव्य व्यय कर जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की थी

१८—दुर्लभसेन—आप राजा गुणसेन के पुत्र थे आपके शासन समय में एक अकाल पड़ा था जिसमें आपने लाखों रूपये व्यय किये और प्रजा का पालन किया

१९—छत्रसेन—आप दुर्लभसेन के पुत्र और वीर प्रकृति के थे

२०—राजसेन—आप राजा छत्रसेन के पुत्र थे

२१—पृथुसेन—आप राजा राजसेन के पुत्र थे

२२—अजितसेन—आप राजा पृथुसेन के पुत्र थे

२३—देवसेन—(२) आप राजा अजितसेन के पुत्र थे

२४—भूलसेन—आप राजा देवसेन के पुत्र थे

२५—राव नोढा—आप राजा मूलसेन के पुत्र थे

२६—राव नोरा—आप रावनोढा के पुत्र थे

२७—रावनारायण—आप रावनोरा के पुत्र थे

२८—राव सुरजण—आप रावनारायण के पुत्र थे

मांडव्यपुर की राज वंशावली

श्रीमाल का राजकुमार उत्पलदेव ने उपकेशपुर को आबाद किया था उस समय मांडव्यपुर (मंडोवर) में राव मांडा का राज था और राव मांडा ने उत्पलदेव को आपकी पुत्री परणाई थी जिससे उसके आपस में सम्बन्ध होगया था राव मांडा ने उत्पलदेव को अच्छी मदद दी और कुछ भूमि भी दी थी जिससे राव उत्पलदेव अपना नया राज जमाने में अच्छी सफलता प्राप्त करली थी मांडव्यपुर के राजघराना पर भी आचार्य रत्नप्रभसूरि का अच्छा प्रभाव पड़ा था उस समय की जनता एक ओर तो वाममार्गियों के अत्याचारों से त्रसित थी दूसरी ओर ऊँच नीच के जहरीले भेद भावों से घृणा करती थी उस समय जैनाचार्यों का उपदेश ने उन पर जल्दी से प्रभाव डाल दिया था कुछ एक दूसरों के सम्बन्ध का भी कारण हुआ करता है कुछ भी हो पर उस समय जैन धर्म का प्रभाव जनता पर जबरदस्त पड़ा था।

१—राव मांडो—इसने मांडव्यपुर में सब से पहला भ० महावीर का मन्दिर बनाया।

२—मुद्द—इसने शत्रुंजयादि तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला।

३—चुरडा—

४—धरनण—इसने आचार्य के नगर प्रवेश महोत्सव में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

६—आमल्ल—यत्रार्थ तीर्थों का संघ निकाला।

७—फागु—यह जैन धर्म का प्रचार करने में तत्पर रहता था।

८—सुखदेव—इसने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला था।

९—[illegible]—इसने किला के अन्दर २ मंजिल का मंदिर बनवाया था।

१०—[illegible]—इसका मंत्री मंत्रि रायमल था वह बड़ा ही वीर था।

११—हाना—इसके शासन में एक श्रमण सभा हुई थी।
१२—करणदेव—इसने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया था।
१३—महीपाल—इसने दुकाल में पुष्कल द्रव्य व्यय कर शत्रुकार दिया था।
१४—दे दो—इसने तीर्थों का संघ निकाल यात्रा की थी।
१५—कानड़—इसने सूरिजी के प्रवेश महोत्सव में नौ लाख द्रव्य खर्च किया।
१६ -लाखो—राव लाखा के पुत्र पुनड़ ने बड़े ही समारोह से दीक्षा ली थी।
१७—धुहड़—इसने बारह व्रत एवं चतुर्थ व्रत ग्रहण किया था।
१८—राजल—राव राजल बड़ा ही वीर शासक था।
१९—मुकन्द—इसने जैन धर्म की अच्छी प्रभावना की थी।

भीन्नमाल के राजाओं की वंशावली

१—राजा जयसेन—स्वयं प्रभसूरि के उपदेश से जैन बना।
२—राजा भीमसेन - ब्राह्मणों का पक्षकार वाममार्गी रहा।
३—अजितसेन—(युवराजपद के समय इसका नाम श्री पूँज था)
४—शत्रुसेन—इसने शिव मन्दिर बनाया था।
५—कुम्भसेन—यह जैन श्रमणों से द्वेष रखता था।
६—शिवसेन—इसने एक वृहद् यज्ञ करवाया था।
७—पृथुसेन—इसके शासन में जैन और ब्राह्मणों के बीच शास्त्रार्थ हुआ था।
८— गंगसेन—इसने आचार्य के उपदेश से जैन धर्म स्वीकार किया।
९—रणमह—इसने शत्रुंजय का संघ निकाला।
१०—जगमाल - इसने श्रीमाल में भ० महावीर का मन्दिर बनाया।
११—सारंगदेव—इसने पुनः ब्राह्मणों को स्थान दिया था।
१२—चणोट—यह राजा कट्टर जैनधर्मी था और जैन धर्म का खूब प्रचार किया।
१३—जोगड़—इसने तीर्थों का विराट संघ निकाला।
१४—कानड़—इसके शासन में विदेशियों का हमला श्रीमालपुर पर हुए
१५—रावल—इसने भ० महावीर का मन्दिर बनाया
१६—दोरव इसने आबुदाचल का संघ निकाल यात्रा की थी
१७—अजितदेव—इनके समय चन्द्रावती के राजा [illegible] के साथ लड़ाई हुई
१८—[illegible]—यह बड़ा ही वीर राजा था और जैनधर्म का कट्टर अनुयायी था
१९—मालदेव— . ...
२०—भीमदेव—
२१—डुंगार—इसके समय तुर्कों ने भीनमाल पर आक्रमण कर राज छीन लिया बाद [illegible] ने
राज लिया—

विजय पट्टण के राजाओं की वंशावली

राव उत्पलदेव के पांच पुत्रों से विजयराव ने उपकेशपुर से कई ४० मील की दूरी पर रेगिस्तान भूमि में एक नूतन नगर आबाद किया जिसका नाम विजय नगर रक्खा था जब नगर अच्छा आबाद हो गया और व्यापार की एक खासी मंडी बन गई तब लोग उसे विजयपट्टन के नाम से पुकारने लग गये।

१ विजयराव यह महाराजा उत्पलदेव का पुत्र था और इसने ही विजयनगर को आबाद किया था पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और अपने पिता की तरह जैन धर्म का काफी प्रचार कराया।

२—राव सुरजण—आप विजयराव के पुत्र और बड़े ही वीर राजा हुए आपने राज्य की सीमा रेगिस्तान की ओर खूब बढ़ाई थी आप जैनधर्म के प्रचार में जैन श्रमणों के हाथ बटाये तथा श्री शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ भी निकाला था।

३—राव कुम्भा—आप नं० २ के पुत्र थे आपकी वीरता के सामने अन्य लोग घबराते थे।

४—राव मांडो—आप नं ३ के पुत्र थे आप बड़े ही धर्मात्मा थे कई बार तीर्थ की यात्रा कर आप अपने को पवित्र हुए समझते थे।

५—राव दाहड़—आप नं० ४ के पुत्र थे

६—राव कल्हण—आप नं० ५ के लघु भ्राता थे

७—राव जल्हण—आप नं० के ६ पुत्र थे

८—राव देवो—आप नं० ७ के पुत्र थे

९—राव वसुराव—आप नं० ८ के पुत्र थे आपके पुत्र न होने से धर्म की ओर अधिक लक्ष दिया करते थे आपने श्री शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा में पुष्कल द्रव्य शुभ क्षेत्र में व्यय किया था राव वसु का देहान्त होने के बाद विजयपट्टन का राज उपकेशपुर के श्री रत्नसी ने छीन कर उपकेशपुर के अन्दर मिला लिया अतः उस समय से विजय पट्टन का राज उपकेशपुर के अन्तर्गत समझा जाने लगा।

शंखपुर नगर के राजाओं की वंशावली

शंखपुर नगर राव उत्पल देव के पुत्र शंख ने आबाद किया था वंशावलियों में इस नगर का नाम शंखपुर लिखा है वर्त्तमान में शंखवाय कहा जाता है राव शंख ने नगर के साथ भ. पार्श्वनाथ का मन्दिर भी बनाया था पहले जमाना में यह तो एक पद्धति ही बन चुकी थी कि नया नगर बसावे तो पहला देव स्थान तथा नया मकान बना वे तो प्रायः पहला घरमन्दिर तथा जहाँ अजैनी को उपदेश देकर जैन बनाया वहाँ भी जैन मन्दिर तत्काल ही बना दिया जाता था कारण मन्दिर एक धर्म का स्तंभ है इस निमित्त कारण से आत्मा में हमेशा धर्म की भावना बनी रहती है अतः राव उत्पलदेव का पुत्र नया नगर आबाद करे वहाँ मन्दिर का निर्माण करावे इसमें ऐसी कोई विशेषता की बात नहीं कही जा सकती है शंखपुर राजाओं की नामावली वंशावलियों में निम्नलिखित दी है।

१—शंख राव इसने शंखपुर में पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया।

२—जोगड़ इसने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला।

३—नारो—यह बड़ा ही वीर राजा था।

विजय पट्टन का राजवंश

४—पुनड़—इसके पुत्र रामाने जैन दीक्षाली थी।
५—धुवड़— इसने अपने राज में अमर पड़हा की उद्घोषणा की।
६—शाहड़—... ....
७—कानड—इसने शत्रुंजय पर मन्दिर बनाया।
८—कक्क— इसने शंखपुर मे महावीर का मन्दिर बनाया।
९—जहेल—यह बडा ही वीर राजा हुआ था।
१०—नाहड (२) यह राजा विलासी था।

राव नाहड का राजा उपकेशपुर का राव रत्नसी ने छीन कर उसक ो उपकेशपुर की सीमा में मिला लिया उस समय से ही शखपुर के राज की गणना उपकेशपुर में होने लगी—उपकेशपुर का राव रत्नसी बड़ा ही वीर राजा हुआ और वह था भी बडा ही विचार दक्ष उसने यह सोचा होगा कि इस समय विदेशियां के आक्रमण भारतपर हुआ करते है अतः आपस में भिन्न भिन्न शक्तियों को एकत्र कर अपना संगठन बल मजबूत करने की आवश्यकता है।

वीरपुर के राजाओं की वंशावली—

विक्रम की दूसरी शताब्दी में आचार्य रत्नप्रभसूरि (सोलहवें पट्टधर) ने वीरपुर में पदार्पण कर वाम मार्गियों के साथ राज सभा में शास्त्रार्थ करके उनको पराजय कर वहाँ के राजा वीरधवल राजपुत्र वीरसेनादि राजा प्रजा को जैन धर्म की दीक्षा दी थी इस शुभ कार्य मे विशेष निमित कारण उपकेशपुर की राज कन्या सोनलदेवी का ही था उसने पहले से ही क्षेत्र साफ कर रखा था कि आचार्यश्री का धर्म बीज तत्काल फल दात बन गया इतना ही क्यों पर राजपुत्र वीरसेन अपने कुटुम्ब के साथ सूरीश्वरजी के चरणार्विन्द में जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी राजाओ की नामावली—

१ राजा वीरधवल—आपके बड़े पुत्र वीरसेन ने जैन दीक्षा ली थी
२ देवसेन—इसने वीरपुर मे जैन मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई थी
३ केतुसेन—इसके पुत्र हालु ने मुनि वीरसेन के पास दीक्षा ली थी
४ रायसेन—इसने तीर्थों का सघ निकाला था
५ धर्मसेन—इसने वीरपुर में महावीर का मन्दिर बनवाया था
६ दुर्लभसेन—दुर्लभसेन-ब्राह्मणों का परिचय से जैन धर्म को छोड़ वाममार्गियों के पक्ष में हो गया था यह भी यहां तक कि बिना ही कारण जैनो को तकलीफ देने में तत्पर हो गया जब इस बात का पता उपकेशपुर के नरेश को मिला तो उसने तत्काल ही वीरपुर पर चढ़ाई कर दी और युद्ध कर राव दुर्लभ को पकड़ कर उपकेशपुर ले आया और वीरपुर पर अपनी हुकूमत कायम कर दी

नागपुर के राजाओं की—वंशावली

नागपुर—जिसको आज नागोर कहते हैं मरुधर प्रदेश में एक [illegible] नगर था इस नगर को उपकेशपुर के राजा के सेनापति [illegible] ने [illegible] किया था [illegible]—[illegible] नाग की सन्तान परम्परा में [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible]—

नागपुर का राजवंश

सीस के तौर पर दिया था और उसने देवी सच्चायिका की सहायता से इस नगर का निर्माण किया था जिसके लिये वंशावलियों में विस्तार से लिखा है इसका समय विक्रम की पहली शताब्दि का है। आदित्यनाग के जैन धर्मी होने के बाद ४१३ वर्ष में तेरहवीं पुश्त में शिवनाग हुए। शिवनाग की वंश परम्परा १२ पुश्त तक नागपुर में राज किया था जिन्होंकी नामावली इस प्रकार है--

१ शिवनाग- इसने नागपुर आबाद किया और भगवान महावीर का मन्दिर बना कर आचार्य कक्क सूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई।

२ भोजनाग - इसने तीर्थों की यात्रार्थ नागपुर से संघ निकाला।

३ वभूनाग—यह बड़ा ही वीर शासक हुए और धर्म का भी प्रचारक था।

४ सत्यनाग—आचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि के स्वागत में एक लक्ष्य द्रव्य व्यय किया था।

५ सहसनाग—इसने भ० आदीश्वर का मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई।

६ भूलनाग—यह बडा ही युद्ध कुशल राजा था इसने अपनी राज सीमा को थली में बहुत बढ़ाई।

७ अरुणनाग—इसने श्री शत्रुँजय का संघ निकला।

८ भोलानाग—इसके शासन में एक श्रमण सभा हुई।

९ केतुनाग—इसके ११ पुत्र थे जिसमें हल्ला ने सूरिजी के चरणों में दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष्य द्रव्य व्यव हुए।

१० दाहडनाग—इसने श्री शत्रुँजयादि तीर्थ की यात्रा की।

११ मागुं इसकी-राणी छोगाइ ने एक तलाब खुदाया था।

१२ शिवनाग (२)—यह राजा विलासी था राज की अपेक्षा भोग विलास में मग्न रहता था और जनता को बडी त्रास देता था अतः उपकेशपुर के राव मूलदेव ने इस पर चढ़ाई कर शिवनाग को पराजय कर नागपुर का राज अपने राज में मिला लिया तब से नागपुर उपकेशपुर के अधिकार में आगया नागपुर में आदित्यनाग गौत्र वालों की बहुत विशाल संख्या थी कहते हैं कि-

नागवंशी ने नगर वसाया, देवी साचल आशी
आधा में आदित्यनाग, आधा में पुरवासी।

नागपुर की हकीकत में अधिक आदित्यनाग वंशियों की ही मिलती है चोरडिया गुलेच्छा गदइया पारख वह सब आदित्यनाग वंश की शाखाएँ हैं पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी नागपुर में आदित्यनाग-चोरडियों के तीन चार हजार घर बड़े ही समृद्ध थे ऐसा वंशावलियों में पाया जाता है

इनके अलावा सिंध में राव रुद्राट् व उसके पुत्र कक्क ने आचार्य यक्षदेव सूरि के पास दीक्षा ली और उनके उत्तराधिकारियों ने भी कई पुश्त तक जैन धर्म का वीरता पूर्वक पालन किया तथा कच्छ भद्रावती नगरी के राजपुत्र देवगुप्त ने आचार्य कक्कसूरि के पास जैन दीक्षा ली थी और भद्रावती का राजघराना जैन धर्म को स्वीकार कर उसका ही प्रचार किया था तथा उस समय के और भी अनेक राजाओं ने जैन धर्म को स्वीकार कर उसका ही पालन एवं प्रचार किया था इतना ही क्यों पर उस समय भारत में पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक जैन धर्म का काफी प्रचार था।

नागपुर का

सिक्का-प्रकरण

जब से अंग्रेज सरकार के पुरात्व विभाग द्वारा शोध खोज एवं खुदाई का कार्य प्रारम्भ हुआ तब से ही भूगर्भ में रहे हुए भारतीय बहुमूल्य साधन एवं विपुल सामग्री उपलब्ध होने लगी हैं जिसमे प्राचीन मन्दिर मूर्त्तियों स्तूप स्तम्भ शिलालेख आज्ञालेख खण्डगलेख ताम्रपत्र दानपत्र और प्राचीन सिक्के मुख्य माने जाते हैं और इतिहास के लिये तो ये अपूर्व साधन समझे जाते हैं इन साधनों द्वारा प्राचीन समय की राजनैतिक सामाजिक धार्मिक एवं राष्ट्रीय तथा उस समय के रीति रिवाज हुन्नरोद्योग शिल्प वगैरह २ और किस किस राष्ट्रीय का पतन एवं उत्थान का पत्ता हम सहज ही लगा सकते है इन साधनों के अभाव कई कई देशों के राजाओं का नाम निशान तक भी हम नहीं जान सकते थे हम यह भी नहीं जानते थे कि कौन कौन जाति या बाहर से आकर अपनी राजसत्ता जमा कर राज किया था। पर उपरोक्त साधनों के आधार पर विद्वानों ने अनेक वंशों के राजाओं के इतिहास की इमारतें खड़ी करदी है। फिर भी वे साधन पर्याप्त न होने के कारण विद्वानों ने अपना अनुभव एवं कई प्रकार के अनुमानो का मिश्रण करके इतिहास लिखकर जनता के सामने रक्खा है हाँ उन विद्वान लेखको के आपस में कहीं कहीं मतभेद भी दृष्टि गोचर होता है इसका मुख्य कारण साधनों की त्रुटी ही समझना चाहिये कारण इतना स्वल्प साधनो पर प्राचीन समय का इतिहास लिखना कोई साधारण बात नहीं है खैर विद्वानों के आपस में कितना ही मतभेद हो पर हमारे लिये तो उन्हीं का लिखा इतिहास एक पथ प्रदर्शक एवं महान् उपकारिक ही है जिसका हम हार्दिक स्वागत करते हैं।

उपरोक्त प्राचीन साधनों के अन्दर से हम यहाँ पर प्राचीन सिक्कों के विषय ही कुछ लिखना चाहते हैं जो इतिहास के लिये परमोपयोगी साधन समझा जाता है। प्रथम तो यह कहा जाता है कि सिक्काओं की उत्पत्ति कब से हुई ? इस विषय में विद्वानो का मत है कि सिक्काओं की शुरूआत शिशुनाग-वंशी सम्राट् बिंबसार के शासन समय में हुई थी और इस मान्यता की साबूति के लिये यह भी कहा जाता है कि भारत के चारों ओर की शोध खोज करने पर हजारो सिक्के मिले हैं जिनमें इ० स० की छट्ठी शताब्दी के पूर्व का एक भी सिक्का नहीं मिला है अतः अनुमान करनेवालो को कारण मिलता है कि सिक्का की शुरूआत इ० सं० पूर्व की छटी शताब्दी में ही हुई हो साथ में यह भी कहा जाता है कि सम्राट् बिंबसार ने अपने शासन मे व्यापार की सुविधा के लिये पृथक २ व्यापार की श्रेणियां बना दी थी—जैसे-वणिक, सुनार, लुहार, सुथार, ठठेरा, दर्जी, बनकर तेली, तबोली, नाई गान्धी वगैरह २ वे श्रेणियां अपना अपना कार्य किया करें इस प्रकार श्रेणियां बनाने के कारण ही राजा बिंबसार का अपर नाम श्रेणिक पड़ गया था और जैनशास्त्रों में तो विशेष इस नाम का ही प्रयोग हुआ दृष्टिगोचर होता है कई पाश्चात्य विद्वानो का भी यही मत है कि सबसे पहले सिक्का व्यापारियो ने अपने व्यापार की सुविधा के लिये ही बनाये थे बाद में जब सिक्काओं का प्रचार बढ़ने लगा तब उस पर राजा ने अपनी मुद्रा [illegible]

* Well in those early times [illegible] the ox or cow should be employed for this purpose, In [illegible] India, the cow stood as the [illegible] unit of Barter [illegible]

खैर ! यह मान लिया जाय कि सिक्काओं का बनाना सम्राट् श्रेणिक के समय से ही प्रारम्भ हुआ था पर एक सवाल यह पैदा होगा कि उस समय के पूर्व वाणिज्य व्यापार तथा माल का लेना बेचना कैसे होता था तथा शास्त्रों में यह भी कहा जाता है कि अमुक सेठ दश करोड़ की अमुक ५० करोड़ की आसामी था सिक्का बिना यह गिनती कैसे लगाई गई होगी ? इसके लिये कहा जाता है कि सामान माल का लेन देन तो माल के बदले माल ही दिया जाता था जैसे धान देकर गुड़ लेना घृत देकर कपड़ा लेना तथा गाय बछड़ा देकर माल लेना और विशेष व्यापार तथा दूर दूर देशों में थोक बद्ध माल बेचना उसके लिये तेजमतुरी तथा रत्न मोतियों से भी व्यापार किया जाता था और उस सोना रत्न माणक मोतियों की बजाय से अनुमान किया जाता था कि इस व्यक्ति के पास इतना द्रव्य है और आज भी जहाँ पाश्चात्य विद्या का अधिक प्रचार नहीं है वहाँ के किसान लोग धान गाय बछड़ा देकर माल खरीद किया करते हैं तथा जैन शास्त्रों में धन्ना सेठ जावड़शाह जगडुशाह सज्जन पेथा वगैरह बहुत व्यापारियों के वर्णन में तेजमतुरी का उल्लेख मिलता है कि वे तेजमतुरी देकर लाखों का माल खरीद किया था। इससे पाया जाता है कि सिक्का का चलन सम्राट् श्रेणिक के शासन में ही प्रारम्भ हुआ होगा। दूसरा अभी थोड़े समय में सिन्ध एवं पंजाब देश के बीच में भूगर्भ से दो नगर निकले हैं वे नगर इ० सं० पूर्व कई पांच हजार वर्ष जितने प्राचीन होने बतलाये जाते हैं उन नगरों के अन्दर बहुत प्राचीन पदार्थ निकले हैं पर प्राचीन एक भी सिक्का नहीं निकला यदि प्राचीन काल में सिक्का का चलन होता तो थोड़ी बहुत संख्या में सिक्के अवश्य मिलते ? जब तक कोई प्राचीन सिक्का नहीं मिल जाय तब तक तो विद्वानों की यही धारणा है कि सिक्काओं की शुरुआत इ० सं० पूर्व छटी शताब्दी में हुई थी फिर भी अनुमान वाला निश्चयात्मिक नहीं कह सकता है

वर्तमान में जितने सिक्के मिल हैं वे तीन प्रकार के हैं १—धातु के काटे हुए टुकड़े जिस पर ऐरन और हथोड़ा से सिक्का की छाप पड़ी हुई २—धातु को गाल कर भूमि पर छोटे-छोटे सिक्काकार खाड़ा कर उसमें गाला हुआ धातुरस ढाल कर सिक्का बनाना ३—टकसाल के जरिये सिक्का पड़ना। इन तीन प्रकार के सिक्कों में पहला धातु के काटे हुए टुकड़ों को ऐरन हथोड़ा से छाप लगाना सम्राट बिंबसार के समय के तथा धातु का रस बना कर भूमि पर डाल कर सिक्का बनाना नंदवंश१ एवं मौर्यवंश के राजाओं के समय के हैं और सम्राट सम्प्रति के समय सम्राट ने टंकसालों का निर्माण कर उन टकसालों द्वारा सिक्के पाडे गये थे तथा राजा संप्रति के समय के बाद भी जहां पर टकसालें स्थापित नहीं हुई थी वहां पर ढाल में सिक्के ही पड़ाये जाते थे। वर्तमान में मिले हुए सिक्काओं में कई सिक्के तो ऐसे हैं कि जिसके एक ओर छाप है और दूसरी ओर साफ चौपटे हैं वे सिक्के सम्राट् श्रेणिक के समय के हैं कारण ऐरन हथोड़ा से सिक्के पाडने में एक ही ओर छाप पड़ सकती है दूसरी ओर साफ ही रहते हैं। कई

the lower end of the scale, for smaller purchases stood another unit, which too Various forms among different peoples. Shells, beads, knives and where the metals were discovered. Bars of Copper and iron".

(See the Book of "Coins of India" of "the Heritage of India Series" written by C. J. Brown M. A. Printed in 1922, P. 13)

કોશાંબી (ચાલુ)
અવંતિ
૨૧
૨૨
૨૩
૨૪
૨૫
૨૬
૨૭
૨૮
૩૧
૩૨
૩૦
૩૩
૩૪
અવંતિપતિ-ક્ષહરાટ
૩૫
૩૬
૩૭
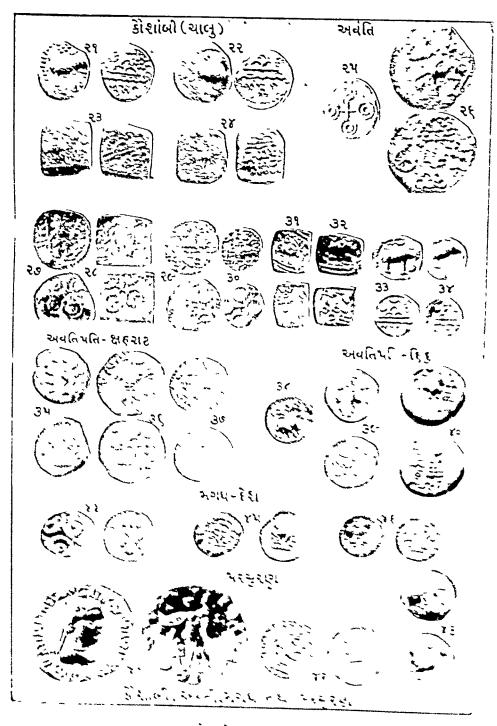
सिक्के ऐसे भी है कि दो सिक्के साथ में जुड़े हुए हैं वे ढाल मे सिक्के हैं कारण जिस भूमि पर धातु रस ढाले थे उस भूमि में दो सिक्कों के बीच जो थोड़ी सी भूमि रखी गई थी उस भूमि में थोथी—खालसी जमीन रह गई हो कि वे दो सिक्के साथ में ढल गये और साथ मे ही रह गये शेष सिक्के दोनो ओर छाप खुदी हुई और एक-एक जुदा २ है जिसमे टंकसालों और ढाल में दोनों प्रकार के सिक्के हैं।

प्राप्त हुए सिक्काओं पर चिन्ह के लिए शायद उस जमाने में आत्माश्लाघा के भय से अपना नाम नहीं खुदवाते होंगे ? यही कारण है कि अधिक सिक्काओ पर नरेशों का नाम एवं संवत् नही पाया जाता है पर उन सिक्काओ पर राजाओ के वंश या धर्म के चिन्ह खुदवाये जाते थे शायद वे लोग अपने नाम की वजाय वंश एवं धर्म का ही अधिक गौरव समझते थे। उदाहरण के तौर पर कतिपय नरेशो के सिक्काओं पर अंकित किये जाने वाले चिन्हों का उल्लेख कर दिया जाता है कि जिससे यह सुविधा हो जायगी कि अमुक चिन्ह वाला सिक्का अमुक देश एवं अमुक वंश के राजाओं का चलाया हुआ सिक्का है तथा वे राजा किस धर्म की आराधना करने वाले थे।

१ शिशु नागवंशी राजाओं का चिन्ह नाग (सर्प) था तथा नन्दवंशी राजा भी शिशुनाग वंश की एक छोटी शाखा होने से उनका चिन्ह भी नाग का ही था विशेष इतना ही था कि शिशुनाग वंश बड़ी शाखा होने से बड़ा नाग अथवा दो सर्प और नन्दवंशी लघु शाखा होने से छोटा नाग तथा एक नाग का चिन्ह खुदाते थे। इन दोनों शाखाओं के सिक्के मिल गये और उनके ऊपर बतलाये हुए चिन्ह भी हैं।

२—मौर्यवंश के राजाओं के सिक्कों पर वीरता सूचक अश्व तथा अश्व पे मयूर की कलंगी का भी चिन्ह होता था।

३—सम्राट् सम्प्रति था तो मौर्यवंशी पर आपकी माता को हस्ती का स्वप्न आया था अतः सम्राट् ने अपना चिन्ह हस्ती का रखा और ऐसे बहुत से सिक्के मिल भी गये है।

४ तक्षशिल के राजाओ का चिन्ह धर्म चक्र का था ऐसे भी सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

५ अंगदेश के नरेशो का चिन्ह स्वास्तिक का था।

६ वत्सदेश के राजाओ का चिन्ह छोटा बछड़ा का था।

७ आवंति उज्जैन नगरी के भूपतियो के सिक्के पर एक चिन्ह नहीं कारण इस देश पर अनेक नरेशों ने राज किया और वे अपने अपने चिन्ह खुदाते थे तथापि राजा चष्टन [illegible] के सिक्काओं पर

तलवार का चिन्ह कहा जाता है जो वीरता का चिन्ह था ।

८　कोशल देश के राजाओं का चिन्ह वृषभ तथा ताड़वृक्ष का था ।

९　पंचाल देश के नरेशों का चिन्ह एक देह के पांच मस्तक कारण इस देश में राज कन्या द्रौपदी ने पांच पाण्डवों को वर किये थे ।

१०　आयुद्धक देश के राजाओं का चिन्ह शूरवीर का था ।

११　गर्दभ भीलवंशी का चिन्ह गर्दभी का जो उनको विद्यासिद्ध थी ।

१२　चष्टानवंशी राजाओं का चिन्ह चैत्य सूर्य चन्द्र या उनके नाम

१३　कुशान वंशी नरेशों का चिन्ह चैत्य या हस्ती सिंह का था ।

१४　गुप्तवंशी राजाओं का चिन्ह स्वस्तिक एवं चैत्य का था ।

१५　आंध्रवंशी नरेशों का चिन्ह तीर कमांण का था ।

इनके अलावा छोटे बड़े राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर संकेतिक तथा अपने अपने धर्म का चिन्ह खुदाया करते थे । इससे पाया जाता है कि उस समय के राजाओं को अपने नाम की अपेक्षा अपने धर्म का गौरव विशेष था । जब हम जैनधर्म का इतिहास का अवलोकन करते हैं तो ई० सं० की छठी शताब्दी से ई० सं० की तीसरी चतुर्थी शताब्दी तक थोड़ा सा अपवाद छोड़ के सब के सब राजा जैन धर्म पालन करने वाले ही दृष्टि गोचर होते हैं । और उन नरेशों ने अपने २ सिक्काओं पर जो चिन्ह खुदाये हैं वे सब जैन धर्म से ही सम्बन्ध रखते हैं जैन धर्म के मुख्य चिन्हों के लिये कहा जाय तो वर्तमान का पेक्षा चौवीस तीर्थङ्कर हुए उन तीर्थङ्करों की जंघा पर एक एक शुभ लक्षण होता है जिसको लंछन एवं चिन्ह कहा जाता है और वर्तमान में जैनों की मूर्तियों भी पर वे ही चिन्ह अंकित हैं जैसे तीर्थङ्करों के क्रमशः १ वृषभ २ हस्ती ३ अश्वर ४ वंदर ५ क्रौंच पाक्षी ६ पद्मकमल ७ स्वस्तिक ८ चन्द्र ९ मगर १० कल्प ११ गैंडा १२ भैंसा १० वराह १४ सिंचानक १५ वज्र १६ मृग १७ बकरा १८ नन्दावर्तन १९ कलस २० काछप २१ कमल २२ शङ्ख २३ सर्प २४ सिंह जिसमें वृषभ हस्ती अश्व स्वस्तिक नाग और सिंह बहुत प्रसिद्ध हैं इनके अलावा तीर्थकरदेव की माता को गर्भ समय चौदह स्वप्न के दर्शन भी होते हैं जैसे — वृषभ, सिंह, हस्ती, पुष्पमाल, लक्ष्मीदेवी, सूर्य, चन्द्र, ध्वज, कलस पद्मसरोवर विमान क्षीरसमुद्र रत्नों की राशी और निर्धूम अग्नि । अतः जैनधर्म के भक्त राजा उपरोक्त चिन्हों से यथा रुची कोई भी चिन्ह अपने सिक्काओं पर अंकित करवा सकते थे और ऐसा ही उन्होंने किया है ।

वर्तमान समय जितने सिक्के मिले हैं उनमें से बहुत से सिक्काओं पर ऊपर बतलाये हुए चिन्ह विद्यमान हैं इससे पाया जाता है कि वे नरेश प्रायः जैनधर्म के ही उपासक थे और अपने धर्म गौरव के कारण ही अपने सिक्कों पर धर्म की पहचान के लिये वे चिन्ह खुदाये गए थे । पर दुःख है कि कई विद्वानों ने कई सिक्काओं को बौद्ध धर्मोपासक नरेशों का लिख दिये । इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने जैनधर्म के साहित्य का पूर्णतय अध्ययन नहीं किया था । पर बाद में जब उन विद्वानों ने जैनधर्म के साहित्य का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया तो उनका भ्रम कुछ अंश में दूर हो गया जैसे मथुरा का सिंह स्तम्भ को पहले कई पाश्चात्य विद्वानों ने बौद्धधर्म का ठहरा दिया था पर बाद में उसको जैनधर्म का साबित कर दिया । [illegible]

तीर्थंकरों के [illegible]

प्रकार अनेक गलतियां रह गई हैं जिसको मैं यहां पर युक्ति एवं प्रमाणों द्वारा साबित कर बतलाऊंगा कि वे निर्पक्ष विद्वान किस कारण से भ्रांति में पड़ कर जैनों के लिये इस प्रकार अन्याय किया होगा ?

भारतीय धर्मों में केवल दो धर्म ही प्राचीन माने जाते हैं १—जैनधर्म २ वेदान्तिक धर्म। और ई० सं० पूर्व छटी शताब्दी में एक धर्म और उत्पन्न हुआ जिसका न'म बौद्धधर्म था जिसके जन्मदाता थे महात्मा बुद्ध। इन तीनों धर्मों में जैन और बौद्ध धर्म के आपस में तात्विक दृष्टि से तो बहुत अन्तर है पर बाह्य रूप से इन दोनों धर्म का उपदेश मिलता जुलता ही था इन दोनों धर्म के महात्माओं ने यज्ञ में दी जाने वाली पशु बली का खूब जोरों से विरोध किया था इतना ही क्यों पर उन दोनों महापुरुषों ने यज्ञ जैसी कुप्रथा को जड़ामूल से उखेड़ देने के लिये भागीरथ परिश्रम किया था और उसमें उनको सफलता भी अच्छी मिली थी यही कारण है कि उन महापुरुषों ने भारत के चारों ओर अहिंसा परमोधर्मः का खूब प्रचार किया अतः वेदान्तिक मत वाले इन दोनों धर्मों जैन-बौद्ध को नास्तिक कह कर पुकारते थे इतना ही क्यों पर उन ब्राह्मणों ने अपने धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर जैन और बौद्धों को नास्तिक होना भी लिख दिया और अपने धर्मानुयायियों को तो यहां तक आदेश दे दिया कि जहां जहां धर्म का प्रबल्यता है वहाँ ब्राह्मणों को सिवाय यात्रा के जाना ही नहीं चाहिये देखो 'प्रबन्ध चन्द्रोदय का ८७ वाँ श्लोक की उसमें स्पष्ट लिखा है कि अंग बंग कलिंग सौराष्ट्र एवं मगद देश में जाने वाला ब्राह्मण को प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना होगा। पद्म पुराण में लिखा है कि कलिंग में जाने वाले ब्राह्मणों को पतित समझा जायगा। महाभारत का अनुशासन पर्व में गुजर्र (सौराष्ट्र) प्रान्तों को म्लेच्छों का निवास स्थान बतलाया है इत्यादि। इससे पाया जाता है कि इन देशों में जैन राजाओं का राज एवं जैन धर्म की ही प्रबल्यता थी। दूसरा यह भी कारण था कि ब्राह्मणों ने वर्ण जाति उपजाति आदि उच्च नीच की ऐसी बड़ा बन्दी [illegible] रक्खी थी जिसमें बिचारे शूद्रों की तो घास फूस जितनी भी कीमत नहीं थी धर्म शास्त्र सुनने का तो उनको [illegible] में अधिकार ही नहीं था यदि कभी भूल चूक के भी धर्म शास्त्र सुनले तो उनको [illegible] दिया जाता था और इन बातों का केवल जबानी जमा खर्च ही नहीं रखा था पर सत्ताधारी ब्राह्मणों ने अपने धार्मिक ग्रन्थ में भी लिख दिया था देखिये नमूना।

"अथ हास्य वेदमुप शृण्व तस्त्र पुजतुभ्यां श्रोतप्रति पुरण मुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे भेदः

"गौतम धर्म सूत्र १२४

अर्थात् वेद सुनने वाले शूद्र के कानों में सीसा और लाख भर दिये जाय, तथा वेद का उच्चारण करने वाले शूद्र की जबान काट ली जाय और वेदों को याद करने एवं सुनने वाला शूद्र का शरीर [illegible] दिया जाय।

न शूद्राय मति दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्, न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य [illegible]। [illegible]

[illegible] धर्म सूत्र

अर्थात् शूद्र को बुद्धि न दे उसे यज्ञ का प्रसाद न दे और उसे धर्म तथा [illegible] का उपदेश [illegible] न दे;

इससे क्या अधिक [illegible] हो सकती है इसका अर्थ यह हुआ कि बिचारे शूद्र लोग मनुष्य जन्म लेकर भी अपनी आत्मा का थोड़ा भी विकास नहीं कर सके ? परन्तु [illegible]

महात्मा बुद्ध का कि उन्होंने उच्च नीच वर्ण जातिओं उपजातियों का फैला हुआ विष वृक्ष को जड़ा मूल से उखेड़ कर फेंक दिया और धर्म मोक्ष के लिये सबको सम भावी बनाकर सबके लिये धर्म का द्वार खोल दिया । यह केवल कहने मात्र की ही बात नहीं थी पर उन महात्माओं का प्रभाव उनके भक्तों पर इतना जल्दी एवं जबर्दस्त पड़ा कि सम्राट् श्रेणिक ने अपनी शादी एक वैश्य कन्या के साथ की तथा अपनी एक पुत्री को वैश्य के साथ एव दूसरी पुत्री को शूद्र के साथ परणा दी यह प्रथा केवल राजा श्रेणिक के समय प्रचलित होकर बन्ध नहीं हो गई पर बाद में भी जैनों ने खूब जोर से जहारी रक्खी थी जैसे दूसरा नंदी राजा ने दो शूद्र कन्या के साथ विवाह किया, मौर्य चन्द्रगुप्त ने यूनानी बादशाह की कन्या के साथ शादी की सम्राट् अशोक विदशा नगरी के वैश्य कन्या से विवाह किया आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के क्षत्रियों और ब्राह्मणों को प्रतिबोध कर जैन बनाये उन्होंने भी ब्राह्मणों की अनुचित साता को उन्मूलन कर सबको समभावी बना दिये इसकी नींव डालने वाले भगवान महावीर ही थे और यह कार्य ब्राह्मण धर्म के खिलाफ ही थे अतः वे ब्राह्मण जैन और बौद्धों को नास्तिक माने एवं लिख दें तो इसमें आश्चर्य जैसी बात ही क्या हो सकती है उस समय एक ओर तो ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता तथा यज्ञादि क्रिया काण्ड में असंख्य मूक प्राणियों की बली से जनता त्रासित हो उठी थी तब दूसरी ओर जैन एवं बौद्धों की शान्ति एवं समभाव का उपदेश फिर तो क्या देरी थी केवल साधारण जनता ही नहीं पर बड़े बड़े राजा महाराजा भगवान् महावीर के शान्ति झंडा के नीचे आकर शान्ति का श्वास लिया जिसमें भी महात्मा बुद्ध की बजाय जनता का झुकाव महावीर की ओर अधिक रहा था इसका कारण एक तो जैन धर्म प्राचीन समय से ही चलता आया था भगवान् महावीर के पूर्व भ० पार्श्वनाथ के संतानिय केशीश्रमणाचार्य ने बहुत सा क्षेत्र साफ कर दिया था तब महात्मा बुद्ध जैन धर्म की दीक्षा छोड़ अपना नया मत निकाला था अतः जनता का सद्भाव उनकी ओर कम होना स्वाभाविक था खैर कुछ भी हो पर उस समय वेदान्दिक धर्म बहुत कमजोर हो चुका था विद्वानों का कहना है कि यदि शृंगवंशी पुष्पमित्र ने जन्म नहीं लिया होता तो संसार में वैदिक धर्म का नाम शेष ही रह जाता यही कारण है कि जितने प्राचीन स्मारक जैन एवं बौद्धों के मिलते हैं वेदान्तियों के नहीं मिलते हैं ।

मेरे इस लेख का सारांश यह है कि उपरोक्त कथनानुसार ब्राह्मण धर्म वाले जैन और बौद्ध को अपने प्रतिपक्षी एक से ही समझते थे अतः उन्होंने अपने विरोध में जैन और बौद्धों को एक ही समझ कर जहाँ जैनों की घटनाए थी उन सबको बौद्धो के नाम पर चढ़ा दी अर्थात बौद्ध धर्म के पक्षपात ने जैनों की प्राचीनता को प्रकट करने से रोक दिया फल यह हुआ कि पाश्चात्य विद्वानों ने वेदान्तियों का अनुकरण कर उन्होंने भी ऐसी ही भूल कर डाली और बहुत से जैनों के स्मारक थे उनको बौद्धों के ठहरा दिये ।

अब जैन और बौद्धों के विषय में भी जरा ध्यान लगाकर देखें कि जैन एवं बौद्धों का अहिंसा के विषय में उपदेश तो मिलता जुलता ही था पर जैन जैसा अहिंसा का उपदेश देते थे वैसे ही [illegible] में पालन भी करते थे पर बौद्धों ने ऐसा नहीं किया बाद में वे अहिंसा का उपदेश करते हुए भी मांस [illegible] यही कारण है कि जिस भारत भूमि पर बुद्ध धर्म का जन्म हुआ था उस भारत [illegible] बौद्धों के [illegible] से [illegible] हाँ बौद्ध धर्म के निकम्मे गृहस्थों के सब तरह से [illegible]

उनको शीघ्र ही अपना लिया अतः पाश्चात्य देशों में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार बढ़ गया। हाँ जैन श्रमण भी पाश्चात्य देशों में अपने धर्म प्रचारार्थ सम्राट् सम्प्रति की सहायता से गये थे और अपने धर्म का प्रचार भी किया था जिसकी साबूति में आज भी वहाँ जैन धर्म के स्मारक रूप मन्दिर मूर्तियों उपलब्ध होती है पर जैन धर्म खास त्यागमय धर्म है इस धर्म के नियम बहुत शक्त होने से संसार लुब्ध जीवो से पलने कठिन है। यही कारण है कि पाश्चात्य लोग जितने बौद्ध धर्म से परिचित थे उतने जैन धर्म से नहीं थे इतना ही क्यों पर कई कई विद्वानों ने तो यहाँ तक भूल कर डाली कि जैन धर्म एक बौद्ध की शाखा है तथा जैन धर्म बौद्ध धर्म से निकला हुआ नूतन धर्म है। दूसरा पाश्चात्य विद्वानों को जितना सहित्य बौद्ध धर्म का देखने को मिला उतना जैन धर्म का नहीं मिला था अतः भारत में जितने प्राचीन स्तूप सिक्के मिले उनको बौद्धों के ही ठहरा दिया। फिर वे स्मारक चाहे बौद्धों के हों चाहे जैनों के हों। और सिक्कों पर खुदे हुए चिन्हों के लिये भी चाहे वे जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले भी क्यों न हों पर उन विद्वानों के तो पहले से ही संस्कार जमे हुए थे कि वे युक्ति संगति एवं प्रमाण मिले या न मिले। सीधा अर्थ होता हो या इधर उधर की युक्ति लगाकर ही उन सबको बौद्धों का ही ठहराने की चेष्टा १ कर डाली। एक और भी कारण मिल गया है कि ई० सं० की पांचवी शताब्दी से सातवीं आठवीं शताब्दी तक के समय में जितने चीनी यात्री भारत में आये और उन्होंने भारत में भ्रमण कर अपनी नोंध डायरी में जो हाल लिखा वे भी इसी प्रकार से काम लिया कि बहुत से जैन स्मारको को बौद्ध के लिख दिये वे पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होने से पाश्चात्य विद्वानों को ओर भी पुष्टी मिल गई। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने यह भूल जान बूझ एवं पक्षपात् से नहीं की थी पर इस भूल में अधिक कारण जैनों का ही है कि उन्होने अपने साहित्य को भंडारो की चार दीवारों में बान्ध कर रखा था कि उन विद्वानों को देखने का अवसर ही नहीं मिला बस उन्होंने जो इन्साफ दिया वह सब एक तरफी ही था—

जब से कुदरत ने अपना रुख जैनों की ओर बदला और विद्वानों की सूक्ष्म शोध (खोज) एवं जैन धर्म का प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात हुआ जिससे वे ही विद्वान लोग अपनी भूल का पश्चाताप करते हुए इस निर्णय पर आये कि जैन धर्म न तो बौद्ध धर्म से पैदा हुआ न जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा ही है प्रत्युत जैन धर्म एक स्वतंत्र एवं प्राचीन धर्म है इतना ही क्यों पर बुद्ध धर्म के पूर्व भी जैन धर्म के तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ होगये थे और महात्मा बुद्धदेव के माता पिता भ० पार्श्वनाथसंतानियों के उपासक अर्थात् जैन धर्म का पालन करते थे विशेषत. महात्मा बुद्ध को वैराग्योत्पन्न होने का कारण ही पार्श्वनाथ सन्ता-नियें थे और बुद्ध ने सबसे पहली दीक्षा जैन श्रमणों के पास ही ली थी और करीबन् ७ वर्ष उनने जैन दीक्षा पाली थी बाद जब उनका तप करने से मन हट गया तो उन्होंने अपना नया धर्म निकाला अतः बौद्ध धर्म का जन्म जैन धर्म से हुआ कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जाती है।

इधर उड़ीसा प्रान्त की खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ियों की गुफाओं का शोध कार्य करने पर महामेघ-

वाहन चक्रवर्ति महाराजा खारवेल का एक विस्तृत शिलालेख का पता लगा जिसको एक शताब्दि के पूरे परिश्रम द्वारा पढ़ा गया तो मालूम हुआ कि कलिंगपति खारवेल राजा जैन धर्मोपासक एवं प्रचारक था साथ में यह भी निर्णय होगया कि मगद के नन्दवंशी राजा भी जैन थे क्योंकि शिलालेख में ऐसा भी उल्लेख है कि मगद का राजा नन्द कलिंग देश से जिन मूर्ति लेगया था वह मूर्ति पुनः राजा खारवेल कलिंग में ले आया था आगे उसी पहाड़ी की एक गुफा में एक पत्थर पर भगवान् पार्श्वनाथ का चरित्र भी खुदा हुआ मिला जिससे यह भी सिद्ध होगया कि भ० महावीर के पूरागामी भ० पार्श्वनाथ हुए थे अतः जैन धर्म बौद्ध धर्म से बहुत प्राचीन एवं स्वतंत्र धर्म है।

अब आगे चल कर हम राजाओं की ओर देखते हैं कि ई० सं० पूर्व की छठी शताब्दि से लगाकर ई० सं० की तीसरी चतुर्थी शताब्दि तक थोड़े से अपवाद को छोड़ कर जितने राजा हुए वे सब के सब जैन धर्मी ही थे केवल अशोक बौद्ध और शुंगवंशी पुष्पमित्रादि वेदान्ती थे जब राजा जैन धर्मी थे तब उनके बनाये स्मारक एवं सिक्के दूसरे धर्म के कैसे हो सकते हैं ? विद्वानों का तो यहां तक मत है कि क्या मन्दिर मूर्त्तियाँ, क्या स्तूप-स्तम्भ और क्या सिक्के इन सब की शुरूआत जैनों की ओर से ही हुई है दूसरे धर्म वालों ने तो जैनों की देखा-देखी ही किया है। अतः उपलब्ध सिक्काओं में अधिकांश सिक्के जैन धर्मोपासक राजाओं के बनाये हुए हैं और इस बात की साबूती उन-उन सिक्काओं पर के चिन्ह ही दे रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिये कतिपय सिक्कों का ब्लॉक यहाँ पर देदिये जाते हैं जिससे जिज्ञासु पाठक ठीक निर्णय कर सकेगा।

स्तूप-प्रकरण

पिछले प्रकरण में हम सिक्काओं के विषय में संक्षिप्त से लिख आये हैं अब इस प्रकरण में प्राचीन स्तूपों के लिये उल्लेख करेंगे। पर पहले यह कह देना ठीक होगा कि—पाश्चात्य विद्वानों ने जैन साहित्य के अभाव प्राचीन सिक्काओं के निर्णय करने में भूल की थी इसी प्रकार स्तूपों के विषय भी वे सर्वथा प नहीं गये हैं और इस भूल का कारण हमें सिक्का प्रकरण में विस्तार से बतला दिया है अतः यहाँ प [illegible] विवरण करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी जमाना काम करता ही रहता है बादल कितने ही घ क्यों नहीं हो पर उसमें सूर्य छीपा नहीं रह सकता है इसी प्रकार कितनी ही कल्पना की जाय पर सत्य कदापि छीपा नहीं रह सकता है।

वर्तमान की शोध खोज मे जैसे अन्योन्य प्राचीन स्मारक उपलब्ध हुए है वैसे प्राचीन स्तूप भी मिले हैं पर पाश्चात्य विद्वानों ने उन सब स्तूपों को बौद्ध धर्म के ठहरा दिये हैं किन्तु वास्तव में अधिक स्तूप जैन धर्म के ही थे। हाँ बौद्ध धर्मियों ने भी कई स्तूपों का निर्माण करवाया था पर पाश्चात्य विद्वानों के पास जैन साहित्य का अभाव होने से उन्होंने जितने स्तूप उनकी दृष्टि में आये उन सब को ही बौद्ध धर्म के [illegible] लिख दिये। यह एक जैनों के लिये बड़ा से बड़ा अन्याय कहा जा सकता है। फिर भी हम इतना कह सकते हैं कि उन विद्वानों ने यह अन्याय जानबूझ एवं पक्षपात से नहीं किया था पर जैन धर्म के लिए जितने साधन आज उनको मिले हैं उतने उस समय नहीं मिले थे यही कारण है कि आज कई विद्वानों ने अपनी हुई भूल का पश्चात्ताप करते हैं जो जो स्तूप जैनों के हैं उनको स्वीकार भी करते हैं। पाठकों को

जानकारी के लिये एवं हिन्दी भाषा भाषियों के लिये कतिपय प्राचीन स्तूपों के लिये यहाँ पर उल्लेख कर दिया जाता है।

१—मथुरा का—सिंह स्तूप जिसको विद्वानों ने 'लाइन केपीटल पीलर' नाम से ओलखाया है पहले तो इस स्तूप को विद्वानों ने बौद्धधर्म का ठहरा दिया था पर बाद में सूक्षम दृष्टि से शोध खोज की तो उनका ध्यान जैनधर्म की ओर पहुँचा और उन्होंने यह उद्घोषना कर दी कि यह प्राचीन स्तूप जैन धर्म का है इतना ही क्यों पर विद्वानों ने यहाँ तक पता लगाया कि इस स्तूप की प्रतिष्ठा मथुरापति महाक्षत्रय राजुबाल की एक पट्टराणी ने बड़े ही समारोह से करवाइ थी और उस प्रतिष्ठा महोत्सव में क्षत्रय नहपाण और महाक्षत्रय राजा भूमक को भी आमंत्रण दिया था और उस महोत्सव में सभापति का आसन नहपाण ने ग्रहण किया था पाठक समझ सकते हैं कि यदि प्रस्तुत स्तूप बौद्धों का होता या क्षत्रय महाक्षत्रय राजा बौद्ध धर्मी होते तो जैनधर्म का इतना विशाल स्तूप बना कर वे कब प्रतिष्ठा करवाते ? अतः अब इस कथन में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता कि क्षत्रप-महाक्षत्रप वंश के राजा जैनधर्मोपासक थे और उन्होंने अपने धर्म के गौरव को बढ़ाने के लिये ही स्तूप बना कर बड़े ही महोत्सव के साथ प्रतिष्ठा करवाई थी। *

यहाँ पर मैं एक दो पाश्चात्य विद्वानों के शब्द ज्यों के त्यों उधृत कर देता हूँ।

डा—फ्लट साब ने कहा है कि

The prejudice that all stupes and stone railings, must necessarily be Buddhist has probably prevented the recognition of Jain structures as such, and up to the present only two undoubted Jain stupas have been recorded

अर्थात् समस्त स्तूप और पाषाण के कटघरे अवश्य बौद्ध ही होना चाहिये इस पक्षपात ने जैनियों द्वारा निर्मापित स्तूपों आदि को जैनों के नाम से प्रसिद्ध होने से रोका और इसलिये अब तक निःसन्देह रूप में केवल दो ही जैनस्तूपों का उल्लेख किया जा सकता है। पर मथुरा के स्तूप ने निस्सदेह इसके भ्रम को दूर कर दिया है।

स्मिथ साहब लिखते हैं।

In some cases, monument which are really Jain, have been erroneously described as Buddhist.

By Doctor p' oorer Sahib

* The Stupa was so ancient that at the time when the inscription was incised, its origin had been forgotten. On the evidence of the characters the date of the inscription may be referred with certainty to the Indo Scythian era and is equivalent to A. D 156

* The Stupa must therefore have been built several centuries before the beginning of the Christian era, for the name of its builders would assuredly have been known if it had been erected during the period when the Jains of Mathura carefully kept record of their donations" (Museum Report 18[illegible]-[illegible])

अर्थात् कहीं कहीं यथार्थ में जैन स्मारक गलती से बौद्ध वर्णन किये गये हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विद्वानों ने कई जैनों के स्मारकों को बौद्धों के ठहरा दिये गये थे पर ह लिख आये हैं कि सत्य छीपा नहीं रहता है। मथुरा में यह एक ही स्तूप जैनों का नहीं था पर जैन शा में उल्लेख मिलता है कि एक समय मथुरा में जैनों के सैंकड़ों स्तूप एवं जैन मंदिर थे और जैनाचार्य बड़े संघ लेकर मथुरा की यात्रा करते थे जैनाचार्यों ने मुथरा में कई बार चतुर्मास भी किये थे और बार वादियों से शास्त्रार्थ कर विजय भी प्राप्ति की थी। जैनों में आगम वाचना का बड़ा ही गौरव है एक वाचना मथुरा में भी हुई थी जो वर्तमान में जैनागम है वह मथुरा वाचना के नाम से खुब प्रसिद्ध जैनों के अनेक गच्छ है उसमें मथुरा गच्छ भी एक है इससे पाया जाता है कि एक समय मथुरा में जै की बहुत अच्छी आबादी थी और उस समय मथुरा एक जैनों का केन्द्र समझा जाता था वर्तमान मथु का कंकाली टीला का खुदाई काम से बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ स्तूप अयगपट्ट आदि स्मारक चिन्ह-रााडह मिले हैं अतः मथुरा से मिला हुआ प्राचीन स्तूप जैन धर्मियों के बनाया हुआ अर्थात् जैनों का गौरव प्रक करने वाला स्तूप है। मथुरा के लिये पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

२—सांचीपुर स्तूप—यह स्थान आवंती प्रान्त में आया हुआ है। आवंति (मालवा) प्रान्त विभागों में विभाजित हैं १—पूर्वावंती २—पश्चिमावंती। जिसमें पश्चिम की राजधानी उज्जैन नगरी त पूर्व की राजधानी विदिशा नगरी थी। विदिशा नगरी उस समय खूब धन्य धान्य समृद्ध एवं व्यापार मंडी गिनी जाती थी विदिशा के पास में ही सांचीपुरी आ गई है वहाँ पर जैनों के ६०-६२ स्तूप हैं जिम बड़ा मे बड़ा स्तूप ८० फिट लम्बा ७० फिट चौड़ा तथा छोटा से छोटा स्तूप ३० फिट लम्बा और २ चौड़ा इतने विशाल संख्या में एवं विशाल स्तूप होने से ही इसका नाम संचयपुरी सांचीपुर हुआ था औ एक समय इस सांचीपुरी को जैन अपना धाम तीर्थ भी मानते थे पास में ही विदिशानगरी थी और उ विदिशा नगरी में भ० महावीर के मौजूद समय की महावीर मूर्ति भी थी जिसकी यात्रार्थ साधारण जै ही नहीं पर बड़े बड़े आचार्य महाराज भी पधार कर यात्रा करते थे इस विषय के जैन शास्त्रों में यत्र त उल्लेख भी मिलते हैं एवं एक समय आर्य्य महागिरि और आर्य्य सुहस्तिसूरि विदिशा नगरी में उन स्तूप औ जिन भगवान की मूर्ति के दर्शनार्थ पधारे थे जैसे—

"दो वि जग वतिदिसं गया तत्थ जियपडिमं वंदिता, अज्ज महागिरी एलकच्छं गया, गयग्गपदय वंदिया, तस्स एलकच्छं नामं तं पुव्वं दसण्णपुरं नयर आसी, + + + ताहे दसण्ण पुरस्स एलकच्छ नामजायं तत्थ गयग्गपयगो पव्वओ + + + तत्थ महागिरी भत्तं पच्चक्खा देवतंगया + × सुहत्थी वि उज्जेणि जियपडिमं वंदिया"

"आवश्यक सूत्र चूर्णि"

इस लेख से पाया जाता है कि विदिशा एवं सांचीपुरी जैनों का एक धाम तीर्थ था। उज्जैन नगरी के पूर्व दिशा करीब ८०-९० मील के फासले पर विदिशानगरी थी और उज्जैनी नगरी से विदिशा का महत्व [illegible] यहाँ पर किसी प्रकार अधिक का यही कारण है कि सम्राट् सम्प्रति का जन्म उज्जैनी में हुआ [illegible] कुछ उज्जैन में रहकर राजतंत्र चलाया था बाद में उसने अपनी राजधानी उज्जैनी से उठा कर विदिशा [illegible]

सांचीपुर के स्तू

ले गया था और कई जैन शास्त्रो मे तो यहां तक भी लिखा मिलते है कि आचार्य सुहस्तिसूरि ने राजा सम्प्रति को जैनधर्म की दीक्षा विदिशा नगरी में ही दी थी जैसे कि —

"अण्णाय आयरिय वितिदिसं जियपडिमं वंदिया गतः तत्थ रहणुज्जाते रण्णा घरं रहवरि अंचति संपतिरण्णो अलइय गएण अज्जसुहत्थी दिट्ठों जाइसरण जातं आगच्छे पडितो पच्च-ट्ठिओ विणओणओ भणंति भयवं अहंतेहिं दिट्ठों ? सुमरह । आयरिया उवउत अमंदिठो तुमं मम सिसो आसी पूव्व भवो कहीतो आउठो धम्मं पडिवणो अतिव परप्परंणे जातो" "निशीथ चूर्णि"

इस लेख से पाया जाता है कि आचार्य सुहस्तिसूरि ने सम्राट् सम्प्रति को सबसे पहला जैनधर्म की दीक्षा विदिशा नगरी में ही दी थी। पर कई-कई स्थानों पर उज्जैनी नगरी भी लिखी मिलती है। इसका कारण यह हो सकता है कि राजा सम्प्रति का वर्णन बहुत करके उज्जैन नगरी के साथ ही आया करता है अतः लेखको ने उज्जैन नगरी का ही उल्लेख कर दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अब इस बात को देखना चाहिये कि राजा सम्प्रति उज्जैन नगरी को छोड़ अपनी राजधानी विदिशा क्यों लेगया होगा ? कारण बिना कोई खास कारण के उज्जैनी जैसी प्रसिद्ध नगरी छोड़ी नहीं जा सकती है। जिसमें भी राजा सम्प्रति का जन्म उज्जैनी में तथा उज्जैन में रहकर सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र जैसे देशों पर विजय की और भी भारत का राजतन्त्र चलाने में उज्जैन नगरी सर्व प्रकार से अनुकूल होने पर भी विदिशा नगरी में राजधानी क्यों ले गया था ? इसके लिये कोई जबरदस्त कारण अवश्य होना चाहिये ? इन सब बातों का विशेष कारण सांचीपुरी के स्तूपों का संचय एवं भ० महावीर का सिद्ध स्तूप ही हो सकता है। इस विषय में डा० त्रिभुवनदास लेहरचन्द शाह बड़ोदा वाला अपना 'प्राचीन भारत वर्ष' नामक पुस्तक में अनेक दलीलों और प्रमाण एवं युक्तियों के साथ लिखा है कि भ० महावीर का निर्वाण इसी स्थान पर हुआ था और आपके शरीर का अग्नि संस्कार के स्थान पर ही यहां भक्त भावुको ने सिद्धस्तूप बनाया था और यह स्तूप स्थल विदिशा नगरी के ठीक पास में आने से विदिशा का एक पूरा एवं खास तरीके समझा जाता था जैसे विदिशानगरी के नाम वेशनगर पुष्पपुरनाम थे वैसे ही सांचीपुर भी एक नाम था और इस धाम तीर्थ की यात्रार्थ बड़े २ जैनाचार्य यात्रार्थ आया करते थे जैसे आर्य्य महागिरी और सुहस्तीसूरि आदि थे इनके अलावा शाह यह भी लिखता है कि-सर कनिंगहोम के मतानुसार मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने सांचीपुर के स्तूप में दीपकमाल हमेशा होती रहे उसके लिये पचवीस हजार के सोना मुहरो का दान दिया था जिसके वर्तमान पांच लक्ष रुपये हो सकते हैं इस रकम के ब्याज से उस स्तूप में हमेशा दीपक किये जाय इससे पाया जाता है कि यहां कितनी बड़ी संख्या में दीपक होते होंगे ? यही बात हमारे कल्पसूत्र और दीपमालिका इत्यादि ग्रंथों में लिखी हुई मिलती है कि भगवान् महावीर का कार्तिक अमावास्या की रात्रि में निर्वाण हुआ था उस समय भक्त लोगों ने सोचा कि आज भाव उद्योत चला गया है अतः हम द्रव्य [illegible] द्रव्य उद्योत करेंगे और ऐसा ही उन्होंने किया तथा यह प्रवृत्ति एक दिन के लिए तो [illegible] रही है यदि उस समय भक्त लोगो ने हमेशा के लिये दीपक करते हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है सम्राट् चन्द्रगुप्त ने इतनी बड़ी रकम सदैव दीपक के लिये दी [illegible] । [illegible] पाली मगद देश की पावापुरी में ही भ० महावीर का निर्वाण हुआ [illegible]

को पावापुरी को छोड़ अति दूर आवंति प्रदेश में जाकर इतना बड़ा दान केवल दीपक के लिए कभी नहीं देता। दूसरीं शाह ने एक बात और भी लिखी है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने विदिशा नगरी के पास सांचीपुर में एक राजमहल बनाया था और वर्ष भर में कुछ समय इस निर्वृति स्थान में आकर रहता भी था इससे भी यही सिद्ध होता है कि सांचीपुर के स्तूप जैनों के लिये एक तीर्थधाम अवश्य माना जाता था कारण मगद जैसे दूर देश में रह कर भारत का राजतंत्र चलाने वाला एक सम्राट् राजमहल बना कर निर्वृति स्थान में रहे वह विशेप तीर्थ धाम अवश्य होना चाहिये इतिहास से यह भी पता मिलता है कि सम्राट् अशोक भी सांचीपुर की यात्रार्थ आया था उस समय विदिशा नगरी धन धान्य से समृद्ध एवं व्यापार की बड़ी मंडी थी इतना ही क्यों पर विदिशा के एक व्यापारी सेठ की कन्या के साथ सम्राट् अशोक ने विवाह भी किया था शायद् कोई व्यक्ति यह सवाल करे कि अशोक बौद्ध धर्मी था वह जैन तीर्थ की यात्रार्थ कैसे आया होगा? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सम्राट् अशोक के पिता बिन्दुसार और पितामह सम्राट् चन्द्रगुप्त कट्टर जैन धर्मो पासक थे अतः उनके घर में जन्म लेने वाला पुत्र जैन हो इसमें नई बात नहीं समझी जाती है हाँ बाद में अशोक बौद्ध धर्म का स्वीकार किया था यदि बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पूर्व अशोक सांचीपुरी यात्रार्थ गया हो तब तो कोई सवाल ही नहीं है यदि बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद भी गये हो तो भी उनके पिता पितमाहा का धर्म तीर्थ पर जाय इसमें कोई विरोध की बात नहीं तथा अशोक बौद्ध होने पर भी जैन श्रमणों का अच्छा आदर सत्कार करता था अतः अशोक का सांचीपुर यात्रार्थ जाना यथार्थ ही था। देखिये—

प्रोफेसर कर्न लिखते हैं।

" His (Asoka's) ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of heretical gains than those of the Buddhist.

१—कल्हण कवि जो ग्यारवीं शताब्दी का विद्वान अपनी संस्कृत भाषा की राजतरंगिणि नामक ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में लिखा है कि अशोक ने कश्मीर में जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया

"यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नोजिनशासनम्, शुष्कलेऽत्र वितस्ताचो तस्तर स्तूप पण्डले"

The Bhilsa topes P. 154,—

His (Chandragupta's gift to the Sanchi tope for its regular illumination and for the perpetual service of the sharamans or asceticces was no less a sum then twenty-five thousand Dinnars (£ 25000 is equal to two lacs and a half rupees) Chandragupta was a member of the Jain community (from R. A. S. 1847 P. 177 in—

आगे चल कर यह भी कहा गया है कि 'जगचिन्तामणि' चैत्यवन्दन में 'जयउवीर सच्चउरि मण्डण' ऐसा उल्लेख आया है 'जगचिन्तामणि' का चैत्यवन्दन गणधर गौतम स्वामी ने अष्टापद की यात्रा के समय निर्माण किया था तदनन्तर 'जयउसामि' वाला पाठ पिच्छे भी मिलाया हो तो भी उसके प्राचीन होने में तो किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता है इस चैत्यवन्दन में सच्चउरि मण्डण महावीर का तीर्थ को नमस्कार किया है इस सच्चउरि को मारवाड़ का साचौर ही समझा जाता था। कारण वहाँ महावीर का मन्दिर है और चौदहवीं शताब्दी के आचार्य जिनप्रभसूरि ने अपने विविध तीर्थ कल्प में मारवाड़ के साचौर का

चमत्कारिक वर्णन भी किया है पर पट्टावलियादि ग्रंथों से यह भी ज्ञात होता है कि साचौर में महावीर का मन्दिर कोरंटपुर का मंत्री नाहड़ ने वीर की छटी शताब्दी में बनाया था और जिस समय यह मन्दिर बनाया था उस समय तो यह एक ग्राम का मन्दिर ही कहा जाता था यदि साचौर का मन्दिर को ही तीर्थ रूप समझा जाय तो उससे भी प्राचीन समय में ओसियां और कोरंटपुर के महावीर मन्दिर चमत्कार से बने हुए थे उनको भी तीर्थों की गनती में गि ते ? अतः जग चिन्तामणि का चैत्यवन्दन में 'जयउवीर संचउरि' मण्डण वाला स्थान मारवाड़ का साचौर नहीं पर विदिशानगरी का सांचीपुर ही होना चाहिये और इसके लिये उपर बतलाये हुए प्रमाणों में आर्य्य महागिरी और सुहस्तीसूरि का यात्रार्थ जाना, सम्राट चन्द्रगुप्त का वहाँ दीपक के लिये बड़ा भारी दान देना तथा वहाँ राज महल बना कर कुच्छ समय निर्वृति से रहना। सम्राट् अशोक का भी यात्रार्थ जाना, सम्राट् सम्प्रति का उज्जैन को छोड़ अपनी राजधानी विदिशा में ले जाना इत्यादि ऐसे कारण है कि विदिशा एवं सांचीपुर को सहज ही में एक धाम तीर्थ होना साबित करते हैं।

धारानगरी का महा कवि धनपाल एक जैनधर्म का परम भक्त श्रावक था जब धनपाल और धरा पति राजा भोज के आपस में मनमल्यनता हो गई तो धनपाल धारा का त्याग कर सांचौर—सत्यपुर में जाकर महावीर की भक्ति की और वहाँ पर इस विषय के ग्रन्थ भी बनाया। इसके लिये भी बहुत लोगों की यही मान्यता है कि धनपाल मारवाड़ के साचौर मे रहा था पर अब इस बात में भी विद्वानों को शंका होने लगी है कारण धनपाल मालवा का रहने वाला और मालवा में सांचीपुरी भ० महावीर का एक प्रसिद्ध तीर्थ जिसको छोड़ वह मारवाड़ के साचौर में जाय यह सभव नहीं होता है जब कि मगद देश में राज करने वाला सम्राट् चन्द्रगुप्त निर्वृति के लिया सांचीपुरी आया था तब पं० धनपाल के तो पास ही में सांचीपुरी थी वह वीर तीर्थ सांचीपुरी को छोड़कर मारवाड़ के सांचौर में कैसे जा सकते। इस समय रेल्वा तथा पोस्ट वगैरह के साधनों से मारवाड़ का साचौर भले प्रसिद्ध हो पर पहले जमाना में तो इसकी प्रसिद्धि भी शायद ही मालवा प्रान्त तक हो खैर कुच्छ भी हो पर पं० धनपाल मारवाड़ की अपेक्षा मालवा की सांची-पुरी जाना विशेष प्रमाणित हो सकता है।

यह कब हो सकता है तथा मालवा कोई भारत के एक कौने में छिपा हुआ प्रान्त नहीं है तथा सांची मे कोई एक दो छोटा वड़ा स्तूप नहीं कि उनके कानों या नजरों से छिपा रह सके दूसरा उनकी पुस्तकों में मालवा प्रान्त के वोद्ध स्तूपों का उल्लेख भी मिलता है पर सांची स्तूप के लिये थोड़ी भी जिक्र नहीं मिलती है इससे स्पष्ट हो जाता है कि वोद्ध धर्म को मानने वाले मालवा प्रान्त में गये थे पर सांची के स्तूपों को उन्होंने वोद्धधर्म के नही पर जैनधर्म के समझ कर अपनी डायरी में नोंध नहीं की थी इससे सांची के स्तूप जैनधर्म के होने ही स्पष्ट सिद्ध होते हैं। इनके अलावा सांची स्तूप में कई कटघरों पर 'महाकाश्यप' नाम भी खुदे दृष्टि गोचर होते हैं यह भ० महावीर के वंश की स्मृति करवा रहे हैं भ० महावीर का काश्यपगोत्र था जब समान पुरुषों के लिये काश्यप शब्द काम में लिया जाता तब महापुरुषों के लिये महा काश्यप लिखा हो तो यह यथार्थ ही कहा जा सकता है।

इत्यादि प्रमाणों एवं सवल युक्तियों द्वारा श्रीमान् शाह ने अपनी मान्यता को परिपुष्ट कर बतलाई है। और आपका विश्वास है कि भ० महावीर का निर्वाण इसी प्रदेश में हुआ था और आपके मृत शरीर का अग्नि संस्कार के स्थान भक्त लोगों ने जो स्तूप बनाया था वही मूल स्तूप सिंह स्तूप के नाम से ओलखाया जाता है।

श्रीमान् शाह के कथन में कई लोग यह सवाल पैदा करते है कि यदि भ० महावीर का निर्वाण विदिशा नगरी में हुआ माना जाय तो फिर वर्तमान जैन समाज की मान्यता पूर्वदेश की पावापुरी की है यह क्यों और कब से हुई ? जब कि कल्पसूत्र जैसे प्राचीन ग्रंथों में लिखा मिलता है कि पावा पुरी के हस्तपाल राजा की रथशाला में भगवान महावीर ने अन्तिम चतुर्मास किया और वहीं पर आपका निर्वाण हुआ तथा विक्रमीय सोलहवी शताब्दी के विद्वानों ने भी यही कहा कि "पूर्वदिशो पावापुरी, ऋद्धि भरीरे, मुक्ति गये महावीर, तीर्थ ते नमूरे" इत्यादि इस सवाल के उत्तर में शाह समाधान करता है कि पूर्व दिशा का मतलब पूर्व देश से नहीं पर उज्जैन नगरी से है कारण विदिशा नगरी उज्जैन से पूर्व दिशा में है और भगवान् महावीर जैसे महान पुरुष के देह का दाहन होने से उस नगरी को पापापुरी कही है (शायद उस समय वहाँ हस्तपाल नाम का कोई राजा राज करता हो) अब वर्तमान की मान्यता के लिये यह समझना कठिन नहीं है कि भारत में कई बार ऐसे ऐसे महा भयंकर जन संहारक दुकाल पड़े थे कि कई नगर श्मशान बन गये थे और बाद में कई नये नगरों का निर्माण हो गये थे और यात्रु लोगों की सुविधा के लिये कई स्थापना नगरियों भी मान ली गई थी जैसे भ० वासपूज्य का निर्वाण अंगदेश की चम्पानगरी में हुआ था पर वर्तमान में मगद देश की चम्पानगरी को बारहवें वासपूज्य तीर्थंकर की कल्याण भूमि समझ कर यात्रा करते हैं जब कल्याणक भूमि का तीर्थ था अंगदेश की चम्पानगरी में परन्तु यात्रु लोगों की सुविधा के लिये मगद देश की चम्पा को ही अंगदेश की चम्पानगरी मान ली है इसी प्रकार भ० ऋषभदेव का जन्म कल्याणक अयोध्या नगरी में हुआ था और उस अयोध्या के पास अष्टापद तीर्थ होना शास्त्र में लिखा है तब वर्तमान में पूर्व देश की अयोध्या को ही ऋषभदेव के जन्म कल्याणक मान लिया गया है इसी प्रकार नाम की साम्यता के कारण विदिशा की पावापुरी के स्थान पूर्वदिशा की पावापुरी को भ० महावीर का निर्वाण कल्याणक भूमि मान ली हो तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है और सोलहवीं शताब्दी में रची गई कविता में उस समय का प्रचलित स्थान को ही तीर्थ लिखा हो तो यह भी समय

सम्राट् अजातशत्रु का बनाया स्तम्भ

भगवान् महावीर के भक्त
कौशलपति

राजा प्रसेनजित

राजा प्रसेनजित का बनाया स्तम्भ
(शशि कान्त एण्ड कम्पनी बड़ोदा के सौजन्य से)
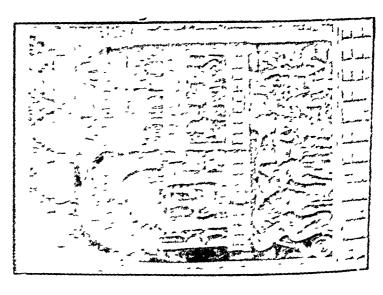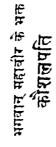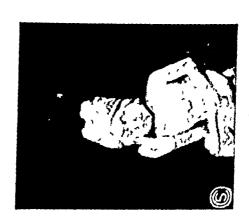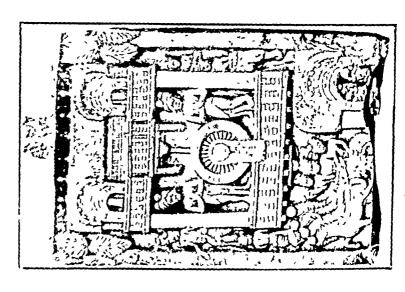
हो सकता है अतः उस पर इतना जोर नहीं दिया जा सकता है पर ऐतिहासिक प्रमाणों की ओर देखा जाय तो भ० महावीर की निवार्ण भूमि के लिये जितने प्रमाण विदिशा एवं सांची नगरी के लिये मिलते हैं उतने पूर्व दिशा की पावापुरी के लिये नहीं मिलते हैं। श्रीमान् शाह की उपरोक्त मान्यता अभी तक जैन समाज में सर्वमान्य नहीं हुई इतना ही क्यों पर कई लोग उपरोक्त मान्यता का विरोध भी करते हैं और ऐसा होना किसी अपेक्षा से ठीक भी है कारण चिरकाल से चली आई मान्यता एवं जमे हुए संस्कारों को एकदम बदल देना कोई साधारण बात नहीं है पर शाह की शोध खोज ने इतिहास क्षेत्र पर एक जबर्दस्त प्रकाश डाला है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है फिर भी इस बात को मैं भ० महावीर के अन्तिम बिहार पर ही छोड़ देता हूँ कि वे अपने अन्तिम वर्ष का विहार किस ओर किया था जिससे पता लग जायगा कि आपका अन्तिम चतुर्मास तथा निर्वाण पूर्व देश की पावापुरी में हुआ था या आवंती प्रदेश की विदिशा नगरी की पावापुर में ?

सांची स्तूप—के विषय चाहे भ० महावीर का निर्माण विदिशा की पावापुरी में हुआ हो चाहे पूर्व देश की पावापुरी में हुआ हो पर वे स्तूप भ० महावीर के नाम पर बनाये गये हैं इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कारण एक पूज्य पुरुष की स्मृति के लिये एक स्थान पर ही नहीं पर अनेक स्थानों पर स्मारक खड़े कराये जा सकते हैं।

३—भारहूत स्तूप—यह स्तूप अंगदेश की राजधानी चम्पा नगरी के पास इस समय खड़ा है परन्तु चम्पा नगरी के स्थान इस समय भारहूत नाम का छोटा सा ग्राम ही रह गया है इस कारण से इस स्तूप का नाम भारहूत रखा गया है और इस स्तूप के लिये डॉ—सर कनिंगहोम ने एक पुस्तक लिखकर खूब विस्तार से अच्छा प्रकाश डाला है पर सर कनिंगहोम ने भारहूत स्तूप को भी बोद्ध धर्म का स्तूप होना लिख दिया है जो वास्तव में वह स्तूप जैन धर्म का है। इसके लिये यह प्रश्न होना स्वभाविक ही है कि जब स्तूप जैन धर्म का है तब निर्पक्ष पाश्चात्यों ने उस स्तूप को बौद्धों का होना क्यों लिख दिया होगा ? इसके लिये मैंने सिक्का-प्रकरण में ठीक विस्तार से खुल्लासा कर दिया है कि पाश्चात्य विद्वानों की इस भूल का खास कारण उनके पास उस समय जैनधर्म के साहित्य का अभाव ही था और बोद्धधर्म के लिये उनके मस्तिष्क में पहले से ही सजड़ संस्कार जमे हुए थे अतः उन्होंने एक भारहूत स्तूप ही क्यों पर जितने प्राचीन स्तूपादि जो कुछ स्मारक मिला उन सबको बोद्धों के ही ठहराय दिये—पर ख्याल करके देखा जाय तो प्रस्तुत स्तूप के नाम बौद्धों

किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है जब उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमानों से चम्पानगरी जैन तीर्थ सिद्ध हो गया तो वहाँ का स्तूप किसका हो सकता है? पाठक! स्वयं विचार कर सकते हैं जब बौद्ध साहित्य में चम्पा नगरी के प्रति कोई भी ऐसा सम्बन्ध नहीं पाया जाता है कि जिसके जरिये भारहूत स्तूप का बौद्ध स्तूप ठहराया जा सके.? इत्यादि कारणों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि चम्पापुरी जैनों का एकधाम तीर्थ है और जैन लोग प्राचीन समय से अद्यावधि चम्पानगरी को तीर्थों की गणना में गिनते भी है जैसे जैन लोग हमेशा तीर्थों का वन्दन करते हैं जिसमें बोलते हैं कि

"अष्टापद श्री आदि जिनवर, वीर पावापुरी वरो, वासपूज्य चम्पानगरी सिद्धा, नेम रेवा गिरिवरो सम्मेत शिखरे वीस जिनवर, मोक्ष पहुत मुनिवरो, चौवीस जिनवर नित्यवन्दू सकल संघे सुख करो"

इस कथनानुसार चम्पापुरी तीर्थ होने से जैन स्तूप ही हो सकता है। चम्पापुरी भ० महावीर की केवल कल्याणक की भूमि होने में श्रीमान् शाह का कथन सर्वमान्य नहीं हुआ है पर इसमें किसी का भी मतभेद नहीं है कि चम्पापुरी जैनधर्म का एक तीर्थ है यदि शाह का कथन प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो जायगा तो एक विशेषता समझी जायगी। कुछ भी हो पर चम्पानगरी के पास आया हुआ भारहूतादि स्तूप जैनो के होने में किसी प्रकार की शंका नहीं है।

४—अमरावती स्तूप—यह स्तूप बड़ा ही विशाल है और महाराष्ट्र प्रान्त अर्थात दक्षिण भारत में आया हुआ है जहां वेनाकटक की राजधानी अमरावती थी और सम्राट महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल ने अपनी दक्षिण विजय के उपलक्ष में अड़तीस लक्ष द्रव्य व्यय करके विजय महा चैत्य बनवाया था इस विषय का उल्लेख सम्राट् का खुदाया हुआ विस्तृत शिलालेख में भी मिलता है जो उड़ीशप्रान्त की खण्डगिरि पहाड़ी की हस्ती गुफा से प्राप्त हुआ या सम्राट खारवेल के जैन होने में तो अब किसी विद्वानों में दो मत नहीं हैं वे एक ही स्वर से स्वीकार करते हैं कि सम्राट् खारवेल जैन नरेश या उसका बनाया हुआ महाविजय चैत्य (स्तूप) दूसरा धर्म का हो ही नहीं सकता है तथापि कई विद्वानों ने इस स्तूप को भी बोद्धधर्म का होना लिख मारा है इसका मूल कारण हम सिक्का प्रकरण में लिख आये हैं कि उन विद्वानों के पास जैनधर्म सम्बन्धी साहित्य का ही अभाव था और उन्होंने वेदान्तियों के अलावा जितने स्मारक मिले उन सबको एक बौद्धों का ठहरा देने का अपना ध्येय ही बना लिया था फिर वे दूसरे धर्म की शोध-खोज ही क्यों करें जब कि वे उस समय जैनधर्म का स्वतंत्र अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते थे तब जैनधर्म के स्मारकों का होना तो मान ही कैसे सकते। और, वर्तमान में तो सूर्य के सदृश प्रकाश हो चुका है कि एक समय भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक जैनधर्मी राजाओं का ही राज था तब उनके बनाये स्तूप एवं उनके चलाये सिक्के जैनधर्म का गौरव बढ़ाने वाला हो तो इसमें थोड़ा भी आश्चर्य करने की क्या बात है।

इस प्रकार भारत में जैन धर्मी राजाओं के कराये बहुत से स्तूप एवं मन्दिर मूर्तियां आयागपट स्तम्भो एवं सिक्काओं वगैरह बहुत प्राचीन साधन उपलब्ध हुए हैं पर स्थानाभाव हम सब का उल्लेख कर नहीं सकते हैं पर यहाँ पर तो केवल नमूना के तौर पर केवल चार स्तूप के विषय में ही संक्षिप्त में उल्लेख कर दिया है अतः पाठक अपना अभ्यास बढ़ा कर इस प्रकार ऐतिहासिक पदार्थों की शोध खोज कर जैनधर्म के गौरव को बढ़ावें—इत्यादि

वर्तमान समय में इतिहास युग है विद्वान वर्ग इस कार्य के लिये तन मन और धन का व्यय कर रहे
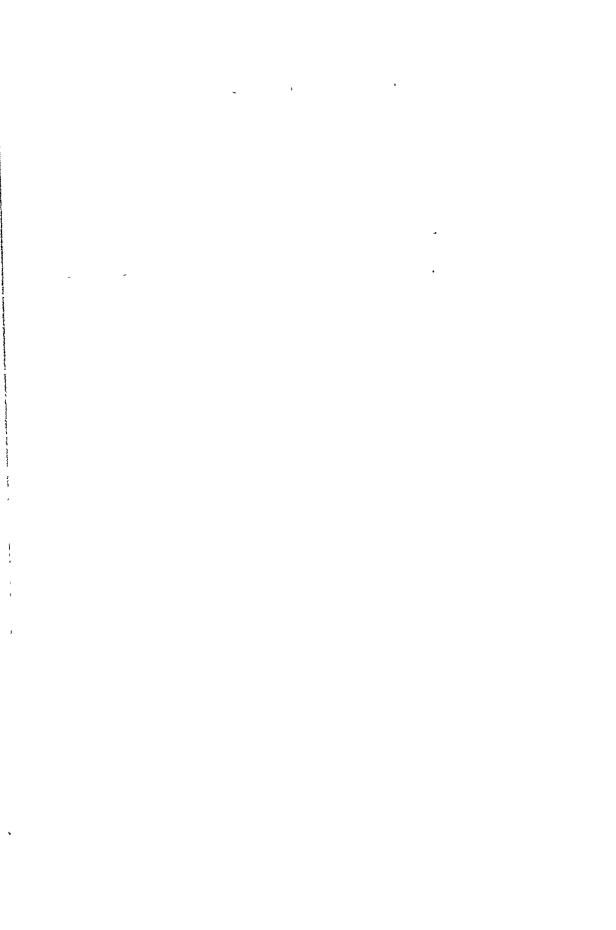
जोश के साथ इतिहास का कार्य कर रहे हैं और इतिहास के साधनों से उन्होंने अनेक नयी नयी बातों को जानी है पर जैन समाज का इतिहास की ओर बहुत कम लक्ष है और इस कार्य में बहुत कम सज्जन दिलचस्पी रखते हैं अधिक लोग प्राचीन समय से चली आई परम्पार एवं रूढ़ीवाद को ही मानते आना है यदि ऐतिहासिक प्रमाण भी मिल जाय तो भी अपनी मान्यता में थोड़ा भी परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं श्रीमान् शाह ने अभी 'प्राचीन भारतवर्ष नामक ग्रन्थ के ५ भाग लिखे हैं जिसमें आपने कई वर्ष से बहुत परिश्रम किया है अन्य मत आलंम्बियों ने आपके इस परिश्रमों की बहुत बहुत तारीफ एवं प्रशंसा की है। पर जैन समाज में कई लोग ऐसे ही अहंमद एवं असहिष्णुत रखनेवालेहै कि आपके कार्य का अनुमोदन करना तो दूर किनारे रहा पर उसमें रोड़ा डालने को तैयार हो जाते हैं। हाँ इतिहास का काम ही ऐसा है कि पहले पहल लिखने में अनेक त्रुटियाँ रह जाती है पर ऐसी त्रुटियों को सामने रख लेखक का उत्साह भंग कर देना कितना अनुचित है? यदि त्रुटियों के सामने रखने वाला इतिहास विषय का ग्रन्थ लिख कर देखें कि इतिहास लिखने में कितनी मगजमारी करनी पड़ती है एक छोटा सा इतिहास लिखने में कितने ग्रन्थों का अवलोकन करना पड़ता है और उस देखी हुई विषय को किस तरह से सिलसिलेवार व्यवस्थित करनी पड़ती है पर इन बातों पर लक्ष देता है कौन? आज तो यह एक रोजगार बन गया है कि इधर-उधर के पांच पचीस स्तवन या प्रतिक्रमण के पाठ रख एक दो किताब छपवा दी कि वह लेखक बन जाता है मेरे ख्याल से तो जैन समाज मे आज वही काम कर सकता है कि अपने हृदय को वज्र समान बनाले और किसी के कहने की उनक भी परवाह न रखे और अपना काम करता रहे। मैंने तो श्रीमान शाह का ग्रंथ पढ़ कर बहुत खुशी मनाई है और आपके ग्रंथों से बहुत सी बातें जानने काबिल भी मिली है इन प्रकरणों का अधिक मसाला शाह की पुस्तकों से ही लिया गया है अतः ऐसे ग्रंथों का स्वागत करना मैं मेरा कर्तव्य समझता हूँ।

गुफा–प्रकरण

भारतीय श्रमण संस्कृति का अस्तित्व इतिहास काल का प्रारम्भ से पूर्व भी विद्यमान था यही कारण है कि आज विद्वान वर्ग की अटल मान्यता है कि भारत की संस्कृति आध्यात्मिकता का केन्द्र है और यह प्राचीन समय से ही चली आ रही है। पूर्व जमाने में भारतीय किसी धर्म के श्रमण क्यों न हो पर वे सब के सब जंगलों में रहकर अध्यात्म विद्या का अभ्यास किया करते थे और इसी आध्यात्मिकता से उनकी आत्मा का सर्व विकाश भी हो जाता था। कारण जंगलो में रहने वाले श्रमणों के प्रथम तो गृहस्थों के परिचय का सर्वथा अभाव ही रहता था दूसरा जंगलो की आबहवा स्वच्छ जिसमें [illegible] चिन्तन पठन पाठन मनन निदिध्यासन करने से मन का एकाग्रचित्त रहता है [illegible] करने में सब साधन अनुकूल रहते थे और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करने [illegible] में शीतकाल में शीत-ताप सहन करना [illegible] में आतापनादि कई प्रकार के परिषहों को [illegible] सहन करने का सुअवसर हाथ लग जाता था इन कार्यों में बाधा पहुँचने का कोई कारण [illegible] नहीं होता था इत्यादि जंगलो में रहने वाले श्रमणों ने अनेक प्रकार के [illegible] एवं विविध प्रकार की चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त हो सकती थी इतना सब कुछ होने पर भी [illegible] स्थान की अपेक्षा अवश्य रहती थी इसके लिये गुफाएं [illegible]

कारण सब साधुओं का निर्वाह वृक्षों के नीचे नहीं होता था अतः कोई कोई श्रमण पर्वत की गुफाओं का भी आश्रय लिया करते थे पर वह केवल उस बरसात के पानी से बचने के ही लिये । जब जंगल में रहने वाले श्रमणों की संख्या बढ़ने लगी तो उनके भक्त राजा महाराजा एवं सेठ साहूकार लोग उन पर्वतों के अन्दर पत्थरों को खुदा खुदाकर गुफाएं भी बनाने लगे और श्रमण वर्ग उन गुफाओं के सहारे से निर्विघ्नतया ज्ञान ध्यान एवं तप संयम की आराधना करने लगे पर आत्मा हमेशां निमित वासी है समयान्तर एक दूसरे की स्पर्द्धा में मूल उद्देश को भूलकर एक दूसरे से आगे बढ़ने में लग जाते हैं यही हाल गुफाओं के विषय में हुए कई राजा महाराजाओं ने पुष्कल द्रव्य व्यय कर बड़ी नक्शीदार शिल्प का बहुत बढ़िया काम करवाने लगे किसी किसी स्थान पर तो दो दो तीन तीन मंजिल की गुफाएं भी बनाई गई और कहीं कहीं उन गुफाओं में दर्शनार्थ मन्दिर भी बनवा दिये गये । कहीं कहीं बढ़िया चित्र काम भी करवाये गये और पर्वतीय चटाणों पर शिलालेख भी अंकित करवा दिये कि यह गुफा अमुक श्रमण के लिये अमुक नरपति ने अमुक संवत् मिती में बनवाई थी । ज्यों ज्यों साधन बढ़ते गये त्यों-त्यों जंगल में रहने वाले श्रमणों की संख्या भी बढ़ती गई इससे जंगलों में हजारों गुफाएं भी बन गई जिससे अब जंगलों में रहने वाले श्रमणों को इतना कष्ट नहीं रहा कि जितना पहले था कारण पहले शीतोष्ण काल में वे कर्मों की उदिरणा के लिए जो कष्ट सहन करते थे वे अब सुख से गुफाओं में रहने लगे—जब गुफाओं में देव मन्दिर और देव मूर्तियों की भी स्थापना हो गई तथा पर्वत में खोद कर निकाली हुई भींतों पर भी देवों की मूर्तियां खुदा दी गई अब तो मूर्त्तियों के दर्शन करने वाले संघ भी प्रसंगोपात आने जाने लगा इत्यादि ये सब कारण श्रमणों के ध्यान के साधक नहीं पर बाधक ही सिद्ध हुए फिर भी जंगलों में एवं गुफाओं में रहने वालों को निवृत्ति के लिए काफी समय मिलता था ये गुफाएं किसी एक ही धर्म के श्रमणों के लिये नहीं थी पर सब धर्म के श्रमणों के भक्तों ने अपने २ गुरुओं के लिये बनाई थी जो वर्तमान शिलालेखों से सिद्ध होता है गुफाओं का आरम्भ का काल तो बहुत पुराना है पर विक्रम की आठवीं नौवीं और दसवीं शताब्दी तक तो गुफाओं का बनना जारी रहा था और उस समय तक बहुत से साधु गुफाओं में रहते भी थे ।

इतिहास से यह भी पता लगता है कि भारत में कई जन संहारक महा भयंकर दुष्काल भी पड़े थे वे भी एक दो वर्ष नहीं पर बारह २ वर्ष तक लगातार पड़ते ही रहे उस समय गृहस्थ लोगों को मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलना मुश्किल हो गया था कहीं कहीं तो ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि कोई गृहस्थ अपने घर से भोजन कर तत्काल घर बाहर निकल जाय तो भुखमरे मंगते उसका उदर चीर कर उसके अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे हां ! भूखे मरते क्या नहीं करें ? भूख सबसे बुरी वस्तु है भला जब गृहस्थों का यह हाल था तो जंगल में रहने वालों को भिक्षा मिलना तो कितना कठिन काम था आखिर अपने प्राणों की रक्षा के लिए उन जंगलवासी साधुओं को नगर का आश्रय लेना पड़ा पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जंगल में रहने वाले सबके सब साधु नगरों में आ गये थे ? नहीं जिन्हों का गुजारा जंगलों में होता रहा वे जंगलों में ही रहे और ऐसे भी हजारों साधु थे पर उस आपत्तिकाल में उनके आचार-विचारों में अवश्य परिवर्तन हो गया था जब कि दुष्काल के अन्त में सुकाल हुआ तब भी नगरों में रहने वाले श्रमण पुनः गुफाओं में रहने को नहीं गये कारण जंगलों की अपेक्षा अब नगरों में उनको

भारतीय-गुफाएं

अधिक सुविधा रहने लगी मैं ऊपर लिख आया हूँ कि आत्मा निमित वासी हुआ करता है जैसे आत्मा को निमित मिलता रहता है वैसे ही उनको मानस उसमें लिप्त हो जाता है। अतः उनके रहने की गुफाएं पशु पक्षियों के काम आने लगी और उन गुफाओं की किसी ने सार संभाल तक भी नहीं की यही कारण है कि कई गुफाएं तो भूआश्रित हो गई कई टूट-फूट कर खण्डहर का रूप धारण किया हुआ आज भी दृष्टिगोचर होता हैं।

वर्तमान पुरात्त्व की शीघ्र खोज करने वालों का लक्ष इन प्राचीन गुफाओं की ओर भी पहुँचा और उन लोगों ने भारत की चारों ओर शोध-खोज की तो हजारों गुफाओं का पता लगा है उन गुफाओं के अन्दर मन्दिर मूर्त्तियां तथा चित्रकाल शिल्पकाला तथा बहुत से प्राचीन समय के शिलालेख भी मिले हैं जो इतिहास के लिये बड़े ही अमूल्य साधन माना जा रहा है उदाहरण के तौर पर उडीसा प्रान्त की उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ियों के अन्दर जैन श्रमणों के ध्यान के लिये सहस्त्रों गुफायें बनाई थी जिसके अन्दर से सैकड़ों गुफाएं आज भी विद्यमान है कई कई गुफायें तो नष्ट भी हो गई हैं पर कई कई अभी अच्छी स्थिति में हैं तथा कई कई गुफायें दो दो मंजिल की भी है और इन गुफायों से बहुत से शिलालेख भी मिले हैं जिसमें दो शिलालेख तो इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी हैं १—महामेघवाहन चक्रवर्ति राजा खारवेल का २—भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन विषय का। इनके अलावा भी बहुत से शिलालेख मिले हैं इस विषय में हमने कलिंग देश के इतिहास में विस्तृत वर्णन लिख दिया है अतः यह पीष्टपेषण करना उचित नहीं समझा गया है यहाँ पर तो शेष कतिपय गुफा का ही संक्षिप्त से उल्लेख किया जायगा कारण भारतीय गुफाओं के लिये बड़े बड़े विद्वानों ने कई ग्रन्थ लिख निर्माण करवा दिये हैं तथा कई हिन्दी भाषा भाषियों के लिये मेरा यह सक्षिप्त लेख भी उपकारी होगा ?

१—उडीसा प्रान्त की खण्डगिरि उदयगिरि एक समय कुमार एवं कुमारी पर्वत के नाम से तथा वही पहाड़ियाँ जैन संसार में शत्रुंजय गिरनावतार के नाम से मशहूर थी वर्तमान की शोध खोज से कई ७०० छोटी बड़ी गुफाओं का पता लगा है इस विषय इसी ग्रन्थ के पिछले पृष्ठो में कलिंग देश के इतिहास में विस्तार से लिख आये हैं अतः पुनावृति करना उचित नहीं समझा गया है पाठक वहाँ से देखें।

२—बिहार प्रदेश (पूर्व में) में बरबरा पहाड़ की कन्दराओं में नागार्जुन के नाम से प्रसिद्ध है वहाँ भी बहुत सी गुफाएं हैं जिसमे अधिक गुफाएं जैनों की हैं और वहाँ जैन श्रमण रह कर [illegible] स्थापन किया करते थे इन गुफाओ का विस्तृत वर्णन 'जैन सत्य प्रकाश मासिक पत्र के वर्ष ३ अंक ३-४-५ में किया है अतः स्थानाभाव यहाँ मात्र नाम निर्देश ही कर दिया है।

३—पाव पाण्डवो की गुफाए—यह गुफाए मालवा (मानवा) प्रदेश में [illegible] हुई है [illegible] विस्तार मे है शिल्प एव चित्र का बहुत ही सुन्दर काम किया हुआ है इन गुफाओं का वर्णन [illegible] जैन सत्य प्रकाश मासिक वर्ष ४ [illegible] में विस्तार से किया है

४—गिरनार की गुफाएं—गिरनार [illegible] [illegible] एक है [illegible] महात्माओ ने ज्ञान ध्यान योग समाधि [illegible] की साधना करके [illegible] इस गुफा में मुनि रहनेमि ने ध्यान किया था इसी गुफा में [illegible] और [illegible] थी इत्यादि जैन शास्त्रों में गिरनार पर्वत की बहुत सी गुफाओं का वर्णन [illegible] है

५—श्री शत्रुंजय पर्वत की केदरा में भी बहुत गुफाएं थी और वहाँ पर श्रमण वर्ग तपश्चर्यादि विविध साधनों से आत्म कल्याण किये करते थे। पूजादि की पुस्तकों में भी अधिकार आता है—

६—इसी प्रकार वदर्भ देश की पर्वत श्रेणियों में भी बहुतसी गुफाए थी वर्तमान शोध खोज से बहुतसी गुफाए का पत्ता भी लगा है जैसे—भामेर तालुक कि पीपलनेर जो एक समय बड़ा नगर था कि पास बहुतसी श्रमण गुफाए विद्यमान है तथा पातलखेड़ा-चालीस गांव के पास भी पीतलखोर तथा चावड़ी नाम की गुफाएं हैं।

७—अजन्टा की गुफाएं-यहाँ की गुफाएं बहुत प्रसिद्ध है और इन गुफाएं के लिये कई विद्वानों ने बड़ी बड़ी पुस्तकें एवं लेख भी लिखे हैं वहाँ की गुफाओं में कई तो इ०-सं० पूर्व एक दो शताब्दी की है शिल्प कला तथा चित्र कला बड़ी सुन्दर है इन गुफाओं ने इतिहास क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डाला है गुफाओं की संख्या ३०-३५ की कही जाति है।

८—अंजनेरी की गुफाएं—यह स्थान नासिक से १४ मील तथा त्रिम्बक से भी १४ मील है वहाँ एक पहाड़ी भूमि से ४२९५ फुट ऊंची है वहाँ एक छोटी गुफा है जिसमें एक पद्मासन मूर्ति एवं नीचे की चट्टान में एक दूसरी गुफा है जिसके द्वार पर भ० पार्श्वनाथ की, खड़ी मूर्ति है।

९—अंकाइ की गुफाएं-यह स्थान तालुका ऐवला में है यहाँ दो पहाड़ियां साथ साथ मिली हुई है भूमि से ३१४२ फुट ऊंची है तंकाइ की दक्षिण दिशा में जैनों की ७ गुफाएं है जिसमें बहुत उमदा नकशी का काम हुआ है।

(१) एक गुफा दो मंजिल की है स्तम्भ के नीचे द्वार पाल बने हुए हैं
(२) दूसरी गुफा भी दो मंजिल की है नीचे के खण्ड में बरमदा २६—१२ का है द्वार पर छोटी छोटी जैन मूर्तियाँ है शिल्प कला की सुन्दरता दर्शनीय है
(३) तीसरी गुफा एक मंजिल की है तथा कई जैन मूर्तियाँ भी है
(४) चौथी गुफा भी एक मंजिल की है इसके स्तम्भ ३०—३० फूट के हैं
(५) पांचवी गुफामें भी स्तम्भ है और जैन मूर्तियाँ भी है
(६) छट्ठी गुफा भी एक मंजिल की है इसमें भी कई जैन मूर्तियाँ है
(७) सातवीं गुफा छोटी है भग्न खण्ड हर के रूप में है खण्डित मूर्तियाँ भी है

१०—चांदोर-की गुफाएं-यह स्थान नासिक से ३० मील तथा लसन गांव स्टेशन से चौदह मील है नगर पहाड़ी के नीचे बसा है पहाड़ी भूमि से ४५०० फूट ऊंची है पहाड़ी पर रेणुका देवी का मन्दिर है वहाँ कई जैन गुफाएं भी है नगर के किल्ला की चट्टान में जैन गुफाओं में जैन मूर्तियाँ भी है जिसमें मुख्य मूर्ति चन्द्रप्रभ जिनकी है।

११—त्रिगल वाड़ी की गुफाएं—तालुका इगतपुरी से ६ मील पहाड़ी पर गांव बसा हुआ है यहाँ भी गुफाएं है जिसमें एक गुफा में कई जैन मूर्तियाँ है

१२—नासिक शहर-यहाँ की पंचवटी से एक मील तपोवन है जहाँ एक गुफा है जिसमें भ० चन्द्रप्रभ का मन्दिर है पश्चिम की ओर ६ मील पर गोवर्धन या गंगापुर की प्राचीन बस्ती है वहाँ जैन अमर जैन गुफा है दूसरी एक बौद्धों की भी गुफा है तथा पाडुवंन में नं० ११ की गुफा है जिसमें निकलीं भ०

ऋषभदेव की मूर्ति है वहाँ पर दिगम्बर जैनों का किसी समय प्रभुत्व रहा होगा इस नासिक नगर का नाम पुराने जमाने में पद्मपुर नाम था यहाँ रामचन्द्र और सुर्पनखा का मिलाप हुआ था

१३—चमारलेन—यहां की पहाड़ी ६०० फुट ऊंची है यहां पर एक प्राचीन जैन गुफा है यहां दिगम्बर जैनों का गजपथ नामक तीर्थ था।

१४—मागी तुंगी—यह भी दिगम्बर जैनों का सिद्धक्षेत्र नाम का तीर्थ है मनमाड़ स्टेशन से कई ५० मील दूर है यहां दो पहाड़ियां साथ में मिली हुई हैं और ५-६ गुफाएं भी हैं।

१५—पूना शहर के आसपास में भी कई पहाड़ियां और जैन गुफाएं हैं जैसे वेडसा के पास सुपाइ पहाड़ी भूमि से ३००० फुट ऊंची है वहां दो गुफाएं हैं उनमें कई शिलालेख भी हैं। भाजणावा की पहाड़ी के आसपास बोद्धों की १८ गुफाएं है उनमे कई गुफाएं तो जैनों की हैं। करली ग्राम के पास भी कई जैन गुफाएं हैं तथा एक रामचन्द्र गुफा भी जैनों की गुफा है।

१६ -सितारा जिला में भी कई पहाड़ियां और कई गुफाएं आ गई हैं जैसे कराद नगर के आस-पास ५४ गुफाएं हैं जिसमें कई बोद्धों की और कई जैनों की हैं तथा लोहारी ग्राम के पास भी बहुत सी गुफाएं आई हुई हैं संशोधन करने की खास जरूर ।

१७—धूमलवाडी—यह स्थान सितारा स्टेशन से नजदीक कोरेगांव तालुका यहा एक गुफा है जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है और कई गुफाए धूल से भर गई हैं।

"इस सितारा जिला के लिए 'इम्पीरियल गजटियर बम्बई प्रान्त भाग' (सन १९०९) पृष्ठ ५१९ पर लिखा है कि

"The gains in satara dist represent a survival of early [illegible] which [illegible] ance the religion of the rulers of the kingdom of Carnatee"

१७—ऐवल्ली (राहोली) यहाँ की पहाड़ियों में बहुत सी जैन गुफायें है वे गुफायें बहुत प्राचीन हैं इनके अन्दर बहुत सुन्दर नकशी का काम हुआ पाया जाता है तथा कई गुफाओं में जैन मूर्त्तियां भी हैं इन सबों को देखते विद्वानों ने यही अनुमान लगाया है कि किसी समय इस प्रान्त में जैन धर्म की बड़ी भारी जाहुजलाली थी और हजारों जैन श्रमण इन गुफाओं में रह कर तप संयम की आराधना करते होंगे एवं यहाँ के राजा प्रजा सब के सब जैन ही होंगे।

१८—बादामी की गुफायें—यहाँ की प्राचीन गुफायें बहुत प्रसिद्ध हैं इन बादामी की गुफाओं के लिये बहुत विद्वानों ने कई लेख भी लिखे थे यहाँ की गुफा बहुत करके जैनों की ही है क्योंकि इन गुफाओं में वर्तमान भी जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्त्तियां विराजमान हैं बहुत से यूरोपियन विद्वानों ने यहाँ की गुफा का निरीक्षण करके यही अभिप्राय प्रकट किये है कि [illegible] यह गुफायें अपनी शान ही रखती हैं कहा जाता है कि [illegible] के जैन [illegible] राज की भक्ति से प्रेरित हो जैन श्रमणों के लिये गुफाएं एवं मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई होगी।

१९—हेलुरम—यहां भी एक पहाड़ी और जैन गुफा [illegible] है।

२०—[illegible]—यहां भी एक प्राचीन गुफा और दो [illegible] हैं।

२१—धारासिव—वर्तमान में इसका नाम उस्मानाबाद है और [illegible]

१४ मील के फैसले पर धाराशिव है और वहां से २-३ मील जाने पर जैनों की सात गुफाएं आती हैं जिसमें एक गुफा बहुत बड़ी है उसमें बहुत अच्छा नकशी का काम हुआ है और भ० पार्श्वनाथ की सप्त फण वाली मूर्त्ति विराजमान है वह भ० पार्श्वनाथ के शरीर प्रमाण श्याम-वर्ण की है इनके अलावा छोटी बड़ी सब गुफाओं में तीर्थङ्करों की मूर्तियां है

२२—एल्लुरा की गुफाएं यह स्थान दोलताबाद से १२ मील की दूरी पर आया हुआ है। जहाँ की पहाड़ी पर जैनों की ३२-३३ गुफाएं आई हुई है जिसमें पांच गुफाएं बहुत ही बडी है पुराणे जमाने की शिल्प कला वडी ही दर्शनीक है इन गुफाएं के विषय बहुत से पौवर्त्य पाश्चात्य विद्वानों ने लेख लिख प्रसिद्ध कर चूके हैं। अतः यहाँ स्थानाभाव अधिक नहीं लिखा गया है।

२३—सोतावा यहाँ पर एक पहाडी भूमि मे २३४९ फूट उच्ची है और तीन बड़ी गुफाएं है जिसमें एक तो दो मंजिल की है जिसके ऊपर के भाग में भ० महावीर की मूर्त्ति है नीचे की दो गुफाओं में एक में पार्श्वनाथ की दूसरी में एक देवी की खण्डित मूर्त्ति है।

२४—चूनावा-यहाँ जैनों की एक गुफा है जिसमें एक खण्डित जैन मूर्ति है।

२५—राजगृह के पांच पहाड़ों में भी जैनों की दो बड़ी गुफाएं है जिसमें एक का नाम सप्तपर्णी दूसरी का सोनभद्रा इन गुफाओं के विषय डॉ० सरकनिंगहोम ने विस्तृत लेख लिखा था तथा इन गुफाओं में एक शिलालेख भी मिला है जिससे पाया जाता है कि प्रस्तुत गुफाएं ईसा की दूसरी शताब्दी में मुनि वीरदेव के लिये बनवाई गई थी।

इनके अलावा भी भारत के अन्योन्य प्रान्तो से सेकड़ों नहीं पर हजारों गुफाएं इस समय भी विद्यमान हैं जो शोध खोज करने मे पत्ता मिल सकता है हाँ उन गुफाओं में इस समय साधु तो शायद ही रहता हो पर इतिहास के लिये बड़ी काम की एंव उपयोगी है इन गुफाएं का निरीक्षण करने मे यह पता लग जाता है कि एक समय भारतीय सब धर्मों के साधु जंगलों की गुफाओं में रह कर अपना जीवन परम शान्ति एवं अध्यात्म चिन्तन करने में व्यतित करते थे और इन एकाग्रता के कारण उन्हों को अनेक चमत्कारिक विद्याएं एवं लब्धियों भी प्राप्त हो जाति थी और उन लब्धियों द्वारा वे संसार का कल्याण कर सकते थे क्या कभी फिर भी ऐसा जमाना आवेगा कि हमारे भारतीय श्रमण जंगलों में रह कर उन विद्याओं को हासिल कर संसार का कल्याण करेगा।

३६—आचार्य श्री कक्कसूरिजी महाराज (सप्तम)

श्रेष्ठ्याख्यान्वयसंभवः सुविदितः श्रीकक्कसूरिर्महान् ।
विद्याज्ञान् समुद्र एष नृपतिं चित्राङ्गदं वै सुधीः ॥
जैनं दीक्षितवान् तथा च कृतवान् श्रीकान्यकुब्जेपुरे ।
मूर्तिं स्वर्णमयीं विधाय भवने देवस्य संपूजकम् ॥

आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज महाप्रभाविक एवं प्रखर धर्मप्रचारक आचार्य हुए हैं। आप श्री ने पूर्व परम्परागत अजैनों को जैन बनाकर शुद्धि करने की मशीन से व अपने पीयूष रस प्लावित अमूल्योपदेशामृत से अनेक हिंसानुयायी वाममार्गियों को व मांसाहारी क्षत्रियादिकों को पवित्र जैनधर्म के पावन संस्कार से सुसंस्कृत कर उन्हें उपकेश वंश (महाजन संघ) में सम्मिलित कर उपकेश वंश की आशातीत वृद्धि की। आप श्री की कठोर तपश्चर्या एवं सच्चरित्रतादि सविशेष गुणों से आकर्षित हो साधारण जनता ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजा भी आपकी सेवा का लाभ लेने में अपना अहोभाग्य-धन्य दिवस समझते थे। शास्त्रीय मर्म के प्रकाण्ड पण्डित श्रीआचार्यदेव शास्त्रार्थ में तो इतने सिद्धहस्त-कुशल थे कि कई राज सभाओं के वादी कईबार आपसे पराजित हो चुके थे। वादी मानमर्दक श्रीसूरीश्वरजी ने कई वादियों को पवित्र जैनधर्म की दीक्षा से दीक्षित कर उन्हें सत्पथानुगामी बनाया। भ्रम से भूलकर अज्ञानता के निविड़ तिमिराच्छन्न मार्ग की ओर प्रवृत्ति करने वाले अज्ञानियों के लिये सत्पथप्रदर्शक बन सूरिजी ने उनको कण्टकाकीर्ण मार्ग से [illegible] कर, सत्पथ के पथिक बनाये। इस तरह चतुर्दिक में पवित्र जैनधर्म की उत्तुंग पताका को फहरा कर आचार्यश्री ने शब्दतोऽवर्णनीय यशः सम्पादन किया।

दुष्काल के बुरे असर से जो श्रमणों में शिथिलता आगई थी उसको [illegible] मिटाकर सूरीश्वरजी ने शिथिलाचारी मुनियों को उग्रविहारी बनाये। [illegible] जो क्षेत्र सद्धर्म—पराङ्मुख बन गये थे, उन क्षेत्रों में आचार्यश्री ने स्वयं विहार कर पुनः [illegible] किया। अतः यदि यह कह दिया जाय कि आपका जीवन ही जैनधर्म की प्रभावना के लिये हुआ [illegible] अत्युक्ति न होगी। पाठकों की जानकारी के लिये आपश्री का जीवन संक्षिप्त रूप से [illegible]

मरुधर भूमि के तिलक [illegible], अमरपुर के सदृश [illegible] सरोवर व विविध वापियों के विविध सौंदर्य को धारण किये हुए [illegible] [illegible] नगर था। यह नगर उपकेश वंश की विशेष [illegible] [illegible] [illegible] हुआ था। इस [illegible] [illegible]

जलमार्ग एवं स्थल मार्ग दोनों ही मार्ग से व्यापार किया करते थे। इन्ही व्यापारियों में श्रेष्टिगौत्रीय शाह करमण नाम के एक नामाङ्कित व्यापारी थे। आप पर लक्ष्मी की अपार कृपा होने से आप धन कुबेर के नाम से भी जग विश्रुत थे।

शाह करमण के पुन्य पावनी, पतिव्रत धर्म परायण, परम सुशीला मैना नामकी स्त्री थी। इसी देवी ने अपनी रत्न कुक्षि से ११ पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर, अपने जीवन को कृतार्थ बनाया था। माता मैना, इतने विशाल कुटुम्ब वाली होने परभी अपने धर्म कार्य सम्पादन करने में सदैव तत्पर रहती थी। उस जमाने में एक तो जीव लघुकर्मी ही होते थे दूसरा निस्पृही निर्ग्रन्थों का उपदेश ही ऐसा मिलता था कि वे एक मात्र धर्म को ही उभयतः श्रेयस्कर आदरणीय, एवं उपादेय समझते थे। माता मैना के कई पुत्र पुत्रियों की शादियां भी हो गई थी। उनमें से श्री विमल नाम का पुत्र भी एक था। विमल, व्यापार कला का विशेषज्ञ एवं धर्म कार्य का परम अनुरागी, दृढ़ श्रद्धालु था। प्रत्येक कार्य के लिए शा. करमण विमल से परामर्श किया करते थे।

एक समय विमल किसी कार्यवशात् नागपुर गया था। वहां पर उपाध्याय श्रीसोमप्रभ के उपदेश से सुचंतिवंशभूषण शा. नोढ़ा ने शत्रुञ्जय का संघ निकालने का निश्चय किया एवं संघ निकालनेके शुभ मुहूर्त का भी निश्चय हो चुका था अतः उक्त अवसर पर सम्मिलित होने के लिये शा. नोढ़ाने शा. विमल से प्रार्थना की कि कृपा कर संघ में पधार कर सेवा का लाभ मुझे प्रदान करें। इस पर विमल ने उत्तर दिया कि आप बड़े ही भाग्यशाली हैं कि संघ निकालने रूप बृहद् पुण्योपार्जन कर रहे हैं किन्तु यदि पांच दिन मुहूर्त्त को आगे रक्खें तो हम सकुटुम्ब साथ चल कर यात्रा के अपूर्व लाभ एवं अतुल पुण्य को सम्पादन कर सकेंगे। इन पांच दिनों में तो हमारे जरूरी काम होने से यकायक आना नहीं बन सकता है। इस पर शाह नोढ़ा ने तो कुछ भी जबाब नहीं दिया पर पास में ही बैठे हुए नोढ़ा के पुत्र देवा ने कहा कि निर्धारित मुहूर्त में कुछ भी रद्दोबदल नहीं हो सकता है यदि आपके जरूरी कार्य होने से इस संघ में न पधारे तो भी आप समर्थ है कि आप स्वयं संघ निकाल कर यात्रा कर सकते हैं। शाह देवा ने किसी भी आशय से कहा हो पर विमल ने उसको ताना समझ कर उत्तर में कुछ भी नहीं कहा चुप चाप वह यों ही चल पड़ा पर उसकी अन्तरात्मा में संघ निकालने की नवीन उत्कट भावना ने जन्म ले लिया अतः तत्काल वहां से रवाना हो विमल, मेदिनीपुर आया और अपने सब कुटुम्बियों के समक्ष स्वहृदयान्तर्हित नवीन भावना को कह सुनाया। ऐसी परमपुण्यमय सुन्दर योजना को सुन सभी के हृदयों में अपरिमित आनंद का अनुभव होने लगा और उसी दिन से वो संघ निकालने के लिए आवश्यक साधनों को जुटाने में संलग्न बन गये।

विमल की इच्छा थी कि अपने माता पिता की मौजूदगी में ही यात्रार्थ संघ निकाल कर यात्रा करें पर कुदरत कुछ और ही बाट घड़ रही थी। शाह करमण की अवस्था वृद्ध थी उसने अपने शरीर की हालत देखकर अपने स्थान पर शा० विमलको स्थापन कर घर का सब कारोबार विमल के अधिकार में कर दिया और आप परम निवृत्ति में जैन धर्म की आराधना में संलग्न हो गये यही हाल माता मैना का था।

अहा-हा उस जमाने के भद्रिक एवं लघुकर्मी लोग आत्मकल्याण करने में किस प्रकार दत्तचित्त रहते [illegible] यह एक उदाहरण है थोड़ा ही समय में शाह करमण समाधी पूर्वक एवं पंच परमेष्टी का स्मरण करते स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया। जिससे विमल को बड़ा भारी रंज हुआ वह सोचने लगा कि मैं

विमल को दान और

भाग्य हूँ कि पिताजी की मौजुदगी में संघ नहीं निकाल सका तथापि विमल के हृदय में संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा करने की भावना बढ़ती ही गई।

इधर मेदिनीपुर के प्रबल पुन्योदय से शासन शृंगार धर्मप्राण, श्रद्धेय, पूज्याचार्यश्री सिद्धसूरि का शुभागमन मेदिनीपुर में हुआ। स्वर्गस्थ करमण के विमलादि पुत्रों ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण के विषय में होता था। अतः सर्व श्रोतागण ऐसे तो सूरिजी के व्याख्यान से लाभ उठाते ही थे किन्तु विमल पर इन व्यायखानों का सविशेष प्रभाव पड़ा। एक दिन विमल ने सूरिजी से प्रार्थना की कि भगवान ! यदि इस वर्ष के चातुर्मास की कृपा हमारे पर हो जाय तो मैं चातुर्मासानंतर शत्रुञ्जय का संघ निकालूं प्रत्युतर में सूरीश्वरजी ने फरमाया कि विमल ! तेरी भावना अत्युत्तम है। यात्रा के लिये संघ निकाल कर पुण्य सम्पादन करने रूप कार्य साधारण नहीं किन्तु, अत्यन्त महत्व का है। चातुर्मास के लिये निश्चित तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता; पर जैसी क्षेत्र स्पर्शना होगी वैसा कार्य बनेगा।

विमल के दिल में पूरी लगन थी। वह अच्छी तरह से समझता था कि गच्छनायक सूरिजी के विराजने से ही मेरा हृदयान्तर्हित कार्य बड़ी सुगम रीति से सफल हो जायगा इत्यादि [illegible]। पुनः एक समय मेदिनीपुर श्रीसंघ एकत्र मिलकर सूरिजी से चातुर्मास के लिये आग्रह भरी प्रार्थना की। सूरिजी ने भी भविष्य के लाभालाभ का कारण जानकर मेदिनीपुर के श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली। बस फिर तो था ही क्या ? केवल विमल के लिये ही क्यों पर आज तो मेदिनीपुर के घर घर मे हर्ष की तरंगे उछलने लगी।

चातुर्मास में पर्याप्त समय होने से सूरिजी ने इधर उधर के समीपस्थ क्षेत्रों में परिभ्रमण कर धर्म निद्रित समाज को जागृत किया। चातुर्मास के समय के नजदीक आने पर सूरिजी ने पुनः मेदिनीपुर पधार कर चातुर्मास कर दिया। बस विमल के हृदयान्तर्हित मनोरथ भी सफल होगया। उसने सूरिजी से परामर्श कर संघ के लिये और भी विशेष सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया।

इधर चातुर्मास में सूरिजी के व्याख्यान हमेशा तात्विक, दार्शनिक, एवं [illegible] विषयों पर होते थे। जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण के विषयों का भी समन्वय कर दिया जाता जिससे, श्रोताओं का हृदय ससारावस्था में रहते हुए भी वैराग्य से ओत-प्रोत ही रहा करता था। आचार्यश्री के विराजने से इस [illegible] सर्वत्र प्रबल [illegible] में [illegible] का बीजारोपण हुआ और जनता ने खूब लाभ उठाया।

जब चातुर्मास के अवसान का समय सन्निकट आ गया तो विमल ने सूरिजी से प्रार्थना की कि— पूज्यवर ! कृपा कर संघ प्रयाण के लिए परम शान्तिप्रद, [illegible] शुभ मुहूर्त प्रदान करें जिससे सर्व कार्यारम्भ निर्विघ्नतया, परमानन्द पूर्वक हो सके। आचार्यश्री ने [illegible] दिवस का शुभ मुहूर्त प्रदान किया जिससे, विमल ने [illegible] निश्चयपूर्वक [illegible] सूरि- प्रदत्त शुभमुहूर्त पर यथा समय उपस्थित होने के लिये [illegible] आदमियों के द्वारा शुभ संदेश भिजवाये गये। गुरुदेवों (साधु, साध्वियों) को [illegible] अपने भ्राता एवं पुत्रो को भेजे।

एक खास उल्लेखनीय घटना यह बनी कि शाह विमल नागपुर जा कर शाह नोढा संचेती को संघ में पधारने का आमन्त्रण किया कि उस समय शाह नोढ़ा का पुत्र देवा भी पास में बैठा था उसने कहा विमला शाह आप बड़े ही भाग्यशाली हैं कि इस प्रकार आत्मकल्याणार्थ धार्मिक कार्यों में लक्ष्मी का सदुपयोग करते हैं। शाह विमल ने कहा यह आप साहिबों की अनुग्रह का ही सुन्दर फल है जैनधर्म में कारण से ही कार्य का होना बतलाया है शाह देवा समझ गया कि मेरा कहना शायद शाह विमल को ताना रूप हुआ हो और उस कारण को लेकर ही आपने संघ की योजना की हो ? पर ऐसा तो ताना ही अच्छा है कि जिसमें हजारों जीवों के पुन्य बन्ध का कारण बन जाता हो खैर शाह देवा ने कहा विमल शाह यदि आप पांच सात दिन मुहुर्त बदन दें तो हम सब कुटुम्ब के साथ आपके संघ में चल कर तीर्थयात्रा करें। विमल ने कहा बहुत खुशी की बात है यदि आपके जैसे भाग्यशाली मेरे पर इस प्रकार कृपा करते हों तो मुझे पांच सात तो क्या पर अधिक समय भी ठहरना पड़े तो भी इन्कार नहीं है। इस पर विमल की विमलता की कसौटी हो गई और उसी मुहूर्त के समय शाह नोढा-देवा संघ में चलने के लिये तैयार हो गये। अहा-हा कैसा निरभिमान का जमाना था और लोगों के दिल कैसे दरियाव सदृश विशाल थे ? जिसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है इससे ही धर्म की प्रभावना एवं उन्नति होती थी—

ठीक समय पर मेदिनीपुर चतुर्विध श्रीसंघ से भर गया तब सूरीश्वरजी ने शाह विमल को संघपति पद प्रदान किया। इस तरह आचार्यदेव के नायकत्व एवं विमल के संघपतित्व में छरी पालक संघ ने शुभ मुहूर्त में वहाँ से प्रस्थान कर दिया। आचार्य देव के साथ में प्रायः सकल संघ पाद विहारी बन तीर्थ यात्रा के परम सुकृत का लाभ उठाने लगा। चतुर्विध श्रीसंघ से सजा हुआ यह संघ इतनी विशाल संख्या में था कि देखने वालों को माण्डलिक राजा के बृहत् सैनिक समूह का भ्रम हो जाता था।

जब क्रमशः शत्रुञ्जय तीन मुकाम दूर रहा तो सकल जनता के हृदय में तीर्थ स्पर्शन की पवित्र भावना प्रबल रूप से वृद्धिगत होने लगी। अतः प्रातःकाल संघ ने शीघ्र ही उक्त स्थान से प्रस्थान कर दिया। संघपतिजी तो सूरीश्वरजी के साथ में थे इस लिये सूर्योदय के होने पर आचार्य देव के साथ ही रवाना हुए चलते हुए मार्ग में पड़े हुए एक ऐसे बैल को देखा जिसके कि शरीर में कीड़े कलमला रहे थे। स्थान २ से रुधिर धारा प्रवाहित हो रही थी। पक्षी गण चोंच से टोंच कर मांस निकाल उसे विशेष पीड़ित कर रहे थे। वह इस प्रकार से छट पटा रहा था कि मानों देह त्याग की ही आन्तरिक भावना प्रदर्शित कर रहा था। इस प्रकार वर्णनाऽवर्णनीय दारुण वेदना से दुखित बैल को संघपति ने देखा और उसने सूरिजी से कहा—भगवन्। ये भी किसी पूर्वभव कृत अशुभ कर्मोदय के ही फल होंगे ? सूरिजी ने कहा विमल ! इसके ही क्यों पर अपना यह जीव भी इससे अधिक भीम असह्य नारकीय यातनाओं को अनेक बार सहन कर आया है। बैल की पीड़ा के देखने मात्र से ही अपनी दयनीय स्थिति होती है किन्तु जिसके सामने यह कष्ट नगण्य सा है ऐसा परमाधार्मिककृत उपसर्ग पापात्माओं को परवश सहन करना पड़ता है। इस तरह सूरिजी ने विमल के नयनों के समक्ष नारकीय दुःखों का [illegible] चित्र खिंच कर दिया तब पाप से डरपोक विमल ने कहा—भगवन् ! ऐसा भी कोई [illegible] उपाय है कि जिससे कभी किसी भी प्रकार के दुःखों को सहन न करना पड़े ? सूरिजी ने कहा—इन दुःखों से [illegible] [illegible] [illegible] जिन [illegible] यमनियमों (महाव्रतों) को स्वीकार कर योगत्रय से [illegible]

की आराधना करना है। विमल ! साधारण मनुष्य तो क्या ? किन्तु चक्रवर्तों जैसे चतुर्दिशा के स्वामी भी स्वाधीन सुखों पर लात मार कर संयम रूप अमूल्य रत्न को यावज्जीवन सुरक्षित रख अनादि काल से सम्बन्धित जन्म मरण के दुक्खों से छूट कर आत्मशांति परम सुख का अनुभव करते हैं। विमल ने कहा—पूज्यवर ! दीक्षापालन करना भी तो महादुष्कर एवं लोहे के चने चबाना है ? सूरिजी ने कहा विमल ! देख, यह बैल की दारुण यातना असह्य है या दीक्षा पालन दुष्कर है ? विमल ने कहा—यहतो परवश होकर भोग रहा है। सूरिजी ने कहा—जब परवश होकर भी वेदना भोगनी पड़ती है तो सबसे अच्छा यही है कि स्वाधीनपने ही वेदना भोगलें जिससे बलादसह्य वेदना न सहन करनी पड़े। विमल ने कहा—भगवन् मेरी इच्छा सब प्रकार के सांसारिक दुःखों से मुक्त होने की है। सूरिजी ने कहा—विमल ! खूब गहरा विचार करले। देख वैराग्य चार प्रकार के होते हैं।

(१) वियोग वैराग्य– किसी के मृतक शरीर को जलाते हुए देखकर मनुष्य को श्मसानीया वैराग्य आता है परन्तु, वह मृत देह को जलाने के पश्चात् स्नान करने के साथ ही साथ धुप जाता है।

(२) दुःख वैराग्य—जब कभी असह्य दुःख आपड़ता है तब वैराग्योत्पन्न होजाता है। पर वह, दुःख की स्थिरता तक ही सीमित रहता है।

(३) स्नेह वैराग्य—पिता पुत्रादि के स्नेह से जो वैराग्य होता है वह भी क्षणिक समय तक स्थायी नहीं रहता।

(४) आत्म वैराग्य—आत्मा के भावों से सांसारिक स्वरूप को समझ कर जन्म मरण के दुःख से मुक्त होने के लिये जो वैराग्य होता है वह सच्चा वैराग्य है।

सूरिजी—विमल ! तेरा वैराग्य इन चारमें से कौनसा है।

विमल— पूज्यवर ! मेरे वैराग्य में कारण तो इस बैल का दुःख ही है अतः मेरा वैराग्य दुःखगर्भित वैराग्य है किन्तु मुझे दृढ़, स्थायी तथा सच्चा वैराग्य है।

सूरिजी—तब तेरे दीक्षा लेने के भाव कब है ?

विमल – आप आज्ञा फरमावे तब ही।

सूरिजी—शीघ्रमत सिद्ध क्षेत्र में ही तेरी दीक्षा हो जाय तो ..

विमल—बहुत खुशी की बात है गुरुदेव ! मैं भी तैय्यार हूँ।

सूरिजी – तुम्हारा शीघ्र ही कल्याण हो।

नहीं, सब कार्य तो कर चुका हूँ, केवल दीक्षा का काम रहा है सो वह भी कल तक हो जायगा। सूरिजी ने कहा—'जहासुहं'।

सूरीश्वरजी के चरण कमलो में वंदन करने के पश्चात् विमल अपने निर्दिष्ट स्थान पर आया। अपने सकल परिवार को एंव कौटुम्बिक सम्बन्धियों को बुला कर कहने लगा-मेरी भावना कल आचार्यश्री के पास में दीक्षा लेने की है अतः आप सर्व की अनुमति चाहता हूँ। विमल के उक्त हृदय स्पर्शी वचनों को श्रवण कर सब के सब अवाक् रहगये। अन्त में विमल की पत्नी ने विनय पूर्वक कहा प्राणेश्वर ! यदि आपको दीक्षा लेना ही है तो कम से कम संघ को लेकर पुनः अपने घर पधार जाइये। वहां मैं भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करूंगी। विमल ने कहा-जब दीक्षा लेनी ही है तो ऐसे पावन तीर्थ स्थल को छोड़ कर घर जाकर दीक्षा अङ्गीकार करने में क्या विशेष लाभ है ? कुछ भी हो, मैं तो इसी स्थान पर कल दीक्षा ग्रहण करूंगा। इस विषय में विमल के पुत्रों ने भी बहुत कुछ कहा किन्तु विमल, अपने कृत निश्चय पर अडिग रहा। आखिर विमल ने, अपनी पत्नी सहित ११ श्रावक श्राविकाओं के साथ सिद्धाचल के पवित्र आश्रय स्थान में सूरीश्वर जी के कर कमलों से परमवैराग्य पूर्वक दीक्षा स्वीकार की। उस ही दिन से विमल का नाम विनयसुंदर रख दिया गया।

संघपति के उत्तर दायित्व की माला विमल के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपाल को पहिनाई गई। क्रमशः संघ चलकर पुनः मेदिनीपुर आया। संघपति श्रीपाल ने संघ को स्वामी वात्सल्य व सवासेर मोदक में पांच स्वर्ण मुद्रिकाएं डालकर स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी दी। याचकों को प्रचुर परिमाण में दान दे संघ को सुष्ठु प्रकारेण विसर्जित किया।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी ने मरुधर में विहार कर स्थान २ पर जैनधर्म का उद्योत किया। मुनि विनयसुन्दर भी इस समय पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ लेता हुआ मनन पूर्वक शास्त्रों का अभ्यास करने लगा। विमल ऐसे तो स्वाभावतः ही कुशाग्र बुद्धि वाला था, फिर गुरुदेव का संयोग तो स्वर्ण में सुगंध का सा काम करने लगा। परिणाम स्वरूप थोड़े ही समय में विनयसुंदर न्याय, व्याकरण तर्क, छन्द, काव्य, अलंकार, निमित्तादि शास्त्रों का अभ्यास कर उद्भट-अजोड़ विद्वान होगया। विद्वत्ता के साथ ही साथ उस समय के लिये परमावश्यक वाद विवाद की शक्ति संचय में भी अनवरत गति से वृद्धि करने लगे। इतना ही नहीं, कई राज सभाओं के दिग्गज वादियों को नत मस्तक कर उन्हें जिनधर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुयायी बनाये। इसतरह सर्वत्र जैनधर्म की विजयपताका फहराते रहे।

अन्त में योग विद्या से अपना मृत्यु समय नजदीक जान सिद्धसूरि ने अपने अन्तिम समय नागपुर के चातुर्मास के बाद देवी सच्चायिका के परमर्शानुसार, भाद्र गौत्रीय शाः गोल्ह के महा महोत्सव पूर्वक विनय सुंदर मुनि को सूरि पद से विभूषित किया। परम्परानुसार आपका नाम कक्क सूरि रखदिया गया। श्रीसिद्ध सूरिजी तो उसही दिन से अपनी अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये।

उपकेशगच्छाचार्यों में क्रमशः रत्नप्रभसूरि, यक्षदेवसूरि, कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि; इन पांच नामों की परम्परा चली आ रही थी किन्तु काल दोष से किंवा देवी के कथन से रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि, ये दो नाम भण्डार (बंद) कर देने पड़े। अतः अब से कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि ये तीन नाम ही क्रमशः रक्खे जाने लगे। इसी के अनुसार सिद्धसूरि के पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि हुए।

विनयसुन्दर को सूरिपद

आचार्य ककसूरि एक महान् प्रतिभाशाली, तेजस्वी आचार्य हुए। आपके आज्ञानुवर्ती हजारों साधु साध्वी पृथक् २ क्षेत्रों मे विचर कर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे किन्तु काल दोष से कुच्छ श्रमण मण्डली में साधु वृत्ति विषयक यम नियमों में कुछ शिथिलता आचुकी थी। श्री सूरिजी से संयम वृत्ति विघातक शिथिलता सहन न हो सकी। उन्हें इसका प्रारम्भिक चिकित्सोपचार ही हितकर ज्ञात हुआ। वे विचारने लगे कि जिन सुविहितों ने चैत्यवास करते हुए भी शासन की महती प्रभावना की उन्हीं में आज कलिकाल की क्रूरता से चरित्र विराधक वृत्ति ने आश्रय कर लिया है अतः इसका प्रथम स्टेज में अन्तकर देना भविष्य के लिये विशेष श्रेयस्कर है अन्यथा यही शिथिलता भयंकर रूप धारण कर परिष्कृत मार्ग को भी अवरुद्ध कर देगी। बस, उक्त विचार धारानुसार वे शीघ्र ही जावलीपुर पधार गये। वहां के श्रीसंघ को उपदेश से जागृत कर, प्रविष्ट होती हुई शिथिलता को रोकने के लिये, निकट भविष्य में ही श्रमण सभा करने के लिये प्रेरित किया। श्रीसंघने भी धर्मह्रास की दीर्घदृष्टि का विचार कर आचार्यश्री के वचनों को शिरोधार्य किया तत्काल एक सुन्दर योजना बनाकर आचार्यश्री की सेवा में रखदी गई।

उक्त निश्चयानुसार बहुत दूर दूर के प्रदेशो में आमंत्रण पत्रिकाएं भेजी गई। सर्व साधुओं को जावलीपुर में एकत्रित होने के लिये प्रार्थना की गई। आमन्त्रण पत्रिकाओं को प्राप्त कर धर्म प्रेम के पावन रस में लीन हुए, उपकेशगच्छीय, कोरंटगच्छीय, और वीर परम्परागत मुनिवर्ग, एवं श्राद्ध समुदाय ठीक दिन जावलीपुर में एकत्रित हुए। निर्धारित समयानुसार सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम श्रमण सभा-योजना के उद्देश्यों का जन समाज के समक्ष सविशद दिग्दर्शन कराया गया। तत्पश्चात् आचार्यश्री कक्क सूरिजी ने ओजस्वी वाणी द्वारा सकल जन समुदाय को अपनी ओर [illegible] करते हुए प्रेम, संगठन, आचार व्यवहार, समयोचित कर्तव्यादि के अनुकूल विषयों पर [illegible] उपदेश देना प्रारम्भ किया। सूरिजी ने फरमाया कि महानुभावों! आज हम सब किसी एक विशेष [illegible] के कार्य के लिये एकत्रित हुए हैं। हम सबों में पारस्परिक गच्छ-समुदाय का भेद होने पर भी [illegible] आचार व्यवहारों की समानता से जैनत्व का [illegible] रंग सभी मे सरीखा ही है हम सब एक [illegible] हैं। भगवान् महावीर के शासन की रक्षा एवं वृद्धि करना ही सब का परम ध्येय है। किन्तु, वर्तमान में हमारे शासन की क्या दशा होगई है? यह किसी समझदार से प्रच्छन्न नहीं है। जब कि एक ओर [illegible] प्रचार कार्य अनवरत गति पूर्वक चल रहा है तब दूसरी ओर हमारे में [illegible] शिथिलता ने प्रवेश कर दिया है। मृत तुल्य वाममार्गियो मे पुनः जीवन आ रहा है। [illegible] कार्य प्रायः [illegible] सा होगया तथापि [illegible] के नाम पर [illegible] मतमतान्तर एवं समुदायो का प्रादुर्भाव होकर [illegible] रहा है, [illegible] साधुत्व वृत्ति साधक आचार व्यवहार की ओर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। [illegible] पर जैनधर्म का जो स्थायी प्रभाव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आचार विचारो मे [illegible] शिथिलता ने प्रवेश किया [illegible]

भविष्य का उन्नति मार्ग दो प्रकार से अवरुद्ध होजायगा। एक तो स्वयं भी आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावनाओं से, मुक्ति एवं परम निर्वृत्तिमय धाम से सैकड़ों कोस दूर हो जायेंगे और दूसरा भद्रिक जनता के लिये स्वाभाविक अश्रद्धा के कारण बन जावेंगे।

प्यारे श्रमणवर्ग! वीरों की सन्तान वीर होती है न कि कायर। जो कायर हैं वे वीर पुत्र कहलाने के अधिकारी नहीं। हमारा इस अवस्था में (साधुवृत्ति में रहते हुए) क्या कर्तव्य है, यह आप लोगों से प्रच्छन नहीं कारण, हमने सांसारिक एवं पौद्गलिक अस्थिर, क्षणभुङ्गुर सुखों पर लात मार कर, मुक्ति मार्ग की आराधना को चरम लक्ष्य बना, परम कल्याणमय चारित्र पथ स्वीकृत किया है। अतः अपने अन्तिम लक्ष्य को विस्मृत न करते हुए शासनोन्नति करने के साथ ही साथ आत्मोन्नति ध्येय को भी अपनी उन्नति का मुख्य अङ्ग मानकर तन मन से शासन कार्य में जुट जाना चाहिये। इसी में स्वपरोन्नति सन्निहित है।

मैं जानता हूँ कि सिंह थोड़ी देर के लिये तंद्रावश हो निर्जीववत् गिरिकंदरा में सो जाता है तो क्षुद्र मक्षिकाएं भी उसके मुखपर बैठजाती हैं किन्तु जब वह दूसरे ही क्षण हाथ उठाकर गगन भेदी गर्जना करता है तब मक्षिकाएं तो क्या पर, झरते हुए मद से मदोन्मत्त बनी हुई गजराशि भी शक्ति विहीन निस्तेज होजाती है। उदाहरणार्थ—जब उपाध्याय देवचंद्र मुनि ने चैत्यव्यवस्था के कार्य में अपने वास्तविक यमनियम को विस्मृत कर दिया तब, सर्वदेव सूरि की सिंह गर्जना ने उन्हे पुनः जागृतकर उग्रविहारी बना दिया।

श्रमणों! आज मैं अपने बन्धुओं में कुछ शिथिलता का अंश देख रहा हूँ। अतः इसको निवारण करने के लिये ही श्रमण सभा का आयोजन किया गया है। मुझे यही कहना है कि हम लोग आई हुई शिथिलता को दूर कर शीघ्र ही शासनोन्नति के कार्यों में सलंग्न हो जावे। कारण शिथिलता एक चेपी रोग है; इसके फैलने में देर नहीं लगती है। अतः इसके स्पर्श को नहीं होने देने में ही अपना गौरव है। दूसरा शिथिलता का एक कारण यह भी है कि—हमारे अन्दर शिष्य पिपासा बढ़ गई है दीक्षेच्छुकों के त्याग वैराग्य की भी परीक्षा नहीं करते हैं, न उनकी योग्यता को दीक्षा की कसौटी पर ही कसते हैं। बस शिष्य लालसा की पिपासा की धुन में शासन हित की महत्त्व पूर्ण जिम्मेवारी को भूल, नहीं करने योग्य कार्य को भी कर्तव्य रूप बना लेते हैं। अन्त में परिणाम स्वरूप शासन के भारभूत वे अयोग्य दीक्षित रसगृद्धी, लोलुपी, इन्द्रिय पोषक, सुखशलिये बनकर अपने साथ में अनेकों का अहित कर शासन को भारी हानि पहुँचाते हैं। पहिले जो दीक्षाएं दी या ली जाती थीं वे सब कल्याण की उन्नत भावनाओं से प्रेरित होकर के ही किन्तु, सम्प्रति कहीं कहीं इससे विरुद्ध सा ही दृष्टि गोचर हो रहा है। हम लोग अपनी जमात बढ़ाने के लिये योग्यायोग्य का विचार किये बिना प्रत्येक को—चाहे वैराग्य के रंग में रंगा हुआ न भी हो-दीक्षा देते जा रहे हैं। इस प्रकार जबर्दस्ती शिष्य बढ़ाने की अभिलाषा भी तब ही उत्पन्न होती है जबकि हम अपने गुरु को छोड़ बड़े बन अलग होने का प्रयत्न करते हैं।

यदि गुरुकुलवास में रहने में ही गौरव समझा जाता हो तो न तो अलग बाड़ा बंदी की जरूरत है और न अयोग्य को दीक्षा देने की आवश्यकता है। प्यारे श्रमणो! आप दीर्घ दृष्टि से सोच लीजिये कि न इस कुप्रवृत्ति में शासन का हित है और न आत्म कल्याण ही।

प्रिय शासन बन्धुओं! शासन का उद्धार एवं प्रचार आप जैसे श्रमण वीरों ने किया और भविष्य में भी आप जैसे साहसी ही कर सकेंगे। अतः आचार विचार विषयक शैथिल्य को छोड़कर शासन प्रभावना व

स्वहित (आत्म कल्याण) के लिये कटिबद्ध हो जाइये । अपने पूर्वजो ने तो हजारों लाखों दुस्सह यातनाओं एवं कठिनाइयों को सहन कर 'महाजनसंघ' रूप एक वृहद् संस्था संस्थापन की है तो क्या हम इतने गये बीते हैं कि—पूर्वाचार्यों के बनाये महाजनसघ की वृद्धि न कर सकें तो-रक्षा भी न कर सकें ? नहा, कदापि नहीं । मुझे दृढ़ विश्वास है कि अनागत श्रमण वर्ग अवश्य ही अपने कर्तव्य को पहिचान कर शासनोन्नति के कार्य में सलग्न हो जावेंगे ।

साथ ही दो शब्द श्राद्ध वर्ग के लिये प्रसङ्गोपेत कह देना भी अनुचित न होगा । कारण, तीर्थङ्कर भगवान् ने चतुर्विध श्रीसंघ में आपका भी बराबरी का आसन रक्खा है । पूर्वाचार्यों ने इत उत सर्वत्र देश विदेशों में जो जैनधर्म का प्रचार किया है उसमें, आपके पूर्वजों का भी तन, मन, एवं धन से यथानुकूल सहयोग पर्याप्त मात्रा में था । आपका कर्तव्य मार्ग तो इतना विशाल है कि यदि कभी साधु अपनी साधुत्व वृत्ति से विचलित हो जाय तो आप उसे पुनः भक्ति से कर्तव्य मार्गारूढ़ बनाकर शासनोन्नति में परम सहायक बन सकते हैं ।

श्रमण संघ में जो शिथिलता आती है वह भी, श्राद्ध वर्ग की उपेक्षा वृत्ति से ही । जब तीर्थङ्कर, गणधरों ने साधुओं के लिये शीतोष्ण काल में एक मास और चातुर्मास में चार मास की मर्यादा का समय बांध दिया है तथा वस्त्र, पात्र वगैरह हर एक उपकरणों के कल्पाकल्प का नियम बना दिया है तो क्यों कर श्राद्ध वर्ग उक्त नियम विघातक साधुओं को उत्तेजना देकर शिथिलता फैलाते हैं ? इन नियमों का अतिक्रमण कर स्वच्छंद विचरने वाले साधु को श्रावक, हरएक तरह से सन्मार्ग पर ले आने के लिए स्वतंत्र है । यों तो श्रावक, साधुओं के—संयम वृत्ति निर्वाहकों को पूज्य भाव से वंदन करता है पर फिरभी शास्त्रकारों ने इन्हें माता पिता की उपमादी है । रत्नों की माला में साधु, श्रावक को एकसा ही बतलाया है अर्थात्-साधु, श्रावक भगवान के पुत्र तुल्य हैं । उदाहरणार्थ एक पिता के दो पुत्रों में एक भाई के घर में दुष्काल हो तो क्या दूसरा भाई उसकी अवहेलना कर उसे खड़ा देखा करे ? नहीं कदापि नहीं, तो यही बात साधु श्रावकों के लिये समझ लीजिये ।

सूरिजी के इस प्रभावोत्पादक व्याख्यान ने श्रमण एवं श्राद्धवर्ग की सुप्त [illegible] में अपूर्व [illegible] संचालन करदी । वे सब प्रोत्साहित हो सूरिजी से अर्ज करने लगे—भगवन् ! आपका कथन [illegible] सत्य है । आप शासन के शुभ चिंतक हैं । आपकी आज्ञा हम शिरोधार्य करते हैं । हम [illegible] अपना कर्तव्य अदा करने में सदा कटिबद्ध रहेंगे ।

यों तो पूज्य गुरुदेवों ने आत्म कल्याण के लिये पौद्गलिक सुखों का त्याग करके ही [illegible] को स्वीकार की है तो फिर वे अपना या शासन का अहित कैसे करेंगे ? फिर भी [illegible] हम [illegible] कर के या सब [illegible] के [illegible] बनने का प्रयत्न करेंगे ।

इस तरह सूरिजी महाराज का उपदेश [illegible] हुए [illegible] क्या श्रावकों में और क्या साधुओं में—[illegible] सूरिजी के [illegible] [illegible] हो [illegible] के [illegible] कि [illegible] ।

दूसरे दिन एक [illegible] हुई । [illegible] साधुओं के [illegible] जैनधर्म का [illegible] प्रचार करने [illegible] के [illegible]

नवीन स्कीम (योजना) बनाई गई। योग्य मुनियों को पदवी प्रदान कर उनके उत्साह को बढ़ाया गया। प्रत्येक प्रान्त में सुयोग्य पदवीधरों को अलग २ विचरने की आज्ञा प्रदान की गई।

अहा हा, उन पूर्वाचार्यों के हृदय में शासन के प्रति कितनी उन्नत एवं उत्तम भावनाएं थी ! वे शासन का थोड़ा भी अहित, अपनी आंखों से नहीं देख सकते थे। जहां कहीं भी जरासी गफलत दृष्टिगोचर होती—तुरत उसे रोकने का हर तरह से प्रयत्न किया जाता। विशेषता तो यह थी कि उस समय भी कई गच्छ, शाखा कुल एवं गण विद्यमान थे परन्तु नामादिक भेद होने पर भी शासन के हित कार्य में वे सब एक थे। एक दूसरे को हर तरह से सहायता देकर शासन के विशेष महात्म्य को बढ़ाने के लिये उनके हृदय में अपूर्व क्रान्ति की लहर विद्यमान थी। वे आपसी मतभेद खेंचातानी एवं मैं मैं, तूं तू, में अपनी संयम पोषक-शक्ति का अपव्यय नहीं करते थे। यही कारण था कि उस समय करोड़ों की संख्या में विद्यमान जैन जनता संगठन के एक दृढ़ सूत्र में बंधी हुई थी। चारों ओर जैन धर्म का ही पवित्र झंडा फहराता हुआ दिखाई देता था। ये सब हमारे पूर्वाचार्यों की कार्य कुशलता के सुंदर परिणाम थे।

आचार्य कक्कसूरिजी जावलीपुर से विहार करने वाले थे पर जावलीपुर का संघ इस बात के लिये कब सहमत था ? वह घर आई पवित्र गङ्गा को पूर्ण लाभ लिये विना कैसे जाने देता ? अतः सकल श्री संघने परमोत्साह पूर्वक चातुर्मास की विनती की। श्रीसूरिजी ने भी भविष्य के लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली। अब तो श्रीसंघ का उत्साह और भी बढ़ गया। घर घर में आनंद की अपूर्व रेखा फैल गई।

सूरिजी ने चातुर्मास के पूर्व का समय सत्यपुर, भिन्नमालादि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करने में बिताया। पुनः चातुर्मास के ठीक समय पर जावलीपुर में पधार कर चातुर्मास कर दिया।

आचार्यश्री के चातुर्मास में श्रीसंघ को जो जो आशाएं थी वे सब सानंद पूर्ण हुई, सूरिजी का व्याख्यान हमेशा तात्विक, दार्शनिक, आध्यात्मिक त्याग वैराग्य पर हुआ करता था। विशेष लक्ष्य आत्म कल्याण की ओर दिया जाता था। यही कारण था कि चातुर्मास समाप्त होते ही सात पुरुषों और ग्यारह बहिनों ने सूरिजी के कर कमलों मे भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर आत्म श्रेय सम्पादन किया। चातुर्मासानंतर सूरिजी ने विहार कर कोरंटपुर महावीर की यात्रा की और क्रमशः पाल्हिका को पावन बनाया। पाल्हिका में कुछ समय तक स्थिरता कर जनता को धर्मोपदेश द्वारा जागृत करते रहे। जब उपकेशपुर के श्रीसंघ को यह शुभ समाचार ज्ञात हुए कि—आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० पाल्हिका में विराजमान हैं तो वहां का श्रीसंघ अविलम्ब आचार्य देव के दर्शनार्थ आया और उपकेशपुर पधारने की साग्रह प्रार्थना की। सूरिजी जानते थे कि उपकेशपुर जाने पर तो चातुर्मास वहां करना ही पड़ेगा अतः चातुर्मास के पूर्व, भीनमाल, वैराटपुर, शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावती, मेदिनीपुर, फलवृद्धि, नागपुर, मुग्धपुर, खटकूंप नगर, डीडूपुर वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में परिभ्रमनकर धर्म जागृति द्वारा जैन जनता में नवीन स्फूर्ति का प्रादुर्भाव करना विशेष श्रेयस्कर होगा। अतः आगत श्रीसंघ को तो जैसी क्षेत्र स्पर्शना—कहकर विदा किया, इधर आप भी क्रमशः उक्त स्थलों में होते हुए जब माण्डव्यपुर पधारे तब तो उपकेशपुर श्रीसंघ ने, माण्डव्यपुर और उपकेशपुर के बीच चातुर्मास की प्रार्थना के लिये आने जाने का तांता सा बंध दिया। उपकेशपुरीय श्रीसंघ के [illegible] को मान दे सूरीश्वरजी जब उपकेशपुर पधारे तो श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत

जावलीपुर में चातुर्मास

किया। कुमट गौत्रीय शा. भोजा ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव कराया। स्वधर्मी भाइयों को प्रभावना और याचकों को उदार वृत्ति से सन्तोष पूर्ण दान दिया।

भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि के दर्शन कर सूरिजी ने संक्षिप्त किन्तु, सारगर्भित देशना दी। सर्व श्रोतावर्ग आनन्दोद्रेकसे ओत प्रोत हो गये। क्रमशः सभा विसर्जन हुई पर धर्म के परम अनुरागियों के हृदय में नवीन क्रान्ति एवं स्फूर्ति दृष्टि गोचर होने लगी। संघ ने विशेष लाभ प्राप्त करने की इच्छा से आचार्यश्री की सेवा में चातुर्मास की जोरदार विनती की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण जान उक्त प्रार्थना को स्वीकार करली। बस फिर तो था ही क्या ? लोगों का उत्साह एवं धर्मानुराग खूब ही बढ़ गया। सूरिजी के इस चातुर्मास से उपकेशपुर और आस पास के लोगों को भी बहुत लाभ हुआ।

उपकेश पुर में चरड़ गौत्रीय कांकरिया शाखा के शा. थेरु के पुत्र लिंबा की विधवा नानी बहिन अपने घर में एकाएक थी। सूरिजीके वैराग्योत्पाद व्याख्यान से उसे असार संसारसे अरुचि होगई। उसने सूरिजी की सेवा में अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित किया और नम्रता पूर्वक अर्ज की कि-भगवान् ! मेरे पास जो अवशिष्ट द्रव्य है उसके सदुपयोग का भी कोई उत्तम मार्ग बताव। सूरिजी ने फरमाया बहिन शास्त्रों में अत्यन्त पुन्योपार्जन साधन एवं कर्म निर्जरा के हेतुभूत सात क्षेत्र दान के लिए उत्तम बताये हैं इन क्षेत्रों में जहां आवश्यकता ज्ञात हो वहां इस द्रव्य का सदुपयोग कर पुण्य सम्पादन किया जा सकता है। पर मेरे ध्यान से तो यह कार्य प्रामाणिक संघ के अग्रेश्वर को सोंप दिया जाय तो समीचीन होगा। नानी बाई को भी सूरिजी का कहना यथार्थ प्रतीत हुआ और तत्क्षण ही आदित्यनागगौत्रिय सलक्षण, [illegible] गौत्रीय [illegible], चरड़ गौत्रीय पुनड़ और सुचंति गौत्रीय निम्बा इन चार संघ के अग्रगण्य व्यक्तियों को बुलाकर [illegible] रुपयों का स्टेट सुपुर्द कर दिया गया। सुपुर्द करते हुए नानी बाई ने कहा कि-इन रुपयों का [illegible] जैसा उचित ज्ञात हो उस तरह से सदुपयोग करें। मुझे तो अब दीक्षा लेने की है। उन चारों शुभचिन्तकों ने सूरिजी से परामर्श कर उपकेशपुर में एक ज्ञान भण्डार की स्थापना करदी और वर्तमान में मौजूद [illegible] को लिखाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ द्रव्य दीक्षा महोत्सव-पूजा-प्रभावना-स्वामीवात्सल्यादि कार्यों में भी व्यय किया गया। अवशिष्ट द्रव्य के सदुपयोग की सन्तोष पूर्ण व्यवस्था कर दी।

नानी बाई के साथ आठ बहिनें और तीन पुरुष भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये [illegible] के पश्चात् सूरिजी ने शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न में उन दीक्षा के उम्मेदवारों को दीक्षा देदी। [illegible] के बनवाये हुए भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की भी प्रतिष्ठा करवाई। [illegible] पर सूरिजी महाराज मेदपाट, अवन्ति, चेदी, बुंदेलखण्ड, शौरसेन [illegible] आदि प्रदेशों में परिभ्रमण करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पदार्पण कर [illegible] इस विहार के अन्तर्गत आपने कई भावुकों को दीक्षा दी, [illegible] धर्म के उपासक बनाये। [illegible] की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की नींव को सुदृढ़ [illegible] प्रभावना एवं उन्नति की।

[illegible] पधारे [illegible]

नानी बहिन के द्रव्य की व्यवस्था

आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को सूरिपद प्रदान करें, कारण आपकी अवस्था पर्याप्त हो चुकी है। बड़ी कृपा होगी कि यह लाभ यहां के श्रीसंघ को प्रदान करें। श्रीसूरिजी ने भी संघ की प्रार्थना को समयोचित समझ कर स्वीकार करली।

प्राग्वट्ट वंशीय शा. कुम्भाने सूरिपद का महोत्सव बड़े ही समारोह से किया। श्री आचार्यदेव ने भी अपने सुयोग्य शिष्य उपाध्याय मेरुप्रभ को भगवान् महावीर के मंदिर में सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया। शा. कुम्भा ने भी इस महोत्सव निमित्त पूजा-प्रभावना, स्वामी वात्सल्य और आये हुए स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी वगैरह देकर पांचलक्ष्य द्रव्य व्यय से जैन शासन की खूब उन्नति एवं प्रभावना की।

आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने गच्छ के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व को देवगुप्तसूरिके सुपुर्दकर आप अंतिम संलेखना में संलग्न होगये। यह चातुर्मास भी श्रीसंघ के आग्रह से चंद्रावती में कर दिया गया। जब आप श्री ने अपने ज्ञान बल से अपने देहोत्सर्ग के समय को नजदीक जान लिया तो श्रीसंघ के समक्ष आलोचना कर समाधिपूर्वक २४ दिन तक अनशन व्रत की आराधना कर पंच परमेष्टि के स्मरणपूर्वक स्वर्गधाम पधार गये।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं आपने अपने ४३ वर्ष के शासन में अनेक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म की आशातीत सेवा की। पूर्वाचार्यों के द्वारा संस्थापित महाजन वंश एवं श्रमण संघ में खूब ही वृद्धि की। आप द्वारा किये हुए शासन कार्यों का वंशावलियों एवं पट्टावलियों में सविस्तार वर्णन है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से यहां संक्षिप्त नामावली मात्र लिख देता हूँ—

पूज्याचार्य देवके ४३ वर्षों के शासन में भावुकों की दीक्षाएं

१—कवलियां के भूरि गौत्रीय शाह देदो सूरिजी के पास दीक्षा ली
२—खेटकपुर के बाप्पनाग ,, ,, मेघो ,,
३—गोशाणी के चरड़ ,, ,, लाडुक ,,
४—विजापुर के भाद्र ,, ,, नारायण ,,
५—हर्षपुर के प्राग्वट वंश ,, ,, नाथो ,,
६—वीजोड़ा के ,, ,, ,, ,, चोरवो ,,
७—भवानीपुर के आदित्य ,, ,, साहराणा ,,
८—माडव्यपुर के ,, ,, ,, फागु ,,
९—पद्मावती के श्रीमालवंश ,, ,, नोढ़ो ,,
१०—चंदेरी के बोहरा ,, ,, चांपो ,,
११—पदमपुर के बलाहारांका ,, ,, चतरो ,,
१२—आनन्दनगर के सुचंति ,, ,, दुर्गो ,,
१३—नागपुर के कुमट ,, ,, गणो ,,
१४—कुमपुर के कनौजिया ,, ,, गयपाल ,,

१५—गोषाणी के चिंचट गौत्रीय शाह भैरो सूरिजी के पास दीक्षा ली
१६—बाबुला के डिडु ,, ,, हरदेव ,,
१७—हथुड़ी के प्राग्वट ,, ,, पातो ,,
१८—माकोली के श्रीश्रीमाल ,, ,, फूश्रो ,,
१९—रूणावती के मोरख ,, ,, जैतसी ,,
२०—चोराणी के भटेवरा ,, ,, मुकनो ,,
२१—दान्तिपुर के तप्तभट ,, ,, पेथो ,,
२२—डागाणी के प्राग्वट ,, ,, जागो ,,
२३—शाकम्भरी के प्राग्वट ,, ,, सुरजण ,,
२४—पद्मावाड़ के करणाट ,, ,, दोलो ,,
२५—वीरपुर के चोरलिया ,, ,, खीवसी ,,
२६—डागरेल के पल्लीवाल ,, ,, जोगो ,,
२७—कथोली के कुलहट ,, ,, देदो ,,
२८—बुलोल के श्रीमाल ,, ,, धरमण ,,
२९—नटोली के नाहटा ,, ,, नाथो ,,
३०—जेतपुर के भूरि ,, ,, काहड़ण ,,
३१—गुड़की के श्रीमाल ,, ,, सेस्टो ,,
३२—धरगाव के प्राग्वट ,, ,, सुधण ,,
३३—टेलीग्राम के बीरहट ,, ,, भीमण ,,
३४—मादलपुर के प्राग्वट ,, ,, रोड़ो ,,

इनके अलावा भी कई इनके साथियों ने तथा महिलाए ने भी दीक्षा ली परन्तु ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से उपलब्ध नामों से थोड़े नाम यहां पर लिख दिये हैं। इससे पाठक ! समझ सकते हैं कि उस जमाना कैसे संस्कारी था कि वे बात की बात में आत्मकल्याणार्थ घर का त्याग कर निकल जाते थे।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—नागपुर के आदित्य० भीमाशाह ने भगवान् पार्श्व० मन्दिर की प्रतिष्ठा
२—भाषाणी ,, श्रेष्टि० धरमण ने ,, महावीर ,, ,,
३—आलोडी ,, भाद्र० देवाशाह ने ,, ,, ,, ,,
४—कुन्दपुर ,, कुंमटि० नारायण ने ,, ,, ,, ,,
५—हटकुंड ,, चरड़ नाग० लाखा ने ,, पार्श्वनाथ ,, ,,
६—कोराट ,, चोरलिया पातासाने ,, ,, ,, ,,
७—मालिया ,, डिडु० जोगाने ,, आदिनाथ ,, ,,
८—सपाट ,, विरहट० नारायण ने ,, ,, ,, ,,

९—अर्जुनपुरी	के वीरहट० भोमाने	भ० शान्तिनाथ	मन्दिर की	प्रतीष्ठा
१०—विराट्	,, भूरि० देदाने	,, ,,	,	,,
११—सोनाणी	,, प्राग्वट नागदेव ने	भ० महावीर	,,	,,
१२—मादड़ी	,, प्राग्वट सबलाने	,, ,,	,,	,,
१३—मोकाणा	,, तप्तभट्ट० लालाने	,, ,,	,,	,,
१४—शिवगढ़	,, रांका० पद्मा ने	,, ,,	,,	,,
१५—चन्द्रावती	,, प्राग्वट० पुरा ने	,, पार्श्वनाथ	,,	,,
१६—पद्मावती	,, प्राग्वट देसल ने	,, ,,	,,	,,
१७—पांचाड़ी	,, श्रीमाल० कुंपा ने	,, ,,	,,	,,
१८—पद्मावती	,, कुलहट नारायणने	,, ,,	,,	,,
१९—कलावणी	,, प्राग्वट० रामा ने	,, नेमिनाथ	,,	,,
२०—करणावती	,, प्राग्वट जसा ने	,, विमलनाथ	,,	,,
२१—विजापुर	,, श्रेष्टि० गांगाने	,, पार्श्वनाथ	,,	,,
२२—चारोणी	,, पल्लीवाल फागुने	,, ,,	,,	,,
२३—सोजाली	,, मंत्री मेहराने	,, ,,	,,	,,
२४—रहतगढ़	,, श्रेष्टि० गुणाढ़ने	,, महावीर	,,	,,
२५—आभापुरी	,, वीरहट गोल्हा ने	,, ,,	,,	,,
२६—थंभोर	,, भाद्र० पुनड़ने	,, ,,	,,	,,
२७—पासाली	,, भूरि० कॅटराने	,, ,,	,,	,,
२८—कोटरो,,	,, कनोजिया कल्हणने	,, बीस विहरमान	,,	,,
२९—अरहट	,, लघु श्रेष्टि० चोखाने	,, आदीश्वर	,,	,,
३०—नागपुर	,, प्राग्वट रावल ने	,, महावीर	,,	,,

पूज्याचार्य श्री के ४३ वर्ष के शासन में संघा दि सद्कार्य

१—उमरेल का मंत्री राजसी ने	शत्रुंजय का	संघ	निकला
२—सोपारपत्तन का सुचंति शाह टीलाने	,,	,,	,,
३—चन्द्रावती का प्राग्वट सुभाग ने	,,	,,	,,
४—चित्रकोट के मंत्री सुरजणने	,,	,,	,,
५—[illegible] नगर के चिचट नारायण ने	,,	,,	,,
६—मथुरा का श्रेष्टि शाह महजनाल ने	सम्मेत शिखरका		,,
७—कोरंटपुर का श्रीमाल देव ने	शत्रुंजयका	,,	,,
८—[illegible] के मंत्री लालाने	,,	,,	,,
९—[illegible] के श्रीमाल [illegible] ने	,,	,,	,,

सूरिजी के शासन में संघादि सद्कार्य

१०—नागपुर से अदित्य नाग० नोंधण ने शत्रुंजय का संघ निकाला
११—भद्रेसर से श्रीमाल छाप्पाने ,, ,, ,,
१२—धोलपुर के प्राग्वट पोमा की विधवा स्त्री ने गाव के पूर्व दिशा में तलाव खुदायो
१३—पद्मावती के प्राग्वट जैता की पुत्री रूकमणी ने एक वाव खुदाई
१४—शंखपुर में श्रेष्टि साचा की पुत्री धनी ने एक तलाव खुदायो
१५—कोरंटपुर का प्राग्वट जैमल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१६—रामसेणा में भूरि अर्जुन की विधवा पुत्री तालाव खुदायो
१७—शिवगढ़मे श्रेष्ठि नागदेव युद्ध में काम आयो उसकी स्त्री सती हुई
१८—उपकेशपुर का वीर वीरम युद्ध के काम आया ,, ,, ,,
१९—भोजपुर का भाद्र गौत्रीय संगण ,, ,, ,, ,, ,,
२०—नागपुरका मंत्री भोजा ,, ,, ,, ,, ,,
२१—मेदनीपुर का डिड्डू० काल्हण ,, ,, ,, ,, ,,

उस जमाना मे जैन लोग सर्व जनिक उपयोगी कार्य तालाव कुवा वापियों भी खुदाते थे तथा उस जमाने में छोटे छोटे राज थे ओर थोड़े थोडे कारण से आपस में युद्ध करने लग जाते थे उनके सेनापति वगैरह भी उपकेश वंशीय ही होते थे। और वे युद्ध में वीरता के साथ युद्ध कर देवत्व को प्राप्त हो जाते थे तो उनकी स्त्रियां अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त उनके पीछे सतीयो बन जाती थी जिनकी स्मृति के लिये चौतरे वगैरह भी बनाये जाते थे कई स्थानों पर तो अभी तक चौतरे विद्यमान भी हैं और बहुत से [illegible] के कारण नष्ट भी हो गये हैं। सतियों का होना खास कर तो मुगलों का भारत में राज होने के बाद इस प्रथा का अन्त हो गया यद्यपि ऐसा मरण प्राय बाल मरण ही कहा जाता प्रशंसा करने योग्य नहीं है पर उस समय की वंशावलियों मे इस बात को उल्लेख किया है अतः मैंने भी यहाँ दर्ज कर दिया है इससे यह ज्ञान हो जायगा कि किस समय तक यह प्रथा चलती रही थी।

पूज्याचार्यदेव के शासन मे यात्रार्थ संघ एवं शुभ कार्य्य

१—उपकेशपुर से श्रेष्टि० रावल ने शत्रुंजय का संघ निकाला
२—नागपुर से आदित्य० [illegible] ने ,, ,, ,,
३—शाकम्भरी से [illegible]० जैता ने ,, ,, ,,
४—[illegible] से प्राग्वट० [illegible] ने ,, ,, ,,
५—[illegible] से श्रीमाल० दुर्गा ने ,, ,, ,,
६—वीरपुर से [illegible] राजा ने ,, ,, ,,
७—[illegible] से [illegible] ,, ,,
८—[illegible] से श्रेष्टि० [illegible] ने ,, ,, ,,
९—[illegible] से [illegible] ने ,, ,, ,,
१०—[illegible] से [illegible] ने ,, ,, ,,

११—स्तम्भनपुर से श्रीमाल० सहारण ने शत्रुंजय का संघ निकाला
१२—छुनावपुर से प्राग्वट० नोढ़ा ने " " "
१३—मथुरा से मोरख० नारायणने सम्मेत शिखर का "
१४—मेदनीपुर से कुमट० सहदेव ने शत्रुंजय का " "
१५—रत्नपुरा से देसरडा० नाथा ने " " "
१६—माडव्यपुर से श्रेष्टि० नारायण ने " " "
इनके अलावा भी बहुत से तीर्थों के संघ निकाले

१—वि० सं० ५६४ में जन संहार दुष्काल पड़ा महाजन संघ ने असंख्य द्रव्य व्यय
२—वि० सं० ५७२ में सर्व देशी दुष्काल० मारवाड़ के महाजन संघ ने " " "
३—वि० सं० ५८१ में मारवाड़ में दुकाल पड़ा उपकेशपुर के महाजनों ने " " "
४—वि० सं० ५९३ में बड़ा भारी कहत पड़ा महाजनों ने असंख्य द्रव्य व्यय किये
५—वि० सं० ५९९ में भयंकर दुकाल पड़ा " " " "
६—उपकेशपुर का श्रेष्टि पृथ्वीधर युद्ध में काम आया उनकी स्त्री सतीहुई
७—नागपुर का आदित्य ० मंत्री जेहल युद्ध में " " "
८—चन्द्रवती प्राग्वट सोभो युद्ध में काम आयो " " "
९—पद्मावती का प्राग्वट मंत्री कोक " " " "
१०—मोजाळी का डिडु० छोनो " " " " "
११—भाद्रगौत्र सलखण की विधवा पुत्री क्षत्रीपुर में बावड़ी बनाई
१२—बलाहगौत्र रामा की विधवा स्त्री राजपुर में तालाव खोदाया
१३—वीरपुर के सुचंति नारायण की स्त्री ने एक कुवा खोदायो
१४—जैतपुर के चरड़-कांकरिया पेथाने तलाव खुदायो
१५—खेतड़ी के तप्तभट्ट० नागदेवी की स्त्री लोजी ने तलवा खोदाया
इनके अलावा भी महाजनों ने अनेक जनोपयोगी कार्य कर देश भाइयों की सेवा कर अपनी उदारता का परिचय करवाया

पट्ट छतीसवें कक्कसूरि हुए, श्रेष्टिगौत्र के भूषण थे
करे कौन स्पर्द्धा उनकी, समुद्र में भी दूषण थे
प्रभाव आपका था अति भारी, भूपति शिर झुकाते थे
तप संयम उत्कृष्टी क्रिया, सुरनर मिल गुण गाते थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के छतीसवें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि महान प्रभाविक हुए

इति आचार्य कक्कसूरि का जीवन

जैनधर्म पर विधर्मियों के आक्रमण विक्रम की छटी शत्ता में हूण जाति का वीर विजयी राजा तोरमण भारत में आया और पंजाब में विजय कर अपनी राजधानी कायम की। जैनाचार्य हरिगुप्त सूरि ने तोरमण को उपदेश देकर जैनधर्म का अनुरागी बनाया तथा तोरमण ने अपनी ओर से भ० ऋषभदेव का मन्दिर बना कर अपनी भक्ति का परिचय दिया इस विषय का उल्लेख कुवलयमाल कथा में मिलता है।

तोरमण के उत्तराधिकारी उसका पुत्र मिहिरकुल हुआ मिहिरकुल कट्टर शिवधर्मी था और साथ में बौद्ध व जैनधर्म के साथ द्वेष भी रखता था अतः मिहिरकुल के हाथ में राजसत्ता आते ही जैन एवं बौद्धों के दिन बदल गये। मिहिरकुल ने जैनों एवं बौद्धों पर इस प्रकार क्रूरतापूर्वक अत्याचार गुजारना शुरू किया कि मरूधर के जैनों को अपने प्राणों एवं जनमाल की रक्षार्थ जननी जन्म भूमि का परित्याग कर अन्यत्र (लाटा सौराष्ट्र) की ओर जाकर अपने प्राण बचाने पड़े।

उपकेशवंशियों की उत्पत्ति का मूल स्थान मरूधर भूमि ही है पर बाद में कई लोग अपनी व्यापार सुविधा के लिये तथा कई लोग विधर्मियों के अत्याचार के कारण अन्योन्य प्रान्तों में जाकर अपना निवास स्थान बनालिया और अद्यावधि वे लोग उन्हीं प्रान्तों में बसते हैं।

विक्रम की सातवी आठवी शताब्दी में कुमारेल भट्ट नामक आचार्य हुए वे शुरू मे जैन एवं बौद्धाचार्यों के पास ज्ञानाभ्यास किया था पर बाद में जैन एवं बौद्धों से खिलाफ होकर उनके धर्म का खण्डन भी किया था पर जब आपको जैनाचार्य का समागम हुआ और उपकारी पुरुषों का बदला किस प्रकार दिया जाय इस विषय में कृतज्ञ और कृतघ्नीत्व के स्वरूप को समझाया गया तो आपको अपनी भूल पर बहुत पश्चाताप हुआ। आखिर आपको अपनी भूल का प्रायश्चित करना पड़ा। श्रीमान् शंकराचार्य भी आपके समकालीन ही हुए थे। जब शंकराचार्य को मालूम हुआ कि कुमारेल भट्ट इस प्रकार का प्रायश्चित कर रहे हैं तब शंकराचार्य चल कर कुमारेल भट्ट के पास आये और उनको बहुत समझाने पर भट्टजी ने अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये अपने किया हुआ निश्चय से विचलीत नहीं हुए।

श्री शंकराचार्य और कुमारेल भट्ट के समय जैन एवं बौद्धों का सितारा तेज था इन दोनों धर्मों का काफी प्रचार था महाराष्ट्र प्रान्त में तो जैन धर्म राष्ट्र धर्म ही माना जाता था किन्तु शंकराचार्य के यह कब सहन हो सकता था उन्होंने जैन एवं बौद्धों के खिलाफ भरसक प्रयत्न किया। यद्यपि वे स्वयं [illegible] में जैन धर्म को इतना नुकसान नहीं पहुंचा सके तथापि वे अपने कार्य में सर्वदा निष्फल भी नहीं हुए उन्होंने जो बीज बोये थे आगे चल कर जैनों के लिये अहित कारी ही सिद्ध हुए। शंकराचार्य पहले ही [illegible] वेदों की हिंसा एवं हिंसामय यज्ञादि क्रिया काण्ड से जनता घृणा करने लग गई थी अतः शंकराचार्य ने उनका रूप बदल दिया था और कलिकाल की आड़ लेकर कई विधानों का निषेध भी कर दिया था जैसे कि—

"अग्नि होत्रं गवालम्भं सन्यासं पल पैतृकम्। देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥"

ऐसी ऐसी बहुत युक्तियों से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर पुनः ब्राह्मण धर्म में [illegible] का सफल प्रयत्न किया। यद्यपि उस समय जैनाचार्य एवं विशेषतः [illegible] ने [illegible] उन्होंने जैनधर्म को विशेष हानी नहीं पहुँचने दी पर फिर भी प्रान्त में जैनों की संख्या कम होती [illegible]

[illegible]

शुद्धि मशीन चलती ही रहती थी वे दूसरे प्रान्त में नये जैन बना कर उस क्षति की पूर्ति कर ही डालते थे। फिर भी जैनों के लिए वह समय बड़ा ही विकट समय था क्योंकि एक ओर तो जैन श्रमणों में आचार शिथिलता एवं चैत्यवास के नाम पर ग्रामोग्राम श्रमणो का स्थिरवास और दूसरी ओर विधर्मियों का संगठन आक्रमण तथापि शुभचिन्तक सुविहित एवं उग्रविहारी आचार्यों शासन की रक्षा करने को कटिबद्ध रहते थे पाठक उन आचार्यों का जीवन पढ़कर अवगत होगये होंगे कि वे अपनी विद्वतापूर्ण एवं कार्य कुशलता से धर्म की रक्षा किया करते थे।

विक्रम की सातवीं शताब्दी में पांड्य देश में सुन्दर नामक पांड्यवंश का राजा राज करता था और वह कट्टर जैनधर्मोपासक था किन्तु उसकी रानी और मंत्री शिवधर्मी थे उन्होंने पांड्य देश में शिव धर्म का प्रभुत्व स्थापन करने का निश्चय किया और ज्ञानसम्बदर नामक शिव साधु को बुलाकर राज सभा में कुछ चमत्कार बतलाकर जैनों को परास्त कर राजा को शिवधर्मी बना लिया। बस, फिर तो कहना ही क्या था कई प्रकार के प्रपंच रच कर कोई आठ हजार जैन मुनियों को मौत के घाट उतार दिये।

इसी प्रकार पल्लव देश के राजा महेन्द्रवर्मा को शिवसाधु द्वारा जैनधर्म छोड़ा कर शिवधर्मी बनाया गया और जैनधर्म को इतनी ही क्षति पहुचाइ गई कि जितनी पांड्य राजा ने पहुचाई थी जिसका वर्णन 'पेरिया पुराणम्" ग्रंथ में है।

इसी समय वैष्णव लोगों ने अपना धर्म प्रचार करना प्रारम्भ किया और जैन धर्म को बड़ी भारी हानि पहुँचाई। मदुराके मीनक्षी मन्दिर के मण्डप की दीवाल की चित्रकारी में जैनियों पर शिव और वैष्णवों द्वारा किये गये अत्याचारों की कथा अंकित है जिसको पढ़ने से अत्यंत दुःख होता है।

बीजर नगर के पुस्तकालय में जैनियों को कष्ट पहुचने के दो चीत्र है जिसमें एकचित्र में अनेक जैनों को शूली पर लटका कर मारने का दृश्य है तब दूसरे चित्र में शूली पर चढ़ा कर लोहा के शिनाये में बुरी हालत में मारने का दृश्य दिखाया गया है।

लिंगायत मत का स्थापक वासवदत्त ने विज्जल की सहायता से दश हजार श्रमणों को शूली चढ़ा कर उनकी लाशों काग और कुत्तों को खिलाइ गइ इसका रोमोंच कारी वर्णन हलस्यमहात्म्य नाम का ग्रन्थ में है।

राजा गणपत देव ब्राह्मणों की चूगल में आकर निरपराध जैनों को तेल का कोल्हुओं में डाल कर बुरी तरह मरवाये—तथा किसी समय जैनों और ब्राह्मणो के आपस में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें ब्राह्मणों ने कंकी द्वारा जैनियों को पराजयकर-जैनों की कत्ल करवादी इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान है

इसके अलावा भी शिव वैष्णव और रामानुजादि धर्म वालों ने जैन धर्म पर घोर अत्याचार कर बहुत क्षति पहुँचाई पर जैनधर्म अपनी सच्चाई के नाते जीवित रहा और रहेगा। जैनधर्म की यह एक बड़ी भारी विशेषता है कि उसने उत्कर्ष के समय किसी दूसरे धर्म पर अत्याचार नहीं किया था यदि जैन चाहते तो सम्राट् सम्प्रति के समय सम्पूर्ण भारत को जैन बना सकते तथा राजा कुमारपाल के समय १८ देशों को जैनधर्मी बना सकते थे पर न तो जैनों ने कभी बलजबरी से किसी को जैन बनाया और न [illegible] [illegible] ही देते हैं। जैनों ने जो कुछ किया है। वह अपने धर्म के मौलिक तत्वों का उपदेश देकर ही किया है और [illegible] हुए राजाओं के साथ इतना [illegible] किया है।

३७—आचार्य श्री देवगुप्त सूरि (सप्तम)

श्रेष्ठयाख्यान्वय एप राजसचिवः श्रीदेवगुप्ताविधो
भव्यः स्वापरधर्मपारगतयाऽनेकान् जनान् निर्ममे ।
जैनान् ग्रन्थगणं स वै विहितवान् रम्याश्च देवालयान्
धीरोऽभीष्टफलप्रदो विजयतामाचार्य चूडामणिः ॥

परमोपकारी, पूज्यपाद आचार्य श्री देवगुप्त सूरीश्वर जी महाराज विश्व विश्रुत, संसारोपकारी, प्रखर धर्म प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। आपका शासन समय जैनधर्म के लिए एक विकट समय था तथापि, आप जैसे शासन शुभचिंतक आचार्य के विद्यमान होने से शासन के हित साधन विरुद्ध किञ्चिन्मात्र भी क्षति नहीं पहुँच सकी। आपका जीवन अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं से ओतप्रोत है। पट्टावलीकारों ने आपके जीवन की प्रत्येक घटना को बड़े ही विस्तार पूर्वक लिखी है किन्तु, मैं अपने उद्देश्यानुसार यहां पर आपके जीवन का संक्षिप्त दिग्दर्शन करवा देता हूँ।

परमपवित्र, अनेक भावों की पातक राशि को प्रक्षालन करने मे समर्थ, [illegible] तीर्थ की पवित्र छाया का आश्रय लेने वाली अमरापुरी से भी स्पर्धा करने वाली, गगनचुम्बी जिनालयों से सुशोभित पद्मावती नाम की नगरी थी। पाठक इस नगरी के विषय मे पहले भी पढ़ चुके हैं कि [illegible] नगर के राजा जयसेन के पुत्र चन्द्रसेन ने इस नगरी को आबाद की थी। यहां का रहने वाला [illegible] जनवर्ग (राजा और प्रजा) जैन धर्म का ही उपासक था। यहां के राजघराने ने तो जैनधर्म के प्रचार में तन, मन, धन, एवं दैहिक, मानसिक शक्ति से पूर्ण सहयोग दिया था। [illegible] था कि उस समय जहां कहीं भी दृष्टि डाली जाती थी सर्वत्र जैनधर्म ही जैनधर्म दृष्टि पड़ता था। जैसे [illegible] नरेश जैन था वैसे ही वहां के सकल कार्यकर्त्ता भी जैनधर्म के परमानुयायी, परम [illegible] थे।

पद्मावती नगरी उस समय लक्ष्मी का निवास स्थान ही बन चुकी थी। [illegible] पद्मावती के लिये भी सदैव चरितार्थ होती थी। लक्ष्मी के निवास में— [illegible] लोकोक्त्यनुसार पद्मावती के व्यापारिक क्षेत्र की उन्नति ही [illegible] रिक सम्बन्ध आसपास के क्षेत्रों तक या भारत पर्यन्त ही सीमित नहीं था [illegible] था। कई व्यापारियों की विदेशों में पेढ़ियां (दुकानें) थी [illegible] के केन्द्र बन गये थे। उस समय पद्मावती में [illegible] नहीं किन्तु [illegible] थे। बेचारे लक्षाधीश तो साधारण गृहस्थ की गिनती में ही गिने जाते थे।

पद्मावती नगरी में [illegible]
[illegible]
[illegible]

बन कर व्यापार करने लग जाता था तथा मकान भी बनालेता था यही कारण है कि अन्योन्य स्थानों के जैन भाई चन्द्रावती में आकर वास एवं व्यापार करते थे।

एक यह बात भी बहुत प्रसिद्ध है कि चन्द्रावती नगरी में ३६० अर्वपति जैन बसते थे और उनकी ओर से एक एक दिन स्वामि वात्सल्य भी हुआ करता था जिससे चन्द्रावती के जैनों को घरपर रसोई बनाने की जरूरत ही नहीं रहती थी। जैनों की इस प्रकार उदारता ने अन्य लोगों पर खूब ही प्रभाव डाला था और इस प्रकार सुविधा के कारण अन्य लोग बड़ी खुशी के साथ जैन धर्म स्वीकार कर स्व-पर आत्मा का कल्याण करने में भाग्यशाली बनते थे। यही कारण है कि एक समय भारत और भारत के बहार जैनों की संख्या चालीस करोड़ की कही जाति थी। कोई भी धर्म क्यों न हो पर उसमें उपदेश के साथ सहायता एवं सुविधा मिलती हो वह जल्दी बढ़ जाता है अर्थात् उस धर्म का प्रचुरता से प्रचार हो सकता है।

प्रस्तुत चंद्रावती नगरी में प्राग्वटवंशावतंस, श्रावकव्रत नियम निष्ठ, न्यायनीति निपुण शा. यशोवीर नाम के धन जन सम्पन्न श्रेष्ठिवर्य सकुटुम्ब निवासकरते थे। आपकी राज्य नीति कुशलता से आश्चर्यान्वित हो चंद्रावती के अधीश राव श्रीसज्जनसेनजी ने आपको अपने राज्य में अमात्य पद से विभूषित किया था। षोडश कला से परिपूर्ण कलानिधि की शुभ्र ज्योत्स्ना के समान मंत्री यशोवीर की कार्य दक्षता एवं उदारता की यशोगाथा भी सर्वत्र विस्तृत थी। आपकी कार्य शैली ने राजा और प्रजा सब को मंत्र मुग्ध सा बनालिया था। सर्वत्र शान्ति एवं आनंद की अपूर्व लहरें ही दृष्टि गोचर होती थी। श्रीयशोवीर की गृहदेवी का नाम रामा था। रामा भी सरल स्वभावी धर्म प्रेमी कर्तव्य निष्ठ श्राविका थी। इसने सात पुत्रियों और तीन पुत्रों को जन्म देकर अपना जीवन कृतार्थ कर लिया था। तीनों पुत्रों के नाम क्रमशः शा. मगधन, खेता और खीवसी थे।

मंत्री यशोवीर का घराना परम्परा से ही जैन धर्म का परमोपासक था। आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि ने पद्मावती नगरी के राजा प्रजा को जैन धर्म में दीक्षित (संस्कारित) किये थे अतः आप पद्मावती प्राग्वट वंशीय कहलाते थे।

मंत्री यशोवीर बड़ा ही समयज्ञ एवं नीतिज्ञ था। अतः उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मगधन को तो राष्ट्रीय राजकीय नीति विद्या में परम निष्णात बनाया और खेता खेवसी के लिये लम्बा चौड़ा व्यापारिक क्षेत्र स्वतंत्र कर दिया।

श्रीयशोवीर, इतने बड़े पद का अधिकारी होने पर भी धर्म कार्य में अत्यन्त ही श्रद्धा रखने वाला था। प्रभुपूजा और सामायिक वगैरह श्रावक के नियमों में अत्यन्त दृढ़ था। कभी भी अपने प्रहण किये नियमों का भंग नहीं होने देता था। यदि राजकीय जटिल समस्याओं के कारण कभी युद्ध वगैरह में जाना पड़ता तो प्रभु पूजा और प्रतिक्रमणादि कार्यों को तो वह छोड़ता भी नहीं था। तथा सेठानी रामा बड़े कुटुम्ब वाली थी पर उसने कौटुम्बिक झंझटों में भी अपने नित्य नियमों को नहीं भूला। वह अटूट श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक अपना नित्य कर्म किया ही करती थी। पूर्व जमाने के दम्पति इस असार संसार में धर्म को ही एक मूल्य [illegible] समझते थे। वे गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी संसार से प्रायः विरक्त से ही रहते थे। जैनाचार्यों का उपदेश भी वैराग्यवर्धक ही होता था अतः उनका वैराग्य; आचार्यश्री के उपदेश [illegible] [illegible] उद्दीपित हो जाता था।

मंत्री यशोवीर ने अपने पुत्रों के लिये क्रमशः राजकीय एवं व्यापारिक शिक्षा का प्रबन्ध कर रक्खा था अतः अपनी विद्यमानता में ही अपने ज्येष्ठ पुत्र मंडन को अपनेपद (मंत्रीपद) पर और खेता खेतसी को व्यापारिक क्षेत्रमें लगादिये । इस तरह अपने पद का उत्तर दायित्व अपने पुत्रों को सौंप कर यशोवीर आत्म-कल्याण के मार्ग में संलग्न हो गया ।

मंत्री यशोवीर ने चंद्रावती नगरी के बाहिर विविध पादपलताओं से समन्वित, नाना प्रकार के पुष्पों की मन मोहक सौरभ से सौरभशील, नयनाभिराम एक उपवन लगवाया था । उक्त उपवन में भगवान् महावीर का अत्यन्त कमनीय, जिनालय बनवा आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई थी । उसी समय से आपने चतुर्थव्रत (ब्रह्मचर्य व्रत) ले लिया था । सांसारिक प्रवृत्तियों में रहते हुए भी जल कमल वत् निर्लेप हो साधु वृत्ति के अनुरूप ही शान्तिमय जीवन व्यतित करता था । बस उपवन के एकान्त निर्विघ्न स्थान में शान्तिपूर्वक अवशिष्ट आयुष्य को धर्माराधन में लगा दिया । वास्तव में उस समय के जीव बहुत ही लघुकर्मी होते थे । सांसारिक कार्यों मे आत्म कल्याण के परम निवृत्ति मार्ग को नहीं भूलते थे ।

मंत्री मंडन की वय पचास वर्ष की हो चुकी थी । आपके इस समय [illegible] सात पुत्र और दो पुत्रियां भी विद्यमान थीं । एक समय मण्डन अपने घर में सोया हुआ था कि पास ही के किसी घर में एक युवक की मृत्यु होजाने से उसकी वृद्धा माता और तरुण पत्नी का करुण रुदन उसके कानों में सुनाई पड़ा । इस रुदन को सुन पहले तो उसे बहुत ही कर्ण कटु एवं सुख मे खलल पहुँचाने वाला [illegible] मालूम हुआ पर जब उसने गहरे मननपूर्वक अपनी आत्मा की ओर देखा तो उसे निश्चय होगया कि — संसार में जन्म लेने वालों को इसी तरह मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ता है । जब उक्त युवक के मर जाने से इनके कुटुम्बियों को इतने दुख का अनुभव करना पड़ रहा है तो मरने वाले को तो मृत्यु के समय कैसा भयंकर दुःख सहन करना पड़ता होगा ? अरे ये कौटुम्बिक लोग तो अपने स्वार्थ के लिये रो रहे हैं पर इस मृत जीव ने तो न मालूम कैसे निकाचित कर्म बांधे हैं और न जाने किस गति का अनुभव किया है । धन्य है कि — मेरे [illegible] सांसारिक, कौटुम्बिक मिथ्या मोह-प्रपञ्च से विरक्त हो एकान्त में धर्माराधन पूर्वक आत्म [illegible] कर रहे हैं । वे इस जन्म मरण के अनादि सम्बन्धित दुःखों को मिटाने के लिए ही [illegible] पर धर्म पुण्याराधन-विहीन मेरे जीवन की क्या हकीकत होगी ? अरे ! मैं तो रात दिन [illegible] प्रपञ्चों में उलझा हुआ उसी को सुलझाने मे अपने कर्तव्य की इति श्री समझ रहा हूँ पर मृत्यु के पश्चात् न मालूम किन २ यातनाओं का अनुभव करना होगा ? मेरी तो इसमें केवल उदरपूर्ति का स्वार्थ के सिवाय अन्य कोई भी स्वार्थ (आत्म) सिद्धि नहीं होने का है । अहो ! मेरे जैसा इस संसार में कौन मूर्ख [illegible] एक तुच्छ, निस्सार पदार्थ के लिये अमूल्य, सुरदुर्लभ मानव देह को [illegible] रहा हूँ । बस मण्डन ने शेष रात्रि आत्म विचारों में ही व्यतीत करदी । प्रातः [illegible] नित्यानुसार [illegible] मन्दिर गया और सेवा, पूजादि [illegible] उपाश्रय में विराजमान गुरु महाराज को वंदन कर उनके [illegible] सुख शान्ति [illegible], विचार मग्न हो बैठ गया ।

गुरु महाराज ने मण्डन को [illegible] — [illegible] राजकीय कार्यों से [illegible] मात्र भी फुरसत नहीं मिलती, [illegible]

बैठा हुआ है ? इसके चेहरे पर भी उदासीनता की स्पष्ट रेखा झलक रही है, अतः इसका कोई न कोई गम्भीर कारण अवश्य ही होना चाहिये। चिन्तित मण्डन को चिन्तामग्न देख गुरु महाराज ने कहा:-मण्डन! आज क्या ध्यान लगा रहे हो ?

मण्डनः— गुरुदेव ! आप बड़े ही सुखी हैं।

गुरु— हाँ, संयमी तो सदैव ही सुखी रहते हैं। वे इस लोक में ही नहीं किन्तु पर लोक में भी सदा सुखी रहते हैं। क्या तू भी सुखी होना चाहता है ?

मण्डन— गुरुदेव ! सुखी होना कौन नहीं चाहता ?

गुरु— तब तो निवृत्ति मार्ग के लिये सत्वर तत्पर होजाइये।

मण्डन— भगवन् ! मैं तो तैयार ही बैठा हूँ।

गुरु— क्या अपने राजा और माता पिता की अनुमति ले आया है ?

मण्डन— राजा की अनुमति की तो आवश्यकता ही क्या है ? माता पिता तो स्वयंमेव आत्म कल्याण में संलग्न हैं, वे मुझे क्यों कर रोकेंगे ?

गुरु— आश्चर्य करते हुए कहा मण्डन अनुमति की आवश्यकता तो रहती है।

मण्डन— अच्छा-गुरुदेव मैं अनुमति ले आता हूँ।

उक्त वचन कह मण्डन ने गुरु महाराज को सविधि वंदन किया और गुरु महाराज ने भी उसके बदले में परम कल्याणकारी धर्मलाभ-शुभाशीर्वाद दिया। मण्डन घर चला गया।

आचार्य ककसूरिजी म स्थण्डिल पधार कर वापिस आये तो सकल साधुओं ने अपने आसन से उठकर आचार्यश्री का अभिनंदन किया। कई एकों ने आचार्यश्री के पादप्रमार्जन किये। क्रमशः सूरिजी भी इरियावही का पाठ करते हुए पट्ट पर विराजमान हुए तदन्तर अपने सकल शिष्य समुदाय को मंत्री मण्डन के दीक्षा की बात कही तो सब को आश्चर्योत्पन्न हुआ कि—यकायक राजा का मंत्री दीक्षा लेने को कैसे तैयार होगया ? सूरिजी ने कहा—श्रमण वर्ग ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? कर्म विचित्र प्रकार के होते हैं। क्या नृत्य करते हुए ऐलापुत्र को केवल ज्ञान नहीं हुआ ? माता मरुदेवी, और भरतचक्री, कूर्मापुत्र पृथ्वीचंद्र, गुणसागरादिकों को गृहस्थ वेष में केवल ज्ञान नहीं हुआ ? तो फिर मण्डन की दीक्षा की बात में आश्चर्य ही क्या ?

संसार के पौद्गलिक सुखों में फंसे हुए मनुष्य की दीक्षा विषयक आत्म कल्याण भावना को सुनकर श्रमण समुदाय में भी खुशी होगईथी। वास्तव में—"पर कल्याणे संतुष्टाः साधवः"

इधर मंत्री मण्डन अपने मातापिता के पास आकर दीक्षा की अनुमति मांगने लगा। पर माता पिता को भी अचानक दीक्षा का नाम श्रवण कर आश्चर्य व कौतूहल होने लगा। जब कि [illegible] सांसारिक [illegible] राजकीय [illegible] कुटुम्ब पालन का कार्य मण्डन को सौंप दिया गया तो फिर वह [illegible] कार्यों से मुक्त होकर दीक्षा के लिये किन कारणों से उद्यत हुआ ? यह गम्भीर [illegible] [illegible] में तर्क करने वाली और असमंजस में डालने वाली हुई। कुछ ही क्षणों के पश्चात् मण्डन [illegible] मण्डन के वैराग्य का कारण व पौद्गलिक पदार्थों की क्षण भङ्गुरता के विषय को [illegible] [illegible] का वैराग्य भी द्विगुणित होगया। वे अपनी वृद्धावस्था में भी दीक्षा लेने को [illegible]

राजा ने सुना कि मंत्री यशोवीर और मण्डन दीक्षा के लिये उद्यत हो गये हैं; तो वह भी स्वधर्मी पना के नाते चल कर मंत्री के घर आया और उनकी हरएक तरह परीक्षा की। परीक्षा में वे सबके सब सौंटंच का स्वर्ण की भांति उत्तीर्ण होगये। राजा ने मत्री मण्डन के ज्येष्ठ पुत्र राघल को मंत्री पद अर्पण कर स्वयं ने उन सबों की दीक्षा का शानदार महोत्सव किया। आचार्य कक्कसूरि ने मंत्री यशोवीर, सेठानी रामा और मण्डन व उन के साथ संसार से विरक्त हुए १७ अन्य नर नारियों को भगवती दीक्षा देकर मण्डन का नाम मेरुप्रभ रख दिया।

सूरिजी के चरण कमलों की सेवा करते हुए मुनि मेरुप्रभ ने थोड़े ही समय में वर्तमान जैन साहित्य का, एवं आगमों का, लक्षण विद्याओं का अध्ययन कर लिया। सूरिजी ने भी जाब्लीपुर में मेरुप्रभमुनि को उपाध्याय पद और चन्द्रावती मे सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्तसूरि महान् प्रभाविक, तेजस्वी आचार्य हुए हैं! आपकी विद्वत्ता का प्रकाश सूर्य की भांति सर्वत्र विस्तृत था। आप जैसे मंत्री पद पर रह कर पर चक्रियों को परास्त करने में प्रवीण थे वैसे ही षट्दर्शन के मर्मज्ञ होने से परदर्शनियों का पराजय करने में भी प्रखर पण्डित थे। चंद्रावती चातुर्मास के समाप्त होने पर वहां से विहार कर आसपास के प्रदेशों में परिभ्रमन करते हुए आप श्री ने क्रमशः लाट देश में पदार्पण किया। जिस समय आचार्यश्री स्तम्भनपुर में विराजते थे उस समय भरोंच में बौद्ध भिक्षु अपने धर्म प्रचार के स्वप्न देख रहे थे। जब भरोंच के अग्रेसरों ने सुना कि वादी चक्रवर्ती आचार्यश्री देवगुप्तसूरि स्तम्भनपुर में विराजते हैं तो वे तुरत एक डेपुटेशन लेकर आचार्यश्री की सेवा में आये। भरोंच नगर की वर्तमान परिस्थिति का वर्णन करते हुए संघ ने आचार्यश्री को पधारने के लिये जोर दार प्रार्थना की। सूरीश्वरजी ने भी भावी अभ्युदय का कारण जान, धर्म प्रभावना से प्रेरित हो तुरत भरोंच की ओर विहार कर दिया। श्रीसंघ ने बड़े उत्साह से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। बस, सूरिजी के पधारने मात्र से वहां की जैन समाज में नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव एवं नव क्रान्ति का अङ्कुर स्फुरित हुआ।

सूरिजी का व्याख्यान प्रायः दार्शनिक एवं तात्त्विक (स्याद्वाद, कर्मवाद, [illegible]) विषयों पर होता था। षट्दर्शनो के परम ज्ञाता होने से दार्शनिक विषयो का स्पष्टीकरण तो इतना रुचिकर होता था कि श्रोतावर्ग मंत्रमुग्ध हो वहां से उठने की इच्छा ही नहीं करता।

बौद्धों के दिलों में उम्मेद थी कि जैनाचार्यों के अभाव में हम लोग अपने प्रचार कार्य में पूर्ण सफल होवेंगे किन्तु आचार्यश्री का पदार्पण सुनते ही उनके हृदय में सफलता विफलता का [illegible]। नवीनर शकाओं ने नव र स्थान बनालिये पर इससे वे एकदम हतोत्साह नहीं हुए, वे बड़े [illegible] थिया निपुण थे। एक समय उन्होंने शास्त्रार्थ के लिये जैनों को आह्वान किया जिसको सूरिजी [illegible] ने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। बस भरोंच [illegible] के राजसभा के [illegible] जैन और बौद्धों का शास्त्रार्थ हुआ पर, स्याद्वाद सिद्धान्त के सामने बेचारे [illegible] [illegible] जैसे सिंह की गर्जना को सुन कर बिना प्रयत्न [illegible] [illegible] है, वैसा ही हाल आचार्यश्री के सामने बौद्धों का हुआ।

भरोंच में बौद्धों की यह पहिली ही पराजय नहीं थी किन्तु इसके पूर्व भी कई बार वे जैनाचार्यों से पराजित हो चुके थे। [illegible] [illegible] एक ही [illegible] के इस [illegible] [illegible]

रहते थे कि जिनको शुरु से ऐसी शिक्षा दी जाति थी तीसरा उनका विहार क्षेत्र भी अत्यन्त विशाल था। बौद्धों का भ्रमन भी उन्ही क्षेत्रों में अधिक था अतः जहाँ जहाँ शास्त्रार्थ का चांस हाथ आया वहां २ उन्हें पराजित होना पड़ता था कई एकों को जैन दीक्षा से दीक्षित किया। उनकी उन्नति की नींव को एकदम कम-जोर एवं खोखली बनादी। अतः बौद्ध भिक्षु आचार्यश्री का नाम श्रवण करते ही एक स्थान से दूसरे स्थानपर पलायन करते रहते थे।

जब भरोंच में बौद्धों का पराजय हुआ तो वे वहां से शीघ्र ही भाग गये इससे भरोंच श्रीसंघ का उत्साह और भी बढ़ गया और वे आचार्यश्री की सेवा में अत्यन्त आग्रह पूर्वक चातुर्मास के लिये प्रार्थना करने लगे। आचार्य देवगुप्तसूरि ने भी लाभ का कारण जान वह चातुर्मास भरोंच नगर में ही कर दिया। बस, आचार्यश्री के चातुर्मास निश्चय के शुभ समाचार श्रवण कर सर्वत्र आनंद रसका समुद्र ही उमड़ने लगा।

चातुर्मास की दीर्घ अवधि में सूरिजी का व्याख्यान क्रमशः दार्शनिक तात्त्विक आध्यात्म, योग, समाधि, एवं त्याग वैराग्य पर हुआ करता था। आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ जैन जैनेतर विशाल संख्या में लेते थे। कई वादी प्रतिवादी जिज्ञासा दृष्टि से किवां शंका समाधान की प्रवृत्ति से व्याख्यान के बीच व्याख्यानोद्भूत शंका विषयक प्रश्न पूछते थे जिनका समाधान सूरिजी शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा इस प्रकार करते थे कि, सकल जनसमुदाय एक दम उनकी ओर आकर्षित होजाता। सब निर्निमेष दृष्टि पूर्वक अवलोकन करते हुए आचार्य श्री की शान्ति सुधा का परम शान्तिपूर्वक पान किया करते थे। गुरुदेव के चातुर्मास से जैन जनता को लाभ पहुंचना तो स्वाभाविक प्रकृति सिद्ध था ही किन्तु, जैनेतर समाज पर जो इसका अक्षय प्रभाव पड़ा वह तो वर्णतोऽवर्णनीय है। कई सज्जन तो सूरीश्वरजी के भक्त बन गये।

सूरिजी, भरोंचपत्तन का चातुर्मास समाप्त कर सोपारपट्टन की ओर पधारे। वहां आपने कई दिनों तक स्थिरता की। इसी दीर्घ स्थिरता के बीच एक जैन व्यापारी के द्वारा आपने सुना कि—महाराष्ट्र प्रान्त में इस समय विधर्मियों की प्रबलता बढ़ती जारही है। जैनियों को हर तरह से दबाया जा रहा है। साधुओं के विहार के अभाव में वहां धर्म के प्रति पर्याप्त शिथिलता आगई है—बस उक्त हृदय विदारक समाचारों को श्रवण कर आचार्यश्री एकदम चौंक उठे। वास्तव में जिनकी नशों में जैनधर्म के प्रति अनन्य अनुराग है, उनको जैनधर्म के हानि विषयक किञ्चित् समाचार भी असह्य से होजाते हैं। धर्म प्रभावना के परम इच्छुक आचार्य देवका भी यही हाल हुआ उन्होंने अपने शिष्य समुदाय को बुलाकर अत्यन्त दर्दनाक शब्दों में महाराष्ट्र प्रान्तकी धार्मिक अवस्था का वर्णन किया और उधर विहार कर धर्मप्रचार करने की उत्कट भावना को वर्ण रूप में व्यक्त की। आचार्यश्री के कथन को सुनकर शिष्य समुदाय ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक कहा—भगवन्। आपके आदेशानुसार हम सब आपकी सेवा के लिये तैय्यार हैं। आप खुशी से विहार करें। इसका कारण एकतो सब साधु गुरुआज्ञा के पालक थे दूसरा सब ही नये २ प्रदेशों में विहार करने के इच्छुक थे। वास्तव में भगवान् की आज्ञाराधना पूर्वक सतत विहार करने से ही चारित्र की विशुद्धता, धर्मका प्रचार तीर्थों की यात्रा और ज्ञानका विकास होता है।

यदि साधु अपनी सुविधा देख एकाध प्रान्त में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त करे तो उसे साधु-त्व के कर्तव्य से बहुत दूर समझना चाहिये। इस प्रकार प्रान्तीय मोह से वह न तो जैनधर्म का प्रचार कर सकता है और न अपने चारित्र गुण को भी सुरक्षित रख सकता है। यही, नहीं सभी प्रान्त में बार २ विहार करना

रहने से साधुओं के प्रति श्रद्धा में भी कुछ अन्तर होजाता है। वास्तव में नीति का यह निम्न कथन—

अतिपरिचयादवज्ञा सततगमनादनादरोभवति । मलये भिल्लपुरंध्री चंदनतरुकाष्ठानिन्धनं कुरुते ॥

सत्य ही है यदि प्रान्तीय मोह का त्याग कर साधु-विहीन क्षेत्रों में साधु, धर्म प्रचार करते रहे तो इससे शीघ्र ही धर्मोन्नति होसकती है और चारित्र भी निर्मल रीति से पाला जा सकता है। किन्तु, चाहिये इसके लिये प्रान्तीय व्यामोह का त्याग और जिनशासन की उन्नति की उच्चत्तम—उत्कर्षभावना।

शास्त्रकारों ने ऐसे शिथिलाचारियों को, ग्रामपंडोलिये, नगरपंडोलिये, देशपंडोलिये कह कर पासत्थों की गिनती में गिना है।

हम ऊपर पढ़ आये हैं कि उपकेशगच्छ में एक भी ऐसे आचार्य नहीं हुए जो कि, सूरि होने के बाद एकाध प्रान्त में ही विचरते रहे हो। उन्होंने अपने जीवन का विहार क्रम भी इस प्रकार बना लिया कि वे अपने क्रमानुसार प्रत्येक प्रान्त को सम्भालते ही रहे। कम से कम एक बार तो प्रत्येक प्रान्त में विचर कर वे जैन समाज की सच्ची परिस्थिति का अनुभव कर ही लेते थे। यही कारण था कि उस समय का जैनधर्म एवं जैनसमाज धन, जन, संख्यादि सर्व बातों में उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ था। आचार्य देव व अन्य श्रमण वर्ग भी, पूर्वाचार्यों द्वारा स्थापित महाजनसंघ की वृद्धि एवं जैनधर्म की क्रान्ति, जैन धर्म का प्रचार चतुर्दिक पर्यटन करते हुए—किया करते थे।

जब व्यापारी वर्ग व्यापार निमित्त इतर प्रान्तों में अपना व्यापारिक क्षेत्र कायम करते थे तब श्रमण समुदाय भी यदाकदा उन प्रान्तों में विचर कर उन श्रावकों की धर्मभावना को जागृत कर अन्य-धर्मावलम्बियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मावलम्बी बनने का श्रेय सम्पादन करते रहते थे। यही कारण था कि प्रत्येक प्रान्त में जैनियों की विशाल संख्या होगई थी। पिछले आचार्यों ने तो सर्वत्र विहार करना—अपना कर्त्तव्य ही बना लिया था। इसी विहार कर्त्तव्य के कारण वे लाखों की संख्या में स्थित महाजनसंघ को करोड़ो की संख्या में ले आये थे। अस्तु

आचार्य देवगुप्त सूरिने अपने शिष्यों के साथ महाराष्ट्र प्रान्त की ओर विहार कर दिया। क्रमशः छोटे बड़े ग्रामों को स्पर्शते हुए सर्वत्र धर्मोपदेश द्वारा नव जागृति का बीज बोते हुए आगे बढ़ते रहे। ऐसी दीर्घ अपरिचित क्षेत्रों की यात्रा में मुनियों को थोड़ी बहुत तकलीफ का अनुभव तो अवश्य ही करना पड़ा होगा पर, जिन्होंने अपना जीवन ही शासन सेवा के लिये अर्पण कर दिया उनके लिये कठिनाइयां क्या विघ्न उपस्थित कर सकती हैं? वास्तव में—

"मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्"

वे तो अपना धर्म प्रचार रूप पावन कर्त्तव्य को अपने जीवन का [illegible] [illegible] की परवाह किये बिना शासन को उन्नत बनाने के लिये अपने [illegible] देह को अर्पण करने को तत्पर थे। उनके नसों में जैन धर्म के प्रति [illegible] कृत्रिम अनुराग नहीं था किन्तु उन्होंने जैन धर्म की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझ ली थी।

महाराष्ट्र प्रान्त में [illegible], [illegible], [illegible] के द्वारा कई [illegible] थी। अतः इस समय में ही महाराष्ट्र प्रान्त में [illegible]

पर आचार्यों का विहार तो श्रमण मण्डली के धर्म प्रचार में भी उत्साह वर्धक सिद्ध होता इसके सिवाय महाराष्ट्र प्रान्त में यत्र तत्र दिगम्बराचार्यों का भी भ्रमन प्रारम्भ हो चुका था। यह लिखना भी अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि दिगम्बरों के लिये भी महाराष्ट्र प्रान्त एक विहार क्षेत्र बन गया था। संख्या में दिगम्बर साधु नग्नवाद के कारण बहुत कम थे और जो थे वे भी प्रायः महाराष्ट्र प्रान्त में ही विचारते थे।

आचार्य देवगुप्तसूरि दो वर्ष तक महाराष्ट्र प्रान्तों में सर्वत्र अनवरत गति से, धर्म प्रचार की तीव्रोत्कंठा पूर्वक भ्रमण करते रहे। परिणाम-स्वरूप आपकी प्रखर प्रतिभा सम्पन्न विद्वता द्वारा वादी इतने फीके पड़ गये जैसे कि-सहस्र रश्मिधारक सूर्य की दीप्ति के समक्ष खद्योत। जैनियों की क्षीण शक्तियों में पुनः सजीवनता का प्रादुर्भाव हुआ। सर्वत्र (जिधर दृष्टि फैलाये उधर) जैनधर्म की विजय पताका फहराने लग गई। एक समय जैन समाज पुनः चमक उठा। वास्तव में इन कर्म वीरों ने अपनी कार्य कुशलता से संसार में जो जैन धर्म की प्रभावना की है वह; जैन इतिहास में स्वर्णाक्षरों से सदा ही अंकित रहेगी।

आचार्य देवगुप्त सूरिने श्रमण समुदाय एवं श्राद्धवर्ग (उभय पक्ष) को सविशेष प्रोत्साहित करने के लिये मदुरा में एक श्रमण सभा करने का आयोजन किया। स्थान २ पर संदेशे एवं पत्रिकाएं भेजी जाने लगी। महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त में विचरते मुनियों में से अग्रगण्य मुनिवर्ग जिनकी कि खास आवश्यकता प्रतीत हुई-निमंत्रण द्वारा बुलाये गये। जब निर्धारित समय पर उभयपक्ष (साधु, श्रावकसमुदाय) की विशाल संख्या उपस्थित होगई तो आचार्यश्री के अध्यक्षत्व में सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

आचार्य देवने, वर्तमान में श्रमण सभा करने की आवश्यकता का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए, महाराष्ट्र प्रान्त में विहार कर धर्म प्रचार करने का शुभ श्रेय सम्पादन करने वाले मुनियों को यथा योग्य सम्मान से सम्मानित किया। उनकी—कार्यक्षेत्र में विशेष उत्साह बढ़ानेवाली सच्ची प्रशंसा की। भविष्य के लिये जोरदार शब्दों में प्राचीन आचार्यों के ऐतिहासिक उदाहरणों से उन्हें प्रोत्साहित किया। योग्यतानुसार उन्हें पदवियां प्रदान की। यावत् अपने साधुओं में से बहुत से साधुओं को धर्म प्रचार के लिये महाराष्ट्र प्रान्त में विचरने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार श्रमण सभा के कार्य को सफलता पूर्वक समाप्त करने के पश्चात् कालान्तर से आचार्यश्री ने वहाँ से विहार कर आवन्तिप्रदेश की ओर पदार्पण किया। माँडवगढ़ के श्रीसंघ के विशेष आग्रह से वह चातुर्मास भी सूरीश्वर जी ने माण्डवगढ़ में कर दिया। आपश्री के विराजने से चातुर्मास में अच्छा धर्मोद्योत हुआ। क्रमशः वहां से बुंदेलखण्ड होते हुए शूरसेन की ओर पधारे। जब आप मथुरा के नजदीक पहुँचे तो वहां के श्रीसंघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा। उन्होंने आचार्य श्री का स्वागत एवं नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह पूर्वक किया। उस समय मथुरा में जैनों के सैकड़ों मन्दिर एवं स्तूप विद्यमान थे।

आपश्री का व्याख्यान हमेशा ही होता था। व्याख्यान श्रवण का लाभ जैन व जैनेतर समाज बड़े ही हर्ष पूर्वक लेती थी कारण एकतो आपकी विषय प्रतिपादन शैली इतनी सरस थी कि विद्वान व साधारण व्यक्ति भी समान आनंद अच्छी तरह से उठा सकते थे दूसरा बोलने की पद्धति जादू की तरह जन समाज को स्वयं अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। अतः जिस व्यक्ति ने एक बार भी आचार्यश्री का व्याख्यान सुना फिर वह प्रतिदिन ही तीव्र उत्कण्ठा पूर्वक व्याख्यान श्रवण का लाभ लेता।

उस समय जैसे मथुरा में जैनियों का जोर था वैसे तरह से बौद्धों का भी [illegible]

[illegible]

उनके भी सैकड़ों साधु मथुरा में धर्मप्रचारार्थ स्थिरवास कर, रहते थे। पर आचार्य देवगुप्तसूरि एवं अन्य जैनाचार्यों का भी उन पर इतना प्रभाव पड़ा हुआ था कि वे यनते प्रयत्न उनके सामने सिर उठाने का दुस्साहसही नहीं करते। महाराष्ट्र प्रान्त में बौद्धों के धर्म प्रचार का मार्ग अवरुद्ध होजाने का कारण एक मात्र पूज्यपाद, आचार्य देवगुप्त सूरि ही थे। बौद्ध श्रमणसमुदाय आचार्यश्री की विद्वत्ता से अनभिज्ञ नहीं थे। अतः वे मौन रहने में ही अपना मान समझने लगे।

मथुरा के श्रीसघ के अत्याग्रह होने से यह चातुर्मास आचार्यश्री ने मथुरा में ही करने का निश्चय कर लिया इससे जैन जनता में अच्छी जागृति और धर्म की खूब प्रभावना हुई। आपश्री के त्याग वैराग्य के व्याख्यानों का जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और चातुर्मास के उतरते ही पांच पुरुष और तीन बहिनो ने असार संसार से विरक्त होकर महा महोत्सव पूर्वक आचार्यश्री के पास में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली। उक्त दीक्षाओं का महोत्सव श्रेष्टिगोत्रीय शाः हरदेव ने किया जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया गया।

इस अवधि के बीच आपश्री ने बप्पनाग गोत्रीय शा. चांचग के बनवाये हुए पार्श्वनाथ भगवान् के मंदिर की प्रतिष्ठा भी महा महोत्सव पूर्वक करवाई। बाद में आपने भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याण भूमि की स्पर्शना के लिये काशी की ओर विहार किया। कुछ समय तक काशी एवं काशी के आस पास के [illegible] की यात्रा करते हुए धर्मोपदेश देते रहे।

काशी की तीर्थ यात्रा के पश्चात् आपश्री का विहार कुनाल और पजाब प्रान्त की ओर हुआ। उक्त प्रान्तों में आपके आज्ञानुयायी कई मुनि पहले से ही आपश्री के आदेश से धर्म प्रचार कर रहे थे [illegible] प्रचारक श्रमण मण्डली ने आचार्यश्री का आगमन सुना तबतो दूने वेग से एवं दूनी रफ्तार से उन्होंने अपने प्रचार कार्य को बढ़ाया। आचार्यश्री भी स्थान २ पर उनको सन्मान देते हुए, प्रशंसा करते हुए उनके उत्साह में खूब वृद्धि करते रहे। उस समय पञ्जाब प्रान्त का जैन समाज तो बहुत ही उन्नत हो चुका था। हमारे उन पूर्वाचार्यों ने धर्मविहीन इस पञ्जाब क्षेत्र में क्षुधा पिपासा व [illegible] [illegible] के परिषहों को सहन करते हुए [illegible] पूर्वक धर्म प्रचार किया था।

इधर सिंध प्रान्त में विचरने की आवश्यकता ज्ञात होने से आचार्यश्री ने [illegible] मण्डली को उनके क्षेत्रावश्यक संकेत करते हुए आप भी सिंध प्रान्त की ओर [illegible] कर दिया। [illegible] प्रान्त में वे दो वर्ष पर्यन्त लगातार भ्रमण करते रहे। स्थान २ पर [illegible] के अभिमुख बनाया। उस प्रान्त में विचरने वाले मुनियों की एक [illegible] समुदाय को एकत्रित कर उनके धर्म प्रचार के कार्य की [illegible] वाचक, गणि, [illegible] पदवियों से विभूषित किया गया [illegible] मुनियों में भी धर्म प्रचार [illegible] भी उत्साह पूर्वक [illegible] [illegible] [illegible] धर्म प्रचार के कार्य के लिये [illegible] [illegible] पर इसके लिये [illegible] धर्म प्रचार की [illegible]

धर्मानुराग की सच्ची लगन, श्रमण कर्तव्य की अभिज्ञता, जीवन का उच्चतम ध्येय, संयम जीवन की निर्मलता।

इस तरह सिंध प्रान्त में जागृति की बिजली लगाते हुए आचार्यश्री कच्छ भूमि की ओर पधारे। वास्तव में उस समय के आचार्यों ने एक प्रान्त को ही धर्म प्रचार का अङ्ग नहीं बना लिया था वे तो अपने योग्य मुनियों को धर्म प्रचारार्थ विविध प्रान्तों में समयानुकूल भेजते ही रहते। उनको विशेष उत्साहित करने के लिये स्वयं आचार्यश्री भी क्रमशः विविधप्रान्तों में पर्यटन कर उनके कार्यों में सहयोग दे उनमें नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव करते रहते थे। यह ही आदर्श पाठकों ने हरएक आचार्य के जीवन में देखा व सम्प्रति श्रीदेवगुप्तसूरिजी के जीवन में भी देख रहे हैं। आचार्यश्री ने कच्छभूमि में एक वर्ष पर्यंत रह कर अपने मधुर एवं रोचक उपदेश के द्वारा जैन जनता में आशातीत शक्ति का संचालन किया।

इस तरह अनुक्रम से शिष्य समुदाय को प्रोत्साहित करते हुए आपश्री के चरण कमल सौराष्ट्र प्रान्त की ओर हुए। छोटे बड़े ग्रामों में विहार करते हुए आप परमपावन तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय की यात्रा कर परमानंद को प्राप्त हुए। कुछ समय तक आत्म शांति का अनुभव करने के लिये आपश्री शत्रुञ्जय तीर्थ की छत्रछाया में स्थित रहे। यहां पर आप ध्यान मग्न हो परम निवृत्ति मार्ग का (आत्म-ध्यान का) आराधन करते रहे। कुछ समय की निवृत्ति सेवन के पश्चात् लाट होते हुए आपने पुनः मरुधर की ओर पदार्पण किया जब मरुधर वासियों ने आचार्यश्री देवगुप्त सूरिका आगमन सुना तो उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा। वे अत्यन्त आशा पूर्वक आचार्यश्री के पधारने की उत्कण्ठा पूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

आचार्यश्री ने इस दीर्घ विहार में अपने पूर्वजों के कर्तव्यों के अनुसार कई मांस मदिरा रसिकों को मिथ्यात्व, पोषक पापवर्धक वस्तुओं का त्याग करवा कर; उन्हे पूर्वाचार्यों द्वारा संस्थापित विशाल महाजन संघ में सम्मिलित कर; महाजन संघ की वृद्धि की। धर्म को स्थिर रखने वाले, ऐतिहासिक साहित्य का स्मरण कराने के लिये परमोपयोगी, जन कल्याण में कारण रूप, साध्य की प्राप्ति के लिये साधन रूप कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन ऐतिहासिक नींव को दृढ़ किया। आत्म कल्याण की भावना के इच्छुक; सांसारिक प्रपञ्चों एवं पौद्गलिक सुखों से एक दम विरक्त, दृढ़ वैरागी भावुकों को भागवती दीक्षा दे उन्हें मोक्षमार्ग के आराधक बनाये। इस तरह शब्दतों अवर्णनीय, शासन सेवा का लाभ लिया।

इस समय सूरिजी महाराज की वृद्धावस्था हो चुकी थी पर आपका उत्साह एवं कार्य करने की लगन युवकों को भी शर्माने वाली थी। जब आप क्रमशः विहार करते हुए पद्मावती में पधार गये तब आपश्री के दर्शन का दीर्घ काल से पिपासु शिवपुरी वगैरह का संघ सत्वर ही दर्शनार्थ पद्मावती आया उन्होंने शिवपुरी पधारने और चातुर्मास का लाभ देने की अत्यन्त आग्रह पूर्ण प्रार्थना की किन्तु पद्मावती का संघ इस अलभ्य अवसर को या यकायक घर आई गङ्गा का सदुपयोग किये बिना [illegible] जाने देने वाला था? पद्मावती संघ की विनती तो शिवपुरी के श्रीसंघ से भी अधिक आग्रह पूर्ण [illegible] आचार्यश्री को भी पद्मावती की विनती को मान देना ही पड़ा। परिणाम स्वरूप वह चातुर्मास पद्मावती में कर दिया गया।

सूरिजी के विराजने से [illegible] तो यहाँ धर्म का खूब ही उद्योत हुआ, पर [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] ने एक साथ की [illegible] एवं करोड़ों रुपयों [illegible]

अत्यन्त समारोह पूर्वक सूरिजी के पास दीक्षा ली। डिड्डू गौत्रीय शा. नोढा के बनाये महावीर मंदिर की भी प्रतिष्ठा इसी बीच हुई।

चातुर्मासानंतर वहां से विहार कर चन्द्रावती शिवपुरी वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में होते हुए आचार्यश्री कोरंटपुर पधारे। उस समय वहां कोरंटगच्छीय आचार्यश्री सर्वदेवसूरिजी विराज मान थे। उन्होंने जब आचार्यश्रीदेवगुप्तसूरि का शुभ आगमन सुना तो वे, अपने शिष्यों सहितसूरिजी का सत्कार करने के लिये उनके समुखगये। श्रीसंघ ने भी बड़े ही समारोह से सूरिजी का नगर प्रवशमहोत्सव किया। इसमें श्रीमाल-वंशीय शाह खुमाण ने सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। सूरिजी ने चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान् महावीर की यात्रा की। बाद में दोनों आचार्य देवों ने एक तख्त पर विराजमन होकरथोड़ी किन्तु समयानुकूल सारगर्भित देशना दी। जनता पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

कोरंटपुर में विराजते हुए सूरीश्वरजी का एक दिन यकायक स्वास्थ्य खराब होगया। रात्रि को सोते हुए उन्होंने विचार किया कि—मेरी वृद्धावस्था हो चुकी है और स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं है। हो न हो मेरा मृत्युकाल ही नजदीक हो अतः इस समय किसी गच्छ के योग्य मुनि को पट्टभार दे देना ही समीचीन होगा। वे इसी विचारधारा में प्रवाहित हो रहे थे कि देवी सच्चायिका ने भी यकायक वहां पर आकर प्रवेश कर सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया। धर्मलाभ आशीष को प्राप्त करने के पश्चात् देवी ने प्रार्थना की कि भगवन्! आप किसी तरह की चिन्ता न करें। अभी तो आप [illegible] वर्ष पर्यन्त और जनकल्याण करेंगे। प्रभो, एतद्विषयक विशेष विचार की आवश्यकता नहीं फिर भी यदि आपको जल्दी पट्टधर बनाना ही है तो कृपया उक्त कार्य को उपकेशपुर पधार कर ही करें। पूज्यवर! इससे मुझे भी आपकी परोक्ष सेवा का यत्किञ्चित लाभ भी हस्तगत होगा। सूरिजी ने भी क्षेत्र स्पर्शनानुसार देवी के वचनों को स्वीकृत किया और देवी भी सूरिजी को वंदन कर यथास्थान चली गई।

देवी के कथनानुसार आचार्यश्री के स्वास्थ्य में थोड़े ही समय में सन्तोषजनक सुधार हो गया। अतः शरीर के पूर्ण स्वस्थ होने पर आचार्यश्री ने तुरत ही कोरंटपुर से विहार कर दिया। क्रमशः सूरिजी सत्यपुर, भिन्नमाल, जाबलीपुर, श्रीनगर आदि ग्रामों में विचरते हुए माण्डव्यपुर पधारे माण्डव्यपुर श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। जब उपकेशपुर श्रीसंघ को ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री माण्डव्यपुर पर्यन्त पधार गये हैं तो उपकेशपुर और माण्डव्यपुर के बीच आने जाने का तांता लग गया। वे लोग उपकेशपुर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना करने लगे पर माण्डव्यपुर के भक्त लोग सूरिजी को कब विहार करने देने वाले थे।

उस समय माण्डव्यपुर, उपकेशपुर की [illegible] था। उपकेशपुर के [illegible] राव शोभा को वहां के [illegible] एवं [illegible] व्यवस्था के लिये नियुक्त किया था। उसने सूरिजी से बहुत आग्रहपूर्ण प्रार्थना की कि, पूज्य गुरुदेव! आपके विराजने से और [illegible] पर मेरी आत्मा का कल्याण तो अवश्य ही होगा। भगवन्! मैं [illegible] आप [illegible] (पत्र) की [illegible] ही [illegible] होगया है। अतः आप यहां पर ही चातुर्मास करने की कृपा करें।

इधर उपकेशपुर का [illegible], श्रीसंघ [illegible] लेकर सूरिजी की प्रार्थना के लिये माण्डव्यपुर [illegible]

आया। सूरीश्वरजी की सेवा में उपकेशपुर पधारने की अत्यन्त आग्रहपूर्ण प्रार्थना करने लगा पर आखिर माण्डव्यपुर का श्रीसंघ ही भाग्यशाली रहा। सूरिजी ने माण्डव्यपुर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर, माण्डव्यपुर में चातुर्मास कर दिया। उपकेशपुराधीश रावगोपाल ने माण्डव्यपुर के श्रीसंघ और विशेष करके राव शोभा को धन्यबाद दिया। सबके समक्ष अपने हृदय के शुभ उद्गार प्रगट किये कि माण्डव्यपुर श्रीसंघ अत्यन्त पुण्यशाली है, यही कारण है कि सकल मनोकामना को पूर्ण करने सदृश कल्पवृक्ष समान, आत्मारम योगी आचार्यश्री ने माण्डव्यपुर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यहां पर चातुर्मास करने का निश्चय कर लिया है। इसके प्रत्युत्तर में आचार्यश्री का कृपापूर्ण उपकार मानते हुए सहर्ष हृदय से राव शोभा ने कहा कि—राजन्! आचार्य देवके साथ ही साथ आपश्रीमानों की परम कृपा का ही यह मधुर फल है। इस प्रकार से थोड़े समय तक स्नेहवर्धक वार्तालाप होता रहा। अहः उस समय का जमाना कैसी धर्मभावना वाला था। पारस्परिक स्नेह का कैसा आदर्श आदर्श था? वे लोग अखूट लक्ष्मी के स्वामी होने पर भी कितनी निरभिमानता एवं भद्रिक परिणामी थे। वे पातक से भीरू एवं धर्म के परमश्रद्धा सम्पन्न नियम निष्ठ श्रावक थे। बस, धर्मभावना के आधिक्य से ही उस समय का समाज धन, जन, एवं कौटुम्बिक सुखों से सुखी था। आत्म कल्याण के निवृत्तिमय मार्ग का आराधक था।

माण्डव्यपुर में सूरिजी के चातुर्मास होने से आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रबल क्रान्ति मची। सबके हृदय, धर्म भावनाओं से ओतप्रोत होगये माण्डव्यपुर के श्रेष्टि गौत्रीय रोव शोभा ने सवालक्ष्य द्रव्य व्यय कर श्री भगवतीजी सूत्र का महोत्सव किया श्रीगौतमस्वामी द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका आदि से पूजा की। उस द्रव्य से जैनागम लिखवा कर स्थान २ पर ज्ञान भण्डार स्थापित किये एवं जैनसाहित्य को स्थिर बनाया इस तरह राव शोभा इस स्वर्णोपम अवसर का तन, मन एवं धन से लाभ लेता रहा।

श्रीआचार्यदेव की वृद्धावस्था जन्य अशक्तता के कारण कभी २ व्याख्यान उपाध्याय पद विभूषित मुनिश्री ज्ञानकलशजी फरमाया करते थे। आपश्री की व्याख्यान शैली भी अत्यन्त रुचिकर एवं चित्ताकर्षक थी। जनता जल तृषित व्यक्ति की तरह आप श्री के मुखारविंद से शास्त्रीय पीयूष धारा का अनवरत पान किया करती थी।

इधर श्री राव शोभा की वय ५६ वर्ष की हो चुकी थी। इस समय आपके ११(ग्यारह) पुत्र और पौत्रादि का, विराट परिवार था। आपकी गनती कोट्याधीशों में की जाती थी। आपके ज्येष्ट पुत्र का नाम धन्नाशा। आप जैसे राज्य संचालन करने में नीति दक्ष थे वैसे ही व्यापार निपुण भी थे तथा शान्ति, उदारता गम्भीरता, सुशीलता आदि गुणों में भी बलिष्ट थे। राजकीय सत्ता के उच्चाधिकारी पद पर आसीन होते हुए भी अपने निजी गुणोंसे अमर ख्याति प्राप्त करली थी। माण्डव्यपुर निवासियों को आपके शान्तिपूर्ण शासन संचालन वृत्ति से पूर्ण संतोष था। आपश्री की धर्म पत्नी का देहावसान होने के पश्चात आप एक तरह संसार से विरक्त से रहते थे। इतने में ही पुण्य की प्रबलता से किंवा पूर्व कृत शुभ पुन्य के संचित होने से, भवजलनिधितारक पोत रूप आचार्यदेव का भी संयोग होगया। अतः वैराग्योत्पादक व्याख्यान श्रवण से हृदय में अङ्कुर, अङ्कुरित आचार्य देव के उपदेश रूप जल से तीव्र गति पूर्वक वृद्धिगत होने लगा। यों तो आपकी आत्मकल्याण की कई समय से भावना थी ही किन्तु आचार्यश्री के संयोग ने उन भावनाओं को एक दम जागृत एवं दृढ़ बना दी।

प्रसङ्गानुसार एक दिन सूरीश्वरजी की सेवा में आकर राव शोभा ने अर्जकी कि—भगवान् ! अब मुझे ऐसा मार्ग बतलावें कि जिससे, शीघ्र ही आत्म कल्याण हो जाय । सूरिजीने कहा—शोभा ! कल्याण का एक दम निर्विघ्न, सुखदायक मार्ग संसार का त्याग करना ही है कारण, संसारिक अवस्था मे रहते हुए मनुष्य को धन कुटुम्ब का सर्वथा मोह छूटना अशक्य है । वह अनिच्छा पूर्वक भी एक बार कौटाम्बिक पाश में फंस जाता है तो पुनः उससे मुक्त होना महादुष्कर सा ज्ञात हो जाता है । फिर तुम्हरा तो यह आत्म-कल्याण का ही समय है तुमने सांसारिक करने योग्य सर्व कार्यों को शांतिपूर्वक कर लिये हैं अतः निवृत्ति मार्ग में विलम्ब करना तुम जैसे मेधावी के लिये जरा विचारणीय है ।

शोभा—गुरुदेव ! मेरे पास करोड़ो रुपयों का द्रव्य है । यदि इसमें से आधा द्रव्य सुकृत में लगादूं तो आत्मकल्याण नहीं हो सकेगा ?

सूरिजी—शोभा ! सप्तक्षेत्रों में द्रव्य का सदुपयोग कर अनंत पुण्योपार्जन करना आत्मकल्याण के मार्ग का एक अंग अवश्य है पर तुम जिस आत्मकल्याण को चाहते हो वह इससे बहुत दूर है । कारण, द्रव्य का शुभ कार्यों में सदुपयोग करना भिन्न बात है और आत्मकल्याण या एकान्त निवृत्ति मार्ग अङ्गीकार करना एक दूसरी बात है । द्रव्य व्यय करने में तो कई प्रकार की आकांक्षाएं एवं भावनाएं होती है किन्तु निवृत्ति मार्ग के अनुयायी बनने में एक मात्र आत्मोन्नति का ही लक्ष्य [illegible] है । [illegible] कार्यों से (द्रव्य व्यय वगैरह से) शुभ कर्म सञ्चय होता है जो भविष्य के [illegible] बन जाता है पर प्रवृत्ति मार्ग कारण है तब, निवृत्ति मार्ग कार्य है । [illegible] कर निवृत्ति मार्ग को स्वीकार करना ही पड़ता है । शोभा ! चक्रवर्तियों के तो हीरे, [illegible] सोने, चांदी की खानें थी पर आत्मकल्याण के लिये तो उनको भी इन सर्व वस्तुओं का [illegible] कर विशुद्ध चरित्र का शरण लेना पड़ा । यदि वे चाहते तो अपने पास स्थित [illegible] सप्तक्षेत्रों में सदुपयोग कर पुण्य राशि का संचय कर सकते थे किन्तु, एकान्त आत्मकल्याण की [illegible] वाले उन व्यक्तियों ने इस प्रवृत्ति कार्य के साथ ही साथ निवृत्ति कार्य को आत्म कल्याण के लिये [illegible] स्वीकृत किया और इसी भव में मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बने । [illegible] सर्वोत्कृष्ट मार्ग है । चाहे आज इस भव में या परभव मे—आत्मकल्याण की [illegible] करनी होगी । पर यह सोच लेना चाहिये कि पूर्व जन्मोपार्जित पुण्यराशि के [illegible] इससे अनुकूल साधन मिले हैं वे परभव में मिल सकेंगे या नहीं ? [illegible] अवसर को त्याग देना बड़ी भारी भूल है । अरे शोभा ! इस मानव भव [illegible] [illegible] विचार करो

[illegible] पूर्वजन्म कृत सुकृत [illegible] से होते हैं [illegible] !
पाता है तब मनुज मनोहर मानव का यह रुचिर शरीर ॥

[illegible] शास्त्रकारों ने [illegible]

[illegible]
[illegible]

अरे ! मनुष्य जीवन के साथ तदनुकूल सुयोग्यसामग्री, सद्धर्मश्रवण लाभ एवं शास्त्रीय वचनों को कार्यान्वित करना इस जीव के लिये महादुष्कर है। अनादि के मिथ्यात्व, अज्ञान, राग, द्वेष, के प्रवाह में प्रवाहित जीव इन पौद्गलिक वस्तुओं को उभययत: (इस लोक और परलोक के लिये) श्रेयस्कर समझ कर अत्यन्त कटु परिणाम वाले कर्मों का उपार्जन करता रहता है पर सन्मार्ग प्रवृत्ति की ओर उसकी अभिरुचि ही नहीं होती। पर अन्त में परिणाम स्वरूप मृत्यु के समय किंवा नारकीय यातनाओं को सहन करते हुए अपने कृत कर्तव्यों पर खेद होता है, किन्तु उस परिणाम शून्य किंवा गोलमाल रहता है क्यों कि—

"अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत"

सूरिजी के पीयूष रस समन्वित वैराग्योत्पादक उपदेश को श्रवण कर राव शोभा का वैराग्य द्विगुणित होगया एवं दीक्षा के लिये कटिबद्ध होगया, तत्काल सूरिजी को वंदन कर कुटुम्बवर्ग की सम्मति प्राप्त करने के लिये घर पर गया। कौटुम्बिक सकल समुदाय को एकत्रित कर राव शोभा ने कहा—मैं मेरा आत्म-कल्याण करना चाहता हूँ ?

कुटुम्बवर्ग—आप प्रसन्नतापूर्वक आत्मकल्याण करावे।

शोभा—मैं कुछ द्रव्य का सप्त क्षेत्रों में सदुपयोग करना चाहता हूँ ?

कुटुम्बवर्ग—आपकी इच्छा हो इस तरह आप द्रव्य का सदुपयोग कर सकते हैं ऐसे पुण्य के कार्यों में द्रव्य व्यय करना तो अपने सब का कर्तव्य है फिर आपके द्वारा उपार्जित द्रव्य पर तो हमारा अधिकार ही क्या ? कि हमें पुछने की आवश्यकता हो

शोभा मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

कुटुम्ब वर्ग—आपकी अवस्था दीक्षा स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। आप घर में रह कर ही निवृत्ति में (आत्म कल्याण साधक मार्ग में) प्रवृत्ति करें, हम सब आपकी सेवा का लाभ लेने के लिये तत्पर हैं।

शोभा—आचार्यश्री फरमाते हैं कि घर में रह कर आरम्भ परिग्रह एवं मोह से सर्वथा विमुक्त होना, जरा अशक्य है। अत: मेरी इच्छा दीक्षा लेने की है।

कुटुम्ब वर्ग—आचार्य महाराज के तो यही काम है क्या लाखों करोड़ों मनुष्य दीक्षा लेकर ही आत्म कल्याण करते होंगे ? क्या घर में रह कर आत्म कल्याण नहीं कर सकते हैं ?

शोभा—यह कहना आप लोगों की भूल है। करोड़ों मनुष्यों में कल्याण करने की भावना वाले बहुत थोड़े मनुष्य होते हैं। उनमें भी दीक्षा को स्वीकार करने वाले तो विरले ही होते हैं।

इत्यादि प्रश्नोत्तर के पश्चात् पचास लक्ष रुपयों से माण्डव्यपुर के किल्ले में एक मंदिर तथा एक उपाश्रय बनाने का निश्चय कर अपने मनोगत भावों को अपने पुत्रों के समक्ष प्रगट किये पिताश्री के आदेशानुसार काम करवाना आरम्भ कर दिया।

इधर चातुर्मास के समाप्त होते ही सात भावुकों के साथ में राव शोभा ने, सूरिजी के पास कुमार में सकबरी, आत्मसाधिका दीक्षा स्वीकार करली बाद में श्रीआचार्यदेव भी वहां से क्रमश: विहार करते हुए उपकेशपुर पधार गये। वहां के श्रीसंघने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। श्रीमान् सूरिजी ने श्री महावीर एवं आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि की यात्रा कर श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया।

एक दिन व्याख्यानान्तर तब, वहां के सकल श्रीसंघने प्रार्थना की कि भगवन् ! आपश्री ने अनेक

राव शोभा की दीक्षा

कर जैनधर्म का जो उद्योत किया वह, अनुपम है। इसके लिये अखिल जैन समाज आपका चिरऋणी है। हमें बड़ा गौरव एवं अभिमान है कि हमारे धर्म के अधिपति श्रीआचार्यदेव वर्तमान साधु समाज में अनन्य हैं आपकी विद्वता का पार मनुष्य तो क्या पर बृहस्पति भी पाने में असमर्थ हैं। आप का चमत्कार एवं धर्म प्रचार का उत्साह अतुल है। किन्तु, गुरु देव अब आपकी वृद्धावस्था हो चुकी है। यदि आप यहीं पर स्थिरवास करने का लाभ उपकेशपुर श्रीसंघ को प्रदान करेंगे तो हम अवर्णनीय कृपा के भागी बनेंगे। आपश्री के चरणों की सेवा भक्ति कर हम लोग भी आपश्री के किये असीम उपकारों का कुछ ऋण अदा करने में समर्थ होंगे। सूरिजी शान्त एवं स्थिर चित्त से श्रीसंघ की प्रार्थना को श्रवण करते रहे। क्षेत्र स्पर्शना का सन्तोषजनक प्रत्युत्तर दे सूरिजी ने संघ को विदा किया। इधर रात्रि में सूरिजी के पास परोक्ष रूप से देवीसच्चायिका ने आकर सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने देवी को धर्मलाभ दिया। देवी ने प्रर्थना की कि भगवान्! आप अपने पट्टपर उपाध्याय ज्ञानकलश को स्थापित कर यहीं पर स्थिरवास कर लीजिए। सूरिजी ने भी देवी की प्रार्थना को स्वीकार कर ली।

प्रातःकाल आचार्यश्री ने सकलसंघ के समक्ष अपने हृदय की इच्छा जाहिर की बस श्रीसंघ तो पहले से ही लाभ लेने को उत्सुक था ही अतः संघको आचार्यश्री के आनन्ददायक वचनों से बहुत ही आनन्द हुआ आदित्यनाग गौत्रीय चोरलियाशाखा के शा. रावल ने सूरिपद के योग्य महोत्सव किया। सूरिजीने भ० महावीर के मंदिर में चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष उपाध्याय ज्ञानकलश को सूरिपद से विभूषित कर दिया। सूरिपद के साथ ही साथ अन्य योग्य मुनियों को भी योग्य पदवियां प्रदान की। नूतनाचार्य का नाम परम्परानुसार सिद्धसूरि रख दिया तदान्तर वृद्धसूरिजी ने कहा कि—मैं तो वृद्धावस्था जन्य कमजोरी के कारण यहां पर ही स्थिरवास करूंगा और आप शिष्य मण्डली के साथ विहार कर [illegible] सूरिजी ने अर्ज की कि—पूज्यगुरुदेव! मैं क्षण भर भी आपके चरणों की सेवा को छोड़ना नहीं चाहता हूँ। इस वृद्धावस्था में भी आपश्री की सेवा का लाभ न लूं तो मुझे आपश्री की सेवा का [illegible] ही कब होगा? अतः दोनों सूरीश्वरों ने यह चातुर्मास उपकेशपुर में ही स्थिर कर दिया [illegible] सिद्धसूरि ही देते थे। वृद्ध सूरिजी तो अपनी अन्तिम संलेखना एवं आराधना में [illegible] थे।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने शेष समय उपकेशपुर में ही व्यतीत किया। [illegible] दिन के अनशन की आराधना कर परम पवित्र पञ्चपरमेष्टि के स्मरण पूर्वक स्वर्ग धाम पधार गये।

आचार्य देवगुप्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य हुए। आपने अपने ३० वर्ष के [illegible] में अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर जैनधर्म की अमूल्य सेवा की। [illegible] स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। ऐसे महापुरुषों का जितना [illegible] ने अपना सारा ही समय धर्म प्रचार के महत्व पूर्ण कार्य में व्यतीत किया [illegible] का दिग्दर्शन कराने के लिये तो एक [illegible] उदाहरणों को उद्धृत कर देता हूँ।—

[illegible]

९—शंखपुर	के लघुश्रेष्टि गौत्रीय करमणने	,,	,,	,,
१०—देवपट्टण	के डिडू गौत्रीय भांणाने	,,	,,	,,
११—आलोर	के ब्राह्मण शिवशंकरने	,,	नेमिनाथ	,,
११—रत्नपुर	के प्राग्वट वंशीय चांडाने	,,	,,	,,
१३—सींदडी	के पल्लीवाल वंशीय जेसलने	,,	शान्तिनाथ	,,
१४—सोपार	के ,, ,, दुर्गाने	,,	पार्श्वनाथ	,,
१५—कांकली	के अग्रवाल वंशीय हानाने	,,	,,	,,
१६—दांतण	के श्रीमाल वंशीय लालनने	,,	,,	,,
१७—हंसावली	के ,, ,, संखलाने	,,	महावीर	,,
१८—मालपुर	के ,, ,, मोकल के	,,	,,	,,
१९—खंडेला	के श्रेष्टि गौत्रीय अजडने	,,	,,	,,
२०—मथुरा	के श्री श्रीमल गौत्रीय वीरमने	,,	नेमीनाथ	,,
२१—देवल	के चोरडिया गौत्रीय नारायणने	,,	विमलनाथ	,,
२२—लोहाकोट	के चरड़ गौत्रीय सोमा ने	,,	मल्लीनाथ	,,
२३—सावत्थी	के रांका गौत्रीय खेताने	,,	,,	,,
२४—मारसी	के क्षत्रिय सारणने	,,	,,	,,
२५—चन्द्रपुर	के करणावट गौत्रीय सलखणने	,,	महावीर	,,
२६ मत्स्यपुरी	के मोरख गौत्रीय जावड़ने	,,	,,	,,
२७ चरोटी	के सुचंति गौ० सुखाने	,,	,,	,,
२८—खेड़ीपुर	के डिडु गौ० करपाने	,,	पार्श्वनाथ	,,
२९—शिवपटी	के प्राग्वट वंशीय देवाने	,,	,,	,,
३०—अघाट	के प्राग्वट ,, मादाने	,,	,,	,,
३१ रूपनगर	के श्रीमल ,, रामाने	,,	चंद्रप्रभु	,,
३२—धंमोग	के लघुश्रेष्टि गौ० मालाने	,,	वासु पूज्य	,,
३३—कंटोभा	के संचची ,, मोला ने	,,	अजितनाथ	,,

आचार्य श्री के ३० वर्षों के शासन में संघादि सद्कार्य—

१—नागपुर	के	अदित्य०	गौत्री	भैराने	शत्रुंजय का संघ	
२—उपकेशपुर	के	बप्पनाग	,,	लादाने	,,	,,
३—चन्द्रावती	के	प्राग्वट	,,	मादाने	,,	,,
४—[illegible]	के	डिडू	,,	रामसीने	,,	,,
५—[illegible]	के	मोरख	,,	नारायणने	,,	,,
६—[illegible]	के	श्री श्रीमाल	,,	[illegible]ने	,,	,,

७—वीरपुर	के	चरड़	,,	दोलाने	,,	,,
८—नाणापुर	के	प्राग्वट	,,	पद्माने	,,	,,
९—मांडव्यपुर	के	भाद्र	,,	मोकलने	सम्मेत शिखर का	
१०—सोपारपट्टन	के	करणावट	,,	लुम्बाने	शत्रुंजय का संघ	
११—चित्रकोट	के	सुचंति	,,	करमणने	,,	,,
१२—धोलपुरा	के	लुग	,,	आमदेवने	,,	,,
१३—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	लालाने	,,	,,
१४—मथाणी	के	कनोजिया	,,	वीरम की पत्नी ने तलाव खोदाया		
१५—पासोढी	के	प्राग्वट	,,	खुमाण की पुत्री भूरीने एक वापी खुदाई		
१६—शिवपुर	के	प्राग्वट	,,	देदा की विधवा पुत्री सुखीने तलाव खुदाया		
१७—चन्द्रावती	के	पोरवाल	,,	वीरअजड़ युद्ध में काम आया० सती हुई		
१८—हरधुड़ी	के	श्रीमाल	,,	ओटो युद्ध में काम आया		,,
१९—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	मंत्रीवीरम युद्धमें काम ,,		,,

२०—वि० स० ६१२ मारवाड में भयकर दुकाल पड़ा था जिसके लिये उपकेशपुर के [illegible] ने चन्दा कर करोड़ों द्रव्य से देशवासी भाइयों एव पशुओं के लिए अन्न एवं घास देकर प्राण बचाये।

२१ वि० स० ६२३ में भारत में एक जबर्दस्त दुष्काल पड़ा जिसके लिये चन्द्रावती आदि नगरो के धनाढ्य लोगों ने कई नगरो में फिर कर महाजन सघ से चन्दा एकत्र कर उस दुकाल को भी [illegible] बना दिया था जहाँ मिला वहाँ से धान घास मगवा कर देशवासी भाइयो के एव मूक पशुओं के प्राण बचा दे—

२२—वि० स० ६२९ मे भी एक साधारण दुकाल पड़ा था जिसमें नागपुर के [illegible] शाह गोसल ने एक करोड़ो रूपये व्ययकर मनुष्यो को अन्न और पशुओं को घास [illegible]

इत्यादि महाजन सघ ने अपनी उदारता से अनेक ऐसे २ छोटे और बड़े के काम किये थे कि जिन्हो की उज्वल कीर्ति और धवल यश आज भी अमर है

> पट्ट सेतीसवें हुए सूरीश्वर, [illegible] शृंगार थे।
> देवगुप्त था नाम आपका, क्षमादि गुण भन्डार थे॥
> प्रतिबोध करके मद्द जीवो का, उद्धार हमेशों करते थे।
> सुनकर महिमा गुरवर की, पाखण्डी नित्य डरते थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के सेतीसवे पट्ट पर देवगुप्त सूरि नामक महा प्रभाविक आचार्य हुए

३८—आचार्य श्रीसिद्धसूरि (सप्तम)

श्रीमन्मान्यवरेण्यसिद्धमुनिराट् श्रीबप्पनागाभिधे ॥
गोत्रेलब्धजनिः सदाविजयते शीतांशुबिम्बाननः
लब्धो येन पुराऽक्षयो घननिधिर्धर्म्ये विधौ योजितो ।
दीक्षां प्राप्य तपःस्थितो जिनमतोद्धारे मुदा तत्परः ॥

पूज्यपाद, प्रख्यात विद्वान्, चारित्र चूड़ामणि, विविध वाङ्मय विबुध, तपस्तेजपुञ्जधारी, ज्ञान दिवाकर, उत्कृष्ट क्रिया कर्ता आचार्य श्री सिद्धसूरिजी महाराज एक सिद्ध पुरुष की भांति सर्वत्र पादपूजित थे । आप जैसे वर्तमान साहित्य व्याकरण, न्याय, काव्य, लक्षण आदि शास्त्रों के अनन्य— अजोड़ विद्वान थे उसी तरह कठोर तपश्चर्याकर आत्म दमन करने में भी परम शूरवीर थे । आपश्री की तपश्चर्या अभिग्रह के साथ में प्रारम्भ होती थी अतः कभी २ तो एक मास तक की कठोर तपश्चर्या होने पर भी अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था। इस तरह आपने अपने जीवन का तपश्चर्या भी एक अंग बना लिया । इस कठोर तपश्चर्या के प्रभाव से साधारण जनता ही नहीं अपितु बड़े २ राजा महाराजा भी आपश्री के तपस्तेज एवं ज्ञान क्रिया निधान से प्रभावित होकर आपश्री के चरण कमलों की सेवा का लाभ लेने में अपने को परम सौभाग्यशाली समझते थे । आपश्री का जीवन अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाओं से ओतप्रोत है जिस को मैं संक्षिप्त रूप में पाठकों की सेवा में इसी गरज से रख देता हूँ कि वाचकवृंद, आचार्य देवका जीवन चरित्र मनन पूर्वक पढ़ कर व श्रवण कर सूरीश्वरजी के जीवन का अनुसरण करें ।

सिंध की उन्नत भूमि पर मालपुर नामका नगर था। वहां पर उस समय राव दहाट के वंश परम्परा के राव कानड़ राज्य करते थे । यद्यपि वेदान्तियों के अधिक संसर्ग में आने के कारण, मालपुर नरेश, वाममार्ग धर्मोपासक थे, परन्तु जैन श्रमणों के त्याग, वैराग्य, शांति, क्षमा, सरलता आदि गुणों का उनके हृदय पर अच्छा प्रभाव था । वे जैन श्रमणों की चारित्र विषयक विशुद्धता से प्रभावित हो उनके दर्शन के लिए सदा ही उत्कंठित एवं लालायित रहते थे । परम्परागत आभिनिवेशिक मिथ्यात्वका यद्यपि वे (मालपुर नरेश) त्याग नहीं कर सके परन्तु जैनश्रमणों की पवित्रता एवं यम नियम की दुष्करता के कारण वे उनकी ओर चुम्बक की तरह आकर्षित थे । जैनश्रमणों के आगमन से एवं व्याख्यान श्रवण से मालपुर नरेश का मन भी शान्ति का अनुभव करता था । हृदय सागर में आध्यात्मिक भावनाओं की तरंग उछलने लगतीं । लिखने का तात्पर्य यही है कि—वह वाममार्गी होने पर भी जैन ही था ।

मालपुर में जैन एवं उपकेशवंशियों की अच्छी आबादी थी । परम समृद्धि शाली मालपुर नगर में [illegible] वाणिज्य (व्यापार) कला कुशल, धर्मानुरागी, आवश्यकादानुष्ठान कर्ता [illegible] देश नाम के एक [illegible] व्यापारी रहते थे । आपकी गृह देवी का नाम [illegible] था । [illegible] धर्मनिष्ठ एवं [illegible] थे । धर्म करनी में सदा [illegible]—तत्पर थे । [illegible]

पौत्रादिक विशाल कुटुम्ब था पर, घर के कार्य को सम्भालने के लिये स्तम्भवत् आधार भूत, चक्षु अवलम्बन देने वाला आसल नामका पुत्र था।

शाह देदा ने व्यापारिक क्षेत्र में प्रवृत्ति कर बहुत द्रव्योपार्जन किया था और समयानुकूल उस द्रव्य का शास्त्रवर्णित सप्तक्षेत्रों में सदुपयोग कर पुण्य सम्पादन भी किया था। मालपुर में चरमतीर्थंकर, शासननायक भगवान् महावीर स्वामी के मन्दिर का निर्माण कर आचार्यश्री के हाथों से मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई सम्मेत शिखरादि पूर्व, तथा शत्रुञ्जय गिरनारादि दक्षिण के तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर, संघपति के पदपर आसीन हो तीर्थ यात्रा का अनन्त पुण्य सम्पादन क ने के लिये भी भाग्यशाली बना था। पूजा, प्रभावना स्वामीवात्सल्यादि धार्मिक क्रियाएं तो आपकी साधारण क्रियाओं के अन्तर्गत थी। जब शाह देदा का देहान्त हुआ तब आप अखूट लक्ष्मी अपने पुत्र आसल के लिये जमा छोड़ गये। पर—

"पूतसपूत तो क्यों धन संचय, पूतकपूत तो क्यों धन सञ्चय"

लक्ष्मी की भी अवधि होती है। इसका स्वभाव चंचल एवं कच्चे रंग की तरह क्षणभङ्गुर है जब तक पुण्य राशि की प्रबलता रहती है तब तक सर्व प्रकार के सुखोपभोग के पौद्गलिक साधन अपना अस्तित्व कायम रखते हुए मनुष्य के स्वभाव एवं रहन सहन में अलौकिक विचित्रता का प्रादुर्भाव करा देते हैं किन्तु, पुण्य सामग्री के समाप्त होते ही पुण्य के साथ ही साथ सब उपलब्ध साधन भी [illegible]—लुप्त हो जाते हैं। बस यही हाल देदा के सुपुत्र आसल का भी हुआ। शा. देदा के द्वारा [illegible] किया हुआ द्रव्य आसल के तकदीर में नहीं था शा. देदा के बाद लक्ष्मी भी न जाने आसल से क्यों [illegible] होगई ! [illegible] लक्ष्मी ने अपना किनारा लेना प्रारम्भ कर दिया। जिस लक्ष्मी को एकत्रित करने में [illegible] वर्ष [illegible] हुए थे वही लक्ष्मी आज क्षणभर में आसल के घर से विदा होगई। वास्तव में इसकी [illegible] को जानकर के ही तीर्थंकरों ने शाश्वत सुख प्राप्ति के लिये धर्म को ही मुख्य एवं श्रेयस्कर साधन बतलाया है। इस तरह पुण्य के अभाव से आसल [illegible] घर खर्च चलाने में भी असमर्थ बनगया। जैसे तैसे [illegible] के [illegible] घर का गुजारा चलाने लगा। जिसके घरों से सब जैसे [illegible] व मन्दिर जैसे [illegible] हुए आज वही कोटाधीश पूर्व जन्मोपार्जित पापकर्म के उदय से लक्षाधीश के बदले [illegible] बनगया।

दरिद्रता के इतने विकट प्रवाह में प्रवाहित होते हुए भी आसल ने अपनी धर्मक्रिया में [illegible] भी न्यूनता न आने दी। वह तो इस दारुण परिस्थिति में और भी अधिक [illegible] [illegible] का [illegible] स्मरण करने लगा। ज्यों २ व्यापारिक स्थिति की कमजोरी के कारण, [illegible] नित्य नियमादि—नित्यनैमित्तिक-कृत्यों में भी वृद्धि करता गया। आसल जैन दर्शन के कर्मवाद सिद्धान्त का अच्छा ज्ञानी था। वह जानता था कि ये सब पौद्गलिक पदार्थ [illegible] हैं [illegible], शुभाशुभ संचित कर्मों का [illegible] है। जब तक मेरे पुण्य का उदय था [illegible] के उदय से ही मुझे [illegible] का [illegible] रहा है। [illegible] सुख का दिवस भी [illegible] होगा। इस तरह कर्म के [illegible] अनेक महापुरुषों के जीवन के [illegible] करते हुए [illegible] लिये [illegible] था। [illegible]—

"कर्म तारी कला न्यारी हजारो नाच नचावे छे।
घड़ी मां तू हंसावे ने घड़ी मां तू रडावे छे ॥"

आज उक्त पद का आसल सक्रिय अनुभव कर रहा था। रह रह कर उसे अपने पिता के समय की स्मृति हो रही थी। वे आनंद के दिन उससे भूले नहीं गये थे किन्तु, धर्म का दृढ़ श्रद्धालु आसल, इस दुःख काल में भी अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक अपनी जीवन यात्रा-यापन कर रहा था।

ठीक उसी समय सिंधधरा को पावन बनाते हुए आचार्य देवगुप्तसूरिजी क्रमशः मालपुर में पधार गये। श्रीसंघने आचार्य देव का यथा योग्य नगर प्रवेशादि महोत्सवों से शानदार स्वागत किया। श्रीसूरीश्वरजी के पधारने से आसल की प्रसन्नता का तो पारावार ही नहीं रहा। वह जानता था कि आचार्यश्री के पधारने से मेरा अवशिष्ट समय जो सांसारिक दुःखमय द्वन्द्वों के विचारने में व्यतीत होता है—शान्ति से धर्माराधन कार्यों में व्यतीत होता रहेगा। दूसरी बात उत्कृष्ट संयम के पालक त्यागी वैरागी योगियों के दर्शनोंका लाभ भी पूर्व संचित सुकृत के उदय से प्राप्त होता रहेगा। साधु लोग दीनोद्धारक करुणा निधान एवं दया के साक्षात् अवतार स्वरूप होते हैं अतः, उनके चरणों की सेवा से पूर्वजन्मोपार्जित दुष्कर्मों का भी प्रक्षालन होता रहेगा। बस इन सब बातों का विचार करते ही उसके हृदय में सहसा नवीन प्रतिमा जन्य अलौकिक शक्ति का प्रादुर्भाव होगया। इस तरह अनेक विचार करता हुआ आसल आचार्यश्री के नगर प्रवेश महोत्सव में सम्मिलित हुआ और आचार्यश्री के चरण रज का स्पर्श कर आसल ने अपने जीवन को कृत कृत्य किया।

आचार्यश्री का अमृत मय व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन आचार्यश्री ने संसार की विचित्रता एवं मनुष्य जन्म की दुर्लभता बतलाते हुए फरमाया कि—

"समावन्नाण संसारे, नाणागोत्तासु जाइसु। कम्मानाणा विहाकट्टु, पुढो विस्संभयापया ॥१॥
एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया। एगया आसुरं कायं, अहाकम्मेहिं गच्छई ॥२॥
एगया खत्तिओ होई, तओ चण्डालवोक्कसो। तओकीड पयंगोय, तओ कुन्थु पिवीलिया ॥३॥
एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा। ननिविज्जंतिसंसारे, सव्वट्ठेसुव खत्तिया ॥४॥
कम्मसंगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा। अमाणुसासुजोणिसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥५॥
कम्माणंतु पहाणाए, आणुपुव्विं कयाइवि। जीवासोहिमणुपत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥६॥

इस प्रकार अत्यन्त दुर्लभता से मिले हुए सुर दुर्लभ मानव देह को कौटुम्बिक प्रपञ्चों में, [illegible] कौटुम्बिक मोहक पदार्थों में, पारस्परिक स्वभावविभेद जन्य कलह में व्यतीत कर देना [illegible] श्रेयस्कर नहीं है याद रक्खो इस समय का सदुपयोग किये बिना हमको भविष्य में बहुत ही [illegible] जैसे एक मूर्ख को एकायक रत्न की प्राप्ति हुई किन्तु उसके महत्व व मूल्य से [illegible] रत्न को खेत के धान्य को खाने के लिये आये हुए पक्षियों को उड़ाने में [illegible] उसके मूल्य की वास्तविकता को जानने पर उसे जैसा पश्चात्ताप हुआ उससे भी [illegible] निर्दय-काल के मुख में पड़े हुए जीव को होता है अतः प्राप्त समय का सदुपयोग कर [illegible] की इन्द्रियाँ नष्ट न होवे तब तक धर्म का आचरण करके अपने जीवन को सार्थक [illegible] बुद्धिमत्ता है। "जाव इंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे।

कहा है—"धर्मरहित चक्रवर्ती की समृद्धियां भी निकम्मी है और धर्म सहित निर्धनता जन्य आपत्तियां भी अच्छी है।" इस लोकोक्तिमें शब्द तो अगम्य रहस्य भरा हुआ है। कारण, धर्म रहित मनुष्य को पूर्व सुकृतोदय से धन जनादि पदार्थ प्राप्त होगये तो वह उनका उपयोग कर्मबन्धन मार्गों में ही करेगा। एशआराम व पौद्गलिक सुखों तक प्रयत्न कराने में सहायक होगा। द्रव्य का क्षणिक भोग विलासों में दुरुपयोग कर निकाचित कर्मों का बंधन करेगा अतः धर्म रहित मनुष्य की समृद्धियां भी भविष्य के लिए खतरनाक दुर्गति दायक होती है। इसके विपरित धार्मिक भावना से ओतप्रोत निर्धन धनाभाव के कारण दरिद्र व्यक्ति का जीवन धर्म भावनाओं की प्रबलता से पूर्वोपाजित दुष्कर्मों की निर्जरा का हेतु और भविष्य के पातक बंधन का बाधक होगा। वह कर्म फिलोसोफी का अभ्यासी जीव निर्धनताजन्य दुःखों में भी कर्मों की विचित्रता का स्मरण कर शान्ति का अनन्योपासक रहेगा। यावत् उसकी निर्धनता भी कर्म निर्जरा का कारण बन जायगी। अतः मनुष्य के जीवन की मुख्य सामग्री धन नहीं किन्तु—धर्म है। इसकी आराधना से ही जीव इस लोक और परलोक में परम सुखी हुआ है और होगा। इस प्रकार सूरिजी ने कर्मों कि विचित्रता एवं धर्म की महत्ता के विषय में लम्बा चौड़ा सारगर्मित, उपदेशप्रद प्रभावोत्पादक वक्तृत्व दिया। इसका उपस्थित जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

व्याख्यान में शा. आसल भी विद्यमान था। उसने सूरीश्वरजी के एक एक शब्द को [illegible] को बहुत ही एकाग्रचित्त से श्रवण किया उसको ऐसा आभास होने लगा कि मानो आचार्यश्री ने [illegible] ही आज कर्म की फिलोसोफी को प्रकाशित की है। क्षण भर के लिये आसल के नेत्रों के सामने [illegible] लगाकरके आज तक के इतिहास का चित्र, सुख दुःख का स्मरण धन की [illegible] एवं निर्धनता की [illegible] ज्यों की त्यों अंकित हो गई। सूरिजी का कथन उसे, सोलह आना सत्य ज्ञात होने लगा। वह विचारने लगा कि अवश्य ही मैंने पूर्व जन्म में धर्म के प्रति उदासिनता—उपेक्षा दृष्टि रक्खी। [illegible] जीवन [illegible] वालों को कष्ट दिया। उन्हें तरह तरह की अंतराय देकर ऐसे निकाचित कर्मों का बंध किया है कि आज प्रत्यक्ष हो उसके कटु फलों का मैं आस्वादन कर रहा हूँ। निर्धनता जन्य दुःखों को भोग रहा हूँ। अस्तु,

एक समय शा. आसल सूरीजी की सेवा में हाजिर हुआ और वंदन करके बैठ गया। सूरिजी जानते थे कि आसल के पिता परम धर्म परायण व्यक्ति थे। उन्होंने लाखों रुपया व्यय करके धर्म कार्यों का पुण्य सम्पादन किया। धार्मिक पिता का पुत्र आसल भी धर्म के रंग में रंगा हुआ [illegible] दरिद्र [illegible] भी, आसल को अमृत मय वाणी द्वारा संसार की असारता के विषय उपदेश दिया जिसके [illegible] ने कहा—भगवान्! मेरा दिल संसार से तो सर्वथा विरक्त है। [illegible] मेरी निर्धनता के साथ धर्म की भी अवहेलना करके [illegible] [illegible] साधारण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आचार्यश्री का व्याख्यान [illegible]

सूरिजी ने कहा—आसल ! एक ही भव में कर्मों की विचित्रता के कारण मनुष्य अनेक परिस्थितियों का अनुभव करता है। कभी सुकृतपुञ्ज से यकायक राजा बनजाता है तो दूसरे ही क्षण पापोदय से घर २ के टुकड़े की याचना करने वाला याचक बन जाता है। राजा हरिश्चंद्र, मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसे नरेशों एवं महावीर जैसे तीर्थंकरों को भी इस कर्म ने नहीं छोड़ा तो हम तुम जैसे साधारण व्यक्तियों के लिये तो कहना ही क्या ? ये तो अपने हाथों के किये हुए ही शुभाशुभ कर्म हैं। इसमें किंचित मात्र भी आर्तध्यान न करते हुए धर्म मार्ग की आराधना करते रहना ही श्रेयस्कर है। अब रही आत्म कल्याण की बात सो आत्म कल्याण, संसारावस्थ को त्याग कर साधुत्व वृत्ति को स्वीकार करने में ही नहीं पर गृहस्थावस्था में रहते हुए भी हो सकता है। हां दीक्षा की उत्कृष्ट भावना रखनी एवं समयानुकूल दीक्षा को अङ्गीकृत कर शीघ्र आत्म कल्याण करना तो आवश्यक है ही पर दीक्षा की भावना को भावते हुए सांसारिक अवस्था में भी बनते प्रयत्न निवृत्ति मार्ग का आश्रय लेते रहना चाहिये। आसल ! कई एक व्यक्ति तो ऐसे भी देखे गये कि वे निर्धनावस्था में जितना धर्माराधन कर आत्म श्रेय सम्पादन कर सकते हैं, उतना धनिकावस्था में नहीं कर सकते हैं। उनके पीछे उस समय इतनी उपाधियां लग जाती हैं कि,वे धर्म कर्म को सर्वथा विसर जाते हैं। निर्धनावस्था में की हुई प्रतिज्ञाओं का पालन उनके लिये विचारणीय हो जाता है उदाहरणार्थ-एक निर्धन मनुष्य थोड़े बहुत परिश्रम से अपना गुजारा करते हुए आठ घंटा हमेशा धर्म सम्पादन करने में व्यतीत करता था। किसी समय पुण्योदय से एक सिद्ध पुरुष उसको मिलगया। निर्धन ने उस सिद्ध पुरुष की तन, मन, एवं शक्त्यनुकूल धन से बहुत ही सेवा भक्ति की। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो सिद्ध पुरुष ने पूछा—भक्त ! तेरे पास कितना द्रव्य है ? उसको कहते हुए शरम आई अतः हाथ पर १) आंक लिख कर सिद्ध पुरुष के सामने रक्खा। सिद्ध पुरुष को भक्त की निर्धनता पर बहुत ही करुणा उत्पन्न हुई उसने १) पर बिंदी लगादी जिससे कुछ ही दिनों में निर्धन के पास दस रुपये हो गये। जब वह निर्धन एक रुपये का किराणा लाकर बाजार में बेचने जाता था उस समय उसको पूजा, सामायिकादि धार्मिक कृत्य करने के लिये बहुत समय मिलता था अब दश रुपयों का माल लेकर आस पास के ग्रामों में बेचने को जाने लगा तो उसे आठ घंटे के बजाय छ घंटे ही धर्म-कार्य के लिये मिलने लगे। पर जो परिणामों की स्थिरता एवं पवित्रता आठ घंटे धर्म ध्यान करते समय थी वह इन छ घंटों के अल्प समय में न रह सकी। उसके हृदय में लोभ ने प्रवेश कर लिया। वह विचारने लगा कि यदि सिद्ध पुरुष एक शून्य की और कृपा कर दे तो ग्रामों में बेचने जाने की तकलीफ का अनुभव नहीं करना पड़े और यहां पर ही छोटी मोटी दुकान करके बैठ जाऊं। बस उक्त विचार से प्रेरित हो वह पुनः सिद्ध पुरुष के पास गया। सिद्ध पुरुष ने भी दयावश एक शून्य और लगा दी निर्धन के पास अब १००) होगये।

क्रमशः निर्धन ने दुकान कर ली पर इसका नतीजा यह हुआ कि दुकान पर बैठते हुए ग्राहक की राह देखने में धर्म ध्यान निश्चित रखते हुए छ घंटों में से दो घंटे और भी कम हो गये। इसकी इसको बहुत चिन्ता हुई अतः समय पाकर पुनः सिद्ध पुरुष के पास गया और प्रार्थना की कि भगवन् ! एक बिंदी और लगादें तो बड़ी ही कृपा होगी। दयालु सिद्ध पुरुषने भी एक बिन्दी और लगा दी जिससे सेठ के पास १०००) होगये। अब तो सेठ ने एक नौकर और रख लिया। व्यापार, धंधा बड़े जोर से चलने लग गया। देशान्तरों में माल भेजना प्रारम्भ कर दिया पर इससे धर्म के कार्य के चार घंटे में से दो घंटा का समय भी मुश्किल से मिलने लगा। बस धर्म कार्य के समय को बढ़ाने के लिये सेठ ने बहुत से उपाय सोचे पर, ...

सिद्ध पुरुष की निर्धन

उसको उसकी दृष्टि में निष्फल ज्ञात हुए। वह चल कर पुनः सिद्ध पुरुष के पास आया। उसकी करुणा पूर्ण प्रार्थना पर सिद्ध पुरुष ने एक नहीं पर दो बिंदू और लगा दिये अब तो वह लक्षाधिपति बनगया। इस लक्षाधिपति की अवस्था में अवशिष्ट रहे धर्म कार्य के दो घटे भी रफूचक्कर हो नये धन के मद में लोलुप बन गया। धर्म के प्रति उपेक्षा करने लगा। इतना ही नहीं पर उपकारी सिद्ध पुरुष के दर्शन करना भी सर्वथा भूल गया। एक दिन वह सिद्ध पुरुष बाहर परिभ्रमन करने के लिये उस गांव से रवाना हुआ इस समय नगर के सब लोग उसे पहुँचाने के लिये आये किन्तु वह भक्त जिसको लक्षाधिपति बनाया था कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

सिद्ध पुरुष इधर उधर घूमकर पुनः उस नगर में आया। स्वागत के लिये सब नगर निवासी सम्मुख गये पर बिन्दु बढ़ाने वाले सेठ का उस समय भी पता नहीं था। क्रमशः सिद्ध पुरुष अपने आश्रम में पहुँच गये। कई दिवस व्यतीत होगये पर उस नवीन लक्षाधिपति के दर्शन भी दुर्लभ होगये इससे सिद्ध पुरुष आश्चर्य चकित हुआ अवश्य किन्तु धन के अहमत्व का विचार कर सिद्ध पुरुष को विशेष नवीनता नहीं लगी। एक समय सिद्ध पुरुष भिक्षार्थ उस नगर की छोटी सी गली से गुजर रहा था कि सेठ की अकस्मात भेंट होगई। धन के घमण्डी सेठ ने अपने मुंह पर कपड़ा डाल दिया और एक शब्द बोले बिना ही अपने चलने का क्रम प्रारम्भ रक्खा। सिद्ध पुरुष उसे अच्छी तरह से पहिचान गया अतः व्यंगमय शब्दों में बोला कि— सेठजी! और बिन्दी की जरूरत हो तो आश्रम में आजाना। सेठ तो धर्म कर्म को तिलाञ्जली देकर तृष्णा का दास बन गया था अतः कार्य से निवृत्ति पाकर तुरत सिद्ध पुरुष के आश्रम में चला गया। सिद्ध पुरुष ने कहा—सेठजी! इस समय तुम्हारे पास कितना द्रव्य है। सेठने १००० ० [illegible] लिख दिये। अंकों को इतने बड़े अक्षरों में लिखे कि नवीन शून्य लिखने के लिये भी हाथ में स्थान न रहा। सिद्ध ने कहा—सेठजी! क्या किया जाय? अब बिन्दी लिखने को भी हाथ में स्थान नहीं है। सेठ ने कहा—यदि आगे स्थान नहीं तो क्या हुआ? पृष्ठ भाग में तो जगह है उधर ही बिन्दी लगा दीजिये। [illegible] से सिद्ध पुरुष ने पीछे बिन्दी लगादी। बस, फिर तो था ही क्या? [illegible] होने लगी। थोड़े ही समय में सेठ अपनी मूल स्थिति पर आगया। [illegible] रही। अब उस पर ही अपना निर्वाह करने लगा। [illegible] पारस्परिक आठ पहर समय धर्म कार्य के लिये भी मिलने लग गया। [illegible] [illegible] लाकर बिन्दिये लगाकर मेरे धर्म कर्म को [illegible] [illegible] है। आठ पहर धर्म कार्य के लिये [illegible] सिद्ध पुरुष इस प्रकार किसी को द्रव्य [illegible]?

गुरु महाराज— [illegible]

[illegible]

उपादान कारण दूसरा निमित्त कारण । जब उपादान कारण सुधरा हुआ होता है तो निमित्त कारण सफल बन जाता है । पर मूल उपादान कारण ही अच्छा न हो तो निमित्त कारण उसमें कुछ नहीं कर सकता है । इतना ही नहीं उनका फल भी एक दम विपरीत हो जाता है । जैसे—दो मनुष्यों को एक प्रकार का रोग है । वैद्य ने उनको एक ही दवाई दी जिससे एक रोगी का रोग तो मिट गया पर दूसरे का रोग उसी दवाई से बढ़ गया । इसमें वैद्य तो निमित्त कारण है पर उपादान कारण तो उन रोगियों का ही था ।

आसल ! मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह, उपादान कारण को सुधारने का प्रयत्न करे । उपादान कारण अच्छा होगा तो निमित्त कारण अपने आप ही आ मिलेगा । मैंने जो उदाहरण सुनाया है उसको लक्ष में रखना कि आज इस अवस्था में तेरी जो भावना है वह, दूसरी अवस्था में सेठ की तरह परिवर्तित न होजाय।

आसल—गुरुदेव ! मेरी उक्त विरक्त भावना दुखःसुख के कारणों से पैदा नहीं हुई जो सुख के साधनों में विलुप्त हो सके । मेरी भावना तो आत्मिक भावों से प्रादुर्भूत हुई है । निश्चय में तो अभी मेरे अन्तराय कर्म का उदय है ही किन्तु व्यवहार में लोकापवाद एवं धर्म पर आक्षेप होने के भय से मैंने अभी घर में रह कर स्वशक्त्यनुकूल धर्माराधन करना ही समीचीन समझा है ।

प्रतिलेखन का समय होजाने से आसल ने, आचार्य देव के चरण कमलों में वंदना की गुरुदेव ने आसल को धर्मलाभ देते हुए कहा—आसल तेरे दीर्घ दृष्टि के विचार अच्छे हैं । धर्मभावना में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहना ।

सूरिजी महाराज ने समयानुकूल मालपुर से विहार कर दिया और आसल गुरुदेव के वचनानुसार धर्म क्रिया को बढ़ाता हुआ, संतोष वृत्ति को धारण किये हुए कर्मों के साथ भीषण संग्राम करने लग गया । इस समय आसल की वय चालीस वर्ष को अतिक्रमण कर चुकी थी । कर्मों की क्रूरता से इतोत्साहित होकर उसने अपने नित्य नियम में धर्म कार्य में किश्चित् भी शिथिलता नहीं आने दी । परिणाम स्वरूप पुण्योदय से एक दिन गायें बांधने के स्थान को खोदते हुए अकस्मात एक अक्षय निधान निकल गया । अपने भाग्योदय के समय को आया हुआ जानकर उसने आचार्य देव के वचनों का स्मरण किया । गुरुदेव का अनुपमेय उपकार मानते हुये ज्यों ज्यों निधान को खोदता गया त्यों त्यों वह अक्षय ही होता गया अब तो आसल—वह आसल नहीं रहा जो एक घंटे पूर्व था । अब तो वह अनन्य धनकुबेर—श्रीमन्त हो गया ।

आसल ने धीरे धीरे शुभ कार्यों में द्रव्य का सदुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया । चतुर, [illegible] शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलवाकर एक मंदिर बनवाना भी शुरु किया । पर इसमें शा. आसल की प्रवृत्ति में किश्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं पड़ा । वह अपनी पूर्वावस्था को भूला नहीं धनाभाव में गृहस्थाश्रम [illegible] कैसा विकट एवं भयंकर होता है उसका चित्र उसके सामने सजीवित् अङ्कित होगया । उसके हृदय में [illegible] भावनाएं उद्भूत होती गई कि यदि हमारे स्वधर्मी भाइयों में से कोई मेरी पूर्वावस्था के समान दारिद्र्य दुःख का अनुभव करता हो या उसके लिये उसका जीवन विकट समस्या मय बन गया हो तो उसे [illegible] प्रकारेण सुखी बनाऊं । कारण, दरिद्रता के दुःख का आसल ने कई वर्षों तक अनुभव किया था [illegible] उसके हृदय में ऐसी पवित्र भावनाओं का प्रादुर्भाव होना सहज—स्वाभाविक था । [illegible] विचारों के रूप में ही विलीन न करता गया किन्तु, उक्त विचार धारा को परिणत कर [illegible] को दुःखी जीवों को दुःख मुक्त कर सुखी बनाये । आसल ने उक्त कार्यों को [illegible]

शाह आसल का [illegible]

से नहीं किये किन्तु, अपना पवित्र कर्तव्य समझ कर मानवता के ध्येय हृदयङ्गम कर उक्त कार्यों में भाग लिया।

शा. आसल आज पूर्ण समृद्ध एवं सुखी था। लक्ष्मी आज उसकी चरण सेविका बन चुकी थी पर धन के थोथे मद में वह मदोन्मत्त नहीं हुआ। उसे अपने पहिले की जीवन की दु:खमय कथा याद थी। आचार्यश्री के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा की उसके हृदय पर छाप थी। उसकी यही मनोगत भावना थी कि मैं पूज्यआचार्य देव को बुलाकर अपनी मनोकामना को सफल बनाऊ। बस, उक्त भावना से प्रेरित हो उसने आचार्यश्री की खबर मंगवाई तो मालूम हुआ कि आचार्यदेव इस समय डामरेल में विराजमान हैं। सूरीश्वरजी के विराजने के निश्चित समाचारों से उसके हृदय में नवीन स्फूर्ति एवं क्रान्ति की जागृति हुई। वह तत्काल कई भावुकों को लेकर प्रार्थना के लिये डामरेल गया। सूरीश्वरजी की कृपा पूर्ण दृष्टि की कृतज्ञता को प्रगट करते हुए आसल, उनके चरण कमलों में गिर पड़ा। मालपुर पधारने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना करने लगा। सूरिजी को अब तक यह मालूम नहीं था कि निर्धन आसल आज श्रीमंत शिरोमणि बना हुआ है किन्तु जब साथके मनुष्यों से आसल के अथ से इति तक वृत्तान्त सुने तो सूरिजी को भी पूरा संतोष एवं आनंद हुआ।

सूरिजी ने आसल के सामने देखते हुए कहा कैसे हो भाग्यशाली ! आसल—गुरुदेव ! आपकी कृपा एवं अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से पहला भी आनन्द था, अभी भी आनंद है और भविष्य में भी आनन्द ही आनन्द रहेगा। प्रभो ! कृपाकर अब शीघ्र ही मालपुर पधार कर मेरी प्रतिज्ञा को सफल बनावें। आसल के इस वचन से तो सूरिजी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उनके हृदय में यह कल्पना थी कि आसल धनाढ्य दशा में अपने कर्तव्य को विस्मृत कर चुका होगा पर आसल को इस अवस्था में कर्तव्य पराङ्मुख होने के बदले कर्तव्याभिमुख देख कर उन्हें बहुत संतोष हुआ।

सूरिजी ने आसल की प्रार्थना को स्वीकृत कर डामरेल नगर से विहार कर दिया। क्रमशः छोटे बड़े ग्रामों में होते हुए आचार्य देव मालपुर पधार गये। शा. आसल ने सवा लक्ष रुपया व्यय कर आचार्य देव का शानदार नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। ऐसा अवसर एवं ऐसा उत्सव आज मालपुर के लिये सर्व प्रथम ही था। साधर्मी भाइयों को पहरामणी एवं याचकों को पुष्कल दान दिया।

एक समय आसल सूरिजी के पास गया और वन्दन करके अर्ज करने लगा—भगवन् ! आपके सामने की हुई प्रतिज्ञा को मैं विस्मृत नहीं कर सकता हूँ पर, मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि आपश्री का चातुर्मास मालपुर में होजाय तो मैं कुछ द्रव्य का शुभ कार्यों में व्यय कर [illegible] श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का एक संघ निकाल कर, यात्रा करूं। [illegible] कर गृहस्थ धर्म की आराधना करते हुए [illegible] की हुई प्रतिज्ञा को सफल बनाऊं। सूरिजी ने कहा—आसल ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है [illegible] भी अच्छी है। शासन की उन्नति एवं प्रभावना करना, यह [illegible] प्रभावना करना [illegible] हैरे का विचार [illegible] है।

सूरिजी का [illegible]

पर्याप्त प्रभाव पड़ा वे सोचने लगे कि यदि किसी तरह से चातुर्मास का अवसर हाथ लग जाय तो हम अपनी व्याख्यान श्रवण ने अतृप्त प्यास को आगम श्रवण जल से शांत कर सकें। अस्तु, समयानुसार एक दिन रावकानड़ादि सकल श्रीसंघ ने सूरीश्वरजी की सेवा में चातुर्मास की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। आचार्यश्री ने भी भविष्य के लाभ का कारण को सोचकर श्रीसंघकृत प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करली। सर्वत्र हर्ष के वादित्र बजने लगे। जो कोई आचार्यश्री के चातुर्मास के निश्चय को सुनता हर्षोन्मत्त होजाता। शा. आसल की प्रसन्नता तो अवर्णनीय थी। उसको तो अपनी भावना सफल करने का अच्छा अवसर ही हस्तगत हुआ था। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव, स्नात्र पूजा, प्रभावनादि कार्य भी बड़े उत्साह पूर्वक प्रारम्भ कर दिये गये।

शाह आसल, महा प्रभावक पञ्चमाङ्ग श्रीभगवती सूत्र बड़े ही समारोह पूर्वक अपने घर लेगया। पूजा, प्रभावना, स्वामी वात्सल्यादि उत्सवों को करते हुए सूत्र को हस्ति पर आरुढ़ कर बड़े ही जुलूस के साथ सवारी चढ़ाकर श्रीआचार्यदेव को अर्पण किया। शाह आसल एवं मालपुर के सकल संघ ने हीरा पन्ना, माणिक, मुक्ताफलादि से ज्ञान पूजा की। इस ज्ञान पूजा में एक करोड़ रुपयों का द्रव्य जमा हुआ था। इस द्रव्य में गुरु गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न की स्वर्ण मुद्रिका से पूजा की गई वह भी शामिल था। इसप्रकार ज्ञान खाते के एकत्रित द्रव्य का सदुपयोग करने के लिये वर्तमान जैन साहित्य एवं आगमों को लिखवाकर मालपुर में ज्ञान भण्डार स्थापित कर देने का निश्चय किया गया।

सूरिजी के व्याख्यान की छटा और तत्त्व समझाने की शैली इतनी रोचक, सरस एवं उत्तम थी कि साधारण जनता भी सुनकर बोध को प्राप्त हो जाती। राव कानड़ तो सूरिजी का इतना भक्त होगया कि वह एक दिन भी व्याख्यान श्रवण से वञ्चित न रह सका। वह तो आचार्य देव की व्याख्यान शैली से इतना प्रभावित हुआ कि उसे वाममार्गियों के अत्याचार एवं आचार व्यवहार की पोपलीला से घृणा आने लगी। शुद्ध, पवित्र एवं आत्मकल्याण में साधकतम जैन धर्म ही उसे सारभूत तत्त्व मालूम होने लगा। यावत जैनधर्म को स्वीकार कर उसके प्रचार में वह यथासाध्य प्रयत्न शील भी हुआ 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकक्त्यनुसार बहुत से लोगों ने मिथ्या मतों का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार किया। इस तरह सूरिजी महाराज के बिराजने से मालपुर में जैनधर्म की आशातीत प्रभावना हुई।

इधर अक्षय निधि के स्वामी शाह आसल की ओर से द्रव्य व्यय की खुल्ले हाथों से छूट थी। आसल की ओर से ही पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि विशेष परिमाण में होरहे थे। इधर मन्दिर का कार्य भी अविरत गति से प्रारम्भ था। कारीगरों एवं मजदूरों की संख्या में कार्य शीघ्रता के लिये पर्याप्त वृद्धि कर दीगई कारण, आसल को जल्दी ही गृहस्थ धर्माराधना पूर्वक संसार का त्याग करना था।

अब सिर्फ एक संघ निकालने का कार्य ही रहा था। इसके लिये भी सूरिजी से परामर्श कर एक सुंदर योजना तैय्यार करली। चातुर्मासावसानानंतर तत्काल श्रीसंघ से अनुमति लेली और बहुत दूर दूर तक आमंत्रण भेजकर विशाल संख्या में चतुर्विध संघ को मालपुर में बुलवा कर बड़ा पूजा [illegible] एवं विशाल संख्या में आचार्य देव के नेतृत्व एवं शा. आसल के संघपतित्व में शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ रवाना हुआ। क्रमशः यात्राओं को करके संघ पुनः मालपुर आगया। [illegible] करते ही तत्काल मन्दिर की प्रतिष्ठा का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। मन्दिर की प्रतिष्ठानंतर [illegible]

एवं स्वधर्मी भाइयों में पुरुषों को सुवर्ण माला और बहिनों को सुवर्ण चूड़ा तथा मुद्रिकाएं की परामणी एवं याचकों को पुष्कल द्रव्य का दान दिया तथा सात क्षेत्रों में भी बहुत धन देकर कल्याण कारी पुन्योपार्जन किया। जिससे आसल की धवल कीर्ति दिगान्त व्यापक होगई। इन सब कामों में आसल ने तीन करोड़ रुपये व्यय कर दिये।

अन्त में अपने पुत्र पोलाक को घर का भार सौंप कर आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी के पास ४२ नर नारियों के साथ शाह आसल ने भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली। सूरिजी ने आसल का नाम ज्ञान कलश रख दिया। मुनि ज्ञानकलश आचार्य देव की सेवा में रहते हुए ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न हो गया। आपके संसार में जैसे द्रव्य की अन्तराय टूट गई थी वैसे दीक्षा के पश्चात् ज्ञानान्तराय एवं तपस्या करने की भी अन्तराय टूटी हुई थी। बस; कुशाग्र बुद्धि की प्रबलता के कारण, मुनि ज्ञानकलश थोड़े ही समय में विविध भाषा विशारद, नाना शास्त्रविचक्षण-अजोड़ विद्वान बन गये। जैन साहित्य के [illegible] विद्वान होने पर आपने, कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। तप कर्म की दुष्करता के साथ ही अभिग्रह भी ऐसे धारण करते रहे कि आपको कई दिनों तक पारणा करने का अवसर ही नहीं मिला। पट्टावली निर्माताओं ने आपके अभिग्रह के बहुत से उदाहरण बताये हैं-तथाहि—

एक समय मुनि श्री ज्ञानकलशजी ने अभिग्रह किया कि लाल वस्त्र धारण करने वाली कोई सौभाग्यवती स्त्री मुझे तिरस्कार करती हुई भिक्षा देवे तो ही पारणा करना। भला—ऐसे तपस्वी, ज्ञानी एवं [illegible] पात्र मुनि का तिरस्कार करने का दुस्साहस किस पातकी का होता ? फिर इनकी [illegible] ऐसी हुई थी कि इनका तिरस्कार किसी के द्वारा होना सम्भव ही नहीं था। मुनीश्री हमेशा भिक्षार्थ [illegible] और विहार भी करते जाते किन्तु तिरस्कार के बदले सर्वत्र प्रशंसा ही के वाक्य सुनते [illegible] भिक्षार्थ गये हुए मुनि ज्यों के त्यों पुनः लौट आते। इस तरह चौबीस दिन व्यतीत हो गये। एक दिन [illegible] मुनीश्री एक ग्राम में भिक्षा के लिये गये। सौभाग्य वश किसी जैनेतर के घर पर [illegible] लाल वस्त्र धारण की हुई सौभाग्यवती बाई ने मुनीश्री का तिरस्कार किया किन्तु मुनिश्री को [illegible] चित्त से वहीं खड़ा हुआ देखा तो उसने भावना पूर्वक भिक्षा प्रदान की। मुनि ने भी [illegible] स्वीकार कर पारणा किया।

एक समय अभिग्रह किया कि कोई राजा [illegible] करे तो [illegible] करीब ४५ दिन व्यतीत होगये पर कोई राजा के निमन्त्रण करने का [illegible] उपवास का क्रम चालू रखते हुए आचार्य देव के साथ परिभ्रमण करते रहे [illegible] तालाब के किनारे पर कुछ घोड़ों को [illegible] हुए देखे। साथ ही कुछ [illegible] हुए। [illegible] को देख मुनिश्री उनके पास जाकर पूछा कि आप कौन हैं। [illegible] कहा—हम हमारे राजा के साथ में आये हुए [illegible] हैं। [illegible] यह आवाज सुनी और मुनिराज को [illegible] आहार पानी के लाभ की भावना आई। [illegible] एवं पारणा कर लिया। [illegible] ४५ वां दिन था। [illegible] अभिग्रह था कि कोई राजा [illegible]

अन्यथा नहीं। इस पर आपको अलभ्य लाभ का भागी समझ राजा की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा वह तत्काल मुनियों के पास में आया और वंदन करके बैठ गया। आचार्यश्री ने अहिंसा परमोधर्मः का मार्मिक उपदेश दिया जिससे राजा ने शिकार करने एवं मांस, मदिरा का उपयोग करने का त्याग कर दिया।

एक समय मुनिजी ने अभिग्रह किया कि, लग्न के समय वरवधू ग्रन्थि बंधन सहित भिक्षा दें तो पारणा करूं। इस अभिग्रह के पश्चात् भी १६ दिन व्यतीत होगये। एक दिन अचानक ऐसा संयोग मिल जाने से मुनि श्री ने पारण किया।

इस प्रकार की तपस्या के प्रभाव से जया विजयादि कई देवियां आपके दर्शनार्थ आया करती थी। क्यों नहीं ? तप का महात्म्य ही ऐसा है।

आचार्य देवगुप्त सूरि ने अपने शिष्य मण्डल में सूरिपद के लिये मुनिश्री ज्ञानकलशजी को ही योग्य समझा और अपनी वृद्धावस्था के अन्तिम निश्चयानुसार उपकेशपुर में सकल श्रीसंघ के समक्ष बप्पनाग गौत्रीय शाह लाला के महामहोत्सव पूर्वक भगवान् महावीर के मन्दिर में मुनि ज्ञानकलश को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य श्रीसिद्धसूरिजी महान् प्रतिभा सम्पन्न आचार्य हुए। आप के ज्ञान एवं तपस्या का प्रभाव था कि वादी-प्रतिवादी आपका नाम श्रवण करते ही इधर उधर लुप्त हो जाते। आपका समय भले चैत्यवास का समय था किन्तु, उस समय के कई चैत्यवासी प्रायः चारों ओर जैन धर्म का रक्षण एवं प्रचार करने में तत्पर थे। वे आचार व्यवहार के नियमों में दृढ़ थे। यदि उनका जीवन नियमित न होता तो उस संघर्ष काल में जब कि—वेदान्तियों का, बौद्धों का एवं अनार्य मलेच्छोंका आधिक्य था,—जैन धर्म जीवित नहीं रह सकता। जैन धर्म जो अविच्छिन्न गति से बराबर चलता आरहा है यह सब उस समय के उन सुविहित चैत्यवासियों का ही प्रताप है। उक्त बात जैन साहित्य का अन्वेषण एवं इतिहास का मनन पूर्वक अध्ययन करने से सुस्पष्टप्रकारेण ज्ञात होजाती है।

"चैत्यवासी यद्यपि शिथिलाचारी थे पर इससे यह नहीं समझा जाय कि सब चैत्यवासी ऐसे ही थे कारण उस समय में भी बहुत से सुविहित उग्र विहारी एवं जैन धर्म की महान प्रभावना करने वाले विद्यमान थे और उस समय उनका प्रभाव केवल समाज पर ही नहीं पर बड़े २ राजामहाराजाओं पर भी था और वे सुविहिताचार्य समय २ संघ सभाएं कर शिथिलाचारियों को उपदेश कर उग्र विहारी बनाने की कोशिश भी किया करते थे जो पूर्व पृष्ठों पर पाठक पढ़ आये हैं और चैत्यवासियों के लिये हम एक प्रकरण पृथक् ही लिखेंगे जिससे पाठक जान जायेंगे कि चैत्यावासियों ने जैन धर्म पर कितना जबर्दस्त उपकार कर जैन धर्म को जीवित रखा है।

आचार्य श्रीसिद्धसूरिजी ने उपकेशपुर से विहार कर मरूभूमि के छोटे बड़े ग्रामों में पर्यटन करते हुए जैनधर्म रूपी उपवन को उपदेश रूपी जल से सिञ्चित कर फल पुष्प लता समन्वित सुवासित करके, हराभरा पल्लवित-गुलजार बना दिया। सूरिजी म.ने अपने पूर्वाचार्यों के आदर्श को सामने रख यह निश्चय कर लिया था कि साधुओं का विहार क्षेत्र जितना विशाल होवेगा—धर्म प्रचार उतने ही वेग से बढ़ते हुए परिमाण में वृद्धिगत होता रहेगा। अतः आपश्री ने अपने आज्ञावर्ती साधुओं को दूर दूर विहार करने की आज्ञा देदी। और आपको अपनी शिष्य मण्डली सहित मेदपाट, आवंतिका, लाट कोंकण, सौराष्ट्र

सिंध, पञ्जाब, कुनाल, करु, शूरसेन, मत्स्य आदि प्रान्तो में परिभ्रमण करते रहे। समयानुकूल शेपे काल एवं चातुर्मास के योग्य क्षेत्रो में ज्यादा ठहरते हुए व अवशिष्ट स्थानों मे तत् स्थान योग्य निवास करते हुए आचार्यश्री ने धर्म प्रचारार्थ अपना परिभ्रमन प्रारम्भ रक्खा। आपके पूर्वजों द्वारा संस्थापित शुद्धिकी मशीन को आपने द्रुतगति से चलाना प्रारम्भ किया। और पूर्वाचर्यों के आदर्श का अनुसरण करते हुए अनेक मांस भक्षियों को मांस त्याग का सच्चा पाठ पढ़ाया। हम पढ़ चुके हैं कि पूज्य आचार्यदेव न तो देहिक कष्टों की परवाह करते थे और न सुख दुखः का ही विचार करते थे। वे तो जैन धर्म की प्रभावना एवं महाजन संघ की रक्षा एव वृद्धि करने में संलगन थे। उनकी नस नस में जैन धर्म के प्रति अनुराग भरा हुआ था और इसीसे प्रेरित हो आपश्री ने अपने विहार में अनेकों को जैनानुयायी वनाये। ईस गच्छ के आचार्य शुरु से ही अजैनों को जैन वना कर महाजनसंघ की वृद्धि करने में सलग्न थे उन आचार्यो के भक्त राजा महाराजा एवं सेठ साहूकारों को भी यही शिक्षा मिलती थी कि नूतन जैनों के साथ प्रेम रखे उनकों सव प्रकार की सहायता पहुँचावे और जैनेत्तरों से जैन बनते ही उनके साथ विना किसी भेद भाव के रोटी और बेटी व्यवहार करलें और ऐसा ही वे करते थे तथा इस उदारता से ही महाजनसंघ करोंडों की संख्या तक पहुंच गया था।

उस समय के पूज्याचार्यों की व्यवहार दक्षता कार्य कुशलता हृदय की उदारता एवं विचार की विशा-लता ने जैन एवं जैनेतर समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाला था। तथा जैन श्रमणो का त्याग वैराग्य निस्पृ-हिता एव आचार व्यवहार की जटिलता ने भी जैनेत्तर लोगों को अपनी ओर [illegible] कर लिये थे। कारण उनके गुरुओं में प्रायः इस प्रकार कठोर आचार का अभाव ही था अत. उनको [illegible] होना स्वतः सिद्ध ही था।

फिर भी कई लोग जैनधर्म को उपादाय समझते हुए भी स्वीकार नहीं कर सकते थे इसका कारण संसार लुब्ध जीवों से जैनधर्म के कठोर नियम पालन करना दुःसाध्य थे साथ में इतर धर्म के कहलाने वाले गुरु स्वय त्याग मार्ग से पराङ्मुख होकर अपने भक्तो को किसी तरह की रोक टोक न कर सब तरह की छूट देकर भी धर्म बतलाते थे अतः पुदगलानंदी जीव धर्म के नाम पर अपनी इन्द्रियो का [illegible] करने में स्वच्छन्दाचारी बने रहते थे तथापि उस समय सत्य धर्म की कसोटी पर [illegible] वालों की भी कमी नहीं थी जैनाचार्य आप जनता में एव राजसभाओं में निडरता पूर्व शास्त्रार्थ कर [illegible] जीवों का उद्धार कर जैन धर्म की वृद्धि करने मे सदैव कटी बद्ध रहते थे और उन्होंने अपने कार्य में सफ-लता भी प्राप्त प्रमाण में करली थी।

जैनाचार्य और आपके आज्ञा वृति श्रमणगण [illegible] के [illegible] बहुत जैनों की बस्ती हो उस प्रदेश को श्रमणों से वंचित नहीं रखते थे [illegible] संपन मिलता रहता हो वह [illegible] रहे यह एक स्वाभाविक [illegible] है।

उस समय जैन शासन में गच्छो एवं सम्प्रदायों का [illegible] हो चुका [illegible] भी जैन धर्म का प्रचार के लिये वे सब एक हो के एक दूसरे के कार्य में [illegible] जैन धर्म की [illegible] में ही वे अपनी उन्नति समझते थे [illegible] आपसी वाद विवाद एवं [illegible] [illegible] चैत्यवास के नाम पर [illegible]

में निंदा अवहिलना करना नहीं जानते थे किसी ने किसी के विरोध में अवाज नहीं उठाई थी किसी के प्रति अश्रद्धा भी नहीं करवाते थे फूट कुसम्प का विष नहीं उंगला जाता था अर्थात् वे कर्म सिद्धान्त के अनुभवी थे। जिन जिन जीवों के जितना २ क्षयोपसम होता है वे उतना उतना ही पालन कर सकते हैं तथापि सुविहित आचार्य शिथिलाचारियों को सुविहित बनाने की कोशीश करते रहते थे। यदि किसी व्यक्ति को जबर्दस्त विवश किया जाय तो वे लोग छीप छुपकर माया कपटाइ करके अधिक कर्म बन्ध करेंगे। अतः परस्पर मिल झुल कर ही शासन सेवा करना करवाना श्रेयस्कर समझते थे यदि वे आज के साधुओं की तरह मत्सरता भाव से एक दूसरे को नीचा दीखाने की प्रवृति कर डालते तो उनको उतनी सफलता मिलनी असंभव थी कि जितनी उन्होंने प्राप्त की थी इत्यादि उस समय के महामंत्र को आज हम समझले तो उन्नति हमारे से दूर नहीं है।

आचार्य सिद्धसूरिजी म. मरुधर में भ्रमन करते हुए एक समय नारदपुरी में पधारे वहां के श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया एवं नगर प्रवेश का महोत्सव में पल्लीवाल ज्ञातिय शाह मेकरण ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेश होता था जिसको श्रवण कर जनता बहुत आनन्द का अनुभव करती थी। एक समय शाह मेंकरण पल्लीवाल ने सूरिजी से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य मैंने स्वर्गीय आचार्य देवगुप्तसूरि के समीप द्वादशव्रत लिये थे जिसमें परिग्रह का प्रमाण किया था जिससे आज मेरे पास बहुत अधिक द्रव्य जमा हो गया है अब मैं उस द्रव्य को किस काम में लगाउं कृपा कर रास्ता बतलावे ? सूरिजी ने कहा मेंकरण तु भाग्यशाली है अपने व्रतों की रक्षा के निमित द्रव्य का मोह छोड़ रहा है। इसके लिये शास्त्रकारों ने सात क्षेत्रों का निर्देश किया है पर विशेषता यह है कि जिस समय जिस क्षेत्र में अधिक जरूरत हो उस क्षेत्र में द्रव्य व्यय करना विशेष लाभ का कारण होता है मेरा अनुभव में तो तु तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा करवाने का लाभ ले इत्यादि। सूरिजी के वचनों को मेंकरण ने तथाऽस्तु कह कर शिराधार्य कर लिया .वाद सूरिजी को वन्दन कर अपने घर पर आया और अपने पुत्रों पौत्रों को एकत्र कर सब हाल कहा कि मैं मेरे प्रमाण से अधिक द्रव्य को सूरिजी के कथनानुसार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने में लगाना चाहता हूँ इसमें तुमारी क्या इच्छा है ? पुत्रों ने कहा पूज्य पिताजी आपके उपार्जन किया द्रव्य आप अपनी इच्छानुसार व्यय करें इसमें हमारा क्या अधिकार है कि हम हस्तक्षेप करे ? हम लोग तो बड़े ही खुश है हम से बनेगा वह कार्य कर पुन्योपार्जन करेंगे आपतो अवश्य आप निर्धारित कार्य कर पुन्य हाँसिल करावे।

अहा-हा कैसा जमाना था कि साधारण रकम नहीं पर लाखों करोड़ों द्रव्य पिता शुभ कार्यों में चाहे जिसमें पुत्र चू तक भी न करे और उल्टा अनुमोदन करते हैं यह कितनी अनुकरणीय अवस्था ! कितना मन [illegible] पना !! कितना निस्पृहीत्व !!! बस मेंकरण ने अपने आज्ञा कारी पुत्रों को संघ सामग्री एकत्र करने का आदेश दे दिया और संघ के लिये आमन्त्रण पत्रिकाए देश विदेश में तथा मुनियों के लिये भी [illegible] को स्थान स्थान पर भेजवा दिये।

फाल्गुन शुक्ल पंचमी का शुभमुहूर्त निश्चय किया ठीक समय पर सैकड़ों हजारों [illegible] एवं लाखों श्रावक श्राविकाएँ नारदपुरी में जमा हो जाने से नारदपुरी एक यात्रा का धाम [illegible] शाह मेंकरण को संघपति पद प्रदान कर आचार्यश्री की नायकत्व में संघ प्रस्थान कर दिया [illegible]

 [illegible]

मन्दिरों के दर्शन करते हुए या स्थान स्थान के संघों से सम्मान पाते हुए जीर्णोद्धार एवं जीव दया के लिये संघपति मैकरण खुल्ले हाथो से पुष्कल द्रव्य व्यय करता हुआ संघ तीर्थ धिराज श्रीशत्रुंजय पर पहुँचे भावुकों ने परम प्रभु ऋषभदेव के दर्शन स्पर्शन या पूजा कर अपने जीवन को सफल बनाया आठ दिन तक तीर्थ पर रह कर अष्टान्हिक महोत्सव धजारोहणादि शुभ कार्य किये बाद रेवत.चलादि तीर्थों की यात्रा कर संघ पुनः नारदपुरी में आया शाह मेकरण ने पुरुषों के लिये सोना की कंठियों और स्त्रियों के लिये सोना के कांकण (चुड़ियों) तथा उमंदा वस्त्र एवं लड्डुओं की प्रभावना देकर संघ को विसर्जन किया इन सब कार्यों में शा मकरण ने तीन करोड़ रुपये व्यय किया जो उनको करणा ही था यह एक उदाहरण बतलाया है पर उस समय ऐसे तो बहुत से धर्मज्ञ भावुक भक्त थे और उनको पुन्य के उदय से लक्ष्मी भी उनके घर पर दासी होकर रहती थी ज्यों ज्यों शुभ कार्यो में लक्ष्मी का सदुपयोग करते थे त्यों त्यो अधिक से अधिक लक्ष्मी बढ़ती जाती थी उस समय के भद्रिक लोगों की देव गुरु धर्म पर अटल श्रद्धा एवं विश्वास था छल प्रपंच माया कपटाइ में तो ये लोग प्रायः समझते ही नहीं थे गुरु वचन पर उनको पूर्ण श्रद्धा थी येही उनके पुन्य-बढ़ने के मुख्य कारण थे ।

वंशावलियों पट्टावलियों में अनेक उदार नर पुंगवों के उल्लेख किया गया है पर [illegible] बतलाने में मैंने केवल नमूना के तौर पर एक शाह मैकरण का ही उल्लेख किया है और शेष हमारे [illegible] के अनु- सार नामावली आगे देदी जायगी जिससे पाठक ठीक अवगत हो सकेंगे ।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज अपने २९ वर्ष के शासन समय में जैनधर्म की [illegible] की और जैनधर्म का उत्कर्ष को खुब जोरों से बढ़ाया आपके शासन में हजारो मुनि [illegible] प्रत्येक प्रान्त में विहार कर अपने संयम को शोभाय मान कर भव्य जीवों पर महान् उपकार करते थे [illegible] शाखा एवं वीर परम्परा के अनेक गण कुल शाखाए के हजारो मुनि आपस में [illegible] मिलाप के साथ जैनधर्म का प्रचार करा रहे थे उस समय आचार्य सिद्धसूरि सर्वोपरी धर्म प्रचारक आचार्य समझे जाते थे और आपका प्रभाव सब पर एकसा पड़ता था अतः ऐसे महान् प्रभाविक [illegible] के चरण कमलो में मैं कोटी कोटी नमस्कार कर अपने जीवन को सफल हुआ समझता हूँ:—

आचार्य भगवान् के २९ वर्ष के शासन में भावुको की दीक्षाएं

१—पारोला के [illegible] सीताराम ने दीक्षा ली
२—कुपल के [illegible] गौत्रीय माला ने ,,
३—छत्रीपुरा ,, चोरडिया ,, भाखर ने ,,
४—दापड़ ,, [illegible] ,, कान्हड़ ने ,,
५—[illegible] ,, सूधड़ ,, धना ने ,,
६—[illegible] ,, [illegible] ,, [illegible] ने ,,
७—[illegible] ,, बोहरा ,, [illegible] ने ,,
८—नागपुर ,, [illegible] ,, नारायण ने ,,
९—[illegible] ,, [illegible] ,, [illegible] ने ,,

१०—सरोजा	,,	श्री श्रीमाली	,,	शाद्दुला ने	,,
११—सत्यपुर	,,	भूरि	,,	तोलाने	,,
१२—वडपी	,,	कुम्मट	,,	बाला ने	,,
१३—स्तम्मनपुर	,,	प्राग्वट	,,	नाहार ने	,,
१४—पद्मावती	,,	प्राग्वट	,,	माला ने	,,
१५—मेदनीपुर	,,	प्राग्वट	,,	देवा ने	,,
१६—मादड़ी	,,	प्राग्वट	,,	गोमा ने	,,
१७—नारदपुरी	,,	श्रीमाल	,,	भोणा ने	,,
१८—चंदलिया	,,	चिंचट	,,	आड़ दाना ने	,,
१९—मुत्ताड़ी	,,	श्रीमाल	,,	रामा ने	,,
२०—वैराट्पुर	,,	डिड्डु	,,	करत्था ने	,,
२१—रोयाटी	,,	लघुश्रेष्टि	,,	जैसल ने	,,
२२—वीरपुर	,,	कनोजिया	,,	देसल ने	,,
२३—मालपुर	,,	क्षत्री	,,	ठाकुर ने	,,
२४—जोटाणी	,,	मोरख	,,	मोकल ने	,,
२५—चोराट	,,	बलाह्य	,,	देदा ने	,,
२६—चर्पट	,,	वीरहट	,,	दाहड़ ने	,,
२७—खेटकपुर	,,	कुलहट	,,	भोजा ने	,,
२८—करोलिया	,,	करणावट	,,	नेता ने	,,
२९—नंद ग्राम	,,	प्राग्वट	,,	बाला ने	,,
३०—मुसिया	,,	प्राग्वट	,,	जोगा ने	,,

आचार्य श्री के २९ वर्ष के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—हंसावली	के	श्रेष्टि	गोत्रीय	मंत्री नागने	पार्श्वनाथ का	म.प्र.
२—शाकम्भरी	,,	मंत्री	,,	माला	,,	,,
३—मुगोली	,,	अदित्य०	,,	जैतसी	,,	,,
४—पद्मावती	,,	भूरि	,,	दुर्गाने	,,	,,
५—आलोट	,,	चिंचट	,,	पाताने	,,	,,
६—नागपुर	,,	कुम्मट	,,	खेताने	,,	,,
७—[illegible]	,,	लघुश्रेष्टि	,,	श्रीवमीने	,,	,,
८—[illegible]	,,	कनोजिया	,,	सोनाने	[illegible]	
९—[illegible]	,,	मोरख	,,	आदूने	,,	,,
१०—[illegible]	,,	प्राग्वट	,,	अजड़ने	,,	,,

११—जैसाली	,,	प्राग्वट	,,	अज्जने	भ०	महावीर
१२—मल्लपुर	,,	वीरहट	,,	रावलने	,,	,,
१३—लोद्रवापुर	,,	श्री श्री माल	,,	सादरने	,,	,,
१४—भवराणी	,,	श्री माल	,,	नोढ़ाने	भा०	पार्श्वनाथ
१५—भोजपुर	,,	प्राग्वट	,,	लुम्बो	,,	,,
१६—देवाटी	,,	प्राग्वट	,,	लाला	,,	,,
१७—गुडगीरी	,,	प्राग्वट	,,	हरदेव	,,	नेमिनाथ
१८—तोलसी	,,	श्रीमाल	,,	सहजपाल	,,	,,
१९—फरजण	,,	रांका	,,	मोहज	,,	शान्तिनाथ
२०—भीमाली	,,	चोरलिया	,,	देसल	,,	,,
२१—आलोट	,,	चरड	,,	भासल	,,	,,
२२—डामरेल	,,	दूघड	,,	नोंधण	,,	महावीर
२३—बुराटी	,,	तप्तभट्ट	,,	खेमो	,,	,,
२४—मथुरा	,,	बाप्पनाग	,,	डाप्पो	,,	,,
२५—सोजाली	,,	प्राग्वट	,,	देदो	,,	,,
२६—दादोली	,,	अग्रवाल	,,	शाकर	,,	पार्श्वनाथ

सूरीश्वरजी के २६ वर्षों के शासन मे संपादि शुभ कार्य—

१—कोरंटपुर	के श्रीमाल नंदा ने	शत्रुंजय का संघ निकाला
२—चन्द्रावती	के प्राग्वट भोलाने	,, ,,
३—डामरेल	के श्रेष्टि गौ० नारायण ने	,, ,,
४—लोहाकोट	के मंत्री ठाकुरसी ने	सम्मेत शिखर का संघ
५—मथुरा	के बप्पनाग टीलाने	शत्रुंजय का संघ
६—आघाट	के सुचंति लाखणने	उपकेशपुर का संघ
७—उज्जैन	के श्री श्रीमाल [illegible]ने	शत्रुंजय का संघ
८—भद्रेसर	के श्रीमाल [illegible] ने	,, ,,
९—उपकेशपुर	के भद्र नरसीने	,, ,,
१०—[illegible]	के [illegible]ने	,, ,,
११—[illegible]पुर	के [illegible]ने	,, ,,
१२—[illegible]	के [illegible]	,, ,,
१३—[illegible]	के [illegible]	
१४—[illegible]	के [illegible]	
१५—[illegible]	के [illegible]	

१६—देवपट्टन के भूरि जोग की स्त्री सतीहुई

१७—वेनापुर के आदित्य सोढ़ा की स्त्री सती हुई

१८—जाबलीपुर के श्रेष्टि० धर्मशी की विधवा पुत्री पेमी ने नजदीक में एक तालाब बनवाया

१९—वि० सं० ६३५ में एक भयंकर दुकाल पड़ा जिसमें उपकेशपुर के महाजन संघ ने अपने नगर से करीब तीन करोड़ का चन्दा किया और शेष अन्य स्थानों से सात करोड़ का चन्दा करके मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास पानी वगैरह की सहायता कर उस जन संहारक दुकाल को सुकाल बना दिया यही कारण है कि साधारण जनता महजनों को मां बाप कह कर उपकार मानती है और महाजनों की इसी उदारता के कारण राजा महाराजा भी उनको मान और सम्मान किया करते थे। इसी प्रकार और भी कई छोटे बड़े दुकाल पड़ा जिसको एक एक ग्राम के महाजनों ने ही देश निकाल देकर भगा दिया था।

अड़तीसवें वे पद विराजे, सिद्धसूरि अतिशय धारी थे
शुद्ध संयमी और कठिन तपस्वी, आप बड़े उपकारी थे
प्रचारक थे अहिंसा के, शिष्यों की संख्या बढ़ाइ थी
सिद्ध हस्त थे अपने कामों मे, अतुल सफलता पाइ थी

इति भगवान् पार्श्वनाथ के ३८ वें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुए।

३६ आचार्य श्री ककसूरि (अष्टम)

धन्यः ककमुनीश्वरो बुधवरो यो दीक्षितः शैशवे
निष्ठां प्राप्य च ब्रह्मचर्य चरणे वाक् सिद्धिविद्योतितः ।
लब्धीनां परमास्पदं समुदितः श्रीतत्पभट्टान्वये
अन्यान् जैनमतावलम्बितजनानस्थापयच्छ्रेयसे ॥

आचार्य श्री ककसूरिजी महाराज बडे ही क्रान्तिकारी एवं जबरदस्त प्रचारक आचार्य हुए । आपके मौलिक गुणों का वर्णन करने में साधारण व्यक्ति तो क्या, पर बृहस्पति भी असमर्थ है भारत भर में चारों ओर आपका ही लोहा थी । जैसे आपका विहार क्षेत्र विशाल था वैसे आपकी आज्ञावर्ती श्रमण मण्डल भी विशाल था । आपका समय विकट परीक्षा का समय था । भयंकर दुष्काल के क्रूर आक्रमण ने जनता [illegible] मचादी थी । धर्म में चारों ओर शिथिलता दृष्टि गोचर होने लगी थी पर, आचार्य श्रीककसूरिजी महाराज की [illegible] में वह अपना ज्यादा प्रभाव न डाल सकी । आपके जीवन को पट्टावली निर्माताओं ने [illegible] पूर्वक [illegible] है । आपके जीवन वृत्त के साथ ही साथ उस समय के जैनियों की गौरव गाथा का भी [illegible] किया है । पाठकों की जानकारी के लिये यहां आपश्री का संक्षिप्त जीवन [illegible] है ।

अर्बुदाचल की शीतल छाया में पद्मावती नाम की सुरम्य नगरी थी । [illegible] एक समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र स्थान को प्राप्त किये हुए सर्व प्रकार से [illegible] थी । [illegible] के उपदेश से प्राग्वट वंश की उत्पत्ति इसी पद्मावती नगरी से हुई थी । पद्मावती [illegible] के अधिकार में थी और चंद्रावती के सूर्यवंशीय राजा कल्हण देव की ओर से एक [illegible] पद्मावती में प्रबन्ध कर्ता हाकिम के पद के तौर पर रहते थे । [illegible] परम्परा से जैन धर्म के [illegible], श्रद्धालु श्रावक थे ।

पद्मावती नगरी में प्राग्वट गौत्रीय शा० [illegible] नाम के एक [illegible] और [illegible] रहते थे । आपकी पत्नी का नाम सरजू था । सेठजी पर लक्ष्मी की पूर्ण [illegible] था । सेठानी सरजू पुत्र के बिना महान् दुःखी थी । [illegible] के [illegible] संसार के सकल सुखोपभोग के साधन [illegible] आनंद दायक प्रतीत नहीं [illegible] शून्य [illegible] हो रहा था । सेठानी [illegible] ने सेठानी को उदास रहने का कारण पूछा । [illegible] कह सुनाई । सेठानी की [illegible] — [illegible] नहीं सुना है कि — देवताओं के पुत्र नहीं होने से वे [illegible] कि — महाविदेह क्षेत्र में कोई [illegible] दुखवान हुआ [illegible] बहुत धनवान होता । महाविदेह क्षेत्र [illegible]

उनके आपस में इसी तरह की गाली देने का तात्पर्य यही कि मनुष्य बहुत धनी किंवा विशाल परिवार वाला होने पर कुछ भी धर्माराधन नहीं कर सकेगा अतः धर्म मय जीवन के अभाव में वह अपने आप चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहेगा । जब महाविदेह क्षेत्रवालों की दृष्टि से भी भरत क्षेत्र में बहुत पुत्र वाला होना शापरूप है तो पुत्र के अभाव में अपने को तो परम आनंद मनाना चाहिये की जिससे हम धर्म ध्यान करने में एक दम स्वतंत्र हैं सेठानी जी ! आपका इस तरह उदास रहना सर्वथा अवास्तविक है अपने को तो अनवरत गतिपूर्वक धर्म ध्यान में उद्यमवंत होना चाहिये । पतिदेव के उक्त कंटकवत् हृदय विदारक एवं साक्षात् उपेक्षा वृत्ति प्रदर्शक वचनों को सुनकर सेठानीजी के दुख में और भी वृद्धि हुई । सेठजी ने कई उपायों से समझाने का प्रयत्न किया किन्तु सेठानीजी को किसी भी तरह से संतोष नहीं हुआ इस तरह सेठजी के अनेकानेक उपाय निष्फल ही होते रहे । एक दिन विवश हो अष्टम तप कर सेठानीजी ने अपनी कुल देवी सचायिका का ध्यान किया । तीसरे दिन देवी ने स्वप्न में सेठानी को कहा—तुम्हारे पुत्र तो होगा पर वह १५ वर्ष की वय में दीक्षित हो जायगा । तुम उसे किसी तरह से रोकना नहीं इतना कह कर देवी अदृश्य हो गई । अब सेठानी की आँखें खुल पईं । वह अपने पति के पास आकर स्वप्न का सारा वृत्तान्त यथावत् कह, सुनाये । देवी कथित वचनों को श्रवण कर प्रसन्न हो सेठ जी बोले—सेठानीजी ! आप बड़े भाग्यशाली हो की देवकी आप पर पूरी कृपा दृष्टि है । सेठानी ने कहा—पूज्यवर ! देवी की कृपा तो है पर, पुत्र होकर १५ वर्ष की अल्प वय में ही दीक्षा लेलेगा तब मैं क्या करूंगी ?

सेठजी—तुम्हारी कुक्षि से पैदा हुआ पुत्र दीक्षित होकर अपनी आत्मा के साथ अन्य अनेक आत्माओं को तारे यह तो आपके लिये अत्यन्त गौरव की बात है । इससे तो उसकी आत्मा का भी उद्धार होगा और कुल का नाम भी उज्ज्वल होगा । यदि इतने पर भी पुत्र पर ज्यादा प्रेम हो तो तुम भी साथ में दीक्षा ले लेना । इसमे दोनों की ही आत्मा का कल्याण हो जायगा ।

सेठानी—मैं दीक्षा लूंगी तब आप क्या करेंगे ?

सेठजी—मैं भी दीक्षा ले लूंगा ।

सेठानीजी—फिर घर को कौन सम्भालेगा ?

सेठजी—घर है किसका ?

सेठानीजी—क्या आप नहीं जानते कि घर अपना है ।

सेठजी—अरे अपना तो शरीर ही नहीं है फिर घर कैसे अपना हो सकता है ? इस तरह सेठ, सेठानी के परस्पर विनोद की बातें चलती रही । कालान्तर से सेठानी ने गर्भ धारण किया और गर्भ के प्रभाव से सेठानी को अच्छे २ दोहले (गर्भ के जीव के प्रभाव माता के हृदय के मनोरथ) उत्पन्न होने लगे । पूजा, प्रभावना, स्वामी वात्सल्य, जिन दर्शन, सुपात्रदान जिन महोत्सव, धर्मशास्त्र श्रवण इत्यादि शुभ कर्म के प्रभाव से उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहे । सेठजी भी पुत्र जन्म की भावी खुशी में सर्व मनोरथ सम्यक् पूर्ण करते थे । सेठजी ऐसे भी उदार दिल के व्यक्ति थे और लक्ष्मी की भी कमी नहीं थी अतः धार्मिक कार्यों में द्रव्य को व्यय कर पुण्य सम्पादन करना उन्हें रुचिकर प्रतीत होता था ।

सेठानी ने, पूर्णमास होने के पश्चात् पुत्र रत्न को जन्म दिया । अनेक महोत्सवों के करते हुए पुत्र का नाम सेवा रख दिया । जब सेवा ? वर्ष का हुआ, तब ही से उसकी माता सेठानी, [illegible]

सेठानी पर देवी की कृपा

भय में प्रतिक्रमण करने को जाया करती थी। खेमा भी साथ जाता था एक दिन खेमा दरवाजे पर बैठा था इधर महिला समुदायको गुरुणीजी अत्यन्त उच्च स्वर से प्रतिक्रमण करवा रही थी। साध्वीजी का उच्चारण स्पष्ट और मधुर था। साध्वी के प्रत्येक शब्द खेमा को बहुत ही कर्ण प्रिय लगे। ज्यों ज्यों साध्वी जी प्रतिक्रमण करवाती गई त्यों त्यों वह ७ वर्ष की अल्पवय में एक वक्त के श्रवण मात्र से खेमा कण्ठस्थ कर लेता गया। बाद में वह भी अपनी माता के साथ में प्रतिक्रमण के समाप्त होने पर पुनः अपने घर लौट आया। दूसरे दिन प्रतिक्रमण के समय कुछ २ वर्षा प्रारम्भ होगई थी फिर भी नित्य नियम में निष्ठ सेठानी ने अपने पुत्र खेमा को कहा-खेमा! प्रतिक्रमण करने उपाश्रय में चलना है? खेमा ने कहा मां इस वर्षा में उपाश्रय में जाकर क्या करोगी? लो मैं यहां पर ही आपको प्रतिक्रमण करवा देता हूँ। माता ने खेमा की बाल चपलता को देख कर उसकी बात को यों ही हंसी में उड़ादी और हंसते २ कहने लगी जा जल्दी गुरुणीजी को सूचना देआ कि आज वर्षा आ रही है मा नहीं आवेगी क्यों कि गुरुणीजी मेरी राह देखते होंगे। पर वर्षा के कारण मेरे प्रतिक्रमण तो आज यों ही रह जायगा। खेमा ने फिर से कहा मां! आप निश्चिन्त रहो मैं सत्य कहता हूँ कि आपको यहां पर ही निर्विघ्न प्रतिक्रमण क्रिया सहित करवा दूंगा। माता को खेमा की बोली पर व स्वाभाविक वाचालता पर कुछ हंसी तो आगई पर पुत्र के आग्रह से वह सामायिक लेकर बैठ गई। सातवर्ष के बच्चे खेमा ने गुरुणीजी के मुख से जैसा प्रतिक्रमण सुना था वैसा का वैसा माता को करवा दिया। माता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने बड़ी प्रसन्नता से पूछा—खेमा! तू ने यह प्रतिक्रमण कहां कब व किससे सीखा? खेमाने कहा—मां! कल मैं तेरे साथ उपाश्रय में गया था और गुरुणी जी ने प्रतिक्रमण करवाया बस मैं ने भी याद कर लिया। माता सरजू भद्रिक परिणामी बालक खेमा पर तुष्ट होती हुई देवी के वचनों का स्मरण करने लगी की खेमा कहीं दीक्षा न ले ले? इसके लिये मुझे पहले से ही ठीक प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

सेठानी दूसरे दिन वंदन करने उपाश्रय में गई। गुरुणीजी ने उसे उपालम्भ दिया—सरजू! हमने तेरी कितनी राह देखी। कल तू ने प्रतिक्रमण नहीं किया? सरजू ने कहा—गुरुणीजी! कल वर्षा [illegible] थी अतः मैंने घर पर ही प्रतिक्रमण कर लिया। गुरुणी जी—परन्तु घर पर प्रतिक्रमण तुम्हें करवाया किसने। सेठानी—खेमा ने। गुरुणी जी—क्या कहते हो? खेमा जैसे नादान बालक को प्रतिक्रमण आता है? सेठानी—हां आता है। कल ही आपश्री के मुखारविंद से सुना था। गुरुणीजी—[illegible] सेठानी—आपने कल हम सब को उच्चस्वर से बोलते हुए प्रतिक्रमण करवाया [illegible] के मुख से सुनता २ ही कण्ठस्थ करता गया। साध्वी सरजू की बात को सुन कर [illegible] बस वहां से जल्दी ही [illegible] खेमा का सारा वृत्तान्त [illegible] उपाध्यायजी को कह सुनाया।

[illegible] खेमा [illegible] के लिये उपाश्रयमें [illegible]। वंदन करने के पश्चात् उपाध्यायजी ने पूछा—खेमा! तुझे प्रतिक्रमण [illegible]? खेमा के बोलने के पहिले ही [illegible] गुरुणीजी [illegible] खेमा [illegible] करवाया। उपाध्यायजी ने कहा—नहीं मैं तो खेमा से पूछता हूं। खेमा ने कहा—हां [illegible] से मुझे प्रतिक्रमण आता है। [illegible]

सलखण सुन कर मुग्ध होगये। उनको मालूम नहीं था कि खेमा केवल गुरुजी के शब्दोच्चारण मात्र को एक बार सुनने मात्र से ही प्रतिक्रमण सीख चुका है।

गुरु—सलखण ! यदि खेमा दीक्षा अङ्गीकार करेगा तो जैनधर्म का बहुत ही उद्योत करेगा।

सलखण गुरुदेव ! खेमा को आपके चरणों में अर्पण करने का निश्चय इसके जन्म के पहले ही किया जा चुका है। खेमा हमारा नहीं पर आपका है। सलखण के इन वचनों को सुन कर उपाध्यायजी को बहुत आनंद हुआ।

सलखण घर पर आया और खेमा के लिये अपनी स्त्री को कई बातें कही। सेठानी ने कहा—पति देव ! खेमा का विवाह जल्दी ही कर देना चाहिये। सेठानी की इच्छा खेमा को मोह पाश में जकड़ कर घर में रखने की थी। उसने भविष्य का विचार किया कि यदि खेमा शादी के बंधन में बंध गया तो सांसारिक भोग विलासों से मुक्त होना उसके लिये कठिन सा होजायगा अतः जितना जल्दी विवाह होजावे उतना ही वह अच्छा समझती थी।

सेठजी—क्या इस प्रकार के विचारों से देवी के वचनों को असत्य करना चाहती हो ? मैंने तो गुरु महाराज को भी कह दिया कि—खेमा को आपश्री के चरणों में अर्पण करूंगा।

सेठानी—आपतो मेरे हृदय की महत्वाकांक्षाओं को मिट्टी में मिलाना चाहते पर खेमा दीक्षा के लिये तैय्यार होवे तब न ?

सेठजी—प्रिये ! दीक्षा, कोई जबर्दस्ती का सौदा नहीं है। यह तो आत्मिक-आन्तरिक भावनाओं का परिणाम है। मैंने तो देवी के वचनों पर विश्वास करके ही गुरु महाराज को कहा था। हां, शादी के लिये खेमा १५ वर्ष का हो जायगा फिर इसकी शादी कर दूंगा।

सेठानी—क्या १२ वर्ष की वय में विवाह नहीं किया जा सकता है ?

सेठजी—खेमा को पूछ लिया जायगा। यदि उसकी इच्छा विवाह करने की होगी तो १२ वर्ष की अवस्था में ही विवाह कर दिया जायगा अभी तो खेमा सात वर्ष का है। अतः इस विषय के विचारों में अभी से उलझने में क्या लाभ ?

इस प्रकार दम्पति में परस्पर वार्तालाप हो रहा था। खेमा भी इधर उधर खेलता हुआ सुन रहा था पर वह कुछ भी नहीं बोला। खेमा की बाल चेष्टाए भावि की बधाइ दे रहीं थी।

वि. सं. ६२९ में एक साधारण दुष्काल पड़ा। कई लोगों के पास धान एवं घास का संग्रह था, अतः गरीब लोगों के निर्वाह के लिये उन दयालु व्यक्तियों ने स्थान २ पर दानशालाएं वगैरह खोल दी। इससे उस दुष्काल का जन समाज पर इतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। नये वर्ष की आशा पर लोगों ने ज्यों त्यों उस दुष्काल के समय को व्यतीत किया किन्तु दुर्भाग्यवशात् ६३० में तो सार्वभौमिक भयंकर दुष्काल पड़ा। जनता में त्राहि त्राहि मच गई। अन्न, जल एवं घास के अभाव में मनुष्य एवं पशुओं को तड़प तड़प कर प्राण छोड़ते हुए देख खेमा का हृदय दया से उमड़ने लगा। उसने अपने पिता के पास आकर कहा—पूज्य पिताजी ! आपका यह द्रव्य यदि इस विकट परिस्थिति में भी जन समाज के लिये उपयोगी न हो तो फिर इस द्रव्य का सद्भाव एवं अभाव दोनों समान ही हैं। अपना तो अहिंसा परमोधर्मः सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त है फिर ऐसे दुःखी आत्माओं की सेवा में काम न आवे तो इस द्रव्य की महत्ता ही क्या है ? पिताजी ! [illegible]

यही आन्तरिक इच्छा है कि इस भयंकर समय में उदारता से स्वोपार्जित द्रव्य का उपयोग करें। पुत्र के ऐसे वचनों को सुन कर सलखण को भी अलौकिक हर्ष का अनुभव हुआ कारण वे प्रारम्भ से ही सहृदयी, दानी एवं दयालु पुरुष थे। पुत्र के कथनानुसार सलखण ने अपने योग्य मनुष्यों के द्वारा स्थान२ पर अन्न एव घास का ऐसा प्रबंध करवा दिया कि—बिना किसी भेद भाव के खुल्ले दिल से जन समाज को अन्न एवं पशुओं के लिये घास दिया जाने लगा। जहां जिस भाव मिले वहां से—उस भाव अन्न एवं घास मंगवा कर देश वासी भाइयों के प्राण बचाना उन्होंने अपना कर्तव्य बना लिया। यह कार्य कोई साधारण कार्य नहीं था। इसमें पुष्कल द्रव्य का व्यय, उत्कृष्ट उदारता, और कुशल कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता थी। शा० सलखण के पास तो सब ही साधन विद्यमान थे फिर वे पुन्योपार्जन करने में कब चूकने वाले थे ? साथ ही खेमा जैसे दयावान पुत्र की जबर्दस्त प्रेरणा—फिर तो कहना ही क्या ? सलखण ने लाखों नहीं पर करोड़ों रुपयों को व्यय करके महाभयकर, दारुण, जन संहारक दुष्काल को सुकाल बना दिया। मनुष्य एवं पशु भी अन्तःकरण पूर्वक सलखण एवं खेमा को आशीर्वाद देने लगे। राजा एवं प्रजा, सलखण और खेमा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगी और उनको नगर सेठादि कई उपाधियां भी प्रदान की।

कहावत है—'समय चला जाता है पर बात रह जाती है।' लक्ष्मी का स्वभाव चंचल है; वह किसी के साथ न चली है और न चलने वाली ही है जिन महानुभावों ने साधनों के होते हुए इस प्रकार देश सेवा कर अमर यश कमाया है उन्हीं की धवलकीर्ति कोटि कल्प लों अमर बन जाती है। इन्हीं महापुरुषों में ये हमारे चरित्र नायक शा. सलखण और खेमा एक है। इनका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इस महाजनसंघ में एक सलखण ही क्या पर ऐसे अनेकों नर रत्न होगये हैं कि जिन्होंने समय २ पर इस प्रकार देश सेवा करने का अमर यश सम्पादन किया है। इन्हीं कारणों से प्रेरित हो तत्कालीन राजा, महाराजा एवं नागरिकों ने ऐसे नरपुङ्गवों को नगरसेठ, पंच चौवटिया एवं टीकायत आदि पद प्रदान किये। ये सब पद तो उनके साधारण जीवन के दैनिक कृत्यों के ही सूचक थे पर इन सब कार्यों से भी कई गुने महत्वपूर्ण कार्य उनके द्वारा किये गये कि उनके द्वारा प्राप्त वे पद आज भी उनकी सन्तान के लिये बदस्तूर विद्यमान है।

एक समय धर्मप्रचार करते हुए धर्मप्राण आचार्य श्रीसिद्धसूरि के चरण कमल, पद्मावती की ओर हुए। इस बात की खबर मिलते ही जनता के हर्ष का पार नहीं रहा। शा० सलखण ने सवालक्ष द्रव्य व्ययकर सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने मङ्गलाचरण के पश्चात् थोड़े पर सारगर्भित देशना दी। जनता पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार सूरिजी का व्याख्यान क्रम प्रारम्भ ही था। इधर खेमा को भी पन्द्रहवां वर्ष पूर्ण होने वाला ही था अतः सेठानी ने खेमा को सूरिजी के यहां आ जाने की सख्त मनाई कर दी थी। पर खेमा को तो आचार्यदेव के पास आना, जाना, व्याख्यान श्रवण करना बहुत ही रुचिकर प्रतीत होता था अतः माता के मना करने पर भी उसने अपने आने जाने का क्रम बंद नहीं किया। सूरिजी ने भी खेमा की भाग्य रेखा को देखकर यह अनुमान कर लिया था कि—खेमा, बड़ा ही होनहार, भाग्यशाली एवं दीक्षा होने पर शासन का उद्योत करने वाला होगा।

एक समय सूरिश्वरजीने वैराग्य की धून में संसार परिभ्रमन एवं नारकीय दुखों का वर्णन करते हुए फरमाया कि—जिन लोगों ने सांसारिक पौद्गलिक सुखों में सुख माना है; वे लोग स्वल्पकालीन सुख में मोहित हो दीर्घकालीन दुःखों को खरीद कर लेते हैं। महानुभावों! मनुष्य एवं तिर्यञ्च के दुःखों को तो हम प्रत्यक्ष में देख ही रहे हैं पर इससे भी अनंत गुणें दुःख नरक में प्राप्त हुए जीव को सहन करने पड़ते हैं। उन दुखों के वर्णन का साक्षात् चित्र तो केवल ज्ञानी भगवान् किंवा अतिशय ज्ञानवाले महात्मा ही खेंच सकते हैं। हां उनके कथानानुसार अल्पज्ञ व्यक्ति भी स्वमत्यनुकूल यत्किञ्चित रूप में उन भावों को कथन कर सकते हैं परन्तु वे साक्षात् ज्ञानियों के समान उसका वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ ही हैं। देखिये अनुभवी पुरुषो ने अपने उद्गार किस प्रकार व्यक्त किये हैं:—

जरामरणकन्तारे चाउरन्ते भयागरे। मएसोढाणिभीमाणि, जम्माणिमरणाणि य ॥ १ ॥
जहाइहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणंत गुणेतहिं। नरएसुवेयणा उण्हा, अस्सायावेइयामए ॥ २ ॥
जहाइहं इमं सीयं एत्तोऽणन्तगुणेतहिं। नरएसुवेयणा सीया अस्सायावेइयामए ॥ ३ ॥
कंदन्तो कंदुकुम्भीसु उड्ढपाओ अहोसिरो। हुयासणेजलंतम्मि पक्कपुव्वोअणन्तसो ॥ ४ ॥
महा दवग्गि संकासे, मरुम्मि वइरवालुए। कलम्बवालुयाए य दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥ ५ ॥
रसन्तो कन्दुकुम्भीसु उड्ढंबद्धोअबंधवो। करवत्तकरकयाइहिं छिन्न पुव्वोअणंतसो ॥ ६ ॥
अइतिक्खकंटगाइण्णे तुंगे सिंबलिपायवे। खेवियं पासबद्धेणं कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥ ७ ॥
महाजन्तेसु उच्छूवा आरसन्तो सुभेरवं। पीडिओमिसकम्मेहिं पावकम्मो अणंतसो ॥ ८ ॥
कूवंतो कोलसुणएहिं सामेहिं सबलेहिं य। पाडिओ फालिओ छिन्नो विप्फुरन्तो अणेगसो ॥ ९ ॥
असीहिं अयसिवण्णेहिं भल्लीहिं पट्टिसेहिंय। छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय ओइण्णो पावकम्मुणा ॥ १० ॥
अवसो लोह रहे जुत्तो, जलन्ते समिलाजुए। चोइओतुत्तजुत्तेहिं रोज्झोवा जह पाडिओ ॥ ११ ॥
हुयासणे जलंतम्मि चियासु महिसो विव। दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥ १२ ॥
बला संडासतुंडेहिं लोहतुंडेहिं पक्खीहिं। विलुत्तो विलवंतहं ढंकगिद्धेहिं णन्तसो ॥ १३ ॥

तण्हा किलन्तो धावन्तो पत्तोवेयरणीनइं । जलं पाहिंत्तिचिन्तन्तो खुरधाराहिं विवाइओ ॥१४॥
उण्हाभित्तत्तो संपत्तो असिपत्तं महावणं, असिपत्तेहिं पडन्तेहिं छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥१५॥
मुग्गरेहिं मुसतीहिं सूलेहिं मुसलेहिय । गयासंभग्ग गत्तेहिं पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥१६॥
खुरेहिं तिक्खधारेहिं, छूरियाहिं कप्पणीहिय । कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्किन्तो यअणेगसो ॥१७॥
पासेहिं कूडजालेहिं मिओवा अवसो अहं । वाहिओ बद्धरुद्धोवा, बहुसो चेव विवाइओ ॥१८॥
गलेहिं मगर जालेहिं, मच्छोवा अवसो अहं । उल्लिओ फालिओ गहिओ मारिओयअणंतसो ॥१९॥
वीदंसएहिं जालेहिं लेप्पाहिं सउणोविव । गहिओ लग्गोबद्धोय मारिओय अणंतसो ॥२०॥
कुहाडफरसुमाइहिं वढ्ढईहिं डमो विव । कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओय अणंतसो ॥२१॥

इस रोमाञ्चकारी नारकीय वर्णन को श्रवण कर उपस्थित जन समाज के रोंगटे खड़े हो गये । एक-दम सहसा सब के सब कुछ क्षणों के लिये वैराग्य के प्रवाह में प्रवाहित हो गये । आचार्यश्री ने इसका रौद्र एवं विभत्स रस परिपूर्ण सजीवचित्र उपस्थित श्रोतावर्ग के वक्षस्थलपर अंकित करते हुए फरमाया कि— महानुभावो ! जब हम दीक्षा का उपदेश देते हैं तब दीक्षा के बावीसपरिषहों की दुष्करता का स्मरण करके साधारण जन समाज भयभीत हो जाता है किन्तु, विचारने की बात है कि—नारकीय दुःखों के सामने परिषह जन्य यातनाएं नगण्य सी हैं । बन्धुओं ! हमने अनंतबार ऐसी २ दारुण [illegible] सहन की है तो फिर चारित्र में नरक से ज्यादा क्या कष्ट हैं ? यदि सम्यग्दृष्टि पूर्वक विचार किया जाय तो दीक्षा के जैसा निवृत्ति मय सुख तीनों लोक में कहीं पर भी नहीं है । शास्त्रकार फरमाते हैं कि—मनुष्य की अपेक्षा [illegible] से देवताओं के सुख अनंत गुणे हैं तथापि—

१ जितना सुख १५ दिन की दीक्षा वाले को है उतना व्यन्तर देवों को नहीं ।
२ ,, ,, एक मास ,, ,, ,, ,, नागादि नवनिकायों के देवों को नहीं
३ ,, ,, दो ,, ,, ,, ,, ,, असुर कुमार देवों को नहीं ।
४ ,, ,, तीन ,, ,, ,, ,, ,, ज्योतिषी ,, ,, ,,
५ ,, ,, चार ,, ,, ,, ,, ,, पहले दूसरे देवलोक के देवों को नहीं ।
६ ,, ,, पांच ,, ,, ,, ,, ,, तीसरे चौथे देव लोक के देवों को नहीं ।
७ ,, ,, छ ,, ,, ,, ,, ,, पांचवें, छट्ठे ,, ,, ,,
८ ,, ,, सात ,, ,, ,, ,, ,, सातवें, आठवें ,, ,, ,,
९ ,, ,, आठ ,, ,, ,, ,, ,, नववें, दसवें ,, ,, ,,
१० ,, ,, नव ,, ,, ,, ,, ,, ग्यारहवें, बारहवें ,, ,, ,,
११ ,, ,, दश ,, ,, ,, ,, ,, ग्रैवेयक ,, ,, ,,
१२ ,, ,, ग्यारह ,, ,, ,, ,, ,, चार अनुत्तर विमान के ,, ,,
१३ ,, ,, बारह ,, ,, ,, ,, ,, सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों को ,, ,,

पौद्गलिक सुखों में देवता [illegible] और [illegible] है ही नहीं । पर संयमजीवन में विचरण [illegible]

बतलाया है । अतः एहिक, पारलौकिक, आत्मिक सुखों के अभिलाषियों को सुख प्राप्त करने के लिये निर्मल चारीत्र की आराधना करना चाहिये । यह तो आत्मिक सुखों की बात कही पर बाह्य भावों से दीक्षा पालन करने वाले जीव भी संसारी जीवों की अपेक्षा हजार गुने सुखी है । देखिये—

१ संसार में किसी के एक, दो, या दश, बीस पुत्र होते हैं । इतने पर भी गृहस्थी को उन पुत्रों से शायद ही सुख हो कारण, गार्हस्थ्य सम्बन्धी चिन्ताएं एवं पुत्र का कपूत पना उसे सदा ही सन्तापित करता रहता है पर साधु अवस्था में सैकड़ों पुत्र ग्रामोग्राम प्राप्त हो जाते हैं, वे भी विनयी और आज्ञा पालक।

२ संसार में दो चार शाक किंवा किसी दिन विशिष्टि भोजन की प्राप्ति हो जाति है पर मुनिवृत्ति में तो सैकड़ो घरों की गोचरी और सैकड़ों ही विशिष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। आये हुए आहार को अमृत माने है।

३ संसार में रहते हुए संसारी जीव अपना जीवन एकही ग्राम किंवा एक घर में समाप्त कर देते हैं किन्तु साधुत्व जीवन में सैकड़ों ग्राम नगर में पर्यटन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है । नवीन २ मनुष्यों के एवं नवीन २ शहरों के संसर्ग में अनेक नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं ।

४ संसारावस्था में रहते हुए तो कोई किसी का हुक्म माने या न माने पर चारित्र वृत्ति की आराधना करते हुए तो हजारो, लाखों भक्त लोग खमा—खमा करके सहर्ष मुनियों के आदेश को शिरोधार्य करते हैं।

५ संसार में तो राजा आदि हर एक व्यक्ति की गुलामी में पराधिन रहना पड़ता है पर संयमित जीवन में तो राजाओं के भी गुरु कहलाते हुए निवृत्ति मार्ग में सदा स्वतंत्र रहते हैं ।

६ संसार में धनाभाव के कारण उसकी प्राप्ति एवं रक्षा के लिये सदा चिंतन रहना पड़ता है; क्या है—"पुव्वावि दंडा पच्छावि दण्डा" तब इसके विपरीत दीक्षा में निर्भिक एवं संतोष पूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है ।

७ संसार में ध्येय होता है—कुटुम्बादि का पालन पोषण करके कर्मोपार्जन करने का तब, दीक्षा में हजारों जीवों का आत्म कल्याण करने के साथ अपनी आत्मा का उद्धार करने का प्रमुख लक्ष्य होता है।

बन्धुओं ! अब आप स्वयं समझलें कि सुख संसार में है या दीक्षा में । इस तरह सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा विस्तार से उपदेश दिया । इसका असर उपस्थित जनता पर तो हुआ ही किन्तु खेमा पर इसका विचित्र ही प्रभाव पड़ा वह निद्रा में से जागृत होते हुए व्यक्ति के समान एक दम सचेतन होगया। व्याख्यान समाप्त होते ही खेमा ने घर आकर अपने माता पिताओं को कहा—कृपा कर मुझे आज्ञा प्रदान करें कि मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण करु । पुत्र के वैराग्य मय शब्दों को सुनकर माता मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी जब जल और वायु के उपचार से उसे सचैतन्य किया तब देवी के कहे हुए वचन रह २ कर उसके दुःख के वेग को बढ़ाने लगे । उसने खेमा को समझाने का बहुत ही प्रयत्न किया किन्तु कृतयत्न सब निष्फल रहा। खेमा तो आज्ञा के प्रश्न को और भी वेग पूर्वक आगे बढ़ाने लगा । माता देवी के वचनों के द्वारा जानती थी किन्तु मोहनी कर्म रह २ कर उसे, खेमा को संसार में रखने के लिये बाधित करने लगा ।

इधर से सेठजी भी वहां आगये । अपनी स्त्री को पुत्र के भावी वियोग के कारण विलाप करते हुए देख उन्होंने भी खेमा को बहुत समझाया वे कहने लगे—बेटा ! अभी तो तेरा विवाह करना है । अभी तो दीक्षा लेने में कुछ लाभ नहीं है । फिर भुक्त भोगी हो कर दीक्षा लेना तो, तेरे साथ ही साथ हम भी ...

संयम सुख और संसार के दुःख

आत्म कल्याण कर सकेंगे। पर जिसको वैराग्य का दृढ़ रंग लग गया उसको ऐसी बातें कैसे रुचिकर हों ? खेमा की भी यही हालत हुई। उसने सेठजी के एक वचन को भी स्वीकार नहीं किया अनन्योपाय, सेठ जी ने अपनी पत्नी से कहा—प्रिये। क्या देवी के कहे हुए वचनों को भूल गई हो ? सेठानी ने कहा—नहीं। सेठ ने कहा फिर रोने की क्या बात है ? यदि पुत्र मोह छूटता नहीं है तो तुम भी पुत्र के साथ दीक्षित होकर आत्मकल्याण करो। मैं भी दीक्षा के लिए तैय्यार ही हूँ। बस बातों ही बातों में सेठजी व सेठानीजी पुत्र के साथ दीक्षा लेने के लिये उद्यत होगये। जब यह बात नगरी में हवा के साथ फैलती गई तो सकल नगर निवासियों को अत्यन्त आश्चर्य एवं हर्ष हुआ कई लोगों ने सेठजी को धन्यवाद दिया और कई लोग तो सूरिजी के व्याख्यान एवं सेठ जी के त्याग से प्रभावित हो दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गये। सेठ सलखण ने अपने द्रव्य से नव लक्ष रुपये अपनी दीक्षा महोत्सव के लिये रखकर अवशिष्ट द्रव्य को स्वधर्मी भाईयों की सेवा तथा सात क्षेत्रों में जहाँ आवश्यकता देखी वहाँ सदुपयोग किया।

शुभ मुहूर्त में सेठ, सेठानी, खेमा और दूसरे भी २७ नर नारियों ने आचार्यदेव के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। सूरिजी ने उन मुमुक्षुओं को दीक्षित कर खेमा का नाम मुनि दयारत्न रख दिया। मुनि दयारत्न पर सरस्वती देवी की तो पहिले से ही कृपा थी। पूर्व जन्म में ज्ञान की अच्छी आराधना भी की होगी यही कारण था कि—मुनि दयारत्न ने कुछ ही समय में जैनागमों का अच्छा अध्ययन कर लिया। वे जैन साहित्य के प्रकाण्ड—अनन्य विद्वान् हो गये। जैनागमों के अध्ययन के साथ ही न्याय, व्याकरण, काव्य, छंद, अलंकारादि वाङ्मय साहित्य का भी गहरा अभ्यास करते गये तथा नाना भाषा विचक्षण होने में कुछ भी देर न लगी। विद्वत्ता के साथ ही साथ आपके मुखारविन्द पर ब्रह्मचर्य का भी अपूर्व तेज दीखने लगा। बाल ब्रह्मचारी होने से आपके अखण्ड ब्रह्मचर्य की कांति एवं तपतेज की प्रभा सूर्य की किरणों की तरह प्रकाशमान होने लगी। यही कारण है कि आचार्य सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में मुनि दयारत्न को आचार्यपद से सुशोभित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया

आचार्य कक्कसूरिजी महान् विद्वान् और प्रतापी एवं धर्मवीर आचार्य हुए हैं। आपकी प्रतिभा सम्पन्न विद्वता की छाप सर्वत्र विस्तृत था। आपका विहार क्षेत्र अत्यन्त विशाल था। एक समय सूरीश्वरजी ने नागपुर से विहार कर सपादलक्ष प्रदेश में पर्यटन कर, सर्वत्र धर्मोपदेश करते हुए क्रमशः शाकम्भरी नगरी की ओर पदार्पण किया जब शाकम्भरी श्रीसंघ को ये शुभ समाचार मिले कि आचार्य देव, इधर पधार रहे हैं तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। श्रेष्टि गोत्रीय शा. गोपाल ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने मंदिरों के दर्शन कर धर्मशाला में पधार कर आगत जन समाज को संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित देशना दी। [illegible] इसी तरह प्रतिदिन आचार्य देव के व्याख्यान का क्रम प्रारम्भ रहा। सर्वत्र आपके व्याख्यान शैली की प्रशंसा फैल गई कारण, आपके व्याख्यान बांचने का ढंग इतना सरल, मनोहर, [illegible] था कि साधारण समाज व विद्वद् समाज समान रूप से [illegible] आपके व्याख्यान को श्रवण कर मन्त्र मुग्ध हो जाते थे।

एक दिन वहां के शासक [illegible] ने सूरिजी के [illegible] सुनकर—व्याख्यान सुनने की अभिलाषा से [illegible] सूरिजी [illegible]

अतः आपने षट् दर्शन की तुलनात्मक आलोचना करते हुए जैन दर्शन के तत्वों एवं आचार व्यव विषयों का खण्डन मण्डनात्मक दृष्टि से नहीं किन्तु, विषय प्रतिपादन शैली की दृष्टि से इस तरह पादन किया कि—श्रोतावर्ग की आत्माओं पर गम्भीर असर हुए बिना नहीं रहा। आगे सूरीश्वरजी ने दर्शन महात्म्य' विषय का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि—कितनेक जैन दर्शन के वास्तविक सिद्धान्त अनभिज्ञ व्यक्ति जैनधर्म को नास्तिक एवं अनीश्वर वादी कह कर भद्रिक लोगों को अपने भ्रम की पा जकड़ लेते हैं किन्तु जैन दर्शन का सूक्ष्म, गम्भीरता पूर्वक अवलोकन करने वाले इस बात को भली प्र से जानते हैं कि जैनधर्म न तो नास्तिक धर्म है और न अनीश्वर वादी ही है। मेधावी व्यक्ति स्वयं सकते हैं कि जैनधर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने वालों में आग्रेश्वर है यदि जैन ईश्वर को ही मानता तो प्रत्येक्ष में लाखों करोड़ों रुपयों का व्यय कर भारत भूमि पर आलीसांन मन्दिरों का नि कर ईश्वर की मूर्त्तियों स्थापन कर प्रतिदिन श्रद्धा एवं नियम से ईश्वर की सेवा पूजा क्यों करते ? मैं यहाँ तक कहने का दावा करता हूँ कि जैसा जैनों ने ईश्वर को माना है वैसा शायद् ही किसी दर्शन ने माना है राग द्वेष मोह अज्ञान काम क्रोध से बिलकुल मुक्त सच्चिदानन्द अनंत ज्ञान दर्शन संयुक्त ई को जैन ईश्वर मानते है हाँ कइ मत्तानुयायी ईश्वर को सृष्टि का कर्ता हर्ता एवं जीवों को पुन्य पाप भुक्तनेवाला माना है जैन ऐसे ईश्वर को ईश्वर नहीं मानते है कारण ईश्वर को सृष्टि के कर्ता हर्ता पुन्य पाप के फल भुक्ताने वाला मानने से अनेक आपतियाँ आती है और ईश्वर पर अन्यायी अज्ञ अल्पज्ञादि कइ दोष लागु हो जाते है अतः जैन अनेश्वर वादी नहीं पर कट्टर ईश्वर वादी है नास्तिकों मान्यता है कि स्वर्ग नर्क पुन्य पापादि कोई पदार्थ नहीं है और न वे स्वीकार ही करते है जब जैन स्वर्ग न पुन्य पाप और भविष्य में पुन्य पापों का फलों को भी मानते है फिर समझ में नहीं आता है कि ईश वादी अस्ति जैनों को नास्ति क्यों कहा जाता है। यह तो पक्षपात की अग्नि में जलने वाले व्यक्तियों व्यर्थ प्रलाप है कि जैन तत्वों की वास्तविकता से अनभिज्ञ वे लोग यत्र तत्र अपने अज्ञानता पूर्ण पाग पन का परिचय देते रहते हैं। मैं तो दावे के साथ कहता हूँ कि आस्तिकता का दम भरने वाले अन्य धर्मों की अपेक्षा जैनधर्म सर्वोत्कृष्ट आत्म कल्याण साधक धर्म है। जैनधर्म के वास्तविक सिद्धान्तों का यथोचित स्वरूप बताने मात्र से आपको अपने आप उपरोक्त बातों का स्पष्टि करण हो जायगा यतु—

१ सृष्टिवादः—जैन दर्शन सृष्टि को अनादि काल से शाश्वत् मानता है। वह स्वर्ग, नरक और मृत्यु लोक के अस्तित्व को स्वीकार करता है। स्वर्ग में देवों के निवास स्थान या नरक में नारकी के जीवों के रहने का और मृत्यु लोक में मनुष्य तिर्यंच का वास है इन सबका अनेक आगम प्रत्यक्ष परोक्ष अनुमानादि प्रमाणों से स्पष्टी करण होता है। जब दुनिया में पाप का आधिक्य एवं पुण्य का क्षय होता जाता है तब संसार अ [illegible] कर्षावस्था को प्राप्त होता है। इसके विपरित पुण्य की प्रबलता एवं पाप की कमी से जगत की उत्कर्ष [illegible] वृद्धि को प्राप्त होता है। इस तरह यह अनादिकाल का चक्र अनंत काल पर्यन्त चलता ही रहता है। [illegible] दर्शन ने इस तरह के काल विभाग को दो विभागों में विभक्त किया है एक उत्सर्पिणी काल—इसे उत्क्रान्तिकाल कहा है और दूसरा अवसर्पिणी काल इसको अवनति काल कहा है। उत्सर्पिणी काल में [illegible] [illegible], कुटुम्ब, [illegible] सकल कार्यों की उन्नति होती जाती है और अवसर्पिणी काल में इन [illegible] [illegible] होता है। अवसर्पिणी काल के छ विभाग है जिसको छ आरा भी कहते हैं जैसे

१ सुषमासुषमा—आरा	चार क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम	
२ सुषमा—आरा	तीन ,, ,,	
३ सुषम दुःखम—आरा	दो ,, ,,	
४ दुःखम सुषमा—आरा	एक ,, ,,	में ४२००० वर्ष कम
५—दुखम—आरा		२१००० वर्षों का
६—दुःखमादुःखम—आरा		२१००० वर्षों का

उत्सर्पिणी काल के भी छ आरा है

१—दुःखम दुःखमा आरा	२१००० वर्षों का
२—दुःखम आरा	२१००० वर्षों का
३—दुःखम सुषम आरा	एक क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम ४२००० वर्ष कम
४—सुषम दुःखम आरा	दो क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का
५—सुषम आरा	तीन ,, ,, ,,
६—सुषम सुषम आरा	चार ,, ,, ,,

को अस्ति और अस्ति पदार्थ को नास्ति नहीं कहते हैं। जैसे कि सर्वोपरी विद्वान को एक चूड़ी दे कर पु कि इसका सांध (अन्त) कहां है ? इस पर वह विद्वान यही कहेगा कि इस चूड़ी की सांध नहीं है इस कोई अल्पज्ञ कहदे कि आप कहां के विद्वान जबकि हमारी चूड़ी का अन्त ही नही बता सके ? विद्वान कहा कि मैं अच्छी तरह से जान गया हूँ कि इस चूड़ी का अन्त है ही नहीं। इससे आप लोग अच्छी त से समझ गये होंगे कि काल और सृष्टि की न तो आदि है और न अन्त ही है।

(२) आत्मवादः—जीवात्मा सच्चिदानन्द की अपेक्षा तो सब सदृश्य ही है पर अवस्थापेक्ष प्रकार के हैं—एक कर्ममुक्त—जो ईश्वर परमात्मा कहलाते हैं। उक्तमुक्त जीवों ने तप, संयम से आत्मा साथ में लगे हुए अनादि काल से कर्म पुद्गलों का नाश कर जन्म मरण के भयंकर चक्र रहित आत्मीया की चरमसीमा रूप मोक्षगति को प्राप्त करके ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त की है। संसार में परिभ्रमन कर के मूल कारण कर्म रूप बीज को वे जला डालते हैं अतः जले हुए बीज के समान वे संसार में जन्म मर नहीं करते हैं। उसको कर्ममुक्त मोक्ष आत्मा कहते हैं। दूसरे संसारी जीव हैं वे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव, ऐसे चतुर्गति रूप संसार की चौरासी लक्ष जीवयोनि में स्वकृत कर्मानुसार परिभ्रमन करते रहते हैं आत्म कल्याण की अनुकूल सामग्री तो उक्त चार गतियों में से एक मनुष्य गति में ही प्राप्त हो सकती है। य साधनों की अनुकूलता का सद्भाव होने पर भी उसका मनुष्य, सदुपयोग नहीं करे तो अन्त में उनको प द्विपयक परिताप होता ही है किन्तु पापोदय से व निकाचित कर्म बंधन के तीव्र आवरण से कितनेक जीव इन्द्रियों के वशीभुत हो शिकार, मांस, मदिरादि हेय पदार्थों का उपयोग कर व्यभिचारादि अनेक दोषों क सेवन करते हैं। और अन्त में कर्जदार की भांति पाप का भार लाद कर नरक तिर्यञ्च के असह्य दुःखों क अनुभव करते हैं। यद्यपि पूर्व कृत पुण्याधिक्य से कितनेक पुण्यशाली जीवों को इस भव में उनके किये हु कर्मों का कुछ भी कटुफल नहीं मिलता है किन्तु उनको उस समय ऐसा सोचना चाहिये कि—संसार में जो द्र धन जन व्याधि वगैरह अनेक प्रकार के दुःख से संतापित मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं वे भी अवश्य ही अन किये हुए दुष्कर्मों का परिणाम है अतः पाप करने वाले पापी जीव को तथा अन्य दुःखी जीवों से पाप नहीं करने की शिक्षा लेनी चाहिये। पापी जीव को इस भवपरभव सर्वत्र दुःख ही दुःख है। धर्म मार्ग का अनुयाय करने वाले को सदा आनंद ही आनंद हैं।

कर्मवादः—संसार के चराचर जीव कर्मों की पाश में बंधे हुए हैं। अनादि काल से सम्बन्धित कर्म उनको जन्म मरण के भयंकर चक्र में चक्रवत् फिराते रहते हैं। अच्छे कर्म करने वाले को भव भव में सुख एवं आराम प्राप्त होता है और इसके विपरीत बुरे कर्म उभय लोक में सन्ताप के कारण बनते हैं। अतः कर्मोपार्जन से मोह मनकर जीव को धर्म मार्ग में प्रवृत्ति करने के लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। इस वि को तो सूरिजी ने खूब ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया।

४. क्रियावाद—अशुभ क्रिया से अलग रहते हुए शुभ क्रिया में यथावत प्रवृत्ति करना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य है। इसके भी कई भेदानुभेद बताये। और खूब ही सूक्ष्म क्रिया वाद का निरूपण किया।

५. धर्मवाद—मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह खूब बारीकी से परीक्षा करे। कारण—"... [illegible] ..." परन्तु आज कल धर्म के विषय में भिन्न २ लोगों की भिन्न २ मान्यताएं हो रही हैं। कई हैं कुल परम्परा को ही धर्म मान बैठे हैं और कई परम्परा से चले आये धर्म को ही धर्म मानते, [illegible]

हुए हैं। किसी ने अपने गृहण किये हुए धर्म को धर्म माना है तो किसी ने किसी दूसरे को। यह सब ठीक नहीं क्योंकि इन सबों को स्वीकार करते हुए आत्मीय हिताहित का पूर्ण एवं सूक्ष्म विचार नहीं करते हैं। धर्म के मुख्य लक्षणों में अहिंसा का सर्व प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट स्थान होना चाहिये। धर्म के नाम पर हिंसा विधायक विधानों का विधान कर उनसे स्वर्ग प्राप्ति की आशा रखना सत्य से नितान्त पराङ्मुख होना है। धर्म-धर्म है उसे अधर्म का रूप देकर धर्म मानना निरी अज्ञानता है। धर्म सुखमय एवं मङ्गलमय है। अतः धर्म के नाम पर असंख्य मूक प्राणियों का खून करके उसे सद्धर्म का अङ्ग मानना कहां तक युक्ति युक्त है ? बुद्धिमान मनुष्य स्थिर चित्त से विचार करें कि यह धर्म है या अधर्म है। जब अपने शरीर में एक कंटक भी प्रविष्ट हो जाता है तो असह्य पीड़ा का अनुभव होने लगता है फिर इन मूक प्राणियों को जीवन से पृथक कर धर्म का ढोंग मचाना साक्षात् अन्याय है महानुभावों। सद्धर्म को स्वीकार करो इसमें ही सर्वत्र जय है। दुनियां में जो इतनी विभिन्नताए दृष्टिगोचर होती हैं वे सब धर्म एवं अधर्म के आधार पर ही स्थित है। रंक का राजा और राजा का रंक होना तो दुनियां में चला ही आया है पर किसी भी अवस्था में क्यों न हो परन्तु कृतकर्म का बदला चुकाना तो सबके लिये आवश्यक ही होता है। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि धर्म के तत्वों का ठीक २ निर्णयकर उसका ही उपासक बने।

इस तरह सूरिजी ने जैन दर्शन के विशिष्ट तत्व को अन्यान्य दर्शनों के साथ तुलना करते हुए निर्भीकता पूर्वक मार्मिक शब्दों में समझाया कि श्रोतागण एक दम स्तब्ध रहगये। [illegible] भद्र स्वभावी धर्म के तत्वों को जिज्ञासा दृष्टि से निर्णय करने के इच्छुक थे। इनकी मान्यताओं पर सूरीश्वरजी के व्याख्यान का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। ऐसे तो वे हिंसा—जीव वध से परहेज ही [illegible] किन्तु हिंसकों के संसर्ग से कभी २ अनुचित प्रवृत्ति भी हो जाया करती थी। कारण—

"काजल की कोठरी मां कैसो हु सयानो जाय, काजल की एक लीक लागी है पै लागी है।"

अहिंसा तत्त्व को पहिचान कर सच्चे हृदय से अहिंसा का अभिनंदन करने वाले—पालक एवं प्रचारक बन जाँय तो वर्तमान में पैदा हुई उच्छृंखलता, स्वच्छंदता का नाश हो देश पुनः ऋद्धि समृद्धियुत आबाद बन जाय। क्षत्रियोचित सच्चे कर्तव्य को जैसे आपने पहिचाना है उसी तरह से हमारे दूसरे मांसाहारी भाई भी समझने का प्रयत्न करें तो देशोत्थान में किञ्चिन्मात्र भी संदेह नहीं रहे। इस तरह उत्साहवर्धक वचनों से आचार्य देव ने रावजी की प्रशंसा की एव उनकी कर्तव्य परायणता पर संतोष प्रगट किया। बाद में जय जयनाद से सभा विसर्जित हुई। रावजी को तो सूरीश्वरजी की एक दिन सत्संग से ही ऐसा रस लगा कि वे आवश्यक कार्यों को छोड़कर के भी उनका उपदेशश्रवण करने के लिये निर्धारित व्याख्यान के समय पर उपस्थित हो जाया ही करते थे। यथा राजा तथा प्रजा की लोक युक्ति अनुसासार प्रजाने भी सूरिजी के व्याख्यान श्रवण का लाभ तथा कई प्रकार के व्रत नियमों से आत्म हितसाधन किया।

जब सूरिजी ने वहां से विहार करने का विचार किया और यह खबर राव गेंदा को मिली तो वे तत्काल संघके अग्रसर व्यक्तियों को साथ में लेकर आचार्यदेव की सेवा में आये। सबके साथ रावजी ने अत्यन्त आग्रह पूर्वक चातुर्मास का अलभ्य लाभ प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। विचार के न होने पर भी श्रीसंघ की आग्रह भरी प्रार्थना को वे ठुकरा न सके। उन्हों ने भविष्य के लाभ की आशा से चातुर्मास का आश्वासन दे रावजी व संघ को विदा किया। बस फिर तो था ही क्या ? शाकम्भरी की जनता हर्ष सागर की उत्तुंग-तरंगों से तरंगित होने लगी। रावजी की प्रसन्नता का तो पार ही न रहा।

चातुर्मास के लिये अभी समय था अतः सूरिजी ने चातुर्मास के पूर्व आस पास के ग्रामों में विहार कर धर्म विचार करना अत्यन्त श्रेयस्कर समझा। उक्त विचारानुसार छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए चातुर्मास के अवसर पर शाकम्भरी में अत्यन्त समारोह पूर्वक चातुर्मास कर दिया। बिहू गौत्रीय शा मागा ने परम प्रभाविक जय कुंजर पञ्चमाङ्ग श्रीभगवती सूत्र का महा महोत्सव किया। इस में शाह ने पञ्चलक्ष द्रव्य व्ययकर शासन की खूब प्रभावना की। राव गेंदा पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। जैसे श्रावकों ने हीरा, पन्ना, माणिक मुक्ताफल एवं सुवर्ण के पुष्पों से* ज्ञान पूजा की वैसे रावजी एवं अन्य नागरिक

* यदि कोई शंका करे कि उस समय की जनता के पास इतना धन कहां से आ या। कि एक २ आगमों के महा प्रवेश एवं ज्ञानपूजा में लाखों रुपये सहज ही में व्यय किये ? यह प्रश्न तो ऐसा है कि—एक व्यक्ति ने अपने खेत में एक दाना भी खेत में नहीं बोया और दूसरे के खेतों में हजारों मन धान्य आते देखकर आश्चर्य से प्रश्न किया कि इस खेत में इतना धान्य कहां से आया। समाधान। पर जब इसका निर्णय किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि हजारों मन धान्य वाली जमीन के मालिक ने वर्षा के समय उत्तम-उत्तम भूमि में अधिक से अधिक बीज बोये और उसका सुन्दर परिणाम उसको इस तरह से प्राप्त हुआ।

यही समाधान उक्त प्रश्न का है। उस समय के लोग द्रव्योपार्जन भी आज कल की तरह अनीति पूर्वक नहीं [illegible] कर न्याय पूर्वक करते थे। वे लोग धर्म कार्य में द्रव्य का सदुपयोग करने में संकोच किया कृपण वृत्ति का [illegible] करते थे। अतः धर्म के प्रताप से उनके यहां सब तरह की समृद्धियां रहती थी। उनका व्यापारिक क्षेत्र विस्तृत था। वे विदेशों से [illegible] ले आते और उनके बदले अवाछित [illegible] उत्तम अमूल्य पदार्थ [illegible] लाते थे। [illegible] सत्क्षेत्र में सदुपयोग करते अतः शुभ कार्य में बीज बोने से उनके पुण्य भी बढ़ते ही जाते थे। [illegible] कारण वह उनको इस तरह के शुभ फल प्रदान करता था। इस प्रकार की धर्ममय प्रवृत्ति के कारण [illegible]

द्रव्य व्यय करने का [illegible]

लोगों ने भी ज्ञानार्चना का लाभ लेकर अतुल पुण्य सम्पादन किया। उक्त द्रव्य से आगम व जैनसाहित्य के अमूल्य ग्रन्थों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार में स्थापित किया। इस प्रकार ज्ञान के महात्म्य को देख जनता वेद पुराणों के महोत्सव को भूल गई थी।

व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्र प्रारम्भ हुआ। श्रोतागण बड़ी रुचि के साथ वीरवाणी के अमृत रस का आस्वादन करने में अतृप्त की भांति उत्कंठित एवं लालायित रहते थे। आचार्यदेव ने श्रीभगवतीजी के आदि सूत्र 'चलमाणे चलिए' का उच्चारण किया और उसी के विवेचन में चातुर्मास समाप्त कर दिया पर 'चलमाणे चलिए' का अर्थ पूरा नहीं हो सका। कारण सूरिजी कर्म सिद्धान्त के प्रौढ़ विद्वान एवं मर्मज्ञ थे अतः वस्तुत्व का निरूपण करने में परम कुशल या सिद्धहस्त थे। आपश्री ने कर्म की व्याख्या करते हुए कर्म के परमाणु और उसके अन्दर रहे हुए वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श की मंदता, तीव्रता, कर्मों की वर्गणा, कटुक, स्पर्द्ध, निसर्ग, कर्म बंधके हेतु कारण, परिणामों की शुभाशुभ धारा, लेश्या, के अध्यवसाय से रस व स्थिति, निधंस, निकाचित अबाधाकाल, कर्मों का उदय (विपाकोदय—प्रदेशोदय) कर्मों का उद्वर्तन, अपवर्तन, कर्मों की उदीरणा, कर्मों का वेदना (भोगना), परिणामों की विशुद्धता, आत्म प्रदेशों से कर्मों का [illegible], इनकी अकाम वेदना सकाम निर्जरा होना, ऊर्ध्वमुखी, अधोमुखी अकाम तथा देश या सर्व सकाम निर्जरा वगैरह का इसकदर वर्णन किया कि शाकम्भरी नरेश को ही नहीं अपितु व्याख्यान का लाभ लेने वाली [illegible] को जैन दर्शन के एक मुख्य सिद्धान्त कर्मवाद का अपूर्व ज्ञान हासिल हो गया। जैनधर्म के कर्म सिद्धान्त की उनके ऊपर स्थायी एवं अमिट छाप पड़ गई। वास्तव में बात भी ठीक है कि जब तक कर्मों का स्वरूप एवं उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली सकल बातों का सविशद ज्ञान न हो जाय वहां तक कर्म बन्धन से डरने एवं पूर्व कृत कर्मों की निर्जरा करने के भावों का प्रादुर्भाव होना नितान्त असम्भव है। अस्तु, आचार्यश्री ने चातुर्मास की इस दीर्घ अवधि में कर्म सिद्धान्त का ऐसा मार्मिक विवेचन किया कि उपस्थित लोगों के हृदय में एकदम वैराग्य का संचय हो गया। उन्होंने तत्क्षण ही आचार्यश्री से यथाशक्ति [illegible] कर लिये।

शास्त्रों में श्रद्धा मूल ज्ञान बतलाया है, यह ठीक एवं यथार्थ ही है। केवल चरित्र [illegible] ([illegible] या किसी का चरित्र) सुन लेने से जैन दर्शन के तात्विक सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता है, इसके लिये तो आवश्यकता है गहरे अभ्यास, मनन एवं चिन्तवन की। अतः जब तक ज्ञान का [illegible] नहीं [illegible] श्रद्धा का अंकुर नहीं और श्रद्धा के अभाव में जन्म मरण से छूटना भी असम्भव [illegible] सबसे पहिले आवश्यकता है ज्ञान की प्रौढ़ता की, कारण—शास्त्रकार भी फरमाते हैं कि—

"पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्व संजए। अन्नाणी किं काही किंवा नाही छेय पावगं।"

ज्ञानाभाव में कर्तव्याकर्तव्य का दीर्घ विचार [illegible] करके ही दर्शनाराधना की जा सकती है। इस तरह के [illegible] [illegible] एक बार [illegible] [illegible] आपको [illegible] किया। सूरिजी के [illegible]

[illegible]

चातुर्मास समाप्त होते ही सूरिजी ने विहार कर दिया। यद्यपि शाकम्भरी निवासियों के लिये आचार्य देव का विहार असम्भव अवश्य था किन्तु, निस्पृही, निर्ग्रन्थों के आचार व्यवहार विषयक विशुद्ध नियमों में खलल पहुँचा कर जबर्दस्ती रोकना भी कर्तव्य विमुख था अतः भक्ति से प्रेरित हो कितनेक मनुष्यों ने बहुत दूर तक आचार्यश्री की साथ रह कर अपूर्व सेवा का अपूर्व लाभ लिया।

पट्टावली कारों ने आचार्यदेव के प्रत्येक चतुर्मास का इसी तरह विशद विवेचन किया है किन्तु ग्रंथ कलेवर की वृद्धि के भय से हम इतना विस्तृत विवेचन नहीं करते हुए इतना लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं कि आप का विहार मरुधर से गुर्जर, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंध, पंजाब, कुरु, शूरसेन, मत्स्य, बुंदेलखंड, मालवा और मेदपाट होता था। आप क्रमशः हर एक प्रान्तों में विहार करते हुए प्रचार के लिये प्रान्त २ में भेजे हुए शिष्यों को प्रोत्साहित करते रहते थे। जगह जगह पर आपश्री के चमत्कारिक जीवन का प्रभाव जैन, जैनेतर समाज पर बहुत ही पड़ता था। बाल ब्रह्मचारी होने से अखण्ड ब्रह्मचर्य के तेज के साथ ही साथ तप, संयम एवं ज्ञान की प्रखर दीप्ति वादियों के नेत्रों में चकाचौंध सी पैदा कर देती थी। वादी आचार्य श्री के आगमन को सुनते ही हतोत्साहित हो इत उत पलायन कर देते थे। आपकी इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न प्रौढ़ विद्वत्ता ने कई राजा महाराजाओं को आकर्षित किया। उन लोगों ने भी सूरीश्वरजी के व्याख्यान श्रवण मात्र से प्रभावित हो, जैनधर्म के रहस्य को समझ जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। इस तरह सूरिजी ने जैनधर्म का खूब विस्तृत प्रचार किया।

आपने अपने बीस वर्ष के शासनकाल में ३०० से भी अधिक नर नारियों को श्रमण दीक्षा दे आत्म कल्याण के निवृत्तिमय पथ के पथिक बनाये। लाखों मांस मदिरा सेवियों का उद्धार कर जैनियों की एवं महाजन संघ की संख्या में वृद्धि की। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैनधर्म की नींव को दृढ़ एवं जैन इतिहास को अमर किया। आपश्री के जीवन की विशेषता यह थी कि उस समय के चैत्यवासियों के साम्राज्य में भी आपने अपने श्रमण संघ में आचार विचार विषयक किसी भी प्रकार की शिथिलता रूप चोर का प्रवेश नहीं होने दिया। नियम विघातक वृत्ति को न आने में खास कारण आपश्री के विहार क्षेत्र की विशालता एवं मुनियों को मुनित्व जीवन के कर्तव्य की ओर हमेशा आकर्षित करते रहने की कुशलता ही थी। विहार की उग्रता से साधु समाज के चरित्र में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई और कोई क्षेत्र भी मुनियों के व्याख्यान श्रवण के लाभ से वंचित नहीं रहा। आचार्यश्री समय २ पर मुनियों को इधर उधर प्रान्तों में प्रचारार्थ परिवर्तित कर देते कि जिससे उनको प्रान्तीय मोह व व्यक्तिगत दृढ़िकता की इच्छा जागृत न हो सकती थी। आपके इस कठोर निरीक्षण ने मुनियों के जीवन को एक दम आदर्श बना दिया था।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० युगप्रधान एवं युगप्रवर्तक आचार्य थे। उस समय आपश्री के पास जितनी श्रमण संख्या थी उतनी विशाल संख्या किसी दूसरे गच्छ या सम्प्रदाय में नहीं थी। जितना ... आपका और आपके आज्ञानुयायी साधुओं का था उतना विशाल विहार क्षेत्र व सर्वविहार ... था। जन समाज पर जितना प्रभाव आप का पड़ता था उतना अन्य का नहीं।

जब हम कल्पसूत्र के सन्दूक की ओर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि 'श्रमणों की ...' ... न होने ... वीर परम्परा के श्रमणों पर पूरा २ प्रभाव डाल चुकी थी परन्तु आचार्य कक्कसूरि ...

फिर आपसी फूट, कुसम्प एवं कदाग्रह से इसका कितना ही ह्रास हो तो उनको दुःख ही क्या ? यदि उन्हें इस विषय का दुःख होता तो नये२ मत्त पन्थ निकाल कर संघ में फूट डाल आपस में कलह से शासन की लघुता नहीं करते और पार्श्वनाथ सन्तानियों की तरह चारों ओर विहार कर विद्यमान जैनों की रक्षा एवं अजैनों को जैन बनाने का श्रेय सम्पादन करते । खैर ! प्रसङ्गोपात सम्बन्ध आगया जिससे निरङ्कुश कलम काबू में न रह सकी । अतः दुःखित आत्मासे थोड़ी आवाज निकल ही गई । अतः आपसी प्रेम में जब तक आधिक्य रहा तब तक जैन शासन की गति अविच्छिन्न रूप से चली आई । जैन समाज में सर्वत्र आनंद एवं सुख का साम्राज्य था । अस्तु,

अनेकानेक प्रान्तों में घूमते हुए और अपने शिष्य समुदाय को प्रोत्साहित कर धर्म प्रचार के कार्य में आगे बढ़ते हुए कालान्तर में आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. क्रमशः उपकेशपुर में पधार गये । दुर्दैववशात् आप के शरीर में अकस्मात असह्य वेदना का प्रादुर्भाव हुआ । आपश्री के मुख से ही अचानक निकल गया कि—मैं इस उग्र वेदना से बच नहीं सकूंगा । बस यह सुनते ही सर्वत्र उदासीनता का वातावरण फैल गया पर कर्मों की गति की विचित्रता के सामने किसकी क्या चल सकती थी ? अतः आचार्यश्री के आदेशानुसार चारेलिया जाति के शा० भेरा के महोत्सव पूर्वक पट्ट योग्य मुनि विमल प्रभ को सूरि पद अर्पण कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया । आचार्यश्रीकक्कसूरिजी भी ७ दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्गवास पधार गये ।

आपश्री के द्वारा किये हुए शासन के कार्यों का अब कुछ दिग्दर्शन करा दिया जाता है:—

आचार्य देव के २० वर्ष के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—शाकम्भरी के कनोजिया गौत्रीय रावल ने दीक्षाली
२—मेदनीपुर ,, आदित्य० ,, वाला ने ,,
३—हंसावली ,, श्रेष्टि ,, मेघा ने ,,
४—मुग्धपुर ,, सुचंति ,, भीमा ने ,,
५—खटकूम्प ,, श्री श्रीमाल ,, गोसाने ,,
६—शंखपुर ,, चरड़ ,, फूआ ने ,,
७—हर्षपुर ,, लुंग ,, पेथा ने ,,
८—आनंदपुर ,, दूधड़ ,, देदा ने ,,
९—नियत्नी ,, बप्पनाग ,, थेरु ने ,,
१०—सत्यपुरी ,, भाद्र ,, तीला ने ,,
११—विनापुर ,, कुम्मट ,, जोगा ने ,,
१२—[illegible] ,, मूरि ,, [illegible] ने ,,
१३—[illegible] ,, [illegible] ,, [illegible] ने ,,
१४—[illegible] ,, [illegible] ,, [illegible] ने ,,
१५—[illegible] ,, [illegible] ,, [illegible] ने ,,

१८—धंघोलिया के डिडु ,, अमराने भ० पार्श्वनाथ मन्दिर को प्र०
१९—नाहूली के पल्लीवाल ,, वागाने ,, ,, ,,
२०—नाणापुर के केसरिया ,, अर्जुन ने ,, ,, ,,
२१—धड्नेर के चोरड़िया ,, पनाने ,, महावीर ,,
२२—आसलपुर के गान्धी ,, कचराने ,, ,, ,,
२३—जेतलवाड़ा के मोरख ,, लुढ़ाने ,, ,, ,,
२४—आनन्दपुर के चिचट ,, कानडाने ,, ,, ,,
२५—पाल्हिका के प्राग्वट ,, थेरुने ,, धर्मनाथ ,,
२६—पाटडी के प्राग्वट ,, कुलधरने ,, मल्लिनाथ ,,
२७—चन्द्रावती के प्राग्वट ,, महराने ,, विमलनाथ ,,
२८—रत्नपुर के प्राग्वट ,, पुनडाने ,, महावीर
२९—लोद्रवर के श्रीमाल ,, सांगाने ,, पार्श्वनाथ

सूरीश्वरजी के २० वर्ष का शासन में संघादि शुभ कार्य

१—विजयपट्टन के बप्पनाग गौत्रीय भंडणने शत्रुंजय का संघ
२—वर्द्धननगर ,, तप्तभट्ट ,, पदुमने ,, ,,
३—विक्रमपुर ,, श्रेष्टि ,, पर्वतने ,, ,,
४—मन्यपुर ,, कुमट ,, चाहडने ,, ,,
५—मोनाली ,, चिचट ,, नेतसीने ,, ,,
६—सारंगपुर ,, वागडिया ,, करहणने ,, ,,
७—चन्द्रावती ,, पोकरणा ,, मोढ़ाने सम्मेत शिखर का संघ
८—भिन्नमाल ,, बीरहट ,, सालगने शत्रुंजय का संघ
९—आमेर ,, बंदोलिया ,, देवाने ,, ,,
१०—विराटपुर ,, श्री श्रीमाल ,, जैतसीने ,, ,,
११—अर्जुनपुरी ,, श्रीमाल ,, पारमने ,, ,,
१२—नकुली ,, प्राग्वट ,, चाडाने ,, ,,
१३—[illegible]पुर ,, चोरडिया ,, लाखणने ,, ,,
१४—कुर्च्ची ,, गोलेच्छा ,, मालपतने ,, ,,
१५—[illegible]पुर ,, प्राग्वट ,, बोरीदासने ,, ,,
१६—[illegible]पुर ,, प्राग्वट ,, जिनदासने ,, ,,
१७—[illegible]पुर ,, बलाह-रांका ,, [illegible]ने ,, ,,
१८—[illegible] ,, बीरहट ,, [illegible]ने ,, ,,
१९—[illegible] ,, कुम्मट ,, [illegible]ने ,, ,,

१ कोइ भाइ यह खयाल न करे कि २० वर्षों के शासन में १९ वार तीर्थों के संघ निकलवाये तो क्या यही काम किया करते थे ? नहीं यह संघों की संख्या केवल आचार्यश्री के नायकत्व की नहीं पर आपके शासन समय में उपाध्यायजी पंडित वाचनाचार्य एवं मुनियों ने भी संघ निकलवा कर यात्रा की उनकी संख्या भी शामिल है यह इनके लिये ही नहीं पर सर्वत्र समझ लेना चाहिए ।

कितनेक जैनशास्त्रों एवं इतिहास के अनभिज्ञ लोग जनता में मिथ्या भ्रमना फैला देते है कि–जैन धर्मावलम्बी लोग तलाव कुवे बनाने में पाप बतला कर मनाई करते हैं अतः जैन तलावादि नहीं बनाते हैं इस पर ज्ञाता सूत्र के अन्दर आया हुआ नन्दन मिनीयार का उदाहरण भी देते हैं कि जिसने तलाव कुवे एवं बगेचा बनाने से देड़का (मीड़क) हुआ था । इत्यादि । पर यह बात ऐसी नहीं है जैन गृहस्थों के लिये जनोपयोगी कार्य करने की न तो मनाई है और न ऐसे जनोपयोगी कार्यों में एकान्त पाप ही बतलाया है हाँ कोई व्यक्ति इन कार्यों के लिये मुनियों से आदेश लेना चाहे तो वे आदेश के समय मौन रखे पर निषेध एवं मनाई तो मुनि भी नहीं कर सके । इससे पाठक समझ सकते हैं, कि तलावादि कार्य एकान्त पाप के ही कार्य होते तो मुनि निषेध अवश्य कर सकते थे हाँ इस कार्य में जीवहिंसा होने से मुनि आदेश नहीं देते हैं पर जब मुनि नौ प्रकार के पुण्य का उपदेश करते हैं तब अन्न देने से पुन्य, पाणी पीलाने से पुन्य इत्यादि कह सकते हैं तथा आवश्यक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु ने मन्दिर बनाने वाले के लिए कुवा का दृष्टान्त दिया है जैसे कुवां खोदने वाला का शरीर मिट्टी से लिप्त होजाता है पर जब कुवां खोदने पर पानी निकलता है तब वह मिट्टी वगैरह उसी पानी से साफ होजाती है और विशेषता यह कि वह कूप का पानी जहाँ तक रहेगा वहाँ तक अनेक प्राणधारी जीव उस पानी को पीकर अपने तप्त हृदय को शान्त किया करेंगे । इसी प्रकार मन्दिर बनाने में आरंभ सारंभ होता है, पर जब उस मन्दिर में देव मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा होजाती है तब उस भावना से आरंभ सारंभ का सब मैला साफ होकर जब तक वह मन्दिर रहेगा तब तक अनेक हजारों जीव भोगादि से अपना तप्त हृदय को उत्तम भावना से शान्त कर सकेगा इस उदाहरण से पाठक ! समझ सकते हैं कि कुवा तलाव खुदाने में जो आरंभादि होता है पर अनेक तप्त हृदय वाले उसका पानी पी कर शान्ति भी प्राप्त कर सकेगा उसका पुन्य भी तो होगा ।

पड़ती है तथा बाग बगेचा बनाते हैं उसके अन्दर कुवा होज वगैरह भी बनवाते हैं इससे उसको कर्मादान का व्रत अतिक्रमण नहीं होता हैं

इतिहास से ज्ञात होता है कि पूर्व जमाना में बहुत से जैन उदार नर रत्नों ने असंख्य द्रव्य व्यय कर जन उपयोगी बहुत से कार्य एवं देश की सेवा कर यशः कमाया था पर आज उनकी संतान द्वारा उस पर पर्दा डाला जाता है इससे बढ़ कर दुःख की बात ही क्या हो सकती है।

हम जिस इतिहास को लिख रहे है इसके अन्दर बहुत जैन उदार गृहस्थों के जरिये तलाब कुवा बावड़ियों बनाने का एवं दुष्कालादि आपत्त के समय असंख्य द्रव्य व्यय कर मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास पानी प्रदान कर उनके प्राण बचाये एवं अपनी उदारता का परिचय दिया। यही कारण है कि उस समय के राजा महाराजा तथा नागरिकों ने उन परमोपकारी महाजनों को जगत्सेठ नगरसेठ टीकायत, चोवटिया, शाह, पंचादि पदवियों प्रदान की गई थी जो वर्तमान में भी उनकी सन्तान के साथ मौजूद हैं वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि

१—नागपुर में श्रेष्टि गुणाढ्य की पत्नी ने एक कुवा बनाया

२—खटकूप में श्री श्रीमल देवा ने एक पग वापि बनाई

३—किराटकूप में देसरड़ा काना की विधवा पुत्री ने एक तलाब बनाया

४—गागोली में बलाह-रांका माना की पत्नी सेणी ने तलाब बनाया

५—राजपुर में जैन ब्राह्मण शंकर ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर एक बावड़ी बनाई

६—चन्द्रावती का प्राग्वट नेनों युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सति हुइ (छत्री)

७—शिवपुरी का श्रेष्टि देहल „ „ „ „ „

८—उपकेशपुर का माद्र० सारंग „ „ „ „ „

९—नागपुर का आदित्य० कुम्भो „ „ „ „ „

१०—क्षत्रीपुर का राव भैरो „ „ „ „ „

करुणा सागर कक्कसूरिजी, नौ वाड़ शुद्ध ब्रह्मचारी थे।
करते भूप चरण की सेवा, वे जैन धर्म प्रचारी थे॥
अनेक विद्याओं से थे वे भूषित, देव सेव नित्य करते थे।
हितकारी थे सकल संघ को, वे आज्ञा शिर पर धरते थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के सैंतालीसवें पट्टधर कक्कसूरिजी महा प्रभाविक आचार्य हुए

———

था । यों तो माता वरजू ने छ पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर अपने जीवन को कृतकृत्य बनाया था पर उन सब सन्ततियों में एक पुनड़ नामका लड़का अत्यन्त भाग्यशाली वर्चस्वी तेजस्वी, एवं होनहार था । उसकी जन्म पत्रिका एवं जन्म नक्षत्र मुख व तेज, बाल्यकालजन्य स्वाभाविक चपलता, धर्म कार्य कुशलता, धर्मानुराग उसके भावी जीवन के अभ्युदय का सूचन करते हुए हर एक दर्शक को एक बार उस की ओर चुम्बक की तरह आकर्षित कर रहे थे पुनड़ की भाग्य रेखा रह रह कर यह याद करा रही थी कि—पुनड़, निकट भविष्य में ही अपने युग का अनन्य महापुरुष होगा । संसार में अपने जीवन के साथ ही साथ अन्य अनेक प्राणियों की आत्मा का उद्धार करने वाला, अपने कुल एवं माता पिता के नाम को उज्वल कर नारदपुरी का ही नहीं प्रत्युत मरुभूमि मात्र का मान बढ़ाने वाला होगा । "होनहार बिरवान के होत चिकने पात" की कहावत के अनुसार पुनड़ के प्रत्येक कार्य चमत्कार पूर्ण, आश्चर्योत्पादक, आनंद प्रदायक होने लगे ।

क्रमशः पुनड़ जब आठ वर्ष का हुआ तब विद्योपार्जन करने के लिये उसे स्कूल में प्रविष्ट किया गया पूर्व जन्म की ज्ञानाराधना की प्रबलता से पुनड़ अपने सहपाठियों से पढ़ने में कितने ही कदम आगे रहा था । परिणाम स्वरूप उसने बारह वर्ष की अल्पवय में ही व्यवहारिक, व्यापारिक एवं धार्मिक ज्ञान सम्पादित कर लिया । बाद पुनड़ व्यापार क्षेत्र में प्रवेश होने लगा और अपने पिता के बोझ को हलका कर दिया अब तो पुनड़ की शादी के लिये भी रह रह कर प्रस्ताव आने लगे पर पुनड़ की वय १६ वर्ष की ही थी अतः इतनी अल्पवय में विवाह करना शा. बीजा को उचित नहीं ज्ञात हुआ । शा. बीजा का निश्चय अनुसार तो पुत्र की बीस वर्ष की परिपक्व वय में पाणि पीडनादि गार्हं-जीवन सम्बन्धी भार उसके सिर पर डालने का था पर माता वरजू को इतना विलम्ब कैसे सह्य हो सकता ? स्त्रियां स्वाभाविक ही अधीर एवं किसी भी कार्य को जल्दी करने के दुराग्रह वाली होती हैं अतः वह प्रतिदिन अपने पतिदेव को इस विषय में कोसती । पुत्र के विवाह को जल्दी करने के लिये प्रेरित करती किन्तु गम्भीर हृदय के स्वामी शा. बीजा हां, ना में समय व्यतीत करते ही जाते । उनको अपने पुत्र के भविष्य का पूर्ण ध्यान था अतः प्रकृतिसिद्ध स्त्रियों की चाल के अनुसार एकदम गृहस्थाश्रम का भार बालक को सौंप देना उचित नहीं ज्ञात हुआ । इधर तो पति पत्नी पुत्र के विवाह के सुख स्वप्न देख रहे थे और उधर पुनड़ अपना विलक्षण ही मनोरथ कर रहा था । इसकी विवाह सम्बन्धी हलचल होने पर भी उसने शिशु जन्य चाञ्चल्य गुण से अपनी मनो भावनाओं को अभी से प्रकाशित कर माता पिता के भविष्य के इरादों को निर्मूल कर संतापित करना उचित नहीं समझा इस तरह करीब दो वर्ष व्यतीत हो गये ।

एक समय धर्म प्राण, श्रद्धेय, पूज्याचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का शुभागमन नारदपुरी की ओर हो रहा था । जब नारदपुरी के श्रीसंघ को आचार्यदेव के पदार्पण के शुभ समाचार ज्ञात हुए तो हर्ष के मारे उन लोगों के रोम रोम फूल उठे । धर्मानुराग की सुखमय भावनाएं उनके हृदय में नवीन कौतूहल का संचार करने लगी । गुरु आगमन की खुशी में उन लोगों का हृदय सागर धर्म भावना की लहरों से [illegible] । क्रमशः सूरीश्वरजी के पधारते ही श्रेष्ठि-गोत्रीय शा. देवल ने एक लाख [illegible] के साथ प्रवेश का महोत्सव किया । सूरिजी ने नगर प्रवेश करते ही [illegible] में [illegible] को [illegible] धर्म देशना दी । आचार्यश्री की देशना [illegible]

श्रोताओं ने अपना अहोभाग्य समझा। इस तरह सूरिजी का व्याख्यान हमेशा ही होने लगा। आचार्य देव की विचित्र एवं सरस व्याख्यान शैली से चुम्बक की तरह आकर्षित हो क्या जैन और क्या जैनेतर ? क्या राजा क्या प्रजा ? व्याख्यान में स्त्री पुरुषों का ठाठ रहने लगा सूरिजी साहित्य, दर्शन, न्याय, योग आदि अनेक शास्त्रों के अनन्य विद्वान् थे अतः कभी दार्शनिक, कभी तात्विक, कभी योग, आसन समाधिस्वरोदय तो कभी आचार व्यवहार कभी साधुत्व जीवन का तो भी गृहस्थाश्रम के आचार विचारों का—इस तरह भिन्न २ विषयों का व्याख्यान दिया करते थे। इन सभी विषयों का विवेचन करते हुए त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण के विषयों का प्रतिपादन करना नहीं भूलते। इन सभी तात्विक, दार्शनिक विवेचनों में वैराग्य की भावनाएं ओतप्रोत रहती थी, कारण उस समय के महात्माओं का जीवन ही दृढ़ वैराग्य मय होता था। अतः आपश्री के व्याख्यान पुष्पों की जनानंद कारी सौरभ, जन मण्डली की प्रशंसा वायु से शहर की इस छोर से उस छोर तक विस्तृत होगई थी। आचार्य देव की देशना सौरभ से प्रभावित हो मधुकर की भांति श्रोतावर्ग अपने आप ही सुवास को ग्रहण करने के लिये सूरिजी के व्याख्यान का लाभ लेता। क्योंकि

यस्य येच गुणाः सन्ति विक सन्त्येव ते स्वयम्। नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन निवार्यते।

अस्तु, जन समाज, विशाल संख्या में आचार्यदेव के व्याख्यान को श्रवण कर अपने आपको कृत कृत्य बना रहा था। एक दिन सूरिजी ने खासकर त्याग वैराग्य के विषय का विशद विवेचन करते हुए मानव जीवन की महत्ता एवं प्राप्त अलभ्य मानव देह से धर्माराधन नहीं करने वाले मनुष्यों के मानव जीवन की निरर्थकता का दिग्दर्शन कराते हुए मानव मण्डली को उपदेश दिया कि—जो मनुष्य इस दुर्लभ मानव देह को प्राप्त करके किञ्चित् भी धर्म साधन नहीं करते वे मानों इच्छापूरक कल्पवृक्ष को काट कर धतूरे का वृक्ष बो रहे हैं। एरावत हाथी को बेच कर रासभ (गर्दभ) की खरीदी कर रहे हैं। चिन्तामणि रत्न को फेंक कर कंकरों को जोड़ रहे हैं। कारण मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये भी इस [illegible] भूमि में प्राप्त मानव देह ही समर्थ हैं। धर्म नहीं करने वाले को मनुष्य गति में भी अनेक दुःखों का अनुभव करना पड़ता है—१—माता की कुक्षि में जन्म लेना और उधा लटकना, संकुचित स्थान में रहना, माता का मल मूत्र शरीर पर से बहना, प्रसूत समय की महावेदना, बाल्यावस्था के अनेक कष्ट, यौवनावस्था [illegible] विषय तृष्णा का प्रादुर्भाव होना, उसकी पूर्ति के लिये सैकड़ो कष्टों को सहन कर [illegible] और वृद्धावस्था में व्याधियों का घर बन जाना शारीरिक शक्तियों का ह्रास होना, इन्द्रियों की [illegible] की ओर से अनादर, मृत्यु के समय असह्य अनंत वेदना का अनुभव करने रूप दुःख मय जीवन [illegible] करने के पश्चात् पुनः मनुष्य का जन्म मिलना कितना दुर्लभ है ? अतः [illegible] का सदुपयोग करना ही बुद्धिमता है। मनुष्य भव की प्राप्ति के लिये निम्न [illegible] यथाहि—प्रकृति का भद्रिकपना, प्रकृति की नम्रता। [illegible] आवश्यक उपादान और निमित्त कारणों के [illegible] होना सम्भव है। अतः महानुभावो ! आपने [illegible] योग्य सामग्री के लिये आवश्यक [illegible] मनुष्य भव प्राप्त [illegible]।

महानुभावो ! यह [illegible]

की जा सकती है। मानव देह के सिवाय अन्य देव, नरक, तिर्यञ्च आदि गतियों में मोक्ष भव याग्य धर्म सा-धन नहीं किया जा सकता है। पर इसकी अमूल्यता को सोचे बिना कितने ही अज्ञानी जीव अज्ञानता वश इसे व्यर्थ में खोते हुए, संसारिक पौद्गलिक भोगों में लुब्ध हो इसमें अपने को भाग्यशाली समझते हैं पर, वे ये नहीं सोचते हैं कि सोने की थाल में मिट्टी भर कर सोने की थाल का मूल्य कम कर रहे हैं, उसका नितान्त दुरुपयोग कर रहे हैं। असाध्य अमृत रस से पैरों को धोकर मूर्खता का परिचय दे रहे हैं। हाथी जैसी उत्तम सवारी पर लकड़े का भार डाल कर जनगर्हित कार्य कर रहे हैं। चिन्तामणि रत्न को कंकर की तरह फेंक रहे हैं। उन मनुष्यों की इससे अधिक और अज्ञानता हो ही क्या सकती है ? इस प्रकार भोग विलास एवं प्रमाद में मनुष्य भवको खोदेना कहां तक युक्तियुक्त है। देखिये मनुष्य जन्म की दुर्लभता के लिये शास्त्रकारों ने एक उदाहरण भी दिया है कि—

बसन्तपुर में राजा अजितशत्रु राज्य कर रहा था। उसके एक शत्रुबल नामक पुत्र था। पिता की मौजू-दगी में ही राज्य प्राप्त करने की गर्हित अभिलाषा ने उसके मन में जन्म लिया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तक पिताजी मौजूद हैं तब तक मुझे राज्य मिलना असम्भव नहीं तो दुष्कर तो अवश्य ही है अतः राज्य पिपासा की बढ़ती हुई कुत्सित इच्छाने उसके हृदय में अपने पिता को मार कर राज्य गादी पर आसीन होने की नवीन जननिन्दित अनादरणीय भावना को जन्म दिया। वह अपने पिता—राजा को मारने के लिये छिद्र यावत् अवसर को देखता हुआ विचरने लगा। पर—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटो भाग, दाबी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग

के अनुसार राजा को गुप्त चरों के द्वारा पुत्र की कुत्सित इच्छा की जानकारी होगई। बस उसने तुरत अपने अनुभवी वृद्ध अमात्य को बुलाकर पुत्र की आन्तरिक इच्छा को बतलाते हुए अपने हृदय के उद्-गार प्रगट किये कि—मैं पुत्र को राज्य देना नहीं चाहता हूँ और अपने जीवन व पुत्र को भी एक दम सुरक्षित रखना चाहता हूँ अतः इस विषय में आप अपनी अगाध बुद्धि से ऐसा सफल उपाय सोचें कि मेरी अभीष्ट सिद्धि हो सके। मंत्री ने कहा—आप कल एक सार्वजनिक सभा करें और सब के समक्ष यह कहें कि—मैं अब जरा जर्जरित (वृद्ध) होगया हूँ। मैं मेरा राज्य कार्य अपने पुत्र को देकर निवृत्ति पाना चाहता हूँ अतः इस विषय का कोई उचित विधि विधान किया जाय। बस आपके द्वारा इतना कहने पर ऐसा विधान बतलाऊंगा [illegible] का राज्य भी आपके हाथ ही में रहेगा और जीवन रक्षण में भी किसी तरह के भावी विघ्न की सम्भा-वना भी न होगी। राजा ने मंत्री के कथनानुसार नगर भर में घोषणा करवा दी कि मैं मेरा राज्य पुत्र को देना चाहता हूँ। अतः कल की सभा में सभी नागरिक उचित समय पर सभा स्थान में हाजिर हो जावें। उधर पुत्र राजकुमार ने यह समाचार सुना तो उसको अपने किये हुए विचारों के लिये बहुत ही पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगा कि—अहो ! मेरा पिताश्रीजी तो राज्य का मोहत्याग कर मुझे राज्य देना चाहते हैं [illegible] और मैं ऐसे कुल कलंक निकला कि पिता जैसे पूजनीय पिता की विनय भक्ति करने के बदले हनन करने का विचार किया।

दूसरे दिन सभा हुई जिसमें नागरिक, ब्राह्मण, मुत्सद्दी, राजकुमार, मन्त्री वगैरह सब लोग उपस्थित हुए। राजा ने उपस्थित प्रजा के सामने कहा कि - मेरी वृद्धावस्था है अतः मैं मेरे पद पर पुत्र को [illegible]

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

कर निवृत्ति पाना चाहता हूँ पर इसका विधिविधान शास्त्रानुकूल हो कि जिससे भविष्य में राज्यमें सब प्रकार से सुख शांति वर्त्तती रहे।

पण्डितों एवं ब्राह्मणों ने कहा—देव ! राजा के स्वर्गवास के बाद तो पुत्र को राज्य देने की विधि हमारे शास्त्रों में है किन्तु जीवित राजा अपने पुत्र को राज्य दे, इसकी विधि न तो हमारे शास्त्रों में है और न हम जानते ही हैं। इस पर राजा ने वृद्ध मंत्री के सामने देख कर कहा—मंत्री जी ! आप तो वृद्ध एवं अनुभवी हैं अतः आपकी दृष्टि में जो योग्य विधि हो, वह बतलाइये। मन्त्री ने कहा—राजन् ! मैंने मेरे पूर्वजों से सुना है कि १०८ स्तम्भ का महल बनाया जावे और एक २ स्तम्भ के १०८ पहलु हो और एक २ स्तम्भ के पास राजा और राजकुमार बैठ कर शतरंज खेले। स्मरण रहे कि—१०७ स्तम्भ के खेल में कुंवर जीत गया हो और एक खेल में भी राजा जीत जाय तो खेल पुनः प्रारम्भ कर दिया जावे। जब सब स्थानों पर कुंवर जीतता चला जाय तो उसी दिन कुंवर के राज तिलक कर दिया जाय। मंत्री की बुद्धिमत्ता पूर्ण यह विधि उपस्थित नागरिकों को पसंद आगई और सबकी सम्मति से राजा ने तुरत महल बनवाने का आदेश दिया।

श्रोतागण ! आप सोच सकते हैं कि इस विधि से क्या कुंवर, राजा को कभी जीत सकता है ? कारण १०८ को १०८ से गुणा करने से ११६६४ की बाजी में क्या एक बार भी राजा न जीत सके ? यदि एक बार भी जीत जाय तो खेल पुनः प्रारम्भ हो जाय। अतः न तो ऐसा हो और न कुंवर को राज्य हो। फिर भी ऐसा होना तो कदाचित् देवयोग से सम्भव भी है पर हारा हुआ मनुष्य जन्म मिलना तो देवयोग से ही असम्भव है। अस्तु, दुर्लभता से मिले हुए मनुष्य भव को मोक्ष मार्ग की आराधना कर सफल बनाना चाहिये।

सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा पर पुनड़ पर तो न मालूम आचार्यश्री ने उपदेश रूपी जादू ही डाल दिया ! उसने व्याख्यानान्तर्गत ही निश्चय कर लिया कि मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर मनुष्य भव को अवश्य सफल बनाऊंगा। हाथ में आये हुए स्वर्णावसर को खोकर पश्चात्ताप करना निरी अज्ञानता है। सांसारिक सर्व मोह जन्य अनुरागान्वित सम्बन्ध [illegible] के बन्ध के कारण भूत हैं अतः मोह में मोहित होकर आत्म स्वरूप का विचार नहीं करना बुद्धिमत्ता नहीं। इत्यादि विचारों के [illegible] में आचार्यदेव का व्याख्यान भी भगवान महावीर स्वामी की जयध्वनि के साथ समाप्त हुआ। क्रमशः व्याख्यान में आगत मण्डली भी स्वस्थान गई।

पुनड़ अपने घर पर गया और अपने माता पिताओं को स्पष्ट शब्दों में कहने लगा—मैं गुरुमहाराज के पास में दीक्षित होकर आत्म कल्याण करूंगा—आप, आज्ञा प्रदान करें। [illegible] विचारमग्न स्वप्न देखने वाली माता पुनड़ के मुख से वैराग्य के और [illegible] कब सह सकती थी ? वह [illegible] मूर्च्छितावस्था को प्राप्त हुई [illegible]।

[illegible] पुनड़ को [illegible] समझाने लगी परन्तु माता के सर्व प्रयत्न [illegible] निष्फल हुए। पुनड़ के पिता ने पुनड़ को समझाने में कमी नहीं रक्खी किन्तु पुनड़ के वैराग्य [illegible] आखिर वही था कि [illegible]। [illegible] सूरिजी [illegible]

रमण करता रहा था। उसने तो अपने माता पिताओं को भी आचार्यदेवका सुना हुआ व्याख्यान पुनः सुनाना प्रारम्भ कर दिया। माता ने कहा – पुनड़ ! तेरा व्याख्यान तेरे पास ही रहने दे। हमने तो बड़े २ आचार्यों का व्याख्यान सुना है। पुनड़ ने कहा—बहुत से आचार्यों का व्याख्यान सुना होगा यह सत्य है, किन्तु उन व्याख्यानों से लाभ क्या उठाया ? आप स्वयं भुक्त भोगी होने पर भी आत्म कल्याण करना नहीं चाहते हैं और जो दूसरा उसके लिये उद्यत होता है तो आप स्वयं उसके मार्ग में कंटक रूप—विघ्न भूत होजाते हैं। क्या दूसरे के निवृत्ति मार्ग में अन्तराय डालना ही आपके व्याख्यान श्रवण का सच्चा लाभ है ? इस तरह माँ बेटे और पिता पुत्र में बहुत प्रश्नोत्तर होते रहे पर पुनड़ तो अपने निश्चय में सुमेरूवत अचल रहा। विवश, हो माता पिताओं को आखिर दीक्षा की आज्ञा देनी पड़ी। शा. बींजा ने अपने पुत्र की दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया और आचार्यश्री ने भी शुभमुहूर्त और स्थिरलग्न में १६ नर नारियों के साथ पुनड़ को भगवती जैन दीक्षा देकर पुनड़ का नाम मुनि विमलप्रभ रख दिया। विमलप्रभ में नाम के अनुरूप ही गुण, तपस्तेज की अलौकिकता बुद्धि की कुशाग्रता, गम्भीरता, क्षमतादि गुण भी वर्तमान थे।

मुनि विमलप्रभ पर आचार्यदेव की अनुग्रह पूर्ण कृपादृष्टि थी मुनि विमलप्रभ भी गुरुकुल वास में रह कर विनय, भक्ति, वैयावृत से सूरीश्वरजी को सदा संतुष्ट रखने वाला था। गुरु देव की विनय भक्ति पूर्वक वह आगमों का अध्ययन करने में संलग्न हो गया। मुनि विमलप्रभ तो पहले से ही योग्य व बुद्धिमान था ही किन्तु, गुरुकृपा ही ऐसी होती है कि—"पाहण ने पल्लव आणे" अर्थात्—पत्थर पर भी कमल पैदा कर देती है। मूर्ख शिरोमणि को पण्डिताधिराज बना देती है। अस्तु, इधर तो गुरुदेव की कृपा और इधर विनय पूर्ण व्यवहार की अधिकता से मुनि विमलप्रभ को थोड़े ही समय में आगम मर्मज्ञ बना दिया। आगमों के विशिष्ट पाण्डित्य के साथ ही साथ व्याकरण, न्याय, काव्य, तर्क छंद, अलंकार, ज्योतिष, अष्टांग महानिमित्त आदि शास्त्रों की कुशलता—दक्षता को प्राप्त करने में भी किसी प्रकार की कसर नहीं रहने दी। मुनि विमलप्रभ ने अनवरत परिश्रम, कर वर्तमान सकल शास्त्रों भाषाओं एवं विद्याओं में—निर्मल आकाश में शोभायमान पोडश कला से परिपूर्ण कलानिधि के समान पूर्णता प्राप्त करली। १४ वर्ष के गुरुकुल वास में ही वह अनन्य अजोड़ विद्वान हो गया यही कारण है कि आचार्य कक्कसूरिजी ने उपकेशपुर में मुनि विमलप्रभ को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर अपने पट्टपर विभूषित किया। सूरि पद महोत्सव में [illegible] ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किये। पश्चात् आपका नाम परम्परागत क्रमानुसार श्री देवगुप्त सूरि रख दिया।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि सूर्य के भांति तेजस्वी एवं चंद्र की भांति शीतल व सौम्य गुण युक्त थे। सूरिपद के समय की ३२ वर्ष की वय—जो तरुणावस्था कही जा सकती है—अलौकिक दीप्ति से [illegible] थी [illegible] ब्रह्मचर्य पालन की तीव्र आभा व उसमें मिली हुई तपस्तेज की प्रखरता [illegible] और भी अधिक [illegible] कर रही थी। उस समय की आचार्यदेव की प्रभा [illegible] कर की [illegible] को भी लज्जित कर रही थी। आपश्री के उपदेश शैली की [illegible] [illegible] को स्पर्श करने वाली व श्रोताओं के मनको हर्षित करने वाली थी। [illegible] [illegible] है। आपके व्याख्यान में साधारण जनता ही नहीं अपितु [illegible] [illegible] हो जाते थे। [illegible] आचार्यदेव के व्याख्यान की [illegible]

आचार्य देवगुप्तसूरि [illegible] में विहार करते हुए और जैन जनता में [illegible]

विचित्र क्रान्ति पैदा करते हुए मारहव्यपुर, शंखपुर, असिकादुर्ग, खटकूंप, मुग्धपुर, नागपुर, कुर्च्चपुर, मेदिनीपुर, वलीपुर, पाल्हिकापुर नारदपुरी, शिवपुरी, होते हुए चंद्रावती पधारे। सर्व स्थानों पर आपश्री का श्रीसंघ द्वारा अच्छा सत्कार हुआ। आपश्री ने भी क्षेत्रानुकूल कुछ २ दिनों की स्थिरता कर धर्म से शिथिल बने हुए व्यक्तियों को पुनः कर्तव्य मार्ग पर आरुढ़ किया। नवीन जैन बनाने के प्रयत्नों में पूर्ण सफलता प्राप्त की। धर्म प्रचारार्थ विचरते हुए अन्य शिष्यों के उत्साह मे वृद्धि की। इस तरह धर्म क्रान्ति की चिनगारियां बिखरते हुए जब चंद्रावती में पधारे तो वहां के जन समाज के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सबके मुख पर हर्ष की नवीन ज्योति चमकने लगी। श्रीसंघ ने अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यदेव का नगर प्रवेश महोत्सव किया। अन्त में श्रीसंघ के अत्याग्रह से चातुर्मास भी चंद्रावती में ही करने का निश्चय किया। इस चातुर्मास के लम्बे अवसर मे चन्द्रावती धर्मपुरी बनगई। एक दिन आचार्यश्री ने अपने व्याख्यान में शत्रुञ्जय तीर्थ के माहात्म्य का व तीर्थयात्रा के लिये निकाले हुए संघ से प्राप्त हुए पुण्य का बहुत ही प्रभावोत्पादक वर्णन किया। अतः प्राग्वट्ट वंशीय शा. रोढ़ा ने शत्रुञ्जय का संघ निकालने के लिये तैयार हो गया और व्याख्यान में ही चतुर्विध श्रीसंघ से संघ निकालने के लिये आदेश मांगने लगा। संघ ने सहर्ष आदेश प्रदान किया और चातुर्मास के बाद आचार्यदेव के नेतृत्व और शा. रोढ़ा के संघपतित्व में शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये शुभमुहूर्त में संघ ने प्रस्थान कर दिया। क्रमशः तीर्थयात्रा के अक्षय पुण्य को सम्पादन करके संघ पुनः स्वस्थान लौट आया और सूरीश्वरजी वहां से विहार कर सौराष्ट्र प्रान्त में होते हुए कच्छ में पधार गये। वहां की जनता को जागृत करते हुए क्रमशः आपने सिंध प्रान्त में प्रवेश किया। सिन्ध प्रान्त में तो आपके आगमन के पूर्व भी बहुत से आपश्री के शिष्य धर्म प्रचार कर रहे थे अतः दफ्तर आचार्य श्री के आगमन के शुभ समाचार श्रवण कर तत्रस्थ शिष्य मण्डली के उत्साह एवं हर्ष का पारावार नहीं रहा। वे लोग अपने प्रचार कार्य को और भी उत्साह एवं साहस के साथ सम्पन्न करने लगे।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे। उस समय पंजाब में म्लेच्छों का आना जाना एवं आक्रमण वगैरह प्रारम्भ था अतः आचार्यदेव ने अपना धर्मोपदेश मानव जन्म की दुर्लभता से प्रारम्भ करते हुए कहा कि—महानुभाव ! इस चक्रवाल रूप संसार में जितने जीव दृष्टि गोचर होते हैं वे सब अपने २ किये हुए पुन्य पाप के फल स्वरूप उनका संवेदन करने के लिये अनेक योनियों में परिभ्रमन करते रहते हैं। इन सब ८४ लक्ष जीव योनियों में एक मनुष्य योनि ही ऐसी है कि जिसमें कुछ आत्म साधन करने योग्य धर्म कार्य किया जा सकता है। मनुष्य योनि में भी दो प्रकार के मनुष्य हैं एक आर्य दूसरा अनार्य। इनमें आर्य जातियों के रहन सहन, खान पान, आचार विचार, इष्ट नियम, धर्म, कर्म अच्छे होते हैं। उनमें हिताहित सोचने की बुद्धि होती है ये दयावान होते हैं। बिना अपराध किसी भी जीव को तकलीफ नहीं देते हैं। दुःखी जीवों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ—यदुवंसावतंस भगवान् नेमिनाथजी—जो श्रीकृष्ण के लघुभ्राता थे—अपने विवाह के कारण एकत्र किये हुए पशुओं को दुःखी देख उनको दुःख मुक्त करने के लिये बिना विवाह किये ही तोरन पर से पुनः लौट गये। वीर क्षत्रियों की दया के विषय में इसके सिवाय भी अनेकोनेक उदाहरण विद्यमान है। सब अनार्य इनसे विपरीत होते हैं। उनके हृदय में दया को जरा भी स्थान नहीं होता धन की तृष्णा में मनुष्य को—मनुष्य नहीं समझते हैं। मनुष्य को क्या पर रोते हुए बच्चों एवं आक्रंदन करती हुई औरतें जो हिन्दुओं के लिये शास्त्र दृष्टि से अवध्य कहे गये हैं। सबको निर्दयता से बिना किसी संकोच के मार डालते हैं उनके सतीत्व को लूट लेते हैं अस्तु, म्लेच्छों जैसा मनुष्यत्व प्राप्त करना तो पशुओं से भी हलके दर्जे का है। अर्थात्—उन अनार्य पुरुषों की अपेक्षा तो पशु भी अच्छे हैं कि जिनके हृदय में कुछ दया होती है।

अनार्य का नाम सुनते ही सवार का चेहरा तमतमा गया। उसके मुख पर क्षत्रियोचित स्वाभाविक आवेश के भाव दृष्टिगोचर होने लगे। उसमें कुछ वीरत्व उमड़ आया। निर्दय अनार्यों के प्रति एक घृणा एवं द्वेष की स्पष्ट झलक, झलकने लगी। म्लेच्छों की निष्ठुरता उसके नैनों के सामने प्रति बिम्बित होने लगी। वह व्याख्यानों के बीच में ही आवेश में बोल उठा—गुरुदेव ! आपका फरमाना सर्वथा सत्य है अनार्य निर्दय निष्ठुर, क्रूर, पापी, विश्वासघाती, स्त्रियों के सतीत्व के हर्ता ही होते हैं। मनुष्य कहलाते हुए भी मानवीय कर्तव्यों से पराङ्मुख अधर्म के कर्ता होते हैं। महात्मन् ! उनकी उसी निर्दयता के कारण हम लोग इधर उधर भटक रहे हैं। हम पंजाब में आये और आत्मरक्षा के लिये आगे बढ़ रहे हैं। प्रभो ! हमारा भविष्य में क्या होगा ? आप महात्मा हैं अतः आशीर्वाद दें जिससे कि हम सुखी बनें। इस तरह वह सूरीश्वरजी की सेवा में अपने मनोगत भावों का वर्णन एवं आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगा।

तत्क्षण ही पास में बैठे हुए दूसरे आदमियों ने मुख्य सवार का परिचय कराते हुए कहा कि—[illegible] ! ये यदुवंशी राव गोसल हैं और म्लेच्छों के भय से हम सब इधर आये हैं। हमारा अहोभाग्य है कि आप जैसे महात्माओं के दर्शन हो गये। महात्माओं के लिये पलक दरियाव है। महात्मा [illegible] कर सकते हैं। अतः आप आशीर्वाद दीजिये कि सब तरह का आनंद मंगल हो जाय। [illegible] अर्थात् विघ्न शांति हो दुःख सुख में परिवर्तित हो जाय।

सूरिजी—आप घबराते क्यों हो ? धर्म के प्रभाव से सब अच्छा ही होगा [illegible] ही करेंगे। महानुभावों ! आप तो शुद्ध सनातन अहिंसामय धर्म की शरण लो [illegible]

[illegible]

वस्तु है कि जिसकी आराधना एवं उपासना से इस लोक और परलोक में जीव को सुख शान्ति एवं आनद मिलता है। नीति कारो का कथन है कि—

चला लक्ष्मीश्चलाःप्राणाश्चले जीवित मन्दिरे। चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥

अर्थात् लक्ष्मी चंचल है। प्राण, जीवन और घर भी अस्थिर है। इस विनश्वर एवं क्षण भंगुर संसार में धर्म ही एक निश्चल है।

धर्मः शर्म परत्रेचह च नृणां धर्मोन्धकारे रविः। सर्वापत्तिशमक्षमः सुमनसां धर्माभिधानोनिधिः ॥
धर्मो बन्धुरबान्धवः पृथुपथे धर्मः सुहृन्निश्चलः। संसारोरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः ॥

मनुष्यों को धर्म ही इस लोक और परलोक में (उभयलोक में) सुख देने वाला है। धर्म ही अज्ञानान्धकार के लिये सूर्य के समान है। धर्म नामक वृहन्निधि सज्जनो की सर्व आपत्तियों को शमन करने में समर्थ है धर्म ही दीर्घ अरण्यमय मार्ग में बन्धुरूप है और धर्म ही निश्चल मित्र है। संसार रूपी मारवाड़ की भूमि के लिये धर्म के सिवाय अन्य कोई कल्पवृक्ष नहीं। धर्म ही कल्पवृक्ष है

धर्मो दुःख दवानलस्य जलदः सौख्यैक चिन्तामणिः। धर्मः शोक महोरगस्य गरुडो धर्मो विपत्त्रायकः।
धर्मः प्रौढ पदप्रदर्शन पटुधर्मोऽद्वितीयः सखा। धर्मो जन्मजरा मृतिक्षय करो, धर्मो हि मोक्ष प्रदः।

अर्थात्—धर्म ही दुःख रूप दावानल को शान्त करने में मेघ के समान है। धर्म प्राणियों को सुख देने में चिन्तामणि रत्न के समान है। धर्म शोक रूप महासर्प के लिये गरुड़ के समान है। धर्म विपत्ति से रक्षण करने वाला अर्थात विपत्ति का नाश करने वाला है। धर्म उच्च स्थान को दिखलाने में [illegible] है। धर्म अद्वितीय मित्र समान है। धर्म जन्म, जरा और मृत्यु को क्षय करने वाला है तथा धर्म ही मोक्ष को देने वाला है। अस्तु,

राजन्! धर्म की शरण ही उत्तम एवं मांगलिक रूप है। महाभारत जैसे ग्रन्थों में भी धर्म के विषय में कहा है कि—

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। एष संक्षेपतो धर्मः, कामादन्यः प्रवर्तते ॥

जो कार्य अपनी आत्मा से प्रति कूल हो अर्थात्—जिन कार्यों से अपनी आत्मा को दुःख होता हो वे कार्य दूसरे प्राणियों के लिये भी इसी प्रकार दुःखोत्पादक होते हैं ऐसा सोच कर वैसे कार्य नहीं करना ही संक्षेप में धर्म का श्रेष्ठ स्वरूप है। इसके सिवाय दूसरे धर्म तो अपनी इच्छा से प्रवर्तित हुए हैं। धर्म का संक्षिप्त में सार समझाया—

सूरिजी ने बड़े ही मधुर वचनों से धर्म का महत्त्व बतलाया और कहा कि—[illegible] मनुष्य के आत्म कल्याण की अपेक्षा भौतिक सुखों की पिपासा अधिक रहती है किन्तु वे [illegible] एवं सघन, चपल, [illegible], विध्वंस स्वभाव वाले हैं [illegible] धोखा देना है। सूरिजी की इस व्याख्यान शैली एवं सरस [illegible] उन्होंने तत्काल ही अपने सब साथियों के साथ [illegible] कर लिया। एवं सूरिजी ने वर्तमान [illegible] का स्वीकार किया। [illegible] लावेंगे। और सूरिजी ने कहा [illegible]

गया है हम सब आपके चरणारविन्द में निर्भय हैं आप भक्तवत्सल हैं ऐसी कृपा कराने कि हम हमारी पूर्वावस्था को पाकर सुखी बनें ? इस पर सूरिजी ने अपनी आंखों से देखी हुई भूमि की ओर संकेत किया और कहा कि रावजी यदि इस भूमि को आप अपना लें तो आपका अभ्युदय होगा । बस फिरतो कहना ही क्या था राव गोसल ने उस वीर भूमि पर नगर बसाने के लिये छड़ी रोप दी एवं दृढ़ संकल्प करके कार्य प्रारम्भ कर दिया सूरिजी ने राव गोसल से कहा रावजी आप अपने इष्ट को सदैव स्मरण में रखना रावजी ने सूरिजी का आशीर्वाद रूप वचन को तथाऽस्तु कह कर शिरोधार्य कर लिया इधर तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ रवाने हुए और उधर रावजी ने अपने वीर क्षत्रियों को नया नगर निर्माण करने का आदेश दे दिया साथ में यह भी कह दिया कि सबसे पहले भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की नींव खोदनी चाहिये बस ! उन लोगों ने ऐसा ही किया फल स्वरूप मन्दिर की नींव खोदते समय भूमि से अक्षय निधान निकल आया जिसको देख कर राव गोसलादि सब के हर्ष का पार नहीं रहा और आचार्य देवगुप्तसूरिजी पर तन सबकी इतनी श्रद्धा होगई कि एक सिद्ध पुरुष पर होजाती है बस फिर तो कहना ही क्या था बहुत ही शीघ्रता के साथ नगर बसाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया । कई सवारों को पुनः पंजाब भेजकर अपने सब कुटुम्ब को भी वहीं बुला लिया क्रमशः उस नगर का नाम गोसलपुर रख दिया । गोसलपुर का राजा रावगोशल को ही बनाया गया । राव गोशल सूरिजी महाराज के वचनों को एक सिद्ध पुरुष की भांति याद करने लगे । इस तरह समय के जाते हुए वह नगर इधर उधर की दूसरी आबादी से हर एक बातों में अग्रगण्य, समृद्धशाली एवं सम्पन्न हो गया । उपकेशवंशियों के साथ रावजी की जाति 'आर्य' कहलाने लगी क्योंकि आचार्य देव ने इन सबों को पहले आर्य शब्द से सम्बोधित किया था । तथा उपकेश वंशियों के साथ रोटी बेटी व्यवहार भी प्रारम्भ होगया । अभी तक क्षत्रियों से नवीन ही निकले हुए होने के कारण उनके उपकेशवंशियों के सिवाय राजपूतों से भी खान पान, शादी वगैरह व्यवहार चालू थे । पूर्वाचार्यों की शुरु से भी यही मान्यता थी कि किसी क्षेत्र को संकुचित करना पत्तन का कारण है—उन लोगों को मांस मदिरादि सात व्यसनों के त्याग शुरू से करवा दिया था ।

राव गोसल के १२ पुत्र पंजाब में रहे और आठ पुत्र इनके पास गोसलपुर में रहे । गोसलपुर में रहने वाले पुत्रों के नाम पट्टावली कारों ने निम्न लिखे हैं— १ आसल, २ पासल, ३ दशल, ४ सूरण, ५ रामपाल, ६ भीम, ७ सांगण, और ८ खेंगार ।

आचार्य देवगुप्तसूरि एक बार विहार करते हुए गोसलपुर पधारे । रावगोसल ने सूरिजी का बड़े उत्साह से स्वागत किया । सूरिजी ने रावजी को धर्मोपदेश दिया । रावजी ने सूरिजी का परोपकार मान अत्यन्त गद्गद् स्वर से प्रार्थना की—भगवन् ! आपके उपकार से मैं इस भव में तो क्या ? पर भव २ में भी उऋण नहीं होसकूँगा फिर भी कृपा कर मेरे लायक कुछ कार्य फरमावें । सूरिजी ने कहा—रावजी ! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों के काम ही क्या हो सकता है ? हम उपदेशक हैं, हमारा काम तो संसारी जीवों को धर्म बोध देकर उनका उद्धार करने का है ।

[illegible] पट्टावलियों एवं वंशावलियों में पाया जाता है कि राव गोसल का बड़ा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के साथ [illegible] १२ [illegible] के बाद में किसी विशेष कारण से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] के साथ [illegible] रहे ।

राजा ने बड़ी नम्रता के अर्ज की कि—भगवन् ! आपने मुझ निराश्रित को आशीर्वाद देकर राजा बनाया यह तो आपका परमोपकार है ही पर मुझे अज्ञान से बचाकर धर्म की राह में लगादिया इस उपकार को वर्णों से व्यक्त करना अशक्य हैं। मै भव भव में आपका इस उपकार के लिए ऋणी रहूँगा। प्रभो ! केवल मैं ही नहीं पर मेरी सन्तान परम्परा भी आपके उपकार को समझेगी एवं मानती रहेगी।

पूज्य गुरुदेव ! भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर तैयार हो गया है। अतः इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ करें। विशेष में आपश्री यहां चातुर्मास कर हमारे सबके मनोरथो को सफल करें। यद्यपि गोसलपुर की नींव डाले को अभी पूरे पांच वर्ष भी नहीं हुये किन्तु कई प्रकार सुविधाओं के कारण बहुत से मनुष्य आकर उक्त नूतन नगर में बस गये थे अतः देवगुप्तसूरि के चातुर्मास करने योग्य नगर बनगया था।

जिस समय सूरिजी गोसलपुर में पधारे थे उस समय गोसलपुर में न तो आलीशान उपाश्रय थे और न सुंदर धर्मशालाएं ही थी। घास एवं बांस से बने हुए झोपड़ों की हरमाल दृष्टिगोचर होती थी इन सब घरों की संख्या करीब करीब ४-५ हजार की थी। यद्यपि एक नूतनता के कारण, चाहिये उतने साधन उप-लब्ध न हो सके फिर भी गोसलपुर की जनता की श्रद्धा भरी भक्ती ने सूरिजी को इतना आकर्षित किया कि उन्हें; यह चातुर्मास गोसलपुर में करना ही पड़ा। गोसलपुर के चातुर्मास निश्चय के पश्चात् आचार्य [illegible] अन्य साधुओं को तो आस पास के क्षेत्रो में विहार करने एवं धर्म प्रचार करते हुए योग्य स्थलो पर योग्य मुनियों के साथ चातुर्मास करने के लिये भेज दिये और आप स्वयं १०० तपस्वी साधुओं के साथ गोसलपुर में ठहर गये। बस सूरिजी के विराजने से जंगल में भी मंगल हो गया सर्वत्र आनन्द की एक [illegible] एवं अपूर्व रेखा दृष्टिगोचर होने लगी। आसपास के क्षेत्र वालो ने जब आचार्यश्री का गोसलपुर चातुर्मास करने के निश्चय को सुना तो उनमें से बहुतसों ने चातुर्मास में आचार्यश्री की सेवा का लाभ लेने के लिये गोसलपुर में आकर चातुर्मास पर्यन्त स्थिर वास कर लिया। गोसलपुर राज्य की सुव्यवस्था, एवं गोसलपुर नरेश की कृपालुता तथा सर्व प्रकार की सुविधाओं से आकर्षित हो बहुत से मनुष्यों ने तो [illegible] के लिये सदैव स्थायी निवास बना लिया। सारांश यह कि—दिन प्रतिदिन गोसलपुर [illegible] का रूप धारण कर रहा था।

ऐसे तो गोसलपुर का प्राकृतिक दृश्य—पहाड़ी स्थान होने से एकदम चित्ताकर्षक था ही किन्तु आस-पास की इस नवीन एवं घनी आबादी ने उन स्थानों पर [illegible] कृत्रिम सुन्दरता की अभिवृद्धि की। चारों तरफ [illegible] हरियाली की [illegible] [illegible] एवं सम [illegible] तालाबों की [illegible] वाले मनुष्यों के [illegible] से नूतन नगर [illegible] [illegible] गोसलपुर की शोभा [illegible]

[illegible] प्राप्त हुआ। जैनधर्म का प्रचार [illegible]

[illegible]

भरा हुआ था। वे धर्म की प्रभावना एवं उन्नति में अपनी व मुनि समाज की सुचारित्रवृत्ति की उन्नति ही समझते थे। यही कारण था कि गोसलपुर की नवीन आबादी को जैनधर्म का असली एवं स्थायी पाठ पढ़ाने के लिये आचार्यदेव ने अपने भौतिक सुखों की परवाह किये बिना ही वहां पर चातुर्मास कर दिया। एक ओर तो सूरीश्वरजी का व्याख्यान हमेशा होता था और दूसरी ओर शेष मुनि गोसलपुर की जनता को श्रावकों की नित्य क्रिया एवं आचार विचार की शिक्षा देकर जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धावान् बना रहे थे।

इस तरह चातुर्मास सानंद धर्माराधना पूर्वक समाप्त होगया। चातुर्मास के समाप्त होते ही भगवान पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धूमधाम से करवाई गई। राव गोसल के लिये मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा करवाने का जैनधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् पहिला ही मौका था अतः उनके उत्साह एवं लगन का पारावार नहीं रहा। उन्होंने पुष्कल द्रव्य का व्यय कर आये हुए स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी में एक एक सुवर्ण मुद्रिका और सवा सेर का मोदक दिया। याचकों को तो प्रचुर परिमाण में दान दिया गया। उन्होंने आर्य जाति के यशोगान से गगन गुंजा दिया।

इस तरह आचार्यदेव की परम कृपा से जिनालय की प्रतिष्ठा का कार्य होते ही राव गोसल ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक सूरीश्वरजी के चरण कमलों में अर्ज की कि—भगवन्! कृपा कर और भी मेरे करने योग्य धर्म कार्याराधन के लिये फरमावें। सूरिजी ने कहा–गोसल! गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में मंदिर बनवा कर दर्शन साधना करना और तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाल कर अक्षय पुण्य सम्पादन करना गृहस्थों के करने योग्य धर्म कार्यों में प्रमुख कार्य हैं। उक्त कार्यों में से मन्दिर का निर्माण करवा प्रतिष्ठा करवाने का कार्य तो सानंद सम्पन्न हो गया। अब रहा एक संघ निकालने का कार्य सो भी समय की अनुकूलता होने पर कभी कर लेना। गोसल ने कहा—पूज्यवर! आपकी कृपा से सब अनुकूलता ही है। मेरे लिये आपश्री के विराजने एवं आपके अध्यक्षत्व में संघ निकालने का अलभ्य अवसर न मालूम कब प्राप्त होगा। अतः आपकी उपस्थिति में ही यह काम निर्विघ्न हो जाय तो अपने आपको कृतकृत्य हुआ समझूं। आयुष्य एवं शरीर का किञ्चित् भी विश्वास नहीं इसलिये आप जैसे महापुरुषों के समागम का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी यदि धर्म कार्य में शिथिलता की जाय शक्ति के होने पर भी निशक्तता प्रगट की जाय तो इसके जैसा दुर्भाग्यशाली ही दुनियां में कौन होगा प्रभो! आप कुछ समय की स्थिरता कर इस दास का उद्धार करें। आपके इन उपकार ऋण से उऋण होने की तो मेरे में किञ्चित् भी शक्ति नहीं किन्तु दयानिधान! आपका तो सद्भाव करी दान देना का अपूर्व गुण ही है। इस अनभिज्ञ क्षेत्र में कुछ समय तक और विराजने से हम लोगों को धर्मलाभ का सुअवसर प्राप्त होगा एवं आपकी कृपा से संघ निकालने में भाग्यशाली बन सकूंगा। आचार्यश्री ने गोसल की प्रार्थना को स्वीकार करली। गोसल ने भी आनंद पूर्वक

[illegible] के बिना किये धर्म प्रचार के क्षेत्र में निर्मोही की तरह [illegible], [illegible] के [illegible] बिजली [illegible] की तरह [illegible] बढ़ते ही रहना चाहिये। [illegible] है कि; [illegible] की [illegible] हम लोग [illegible] है कि [illegible] हमारे आचार्यों के द्वारा बनाये गये जैनों का रक्षण करने में [illegible] है कि हमारी संख्या दिन पर दिन घट रही है और [illegible] हुए हैं।

को बुला कर आदेश दे दिया। पित्ताज्ञा पालक वे पुत्र भी उनकी आदेशनानुसार संघ के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करने में संलग्न बन गये। सब कार्य के लिये ठीक प्रबन्ध होने पर राव गोसल ने चारों ओर आमन्त्रण पत्रिकाएं भेज दी। शुभमुहूर्त पर संघ गोसलपुर में विशाल संख्या में एकत्रित हो गया। आचार्यश्री ने भी समय पर राव गोसल को वासक्षेप एवं मंत्रों द्वारा संघपति बना दिया। शुभमुहूर्त में आचार्यश्री के नायकत्व और राव गोसल के संघपतित्व मे संघ ने तीर्थश्री शत्रुंजय की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। क्रमशः संघ ने तीर्थश्री शत्रुञ्जय का दर्शन स्पर्शन पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्यादि शुभकार्य कर अपने को भाग्य शाली बनाया। अष्टान्हिका महोत्सव एवं ध्वजारोहणादि उत्सव करके अपने जीवन को सफल बनाया। राव गोसल प्रभृति नूतनश्रावकों ने तो श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर खूब ही आनन्द मनाया। कई साधुओंके साथ यात्रा कर श्रीसंघ, वापिस स्वस्थान लौट आया और आचार्यदेव अपने शिष्यों के साथ कई दिनों के लिये तीर्थ की शीतल एवं पवित्र छाया में ठहर गये। वहां पर कुछ दिनों के पश्चात् कई वीर सन्तानिये मुनिवर्ग पृथक् २ स्थानों से संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये आये जब उनको आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी के शत्रुञ्जय तीर्थ पर विराजने के समाचार ज्ञात हुए तो वे तत्काल सूरीश्वरजी की सेवा में वन्दनार्थ आये। उन्होंने आचार्य श्री की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि—पूज्यवर! आपश्री के पूर्वाचार्य ने [illegible] उपसर्गो एव परिषहों को सहन कर जो जैन शासन की सेवा की एवं कर रहे है, उसके लिये [illegible] चिरऋणी है। ऐसे तो जैनेतरों को जैन बनाकर महाजन संघ की सतत वृद्धि करते रहने [illegible] के पूर्वाचार्यो ने सम्पादन किया ही हैं किन्तु, महापुरुषो के अनुपम आदर्श का अनुसरण कर [illegible] ने जैनधर्म की प्रभावना करने में कुछ भी कसर नहीं रक्खी। एतदर्थ आपका जितना [illegible] उतना ही थोड़ा है। जितना धन्यवाद दिया जाय उतना ही अल्प है। इसके प्रत्युत्तर में सूरीश्वरजी ने फर-माया—बन्धुओ! इसमें धन्यवाद की एव आभार स्वीकार करने की जरूरत ही क्या है? [illegible] मुनित्व जीवन को अपनाने के पश्चात् मुनियों के लिये खास कर्तव्य रूप हो जाता है। [illegible] को तिलाञ्जली देकर पौद्गलिक सुखों पर लात मार सम्पन्न घर को छोड़ [illegible] वाले मुनिवर्ग यदि अपने उक्त कर्तव्य को विस्मृत कर पुन सांसारिक प्रपञ्चों [illegible] नवीन प्रपञ्च उपस्थित करने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं तो [illegible] कर्तव्यों से कोसो दूर है [illegible]! अपनी तो शक्ति ही क्या है? [illegible] परम्परा के आचार्यों पर भगवान् महावीर के आचार्यों ने जो [illegible] पदों से दर्शन करने में भी असमर्थ है। इन महापुरुषो ने लाखों ही नहीं [illegible] बोध देकर जैन बनाया। [illegible] किया। [illegible] किन्तु उन्होंने इन सब महत्व पूर्ण कार्यो में [illegible] नहीं रक्खी। [illegible]

[illegible]

शत्रुंजय पर वीर संतानियों का [illegible]

सूरि आचार्यरत्नप्रभसूरि, यक्षदेवसूरि, आर्यश्रीसुहस्तिसूरि और सुस्थीसूरि आदि महापुरुष अपने कार्य की मोटाई कहां लेने गये थे ? अरे ! गुण कभी छिपे नहीं रहते। कुसुमों की भीनी सौरभ अपने आप मधुकरों को आकर्षित कर लेती है। रत्न अपने मुंह से अपनी लाख रुपये की कीमत नहीं कहता किन्तु उनके गुणों से आकर्षित हो दुनियां अपने आप उनके गुणों को अपना लेती है। अतः मान एवं थोथी प्रशंसा के लोभ को तिलाञ्जली देकर कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होते रहने की परमावश्यकता है।

आर्यों ! आजका समय बड़ा ही विकट समय है। एक ओर तो देश पर अनार्यों के जनसंहारक भयंकर अक्रमण हो रहे हैं और दूसरी ओर बौद्धों, वेदान्तियों एवं वाममार्गियों के दारुण आघात जैन धर्म को विचित्र परिस्थिति में उपस्थित कर रहे हैं। इस विकट संघर्ष काल में यदि जैनश्रमण एकाध प्रांत में अपनी प्रतिष्ठाजमाने के लिये बने बनाये श्रावकों को भिक्षा पर तथा उनके सामने उसी गोरख धंधा में लगे रहे तो जैन 'समाज का अस्तित्व अधिक समय तक स्थिर रहना अशक्य है अतः अपना कर्तव्य है कि सुख दुःख की किञ्चित भी परवाह नहीं करते हुए अपने कर्तव्य पथ में हम सब लोग कटिबद्ध होकर आगे बढ़ें। यदि पूर्वाचार्यों के समान मूल पूंजी को (श्रावक संख्या को) बढ़ाने की हममें शक्ति नहीं है तो भी कम से कम मूल पुञ्जी को खो देने जितनी अयोग्यता भी तो नहीं होनी चाहिये। मूल पुन्जी को बढाना तो जागरूकता का लक्षण है किन्तु खोना अज्ञानता का सूचक है। बन्धुओं ! क्या जनकोपार्जित सम्पत्ति का रक्षण कर व्यापारादि स्वकीय कार्य कुशलता से उससे वृद्धि करना पुत्र का कर्तव्य नहीं है ? यदि है तो अपने को भी स्वल्प क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिये बैठकर अपनी प्रतिष्ठा खोना कहां तक समीचीन है ? क्या उन्हीं तेजस्वी आचार्यों की सन्तान उनके (पूर्वाचार्यों) द्वारा उपार्जित किये हुए द्रव्य का रक्षण करने में समर्थ नहीं है ? समय डंका की चोट कह रहा है कि—अब तो हमें इससंघर्ष युग में अपने कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होते हुए जैनत्व की विशालता को विश्वभर में विस्तृत करने की दृढ़ भावना करनी चाहिये।

प्यारे श्रमण गण ! आप और हम अलग २ नहीं हैं पर भगवान् महावीर की छत्रछाया में विचरने वाले और उनके द्वारा निर्धारित पताका को सर्वत्र फहराने वाले—नामों की विभिन्नता से भी एक ही है। अपना परम कर्तव्य है कि पारस्परिक स्नेहभाव को बढ़ाते हुए शासन की खूब प्रभावना एवं सेवा करें। एक दूसरे के कार्य में मददगार बनें। श्रीसंघ का संगठन बल बढ़ावें। मुनियों के विहार क्षेत्र को विशाल बनावें। गृहस्थों के हृदय को उदार बना गच्छसमुदाय की वाड़ा बन्दी आदि की दुर्गंध को जड़मूल से निकाल दें। नये पुराने श्रावकों के भेदभाव की दुर्भावना की हवा न लगने दें। चाहे किसी भी वर्ण एवं जाति का क्यों न हो ! पर जिसने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया उसको वीर पुत्र अर्थात अपने भाई के समान ही श्रीसंघ के व्यक्ति के अधिकार के समान उसका अधिकार रक्खें। बन्धुओं ! एक गृहस्थ के दस रुपये [illegible] खर्च है और पंद्रह रुपये की आमदनी है तो दस रुपयों का खर्च [illegible] किसी कारण से कमी हो [illegible] नहीं हो सकता है इसी प्रकार कभी जैन संख्या में किसी कारण से कमी हो सकती है पर [illegible] बढ़ाकर उस घाटे की पूर्ति करदी जाय तो कभी घाटे का अनुभव नहीं हो सकता है [illegible] उन्नत करने के समय का [illegible] हमारे सामने आ जाय तब तो [illegible] है ? अतः इन सब कार्यों की जुम्मेवारी आप हम सब श्रमणों पर रही हुई है [illegible]।

[illegible] ने कहे हुए वीर शासन के श्रमणों को अपने कर्तव्य मार्ग की ओर [illegible]

[illegible]

ऐसा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया कि उनकी आत्मा में भी नवीन चैतन्य स्फुरित होने लगा । धर्म प्रचार की बिजली भभक उठी । वे सब आचार्यदेव का आभार मानते हुए कहने लगे—भगवान् ! आपका कहना अक्षरशः सत्य है । जिधर दृष्टि डाले उधर ही जैनधर्म पर भयंकर आक्रमण हो रहे हैं । इधर श्रमण संघ भी अपने कर्तव्य मार्ग से कुछ स्खलित होता जा रहा है । शिथिलता हमारे में चोरों की भांति प्रविष्ट हो रही है । आपसी फूट एवं कुसम्प ने वाड़ाबंदी की ओर अपना पग पसारा है । गच्छ की मर्यादा एवं अपने कर्तव्य को हम विस्मृत कर चुके हैं पर धन्य है आप जैसे शासक शुभ चिन्तकों को जिनकी-कार्य कुशलता, विहार पद्धति की विशालता और नये जैन बनाने की प्रवृत्ति ने जैन संख्या को ऐसे भयंकर मृत्युकाल में भी घाटे में नहीं आने दी । इसके लिये हम आपके इस असीम उपकार को भूल नहीं सकते और आपको धन्यवाद दिये बिना रह नहीं सकते । पूज्यवर ! आपके हितकारी उपदेश से हमने निश्चय कर लिया है कि जैन शासन के उन्नति के कार्य में यथा साधन प्रयत्न करते रहेंगे । इस प्रकार उनकी आचार्यश्री के साथ वार्तालाप करके वीर सन्तानियों को अपरिमित आनन्द का अनुभव होने लगा । दूसरे दिन सब श्रमणों ने सूरिजी के साथ में शत्रुञ्जय पहाड़ पर जाकर आदीश्वर भगवान् की यात्रा की ।

कालान्तर में सूरिजी सौराष्ट्र की ओर विहार करते हुए आगे कोकण में पधार गये और वह चातुर्मास देवपट्टनपुर में कर दिया । आपके विराजने से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई । चातुर्मास के पश्चात् आपश्री के उपदेश से बनाये गये तीन भक्तों के तीन मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं की । करीब १३ नरनारियों ने परम वैराग्य से आचार्यदेव के पास दीक्षाअङ्गीकार करके आत्म कल्याण किया । कई अजैनों ने जैन धर्म को स्वीकार कर सत्यत्व का परिचय दिया ।

तत्पश्चात् सूरिजीने आगे दक्षिण की ओर विहार किया । सर्वत्र धर्मोपदेश करते हुए [illegible] के पालपुर नगर में चातुर्मास किया । आपके पधारने से इस प्रान्त में भी जैनधर्म जागृति हुई । वहां भी आपने ११ भावुकों को दीक्षा दी । ठीक है, व्यापारी लोगों को लाभ होता है वह वे आगे बढ़ते ही जाते हैं इसी प्रकार हमारे आचार्यदेव ने भी महाराष्ट्र प्रान्त के इस छोर से उस छोर पर्यन्त भ्रमण [illegible] दिया । जब महाराष्ट्र प्रान्तीय साधुओं को शुभ समाचार मिले कि आचार्य देवगुप्तसूरि [illegible] इधर ही पधार रहे । उनके हर्ष का पार नहीं रहा । वे दर्शनों के लिये [illegible] दर्शनों [illegible] आचार्यश्री ने दर्शनों के लिये [illegible] में धर्म प्रचार का कार्य [illegible] [illegible]

[illegible]

कार्य में आशातीत सफलता हस्तगत हुई । यद्यपि इस दीर्घ अवधि के बीच कई दिगम्बर भाईयों ने ईर्षा के वशीभूत हो शास्त्रार्थ किया किन्तु उसमें वे सफलता प्राप्त नहीं कर सके उलटा उन्हे पराजित होना पड़ा।

आचार्यश्री जैसे विद्वान थे वैसे समयज्ञ भी थे । अतः समय सूचकता के साथ विद्वत्ता ही की कुशलता ने आपको चारों ओर विजयी बनाया । महाराष्ट्र प्रान्त में आपका अखण्ड विजय डंका बजने लगा आपने महाराष्ट्र प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों एवं नगरों में परिभ्रमन कर धर्म का नवाङ्कुर अङ्कुरित कर दिया । करीब २८ नर नारियों को दीक्षा देकर उन्हें मोक्ष मार्गाराधक बनाये । कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाकर जैनेतरों को जैन बनाने की संस्कृति को दृढ़ किया । इन सभी महत्त्व पूर्ण कार्यों के साथ ही साथ पांच दिगम्बर मुनियों को भी श्वेताम्बर आम्नाय की दीक्षा दी ।

एक समय आप मानखेटनगर में विराजते थे । प्रतिदिन के व्याख्यानानुसार एक दिन आपने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ के महात्म्य एवं तीर्थ यात्रा से सम्पादन करने योग्य पुण्यों का तथा गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में से आवश्यक कार्यों का दिग्दर्शन कराते हुए शत्रुञ्जय तीर्थ का बहुत ही विशद एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया । शत्रुञ्जय तीर्थ के इतिहास ने आगत श्रोतावर्ग पर पर्याप्त प्रभाव डाला । उस नगर के मंत्री रघुवीर पर तो उस व्याख्यान का आशातीत असर हुआ। फलस्वरूप व्याख्यान में ही शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिये संघ निकालने का चतुर्विध श्रीसंघ से आदेश मांगने के लिये एक दम खड़े हो गये और अर्ज करने लगे कि—यदि आप लोग आज्ञा प्रदान करें तो मैं तीर्थ यात्रा के लिये संघ निकालने का लाभ प्राप्त कर सकूं । श्रीसंघ ने सहर्ष आदेश प्रदान किया और आचार्यश्री ने भी—'जहासुहं' कह कर उत्साह वर्धक वाक्य कहे । बस ! फिर तो था ही क्या ? स्थान २ पर संघ में पधारने के लिये आमन्त्रण पत्रिकाएं भेज दी गई । साधु साध्वियों की प्रार्थना करने के लिये योग्य पुरुष भेजे गये । क्रमशः निश्चित दिन इस [illegible] में ३०० श्वेताम्बरमुनि १२५ दिगम्बर साधु, और २५००० गृहस्थ सम्मिलित हुए । सूरीश्वरजी ने मंत्री रघुवीर को संघपति पद अर्पित किया । क्रमशः आचार्यश्री के नेतृत्व और मंत्री रघुवीर के संघपतित्व में संघ ने शुभशकुनों के साथ शुभमुहूर्त से शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया । मार्ग के मन्दिरों एवं [illegible] तीर्थों की यात्रा करते हुए शत्रुञ्जय पहुँचे । तीर्थ के दूर से दर्शन होते ही मुक्ताफल से बधाया और [illegible] वंदनादि क्रिया कर क्रमशः तीर्थ पर पहुँच गये । भगवान् आदीश्वर के चरण कमलों का स्पर्शन और द्रव्य एवं भाव पूजन कर संघ में आगत मानवों ने अपने पापों का प्रक्षालन किया । महाराष्ट्र प्रान्त से संघ का निकलना [illegible] अतः इस अपूर्व अवसर का सदुपयोग कर सब ने अपना अहोभाग्य मनाया । महाराष्ट्रीय [illegible] [illegible] एवं नये जैनों ने तो यह पहिली ही तीर्थ यात्रा की अतः सबके हृदयों में हर्ष एवं आनन्द [illegible] लहरें लहराने लगीं । दक्षिण विहारी साधुओं के साथ संघ, तीर्थ यात्रा करके पुनः स्वस्थान लौट आया।

सूरिजी तीर्थ यात्रा करके [illegible], [illegible], [illegible], स्तम्भन तीर्थ, भरोंच आदि [illegible] विहार करते हुए श्री संघ के अत्याग्रह से भरोंच नगर में चतुर्मास कर दिया । चतुर्मास की [illegible] [illegible] धर्मोद्योत एवं धर्म प्रचार हुआ । चातुर्मास के पश्चात् आपश्री का विहार [illegible] प्रदेश की ओर हुआ । [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] होते हुए आप चित्रकूट [illegible] [illegible] की जनता ने आपका शानदार स्वागत एवं अभिनंदन किया । श्रीसंघ के [illegible] [illegible] चातुर्मास चित्रकूट में ही करने का निश्चय किया । चित्रकूट में जैनों की घनी आबादी—[illegible]

[illegible]

और वे सब भी प्राय उपकेशवंशीय श्रावक ही थे। पूर्वाचार्यों के जीवन चरित्रों में अभी तक पाठक वृन्द बराबर पढ़ते आये हैं कि उपकेश गच्छीय आचार्यों का व उनके आज्ञानुयायी मुनियों का विहार क्षेत्र बहुत ही लम्बा चौड़ा था अतः उपकेशवंशीय श्राद्धवर्ग की संख्या विशाल हो इसमें आश्चर्य ही क्या ? इसीके अनुसार चित्रकूट भी उपकेशवंशियों का प्राचीन क्षेत्र था। उपकेश गच्छीय मुनियों का आवागमन प्रायः प्रारम्भ ही था अत: चित्रकूटस्थ श्रावक समाज का धर्मानुराग अत्यन्त सराहनीय और स्तुत्य था। सूरीश्वरजी के आगमन से व यकायक चातुर्मास के अप्राप्य अवसर के हस्तगत होने से तो श्रावक समाज के धर्म प्रेम में सविशेष अभिवृद्धि हुई। मोक्षमार्ग की आराधना के लिये सूरीश्वरजी का आगमन निमित्त बढ़िया से बढ़िया निमित्त कारण होगया।

बलाह गौत्रीय रांका शाखा के श्रावक शिरोमणि, देवगुरु—भक्ति कारक, पञ्चपरमेष्टि महामंत्र स्मारक, श्राद्धगुण सम्पन्न, निर्ग्रन्थ प्रवचनोपासक सुश्रावक शाह दुर्गा ने परम पवित्र, [illegible], पातक राशिप्रक्षालन समर्थ, पञ्चमाङ्ग श्रीभगवतीजीसूत्र का महोत्सव किया जिसमें पूजा, प्रभावना, [illegible], प्रभु सवारी और स्वधर्मी भाइयों की पहिरावणी आदि धार्मिक कार्यों में नव लक्ष द्रव्य [illegible] सूरीजी से श्रीभगवतीसूत्र बंचवाया। ज्ञान की पूजा माणिक, मुक्ताफल, हीरा, पन्ना एवं स्वर्ण [illegible]। इतना ही नहीं प्रत्येक दिन गहुली पर एक सुवर्ण मुद्रिका रखने तथा श्रीगौतमस्वामी के द्वारा पूछे गये प्रत्येक प्रश्न का सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करने का निश्चय किया। यह बात तो प्रकृति सिद्ध है कि जितनी [illegible] वस्तु होती है उतना ही उस पर अधिक भाव चढ़ता है। श्रीभगवतीजीसूत्र का इतना बड़ा महोत्सव [illegible] में मुख्य दो कारण थे। एक तो जन समाज के उत्साह को बढ़ाना, और लोगों की [illegible] और ज्ञानश्रवण की ओर करना दूसरा उस समय आगम लिखवाकर ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता को पूर्ण कर जैन साहित्य को अमर करना। हम पहले के प्रकरणों में इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि उस समय प्रेस वगैरह के सुयोग्य साधन वर्तमान वत् वर्तमान नहीं थे अतः ज्ञान के सुरक्षित रखने के लिये उन्हें आगम लिखवाने एवं ज्ञान पूजा के द्रव्य का सदुपयोग करने के लिये ज्ञानभण्डार स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होती थी। बस, इन कारणों से प्रेरित हो इस समय के [illegible] का भार बड़ी नम्रता से अपने सिर पर उठा लेते। इससे उन्हें अनेक तरह के लाभ होते और [illegible] का भी अपूर्व अवसर प्राप्त होता। जैन समाज के स्थानीय [illegible] के [illegible] सहसा हमारी ओर आकर्षित होजाती इससे शासन की प्रभावना एवं [illegible]। इसके सिवाय उस समय के जैनों के पुण्योदय ही ऐसा था कि वे व्यापार, [illegible] शुभ कार्यों में द्रव्य का सदुपयोग करने में अपने को [illegible] [illegible]

प्रभावना होने के वदले हानि ही समझी—लाखों रुपयों की सम्पत्ति एवं पौद्गलिक सुखों का त्याग कर आत्म कल्याण के लिये स्वीकृत की हुई मोक्षाराधक चारित्र वृत्ति का विघातक ही समझा है।

सूरिजी महाराज के विराजने से केवल एक शाह दुर्गों को ही लाभ मिला ऐसी बात नहीं पर अन्य बहुत से श्रावकों ने भी अपनी २ शक्तयनुकूल लाभ लिया। जैन लोग हस्तगत स्वर्णावसर का लाभ उठावें इसमें तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं पर जैनेतर लोग भी सूरीश्वर जी के व्याख्यान में जैनागमों को सुनकर जैन धर्म के परम अनुरागी बन गये। इस प्रकार इस चातुर्मास में उपकार वर्णतोऽवर्णनीय हुआ।

चातुर्मास समाप्त होते ही ७ मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर मेदपाट प्रान्त के छोटे बड़े ग्रामों में जैनधर्म का उद्योत करते हुए आघाट, वदनेर, देवपट्टनादि, क्षेत्रों की स्पर्शना करके क्रमशः सूरीश्वरजी ने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया। आचार्यश्री के आगमन के कर्ण सुखद एवं मनाह्लादकारी समाचारों को श्रवण कर मरुभूमिवासियों के हर्ष का पार नहीं रहा। आचार्यश्री शाकम्भरी पद्मावती, हंसावली होते हुए नाग पुर पधारे। आपके दर्शन एवं स्वागत के लिये जनता उमड़ पड़ी। सपादलक्ष प्रान्त में सारी चहल पहल मचगई। आपके आगमन महोत्सव ने सर्वत्र धूम मचादी। मरुधरवासी आनंद सागर में निमग्न होगये। सब के हृदय में धर्म प्रेम की पवित्र लहरें लहराने लगी। वास्तव में उस समय देव गुरु धर्म पर जनता की कितनी भक्ति थी, यह तो सूरिजी के जीवन चरित्र पढ़ने से सहज ही ज्ञात होजाता है। आज का नास्तिक वाद कुछ भी कहे पर हमतो अनुभव करते हुए आये हैं कि—जहां धर्म पर श्रद्धा, भक्ति, विश्वास अधिक होता है वहां सर्वत्र सुख और आनंद ही फैला हुआ होता है। 'यतोधर्मस्ततो जयः' गीता के इस वाक्यानुसार भी उभयलोक की सुख प्राप्ति के लिये किंवा मोक्ष का अक्षय आत्मिकानंद प्राप्त करने के लिये धर्म ही साधकतम कारण है। जब उन लोगों की धर्म में अटूट श्रद्धा थी तब वे लोग परम सुखी एवं संसार में रहते हुए भी निस्पृही थे और आज इसके सर्वथा विपरित ही दृष्टिगोचर होता है अस्तु, सुख प्राप्ति के जीवन का प्रमुखतत्त्व धर्म ही होना चाहिये। धर्म ही परम मङ्गल रूप है।

नागपुर में सूरिजी के पधारने की खुशियां घर २ मनाई जा रही थी। नागपुर में जैनियों की विशाल संख्या थी और वह इस लाभ को यों ही खोना नहीं चाहती थी: अतः सबने मिलकर आचार्यश्री से नागपुर में चातुर्मास के लिए जोरदार प्रार्थना की। सूरीश्वरजी ने भी धर्म प्रभावना का कारण जानकर तुरन्त स्वीकार ली। पूर्व जमाने में न तो इतनी लम्बी चौड़ी विनतियों की जरूरत थी और न आचार्य देव चातुर्मास की विनती के साथ किसी भी गृहस्थ के ऊपर व्यर्थ के भार लादने रूप शर्तें ही रखते थे। न वे किसी धनाढ्य श्रेष्ठिवर की चापलूसी-खुशामद करते थे और न वे किसी प्रकार के आत्मगुण विघातक [illegible] में ही अपने मन की महत्ता ही समझते थे। वे तो थे एकान्त निस्पृही निग्रन्थ। त्याग का आदर्श [illegible] रहने वाले संसार के अपूर्व शिक्षक। सब प्रकार की आधि-व्याधि एवं उपाधि से विमुक्त आत्मिक सुख का [illegible] जीवन व्यतीत करने वाले सच्चे श्रमण। वे अपने लिए तो किसी प्रकार का कार्य [illegible] नहीं वे तो [illegible] उपदेश देकर कार्य करवाते थे एवं इस पारमार्थिक क्रिया [illegible] [illegible] भी। इससे इनका किञ्चित् भी स्वार्थ किंवा शासन को हानि पहुँचाने का [illegible] [illegible] विषय एवं कषाय को दूर करके [illegible] में ही अपने [illegible] [illegible] के कार्य के लिये वे उपदेश अवश्य करते थे। किन्तु किसी के ऊपर भार [illegible]

[illegible]

नहीं करते थे। उस समय के श्रावक लोग भी इतने भावुक थे कि यदि आचार्य श्री शासन के कार्य के लिये थोड़ा सा भी इशारा करते तो वे अपना अहोभाग्य समझते। शासन की अलभ्य सेवा का लाभ समझ चतुर्विधश्रीसंघ के हित के लिये वे भी अपना तन, मन एवं धन अर्पित कर देते। आचार्यश्री के उपदेश से शासन के एक कार्य को दस, बीस भावुक श्रावक करने को तयार हो जाते हैं। कहा भी है कि—

"ले लो करतां लेवे नहीं और मांग्या न आपेजी कोय"

ठीक है जितना हर्ष एवं उत्साह से कार्य किया जाता है उतना ही लाभ है। चतुर्विध संघ तो पच्चीसवां तीर्थङ्कर रूपही है अतः सघ के हित की रक्षा एवं उन्नति करना, शासन की प्रभावना कर इतर धर्मावलम्बियों के हृदय में श्रद्धा के बीज अङ्कुरित करना श्रावक समाज का भी परम कर्तव्य हो जाता है। इस पर सूरिजी तो बड़े ही समयज्ञ एवं काल मर्मज्ञ थे।

आचार्यश्री का बहुत वर्षों के पश्चात् पुनः मरुधर में पधारना, और पहला चातुर्मास नागपुर में होना वहां की जनता को और भी धर्म मार्ग की ओर प्रोत्साहित कर रहा था। चातुर्मास के [illegible] में सूरिजी का व्याख्यान हमेशा ही होता था। व्याख्यान में जैनों के सिवाय [illegible] भी उपस्थित होकर ज्ञान का लाभ उठाने मे अपने को भाग्यशाली समझते थे। आचार्यश्री एक [illegible] एवं तेजस्वी उपदेशक थे। दर्शन और आचार विषय का तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रकार [illegible] सुनने वालों को व्याख्यान बड़ा ही रुचिकर लगता था। जो लोग जैनों को नास्तिक कहते थे [illegible] घृणा करते थे वे ही लोग आचार्य श्री की ओर प्रभावित हो जैनधर्म की भूरि २ प्रशंसा करने [illegible] ४०० ब्राह्मणों ने तो मिथ्यात्व का वमन कर जैनधर्म को स्वीकार किया। सूरिजी ने कहा [illegible] पहले पहल ही जैनधर्म को स्वीकार नहीं किया है। किन्तु आप लोगों के पूर्व भी [illegible] ४०० और शय्यंभव, यशोभद्र, भद्रबाहु, आर्य रक्षित, वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर—जो [illegible] धुरंधर विद्वान थे, चारवेद, अष्टाग निमित्त, अष्टादश पुराणादि अपने धर्म के शास्त्रों के [illegible] त्मक निष्पक्षपात दृष्टि से विचार किया तो आत्मकल्याण के लिये [illegible] जैनधर्म [illegible] हुआ अतः मिथ्या पदाग्रहको छोड़ के सहर्ष जैनधर्म में दीक्षित होगये। [illegible] यज्ञो मे एवं देव देवियो के नामपर हजारो मूक पशुओ का बलिदान करते [illegible] जैनधर्मी बनाये। उनका इतिहास आज भी हमारे हृदय के [illegible] है। सूरिजी द्वारा दिये गये इन उदाहरणो से उनकी श्रद्धा और भी [illegible]।

सूरिजी महाराज का [illegible] की ओर अधिक लक्ष्य था [illegible] वैराग्य के विषय का [illegible] जीव के [illegible] के उम्मेदवार हो ही जाते। [illegible] भी वहां से विहार कर—[illegible] पधार गये। [illegible] आचार्यश्री [illegible]

सूरिजी के आगमन से पूर्व संघ में कुछ मनों मालिन्य किंवा आपसी वैमनस्य पैदा हो गया था पर आचार्यश्री के एक व्याख्यान से ही वह चोरों की भांति सर्वदा के लिये पलायन कर गया। श्रीसंघ में शांति, प्रेम एवं संगठन का अपूर्व उत्साह प्रादुर्भूत हो गया। इससे पायाजाता है कि उस समय संघ में आचार्यों का [illegible] प्रभाव था। संघ के अत्याग्रह से वह चातुर्मास सूरिजी ने उपकेशपुर में ही कर दिया। उपकेशपुर की जनता में पहिले से ही धर्म का गौरव था, कल्याण की भावना थी, स्वधर्मी भाइयों के प्रति अपूर्व वात्सल्य तथा जैन श्रमणों के प्रति अपूर्व श्रद्धा एवं भक्ति थी फिर आचार्यश्री के चातुर्मास होने से तो वे सबके सब द्विगुणित होगये।

सूरिजी का व्याख्यान नित्य नियमानुसार प्रारम्भ ही था। जैन व जैनेतर महानुभाव बड़ी ही भक्ति पूर्वक उसका श्रवण कर कल्याण साधन में संलग्न थे। सूरिजी के विराजने से धर्मोद्योत प्रबल परिमाण में हुआ। आपके व्याख्यान का प्रभाव जनता पर आशातीत हुआ। चोरलिया जाति के मंत्री अर्जुन का पुत्र करण जो कोट्याधीश था—छः मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर आचार्यश्री के पास में भगवती दीक्षा स्वीकार करने के लिए उद्यत हुआ। उसका अनुकरण कर चार पुरुष और सात बहिनों ने भी चातुर्मास समाप्त होते ही करण के साथ दीक्षा ले ली। दीक्षा का कार्य सानंद सम्पन्न होने के पश्चात् आचार्यश्री [illegible] कुमुट गौत्रीयशा देवा के बनाये पार्श्वनाथ भगवान् के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से की। [illegible] न्तर में वहां से विहार कर माण्डव्यपुर, पल्हिकादि ग्रामों में होते हुए आचार्यश्री नारदपुरी पधारे। नारद पुरी ऐसे तो भावुकों से भरी हुई ही थी पर आपका जन्म स्थान नारदपुरी ही होने से वहां की जनता के उत्साह में कुछ विलक्षणता, एवं विशेषता के साथ अलौकिकता दृष्टिगोचर होती थी। कोई आचार्य [illegible] से सम्बोधित कर आपके गुणगानों से अपनी जिव्हा को पावन करने लगा तो कोई प्रेमवश जनता के पुत्र नाम से ही आपकी सच्ची प्रशंसा कर अपने जीवन का सच्चा लाभ लेने लगा। कोई कहता कि धन्य है ऐसी माता को जिस ने अपनी कुक्षि से ऐसा पुत्र रत्न उत्पन्न किया कि इसने नारदपुरी को ही नहीं [illegible] सारी मरुभूमि को उज्वल मुखी बना दिया। इस प्रकार जितने मुंह उतनी बातें करते हुए आप [illegible] गुणगान किये जा रहे थे। इस प्रकार की निर्मल भक्ति पूर्ण प्रशंसा से नारदपुरी की जनता [illegible] गौरवान्वित बना रही थी। अस्तु, सूरिजी के आगमन के साथ ही सूरिजी का खूब सजावट के [illegible] गत किया गया। नगर प्रवेश के पश्चात् मंगल रूप में दी गई सर्व प्रथम देशना को श्रवण कर [illegible] देख रह गई। अखिल जन समाज अपने भाग्य को सराहने लग गया। आचार्यश्री का नारदपुरी [illegible] होने से वहां के लोगों ने आग्रह पूर्ण प्रार्थना करते हुए कहा—प्रभो! हम नारदपुरी में [illegible] लेकर हम सब को कृतार्थ किया ही है किन्तु एक चातुर्मास करके और हमें [illegible] चिरऋणी रहेंगे। एक चातुर्मास का लाभ तो हमें अवश्य मिलना ही चाहिए। सूरिजी ने [illegible] स्वीकार कर वह चातुर्मास नारदपुरी में ही करना निश्चित कर लिया। चातुर्मास में अभी [illegible] था अतः चातुर्मास के पूर्व ही आपश्री [illegible], [illegible], [illegible] प्रदेश में परिभ्रमण कर [illegible] करने लगे। चातुर्मास के ठीक समय पर नारदपुरी में पधार कर चातुर्मास कर दिया। [illegible] [illegible] अवशिष्ट आयु [illegible] के उद्धार में ही व्यतीत की।

[illegible] अपने २४ वर्ष के [illegible] शासन काल में प्रत्येक प्रान्त में विहार कर [illegible]

[illegible]

खूब जोरों से बढ़ाया । अनेक महानुभावों को श्रमण दीक्षा दी । लाखों मांसाहारियों को जैनधर्म में संस्कारित किया । अनेक मंदिर मूर्तियो की प्रतिष्ठाएं करवाई । आपका समय चैत्यवासियों की शिथिलता का समय होने से आपने कई स्थानों पर श्रमण सभा कर शिथिलता को मिटाने का खूब प्रयत्न किया । इसमें आपको पर्याप्त सफलता भी हस्तगत हुई । वादी, प्रतिवादी तो आपका नाम सुनते ही घबरा उठते थे । आपके व्याख्यानों की छाप बडे२ राजा महाराजाओं पर पड़ती थी अत. कई बार आपका व्याख्यान राजाओं की सभा में हुआ करता था । आप जीवन इस तरह जन कल्याण के कार्यों में व्यतीत हुआ ।

अन्त में आपश्री ने शत्रुन्जय तीर्थ पर देवी सच्चायिका की सम्मति और नारदपुरी के प्राग्वट वंशीय शा. हावर के महा महोत्सव पूर्वक उपाध्याय चन्द्रशेखर को सूरिपद प्रदान किया । आप तब ही से अपनी अन्तिम संलेखना में लग गये । चंद्रशेखर मुनि का नाम परम्परागत क्रमानुसार सिद्धसूरि रख दिया श्रीदेवगुप्तसूरि ने ११ दिन के अनशन के पश्चात् समाधि पूर्वक पञ्च परमेष्टी का स्मरण करते हुए स्वर्ग पुरी की ओर पदार्पण किया जैन धर्म की उन्नति करने वाले ऐसे महापुरुषों के चरण कमलों में कोटिशः वंदन ! आपके समय में हुए तीर्थादि कार्यों की संक्षिप्त नामावली निम्न प्रकारेण है ।

आचार्य भगवान् के ४४ वर्ष के शासन में भावुकों की दीक्षाएं

१—चन्द्रावती	के प्राग्वट	गोत्रीय	लुम्बाने	दीक्षाली
२—शिवपुरी	,, भाद्र	,,	चांदणने	,,
३—नाडुली	,, प्राग्वट	,,	खेमने	,,
४—पालिका	,, श्रीमाल	,,	नाथोने	,,
५ कोरटपुर	,, सुलेच्छा	,,	गोमोने	,,
६—आशिका	,, पाटणी	,,	देदाने	,,
७—हर्षपुर	,, कोठारिया	,,	पेथाने	,,
८—भावणी	,, कुम्मट	,,	रणाने	,,
९—दंदाही	,, लघुश्रेष्टि	,,	ओज्ञाने	,,
१० चन्द्रिपुरा	,, सुचेति	,,	हादरने	,,
११—बोसण	,, पल्लीवाल	,,	फूआने	,,
१२—हुगाडी	,, वादेचा	,,	हीराने	,,
१३—लालोटी	, समदड़िया	,,	देदने	,,
१४—जाबलीपुर	, चौहान	,,	[illegible]	
१५—[illegible]	,, कोरटिया	,,	[illegible]	
१६—[illegible]	,, [illegible]	,,	[illegible]	,
१७—[illegible]	,, [illegible]	,,	[illegible]	,
१८—[illegible]	,, [illegible]	,	[illegible]	,,
१९—[illegible]	,, [illegible]	,		,

सूरीश्वरजी के शासन में दीक्षाएं

१४—रत्नपुरा	के	कुम्मट	गो०	टीलाने	शत्रुंजय का संघ
१५—उपकेशपुर	,,	अदित्या०	,,	नरसी ने	,,
१६—नागपुर	,,	चिंचट	,,	सोमा ने	,,
१७—चन्द्रावती	,,	प्राग्वट	,,	करण ने	,,

१८—उपकेशपुर के कुम्मट रावल युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई।
१९—मेदनीपुर के श्रेष्टि हरदेव ,, ,, ,,
२०—शिवगढ़ के श्रीमाल अर्जुन ,, ,, ,,
२१—मुग्धपुर के प्राग्वट नारायण ,, ,, ,,
२२—चरपटग्राम में बप्पनाग देदा की पत्नी ने एक लक्ष द्रव्य से बावड़ी कराई।
२३—क्षत्रीपुर के श्रेष्टि गोमा की पुत्री रामी ने तलाव बनाया।
२४—भोजपुर के प्राग्वट कुम्मा की धर्म पत्नी ने एक कुंवा बनाया।
२५—पाल्हिका के पल्लीवाल काना ने दुकाल में एक कोटी द्रव्य किया।

दुकाल—आचार्य देव के शासन में महाजन संघ बड़ा ही उन्नत दशा को भोग रहा था धन धान्य एव पुत्रादि परिवार से समृद्धशाली था वे लोग अच्छी तरह से समझते थे कि इस समृद्धशाली होने का मुख्य कारण देव गुरु और धर्म पर अटूट श्रद्धाही है अतः वे लोग गुरु महाराज के उपदेश एवं आदेश को देव वाक्य की तरह शिरोधार्य करते थे गुरु उपदेश से एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य बात की बात में व्यय कर डालते थे इतना ही क्यों पर वे जनोपयोगी कार्य में भी पीछे नहीं हटते थे आचार्य श्री के शासन समय तीन बार दुकाल पड़ा था जिसमें भी महाजन संघ ने करोड़ों द्रव्य खर्च किया।

उपकेशवंशकी उदारता—नागपुर के अदित्यनाग देदा के पुत्र सांवसी की जान सत्यपुरी के सुर्जन राना के वहाँ जारही थी रास्ता में भोजन के लिये शक्कर (खांड) की १५० बोरियां साथ में थी, जान ने एक ग्राम के बाहर बावड़ी पर डेरा डाल कर रसोई बनाई जब भोजन करने की तैयारी हुई तो जान वालों को मालूम हुआ कि बावड़ी का पानी कुछ खारा है तो सब लोग कहने लगे कि क्या देदाशाह हमें खारा पानी पिलावेगा? इस पर देदाशाह ने नौकरों को हुक्म दिया कि अपने साथ में जितनी खांड है वह सब बावड़ी में डालदो। बस वे १५० बोरियों खोल कर सब खांड बावड़ी में डालदी और जान वालों को कहा कि आप सब सरदार मीठा पानी आरोगो। अहा हा, लोगों ने देदाशाह की उदारता की बहुत प्रशंसा की और सब बानों को मिठा पानी दिया और एक कवि ने देदाशाह की उदारता का कवित्त भी बनाया।

चालीसवें पट्ट देवगुप्त हुए, जिनकी महिमा भारी थी।
आत्मबल अरु तप संयम से कीर्ति खूब विस्तारी थी॥
शिथिलाचारी दूर निवारी, आप उग्र विहारी थे।
शुभ गाते सुर गुरु भी थाके, शासन धर्म प्रचारी थे॥

३८ भगवान पार्श्वनाथ के चालीसवें पट्टधर आचार्य देवगुप्त सूरि [illegible] हुए।

पारख वगैरह हैं। पूर्वकाल के महाजनों को इधर से उधर, और उधर से इधर स्थान परिवर्तन करते रहने के मुख्य दो कारण थे। एक व्यापार के लिये और दूसरा राज्य विप्लव की भयंकरता के कारण। उदाहरणार्थ—वर्तमान में भी बम्बई, कलकत्ता, करांची, ब्यावर, राणी, समीरपुर आदि शहर—जो बड़े २ शहरों के रूप में दृष्टि गोचर हो रहे हैं—केवल व्यापारिक क्षेत्र की प्रबलता एवं विशालता के कारण से ही हैं। इसके विपरीत, कलिंगा, वल्लभी, सिंध और पञ्जाब के लोगो ने राज्य कष्टों एवं आक्रमण की अधिकता के कारण इधर उधर—जिधर सुरक्षित स्थान मिले—जाकर अपने सुरक्षित स्थान बना लिये। इसके सिवाय भी कई वख्त राजा लोग अपने नये राज्य का निर्माण कर, महाजनों को सम्मान पूर्वक आमन्त्रित कर कई कई प्रकार की सुगमता प्रदान कर अपने नये राज्य में ले गये। अतः महाजन लोगों का एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाकर रहना या वहां स्थिरवास करना स्वभाविक सा ही होगया था। इसका पुष्ट एवं प्रबल प्रमाण आज भी हमारी आंखों के सामने हैं कि बरार, खानदेश, यू० पी०, सी० पी० बिहार, पञ्जाब महाराष्ट्रादि प्रान्तों में हमारे स्वधर्मी भाइयों की पेढ़ियें यथावत प्रचलित हैं। हजारों लाखों की तादाद में उन प्रान्तों में व्यापार निमित्त मारवाड़ से गये हुए मारवाड़ी भाइयों के दर्शन हो सकेंगे। अस्तु,

उपकेशपुर में आदित्यनाग गौत्र की पारख शाखा के धनकुबेर, श्रावक व्रत नियमनिष्ठ, परम धार्मिक उदारवृत्तिवाले श्रीअर्जुन नाम के सेठ रहते थे। आप तीन बार संघ निकाल कर तमाम तीर्थों की यात्रा कर स्वधर्मी भाइयों को स्वर्ण मुद्रिका एवं वस्त्रों की पहरावणी देकर संघपति पद को प्राप्त करने में भाग्यशाली बने थे। तीन बार तीर्थयात्रा के लिए संघ निकालने के परमपुण्य को सम्पादन करने के पश्चात् दर्शन पद की वि. आराधना के लिए उपकेशपुर में भगवान आदिनाथ का एक आलीशान मंदिर बनवाया था। आपके चार पुत्र और सात पुत्रियें थीं जिनमें एक करण नामका पुत्र बड़ा ही तेजस्वी था। वह बचपन से ही धर्मक्रिया की ओर अभिरुचि रखने वाला व आत्मकल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत था। मुनि, महात्माओं की सत्संगति एवं उनकी सेवा के लिए सदा तत्पर रहता था। उसके जीवन में विलक्षणता थी, अलौकिकता थी, अद्भुतता थी। महात्माओं की भक्ति एवं धर्म कार्य में विशेष प्रेम उसके भावी जीवन के अभ्युदय के सूचक थे। अवस्था के बढ़ने के साथ ही साथ सेठ अर्जुन अपने पुत्र का विवाह करने के लिये उत्कण्ठित बन उठे तो इसके विपरीत करण उनका सख्त विरोध करने लगा। क्रमशः इसी उलझन में २५ वर्ष व्यतीत हो गये। अन्त में करण की इच्छा न होने पर भी कुटुम्ब वालों के अत्याग्रह से शा० अर्जुन ने करण की सगाई कर ही दी। समय पर विवाह करने के लिये उस पर बहुत अधिक दबाव डाला गया पर करण तो आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत पालने की प्रतिज्ञा ले चुका था अतः विवाह के प्रस्ताव को सुन कर वह एक दम पेशोपेश में पड़ गया। उसके सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो गई कि वह शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करे या अपनी कृत प्रतिज्ञा पर स्थिर रहे। अन्त में उसने निश्चय किया कि मेरे निमित्त से एक जीव का और भी कल्याण होने वाला हो तो क्या मालूम अतः परिवार वालों की प्रसन्नता के निमित्त और अपनी इच्छा व प्रतिज्ञा के विरुद्ध भी शादी कर लेना समीचीन होगा। इस विचार के साथ में ही उसके नयनों के सामने विजयकुंवर, विजयकुंवरी के एक शैय्या पर सोने पर भी सर्वथा अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने का दृश्य चित्रवत् उपस्थित हो गया।

बस, करण ने शादी करली। विवाह कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् वह अपनी पत्नी के साथ

मुग्धकुमारी का नवपुर में प्रवेश

गृह में गया और उसके साथ एक ही शैय्या पर सो गया किन्तु विजयकुंवर, विजयकुंवरी के दृष्टान्त को स्मरण में रख उसने अपनी प्रतिज्ञा में किञ्चित् भी बाधा नहीं उपस्थित होने दी। करण की पत्नी ने भी प्रथम संयोग में लज्जावश कुछभी नहीं कहाकि थोड़े दिनों के पश्चात् वह अपने पितृगृह को भी चली गई। जब चार मास के पश्चात् वह पुनः अपने सुसराल में आई और करण की आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने की कठोर, हृदय विदारक प्रतिज्ञा को सुनी तो उसने अपने पतिदेव से प्रार्थना की कि—पूज्यवर ! यदि आपकी प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य व्रत पालने की इच्छा थी तब शादी ही क्यों की ?

करण—मेरी इच्छा तो बिलकुल ही नहीं थी परन्तु कुटुम्ब वालों ने जबर्दस्ती शादी करवादी।

पत्नी—कुटुम्ब वालों ने तो जरूर ऐसा किया होगा पर जब आप स्वयं दृढ़ निश्चय कर चुके थे फिर शादी करने का क्या कारण था ?

करण—मेरी इच्छा यह भी थी कि यदि मेरे कारण किसी दूसरे जीव का उद्धार होने का हो तो कौन कह सकता है ?

पत्नी—दूसरा जीव तो मैं ही हूँ न ?

करण—हां आप ही हैं।

पत्नी—तो क्या आप मेरा कल्याण करना चाहते हैं ?

करण—तब ही तो संयोग मिला है। क्या आपने विजयकुंवर विजयकुंवरी का [illegible] है कि उन दोनों ने एक ही शैय्या पर सोकर के भी अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत पाला था ?

पत्नी—तो क्या आप विजयकुंवर बनना चाहते हैं ?

करण—विजयकुंवर तो महापुरुष थे। उनके समय संहनन, शक्ति वगैरह कुछ और ही थी और आज के समय की संहनन शक्ति कुछ और ही है।

पत्नी—जब संहनन वगैरह वे नहीं हैं तो आप मुझे विजयकुंवरी कैसे बना सकेंगे ? मेरी [illegible] नहीं सकेगी तो आप मुझे ऐसा कौनसा सुगमय मार्ग बतलाओगे ?

करण—यह मुझे स्वप्न में भी उम्मेद नहीं है कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत पालूं और [illegible] किसी दूसरे [illegible] का मन से भी अनुसरण करें। प्रत्येक प्राणी में अपने खानदान का कुल और [illegible] वगैरह हुआ करता है अतः मुझे विश्वास है कि मेरे साथ आप भी ब्रह्मचर्य पालेंगी ही।

पत्नी—पर काम देव तो एक दुर्जय पिशाच है मेरी जैसी अबला इससे कैसे [illegible] ! आप जरा विचार तो करिये ?

करण—पुरुषों की अपेक्षा इस कार्य में अबला—अबला नहीं किन्तु सबला होती है। [illegible] का चरित्र आपने नहीं सुना है ? वे भी आपके जैसी [illegible] ने अबला रूप निर्बलता को तिलाञ्जली दे दूसरों को भी [illegible]।

आपने सुना होगा कि [illegible] स्वीकार किया है। [illegible] बात है कि इस [illegible] हमारी [illegible] नहीं हो और क्या है ? [illegible]

लगादी तो निश्चय ही हमारे लिये देवताओं के भोग किंवा मोक्ष का अक्षय सुख तैयार है किन्तु इससे विपरीत भविष्य का विचार न करके थोड़े से सुखों के लिये बहुत की हानि की तो मधुलिप्त खड्ग को चाटने वाले जिह्वालोलुपी की जिह्वा कटने के दुःख के समान हमको भी अनन्त नरक, तिर्यञ्च, निगोद के दुःखों को सहन करना पड़ेगा जहां से कि अपना पुनरुद्धार होना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य ही हो जायगा। शास्त्रों में कहा है—

सल्लं कामा विसंकामा कामा आसी विसोवमा । कामे य पत्थेमाणा अकामा जन्ति दुग्गइं ॥
जहा किम्पाग फलाणं परिणामो न सुंदरो । एवं भुताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो ॥

अर्थात्—ये काम भोग शल्य—कंटक स्वरूप हैं। साक्षात् विष से भी भयंकर है आशीविष सर्प से भी उग्र एवं हानिप्रद हैं। यह जीव इन पौद्गलिक सुखों में मोहित हो उनकी प्राप्ति के प्रयत्न करता रहता है और काम भोग को भोगने की तीव्र इच्छा वाला होकर के भी अन्तराय कर्म के तीव्रोदय से वैसा नहीं करता हुआ इच्छा से ही दुर्गति को प्राप्त हो जाता है। कहां तक कहें। इन काम भोगों की शास्त्रकारों ने किंपाक फल की उपमा दी है जैसे किम्पाक फल खाने में अत्यन्त स्वादु एवं मन को आनन्द उपजाने वाला होता है किन्तु कुछ ही क्षणों के पश्चात् वह आनन्द मृत्यु के ही रूप में परिणत हो जाता है उसी तरह ये काम भोग भी भोगते हुए कुछ क्षणों के लिये सुखप्रद अवश्य हैं। ये कामभोग तो हमारे बाह्यशत्रुओं की अपेक्षा भी अधिक हानि पहुँचाने वाले शत्रु हैं। कारण अपना प्रतिपक्षी-द्वेषी, सिंह, हाथी, सर्प वगैरह तो शत्रुता के आवेश में आकर अधिक से अधिक एक भव के नाशवान शरीर का ही नाश कर सकते हैं किन्तु ये कामभोग भव भव के आत्मिक गुणों का एक क्षण में ही विनाश कर देते हैं। अतः किञ्चित्काल के क्षणिक विषय सुखभोगों को भोगकर चिरकाल के दुःखों को मोल लेना—"खणमात्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा" कहां की समझदारी है! अतः आप भी दृढ़ता पूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत की आराधना करें इसी में आत्मा का कल्याण है।

पत्नी—जब मनुष्य के सामने खाने योग्य पदार्थ रहते हैं तब वह कदाचित किन्हीं कठोर प्रतिज्ञाओं के कारण न भी खाता हो किन्तु उसकी इच्छा तो सदा खाने की रहती है अतः उस पदार्थ से सदैव दूर रहना ही अच्छा है जिससे कभी अभिलाषा जन्य पाप के भागी तो न हो सकें।

कारण—तो क्या आपकी इच्छा उस पदार्थ से सदैव के लिये दूर रहने की है! यदि ऐसा ही है तो एक बार पुनः दृढ़ निश्चय कर लें।

पत्नी—अन्य तो उपाय ही क्या है।

कारण—यदि ऐसा ही है तो बड़ी खुशी की बात है कि आप और हम एक पथ के पथिक बनकर आत्मकल्याण के परमसौभाग्य को प्राप्त करेंगे।

बस, इन पवित्र आत्माओं ने रात्रिमें आपस में वार्तालाप में ही दृढ़ निश्चय कर लिया कि, अवसर आने पर अपन दोनों एक साथ में दीक्षा ग्रहण कर निवृत्ति मार्ग के अनुसरण करेंगे। समय की बलिहारी है दोनों विजयकुँवर, विजयकुँवरी के समान एक शैय्या पर सोते हुए भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे।

इस प्रकार [illegible] के उपदेश से [illegible], जिन्होंने व्रत नियम लिए, [illegible] [illegible] का [illegible] में वर्णन हुआ। पूर्व प्रकरण में [illegible] का [illegible]

दम्पति का दीक्षा लेने का निश्चय—

वास में उन्होंने जो ज्ञानोपार्जन किया था वह आश्चर्योत्पादक ही था। अस्तु, उक्त विद्वत्ता से प्रभावित हो आचार्यदेवगुप्तसूरि ने मुनि चंद्रशेखर को पहिले तो उपाध्याय पद से विभूषित किया और पश्चात् आपको सूरि योग्य समझ सिद्धाचल के पवित्र स्थान पर सूरि पदासीन कर परम्परागताम्नायानुसार आपश्री का नाम भी श्रीसिद्धसूरि रख दिया।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी एक महान् प्रतापी आचार्य हुए हैं। आप श्रीशत्रुञ्जय से विहार कर सौराष्ट्र, गुर्जर, एवं लाट प्रान्त में धर्म प्रचार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधार रहे थे। आपका आगमन सुन कर श्रीसंघ पहिले से ही स्वागतार्थ सामग्री जुटाने में संलग्न हो गया था अतः भरोंच पत्तन में दास आचार्यश्री का पदार्पण होते ही श्रीसंघने बड़े सानदार जुलूस के साथ आपको बधाया और समारोह पूर्वक सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। उस समय के साज पूर्ण अलौकिक दृश्य को देख कर विधर्मी भी दांतों तले अंगुली दबाने लगे। इससे जैनधर्म की तो इतनी महिमा और प्रभावना हुई कि उसका वर्णन मनोऽवर्णनीय ही है। जैनेतरों के हृदय में भी इस उत्साह ने कुछ नवीन कान्ति पैदा करदी। वे भी जैनियों के वैभव, महात्म्य एवं धर्म प्रेम के अनुपम उत्साह को देखकर आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे। उनके हृदय में भी जैनधर्म के तत्वों को समझने की नवीन अभिरुचि का प्रादुर्भाव हुआ। इस तरह विधर्मियों को आश्चर्यान्वित करने वाले जुलूस एवं वीरजय ध्वनि के अपूर्व उत्साह के साथ आचार्यश्री का समारोह पूर्वक नगर में पदार्पण हुआ। सर्व प्रथम सूरिजी ने संघ के साथ तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी की यात्रा कर माङ्गलिक धर्मोपदेश आगत मण्डली को सुनाया। जनता पर इस देशना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आचार्यश्री ने भी व्याख्यान श्रवण करवा कर वीर वाणी का जनता को लाभ देने का क्रम प्रारम्भ ही रक्खा।

भरोंच भारत के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों में से एक था। यहां पर जैनियों की विशाल संख्या थी और प्रायः सब के सब नहीं तो यहां के अधिकांश निवासी वर्ग तो व्यापारी ही थे। इन [illegible] व्यापारियों का व्यापार देश विदेश में बहुत बड़े प्रमाण में चलता था अतः यहां के निवासी प्रायः [illegible] ही थे। जैनियों के अलावा इतर जातियें भी व्यापार करने में परम कुशल थी अतः भरोंच का [illegible] बहुत ही विस्तृत बन गया था। भरोंच उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली, कोट्याधीशों का [illegible] प्राकृतिक सौंदर्य में अनुपम, अमरपुरी से स्पर्धा करने वाला बड़ा शहर था।

भरोंच नगर में एक मुकुंद नामक कोट्याधीश, व्यापार कुशल, व्यापारी रहता था। [illegible] अधिकता के कारण उन्हें पौद्गलिक-सांसारिक सुखों की किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। [illegible] [illegible] पूर्वक व्यतीत कर रहे थे किन्तु एक चिन्ता उनके हृदय में जागृत [illegible] [illegible] जीवन को दुःखमय बना रही थी—जैसा सेठजी के चेहरे से स्पष्ट झलक रहा था। [illegible] [illegible] [illegible] इस चिन्ता के आगमन या स्मृति के साथ ही विचित्र [illegible] हो जाता था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पदार्थ फीके मालूम होते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार वह चिन्ता उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुत्रों का होना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

वास में उन्होंने जो ज्ञानोपार्जन किया था वह आश्चर्योत्पादक ही था। अस्तु, उक्त विद्वत्ता से प्रभावित हो आचार्यदेवगुप्तसूरि ने मुनि चंद्रशेखर को पहिले तो उपाध्याय पद से विभूषित किया और पश्चात् [illegible] योग्य समझ सिद्धाचल के पवित्र स्थान पर सूरि पदासीन कर परम्परागताम्नायानुसार आपश्री का [illegible] भी श्रीसिद्धसूरि रख दिया।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी एक महान् प्रतापी आचार्य हुए हैं। आप श्रीशत्रुञ्जय से विहार कर सौराष्ट्र, गुर्जर, एवं लाट प्रान्त में धर्म प्रचार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधार रहे थे। आपका [illegible] मन सुन कर श्रीसंघ पहिले से ही स्वागतार्थ सामग्री जुटाने में संलग्न हो गया था अतः भरोंच [illegible] पास आचार्यश्री का पदार्पण होते ही श्रीसंघने बड़े सानदार जुलूस के साथ आपको बधाया और [illegible] त्साह पूर्वक सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया। उस समय के साज पूर्ण अलौकिक दृश्य को [illegible] कर विधर्मी भी दांतों तले अंगुली दबाने लगे। इससे जैनधर्म की तो इतनी महिमा और प्रभावना हुई [illegible] उसका वर्णन सर्वथाऽवर्णनीय ही है। जैनेतरों के हृदय में भी इस उत्साह ने कुछ नवीन क्रान्ति पैदा [illegible] वे भी जैनियों के वैभव, महात्म्य एवं धर्म प्रेम के अनुपम उत्साह को देखकर आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे। उनके हृदय में भी जैनधर्म के तत्त्वों को समझने की नवीन अभिरुचि का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार विधर्मियों को आश्चर्यान्वित करने वाले जुलूस एवं वीरजय ध्वनि के अपूर्व उत्साह के साथ आचार्यश्री का समारोह पूर्वक नगर में पदार्पण हुआ। सर्व प्रथम सूरिजी ने संघ के साथ तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत [illegible] की यात्रा कर माङ्गलिक धर्मोपदेश आगत मण्डली को सुनाया। जनता पर इस देशना का पर्याप्त प्रभाव [illegible] आचार्यश्री ने भी व्याख्यान श्रवण करवा कर वीर वाणी का जनता को लाभ देने का क्रम प्रारम्भ कर दिया।

भरोंच भारत के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों में से एक था। यहां पर जैनियों की विशाल [illegible] कान थी और प्रायः सब के सब नहीं तो यहां के अधिकांश निवासी वर्ग तो व्यापारी ही थे। [illegible] व्यापारियों का व्यापार देश विदेश में बहुत बड़े प्रमाण में चलता था अतः यहां के निवासी प्रायः [illegible] ही थे। जैनियों के अलावा इतर जातियां भी व्यापार करने में परम कुशल थी अतः भरोंच का व्यापार [illegible] बहुत ही विशाल बन गया था। भरोंच उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली, कोट्याधीशों का आवास [illegible] प्राकृतिक सौंदर्य में अनुपम, अमरपुरी से स्पर्धा करने वाला बड़ा शहर था।

भरोंच नगर में एक मुकुंद नामक कोट्याधीश, व्यापार कुशल, व्यापारी रहता था। [illegible] अधिकता के कारण उन्हें पौद्गलिक-सांसारिक सुखों की किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। [illegible] परमानन्द पूर्वक व्यतीत कर रहे थे किन्तु एक चिन्ता उनके हृदय में जागृत [illegible] जीवन को दुःखमय बना रही थी—ऐसा सेठजी के चेहरे से स्पष्ट झलक रहा था। [illegible] हुआ हर जीवन इस चिन्ता के आगमन या स्मृति के साथ ही चिन्तित [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

वास में उन्होंने जो ज्ञानोपार्जन किया था वह आश्चर्योत्पादक ही था । अस्तु, उक्त विद्वत्ता से प्रभावित हो आचार्यदेवगुप्तसूरि ने मुनि चंद्रशेखर को पहिले तो उपाध्याय पद से विभूषित किया और पश्चात् आपको [illegible] योग्य समझ सिद्धाचल के पवित्र स्थान पर सूरि पदासीन कर परम्परागताम्नायानुसार आपश्री का नाम भी श्रीसिद्धसूरि रख दिया ।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी एक महान् प्रतापी आचार्य हुए हैं । आप श्रीशत्रुञ्जय से विहार कर सौराष्ट्र, गुर्जर, एवं लाट प्रान्त में धर्म प्रचार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधार रहे थे । आपका आगमन सुन कर श्रीसंघ पहिले से ही स्वागतार्थ सामग्री जुटाने में संलग्न हो गया था अतः भरोंच पत्तन में आप आचार्यश्री का पदार्पण होते ही श्रीसंघने बड़े सानदार जुलूस के साथ आपको बधाया और उत्साह पूर्वक सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया । उस समय के साज पूर्ण अलौकिक दृश्य को देख कर विधर्मी भी दांतों तले अंगुली दबाने लगे । इससे जैनधर्म की तो इतनी महिमा और प्रभावना हुई कि उसका वर्णन सर्वथाऽवर्णनीय ही है । जैनेतरों के हृदय में भी इस उत्साह ने कुछ नवीन क्रान्ति पैदा करदी । वे भी जैनियों के वैभव, महात्म्य एवं धर्म प्रेम के अनुपम उत्साह को देखकर आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे । उनके हृदय में भी जैनधर्म के तत्वों को समझने की नवीन अभिरुचि का प्रादुर्भाव हुआ । इस तरह विधर्मियों को आश्चर्यान्वित करने वाले जुलूस एवं वीरजय ध्वनि के अपूर्व उत्साह के साथ आचार्यश्री का समारोह पूर्वक नगर में पदार्पण हुआ । सर्व प्रथम सूरिजी ने संघ के साथ तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी की यात्रा कर माङ्गलिक धर्मोपदेश आगत मण्डली को सुनाया । जनता पर इस देशना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा । आचार्यश्री ने भी व्याख्यान श्रवण करवा कर वीर वाणी का जनता को लाभ देने का क्रम प्रारम्भ ही रक्खा ।

भरोंच भारत के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों में से एक था । यहां पर जैनियों की विशाल संख्या वर्तमान थी और प्रायः सब के सब नहीं तो यहां के अधिकांश निवासी वर्ग तो व्यापारी ही थे । इन सब व्यापारियों का व्यापार देश विदेश में बहुत बड़े प्रमाण में चलता था अतः यहां के निवासी प्रायः धनाढ्य ही थे । जैनियों के अलावा इतर जातियां भी व्यापार करने में परम कुशल थीं अतः भरोंच का व्यापार क्षेत्र बहुत ही विशाल बन गया था । भरोंच उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली, कोट्याधीशों का आवास स्थान, प्राकृतिक सौंदर्य में अनुपम, अमरपुरी से स्पर्धा करने वाला बड़ा शहर था ।

भरोंच नगर में एक मुकुंद नामक कोट्याधीश, व्यापार कुशल, व्यापारी रहता था । धन सम्पत्ति की अधिकता के कारण उन्हें पौद्गलिक-सांसारिक सुखों की किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी । वे अपना [illegible] परमानन्द पूर्वक व्यतीत कर रहे थे किन्तु एक चिन्ता उनके हृदय में जागृत होकर शत्रुवत् उनके सुखमय जीवन को दुःखमय बना रही थी—ऐसा सेठजी के चेहरे से स्पष्ट झलक रहा था । उनका सारा [illegible] सुख का जीवन इस चिन्ता के आगमन या स्मृति के साथ ही विचित्र दुख मय हो जाता था । [illegible] मुख की [illegible] सूखने लग जाती । पौद्गलिक सब भोग्य पदार्थ फीके मालूम होते [illegible] इस प्रकार यह चिन्ता उनके सांसारिक जीवन में [illegible] सम्पत्ति के होने पर भी सन्तति का अभाव एवं पुत्र [illegible] [illegible] [illegible] पदार्थों को [illegible] में [illegible] के [illegible] के लिए जिस किसी पुरुष एवं [illegible]

मुकुंद की चिन्ता

विशिष्टताओं के होने पर भी सन्तत्यभाव रूप अक्षीण चिन्ता उसे रात दिन नवीन संताप से सतप्त करती रहती। उसने अपने सार्थक जीवन को एक दम निरर्थक मूल्य शून्य समझ लिया। एक दिन पुण्य संयोग से उसकी भेंट एक जैन मुनि के साथ होगई तब उसने अपने गृह दुःख का सम्पूर्ण हाल मुनि को कहा और उक्त दुःख से विमुक्त होने का मुनि से कोई उपाय मांगने लगा। मुनि ने संसार एवं कुटुम्ब की अनित्यता बतला कर धर्माराधन करने का उपदेश दिया। हरदेव ने भी सपत्नी मुनि के कथनानुसार जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। कुछ समय के पश्चात् संसार के स्वरूप एवं कर्मों की विचित्रता का विचार करते हुए हरदेव इतना संतोषी बन गया कि सन्तति की चिन्ता भी इसके हृदय से निकल गई। कहा है-"संतोष ही परम सुख है" वास्तव में यह प्रकृति एवं अनुभव सिद्ध बात है कि जिस पदार्थ पर जितनी अधिक तृष्णा एवं मोह बुद्धि होती है वह पदार्थ अपने से उतना ही दूर भागता जाता है और जिस पदार्थ की हृदय में इच्छा नहीं, कल्पना नहीं वह अनायास ही अपने आप उपलब्ध हो जाता है। प्रकृति के इस अटल एवं निराबाध नियमानुसार संतति इच्छा से विरक्त हरदेव ब्राह्मण के कुछ समय के पश्चात एक पुत्र होगया।

इधर जैनेतर ब्राह्मण उससे घृणा करने लगे। वे हरदेव की भर्त्सना करते हुए कहने लगे-हरदेव-ब्रह्म धर्म से और विशुद्ध वेदिक धर्म से पतित होकर जैनी बन गया है अतः उसके साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार करना ठीक नहीं। वह जाति से ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणों का शत्रु है, धार्मिक एवं शास्त्रोत्थापक नास्तिक है। निंदनीय है और भर्त्सना करने योग्य है। उसके साथ किसी भी प्रकार का जातीय व्यवहार करना अपने आपको सद्धर्म से पतित करना है। इस प्रकार के अपने लिये निंदनीय वचनों को सुनकर बोलने में चतुर ब्राह्मण की पत्नी ने कहा—ब्राह्मणत्व का दम भरने वाले ब्राह्मणो! जरा ब्रह्म शब्द की सूक्ष्मता एवं धर्म की गम्भीरता पर विचार करो। आपके इन बाह्यआडम्बरों एवं शाब्दिक वाक्प्रपञ्चों की जटिलता से किसी प्रकार की अर्थ सिद्धि नहीं होने की है। प्रत्येक धर्म का मूल पाया अहिंसापरमधर्म की मुख्यता को लिये हुए है अतः यज्ञादि हिंसा प्रतिपादक, क्रिया काण्डोंरूप पातको जुगुप्सनीय कर्मों को करते हुए भी "वैदिक हिंसा हिंसा न भवति" का झूंठा दम भरना कहां तक न्याय सगत है? यदि हमने हिंसाधर्म को छोड़कर विशुद्ध अहिंसामयधर्म स्वीकार किया तो इसमें क्या बुरा किया? हमने ही क्यों? पर हमारे पूर्वजों ने हजारों, लाखों की तादाद में इस पवित्र, आत्मकल्याण करने में समर्थ धर्म का पालन कर संसार भर में प्रचार किया। जब शिवराजर्षि, पोगल, स्कंधक सन्यासी एवं गौतमादि हजारों चतुर्वेदाष्टादशपुराणपारगंत विद्वान ब्राह्मणों ने भी ज्ञान दृष्टि से यज्ञादि क्रिया काण्ड को आत्मगुण विघातक समझ ब्राह्मण धर्म का त्यागकर श्रेष्ठ जैनत्व को अंगीकार किया तो हमारी निरर्थक निंदा करने से आप लोगों को क्या लाभ मिलेगा? मैं तो अनुभव सिद्ध एवं शास्त्रानुकूल आप लोगों को भी राय देती हूँ कि आप लोग भी आभिनिवेशिक मिथ्यात्व का त्याग कर, शुद्ध, आत्मकल्याण कारक जैनधर्म को स्वीकार करें।

सेठजी! उक्त उदाहरण से आप समझ सकते हैं कि धर्म सचमुच कल्पवृक्ष ही है अतः आप भी अपनी मिथ्यातृष्णा का त्याग कर शुद्ध, सनातन एवं पुनीत जैनधर्म को स्वीकार कर आत्म कल्याण करें।

आचार्यश्री के इस निष्पक्ष, मार्मिक उपदेश ने सेठजी के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने उसी समय जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और अपनी धर्मपत्नी को भी जैन धर्मोपासिका एवं परमाश्रविका बना दी। अब तो सेठ मुकुंद सूरिजी के परमभक्त बन गये। हमेशा व्याख्यान श्रवण करना उन्हें बहुत ही रुचिकर मालूम

होने लगा अतः व्याख्यान के समय तथा उन व्याख्यान के सिवाय अन्य समय मे भी जैन धर्मके उत्कृष्ट तत्त्वों को समझने के लिये वे सूरीश्वरजी के पास आने जाने लगे।

कहा है पत्रावलियो से सघन, बने हुए बड़े वृक्ष की छाया भी वृक्ष के आकार के अनुरूप विस्तृत ही होती है। उसके विस्तृत एवं उदार आश्रय में सैकड़ो जीव सुखपूर्वक आश्रय ले सकते है। तदनुसार सेठ मुकुन्द भी भरोंच शहर के एक नामाङ्कित कोट्याधीश पुरुष थे। उनके आश्रित हजारो और भी व्यक्ति थे जो व्यापार आदि कार्यों में सेठजी की सहायता से अपना, स्वार्थ साधन करते थे। उन्होंने भी अपने आश्रयदाता सेठश्रीमुकुन्द के मार्ग का अनुसरण कर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

जिस दिन से सेठ मुकुन्द ने जैनधर्म स्वीकार किया उस दिन से ही ब्राह्मणों के मानस में चूहे कूदने लगे। वे सेठजी को बार २ यही व्यङ्ग करते कि—पुत्राभाव के कारण व पुत्र प्राप्ति की आशा से सेठजी ने जैनधर्म स्वीकार किया है किन्तु हम देखते हैं कि जैनाचार्य सेठजी को कितने पुत्र देते हैं ? सेठजी इसका स्पष्टी करण करते हुए स्पष्ट कहते—जब तक मुझे कर्म सिद्धान्त का ज्ञान नही था, मै पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा रखता था और अनेकों से इस विषय में परामर्श कर मनस्तुष्टि करना चाहता था पर किसी ने भी मुझे मन संतोषकारक जवाब नही दिया पर, जब मैंने जैनाचार्यों से कर्म सिद्धान्त के मर्म को सुना तो मुझे विश्वास होगया कि एक पुत्र ही क्या पर संसार में जो कुछ भी दृष्टि गोचर होरहा है वह सब कर्मों की विचित्रता के कारण से ही है। कोई सुखी हैं तो कोई दुःखी हैं। कोई राजमहलो के अनुपम सुखों का उपभोग कर रहे हैं तो कोई दर २ के याचक बने हुये हैं ये सब पूर्व कृत कर्मों के ही प्रत्यक्ष फल है। इसमें संदेह करना आत्मवंचना है। फिर मेरा जैनधर्म स्वीकार करना भी तो कर्मों के क्षयोपशम का ही कारण है अतः आप लोगो की स्वार्थ विघातक निंदा मेरी अभीष्ट सिद्ध में किञ्चित् भी बाधक नहीं हो सकती। आप लोगों के द्वारा की गई निंदा, मेरी उत्तरोत्तर श्रद्धावृद्धि का ही कारण बनेगी। एव कर्मों का नाश करने में परम सहायक बनेगी मैं तो आप लोगों के एकान्त आत्म कल्याण के लिये आप लोगों को भी सम्मति देताहूँ आप, जैनाचार्यों के पास में आकर जैनधर्म के सूक्ष्म एवं गम्भीर स्वरूप को सूक्ष्मता पूर्वक समझें। जैनधर्म ब्राह्मण धर्म से पृथक नहीं है किन्तु ब्राह्मण धर्म के उपदेशको में-साधुओं में आचार विचार एव मान्यताओं के विषय की सविशेष विकृति होजाने के कारण, उनके लोभी, लालची, सारम्भी, सपरिग्रही, लोलुपी होजाने से धर्म का दृढ़ अंग भी पङ्गु होगया है। बहुत अन्वेषण करने पर भी उसकी वास्तविकता का अनुसंधान करना असक्य होगया है। मांसप्रेमियों से परिचालित इस विभत्स यज्ञ परिपाटी ने ब्राह्मणों को सनातन अहिंसा धर्म से एक दम पराङ्मुख बना दिया है। उक्त कारणों से धर्म का इसमें सत्यत्त्व का अंश मिलना दुर्लभ होगया है। बन्धुओं! इसी ऊपरी बनावटी मिलावट ने ब्राह्मण धर्म का नाम मात्र शेष रख दिया है इसके विपरीत जैनधर्म व बौद्धधर्म भारत के ही नहीं अपितु संसार भर के आदरणीय धर्म बनते जारहे हैं। अहिंसादि सात्त्विक तत्त्वों की प्रधानता ने इन धर्मों को मनुष्य मात्र के आत्म कल्याण के लिये परमोपयोगी बना दिया है। यद्यपि बौद्ध क्षणिकवादी होने के कारण जैनधर्म की समानता नहीं कर सकता है पर अहिंसादि के सिद्धान्तो की प्रबलता के कारण ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा आज दुनिया में इसका बहुत कुछ महत्त्व है। जैनधर्म तो अहिंसा के साथ ही साथ वस्तुतत्त्व के प्राकृतिक गुण 'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तंसत्' का एवं अनेकान्तवाद का परमानुयायी होने के कारण जन समाज के लिये विशेष हितकारक एवं आत्म कल्याण के

लिये परमोत्कृष्ट साधन है । इस तरह वे ब्राह्मणों की शंकाओं का समाधान किया करते थे ।

आचार्यश्री सिद्धसूरिने कुछ समय के पश्चात् अपने शास्त्रीय कल्पानुसार भरोंच नगर से विहार कर धर्म प्रचार करते हुए क्रमशः मरुधर प्रान्त एवं चंद्रावती में पदार्पण किया ।

इधर कालान्तर में पुन्योदय के प्रभाव से सेठजी के देव प्रभा जैसा सुन्दर एवं मनको मुदित करने वाला एकपुत्र हुआ । सेठजी को पुत्रोत्पत्तिका जितना हर्ष नहीं हुआ उतना जैनधर्म की महिमा एवं प्रभावना का आनंद हुआ । कारण सेठजी कर्म सिद्धान्त के मर्म को जानगये थे ब्राह्मणों को लज्जित करने का एवं सत्य धर्म की सत्यता का यह प्रत्यक्ष उदाहरणथा अतः उनके हृदय में धर्म के प्रति जो अनुराग था वह और भी दृढ़ होता गया । ब्राह्मण सबलज्जाभार से नतमस्तक हो गये कारण वे यदा कदा समयानुकूल सदा ही सेठजी को व्यंग करते थे कि-"हमारे प्रयत्नों से तो सेठजी के सन्तान नहीं हुई पर जैनधर्म स्वीकार कर लेने के कारण अब जैनाचार्य इनको पुत्र ही पुत्र दे देंगे ।" आज उक्त व्यंग करने वाले ये ही ब्राह्मण ठण्डेगार बन गये । सेठजी के यहां तो पुत्रोत्पत्तिका हर्ष, ब्राह्मणों को लज्जित करने का आनन्द एवं धर्म की प्रभावना का अनुपमेय मोद रूप हर्ष का त्रिवेणी सङ्गम हो गया । आचार्यश्री के इस असीम उपकार की वे रह रह कर प्रशंसा एवं स्तुति करने लगे । उनको नीति का यह वाक्य—"परोपकाराय सतां विभूतयः" याद आने लगा । वे आचर्यश्री का हृदय से आभार मानने लगे । इतने से ही उनको सन्तोष नहीं रहा । सेठ मुकुन्द की तो इतनी भावना बढ़ गई कि एकबार सूरीश्वरजी को पुनः भरोंच में लाना चाहिये जिससे मेरे समान बहुत से दूसरे जीवों का भी आत्म कल्याण हो सके । बस, उक्त भावना से प्रेरित हो उन्होंने अपने आदमियों को भेज कर यह खबर करवाई कि— वर्तमान में आचार्यश्री कहां पर विराजते हैं ? यह तो पहिले से ही मालूम था कि सिद्धसूरिजी का चातुर्मास चंद्रावती में निश्चित हो चुका है अतः वे वर्तमान में भी चंद्रावती के आस पास ही विराजित होने चाहिये । उक्त निश्चयानुसार उन्होंने अपने आदमियों को मरुधर भेजे और कोरंट पुर में उन लोगों को आचार्यश्री के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । आये हुए आदमियों नें सेठजी की ओर से वंदन करके भरोंच की ओर पधारने की प्रार्थना की । इस पर आचार्यश्री ने फरमाया कि- अभी तो कुछ समय तक हमारा विचार मरुभूमि में ही धर्म प्रचार करने का है और चातुर्मास के पश्चात् उपकेशपुर की यात्रार्थ जाने का है फिर तो जैसी क्षेत्र स्पर्शना हो—कौन कह सकता है ?

आदमियों ने भरोंच जाकर सेठजी को सूरिजी के धर्मलाभ के साथ सब हाल सुना दिये । आचार्यश्री के आगमन के अभाव में सेठजी को स्वयं ही उपकेशपुर की यात्रार्थ जाना उचित ज्ञात हुआ और उन्होंने अपने उक्त विचारानुकूल उपाध्यायश्री श्री मेरुप्रभजी के अध्यक्षत्व में भरोंच से उपकेशपुर की यात्रार्थ एक संघ निकाला । इस संघ में सेठ, सेठानी नवजात शिशु वगैरह सेठजी का कौटुम्बिक परिवार, एक हजार साधु साध्वी, और बीस हजार अन्य गृहस्थ सम्मलित थे । उ. श्रीमेरुप्रभादि मुनियों ने शुभ मुहूर्त में सेठ मुकुन्द को संघपति पद प्रदान किया व शुभ शकुनों को लेकर संघ ने उपकेशपुर की यात्रार्थ प्रस्थान किया मार्ग के मन्दिरों के दर्शन, अष्टान्हिका महोत्सव, ध्वजारोहण स्वामीवात्सल्यादि धर्म प्रभावना के कार्यों को करते हुए संघ क्रमशः उपकेशपुर पहुँचा । श्रीसिद्धसूरीश्वरजी म. उपकेशपुर में पहिले से ही विराजित थे । उपकेशपुर के संघ ने भरोंच से आये हुए संघ का आचार्यश्री के स्वागत के समान शानदार स्वागत किया । सेठ मुकुन्द ने सूरिजी को वंदन किया और भगवान् महावीर की यात्रा कर अपने को अहोभाग्य समझा ।

सेठ मुकुन्द सूरिजी के परमोपकार को कृतज्ञतापूर्वक मानते हुए आचार्यश्री की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगा और कहने लगा—प्रभो ! आपने मुझे संसार में डूबते हुए बचाया है। आपके इस असीम उपकार रूपी ऋण से इस भव में तो क्या पर भवोभव में उऋण होना असम्भव है। गुरुदेव ! मेरे योग्य कुछ धर्म कार्य फरमाकर इस दास को कृतार्थ करें। सूरिजी ने कहा—महानुभाव ! प्रत्येक—प्राणी को धर्मोपदेश देकर सत्य मार्ग के अनुगामी बनाना तो हमारा कर्तव्य ही है। इसमें कोई नवीन या विशेष बात तो है ही नहीं। दूसरा हम निर्ग्रन्थों की क्या आज्ञा हो सकती है ? आपको पूर्व पुण्य के संयोग से मनुष्य भव योग्य सम्पन्न सामग्री प्राप्त हुई है तो इसका जैन शासन की सेवा एवं प्रभावना जन कल्याणार्थ में सदुपयोग कर अपना जीवन सफल बनाओ। श्रावकों के करने योग्य ये ही कार्य है कि—जहां अपनी खासी आबादी हो वहां आवश्यकतानुकूल जिन मन्दिर का निर्माण करवा कर दर्शन पदाराधन का सुयोग्य पुण्य सम्पादन करना, तीर्थयात्रार्थ संघ निकालना, जैनागमों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार की स्थापना करना तथा ज्ञान प्रचार के पुण्यमय कार्यों में सहयोग देना, स्वधर्मी भाइयों की हर तरह से सहायता करना, नये जैन बना करके जैनधर्म का विस्तृत प्रचार करना इत्यादि। इन्हीं कार्यों से आपकी भी आत्मशुद्धि होगी व जिन शासन की सच्ची सेवा का लाभ भी मिल सकेगा। सेठजी ने सूरीश्वरजी के उक्त उपदेश को शिरोधार्य्य कर लिया। वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़े हुए विचारने लगे कि—धन्य है ऐसे महापुरुषों को जिनके उपदेश में भी परमार्थ के सिवाय स्वार्थ की किञ्चित भी गन्ध नहीं। अहा कितना पवित्र जीवन ? कितना उच्चतम आदर्श ? कैसा अपूर्व त्याग ? व जन कल्याण की कैसी आदर्श भावना ? अरे आचार्यश्री के सैकड़ों शिष्य वर्तमान हैं उनमें से बहुतसों के कम्बल, वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि श्रमण जीवन योग्य भण्डोपकरण की आवश्यकता होगी पर वे तो इसके लिये भी प्रेरित नहीं करते !! अहा कैसा सादगी पूर्ण त्याग मय जीवन है। इस प्रकार की आचार्यश्री के प्रति उच्चभावनाओ को भावते हुए सेठजी ने पुनः विनय पूर्वक प्रार्थना की भगवन् ! मेरे योग्य आपको सेवा का उचित आदेश फरमाने की कृपा करें। इस पर सूरिजी ने कहा श्रेष्टिवर्य। जैनमुनि निर्ग्रन्थ एवं निस्पृही होते हैं। किसी भी वस्तु का शास्त्र मर्यादा से अधिक संग्रह करना उनके श्रमण वृत्ति का विघातक है। वे अपनी सयम यात्रा के निर्वाह के लिये शास्त्रानुकूल स्वल्प उपकरण रखते हैं और आवश्यकता होने पर गृहस्थियो के घरो से याचना करके ले आते हैं। उनके लिये खास करके बनाई हुई या मोल लाई हुई वस्तु का वे लोग उपयोग नहीं करते हैं। इस प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करने वाले वो श्रमण होने पर भी गृहस्थ ही हैं। वर्तमान में हमारे मुनियों के लिये किसी भी प्रकार की वस्तु की आवश्यकता नहीं है फिर भी आपकी भावनाएं अत्यन्त उत्तम हैं। गृहस्थो को सदा ही ऐसे उच्च विचार रखने चाहिये ये भावनाएं मेरे ऊपर रक्खो–ऐसा नहीं किन्तु जो कोई भी पञ्चमहाव्रतधारी वीरधर्मोपासक श्रमण निर्ग्रन्थ हों–सबके लिये रखनी चाहिये। सेठ मुकुंद को आचार्य देव की निस्पृहता देख कर पहले के ब्राह्मण और गुरुओं की याद आगई। वे दोनों की तुलनात्मक दृष्टि से तुलना करने लगे—कहा तो वे लोभी, लालची और लोलुपी गुरु जो रात दिन लाओ—लाओ करते हुए थकते ही नहीं हैं और कहा ये निर्ग्रन्थ महात्मा जो, मेरे बार २ प्रार्थना करने पर भी अपनी पारमार्थिक वृत्ति का ही परिचय दे रहे हैं। विशेष में सेठजी ने निश्चय कर लिया कि ससार में यदि कोई तारक साधु हैं तो, जैन निर्ग्रन्थ मुनि ही।

सेठ मुकुंद ने आठ दिन तक उपकेशपुर में स्थिरता कर अष्टान्हिका महोत्सव, ध्वजारोहण, पूजा, भावना, स्वामीवात्सल्यादि धार्मिक कृत्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया। पश्चात् सूरिजी को भरोंच पधारने की प्रार्थना कर संघ को वापिस लेकर भरोंच लौट आये। इस प्रकार आचार्य श्री ने अनेक भव्यों को धर्म मार्ग में आरूढ़ कर जैनधर्म का गौरव वढ़ाया।

उपकेशपुरीय श्रीसंघ के अत्याग्रह से सूरीश्वरजी ने वह चातुर्मास उपकेशपुर में करना निश्चित किया। इस चातुर्मास से उपकेशपुर में पर्याप्त धर्म प्रभावना हुई। पश्चात् आचार्यश्री मरुधर के छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोद्योत करते हुए मेदपाट की ओर पधारे। पट्टावलीकार लिखते हैं कि—देवपट्टन के आस पास दस हजार क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उन नूतन श्रावकों के लिए आपने पहला चातुर्मास देवपट्टन में किया। इससे उन क्षत्रियो की भावनाएं -जो अभी नवीन जैन हुए थे दृढ़ हो गई। दूसरा चित्रकूट नगर में चातुर्मास किया जिससे जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। नूतन क्षत्रिय जैन भी, जैनधर्म के पक्के रंग में रंग गये। तत्पश्चात् आवन्तिका प्रदेश की ओर विहार कर आपने एक चातुर्मास उज्जैन में किया और क्रमशः बुन्देलखण्ड और चन्देरीनगरी के चातुर्मासों को समाप्त करके मथुरा की ओर पदार्पण किया। मथुरा में बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया और श्रीसंघ के आग्रह से वह चातुर्मास भी मथुरा मे ही कर दिया। चातुर्मासानंतर वहां से विहार कर भगवान् पार्श्वनाथ के कल्याणभूमि की स्पर्शना करनी थी अतः बनारस की ओर पदार्पण किया। आस पास के तीर्थों की यात्रा करके वह चातुर्मास बनारस में ही कर दिया। आपके विराजने से वहां जैनधर्म की अच्छी जागृति हुई। चातुर्मासानंतर वहां के इर्षा युक्त ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्तकर ११ स्त्री पुरुषों को भगवती जैन दीक्षा दी। फिर आपने पंजाब की ओर प्रवेश किया। पञ्जाब प्रान्त में आपके बहुत से साधु पहिले से ही धर्म प्रचार करते थे अतः उनको आचार्यश्री के आगमन के हर्ष पूर्ण समाचारों से बहुत ही प्रसन्नता हुई। इधर आचार्यश्री ने भी श्रावस्ती नगरी में पदार्पण कर पञ्जाब प्रान्त में विचरण करने वाले सब साधुओं की श्रमण सभा की। उक्त सभा में पंञ्जाब प्रान्तीय श्रमण वर्ग एकत्रित हुआ और आचार्यश्री ने आये हुए साधुओं के धर्मप्रचार की प्रशंसा करते हुए उनके उत्साह वर्धन के लिये योग्य मुनियों को योग्य पदवियां प्रदान की। इस प्रकार उनके उत्साह को विशेष बढ़ाने के लिये स्वयं आचार्यश्री ने भी दो चातुर्मास पञ्जाब प्रान्त में ही कर दिये। एक तो श्रावस्ती और दूसरा शालीपुर। इस प्रकार पाञ्चाल प्रान्त में दो चातुर्मास करके आचार्यश्री सिंध की ओर पधारे। सिंध प्रान्त में भी आपके शिष्य समुदाय धर्मप्रचार कर रहे थे अतः आचार्यश्री के आगमन के समाचारों से उनके हृदय में नवीन क्रान्ति एवं स्फूर्ति पैदा होगई। क्रमशः विहार करते हुए सूरीश्वरजी जब गोशलपुर पधारे तो वहाँ की जनता के हर्ष का पार नहीं रहा। राव गोसल के पुत्र राव आसलादि ने सूरीश्वरजी का बड़े ही समारोह पूर्वक स्वागत किया। राव आसल बड़ा ही कृतज्ञ था, वह जानता था कि आज हम जो इस उच्च स्थिति पर पहुँचे हैं वह सब स्वर्गीय आचार्यश्री देवगुप्तसूरि का ही प्रताप है। अतः राव आसल ने अत्यन्त कृतज्ञता एवं विनय पूर्ण शब्दों में प्रार्थना की—प्रभो! एक चातुर्मास का लाभ हम अज्ञानियों को देकर कृतार्थ करें? आचार्यश्री ने स्वीकार करके वहाँ विराजने से गोसलपुरीय जन समाज में धर्म प्रेम की अपूर्व लगन लग गई। कई भावुक मुमुक्षु तो आचार्यश्री के पास में दीक्षा लेने को तैयार होगये। चातुर्मासानंतर सब दीक्षार्थियों को आचार्यश्री ने भगवती दीक्षा दी। उक्त दीक्षार्थियों में एक

कज्जल नाम का भावुक, अत्यन्त होनहार एवं तेजस्वी था। सूरीश्वरजी ने दीक्षानंतर कज्जल का नाम मूर्तिविशाल रख दिया। कालान्तर वहां से विहार कर एक चतुर्मास डमरेलपुर, दूसरा वीरपुर तीसरी उच्चकोट; इस प्रकार कुल चार चातुर्मास सिंध प्रान्त में करके आचार्यश्री ने सिंध की जनता में धर्म का खूब उत्साह फैलाया। इस प्रान्त में विहार करने वाले मुनियो की सराहना करते हुए उनको धर्मप्रचार के कार्यों में और भी अधिक प्रोत्साहित किया। योग्य मुनियों को योग्य पदवियों से सम्मानित कर उन की कदर की। पश्चात् आपने कच्छधरा में प्रवेश किया। एक चातुर्मास भद्रावती में सानन्द सम्पन्न करके आपने सौराष्ट्र प्रान्त की ओर पदार्पण किया क्रमशः विहार एवं धर्मोपदेश करते हुए तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की तीर्थयात्रा की। और आत्म शान्ति के परम निर्वृत्तिमय परमानंद का अनुभव करने के लिये आचार्यश्री ने कुछ समय तक यहां पर स्थिरता थी। पश्चात गुर्जर भूमि को पावन करते हुए क्रमशः भरोंच नगर की ओर पदार्पण करना प्रारम्भ किया।

भरोंच पट्टन में आचार्यश्री के पदार्पण के शुभ समाचारों ने श्रीसंघ के हृदयों में धर्मोत्साह की पावरफुल विजली का प्रादुर्भाव कर दिया। सेठ मुकुन्द तो आचार्यश्री के दर्शन के लिये बहुत ही उत्कण्ठित एवं लालायित था अतः सूरिजी के नगर प्रवेश महोत्सव में ही नव लक्ष द्रव्य व्यय कर शासन की प्रभावना का वास्तविक लाभ उठाया। पश्चात् सेठ मुकुन्दजी अपनी पत्नी एवं पांच पुत्रों को साथ में लेकर सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हुए। आचार्यश्री के अतुल उपकार को व्यक्त करते हुए सेठजी ने कहा-प्रभो! यह आपका लघु श्रावक है। इन्होंने व्यवहारिक एवं धार्मिक विद्या का भी आपकी कृपासे अभ्यास शुरू कर दिया है है। धर्म कार्यों में मेरे साथ अत्यन्त प्रेम पूर्वक भाग लेता है। प्रभु पूजा किये बिना तो इसकी मां भी अन्न, जल ग्रहण नहीं करती है। पूज्य गुरुदेव! आपकी इस अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से ही यह चरण सेवक धन, जन, पुत्र परिवारादि से पूर्ण सुखी है। भगवान्! आपने हमें अन्धकारमय मार्ग से पृथक कर सुखमय सड़क के मार्ग पर लगाया। आपके इस असीम उपकार का बदला हम कैसे दे सकेंगे! यदि हम इस ऋण से कुछ अंशों में भी उऋण हो सकें तो अपने जीवन को सार्थक समझेंगे। सूरिजीने कहा—महानुभाव! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। ये सब पूर्वभव के संचय किये हुए पुण्य के पुद्गलों का ही उदय कालीन प्रभाव है। वे उदय तो होने वाले ही थे पर जैनधर्म की पवित्र शरण में आने के पश्चात ही। श्रेष्टिवर्य! इस प्रवल पुण्योदय से जो पुण्यानुबन्धी पुण्य का सञ्चय हो रहा है उसमें मैं तो केवल निमित्त कारण ही हूँ। उपादान कारण तो आपके ही उपार्जित किये हुए पुण्य हैं फिर भी आपके इन कृतज्ञता सूचक भावों से आपको धन्यवाद देता हूँ और शास्त्रानुकूल सप्त क्षेत्रों में द्रव्य का सदुपयोग कर लाभ लेते रहने के लिये प्रेरित करता हूँ। पुण्यात्मन्! यदि यही पुण्य राशि अन्य अवस्था में उदय होती तो पुण्योपार्जन के बदले मिथ्यात्व सञ्चय का कारण बनकर आपको अनंत संसारी बना देती किन्तु मुक्ति-मोक्ष नजदीक होने से अपने आप जैनधर्म ग्रहण करने की पवित्र भावनाओं का उदय किया और आपके जीवन को एकदम आदर्श बना दिया। मुकुन्द! मैंने आपको उपदेशपुर में जो उपदेश दिया था—याद है! मुकुन्द ने कहा—पूज्यवर आपके उपदेश को भी कभी भुला जा सकता है? मन्दिर तो मैंने कबका ही तैय्यार करवा दिया है। जिनालय की प्रतिष्ठा के लिये आपश्री की बहुत ही प्रतीक्षा की किन्तु आप तो परोपकारी महात्मा ठहरे अतः धर्म प्रचार में संलग्न आपश्री के दर्शनों का लाभ बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् भी न मिल सकने के कारण उपाध्याय-

श्री जयकुशल से मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाल कर यात्रा की पैंतालीस आगमों को लिखवा कर ज्ञान भण्डार की स्थापना की। पूज्य गुरुदेव ! अब आपश्री के पधारने से भी मेरे मन के मनोरथ सफल ही होंगे।

सूरिजी—बतलाइये, आपकी क्या मनो भावना है।

मुकुंद—प्रभो ! एकतो मैंने सम्मेतशिखर की यात्रा का संघ निकालने के लिये एक करोड़ रूपये निकाल रक्खें हैं उनका सदुपयोग होना और दूसरा मेरे इन पांच पुत्रों में से किसी एक की आत्मा का कल्याण करना।

सूरिजी—तो क्या पुत्र को दीक्षा दिलाना चाहते और आप स्वयं नहीं लेना चाहते।

मुकुन्द—पूज्यवर ! मैं वृद्ध हो गया हूँ अतः अन्तराय कर्मोदय से किंवा वृद्धवस्था जन्य अशक्तता से दीक्षा का सचा लाभ उठाने में असमर्थ हूँ।

सूरिजी—दीक्षा में कौनसा सिर पर भार लादना है ? दीक्षा का एक मात्र ध्येय तो आत्मकल्याण करने का ही है और वह आपसे इस अवस्था में भी हो सकेगा। कारण, कहा है कि—

पच्छावि ते पयाया खिप्पं गच्छन्ति अमर भवणाइं।
जेसि पिओ तवो संजमो खंति अ बम्भचेरं च ॥"

जब वृद्ध हुए हो तो एक दिन मरना तो अवश्य ही है फिर चारित्रावस्था में मरना तो आत्मा के लिये विशेष हितकर ही है। शास्त्रकार तो यहाँ तक फरमाते हैं कि—जिनको तप, संयम, क्षमा, ब्रह्मचर्यादि गुण प्रिय हों ऐसे व्यक्ति वृद्धावस्था में भी दीक्षित हों तो देवलोक तो सहज ही में प्राप्त कर सकते हैं। मुकुन्द ! पूर्व जमाने में भी एक मुकुन्द नाम के ब्राह्मण ने अपनी वृद्धावस्था में जैन दीक्षा ली थी और वे वृद्धवादीसूरि के नाम से जैन संसार में विश्रुत हुए। उन्होंने अनेक राज सभाओं में वादियों को परास्त करने से ही वादी कहलाये। जब उन्होंने अपनी इस अवस्था में भी पठन पाठन का क्रम प्रारम्भ रखा तो एक मुनि ने उपहास जनक शब्दों में उन्हें व्यङ्ग किया—"इस वृद्धावस्था में पढ़ करके क्या तुम मूशल फूलावेंगे ?" इस अपमान जनक शब्दों से अपमानित हो उन्होंने सरस्वती का आराधन प्रारम्भ किया और कालान्तर में मूशल को नवीन पल्लवों से पल्लवीत कर उन्हें (तानामारनेवालेमुनियोंको) प्रत्यक्ष में लज्जित कर दिया। अतः वृद्धावस्था का विचार करके आत्मकल्याण के मार्ग से वंचित रहना आत्म गुण विघातक है। मुकुन्द ! मुकुन्द, इस शब्द में ही बड़ा चमत्कार भरा हुआ है अतः अपने मुकुन्द नाम को सार्थक कर आत्मकल्याण के वास्तविक श्रेय को सम्पादन करें।

मुकुन्द—ठीक है गुरुदेव ! इस पर तो मैं गम्भीरता पूर्वक विचार करूंगा ही किन्तु पहले मेरे उक्त दोनों मनोरथों को तो सार्थक कर दीजिये।

पास ही मुकुन्द की पत्नी एवं पांचों पुत्र बैठे हुए सेठजी के एवं आचार्यश्री के वार्तालाप को स्थिर चित्त से सुन रहे थे। सब शांत, निश्चल एवं मौन थे किन्तु उन सबों के चेहरे पर अलौकिक प्रभा की प्रत्यक्ष रेखा उनके मानसिक आनन्द की सूचना कर रही थी। सूरिजी ने सेठजी के उक्त वाक्य का "जहा सुहं" शब्द से प्रत्युत्तर दिया। मुकुन्द आदि आचार्यश्री के चरण कमलों में वंदना कर अपने घर चले आये।

कुछ दिनों के पश्चात् सेठ मुकुन्द एवं भरोंच नगर के श्रीसंघ ने चातुर्मास की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने भी अनुकूलता एवं लाभ का कारण देख कर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार कर ली। बस सबकी

प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। बड़े उत्साह पूर्वक सब धर्म कार्य में भाग लेने लगे। सूरीश्वरजी के व्याख्यान का ठाठ तो अपूर्व था। हो सकता है आज के भांति उस समय विशेष आडम्बर वगैरह उतना नहीं होता होगा पर जनता के हृदय पटल पर आत्मकल्याण का तो जबर्दस्त प्रभाव पड़ता। वे लोग संसार में रहते हुए संसार के माया जन्य, प्रपञ्चों से विरक्त के समान काल क्षेप करते थे। द्रव्यादि की अधिकता होने पर भी सांसारिक उदासीनता का एक मात्र कारण हमारे पूर्वाचार्यों का आदर्श त्याग, संयम और सदाचार था। उनका उपदेश भी सदा ज्ञान दर्शन की शुद्धि एवं विषय कषाय की निवृत्ति के लिये ही हुआ करता था अतः श्रोताओं के हृदय पर भी उसका गहरा असर पड़ता वे सांसारिक प्रपन्चों में प्रवृत्ति करने के बजाय निवृत्ति प्राप्त करने में ही एक दम संलग्न रहते।

एक दिन प्रसङ्गानुसार आचार्यश्री ने बीस तीर्थङ्करों की कल्याण भूमि श्रीसम्मेतशिखरजी का, व्याख्यान में इस प्रकार महत्त्व बताया कि उपस्थित श्रोताजनों की भावना उक्त कथित तीर्थ की यात्रा कर पुण्य सम्पादन करने की होगई। इधर सेठ मुकुन्द भी अपना मनोरथ सफल होते हुए देख आचार्यश्री को हृदय से धन्यवाद देते हुए अत्यन्त कृतज्ञता सूचक शब्दों में संघ से आदेश मांगने के लिये खड़े हुए। संघने भी सेठजी को धन्यवाद के साथ सहर्ष आदेश दे दिया। श्रीसघ से आदेश प्राप्त करके कृतार्थ हुए सेठजी व आपके पुत्रों ने तीर्थ यात्रार्थ सघ के लिये समुचित सामग्री का प्रबन्ध करना प्रारम्भ किया। सुदूर प्रान्तों में संघ में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रण पत्रिकाएं भेजी गई। मुनि महात्माओं की प्रार्थना के लिये योग्य पुरुष भेजे गये। इस प्रकार मिगसर वद एकादशी के निर्धारित दिवस को यात्रा का इच्छुक सकल जनसमुदाय भरोच में एकत्रित होगया। आचार्यश्री ने सेठ मुकुंद को संघपति पद अर्पित किया। क्रमशः सूरीश्वरजी के अध्यक्षत्व और सेठ मुकुंद के संघपतित्व में शुभ शकुनो के साथ सम्मेतशिखर की यात्रा के लिये संघने भरोंच से प्रस्थान किया। प्रारम्भ में तो करीब २००० साधु और २५००० गृहस्थ ही थे किन्तु मार्ग में उक्त संख्या में बहुत ही वृद्धि होगई। पट्टावलि कार लिखते हैं—इस संघ में सम्मिलित हो कर ५००० साधु साध्वियों और लक्ष भावुको ने तीर्थयात्रा का लाभ लिया। रास्ते के तीर्थों की यात्रा एवं अष्टान्हिका, पूजा, प्रभावनादि महोत्सवों को करते हुए संघ ठीक समय पर सम्मेतशिखरजी पहुँचा सम्मेतशिखरजी की यात्रा का पुण्य सम्पादन करने में संघने किसी भी प्रकार की कसर नहीं रक्खी। संघपतिजी ने खूब उदार वृत्ति से द्रव्य व्यय कर संघ यात्रा का सच्चा लाभ लिया।

सूरीजी ने संघपति मुकुन्द को कहा—गृहस्थोचित सकल धार्मिक कृत्य तो हो चुके हैं, अब केवल आत्म कल्याण का निवृत्ति मार्ग स्वीकार करना ही अवशिष्ट रहा है अतः पुण्यात्मन्! यदि आत्मोद्धार करने की सच्ची इच्छा है तो सावधान होजावें संघपतिजी आचार्यश्री के शब्दों के भावों का ताड़ गये। उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्रों को बुलाकर एतद्विषयक परामर्श किया तो सबके सब दीक्षार्थ तैय्यार होगये। सेठानीजी कहने लगी मैंने तो इस विषय में उस ही दिन से निश्चय कर लिया था पुत्र बोलने लगे–पिताजी! हम आपकी सेवा में तैय्यार है। सेठजी समझ गये कि मेरे पुत्र विनयवान है और मेरी लाज से ही ये दीक्षा के लिये भी तैयार होगये हैं अतः इनकी आन्तरिक इच्छा के बिना दीक्षा देना सर्वथा अनुचित है ऐसा सोचकर लल्ल और कल्ल नामक दो पुत्रों को उत्कृष्ट वैराग्य वाला देख अपने साथ में ले लिया और शेष को गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी भार सौंप दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र नाकुन को संघ पतित्व की माला

पहना दी और आपने अपनी पत्नी, दो पुत्र तथा १० दूसरे स्त्री पुरुषों के साथ में परम वैराग्य पूर्वक दीक्षा स्वीकार करली। इन सब भावुकों की दीक्षा के पश्चात् शुभमुहूर्त में संघ पुनः नाकुल के संघपतित्व में लौट गया। मथुरा तक तो आचार्यश्री भी स्वयं संघ के साथ में रहे पर बाद में आप मथुरा में ही ठहर गये। संघ अन्य मुनियों के साथ सकुशल निर्विघ्न भरोंच नगर आगया। संघपति नाकुल ने स्वधर्मी भाइयों को एक एक स्वर्णमुद्रा एवं वस्त्रों की पहिरावणी देकर संघ को विसर्जित किया। सेठ मुकुन्द ने इस संघ के लिये ९क कोटि द्रव्य का संकल्प किया था वह व्यय होगया।

अहा-हा...! आत्मकल्याण के लिये वह जमाना कितना उत्तम था ? था-तो उस समय भी पांचवां आरा ही किन्तु जैनाचार्यों के त्याग वैराग्यमय उच्च जीवन ने उसे चौथा आरा बना दिया।

आचार्यश्रीसिद्धसूरिने अपना शेष जीवन जैनधर्म के अभ्युदय एवं शासन प्रभावना के ही कार्यों में व्यतीत किया। आप जैनधर्म के सुदृढ़स्तम्भ, जैनसमाज के परम शुभचिंतक, महाजनसंघ के रक्षक, पोषक एवं वृद्धिकर्ता, वादी विजयी, प्रसिद्धवक्ता, धर्म प्रचारक, वीरआचार्य थे। आपने ५४ वर्ष के शासन में अधिक से अधिक धर्मप्रचार किया। आपके वक्त वीरपरम्परा के बहुत से आचार्यवर्तमान थे किन्तु आपका उन सभी आचार्यों के साथ भातृभाव एवं वात्सल्यता थी। सबके साथ हिलमिल कर संगठित अक्षीण शक्ति से शासन सेवा करने का आपका प्रमुख गुण था। आपने जैनश्रमण संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की उसी तरह महाजनसंघ की भी आशातीत उन्नति की। अन्त में आपने मरुधर के मेदिनीपुर नगर के श्रेष्टिगौत्रीय शा. लीम्बा के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय मूर्तिविशाल को सूरिपद से विभूषित कर परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। पश्चात् परम निवृत्ति में संलग्न हो गये। २७ दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधार गये।

ऐसे प्रभाविक आचार्यों के चरणकमलों में कोटिशः वंदन हो आपश्री के द्वारा किये गये शासन के मुख्य २ कार्यों की नामावली निम्न प्रकारेण है:—

पूज्याचार्य देव के ५४ वर्ष का शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—उपकेशपुर	के श्रेष्टि	गौत्रीय	सहदेव ने	दीक्षाली
२—पण्डितपुरा	,, कालाणी	,,	जालहा ने	,,
३—क्षत्रिपुरी	,, पल्लीवाल	,,	नारायण ने	,,
४—कानाणी	,, संघवी	,,	जसाने	,,
५—सालीपुर	,, प्राग्वट	,,	रांणाने	,,
६—मरोटी	,, प्राग्वट	,,	देदाने	,,
७—नाराणी	,, श्री श्रीमाल	,,	करमण	,,
८—भवानीपुर	,, अग्रवाल	,,	भोमा ने	,,
९—रूणावती	,, प्राग्वट	,,	बीरम ने	,,
१०—नारवाडी	,, भूरि	,,	राजसी ने	,,
११—मेदनीपुर	,, पल्लीवाल	,,	विमल ने	,,

१२—हर्षपुरा	के ब्राह्मण	गौत्रीय	छाजू ने	दीक्षाली
१३—गोदाणी	,, भाद्र	,,	जेता ने	,,
१४—पाटली	,, चिचट	,,	मुजल ने	,,
१५—वैराटपुर	,, कुम्मट	,,	चाहाड ने	,,
१६—पालिड्का	,, कन्नोजिया	,,	खेमा ने	,,
१७—चर्पटे	,, प्राग्वट	,,	सजन ने	,,
१८—राजपुर	,, प्राग्वट	,,	हरपाल ने	,,
१९—वीरमी	,, श्रीमाळ	,,	नागदेव ने	,,
२०—गुदिया	,, सुचंति	,,	ईसर ने	,,
२१—लौद्रवापुर	,, राका	,,	रासा ने	,,
२२—हथीयाणा	,, देसरड़ा	,,	पुनड़ ने	,,
२३—देवपट्टण	,, पोकरणा	,,	पदमा ने	,,
२४—श्रासासर	,, प्राग्वट	,,	सांगण ने	,,
२५—चाणोट	,, गोलेचा	,,	लीछमण ने	,,
२६—सोपार	,, तप्तभट्ट	,,	तेजाने	,,
२७—संथुणा	,, वप्पनाग	,,	डावर ने	,,
२८—मोहली	,, श्रार्य्य	,,	हरजी ने	,,
२९—खेड़कपुर	,, विरहट	,,	सारंग ने	,,
३०—करणावाती	,, प्राग्वट	,,	भाणा ने	,,
३१—नागाणी	,, श्रीमाल	,,	सोमा ने	,,
३२—टीबाणी	,, कुलहट	,,	नरवद ने	,,
३३—करोली	,, लघुश्रेष्टि	,,	कक्क ने	,,
३४—भंत्रोरा	,, प्राग्वट	,,	श्रजड़ ने	,,
३५—सोजाळी	,, श्रादित्य०	,,	अज्ज ने	,,

श्राचार्य श्री के ५४ वर्षों का शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—श्रासलपुर	के मंत्री		बोरीदास ने	पारर्वनाथ का	म०	प्र०
२—ईठरिया	,, भाद्र	गो	जेहलने	,,	,,	,,
३—अचलपुर	,, चिचट	,,	दाहड़ने	,,	,,	,,
४—उच्चाढी	,, श्रेष्टि	,,	लाखणने	महावीर	,,	,,
५—उन्नतनगर	,, तप्त भट्ट		भावोने	,,	,,	,,
६—उच्चकोट	,, भूरि		मुकनाने	पारर्वनाथ	,,	,,
७—कांटोली	,, मोरख		रेखाने	,,	,,	,,

८—कोठरा	के संघी	भुधरने	पार्श्वनाथ	म० प्र०
९—काबी	,, गोलेचा	साद्धाने	नेमिनाथ	,, ,,
१०—देदोलिया	,, विरहट	मालाने	आदीश्वर	,, ,,
११—पाटडीगांव	,, सुचंति	चापाने	महावीर	,, ,,
१२—भट्टनगर	,, बलाहरांका	खुमाणने	,,	,, ,,
१३—भारोटिया	,, श्री श्रीमाल	सांगाने	,,	,, ,,
१४—लौद्रवपुर	,, कुलहट	कोकाने	,,	,, ,,
१५—भंमुलिया	,, प्राग्वट	रणधीरने	पार्श्वनाथ	,, ,,
१६—नागपुर	,, प्राग्वट	हरपालने	,,	,, ,,
१७—छीन्नाई	,, प्राग्वट	शाहमाढ़ाने	,,	,, ,,
१८—आघाटनगर	,, गान्धी	विमलने	मल्लिनाथ	,, ,,
१९—माण्डवगढ़	,, आदित्य	कर्माने	शान्तिनाथ	,, ,,
२०—उज्जैन	,, बप्पनाग	झालाने	धर्मनाथ	,, ,,
२१—हालापी	,, नाहटा	देवाने	पार्श्वनाथ	,, ,,
२२—मानपुरा	,, कुमट	खीवसीने	,,	,, ,,
२३—चन्द्रावती	,, मोहरा	रामाने	महावीर	,, ,,
२४—सारंगपुर	,, लघुश्रेष्टि	वीरमने	,,	,, ,,
२५—लावाणी	,, कनोजिया	भोजाने	,,	,, ,,
२६—विजयपट्टण	,, देसरडा	मालाने	,,	,, ,,
२७—हाथाणी	,, मैनाला	रामाने	भाविजिन	,, ,,
२८—बलीपुर	,, श्रेष्टि	वालाने	पार्श्वनाथ	,, ,,
२९—शिवनगर	,, मोरख	रावतने	,,	,, ,,
३०—मालपुरा	,, श्रीमाल	लुबाने	,,	,, ,,
३१—नारायणपुर	,, श्रीमाल	पोमाने	,,	,, ,,
३२—ईसावली	,, प्राग्वट	पोलाने	महावीर	,, ,,
३३—दयालपुरा	,, डिड्डु	पुनडने	सीमंधर	,, ,,
३४—भीमासर	,, तप्तभट्ट	धरमणने	महावीर	,, ,,

सूरीश्वरजी के ५४ वर्षों का शासन में संघादि शुभ कार्य

१—शिवपुरी	के प्राग्वट	रावाने	शत्रुंजय का संघ
२—नाडुली	,, प्राग्वट	राडाने	,, ,,
३—उपकेशपुर	,, आदित्य गौ०	मोणाने	,, ,,
४—नागपुर	,, बप्पनाग	सांगण ने	,, ,,

५—मेदनीपुर	के श्रेष्टि गो०	कुम्बाने	शत्रुंजय का संघ
६—मथुरा	,, भूरि गो०	कोरपाल ने	,, ,,
७—लोहाकोट	,, श्री श्रीमाल गो०	भैरूशाह ने	सम्मेत शिखर का संघ,
८—गोसलपुर	,, आर्य गो०	शाहराणा ने	शत्रुंजय का संघ
९—भरोंच	,, प्राग्वट"	साढाशाह ने	,, ,,
१०—सोपार	,, श्रीमाल	बालाशाह ने	,, ,,
११—उज्जैन	,, सुचंति गो०	देसल ने	,, ,,
१२—कीराटकूप	,, श्रेष्टि गो०	रघुवीर ने	,, ,,
१३—सत्यपुरी	,, भाद्र गौत्रीय	मंत्री आसुने	,, ,,
१४—चंदेरी	,, वीरहट गो०	शाह अजड़ ने	,, ,,
१५—आभानगरी	,, आदित्य गो०	शाहभौरा ने	,, ,,
१६—हंसावली	,, चिचट गो०	शाही पुराने	,, ,,
१७—शंकम्भरी	,, कुलहट गो०	शाह नौंबाने	,, ,,
१८—लोद्रवपुर	,, डिडु गौत्र	शाह हाप्पा ने	,, ,,

१९—नारदपुरी के पल्लीवाल कैशाने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर तलाव खोदाया

२०—रत्नपुर के अग्रवाल नेता ने दुष्काल में एक करोड़ द्रव्य व्यय किये

२१—जंगालु के गांधी दुर्गों युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई (छत्री)

इनके अलावा भी वंशावलियों में महाजन संघ के वीर उदार नर रत्नों के अनेक देश समाज के लिये शुभ कार्यों के उल्लेख मिलते हैं पर स्थानाभाव केवल नमूना के तौर पर ही कतिपय नामोल्लेख करदिये हैं।

एकचालीसवें पट्ट पारख पुरे, सिद्धसूरि संघ नायक थे।
उज्जल गुण छत्तीस विराजे, सूरि पद के वे लायक थे॥
घूम घूम कर जैनधर्म का विजय डंका बजवाया था।
जिन मन्दिरों की करी प्रतिष्ठा, संघ सफल हरखाया था॥

इति एक चालीसवें पट्ट पर सिद्धसूरिजी म. महान् अतिशय धारी आचार्य हुए।

४२—आचार्य श्री कक्कसूरि (नवम्)

जातस्त्वार्यकुले दिवाकरनिभः श्रीककसूरीः सुधीः
दीक्षाभावगतः कुमारवयसि ग्रामस्थलारण्यगः ।
लोके जैनमतं प्रचार्य बहुधाऽनेकान् जनान् दीक्षया
कीर्त्याऽद्यापि विराजते बहुमतो मान्योऽमरो भूतले ॥

पूज्यपाद, परम त्यागी, उत्कृष्ट वैरागी, शान्त, दान्त, तपस्वी, चन्द्रवत् निर्मल तथा सौम्य, सूर्यवत्तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर, कनकाचलवत् अकम्प, पृथ्वीवत् क्षमावान्, धैर्य्यवान् कांसी पात्रवत् निर्लेप, शंखवत् निरंगण, चंदन समान शीतल, भारण्ड पक्षीवत् अप्रमत्त, कमलवत् निर्लेप, वृषभवत् धोरी, सिंहवत् पराक्रमी, गजवत् अजय, वृक्षवत परोपकार निमग्न, सतरह प्रकार के संयम के धारक, बारह प्रकार के तपके आराधक, दश प्रकार के यति धर्म के साधक, अष्टप्रवचन माता के पालक व प्ररूपक, सूरी की आठ सम्पदाय एवं छत्तीस गुण के धारक आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज एक महान प्रभावक, युग प्रवर्तक, धर्म प्रचारक आचार्य हुए हैं। आपका जीवन चरित्र पट्टावलियों में बहुत विशद रूप में वर्णित है परन्तु हमारा उद्देश्य एवं पाठकों की जानकारी के लिये यहां संक्षेप में ही लिख दिया जाता है।

पाठक वृंद चालीसवें पट्टधर आचार्यश्री देवगुप्तसूरिके जीवन में पढ़ आये हैं कि स्वर्गीय देवगुप्त सूरि ने यदुवंशावतंस आर्य गोशल को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। इसी राव गोशल ने सिंध धरा में गोशलपुर की स्थापना की थी। आचार्यश्री ने भी गोशलपुर नरेश की प्रार्थना से एक चातुर्मास करके पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा भी करवाई। इसी गोसलपुर में यदुवंशीय भीमदेव नाम के आर्य जाति के एक श्रावक रहते थे। भीमदेव के जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् उनकी शादी श्रेष्ठि वंशावतंस जोधा की पुत्री सेणी के साथ हुई थी। भीमदेव बड़े ही पराक्रमी क्षत्रिय थे। उन्होंने कई बार म्लेच्छों के साथ युद्ध में टक्कर ली और उन्हें परास्त किये। भीमदेव के छ पुत्रियों के पश्चात् एक पुत्र हुआ। वह दीखने में देव कुमार के समान बहुत ही रूपवान् गुणवान् एवं धार्मिक था। दृष्टिपात न होने के कारण उसका नाम कज्जल रख दिया था। आर्य भीमदेव के प्रभुपूजा का अटल नियम था वे संग्राम में जाते तब भी प्रभु प्रतिमा को साथ में रखते। बिना अर्चना, पूजन किये मुंह में अन्न जलभी नहीं लेते। मातेश्वरी सेणी का लक्ष्य भी इसी तरह धर्म कार्यों में था। वह अपने षट् कर्म में नित्य नियमानुसार सदैव तत्पर रहती। कभी भी अपने नियम व दिनचर्या में किसी भी तरह का स्खलन-विघ्न नहीं होने देती। जब माता पिता धर्मज्ञ होते हैं तो उनके बाल बच्चों पर भी धर्म के उसी तरह के स्थायी संस्कार जम जाते है। प्रकृति के इस प्राकृतिक नियमानुसार कज्जल का ध्यान भी धर्मकार्य की ओर विशेष था। वह भी अपने बाल्यावस्थानुकूल बहुत कुछ नियमों को रखता था। विद्याध्ययन में तो आप अपने सब सहपाठियों में हमेशा अग्रसर रहता

था। कज्जल इतना भाग्यशाली एवं पुण्यवंत जीव था कि इसके होने के पश्चात् उसकी माता सेणी ने चार पुत्रों को और जन्म दिया। जब कज्जल की वय २२ वर्ष की हुई तो भीमदेव ने उसका वाग्दानसम्बन्ध कर दिया था। विवाह होने में अभी दो तीन वर्ष की देरी थी तथापि सबने बड़ी २ आशाएं बांध रक्खी थी।

इधर यकायक पुण्योदय से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज का पधारना गोसलपुर में हुआ तब राव आसल वगैरह श्रीसघ की प्रार्थना से सूरिजी ने गोसलपुर में चातुर्मास कर दिया। चातुर्मास की इस दीर्घ अवधि में आचार्यश्री के व्याख्यानों ने जन समाज पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला। आप अपने व्याख्यानों में त्याग वैराग्य तथा आत्मकल्याण के विषयों पर अधिक जोर देते थे अतः कईभावुकों का मन संसार से उद्विग्न एवं विरक्त हो गया था। कज्जल भी उन्हीं विरक्त एवं उदासीन मनुष्यों में से एक था। सूरीश्वरजी के वैराग्यमय उपदेश ने कज्जल के युवावस्था जन्य मद को वैराग्य के रूप में परिणत कर दिया। वह दीर्घ दृष्टि से विचार करने लगा कि-जितना परिश्रम संसारावस्था में रह कर उदर पूर्ति के लिये किया जाता है उतना ही मुनिवृत्ति की अवस्था में रह कर आत्मकल्याण के लिये किया जाय तो सांसारिक जन्म जन्मान्तर के प्रपञ्च ही नष्ट हो जाय एवं अक्षय सुख मिल जाय मेरी इस युवावस्था का उपयोग संसार वर्धक विषय कषायों में न कर तप, संयम एवं चारित्र की आराधना में किया जाय तो कितना उत्तम हो ? ऐसा कौन मूर्ख होगा कि जो पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हस्ति का दुरुपयोग लकड़े के भार को लादकर करे, सोने की थाल में मिट्टी व कचरा भरे, स्वर्ण रस से पैर धोवे, चिन्तामणि रत्न को कौवे उड़ाने में इस इधर उधर फेंक दें ? अतः मुझे प्राप्त हुई इस मानव भव योग्य उत्तम सामग्री का सदुपयोग आत्मकल्याण मार्ग में प्रवृत्ति करके करना चाहिये। इस प्रकार का मन में दृढ़ निश्चय कर कज्जल समय पाकरसूरिजी की सेवा में उपस्थित हुआ और वंदन करने के पश्चात् विनयपूर्ण शब्दों में अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित करते हुए कहा-भगवन् ! मुझे आत्मकल्याण करना है। मुझे संसार से सर्वथा अरुचि एवं घृणा होने लगी है। गुरुदेव मुझे संसार के दुखों से भय लगता है इस क्षणभंगुर जीवन के लिये रोरव नरक का पापोपार्जन करके अपनी आत्मा कलुषित नहीं बनाना चाहता हूँ। प्रभो ! मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। इस प्रकार कज्जल के वैराग्य मय वचनों को श्रवण कर सूरीश्वरजी ने उसके वैराग्य को और दृढ़ करते हुए कहा—कज्जल ! तेरे विचार अत्युत्तम एवं आदरणीय हैं कारण, संसार असार है; कौटुम्बिक मोह स्वार्थ जन्य प्रेम परिपूर्ण है, यौवन हस्ति कर्णवत् चंचल है, भोग विलास एवं पौद्गलिक सुखमय साधन भुजंग सदृश विषव्यापक, क्षण विनाशी एवं दुःखमय ही है। सम्पत्ति—आकाश के गन्धर्व-नगर की भांति अस्थिरहै, आयुष्य अञ्जलीगतनीरवत् अनित्य है। शरीरक्षणभङ्गुर है और अनेक आधिव्याधि उपाधि का स्थान है अतःमनुष्यभव और उत्तमसामग्री का एकमात्र सार आत्मकल्याण करना ही है। कज्जल ! तू तो एक साधारण गृहस्थ ही है पर, बड़े २ चक्रवर्तियों ने चक्रवर्तीऋद्धि एवं ऐश्वर्य का त्याग कर भागवती दीक्षा की शरण स्वीकार की है कारण उक्त सब ठाठ दुःख मिश्रित क्षणिक सुखरूप है तब चारित्रवृत्ति एकान्त सुखावह है, इस भव और परभव दोनों में ही कल्याणकारी है। इसके विपरीत जिन चक्रवर्तियों ने संसार में रह कर सांसारिक भोगों को ही उभयतः श्रेयस्कर जाना है वे आज भी सातवीं नरक की असह्य यातनाओं को भोग रहे हैं। कज्जल ! वर्तमान में तो तेरे पास ब्रह्मचर्य रूप अखण्ड रत्न वर्तमान है अतः इसके साथ तप संयम या ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रत्नत्रिय का समागम हो जायगा तो सोने में सुगन्ध की लोकोक्त्यनुसार तू अक्षय ऋद्धि का स्वामी हो जायगा कारण, सर्व गुणों में ब्रह्मचर्य ही उत्तम एवं प्रधान गुण है।

इस प्रकार समयज्ञ सूरिजी ने दो शब्द और उसके वैराग्य को विशेष पुष्ट एवं दृढ़ करने के लिये कहे।

कज्जल—पूज्यवर ! मेरी तो एकाकी दीक्षा स्वीकार करने की ही इच्छा है; किन्तु मेरे माता पिता—मेरी शादी कर मुझे सांसारिक स्वार्थ मय प्रपञ्चों में एवं मोहपाश में बद्ध करना चाहते हैं अतः मुझे दीक्षा के लिये सहर्ष वे आदेश दे देवेंगे इसमें बहुत कुछ शंका है। तो क्या उनके आदेश बिना भी अन्य किसी स्थान पर—जहां आप विराजित होंगे—मेरे आने पर मुझे दीक्षा दे सकेंगे ? सूरिजी—कज्जल ! इससे तेरी भावनाओं की दृढ़ता तो अवश्य ही ज्ञात होती है किन्तु माता पिता की आज्ञा बिना दीक्षा देना हमारे कल्प विरुद्ध है। इससे हमारे तीसरे महाव्रत में दोष लगता है। श्रमण वृत्ति एवं चारित्र धर्म कलंकित होता है। हमारे पर चोरी का कलंक लगता है। यदि हम भी ऐसी तस्कर वृत्ति करें तो फिर हमारे और चोरो में फरक ही क्या रहेगा ? दूसरा तेरे लिये भी यह एक दम व्यवहार विरुद्ध अनीति का ही मार्ग है कारण आज तू माता पिता की आज्ञा का अनादर करता है तो, कल हमारी आज्ञा का भी उल्लंघन करेगा। इससे तुम्हारा और हमारा आत्मकल्याण कैसे हो सकेगा ? तुम्हारा तो कर्तव्य है कि हरएक तरह से नम्रता पूर्वक माता पिताओं को समझा बुझाकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके ही दीक्षा स्वीकार करो। इससे तुम्हें आत्म वंचना का दोष भी नहीं लगेगा और हमारे साधुत्ववृत्ति में भी किसी भी प्रकार का भांगा उपस्थित नहीं हो सकेगा बिना आदेश के तस्करवृत्ति को अपनाना तो चारित्रवृत्ति को दूषित ही करना है अतः किसी भी कार्य में अपने पवित्र कर्तव्यो का विस्मरण करना अज्ञानता है। कज्जल ! तेरे पिता के तो तेरे सिवाय चार पुत्र और भी है और अभी तक तेरा विवाह भी नहीं हुआ है। पर पूर्वकालीन महापुरुषों के आदर्श त्याग का तो विचार कर। देख—थावच्चापुत्र मेघकुमार, धन्नाकुंवर, जमाली कुमार शालिभद्र, और अमन्त कुमार वगैरह तो अपनी २ माता की इकलोतीसी सन्तान थे। इनके पीछे क्रमशः आठ एवं बत्तीस २ विवाहित स्त्रियां थी फिर भी ये सब महापुरुष अपने २ माता पिताओं को हर एक तरह से समझा बुझाकर ही दीक्षित हुए तो क्या तू इतना ही नहीं कर सकता है। अभी तो तू गार्हस्थ्य सम्बन्धी प्रत्येक झंझट से मुक्त स्वतंत्र है। वैवाहिक बंधन पाश से अलग है अतः हर एक कार्य को आसानी से सम्पन्न कर सकता है। कज्जल ! जैनधर्म न्याय एवं नीतिमय है। यदि धर्म में अनीति का जरा सा भी स्पर्श हो तो संसार से पार होना ही मुश्किल है अतः धर्म व्यवहार से भी माता पिता की आज्ञा बिना न तो तुझे दीक्षा लेनी चाहिये और न मुझे देनी ही चाहिये।

कज्जल—गुरुदेव ! जब मेरी तीव्र इच्छा दीक्षा लेने की है तो इसमें माता पिता के आदेश की जरूरत ही क्या है ? वे तो अपने स्वार्थ के कारण आज्ञा प्रदान करें या न करे आपको तो लाभ ही है। आप मेरी इच्छा से मुझे दीक्षा दे रहे हैं अतः मेरी आत्मा का कल्याण होगा तो फिर आपको क्या हानि सहन करनी पड़ेगी ?

सूरिजी—कज्जल ! तेरी दीक्षा लेने की भावना है यह एक दम निर्विवाद सत्य है और दीक्षा लेने से तेरी आत्मा का कल्याण होगा इसमें भी किसी तरह का सदेह नहीं है पर व्यवहार को तिलाञ्जली देकर निश्चय को ही स्वीकार कर लेना स्याद्वाद सिद्धान्त के विपरीत है। व्यवहार ऐसा बलवान है कि निश्चय के साथ उसको भी समान मान देना ही पड़ता है। दूसरा जैन सिद्धान्त 'तिन्नाणं तारियाणं' अर्थात्—आप स्वयं संसार से तिरे और दूसरों को भी संसार समुद्र से तार कर पार उतारे—ऐसा है न कि आप डूबे और

दूसरों को तारे ऐसा है। जब तुम को बिना आज्ञा दीक्षा देकर हम हमारे मत का खण्डन करें तो इससे तुम तो तिरे पर हम तो संसार के पात्र ही बने। इससे तो हमारा शिष्य मोह और माया कपट दोष जो मिथ्यात्व के पाये हैं—बढ़ते रहेगे। परिणाम स्वरूप जिस आशा एवं विश्वास पर पौद्गलिक पदार्थों का त्याग कर चारित्र वृत्ति की शरण ली है वह तो हमारे लिये निरर्थक ही सिद्ध होगी। संसारावस्था को छाड़ करके भी संसारिक प्रवृत्ति के अनुरूप ही हमारा चारित्र रहेगा। कज्जल ! जरा गम्भीरता पूर्वक जैन दर्शन के सिद्धान्तों का मनन करो। यदि कदाचित तुम्हारे अत्याग्रह से माता पिता की बिना आज्ञा हमने तुमको दीक्षा दे भी दी तो आगे तुम भी इसी तरह की प्रवृत्ति का प्रदुर्भाव कर देंगे जिससे संसार से तैरने का रास्ता तो एक दम बंद हो जायगा और मोह, माया, कपट, मिथ्यात्व एवं तृष्णा का अधिक्य ही वृद्धिगत होता रहेगा अतः अपने किञ्चित् स्वार्थ के लिये धर्म पर कुठाराघात करना निरी अज्ञानता है। कज्जल ! तुम्हारा यह भ्रममात्र है कि तुम्हारे कहने पर भी माता पिता तुम्हे आज्ञा न दें। भला—जाते—और मरते हुए को दुनियां में कौन रोक सकता है ? पर इसके लिये चाहिये दिल की दृढ़ भावना, सच्चा वैराग्य, आत्म विश्वास विचारो की दृढ़ता एवं मन का परिपक्वपना। कज्जल ! देख; हम और हमारे इतने साधु हैं। क्या हमारे और इनके माता पिता नहीं थे ? या हम से किसी के माता पिता ने उसे निर्मोही की तरह आज्ञा दे दिया ? यदि नहीं तो माता पिताओं को समझना और उन्हे निवृत्ति पथ के पथिक बनाना तुम जैसे मेधावियों का काम है। आज हमारे पास वर्तमान इन साधुओं के माता पिता जब अपने पुत्र को ज्ञान, ध्यान, चारित्र आदि में उत्कृष्ट वृतिकों देखते हैं तो उनके हर्ष का पारावार नहीं रहता है। वे अपना अहोभाग्य समझ कर उन साधुओं के चरणो मे मुहुर्मुहु वंदन करते हैं अतः यदि तुम्हारी दीक्षा लेने की सच्ची भावना है तो तुम्हे माता पिताओं की सर्व प्रथम आज्ञा प्राप्त करनी ही होगी। तब ही हम दीक्षा देंगे ?

कज्जल—पूज्यपाद गुरुदेव ! आपको कोटिशः नमस्कार हो। आप जैसे निस्पृही एव विरक्त महात्मा ससार में विरलेही होंगे। धन्य है इस परमपवित्र जैनधर्म को कि जिसके सचालक तीर्थङ्कर देवों ने धर्म के ऐसे दृढ़ एव आदरणीय नियम बनाये हैं। वास्तव में इन्हीं नियमों की कठोरता के कारण ही जैनधर्म का अन्यधर्मों की अपेक्षा दुनियां में विशेष स्थान है। जैनश्रमणों का चारित्र, आचार व्यवहार अन्य साधुनामधारियो की अपेक्षा सहस्रगुना उत्कृष्ट है इससे नतो जैनधर्म की निंदा होती है और न जैनधर्म कि धुरा को धारण करने वाले श्रमणों पर अविश्वास हो। न अनीति को मदद मिल सकती है और न मिथ्यात्व का पोषण हो सकता है। वास्तव में संसार में वर्तमान धर्मोंमें जैनधर्म ही वास्तविक 'तिन्नाणं तारयाणं' है। गुरुदेव ! आपकी आज्ञा को मस्तक पर चढ़ाता हू। प्रभो मातापिता की आज्ञा लेकर दीक्षा स्वीकार करूगा !

सूरिजी—कज्जल ! इसमें तेरा और हमारा दोनों का ही कल्याण सन्निहित है। धर्म की मान मर्यादा भी इसी में ही है।

कज्जल—जी हां ! कह कर सूरिजी के चरणकमलों में वंदन किया और माता-पिता से आदेश प्राप्त करने के लिये अपने घर पर चालकर आया। घर पर आते ही मातापिताओं के सन्मुख दीक्षा के लिये आग्रह करने लगा व सूरिजी के साथ में हुई वार्तालाप का सकलवृत्तान्त कहने लगा। माता पिताओं को बहुत ही आश्चर्य एवं दुःख हुआ कारण, वे कज्जल को अपने से विमुक्त नहीं देखना चाहते थे पर कज्जल का निश्चय तो अचल था। बहुत अनुकूल, प्रतिकूल कथनों से समझाने पर भी जब कज्जल ने अपना

निश्चय नहीं छोड़ा तो माता पिताओं को दीक्षा के लिये आज्ञा देनी ही पड़ी। आखिर कज्जल ने अपने ७ साथियों के साथ सूरीश्वर जी म. सा. के पास दीक्षा ग्रहण कर ही ली। दीक्षानंतर आपका नाम मूर्तिविशाल रख दिया। मुनि मूर्तिविशाल सिंधप्रांत के सुपुत्र थे अतः उन्होंने चारित्रवृत्ति को जिन आदर्शभावनाओं से प्रेरित हो अङ्गीकार की उनका निर्वाह करने के लिये वे स्थाविरों की विनय, भक्ति वैयावृत्य व उपासना करते हुए ज्ञान सम्पादन करने में संलग्न हो गये। वह गुरुकुल वास का जमाना से पवित्र एवं आदर्श था कि उस समय आज के जैसे स्वेच्छाचारियों व मुनिवृत्तिविघातक मुनियों का अस्तित्व ही नहीं रहने पाता था। वे गुरु के पास में रह कर ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि करने में संसार त्याग की महत्ता समझते थे। इसमें मुख्य कारण तो उनके विनय व वैराग्य की दृढ़ता थी। आज के जैसे ऐरे गेरे को वे मुण्डित नहीं करते थे क्योंकि शासन की लघुता में तो वे अपनी लघुता समझते थे। उनके हृदय में इस बात का गौरव था कि हम ने संसार का त्याग आत्मकल्याण के लिये किया है फिर आत्मगुण विघातक वृत्तियों का पोषण एवं रक्षण कर आत्मवञ्चना का बड़ा पाप सिर पर कैसे लादें ? इन्हीं सब कारणों से दीक्षा के पश्चात् ज्ञानाराधना करने को वे अपने जीवन का एक मुख्य अंग ही बना लेते थे। ज्ञावरणीय कर्म के क्षयोपशमानुसार वे गुरुदेव की सेवा करते हुए अतृप्त की भांति ज्ञानाध्ययन किया ही करते थे। यद्यपि उस समय चैत्यवासियों के आचार, विचार एवं व्यवहार में यत् किञ्चित् शिथिलता का प्रवेश हो गया था तथापि, गुरु की आज्ञा का पालन करना और ज्ञान पढ़ना तो उनमें भी मुख्य समझा गया था।

मुनि मूर्तिविशाल ने आचार्यश्री की सेवा में १९ वर्ष पर्यंत रह कर अनवरत परिश्रम पूर्वक वर्तमान जैन साहित्य का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही साथ उस समय के लिए आवश्यक न्याय, व्याकरण, छंद तर्कादि शास्त्रों का भी खूब सूक्ष्मता पूर्वक मनन किया था। इन विद्याओं के सिवाय गुरु परम्परा से आइ विद्या, आम्नाय,सूरि मंत्र की साधना वगैरह२ सूरिपद के योग्य सर्व योग्यताएं हांसिल कर ली। यही कारण है कि आचार्यश्रीसिद्धसूरिजी अपने अन्तिम समय में मेदनीपुर नगर में आदित्यनाग गौत्र की गोलेचाशाखा के धर्म वीर शाह आदू के महामहोत्सव जिसमें पूजाप्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी नर नारियो को पेहरावणी आदि में सात लक्ष द्रव्य शुभ कार्यों में एवं याचकों को पुष्कल दान देने में व्यय किया और सूरिजी महाराजने मुनिमूर्त्तिविशाल को बड़े ही समारोह के साथ सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम परम्परानुसार कक्कसूरि रख दिया।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपका तपतेज एवं ब्रह्मचर्य का प्रचण्ड प्रताप मध्यान्ह के सूर्य के भांति सर्वत्र प्रकाशमान था। एक और तो जैनधर्म से कट्टरता रखने वाले वादियों के संगठित हमले रह २ कर जैनधर्म पर वज्र प्रहार कर रहे थे। और दूसरी ओर चैत्यवासियों के आचार विचार एवं नियमों की कुछ शिथिलता समाज की जड़ को खोखली कर रही थी अतः आपश्री को शासन का गौरव बढ़ाने के लिये दिग्गज विद्वानों का सामने शास्त्रार्थ करना पड़ता और जैनश्रमणों के जीवन को पवित्र एवं निर्दोष रखने के लिये पुनः पुनः उन्हें प्रोत्साहित करना पड़ता। ऐसे विकट समय में जैनशासन की आपश्री ने किस तरह रक्षा एवं वृद्धि की यह सचमुच आश्चर्योत्पादक ही है।

यह तो हम पहिले ही लिख आये हैं कि-कालदोष से कई चैत्यवासियों के आचार विचार एवं व्यवहार में कुछ शिथिलता अवश्य आगई थी पर उनके रोम २ में जैनधर्म के प्रतिदृढ़ अनुराग भरा हुआ

था वे शासन की उन्नति में ही अपनी उन्नति एवं गौरव समझते थे। यद्यपि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से वे चारित्र को निर्दोष नहीं पाल सके तथापि जैनशासन की हर तरह से उन्नति एवं प्रभावना करने में उन्होंने कुछ भी कसर नही रक्खी। उस समय जैनधर्म की धवल यशः पताका यत्र तत्र सर्वत्र फहरा रही थी। आचार्यबप्पभट्टसूरि और शीलगुणसूरि जैसे जैनधर्म के स्तम्भ उस समय विद्यमान थे। इनका विशद जीवन चरित्र वीर परम्परा के प्रकरण में लिखा जायगा।

आचार्यश्री कक्कसूरिने सर्व प्रथम घर की बिगड़ी हालत को सुधारने का प्रयत्न किया कारण, उन्होने सोचा कि श्रमणवर्ग की शिथिलता दूर होकर उनमें उत्साह एवं धर्मप्रेम की नवीन स्फूर्ति का सञ्चार होजाय तो जैनधर्म का विस्तृत प्रचार उनके जरिए स्थानो २ पर कराया जा सकता है। बस, उक्त भावनाओ से प्रेरित हो आपश्री ने स्थान २ पर श्रमण सभाएं करवाई उनमें से एक सभा चंद्रावती में भरवाई जिसमें आगत श्रमण मण्डली का तिरस्कार करने के बजाय उनके कर्तव्य की स्मृति करवाते हुए अत्यन्त मधुर उपालम्भ देते हुए समझाया कि—श्रमण बन्धुओ। भगवान महावीर ने अपने शासन की डोर आप लोगों के हाथ में दी है। यदि इसका सञ्चालन एवं रक्षण अपना कर्तव्य समझते अपन नकरें तो सचमुच हम लोग अपनी श्रमणवृत्ति के पवित्र जीवन से कोसो दूर हैं। शासन के प्रति विश्वासघात करके निकाचित कर्मों के वंध कर्ता है। भला सोचने की बात है कि—वीरभगवान् के बाद भी दीर्घदर्शी पूर्वाचार्यों ने हमारी सहूलियत के लिये नये जैन बनाकर महाजनसंघ रूप एक सुदृढ़ संस्था की स्थापना का हमारे ऊपर कितना उपकार किया है? उन पूर्वाचार्यों ने जिन कष्टो एवं परिषहों को सहन करके सुदूर प्रान्तों में धर्म प्रचार किया उनमें से हमको जो किञ्चित भी धर्मप्रचार में संकट सहन नहीं करने पड़ते कारण उन्होंने कण्टकाकीर्ण मार्ग को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत कर दिया फिर भी यदि हम लोग शास्त्रीय नियमों की परवाह किये बिना कर्तव्य पराङ्मुख बन जाते तो हमारे जैसे कृतघ्न एवं शासन द्रोही और कौन होसकते हैं? हमारे उन आदर्श पूर्वाचार्यों के समय तो द्वादशवर्षीय जनसंहारक महा भीषण दुष्काल पड़े फिर भी उन्होंने ऐसे विकट समय में जैन संस्कृति की अपनी सम्पूर्ण शक्ति सत्ता से रक्षा की तो क्या उनके द्वारा बनाये हुए करोड़ों की तादाद आज अपने भरोसे पर है तो अपने कर्तव्य का आप लोग अपने ही आप विचार करलें।

जैसे एक पिता अपने पुत्रो के विश्वास पर करोड़ो की सम्पत्ति को छोड़ जाता है तो पुत्रों का कर्तव्य जनकोपार्जित लक्ष्मी की न्याय पूर्वक वृद्धि करने का ही होजाता है। यदि बढ़ाने जितनी योग्यता उनमें नहीं है तो कम से कम रक्षण करना तो उसका परम कर्तव्य ही होजाता है। अस्तु, उक्त कर्तव्य की स्मृति पूर्वक जब तक वह इस द्रव्य को उतने ही परिमाण में रहने देता है तब तक तो संसार में उसकी कुछ मान मर्य्यादा एव प्रतिष्ठा रहती है परन्तु पुत्रों के प्रमाद, वे परवाही एवं विलासी जीवन का लाभ उठाकर कोई दूसरे प्रतिपक्षी उस धन को हड़प कर लेवे और समर्थ पुत्र अपनी आंखों से उसको देखता रहे तो इसमें न तो पुत्र की शोभा ही रहती है और न संसार में मान मर्य्यादा ही बढ़ती है। न वह अपना सासारिक जीवन सुखमय व्यतीत कर सकता है और न किसी योग्य कार्य के काबिल ही रहता है। इतना ही क्या पर प्रतिपक्षियों की प्रबलता के कारण उसका आस्तित्व रहना भी कालान्तर में दुष्कर होजाता है। यही हाल आज अपने शासन का होरहा है। यदि आप लोग शासन की रक्षा के लिये कमर कसकर तैय्यार न होवेंगे तो निश्चित् ही एक समय ऐसा आवेगा कि जैनधर्म का नाम संसार में पुस्तकों की शोभा रूप ही हो जायगा।

प्रिय आत्म बन्धुओं ! जिन सुविहित शिरोमणियों ने चैत्यवास प्रारम्भ किया था—उन्होंने आधाकर्मी मकान के पाप के भय से ही किया था। उनको तो स्वप्न मात्र में भी यह कल्पना नहीं थी कि आज के हमारे चैत्यवास का परिणाम भविष्य में इतना भयङ्कर होगा। उन्होंने तो पातकभय से, व जिनालय की रक्षा निमित्त ही चैत्यवास को स्वीकृत किया था। उनके हृदय में यह कल्पना तक नहीं थी कि हमारे पीछे हमारी सन्तान इस चैत्यवास के कारण शिथिल होकर मठवासियों की तरह पहिचानी जायगी यदि उन्हें भयङ्करता के विषमय विषम परिणाम की कल्पना होती तो उस समय के लिये परमोपयोगी चैत्यवास का प्रारम्भ ही नहीं करते। बन्धुओ ! जिस समय हम लोग संसारावस्था को त्याग कर चरित्र वृत्ति लेते हैं उस समय हमारे हृदय में शासन के प्रति एवं चारित्र के प्रति कितनी उत्कृष्ट भावनाएं रहती हैं ? यदि भावनाओं की उच्चता एवं विचारों की आदर्शता चरम समय पर्यन्त तद्रूप न रहे तो निश्चित ही साधु वृत्तिस्वादुवृत्ति के नाम से निर्दिष्ट हो जायगी। यदि साधुवृत्ति के पवित्र जीवन में भी गृहस्थ जीवन के समान नवीन गृह की निर्माण भावना रहती हो, पौद्गलिक मन मोहक पदार्थों में मोह रहता हो तो हमारा संसार छोड़ना और न छोड़ना दोनों ही समान है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि इस प्रकार के शिथिल एवं आचार विहीन साधुओं से तो गृहस्थों का गार्हस्थ्य जीवन ही सुखमय है जो अपने थोड़े बहुत नियमों को यावज्जीवन पर्यन्त सुख से निभाते हैं। बन्धुओं इस प्रकार की शास्त्रमर्यादा का अतिक्रमण करने से अपने दोनों ही भव बिगड़ जावेंगे। कृतघ्नता एवं विश्वास घात के वज्र पाप से भी अपने आप को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे। कारण, इस समय जो अपने को मुनिवृत्ति निर्वाहक साधनोपकरण उपलब्ध होते हैं। वे सब भगवान महावीर के नाम पर ही। अतः इसके बदले में हम शासन की सेवा रक्षा एवं अपने आचार विचार में पवित्रता न रक्खें तो निश्चित ही हम शासन द्रोही कलंकित हैं। जनता का आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है। वे समझते हैं कि हमारे गुरुओं का जीवन अत्यन्त निर्मल एवं त्यागमय है अतः उनकी हर तरह की सेवा का लाभ लेना हमारा कर्तव्य है अस्तु। अपनी जीवनचर्या में इस प्रकार की शिथिलता रख कर तो उनके साथ भी विश्वासघात ही करना है कारण वे अपने को त्यागी समझ कर अपने साथ शासन मर्यादा बराबर निभाते आ रहे हैं तो अपना कर्तव्य भी उनके मंतव्यानुसार आचार विचार को पवित्र रखना होजाता है। इसीमें अपनी जीवन की उन्नति आत्म कल्याण की पराकाष्ठा, एवं मोक्षसाधन की उत्तम क्रिया अन्तर्हित है। शासन की प्रभावना एवं सेवा भी इसीमें शामिल है। इत्यादि।

इस प्रकार आचार्यश्री ने परम निर्भीकता पूर्वक सचोट, दुःखी हृदय का दर्द श्रमण सभा में स्पष्टवक्ता के समान स्पष्ट प्रगट कर दिया। अन्त में आपने फरमाया की मैंने मेरे दग्ध हृदय से कुछ कटु एवं अनुचित शब्द भी आप लोगों के लिये कहे हैं पर क्या किया जाय ? शासन का पतन देखा नहीं जाता है। अपने लोगों की शिथिलता समाज की जड़ को खोखली बनाकर समाज को मृत प्राय बना रही है अतः अपने जीवन की पवित्रता शासनोत्थान के लिये सर्व प्रथम आवश्यक है। मुझे उम्मेद है कि वीर की सन्तान वीर ही हुआ करती है अतः आप लोग भी भगवान् महावीर की सन्तान होने का दावा करते हैं तो शीघ्र ही वीर पताका को पुनः चतुर्दिक में लहरा दीजिये। सिंह भले ही थोड़ी देर के लिये प्रमादावस्था में पड़ा रहे पर सिंह श्रृगाल नहीं हो सकता सिंहोचित स्वाभाविक प्रतिमा तो उसके मुख पर सदा झलकती ही रहती है। देखिये—शास्त्रों में एक उदाहरण बतलाया है।

एक वृद्ध किसान का नदी के किनारे पर गेहूँ का खेत था। किसान की सम्भाल से खेत में आशा तीत गेहूँ की उत्पत्ति हुई। सारा ही खेत गेहूँ से हरा भरा दीखने लगा। जब धान्य पक गया किसान मजदूरों से गेहूँ कटवाने लगा पर किसान को सूर्यास्त होने के बाद दीखता नहीं था कारण वह रातान्ध था; अतः उसने मजदूरो से कहा—भाई ! तुम दिन अस्त होने के पूर्व ही अपना काम निपटा कर चले जाओ। मजदूरों ने इसका कारण पूछा तो किसान ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—मुझे सज्जा (सूर्यास्त के समय) का बड़ा भारी भय लगता है। सब मजदूरों को सुनाने के लिये उसने इसी बात को दो तीन बार कहा। कि मुझे जितनासिंह से भय नहीं उत्तना संज्भा से भय लगता है। इधर नदी की एक ओर खोखाल मे एक सिंह पड़ा हुआ था। उसने किसान के शब्दों को सुनकर सोचा कि सज्जा भी कोई मेरे से अधिक शक्तिशाली जानवर होगा इसीसे इन लोनों को मेरे नाम का जितना भय नहीं उतना सज्भा के नाम का भय मालूम पड़ रहा है। इस तरह सिंह के हृदय में भी सज्भा विषयक संशय—भय होगया। उसी गांव मे एक वृद्ध धोबी भी रहता था; वह नागरिकों के कपड़े धोकर अपना गुजारा करता था। ग्राम से दो माईल की दूरी पर कपड़े धोने का एक घाट था अतः कपड़े ले जाने के लिये एक मोटा माता गधा रख लेना पड़ा था। गधा शरीर में खूब मोटा, तगड़ा एवं तन्दुरुस्त था। एक दिन सूर्यास्त होने पर भी गधा नहीं आया तो धोबी मारे गुस्से के हाथ में लठ्ठ लेकर उसे खोजने को गया। भाग्यवशात् धोबी को भी रात्रि में कम दीखता था अतः जब वह ढूंढते २ नदी पर आया तो नदी के किनारे पर एक सिंह पड़ा हुआ देखा। कम दीखने के कारण उसको सिंह में ही गधे की भ्रान्ति होगई और क्रोध के आवेश में पांच सात लठ्ठ सिंह के जमा दिये। इधर सिंह ने सोचा कि—सज्भा नाम के जो मैंने मेरे से बलवान प्राणी के विषय में सुना था—हो न हो वह यही सज्भा है। बस इसी भय और शंका के कारण उसने धोबी के सामने चूं तक भी नहीं किया। धोबी भी उसे गधा समझ उसके गले में रस्सा डाल अपने घर पर ले आया। रात्रि में भी सज्जा के भय से सिंह चुपचाप ही रहा। जब आधा घंटा रात शेष रही तब धोबी ने ग्राम के सब कपड़े सिंह पर लाद कर घाट पर जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में सूर्योदय होते ही पहाड़ पर से एक सिंह का बच्चा आया। उस अपने जातीय वृद्ध सिंह की इस प्रकार की दुर्दशा देखी नहीं गई। उसे बड़ा ही पश्चाताप हुआ कि सिंह जैसा पराक्रमी पशु गधे के रूप में कपड़े लादने रूप भार का वहन करने वाला कैसे दृष्टिगोचर हो रहा है ? उसने पास में आकर वृद्ध सिंह को पूछा—बाबा यह क्या हालत है ? वृद्ध शेर ने कहा—तू अभी बच्चा है मत बोल, देख-यह सज्जा नाम का अपने से भी पराक्रमी जीव है। इसने मुझे तो ऐसा पीटा है कि—मेरी कमर ही टूट गई है। अगर तू भी चुप रहने के बदले कुछ बोलना प्रारम्भ करेगा तो तुझे भी इसी तरह पीटेगा—मारेगा अतः जैसे आया वैसे चले जाना ही अच्छा है। यह सुन शेर का बच्चा सोचने लगा - संसार में सिंह से शक्ति शाली तो दूसरा कोई जीव वर्तमान नहीं फिर सज्जा का नाम भी कभी सुनने में भी नहीं आया अतः अवश्य ही बाबा के हृदय में एक तरह भय प्रविष्ट हो गया है। बस इस संशय को निकालने के लिये मुझे किसी न किसी तरह प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये। यद्यपि मैं बच्चा हूँ,—बाबा को शिक्षा या उपदेश देने का अधिकारी नहीं पर मौका ऐसा ही आ गया है अतः अपनी जातीय गौरव खोना युक्ति युक्त नहीं। इस तरह मन में संकल्प विकल्प कर सिंह को कहा बाबा ! सज्जा तो कोई जानवर ही नहीं है। आप व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हुए हैं। यदि मेरे कहने पर आपको विश्वास न हो तो आप एक

बार गर्जना करके देख लेवें। शिशु सिंह के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर भी वृद्ध सिंह की गर्जना करने की या सत्ता का सामना करने की हिम्मत नहीं हुई पर, बच्चे अत्याग्रह से वृद्ध शेर हायल पटक सिंहोचित गर्जन शुरु किया। विचारा धोबी नयी आफत आजाने से घबरा गया। कपड़े सब ही गिरगये वृद्ध सिंह ने अपना असली स्वरूप पहिचानने में उस बच्चे का उपकार और अहसान माना। और धोबी के पञ्जे में से छूट कर निडरता पूर्वक पहाड़ों की कंदरा में स्वतन्त्र होकर विचरने लगा।

सूरिजी के उदाहरण ने तो मुनियों के हृदय पर गहरी छाप डाली। आगत श्रमण मण्डली में नवीन चैतन्य स्फूरति होने लगी। धर्म प्रचार का अपूर्वोत्साह जागृत हों गया। वे समझ गये कि—हम सच्चे शेर ही हैं पर प्रमाद रूपी धोबी ने हमारे मानस में व्यर्थ ही संशय भर दिया है। परिषहों के भय से हम कायर एवं अकर्मण्य बने वैठे हैं। श्रमण जीवन रूप सिहत्व की पवित्र पराक्रमशील रूप अवस्था को प्राप्त करके भी दुनियां भरके शिथिलता रूप मैल को हमने सिर पर लाद रक्खा है। आचार्यश्री कक्कसूरि जी म. यद्यपि लघु आचार्य हैं पर शेर के बच्चे की तरह अपने को हाथल पटक कर गर्जना करने की सलाह दे रहे हैं। अपने को सत्कर्तव्य का भान करवा रहे हैं। श्रमण जीवन की पवित्रता जिम्मेवारियों की ओर अपने को अभिमुख कर जीवन के वास्तविक ध्येय की एवं गृह त्याग के कर्तव्य की अपने को स्मृति करवा रहे हैं। वास्तव में आचार्यश्री के कथनानुसार व मुनिवृत्ति के पवित्र आचारविचारानुसार हमने हमारे जीवन में आचार विचार विषयक विचित्र परिवर्तन न किया तो निश्चत ही हम शासन द्रोही एवं विश्वासघाती के नाम से निर्दिष्ट किये जावेंगे। शनैः २ संसार में अन्यधर्मियों के साधु के समान हमारी भी कीमत नहीं रहेगी। अतः हमारे पवित्र जीवन का हमें ही खयाल करना चाहिये। आचार्यश्री के उपदेश ने आगत श्रमण मण्डली की भावनाओं में इतना विचित्र परिवर्तन कर दिया कि एक बार वे पुनः धर्म प्रचार के के लिये कमर कसकर तैय्यार हो गये।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने जहां २ शिथिलता देखी वहां २ इस प्रकार की श्रमण सभाएं करवाकर श्रमण जीवन में नवीन शक्ति का सञ्चार करने का आशातीत प्रयत्न किया। मुनियों को प्रोत्साहित कर उनके कर्तव्य का भान करवाया। धर्म प्रचार की ओर उन्हें प्रेरित कर शासन का गौरव बढ़ाया। यद्यपि उस समय का चैत्यवास सर्वत्र विस्तृत होगया था और दुष्कालादि की भयंकर भयङ्करता ने उनके आचार विचारों में स्वाभाविक शिथिलता लादी थी तथापि सूरिजी के प्रयत्न ने इस विषय में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। वर्षों से शिथिलता के कीचड़ में फंसे हुए श्रमणों का एक दम रुक जाना या उनमें आचार विचार की दृढ़ता रूप निर्मलता आजाना असम्भव नहीं तो दुष्कर तो अवश्य ही था पर सूरिजी का प्रयत्न सर्वथा निष्फल नहीं हुआ। उन्हें बहुत अंशो में सफलता हस्तगत हुई और तदनुसार मुनिगण भी अपने कर्तव्य की ओरअग्रसर हुए।

यह ध्यान रखने की बात है कि-उस समय के सब ही चैत्यवासी शिथिल नहीं थे पर उनमें बहुत सुविहित, क्रियापात्र, उग्रविहारी, तपस्वी एवं ज्ञानी भी थे। जो शिथिलाचारी थे उनमें भी ऐसे कई असाधारण गुण विद्यमान थे कि उक्त गुणों से समाज पर उनकी अच्छी सत्ता एवं छाप थी। समाज उनके हृदय में जैनधर्म के प्रति गौरव व मान था। वे शासन की लघुता को अपनी आंखों से नहीं देख सकते थे। यही कारण था कि शिथिलता के शिकारी होने पर भी जैनधर्म के गौरव को जग जहार करने के लिये उन चैत्य-वासियों ने जो २ कार्य किये वे आज क्रिया उद्धारकों से एवं आचार विचार की पवित्रता का दम भरने वाले

साधुओं से नहीं किया जा सकते हैं। काम पड़ने पर वे धर्म के उत्कर्ष के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने में भी हिचकिचाहट नहीं करते थे। यद्यपि वे राजशाही शान शौकत से रहते होंगे तथापि माया कपट रूप मिथ्यात्व के मूल कारणों का तो स्वप्न में भी स्पर्श नहीं करते। जो कुछ वे करते लोक प्रत्यक्ष ही करते लुक छिप कर मुनिगुण विघातक कृत्यकर समाज के सामने पवित्रता का दम भरना उन्हें पसद नहीं था। यदि वे चाहते तो आज के साधु समाज के समान बाह्य पवित्रता को रख कर समाज को अपनी पवित्रता का धोखा देते ही रहते परन्तु ऐसा करना उन्हें मिथ्यात्व का पोषण करना ही प्रतीत हुआ। दूसरे वे शिथिल थे वो जैनधर्म के सख्त नियमों की अपेक्षा से ही न कि दूसरे मतावलम्बी साधु सन्यासियों की अपेक्षा से। इन साधु नाम धारियों की अपेक्षा तो उनका त्याग सहस्रगुना उत्कृष्ट एवं उत्तम था। उनके पूर्वाचार्यों का तो जैनसमाज पर अपार उपकार था अतः उनकी परम्परानुसार व उनके गुणों की उत्कर्षता के कारण चैत्यवासियों का उस समय तक अच्छा मान था।

उस समय की यह तो एक अलौकिक विशेषता ही थी कि सुविहित एवं शिथिलाचारी दोनों श्रमणों के विद्यमान होने पर भी परस्पर एक दूसरे के साथ द्वेष रखने, निंदाकरने, खण्डनमण्डन करने, उत्सूत्र प्ररूपित कर नया पन्थ निकालने या एक दूसरे को हीन बताकर समाज में फूट एवं कलह के बीज बोने के स्वप्न भी किसी को नहीं आते थे। उग्रविहारी श्रमण—शिथिलाचारियों को मार्ग स्खलित बन्धु ही समझते थे। यही कारण था कि, यदा कदा समयानुकूल सदा ही वे उन्हें आचार विचार की दृढ़ता के विषय में प्रेरित करते रहते पर समाज के एक आवश्यक अङ्ग को काटने का साहस नहीं करते; जैसा कि आज थोड़े बहुत मतभेदों में भी प्रत्येक्ष देखने में आता है। वे लोग स्थान २ पर श्रमण सभाएं कर उनको उनके कर्तव्य की ओर अभिमुख करते जिसको चैत्यवासी (शिथिलाचारी) भी हितकारक ही समझते। इन सभी कारणों से ही शासन की अपूर्व संगठित शक्ति विधर्मी वादियों से छिन्न भिन्न नहीं की जा सकी।

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी म. के शासन के समय जैन की संख्या करोड़ों की थी। छोटे, बड़े, सब ग्राम नगरों में सर्वत्र चैत्यवासियों का ही साम्राज्य था। क्या सुविहित और क्या शिथिलाचारी? प्रायः सब चैत्य में ही ठहरते थे। यदि किसी चैत्य में अनुकूल सुविधा न होने के कारण पौषधशाला या उपाश्रय में भी ठहरते तो भी किसी प्रकार का आपस में विरोध नहीं था। इस प्रकार के ऐक्य के ही कारण वे समाज का रक्षण, पोषण एवं वर्धन कर सके थे। वादी, प्रतिवादियों को पराजित कर विजयी बने थे। राजा महाराजाओं पर अपना प्रभाव जमा कर जैनधर्म की सुयशः पताका को सर्वत्र फहरा सके थे। यदि ऐसा नहीं करके वर्तमान साधु समाज के समान अपने गौरव एवं महत्त्व के लिये आपस में ही लड़ मरते तो समाज की आज न मालूम क्या अवस्था होती ?

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म. बालब्रह्मचारी थे। आपकी कठोर तपश्चर्या एवं अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रभाव से जया, विजया, सच्चायिका, सिद्धायिका, अम्बिका, पद्मावती, लक्ष्मी, और सरस्वती देवियां प्रभावित हो आपश्री की उपासना एवं सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझती थी। इस तरह आपका प्रभाव चतुर्दिक में चन्द्र चन्द्रिका वत् विस्तृत होगया था। साधारण जनता ही क्या ? बड़े २ राजा महाराजा भी आपके चरणों की सेवा लाभ ले अपने को भाग्यशाली समझते थे।

आपका विहार क्षेत्र बहुत विशाल था। मरुधर, मेदपाट, आवन्तिका, बुंदेलखण्ड, मत्स्य, शूरसेन,

कुरु, पाञ्चाल, कुनाल, सिन्ध कच्छ, सौराष्ट्र लाट, कोकण, और कभी २ इधर दक्षिण ओर उधर पूर्व तक भी आपने विहार किया ऐसा आपके जीवन चरित्र से स्पष्ट झलकता है। आपके आज्ञानुयायी श्रमणों की संख्या भी अधिक होने से प्रत्येक प्रान्त में धर्म प्रचार करने के लिये योग्य २ पद्विधरों के साथ योग्य २ साधुओं को भेज दिये गये जिससे मुनियों के अभाव में वे क्षेत्र धर्म से वंचित न रह सकें। यह तो हम पहिले ही लिख आये हैं कि व्यापार निमित्त महाजनसंघने सुदूर प्रान्तों तक अपना निवास बना लिया था अतः साधुओं को भी धर्म की दृढ़ता के लिये व नये जैन बनाने के लिये उन प्रान्तों में विचरना उतना ही आवश्यक था जितना महाजनों को व्यापार निमित्त परदेश में रहना। ऐसा करने से ही धर्म का अस्तित्व, एवं श्रद्धा का मार्ग स्थायी रह सकता था अतः आचार्यश्री ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये ऐसे नियमों का निर्माण किया कि जिनके आधार पर जैनधर्म का सुगमता पूर्वक प्रचार हो सके। विविध २ प्रान्तों में मुनियों को भेजकर आवश्यकतानुकूल उनमें परिवर्तन करते रहना व समयानुकूल सर्वत्र विहार कर धर्म प्रचारक मुनियों को प्रोत्साहित कर उनके प्रचार में उत्साह वर्धन करते रहना यह आचार्यश्री ने अपना कर्तव्य बना लिया। इससे कई लाभ होने लगे—एक तो उस प्रान्त के निवासियों पर धर्मके स्थायी संस्कार जमाने लगे, दूसरा मुनियों में आचार विचार विषयक पवित्रता आने लगी। तीसरा आचार्यश्री के परिभ्रमन में उनके प्रचार काय में नवीन उत्साह व आचार्यश्री के सहयोग का अपूर्व लाभ प्राप्त होने लगा इस तरह की नवीन २ स्कीमों से आचार्यश्री ने शिथिलता व्याधि विनाशक नूतन २ उपचार चिकित्सा प्रारम्भ की।

आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. एक समय विहार करते हुए कान्यकुब्ज प्रान्त की ओर पधारे। उस समय गोपगिरि में आचार्यबप्पभट्टसूरिजी विराजमान थे। आपश्री ने जब सुना कि आचार्यश्रीकक्कसूरि जी म. पधार रहे हैं तो वहां के राजा आम एवं सकल श्रीसंघ को उपदेश दिया कि आचार्यश्री कक्कसूरिज म. महान् प्रतिभाशाली आचार्य हैं। अपने भाग्योदय से ही आपका इधर पधारना हो गया है अपना कर्तव्य हो जाता है कि आचार्यश्री का बड़े ही समारोह एवं धामधूम पूर्वक स्वागत करे। आचार्यश्रीबप्पभट्टसूरि के उक्त कथन को श्रवण कर क्या राजा और क्या प्रजा, क्या जैन और क्या जैनेतर—सबके सब स्वागत के लिये परमोत्साह पूर्वक तत्पर हो गये। सबने मिल कर आचार्यश्री का शानदार जुलूस पूर्वक नगर प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि स्वयं अपने शिष्य मण्डली सहित सूरिजी के सम्मुख आये। और कक्कसूरीश्वरजी ने भी आपको समुचित सम्मान एवं बहुमान से सम्मानित किया। दोनों आचार्यों ने साथ ही में नगर में प्रवेश किया और दोनों ही आचार्य स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर एक ही पट्ट पर विराजमान हुए। उक्त दोनों तेजस्वी आचार्यों के मुख मण्डल के प्रतिभापुञ्ज को देख यही ज्ञात होता था कि नभ मण्डल से सूर्य और चंद्र उतर कर मृत्युलोक में आगये हैं। धर्म देशना के लिये भी आपस में विनय प्रार्थना करने के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने मङ्गलमय धर्म देशना देनी प्रारम्भ की। समय के अधिक होजाने के कारण विषय को विशद नहीं करते हुए आचार्यश्री ने संक्षिप्त किन्तु हृदय ग्राही उपदेश दिया जिसका उपस्थित जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आचार्यश्री बप्पभट्टसूरिजी म० जैन संसार के एक असाधारण विद्वान थे पर आचार्यश्रीकक्कसूरि प्रदत्त व्याख्यान को श्रवण कर कुछ समय के लिये आप भी विस्मय में पड़ गये। वे विचारने लगे कि—इतने दिवस पर्यन्त तो आचार्यश्री कक्कसूरिजी की महिमा केवल कानों से ही सुनता था पर आजके प्रत्यक्ष मिलाप ने तो कानों से सुनी हुई प्रशंसापेक्षा

आचार्यश्री के कई गुने अधिक गुण प्रकाशित कर दिये। वास्तव में कक्कसूरीश्वरजी जैनसमाज के आधार स्तम्भ है। शासन के चमकते हुए सूर्य हैं। जिन शासन हितैषी एवं शासनोद्धारक हैं। इस प्रकार आचार्य श्री की आचार्य वप्पभट्टसूरि ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की पश्चात् महावीर जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई। गोपाचल के घर घर में आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म. की खूब ही प्रशंसा होने लगी सब के हृदय में अनुपम भक्ति की अद्भुत भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ।

श्रमणसंघ मे परस्पर इतनी वत्सल्यता, विनय, भक्ति प्रेम एवं धर्म स्नेह था कि पार्श्वनाथ परम्परा एवं वीरपरम्परा नामक दो विभिन्न गच्छों के मुनि होने पर भी किसी के हृदय मे पारस्परिक विभिन्नता जन्य भावो का जन्म ही नहीं हुआ एक दूसरे का आपसी अनुरागान्वित व्यवहार देखकर किसी के हृदय में यह कल्पना भी नही होती थी कि अत्रस्थ श्रमण वर्ग में पृथक २ दो गच्छों के साधु वर्तमान है। स्थानीय श्रमण वर्ग ने तो आगन्तुक निर्ग्रन्थो की आहार पानी आदि से खूब ही वैयावच्च की। वास्तव में इसी प्रेम ने ही जैनसमाज को उस समय उन्नति के उन्नत शिखर पर आरूढ़ कर रक्खा था।

दोपहर को आचार्यश्रीकक्कसूरि, एवं आचार्य वप्पभट्टसूरि ने अपने विद्वान शिष्यों के साथ एकान्त में बैठ कर वर्तमान शासनोन्नति के विषय में बहुत ही वार्तालाप किया। दोनो आचार्यों की प्रत्येक बात में शासन के हित एवं उद्धार की ध्वनि झलक रही थी। धर्मोत्कर्ष के उपाय चिन्तवन किये जा रहे थे। साधु समजा में आई हुई शिथिलता के निवारण के लिये नियम निर्माण किये जा रहे थे। उस समय के आचार्यों को शासन की उन्नति के सिवाय वर्तमान कालीन साधुओं के समान आपसी कलह, कदाग्रह एवं वितण्डावाद मे समय गुजारना आता ही नही था। उनके रोम २ में शासन के प्रति गौरव, मान एवं प्रेम था अतः धर्म की लघुता; वे किसी भी प्रकार से सहन कर नही सकते थे।

आचार्यश्रीकक्कसूरि ने चैत्यवासियो की शिथिलता के विषय में सवाल किया उस पर श्रीवप्पभट्ट सूरि ने फरमाया—सूरिजी ! आप और हम सब चैत्यवासी ही हैं। अपने पूर्वज भी सदियों से चैत्यवास के रूप में चले आरहे है। चैत्यवास कोई बुरी या अनादरणीय वस्तु नहीं है। भगवान् महावीर के निर्वाण को करीब तैरह सौ वर्ष होगये हैं पर आज पर्यन्त किसी ने भी इस विषय का कुछ भी सवाल नहीं उठाया। जिसकी इच्छा चैत्य में ठहरने की हो वह चैत्य में ठहरे और जिसकी इच्छा पौषधशाला या उपाश्रय में रहने की हो वह पौषधशाला या उपाश्रय का आश्रय ले। इस विषय में विशेष तनातनी—खेंचातानी करना एकदम अयुक्त है कारण, वर्तमान में हम क्रान्ति मचा कर किन्हीं प्रयत्नों से मुनियों का चैत्यवास छुड़वा भी दें तो अपने खातिर गृहस्थों को नये २ मकान बनवाने पड़ेंगे। फलस्वरूप समाज के लाखोंरुपये यो ही पानी की तरह बरबाद होजावेंगे। दूसरी बात आरंभ, समारम्भ के भय व करना, करवाना और अनुमोदना के पाप से बचने के लिये तो उन्होंने चैत्यवास का आश्रय लिया था पर आज उसी को छुड़वाने में हमें उन्ही पापों का आश्रय लना पड़ेगा। इतनी चारित्र वृत्ति मे बाधा पहुँचाने के पश्चात भी अगर भविष्य को लक्ष्य में रख कर हमने चैत्यवास को छुड़वाने का अनुचित साहस किया तो निश्चित ही आपसी खेंचातानी में दो पक्ष होजावेंगे। एक चैत्यवास का जोरदार समर्थक और एक चैत्यवास की जड़ामूल से जड़ काटनेवाला विरोधी दल। इस प्रकार के आपसी विरोधी वातावरण के स्थापन होने से शासन की संगठित शक्ति का ह्रास हो जायगा। स्वधर्मी भाइयों का पारस्परिक प्रेम सूत्र छिन्नभिन्न

होजायगा। जिन विचार धाराओं को लक्ष्य में रख कर हमचैत्यवास का विच्छेद करना चाहते हैं वे भावनाएं तो एक ओर धरी रह जावेंगी किन्तु संघ में कलह एंव द्वेष के अंकुर, अंकुरित होने लग जयगे। भविष्य के परिणाम को जो ज्ञानी महाराज ही जानते हैं पर अभी ही इस का ऐसा कटुफल हमको सहन करना पड़ेगा कि हमें हमारे किये कृत्य का घोर पश्चात्ताप करना होगा। सूरीश्वरजीम० आप स्वयं विचारज्ञ, समयज्ञ,धर्मज्ञ, एवं मनीषी हैं। आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि साधुओं के चैत्य में रहने से ही अनार्यों, मलेच्छो एवं धर्मान्ध विधर्मियों के भीषण आक्रमणो से चैत्य की भलीभांती रक्षा हो सकती है। यदि श्रमणवर्ग चैत्य में रहना छोड़दे तो गृहस्थों से चैत्य की रक्षा होना असन्भव है कारण गृहस्थों को अपने घर के गोरखधन्धों से भी फुरसत नहीं मिलती है तो वे चैत्य की रक्षा किस तरह कर सकते हैं अतः मेरे दृष्टि कोण से तो चैत्यवास में भी जैन समाज का हित ही अन्तर्हित है।

आचार्य ककसूरी ने श्रीबप्पभट्टसूरि की आन्तरिक, हृदयग्राही चैत्यवास विषयकभावनाओं को श्रमण करने के पश्चात् आचार्यश्रीककसूरिजी ने कहा—सूरिजी ! मेरे कहने का अभिप्राय चैत्यवास को तोड़ने का सूचक नहीं है पर चैत्यावास में प्राप्त शिथिलता को दूर करने के उपायों के विषय में स्पष्टीकरण करने का है। वर्तमान में सब ही शिथिला एवं क्रियाहीन नहीं है; आप जैसे उग्र,विहारी, शासनोद्धारकों की भी समाजमें कभी नहीं है पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार नहीं करने वाले चैत्यवासी मुनियों की भी अल्पता नहीं है। बप्पभट्टसूरि—सूरिजी ! आपका कहना सर्वांश में सत्य है; वास्तव में जैसे निर्मल बदन एवं स्वच्छ वस्त्रा-भूषणों से ही शरीर की शोभा है वैसे ही आचार विचार की निर्मलता एवं क्रिया की पवित्रता ही साधुत्व जीवन का शृंगार है। पर इसके साथ ही साथ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि साहुकार की बड़ी दुकान में सब तरह का माल रहता ही है। दूकान दार किसी अल्प मूल्य वाले माल को या उस समय के लिये निरुपयोगी मालुम होने योग्य वस्तु को यों ही नहीं फेंक देता है वह समझता है आज हलके से हलकी ज्ञात होने वाली वस्तु भी कालांतर में कीमती हो सकती है अतः सब वस्तुओं को पूर्ण सम्भाल के साथ अपने पास रखना ही श्रेयस्कर है। इन्हीं विचारों से वह अपनी दुकान को सदा ही भरीपूरी रखता है। इसी तरह सूरीश्वरजी ! चारित्र पालन करना या आचार, व्यवहार विषयक नियमों में दृढ़ता रखना भी जीवों के कर्मा-धीन है। जिन जीवों के जितना चारित्र मोहनी कर्मों का क्षयोपशम हुआ है उतना ही वह निर्मल चारित्र पाल सकता है। चारित्र के पर्याय अनंत और संयम के स्थान असंख्य कहे हैं। एक छेदोपस्थापनीय चारित्र और दूसरे छेदापस्थापनीय चारित्र के पर्याय में षट्गुणी हानी वृद्धि होती है। शास्त्रकारों ने पांच प्रकार के पासत्थे बतलाये हैं पर उनमें भी चारित्र का सर्वथा अभाव नहीं कहा है। हां, जहां शिथिलाचार एवं क्रिया हीनता दृष्टि गोचर हो वहां हितकारी मधुर वचनों व प्रेम पूर्ण व्यवहार का उपयोग कर उन्हे उग्रविहारी व कर्तव्याभि मुखी बनाना अपना परम कर्तव्य है पर उनको समाज वहिष्कृत कर समाज के एक पुष्ट अङ्ग को काटना सर्वथा अनुचित है। सूरीश्वजी ! मैंने एतद्विषयमें आपश्री की श्रमण सभा करवा करवा कर शिथिलाचार को मिटाने की पद्धति को सुना; वह मुझे बहुत ही हितकर एवं श्रेयस्कर ज्ञात हुई। आपकी इस कार्य शैली की मैं हृदय से सराहना करता हूँ। मैं भी बनते प्रयत्न आपके इस शासनोत्कर्ष के कार्य में सहयोग देकर शासन सेवा का लाभ लेने के लिये कटिबद्ध हूँ। वास्तव में जितना उपकार इस प्रकार के प्रेम, स्नेह, सद्भाव, एवं एक्य से हो सकता है उतना द्वेष निंदा एवं अपने आचार की उत्कृष्टता सिद्ध करके दूसरे की लघुता बताने

से नहीं हो सकता है। इस से तो शासन में द्वेष एवं कलह की अपूर्व अग्नि ही प्रज्वलित होती है जिसमें धर्मोचित सर्वगुण नष्ट हो जाते हैं। अतः इस विषय का सफल उपाय जो अभी आप उपयोग में ला रहे हैं—सर्वथा उपयुक्त है। इस प्रकार शासन हित की बातें होने के पश्चात् वादी कुञ्जर केशरी आचार्य बप्प भट्टसूरि ने कहा—सूरिजी महाराज! जैन समाज पर आपके पूर्वजों का व आपका महान उपकार है। आज प्रत्येक प्रान्त में जो महाजनसंघ दृष्टि गोचर हो रहा है वह सब उन्हीं पूज्याचार्य स्वयप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि जैसे धुरंधर, युगप्रवर्तक, समयज्ञ आचार्यों की कृपा का फल है। उनके पश्चात् उपकेशगच्छ के जितने आचार्य हुए उन सबों ने भी प्रत्येक प्रान्त मे परिभ्रमन कर महाजनसंघ का रक्षण, पोषण एवं वर्धन किया है। इस प्रदेश में भी आचार्यश्रीदेवगुप्तसूरि का ही महान् उपकार हुआ है। यहां के राजा चित्रांगद को उन्होंने जैन बनाकर जैनधर्म का इस प्रान्त में खूब ही प्रचार करवाया था। सूरीश्वरजी के उपदेश से ही राजा चित्रागद ने एक विशाल जैनमन्दिर बनवा कर सुवर्णमय प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी। प्रतिमाजी के नेत्रो के स्थान पर बहुमूल्य दो ऐसे मणि लगवाये गये कि वे अपनी चमक से रात को भी दिन बना रहे हैं वह मन्दिर आज भी आचार्यश्री के गुणों की रह २ कर स्मृति करवा रहा है। सूरीश्वरजी के उपदेश से प्रभावित हो राजा ने ही जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब प्रजा उसके मार्ग का अनुसरण करे इसमें आश्चर्य ही क्या।

इस के प्रत्युत्तर में आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने कहा—आपका कहना सर्वथा सत्य है। पूर्वाचार्यों के उपकार ऋण से उऋण होने जितनी शक्ति तो हम में है ही नहीं। उनके कार्यों की स्मृति आज भी हमारे हृदय में नवीन उत्साह एवं नूतन क्रान्ति को पैदा कर देती है। उन्होंने शासनोत्कर्ष के लिये जो कुछ कार्य किया वह इस जिह्वा से सर्वथा अवर्णनीय ही है। आप जैसे प्रभाविक तो आज भी पूर्वाचार्यों के मार्ग का अनुसरण कर जैन शासन की प्रभावना कर रहे हैं। क्या आपने राजा आम को प्रतिबोध देकर जैनधर्म के विशाल प्रचार में सहयोग नहीं दिया ? आचार्य प्रवर! आपके नाम को श्रवण करके तो आज भी वादी लोग धूजते हैं। यदि आप जैसे वादी कुञ्जर केशरी जिन शासन स्तम्भ का आविर्भाव नहीं हुआ होता तो विधर्मी लोग जैन शासन की नाव को कमजोर बना देते। आपश्री ने इन्हीं सब वादियों के सम्मुख जिन शासन की उन्नत सुयश पताका को उन्नत रक्खी। इस प्रकार आचार्य देव परस्पर गुणों का अनुमोदन करते हुए शासन के हित की विचारणा किया करते थे जैसे आचार्यश्री ककसूरिजी म. प्रभाविक थे वैसा बप्पभट्टसूरिजी भी प्रतिभाशाली थे। दोनों आचार्यों का एक स्थान पर मिलाप होने से वहा के राजा एव जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने गोपगिरि में एक मास की स्थिरता की इस अवधि में आचार्यश्री बप्पभट्टसूरि के सत्संग समागम से उनका काल बहुत ही आनंद पूर्वक व्यतीत हुआ आचार्यश्रीकक्कसूरिजी को यह निश्चय होगया कि वर्तमान जैनाचार्यों में आचार्य बप्पभट्टसूरि वादियों का सामना करने में अनन्य ही हैं। यदि मैं अन्य प्रान्तों में विचार करूं तो भी इधर के प्रान्तों के लिये कोई भी विचारणीय प्रश्न नहीं कारण आचार्यबप्पभट्टसूरि स्वयं विचक्षण, उत्साही एवं सनद्ध हैं। इस प्रकार गोपगिरि आने से आपके हृदय में परम संतोष एवं आनंद हुआ।

इधर आचार्यबप्पभट्टसूरि को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वादी कुञ्जर केशरी सूरीश्वरजी के हृदय

में भी आचार्यकक्कसूरि के प्रति नवीन स्थान होगया। वे विचारने लगे कि जैसा मैं श्रीकक्कसूरिजी के लिये सुनता था वह सोलह आना सत्य ही निकला। आचार्यश्रीकक्कसूरिजी म० शासन के दृढ़ स्तम्भ हैं। ये जैसे विद्वान हैं वैसे ही प्रचार करने में शूरवीर हैं। शासन के हित की भावना से तो आपका रोम २ ओत प्रोत है यही कारण है कि आप अत्र तत्र सर्वत्र ही वादियों की दाल को नहीं गलने देते हैं। इस प्रकार पारस्परिक गुणग्रामों को करते हुए कई दिनों तक दोनों आचार्य श्री साथ में ही रहे।

कालान्तर के पश्चात् आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी ने सुना कि वादियों का जोर पूर्व की ओर बढ़ रहा है, अतः आचार्य बप्पभट्टसूरि से समयानुकूल परामर्श कर आपने अपने विद्वान शिष्यों के साथ पूर्व की ओर प्रस्थान कर दिया। उद्योगी एवं कर्मशील पुरुषों के लिये कौनसा कार्य दुष्कर होता है ? वे जहाँ जहाँ जाते हैं वहां ही अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से नवीन सृष्टि का निर्माण कर देते हैं। मनस्वी, कार्यार्थी के लिये संसार में कोई भी मार्ग दुरुह नहीं है। वे तो अपनी कार्य शक्ति की प्रबलता से हर एक मार्ग को सुगम एवं रमणीय बना देते हैं। तदनुसार हमारे आचार्यश्री जिस मार्गजन्य नाना परिषहों एवं यातनाओं को सहन करते हुए धर्म प्रचार की उच्चतम अभीप्सित भावनाओं से प्रेरित हो क्रमशः लक्षणावती के नजदीक पहुँचे। उस समय लक्षणावती में राजा धर्मपाल राज्य करता था। लक्षणावती नरेश को भी वादी कुञ्जर-केशरी आचार्यश्रीबप्पभट्टसूरि ही ने प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। राजा धर्मपाल ने कक्कसूरीश्वरजी का आगमन सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। आचार्यश्री की नैसर्गिक प्रशंसा को राजा धर्मपाल कई समय से सुनता आ रहा था अतः आज उनके प्रत्यक्ष दर्शन एवं चरण सेवा का लाभ लेकर अपने को कृतकृत्य बनाने के लिये वह उत्कण्ठित हो गया। जब आचार्यश्री लक्षणावती के बिलकुल समीप में पधार गये तब राजा धर्मपाल अपनी सामग्री लेकर श्रीसंघ के साथ सूरीश्वरजी के स्वागतार्थ सम्मुख गया। क्रमश आचार्यश्री का नगर प्रवेश महोत्सव भी लक्षणावती नरेश ने बड़े ही शानदार जुलूस के साथ में किया। नगर प्रवेशानंतर स्थानीय मन्दिरों के दर्शन का लाभ लेकर आचार्यश्री उपाश्रय में पधारे। स्वागतार्थ आगत मण्डली को प्रथम माङ्गलिक बाद हृदय स्पर्शिनी देशना दी। सूरीश्वरजी के उपदेश एवं बोलने की सविशेष पटुता का श्रोताओं के हृदय पर जादू सा प्रभाव पड़ा। आचार्यश्री की प्रतिभायुक्त वाणी से प्रभावित हो राजा धर्मपाल एवं लक्षणावती श्रीसंघ ने चातुर्मास का परम लाभ प्रदान करने के लिये सूरिजी की सेवा में आग्रह भरी प्रार्थना की। आचार्यश्री ने भी उनका अधिक आग्रह देख धर्मोन्नति रूप लाभ को लक्ष्य में रख वह चातुर्मास लक्षणावती में ही कर दिया। इस चातुर्मास के निश्चय से श्रीसंघ की भावना में और भी दृढ़ता आगई। राजा धर्मपाल तो सूरीश्वरजी के सत्संग से जैन-धर्म के रंग में रंग गया। उसको जैनधर्म के सिवाय अन्य धर्म नीरस एवं सारहीन प्रतीत होने लगे। जैनधर्म का स्याद्वाद सिद्धान्त तो उन्हें बहुत ही रुचिकर व्यवस्थित एवं उपयोगी ज्ञात होने लगा। इस प्रकार राजा के संस्कारों को जैन धर्म में सविशेष स्थायी एवं दृढ़ करके श्रीसंघ के धर्मोत्साह में भी उपदेश के द्वारा आशातीत वृद्धि की। चातुर्मास के सुदीर्घकाल में अष्टाह्निका महोत्सव, मास क्षमण, पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, सामायिक, प्रतिक्रमणादि धार्मिक कृत्यों के आधिक्य से आचार्यश्री ने लक्षणावती को धर्मपुरी बना दिया। इस प्रकार धर्मोद्योत करते हुए चातुर्मासानंतर आचार्यश्री विहार करते हुए क्रमशः वैशाली राजगृह वगैरह प्रदेशों में घूमते हुए पाटलीपुत्र पधारे। आपके आगमन के समाचार प्रायः पहले ही पहुँच चुके थे अतः आचार्यश्री के नाम श्रवण मात्र से वादियों

की मुखाकृति कान्ति विहीन निस्तेज हो गई। जैन मुनियो के आगमन के अभाव में जो उन्होंने अपना मिथ्या गौरव इत उत थोड़े बहुत रूप मे प्रसारित किया था उसके नष्ट होने के समय को नजदीक आया समझ उनके हृदय में नवीन खलबली मच गई। जैसा सहस्त्ररश्मि प्रचण्ड ताप को धारण करने वाले मार्तण्डोदय मात्र से निबिडतम तिमिर राशि अपना-साम मुंह बनाये भगजाती है वैसे वादी लोग सूरीश्वरजी के आगमन के समाचारो से इत उत पलायन करने लग गये।

पाटलीपुत्र आते ही सूरिजी म० ने स्पष्ट रूप में अहिंसा की उपादेयता एवं हिंसा जन्य कटु फलों की कटुता के कारण देव देवियों को दी जाने वाली पशुबली व यज्ञयागादि कृत्यों की निरर्थकता का प्रतिपादन किया किन्तु किसी भी वादी की हिम्मत आचार्यश्री का सामना करने की न हो सकी। अपने मत का खडन सुनते हुए भी अपनी स्वाभाविक कमजोरी के कारण वे आचार्यश्री से वाद विवाद करने मे सर्वथा हिचकिचाहट ही करते रहे। आचार्यश्री ने भी दो वर्ष पर्यन्त पूर्व के प्रान्तों में परिभ्रमण कर वाम-मार्गियो की नीव को एक दम खोखली कर डाली। पश्चात् वीस तीर्थङ्करो की परम पवित्र निर्वाण भूमि श्री सम्मेत शिखर आदि पूर्व के तीर्थों की यात्रा के बाद आपश्री ने कलिंग की ओर पदार्पण किया। कलिङ्ग प्रान्त के खण्डगिरी-उदयगिरी जो कुंवार कुमारी पर्वत या शत्रुञ्जय गिरनार अवतार नामक जैन तीर्थों के नाम से प्रसिद्ध थे— आचार्यश्री ने यात्रा की। कलिङ्गवासियों को उपदेश सञ्जीवनी जड़ी से धर्म कार्य में चैतन्य शील किया इस प्रकार कलिङ्ग के सफल चातुर्मास के पश्चात् विकट प्रदेशों में परिभ्रमण करते हुए दक्षिण प्रान्त से क्रमशः महाराष्ट्र प्रान्त की ओर सूरीश्वरजी ने पदार्पण किया। आचार्यश्री के विहार की विशालता, धर्म प्रचार की उत्कण्ट भावनाओं की आदर्शता एवं क्रिया की पवित्रता आचार्यश्री के परिभ्रमन, कार्य ढंग एवं आचार विचार की दृढ़ता से जानी जा सकती है। अस्तु, महाराष्ट्र प्रान्त में आचार्य श्री के शिष्य समुदाय पहिले से ही धर्म प्रचार कर रहे थे। हम पहिले ही लिख आये हैं कि महाराष्ट्र प्रांत श्वेतांबर दिगम्बर—दोनों साधुओं का केन्द्र स्थान था और समय २ पर बाह्य सिद्धान्तों के साधारण मतभेद के कारण कुछ मनोमालिन्य भी आपस में चलता था—ठीक यही हाल इस समय भी वर्तमान था। इधर श्वेताम्बर दिगम्बर साधुओं में कुछ आपसी मलीनता थी और उधर शिवोपासक पण्डितो ने जैन शासन को बहुत धक्का पहुँचा दिया था ठीक उसी समय पुण्य योग से आचार्यश्री का विहार भी महाराष्ट्र प्रान्त में हो गया। आचार्यश्री ने पहिले दिगम्बर श्रमण बन्धुओं को समझाया—बन्धुओ ! घर के आपसी क्लेश में हम अपने शासन मात्र को निर्जीव बना देंगे। अभी तो हमारा कर्तव्य है कि हम श्वेताम्बर और दिगम्बर एक पिता के पुत्र होने के कारण आपस में मिलकर वादियों के द्वारा शासन पर होते हुए आक्रमणों को रोकें और जैन शासन की रक्षा करें। भाइयों ! आपसी कलह में न आपको लाभ होने वाला है और न हमको ही। बीच में तीसरे विधर्मी ही अपना महाराष्ट्र प्रान्त में डंका बजा देवेंगे। इससे जैन शासनमात्र की लघुता होगी और हमारी अज्ञानता एव अकर्मण्यता विश्व विश्रुत होजायगी। इस समय तो शासन की रक्षा के लिये आपसी बाह्य मतभेद को तिलाञ्जली दे अपने को एक हो जाना चाहिये। आचार्यश्री का उक्त कथन दिगम्बर श्रमणों को भी शासन के लिये हितकारक एवं मन को रुचि कर प्रतीत हुआ। वे भी आपसी कलह का त्याग कर जैनत्व का प्रचार करने में कटिबद्ध होगये।

इधर आचार्यश्री ने उन शिव धर्मियों का पीछा किया। वे जहा २ जाकर जैनधर्म का खण्डन और

स्व धर्म का प्रचार करते थे आचार्यश्री तत्काल वहां जाकर शास्त्रीय युक्तियों के युक्तियुक्त प्रमाणों से वहां का जन समाज को पुनः अपनी ओर आकर्षित कर लेते। इस प्रकार होते रहने के कारण शिव पण्डित के हृदय में जो २ आशाएं थी वे सब शनैः शनैः निराशा के रूप में परिवर्तित होने लगी। अन्त में परिभ्रमन करते हुए सूरिजी और शिव दोनों का एक स्थान पर मिलाप होगया। आचार्य ने शिव पण्डित को शास्त्रार्थ करने के लिये चेलेञ्ज दिया। उसने पण्डित के अभिमान में उसे स्वीकृत का राज सभा में वाद विवाद करने का निश्चय किया। निर्धारित किये हुए दिन को राज सभा में दोनों का यज्ञ-समर्थन एवं यज्ञोत्थापन विषय में शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में पण्डितजी को अहिंसा देवी की पवित्र गोद का आश्रय लेना ही पड़ा। उनके हृदय में स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति अपूर्व गौरव पैदा हो गया। अपने किये हुए खण्डन का उन्हें रह २ कर पश्चाताप होना लगा। आचार्य श्री कक्कसूरिजी प्रतिमा के सामने उन्हे भी एकदम नतमस्तक होना पड़ा। इससे सूरीश्वरजी की प्रतिष्ठा महाराष्ट्र प्रान्त में बहुत दूर तक फैल गई। इस प्रकार दक्षिण में पधारने से शासन रक्षा रूप महालाभ आचार्यश्री को प्राप्त हुआ। आपने तीन चातुर्मासे महाराष्ट्र प्रान्त में किये। इस दीर्घ अवधि के बीच आपश्री ने कई महानुभावों को दीक्षा देकर उनकी आत्माओं का कल्याण किया। कई मंदिरों की प्रतिष्ठाए' करवा कर जैनधर्म को दृढ़ एवं स्थिर किया। मांसाहारियों को अहिंसा धर्मानुयायी बना जैन धर्म की खूब ही प्रभावना की।

तत्पश्चात् वहां से विहार कर क्रमशः विदर्भ प्रान्त में परिभ्रमन करते हुए आचार्य श्री ने कोकण को पावन किया। वहां की जनता को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनधर्म का आशातीव उद्योत किया। सोपार पट्टन में चातुर्मास करके धर्म की नींव को दृढ़ एवं स्थायी बना दिया। चातुर्मास के बाद लाट प्रान्त में सूरीश्वरजी पधारे भरोंच, स्तम्भपुर, वटपुर करणावती, खेटकपुरादि नगरों में परिभ्रमन करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधार कर आपश्री ने परम पावन सिद्धगिरि की यात्रा की। आत्म शान्ति का अनुपम आनंद प्राप्त करने के लिये आपने कुछ समय तक वहां पर विश्रान्ति ली। इस अवधि के बीच मरुधर प्रान्त से सिद्धागिरि की यात्रा के लिये एक संघ आया और एक ओर कच्छ के भावुक भी यात्रार्थ संघ लेकर आये। दोनों प्रान्तों के श्रीसंघों ने आचार्यश्री को अपने २ प्रान्तों में पधारने के लिये आग्रह भरी प्रार्थना की इस। हालत में सूरीश्वरजी असमंजस में पड़ गये कि कच्छ की ओर विहार करू' या मरूभूमि की ओर ? इसी विचार में निमग्न बने हुए आचार्यश्री के पास में रात्रि को देवी सच्चायिका ने आकर परोक्ष रहकर वंदन किया। आचार्यश्री ने धर्म लाभ देकर अपने विहार के लिये देवी से उचित सलाह मांगी। देवी ने कहा आचार्य देव ! मरूभूमि में पधारने से हम तो कृतार्थ अवश्य होवेंगे पर आपको ज्यादा लाभ कच्छ भूमि की ओर पधारने से ही प्राप्त होवेगा। सूरिजी ने भी देवी के परामर्शानुसार कच्छ प्रान्त की ओर विहार करने का निर्णय कर लिया। बस, दूसरे दिन कच्छ संघ की विनती को स्वीकार आचार्यश्री ने उधर ही विहार कर दिया। क्रमशः सौराष्ट्र में भ्रमन करते हुए आप कच्छ में पधारे। उस प्रदेश में परिभ्रमन कर आप भद्रेश्वर में पधारे। आपका चातुर्मास भी वहीं पर हुआ। आपके त्याग वैराग्य मय व्याख्यान से प्रभावित हो कई महानुभाव संसार से विरक्त हो गये। उत्कवैरागियों में एक श्रेष्ठि गौत्रीय शा. लाढुक के पुत्र देवसी जो कि स्यावीरा था—केवल दो मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर दीक्षा के लिये उद्यत हो गया। चातुर्मास के बाद शा.देवसी आदि दश नर नारियों ने दीक्षा लेकर सूरीश्वरजी के पास में आत्म कल्याण किया। बाद

में आप सिंध प्रदेश में पधारे। दो चातुर्मास सिंध में करके सर्वत्र आपने धर्म प्रचार को बढ़ाया बाद में पंजाब को पावन बना कर दो चातुर्मास पञ्जाब में भी कर दिये। पश्चात् आप कुरु की ओर पधारे। हस्तनापुर की स्पर्शना कर वह चातुर्मास आपने माथुरा मे आकर किया। उस समय मथुरा में जैसे जैनियो की घनी आबादी थी वैसे बौद्धो की भी बहुत से मन्दिर, संघाराम और मठ थे। उक्त मठो में सैंकड़ों बौद्धभिक्षु वर्तमान रहते थे।

आचार्यश्री कक्कसूरि ने मथुरा में चातुर्मास कर जैनधर्म की विजय वैजन्ती सर्वत्र फहरादी। सूरिश्वरजी ने वहां शा. करमण के बनवाये हुए महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कर बाई। १२ नर नारियो को जैन धर्म में दीक्षित कर करके जैन धर्म की खूब प्रभावना की।

तत्पश्चात् सूरीश्वरजी म. मथुरा से बिहार कर क्रमशः ग्राम नगरों में होते हुए अजयपुर नगर में पधारे। वहां के श्रीसंघ ने आपका अच्छा सत्कार किया। वहां से अपने मरुभूमि की ओर पदार्पण किया। शाकम्भरी, मेदिनीपुर हंसावली, पद्मावती, नागपुर, मुग्धपुर होते हुए आप रत्नावती नगरी मे पधारे। वहां सुचन्ति गौत्रीय शा. गोल्हा के पुत्र नारा को दीक्षा दी। वहां से आप खटकुम्प नगर पधारे। वहां के श्री संघ ने आपका शानदार जुलूस के साथ स्वागत किया। संघ के सत्याग्रह से चातुर्मास भी आपने वहीं पर कर दिया। खटकुम्प नगर के चातुर्मास में धर्म का खूब उद्योत हुआ। बाद आप बिहार कर माण्डव्य पुर होते हुए उपकेशपुर पधारे। सूरिजी महाराज को इस भ्रमन में करीव वीस वर्ष लग चुके थे। इस भ्रमन काल में आपने जैन धर्म की आशातीत प्रभावना की। आपने अपने जीवन काल में अनेक दिग्गज वादियों से भेंट कर उन पर अमिट प्रभाव जमा दिया। इनता ही क्या पर जिस अहिंसा का प्रचार अनेक उपदेशकों से होना मुश्किल था उसी अहिंसा का प्रचार हिंसा के कट्टर हिमायतियों के हाथ से हो जाना क्या कम महत्व की बात है ? इसका सम्पूर्ण श्रेय हमारे आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी म को ही है।

आचार्यश्री कक्कसूरि जिस समय कोकण में विहार कर रहे थे उस समय सौपारपट्टन में एक यक्ष का महान् उपद्रव हो रहा था। इस उपद्रव के कारण नगर भर में त्राहि २ मच गई वहां के राजा जयकेतु ने एक सभा की और कहा—सुख शान्ति के समय तो प्रत्येक धर्म वाले, धर्म गुरु जाप जप करवाते हैं, वरणी वैठाते हैं, शान्ति करवाते हैं तब इस प्रकार की अशान्ति के समय वे धर्म और धर्म गुरु कहा चले गये हैं ? शान्ति पाठ व जाप जप कहां चले गये हैं ? मैं तो यह सब धर्म का ढोंग ही समझता हूं। यदि किसी धर्म में सचाई एव चमत्कार हो तो इस उपद्रव के समय में वह बतावे—मैं उसी धर्म को स्वीकार कर उस धर्म का परमोपासक बन कर उसी धर्म का प्रचार बढाऊँगा।

बस, प्रत्येक धर्म वाले अपने २ महात्माओं को बुलवा कर धर्मानुष्ठान करवाने लगे। जैन लोग इस दौड धूप में कब पीछे रहने वाले थे; उन्होने भी अपने महान् प्रतापी आचार्यश्री कक्कसूरि को बुलाया कक्क सूरीश्वरजी का बड़े ही समारोह पूर्वक नगर प्रवेश महोत्सव किया। जब ब्राह्मणादि वर्गो के जप, जाप, यज्ञानुष्ठान वगैरह कार्य समाप्त हुए तब जैनियों की ओर से भी अष्टान्हिका महोत्सव के अन्त में वृहत् शान्ति स्नात्र पढ़ाई गई। इसका जुलूस इतना जोरदार निकाला गया कि सब लोग आश्चर्यान्वित होगये। राजा जयकेतु वगैरह भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। सूरिजी के यशः कर्म का उदय था अतः इधर शान्ति स्नात्र पढ़ाई और उधर रात्रि में यक्ष, आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर कहने लगा—पूज्य

गुरुदेव ! इस नगर के राजा बड़े ही अज्ञानी हैं। बिना इन्साफ किये ही मुझे मृत्यु दण्ड दिया अतः अन्त समय में एक मुनि के सिखाये हुए नवकार मन्त्र का ध्यान करने से मैं मरकर यक्षयोनि में पैदा हुआ। देव योनि में पैदा होने के पश्चात् मुझे बहुत ही क्रोध आया और उसी का बदला मैंने इस रूप में लिया। आपश्री ने हम सब देवों का सत्कार किया है इसलिये मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। यह देव योनि भी आप महात्माओं की कृपा से मिली है अब आप आज्ञा फरमावें—मैं क्या करूँ ? सूरिजी ने कहा—देव ! नवकार मंत्र का ऐसा ही प्रभाव है। जो इस पर श्रद्धा विश्वास रक्खे तो देवयोनि ही क्या ? मोक्ष का अक्षय सुख भी सम्पादन किया जा सकता है। दूसरा किसी व्यक्ति ने अज्ञानता से किसी का बुरा भी किया हो तो उसका बदला लेने में गौरव नहीं अपितु उसको क्षमा करने में ही गौरव है। तीसरा-एक व्यक्ति के अज्ञानता पूर्ण अपराध के लिये सारे नगर के नागरिकों को कष्ट देना कितना जबर्दस्त अन्याय है ? खैर, अब आप शान्त होकर उपद्रव को शान्त करें। यदि आप अपनी देवयोनि का सदुपयोग करना चाहते हो तो कई स्थानों पर होने वाले देव देवियों के नाम पर हजारों जीवों के वध को रोकें। उन जीवों के शुभाशीर्वाद एवं दयामय धर्म के प्रभाव से आपका भवान्तर में भी आपका कल्याण हो।

सूरिजी का उक्त हितकर उपदेश यक्ष को बहुत ही रूचिकर ज्ञात हुआ। उसने आचार्यश्री के उपदेश को शिरोधार्य कर आगे से ऐसे आकार्य नहीं करने का सूरिजी को विश्वास दिलाया। पश्चात् यक्ष सूरिजी को वन्दन कर स्व स्थान चला गया। और कह गये कि जब आप याद करेंगे सेवा में हाजिर हूँगा।

प्रातःकाल सूरीश्वरजी ने अपने व्याख्यान की विस्तृत परिषदा में राजा प्रजा को इस प्रकार कहा—इस उपद्रव का मुख्य कारण राजा का प्रमाद ही है कारण, वे बिना परीक्षा किये हुए अपने अनुचरों के विश्वास पर कभी २ निर्दोषी को दोषी बना कर प्राण दण्ड जैसे भयङ्कर दण्ड भी दे देते हैं। आपके यहां के उपद्रव का भी यही कारण है इस लिये भविष्य के लिये न्याय होना चाहिये। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि आज से ही यह उपद्रय शान्त हो जायगा। बस, सूरीश्वरजी के उक्त शान्ति प्रदायक वचनों को सुन कर सब के, हृदय में शान्ति का अपूर्व प्रवाह, प्रवाहित होने लगा। राजाने भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सूरीश्वरजी के चरण कमलों में जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' की युक्तयनुसार और भी कई भद्रिकों ने आत्मकल्याण की ऊचतम अभिलाषा से जैनधर्म को अङ्गीकार किया। इस तरह आचार्य श्री के अपूर्व प्रभाव से जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

एक दिन राजा जयकेतु ने सूरिजी की सेवा में आकर निवेदन किया—पूज्य गुरुदेव ! आपने जो सभा में फरमाया था कि उपद्रव का कारण निर्दोषी को दोषी समझ कर दण्ड देने का है—सो ठीक है। मुझे उस अपराध की अब यथावत् स्मृति हो गई है पर मेरे इस जीवन में इस प्रकार की कितनी ही भूलें हुई होंगी। प्रभो ! अब उसके लिये ऐसा कोई सफल उपाय बताइये जिससे, मैं इन पापों से बच सकूं। वास्तव में राज्येश्वरी नरकेश्वरी ही है ! इस पर सूरिजी ने कहा—राजेश्वरी होना बुरा नहीं है पर उसमें सावधानी रखना नितान्त आवश्यक है। यदि राजा चाहें तो अपनी आत्मा के साथ अनेक अन्यआत्माओं का भी कल्याण कर सकता है। पूर्वकालीन अनेक ऐसे राजा हुए है कि जिन्होंने राज्यतन्त्र चलाते हुए अपनी आत्मा के साथ अनेक दूसरों की आत्माओं का भी कल्याण किया है। अब आपके लिये भी यही उपाय है कि आप जनता की भलाई और धर्म की प्रभवना के लिये जी जान से प्रयत्न करें। राजा प्रजा का पालन करने वाले

माता पिता कह लाते है अतः आप भी दुःखी एव दीन प्राणियो को सुखी बनावें अन्याय पूर्वक जनता से कर न ले विना अपराध किसी को दण्ड न दे अपुत्रियो का द्रव्य वगैरह हरण नहीं करें। सर्व साधारण के हितार्थ भव्य मन्दिर बनवावें। तीर्थ यात्रार्थ सघ निकावें। अमरी पडहा फिरावें जिससे इस भव और परभव में आपका कल्याण हो। राजा ने सूरिजी के हितकारी वचन सुनकर यह प्रतिज्ञा करली की—मैं जान बुझ कर किसी पर भी अन्याय नहीं करूंगा। अपुत्रियों का द्रव्य नहीं लूंगा। इस प्रतिज्ञा के साथ ही साथ मन्दिर बनवाने व तीर्थ यात्रार्थ सघ निकालने का भी निश्चय कर लिया।

श्रीसंघ व राजा के अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चातुर्मास सौपारपट्टन में ही कर दिया। इससे राजा की धर्म भावना और भी बढ़ गई। राजाने चौरासी देहरी वाला मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। श्री शत्रुञ्जय यात्रार्थ सघ निकालने के लिये भी तैय्यारियां करना शुरू कर दिया। चातुर्मास समाप्त होते ही राजा जयकेतु के संघपतित्त्व में संघ ने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। पश्चात् मन्दिर के तैयार होजाने पर जिनालय की प्रतिष्ठा भी सूरिजी से करवाई। आचार्य कक्कसूरि महा प्रभावशाली आचार्य हुए। इस प्रकार आपका प्रभाव कई राजाओं पर हुआ। इसमे जैन शासन की अधिकाधिक उन्नति एवं प्रभावना हुई।

एक समय आचार्य कक्क सूरि विहार करते हुए जंगल से पधार रहे थे। मार्ग में उन्हे कई अश्वारूढ़ व्यक्ति मिले। उनके कमरों में तलवारें लटक रही थी। हाथों में तीर कमान थे। एक दो व्यक्तियो ने बन्दूकें भी हाथो में ले रक्खी थी। उनके चेहरे पर भव्याकृति के साथ ही साथ कुछ क्रूरता भी झलक रही थी। घोड़ो के पीछे २ कई शीघ्र गामी ऊंट भी आरहे थे। क्रमशः वे सवार सूरिजी के नजदीक आगये तो उनकी क्रूरता से भयभीत हो क्षुद्र वनचर जीव शृगाल, हिरन वगैरह इधर उधर अपने प्राणो की रक्षा के लिये लुकते छिपते हुए दौड़ कर रहे थे सूरीश्वरजी के हृदय में अश्वारूढ़ सवारों की अज्ञानता व निर्दयता पूर्ण व्यवहारों पर व भगते हुए शृगाल, कुरंगादि वनचर जीवों की प्राण रक्षा निमित्त विशेष दया के अङ्कुर अंकुरित हो गये। उन्होने तुरन्त ही आगत अश्वारूढ़ सवारों को उद्देश्य कर कहा - महानुभावों! ठहरिये। सवारों ने सूरीश्वरजी की ओर दृष्टि करके कहा—हमें ठहराने का आपका क्या प्रयोजन है? आप हमें क्या कहना चाहते हैं, शीघ्र कह दीजिये। हमारा शिकार हमारे हाथो से जारहा है अतः किञ्चिन्मात्र भी विलम्ब मत कीजिये।

सूरिजी—आपके चेहरे की भव्यता व मुखाकृति की अनुपम सुन्दरता से अनुमान किया जाता है कि अवश्य ही आप लोग अच्छे खानदान के हैं। उच्च खानदान व कुलीन घराने के होकर के भी शृगाल, कुरंगादि दयनीय जीवो को मारने रूप जघन्य कार्य को करने के लिये आप लोग कैसे उद्यत हुए हो, समझ में नहीं आता? देखिये आप लोगो की निर्दयता जन्य क्रूर प्रवृत्ति के कारण ये वनचर प्राणी कितने भय भ्रान्त हो रहे हैं? आपका क्षत्रियोचित कर्त्तव्य तो यही है कि आप लोग दया करने योग्य इन दीन जीवों पर दया करके इनके रक्षण रूप स्वकर्त्तव्य का पालन करें। जरा धर्म शास्त्र के सूक्ष्म तत्वों का मनन पूर्वक मन्थन कीजिये, आपको सहज ही ज्ञात होजाय कि निरपराधी जीवों को तो मारना क्या पर थोड़ा कष्ट पहुँचाना भी भयंकर पाप है। अभी आप इस प्रकार के कुत्सित कार्य को करके आनन्दानुभव करें पर परभव में इस का बदला तो इससे भी भयङ्कर रूप में आपको देना पड़ेगा। "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" अपने किये—शुभ-सुख रूप, अशुभ-दुक्ख रूप कर्मों के फल को भोगे विना कर्मों से छुटकारा नहीं मिलता

है। चाहे पुण्य के विशेषोदय से आपको अपने दुष्कर्मों की कटुता का विशेषानुभव अभी नहीं होता होगा पर सांसारिक जीवो को अनेक दुःखों से दुखी व पौद्गलिक-सांसारिक सुखों से सुखी देख कर यह अनुमान तो सहज ही में लगाया जा सकता है—ये सब उनके पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मों के ही परिणाम हैं। इस प्रकार की सासांरिक विचित्रता को देख कर आप शान्ति पूर्वक अपने मन में विचार कीजिये कि आपका यह शिकार रूप कार्य कहां तक आदरणीय है ?

सूरीश्वरजी के द्वारा कहे हुए इन मार्मिक शब्दों का उन दयाहीन मनुष्यों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा कारण उनकी परम्परागत प्रवृत्ति ही ऐसी थी कि वे कर्म बंधक इस जघन्य कार्य को भी धर्म-वर्धक वीरत्व सूचक कार्य समझते थे। अस्तु, वे सब एक साथ बोल उठे—महात्मन् ! शिकार करना तो हम क्षत्रिय लोगो का परम्परागत धर्म है। और हमारे गुरु भी हमें यही शिखाते हैं अतः इसमें विचार करने जैसी बात ही क्या है ?

सूरिजी—यह कर्त्तव्य आपको किसने बतलाया ? यदि किसी स्वार्थ लोलुप व्यक्ति ने इसे आपका धर्म कर्तव्य बताया है तो निश्चित ही वह मनुष्य आपका सत्पथ प्रदर्शक नहीं अपितु शत्रुवत् सन्मार्ग से स्खलित करने वाला, कुगति योग्य कार्यों को करवाने वाला शत्रु से भी भयङ्कर शत्रु है। इस व्यक्ति ने तो अपने तुच्छ स्वार्थ की सिद्धि के लिये आप लोगों को सीधा नरक का असह्य यातनाभय दुष्ट मार्ग वतलाया है। धर्म शास्त्रों ने तो हिंसा को कर्म नहीं किन्तु दुर्गति प्रदायक पाप कहा है। शास्त्रों में उल्लेख है कि—महारम्भी (बहुत आरम्भ समारभ करने वाला) महा परिग्रही (महा ममत्वी) पञ्चिन्द्रिय घातक और मांसाहारी—उक्त चार कार्यों को करने वाला मनुष्य अवश्य ही नरक का पात्र होता है। फिर आप इस प्रकार जुगुप्सनीय पाप कार्य को करके नारकीय जीवन से कैसे बच सकेंगे ? महानुभावों ! नरक में ऐसी घोर वेदना भोगनी पड़ती है की साधारण मनुष्य तो कहनेमें ही असमर्थ है पर ज्ञानी पुरुषों ने कहा है कि—

श्रवण लवनं नेत्रोद्धारं करक्रमपाटनं, हृदय दहनं नासाच्छेदं प्रतिक्षण दारुणम् ।
कटविदहनं तोक्ष्णपातत्रिशूल विभेदनं, दहन वदनैः कंकैर्घोरैः समन्तविभक्षणम् ॥

अर्थात्—कान के टुकड़े करना, आंखो को खेंच खेंच कर बाहिर निकालना, हाथ पैरों को चीरना, हृदय को जलाना, पल पल में नाक को काटना, कमर को जलाना, तीक्ष्ण धार वाले त्रिशूल से बींधना। अग्नि जैसे मुख वाले अति भयंकर कंक पक्षियों से चारों बाजु को खिलवाना, (यह सब नरक के भयंकर दुःख हैं।)

"तीक्ष्णैरसिभिर्दीप्तैः कुन्तैर्विषमैः परश्वधैश्चक्रैः। परशुत्रिशूल मुद्गरतोमरवासी मुषण्ढीभिः ॥

अर्थात्—तीक्ष्ण धारवाली, चमकती हुई तलवारों से भयंकर बरछियों से, परशुओं से, चक्रों से, त्रिशूलों से, कुठारों से, मुग्दरों से, भालाओं से, फरपिओं से (नरक के जीवों को दुःख देते हैं)

"सम्भिन्नतालु शिरसाच्छिन्न भुजाश्छिन्नकर्णनासौष्ठाः ।
भिन्न हृदयोदरान्त्रा भिन्नाक्षिपुटाः सदुःखार्त्ताः ॥"

अर्थात्—जिनके तालु और मस्तक विदीर्ण हो गये हैं जिनके हाथ टूट गये हैं जिनके कान, नाक और होठ (औष्ट) छेदित हो गये हैं जिनके हृदय और आन्तड़ियें टूट गई हैं जिनके अक्षपुट भी शस्त्रों से

भेदित हो गये हैं—ऐसे दुःखी नारकी के जीवों को होते हैं।

छिद्यन्ते कृपणाः कृतान्त परशोस्तीक्ष्णेन धारासिना ।
क्रन्दन्तो विपवीचिभिः परिवृत्ताः सम्भक्षण व्यावृत्तेः ॥
पाट्यन्ते क्रकचेन दारुवदसिन प्रच्छन्न बाहुद्वया ।
कुम्भीषु त्रपुपान दग्ध तनवो भूषासु चान्तर्गताः ॥

अर्थात्—गरीब बेचारे नारकी के जीव भयकर कुल्हाड़ियों से छेदे जाते हैं। तीक्ष्णधार वाली तलवारों को देखकर बूम मारते हैं—चिल्लाते हैं। खाजाने के लिये उद्यत बने हुए सर्पों से आक्रान्त करते है। दोनों हाथ ढका गये हों वैसे लकड़े के मुआफिक करवत से काटे जाते है। कुम्भी तथा सोना वगैरह गलाने की कुलड़ी में गरम किये हुए सीसे के रस को रह २ कर पीलाने से नरक के जीवो का शरीर जला हुआ होता है।

इसके सिवाय विष्णु पुराण में नरक में विषय में उल्लेख करते हुए लिखा है—कि

"नरके यानि दुःखानि पाप हेतुभवानि वै। प्राप्यन्ते नारकैर्विप्र! तेषां संख्या न विद्यते ॥"

अर्थात्—हे ब्राह्मण! नरक में पाप की अधिकता के कारण उत्पन्न हुए नरक के जीवो को जो दुःख प्राप्त होते हैं उसकी संख्या नहीं कही जा सकती है।

सूरीश्वरजी के उक्त हृदय भेदी मार्मिक शब्दो के उपदेश ने उनके हृदय पर पर्याप्त प्रभाव डाला। उनके मानस क्षेत्र में सत्वर दया के अकुर अकुरित हो गये। वे लोग आचार्यश्री की विद्वत्ता एवं समझाने की अपूर्व शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। कुछ क्षणों के मौन के पश्चात उन सवारों के मुख्य पुरुष ने कृतज्ञता पूर्ण शब्दो में कहा—महात्मन्! आपने हमारे ऊपर बडा ही उपकार किया है। हम लोगों ने अज्ञानता से अज्ञानियो के बताये हुए दुर्गति प्रदायक मार्ग को पकड़ रक्खा था पर आपने आज हमारे ऊपर अपरिमित कृपा करके हमको चारुपथ के पथिक बना दिये हैं। इस प्रकार मुख्य पुरुषों के शब्दों के समाप्त होते ही पास में बैठे हुए एक सैनिक सवार ने कहा—महात्मन्! आप माण्डव्यपुर के नरेश महाबली हैं। इस प्रकार पारस्परिक परिचय की घनिष्टता होने पर माण्डव्यपुर के राजा महाबली आचार्य श्री को साथ में लेकर अपने नगर में आये। वहां के श्रीसंघ ने भी सूरीश्वरजी का समारोह पूर्वक स्वागत किया। सूरीश्वरजी ने भी उन लोगों पर स्थायी प्रभाव डालने के लिये अपना व्याख्यान क्रम यथावत् प्रारम्भ रक्खा।

राजा महाबली वगैरह क्षत्रिय सैनिक वर्ग भी आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ हमेशा लेने लग गये। क्रमशः जैनधर्म के सम्पूर्ण तत्त्वों को सूक्ष्मता पूर्वक समझ करके राजा वगैरह क्षत्रियों ने मिथ्यात्व का त्याग कर आचार्यश्री के पास में शुद्ध पवित्र जैन धर्म को स्वीकार कर लिया।

माण्डव्यपुर नरेश श्रीमहाबली के मन्त्री, डिडू गौत्रीय शा-उदा ने सूरिजी से अर्ज की—गुरुदेव! आपने राजा को जैन धर्मानुयायी बनाकर हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया। इसका वर्णन हम लोग अपनी तुच्छ जबान से करने में सर्वथा असमर्थ हैं किन्तु एक चातुर्मास आप यहां पर करने की कृपा करेंगे तो राजा वगैरह नये बने हुए जैनियों की श्रद्धा भी जैनधर्म में दृढ़—अमिट हो जायगी। इतना ही क्या पर राजा के पुत्रादि भी जैनधर्म को स्वीकार कर जैनधर्म के विस्तृत प्रचार में विशेष सहायक बनेंगे।

राज घराने के जैन हो जाने के पश्चात तो नागरिक लोगों को जैन बनाने में विशेष सुगमता रहेगी। पूज्यवर! स्वयं राजा के मुंह से मैंने आपकी बहुत ही प्रशंसा सुनी। उनकी भी यही इच्छा है कि गुरुदेव का यह चातुर्मास यहीं होना चाहिये। इस प्रकार मंत्री उदा की प्रार्थना को सुनकर सूरिजीने कहा—जैसी-क्षेत्र स्पर्शना।

राजा के जैन धर्म स्वीकार करने के बाद वाममर्गियों ने बहुत कुछ उपद्रव मचाया पर राजा ने तो जान बूझ कर मांस, मदिरा और व्यभिचार का त्याग किया था और तत्वों को समझ करके जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः राजा पर उन पाखण्डियों का ज्यादा असर नहीं हो सका। राजा के सात पुत्र थे और वे भी अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करने वाले विनयवान् ही थे। फिर भी पाखण्डियों ने अपना जाल कई पुत्रो को फंसाने के लिये फैलाया पर राजा की धार्मिक कट्टरता के कारण उनके पुत्रों पर भी पाखण्डियों का विशेष प्रभाव नही पड़ सका जब राजा को पाखण्डियों के विषय में मालूम हुआ तो उन्होंने अपने सातों पुत्रों को बुलाकर कहा—मैंने जो जैनधर्म स्वीकार किया है वह न अज्ञानता से किया है और न स्वार्थ सिद्धि के लिये ही। मैंने तो दोनो धर्मों के तत्वों को समझ कर अच्छी तरह कसौटी पर कस कर जैनधर्म को पवित्र व कल्याण कारी समझ कर के ही स्वीकार किया है। यदि तुम को मेरे पर विश्वास हो तो ठीक नहीं तो तुम लोग भी सूरीश्वर जी के पास जाकर इसके तत्वों को समझो। अन्यथा तुम को फुसलाने वाले ब्राह्मणों से कहो कि वे आचार्यश्री के साथ धर्म विषयक शास्त्रार्थ करें। अपने घर में दो पृथक २ धर्मों का होना व पारस्परिक धार्मिक समस्या के कारण मनोमालिन्य रहना भविष्य के लिये हानिकर है।

राजा के पुत्र भी समझ गये कि हमारे पिताश्री जी की प्रकृति में जैनधर्म स्वीकार करने के पश्चात् पर्याप्त फरक पड़ा है और यह सब धर्म का ही प्रभाव है अतः उन्होंने अपने पिता से विनय पूर्वक कहा—पिताजी! आप हमारी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहे। हमें आप पर और जिनधर्म पर दृढ़ विश्वास है। हम तन, मन, धन से जैनधर्म का पालन व प्रचार करने के लिये कटिबद्ध है। राजा, राजा की राणी, राजा के पुत्र वगैरह सब सूरीजी के व्याख्यान में नियमानुसार हाजिर हो ध्यान पूर्वक व्याख्यान श्रवण का लाभ उठाते। व्याख्यान श्रवण एवं मुनि सत्संग में उन्हे इतना रस आया कि उन्होंने चातुर्मास के लिये आग्रह पूर्वक सूरीश्वर जी की सेवा में प्रार्थना की। आचार्यश्री ने भी धर्म विषयक संस्कारों को विशेष स्थायी बनाने के लिये वही चातुर्मास कर दिया। अब तो राजा का सकल परिवार जैनधर्म का परम उपासक बन गया। इनके साथ ही इनको अनुसरण कर सैंकड़ों नर नारी जैन धर्म के भक्त बन गये। इससे शासन की पर्याप्त प्रभावना हुई। राजा ने मांडव्यपुर में चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्वामी का एक मन्दिर बनवाया। उसके तैयार हो जाने पर जिनालयजी की प्रतिष्ठा भी सूरीश्वरजी के कर कमलों से ही करवाई थी। वंशावलीकारों ने राजा का परिवार इस प्रकार लिखा है:—

(इस प्रकार विस्तार से वशावली लिखी हुई है।)
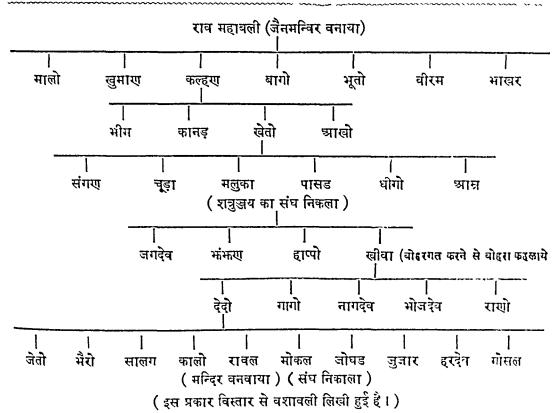
आचार्यश्री कक्कसूरि ने अपना शेष जीवन वृद्धावस्था के कारण मरुभुमि और मरुभूमि के आस पास के प्रदेशों में विताना ही उचित ज्ञात हुआ। तदनुसार आप मरुभूमि में ही विहार करते रहे।

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी म. ने अपने ५९ वर्ष के शासन में अनेक प्रान्तो में परिभ्रमण कर जैन धर्म का विस्तृत प्रचार किया। भारत मे शायद ही ऐसा कोई प्रांत रह गया हो जहां पूज्याचार्यदेव के कुकुम्ममयचरण न हुए हो ? आपने अपने जीवन में २०० पुरुष ३०० बाइयों को दीक्षा दी। लाखों मांसाहारियों को जैन बनाये। सैकड़ों मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई। कई संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की। विशेष में आपने उस समय के चैत्यवास के विकार में बहुत सुधार किया। अनेक वादियों के संगठित आक्रमणों से शासन की रक्षा की और उन्ही के द्वारा अहिंसा का प्रचार करवाया अस्तु आपश्री का जैनसमाज पर ही नहीं अपितु भारतवर्ष पर महा उपकार है।

आपश्री जी ने कई अर्से तक उपकेशपुर में ही स्थिरवास कर दिया। जब देवी सच्चायिका के द्वारा आपको अपने आयुष्य की अल्पता ज्ञात हुई तो आपने अपने योग्य शिष्य उपाध्याय ध्यानसुन्दर को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर, भाद्र गोत्रीय शाह लुणा के महामहोत्सव पूर्वक श्रीसंघ के समक्ष महावीर मंदिर में उपाध्याय ध्यानसुन्दर को सूरि पद से विभूषित कर दिया और परम्परा के क्रमानुसार आप का नाम श्री देव गुप्तसूरि रख दिया और आपश्री अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये

अन्त में आपने अपने अन्तिम समय में ३२ दिवस का अनशन किया। क्रमशः समाधि पूर्वक पांच परमेष्टी का स्मरण करते हुए स्वर्ग सिधार गये।

आपश्री की कार्यावली का संक्षिप्त दिग्दर्शन निम्नप्रकारेण है।

आचार्यदेव के ५९ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएं

१—मालपुरा	के गोलेच्छागौ०	भादा ने	दीक्षाली
२—थंभोरी	,, तप्तभट्ट	के नागड ने	,,
३—उचकोट	,, भूरि	,, मूंजार ने	,,
४—आलोर	,, श्रेष्टि	,, पोलाक ने	,,
५—खटोपुर	,, बप्पनाग	,, पेथा ने	,,
६—रेणुकोट	,, भद्र	,, घरमण ने	,,
७—भद्रेसर	,, वलहा	,, सुरजण ने	,,
८—भोजपुर	,, पारख	,, सहरण ने	,,
९—नंदण	,, प्रागवट	,, धरण ने	,,
१०—खाखोर	,, प्राग्वट	,, कानो ने	,,
११—मधुपुरी	,, श्रीमाल	,, जंबु ने	,,
१२—वर्द्धमानपुर	,, चिंचट	,, लुवाने	,,
१३—नागण	,, प्राग्वट	,, काल्हण	,,
१४—धारापद्र	,, प्राग्वट	,, देदा ने	,,
१५—सारंगपुर	,, प्राग्वट	,, आदू ने	,,
१६—ककोलिया	,, श्रीमाल	,, नारायण ने	,,
१७—खोखुड़ा	,, डिडु	,, सोमाने	,,
१८—सींदोली	,, लघुश्रेष्टि	,, बोत्था ने	,,
१९—उताणी	,, प्राग्वट	,, गोल्हा ने	,,
२०—दादावती	,, श्रीमाल	,, रूपा ने	,,
२१—करणावती	,, चोरडिया	,, हडपा ने	,,
२२—गंवार	,, प्राग्वट	,, गेंदो ने	,,
२३—स्तम्भननपुर	,, श्री श्रीमाल	,, दोजालो ने	,,
२४—चन्द्रावती	,, प्राग्वट	,, नोंधण ने	,,
२५—शिवपुरी	,, पाखर	,, नागदेव ने	,,
२६—जोजावाड़ी	,, प्राग्वट	,, जावड़ ने	,,
२७—वमूदी	,, विरहट	,, समरा ने	,,
२८—हथुंडी	,, पोकरणा	,, केहरा ने	,,

२९—मादड़ी	,, कुलहट	,, खेमे ने	,,
३०—वल्लभी	,, सुचति	,, लाला ने	,,
३१—कोरंटपुर	,, श्रीमाल	,, अजड़ ने	,,
३२—मधुमति	,, श्री श्रीमाल	,, सांगण ने	,,
३३—राजपुरा	,, भाद्र	,, सारंग ने	,,
३४—मेदनीपुर	,, कुम्मट	,, माधो ने	,,

आचार्यश्री के ५९ वर्षों के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं।

१—जोगनीपुर	को जंघड़ा	गौत्रीय	पोरा	ने—महावीर मं० प्र०
२—भारोटिया	,, पोकरण	,,	भीमसी	ने— ,,
३—सरसा	,, भूरि	,,	रोडाशाह	ने— ,,
४—दान्तीपुर	,, विरहट	,,	लालाशाह	ने— ,,
५—थंभोर	,, श्रेष्टि	,,	पोमाशाह	ने—पार्श्व० मं० प्र०
६—जाबलीपुर	,, प्राग्वट	,,	हरपाल	ने— ,,
७—वडियार	,, प्राग्वट	,,	लाखणशाह	ने— ,,
८—भीन्नमाल	,, कुलहट	,,	नागपाल	ने—शान्तिनाथ
९—सीलार	,, श्रीमाल	,,	संगण	ने— ,,
१०—गोसलपुर	,, आर्य्य	,,	इन्दाशाह	ने—आदीश्वर
११—शिवपुर	,, श्रेष्टि	,,	सोनाल शाह	ने—महावीर
१२—नगरकोट	,, भाद्र सम०	,,	चोकाशाह	ने— ,,
१३—कोटीपुर	,, श्रीश्रीमाल	,,	ऊमाशाह	ने— ,,
१४—चुड़ी	,, सुचंति	,,	पांचाशाह	ने— ,,
१५—आगलाइ	,, श्रीमाल	,,	लक्ष्मण	ने—पार्श्वनाथ
१६—उगराणी	,, श्रीमाल	,,	नोंधाशाह	ने— ,,
१७—वल्लभी	,, श्रीमाल	,,	गोमा शाह	ने— ,,
१८—करणावती	,, प्राग्वट	,,	ठाकरशाह	ने— ,,
१९—मांडव	,, बलाह	,,	राजाशाह	ने— ,,
२०—दसपुर	,, मोरख	,,	निंबाशाह	ने—सीमधर
२१—चंदेरी	,, कुम्मट	,,	सावंतशाह	ने—पार्श्वनाथ
२२—चन्द्रावती	,, कनोजिया	,,	गंगाशाह	ने—विमलनाथ
२३—सारंगपुर	,, लघु श्रेष्टि	,,	विमलशाह	ने—नेमिनाथ
२४—राजपुर	,, डिडु	,,	कोकलशाह	ने—महावीर
२५—धोलपुर	,, वोहियाणी	,,	हाथीशाह	ने— ,,

२६—राटीग्राम ,, पोकरणा ,, पुन्जाशाह ने— ,,
२७—मनुकली ,, महाराष्ट्रीय छादाशाह ने—पार्श्वनाथ
२८—जागिया ,, ,, ,,

आचार्य देव के ५९ वर्षों का शासन में संघादि शुभकार्य

१—नागपुर	के	चोरलिया	गौत्रीय	शाह	अर्जुन ने	शत्रुंजय का संघ
२—मुग्धपुर	,,	कुम्मट	,,	,,	देपाल ने	,, ,,
३—खटकूंप	,,	श्रेष्टि	,,	,,	नाहड ने	,, ,,
४—हंसावली	,,	भूरि	,,	,,	गोगड़ ने	,, ,,
५—मेदनीपुर	,,	भाद्र	,,	,,	सलखण ने	,, ,,
६—उपकेशपुर	,,	जंघड़ा	,,	,,	जाल्हण ने	,, ,,
७—चन्द्रावती	,,	प्राग्वट	,,	,,	शंकर ने	,, ,,
८—नारदपुरी	,,	श्रीमाल	,,	,,	भूरा ने	,, ,,
९—सत्यपुरी	,,	रांका	,,	,,	करणा ने	,, ,,
१०—असलपुर	,,	देसरड़ा	,,	,,	नेजपाल ने	,, ,,
११—दान्तिपुर	,,	श्रीश्रीमाल	,,	,,	बोटस ने	,, ,,
१२—कोरंटपुर	,,	श्रीमाल	,,	,,	वीरम ने	,, ,,
१३—चन्द्रावती	,,	श्रेष्टि	,,	,,	जिनदासने	,, ,,
१४—भरोच	,,	प्राग्वट	,,	,,	भगाने	,, ,,
१५—मालपुरा	,,	श्रीमाल	,,	,,	राजसी ने	,, ,,
१६—सोपार	,,	डिड्डु	,,	,,	धरमसी ने	,, ,,

१७—पीलाणी ,, प्राग्वट बाला की पत्नि ने तलाव खोदाया
१८—सांनणी ,, श्रेष्टि गौ० कोकाकी पुत्री वरजू ने तलाव बनायो
१९—चन्द्रावती ,, प्राग्वट रामो युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सतीहुई
२०—उपकेशपुर ,, भाद्रगौ० नायो युद्ध ,, ,, ,,
२१—वैराट ,, डिड्डू गौ० मालो ,, ,, ,, ,,

दो चालीस पट्ट कक्क सूरिने, आर्य गौत्र उजारा था
किशोर व्यय में दीक्षा लेकर, स्याद्वाद प्रचारा था
दीक्षा शिक्षा दी शिष्यों को संख्या खुब बढ़ाई थी
भू भ्रमन कर जैन धर्म की, शिखर धजा चढ़ाई थी

इती-भगवान पार्श्वनाथ के बेचालीस पट्टपर कक्कसूरिजी महान् धूरंधर आचार्य हुए

कुल वर्ण-वंश-गौत्र और जातियां

इस भारतभूमि पर दो प्रकार का काल अनादिकाल से चला आ रहा है। एक उत्सर्पिणी काल, दूसरा अवसर्पिणी काल। उत्सर्पिणी काल का अर्थ है अवनीति की चरम सीमा तक पहुँची हुई जनता को क्रमशः उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँचा देना और अवसर्पिणी का मतलब है उन्नति की चरम सीमा से क्रमशः अवनति के गहरे गर्त में डाल देना। इन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के विभाग रूप छः छः आरे है और बारह आरों का एक कालचक्र होता है और एक कालचक्र का मान बीस कोड़ाकोड़ सागरोपम का बतलाया है, जिसमें कुछ न्यून अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल में तो केवल भोगभूमि मनुष्य ही होते हैं वे भद्रिक, परिणामी, अल्पकषायी, या अल्पममत्व वाले होते हैं उनको युगलिया भी कहते हैं कारण वे स्त्री पुरुष एक साथ में पैदा होते एवं मरते हैं उनका शरीर बहुत लम्बा दृढ़ सहनन और आयु बहुत दीर्घ होती है। उनके जीवन सबंधी तमाम पदार्थ कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं। उन मनुष्यो में असी, मसी, कसी, रूप कर्म-व्यापार नहीं होते हैं। जिन्दगी भर में अपनी अन्तिम अवस्था में एकबार ही स्त्री संग करते हैं जिससे उनके एक युगल संतति पैदा होती है, उसकी ४९, ६४, ८१ दिन—पालन पोषण कर दोनों एक साथ ही देहत्याग कर स्वर्ग में अवतीर्ण हो जाते हैं, जो युगल संतति पैदा होती है। वह भी अपनी अंतिम अवस्था में आपस में दम्पत्ति रूप में एकबार विषय सेवन कर एक युगल संतति पैदा कर स्वर्ग चले जाते हैं। इस प्रकार असख्य काल व्यतीत कर देते हैं, तदन्तर कर्म भूमि का समय आता है, साधिक दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम कर्म भूमि का व्यवहार चलता है पुनः भोगभूमि का समय आता है इस प्रकार घटमाल की तरह अनंत कालचक्र व्यतीत हो गया है, जिसकी न तो आदि है और न अन्त है। न केवलज्ञानी ही बतला सकते हैं। अर्थात् आदि अन्त है ही नहीं।

वर्तमान काल अवसर्पिणी काल है इसका स्वभाव उन्नति से गिराकर अवनति तक पहुँचा देने का है। समय-समय वर्ण गंध, रस, स्पर्श, आयुः बल संहननादि पदार्थों में अनति २ हानि पहुँचाने का है। पहले यहां भी भोगभूमि मनुष्य थे पर भगवान् ऋषभदेव के समय से वे कर्मभूमि बन गए, जो वर्तमान समय में भी विद्यमान हैं। यही कारण है कि भगवान् ऋषभदेव को जैन लोग आदि तीर्थङ्कर एव आदिनाथ मानते हैं। वेदक मतावलंबियो ने भी भगवान् ऋषभदेव को अपने अवतारों में स्थान दिया है तथा मुसलमान भी आदिमबाबा के नाम से उन्हीं भगवान् ऋषभदेव को मानते हैं। भगवान् ऋषभदेव के अस्तित्व का समय जैनो ने जितना प्राचीन माना है उतना न तो वेदान्तियों ने माना है और न इस्लाम धर्म वालों ने ही माना है इससे सिद्ध होता है कि वेदान्तियो एव मुसलमानों ने जैनों का ही अनुकरण किया है। जैनों में भगवान् ऋषभदेव की मूर्तिया बहुत प्राचीन काल से ही मानी गई हैं। तब वेदान्तिकमत के प्राचीन ग्रंथ वेदों मे भगवान् ऋषभदेव को अवतार होना कहीं पर नहीं लिखा है, केवल अर्वाचीनग्रंथों के लेखक ने ही भगवान् ऋषभदेव का चरित्र लिखा एवं उनको अवतार माना है। खैर कुछ भी हो आज तो भगवान् ऋषभदेव को प्रायः समस्त भारतीय लोग पूज्य भाव से मानते हैं। इस विषय में शास्त्रकार फरमाते हैं कि—

१पहले आरे में ४९ दिन, दूसरे आरे में ६४, और तीसरे आरे में ८१ दिन

कुछ काल के बुरे प्रभाव से जब भोगभूमि मनुष्यों को कल्पवृक्षों से फलादि साधन कम मिलने लगे तब वे लोग आपस में क्लेश करने लगे इस हालत में उन क्लेश पीड़ित मनुष्यों को समझाने एवं इन्साफ देने वालों की आवश्यकता होने लगी। अतः कुलकरों की स्थापना हुई। और उन कुलकरों ने क्रमशः हक्कार मक्कार और धिक्कार दंडनीति कायम की। पर काल के सामने किसकी चल सके युगल मनुष्यों में वैमनस्य बढ़ता ही गया। इस हालत में अन्तिम कुलकार नाभी के मरुदेवी पत्नि की कुक्षीसे ऋषभ नामक पुत्र का जन्म हुआ जिसका जन्म महोत्सव देव देवीन्द्रों ने किया था। जब ऋषभ माता के गर्भ में आया था तो तीन ज्ञान स्वर्ग से साथ में ही लेकर आया था जिनसे भूत, भविष्य और वर्तमान को ठीक हस्तामल की भाँति जाने एवं देख सकते थे। योग्यावस्था में आने पर नाभी कुलकर ने युगल मनुष्यों के लिये ऋषभ को राजा मुकर्रर कर दिया। ऋषभ देव ने काल का स्वरूप जानकर उन दुःख पीड़ित युगल मनुष्य को असी (क्षत्रिय कर्म) मसी (वैश्य कर्म) कृषी (कृपी कर्म) हुन्नरोद्योग, कला-कौशल अर्थात् पुरुषों को ७२ कलाओं का और महीलाओं को ६४ कलाओं का बोध करवाया, जिससे युगल मनुष्य अपने आवश्यकता के सब पदार्थ स्वयं पैदा कर अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सके और ऐसा ही वे करने लगें।

इधर इन्द्र के आदेश से देवताओं ने एक, बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी अमरापुरी सदृश वनीता नगरीका निर्माण किया और शुभ मुहुर्त में ऋषभ का राज्याभिषेक भी कर दिया। ऋषभ के विवाह के लिये एक कन्या आपके साथ युगल रूप में ही उत्पन्न हुई थी। तब दूसरा एक नूतन जन्मा हुआ युगल भाई बहिन एक तालवृक्ष के नीचे खड़े थे। काल के क्रूर प्रभाव से ताड़ का फल अकस्मात टूट कर युगल मनुष्य के कोमल अंग पर पड़ा जिसकी चोट से वह युगल मनुष्य मर गया। तब उसकी बहिन अकेली रह गई। अन्य युगलियों ने उसे लाकर नाभी के सुपुर्द की और नाभी ने कहा कि—यह कन्या हमारे ऋषभकी पत्नि होगी। बस इन्द्रने सुनन्दा और सुमंगला इन दोनों युगल कन्याओं का विवाह ऋषभ के साथ कर दिया। यह पहिला ही विधि संयुक्त विवाह था जिसमें वर पक्ष का सब कार्यविधान इन्द्रने किया और वधूपक्ष का कार्य इन्द्राणी ने किया तब से उन मनुष्यो में विवाह पद्धति प्रचलित हुई। इस प्रकार युगल धर्म को वे मनुष्य भूलते गये और कर्मभूमी की प्रवृत्ति सर्वत्र प्रचलित होती गई। ऐसी दशा में ऋषभदेव ने उन मनुष्यों की सुविधा के लिये चार कुल स्थापनकर उस समय के मनुष्यो को चार विभागों में विभाजित कर दिये जैसे कि:—

१—उग्रकुल-जिन मनुष्यों की उग्रप्रकृति और जनता का रक्षण करने में समर्थ थे वे उग्रकुली।

२—भोगकुल-जिन मनुष्यों में शांन्ति, तुष्टि, पुष्टि और विद्या प्रचार करने की योग्यता थी वे भोगकुली

३—राजनकुल-जिन मनुष्यों मे राज करने की योग्यता थी (खास ऋषभ का घराना) वे राजन् कुली।

४—क्षत्रीयकुल-शेष जितने मनुष्य रहे उन सब का क्षत्रिय कुल स्थापन कर दिया।

इस प्रकार चार कुलों की व्यवस्था होने से उस समय के मनुष्यो की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई इस प्रकार संसार सुधार के लिये भ० ऋषभदेवने अपने जीवन का अधिक समय लगादिया अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का ८४ लक्ष पूर्व का सब आयुष्य था जिसमें २० लक्षपूर्व कुमारपद ६३ लक्षपूर्व राजपदपर रह कर संसार सुधार किया। आपके भारत बाहुबलादी १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियाँ हुई तत्पश्चात् भ० ऋषभदेवने दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। इस प्रकार ऋषभदेव से चार कुलों की स्थापना हुई!

३—वर्ण-भगवान्‌ऋषभदेवने जनकल्याणार्थ धर्मोपदेश दिया जिसका सारांश भाव-संग्रह कर भरत

नरेश ने चार वेदों का निर्माण किया। जिनकेनाम १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापनपरामर्शवेद ३ तत्त्वावबोध और ४ विद्याप्रबोध। इन चारों वेदों को वृद्ध एवं अनुभवी श्रावकों को दे दिया और यह भी कह दिया कि मै जब राजकार्य मे लगा रहता हूँ तब मेरे मकानके द्वार पर बैठ कर ये वेद मुझे सुनाया करो, जिससे भगवान ऋषभदेव के उपदेश का असर मेरे ऊपर होता रहे और इनके अलावा जितना समय मिले उसमें आम जनता में इन वेदों के उपदेशों का प्रचार किया करो। भगवान् ऋषभदेव के उपदेश रूपी ज्ञान वेदों द्वारा वृद्ध श्रावक सुनाने लगे। इस गर्ज्ज से भरतराजा उनका आदर सत्कार एवं पूजा बहुमान करने लगे। 'यथाराजा स्तथा प्रजा' जो कार्य राजा करता है उसका अनुकरण रूप में प्रजा भी किया करती है। कारण एक तो वे वृद्ध श्रावक पहले से ही पूजनकि थे। दूसरा भगवान् ऋषभदेव के उपदेश को सुनावे इससे तो विशेष पूजनिक बन गये। उन उपदेशक श्रावको की पहचान के लिये चक्रवर्ती भरतने कंकनीरत्न से उनके हृदयपटल पर तीन लकीर खेंच दीकि वे भरत नरेशके रसोड़े में भोजन करले और उन वृद्ध श्रावकों को दूसरी भी कोई भी आवश्यकता होतो राजाके खजाने से द्रव्य ले आया करे। इस प्रकार भरत राजा की शुभ योजना से जनता में धर्म प्रचार एव आत्म कल्याण की भावना उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी और वृद्ध श्रावको की प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी इतना ही क्यों पर उन वृद्ध श्रावकों का नाम 'महाण' भी होगया जो उनके महाण महाण उपदेश का ही द्योतक था।

भरतराजा के बाद दंडवीर्य राजा हुआ। उसके पास ककनीरत्न न होने से उसने उन महाणो को सुवर्ण की जनेऊ दी बाद में कई राजाओ ने रजत (रूपा) की और कई एक ने सूत की दी। अतः महाण अपनी पहचान के लिए जनेऊ अवश्य रखते थे।

इस प्रकार असंख्य काल तक उन महाणो द्वारा जनता का महान् उपकार हुआ पर काल के बुरे प्रभाव से इधर तो भ० सुबुद्धिनाथ का शासन विच्छेद हो गया और ऊधर उन महाणो के मगज में स्वार्थ का कीड़ा आ घुसा। उन्होने वेदो के उपदेशों में रद्दोबदल करना शुरू कर दिया। परामर्थ के स्थान में स्वार्थ का राज्य स्थापित कर दिया। यहाँ तक कि आप अपने को ब्रह्म का रूप कहलाकर अपना नाम ब्राह्मण रख कर जगत् के गुरू होने का दावा करने लग गये। भगवान् ऋषभदेव ने उग्र भोग राजन कुल के अलावा सब संसार को क्षत्रिय कुल मे स्थापन किया था जिसमें नीच ऊच एवं हलके भारी की थोड़ी सी भावना नहीं रखी थी। पर ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के वश किसी को ऊंचा और किसी को नीचा बना कर ऐसे जहरीले बीज बो दिये कि संसार क्लेश का झोपड़ा बन गया। विधि विधान एवं अनेक क्रिया काड रच कर जनता को अपने पैरो के तले दबा रखी थी जिसके फल स्वरूप उन भूदेवों के सामने कोई चूं तक भी नहीं कर सके। कारण राज्यसत्ता एवं अग्रगण्य नेतावो उनके बाएं हाथ की कठपूतलियों बन चुकी थी। इस प्रकार उन स्वार्थप्रिय ब्राह्मणोंने ससारभरमें त्राहि त्राहि मचा दी। पर जब दशवें भगवान् शीतलनाथके शासनका उदय हुआ तब उन स्वार्थी ब्राह्मणों की पोल खुलने लगी। इतना ही क्यों पर, उनके खिलाफ में एक पार्टी ऐसी खड़ी होगई कि वह प्रायः ब्राह्मणों के स्वार्थ का हमेशा विरोध करती थी। पर, प्रकृति उनके अनुकूल नहीं थी। भगवान शीतलनाथ का शासन भी कुछ समय चल कर विच्छेद होता गया और ब्राह्मणों की अनुचित सत्ता प्रबल बढ़ती गई। सर्वत्र दुनियामें त्राहि त्राहि मच गई चित्कार कारुणनाद सर्वत्र सुनाई देने लगा। ऊंच नीचके भेद भाव से द्वेष की सर्वत्र भट्टियां धधकने लगी इत्यादि। खैर-कैसीभी परिस्थिति क्योन हो अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाती है तब उनका उद्धार होना भी अनिवार्य होजाता है। जैसे अन्धकार में प्रतिपदा से अमावस्या आजाती है, फिर वो

शुक्लपक्ष का आगमन एवं उजाला होने वाला ही समझा जाता है। यही हाल संसार का हुआ जनता एक एसे सुधारक की प्रतीक्षा कर रही थी कि जो अशांति को मिटा कर शांति स्थापनकरें।

ठीक उसी समय कई शुभचिन्तकों की शीतलदृष्टि दुःख से पीड़ित संसार की ओर पड़ी और उन्होंने किसी भी प्रकार से संसार का सुधार करने का निश्चय किया पर उस समय ब्राह्मणों के विरोध में खड़ा होना एक टेडी खीर थी। अतः उन शुभचिन्तको ने ब्राह्मणों को साथ में रख कर तथा इनका मान महत्व कायम रख कर संसार को पुनः चार विभागों में विभाजित करना उचित समझा। और उन्होंने ऐसाही किया जिनको लोग वर्णव्यवस्था भी कहते हैं। जैसे कि:—

१—ब्राह्मण वर्ण—तुष्टि, पुष्टि और शांति एवं विद्या प्रचार से संसार की सेवा करने वाला
२—क्षत्रिय वर्ण—जनता के सदाचार एवं जानमाल की वीरता पूर्वक रक्षा करने वाला क्षत्रिय वर्ण।
३—वैश्य वर्ण—क्रय-विक्रय एवं अर्थ से संसार की सेवा करने वाला वैश्य वर्ण।
४—शूद्र वर्ण—शारीरिक श्रम द्वारा संसार की सेवा करने वाला शूद्र वर्ण।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था कर पुनः शांति स्थापना की। परन्तु इस वर्ण व्यवस्था में ऊंच नीच एवं हलका भारी को थोड़ा भी स्थान नहीं दिया था। मुख्य उपदेश तो सेवा भाव का ही था अपने-अपने निर्देश किए हुए कार्यों द्वारा संसार की सेवा की जाय, उस वक्त हुकूमत की अपेक्षा सेवा की ही विशेष कीमत थी। फिर भी उन चारों वर्ण वालों के लिए पारितोषिक रूप में ब्राह्मणो को पूजा, बहुमान, क्षत्रियों को हुकूमत वैश्यो को विलास और शूद्रों को निश्चिन्तता प्रदान की गई थी। इससे कार्य एवं सेवा करने वाले का उत्साह बढ़ता रहे। इस प्रकार संसारभरमेंपुनः शान्ति स्थापना करदी पर यह शान्ति चिरस्थायी नहीं रह सकी। कारण ब्राह्मणों का दिल साफ नहीं था। यही कारण था कि आगे चल कर ब्राह्मणों ने चारो वर्णों की ऐसी भद्दी कल्पना कर डाली कि ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। अतः संसार में जो कुछ है वह हम ही हैं हमारे मुंह से निकले हुए शब्दों को तीनों वर्ण वाले शिरोधार्य करें। "त्रियवर्णा ब्राह्मणस्य वशवर्तेरन्।" अर्थात् तीनों वर्णके लोग हमारे ही आधिन रहें हमारी सेवा करें। एवं हमारी आज्ञाका पालन करें। बसफिरतो ब्राह्मण अपनी मनमानी करनेमें कमी रखते ही क्यों? यज्ञ, यागादि के नाम पर आप स्वयं मांस भक्षण करना और क्षत्रियों को शिकार खेलना, मांस भक्षण करना तो उनके लिये साधारण कर्त्तव्य ही बन दिया गया, थोड़े२ कामोंमें ब्राह्मणोने लाखो मूक प्राणियोंके कोमलकंठ पर छुरा चला कर अहिंसा प्रधान देश में खून की नदी बहाने लग गये और इस हिंसा कर्म से संसार में सुख शांति राजा का तप, तेज और पशुओं की मुक्ति एवं स्वर्ग पहुँचाने का रास्ता बतलाया। यह भी केवल जबानी जमाखर्च नहीं, वरन् इनबातोंके लिये शास्त्रों में श्रुतियां भी रच दीइतना ही क्यों पर भरतराजा के वेदोंके नामभी बदलदिये गये। और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थवेद नाम रख कर कह दिया की ये चारों वेद ईश्वर कृत हैं।

१—यजनं याजनं दान तथैवाध्यायन क्रिया प्रतिग्रहश्चध्यायनं विप्र कर्माणो निशात्।
२—क्षत्रियस्य विशेषण प्रजाना परिपालनम्।
३—कृषि गौरक्षा वाणिज्यं वैश्यस्यदच परि कीर्तितम्।
४—शूद्रश्च द्विज शुश्रुपासर्वं शिल्पानी नान्यथा। "मनु स्मृति"

इनको न मानने वाला नास्तिक, पापी, अधर्मी और नरक गामी होगा। बस फिर तो कहना ही क्या था, क्षत्रियों को धर्मके नामपर मांसमदिरा की छूट मिल गई। वे अपने धर्म को बिलकुल भूल गये। वैश्य वर्ण के लिये ब्राह्मणो इतने कर्म कांड एवं मंत्र, तंत्र और मुहूर्त रच डाले कि थोड़ा सा भी काम वेबिना ब्राह्मणों के स्वतंत्र रूप से कर ही नहीं सकते और यदि वे ब्राह्मणों के बिना कोई काम कर डाले तो उनको न्याति जाति तो क्या पर, संसार मडल से अलग कर देने की धमकी दी जाती थी। वे किसी हालत में ब्राह्मणों से बच ही नहीं सकते थे। जब दोनो वर्ण ब्राह्मणों के पूरे २ आज्ञा पालक बने गये तो शुद्रों पर होने वाले ब्राह्मणों के अत्याचार के लिये तो कहना ही क्या था। शुद्रो को न तो धर्म करने का अधिकार था न शास्त्र[१] श्रवण करने का और न यज्ञादि का प्रसाद[२] पाने का। यदि उपरोक्त अनुशासन में भूल चूक हो जाय तो उनको प्राण दंड दिया जाता था इत्यादि। उस समय विचारे शूद्रो की तो घास फूस के बराबर भी कीमत नहीं थी और उनको अछूत ठहरा दिये गये थे, वे पग-पग पर ठुकराये जाने लगे। यही कारण है कि जब ब्राह्मणो की अनीति बहुत बढ़ गई और जनता उन्हीं से घृणा करने लग गई तब उन ब्राह्मणों के खिलाप में भी साहित्य सृष्टि का सरजन होने लगा। धर्म ग्रन्थों में यह भी कहा गया कि संसार के चराचर प्राणि एक ही वर्ण[६] के समझने चाहिये। पर कर्म की अपेक्षा से चार वर्ण बनाये गये हैं। जिनमें सब से उच्चा नंबर क्षत्रियों का और सबसे नीचा नंबर शूद्रों का रखा गया है। पर यदि शूद्र लोग गुणवान् क्रियावान शीलवान् परोपकारी सेवा भावी आदि शुभ कार्य करने वाले हो तो उनको शूद्र क्यों पर ब्राह्मण[७] वर्ण में समझ कर उनकी पूजा सत्कार किया जाय और ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेकर नीच एवं चाण्डाल कर्म करता हो वे शूद्रों की ही गिनती में गिने जाते हैं। यदि कोई ब्राह्मण व्यसनरूप चार वेदों को पढ़ लिया पर ब्रह्म[८] कर्म एवं शुद्ध धर्म को नहीं करता है तब तो केवल उनके लिये वेद भार भूत ही हैं और वे मूर्ख शिरोमणि ब्राह्मण ससार मण्डल में गर्दभ रूप ही समझना चाहिये। इत्यादि जनता ठीक समझने लग गई कि कल्याण केवल जातिकुल या वर्ण से ही नहीं है, पर कल्याण होता है गुणों से अतः किसी भी वर्ण जाति का क्यों न हो पर कोई गुणी है तो वे सर्वत्रपूज्यमान है। इत्यादि

ॐ—यज्ञ सिद्ध्यर्थं मनथन्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् असृजत्क्षत्रियान्बाह्वो।
वैश्यनप्यूरु देशात् शूद्रांश्चपाद योसृष्टा तेषां वैवानु पूर्वशः ॥ "ह० सृ० ॥६३॥

१—अथ हास्य वेदनुपश्रृण्व तत्र पुनु तुल्य, धोत्र प्रति पुरण मुदा हरणे, जिह्वा पच्छेदो धारणे भेद। "गौतम सूत्र १९५॥

२—न शुद्रस्य मति दद्यान्नोच्छिष्ट नह विष्कृतम्। न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्॥ वशिष्ट सूत्र ॥

४—यजुर्वेद मे अश्वमेघ, गजमेघ, नरमेध, मातृ पितृ मेध, अजामेधादि यज्ञों के नाम लिखे हैं।

५—नियुक्तस्तु यदा श्राद्ध देवे च मास नृत् सृजेत्। यावत् पशु रोमाणि तावतरऽ नरकेऽन्ति॥ (वशिष्ट स्मृति)

६—एक वर्ण मिद सर्वं, पूर्वमासी युधिष्टिर। क्रियाकर्म विभागेन, चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम्॥

७—शुद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मण ऽपि क्रिया भ्रष्ट शूद्रात्प्रत्यवरो भवेत्॥

८—चतुर्वेदोऽपियो विप्रः शुद्धं धर्मं न सेवते। वेदभारधरोमूर्खः स वै ब्राह्मण गर्दभ॥
शूद्रात्प्रेष्य कारिण, ब्राह्मणस्य युधिष्टर। भूमावन्न प्रदातव्य यथा श्वान स्तथैव स॥
न जातिर्दृश्यते राजन्। गुणाः कल्याण कारकाः। वृत्तस्थमपि चाण्डाल तमेव ब्राह्मणं विदुः॥
"वेद अंकुश ग्रन्थ से"

इसी प्रकार आपस में संघर्ष बढ़ने से पुनः संसार क्लेशमय बन गया। फूट कुसम्प, की भट्टियें सर्वत्र धक-धक करने लगी। इस विप्लव काल में ब्राह्मणों ने कई गौत्र जाति, उपजातियाँ और वर्णशंकर जातियां भी बना डाली। जिससे जनता का संगठन चूर-चूर हो गया और जन समाज में छोटे-छोटे समुदाय बन गये। प्रेम सम्प का स्थान शत्रुता ने धारण कर लिया। मनुष्य-मनुष्य के बीच में वैमनस्य दृष्टिगोचर होने लगा। क्या राजनीति, क्या सामाजिक, क्या धार्मिक अर्थात् सर्वत्र विश्रृंखलना हो टूटी कड़ियों के समान अव्यवस्था होगई थी। संसार पतन के पथ पर अग्रसर हो रहा था। जनता शान्ति प्राप्ति के लिए पुनः किसी एक ऐसी शक्ति की प्रतिक्षा कर रही थी कि पुनः संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करे। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का संक्षिप्त हाल लिख दिया है। आगे क्या हुआ वह आगे पढ़े !

३—वंश—वंशों की उत्पत्ति नामङ्कित महापुरुषों से हुई है जैसे भगवान् ऋषभदेव से इक्ष्वाकवंश भरत के पुत्र सूर्ययश से सूर्यवंश, बहुबल के पुत्र चन्द्रयश से चन्द्रवंश,हरिवासयुगलक्षेत्र के राजा हरिसेन से हरिवंश, कौरवों से कुरुवंश, पांडवों से पांडुवंश, यदुराजा से यादववंश, शिशुनाग राजा से शिशुनाग वंश, नन्दराजाओं से नन्दवंश,मौर्य राजाओं से मौर्यवंश विक्रम राजा से विक्रम वंश इत्यादि अनेक नामङ्कित पुरुष हुए और उन्होंने जनता की भलाई करने से उनकी संतान उसी पुरुष के नाम पर ओलखाने लगी और आगे चलकर वही उनका वंश बन गया। इस समय के बाद भी बहुत से वंश अस्तित्व में आये।

४—गौत्र—गौत्रों की उत्पत्ति ऋषियों के क्रियाकांड से हुई थी। जिन-जिन लोगों के संस्कार विधि एवं क्रियाकांड जिन-जिन ब्राह्मणों ने एवं ऋषियो ने करवाये उन उन लोगों पर उन ऋषियों की छाप लग गई और उन उन ऋषियों के नाम पर उनके गौत्र बन गये। बाद में परम्परा से उन गौत्रवालो की संतान पर उनऋषियों की संतान परम्परा का हक कायम हो गया। इस प्रकार गौत्रो की सृष्टि उत्पत्ति हुई उन संख्या के लिये कहा जाताहै कि जितने ऋषि ब्राह्मण क्रियाकांड करवाने वाले हुए हैं उतने ही गौत्र बन गए जो आज भी ब्राह्मणों के स्वार्थ पूर्ण रजिस्टरों में दर्ज है और कतिपय गौत्रों के नाम जैनधर्म के प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलते हैं जैसे कल्पसूत्र में उल्लेख मिलता है कि काश्यपगौत्र भारद्वाजगौत्र, अग्निवैश्यगौत्र, वाशिष्टगौत्र, गौतमगौत्र, हरितगौत्र, कौडन्यगौत्र, कात्याणगौत्र, वच्छगौत्र, तुगियानगौत्र, मढ़रगौत्र, प्राचीनगौत्र, एलापात्यगौत्र, व्याघ्रगौत्र, कौशिकगौत्र, उत्कौशिकगौत्र, वाहुलयगौत्र इत्यादि।

यदि यह सवाल किया जाय कि जैन गौत्रों को नहीं मानते हैं फिर उनके शास्त्रों में गौत्रों के नाम क्यों आए ? इसका कारण यह है कि ऋषियों के गौत्रों वालो ने जैनधर्म स्वीकार कर जैनश्रमण दीक्षा स्वीकार करली थी उनकी पहचान के लिए जैनशास्त्रकारों ने उनके गौत्रों का उल्लेख जैनशास्त्रों में किया है। दूसरा जैनधर्म वाड़ाबंधन के गौत्र मानने को तैयार नहीं है। पर यह भी नहीं है कि जैन गौत्रों को बिल्कुल नहीं मानते हैं कारण जैनागमों में गौत्र नामका एक कर्म हैं वह भी उच्चगौत्र नीचगौत्र दो प्रकार से है इनके अलावा जाईसम्पन्ने कुलसम्पन्ने, उच्चगौत्र, नीचगौत्र इत्यादि। जैनों ने क्या वर्ण क्या गौत्र और क्या कुल सब कुछ माना है परउचनीच के भेद भावों से नहीं किन्तु पूर्व संचित कर्मानुसार ही माना है जैसे कहा है कि—

कम्मुणा बम्मणोहोइ, कम्मुणा होई खत्तिओ।
वइसो कम्मुणोहोइ, सुद्दो हवइ कम्मुणो ॥ उत्तरा० सू० अ० २५ ॥

तथा जाति मदादि करने से नीचगौत्र और मदादि न करने से उच्चगौत्र में उत्पन्न होता है। और व्यवहारों मे भी गौत्र मानने से जैन इन्कार नहीं करते हैं पर सगठन के टुकड़े टुकड़े करने वाड़ाबन्दी के गौत्र मानने को जैन तैयार नही है जोकि ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए बनाए थे।

५—जातियाँ-जातियों की सृष्टि भी हमारे ऋषियों के मस्तिष्क की उपज है जब कि ब्राह्मण देवों को वर्ण, गौत्रों से पूर्ण संतोष नहीं हुआ तब उन्होंने जातियों की सृष्टि की रचना प्रारम्भ कर दी तो इतनी जातियो रच डाली की जनता के लिये एक बड़ी जाल ही सिद्ध हुई और मकड़ी की तरह जनता उन जातियों के जाल में बुरी तरह फस गई कि कभी उस जाल से मुक्त हो ही नहीं सकती। पाठक ! एक औसनार्षि की 'औसनस्मृति' को उठा कर देखिये कि उसमें जातियों की उत्पत्ति किस भाँति बतलाई है, नमूने के बतौर पर कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

१—क्षत्री से ब्राह्म कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह सूत जाति कहलाती है।
२—सूत से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह वेणुक जाति कहलाती है।
३—सूत से क्षत्रीय कन्याँ का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह चमार जाति कहलाती है।
४—क्षत्री चौरीसे ब्राह्मण कन्याका विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्नहो वह रथकार सुतार जाति कहलातीहै।
५—वैश्य से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह भाट जाति कहलाती है।
६- शूद्र से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह चाण्डाल जाति कहलाती है।
७—चाण्डाल से वैश्य का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह श्वापच जाति कहलाती है।
८—वैश्य से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह जुलाहा जाति कहलाती है।
९—जुलाहा से ब्राह्मण कन्या का विवाहहो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह ठठेरा जाति कहलाती है।
१०—जुलाहा से क्षत्री की कन्या का विवाह हो उससे प्रजा उत्पन्न हो वह सुनार जाति कहलाती है।
११—सुनार से क्षत्री की कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह उद्बधक जाति कहलाती है।
१२—वैश्य जार से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह पुलद जाति कहलाती है।
१३—शुद्र से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह कलाल जाति कहलाती है।
१४—पुलद से वैश्या कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह रजक जाति कहलाती है।
१५—शुद्र जार से क्षत्री कन्या का विवाह हो उससे प्रजा उत्पन्न हो वह रंगरेज जाति कहलाती है।
१६—रजक से वैश्य की कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह नट जाति कहलाति है।
१७—शुद्र से वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह गडरिया जाति कहलाती है।
१८—गडरिये से ब्राह्मण कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो चर्मोपजीवी जाति कहलाती है।
१९—गडरिये से क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह दरजी जाति कहलाती है।
२०—शुद्र जार से वैश्य कन्या का विवाह हो प्रजा उत्पन्न हो वह तेली जाति कहलाती है।
२१—ब्राह्मण विधीसे क्षत्रीय कन्याका विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न होवह सेनापति जाति कहलाती है।
२२—ब्राह्मण जार क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह भेषज् जाति कहलाति है।
२३—ब्राह्मण विधि० क्षत्रिय कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह नृप जाति कहलाती है।
२४—राजा से क्षत्री कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो वह शूद्र जाति कहलाती है।

२५—ब्राह्मण विध० वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न हो यह भंवष्ट जाति कहलाती है
२६—ब्राह्मण जार से वैश्य कन्या का विवाह हो जिससे प्रजा उत्पन्न वह कुम्हार जाति कहलाती है

इनके अलावा नाई,कायस्थ,पारधी,निषाध,मिना,कहार,धीवर (कटकार) इत्यादि। अनेक जातियों क उत्पत्ति कही है जिसमें भी औसनर्षि फरमाते हैं कि मैंने जातियों का वर्णन संक्षेप में किया है मगर वे विस्त रूप से कहते तो न जाने कितनी जातियों के हाल कह डालते। इसी प्रकार अन्योन्य ऋषियों की जाति लिखी जायं तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही वन जाय। ग्रंथ बढ़ जाने के भय से स्मृति के मूल श्लोक नहीं लि जिज्ञासुओं को स्मृति मंगवा कर पढ़ लेना चाहिये। इस समय मेरे पास मौजुद है।

नीतिकार फरमाते हैं कि "अति सर्वत्र वर्तयेत्।" कोई भी वस्तु क्यों न हो पर वह अपनी मर्यादा क उलंघन कर जाती है तब अप्रिय लगने लग जाती है और उसका विनाश अनिवार्य बन जाता है जैसे कृष्णप की प्रतिपदा से अन्धकार प्रारम्भ होता है वह क्रमशः अमावस्या तक वढ़ता ही जाता है पर यह अन्धका की चरम सीमा है। अतः अन्धकार के विनाश के लिए शुक्लपक्ष का आगमन अवश्य होता है। यही हाल संसार का हुआ कि वर्ण गौत्र, जातियों द्वारा संसार का इतना पतन हो गया कि अब इसका उद्धार होना भ अनिवार्य हो गया। हम ऊपर लिख आए हैं कि जनता एक ऐसे महापुरुष की प्रतिक्षा कर रही थी कि इ विगड़ी को सुधार कर तप्त जनता को शांति प्रदान कर सके ठीक उसी समय जगद्उद्धारक भगवान् महावी का शांति मय शासन प्रवृत्तमान हुआ।

भगवान् महावीर ने सब से पहले संसार को परमशांति का उपदेश दिया और संसार के चराच सर्व प्राणियों को सुख अनुकूल और दुःख प्रतिकूल है। अतः किसी को यह अधिकार नहीं है कि अपन स्वार्थ के लिये किसी जीव को दुःख पहुँचावे अत' इस उपदेश का सबसे पहले प्रभाव यज्ञयगादि पर इस प्रका हुआ कि पहले ही दिन के उपदेश से इन्द्रभूति आदि एकादश यज्ञाध्यक्ष तथा उनके ४४०० साथियों ने भगवान महावीर के पास श्रमण दीक्षा स्वीकार करली फिर तो कहना ही क्या था लाखो निरपराध मूक प्राणियों को अभयदान मिला इतना ही क्यों पर प्रायः सर्वत्र इस घृणित कार्य से जनता को नफरत होने लगी इधर भगवानने वर्ण, गौत्र और जातियों के ऊंच नीच रूपी जहरीले भेद भाव को मिटाकर सबको सदाचारी एवं समभावी बनाते हुए कहा कि जीवात्मा कोई ऊच नीच नहीं है पूर्व संचित कर्मों से ही वे अपने किए कर्मों द्वारा सुख दुःख का अनुभव करते हैं। अतः मनुष्य को कर्म करने में ही सावधानी रखनी चाहिए इत्यादि भगवान् के उपदेश का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं वरन् बड़े बड़े राजा महाराजाओ और खास कर ब्राह्मणों पर भी हुआ। और वे पापवृत्तियों को छोड़कर भगवान् महावीर के शांतिमय झंडे के नीचे आकर शान्ति का श्वास लेने में भाग्यशाली बने। जिसमें शिशुनागवंशी, सम्राट् बिंवसार, अजातशत्रु राजावेन, चण्डप्रद्योतन, उदाई, चटेक, संतानिक, दधीवाहन, काशी कौशल के अठारह गण राज, मल्लवी, लच्छवी, वंश के नृपति गण और भूपति प्रदेशी आदि भूपाल थे। 'यथाराजास्तथाप्रजा' इस युक्ति अनुसार जब राजा महाराजा भगवान् महावीर के उपासक बन गये तब साधारण-प्रजा तो पहले से ही शांति के लिये उत्सुक थी। भगवान् महावीर ने धर्माराधन के लिए क्या ब्राह्मण, क्या शुद्र, क्या क्षत्री, क्या वैश्य सबके लिए धर्म के दरवाजे खोल दिये। सम्राट् बिंबसार व राजावेन ने वर्ण व्यवस्था तोड़ दी और वर्णान्तर विवाह करना शुरु कर दिया। राजा श्रेणिक ने स्वयं एक वैश्य कन्या के साथ विवाह किया तथा उन्होंने अपनी एक पुत्री सेठ धन्ना को और दूसरी

पुत्री अंतज्य-शूद्र मैतार्य को परणाई थी। फिर तो यह प्रथा आम जनता में प्रयाः सर्वत्र प्रचलित हो गई। साधारण जनता के आर्थिक संकट दूर करने के लिए एवं व्यापार के विकास के लिए भी बिबसार राजा ने व्यापार की श्रेणियां बनादी यही कारण था कि आपका अपरनाम श्रेणिक प्रसिद्ध हुआ। तथा लेने देने के लिये सिक्काओं का चलन शुरू कर दिया कि जिससे जनता को अच्छी सुविधा हो गई। उस समय भगवान् महावीर के अलावा महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का प्रचार करने में प्रयत्न किया था। महात्मा बुद्ध का घराना शुरु से ही भगवान् पार्श्वनाथ के परम्परा शिष्यों का उपासक था। और बुद्ध को वैराग्य का कारण भी पार्श्वसंतानियों के उपदेश और अधिक संसर्ग का ही कारण था। बुद्ध ने सब से पहली दीक्षा भी उन ही निर्ग्रन्थो के पास ली थी और कुछ ज्ञान भी प्राप्त किया था। पर बाद में कई कारणो से वे निर्ग्रन्थो से अलग हो अपने नाम पर बुद्धधर्म चलाया। पर, आपके हृदय में अहिंसादेवी का प्रभाव तो शुरु से जैन अवस्था से ही प्रसारित था और उसका ही आपने प्रचार किया, बस इन दोनों महारथियो ने संसार का उद्धार कर सर्वत्र शांति की स्थापना करदी जिसके सामने ब्राह्मणों की सत्ता मृत्यु कलेवर सी रह गई। इतना ही क्यों पर बहुत से ब्राह्मण तो भगवान् महावीर के अनुयायी बन गये थे इतना ही नहीं बल्कि भगवान् महावीर के धर्म के अनुयायी चारो वर्ण वाले थे। जैसे कि—

१—क्षत्रिय वर्ण-राजा श्रेणिक, उदाई, संतानिक, प्रदेशी वगैरह २।

२—ब्राह्मण वर्ण-इन्द्रभूति, ऋषभदत्त, भृगुपुरोहितादि।

३—वैश्य वर्ण-आनंद, कामदेव, शक्ख, पोक्खली, ऋषिभद्रादि।

४—शूद्रवर्ण- मैतार्य, हरकेशी, चाण्डाल,—सकडाल कुम्हारादि।

भगवान् महावीर के धर्म का प्रचार बहुत प्रान्तों में हो गया था तथापि विशाल भारत मे कई ऐसी भी प्रान्त रह गई थी कि अभी तक वहां महावीर का संदेश नहीं पहुँच सका था। पर भगवान् महावीर निर्वाण के पश्चात् थोड़े ही समय में प्रभु पार्श्वनाथ के पांचवे पट्टधर आचार्य स्वयप्रभसूरि ने पूर्व प्रान्त से विहार कर सिद्धिगिरी की यात्रा की और बाद में अपने पांच सौ शिष्यो के साथ अर्बुदाचल की यात्रा कर देवी चक्रेश्वरी की प्रेरणा से श्रीमालनगर में पधारे। उस समय वहा एक वृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा था, जिसमें बलीदान के लिए लाखों मूक पशु एकत्र किये गये थे। पर, उन दया के दरियाव सूरीश्वरजी को इस बात की खबर मिलते ही वे राज सभा मे जाकर ऐसा सचोट उपदेश दिया कि वहां का राजा जयसेनादि ९०००० घर वालों ने हिंसा से घृणा कर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और उन निरपराध मूक प्राणियों को अभयदान दिया और नूतन श्रावकों के आत्म कल्याण के लिये भगवान् ऋषभदेव का उतग मंदिर बना कर समय पर उस की प्रतिष्ठा भी करवाई। बाद में ऐसा ही एक मामला पद्मावती नगरी में भी बना वहा भी आचार्यश्री पधारे और यज्ञ में बली दी जाने वाले लाखो मूक प्राणियों को निर्भय करके ४५००० घर वालों (राजा-प्रजा) को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा दी तथा वहा भगवान् शांतिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा भी करवाई। आचार्यस्वयप्रभसूरि एक ऐसे मशीनगिर की तपास में थे कि मेरा अधूरा कार्य पूरा कर सके। उन्हों को ठीक ऐसा ही मशीनगिरी मिल भी गया जो विद्याधरवंश में अवतार धारण कर राजऋद्धि का त्याग कर स्वयप्रभसूरि के पास दीक्षा ली थी जिनको वीराब्द ५२ वर्ष आचार्य पदार्पण किया जिनका नाम था रत्नप्रभसूरि देवी चक्रेश्वरी की प्रेरणा से आप अपने ५०० शिष्यों के साथ आगे बढ़कर मरुधर भूमि में पधारे। पर वहा आना किसी साधारण व्यक्ति

का काम नहीं था। कारण पाखण्डियो के अखाड़े ग्रामों ग्राम वज्र किले की भांति मजबूत जमे हुये थे उनके खिलाफ में खड़ा होना टेड़ी खीर थी पर आचार्यश्री ने जन सेवा के लिये अपना जीवन अर्पण कर चुके थे वे अनेक परिषह और सैकड़ों कठिनाइयों की तनिक भी परवाह नहीं रखते हुए दो-दो चार-चार मास भूखे प्यासे रह कर उन अनार्यों के तड़ना तर्जना को सहन करते हुए आखिर क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर नगर में पहुँच गये पर कहां तो स्वागत सम्मेलन और कहां ठहरने को मकान। कहां दो-दो चार-चार मास के भूखे प्यासे के लिये पारणा एवं आहार पानी। फिर भी वे न लाया दानपना, और न किया पश्चाताप। वे सिंह की तरह निरावलंबन नगर के समीप लौणाद्री पहाड़ी पर ध्यान लगा दिया। उन परोपकारी आत्माओं के तप, तेज, ब्रह्मचर्य और सद्भावना का जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा की साधरण कारण से राजा प्रजा तो क्या पर हजारोंजीवों की वलि लेने वाली चामुंडा देवी को जैन धर्म की दीक्षा देकर एवं पृथक् २ मत पंथ के लोगो को समभावी बनाकर अपने दिव्यज्ञान द्वारा भविष्य का लाभ जानकर 'महाजनसंघ' नामक एक सुदृढ़ संस्था स्थापन कर दी जिसके अंदर लाखों वीर क्षत्री तथा अनेक ब्राह्मण वैश्य एकत्र हो गये।

जब आचार्य रत्नप्रभसूरि को अपने निर्धारित कार्य में सफलता मिल गई तो आपका तथा आपके वीर साधुओं का उत्साह खूब ही बढ़ गया। उन्होंने तथा उन्हो की परम्परा के आचार्यों ने एक ही प्रान्त एवं एक ही मरुधर में बैठकर टुकड़े खाना स्वीकार नहीं किया था पर वे सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, लाट, आवंती, मेदपाट, शूरसेन, मच्छ, करु, पांचलादि प्रान्तो में भ्रमण कर सर्वत्र जैन धर्म एवं अहिंसा का झंडा फहराया था। शुरु से जिन महाजनों की संख्या लाखों थी उनको बढ़ाकर करोड़ो तक पहुँचादी लोक युक्ति में कहा करते हैं कि 'श्रम बिना लाभ नहीं।' 'दुःख बिना सुख नही'' इत्यादि। यदि वे महा पुरुष इतन कष्ट नहीं उटाते तो उनको इतना लाभ भी कहां से होता दूसरा वह समय भी उनके खूब ही अनुकूल था।

इतिहास से पता चलता है कि इ० सं० के पांच छः शताब्दियों पूर्व से इ० सं० की तीसरी शताब्दी तक भारत के पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक थोड़ा-सा अपवाद छोड़ कर सर्वत्र जैन राजाओं का ही राजा था केवल सम्राट् अशोक पहले जैन था पर बाद में बौद्ध धर्म का प्रचार,किया और शृ'गवंशी पुष्पमित्रादि वेदानुयायी होकर वेद धर्म को जीवित रखा। शेप सर्वत्र जैन राजाओं की ही हुकुमत चलती थी उस समय जैनाचार्य भी चुपचाप नहीं बैठ गये थे पर वे अनुकूल समय में अपने धर्म के प्रचार में सलग्न थे और उन्होंने भारत में ही नहीं पर सम्राट बिंबसार, चन्द्रगुप्त और सम्प्रति की सहायता से भारत के बाहर पाश्चात्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार किया था। जिसके स्मृति चिन्ह आज भी अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जैनधर्म का आर्य अनार्य देशों में भी प्रचार था और जैनधर्म के अनुयायी करोड़ों की संख्या में थे और उन सब का रोटी बेटी व्यवहार प्रायः शामिल था। किसी भाई को ऊच नीच नहीं समझा जाता था निर्बलों को सहायता पहुंचा कर अपने बराबरी का बना लेने में अपना गोरव समजते थे। व्यापारादि में सब से पहला स्थान स्वाधर्मी भाइयों को ही दिया जाता था। इत्यादि सुविधाओं के कारण ही जैनेतर लोग जैन धर्म खुशी से अपना लेते थे। और जब तक जैनों में साधर्मियों के प्रति सद्भावनाएं रही वहां तक तो जैन धर्म की उन्नति व जैन अनुयायियों की वृद्धि होती रही थी यही कारण है कि उस समय जैन धर्मियों की जन संख्या ४००० ०००० चालीस करोड़ थी। इस बातके लिये आज भी इतिहास के बड़ विद्वान लेखक स्वीकार करते हैं!

जैनधर्म की यह एक विशेषता है कि वे अपने उन्नति के समय में एवं सर्वत्र जैन राजाओ की हुकुमत में भी किसी अन्य धर्मियो पर किसी प्रकार जोर जुलम नही किया था। बलात्कार से न तो किसी को जैन बनाया था और न किसी की जायदाद ही छीन थी। पर अन्य धर्मियो मे यह समभाव नहीं था। उन्होंने अपनी सत्ता में जैनो को बहुत सताया। यहां तक की पुष्पमित्र ने हुक्म नामा निकाला कि जैन- बौद्ध साधुओं का शिर काट कर लावेगा १०० मोहरें उसको पुरस्कार स्वरूप दी जावेंगी। दहाड़ राजा ने हुक्म निकाला कि त्यागी साधु—सारंभी ब्राह्मणो को नमस्कार करे। महाराष्ट्र प्रांत में हजारों जैन साधुओ को मौत के घाट उतार, दिये, वह भी एक बार ही नहीं, पर दो तीन बार। कलिंग में भी जैनो पर अत्याचार कर कलिग को जैनो से निर्वासित कर दिया। श्वेतदूत राजा तोरमण आचार्यश्री हरिगुप्तसूरि के उपदेश से जैनधर्म का अनुरागी बन गया था और उसने भ० ऋषभदेव का जैनमंदिर भी बनवाया था पर उसका ही पुत्र मिहिरकुल शिव धर्म को अपनाकर जैनो पर इतना अत्याचार किया कि कई जैनो को जननी जन्म भूमि (मरुभूमि) का त्याग कर अन्य प्रान्तो में जाकर बसना पड़ा इत्यादि। अनेक उदाहरण विद्यमान हैं और जैनों के मंदिर तो सैकड़ों की संख्या में जैनोत्तरो ने हजम कर लिये जो आज भी विद्यमान हैं। खैर, प्रसंगोपात इतना लिख कर अब हम मूल विषय पर आते हैं।

जैनाचार्यों ने जिस वर्ण, जाति, गौत्रादि, ऊंच नीच रूपी जहरीले भेदभाव एवं वाड़ाबन्धी को समूल नष्ट कर तथा मांसाहारी एवं व्यभिचारी जैसी राक्षसी प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की शुद्धि कर सदाचारी एवं समभावी बनाए थे और उनके आपस में रोटी बेटी का व्यवहार खूब खुले दिल से होता था। इस सहृदयता ने जैनो की संख्या को बढ़ा कर उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँचा दिया। जैन केवल स्वार्थी ही नहीं थे पर वे परमार्थी भी थे उन्होने देशवासी भाइयों के लिये काल, दुकाल एव राज संकट के समय प्राण प्रण से एवं असंख्य द्रव्य व्यय करके अपने स्वार्थ त्याग द्वारा जन समाज की बड़ी २ सेवाएं की थीं। समाज और धर्म के लिये तो कहना ही क्या था। आज भी इतिहास पुकार-पुकार कर कहता है कि जैनों ने देश से बाकी है शायद ही दूसरे किसी ने की हो। प्रत्यक्ष प्रमाण में भी भारत में जगतसेठ, नगरसेठ, टीकायत, चौवटिया, पंच, बोहरा, साहुकार, शाह आदि ऊंचे २ पदों पर जैनों को ही सन्मान मिला था। इससे भी पाठक। अनुमान कर सकते है।

जैनों की वह उन्नति स्थायी रूप में नहीं टिक सकी जब से जैनों में आपस का प्रेम गया, पर उपकार की बुद्धि गई, साधर्मियो की वात्सल्यता गयी, धर्म का गौरव गया और स्वार्थ जैनों पर छापा मारा इधर ब्राह्मणों के संसर्ग से पुनः जातियो की सृष्टि शुरू हुई छोटे-छोटे वाड़े बंधने लगे जाति मच्छरता का भूत जैनों पर सवार हुआ। ऊंच नीच भावना ने हृदय में जन्म लिया, जाति मच्छरता ने अड्डा जमा लिया। गत, पन्य गच्छो की बाड़े बन्दी होने लगी, शुद्धि की मिशन के कष्ट आकर बेकार बन गई। राज्य सत्ता ने जैनों से इन्कार लिया बस, जैनों की अवनति ने उनको गहरे गर्त में डाल दिया जिसको आज हम अपनी आंखों से देख रहे हैं।

एक ही महावीर के उपासकों में सब से पहले श्वेताम्बर और दिगम्बर दो पार्टियां बनीं। फिर दिगम्बरों में संघ भेद होकर अनेक टुकड़े हो गए और श्वेताम्बरियों में चैत्यवास, बस्तीवास, दो बड़ी पार्टिया हो गई तदन्तर गच्छों के भेद हुए जिनमे ८४ गच्छ तो केवल कहने मात्र के हैं पर नामावली लिखी जाय तो

तीन सौ से अधिक गच्छों की संख्या आती है इसमें बहुत से गच्छ तो सम समाचारी वाले हैं और कई क्रिया भेद के गच्छ भी हैं और वे सब अपनी-अपनी पार्टी की रक्षा में एवं वृद्धि में अपनी सब शक्ति को खर्च करने में ही अपना गौरव समझा। पर इसमे जैन धर्म को क्या लाभ होता, इस बात को भगवान् महावीर की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भूल गए। आगे चल कर कई मत पैदा हुए जिन्होंने जैन धर्म के संगठन को चूर चूर कर डाला और समाज को फूट व कुसम्प का झोपड़ा बना डाला और कई क्रियाएं भी ऐसी कर डाली कि जिससे जैन धर्म दुनियां की नजर में गीर भी गया कारण साधारण जनता तत्त्व पर लक्ष्य कम देकर वर्तमान बाह्य क्रिया पर ही अपना मत बांध लेती है जैसे जैनों की अहिंसा ने जगद् उद्धार किया था और सर्वत्र इसके गुण गाए जाते थे। पर उसके आचरण में इतना परिवर्तन कर दिया कि आज अबोध जन उसकी हंसी करने लग गये। ऐसी ही वेश परिवर्तन का कारण हुआ। जैनों ने देश समाज और सर्व साधारण के हित के लिए अरबों खरबो द्रव्य व्यय किया पर कई असमझ लोग मनुष्य को अन्न जल, पशुओं को घास डालने में भी पाप समझने लगे तथा मरते हुए जीव को बचाने में भी पाप की कल्पना करने लग गए। जो अज्ञानी लौग केवल ऐसे मनुष्यो के परिचय में आते हैं वे जेन धर्म के प्रति कैसे भाव रखते हैं पाठक! स्वयं समझ सकते हैं।

अब जातियों की संख्या को भी सुन लीजिये। भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरी ने पृथक २ वर्ण, गौत्र, जातियों के भेदभाव मिटाकर सब को समभावी जैन बनाए थे। कालान्तर में उनके तीन नाम निर्माण हुए। श्रीमालनगरवालोंका श्रीमाल, प्राग्वटनगरवालोका प्राग्वट और उपकेशनगरवालोंका उपकेश। केवल नाम पृथक हुए पर इनका रोटी वेटी का व्यवहारादि सब शामिल ही थे इतना ही क्यों पर बाद मे भी जैनाचार्यों ने मांस, मदिरासेवी क्षत्रियोंको जैनधर्म की दीक्षादी। उन नव दीक्षित क्षत्रियोंका रोटी वेटीका व्यवहार उसी समय से शामिल कर लिया गया था पर किसी समय एक जाति वाले के हृदय में अहंपद आया और जहां अपनी चलती थी दूसरे को कह दिया कि जाओ हम तुमको वेटी नहीं देंगे। तो दूसरे स्थान दूसरे की चलती थी वहां उन्होंने कह दिया कि हम तुमको वेटी नहीं देंगे। बस, वेटी व्यवहार बन्द होगया किसी-क्षेत्र को संकीर्ण करना यह पतनका ही कारण है। इसी प्रकारएक नीर्जिव कारणसे लघु सज्जन, बड़े सज्जनके भेद पड़ गए। अधुनी जैनोंकी एक यहभी खूबी है कि वे तोड़नातो खूब जानते हैं पर जोड़ना नहीं जानते जैसे ऊपर बतलाया गया है। कि जैन धर्म के पालन करने वाले श्रीमाल, प्राग्वट, उपकेश वश एवं लघु वृद्ध—सज्जनके आपसमें वेटी व्यवहार था पर वह टूट गया फिर उसको जोड़ नहीं सके इन पार्टियो के अग्रेश्वर नेता अपने दिल में समझते हैं कि इन संकुचित विचारों से हमें हनि पहुंची और पहुंचती जा रही है फिर भी इसके लिए आज तक किसी ने प्रयत्न नहीं किया। इसमें अहंपद के अलावा कुछ नहीं है प्रत्येक पर्टी यही समझती है कि में कुछ करुंगा तो कमजोर कहलाऊंगा मेरे क्या गरज पड़ी है कि मैं आगे होकर नम्रता करुं इससे पाया जाता है कि जैनधर्म की हानि लाभ की किसी को परवाह नहीं है केवल अपने २ अहंपद की रक्षा करना सबके दिल में है। इसी प्रकारअग्रवाल, पल्लीवाल, सेठिया, अरणोदिया पीपलोदा पंचा, ढाइया, भावसार, मोढ़ गुर्जर, नेमा लाडवादि। बहुत जातियां जैनधर्म पालन करने वाली थी परन्तु उनके अन्दर से किसी एक का भी वेटी व्यवहार दूसरे के साथ नहीं है इतना ही नहीं पर एक जाति दूसरी जातिकी पहचान तक भी नहीं रखतो। क्षेत्रापेक्षा मारवाड़ के ओसवाल मेवाड़, मालवा, पंजाब, गुजरातादि अन्य प्रान्त वालों ओसवालों को वेटी नहीं

देते तब अन्य प्रान्त वाले मारवाड़ मालवा वालो को बेटी नहीं देते। यही कारण है कि एक प्रान्त के जैनो का दूसरे प्रान्त के जैनों के साथ कुछ भी सम्बन्धनही है और धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में एक दूसरे की मदद भी नही करते। इतना ही क्यों पर अकेले मारवाड़ के ओसवालो मे भी राजवर्गी, मुत्सी लोग बाजार का साथ अर्थात् व्यापार करने वालो के यहां बेटी देने में संकोच करते हैं धनवान लोग साधारण स्थिति वालो को अपनी पुत्री देना नहीं चाहते यही कारण है कि आज समाज मे कुजोड़ एवं बाल-वृद्ध विवाह और कन्या विक्रय, वर विक्रय का भूत सर्वत्र तांडवनृत्य कर रहा है विधवा विदूर और कुवारो की दशा इनसे भी शोचनीय है यदि यही परिस्थिति रही तो एक शताब्दी में ही इस समाज की इतिश्री होने में कोई सन्देह नही है। खैर, प्रसंगोपात इतना कह कर पुनः जातियो के विषय पर आते है कि जैनाचार्यों ने वर्ण, जाति, गौत्रादि को एक कर संगठन को मजबूत बनाया था। उसी महाजन संघ की तीन शाखा हुई जिसमें एक उपकेशवंश एवं ओसवाल जाति के अन्दर कितने गौत्र एवं जातियां बन गई थी और पृथक् २ जातिया बनने के कारण भी बड़े ही अजब थे जिसको पढ़ कर पाठक आश्चार्य अवश्य करेगे। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर मे महाजन संघ की स्थापना की थी बाद उसके अन्दर नामांकित पुरुष हुए। जैसे—

१ नागवंशी आदित्यनाग नामक पुरुषने सामाजिक एव धार्मिक ऐसे-ऐसे काम किए कि उनकी सतान, आदित्यनाग के नामसे प्रसिद्ध हुई और आगे चल कर यही इनका गौत्र बन गया। तथा चोरड़िया, गुलेच्छा, पारख, गदइया, आदि ८४ जातियो इसी गौत्र से उत्पन्न हो गई इससे हम इतना जरूर समझ सकते हैं कि किसी समय इस जाति की बड़ी भारी उन्नति थी और इस जाति में इतने ही नामांकित पुरुष हुए उन के नाम एवं काम से ही पृथक २ जातियां बन गई। पर उन जातियो के छोटे छोटे वाड़े बन जाने से लाभ के बदले हानि के कारण बन गये थे। इस पतन के समय में भले ही आज वे ८४ जातियां नहीं रही हो पर वंशावलियो से हम देख सकते हैं कि एक समय एक ही गौत्र की ८४ जातियां बन गई थी

२—बप्पनाग नामक महापुरुष की सतान बप्पनाग गौत्र के नाम से मशहूर हुई इनकी भी आगे चल कर ५२ जातियां बन गई थी।

३—महाराजा उत्पलदेव की सन्तान ने समाज में अति श्रेष्ठ कार्य कर बतलाने से वे श्रेष्ठि कहलाये आगे चल उनकी भी कई जातिया बन गई थी।

४—तप्तभट्ट पुरुष की संतान तप्तभट्ट कहलाई।

५—बलाह नामक भाग्यशाली की सतान बलाहगौत्र कहलाई।

६—कुम्मट का व्यापार करने वाले कुम्मट कहलाये।

७—कर्णाट से आये हुए लोग कर्णाट कहलाये।

८—कन्नौज से आये हुए समूह कन्नोजिये कहलाए।

९—डिडुनगर से आए हुए लोग डिडु कहलाए।

१०—भाद्रा की सतान भाद्र गौत्र के नाम से मशहूर हुई।

इत्यादि अनेक गौत्रों की सृष्टि बन गई। यह बात तो स्वयं सिद्ध है कि ओसवाल जाति में अधिक लोग राजपूत ही हैं और राजपूतो में 'दारुड़ा पिना और मांस खाना' इनके साथ दासी मस्दरी रखने का रिवाज था। जैनाचार्यों ने उनके मासमदिरादि सेवन की कुप्रथा छुड़ा कर जैन तो बना दिये गये थे पर उनकी

हांसी मस्करी की रूढ़ी सर्वथा नहीं छुट गई थी कुछ कुछ नमूना तो आज भी हम देख सकते हैं जैसे ओस· वालों के यहां जभात महमान आते हैं तब उनके स्वागत में गीत गाते हैं उसमें भी वही शब्द गाया करते हैं अतः आपस की हांसी मस्करी से भी कई जातियां बन गई, कई राजका काम करने से, कई व्यापार से, कई नगरों के नाम से, कई धार्मिक कार्य करने से, और कई नामांकित पुरुषों के नाम से नमूने के तौर पर कतिपय जातियों के नाम यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं। जिससे पाठक स्वयं समझ सकेंगें ?

१—हांसी मस्करी से बनी हुई जातियो के नामः—सांढ़, सियाल, मच्छा, हंसा, चील, काग, मुर्गीपाल, नाहर, गजा, वाघमार, लुंकड़, बुगला, मिन्नी, बाघचार, गादिया, ऊंठडिया, गरुड़, हीरण, बाघरेचा, बोकड़ियां, चीड़कलिया, ढेलडिया, तोता, कांगड़ा, तोड़ियाणी, घोड़ावत, चकला, चिचट, बकरा, आदि २।

२—व्यापार करने से जातियों के नामः—घीया, तेलिया, केसरिया, कपूरिया, गुगलिया, चापड़ा, कस्तु· रिया, धूपिया, खोपरिया, गांधी, लूणिया, पटवा, चामड़, सोनी, मीनारा, जड़िया, जौहरी, नलिरिया, सराफ, वोहरा, मणियारा, गुदिया, पीतलिया, भंडोलिया, हलदिया, धावड़ा सेवड़िया, बजाज, कापड़िया, संगरिया, पारख, कुमट, कंसारिया, लुगड़िया, मोतिया, चौपड़ा, सुतरिया, पूणिया, समुदड़िया, हुंडीवाल, मेदीवाल, पोटलिया, मोदी, चिणोटिय, गुलखेड़िया, बजरिया, पोमचिया, दालिय, इत्यादि इत्यादि।

३—नगरों के नाम पर भी कोई जातियां बन गई थीः—जैसे हथुड़िया, साचौरा, जालौरी, नरबरा, रामपुररिया, पीपाड़ा, फलोदिया, सीरोहिया, भीनमाला, मेडतिया, नागौरी, कुचेरिया, हरसौरा, रूणीवाल वोरुन्दिया, रामसेना, भटनेरा, गुदेचा, डांगी, जयपुरिया, जैसलमेरा, जौधपुरिया, नाणवाल, मंडोवरा जीरा· वला, सुरपुरिया, पांचौरा सोजतिया, संभरिया, मकवाणा, सौनाणा, माथुरा, मुतेड़िया, भरूंचा, पाटणिया, खींजणदिया, पल्लीवाला, नंदवाणा हापड़ा खांगटिया, रोणीवाल, वागड़िया, ढेढिया, चामड़िया। चंडालिया, दान्तियां, भोगाला, रत्नपुरा, संडेरा, खींवसरा, पुंगलिया, श्रीमाल, दुधोड़ा, पोकरणा, समदड़िया, इत्यादि

४ राज का काम करने वाळों की भी कई जातियां बन गई जैसेः—भंडारी कोठारी, खजांची, मंत्री, कामदार, फौजदार, चौधरी पटवारी, मेहता, कांनुगा, दफ्तरी, शूरवा, रणधीरा, पोतदार, भोमिया, वोहरा, डोडीदार, चौपदार, नगरसेठ, टीकायत, नौपता, राजसोनी शिशोदिया, राठौर, चौहान, परमार, सोनीगरा।

५—कई जातियां चकार अन्त की भी बन गई जैसेः— कोटेचा, कांगरेचा, जेगरेचा, ब्रह्मेचा, बाघरेचा, कांकरेचा, सालेचा, पामेचा, पावेचा, नातेचा, डांगरेचा, पालरेचा संखलेचा, संगेचा, मादेचा, नांदेचा, गुंदेचा, गुंगलेचा, काडेचा, मुंगेचा, राजेचा, सखेचा, पुंगेचा, लुणेचा, भादरेचा, जाणेचा, सोनेचा, लुंगेचा, साणेचादि।

६—धार्मिक कार्यों से भी कई जातियां बन गई जैसे—संघी, चौसरिया, पोषाबाल, पुजारा, फूल पगर, नवकारसिया, सामीभाई, वात्सलिया नौलखा, दादा, धूपिया, केसरिया, दीवटिया, पीलजातिया, शिखरिया, भावुका, मादलिया, आरतिया। इत्यादि।

७—कई जातियां चिड़ने चिड़ाने से भी बन गई जैसे—टाटिया भूतेड़ा, तुरकिया, फितुरिया, गोगड़ा, बडबड़ा, चिड़कणिया। इत्यादि।

८—कई जातियां अपने पूर्वजों के नाम पर बन गई जैसे—सिंहावत, बाघावत, पातावत, जोधावत, मालावत, चाम्पावत, पोमावत, नागावत, धर्मावत, सदावत, नाथावत, लूंणावत, मांडावत, पूंजावत, साल· गोत, दोलोत, कानोत, राजोत, रामावत, मूजावत, खेतावत, राणावत, मूजावत, भीमावत, जुगावत, लाजोत,

हर्षोत, बालोत, जसोत्, ललाणी सीपाणी, आसाणी, वेगाणी, राखाणी, देदाणी रासाणी जीवाणी, रूपाणी, सानोणी, धमाणी, तेजाणी, दुधाणी, वागाणी जीनाणी, सोनाणी, बोधाणी, कर्माणी, हंसाणी, जैताणी भेराणी, मालाणी, भोमाणी, सलखाणी, सूजाणी, भीदाणी इत्यादि ।

इस प्रकार से ओसवाल जाति की अनेकोनेक जातियां बन गई जिसकी गिनती लगाना मुश्किल है कारण ओसवाल जाति भारत के चारों ओर फैली हुई है तथापि वि. सं० १७७० की साल में एक सेवग प्रतिज्ञा करके निकला कि मैं तमाम ओसवालों की जातियों को गिन कर ही घर पर आऊंगा। उसने दस वर्ष तक भ्रमण करके ओसवालों की १४४४ जातियां गिन कर दक्षिणा में दस हजार रुपया लेकर घर पर आया तब सेवक की औरत ने सवाल किया, कि आपने ओसवालों की तमाम जातियों के नाम लिख लाए है पर उसमें मेरे पीयर वाले ओसवालो की जाति लिखी है या नही ? इस पर सेवक ने पूछा कि तुम्हारे पीयर वाले ओसवालों की क्या जाति है ? औरत ने कहा कि 'दोसी' इस पर सेवक ने निराश होकर कहा कि यह जाति तो मेरे लिखने में नहीं आई है तब औरत ने कहा कि एक दोसी ही क्यों पर और भी अनेक जातियां होसी । सेवग ने कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है, ओसवाल, भोपाल एक रत्नाकर हैं उनमें जातियां रूपी इतना रत्न है कि जिसकी गिनती लगाना ही मुश्किल है । इससे पाया जाता है कि एक समय ओसवाल जाति उन्नति के ऊच्चे शिखर पर थी ।

मुझे भी जितनी जातियों की उत्पत्ति का इतिहास उपलब्ध हुआ है प्रस्तुत ग्रंथ में यथा स्थान दर्ज कर दिया है । अन्त में इस लघु लेख से पाठक कुल, वर्ण, गोत्र, और जातियों की उत्पत्ति का इतिहास से अवगत हो गये होंगे कि जिन महापुरुषों ने पृथक् २ गोत्र जातियों को समभावी बनाकर एक ही सगठन में ग्रन्थित कर उनको उन्नति के उच्चे स्थान पर पहुँचा दी थी पर भवितव्यता बलवान होती है कि उन संगठन का चूर चूर कर पुनः वड़ा बन्धी में टुकड़े टुकड़े कर डाले विशेष आश्चर्य की बात है कि आज भ्रातृभाव का जमाना में हम देख रहे हैं कि दूसरे को तो क्या पर एक ही धर्म पालन करनेवाला मानव समाज में भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ बेटी व्यवहार नहीं है इसपर जरा सोचा जाय कि जब भोजन व्यवहार कर लिया तब उसके साथ बेटी व्यवहार करने में क्या हर्जा है । यदि हम दूसरों को हलके समझे तब उनके साथ में बैठकर भोजन व्यवहार कैसे कर सके आदि भोजन व्यवहार करते समय हम दूसरे को हलका नहीं समझे तब बेटी व्यवहार करने में क्या संकीर्णता—बस । हमारे पत्तन का मुख्य कारण यही हुआ कि हमारा सगठन छीन्न भिन्न होकर अनेक विभागो में विभाजित हो गया है । दूसरा हम हमारे पूर्वजो के गौरव पूर्ण इतिहास से अनभिज्ञ है । जब तक अपने पूर्वजों का इतिहास का हमको ज्ञान नहीं है वहा तक हमारी नसों में कभी खून उबलेगा ही नहीं जब हमारा खून न उबलेगा तब हम आगे बड ही नहीं सकेंगे यही हमारे पतन के दो मुख्य कारण है ।

अन्त में हम शासन देव से प्रार्थना करेंगे कि हमारे पूज्य मुनिवरों को सावधान करे कि वे समाज को जोरों से उपदेश कर पुनः उस स्थिति पर ले आवे कि हमारे पूर्वाचार्यों के समय मे थी और समाज नेताओ को भी अपने हृदय को विशाल एवं उदार बनाकर सकीर्णता सूचक वाड़ा बन्धी को जड़ मूल से नष्ट कर अपनी समाज का प्रत्येक क्षेत्र को विशाल बनाले कि हम पुनः विशाल बन जावें । इति शुभम् ॥

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की एक शाखा

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष के बीज तो वीराब्द ७० वर्ष आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि ने मरुधर देश के उपकेशपुर नगर में बोकर कल्पवृक्ष लगा दिया था तत्पश्चात् उन आचार्यों ने स्वयं एवं आपके पट्ट परम्परा के आचार्यों ने जल सिंचन करके पोषण किया और अनुकूल जल वायु मिलता रहने से वह कल्पवृक्ष इतना फला फूला कि जिसकी शीतल छाया में लखों नहीं पर करोड़ो मनुष्य—सुख शांति का अनुभव करने लगे। फिर तो ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों उस कल्पवृक्ष की शाखाएं भी प्रसरित् होती गई। जैसे आत्मकल्याण के लिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी तीन शाखाएं हैं वैसे ही उस कल्पवृक्ष के भी उपकेशवंश, प्राग्वटवंश, श्रीमालवंश नाम की तीन शाखएं हो गई। बाद में भी बहुत से आचार्यों ने अजैनों को जैन बना कर उनको महाजनसंघ रूपी वृक्ष की शाखाएं बनाते गये जैसे सेठिया, अरुणोदिया, पीपळोदा, इत्यादि। आगे चल कर उन शाखाओ के प्रतिशाखाएं भी इतनी हो गई कि जिनकी गिनती लगाना अच्छे २ गणित वेत्ताओं के लिये भी अशक्य बन गया।

जहां तक इस कल्पवृक्ष और उसकी शाखाएं आपस में प्रेम पूर्वक रही वहां तक दोनों का मान महत्त्व एवं गौरव से उनका सिर ऊंचा रहा और अपनी खूब उन्नति भी की कारण वृक्ष की शोभा शाखाओं से ही है और शाखाओं की शोभा वृक्ष से। यदि वृक्ष बड़ा होने से वह अभिमान के गज पर सवार होकर कह दे कि मैं सब को आश्रय देता हुँ मुझे शाखाओं की क्या जरूरत है और शाखाएं कह दें कि हम भी वृक्ष के सदृश्य विस्तृत हैं फिर हमें वृक्ष की क्या परवाह है इस प्रकार वृक्ष शाखाएं को अलग कर दे या शाखाएं वृक्ष से पृथक् हो जाय। तब उन दोनों का मान महत्व कम हो जाता है यहां तक कि शाखा विहीन वृक्ष को कष्ट समझ सुथार काट कर जला देता है और वह कोलसों के काम में आता है तब वृक्ष से अलग हुई शाखाएं स्वयं सूख जाति है वे कठहरे की भारी बन कर ईंधन के काम आती है अर्थात् एक दिन ऐसा आजाता है कि संसार में उस वृक्ष एवं शाखाएं का नामोनिशान तक भी नहीं रहता है।

यही हाल हमारे महाजनसंघ और उसकी शाखाओं का हुआ है जब तक वृक्ष अपनी शाखाओं को संभाल पूर्वक प्रेम के साथ अपना कर रखी एवं शाखाएं भी वृक्ष का बहुमान कर अपने आश्रयदाता समझ उसका साथ दिया वहां तक तो दोनों की वृद्धि होती रही। यहां तक कि वे उन्नति के उच्चे शिखर पर पहुंच गये। पर जब से वृक्ष ने शाखाओं की परवाह नहीं रखी और शाखाएं वृक्ष से अलग हो गई उसी दिन से दोनों के पतन का श्रीगणेश होने लगा। क्रमशः वर्तमान का हाल हमारी आंखों के सामने है।

महाजनसंघ रूपी कल्पवृक्ष की शाखाओं में सेठिया जाति भी एक शाखा है उसकी उत्पत्ति, व वृक्ष के साथ रहना, तथा वृक्ष से कब और क्यों अलग हुई और उसका क्या नतीजा हुआ इन सब का इतिहास आज मैं पाठकों की सेवा में रख देना चाहता हूँ।

मरुधर प्रदेश में बहुत से प्रसिद्ध एवं प्राचीन नगर हैं जिसमें श्रीमालनगर भी पुराण प्रसिद्ध प्राचीन नगर है और इस नगर की प्राचीनता के विषय में यत्र तत्र कई प्रमाण भी मिलते हैं पुनः यह भी कहा जाता है कि इस श्रीमालनगर को देवी महालक्ष्मी ने बसाया था और वहां पर बसने वालों को महालक्ष्मी देवी ने

ऐसा वरदान भी दिया था कि तुम लोग सदाचारी रहोगे वहां तक धन धान्य एवं कुटुम्ब से सदा समृद्धि शाली रहोगे । तदनुसार श्रीमालनगर के लोग बड़े ही धनाढ्य थे उस नगर में कोटाधीश तो साधारण गृहस्थों की गिनती में गिने जाते थे तब लक्षाधिपतियों की तो गिनती ही कहां थी ? फिर भी पूर्व संचित कर्म तो सब के साथ में ही रहते हैं ।

श्रीमालनगर मे जैनधर्म की नींव तो सब से पहले भ० पार्श्वनाथ के पांचवें पट्टधर आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने वीर निर्वाण से करीब चालीस वर्ष में डाली थी । उस समय श्रीमालनगर में सूर्यवंशी राजा जयसेन राज्य करता था उसने ब्राह्मणों के कहने से एक बृहद् यज्ञ का आयोजन किया जिसमें बलि देने के लिये लाखो पशुओं को एकत्र किये थे ठीक उसी समय आचार्य स्वयंप्रभसूरि का पदार्पण श्रीमालनगर में हुआ । और आपने अहिंसा परमोधर्मः का सचोट एव निडरता पूर्वक उपदेश दिया फलस्वरूप राजा-प्रजा के ९०००० घर वालों को जैन धर्म मे दीक्षित कर जैन धर्म की नींव डाली । तत्पश्चात् राजा ने जैनधर्म का बहुत अच्छा प्रचार किया ।

राजा जयसेन के दो पुत्र थे । १—भीमसेन, जो अपनी माता के पक्ष में रह कर ब्राह्मण धर्म का उपासक बन गया था और दूसरा चंद्रसेन जो २ अपने पिता के पक्ष में रह कर जैन धर्म स्वीकार कर उसका ही प्रचार करने में सलंग्न रहता था । अतः दोनो भाईयो में कभी-कभी धर्मवाद भी चलता रहता था ।

राजा जयसेन के स्वर्गवास होने के बाद, भीमसेन को राजा बनाया गया एवं भीमसेन के हाथ में राज सत्ता आते ही उसने धर्मान्धता के कारण जैनों पर कठोर जुलम गुजारना प्रारम्भ कर दिया । अत चन्द्रसेन ने धर्मरक्षार्थ आबू के पास उन्नत भूमि पर एक नगर आबाद कर श्रीमालनगर के दुःख पीड़ित अपने सब साधर्मी भाइयों को उस नूतन नगर में ले आया और उस नूतन नगरी का नाम चंद्रावती रखा तथा प्रजा ने वहां का शासन कर्त्ता राजा चद्रसेन को मुकर्रर कर दिया । राजा चंद्रसेन की ओर से वहां बसने वालों को सब तरह की सुविधा होने से थोड़े ही समय मे नगर खूब अच्छी तरह आबाद हो गया विशेषता यह थी की वहां के निवासी प्रायः सब लोग जैनधर्म को पालन करने वाले ही थे उनके आत्म कल्याण के लिये नूतन नगरी में कई जिनालय एवं उपाश्रय भी बनवा दिये थे ।

इधर श्रीमलनगर से सब के सब जैन निकल गए बस, पीछे रहा ही क्या ? जब राजा भीमसेन ने अपने नगर को शून्यारण्यवत् देखा तब उनकी आंखें खुली कि मैंने ब्राह्मणों की बहकावट में आकर राजनीति को भूल कर जैनधर्म पालने वालों पर व्यर्थ जुल्म कर अपने ही हाथों से अपना अहित किया है पर अब पश्चाताप करने से क्या होने वाला था । खैर, बिना विचारे करता है उसको पश्चाताप तो करना ही पड़ता है ।

श्रीमालनगर के पहले से ही तीन प्रकोट थे पर नगर टूटने के बाद ऐसा प्रबंध किया कि पहले प्रकोट में कोटाधिश, दूसरे में लक्षाधिश और तीसरे प्रकोट में साधारण जनता इस प्रकार की व्यवस्था कर उस का नाम भीन्नमाल रख दिया जो राजा भीमसेन के नाम की स्मृति करवाता रहे । भीन्नमाल में सूर्यवंशी राजाओं के पश्चात् चावड़ावंशी बाद गुर्जर लोगो ने राज किया था शायद कुछ समय के लिये भीन्नमाल हूणों के अधिकार में भी रहा था और बाद में परमारों ने भी वहां का शासन चलाया था । उपरोक्त लेख प्रस्तावना के रूप में लिख कर अब मैं मेरे उद्देश्यानुसार सेठिया जाति का इतिहास लिखूंगा । जो आज पर्यंत अंधेरे में ही पड़ा था ।

विक्रम की आठवी शताब्दी में भी भीन्नमाल नगर अच्छी तरह आबाद था। वहां के निवासी तन, जन, धन से अच्छे सुखी थे एवं समृद्धशाली थे उस समय वहां पर भाण नामक राजा राज्य करता था, कोई-कोई राजाओं के मूल नाम के साथ उपनाम भी पड़ जाते हैं। इस कारण अच्छे २ विद्वान् भी भ्रम के चक्कर में पड़ कर गोता खाया करते हैं पर सूक्ष्म दृष्टि से शोध खोज करने पर पता मिल भी जाता है।

राजा भाण जैन धर्मोपासक राजा था आपके संसार पक्ष के काका श्रीमल्ल ने जैनदीक्षा ली थी जो सोमप्रभाचार्य के नाम से सुप्रसिद्ध थे उस समय भीन्नमाल में आचार्य उदयप्रभसूरि का आना जाना था और राजा पर आपका बहुत अच्छा प्रभाव था। आंचलगच्छपट्टावली से पाया जाता है कि उदयप्रभसूरि ने भी भीन्नमाल के ६२ कोटाधीशों को जैनधर्म की दीक्षा देकर जैन श्रावक बनाये थे इत्यादि भीन्नमाल में जैनों की अच्छी आबादी थी।

जीवों को दुःख और सुख की प्राप्ति होना पूर्व संचित कर्मानुसार ही है भीन्नमाल में जैसे बहुत से लोग सुखी बसते थे तो वैसे कई दुःखी लोग भी रहते थे। दुख का मूल कारण अज्ञान है और अज्ञानी जीवों के दुःखोदय होने पर भी वे अज्ञान से पुनः दुःखों का ही संचय करते हैं। जब अज्ञानी जीवों को असह्य दुःख हो जाता है तब वे येन केन प्रकारेण प्राण छोड़ कर दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं और उन अज्ञानियों को अज्ञानमय मरण होने से उसका फल भी मिल जाता है जैसे उस समय एक तो मृतपति के पीछे धक् धकती आग में जल कर सती होना और दूसरी काशी जाकर करवत लेना।

भीन्नमाल में कई ब्राह्मण बहुत दुःखी थे उनमें से २४ ब्राह्मणों ने दुःख से मुक्त होने के लिये विचार किया कि काशी में गंगा किनारे केसरघाट पर करीब ५० मण लोहे की एक तीक्ष्ण करवत रखी हुई है लोगों की मान्यता है कि उस करवतसे मरने वाला सीधा ही स्वर्ग में जाकर देवताओं के सुखों का अनुभव करता है जैसे पति के पीछे उसकी पत्नी जीते जी धधकती हुई अग्नी में जल कर सती होने पर स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करती है वे ब्राह्मण भी वहां जाकर करवत से मरने का निश्चय कर लिया और गुपचूप घर से निकल कर काशी के लिये रवाना भी हो गये पर शुभ कर्मों का उदय होनेसे रास्तेमें उन विप्रों की आचार्य श्रीउदयप्रभ सूरि से भेंट हो गई जब सूरिजी ने उन विप्रों के चित्त पर चिन्ता के चिन्ह देख कर उनसे कहने लगे—

सूरिजी—विप्रो ! आज आप एकत्र होकर कहां जा रहे हो ?

विप्र—ग्लानी लाते हुए दबी जबान से कहने लगे पूज्य गुरुदेव ! संसार भर में केवल आप जैसे निर्ग्रंथ महात्मा ही सुखी हैं आप के त्याग और तपस्या से इस भव और परभव में आप सुखी होंगे पर हमारे जैसे पामर प्राणी तो इस भव में दुःखी हैं और पर भव में भी दुःखी ही रहेंगे। इस असह्य दारुण दुःख से मुक्त होने की गरज से हम काशी जा रहे है वहां जा कर करवत लेकर प्राण मुक्त होंगे जिससे इस भव के दुःखों से मुक्त हो जायंगे और यहां से सीधे ही स्वर्ग में जाकर सुखी बनेंगे ऐसी अभिलाषा है।

सूरिजी—इसका क्या सबूत है कि आप अपघात जैसा नारकीय कृत्य करने पर भी स्वर्ग में जाकर सुखों का अनुभव करेंगे ?

विप्र—हमारी परम्परा एवं शास्त्र ही इस बात के साक्षि हैं और सैंकड़ों मनुष्य ऐसे करते आये हैं पर हमें दुःख है कि आप जैसे महात्मा इस धार्मिक कृत्य को अपघात एवं नरक का कारण बता रहे हैं

सूरिजी—इस प्रकार अज्ञानता के वशीभूत होकर मरना अपघात नहीं तो और क्या है ?

विप्र—क्या काशी जाकर करवत ले कर मरना अज्ञान मरण है ?

सूरिजी—यदि इस प्रकार मरने से ही स्वर्ग मिल जाता हो तो उस करवत के चलाने वाले स्वर्ग के सुखों से वंचित रह कर यहां दुःख क्यों भोग रहे हैं आपके पूर्व उन लोगो को करवत ले कर स्वर्ग पहुँच जाना था पर वे स्वर्ग न जाकर आप जैसे भद्रिक लोगों को ही स्वर्ग में भेजने की एक जाल रच रखी है।

विप्र—महात्माजी ! आपही बतलाइये कि इनके अलावा हम दुःखों से कैसे छुटकारा पा सकते हैं ?

सूरिजी—महानुभावो ! दुखो से मुक्त होने में सब से पहले तो मनुष्य जन्म की आवश्यकता रहती है वह तो आपको प्राप्त हो ही गया है अब इसमें सद्धर्म और सदाचार की आवश्यक्ता है जो एक भव तो क्या पर भवोभव के दुःखों से मुक्त कर सकता है।

विप्र—महात्माजी आप ही बतलाइये कि कौन से धर्म और किस सदाचार से जीव सुखी होता है ?

सूरिजी—विप्रो ! यदि आप अपने दुःखों से छुटकारा पाना चाहते हो तो पवित्र जैनधर्म की शरण लो और उसके कथानुसार सदाचार की प्रवृत्ति रखो।

विप्र—महात्माजी ! हम तो जाति के ब्राह्मण हैं अपना धर्म छोड़ कर जैन धर्म का पालन कैसे कर सकते हैं ? हमारी न्याति जाति वाले हमको क्या कहेंगे ?

सूरिजी—विप्रो ! धर्म के लिये वर्ण-जाति की रुकावट हो नहीं सकती है केवल आप ही क्यों पर पूर्व जमाना में इन्द्रभूति आदि ४४०० ब्राह्मणों ने भगवान् महावीर के पास जैन श्रमण दीक्षा ली थी उनके पश्चात् भी आर्य्य, शय्यंभवभट्ट, यशोभद्र, भद्रबाहु, आर्य्य महागिरी, आर्यसुहस्ति, आर्य्यरक्षत, वृद्धवादी, सिद्धसेनादि, चार वेद अठारहपुराणों के पारंगत धुरंधर ब्राह्मणों ने जैनधर्म को स्वीकार कर हजारो लाखों जीवों का उद्धार किया है। यह तो दूर की बात है पर आपही के नगर में ६२ कोटीधीश ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार कर उसका ही अच्छी तरह पालन किया या करते हैं फिर आप केवल लोकोपवाद के कारण ही जैनधर्म से वचित रह कर अज्ञान मरण क्यो मरते हो। मै आपको ठीक विश्वास दिला कर कहता हूँ कि जैनधर्म कल्पवृक्ष सदृश मनोकामना पूरण करने वाला धर्म है। आप उसको स्वीकार कर सदैव के लिए सुखी बन जाइये।

विप्रों—ठीक है महात्माजी ! आपका कहना सत्य ही होगा और हम जैनधर्म स्वीकार करने के लिए तय्यार भी हैं पर हमें एक बात की शंका है वह भी आप की आज्ञा हो तो पूछ लें ?

सूरिजी—विप्रो आप खुशी से पूछ सकते हो, विचारज्ञ पुरुषों का तो यह कर्त्तव्य ही है कि अपने दिल की शका का समाधान करके ही काम करना चाहिये ताकि पीछे पछताना न पड़े कहिये आपकी क्या शंका है।

विप्र—आपके कहने के मुताबिक जैनधर्म स्वीकार करने पर हम सब तरह से सुखी बन जायँगे। पर हम जैनधर्म पालन करने वालो में भी किसी-किसी को दुःखी देखते हैं फिर वे सुखी क्यों नहीं होते हैं।

सूरिजी—विप्रो ! पहले तो आप उन जैनधर्म पालन करने वालों से पूछो कि आप सुखी हैं या दुःखी ? आपको जवाब मिलेगा कि हम परम सुखी हैं। शायद आपने धन पुत्रादि को ही सुख समझ रखा हो, पर ज्ञान दृष्टि से देखा जाय तो धन पुत्रादि जैसे सुख के कारण हैं वैसे दुःख के भी कारण हैं। अर्थात दुःख का मूल कारण तृष्णा और सुख का मूल कारण संतोष है यदि कितने ही धन पुत्रादि मिलने पर भी उनके पीछे तृष्णा लगी हुई है तो वह दुःखी है और धन पुत्रादि के अभाव एव कितने ही निर्धनी क्यों न हो पर

जिसको संतोष है वह परम सुखी है जो दुःख है वह पूर्व संचित कर्मों का है जैन है वह उन कर्मों का किसी अवस्था में क्षय करना चाहता है जिसमें भी सम्यग्दृष्टि की अवस्था में कर्मोदय होने में वह भोगवने में बड़े ही आनंद का अनुभव करता है यदि कर्म उदय में नहीं आकर सत्ता में पड़े हैं तब भी सम्यग्दृष्टि तो उसकी उदिरणा करके उदय में लाकर भोगलेना चाहते हैं। विप्रो ! अभी आप जैनधर्म के तात्विक विषयों को जानते न ही है जब आप जैनधर्म के मर्म को समझ लोगे तब जो आप आज दुःख-दुःख करते हो वह आपको सुख के रूप में दिखाई देने लग जायगा। जिस पदार्थ की मनुष्य तीव्र से तीव्र इच्छा करता है वह उतना ही दूर होता चला जायगा। जब आपके हृदय से तृष्णा निकल जायगी तो उतनी ही नजदीक आनन्द का समुद्र लहरायेगा। इत्यादि। सूरिजी ने बड़ी खूबी से समझाये कि विप्रो के ध्यान में आ गया और उन्होंने काशी जाने के विचार को छोड़ दिया इतना ही क्यों पर उस घातिक करवत को ऐसे समुद्र में डलवा दी कि कुप्रथा को सदैव के लिये मिटा दी। फिर समय पाकर—सूरिजी को साथ में लेकर पुनः श्रीमालनगर में आये और अपने अपने कुटुम्ब को सूरिजी के पास लाये और सूरिजी ने सबको धर्मोपदेश दिया और उन सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया और सूरिजी ने भी अपने पास जो वर्द्धमान विद्या से मंत्रित ऋद्धि-सिद्धि प्रदायक वासक्षेप था वह देकर सात दुर्व्यसन का त्याग करवा कर उन सबको जैन बना लिये। बस फिर तो था ही क्या सूरिजी के इशारे पर महाजनसंघ के धनाढ्य लोगों ने उन २४ विप्रों के कुटुम्बों को अपना कर अपने शामिल मिला लिये उनकी हर तरह से सहायता एवं वाणिज्य व्यापार में साथ जोड़ दिये उसी समय से उनके साथ रोटी वेटी व्यवहार खुले दिल से करने लग गये। बस, उन विप्रो को जो दुःख था वह रात्रि में चोरों की तरह कहां भागा कि जिसका पता ही नहीं लगा अतः उन सबकी जैनधर्म पर दृढ़ श्रद्धा हो गई। जैनधर्म की वृद्धि का मुख्य कारण तो उस समय के आचार्यों एवं महाजनसंघ के हृदय की उदारता ही था उन लोगोंकी यही भावना रहती थी कि हम निर्बलों की तन, मन, धन से सहायता कर हमारे बराबरी का भाई बना लें और प्रत्येक कार्य में उनको संघ का एक व्यक्ति समझ कर उसका सत्कार कर उत्साह को बढ़ावें और इस सुविधा से ही अजैन लोग बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लेते थे तब ही तो जैनों की संख्या करोड़ो तक पहुँच गई थी और वे सब तरह से समृद्धिशाली उन्नति के उच्चे शिखर तक पहुँच गये थे। जब महाजनसंघ के साथ उन नूतन जैनों का रोटी वेटी व्यवहार प्रारम्भ हो गया था तब वह व्यवहार कहां तक चला और बाद में किस समय क्या कारण हुआ कि भोजन व्यवहार रखते हुए भी वेटी व्यवहार बन्द कर उनको पतन के मार्ग पर अग्रेश्वर बना दिया कि आज वह पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं।

जब भीन्नमाल में २४ ब्राह्मणों ने सकुटुम्ब आत्मघातक जैसा अधर्म छोड़कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब शेष ब्राह्मणों से यह सहन कैसे हो सके वे उन ब्राह्मणों की खूब निंदा करने लगे कि हमारी जाति में कैसे नास्तिक जन्मे हैं कि सनातन वैदिक धर्म को छोड़ कर नास्तिक जैनधर्म को स्वीकार कर लिया पर उन्होंने जैन श्रमणों में क्या चमत्कार देखा है कारण वह स्वयं भिक्षा मांग कर अपना गुजारा करते हैं यदि जैनाचार्य में कुछ चमत्कार हो तो वे आम जनता के सामने दिखावे। इत्यादि।

इस पर वल्लभजी वगैरह ने आकर आचार्यश्री को अर्ज की कि पूज्य गुरुदेव ! हम लोगों को तो आप पर पूर्ण विश्वास है पर धर्म द्वेषियों को कोई चमत्कार अवश्य बतलाना चाहिये इस पर सूरिजी ने कहा कि ठीक है तुम कल आम मैदान में उपरा ऊपरा ८ पट्टे लगा देना जब मैं आकर पट्टे पर बैठकर व्याख्यान

दूं तब एक एक पट्टा करके सब पट्टे निकाल लेना । इत्यादि ॥ (कहीं पर १०८ पाट्टे भी लिखा है)

बस, वल्लभजी वगैरह ने इस बात को सब नगर में फैलादी कि कल आचार्यश्रीजी अपना चमत्कार जनता को बतलावेंगे । ठीक समय पर जनता चमत्कार देखने को एकत्र हो गई पहिले से ऊपरा ऊपरी रखे हुए ८ पट्टे पर सूरिजी आकर विराजमान होकर व्याख्यान देनेलगे इधर श्रावकों ने एक एक करके सब पट्टे निकाल लिये तथापि सूरिजी आकाश में अधर रह कर भी व्याख्यान देते रहे इस चमत्कार को देखकर कई लोग आचार्यश्री के परम भक्त बन जैन धर्म स्वीकार कर लिया । उनके अन्दर सोमदेव, गोविन्द, गोवर्धन, गोकुल, पूर्ण, प्रभाकर, सोमकर्ण, नंदकर्ण, शिव, हरदेव, हरकिशन, रामदास, तथा झवेरजी, धनजी, भावजी, नानाजी, माधवजी, रूपजी, गुणाजी, धरमशीजी, वर्धमानजी, विमलजी, गोविन्दजी, लालजी इत्यादि बहुतो ने जैनधर्म स्वीकार किया ।

एक समय सोमदेव गोकलादि सूरिजी की सेवा में उपस्थित होकर अर्ज की कि भगवन् अभी तक हमारे साथ महाजनसंघ का बेटी व्यवहार चालु नही हुआ है, इसकी कुछ चर्चा चल रही है तो यह कार्य जल्दी से चालू हो जाय कारण अब हम सब आम तौर पर जैनधर्म स्वीकार कर लिया एवं उसका ही पालन करते हैं इस पर सूरिजी ने वहां के नगरसेठ देवीचन्दजी को बुलाकर थोड़ा-सा इशारा किया कि अब ये विश्वास पूर्वक जैनधर्म का पालन कर रहे हैं, बस इतना-सा इशारा करते ही उन सबके साथ बेटी व्यवहार चालू कर दिया।उस समय के श्रीसंघ की यही तो विशेषता थी कि वे अपने उदार हृदय से दूसरों को आकर्षित करके अपनी संख्या को बढ़ाया करते थे । और समाज पर आचार्यों का कितना प्रभाव था ? कि इशारा मात्र से श्रीसंघ उनका हुक्म उठा लेता था ।

आचार्य उदयप्रभसूरि की पूर्ण कृपा से सोमदेव के पुण्योदय से इधर तो लक्ष्मी की महरबानी से द्रव्य की पुष्कलता हो गई और उधर राज से भी अच्छा सन्मान प्राप्त हुआ राजा ने सोमदेव को अपना मंत्री (दीवान) बना लिया और दूसरों को भी यथासम्भव राज कार्यों में स्थान देकर सम्मानित किया अतः राज्य मे भी उनकी अच्छी चलती होने लगी ।

सोमदेव ने आचार्यश्री के उपदेश से भ० आदिनाथ का मदिर बनवाया और तीर्थधीराज श्रीशत्रुंजय, गिरनारादि, का सघ निकाला, आते जाते सर्वत्र लेन पहरामनी भी दी स्वामीवासल्य कर श्रीसघ के अलावा सब नगर को भोजन करवाया । सघ मे प्रत्येक घर में एकेक पीराजा की लेन दी गुरु महाराज के सामने मुक्ताफल की गहुली और ५०० दीनार गहुली पर रखी गई इत्यादि क्रोड़ों रुपये खुले दिल से खर्च किये । धर्म एव जन हितार्थ सोमदेव ने पुष्कल द्रव्य व्यय किया इससे राजा प्रजा ने मिल कर सोमदेव को सेठ पदवी दी उस दिन से सोमदेव की सतान सेठ कहलाने लगी । भीन्नमाल गुजरात की सरहद पर आबाद होने से कई बातें एवं भाषा गुजराती भी बोली जाती है जैसे गुजरात में सेठ को सेठिया कहते हैं समयान्तर इस जाति के लिये सेठ के बदले सेठिया नाम प्रचलित हो गया । इत्यादि । इस सेठ जाति की देव गुरु धर्म पर भावना-श्रद्धा और सदूकार्य करने से तन, जन एवं धन की बहुत वृद्धि होती रही । एक भीन्नमाल में पैदा हुई जाति, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, मत्स्य, गुजरात, लाट सौराष्ट्र, कच्छ आदि कई देशों में वटवृक्ष की तरह फैल गई इस जाति के सब लोग प्रायः व्यापार ही करते थे पर कुछ लोग राज कार्य भी किया करते थे । इस जाति में सब मिलकर ७२ गौत्र हुए थे पर जाति बदने से एक-एक गौत्र से और भी जातियों का प्रादुर्भाव

हुआ। पर विवाह शादी में ७२ बौहतर गौत्र से ही काम लिया जाता था। खैर सब कुछ अच्छा ही हुआ परन्तु यह समय तो पंचमआरा एवं कलिकाल का है किसी की अति चढ़ती कुदरत से देखी नहीं जाती है वह किसी न किसी प्रकार से उन्नति में रोड़ा अटका ही देती है इस जाति का जन्म वि० सं० ७९५ में हुआ था करीब ३०० वर्ष तक तो इस जाति का खूब अभ्युदय होता रहा वे व्यापार एवं राज्य सेवा से खूब बढ़े इधर महाजनसंघ के साथ रोटी बेटी व्यवहार हो जाने से भी इनकी गिनती ओसवाल जाति में एवं महाजनसंघ में हो गई।

वि० सं० ११०३ में सेठ जाति के कतिपय राज कर्मचारियो के हृदय में अभिमान ने वास कर लिया कई मान रूपी हस्ती पर सवार होकर हुकूमत के जरिये जनता को बड़ी भारी तकलीफें भी देने लगे। जाति मत्सरता के कारण औरतों को पर्दे में रखना भी शुरू कर दिया तथा न्याति-जाति में अपनी औरतों को भेजना बन्द कर दिया और भी ऐसी-ऐसी अहंपद की बातें करने लग गये कि वे राजवर्गी सेठिये अपनी लड़की भी अपने बराबरी के सेठिये में ही देने लगे इतना अहंपद करने लगे कि जो कुछ हैं सो हम ही हैं दूसरे तो कुछ भी चीज नहीं है यही कारण है कि महाजनसंघ ने सेठ जाति के साथ बेटी व्यवहार बन्द कर दिया तथा उस समय दोनों ओर संख्या अधिक होने से किसी को भी तकलीफ नहीं हुई दूसरा एक यह भी कारण है कि महाजनसंघ जैसे तोड़ना जानते हैं वैसे जोड़ना नहीं जानते हैं कारण तोड़ने में जैसे मुख्य अहंपद है वैसे जोड़ने में मुख्य नम्रता होनी चाहिये उसका तो प्रायः अभाव था। चाहे भविष्य में इससे कितना ही नुकसान क्यों न हो पर वे टूटा हुआ व्यवहार नम्रता से पुनः जोड़ नहीं सकते थे। आगे चल कर वस्तुपाल तेजपाल के कारण समाज में दो पार्टियाँ बन गई उनके बाद भी हजारों मांस, मदिरा सेवी क्षत्रियों को दुर्व्यसन से छुडा कर महाजनसंघ में शामिल कर लिये पर अपने सदृश्य व्यवहार वाले भाइयों से टूटे व्यवहार को वे जोड़ नहीं सके यही कारण है कि एक ही महाजनसंघ के कई टुकड़े हो जाने से उनकी समूह शक्ति का चकनाचूर हो गया और इस प्रकार संगठन टूट जाने से केवल छोटी-छोटी जातियों को ही हानि हुई थी सो नहीं, पर महाजनसंघ को भी कम हानि नहीं हुई उनका संगठन तप, तेज, मान, महत्व, मर्यादा उस रूप में नहीं रह सकी इतना होने पर भी इस ओर अद्यावधि में किसी का भी लक्ष नहीं पहुँचा जैसेः—

शहर के बाहर एक बाबाजी का मठ था और उसमें एक चनों की कोठी भरी थी। अकस्मात् बाबाजी के मठ में लाय (अग्नि) लग गई जिससे कोठी के चने स्वयं भुन गये। जब यह खबर शहर में हुई कि बाबाजी के मठ में आग लग जाने से बहुत नुकसान हुआ है। तब शहर के लोग हवा खोरी में घूमते हुये बाबाजी के यहाँ आए वहाँ भुने हुए चने पड़े थे जिनको हाथ में ले फूकें लगा-लगा कर खाने लगे और बाबाजी से कहने लगे कि महात्माजी आपके नुकसान होने से हमें बड़ा ही दुःख हुआ। बाबाजी ने कहा बच्चा नुकसान तो हुआ सो हुआ ही पर अभी तक होता ही जा रहा है। बाबाजी के कहने का मतलब यह था कि आग से बचे हुए चना जो भूने गये यदि इतना ही रह गये तो उष्ण काल में थोड़े-थोड़े खाकर पानी पी लिया करेंगे तो हमारे कई दिन निकल जायंगे। पर जो आते हैं वही मुट्ठा भर कर चना खाना शुरू कर देते हैं। और फिर पूछते हैं कि बाबाजी के नुकसान हुआ। अरे! नुकसान तो अभी होता ही जा रहा है। "ठीक वह युक्ति महाजनसंघ के लिये घटित होती है कि नुकसान हुआ और अभी तक होता ही जा रहा है।"

सेठिया जाति ने जिस दिन से जैनधर्म स्वीकार किया था उस दिन से आज तक श्रद्धा पूर्वक जैनधर्म

पालन कर रही है। ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल आदि जातियों में से तो हजारों मनुष्य जैनधर्म को छोड़ अन्य धर्म में भी चले गये पर सेठिया जाति में ऐसा उदाहरण कहीं पर भी पाया नहीं जाता है। सेठिया जाति के बहुत से उदार दानीश्वरों ने आत्म कल्याण व जैनधर्म की प्रभावना के लिए पुष्कल द्रव्य व्यय किया है। जिसका वंशावलियो में विस्तार से उल्लेख मिलते हैं पर स्थानाभाव से मै यहां पर संक्षिप्त में ही पाठको को दिगदर्शन करा देता हूँ कि—

१—सेठ वल्लभजी का कमलगोत्र—कुलदेवी अम्बिकाजी वल्लभजी के पुत्र कमलसीजी हुए उसके पास पांच करोड़ का द्रव्य था सात खण्ड का मकान रहने के लिये था उसने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया। श्रीशत्रुंजय, गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला। साधर्मी भाइयों के अलावा सब नगर को कई बार मिष्टान् भोजन जीमाकर लहाण दी तथा जैनधर्म की प्रभावना में एक करोड़ द्रव्य व्यय किया आपके परिवार में गुलजी तथा विजयचन्द्रजी भी महान् प्रभाविक पुरुष हुए। तीर्थों का संघ निकाला तब रास्ते में आते और जाते सब ग्रामों में सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना दी थी इत्यादि धर्म के बहुत चोखे और अनोखे काम करके अखण्ड कीर्ति हासिल की थी।

२—सेठ राघवजी रत्नगोत्र कुलदेवी—कालिका आपके परिवार में सेठ अमीपालजी बड़े ही नामांकित पुरुष हुए जिन्होने भ० शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी में पुष्कल द्रव्य दिया। तीन बड़े यज्ञ (जीमणवार) करके सब नगर वालो को जीमाये इत्यादि ऐसे कई उदार पुरुष हुये।

३—सेठ लहुजी वत्सगौत्र कुलदेवी चक्रेश्वरी आपकी संतान में सेठ जीवणजी बड़े ही धर्मात्मा पुरुष हुए आपने भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाला जिसमें साधर्मी भाइयों की भक्ति के लिये लाखो रुपये व्यय किये याचको को इच्छित दान दिया तथा जनोपयोगी कार्यों में भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया। वि० सं० ११११ मे भीन्नमाल पर मुगलो का बड़ा ही जोरदार आक्रमण हुआ युद्ध में लाखों मनुष्य मारे गये हजारो मनुष्यों को कैद कर लिया और भीन्नमाल के महाजनादिकों के घर लूटे जिनमें हीरा पन्ना माणक, मुक्ताफल और सुवर्ण के ऊंट के ऊंट भर कर ले गये उस समय आपकी संतान में सेठ दनाजी जालोर चले गये और सेठ राजपालजी प्रसंग होने से चित्तौड़ चले गये। राजपालजी ने वहां भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया और एक बावड़ी खुदवाई। पाच पकवान कर संघ को भोजन कराया और भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

४—सेठ कमलसीजी. पद्म गोत्र कुलदेवी अन्नपूर्णा तथा आपकी संतान परम्परा में सेठ सीमधरजी बड़े ही नामी हुए आप बड़े ही उदार और धर्मात्मा थे आपके परिवार में भाणाजी हुए आपने सिरोही में भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया। तीर्थों का संघ निकाला घर पर आकर उजमणा किया और सब को स्वामी वात्सल्य देकर प्रत्येक को एक-एक सुवर्ण मुद्रिका और वस्त्र व लड्डूओं की पहरावणी दी। पुरुषों को पेचा और स्त्रियों को चूंदड़िया दी। आचार्यश्री को आगम लिखवाकर अर्पण किए। राजा को खुश कर जीव हिंसा बन्द कराई इत्यादि अनेक सुकृत के कार्य किये सेठ हरखाजी ने दीक्षा भी ली थी।

५—सेठ झवेरजी नंदगोत्र कुलदेवी चामुंडा आपके परिवार में सेठ रतनाजी मुगलों के उपद्रव के कारण भीन्नमाल छोड़ कर पाटण जाकर वास किया। पाटण के राजा ने आपका अभूतपूर्व सत्कार

किया। आपको सन्मानित एवं उच्चपद पर नियुक्त किया वहां से आप मेहता कहलाए। तथा वहां से आपने तीर्थों का संघ निकाल कर देव, गुरु, धर्म के कार्यों में लाखों रुपये खर्च किए याचकों को दान में पुष्कल द्रव्य दिया। दूसरे सेठ दानजी चित्तौड़ जाकर बस गये वहां पर आपने भ० नेमिनाथ का मंदिर बनवाया तीर्थों का संघ निकाल स्वामीवात्सल्य और पहरामणी दी। आचार्यश्री को चातुर्मास कराया। ज्ञान पूजा की ४५ आगम लिखाकर अर्पण किया सेठ रूपजी ने सूरिजी के पास दीक्षाली करणजी ने राजा का काम किया जिससे मेहता कहलाए।

६—सेठ धनाजी लक्ष्मीगोत्र और कुलदेवी भी लक्ष्मीदेवी आप कोटाधीश थे। आपके परिवार में नन्दकरणजी नामी पुरुष हुए। भ० आदिनाथ का मन्दिर बनाया। प्रतिष्ठा करवाई आस पास के सब गांवों वालों को बुलाये। साधर्मीवात्सल्य पहरावणी याचकों को दान, आप गरीबों को गुप्त दान दिया करते थे। मुगलों के उत्पात के समय सेठ धन्नाजी भागकर जालौर चले गये वहां के रावजी ने आपका सत्कार कर राज्य के उच्च पद पर नियुक्त किये। जालौर में धान की पोटलियों का हांसल लगता था जिससे गरीब लोग दुःखी थे उसको सदैव के लिये बन्द करवा दिया। आपके परिवार में दशरथजी नामी हुए। जालौर के राज भय से निकल कर सिरोही आये वहां भी धर्म कार्य में बहुत द्रव्य व्यय कर अमर नाम किया।

७—सेठ भावजी गौतमगोत्र कुलदेवी हिंगलाजा आपके परिवार में सेठ धनाजी प्रतिष्ठित पुरुष हुए आपने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया मूर्ति के नीचे पुष्कल द्रव्य रखकर प्रतिष्ठा कराई नगर भोज और साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी मुगलोत्पात के समय सेठ चन्द्रभाणजी भीन्नमाल को छोड़ कर सिरोही वहां पर भी बहुत से शुभ कार्य किये बाद में वहां से रूपाजी ने सादड़ी आकर वास किया। इत्यादि।

८—सेठ नानाजी अम्बागोत्र कुलदेवी अम्बिकादेवी आपकी संतान में सेठ रुपाजी नामी पुरुष हुए श्रीशत्रुंजय का संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की वापिस आकर स्वामीवात्सल्य कर साधर्मीभाइयों को एक एक सुवर्ण मुद्रिका की पहरावणी दी लाखों रुपया खर्च किया याचकों को पुष्कल दान, दूसरी बार शत्रुंजय की तलेटी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया मुगलोत्पात के समय भीन्नमाल से वीसाजी ने जालौर जाकर वास किया तेलियों की घाणियां छुड़ाई वहां पर शांतिनाथ का मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कराई। सामी वात्सल्य करके प्रत्येक नर-नारी को एक एक सुवर्ण की मुद्रा और वस्त्र की पहरावणी दी याचकों को इच्छित दान दिया।

९—सेठ अविचलजी चंद्रगौत्र कुलदेवी आशापुरी। एक समय अविचलजी ग्रामान्तर जा रहे थे मार्ग में रात्रि हो गई तो एक सिंह ने आकर आक्रमण किया उस समय कुलदेवी ने आकर बचाया और एक जोड़ा कुण्डल का दिया जिसका अंधेरे में भी प्रकाश होता था जिसके द्वारा घर पर पहुँच गये। कुंडल के प्रभाव से बहुत धन हुआ जिसको सुकृत कार्यों में लगाया। आपके परिवार में सेठ जगन्नाथजी नामी पुरुष हुए। आपने भ० नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य खर्च किया आपका लक्ष गरीबों की ओर विशेष था और गुप्त दान दिया करते थे मुगलोत्पात के समय सेठ संग्रामजी भीन्नमाल से निकल कर सिरोही जाकर बस गये। तथा गोकलजी ने वहां भ० महावीर का उतंग मन्दिर बनाया तथा शा० मुलाजी चित्तौड़ जाकर बसे वहां भी इन्होंने मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय कर धर्म का उद्योत किया।

१०—सेठ माधवजी निधानगोत्र कुलदेवीअंबिका। माधवजी निर्धन हो गये थे। सूरीजी से कहा,

सूरीजी ने नवकार मन्त्र का ध्यान बताया उसके साथ कुलदेवी अम्बाजी का ७ दिन तक ध्यान किया जिससे प्रसन्न हो देवी ने अक्षय निधान बतला दिया। देवी की सुवर्णमय मूर्ति बनाकर स्थापित की। तीर्थों का संघ निकाल पुष्कल द्रव्य व्यय किया। शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया साधर्मी भाइयों को व श्रीसंघ को वस्त्र व लड्डूओं के अन्दर सुवर्ण की मुद्रिकाएं डालकर पहरावणी दी इत्यादि सुकृत्य कर्मों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया मुगलोत्पात के समय सेठ चन्द्रभाणजी पाटण में जाकर बस गये वहां भी धर्म कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया आपका साधर्मीभाइयों की ओर विशेष लक्ष था।

११—सेठ रूपाजी जाजागोत्र कुलदेवी अंबिकाजी। आपकी संतानों में सेठ गरीबदासजी बड़े ही नामांकित पुरुष हुए। आपने भ० आदिनाथ का मंदिर बनवाया प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय कर धर्मोन्नति की श्रीसंघ को तीन दिन तक पांच पकवान का भोजन कराया। एक दिन सब शहर को जीमाया साधर्मियो को सुवर्ण की मुद्रिकाएं पहरावणी में दी। इत्यादि। जब मुगलोत्पात हुआ तब दूसरे गरीबदासजी भागकर जालौर गये वहां भी आपके बहुत द्रव्य बढ़ा। वहां के रावजी को आपने मकान पर बुला कर भोजन कराया और आमला जितने बड़े मोतियों की कंठी अर्पण की जिससे रावजी ने गरीबदास का रुतबा बढ़ाया और जीवहिंसा बंद कराई। इत्यादि। गरीबदासजी लोगो को खूब मीठा भोजन कराते थे अत. लोग उनको मीठड़िया २ कहने लग गये जिससे उनकी जाति मीठड़िया हो गई। गरीबदासजी ने जालौर से तीर्थों का सघ निकाला बहुत द्रव्य व्यय किया। इनके परिवार में सेठ नायकजी भी उदार पुरुष हुए और जैनधर्म की खूब ही प्रभावना की इत्यादि।

१२—सेठ गणधरजी मादरगोत्र कुलदेवी ब्राह्मीदेवी। आप बड़े ही धनाढ्य और उदार थे श्रीशत्रुंज यादि तीर्थों का संघ निकाला। भ० पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मुद्रिकाएं पहरावणी में दी बहुत धन खर्च किया मुगलों के आक्रमण के समय सेठ झवेरजी सकुटुम्ब बाड़मेर जाकर बसे। वहां भी बहुत द्रव्योपार्जन किया। शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पहरावणी भी दी इत्यादि।

१३—सेठ धरमसी कारसगोत्र कुलदेवी हिंगलाजा। एक समय धर्मसीजी के बदन में रक्त पित्त की बिमारी हो गई। बहुत उपचार किया, बहुत द्रव्य व्यय किया पर आराम नहीं हुआ। गुरु महाराज से कहा उत्तर में कहा कि बिमारी पापोदय से आती है इसका इलाज धर्म करना है तथा प्रत्येक रविवार को आंबिल तप किया कर और सिद्धचक्र की माला का जाप जप किया कर इत्यादि। नौ रविवार को आंबिल करने से कांचन सी काया हो गई। धमरसी ने शुभ कार्यों में बहुत द्रव्य व्यय किया आपके परिवार में नाजाजी हुए उन्होंने भ० पार्श्वनाथ का मदिर बनाया शत्रुंजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी। आचार्यश्री को चातुर्मास कराया। ज्ञानपूजा में मुक्ताफल, सुवर्ण मुद्रिकाएं आई जिससे सूत्र लिखाकर भंडार में रखे। और भी उजमणादि धर्म कार्यों में बहुत द्रव्य व्यय किया। मुगलोत्पात के समय सेठ रत्नजी भीन्न-माल का त्याग कर सिरोही चले गये। वहां के रावजी ने इनका सत्कार कर राज कार्य पर नियुक्त किया जिससे वे मेहता कहलाये। रत्नजी के भाई खेमजी कुमलमेर गये वहां भी महावीर का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा कराई साधर्मीभाइयों को भोजन करवा कर पहरावणी में बहुत द्रव्य व्यय किया। इत्यादि।

१४—सेठ वर्धमानजी हरियाणागोत्र कुलदेवी अंबिका। आपके कुल में पदमसीजी दीपक मन न

हुए आपने आदिनाथ का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई जिसमें पुष्कल द्रव्य खर्च किया। मुगलोत्पात के समय सेठ नारायणजी बाड़मेर गये वहां भी पुष्कल द्रव्य खर्च कर धर्म का उद्योत किया। इत्यादि।

१५—सेठ विमलजी भंडशालीगोत्र कुलदेवीचामुंडा आपके परिवार में सेठ गंभीरजी बड़े ही भाग्यशाली हुए आपको जीर्ण मंदिरों के उद्धार करवाने की रुचि बहुत थी। कई ग्रामों का और जीर्ण मंदिरों का उद्धार कराया आप जितना दान करते थे वह सारा गुप्त ही करते थे भ० पार्श्वनाथ का नया मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई साधर्मीभाइयों को मोदक के लडडूओं में एक एक स्वर्ण की मुद्रिका डाल कर प्रभावना इत्यादि दी। मुगलोत्पात के समय सेठ भोपालजी ने सिरोही जाकर वास किया इन्होंने भी बहुत धर्म कार्य किये। इत्यादि।

१६—सेठ खींवसीजी लोढियाणगोत्र कुलदेवी लक्ष्मी। खींवसीजी का देव गुरु धर्म और अपनी कुलदेवी पर पक्का विश्वास था और पूर्ण इष्ट भी रखते थे एक समय खींवसीजी के घर में दरिद्र आ घुसा। चोर, अग्नि और राज ने सब धन क्षय कर दिया फिर भी धर्म इष्ट को नहीं छोड़ा उल्टा धर्म कार्य बढ़ता ही रहा जब अति दुःखी हुये तो कुलदेवी का स्मरण किया धर्मनिष्ठ जानकर लक्ष्मीदेवी रात्रि में आई और खींवसी के इष्ट से प्रसन्न हो एक रत्न जड़ित नेवर प्रदान किया जिससे खींवसीजी का घर धन से भर गया पीछले दिन याद कर उस धन को धर्म कार्य में लगाया। भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाले बहुत द्रव्य खर्च किया। मुगलों के उत्पात के समय सेठ श्रीकरणजी ने जालौर जाकर वास किया वहाँ भी बहुत से धर्म कार्य किए। शत्रुंजयादि तीर्थो का संघ निकाला और साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी नगर के लोगों को भोजन कराया। इत्यादि।

१७—सेठ गोविंदजी चंडीसरागोत्र कुलदेवी सरस्वतीदेवी आपने तीर्थों का संघ निकाला। साधर्मी भाइयों को भोजन करवा कर पहरावणी दी जिसमें पुष्कल द्रव्य व्यय किया मुगलों के उत्पात के समय सेठ हरखाजी बाड़मेर गये वहाँ भी व्यापार में बहुत सा धन पैदा किया। भ० पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया, तीर्थों का संघ निकाला। इत्यादि और भी जन कल्याणार्थ बहुत द्रव्य खर्च कर पुण्योपार्जन किया।

१८—सेठ लालजी पापागोत्र कुलदेवी आशापुरी। आप बड़े ही भाग्यशाली हुए भ० आदिनाथ का मंदिर बनाया प्रतिष्ठा में बहुत-सा द्रव्य व्ययकर नांवरी कमाई पूज्य आचार्यदेव को चातुर्मास कराया नव-अंग की पूजा, की। मोतियों की गहुँली सुवर्ण मुद्रिका से ज्ञान पूजा की उस द्रव्य से पुस्तक लिखवा कर आचार्यश्री को अर्पण किये। मुगलों के उत्पात के समय में रतनजी भीन्नमाल से सिरोही गये वहाँ भी सुकृत में बहुत द्रव्य खर्च किया गरीब साधर्मीभाइयों को गुप्त सहायता कर पुण्योपार्जन किया करते थे।

१९—सेठ रायजी काश्यपगोत्र कुलदेवी आशापुरी आपके परिवार में सेठ अगराजी भाग्यशाली हुए। शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकला आते जाते सब गांवों में लेन दी तीर्थ पर जीर्ण मंदिरों का उद्धार कराया वापिस आकर साधर्मी भाइयों को भोजन करवा कर वस्त्र लड्डू और सुवर्ण मुद्रिकाएं पहरावणी में दी। लाखों रुपये खर्च किया मुगलों के उत्पात के समय सेठ भोपालजी जालौर गये तथा वहाँ सेठ रावजी कोरटनेर गये वहाँ भी धर्म कार्य में बहुत सा धन व्यय कर नाम हासिल किया। इत्यादि।

२०—सेठ गोपालजी पीपलिया गोत्र कुलदेवी लक्ष्मी आपने भीन्नमाल में भ० अजितनाथ का मंदिर बनाया कर प्रतिष्ठा कराई जिसमें खुले हाथ पुष्कल द्रव्य खर्च किया। मुगलोत्पात के समय सेठ नरबदजी

बाढमेर गये वहाँ भी व्यापार में बहुतसा द्रव्योपार्जन किया तथा वहाँ ऋषभदेव का मंदिर बनवा कर प्रतिष्ठा करवाई। साधर्मीभाइयों को स्वामीवात्सल्य देकर पहरवाणी दी। पुष्कल द्रव्य व्यय किया। इत्यादि।

२१— सेठ मोतीजी फुफहारा गोत्र, २२ – सेठ दानजी, पीपलिया गौत्र, २३—सेठ लालजी भारद्वाज गोत्र, २४—सेठ श्री 'रसजी नेंण गोत्र इन चारों ने अपनी जिन्दगी में ही जो कुछ किया था और आगे इनके संतान न होने से परम्परा नहीं चली।

इन २४ गौत्रों के अलावा ४८ गोत्र ओर भी हैं पर उन गोत्रों की वंशावली हमको नहीं मिली और जो २४ गोत्रों की वंशावली मिली है उनको भी मैंने स्थानाभाव से सक्षेप में एक-एक गोत्र वालों का एक-एक, दो, दो, उदाहरण नमूने के तौर पर लिख दिये हैं कारण हजार मन वस्तु का नमूना एक मुट्ठी भर से ही पहचाना जासकता है अतः पाठक उपरोक्त संक्षिप्त हाल से ही आप सेठिया जाति के उदारवीर नररत्न को पहचान सकेंगे कि उन्होंने देव गुरु धर्म की कृपा से कितना द्रव्योपार्जन किया और उसको पानी की तरह धर्म कार्यो में किस तरह बहा दिया जो उपरोक्त उदाहरणों से पाठको को ज्ञात हो गया होगा। उस जमाने के लोग बड़े ही भद्रिक होते थे उन को गुरु महाराज जैसा उपदेश देते थे वैसा ही करने में सदैव कटिबद्ध रहते थे।

जिस समय का हाल हमने लिखा है उस समय धार्मिक कार्यों में मुख्य एक तो मंदिर बनाना, दूसरा तीर्थों का संघ निकालना, तीसरा आचार्यश्री को चातुर्मास करवा कर अपने घर से महोत्सव कर सूत्र बचाना ज्ञान पूजा कराना, गुरु के सामने गहुली करना। व्रतों के उद्यापन करना निर्मल साधर्मीभाइयों को सहायता देना काल दुकाल में गरीबो की सहायता करना इत्यादि इन शुभ कार्यों में द्रव्य व्यय करके वे अपने को कृतार्थ हुए समझते थे और इन सब बातों का ही उस समय गौरव एव महत्व था शक्ति के होते हुए उपरोक्त कार्य से कोई भी कार्य क्यों न हो पर अपने जीवन में वे अवश्य करते थे।

आज से कुछ वर्षों पहले गोड़वाड़ में ऐसी प्रवृत्ति थी की अपने घर पर कोई भी ऐसा प्रसंग होता तो ५२ गांव, ६४ गांव, ७२ गांव, ८४ गांव, और १२८ गांवों को अपने यहां बुला कर उनको मिष्टान्नादि का भोजन करवा कर पहरावणी दिया करते थे जिनमें कोई तो तांबां पीतल के बर्तन देते कोई वस्त्र, कोई चांदी की चीजे जैसी अपनी शक्ति पर इन कार्यों को करके वे कृतार्थ हुए अवश्य समझते जब बीसवी गई गुजरी शताब्दी में भी उन प्राचीन प्रवृत्ति का नमूना मात्र था तब उस समय जैन समाज उन्नति का उच्चे शिखर पर पहुंची हुई थी वे सुवर्ण मुद्रिकाएं वगैरह दें, उसमें आश्चर्य की बात ही क्या ?

हां, वर्तमान में बीस, पच्चीस, या सौ पचास रुपये की सर्विस (नौकरी) करने वाले पूर्व लिखित बातों कों कल्पना मात्र मानलें तो कोई आश्चर्य नहीं कारण वे अपनी आजीविका भी बड़ी मुश्किल से चलाते हैं उनके मगज मे इतनी उदारता सुनने का भी स्थान नहीं हो तो यह स्वभाविक ही है। यदि वे मगजमें सुगन्धी तेल की मालिश कर किसी सुंदर वाटिका में बैठ कर शांत चित्त से एक-एक शताब्दी में जैन समाज कैसी थी जैसे बींसवी शताब्दी के पूर्व उन्नीसवीं और उन्नीसवीं के पूर्व अठारहवीं, अठारहवीं के पूर्व सतारहवीं शताब्दी में जैन समाज कैसी थी इसी प्रकार एक-एक शताब्दी आगे बढ़ते जाय तो ज्ञात हो सकेगा है कि वह समय जैन समाज तन धन से बड़ी समृद्धिशाली था और एक-एक धार्मिक एव सामाजिक कार्यों में लाखों तो क्या पर करोड़ों का द्रव्य व्यय कर देते थे। उन्निसवी शताब्दी में जैसलमेर के पटवो ने संघ निकाला जिसमें पच्चीस लक्ष द्रव्य खर्च किये थे।

अस्तु, यहां पर तो हमने केवल एक सेठिया जाति का ही संक्षिप्त से हाल लिखा है और लिखने का मेरा उद्देश्य खास इतना ही है कि वि० सं ७९५ में आचार्य उदयप्रभसूरि ने भीन्नमाल में २४ मुख्य ब्राह्मणों को जैन बनाये थे उसी समय उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार प्रारंभ कर दिया गया था। जो वि० सं० ११०३ तक तो बराबर चलता रहा पर बाद में बेटी व्यवहार बन्द हो गया केवल भोजन व्यवहार ही चालु रहा बेटी व्यवहार किसी कारण से बन्द हुआ हो पर इससे महाजनसंघ को और सेठिया जाति को बड़ा भारी नुकसान हुआ कि सेठिया जाति सर्वत्र फैली हुई लाखों की संख्या में एक समृद्धिशाली जाति थी वह गिरती २ आज अंगुलियों के पैरवो पर गिने जितनी रह गई है इस जाति में आज तो लक्षाधिश तो खोजने पर भी नहीं मिलते हैं यदि है तो बहुत कम लोग हैं। इस जाति के लोग सर्वत्र फैल गये थे अब तो केवल गोडवाड, मारवाड़, मेवाड़ मालवे में तथा थोड़ी संख्या में अन्य प्रान्तों में भी होगा। इस जाति के कई लोग तो व्यापार करते हैं पर कई लोग मिठाई का धन्धा भी करते हैं जैसे जो किसी समय माताजी (देवी) के प्रसाद बनाये करते थे गुंदोच के, घेवर आज भी भारत में बहुत मशहूर है। ओसवाल जैसी विशाल कौम में कन्या दुकाळ और कन्याविक्रय का तांडवनृत्य होरहा है वैसा ही इस जाति में भी मौजूद होने से दिन ब दिन संख्या कम होती जा रही है इस जाति की बिशेषता यह है कि —जिस दिन से इस जाति ने जैनधर्म स्वीकार किया था उस दिन से आज पर्यन्त इस जाति के सब के सब लोग जैनधर्म श्रद्धा पूर्वक पालन करते हैं।

अब भी समय है कि ऐसी-ऐसी कम संख्या वाली जातियों को महाजनसंघ अपना के अपने साथ मिला लें तो इनका अस्तित्व टीका रह सकता है और महाजनसंघ की आयु भी बढ़ सकती है यदि संघ कुम्भकर्णी निंद्रा में खर्राटे खेंचता ही रहेगा तो कुछ समय के बाद इन जातियो के नाम पुस्तको के पृष्टों में ही दृष्टि गोचर होंगे।

समय की बलिहारी है कि हमारे पूर्वाचार्यों ने तो मांसमदिरादि व्यभिचार सेवन करने वालों की शुद्धि कर उनको संघ में शामिल कर लेते थे और संघ उसी दिन से उन नूतन जैनों के साथ रोटी बेटी का व्यवहार बड़े ही उत्साह के साथ कर लेता था। तब आज हमारा यह दिन है कि हमारे सदृश आचार विचार वाले हमारे बिछुड़े हुए भाइयों को भी हम अपने अंदर मिलाने के योग्य भी नहीं रहे हैं।

आज हमारे संघ में ऐसा कोई प्राभावशाली आचार्य नहीं रहा है कि चिरकाल से बिछुड़े हुए साधर्मी भाइयो को यह समझ कर कि आज हम वासक्षेप के विधि विधान से नये जैन बनाने की भावना से ही उनको शामिल कर सके। यदि हमारे सदृश पवित्र आचार व्यवहार वाले जिनके साथ हमारा बेटी व्यवहार था और आज भोजन व्यवहार है हम एक पंक्ति एवं एक थाली पर बैठ कर भोजन करते हैं उनके लिये ही इतनी संकीर्णता है तब कोई आचार्य पांच पचीस जाट माली राजपूतादि को प्रतिबोध देकर जैन बना लिया हो तो उनके साथ तो बेटी व्यवहार करे ही कौन इतना ही क्यों पर भोजन व्यवहार भी शायद ही कर सकें। फिरतो इस महाजनसंघ के मृत्यु के दिन निकट भविष्य में हो इसमें संदेह ही क्या हो सकता है और इसका कारण भी प्रत्यक्ष है देखिये।

१—बाल विवाह से संतान का अभाव व विधवाओं का बढ़ना।

२—वृद्ध विवाह से भी विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती है।

३—कुजोड़ विवाह का भी यही परिणाम है ।

४—कन्या विक्रय से सुयोग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं ।

५—विधवा और विधुर एवं कुमारों का मृत्यु से संख्या का कम होना ।

६—इस संकीर्णता के कारण बहुत से लोग स्वधर्म छोड़ अन्य धर्म में जाने से भी समाज की संख्या कम होती जा रही है ।

७—कई लोग अपनी आजीविका के साधनो के अभाव में भी स्वधर्म का त्याग कर अन्य सामज में जामिलने से भी अपनी संख्या कम होती है । इत्यादि । और भी कई कारण हैं जिससे समाज दिनवदिन कम होती जा रही है तब दूसरी तरफ आमद के दरवाजो पर ताले नहीं पर वज्रसी सिलाएं ठोक दी गई हैं कि सौ वर्षों में भी कोई एक भी व्यक्ति नहीं बढ़ सकता है ।

साधर्मीभाइयों के साथ बेटी व्यवहार नहीं होने के भयंकर परिणाम के लिये आपको दूर जाने की आवश्यक्ता नही है केवल एक गुजरात में ही देखिये ओसवाल, पोरवाड़, श्रीमाल के अलावा भावसार, पाटीदार, गुजरवनिया, मांढवणिया नेमा वणिया और लाड़वादि २०-२५ जातियां जैनधर्म पालन करती थी जिनके पूर्वजों के बनाये हुए जैन मन्दिरों के शिलालेख भी आज विद्यमान हैं पर उनके साथ बेटी व्यवहार नहीं होने से इस बीसवीं शताब्दी में ही लाखो मनुष्य विधर्मी बन गये हैं वे केवल विधर्मी बन के ही चुपचाप नहीं रह गये पर जैन धर्म की निंदा करके सैकड़ों, हजारों को जैन धर्म से विमुख बना रहे हैं ।

यह दुःख गाथा केवल मैं ही समाज को नयी नहीं सुना रहा हूँ पर समाज का जन समूह जो थोड़ा बहुत समझदार है वह अच्छी तरह से जानता है पर किसी के घुटने में ताकत नहीं है कि वह कूद कर कार्य क्षेत्र में बाहर आवे । जैन समाज ऐसा अज्ञान पूर्ण समाज नहीं है पर वह व्यापार करने वाला समाज है । प्रतिवर्ष दूकानों के नफे नुकसान के आंकड़े मिलाना जानता है अतः समाज के घाटे नफे के लिये समझाने को अधिक परिश्रम की भी जरूरत नहीं है यदि इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति से पूछा जाय या उनकी सलाह ली जाय तो सैकड़ें नवे मनुष्य सलाह देंगे कि क्या सेठिया, क्या अरुणोदिया, क्या दशा, क्या बीसा, जैनधर्म के पालन करने वाले तमाम एक संगठन में ग्रन्थित हो जाना चाहिये । सबके लिये नहीं पर समाज में दो चार सो आगेवान तैयार हो जाय कि वे सबसे पहले कहें कि हम बेटी देंगे और लेंगे फिर देखिये कितनी देर लगती है पर हमारे यहां तो चक्र ही उलटा चल रहा है । सभा सोसायटीयों में प्रस्ताव पास करने पर भी हमारे बड़ाओं को तो बड़ा बराबरी का ही घर होना चाहिये, जब तक स्वार्थ त्याग नहीं करेंगे वहां तक समाज सुधर नहीं सकता है । यदि एक दो व्यक्ति कर भी ले तो उनको न्याति से बाहर करने की सजा मिलती है ।

खैर, मेरी तो भावना है कि अभी समय है जब तक नब्ज में गति है तब तक तो इलाज किया जाय तो मरीज के जीवित रहने की उम्मेद है । श्वास के छूट जाने पर तो हेमगर्भ की गोलियां भी मिट्टी के समान ही है । अन्त में हम शासनदेव से प्रार्थना करेंगे कि वे हमारे समाज के अग्रेसरों को सद्बुद्धि प्रदान करे कि सैकड़ों वर्षों से निर्जीव कारण से हमारे भाई समाज से बिछुड़े हुए हैं वे पुनः शामिल होकर समाज की आयुष्य में वृद्धि करें ॥ ॐ शांति ॥

———

"भारत के अद्भुत चमत्कार"

वर्तमान आविष्कार युग है इस युग में पाश्चात्य विद्वानों ने साइन्स (विज्ञान) और शिल्प कलाएं वगैरह नित्य नये आविष्कार निर्माण कर संसार को आश्चर्य में मुग्ध बना दिया है। उन नये नये अविष्कारों को देख कर जनता दांतों तले अंगुली दबा कर कहने लगती है कि पाश्चात्य विद्वान मनुष्य है या देवता? कारण वे जो-जो अविष्कार निर्माण करते हैं वह अपूर्व है जिसको न तो नजरों से देखा और न कानों से सुना ही है। इत्यादि। पर जब हम हमारे देश (भारत) का प्राचीन साहित्य का अवलोकन करते तब हमें थोड़ा भी आश्चर्य नहीं होता है। क्योंकि आज से हजारों लाखों वर्ष पूर्व भी हमारे पूर्वज इन सब विद्या, विज्ञान, शिल्पादि से पूर्ण—रूपेण परिचित थे। अतः पाश्चात्य विद्वानो ने अभी तक नया कुछ भी नहीं किया है इतना ही क्यों पर पाश्चात्य विद्वानों ने यह सब हमारे देश (भारत) से ही सीखा है अर्थात् इस प्रकार की विद्याओं के लिए भारत सब देशों का गुरु कह दिया जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगा। कारण भारतीय साहित्य में हजारो लाखों वर्षों पूर्व के मनुष्यों को इस विषय का अच्छा ज्ञान था और भी परमाणु, पुद्गलों की ऐसी-ऐसी अचिन्त्य शक्ति का प्रतिपादन किया है कि पाश्चात्य विद्वान अभी तक वहां नहीं पहुँच सके हैं जिस शिल्प कलादि को भारतीय विद्वानों ने अपने हाथों से कर दिखाई थी वह आज के पाश्चात्य विद्वान इलेक्ट्री सिटी (Electri city) से भी नहीं बतला सकते हैं हमारे भारतीय प्राचीन साहित्य में कई ऐसे भी चमत्कार पूर्ण उदाहरण मिलते है कि जिनको सुनकर संसार मंत्र मुग्ध बन जाते हैं। पाठकों की जानकारी के लिए कतिपय उदाहरण नमूने के तौर पर बतला दिये जाते हैं।

१—श्रीकल्पसूत्र में ऐसी बात लिखी है कि प्रथम सौधर्म देवलोक में ३२ लक्ष विमान है और प्रत्येक विमान में एक-एक सुघोष घंटा है जब इन्द्रों को प्रत्येक विमान में संदेश पहुँचाना हो तब अपने एक विमान की सुघोषा घंटा में शब्द कह दें एवं भरदे कि वह ३२ लक्ष घंटाओं द्वारा बत्तीस लक्ष विमानों में घोषित हो जाता है। क्या यह प्रयोग वर्तमान के रेडियो से कम है ? कदापि नहीं।

२—श्रीप्रज्ञापना सूत्र के चौतीसवें पद में ऐसा उल्लेख मिलता है कि बारहवें देवलोक में देवता स्थित है तब दूसरे लोक में देवी है बीच पांच दस सहस्र मिल नहीं पर असंख्यात क्रोड़नकोड़ योजन का अंतर होने पर भी देव देवांगना का मनोगत भाव मिलता है तब वहां से देवताओं के वीर्य के पुद्गल छुटते हैं और सीधे देवी के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। क्या यह बिन तार के (Television) तार से कुछ कम है। नहीं! पुद्गलों की कैसी शक्ति है और संबंध है कि बीच में कई पृथ्वीखंड मकान वगैरह आते हैं पर वे पुद्गल बिना किसी रुकावट के सीधे देवी के शरीर में अवतीर्ण हो जाते हैं।

३—कई राजकुमारों के लग्न के साथ कन्या का पिता दत्त (दायजा) देते हैं उनमें अन्यायन्य वस्तुओं के साथ बिना बइदो की गाड़िया भी दी ऐसा उलेख है क्या यह रेल, मोटर से कम है ? नहीं। रेल, मोटर तो तेल कोयले की अपेक्षा रखती है पर वे गाड़ियां तो बटन दबाने से ही चलती थी।

४—राजकुंवर अमरयशः की कथा में लिखा है कि एक जंगल की जड़ी बूटी उसके हाथ पर बांध दी जिससे वह मर्द के बदले स्त्री बन गया और जड़ी खोलने पर पुनः पुरुष बन गया था।

५—जयविजय राज कुंवर के चरित्र में उल्लेख है कि एक समुद्र के बीच टापु है वहां एक देवी का मंदिर और एक बगीचा है उस बगीचे में एक वृक्ष ऐसा है कि जिसका पुष्प सुंगने मात्र से मनुष्य गधा बन जाता है तब पुनः दूसरे वृक्ष का पुष्प सुंघते ही गधे से मनुष्य बन जाता है।

६—मदन-चरित्र में एक ऐसी बात मिलती है कि एक राज्य महल में दो ऐसी शीशियाँ है जो चूर्ण से भरकर रखी है उनमें से एक शीशी का चूर्ण मनुष्य की आंख में डालने से वह पशु बन जाता है तब दूसरी शीशी का चूर्ण डालने से पुनः मनुष्य बन जाता है।

७—श्रीसूत्रकृतांग सूत्र के आहार प्रज्ञाध्ययन में लिखा है कि त्रसकाय, अग्निकाय का आहार करे वह कैसा उष्णयोनि वाला त्रस जीव होगा कि अग्निकाय का आहार करने पर भी जीवित रह सके।

८—जयविजय कुंवर को एक तोते ने दो फल देकर कहा कि एक फल खाने से सात दिन में राज मिले और दूसरा फल खाने से हमेशा पांच सौ दीनार मुंह से निकलती रहे और ऐसा ही हुआ था।

९—योनि प्रभृत नामक शास्त्रों मे ऐसा उल्लेख है कि अमुक पदार्थ पानी में डालने से अमुक जाति के जीव पैदा हो जाते हैं।

१०—प्रभाविक चरित्र में सरसव विद्या से असंख्य अश्व और सवार बना लिये थे और वे युद्ध के काम में आये थे। ऐसे सैकड़ों तरह की घटनाएँ चमत्कार पूर्ण है शायद इसमें विद्या, मन्त्र और देव प्रयोग भी होगा।

११—गजसिंह कुमार के चरित्र में आता है कि एक सुथार ने काष्ट का मयूर बनाया था जिसके एक बटन ऐसा रखा था कि जिसको दबाने से वह मयूर आकाश में गमन कर जाता और उस मयूर पर मनुष्य सवारी भी कर सकता था। यह घटना केवल हाथ प्रयोग से बनाई गई थी।

१२—मदन चरित्र में एक उड़न खटोला का उल्लेख मिलता है कि जिस पर चार मनुष्य सवार हो आकाश में गमन कर सकें इसमें भी काष्ट की खीली का ही प्रयोग होता था।

१३—अभी विक्रमीय तेरहवी शताब्दी मे एक जैनाचार्य ने मृगपक्षी नामक ग्रन्थ लिखा है जिसमें ३६ वर्ग और २२५ जानवरों की भाषा का विज्ञान लिखा है। जिसको पढ़ कर अच्छे २ पाश्चात्य विद्वान भी दांतातले उंगुली दबाने लग गये जिस ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है जिसकी समालोचना सरस्वती मासिक में छप चुकी है क्या भारत के अलावा ऐसा किसी ने करके बताया है ?

१४—उपरोक्त बातें तो परोक्ष हैं पर इस समय अहमदाबाद तथा खेड़ा ग्राम में एक-एक काष्ट का वृक्ष है उसकी शाखाओ पर काष्ट की पुतलियाँ हैं जिनके हाथों में मृदंग, सितार, वाजादि संगीत के साधन हैं और उस वृक्ष के एक चाबी भी रखी है जब वह चाबी दी जाती है तो वे सब काष्ट पुतलियाँ वाजित्र बजाने लग जाति है और नाच भी करती है यह हमारे देश के कलाविज्ञों के हाथ से बनाई हुई कलाएं हैं।

१५—उपदेशप्रसाद नामक ग्रंथ का प्रथम भाग के पृष्ठ १११ पर एक कथा लिखी है कि—

"भारत के वक्षस्थल पर धन, धान कुवे, तालाव एवं वन वाटिका से सुशोभित कोंकण नामक देश था उसकी राजधानी सोपारपट्टन में थी। वहां के राजाप्रजा जन नीति निपुण एवं धर्मप्रेमी थे। व्यापार का केन्द्र होने से लक्ष्मी ने भी अपना स्थिर वास कर रखा था। कला कौशल में तो वह नगर इतना बढ़ा चढ़ा था, कि जिसकी कीर्ति रूप सौरभ बहुत दूर दूर फैल गई थी। अतः की भांति दूर दूर के व्यापारी लोग व्यापारार्थ

और कला कौशल सीखने वाले लोग आ-आकर अपनी मनोकामना पूर्ण करते थे उस पट्टन में विक्रम नाम का राजा राज्य करता था और जैसे वह दुश्मनों के लिये विक्रम था वैसे ही गुणीजन सज्जनों का सत्कार और पुरुषार्थियों का उत्साह बढ़ाने के लिये भी सदैव तत्पर रहता था।

उसी सोपारपट्टन में एक सोमल नाम का रथकार (सूथार) रहता था और अपनी कला कौशल में विश्व विख्यात भी था। उसके नये-नये आविष्कार से राजा ने भी संतुष्ट होकर अपने राज में सोमल को उच्चासन देकर राज्य में उसका अच्छा मान सन्मान बढ़ा रखा था और राज की ओर से उस सुथार को एक सुवर्ण पद भी इनायत किया गया था और उसके नित्य नये आविष्कार एवं हस्त कला देख कर प्रजाजन भी उसकी मुक्त कंठ से भूरि भूरि प्रशंसा किया करती थी।

उस सोमल रथकार के एक देवल नाम का पुत्र था जब वह बड़ा हुआ तो सोमल अपने पुत्र को पढ़ाने के लिये अच्छा प्रबंध किया तथा अपनी शिल्प कलादि विद्या पढ़ाने का भी उस स्वंय ने बहुत कुछ प्रयत्न किया क्योंकि नीति कारों ने भी कहा है कि—

"पितृभिस्ताड़िता पुत्रः शिष्यश्च गुरु शिक्षितः।
धन हतं सुवर्णं च जायते जन मण्डनम् ॥"

अर्थात् पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को पढ़ाने के लिये ताड़ना, तर्जना भी करते हैं तब ही जाकर पुत्र एवं शिष्य पढ़कर योग्य बनता है जैसे सोना को पीट पीट कर भूषण बनाते हैं तब ही जाकर वे जनता के भूषण बनकर शोभा को प्राप्त होते हैं।" पर साथ में यह भी कहा है कि "बुद्धि कर्मानुसारिणी" देवल ने पूर्व जन्म में न जाने कैसे कठोर कर्मोपार्जन किये होंगे व ज्ञान की अन्तराय कर्म कैसा बन्धा होगा कि पिता की शिक्षा का थोड़ा भी असर देवल पर नहीं हुआ। यही कारण है की न तो वह पढ़ाई कर सका और न शिल्पकला का विज्ञ ही बन सका। अर्थात् देवल मूर्ख एवं अपठित रह गया और नीतिकार अपठित मनुष्य को पशुओं से भी बुरा समझा है अपठित व्यक्ति का कहीं पर सत्कार नहीं होत। वरन् वह जहां जाता है वहां पर उसका तिरस्कार ही होता है यही हाल सोमल के पुत्र देवल का हुआ।

उस सोमल के एक दासी थी उसका गुप्त व्यवहार एक ब्राह्मण के साथ हो गया था, कारण कर्मों की गति विचित्र होती है जिसके साथ पूर्व भव में जैसा संबंध बंधा हुआ है उतना तो भोगना ही पड़ता है दासी के ब्राह्मण से एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम (कोकास) रखा गया था। जब कोकास बाल्यावस्था का अतिक्रमण किया तब तो वह विद्याभ्यास करने लगा पर विद्याग्रहण करने में सबसे पहले विनय भक्ति की आवश्यकता रहती है और दास में यह गुण स्वाभाविक ही हुआ करता है कोकास ने अध्यापक के दिल को प्रसन्न कर सर्व विद्या पढ़ ली। साथ में वह अपने मालिक सोमल का भी अच्छा विनय और पूर्ण तौर से भक्ति किया करता था जिससे खुश होकर सोमल ने अपनी जितनी शिल्प कलाएं थी वह सब कोकास को सिखादी जिससे कोकास की ख्याति भी सोमल की तरह सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई इतना ही क्यों पर राज में कोकास का वही स्थान बन गया कि जितना सोमल का था कहा भी है कि—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृ वंशो निरर्थकः। वासुदेवं नमस्यन्ति, वसुदेवं न ते जनाः ॥ १ ॥"

मनुष्य चाहे विद्वान हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, समय तो अपना काम करता ही रहता है। कुछ समय के पश्चात् जब सोमल का देहान्त हो गया तो पीछे उसका पुत्र देवल अपठित एवं मूर्ख था यही कारण था कि

उसके संबंधी एवं राजा मिल कर सोमल के घर का सब भार कोकास के सुपुर्द कर घर का मालिक कोकास को बना दिया। तब जाकर देवल की आंखें खुली और अपने अपठित रहने का पश्चाताप करने लगा पर समय के चले जाने पर परिताप करने से क्या होता है। यह तो सब पूर्व संचित शुभाशुभ कर्मों का ही फल है, कहा है कि—

'दासेरोऽपि गृहस्वाम्य मुच्चैः काममावा प्तवान्। गृह स्वाम्यऽपि दासेस्य हो, प्राच्य शुभाशुभे॥"

अब तो कोकास सर्वत्र माननीय बन गया कहा भी है कि "यथा राजा तथा प्रजा" कोकास को राजा की ओर से मान पान मिल जाने से वह संतोष मानकर निश्चित नहीं बैठ गया पर अपने अभ्यास को और भी आगे बढ़ाता गया जिससे प्राप्त हुआ सत्कार की रक्षा एवं वृद्धि भी हो सके। एक समय की बात है कि कोकास के मकान पर दो मुनि भिक्षार्थ आये जिनको देखकर कोकास को बड़ा ही हर्ष हुआ, मुनियो को भाव सहित वंदन किया और रसोड़े मे लेजाकर निर्वद्यआहार पानी दिया मुनिने धर्मलाभ दिया और वापस लौटने लगे तो कोकास ने धर्म का स्वरूप पूछा। मुनियो ने संक्षिप्त से अहिंसा मय धर्म कहा जिससे कोकास ने निर्णय पूर्वक जैनधर्म स्वीकार कर लिया और मुनियो की सेवा उपासना कर क्रियाकांड से जानकार हो गया तथा जैनधर्म के तत्वों का अच्छा बोधप्राप्त कर लिया।

उसी समय आवंतीदेश में उज्जैनी नाम की प्रसिद्ध नगरी थी वहां पर विचारधवल नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा के राज में चार रत्न थे वे अपने-अपने काम में इतने चतुर एवं सिद्ध हस्त थे कि जिनकी प्रशंसा सर्वत्र फैल रही थी उन चारों रत्नो के नाम और काम इस प्रकार थे—

१—रसोइया रत्न—रसोइया रत्न ऐसी रसोई बनाता था कि भोजन करने वाले को जितने समय में भूख लगनी चाहिये तो ऐसा भोजन करके जीमाता था कि उसको उतने ही समय में भूख लगे।

२—शय्या रत्न—शय्या तैयार करने वाला रत्न शय्यापर सो ने वाले को जितनी निन्द्रा लेनी हो तो ऐसी शय्या तैयार करता था कि सोने वाले को उतनी ही निन्द्रा आवे पहले नहीं जागे।

३—कोष्टागार रत्न—कोठार बनाने वाला रत्न ऐसा कोठार बनावे कि उसमें रखी जाने वाली वस्तु किसी दूसरे को नहीं मिले किन्तु आप ही जान सके तथा ला सके।

४—मर्दन रत्न—मर्दन करने वाल रत्न—जितना तैल मालिश करके जिस के शरीर में रमा दे, उतना ही तैल विना किसी तकलीफ के शरीर से वापिस निकाल दे।

इन चारो रत्नों के कार्यों पर राजा सदैव खुश रहता था। इन रत्नो की महिमा केवल राजा के राज्य में ही नहीं पर बहुत दूर २ तक फैल गई थी। राजा विचारधवल बड़ा ही धर्मात्माराजा था आप का दिल हमेशा संसार से विरक्त रहता था उसका वैराग्य यहां तक बढ़ गया था कि कोई योग्य पुरुष मिल जाय तो मैं उसको राज देकर संसार का त्याग कर आत्मकल्याण में लग जाऊ पर भोगावली कर्मों की स्थिति पूरी न होने से इच्छा के न होने पर भी संसार में रह कर राज्य चलाना पड़ता था।

पाटलीपुत्र नगर के राजा जयशत्रु ने सुना कि उज्जैन नगरी के राज्य में चार रत्न हैं और वे अपने कामों के बड़े भारी विद्वान हैं पर यदि मैं उज्जैनपति से मांगु तो वे अपने रत्न कैसे दे सकेंगे। अतः मैं चार प्रकार की सेना लेकर उज्जैन नगरी पर धावा बोल दूं और बलात्कार चारों रत्नों को मेरे राज्य में ले आऊ। राजा जयशत्रु ने ऐसा ही किया और चार प्रकार की सेना लेकर आया और उज्जैननगरी को घेर ली। राजा

विचारधवल इसके लिये विचार कर रहा था पर होनहार ऐसा था कि राजा के शरीर में अकस्मात् ऐसी विमारी हुई कि थोड़े समय में ही पंचपरमेष्टी का स्मरण करता हुआ समाधि पूर्वक देह छोड़ कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया। जब राजा का देहान्त हो गया तो आने वाला राजा का सामना कौन करे ? मुत्सद्दी, उमराव वगैरह एकत्र हो विचार किया कि अपने राजा के पुत्र तो है नहीं किसी दूसरे राजा को राज्य देकर आये हुए राजा के साथ युद्ध करने की अपेक्षा तो आया हुआ राजा को ही राज्य दे कर अपना राजा क्यों नहीं बना दिया जाय ? जिससे स्वयं शांति हो जायगी। ठीक यही किया आये हुए राजाजयशत्रु को उज्जैन का राज्य दे दिया। राजा जयशत्रु चारों रत्नों को बुला कर उनकी परीक्षा की तो वे अपने-अपने कार्यों में निपुर्ण निकले जिससे राजा को बड़ा ही हर्ष हुआ और विशेष में उज्जैन का राज भी अपने हस्तगत हो गया।

एक समय राजा जयशत्रु मर्दनरत्न को बुला कर अपने शरीर पर तैल की मालिश करवाई तो मर्दन रत्न ने दश कर्ष (उस समय का तोल) तैल को शरीर में रमाय दिया बाद में तैल वापिस निकालने को कहा तो मर्दन रत्न ने एक जंघा से पांच कर्ष तैल निकाल दिया इसपर राजा ने कहा कि एक जघां में तैल रहने दो शायद मेरी सभा में कोई दूसरा मर्दन कार हो तो उसकी भी परीक्षा कर ली जाय। ठीक राजा ने राज सभा में बैठे हुए मर्दनकारों से कहा कि इस रत्न ने मेरे मालिश की है आधा तेल तो वापस निकाल दिया है और आधा तेल मैंने तुम लोगों के लिये रखा है यदि तुम्हारे अंदर कुछ योग्यता हो तो मेरे शरीर से तैल निकाल दो ? मर्दनकारो ने राजा के शरीर में रहा हुआ तैल निकालने की बहुत कोशिश की पर किसी एक ने भी तैल नही निकाला इस प्रकार करने से दिन व्यतित हो कर रात्रि पड़ गई राजा सो गया सुबह तेल निकालने के लिये मर्दन रत्न को बुलाया तो उसने कहा राजा आपने भोजन कर लिया पानी पी लिया अब तैल निकालना मुश्किल है हां जिस समय मैंने तैल की मालिश कर आधा तैल निकाला था उस समय या आपने भोजन पान नहीं किया उस समय तक तैल वापिस निकल सकता था परयह तेल आपके शरीर में रह भी जावे तो आपको किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी। खैर, राजाने स्वीकार कर लिया पर वह तैल जंघा में रहनेसे जंघा का रंग काला काक (काग) जैसा श्याम पड़ गया इस लिये लोगों ने राजा का नाम काकजंघा रख दिया। दुनिया का रखा हुआ नाम अच्छा हो या बुरा प्रचलित हो ही जाता है। फिर अच्छा के बजाय बुरा नाम शीघ्र फैल जाता है। बस, राजा जयशत्रु को सब लोग 'काकजंघ' के नाम से पुकारने लग गये।

एक वार सौपारपट्टन में एक भयंकर जनसंहार दुष्काल पड़ा जिसकी भीषण मारने एक नगर में ही नहीं पर देश भर में त्राहि २ मचा दी जनता अन्न पानी बिना हाहाकार करने लग गई और अपनी मर्यादा से भी पतित होने लग गई कहा है कि मरता क्या नहीं करता जैसे—

"मांतं मुञ्चति गौरवं, परिहरत्य पति दीनात्मताम्।
लज्जा मुत्सृजति श्रयत्य दयतां नीचार्च मालंवते॥
भार्या बन्धु सुता सुतेस्वप कर्तानांनविधाश्वेप्स्ते।
किं किं यत्न करोति निन्दितमपि प्राणि क्षुधा पीड़ितः॥१॥

इस भयंकर दुष्काल के कारण कोंकास अपने सब कुटुम्ब को साथ लेकर उज्जैननगरी में आकर अपना निवास कर दिया। पर यहां के लोगों के साथ कोकास की कोई पहचान नहीं थी कोकास की इच्छा

थी कि छोटे बड़े के साथ मिलने से क्या हो सकता है पर खुदराजा से ही मिलना चाहिये किन्तु बिना किसी की सहायता के राजा से मिलना हो नहीं सकता था अतः कोकास ने एक ऐसा उपाय सोचा कि उसने काष्ट के बहुतसे कबूतर बनाए उन कबूतरों के एक ऐसा बटन लगाया कि बटन दबाने से वे आकाश में गमन कर सके और इस बटन के ऐसे नंबर लगाये कि उतनी ही दूर जा सके जहां जावे वे ऐसे गिरे कि वहां का पदार्थ स्वयं कबूतर में रखी हुई पोलार में भर जाय उस पोलार की जगह भी ऐसी रखी कि उतना वजन भर जाने पर दूसरा बटन स्वयं दब जाय जिससे फिर आकाश में उड़ कर सीधा कोकास के पास आजाय ऐसे एक नहीं पर अनेक कबूतर बनालिये और उन कबूतरों को राजा के अनाज के कोठारो पर उड़ा दिये कबूतरों के बटनों के नंबर के अनुसार सब कबूतर राजा के अनाज के कोठार पर जा पड़े पड़ते ही उनकी उदर (पोलार) में स्वयं अनाज भर गया कि कबूतर उड़कर कोकास के पास आगये इस प्रकार हमेशा काष्ट कबूतरो को भेजकर राजा का अनाज मंगवाया करे। ऐसा करते-करते कई दिन बीत गये। तब अनाज के भंडार रक्षको ने सोचा कि ये कबूतर किस के हैं एक दिन उन्होंने कबूतरो का पीछा किया तो वे कोकास के पास पहुँच गये। और कोकास को गुन्हगार समझ राजा के पास ले आए। जब राजा ने कोकास को पूछा तो उसने काष्ट कबूतरो की तथा राजा से मिलने की सब बात सत्य-सत्य कह सुनाई। पर सत्य का कैसा प्रभाव पड़ता है।

"सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिर लीकं मधुरं द्विषा। अनुकुलं च सत्यं च वक्तव्यं स्वामिना सह ॥१॥

कोकास की सत्यता एवं कला कौशल से राजा संतुष्ट हो इतना द्रव्य एवं आजीविका कर दी कि उस के सब कुटुम्ब का अच्छी तरह से निर्वाह हो सके। कहा है कि—

"लवण समो नत्थी रसो, विण्णाण समोअ बन्धवो नत्थी। धम्म समो नत्थी निहि, काह समो वेरिणो नत्थी।

एक दिन राजा ने कोकास से पूछा कि तुम केवल कबूतर ही बनाना जानते हो या अन्य कई और भी शिल्पविद्या जानते हो ? कोकास ने कहा हजूर आप जो आज्ञा करेंगे वही मैं बना दूंगा। राजा ने कहा कि ऐसा गरुड़ बनाओ कि जिस पर तीन मनुष्य सवार हों आकाश में गमन कर सके। कोकास ने राजा की आज्ञा स्वीकार कर गरुड़ बनाना प्रारम्भकिया जो सामग्री चाहती थी वह सब राजा ने मंगवा दी। फिर तो देर ही क्या थी कोकास ने थोड़े ही समय में एक सुन्दर गरुड़ विमान के आकार बनादिया जिसको देख कर राजा बहुत ही खुश हुआ। राजा राणी और कोकास ये तीनों उस गरुड़ पर सवार हो आकाश में गमन करने को निकल गये चलते चलते जा रहे थे कि नीचे एक सुन्दर नगर आया। राजा ने कोकास से पूछा कि—यह कौन सा नगर है। कोकास ने कहा हे राजा ! यह भरोंच नाम का एक प्रसिद्ध नगर है यहां पर बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत प्रतिष्ठितपुर नगर से एक रात्री में साठ कोस चल कर आए थे। कारण यहां ब्राह्मणों ने एक अश्व मेघ यज्ञ करना प्रारम्भ किया था जिसमें जिस अश्वका होम (बलि) करने का उन्होंने निश्चय किया था वह अश्व तीर्थंकरके पूर्व जन्म का मित्र था उसको बचाने के लिये वे आए थे उस अश्व को बचा दिया बाद वह मर कर देव हुआ उसने यहां पर तीर्थंकर मुनिसुव्रत का मंदिर बनवा कर मूर्ति स्थापन की तथा एक अपनी अश्व के रूप की मूर्ति स्थापन कर इस तीर्थ का नाम अश्वबोध तीर्थ रखा था जो अद्यावधि विद्यमान है और भी इस तीर्थ के उद्धार वगैरह संबंधी सब हिस्ट्री राजा को सुनाई। किसी समय पुनः लङ्का नगरी के ऊपर आये तब राजा ने पुनः पूछा तो कोकास ने राजा रावण का राज सीता का हरण, रामचन्द्रजी का आना वगैरह सब हाल सुनाया तथा रावण के नौग्रह तो खाट के पाये रहते थे। और वे यज्ञ वादियों के यज्ञ का विध्वंस कर डालते थे इस लिये वे

लोग रावण को राक्षसों की गिनती में गिनते थे। राजा रावण-और राणी मंदोदरी अष्टापद तीर्थ पर जाकर तीर्थंकर देव की ऐसी भक्ति की कि सितार बजाते हुए तांत टूट गई थी उसी समय अपने शरीर की नस निकाल कर सितार में जोड़ दी यही कारण है कि वह भविष्य में तीर्थंकर पद धारण करेंगे। इत्यादि।

एक दिन फिर पश्चिम की ओर गये तो नीचे पर्वत देख राजा ने कोकास से पूछा तो उसने कहा धराधिप। यह पुण्य पवित्र एवं महा प्रभाविक श्रीशत्रुंजय तीर्थ है यहां पर तेविस तीर्थंकरों के समवसरण हुए। अजीतनाथ प्रभु ने चातुर्मास किया और अनेक महात्मा यहां पर मुक्ति को प्राप्त हुए इत्यादि इसी प्रकार गिरनार तीर्थ के लिये कहा कि यहाँ नेमिनाथ प्रभु के तीन कल्याण हुए। पुनः पूर्व की यात्रा करते हुए सम्मेतशिखर का परिचय कराते हुए कोकास ने कहा यहां वीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। इसी प्रकार कभी पापापुरी, कभी, चम्पापुरी, कभी राजगृह, कभी अष्टापद तीर्थ आदि का हाल सुनाता रहा जिससे राजा की भावना पवित्र जैनधर्म की ओर झुकगई और कोकस के प्रयत्न से राजा ने जैनधर्म स्वीकार करके उसकी ही आराधना करने लगा। एक समय कोकास राजा को आचार्य श्रुतिबोधसूरी के पास ले गया। आचार्यश्री ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिसमें साधुधर्म एवं गृहस्थ धर्म का विवरण किया राजा ने गृहस्थ धर्म के द्वादशव्रत धारण किये जिसमें छटा व्रत में चारों दिशा सौ-सौ योजन भूमि की मर्यादा की शेष यथाशक्ति में व्रतपच्चक्खान कर सूरिजी को वंदन कर अपने स्थान पर चले गये पर उनकी आकाश गमन प्रवृति उसी प्रकार चालु रही।

राजा के एक यशोदा नाम की राणी थी और उसी के साथ अधिक स्नेह होने से आकाश गमनसमय साथ ले जाता था जिससे दूसरी विजय नाम की रानी ईर्षा करती थी। जब एक समय राजा यशोदारानी को गरुड़ पर बैठा कर आकाश गमन की तैयारी कर रहा था तो विजयारानी एक गुप्ताचर द्वारा उस गरुड़ को लौटाने की खील बदलदी जिसकी किसी को खबर नहीं पडी जब राजा रानी और कोकस गरुड़ विमान पर सवार हो कर आकाश में गमन किया तो उस समय विमान इतना तेज चला कि थोड़े ही समय में सैंकड़ो कोस चला गया इस हालत में राजा को अपने व्रत की स्मृति हुई और कोकास को पूछा, कि कोकास! अपने नगर से कितने दूर आए हैं ? कोकास ने जवाब दिया कि एक सौ योजन से कुछ अधिक आ गये हैं राजा ने कहा कि कोकास जल्दी से गरुड़ को वापस लौटा दो कारण मेरे सौ योजन की भूमि उपरांत जाने का त्याग किया हुआ है। कोकास ने कहा कि थोड़ी दूर पर जाकर गरुड़ को लौटा दूंगा राजा ने कहा नहीं यहीं से लौटा दो। कोकास ने कहा हुजूर व्रत में अतिचार तो लग ही गया है फिर तकलीफ क्यों उठाई जाय थोड़ी दूर पर जाने से विमान सुविधा से लौटाया जा सकेगा। राजा ने कहा कोकास! तुम जैनधर्म की जानकारी रखते हुए भी ऐसी अयोग्य बात क्यों कर रहे हो कारण अनजान पणे में भूमि उल्लंघन होने से अतिचार लगता है पर जान बूझ कर आगे जाने में अतिचार नहीं पर व्रत भंग रूप अनाचार लगता है अतः प्राण भी चला जाय पर एक कदम भी आगे बढ़ना ठीक नहीं है कोकास ने कहा राजन्! यह कलिंग देश की भूमि है और नजदीक कांचनपुर नगर है यहां के राजा के साथ आप का चिरकाल से वैर है यहां विमान उतारने में आप को शायद कष्ट होगा अतः आप व्रत भंग की आलोचना कर प्रायश्चित करलें पर आग्रह न कर थोड़ा सा आगे चड कर विमान को लौटाने की आज्ञा दें। राजा ने कहा कि कितना ही कष्ट क्यों न हो पर मैं मेरा व्रत हर्गिज खंडित नहीं करूगा। अतः राजा की दृढ़ता देख कोकास ने गरुड़ को लौटाने के लिये खिली बटन दावा पर गरुड़ नहीं लौटाया। कोकास ने खिली को देखी तो अपनी खिली नहीं पाई राजा से कहा

गरीबपरवर मेरी खिली किसी ने बदल दी है अतः गरुड़ को पीछे नहीं लौटाया जा सकता है राजा ने कहा तुम विमान को यहीं उतार दो यहां से सब पैदल अपने नगर को चलेजावेंगे। कोकास ने गरुड़ को उतारने की बहुत कोशिश की जब गरुड़ को नीचे उतार रहा था तो उसकी पाखें बन्द हो गई और गरुड़ जाकर समुद्र के पानी पर पड़ गया। जिससे किसी को तकलीफ नहीं हुई। पर वे सब बालबाल बच गये जिससे राजा की जैनधर्म पर विशेष श्रद्धा दृढ़ हो गई। जब कोकास अपने गरुड़ और राजा रानी को समुद्र से पार कर किनारे पर लाया और कहा की आप दोनों गुप्त रूप से यहां विराजें। मैं जाकर नगर से दूसरी खिली बनाकर ले आता हूँ फिर सब गरुड़ पर सवार होकर अपने नगर को चले चलेंगे। पर यह मेरी बात स्मरण में रहे कि इस नगर का राजा आप का दुश्मन है आप न तो किसी से वार्तालाप करें और न अपना परिचय किसी से करावे। इतना कह कर कोकास नगर में गया एक सुथार के वहां जाकर औजार मांगा सुथार ने कहा आप यहां ठहरे मैं घर पर जा कर औजार ले आता हूँ। सुथार औजार लेने को गया पीछे उसका एक चक्र अधूरा पड़ा था कोकास ने उसको जितना जल्दी उतना ही सुंदर बना दिया जब सुथार औजार लेकर आया और कोकास को दिया और वह अपनी खिली बनाने लगा इधर सुथार ने अपने चक्र का काम देखा तो उसको बड़ा ही आश्चर्य हुआ उसने सोचा की हो न हो पर यह कारीगर कोकास ही होना चाहिये सुथार किसी बहाने से वहां से चल कर राजा के पास आया और कहा कि मेरी दुकान पर एक कारीगर आया है। मेरे ख्याल से वह उज्जैन के राजा का प्रसिद्ध कारीगर कोकास है। राजा ने तुरन्त सिपाहियों को भेज कर कोकास को जबरन अपने पास बुलाया और पुछा की तुम्हारा राजा काकजंघ कहां है ? कोकास कभी झूठ नहीं बोलता था उसने अपने सत्यव्रत की रक्षा करते हुए बहुत कुछ किया पर आखिर जब कोई उपाय नहीं रहा तब राजा का पता बतलाना पड़ा। बस, फिर तो था ही क्या कांचनपुर का राजा कनकप्रभ ने हाथ में आया हुआ इस अवसर को कब जाने देने वाला था। राजा एवं रानी को पकड़ मंगवाया और कोकास के साथ तीनों को कैद कर दिया इतना ही नहीं बल्कि उन तीनों का खान पान भी बन्द कर दिया जब इस अनुचित कार्य की खबर नागरिकों को मिली तो उन्होंने सोचा कि यह तो राजा का बड़ा अन्याय है जिसमें भी खान पान बन्द कर देना वो और भी विशेष है अतः नागरिक लोगो ने विविध प्रकार के पकवान बना कर आकाश में भ्रमण करने वाले पक्षियों को फैंकने के बहाने उछालते २ राजा राणी एवं कोकास जिस मकान में कैद थे वहां भी फेंकने शुरू कर दिया कि उन तीनों का भी गुजारा हो सके इस प्रकार कई दिन गुजर गये। राजा राणी और कोकास बड़े ही दुःख में आपड़े। पर कहा है कि—

'को इस सया सुहिओ, कस्स व लच्छी थिराइपिम्भइ।
को मचुणा न गहिओ, को गिद्धो नेव विसए सु॥

खैर, एक दिन राजा ने कोकास के वैर को याद कर उसको जान से मरवा डालने का विचार कर डाला पर जब इस अनुचित कार्य की खबर नगर में हुई तो कई नागरिक लोग एकत्र हो राजा के पास में जाकर अर्ज की कि—

"सर्वेषां बहुमाना र्हः कलावान् स्वपरोऽपि वा।
विशिष्य च महेशस्य मटीयो महिमापि हम्॥ १॥

अर्थात् विद्वान् एव कलावान अपना [illegible] या [illegible] हो आदर सत्कार करने योग्य होता है। चन्द्र

कोकास की चातुर्य कला

कलावान् हो ने से ही शंकर ने अपने कपाल पर अंकित किया है। हे राजन्! कोकास जैसा कलावान् को मार डालना यह आपको योग्य नहीं है कारण इससे एक तो इस अनुचित कार्य से सर्वत्र आपकी अपकीर्ति एवं अपयश होगा। दूसरा एक बड़ा भारी कलावान आपके हाथों से सदा के लिये खोया जायगा। हे भूपति! मारने की अपेक्षा कोकास जैसा विद्वान आपकेहाथ लगा है तो इससे कोई अच्छा काम लेना चाहिये इसमें ही आपकी शोभा है। नागरिकों का कहना मान कर राजाने कोकास को अपने पास बुला कर पूछा कि कोकास तुम एक गरुड़ ही बनाना जानते हो या। दूसरा भी कुछ बना सकते हो? इस पर कोकास ने कहा कि जो हुक्म आप दें वही मैं बना सकता हूँ राजा ने कहा कि एक ऐसा काष्ट विमान बना दो कि जिस पर मैं मेरी रानी और मेरे सौ पुत्र व मेरा प्रधान सब अलगर बैठ कर आकाश में सफर कर सकें। राजा की इस बात को कोकास ने स्वीकार कर ली। और राजा ने कोकास के कहने मुजब सब सामान भी मंगवा दिया। बस, फिर तो क्या देरी थी। कोकास ने इस कार्य को अपने तथा राजा राणी को कारागृह मुक्ति का साधन समझ शुरू कर दिया। राजा राणी को भी खुश समाचार कहला दिया कि अब मैं आपको शीघ्र ही संकट मुक्त करवा दूंगा। इधर उज्जैननगरी को एक गुप्तचर भेज कर राजा काकजंघ के पुत्र रामेश को कहला दिया कि राजा राणी और मेरी यह दशा हुई है। पर आप अमुकतिथि तक ऐसे गुप्त तरीके से सैना लेकर कलिंगदेश की राजधानी कांचनपुर पर चढ़ाई करके यहां आ जाना कि मैं मदद कर आपकी विजय करवा दूंगा इत्यादि।

इधर कोकास अपना काम बड़ी ही शीघ्रता से करने लगा कि थोड़े ही समय में एक देव भवन के सदृश्य गरुड़ विमान तैयार कर दिया जिसको देख राजा एवं प्रजा का चित्त प्रसन्न हो गया जब राजा उस विमान पर सवार हुआ तो प्रत्येक २ आसन पर राजा राणी, राजा के सौ पुत्र और प्रधान बैठ गये कोकास ने विमान के एक ऐसी चावी रखी थी कि चावी के लगाते ही वे सब आसन ऐसे बन्द होगये कि वे सब बैठने वाले माता के गर्भ में ही नहीं सो गये हों अर्थात् उन आसनों के पाक्षी की तरह काष्ट की पांखे रखी गई थी कि चावी लगाते ही वे काष्ट की पाखें सब आसनों को आच्छादित कर दे अर्थात् वे सब सवार कारागृह की भांति बन्द हो गये। उधर उज्जैननगरी से सैना लेकर राजपुत्र रामेश आ पहुँचा वह राजा नगर पर आक्रमण कर राज लूटना शुरु कर दिया जिसका सामना करने वाले राजा मंत्री या राजा के सौ पुत्र विमान में बन्द हुए पड़े थे। जिन नागरिकों ने राजा राणी, कोकास को खान पान फेंके थे उन सबको सकुशल रख दिये। बाकी राज भवन आदि सब लूट लिये राजा राणी जो कारागृह में थे, उनको छुड़ा लिये। रामेश और कोकास राज को अपने हस्तगत करना चाहते थे पर राजा काकजंघ ने कहा कि मेरे व्रतों की मर्यादा है जिसमें सौ योजन के बाहर की भूमि मेरे काम की नहीं है। अतः यह राज्य मेरे राज से सौ योजन से दूर होने से राज लेने में मेरे व्रत का भंग होता है। इस लिये राज और द्रव्य यहीं छोड़ कर राजा राणी कोकास और राजपुत्र रामेश तथा उसकी सैना चलकर उज्जैनी नगरी आ गये।

पीछे लोग एकत्र हो गरुड़ विमान से राजादिकों को निकालने का प्रयत्न किया पर कोकास की ऐसी चावी लगाई हुई थी कि उनके सब उपाय निष्फल हुए तब सुथार को बुला कर कुलाड़े से काटने लगे पर ज्यों ज्यों कुलाड़ा विमान पर चलाया जानेलगा त्यों त्यों अन्दर रहे हुए राजादि को कष्ट होने लगा इससे अन्दर से राजादि चिल्लाने लगे इस हालत में कई अच्छे आदमी चलकर उज्जैन आये और कोकास से प्रार्थना की कि आप हमारे यहां पधार कर राजादिकों कष्ट मुक्त कर दें। कोकास ने कहा कि आपका राजा

हमारे राजा की आज्ञा को स्वीकार करे तो मैं चल सकता हूँ। उन लोगों ने कोकास का कहना स्वीकार किया। तब राजा काकजंघ की आज्ञा लेकर कोकास कांचनपुर गया और गरुड़ विमान के एक चाबी लगाई जिससे उन आसनों पर के आवरण खुल गये और राजादि नये जन्म पावे जितनी खुशी मनाई। कोकास ने कहा कि यह आपके किये हुए अनुचित कार्य का फल मिला है जब एक राजा अपनी विपदावस्था में आपके यहां आगया तो आपका कर्त्तव्य था कि आप उनका स्वागत सत्कार करते पर आपने उलटा ही रास्ता पकड़ लिया। पर हमारे राजा की कितनी दयलुता की उन्होंने आपका राज न लेकर आपको बन्धन मुक्त करने की मुझे आज्ञा देदी इत्यादि शिक्षा देकर कोकास पुनः उज्जैन नगरी आ गया।

राजा काकजघ और कोकास संसार से विरक्त होकर एक ऐसे महात्मा की प्रतिक्षा कर रहे थे कि उन महात्माजी की सहायता से अपना शीघ्र कल्याण कर सकें। इतने में आचार्यधर्मघोषसूरि अपने शिष्य मंडल के साथ उद्यान में पधार गये। राजा को वधाई मिलने पर बड़े ही समारोह के साथ कोका-सादि नागरिकों के साथ राजा सूरिजी महाराज को वंदन करने को गया। आचार्यश्री ने बोधकरी धर्म देशना दी जिसको सुनकर राजा एवं कोकास को वि० वैराग्योत्पन्न हो आया। ठीक उसी समय राजा ने सूरिजी से अपना पूर्व भव पूछा। इस पर सूरिजी ने अपने अतिशय ज्ञान से उनका पूर्व भव जान कर राजा को कहा कि हे राजन्! पूर्व जमाने में एक गजपुर नाम का नगरथा वहां पर शेल नाम का राजा राज्य करता था उसके नगर में एकसालग नाम का सुथार भी वसता था उसने राजा की आज्ञा से अनेक जैनमंदिरों का निर्माणकिया और करता ही रहता था। उस समय किसी अन्य ग्राम से एक जैन सुथार आया वह भी अच्छा कला निपुण था। सालग ने उसका साधर्मी के नाते स्वागत नहीं किया पर वह मंदिर बनाने लग गया तो मेरी आजीविका कम हो जायगा। अतः उसने आगत जैन सुथार पर जाति नीचता का दोषारोपण कर उसको राजा द्वारा कैद करवा दिया पर जब राजा अन्य लोगों द्वारा पूछा ताछ की तो उसको मालूम हुआ कि मैंने अन्याय किया है उस सुथार को कैद से मुक्त कर दिया पर इस पातक की आलोचना न करके तुम दोनों मर कर पहले देवलोक में विराधिक देव हुए और वहां से चलकर राजा का जीव तो तुम राजा हुए हो जो छः घटे की कैद के बदले तुमको छः मास की कैद में रहना पड़ा और सुथार का जीव कोकास हुआ है जाति नीचता का कलंक लगाने से कोकास को दासी पुत्र होना पड़ा है इत्यादि। सूरिजी ने संसार का असार पना तथा इन कर्मों को उसी प्रकार भोगने का सचोट उपदेश दिया। राजा तो पहले से ही संसार से उदासीन हो रहा था ऊपर से मिल गया सूरिजी का उपदेश। वस, फिर तो देरी ही क्या थी उसी समय राजाने अपने पुत्र को राज सौंप कर कोकास के साथ सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा लेकर यथा शक्ति तप, संयम की आराधना करते हुए कैवल्य ज्ञान दर्शन हो आया जिससे अनेक भव्यों का उद्धार कर अन्त में आर इस नाशमान् शरीर एव संसार को छोड़ मोक्ष महल में पहुँच कर अनंत एवं अक्षय सुखों का अनुभव करने लगे।

ऊपर मैंने जितने उदाहरण लिखे हैं उन सब के इस प्रकार के चरित्र बने हुए हैं पर इस एक नमूने से ही पाठक समझ सकते हैं कि पूर्व जमाने में भारत में कैसे-कैसे शिल्पकला एव कलाएं थी कि जिनकी बराबरी आज का (Science) विज्ञानवाद भी नहीं कर सकता है।

कई सज्जन यह खयाल करे कि यदि आपके साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं तब उन्होंने चिरकाल से इसका प्रयोग करना क्यों छोड़ दिया है? जैनों के जीवन का मुख्योद्देश्य आत्मकल्याण

करने का है। हां, संसार व्यवहार निर्वाह ने के लिये वे अवश्य व्यापारादि उद्योग करते हैं उसमें, भी पन्द्रह कर्मादानादि अधिक पाप का संभव हो उसे वे करना नहीं चाहते हैं तब नये नये आविष्कारो का निर्माण करने में एक तो समयाधिक चाहिये कि तमाम जिन्दगी ही इन कार्यों में खत्म करनी पड़ती है दूसरी तृष्णा भी इतनी बढ़ जाति है कि आत्मकल्याण प्रायः भूल ही जाते हैं आज हम पाश्चात्यो को देखते हैं कि नये नये आविष्कारों में अनाप सनाप आरंभ सारम्भ होते हैं वहां स्थावर जीव तो क्या पर त्रस जीवों की भी गिनती नहीं रहती है यही कारण है कि वे जानते हुए भी महापापारंभ के कार्य में हाथ नही डालते थे पर इससे यह तो कदापि नहीं समझा जा सकता है कि उन्होंने जिस कार्य को इस्तैमाल में नहीं लिया उसका सर्वथा अभाव ही था अर्थात् आज जितने नये नये आविष्कार निर्माण किए जाते हैं वह भारत में हजारो लाखों वर्ष पूर्व भी थे और भारत के विज्ञ लोग इन सब कार्यों को पहले से ही जानते थे यदि यह कहा जाय कि पाश्चात्य लोगों ने यह शिक्षा भारत से ही पाई है इसमें थोड़ी भी अत्युक्ति नहीं है। बस, इतना कह कर ही मैं मेरे इस लेख को समाप्त कर लेखनी को विश्रान्ति देता हूँ। श्रीमस्तु, कल्याणमस्तु।

भगवान् महावीर की परम्परा : श्रीमान् विजयसिंहसूरि

मेरु पर्वत के शिखर के समान उन्नत दुर्गों से सुशोभित, समस्त नगरों का मुकुट स्वरूप श्रीपुर नामका एक विख्यात नगर था। उसके बाह्य उद्यान में द्वितीय तीर्थङ्कर श्रीअजितनाथ स्वामी का पदार्पण हुआ इससे वह, तीर्थ वरीके प्रसिद्ध हुआ। पुष्कल समय के व्यतीत होने के पश्चात् चंद्रप्रभस्वामी का वहां समवसरण हुआ तब वह चन्द्रपुर के नाम से विख्यात हुआ। कालान्तर में वह पुनः क्षीण हो गया तब भृगु नामक महर्षि ने उस नगर का पुनरुद्धार किया जिससे ऋषि के नामानुरूप यह पुर भृगु पुर नाम से प्रख्यात हुआ। कलि-काल के कलुषित तामस भाव को दूर करने में प्रवीण ऐसा जितशत्रु नामक एक जगविश्रुत समर्थ राजा उस नगर में राज्य करता था।

एकदा यज्ञानुयायी ब्राह्मणों के आदेश से जितशत्रु राजा ने तीन कम छ सौ (५९७) बकरों को यज्ञ में हवन कर दिया। अन्तिम दिवस वे ब्राह्मण एक सुंदर अश्व का होम करने के लिये अश्वको वहां लाये। तत्समीपस्थ रेवा नदी के दर्शन से उस अश्व को पूर्व भव का ज्ञान (जातिस्मरण) होगया।

इतने में उस अश्व को अपने पूर्व भव का मित्र जानकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी ने एक ही रात्रि में १२० गाउ चल कर मार्गस्थ सिद्धपुर में क्षण भर विश्रान्ति ले प्रतिष्ठान नाम के नगर से भृगुपुर में पदार्पण किया। तीस हजार मुनियों से घेरे हुए प्रभु मुनिसुव्रत ने कोरंटक नाम के बाह्य उद्यान में एक आम्रवृक्ष के नीचे समवसरण किया। उनको सर्वज्ञ समझकर राजा जितशत्रु आदि अश्व सहित वहां आया और प्रभु को यज्ञ का फल पूछा। भगवान ने फरमाया—"राजन ! प्राणियों के वध से तो निश्चित ही नरक की प्राप्ति होती है।" इधर पूर्व भव के स्नेह वश भगवान के दर्शन से अश्व के लोचनों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी उसके पश्चात् जिनेश्वर देवने राजा के समक्ष उनको प्रतिबोध देते हुए फरमाया—हे अश्व ! तेरा पूर्व भव सुन और हे सुज्ञ ! सावधान होकर प्रतिबोध को प्राप्त कर।

पहिले इस नगर में समुद्रदत्त नामका एक जैन व्यापारी रहता था। उसने सागरपोत नाम के अपने मिथ्यादृष्टि मित्र को जीवदया प्रधान जैनधर्म का उपदेश देकर प्रतिबोध दिया। इससे वह बारहव्रत धारी

श्रावक होकर शनैः २ सुकृत का पात्र हुआ। एक समय पूर्व जन्मोपार्जित कर्मों के उदय से उसे क्षय रोग हुआ तब उसके कौटम्बिक लोग कहने लगे कि—"अपने स्वधर्म का त्याग कर अन्य धर्म स्वीकार करने से ही इसको क्षय रोग हुआ है।" यह सुन कर व्याधिग्रस्त सागरपोत के धर्म भावना में शंकाशील होने से पूर्वापेक्षा श्रद्धा में हानि होने लगी। वास्तव में अपने सम्बन्धियों के वचनों की ओर कौन आकर्षित नहीं होता ?

एकदा उत्तरायण पर्व में लिंग-महोत्सव के निमित्त अतिथि, ब्राह्मणों के लिये पुष्कल घृत घट ले जाने में आरहे थे पर असावधानी के कारण बहुत से घृत बिन्दु मार्ग में डाल देने में आये। यह देखकर सागरपोत ने उस धर्म की निंदा की जिससे निर्दय ब्राह्मणों ने लकड़ी और मुष्टि प्रहार से उसको मारा। सेवकों ने तो नृशंसतापूर्वक अनेक प्रकार के प्रहारों से आघाव शील किया। उसके पश्चात् उस पर दया भाव लाकर अन्य लोगों ने जाने दिया। वहां आर्तध्यान से मृत्यु को प्राप्त होकर सैंकड़ों तिर्यञ्च के भवों में परिभ्रमण कर तू अश्व के रूप में हुआ है। अहो ! अब मेरे पूर्व भव को सुन।

पूर्व चन्द्रपुर में बोधिबीज (सम्यक्त्वे की प्राप्ति) होने के पश्चात् सातवें भव में मैं श्रीवर्मा नाम का विख्यात राजा हुआ। वे भव इस प्रकार जानने चाहिये प्रथम-शिवकेतु दूसरा-सौधर्म देवलोक में तीसरा कुबेरदत्त, चौथा-सनत्कुमार देव में, पांचवां श्रीवज्रकुण्डल में, छट्ठा ब्रह्म देवलोक में सातवां श्रीवर्मा आठवां प्राणत देवलोक में और नवां यह तीर्थंकर का भव, इस प्रकार संक्षेप में अपने नव भवों को बतलाये।

अब समुद्रदत्त व्यापारिक नगर भृगुपुर से किराने वगैरह की सामग्री लेकर वाहनों से समस्त लक्ष्मी के स्थान रूप चद्रपुर में आया। वहां के राजा को अमूल्य भेंट देकर संतुष्ट किया। राजाने भी दान सम्मान से संतोष प्रगट किया। पश्चात् राजा की कृपा बढ़ने से और साधु जनों का आदर सत्कार करने से जिनधर्म पर उसका अनुराग बढ़ने लगा और राजा को भी क्रमशः जैनधर्म का बोध हो गया। वहां आये हुए उसके मित्र सागरपोत के साथ भी समान बोध के कारण राजा की मित्रता होगई। अन्त में समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त कर श्री वर्मा राजा प्रणत देवलोक में महार्द्धिवाला देव हुआ। वहां से चवकर वह मैं वर्तमान क्षेत्र में तीर्थंकर हुआ हूँ।

इस तरह भगवान् के मुख से कर्मकथा सुन कर राजाने अश्व को छोड़ देने की अनुमति दी और उसने सात दिन का अनशन किया। समाधि से मृत्यु को प्राप्त होकर सहस्र देवलोक में सत्तर सागरोपम की आयुष्यवाला इन्द्र का सामानिक देव हुआ। वहा दिव्य सुख भोगवता हुआ उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव का स्मरण किया और भृगुपुर में साढ़ा बारह कोटि स्वर्ण की वृष्टि की। इसके साथ ही राजा और नगर के नागरिको को जिन धर्म का प्रतिबोध दिलवाया। उसी समय सुकृत शाली ऐसे माहमहीने की पूर्णिमा को स्वर्ण रत्न मय श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के चैत्य की स्थापना की माघशुक्ला प्रतिपदा के दिन भगवन् अश्वावबोध को बोध करने आये और उसी मास की शुक्ल अष्टमी को वह अश्व देवलोक में गया।

इस प्रकार नर्मदा के किनारे पर भृगुकच्छ पत्तन में समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ ऐसे अश्वावबोध नामका पवित्र तीर्थप्रवर्तमान हुआ। मुनिसुव्रतस्वामी से बारह हजार बारह वर्ष व्यतीत होने पर पद्मचक्रवर्ती ने इसका पुनरुद्धार किया। हरिसेन चक्रवर्ती ने फिर से इस तीर्थका इसका उद्धार करवाया। इस प्रकार ५ [illegible] लाख और ग्यारह हजार वर्ष व्यतीत हो गये। ९६ हजार वर्षों में इसके १०० उद्धार हुए। इसके पश्चात् सुदर्शना ने इसका उद्धार करवाया, इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—

वैताढ्य पर्वत पर एक रथनुपुर चक्रवाल नामके नगर में विजयरथ नाम का राजा राज्य करता था। विजयमाला नाम की उनके रानी थी। विजया नाम की उनके एक पुत्र थी। वह तीर्थों का वंदन करने चली इतने में आगे उतरता हुआ एक सांप उसके देखने में आया इसके साथ में आने वाला पैदल वर्ग अपशकुन समझ कर उसको मारने लगे। अज्ञानता से इस जीव के वध को नही रोकती हुई विजया ने भी इसकी उपेक्षा की। पीछे शान्तिनाथ तीर्थ में जाकर उसने भाव से भगवान को वंदन किया। उसी आयतन में एक परम निष्ठ चारित्र वाली विद्या चारण साध्वीजी को वंदन करके विजया सर्प वध की उपेक्षा का पश्चाताप करने लगी। इससे उसने थोड़े कर्म पुद्गलो का क्षय किया। अन्त में वह अपने गृह एवं धन के मोहसे आर्तध्यान करती हुई मृत्यु को प्राप्त हो शकुनि के रूप में पैदा हुई और वह सर्प मृत्यू को प्राप्त होकर शिकारी हुआ।

एकदा भाद्रपद में बहुत दिनों तक बरसाद हुई बाद वह शकुनि (पक्षिणी) क्षुधातुर हो अपने सात बच्चों व स्वयं के लिये खाद्य सामग्री का शोधन करती हुई उस शिकारी के घर गई। वहां से उसने एक मांस का टुकड़ा अपनी चोंच से उठाया। पश्चात् उड़कर आकाश में जाती हुई उसको शिकार ने तीक्ष्ण बाण छोड़ कर घायल किया। इससे वह श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के चैत्य के सम्मुख गिर पड़ी लगभग मरने के छोर पर वह आगई। इतने में पुण्य योग से भानु और भूषण नाम के दो साधु वहां आ गये। उन्होंने दया लाकर जल सिन्चन से उसको आश्वासन दिया और पञ्च परमेष्ठी रूप महा मंत्र सुनाया। इस तरह तीर्थ के ध्यान में लीन हुई शकुनि दो प्रहर में मृत्यु को प्राप्त हुई।

सागर के किनारे पर दक्षिण खंड में सिंहल नामक द्वीप था। वहां कामदेव के समान रूपवान चंद्र शेखर नाम का राजा राज्य करता था। रूप में रति के समान चंद्रकांता नामक उसके रानी थी। शकुनि मर कर चद्रकांता रानी की कुक्षि से सुदर्शना नाम की पुत्री हुई।

एक दिन भृगुपुर से वाहन लेकर जिनदास नाम का सार्थवाह वहां आया। उसने रत्नादि अमूल्य भेंट राजा को अर्पण की। उसमें से सहज ही में चूर्ण उड़ा वह समीपस्थ वाणिक् के नाक में गया और उसे स्वाभाविक छींक आगई। तत्काल ही उसने महाप्रभावक पञ्चपरमेष्ठी मन्त्र का उच्चारण किया जिसको सुनकर राजपुत्री को मूर्छा आगई और उसको तत्क्षण पूर्व जन्म का स्मरण होगया। राजा के द्वारा पूछने पर उसने अपने पूर्वभव का वृत्तान्त पिता को कह सुनाया। तदनन्तर तीर्थ वंदन के लिये उत्कंठित हुई राजपुत्री ने अत्याग्रह से पिता की अनुज्ञामांगी पर राजा ने उसको जाने की अनुमति नहीं प्रदान की। इससे उसने अनशन करने की प्रतिज्ञा ले ली। बस. अन्योपाय न होने से अतिवल्लभ होने पर भी अपनी पुत्री को राजा ने जिनदास सार्थवाह के साथ जाने की आज्ञा दे दी। अठारह सखियां, सोलह हजार पैदल सिपाही, मणि, कांचन रजत, मोतियों से भरे हुए अठारह वाहन, आठ कंचूकी तथा आठ अंगरक्षकों के परिवार को साथ देकर उसको विदा किया। उपवास करते हुए जिनदास के साथ वह राज सुता एकमास में उसतीर्थ स्थान पर आई। वहां मुनिसुव्रतस्वामी को वंदन करके महोत्सव किया। तदन्तर अपने उपकारी भानु और भूषण मुनियों को वंदन करके उदारता के साथ अपने साथ लाया हुआ सब धन उनके सामने रख दिया। निःसंगपने से और भव विरक्त पने से इसका इन्होंने निषेध किया तब कनक और रत्नों के बल से उसने उसजीर्ण तीर्थ का उद्धार किया। तब ही से वह तीर्थ शकुनिका-विहार नाम से प्रसिद्ध हुआ पश्चात् बारह वर्ष तक दुष्कर तप का आचरण कर समाधि पूर्वक अनशन व्रत के साथ काल कर दर्शना नाम की देवी हुई। एक लक्ष देवियों के साथ रहते

हुए देवी दर्शना की एक विद्यादेवी के साथ मित्रता हो गई। पूर्व भव का स्मरण कर वह जिनेन्द्रदेव की पुष्पादि से पूजा करने लगीं। उसी नगर में उसकी अठारह सखियां मर कर देवियां हुई अतः सबके साथ महाविदेह जिन एवं नंदीश्वर द्वीप में जिन-प्रतिमा की भावपूर्वक पूजा कर अपने देव भव को सफल बनाने लगी।

एक दिन वह देवी भगवान् महावीर को वंदन करने आई और भक्तिपूर्ण कई प्रकार का नाटक किये बाद में गणधर सौधर्म ने देवी का पूर्वभव पूछा और भगवान् सम्पूर्ण पूर्व भव कह सुनाया। विशेष में प्रभु ने कहा यह देवी तीसरे भव मोक्ष को प्राप्त करेगी। यह भरोंच नगर जो सकुशल रहा है वह, इस देवी की कृपा से ही रहा है।

देवी प्रतिदिन जिन पूजा के लिये तमाम सुगन्धित पुष्प ले आती थी इससे अन्य लोगोंको देवार्चना के लिये पुष्प नहीं मिलता था तब श्रीसंघ ने आर्य सुहस्तिसूरिके शिष्य कालहंससूरि से विज्ञप्ति कर इसका समाधान करवाया।

बाद मे सम्राट सम्प्रति ने इसका जीर्णोद्धार करवाया उसमें उपद्रव कर ने वाले व्यन्तर को गुणसुन्दर सूरिके शिष्य कालकाचार्य ने रोका। बादमें सिद्धसेन दिवाकर के उपदेश से राजा विक्रम ने भी इसका पुनरुद्धार करवाया। वीरात् ४८४ वर्ष मे आर्य खपटसूरि ने व्यंतरो तथा बौद्धों से इस तीर्थ की रक्षा की। वीरात् ८४५ वर्ष में तुर्कों ने वल्लभी का भंग किया बाद में वे भरोच आने लगे तो देवी ने उनको रोका। बाद में ८८४ वर्ष में मल्लवादी ने भी बौद्धों एवं व्यन्तरों से इस तीर्थ की रक्षा की। आपके उपदेश से सत्यवाहन राजने इस तीर्थ की रक्षा की और पादलिप्तसूरिने ध्वजाप्रतिष्ठा की। आर्य खपटसूरि के वंश में ही प्रस्तुत आचार्य विजयसिंहसूरी हुए जो यमनियमादि उत्तम गुणो से स्वपर आत्मा के कल्याण करने में समर्थ हुए।

आचार्य विजयसिंहसूरि ने शत्रुञ्जय गिरनार को यात्रार्थ सौराष्ट्र में विहार किया और धीरे २ गिरनार पर चढ़े वहां तीर्थ रक्षिका अम्बा नाम की देवी थी प्रसङ्गोपात उसका चरित्र यहां लिखा जाता है ?

कणाद् मुनि स्थापित कासहृद नाम के नगर में सर्वदेव नाम का एक ब्राह्मण था। सत्य देवी नाम की उसकी पत्नी थी। अम्बादेवी नामक इनके आत्मजा थी युवावस्था के प्राप्त होने पर सोमभट्ट नामक कोटि नगरी निवासी ब्राह्मण के साथ उसका लग्न हुआ था। कालन्तर में इनके विभाकर शुभकर नाम के दो पुत्र हुए।

एक समय भगवान् नेमिनाथ के शिष्य सौधर्मसूरिके आज्ञानुयायी दो मुनि अम्बादेवी के घर पर भिक्षा के लिये आये। अम्बादेवी ने उनको शुद्ध आहार पानी प्रदान कर लाभ लिया। यह बात जब सोमभट्ट के कान पर आई तो उसने अम्बादेवी के साथ खूब मारपीट की बस, वह अपने दोनों बच्चों को लेकर गिरनार पर आई और नेमिनाथ को वन्दन कर झंपापात करके मरगई। मरकर वह अम्बिका नाम की देवी होगई।

इधर उसके पति का क्रोध शान्त होने पर उसको अपने किये हुए अकृत्यपर बहुत ही पश्चाताप होने लगा बस, वह भी चलकर गिरनार आया और भगवान् नेमिनाथ को वदन कर एक कुएड में झम्पापात करके मर गया। वह अम्बिका देवी की सवारी में सिंह देव पने उत्पन्न हुआ।

विजयसिंह सूरि तीर्थ यात्रा कर प्रभु के ध्यान में संलग्न हो गये। रात्रि में अम्बिका देवी गुरु को वंदन करने आई। गुरुने कहा— तू पूर्व भव में विप्र-पत्नी थी तेरे पति के द्वारा परामव को प्राप्त हुई तू मर करके देवी हुई और तेरे पति की भी यही दशा हुई है वह मर कर तेरी सवारी के लिये सिंह देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

सूरिजी के बचन सुनकर देवी ने संतुष्ट होकर प्रार्थना की—प्रभो मुझे कुछ आज्ञाफरमाकर कृतार्थ कीजिये। सूरिने कहा—हम निस्पृहियों से क्या कार्य हो सकता है ? सूरिजी की इस अनुपम निस्पृहता से प्रसन्न हो देवी ने चिन्तितकार्य को पूर्ण करनेवाली गुटिका देते हुए कहा—प्रभो ! इसको मुंह में रखने से दृष्टि अगोचर; आकाश गमन, रूपान्तर, कविता की लब्धि, विषाय हरण, और अपनी इच्छानुसार लघुता गुरुता को प्राप्त होके रूप गुणों की प्राप्ति होती है। मुंह से निकाल देने पर पुनः उसी रूप में मनुष्य हो जाता है। गुरु की इच्छा न होने पर भी देवी उनको अर्पण करके चली गई। सूरिजी ने गुटिका को मुंह में रख कर सबसे पहिले—

"नेमिः समाहितधियां"

इत्यादि अमर वाक्यें से भ० नेमिनाथ की स्तवना की। बादमें वहां से रवाना हो आप भृगुपुर पधारे। श्रीसंघ ने आपका स्वागतमहोत्सव किया।

एक समय अंकुलेश्वर नगर में जलता हुआ वांस भृगुपुर में उड़ता हुआ आया जिससे एक मुनि सुव्रत के बिम्ब के सिवाय तमाम मूर्तियां, चैत्य और नगर जलकर भस्म होगये तब सूरिजी ने मुंह में गुटिका डाल कर पांच सहस्र दीनारे एकत्रित की और पुनः चैत्यों का उद्धार कर वाया। इस प्रकार विजयसिंहसूरिने उस देवदत्त गुटका के महाप्रभाव से जैनशासन के अनेक प्रभाविक कार्य करके जैनधर्म की महान प्रभावना की अतः जैनधर्म के महान् प्रभाविक आचार्यों में आपश्री की गणना की जा सकती है और ऐसे ऐसे महाप्रभाविक आचार्यों से ही जैन शासन जयवंता वर्त रहा है—। अन्त में अनसन समाधि एवं पञ्च परमेष्टि के स्मरण पूर्वक आप स्वर्ग पधार गये। प्रबन्धकार लिखते हैं कि आपश्री के वंश रूप सरोवर में प्रभावक आचार्य रूप कमल अद्यावधि विद्यमान हैं।

आचार्य वीरसूरि

इतिहास प्रसिद्ध श्रीमाल नामके नगर में परमार वंशीय धूम्रराजा की वंश परम्परा में देवराज नामका विख्यात राजा राज्य करता था। उसी नगर में शिवनाग नाम का एक धन वेश्रमण श्रेष्टी रहता था। उसने श्रीधरणेन्द्र नाम के नाग की आराधना की जिससे सन्तुष्ट हो देव ने उसको एक मन्त्र अर्पण किया जो सर्व कार्य की सिद्धि करने वाला था। शिवनाग के पूर्णलता नाम की स्त्री थी जो गृह कार्य कुशला, सर्व कला कोविदा थी। शिवनाग के वीर नाम का एक बड़ा ही भव्य होनहार एवं तेजस्वी पुत्र था। उसके मनमोहक रूप लावण्य एवं गुणों की राशि से मुग्ध हो सात श्रेष्टियों ने अपनी कन्याओं का विवाह वीर के साथ कर दिया। श्रेष्टी पर लक्ष्मी की पूर्ण कृपा थी। उसके मकान पर कोट्याधीश की निशानी रूप ध्वजाएं फरक रही थीं।

वीर के पिता की मृत्यु के पश्चात् वीर ने सत्यपुर जाकर पर्व दिनों में श्रीमहावीर प्रभु की यात्रा करने की प्रतिज्ञा की थी। इस बात को कई अर्सा व्यतीत हो गया। एक दिन वीर सत्यपुर जाकर वापिस आरहा था कि मार्ग में उसको चोर मिले। उस समय उसके साथ उसका साला भी था। वह जल्दी ही चोरों से बच-

* सा निःस्पृहस्य तुष्टा. विशेषतस्तानु वाच बहुमानात्। गुटिकां गृहीतविभो ! चिन्तित कार्यस्य सिद्धिकरीम् ॥११५॥
चक्षुरदृश्यो गगनेचारश्च रूपान्तराणि कर्ता च। कविता लब्धि प्रकटो विषहृद् बद्धस्य मोक्षकरः ॥११६॥
भवति जनो लघुरगुरुं प्रस्यते स्वेच्छया यथाकामम्। अनया मुखे निहितया विकृष्टया तदनु सहज तनुः ॥११७॥

कर श्रीमाल नगर चला आया। जब वीर की माता ने वीर का वृत्तान्त पूछा तो साले ने कहा—वीर नाम धराने वाले तुम्हारे वीर को चोरो ने मार डाला है। बस, इतना सुनतेही पुत्र वियोग से दुःखी हो माता ने तत्काल प्राण छोड़ दिये बाद में वीर घर पर आया पर अपनी माता की मृत्यु देख उसको वैराग्य पैदा हो गया। एक एक कोटि द्रव्य एक एक स्त्री* को देकर अवशिष्ट द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगा आप निस्पृहीकी भांति सत्यपुरमें जाकर वीर भगवान की भक्ति में सलंग्न हो गये। वहां आठ उपवास किये व चार प्रकार के पोषधकर प्रासुक भोजन करने लगे। रात्री के समय तो स्मशान में जाकर के ध्यान संलग्न करने में होने लगे।

एक दिन सायंकाल के समय वीर, नगर से बाहिर जारहा था कि जगमकल्पतरू मुनि श्रीविमलगणि से उनकी भेंट हो गई। मुनि वर्य श्रीविमलगणि† शत्रुञ्जय जाने के लिये वहां आये थे। वीर ने मुनिराज को सम्मुख देख विनय पूर्वक वदन किया तब गणिजी ने कहा—महानुभाव! मैं तुमको अगविद्या देने की उत्कण्ठा से ही यहां आया हूँ। गणिजी के उक्त वचनो को सुनकर वीर ने अपना अहोभाग्य समझा और वह गणिजी को अपने उपाश्रय मे ले गया व रातभर उनकी सेवा की। गणिजी ने वीर को दीक्षा देकर तीन दिन अङ्ग की विद्या आम्नाय सिखलाई और कहा थारापद्रनगर के ऋषभप्रसाद में अगविद्या ग्रन्थ है जिसको तू धारण करके स्वपरात्मा का कल्याण करना। उतना कह वह विमलगणिजी ने शत्रुञ्जय की ओर पदार्पण किया व कुछ दिनों के पश्चात् अनशन पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग के अतिथि हो गये। मुनि वीर गुर्वादेशानुसार थारापद्रनगर में गया और ग्रन्थ को प्राप्त कर अंगविद्या का अध्ययन किया। पश्चात् तप तपने में शूरवीर मुनिवीर ने पाटण की ओर विहार किया। मार्गमे थीराग्राम के वल्लभीनाथ नाम व्यंतर के वहां आप ठहरे। रात्रि के समय व्यंतरने विकराल हस्ति एवं क्रूर सर्पादि के रूप कर मुनिवीर को उपसर्ग किया पर वीर तो वीर ही थे। वे मेरु की भांति सर्वथा अकम्प रहे। इससे सन्तुष्ट होकर मुनिवीर को व्यन्तर ने नमस्कार किया और कहा—आप को कुछ चाहें मेरे से मांग सकते हैं! मुनिवीर ने जीव रक्षा के लिये कहा जिसको व्यंतर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस समय पाटण में चामुण्ड राजा राज्य करता था। व्यन्तर ने राजा को बुला कर जीव दया के लिये कहा जिस को राजा ने सहर्ष स्वीकार कर वैसा करने का वचन दे दिया। बाद में मुनि वीर अणहिल्लपाटण पधारे वहा बहुत से भव्योको उपदेश देकर उनका उद्धार किया।

पाटण में श्रीवर्द्धमानसूरि विराजमान थे। उन्होंने वीरमुनि की योग्यता देख उनको आचार्य पद प्रदान किया। इसके पश्चात् वल्लभीनाथ व्यन्तर प्रत्यक्ष बैठकर वीर सूरि का व्याख्यान सुनने लगा पर उसकी क्रीड़ामय प्रवृत्ति रुक न सकी। अपनी स्वाभाविक आदत के अनुसार वह मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर क्रीड़ा करने लगा जिससे जन समुदाय में बैचेनी फैलगई। वीरसूरि ने व्यन्तरको उपदेश देकर उसको इस कार्य से रोका और लोगों को सुखी बनाया'

---

*उदस्थेति कोटिमेकां कलत्रेभ्यो प्रदाय सः । गत्वा सत्यपुरे श्रीमद्वीरं [illegible] ॥ १७ ॥

†चारित्रमिव मूर्तिस्थ मथुरायाः समागतम् । स वीरं [illegible] विमलगणिम् ॥ ३६ ॥

गणि [illegible] विद्योपदेशाय [illegible] शत्रुञ्जये [illegible] ॥ ३८ ॥

तदार्थं [illegible] पुनः । थारापद्रपुरे [illegible] ॥ ४१ ॥

चैत्यस्य [illegible] गृहाण च यावदे । [illegible] ॥ ४५ ॥

विमल गणी की अंग विद्या

एक दिन वीरसूरि ने व्यन्तर से पूछा ✣ क्या अष्टापद तीर्थ जाने की तुम्हारी शक्ति है ? व्यन्तन ने कहा—हाँ, अष्टापद जाने की तो मेरी शक्ति है पर वहां के व्यतरों के तप तेज के सम्मुख में ज्यादा ठहर नहीं सकता हूँ । यदि मैं आपको अष्टापद ले जाऊं तो आप एक प्रहर से अधिक वहां ठहर नही सकेंगे । अगर आप अधिक ठहर गये और मैं वहां से लौट आया तो आप वापिस नहीं आसकेंगे । वीरसूरि ने व्यन्तर का कहना स्वीकार कर लिया तब व्यन्तर ने एक धवल वृषभ का रूप बना कर वीर सूरि को अपनी पीठ पर बिठाया । वीरसूरि ने अपना मस्तक वस्त्र से अच्छादित कर लिया, पश्चात् वृषभ आकाश में गमन करता हुआ क्षणभर में अष्टापद तीर्थ पर पहुँच गया । चैत्य के द्वार के पास मुनिको नीचे उतार दिया पर वहां के देवों के चमत्कार को सहन नहीं करने वाले वीर सूरि एक पुत्तलिकाके पीछे छिप कर बैठ गये ।

तीन ठाऊं ऊंचे और एक योजन विस्तीर्ण भरतचक्रवर्ती से करवाये हुए मनोहर चारद्वार एवं वर्ण, अवगाहना युक्त उन चैत्यों में वीरसूरि ने नमस्कार स्तुति कर सब प्रतिमाओं को भाव से प्रणाम किया और बाद में शासन की प्रभावना बढ़ाने के उद्देश्य से देवताओ के द्वारा चढ़ाये हुए पांच सात चावल ले लिये और वृषभ की पीठ पर बैठ कर वापिस चले आये। इन सुगन्धमय चांवलों से सूरिजी का उपाश्रय सुगन्धमय हो गया । वह ऐसा मालूम होने लगा जैसे स्वर्ग भवन हो ।

रात्रि के प्रथम प्रहर में यात्रार्थ गये हुए सूरिजी दूसरे प्रहर की घड़ी रात्रि व्यतीत होने पर वापिस स्वस्थान पर लौट आये ।

जब उपाश्रय अनुपम सुरभि से सुरभित होगया तो प्रातःकाल शिष्यों ने इसका कारण पूछा । आचार्यश्री ने यात्रा का सब हाल यथावत् कह दिया । क्रमशः फैलते २ यह बात संघ को मालूम हुई और संघ के द्वारा राजा को । इस आश्चर्यकारी घटना को सुन कर राजा संघ के साथ सूरिजी के पास आया और यात्रा का हाल पूछने लगा । इस पर आचार्यश्री ने कहा—

बे धउला बे सामला बे रत्तुप्पल वन्न । मरगयवन्ना दुन्नि जिण सोलस कंचन वण्ण ॥ १ ॥
नियनियमाणिहिंकारविय, भरहि जि नयणाणंद ।तेमइं भावीहिं वंदिया ए चउवीस जिणंद ॥ २ ॥

अर्थात्—दो श्वेत, दो श्याम, दो हरे, दो लाल और सोलह स्वर्णमय वर्णवाले अपने २ वर्ण प्रमाण वाले चौबीस तीर्थंकरों को मैंने भाव युक्त वंदन किया है ।

राजा ने कहा—ये तो आपके इष्ट देव हैं अतः आप इनका सब वृत्तान्त कह सकते हो पर जन—

✣ उवाच प्रभुरानन्दात् तवसामर्थ्यं मस्ति, किम्, अष्टापद चले गन्तुं. श्री जैन मघनोन्नते ॥११४॥
स,देव.प्राह शान्किनों गन्तुं नावस्यितो पुनः, तत्र सन्ति यतः सुरे । व्यन्तरेन्द्रा महाबलाः ॥११५॥
अतस्यातु न शक्नोमि तत्तेजः सोढुमक्षमः । याममेकं स्ववस्थास्ये चल चेत् कौतुकं तव ॥११६॥

× × × × ×

राजाह स्वेष्ट देवानां स्वरूप कथने वग । नास्ति प्रतितिरस्माक मन्यात् किमपि कथ्यताम् ॥१३१॥
अश्वत्तान् दर्शयमास निः सामान्य गुणोदयान् । वर्णैः सौरभ विस्तरैर पूर्वान् मानव मनें ॥१३२॥
ते द्वादशागु आयाम.अंगुलं पिण्ड विस्तरे । अवेष्टयंन्त सुवर्णेन महीपालेन् ते तत. ॥१३३॥
एवं तुरुष्क संगस्य तेऽमुत्रंतदुपाश्रये अपूज्यन्त च सद्भेनष्टापद प्रति विवत् ॥१३४॥
एवं चातिशयैः कावक् सामान्य जन दुष्करैः । श्रीमान् वीरगणि-सूरिर्विश्व पूज्यस्तदाऽभवत् ॥१३५॥

समाज के विश्वास योग्य किसी पदार्थ से खातरी करवाइये। इस पर सूरिजी ने वहां से लाये हुए देवताओं के चावलों को जो बारह अंगुल लम्बे और एक अंगुल के जाड़े थे—बतलाये। इससे राजा एवं सकल श्रीसंघ को विश्वास हो गया कि सूरिजी ने अष्टापद तीर्थ की यात्रा अवश्य की है।

एक दिन राजाने अपने मन्त्री वीर को कहा—वीर! मैं न्याय से राज्य चलाता हूँ, पण्डितों को आश्रय देता हूँ, और वचन सिद्ध वीर सूरि जैसे तुम्हारे गुरू के होने पर भी एक चिन्ता मुझे सन्तप्तकर रही है। मन्त्री ने कहा-राजन्! मैं आपका सेवक हूँ, आप जो हो मुझे कहे, मैं उसका उचित उपाय करूंगा। राजा ने कहा—मंत्री! इतनी रानियों के होने पर भी मेरे पुत्र नहीं, इसी की मुझे चिन्ता है। यह सुन कर मन्त्री ने वीरसूरि को कहा और वीरसूरि ने वासक्षेप दिया जिससे राजा के वल्लभ नाम का पुत्र हुआ।

एक समय वीरसूरि अष्टादशसति देश के डंवराणी ग्राम में पधारे। वहां उपाश्रय में ठहर कर सायंकाल को श्मशान में ध्यान के लिये जाने लगे तो एक राजपुत्र ने सूरिजी से कहा—भगवन्! यहां सर्पों का बहुत भय है अतः, आप वहां न पधारें। सूरिजी ने कहा—भव्य! मुनि तो जंगल में ही ध्यान करते हैं। इस पर राजपुत्र अपने मकान पर जाकर चिन्ता मग्न हो गया।

उसी समय राजपुत्र के जम्बुफल की भेंट आई। उसने एक जम्बु खाने के लिये लिया पर उसमे सुक्ष्म जन्तु दृष्टिगोचर हुए। जीवों को देख कर वे विचार करने लगे कि दिन में भी इसमे इतने जीव मालूम होते हैं, तब रात्रि भोजन करने वालों का क्या हाल होता होगा? वह तत्काल ब्राह्मणों के पास जाकर उसका प्रायश्चित मांगने लगा तो ब्राह्मणों ने कहा—आप स्वर्ण जन्तु बना कर ब्राह्मणों को दान करें जिससे पाप स्वयमेव नष्ट हो जायगा। इस प्रकार सुन कर राजपुत्र ने सोचा कि यह कैसा धर्म और यह कैसा प्रायश्चित? एक जन्तु तो मर गया फिर दूसरा स्वर्ण जन्तु बना कर इनकी उदर पूर्ति करने से आत्म शुद्ध होना नितान्त असम्भव है। राजपुत्र की श्रद्धा उन लोभी ब्राह्मणो से उतर गई। पश्चात् उसने तत्काल जैन मुनि को अपना सब हाल कहा तो मुनियों ने उसको धर्म का स्वरूप इस तरह समझाया कि उसने तत्काल ही भगवती जैन दीक्षा स्वीकार कर ली।

आचार्य वीरसूरि ने जैनशासन की बहुत ही प्रभावना की। अन्त में आपने अपने पट्ट पर श्रीमद्र मुनि को आरूढ़ कर वि० सं० ९९१ में अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्गारोहण किया। आपश्री का जन्म वि० सं० ९३८ मे हुआ और दीक्षा ९८० में, स्वर्गवास वि० स० ९९१ में हुआ।

इस प्रकार जैन शासन के प्रभावक आचार्यों में वीरसूरि भी मन्त्र-प्रभावक आचार्य हुए। ऐसे आचार्यश्री के चरण कमलों मे बारम्बार नमस्कार हो।

आचार्य श्री वीरसूरिः (२)

ऊपर आचार्य श्री सिद्धसूरी की स्पर्धा मे वीरसूरि का उल्लेख किया गया है। आप भावड़ा गच्छ के आचार्य थे। आपके पूर्व आचार्य भावदेवसूरि के नाम से इस गच्छ का नाम भावड़ा गच्छ हुआ था। इनके पूर्व के आचार्य षंडिलगच्छ के नाम से मशहूर थे। भावड़ा गच्छ के संस्थापक तीसरे श्री भावदेवसूरि ने स्वरचित पार्श्वनाथ चरित्र में अपने को कालकाचार्य की सन्तान बतलाया है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में देवेन्द्रवन्द्य कालकाचार्य के वंश में षंडिलगच्छ की उत्पत्ति होने का लिखा है। इस गच्छ के कई आचार्य अपने

को चन्द्रकुलोत्पन्न भी मानते हैं। जब चंद्रकुल कोटिकगण की शाखा में हुआ है तब देवेन्द्रवंद्य कालकाचार्य कोटिक गण से बिलकुल अलग हैं। सुमति नागल की चौपाई में ब्रह्मर्षि नाम के मुनि ने लिखा है कि षंडिलगच्छ के कालकाचार्य वीरात् ९९३ वर्ष में हुए हैं। यदि यह सत्य है तो वीर संवत् ९९३ के कालकाचार्य चंद्रकुल में हुए हैं। अतः षंडिलगच्छ विक्रम की छट्ठी शताब्दी जितना पुराना गच्छ कहा जा सकता है। इसी षंडिलगच्छ में भावदेवसूरि हुए और उनके नाम से भावहड़ा गच्छ प्रचलित हुआ। जैसे उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ में पांच नाम, पल्लीवालगच्छ में सात नाम, वायटगच्छ में तीन नाम से गुरु परम्परावली चली आ रही है वैसे भावहड़ागच्छ में भी भावदेवसूरि, विजयसिंहसूरि वीरसूरि और जिनदेवसूरि इन चार नाम से गुरु परम्परा चली आ रही है। भावहड़ागच्छ में वीरसूरि नामकेकई आचार्यहो गए हैं पर प्रस्तुत वीरसूरि पाटण के राजा सिद्धराज (जयसिंह) के समसामयिक वीरसूरिहुए इनका ही यहाँ वर्णन है।

प्रस्तुत वीरसूरि महा प्रतिभाशाली आचार्य हुए थे। योग, समाधि, ध्यान, या मंत्र विद्या तो आपके हस्तामलक की भांति प्रत्यक्ष सिद्ध थी। शास्त्रार्थ में वादियों को पराजित करने में कुशल एवं सिद्धहस्त थे। विजय श्री सदैव आपके ही कण्ठाभरण बनती थी। आप चैत्यवासियों के अग्रगण्य नेता और सिद्धराज जयसिंह की राज सभा के एक सम्मानित पण्डित थे और हमेशा राजा के सहवास में रहते थे पर कहा है कि—

"अति परिचायदवज्ञा सतत गमनादनादरो भवति। मलयेभिल्लपुरंध्री चन्दन तरु कण्ठानिंधनंकुरुते॥"

इस नीति के अनुसार राजा जयसिंह ने राज्यमद के स्वाभाविक अहंभाव से या उपहास की अनुचित चञ्चलता के आवेश में मुस्कराहट के साथ कह दिया कि—

"मित्र सूरिजी! आपका इतना मान, सन्मान, प्रतिष्ठा एवं आदर मेरे राज्याश्रय से ही होता है। यदि आप पाटण को छोड़ कर अन्य प्रान्त में चले जावें तो आपका एक निराधार भिक्षु जितना ही मान होगा" राजा के उक्त व्यङ्गपूर्ण वचनों को श्रवण कर मुख के आवेश को कृत्रिम हंसी में बदलते हुए सूरिजी ने कहा—इतने दिवस पर्यन्त मैं आपकी अनुमति की ही प्रतीक्षा कर रहा था, आज विना प्रयत्न मुझे अनुमति मिल गई अतः मैं अब शीघ्र ही अन्यत्र प्रस्थान कर दूंगा। राजा को अपना उक्त आन्तरिकाभिप्राय बतलाकर वीरसूरि शीघ्र ही राज सभा से बिदा हो अपने उपाश्रय में आ गये।

इधर राजा को अपने मुख से कहे हुए वचनों का रह २ कर पश्चाताप होने लगा। वह सोचने लगा कि—ये अन्य पण्डितों के समान लोभी या मिथ्याभिमान के पूतले नहीं है किन्तु परम निस्पृही महात्मा साधु हैं। मेरे अज्ञानता पूर्ण वचनों की अक्षम्य धृष्टता के कारण रुष्ट हो कर सूरिजी मेरे राज्य को छोड़ कर अन्यत्र चले गये तो अच्छा नहीं होगा अतः राजाने अपने नगर के चारों ओर दरवाजों पर आचार्यश्री को रोकने के लिये योग्य सिपाहियों को बैठा दिये। सूरिजी अपने योग बल से व आकाशगामिनी* विद्या की शक्ति से पाटण छोड़ पाली नगर में (मारवाड़) चले आये। दूसरे दिन राजा ने सूरिजी की खबर करवाई तो वे नहीं मिले। इधर पाली के ब्राह्मणों द्वारा मय तिथि, वार, नक्षत्र के आचार्यश्री के पाली में पदार्पण करने की सूचना राजा को मिल गई। राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि सूरिजी एक ही दिन में ऐसे कठोर नियन्त्रण से निकल कर पाली जैसे सुदूर मरुधर प्रान्तीय क्षेत्र में कैसे चले गये? राजा ने अपनी अज्ञानता पर बड़ा

*—अध्यात्म योगतः प्राण निरोधाद् गगना ध्वना। विद्या बलाच्च ते प्रापुः पुरीपल्लीति सञ्ज्ञया: १५

ही पश्चाताप किया और अपने प्रधान पुरुषो को सम्मान पूर्वक आचार्यश्री को पुन पाटण में लाने के लिये भेजे। प्रधान पुरुषों ने वहाँ जाकर राजा की ओर से क्षमा याचना करते हुए पाटण मे पधारने की प्रार्थना की तो प्रत्युत्तर में वीरसूरिजी ने संतोष देते हुए कहा—अभी तो मै किन्हीं कारणो से आ नही सकता हूँ पर गुर्जर प्रान्त की ओर विहार करने पर पाटण की स्पर्शन अवश्य ही करूंगा। आचार्यश्री के उक्त प्रत्युत्तर को श्रवण कर प्रधान पुरुष पुनः वापिस लौट कर पाटण आये और राजा को सफल वृत्तांत कह सुनाया। राजा ने अपने गर्व एव अज्ञानता पूर्ण उपहास का आन्तरिक हृदय से पश्चाताप किया।

श्रीवीरसूरि ने पाली से महाबौद्धपुर की ओर पदार्पण किया और तत्रस्थित बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित† कर जिनधर्म की सुयश पताका फहरायी। वहाँ से ग्वालियर स्टेट में आये, वहाँ के राजा ने सूरिजी के प्रकाण्ड पाण्डित्य का बहुत ही सम्मान किया। सूरिजी ने अपनी अपूर्व विद्वता से वहाँ के कई वादियों को परास्त किया जिससे प्रसन्न हो राजा ने छत्र‡, चामर आदि राजचिन्ह दिये। वहाँ से सूरिजी नागपुर को पधारे। नागपुर श्रीसंघ ने आचार्यश्री का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

इधर राजा जयसिंह की राजसभा वीराचार्य के अभाव में एकदम शून्यवत् दृष्टि गोचर होने लगी अतः राजा के अपने प्रधान पुरुषों को नागपुर भेजे और उन्होंने राजा की ओर से प्रार्थना की तो वीरसूरि ने ग्वालियर नरेश से प्राप्त राज चिह्नो को उनके साथ राजा सिद्धराज जयसिंह के पास भिजवा दिये। (इसका तात्पर्य शायद राजा को यह मालूम कराना होगा कि जैनाचार्य तुम्हारी सभा में ही नहीं अपितु जहाँ जाते हैं वहाँ ही आदर पाते हैं) कालान्तर में वीरसूरिजी ने क्रमश. गुर्जर प्रान्तीय चारूपनगर में पदार्पण किया। राजा जयसिंह भी सूरिजी के दर्शनार्थ चारूप पर्यन्त सम्मुख आया। सूरिजी के चरणों मे मस्तक नमाकर अपने अपराध की क्षमा याचना व पाटण पधारने की प्रार्थना करने लगा। आचार्यश्री ने राजा की प्रार्थना को मान देकर पाटण में पदार्पण किया तो राजा ने इन्द्रवत् अपूर्वोत्साह से सूरिजी का पुर प्रवेश महोत्सव किया। पश्चात् राजा अपनेअपराध को विस्मृत करने के लिये प्रार्थना करने लगा—प्रभो! मैंने तो केवल उपहास मात्र में ही आपश्री को उक्त अकथनीय वचन कहे थे जिसके परिणाम स्वरूप मुझे आपश्री की सेवा से इतने समय तक वञ्चित रहना पड़ा। गुरुदेव! मै महा पापी एव अज्ञानी हूँ। आप उदार हृदय से मेरे इस अपराध के लिये क्षमा प्रदान करें।

एकबार वादीसिंह नाम का सांख्य दार्शनिकवादी पाटण में आया। उसने पाटण में यह उद्घोषणा की कि कोई वादी मेरे साथ शास्त्रार्थ करना चाहे तो मैदान में आकर मेरे से शास्त्रार्थ करे। किसी ने भी वादी के सामने आने का साहस नहीं किया अतः राजा को बहुत अफसोस हुआ। वह तत्काल वेश परिवर्तन कर वीरसूरि के कला गुरु गोविन्दसूरि के पास गया। सांख्याचार्य से धर्म विवाद करने की प्रार्थना की पर गोविन्दसूरि ने कहा—इसमे क्या? हमारा वीराचार्य ही उसको परास्त कर देगा। सूरि के प्रभावोत्पादक वचनो को सुनकर राजा ने प्रातः काल सांख्यार्य को अपनी राजसभा में आमन्त्रित किया पर गर्व के आवेश में आकर उसने राजा से कहलाया—यदि तुमको हमारा वचन विलास देखना हो तो तुम तुम्हारे पण्डितों

†—महाबोधपुरे बौद्धान् वादे जित्वा बहूनथ। गोपगिरौ नागरञ्जन् गतः नरेन्द्र पूजितः ३१

‡—परप्रवादिनस्तेन विजित्य... च नृपतिः। छत्र चामर मुख्यानि राज चिन्हानि ददौ ३१ प्र० च०

को साथ में लेकर हमारे मकान पर आओ और भूमि पर बैठकर हमारा वचन कौतुक देखो। राजा ने भी उसके मान को गारत करने के लिये उसकी इस अनुचित शर्त को स्वीकार करली। प्रातःकाल शिष्य समुदाय सहित गोविंदाचार्य को साथ में लेकर राजा सांख्याचार्य के मकान पर गया। आचार्यश्री अपनी कम्बली बिछाकर भूमि पर बैठ गये। पीछे वीरसूरी का आसन रक्खा। राजा स्वयं सम्मुख भूमि पर बैठ गया पर अभिमान का पुतला सांख्याचार्य अपने उच्च आसन पर ही बैठ रहा। आगत श्रमण समुदाय को देख उसने सदर्प पूछा—मेरे साथ विवाद करने को कौन तय्यार है ? गोविंदाचार्य ने कहा—मैं और मेरे बड़े शिष्यों के साथ तो तुम वाद करने काबिल नहीं हो पर मेरा लघु शिष्य ही तुम्हारे लिये पर्याप्त होगा। बस तत्काल धर्म विवाद प्रारम्भ कर दिया। बेचारा सांख्याचार्य वादीगज केशरी वीरसूरि के सम्मुख नहीं ठहर सका। लीलामात्र में ही वह पराजित हो अपना शाम मुंह करके बैठ गया।

राजाने * संख्याचार्य का गला पकड़ कर आसन से नीचे उतार दिया। जब कि वाद करने की योग्यता ही तुममें नहीं तो फिर यह अभिमान का उच्चतम आसन क्यों ? राजा उसे शिक्षा देना चाहता था पर गोविन्दाचार्य ने दयापूर्वक उसे छुड़वा दिया।

इसी प्रकार सिद्धराज ने एक वार मालवा पर चढ़ाई की। मार्ग में वीराचार्य का चैत्य आया। राजा ने वंदन किया। वीराचार्यने आशीर्वादि के रूप में एक काव्य बना कर दिया। जिससे राजा की विजय हुई।

एक बार कमलकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य को भी पाटण की राज सभा में परास्त किया इत्यादि।

श्रीवीराचार्य का जीवन वृत्त अवर्णनीय है पर यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे प्रभाविक पुरुष होने पर भी कदर्पी के कार्य में विघ्न क्यों किया ? इसके दो कारण होसकते हैं या तो अपनी मन्त्र शक्ति बतलानी हो या कलिकाल ने इसके लिये प्रेरणा की हो। कुछ भी हो उस समय के चैत्यवासियों में ऐसे अनेक प्रतिभाशाली आचार्य हुए जिन्होने जैनधर्म को राष्ट्रीय धर्म बनाने का सफल प्रयत्न किया। अपनी प्रखर प्रतिभा से जैनधर्म की सर्वत्र प्रभावना एवं उन्नति की।

आचार्य बप्पभट्टि सूरिः

डुवाविथि नामक ग्राम में बप्पनामका गृहस्थ ब्राह्मण रहता था। उसके भट्टी नामकी भार्या थी और सूरपाल नामका एक पुत्र था। जब सूरपाल ५-६ वर्ष की वय का हुआ तो एकदिन अपने पिता से रूष्ट होकर घर से निकल कर मोढ़ेर ग्राम में चला गया। उस समय गुर्जर प्रान्तमें पाटल पुर नामका एक अच्छा आबाद नगर था वहां पर मोढ़ेर गच्छीय सिद्धसेन नामक आचार्य रहते थे।

एक दिन आचार्यश्री ने स्वप्न में महातेजस्वी बालकेशरी को फलांग मार कर चैत्य शिखर के अग्रभाग पर आरूढ़ होते हुए को देखा। प्रातकाल आपने विचार किया और अन्य मुनियों को अपने स्वप्न का भावीफल सुनाया कि इस स्वप्न से वादी रूप हस्तियों के गण्डस्थल को भेद देने वाले मुनियों में अग्रगण्य शिष्य की प्राप्ति होगी. इत्यादि।

जिस दिन सूरपाल मोढ़ेरे में आया था। उसी दिन सिद्धसेनसूरि भि महावीर प्रभुकी यात्रार्थ मोढ़ेरे में पधारे थे। जिस समय सूरिजी मन्दिर में गये उस समय सूरपाल भी वहीं पर बैठा हुआ था।

*—न अन्येऽ हमिति प्राह वादि सिंहस्ततो नृपः। स्वयं बाहे वि धृत्यामुत्पातयामास भूतले। ३१

सूरिजीने बालक की भव्याकृति को देखकर उसकी इच्छा से उसको अपने पास रख लिया और ज्ञानाभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया। सूरपाल की बुद्धि इतनी कुशाग्रह थी कि वह किसी भी श्लोक को एक बार पढ़लेता तो उसको कण्ठस्थ हो जाता था वह एक दिन मे एक हजार श्लोक बड़ी ही आसानी से कण्ठस्थ करलेता था। भला ! ऐसे होनहार बालक को शिष्य बनाने की किसकी इच्छा न हो ? तदनुसार आचार्यश्री सूरपाल को दीक्षा देने की गर्ज से उसको लेकर उसके ग्राम डुवातिथि आये और सूरपाल के माता पिता को उपदेश दिया कि यदि तुम्हारा पुत्र दीक्षा अङ्गीकार करेगा तो निश्चिय ही शासन का उद्धार करने वाला एक महाप्रभावक पुरुष होगा। इस पर पहिले तो बप्प और भट्टि ने आनाकानी की पर बाद में इस दीक्षा के साथ अपना नाम चिरस्थायी रखने की शर्त पर वे मञ्जूर हो गये। बस, आचार्यश्री ने भी सूरपाल के माता पिताओं की अनुमति से मोढेरा में वि० सं० ८०७ में वैशाख शुक्ला तृतीय कों सूरपाल को दीक्षा देकर उसका नाम मुनि भद्रकीर्ति रखदिया पर उपरोक्त शर्तानुसार प्रसिद्ध नाम बप्पभट्टि नाम का ही व्यवहार किया जाता था। दीक्षानन्तर गुरु ने बप्पभट्टि को योग्य समझ कर उनको सरस्वती का मन्त्र दिया बप्पभट्ट ने उसका निडरता पूर्वक आराधन किया जिससे देवी सरस्वती ने प्रसन्न होकर वरदान दिया।

मुनि वप्पभट्टि एक समय स्थण्डिल भूमिका गये थे। वापिस लौटते समय वर्षा आनेलगी अतः वे एक देवल में ठहर गये। इधर से एक भव्याकृतिवान् नवयुवक आ निकला। मुनिवप्पभट्टि को देखकर उसका साहस उनके प्रति अनुराग हो गया। वह वहीं पर ठहर गया। उसकी दृष्टि उस देवल के एक श्याम पत्थर पर खुदी हुई प्रशस्ति पर पड़ी जिसको आगन्तुक ने ध्यान पूर्वक पढ़ी और मुनि वप्पभट्टि को उसका अर्थ समझाने के लिये विनय पूर्वक प्रार्थना की। मुनिने उसकी आन्तरिक इच्छा को जान कर उसका स्पष्ट अर्थ समझाया जिससे आगन्तुक पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वर्षा बन्द होने के पश्चात् दोनों चलकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर–मन्दिर में आये। सूरिजी ने मुनि के साथ आये हुए नवयुवक को देखकर उसका नाम पूछा। उसने मुंह से न कह कर वहीं अक्षरो में लिख दिया। नाम को पढ़कर सूरिजी को स्मरण हो गया कि–रामसेन नगर के पास जंगल में पीलुड़ी के झाड़ की एक डाल के वस्त्र की झोली में छमास का बच्चा झूल रहा था और बच्चे की माता पीलू चून कर खा रही थी जिसको पूछने पर मालूम हुआ था कि कन्नोज के राजा यशो-वर्मा की एक राणी के षड्यन्त्र से दूसरी रानी निकाल दी गई थी और वह ही इधर उधर परिभ्रमन कर अपने बच्चे का व अपना जीवन निर्वाह कर रही थी जिसका मैंने मोढ़ेरा के एक सद्गृहस्थान के यहां समुचित प्रबन्ध करवाया था उसीका बच्चा आम है। कुछ ही समय के पश्चात वहाँ से विहार कर देने के कारण इस व्यय में आचार्यश्री उसे पहले नहीं पहचान सके थे।

अब तो मुनि वप्पभट्टि के साथ आमकुमार का स्नेह और भी अधिक बढ़ता गया। उसको भी व्याकरण, न्याय, धर्म व राजनीति सम्बन्धी विद्याओं का अध्ययन करवाया जाने लगा। इधर पुण्यानुयोग से षड्-यन्त्र करने वाली राजा यशोवर्मा की रानी मर गई। राजाने अपने विश्वस्त मन्त्री को भेजकर मोढेरा से रानी और बच्चे को बुलवाया व अपनी मृत्यु के पूर्व ही राजकुमार आम को राज्य दे दिया।

जब राज कुमार आम को राज्य प्राप्त हुआ तो आपने राज्य के प्रधान पुरुषों को सूरीश्वरजी के पास में भेजकर वप्पभट्टि मुनि को कन्नोज में बुलवाया। आचार्यसिद्धसेनसूरि ने भी राजा आम का आग्रह देख, मुनिवप्पभट्टि को जाने की आज्ञा देदी। क्रमशः मुनिश्री के कन्नोज पधारने से राजा आम को अत्यन्त हर्ष

हुआ। मुनिश्री के स्वागत के लिये बड़ी २ तैय्यारियां करने लगा। जिसके राज्य में १४०० हस्ति १४०० रथ २०००००अश्व और करोड़ों की संख्या में पैदल सिपाही हों वहां स्वागत-समारोह के विषय में कहना ही क्या ? उत्साहित नागरिकों के साथ राजा, बप्पभट्टि मुनि के सम्मुख गया और विनय पूर्वक नमस्कार कर हस्ति पर आरूढ़ होने के लिये प्रार्थना की। इस पर मुनिजी ने कहा हे राजन् ! संसार त्यागियो के लिये गज सवारी करना उचित नहीं है। इस पर राजाने कहा हे महामतिवन्त ! मैंने पूर्व आपके सम्मुख प्रतिज्ञा की थी कि मुझे राज्य मिलेगा तो मैं आपको अर्पण कर दूंगा। जब राज्य का मुख्य चिन्ह हस्ति होता है तो आपको इस पर सवारी कर मेरे मनोरथ को पूर्ण करना चाहिये। इस पर मुनिजी ने बहुत ही आना-कानी की पर राजा ने भक्ति वसात् [1] हस्ति पर बैठा ही दिया और कोटिसंख्यक मानव मेदिनी के बीच सूरिजी का नगर प्रवेशोत्सव करवाया। उस समय का दृश्य ऐसा मालूम होता था कि मानो मोह शत्रु का पराजय करने के लिये एक महान् पराक्रमी योद्धा छत्र एवं चार चंवरों की फटकारो से उत्साह पूर्वक समराङ्गण में जा रहा हो। जब निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पश्चात् राजसभा में मुनिजी पधारे तब राजा ने मुनि बप्पभट्टि को सिंहासन पर बैठने के लिये आमन्त्रित किया। मुनिजी ने कहा-जब तक मैं आचार्य नहीं बनूं तब तक सिंहासन पर बैठ नहीं सकता हूँ। इस पर राजा ने अपने प्रमुख पुरुषों को मुनिश्री के साथ गुर्जर प्रान्त में भेजे और आचार्यसिद्धसेनसूरि को विज्ञप्ति कर मुनि बप्पभट्टि को वि० सं० ८११ के चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन सूरिपद दिलवाया। सूरिपद अर्पण करते समय सूरिजी ने उपदेश देते हुए कहा-बप्पभट्टि ! मैंने तुमको योग्य समझ कर सूरिपद दिया परन्तु एक तो जवानी [2] दूसरा राज-सन्मान; इससे संयम व्रत की यथावत् रक्षा करते रहना तेरा प्रमुख कर्तव्य है, इस पर बप्पभट्टि ने कहा—मैं प्रतिज्ञा [3] करता हूँ कि भक्त जनों के वहां से कोई भी विगय नहीं लूंगा और आपश्री की शिक्षा को हरदम याद रक्खूंगा।

सूरिपद प्राप्त्यनन्तर बप्पभट्टिसूरि ने पुनः कन्नौज में पदार्पण किया। राजाने पुनः गज सवारी [4] और महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया और अपने राजप्रासाद में लेजाकर सिंहासन [5] के ऊपर बिठलाया।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि राजा आम को हमेशा धर्मोपदेश देते रहे। फल स्वरूप राजा आम ने कन्नौज नगर में १०१ हाथ ऊंचा जिनमन्दिर बनवा कर अठारह भार [6] स्वर्ण की प्रतिमा करवाई। आचार्य बप्प-भट्टिसूरि के हाथों से प्रतिष्ठा करवाकर शुभमुहूर्त में प्रतिमा की स्थापना की। इसके सिवाय ग्वालियर नगर में २३ हाथ ऊंचा मन्दिर बनवा कर लेपमय प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा करवाई। कहा जाता है कि इस चैत्य के एक मण्डप में एक करोड़ (लक्ष) [7] द्रव्य व्यय हुआ।

इस प्रकार आमराजा के राज्य में सूरिजी का बढ़ता हुआ प्रभाव देख करके जैन समाज के आनन्द एवं उत्साह का पार नहीं रहा पर विप्र समुदाय को उतनी उद्विग्नता स्पर्धा एवं ईर्ष्या हुई जितना जिनधर्मानुयायियों को हर्ष। बस ईर्ष्याग्नि से प्रज्वलित ब्राह्मण वर्ग अपनी ओर से कब कमी रखने वाले थे, उन्होंने येनकेनप्रकारेण राजा का कान भरना शुरु किया जिससे राजा को सूरिजी के प्रति कुछ उदासीनता हो गई। राजा ने अपनी ओर से उनके सन्मान में कमी करदी जिससे स्वर्ण सिंहासन के बजाय साधारण आसन देना प्रारम्भ कर दिया। विचक्षण सूरिजी ने जान लिया कि सब ईर्ष्यालु ब्राह्मणों की असहिष्णुता का ही परिणाम है अतः उन्होंने राजा आम को इस प्रकार जोरदार शब्दों में समझाया कि राजा ने अपनी भूल स्वीकार कर सूरिजी का पुनः यथा वत् सन्मान करना प्रारम्भ कर दिया।

कालान्तर में सूरिजी की कविता में शृंगार रसके आधिक्य को देख कर राजा के दिल में पुनः कुछ मलीनता पैदा हो गई और उसने सूरिजी की ओर पूर्वापेक्षा कुछ उपेक्षा वृत्ति धारण कर ली। राजा की इस अविवेक पूर्ण स्थिति को देख विना किसी को कहे सूरिजी ने भी विहार कर दिया। जब निर्दिष्ट समय के अतिक्रमण होने पर भी सूरिजी राज सभा में नहीं आये तो राजा ने तत्क्षण उनकी खबर मंगवाई पर कुछ भी उनको पता न लग सका। सूरिजी ने जाते हुए नगर के द्वार पर एक काव्य लिखा था जिसके आधार पर यह अनुमान किया गया था कि वे विहार करके अन्यत्र चले गये हैं। काव्य निम्न था—

यामः स्वस्तितवास्तु रोहणगिरे मत्त स्थिति प्रच्युता। वर्तिष्यन्त इमेकथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैव कृथाः॥
श्रीमँस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्ध प्रतिष्ठास्तदा। ते शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति नः॥"

अर्थात्—हम तो जाते हैं पर रोहणाचल पर्वत के समान हे राजन्! तेरा कल्याण हो। ये मेरे से विलग हुए कैसे अपनी तथावत् स्थिति रख सकेंगे? इसका स्वप्न में भी विचार मत कर। मणि रूप हमने जो तेरे सहवास से प्रतिष्ठा प्राप्त की है तो शृंगार परायण राजा हमको मस्तक पर धारण करेंगे।

इधर सूरिजी विहार करते हुए गौड़देश की लक्ष्मणावती नगरी में पधार गये वहां वाक्पतिराज नामक विद्वान से उनकी भेंट हुई। उसने सूरिजी को परमयोग्य जान करके उस नगरी के राजा धर्म से उनका परिचय करवाया। इस पर राजा धर्म ने कहा कि मेरी ओर से सूरिजी से यह प्रार्थना है कि जब तक राजा आम खुद आपकी विनती करने को यहां न आवे तब तक आप किसी भी हालत में कन्नौज नहीं पधारे। इसका दूसरा कारण यह भी था कि कन्नौज के राजा आम और लक्ष्मणावती नरेश धर्म के किसी एक बात के कारण परस्पर वैमनस्य था अतः राजा धर्म सूरिजी को सम्मान पूर्वक अपने राज्य में रखे और आमराजा के बुलाने पर सूरिजी सहसा कन्नौज चले जाय इसमें धर्मराज अपना अपमान समझता था, खैर! पं० वाक्पतिराजा ने जाकर सूरिजी से राजा कथित सब वृतान्त निवेदन किया जिसको सूरिजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। फिर तो था ही क्या? राजाधर्म ने सूरिजी का बहुत सत्कार पूर्वक नगर प्रवेश करवाया सूरिजी ने भी राजादि को राज सभा में हमेशा धर्मोपदेश देकर धर्म की ओर प्रभावित करते रहे।

इधर आचार्यश्री का पता न लगने से राजाआम बहुत ही विलाप करने लगा। एक दिन बाहिर बगीचे में जाते हुए राजा ने नकुल के द्वारा मारे हुए एक भयंकर सर्प को देखा। बराबर निरीक्षण करते हुए सर्प के मस्तक में एक मणि दृष्टि गोचर हुई। निर्भीकता पूर्वक मुख दबा कर मणि लेकर राजा स्वस्थान आया और विद्वानों के समक्ष एक श्लोक का पूर्वार्द्ध बोला

'शस्त्र शास्त्र कृषिर्विद्या अन्यो यो येन जीवति'

"अर्थात्-शस्त्र, शास्त्र, कृषि और विद्या तथा अन्य जो जिसके आधार पर जी सके"

राजा के इस पूर्वार्द्ध की मनोऽनुकूल पूर्ति राज सभा के पण्डितों में से कोई भी नहीं कर सका तब राजा को बप्पभट्टिसूरि की विद्वत्ता का स्मरण हो आया। वह विचारने लगा—चन्द्र के समक्ष खद्योत व हाथीके समक्ष गर्दभके समान बप्पभट्टिसूरि के समक्ष ये पण्डित हैं। बस, राजा ने घोषणा करवादी कि जो मेरे अभिप्रायपूर्वक इस समस्या की पूर्ति करेगा वह एकलक्ष स्वर्णमुद्रा प्राप्ति का अधिकारी होगा। उक्त घोषणा को सुनकर बप्पभट्टिसूरि का पता लगा कर एक जुआरी श्लोकार्द्ध के साथ लक्ष्मणावती नगरी को

गया। सूरिजी को सब हाल कहा ? आचार्यश्री ने बिना किसी प्रयत्न के तत्काल उसकी पूर्ति करते हुए कहा-

" सुगृहीतं हि कर्तव्यं कृष्णसर्पमुखं यथा "

अर्थात:—कृष्ण सर्प के मुख के समान सब अच्छी तरह से ग्रहण करना चाहिये।

बस, उत्तरार्द्ध लेकर जुआरी राजा के पास आया। राजा ने उचित इनाम देकर उसे सन्तुष्ट किया और बप्पभट्टिसूरि का पता लगने से हर्ष मनाया।

एक बार राजा फिरने के लिये बाहिर गया। वहां पर एक मृत मुसाफिर उनके दृष्टि गोचर हुआ। वहां वृक्ष की शाखा पर जल-बिन्दूओं का झलकता हुआ एक जलपात्र भी झलकता था अतः राजाने इस प्रकार पूर्वार्द्ध लिख डाला—

'तइया मह निग्गमणे पियाइ थोरं सुएहिजं रुन्नं,

उस वख्त वाहिर निकलते हुए प्रियजन (पात्र) आंसू लाकर रोने लगे। पूर्व वत् इस समस्या की पूर्ति भी कोई नहीं करसका तब वह जुँआरी पुनः बप्पभट्टिसूरि के पास गया और सूरिजी के सामने समस्या रखी। आचार्यश्री ने त्तकाल उत्तरार्द्ध कहा—

"करवंत्ति विंदुनिवदुग्गं गिहेण तं अज्ज संभरिअं"

अर्थात्— आज जलपात्र के बिन्दुओं को अपना घर याद आया है, इत्यादि। जुआरी पुनः राजा के पास आया और राजा ने पुरस्कार देकर उसे बिदा किया। अब तो आम से रहा नहीं गया। पता लगते ही रांजा आम ने अपने विनंति के लिये प्रधान पुरुषों को सूरिजी के पास भेजे पर सूरिजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं प्रतिज्ञावद्ध हूं अतः जब तक राजाआम स्वयं यहां पर नहीं आवे तब तक मैं भी वहां पर नहीं आसकता हूं। प्रधान वहां से लौट कर राजा आम के पास आये और सकल वृत्तान्त कह सुनाया।

राजाआम को सूरिजी के दर्शनों की इतना उत्कण्ठा लगी कि वह तत्काल ही ऊंट पर सवार होकर लक्षमणावती की ओर रवाना होगया। जब चलते २ गोदावरी के किनारे पर एक ग्राम आया तो राजा ने रात्रि के समय एक देवी के मन्दिर में विश्राम लिया। रात्रि में देवी राजा के पास आई और राजा के रूप पर मुग्ध हो उसके साथ भोग विलास किया। कहा है कि पुन्यवान जीव को मनुष्य तो क्या पर देवता भी मिल जाते हैं। प्रातः काल होते ही राजा देवी को बिना पूछे ही रवाना होगया और क्रमशः चल कर बप्पभट्टिसूरि की चरण सेवा में यथा समय उपस्थित हुआ। गुरुदेव के दर्शन से हर्षित हृदय से राजा आम ने धर्म सम्बन्धी वार्तालाप कर रात्रि निर्गमन की।

प्रातः काल ठीक समय पर सूरिजी राज सभा में जाने को तैय्यार हुए। राजा आम भी थेगीदार (पान तम्बोल देने वाले) का रूप बनाकर सूरिजी के साथ राज सभा में गया। वहां समुचित आसन पर बैठने के पश्चात् सूरिजी ने राजा धर्म को राजा आम का प्रार्थना पत्र सुनाया। इस पर राजा धर्म ने दूत से पूछा कि तुम्हारा राजा कैसा है ? इसके उत्तर में दूतने कहा इस थेगीदार जैसे हमारे राजा को समझ लीजिये। बाद में दूतने हाथ में बीजोरे का फल लिया तो सूरिजी ने कहा-दूत ! तेरे हाथ में क्या है। दूतने कहा— बीजराज (बीजोरा)। इतने में तुंवेर का पत्र बतलाते हुए सूरिजी ने थेगीदार को सामने करते हुए कहा— क्या यह तु—वेर पत्र (अरिपत्र) है ? थेगीदार ने कहा —गुरुदेव ने कठिन प्रतिज्ञा की है पर वह पूरी होने पर हमारे साथ पधारें तो हमारा अहोभाग्य है। बाद में बप्पभट्टिसूरि ने एक गाथा कह कर उसके

१०८ अर्थ किये पर राजा धर्म ने इन संकेत सूचक बातों की ओर लक्ष्य ही नहीं दिया।

राजा आम उस रात्रि में एक वारगंणा के वहां रहा और एक बढ़िया कांकण उसको देकर उसके यहां से निकला और एक बहुमूल्य कांकण राज द्वार पर रख कर एक उद्यान में जाकर गुप्त पने रहा।

दूसरे दिन पुनःठीक समय पर बप्पभट्टिसूरि राज सभा में आये और कान्यकुब्ज जाने के लिये राजा से अनुमति मांगने लगे। इस पर राजा ने कहा-यह क्यो ? सूरीश्वरजी ने कहा-राजा आम कल यहां सभा में आया था। जो थेगीदार था वह वास्तव में राजा आम ही था। दूत ने आप से कहा भी था कि तू बर पत्र तथा एक गाथा के अर्थ में मेरा भी यही सङ्केत था।

इतने में वाराङ्गणा ने कांकण को राजा के सम्मुख रखते हुए कहा—रात्रि में मेरे मकान पर एक अनजान पुरुष आया था उसने यह कांकण मुझे दिया है। उधर से द्वारपाल आया और उसने भी कांकण रखते हुए कहा—प्रभो। न जाने किसने यह कांकण द्वार पर रक्खा है। बस, दोनो कांकणों को देखकर उनका सूक्ष्यता पूर्वक निरीक्षण किया तो छोटे २ अक्षरों में राजा आम का नाम पाया गया। इस पर राजा धर्म ने बहुत प्रायश्चित किया कि-अहो। वैरी राजा मेरे पास आया पर उसका मैंने सत्कार तक नहीं किया दीर्घ काल से चले आये वैर के समाधान का समय हाथ लगा था किन्तु वह भी मेरी अज्ञानता के कारण

इत्यारोप्य पश्चात् पट्टकुञ्जरे धरणीधर। जितक्रोधावभिज्ञानपूतरत्नत्रयमनुपमम् ॥ ८७

जातेसूरिपदेऽस्माकं कल्प्यं सिंहासनासनम्। इति तस्य वचः श्रुत्वा सिंहोऽन्यासनस्य वीक्षितम् ॥ ९०

प्रख्द मौढ़ सौहार्दवसुधाधीश सस्तुतः। पुरं पौर पुरन्ध्रीभिरारुबारब्धक ततः ॥ १२२

+ + +

पूर्ण वर्ण सुवर्णाष्टादश भार प्रमाण भूः। श्रीमतो वर्द्धमानस्य प्रभो र प्रतिमा न भूः ॥ १३०

तथा गोपगिरौ लेप्पमय बिम्बयुतनृप। श्री वीर मन्दिर तत्र त्रयोविंशति हस्तकम् ॥ १४०

सपादलक्षसौवर्णटङ्क निष्पन्न मण्डपम्। व्यध.पय त्रिजंराज्यपनिव सम्मत वारणम् ॥ १४१

इत्युक्त्वाऽतोनिरीयागात् सगत्यामनृपेण च। कामी निर भोपु नि. सुराभियंदासा गुरु ॥ २१५

+ + +

अमूढकार्यं निर्वाह ज्ञानहेतुं ततस्तदा। स्नेहादेव निशित्रैषित् वारु वेदा वदप्रिये ॥ २८८

सा निलीना क्वचित् अन्यगणे स्वस्थानगे ततः रह सुश्रुवितुं सूरि प्रारेभे धैर्यनिधये ॥ २८९

पीकर स्पर्शसौख्याख्याऽप्रोपवर्गहुपस्थितम्। विनमद्यो नृपाज्ञानात्मवदेहित अवम् ॥ २९०

+ + +

माप। पाथः पति बाहुदण्डाभ्यां स तरस्त्वन्। निनत्ति च महादंड शिरसा त मा रमान् ॥ ३११

पदेद्र (?) बहिन्मास्कन्देत् सुससिद्धत्र वाधयेत् दवेतनिष्कुलत गुरवप्य हि शिक्षादेन ॥ ३१४

असौनदी धाराधारा देश पुरनिंद मम। माध्यदोमाध्यन्द्र दत्र बप्पभट्टि प्रभुसिनि. ॥ ३१७

प्राप्य गुरुनिनन्त्र परावर्त्तयत सत। नध्यराये गिरिर्दशी स्वर्गंज्ञिर्जि नन्दत. ॥ ४१२

शान्ती तारदारूपा च प्रादुरासीद् ततस्तदा। महो मवरप नाहान्नपदे प्य.रि विवेदना ॥ ४२०

+ + +

उपाश्रयस्थित नत्य कदम्बक निषेधितम्। राजानमित्र सप्ट्ष भानन्दितचिन्तितम् ॥ ४८९ प्र. च.

सिंहासनस्थितं श्रीमत्प्रभसूरि समैक्षत। उत्तरत्र दत्त दिव्यार कस्यासि विनयत ॥ ४८०

हाथ से निकल गया। अब क्या हो सकता है ? दूसरा गुरु का विरह भी असह्यसा है। इसपर सूरिजी ने कहा—राजन् ! हम हंस की भांति अप्रतिबद्ध विहारी हैं पर आप अपना नाम (धर्म) सार्थक करना कि दूसरे भी आपका अनुकरण करें।

इस तरह वहां से सहर्ष अनुमति प्राप्तकर सूरिजी चलकर राजाआम के पास आये और सब ऊँट पर सवार हो वहां से शीघ्र चल पड़े। आगे चलते हुए एक भील को बकरे की भांति तलाब में जल पीते हुए को देखा। राजा आम ने इस का कारण पूछा तब सूरिजी ने कहा—इस भीलने अपनी रुष्ट हुई स्त्री के नेत्रों के आंसु को हाथ से पूछा जिसके काजल से हाथ काले होगये अतः पानी हाथ से न पीकर मुंह से पीरहा है। राजा ने भील से एकान्त में पूछा तो वही बात निकली जो सूरिजी ने कही थी। इससे राजा बहुत खुश हुआ। जब नगर आया तो राजा ने सूरिजी के नगर प्रवेश का आलीशान प्रवेशोत्सव किया जैसा कि इन्द्र का महोत्सव होता है।

इधर आचार्य सिद्धसेनसूरि बहुत बीमार हुए तो उन्होंने अपने अन्य मुनियों को बप्पभट्टिसूरि के पास यह कहला कर भेजा कि मेरा मुंह देखना हो तो जल्दी आना। बस बप्पभट्टि सूरि विहार कर शीघ्र ही मोढ़ेरा में आये। गुरुदर्शन व अन्तिम सेवा कर कृतार्थ हुए। सूरिजी के स्वर्गवास होने पर गच्छनायक बप्पभट्टिसूरि हुए। सूरिजी कुछ अर्से वहां ठहरने के पश्चात् आपने गुरुभ्राता गोविन्द सूरि और नन्नप्रभसूरि को गच्छ की सार सम्भाल सुपुर्द कर आप पुनः कन्नौज पधार गये।

एक समय सूरिजी पुस्तक की ओर दृष्टि लगाये बैठे थे कि उनकी नजर एक हरे झाड़ की ओर गई। राजाने सोचा कि यह क्या ? क्या महात्माजी रमणी की इच्छा रखते हैं ? राजाने रात्रि के समय एक युवारमणी को पुरुष का वेश पहना कर सूरिजी के मकान पर भेजी जब भक्त श्रावक चले गये तो उस स्त्री ने सूरिजी की व्ययावच करने को स्पर्श किया तो सूरिजी जान गये कि यह राजा का ही अज्ञान होना चाहिये जब उस युवति ने बहुत कुछ हाव भाव विषय चेष्टा की यहां तक कि सूरिजी का हाथ उठाकर अपने स्तनों पर भी रख दिया पर बाल ब्रह्मचारी सूरिजी थोड़े भी अधैर्य न होंकर उस स्त्री को कहा कि मैं मेरे गुरु की सेवा शुश्रूषा करता या तद कभी नितांब का स्पर्श हो जाता वही बात तेरे स्तन के लिये याद आती है बाद सुवर्ण की पुतली भृष्टा भर कर ऊपर से चन्दनादि चर्चने का दृष्टान्त देकर उसको कायल कर दी आखिर में युवा लाचार हो प्रभात को राजा के पास आ कर कहा कि हे राजन्। जो अपने भुजाओं से माहसागर तीर सके अपने मस्तक से पर्वत को भेदे अग्नि में हाथ डाले और और सुत्ता हुआ सिंह को जागृत करने वाला भी तुह्मारे श्वेताम्बर साधु को विकार वाले नहीं कर सकते है अर्थात् बप्पभट्टि सूरि का ब्रह्मचर्य को मनुष्य तो क्या पर देव देवांगना भी खण्डित करने को समर्थ नहीं है।

इस बात को सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और कहने लगा कि यह पवित्र वसुधा मेरा देश नगर का बड़ो भाग्य है कि हमारे यहां बप्पभट्टिसूरि जैसे अखण्डित ब्रह्मचर्य पालने वाले विराजते हैं—

एक कृपक की औरत अपने स्तनों पर परन्ड के पत्ते लगाये जा रही थी जिसको राजा आमने देखा। उसने तत्काल एक गाथा का पूर्वार्द्ध बनाकर गुरु से कहा कि—

"बई विवर निगाय दलो एरण्डो साहइ तरुणीणं।"

सिद्ध सारस्वत गुरुदेव ने उत्तरार्द्ध में कहा—

"इत्थघरे हलियवहु सद्दहमित्तच्छणी वसई"

इस प्रकार मनोऽनुकूल समस्या पूरी होने से राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ।

एक समय हाथ में दीपक लेकर टेढ़ा मस्तक किये एक स्त्री जा रही थी जिसका कि पति परदेश गया था। राजा ने उसे देख कर पूर्वार्द्ध गाथा कही—

पियसंभरण पलुट्टंतंअंसुधारा निवायभीया।

गुरु ने उत्तरार्द्ध में कहा—

दिज्जइ वंक गीवाइ दीउपहि नायए

इस प्रकार समस्या पूर्ति हो जाने से राजा परम हर्ष को प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रति दिन के वाद-विनोद से राजा का समय बड़े ही आनन्द से व्यतीत होने लगा।

एक समय धर्मराज ने एक दूत को आम राजा के पास भेज कर कहलाया कि आप मेरे यहां आये पर मैं अज्ञान पने आपका सत्कार नहीं कर पाया जिसका मुझे बड़ा ही रंज है। खैर, अब भी कुछ नहीं हुआ है। आपस में युद्ध कर लाखों मनुष्यों को क्यों मरवाया जाय। हमारे यहां बौद्धाचार्य वर्द्धन कुञ्जर नामक एक उद्‌भट विद्वान है जिसको लेकर हम सीमान्त आते हैं। आप भी अपने विद्वान् को लेकर सीमान्त में आ जाइये और दोनो पण्डितों का आपस में वाद होने दीजिये। इन पण्डितों की हार जीत में ही अपनी हार जीत समझ लीजिये कि जिससे शान्ति पूर्वक समाधान हो जाय। आपके पण्डित जीत जाँय तो हमारी हार और हमारे पण्डित जीत जाँय तो आपकी हार। इसकी मञ्जूरी दीजिये। राजा आमने अपनी ओर से मञ्जूरी देदी कारण, आपको बप्पभट्टिसूरि पर पूर्ण विश्वास था। दूत का यथोचित सत्कार कर उसे विसर्जित किया। बस, इधर से राजा धर्म वर्द्धनकुञ्जर बौद्धाचार्य को और इधर राजा आम जैनाचार्य बप्पभट्टिसूरि व मन्त्री सामन्तादि को लेकर सीमान्त प्रदेश पर निर्दिष्ट दिन उपस्थित हो गये दोनों में परस्पर विवाद प्रारम्भ हुआ। बौद्धाचार्य का पूर्व पक्ष था। उसकी ओर से जो कुछ प्रश्न होता बप्प-भट्टिसूरि तुरन्त उसका प्रतिकार कर डालते। इस प्रकार ६ मास पर्यन्त वाद चलता रहा। एक समय राजा आमने पूछा गुरुदेव! वाद कहाँ तक चलता रहेगा कारण राजकार्यों में इतने सुदीर्घ वादविवाद में हानि होती है। सूरिजी ने कहा राजन्! मैंने तो आपके विनोद के लिये वाद लम्बा कर दिया है। यदि आपके राज्य कार्यों में हानि होती हो तो लीजिये कल ही वाद समाप्त हो जायगा। इस प्रकार कहने के पश्चात् सूरिजीने सरस्वती का मन्त्र पढ़ा। मन्त्र बल से आकर्षित हो सरस्वती देवी नग्नावस्था में स्नान करती हुई उसी रूप में आ गई। बप्पभट्टिसूरि के ब्रह्मव्रत की दृढ़ता देख प्रसन्न हो उन्हें मनोऽनुकूल वर दिया। तत्पश्चात् सूरिजी ने पूछा—देवी! वादी किसके आधार से अस्खलित वाद करता है! देवी ने कहा—मेरे वरदान से। सूरिजी ने देवी को उपालम्भ दिया कि तू सम्यग्दृष्टि होकर भी असत्य की मदद करती है। देवी ने कहा—आप कल की सभा में सब को मुख शौच करवाना। वादी मुख शौच करेगा तो इसके मुह की गुटिका गिर पड़ेगी बस फिर क्या है? आपकी विजय अवश्यम्भावी है। सूरिजी ने एक [illegible] द्वारा इस ही तरह करवाया जिससे गुटिका मुह से निकल गई अतः वह वाद करने में पंगु (असमर्थ) हो गया। तत्पश्चात

वह पराजित हो लज्जा भार से नत मस्तक हो गया। इस प्रकार सूरिजी की असाधारण विजय को देख सभा ने आपको वादी कुञ्जर केशरी की उपाधि दी और तब ही से आप वादी कुञ्जर केशरी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जब वादी की पराजय में राजा धर्म ने अपनी पराजय स्वीकार करली तब राजा आम; धर्म राजा की राज्य सत्ता अपने अधीन करने का विचार करने लगा परन्तु आचार्यश्री के गाम्भीर्य गुण परिपूर्ण उपदेश से राजा आमने धर्मराजा के राज्य को उसके सुपूर्द कर दिया। बाद में वर्द्धन कुञ्जर और बप्पभट्टि सूरि बड़े ही प्रेम के साथ एकत्र हो वीर भुवन में गये। भगवान् महावीर की शान्त, वैराग्य मय प्रतिमा को देख कर बौद्धाचार्य को परम शान्ति हुई और उसने एक स्तुति बनाकर प्रभु के गुणगान किये। बाद में सूरिजी ने जैन धर्म के तत्वो के स्वरूप को समझाया जिससे वर्द्धन कुञ्जर के हृदय में अर्हन धर्म के प्रति श्रद्धा होगई।

एक रात्रि में आचार्य श्री जागृत थे तब वर्द्धन कुञ्जर ने चौथे प्रहर में सूरिजी को चार अक्षरवाली चार समस्याएं पूछी जिसकी सूरिजी ने तत्काल पूर्ति करदी।

एको गोत्रे—स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति। सर्वस्य द्वे—सुगति कुगती पुर्वजन्मानुबद्धे॥
स्त्रीपुंवच—प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टं। वृद्धोयूना—सह परिचयात्यज्यते कामिनीभिः॥

अब तो बौद्धाचार्य आचार्यश्री की ओर और भी अधिक प्रभावित हुआ और उसने श्रावक के बारह व्रत भी धारण कर लिये। बाद सूरिजी की आज्ञा लेकर अपने स्थान चला गया और राजा धर्म भी आम राजा से अनुमति लेकर अपने राज्य में चला गया। एकदा बौद्धाचार्य ने राजा धर्म से कहा कि बप्पभट्टिसूरि ने मुझे पराजित किया इसका तो कुछ भी रञ्ज नहीं पर वाक्पतिराजा ने मुख शौच करवा कर मेरा पराजय करवाया यह मुझे खटक रहा है। राजा ने वर्द्धन कुञ्जर की बात सुन करके भी वाक्पतिराज से प्रीति कम नहीं की।

एक समय धर्मराजा पर यशोवर्माराजा चढ़ आया। उस समय वाक्पति कारागृह में बन्द कर लिया गया था पर अपूर्व काव्य रचना से सन्तुष्ट हो राजा ने उसे बन्धन मुक्त कर दिया। वाक्पतिराज वहां से चलकर कन्नोज में आया और सूरिजी से मिला। पूर्वपनिष्ठता के स्वभाव व सौजन्य के कारण सूरिजी वाक्पति राज को राज सभा में ले गये। वाक्पतिराजा ने राजा आम की ऐसी स्तुति बनाई कि राजा आम सन्तुष्ट हो गया राजा आम ने राजा धर्म से दुगुना सत्कार सम्मान किया उसकी आजीविका का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया अतः पं० वाक्पतिराज सूरिजी एवं राजा के सहवास में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन राजा आम सूरिजी की विद्वत्ता की प्रशंसा करता हुआ कहने लगा कि आपके जैसा विद्वान् देवताओं में भी नहीं है तो मनुष्य में तो हो ही कैसे सकता? सूरिजी ने कहा—हे राजन्! पूर्व जमाने में बड़े २ विद्वान हो चुके हैं कि मैं उनके चरण रज के तुल्य भी नहीं हूँ पर वर्तमान में भी हमारे वृद्ध गुरु भ्राता नन्नसूरि ऐसे विद्वान हैं कि मैं उनके सामने एक मूर्ख ही दीखता हूँ। इस पर राजा वेश परिवर्त्तित कर नन्नसूरि को देखने के लिये गये तो उस समय नन्नसूरि गुजरात के हस्तकल्प नगर में बिराजते थे। राजा वहां गया तो चामर छत्र संयुक्त एवं सिंहासन पर बैठे हुए नन्नसूरि को देखा। आचार्यश्री के उक्त वैभव को देख कर राजा आम के हृदय में इस प्रकार की शंका हुई कि त्यागी गुरुओं के यहां इस प्रकार का राज्य वैभव क्यों? इस विषय में चरित्रकार ने बहुत ही विस्तार से लिखा पर ग्रंथ

चारपदों की चार समस्याओं की पूर्ति

बढ़ जाने के भय से हम एत द्विषयक सविशेष स्पष्टीकरण न करते हुए इतना ही लिख देना समीचीन समझते कि आचार्यश्री नन्नसूरि की प्रकाण्ड विद्वत्ता के लिये राजा आम को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि जैनों में ऐसे २ विद्वान् विद्यामान है कि जिसकी बराबरी करने वाले किसी दूसरे मत में नही मिलते है।

एक दिन एक नट का टोला आया जिसमें एक मातङ्गी बड़ी स्वरूपवान् थी। इसको देख राजा आम उस पर मोहित होगया और उससे मिलने का प्रयत्न करने लगा। इस बात का पता जब बप्पभट्टिसूरि को लगा तो उनको राजा की इस अविवेकता पर बहुत ही पश्चाताप हुआ। बप्पभट्टिसूरि राजा के निर्दिष्ट स्थान पर जाकर समीपस्थ एक पत्थर पर इस तरह का बोधप्रदायक काव्य लिखा कि जिसको राजा ने पढ़ा तो उसको इतनी लज्जा आई कि वह चिता बना कर अग्नि में जल जाने की तैयारी करने लगा। पुनः सूरिजी को चिता की बात मालूम हुई तो वे चल कर राजा के पास आये और इस प्रकार उपदेश दिया कि वेद श्रुति स्मृति के विद्वानों को एकत्रित कर मातंगी के विषय का मन से लगे हुए पाप का प्रायश्चित पूछा। विद्वानों ने मिल कर कहा कि लोहा की पुतली को तपाकर उसका आलिंगन करने से पाप की शुद्धि होती है। राजा ने लोह की पुतली बनाकर उसको अग्नि में लाल कर आलिङ्गन करने को तैयार हुआ। इतने में पुरोहित तथा आचार्यश्री ने आकर राजाकी भुजाओ को पकड़ते हुए कहा बस मन का पाप मन से ही स्वच्छ हो गया। इत्यादि। राजा को बचा लेने से नगर में बड़ा ही हर्ष हुआ। नागरिकों ने नगर शृङ्गार कर आचार्यश्री को हस्तिपर आरूढ़ करवा कर महामहोत्सव पूर्वक नगर प्रवेश करवाया।

एक दिन सूरिजी ने कहा हे राजन! आत्म-कल्याण करना चाहो तो जैनधर्म का शरण लो। इस पर राजा ने कहा—गुरुजी! पूर्व परम्परा से चला आया धर्म में कैसे छोड़ू? यदि आपके पास विद्वता है तो आप मथुरा जाकर वैराग्याभिमुख वाक्पतिराजा को जैनधर्म स्वीकार करावें। राजा ने अपने विद्वानों को एवं मन्त्रियों को तथा सामन्तो को साथ दे दिये अतः आचार्यश्री चल कर मथुरा आये और वाराहजी के मन्दिर में वाक्पतिराज थे उन से मिले। पहिले तो ब्रह्मा विष्णु और महादेव की यथा गुण स्तुति कर वाक्पति राज को समझाया जिससे उसने देव गुरु धर्म का स्वरूप सुनने की इच्छा प्रगट की। आचार्यश्री ने वाक्पति राज को शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप समझाया तत्पश्चात् वाक्पतिराज ने प्रश्न किया हे गुरु! मनुष्य लोक से जीव मोक्ष में जाते हैं तब कभी सब जीव मोक्ष में चले जावेंगे और मोक्ष में स्थान भी नहीं मिलेगा। गुरु ने कहा—हे भव्य! ऐसा कभी नहीं होता है। दृष्टान्त स्वरूप गंगा की सब नदियां रेत खींचती हुई समुद्र में जाती है परन्तु आज पर्यन्त न रेती कम हुई है और न समुद्र ही भर गया है। यही न्याय संसार के जीवों का भी समझ लीजिये। इस प्रकार कहने से वाक्पतिराज को अच्छा सन्तोष हुआ और गुरु के साथ भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर में जाकर उसने मिथ्यात्व का त्याग किया व शुद्ध सनातन जैनधर्म को स्वीकार किया। अठारह पाप व चार आहार का त्याग कर अनशन व्रत स्वीकार कर लिया। अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म का शरण एवं पञ्च परमेष्ठि के ध्यान में १८ दिन तक अनशन व्रत की आराधना की। आचार्य बप्पभट्टिसूरि जैसे सहाय देने वाले थे अतः वाक्पतिराज समाधि मरण मर कर देवलोक में उत्पन्न हुए।

पूर्व जमाने में नंदराजा द्वारा स्थापित शान्तिदेवी है। वहां जिनेश्वरदेव को वन्दन करके सूरिजी गये और शान्तिदेवी सहित जिनेश्वरदेव की स्तुति की वह आज भी 'जयति जगद्रक्षाकर' के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरिजी मथुरा से राजपुरुषों के साथ कन्नौज पधारे। राजा ने पहिले ही से अपने मनुष्यों से सब

हाल सुन लिया था अतः नगर के बाहिर राजा सम्मुख आया और महा महोत्सव पूर्व सूरिजी को नगर प्रवेश करवाया। राज सभा में राजा ने कहा-पूज्य गुरुदेव! आप महान् शक्ति शाली हैं कि वाक्पतिराज जैसे को प्रतिबोध किया। सूरिजी ने कहा—जहां तक मैं आपको प्रतिबोध न दूँ वहां तक मेरी क्या शक्ति है। राजा ने कहा—मैं प्रतिबोधपागया हूँ। आपके धर्म पर मुझे दृढ़ श्रद्धा है परपूज्य! मेरे पूर्वजों से चले आये शिवधर्म को छोड़ने में मुझे बड़ा ही दुःख होता है अतः यह पूर्व भव का ही संस्कार मालूम होता है।

सूरिजी कहा—राजन्! तुमने जो पूर्वभव में कष्ट किया उसका स्वरूपफल ही राज्य है।

सभाजनों ने कहा—पूज्यवर! हम लोग राजा का पूर्वभव सुनना चाहते हैं कृपाकर आप सुनाइये।

श्री चूड़ामणि शास्त्रादि के अनुसार सूरिजी ने कहा— कलंजर के पास शालवृक्ष की शाखा के दोनों पैर बांधकर अधोमुखी होकर पृथ्वी पर जटालटकती इस प्रकार तप कष्ट करने से वहां से तू राजा हुआ है। यदि मेरी बात पर किसी को विश्वास न हो तो उस वृक्ष के नीचे जटा पड़ी है देखलो। राजा ने अपने अनुचरों से जटा मंगाकर देखी जिससे सब लोग सूरिजी की भूरि २ प्रशंसा करने लगे।

एक समय राजा अपने मकान पर खड़ा हुआ क्या देखता है कि एक युवा रमणी के यहां एक जैन मुनि भिक्षा के लिये आया। मुनि को देख रमणी ने भोग की प्रार्थना की पर मुनि अस्वीकार कर बाहिर निकलता था कि मकान के द्वार के किवाड़ स्वयं बन्द होगये। इस पर बाला ने एक लात मारी जिससे उसके पैर का नेवर आकर मुनि के चरणों में गिर पड़ा। रमणी ने हाव भाव पूर्वक प्रार्थना की पर मुनि पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा इस घटना को देख राजा ने प्राकृत में एक पद बनाकर सूरिजी के सामने रक्खा। सूरिजी ने उसके तीन पद बनाकर पूरी गाथा करदी वह इस प्रकार है।

कवाडमासज्ज वरंगणाए अब्भच्छिउ जुव्वणमत्तियाए। अमन्निए मुक्कपयप्पहारे सनेउरो पव्वइयस्स पाउ ॥

इस प्रकार राजा ने एक गृहणी और भिक्षु को देख एक पाद गुरु के समक्ष रक्खा जिसको भी गुरु ने पूरा कर दिखाया। वह—

भिक्खयरो पिच्छइ नाहिमण्डलं सावि तस्स मुहकमलं। दुहनंपि कवालं चट्टुयं काला विलुंपति ॥

एक समय एक विद्वान् चित्रकार राज सभा में आया। राजा का चित्र बनाकर राजा को दिखलाया पर राजा का दिल गुरु गुण में लीन था कि चित्र देखने पर भी राजा ने कुछ भी नहीं कहा। इस पर चित्रकार हताश होगया तब किसी ने कहा, कि तू चित्र गुरुराज को दिखला। चित्रकार ने ऐसा ही किया जिसमे सूरिजी ने चित्रकार की प्रशंसा की अतः राजा ने एक लक्ष रुपये दिये। बाद में चित्रकार ने चार भगवान् महावीर के सुन्दर चित्र चित्रित कर सूरिजी को अर्पण किये जिससे एक तो कन्नौज, एक मथुरा एक अणहिल्ल पट्टण में और एक सौपारपट्टन में गुरु महाराज के प्रतिष्ठापूर्वक पधराये। पाटण का चित्रपट म्लेच्छों ने पाटण का भंग किया वहां तक विद्यमान था।

एक समय आम राजा ने राजगृह पर चढ़ाई की पर वहां का किला ले नहीं सका। तब गुरु महाराज को पूछा। गुरुने कहा तेरा पौत्र भोज होगा वह राजगृह विजय करेगा तथापि राजा ने बारह वर्ष तक का घेरा डाल कर फौज वहीं रक्खी। इधर राजा के पुत्र दुदुक २ के पुत्र भोज का जन्म हुआ। सामन्त तत्काल भोज को लेकर राजगृह गये और भोज को इस प्रकार सुलाया कि उसकी दृष्टि राजगृह के

किले पर पड़ी बस फिर तो कहना ही क्या किला स्वयं टूट पड़ा और राजा की विजय होगई। राजगृह का राजा समुद्रसेन वहां से चला गया। वहां पर यक्ष था वह भी राजा के अधीन होगया। राज ने अपनी आयुष्य पूछी तो यक्ष ने कहा—जब तुम्हारा छ मास का आयुष्य शेष रहेगा तब मैं कह दूंगा। बाद में अवसर जान कर यक्ष ने कहा कि हे राजन् गङ्गाजी के अन्दर मगधतीर्थ को जाते हुए जिसकी आदि में मकार है ऐसे ग्राम में तुम्हारी मृत्यु होगी। साथ में यह भी ध्यान रखना कि उस समय जल से धूम्र निकलेगा इत्यादि। इस पर राजा सावधान हो गुरु के साथ तीर्थ यात्रा को निकल गया। साथ में अपनी सैन्यादि सब सामग्री भी ली। सबसे पहिले शत्रुञ्जय तीर्थ जाकर युगादीश्वर का पूजन वन्दन किया बाद में वहां से गिरनार गये। वहां दश राजा दश संघ लेकर गिरनार आये पर वे तीर्थ पर अपना हक्क रखते हुए दूसरे को पहिले नहीं चढ़ने देते थे। राजा आम संग्राम करने को तैय्यार होगया पर बप्पभट्टिसूरि ने राजा को युक्ति से समझाया और दिगम्बरों से युक्ति मञ्जूर करवाई। एक कन्या को दिगम्बरों के यहां भेजी और कहा कि आप में शक्ति हो तो इस कन्या को बुलावो। इस पर सूरिजी ने अंबादेवी का स्मरण कर कन्या पर हाथ रक्खा कि अम्बादेवी कन्या के मुख में प्रवेश कर बोली जिससे श्वेताम्बरों की विजय हुई आकाश में बाजे गाजे हुए। तत्पश्चात् पहिले श्वेताम्बरों ने गिरनार पर चढ़ कर नेमिनाथ की पूजा की और वहां पुष्कल द्रव्य व्यय किया। बाद में द्वारिका प्रभासपाटण वगैरह तीर्थों की यात्रा कर वापिस कन्नौज आगया!

अवसर के जान राजा ने अपने पुत्र दुंदुक को राज्य स्थापन कर आप गुरु के साथ मगध तीर्थ की यात्रार्थ चले। नाव में बैठे हुए गंगा नदी उत्तर ने में ही थे कि जल में धूवां देखा कि राजा को यक्ष की बात याद आई और मगरोड़ा ग्राम में पहुँचा।

आचार्यश्री ने कहा-राजन्! समय आगया है अब तू आत्म-कल्याण के लिये जैनधर्म स्वीकार कर। राजा ने देव अरिहंत, गुरुनिर्ग्रन्थ और धर्म वीतराग की आज्ञा एवं सच्चे दिल से जैनधर्म स्वीकारकर लिया।

बीच में राजा ने कहा—हे गुरु! आप भी देह त्याग करो कि देव भव में भी हम मित्र बने रहें। सूरिजी ने कहा—राजन्! यह तुम्हारी अज्ञानता है। जीव सब कर्माधीन है। कौन जाने कौन कहां जायगा मेरी आयुः अभी ५ वर्ष की शेष रही है।

वि० स० ८९० भाद्रशुक्ला पञ्चमी शुक्रवार चित्रा नक्षत्र के दिन राजा आमने पञ्च परमेष्टि का ध्यान और आचार्यश्री के चरण का स्मरण करता हुआ देह त्याग किया।

बाद में सूरिजी को भी बहुत रंज हुआ आखिर आप कन्नौज चले आये। इधर राजा दुंदुक एक वेश्या से गमन करने के इश्क में पड़ गया इससे वह विवेक हीन की तरह भोज को मरवाने लगा। रानी, राजा के कृत्य को देख अपने पुत्र भोज को पाटलीपुत्र में अपने मुसाल में भेज दिया।

एक दिन राजा दुंदुक आचार्यश्री को कहा कि जाओ आप भोज को ले आओ। सूरिजी ने कई अमनोयोग ध्यान से निकाल दिया। जब राजा ने अत्याग्रह किया तो सूरिजी ने नगर के बाहिर जाकर विचार करने लगे कि भोज को लाऊं और वैश्या सक्तराजा पुत्र को मार डाले, नहीं लाऊं तो राजा कुपित हो जैनधर्म का बुरा करे अतः अनशन करना ही ठीक समझा। तदनुसारसूरिजी २१ दिन के अनशन की आराधना कर पण्डित्य मरण से ईशान देवलोक में देव पने उत्पन्न हुए।

वि० स० ८०० भाद्र-शु-बीज रविवार हस्तनक्षत्र में आपका जन्म हुआ। ६ वर्ष की वय में दीक्षा।

११ वर्ष की उम्रमें सूरिपद वि० सं० ८९५ के भाद्र शु० अष्टामी को स्वाति नक्षत्र में आपका स्वर्गवास हुआ।

उस समय आमराजा का पौत्र भोजकुमार अपने मामा के सामन्तों के साथ कन्नौज आया और सुना कि बप्पभट्टिसूरि का स्वर्गवास हुआ है तो बहुत विलाप किया आखिर चिता बना कर सूरिजी के मृत शरीर को चिता में पधराया। उस समय भोजकुमार ने विचार किया कि पितामह का मरण हुआ आज उनके गुरु का भी मरण हुआ अब मेरा क्या होगा कारण पिता तो मुझे मारना चाहता है तो मेरे यही मार्ग है कि मैं गुरुदेव के साथ अग्नि में जल जाऊं। इस पर भोजकुमार की माता आई और पुत्र को बहुत समझाया अतः भोज, माता के वचनो को शिरोधर्य कर सूरिजी का अग्नि संस्कार कर चिन्तातुर होता हुआ मामे के वहाँ चला गया।

इधर राजा दुंदुक धर्म कर्म से पतित हुआ वैश्या में आसक्त था। राज्य की कुछ भी सार सम्भाल नहीं करने से जनता दुःखी हो रही थी। एक समय भोजकुमार कन्नौज में आया और सज्जनो की मनाई होने पर भी राजसभा की ओर जाने लगा। आगे द्वार पर एक माली बीजौरे के ३ फल लिये बैठा था। राजकुमार जान कर उसने उन फलों को भेंट दिया। भोजकुमार राजसभा में जाते ही दुंदुंक राजा सिंहासन पर बैठा था तो उसकी छाती में तीनों फलों की ऐसी मारी की उसके प्राण पखेरु उड़ गये। बस, फिर क्या था ? उसके मृत देह को एक द्वार से निकाल कर भोजराज सिंहासन पर बैठ गया। गाजा वाजे और विधि से भोज का राज्यभिषेक कर सब मन्त्री उमराव और नागरिक मिल सब भोज को राजा बना उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली।

एक समय राजा भोज आम विहार (मन्दिर) में दर्शन करने को गया था वहां बप्पभट्टिसूरि के दो शिष्य अध्ययन कर रहे थे। राजा ने साधुओं का अभ्युत्थानादि नहीं किया और राजा ने सोचा कि ये साधु व्यवहार कुशल नहीं हैं अतः उन्होंने मोढेरा से नन्नप्रभसूरि एवं गोविन्दसूरि को बुलाये और वे भी सत्वर कन्नोज में आये। राजा भोज ने दोनो ही सूरियों का बड़ा ही महोत्सव कर नगर प्रवेश करवाया और उनको गुरु पद पर स्थापन कर नन्नसूरि को पुनः गुजरात में जाने की आज्ञा दी और गोविन्दसूरि को अपने पास रक्खा। चरित्रकार फरमाते हैं कि राजा आम ने जैनधर्म की काफी सेवा की पर राजा भोज ने उनसे भी जैनधर्म की विशेष उन्नति की। जैनधर्म के प्रचार को खूब बढ़ाया और मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि चैत्यवासी होते हुए भी। जैन संसार में एक महान् प्रभाविक आचार्य महापुरुषों का गिनती के आचार्य थे। वादी कुञ्जरकेशरी, बालब्रह्मचारी, राजपूजित वगैरह अनेक विरुदों से विभूषित थे। आपने अपने दीर्घ जीवन में जैन शासन की उन्नति कर जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। ऐसे प्रभाविक पुरुषों से ही जैनधर्म दे दीप्यमान व राजधर्म से गर्जना करता था।

राजा आम ने कन्नोज में १०१ हाथ ऊंचा मन्दिर बनवा कर अठारह भार सोने की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई तथा गिरनार शत्रुञ्जय के तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल कर तीर्थ यात्रा की। राजा आम के एक रानी वैश्य कुल की थी। उनकी सन्तान जैनधर्म पालन करती हुई राज्य के कोठार का काम करने लगी। उनके विवाहादि सब व्यवहार उपकेशवंश के साथ होने लगे इसलिये वे उपकेश वंश में राज कोठारी कहलाये। इस परम्परा में श्रीमान् कर्मशाह हुआ। उसने वि० सं० १५८७ पुनीत तीर्थश्री शत्रुंजय का उद्धार

करवाया ! उस समय के शिलालेख में भी इस बात का उल्लेख किया हुआ मिलता है। उस शिलालेख से कुछ अंश यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

स्वस्तिश्रीगुर्ज्जरधरित्र्यां पातासाह श्री महिमूद पट्टप्रभाकर पाताशाहश्रीमदाफारसाह पट्टोद्योत कारकपातसाह श्री श्री श्री श्री श्री बाहदर साह विजय राज्ये संवत् १५८७ वर्षे राज्य व्यापार धुरंधरषन श्री मम्माद पान व्यापारे श्री शत्रुंजय गिरौ श्रीचित्रकूटवास्तव्य दो० करमाकृत सप्तमोद्धारसत्का प्रशास्तिर्लिख्यते—

स्वस्ति श्री सौख्यदो जोयाद् युगादिजिननायकः। केवलज्ञान विमलो विमलाचलमण्डनः ॥१॥

श्रीमेदपाटे प्रकटप्रभावे भावेन भव्ये भुवनप्रसिद्धे।
श्रीचित्रकूटो मुकुटोपमानो विराजमानोऽस्ति समस्त लक्ष्म्या ॥ २ ॥

सन्नन्दनो दातृ सुरद्रुमश्च तुङ्गः सुवर्णोऽपि विहारसार :।
जिनेश्वर स्नात्रपवित्रभूमिः श्रीचित्रकूटः सुरशैल तुल्यः ॥ ३ ॥

विशालसाल क्षितिलोचनाभो रम्योनृणां लोचनचित्रकारी।
विचित्रकूटो गिरिचित्रकूटो लोकस्तु यत्राखिलकूटमुक्तः ॥ ४ ॥

तत्र श्री कुम्भराजोऽभूत कुम्भोद्भवनिभोनृपः। वैरिवर्गः समुद्रोहि येनपीतः क्षणात् क्षितौ ॥ ५ ॥
तत्पुत्रो राजमल्लौऽभूद्राज्ञां मल्लइवोत्कटः। सुतः संग्रामसिंहोऽस्य संग्राम विजयी नृपः ॥ ६ ॥
तत्पट्टभूपणमणिः सिंहेन्द्रवत् पराक्रमी। रत्नसिंहोऽधुना राजा राज लक्ष्मया विराजते ॥ ७ ॥

इतश्च गोपाह्वगिरौ गरिष्ठः श्रीबप्पभट्टि प्रतिबोधितश्च।
श्रीआम राजोऽजनि तस्य पत्नी काचित्तभूव व्यवहारि पुत्री ॥ ८ ॥

तत्कुक्षिजाताः किल राजकोष्ठागाराह्वगौत्रे सुकृतैकमात्रे।
श्री ओशवंशे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽमीपुरुषाः प्रसिद्धा ॥ ९ ॥

प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग दूसरा पृ० १

यह शिला लेख तीर्थ श्रीशत्रुंजय का सोलहवाँ उद्धार कर्ता कर्मशाह का है कर्मशाह गढ़ चित्तौड़ का निवासी था अतः शिलालेख में चित्तोड़ राणा के उल्लेख के पश्चात् कर्मशाह के पूर्वजों को आचार्य बप्पभट्टि सूरि ने राजा आम (नागभट्ट) को जैन धर्म की दीक्षा दी उनके एक राणी व्यवहारी या (महाजन) की पुत्री थी उसकी सन्तान को विशाद ओसवंश में शामिल करदी अर्थात् उनकी रोटी बेटी व्यवहार उपकेश वंश के साथ में होने लगा इससे पाया जाता है कि आचार्य बप्पभट्टि सूरि के समय उपकेशवंश [illegible] में एवं विशद प्रदेश में फैल चुका था तब ही तो राजा आम की सन्तान को उपकेशवंश में शामिल करदी आगे कर्मशाह के पूर्वजों की वंशवृक्ष की नामावली दी है जो इस प्रकार है १—सारदेव २ तत्पुत्र रामदेव ३ तत्पुत्र लक्षमणसिंह ४ तत्पुत्र भुवनपाल ५ तत्पुत्र भोजराज ६ तत्पुत्र ठाकुरसिंह ७—तत्पुत्र [illegible] ८ तत्पुत्र नरसिंह ९ तत्पुत्र तोलाशाह १० तत्पुत्र कर्माशाह ११ तत्पुत्र [illegible]—

आचार्य बप्पभट्टिसूरि का समय चैत्यवासियों का साम्राज्य का समय था आचार्य बप्पभट्टिसूरि भी चैत्यवासी ही थे तब ही तो आपने हस्ति एवं ऊंट की सवारी की तथा सिंहासन पर भी विराजते थे आपके

शत्रुञ्जय तीर्थ का शिलालेख—
१५१

गुरुभ्राता नन्नसूरि के तो सिंहासन पर छत्र चामर होना भी लिखा था फिर भी आप चैत्यवासी होते हुए भी जैनधर्म का प्रचार करने में प्राण प्रण से कटिबद्ध रहते थे तथा राज सभा में वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय विजयंति सर्वत्र फहराने में एवं जैनधर्म का उद्योत करने में वे सदैव संलग्न रहते थे तब ही तो ग्रन्थ कारने आपश्री को प्रभाविक आचार्यों की गणना में गिन कर प्रभाविक पुरुषों में स्थान दिया है। इधर तो आम राजा के परम मानिता आचार्य श्री बप्पभट्टिसूरि थे तब उधर लाटगुजरात और सौराष्ट्र में वनराज चावड़ा के गुरु आचार्य शीलगुणसूरि जैसे अतिशय प्रभावशाली आचार्य-जैसे वंबई कलकत्ता के दोनों लॉट हो तथा उपकेशगच्छाचार्यों का सर्वत्र भ्रमण एवं प्रचार इन प्रखर विद्वानों के सामने स्वामी शंकराचार्य और कुमारिलभट्ट जैसों की भी दाल नहीं गल सकी थी अतः उस विकट समय मे जैनधर्म को सुरक्षित रखने वाले युग प्रवरो का हमको महान् उपकार समझना चाहिये।

आचार्य श्रीहरिभद्रसूरि

मेदपाट प्रान्त में भूषण स्वरूप चित्रकूट नामक नगर था जो धन धान्य से और गुणी जनों से समृद्धि शाली स्वर्ग की स्पर्द्धा करने वाला था। वहां पर जैतारि नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में चार वेद अठारह पुराण और चौदह विद्या में निपुण हरिभद्र नामक पुरोहित रहता था जो राजा से सम्मानित एवं नगर निवासियों से पूजित था। उसको अपनी विद्वता का इतना गर्व था कि वह पेट पर स्वर्णपट्ट बांधे रहता और हाथ में जम्बु वृक्ष की लता रखता। साथ ही एक कुदाला, जाल और निःश्रेणी भी रक्खा करता था। पूछने पर वह कहता-विद्या से मेरा पेट न फूट जाय इसलिये उदर पर पाटा तथा जम्बुद्वीप में मेरे से कोई वाद करने वाला वादि नहीं इसके लिये जम्बुलता रखता हूँ। वादी यदि पाताल में चला जाय तो कुदाला से खोदकर निकाल लाऊं और आकाश में चला जाय तो निश्रेणी से पैर पकड़ कर ले आऊं। इस प्रकार हरिभद्र पुरोहित गर्व सूचक चिन्ह अपने पास में रखता था। इतना होने पर भी उसने एक भीषण प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जिस किसी के शास्त्र का अर्थ मैं न समझूंगा तो मैं उसका शिष्य हो जाऊंगा क्योंकि हरिभद्र अपने आपको सर्वज्ञ समझता था।

एक दिन पं० हरिभद्र अपने छात्रों के साथ बड़े ही आडम्बर से राज मार्ग मे जा रहा था। इतने में एक मदोन्मत्त हाथी आ गया। कष्ट के भय से हरिभद्र चल कर जैन मन्दिर के द्वार पर जा पहुँचा। मुँह ऊंचा करते ही त्रिलोक पूज्य तीर्थंकर देव की शान्तमुद्रा प्रतिमा उसके देखने मे आई पर तत्व के अज्ञात भट्टजी ने तत्काल एक श्लोक बोला—

वपुरेव तवाचेष्टे स्पष्टं मिष्टान्न भोजनम्। नहि कोटर संस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वलः॥

इतने में हस्ति अन्यमार्ग से चला गया और हरिभद्र चलकर अपने मकान पर आ गया। बाद कभी एक दिन वह बहुत आडम्बर के साथ बाहिर जा रहा था कि रास्ते में एक साध्वी का उपाश्रय आया। उसमें याकिनी साध्वी एक गाथा उच्च स्वर से याद कर रही थी—

चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीणकेसवो चक्की। केसव चक्की केसव दु, चक्की केसीय चक्कीय॥

हरिभद्र ने गाथा सुन कर विचार किया वो उनको अर्थ नहीं जचा कारण एक तो गाथा प्राकृत की दूसरा संकेत सूचक समास था। अतः उसने साध्वी से कहा माता! यह चक चक क्या कर रही हो!

मैं इसके भाव को समझ नहीं सका । अतः आप समझाइये ।

साध्वी ने कहा—जैनागमों का अभ्यास करने की गुरु आज्ञा है पर विवेचन कर पुरुषों को समझाने की आज्ञा नहीं है । यदि आपको समझना हो तो हमारे गुरु महाराज अन्यत्र विराजमान है वहाँ जाकर समझ लीजिये ।

भट्टजी विचार करते हुए अपने मकान पर आये और शेष रात्रि वहीं व्यतीत की । बाद प्रातः काल नित्य क्रिया से निवृत्त हो घर से निकले कि पहिले तो वे जिनमन्दिर में आये । वहां भगवान की प्रतिमा को देख कर हर्ष के साथ प्रभु की स्तुति की—

"वपुरेव तवाचष्टे भगवन् वीतरागताम् । नहि कोरट संस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वलः ॥

बाद में अपनी जिन्दगी को निरर्थक समझते हुए मण्डप में विराजमान आचार्यश्री को देख उनके दिल में अच्छे भाव उत्पन्न हुए कि ये सभ्यता के सागर अवश्य वंदनीय हैं । पर आप थे ब्राह्मण-बस ! सूरिजी के समीप आकर क्षणभर स्तब्ध खड़ा होगये । आचार्यश्री ने भट्टजी को देख मन में विचार किया कि ये तो वे ही ब्राह्मण हैं जो अपने आपको अभिमान पूर्वक विद्वान कह कर हस्ति के भय से जिनमन्दिर में आकर प्रभु की मूर्ति का उपहास किया था । हो सकता है, उस समय इनकी दूसरी भावना होगी पर इस समय तो इनके हृदय ने अवश्य ही पलटा खाया है । इसी से इन्होंने आदर पूर्वक जिन स्तुति की है । खैर, देखें आगे क्या होता है ? थोड़े समय पश्चात् सूरिजी ने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा-अनुपम बुद्धि निधान महानुभाव ! आप कुशल तो है न ? बतलाइये यहां आने का क्या प्रयोजन है ? हरिभद्र ने उत्तर दिया—पूज्यवर ! क्या मैं बुद्धि निधान हूँ ? अरे ! मैं तो एक वृद्ध साध्वी की एक गाथा के अर्थ को भी नहीं समझ सका अतः आप ही कृपा कर उस गाथा का अर्थ समझाइये । सूरिजी ने गाथा का अर्थ समझाते हुए कहा—"प्रथम दो चक्रवर्ती हुए, पीछे पांच वासुदेव, पीछे पांच चक्रवर्ती पीछे एक वासुदेव और चक्री, उसके बाद केशव और चक्रवर्ती, तत्पश्चात् केशव और दो चक्रवर्ती बाद में केशव और अन्तिम चक्रवर्ती हुए"

गाथा का सम्पूर्ण अर्थ समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा—हे शुभमति ! अगर जैनागमों के सम्पूर्ण ज्ञान की अभिलाषा हो तो आप भगवती दीक्षा स्वीकार करो जिससे अपनी आत्मा के साथ दूसरों की आत्मा का कल्याण करने भी समर्थ हो जावो । सूरिजी के थोड़े से ही सारगर्भित उपदेश ने भट्टजी की भाद्रिक आत्मा पर इस कदर प्रभाव डाला कि हरिभद्र ने अपने दुराग्रह एवं परिग्रह का त्याग कर दिया और अपने कुटुम्बियों की अनुमति लेकर आचार्यश्री के चरण कमलों में जैन दीक्षा स्वीकार करली । बस, फिर तो था ही क्या ? पुनि हरिभद्र, पहिले से ही विद्वान् थे अतः उनके लिये जैनागमों का अध्ययन करना तो लीला मात्र ही था । वे स्वल्प समय में ही सर्वगुण सम्पन्न होगये । आचार्य श्री ने भी उनको सब तरह से योग्य जान कर सूरिपद दे अपने पट्ट पर स्थापित कर दिया । तत्पश्चात् आचार्यश्री हरिभद्रसूरि अपने चरण कमलों से पृथ्वी मण्डल को पावन बनाते हुए भव्य जीवों का उद्धार करने लगे ।

एक समय हरिभद्रसूरि ने अपनी बहिन के पुत्र हंस और परमहंस को दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये । उनको जैनागमों का अभ्यास करवा कर प्रकाण्ड पण्डित बना दिया पर उनकी इच्छा बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करने की हुई एतदर्थ उन्होंने गुरु महाराज से आज्ञा मांगी । पर गुरुजी ने भविष्य कालीन अनिष्ट जानकर आज्ञा नहीं दी पर इसका निषेध ही किया और कहा कि शिष्यों में उन

नहीं कर सकता अतः यहां पर भी बहुत से अन्यमत के शास्त्रों के ज्ञाता आचार्य हैं, तुम उन्हीं के पास जाकरपढ़ो।

भवितव्यता वलवान है, अतः गुरु के बचनों को स्वीकार नहीं करते हुए शिष्यों ने पुनः पुनः प्रार्थना की । इस पर गुरु ने कहा—मेरी तो इच्छा नहीं है पर तुम्हारा इतना आग्रह है तो जैसा तुमको सुख हो वैसा करो । बस, दोनों शिष्य वेश बदल कर बौद्धों के नगर में आये और खाने पीने का अच्छा प्रबन्ध होने पर वे वौद्ध शास्त्रों का अध्ययन करने में संलग्न होगये ।

बौद्धाचार्य जहां २ जैनागमों का खण्डन करते थे वहां २ हंस, परमहंस अर्थ युक्ति प्रमाण से बौद्धों का खण्डन अपने हाथों से लिख लेते थे । इस प्रकार बहुत समय तक अभ्यास किया । एक दिन इधर से तो हंस, बौद्धों का खण्डन लिख रहा था और उधर जोरों से झंझावायु चला जिससे अकस्मात् कागज उड़ गया । वह पत्र दूसरे छात्रो के हाथ लगा और उन लोगो ने जाकर बौद्धाचार्य को दे दिया । इसको पढ़ कर बौद्धाचार्य आश्चर्य के साथ दुःखी भी हुआ कि अहो मेरी असावधानी के कारण जैन धर्म के छात्र मेरा ज्ञान ले जा रहे हैं पर इसके सत्यासत्य का निर्णय कैसे हो सकता है ? इसके लिये सोपान पर एक जैन मूर्ति का अवलोकन कर सर्व विद्यार्थियों को ऑर्डर कर दिया कि इस मूर्ति पर पैर रख कर ही नीचे उतरना। इस भीषण हुक्म को सुन कर हंस परमहंस को बड़ा ही विचार हुआ । वे गुरु वचनों को याद करने लगे कारण, उनके लियेयह बड़ा ही विकट समय था । यदि मूर्ति पर पैर नहीं रक्खे जॉय तो जीवितरहना मुश्किल था और तीर्थंकरों की मूर्ति पर पैर रखना एक जिनदेव की जान बूझ कर महान् आशातना करना था अतः वे विचार विमुग्ध हो गये । इतने में उनको एक उपाय सूझ पड़ा और उन्होंने एक खड़ी का टुकड़ा हाथ में लेकर उस मूर्ति के वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत की भाँति तीन रेखा खींच दी और उसे बुद्ध की मूर्ति बनादी । बस वे भी मूर्ति पर पैर रख कर चले गये इससे सब बौद्धों को मालूम होगया कि ये जरूर ही जैन हैं । बहुत से बौद्ध उन दोनों जैन मुनियो का बदला लेने लगे तब आचार्य ने कुछ धैर्य्य रखने को कहा । जब वे दोनों रात्रि में शयन गृह में सो गये तो बौद्धों ने उनके चारों ओर पहरा लगा दिया । पर जब वे दोनों जागृत हुए तो छतों से नीचे उतर कर पलायन करने लगे । उनको भागते हुए देखकर मारो २ करते हुए हजारो बौद्ध योद्धा उनके पीछे होगये । इस पर हंस ने परम हंस को कहा कि तू जल्दी से गुरु महाराज के पास जा और मेरी ओर से कहना कि हम लोगों ने आपका कथन स्वीकार न कर जो आपका अविनय किया उसका फल हमें मिल गया है । साथ ही मेरा मिच्छामि दुक्कडं कह कर मेरी ओर से क्षमापना करना । यदि तू वहां तक न पहुँचे तो पास ही में सूरपाल राजा का राज्य है और वह शरणागत प्रतिपालक भी है अतः तू वहां जाकर अपने प्राण बचालेना । परम हंस चला गया और हंस पर हजारों योद्धा टूट पड़े । हंस ने खूब संग्राम किया पर आखिर वह था अकेला ही अतः बौद्धो ने उसको मार डाला ।

इधर परम हंस चल कर सूरपाल राजा के शरण में आया । बौद्ध को भी इस बात का संदेह हुआ अतः उन्होंने राजा को कहा—हमारे अपराधी को हमें सौंप दो । राजा ने कहा—मेरे शरण में आये हुए व्यक्ति नहीं मिल सकते हैं । अन्त में बहुत कुछ कहने सुनने के पश्चात् यह शर्त हुई कि—हम दोनों का आपस में वाद विवाद हो । उसमें यदि उसकी जय होगी तो उसको छोड़ दिया जायगा अन्यथा । हमारा अपराधी हमें देना पड़ेगा । पर हम इस जैन अपराधी का मुंह नहीं देखेंगे अतः पर्दे में रह कर ही उससे हम वाद करेंगे । पर्दा रखने का कारण यह था कि पर्दे में बौद्धो की इष्ट देवी वादी के साथ बोलती थी ।

 हंस परमहंस बौद्धो के यहाँ

वाद बहुत दिनो तक चलता रहा पर बौद्धो की ओर से देवी बोलती थी अतः कई दिनों तक किसी की हारजीत का निर्णय न हो सका। इस पर परमहंस ने अपने गच्छ की अधिष्ठायिका देवी का स्मरण किया। देवी तत्काल उपस्थित होकर कहने लगी पर्दा हटा कर वाद करने मे ही तुम्हारी विजय होगी। दूसरे दिन परमहंस ने आग्रह किया कि वाद प्रगट किया जाय। तदनुसार बौद्धो की तत्काल पराजय हो गई राजा ने भी संतुष्ट होकर परमहंस को जाने की रजा दी। जब परमहंस चला तो प्रतिज्ञा भ्रष्ट बौद्ध उनके पीछे हो गये। परम हंस खूब जल्दी चला पर एक सवार उनके समीप आता हुआ दिखाई पड़ा। दौड़ते २ एक धोबी दृष्टिगोचर हुआ तब उसके कपड़े लेकर परमहंस स्वयं धोने लगा और धोबी को आगे भेज दिया। पीछे से सवार आया और उसने कपड़े धोने वाले से पूछा कि–क्या तुमने यहां से किसी को जाते हुए देखा है ? उसने कहा–हाँ वह यहीं दौड़ता हुआ जा रहा है। जब सवार आगे निकल गया तो परमहस वहां से चलकर सत्वर ही चित्रकूट पहुंच गया और गुरु के चरणों को नमस्कार कर मारे लज्जा के मुंह नीचा कर खड़ा हो गया कारण, गुरुकी आज्ञा विना जाने का फल उसने देख लिया।

थोड़ी देर के पश्चात् परमहंस ने गुरुचरणो में नमस्कार करके वीती हुई सारी हकीकत गुरु महाराज से निवेदन की। अपने सुयोग्य शिष्य हंस का बौद्धों के द्वारा मारा जाना सुन कर हरिभद्रसूरि ने शिष्य विरह की बहुत विचारणा की। निरपराध शिष्य को बुरी मौत से मारने के कारण उनको बौद्धों पर क्रोध हो आया। वे चल कर तुरत सूरपाल राजा के पास आये। राजाने सूरिजी का यथा योग्य सत्कार वंदन किया। सूरिजी ने भी उसको धर्मलाभ रूप शुभाशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् सूरिजी ने राजा प्रति कहा–हे शरणागत प्रतिपालक राजन्! आपने मेरे शिष्य परमहंस को अपनी शरण में रख कर बचाया, इसकी मैं कहां तक प्रशंसा करूं ? आपके जैसा साहस करने वाला और कौन हो सकता है ? अब मैं प्रमाण लक्षण से बौद्धों का पराजय करना चाहता हूँ और इसलिये मैं आप जैसे सत्य शील न्याय प्रिय राजेश्वर के पास आया हूँ।

राजाने कहा—महात्मन ! आपका कहना ठीक है पर एक तो बौद्धो की संख्या अधिक है और दूसरा वे धर्मवाद से नहीं पर बाहुबल से वितण्डावाद विवाद करने वाले हैं अतः उनके लिये कुछ विशेष प्रपञ्च रचना की आवश्यकता होगी इसीलिये मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आपश्री के पास कोई अलौकिक शक्ति है।

हरिभद्र सूरि ने कहा—नरेन्द्र ! मुझे जीतने वाला कौन है ? मेरी सहायता करने वाली अम्बिका देवी है। इस बात को सुन कर राजा ने खुश हो आपने एक चतुर दूत को पठा कर बौद्धो के नगर में भेजा और बौद्धाचार्य को कहलाया कि—आप तीन लोक में प्रकाश मान हैं फिर भी बौद्धमत से वाद करने वाला एक वादी मेरे नगर में आया हैं। वे वाद कर बोद्धमत को पराजय करने की उद्घोषणा भी करते हैं। इससे हम को बहुत लज्जा आती है अतः आप यहा पधार कर वादी का पराजय करें जिससे दूसरा कोई भी वादी ऐसा साहस न कर सके। इत्यादि

दूत बड़ा ही विचक्षण एवं प्रपञ्च रचने में निपुण था। वह राजा के उक्त संदेश को लेकर राजा के पास से विदा हो बौद्ध नगर में पहुँचा और अपनी वाक पटुता से राजा के संदेश को बौद्धाचार्य के सन्मुख सुना दिया। इस पर बौद्धाचार्य ने क्रोधित होकर कहा—अरे दूत ! संसार मात्र में ऐसा कोई वादी मैंने नहा रखता है जो मेरे सामने आकर खड़ा रह सके। हाँ, कोई जैन सिद्धान्त का अनुसरण करने वाला [illegible] वादी तुम्हारे यहा आगया हो तो मैं तुम्हारे राजा के सामने क्षणमात्र में उसे परास्त कर सकता हूं। अरे दूत ! वह वादी

को मृत्यु का भय नहीं है ? दूतने कहा-भगवन् ! आपका कहना सर्वथा सत्य है और मेरा भी यही विचार है। मैं मेरी अल्पमति से आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि यद्यपि आप सर्व प्रकारेण समर्थ हो पर वाद के पूर्व यह शर्त कर लेना अच्छा होगा कि वाद में पराजित होने वाले को तप्ततेल की कड़ाई में प्रवेश करना होगा। दूत के मुंह से मनोऽनुकूल शब्द सुनकर बौद्धाचार्य ने दूत की खूब प्रशंसा की और कहा तेरा कहना सर्वथा उचित है। मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। इस पर दूत ने इस बात को विशेष दृढ़ करने के लिये कहा—भगवान ! बहुरत्न वसुंधरा, इस न्याय से कदाचित् जो कि सम्भव नहीं है फिर भी वादी द्वारा आपको पराजित होना पड़े तो अपनी उक्त शर्त पर आपको भी पूर्ण विचार कर लेना चाहिये। आपके पराजय की मेरी कल्पना आकाशपुष्पवत् असम्भव है तथापि पहिले से विचार करलेना जरूरी है। इस पर बौद्धाचार्य ने कहा—अरे दूत ! उस शंका और कल्पना ने तेरे दिल में कैसे स्थान ले लिया है ? क्या तुझे विश्वास है कि इस संसार में वादी एक क्षण भर भी वाद में मेरे सामने खड़ा रह सकेगा ? तू सर्व प्रकारेण निश्चिन्त हो दृढ़ता पूर्वक मेरे भक्त राजा सूरपाल को कहदेना की वाद विवाद के लिये शीघ्र आरहे हैं। दूत ! अब तुम जाओ, मैं तुम्हारे पीछे शीघ्र ही रवाना हो निर्दिष्ट स्थान पर आरहा हूँ।

बौद्ध नगर से चलकर दूत अपने राजा के पास आया और बौद्धाचार्य से हुए वार्तालाप को राजा के सन्मुख सविशद सुना दिया। राजाने दूत की बहुत प्रशंसा की व समुचित पुरस्कार दिया और हरिभद्र सूरि भी अपने इच्छित कार्य की सिद्धि के लिये बहुत ही आनन्दित हुए।

बस, चार दिनों के पश्चात् बौद्धाचार्य अपने विद्वान शिष्यों को साथ में लेकर सूरपाल राजा की राजसभा में उपस्थित होगये। बौद्धाचार्य ने सोचा कि इस सामान्य कार्य के लिये अपनी सहायिका तारा देवी को बुलाने की क्या जरूरत है ? ऐसे वादियों को तो मैं यो ही क्षण भर में ही परास्त कर दूंगा इस आशा पर उन्होंने देवी को नहीं बुलाई और अपनी योग्यता के बल पर विश्वास रखकर राजसभा में विवाद करने को तैयार होगये। इधर आचार्य हरिभद्रसूरि भी इसके लिये समुत्सुक थे अतःराज सभा में दोनों के बीच वाद विवाद प्रारम्भ होगया।

बौद्धाचार्य ने कहा—यह सब जगत अनित्य है। सत् शब्द केवल व्याकरण की सिद्धि के लिये ही है। इस पक्ष में यह हेतु है कि संसार के सकल पदार्थ अनित्य एवं अशाश्वत है जैसे जलधर !

हरिभद्रसूरि—यदि सकल पदार्थ क्षणिक हैं, तब स्मरण एवं विचार संतति कैसे चली आरही है ? पदार्थ को एकान्त क्षणिक स्वीकार कर लेने पर यह कैसे कहा जायगा कि हमने इस पदार्थ को पूर्व देखा।

बौद्धाचार्य—हमारे मनकी विचार संतति सदातुल्य और सनातन होती है। उस संतति में इस प्रकार का बल होता है। जिसमे हमारा व्यवहार उसी प्रकार चल सकता है।

हरिभद्रसूरि—यदि मति संतति नाशमान नहीं है तब सत् अर्थात् क्षणिक भी नहीं रही और संतति ध्रुव होने से तुम्हारे वचनो से ही तुम्हारी मान्यता का खण्डन होगया अतः तुमको अपनी मिथ्या मान्यता शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये।

बौद्धाचार्य, हरिभद्रसूरि की तर्क का समाधान नहीं कर सके। लोगों ने बौद्धाचार्य को मौन रहा देखकर यह घोषणा करदी कि बौद्धाचार्य पराजित होगये। बस उनको जबरन पकड़ कर तप्त तेल की कुण्डी में डाल दिया जिससे वे शीघ्र ही प्राणमुक्त हो गये। बौद्धाचार्य की मृत्यु का हाल देख उनका शिष्य समुदाय

बहुत ही घबरा गया और इधर उधर पलायन करने लगा। उक्त बौद्धाचार्य के शिष्य वर्ग में एक शिष्य बड़ा ही चालाक, एवं विद्वान था। वह वाद करने को हरिभद्रसूरि के सन्मुख आया पर हरिभद्रसूरि जैसे तर्क वेत्ता के सम्मुख उनकी दाल कहां तक गल सकती थी ? बेचारा क्षत्र मात्र में पराजित हो गया अतः तप्त तेल के कुण्ड का अतिथि बना दिया गया। इस तरह कई शिष्यवाद करने को आये और उन सब का यही हाल हुआ।

हताश हुए बौद्ध भिक्षु अपनी अधिष्ठायिका तारादेवी को याद कर उपालम्भ देने लगे कि—हे देवि! चिरकाल से हम चंदन, केशर, कुंकुम धूप और मिष्टान्न से तेरी पूजा करते हैं पर तू इस संकट समय मे भी हमारे काम नहीं आई अतः तेरी पूजा हमारे लिये तो निरर्थक ही सिद्ध हुई। इससे तो किसी सामान्य पत्थर की पूजा करते तो अच्छा था। समीप में रही हुई देवी भिक्षुओं के दुर्वचनों को सुनकर देवी बोली अरे भिक्षुओ! तुम लोगो ने कैसा अन्याय किया है! दूर देश से ज्ञानाभ्यास के लिये आये हुए जैन श्रमणों को जिन प्रतिमा पर पैर रखवाने का प्रपञ्च किया पर वे धर्मनिष्ट श्रमण अपना सर्वथा बचाव कर चले गये फिर भी तुम लोगो ने विना अपराध उनको मारडाला। इसी अन्याय के फल स्वरूप तुम्हारे गुरु और भिक्षुओ को यम कलेवा बन पड़ा। मैं सब हाल जानती थी पर अपने ही किये कर्मों का फल समझ कर उपेक्षा कर रही थी। अब भी मैं तुमको कहती हूँ कि तुम लोग अपने स्थान पर चले जाओगे तो मैं पूर्ववत तुम लोगों की रक्षा करती रहूंगी अन्यथा उपेक्षा ही समझना। इतना कहकर देवी अदृश्य होगई, देवी के कहे हुए वचनानुसार बौद्ध लोग भी स्वनिर्दिष्ट स्थान पर चले आये।

यहां पर कई लोग यह भी कहते हैं कि महामंत्र के बल से हरिभद्रसूरि बौद्ध भिक्षुओं को जबरन खींच २ कर तप्त तेल कुण्ड में डाल रहे थे तब उनकी धर्म माता याकिनी पञ्चेन्द्रिय जीव मारने का प्रायश्चित लेने को सूरि जी के पास गई तो उनको अपने उक्त कृत्य पर पश्चाताप हुआ और उसे छोड़ दिया।

जब यह वृत्तान्त हरिभद्रसूरि के गुरु जिनदत्तसूरि ने सुना तो शिष्य को शान्त करने के हेतु दो शान्त श्रमणो के हाथ समरादित्य के जीवन की तीन गाथा लिखकर दी और उन्हें हरिभद्रसूरि के पास भेजा। वे दोनो श्रमण भी क्रमशः राजा सूरपाल की राज सभा में आये और गुरु संदेश सुनाकर हरिभद्र सूरि की सेवा में तीनो गाथाए रखदी।

> गुणसेण अग्गिसम्मा सीहाणंदा य तह पिया पुत्ता।
> सिहजालिणी माइसुआ धण, धणसिरि मोहयपइभज्जा ॥ १ ॥
> जय विजया य सहोअर धरणो लच्छी य तहप्पइ भज्जा।
> सेण विसेणा य पित्तिय उत्ता जम्ममि सत्तिमए ॥२॥
> गुणचंद अ वाणमंतर समराइच्च गिरिसेण पाणो य।
> एगस्स त ओ मोक्खोऽणंतो अन्नस्स संसारो ॥३॥

अर्थात् प्रथम भव में गुणसेन और अग्निशर्मा, दूसरे भव में सिंह और आनन्द पिता पुत्र हुए तीसरे भव में शिखि और जालीनी माता पुत्र हुए। चतुर्थ भव में धन और धनश्री पति पत्नी हुए पांचवें भव में जय और विजय दो सहोदर हुए, छट्टे भव में धरण और लक्ष्मी पति-पत्नी हुए, सातवें भव में सेन

विषेण पित्र बन्धु हुए, आठवें भव में गुणसेन और वाणव्यंतर हुए और नववें भव में गुणसेन समरादित्य और अग्निशर्मा मतंग पुत्र हुआ समरादित्य संसार से मुक्त हुआ और गिरिसेन अनन्त संसारी हुआ।

इसी प्रकार गाथाओं को पढ़ कर अर्थ विचारने मे संलग्न हरिभद्रसूरि सोचने लगे कि एक वनवासी मुनि के पारणे का भंग होने से नियाणे के परिणाम स्वरूप भव चक्र में इतना परिभ्रमण करना पड़ा तब यहां तो क्रोध रूप दावानल की ज्वालाएं प्रसारित कर बौद्धमत के साधुओं को बुरी मौत मरवा डालने के कटु पाप का मुझे कैसे भीषण फल भोगना पड़ेगा ? इस प्रकार पश्चाताप करते हुए बौद्धो के वैर भाव को छोड़ कर गुरुमहाराज का अवर्णनीय उपकार मानते हुए हरिभद्रसूरि ने सूरपाल राजा की आज्ञा लेकर तत्काल वहां से विहार कर दिया। क्रमशः गुरु के चरणों में आकर एवंमस्तक नमा कर क्रोध वशकिये हुए अनर्थ के लिये क्षमा और प्रायश्चित की याचना करने लगे।

गुरु महाराज ने हरिभद्र के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा कि—हरिभद्र ! तू महान् विद्वानएवं प्रभावक है। तेरे जैसों से शासन की शोभा है। इस प्रकार उनकी प्रशंसा करते हुए सूरि जी ने उनको पाप का योग्य प्रायश्चित दिया।

इतना सब कुछ होने पर भी हरिभद्रसूरि को शिष्य विरह सदा खटकता रहता था। एक समय अम्बिका देवी सूरिजी के पास आई और वंदन करके उपालम्भ पूर्वक कहने लगी—गुरुदेव ! आप जैसे शास्त्रमर्मज्ञों को शिष्य मोह होना निश्चित ही एक आश्चर्य की बात है। कारण, कर्म फल तो सबको भोगना ही पड़ता है, इस पर भी आप स्वयं ज्ञानी हैं। आपको तो तप संयम की आराधना कर गुरु सेवा में रहते हुए आत्म कल्याण सम्पादन अवश्य करना चाहिये।

हरिभद्रसूरि ने कहा—देवी ! शिष्य विरह जितना दुःख नहीं है उतना अनपत्यता का दुःख है। इस पर देवी ने कहा—आपके भाग्य में शिष्य सन्तति का होना नहीं है अतः आपके शिष्य आपके निर्माण किये हुए ग्रन्थ ही रहेगे। बस, आज से आप इसी कार्य के लिये प्रयत्न शील रहिये।

देवी के वचनानुसार आपने अपना कार्य प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम तीन गाथाओं से आपने प्रतिबोध पाया था अतः प्रस्तुत तीन गाथा गर्भित समरादित्य चरित्र की रचना की और बाद में क्रमशः १४०० या १४४४ ग्रन्थों का निर्माण किया। शिष्य विरह को लक्ष्य में रख विरहपद सहित अपना सर्व घटना युक्त चरित्र बनाया। जब ग्रन्थों का विस्तृत प्रचार करने का आप विचार कर रहे थे तब कार्पासिक नामक एक भव्य पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। आपको अपने निर्माण किये ग्रन्थों का प्रचार करने के लिये 'कार्पासिक' नाम का सेठ ही योग्य मालूम हुआ। अतः प्राचीन महापुरुषों एवं भारतादि के चरित्र को सुना उसे जैन धर्म की ओर आकर्षित किया। पञ्चधूर्ताख्यान सुना कर उसकी जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धा स्थापित करवाई। दानादि के यथोचित स्वरूप को समझाया। इस पर उसने कहा—गुरु देव ! दान प्रावन जैनधर्म द्रव्य विना कैसे शोभा देता है ? सूरिजी ने कहा—हे भव्य ! धर्म की आराधना से पुष्कल द्रव्य की प्राप्ति होती है।

कार्पासिकने कहा-भगवन् ! यदि ऐसा ही है तो मैं मेरे सब कुटुम्ब के साथ आपकी सेवा करूँगा।

सूरि जी—हे भव्य ! सुन, आज से तीसरे दिन विदेशी व्यापारी नगर के बाहर आयेंगे सो तू सब से पहिले जाकर उनका सब माल खरीद लेना जिससे तुझे बहुत ही लाभ होगा। तू धनी बन जायगा पर

याद रखना कि उस द्रव्य से मेरे निर्माण किये सब शास्त्र लिखवा कर भण्डारों में रखने, साधुओं को पठन पाठन के लिये भेंट करने एवं प्रचार करने होंगे।

वस, महा पुरुषों के वचनों में कभी संदेह हो ही नहीं सकता है, तदनुसार कार्पासिक बड़ा ही धनवान् होगया। इस पर उसने सूरिजी की आज्ञा का सम्यक् प्रकारेण पालन किया।

सूरिजी ने अन्यभावुको को उपदेश न देकर एक ही भक्त से ऊच शिखरवाले चौरासी चैत्य बनाये। चिरकाल से जीर्ण शीर्ण हुए और दमक से काटे गये महानिशीथ सूत्र का पुनरुद्धार करवाया। कहा जाता है कि इस कार्य में १—आयरिय हरिभद्देण ××, २—सिद्धसेण ××, ३—वुड्ढवाई ××, ४—जक्खसेण ××, ५—देवगुत्ते ××, ६—जस्सभद्देणं ××, ७—खमासमणसीसरविगुत्त ××, ८—जिणदासगणि" ×× । "महानिशीथ सूत्र"

इन आठ आचार्यों ने महानिशीथ सूत्र का उद्धार कर पुनः लिखा था। जो आज भी विद्यमान इत्यादि आचार्य हरिभद्रसूरि ने जैनशास्त्र की महान सेवा एवं प्रभावना की। यदि यह कह दिया जाय कि जैनधर्म के साहित्य निर्माण करने में पहला नम्बर आपका है आप अपनी जिन्दगी में जितने ग्रंथों की रचना की है एक मनुष्य अपनी जिन्दगी में उतने शास्त्र शायद ही पढ़ सके?

अन्त में आचार्य श्री ने श्रुतज्ञान द्वारा अपने आयुष्य की स्थिति बहुत नजदीक जानकर तत्काल अपने गुरू महाराज के चरणों मे उपस्थित हुए चिरकालीन शिष्य विरह को त्याग कर आलोचना पूर्वक अनसन व्रत की आराधना कर समाधि पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया। जैनशासन रूपी आकाश में हरिभद्राचार्य रूपी सूर्य ने अपनी किरणो का प्रकाश दिग-दिगान्त तक प्रसरित कर जैनधर्म का बहुत उद्योत किया ऐसे महापुरुषों का विरह समाज को असह्य होना स्वभाविक ही है अतः उन महापुरुष को कोटी कोटी वन्दन नमस्कार हो।

पूज्याचार्य हरिभद्रसूरि का चरित्र मैंने प्रभाविक चरित्र के आधार पर संक्षिप्त ही लिखा है पर आचार्य भद्रेश्वरसूरि की कथावली में भी आचार्य हरिभद्रसूरि का चरित्र लिखा हुआ मिलता है किन्तु उसके अन्दर सामान्यतय कुच्छ भिन्नता मालुम होती है पाठको के जानकारी के लिये यहां पर सूचना मात्र करदी जाति है—

आचार्य हरिभद्रसूरि के शिष्यों के नामचरित्र कारने हंस और परमहंस लिखा है पर कथावली में जिनभद्र और वीरभद्र बतलाया है। शायद शिष्यो के नाम तो जिनभद्र और वीरभद्र ही हो यदि उनके उपनाम हंस और परमहंस हो तो संभव हो सकता है क्योंकि जैन मुनियों के हंस परमहंस नाम कहीं पर लिखा हुआ नहीं मिलता है। दूसरा चरित्र में हरिभद्रसूरि अपने ग्रन्थो का प्रचार के लिये 'कार्पासिक' [illegible] प्रतिबोध देकर एव व्यापार का लाभ बतला एव कार्पासिक को व्यापार में [illegible] हरिभद्रसूरि के ग्रन्थो को लिखवाकर सर्वत्र प्रचार किया तथा चौरासी [illegible] प्रतिष्ठा करवाई। इत्यादि। तब कथावली में हरिभद्रसूरि ने एक [illegible] जिनभद्र-वीरभद्र के काका लगता था उनका विचार तो संसार का त्याग कर सूरिजी के पास [illegible] था पर श्रुतज्ञान के पारगामी सूरिजी ने उसको दीक्षा न देकर ऐसी सूचना की [illegible]

से निकल खूब धनाढ्य बन गया और वह सेठ सूरिजी के कार्य में बहुत सहायक बन गया उस लल्लिग सेठ ने सूरिजी के मकान पर एक ऐसा रत्न रख दिया कि सूरिजी रात्रि में भी ग्रन्थ रचना कर सके जैसे रात्रि में वे भीत शिला पर लिखते जिसको दिन में लेखक से लिखवा लेते थे।

कइ स्थानों पर यह भी लिखा है कि हरिभद्रसूरि के जब आहार करने का समय हो जाता तब वे शंक्ख बजाकर याचकों को एकत्र कर उनकों मनेच्छित भोजन देकर बाद में आप भोजन करते थे पर कथावली में लिखा है कि शंक्ख सूरिजी नहीं पर लल्लिग सेठ बजाता था और याचकों को दान भी वही देता था सूरिजी तो उन याचकों की वन्दना के बदला में भवविरह रूप आर्शीवाद देते थे जिससे सूरिजी का नाम भी भवविरहसूरि पड़ गया था।

हरिभद्रसूरि का समय चैत्यवास का समय था और चैत्यवास करने वालों में शिथिलाचारी भी थे और सुविहितभी थे–हरिभद्रसूरि के गुरु जिनदत्तसूरि तथा विद्यागुरु जिनभटसूरि चैत्य में ही ठहरते थे पुरोहित हरिभद्र जिस समय जैनमन्दिर में आया था और प्रभु की निंदामय स्तुति की थी उस समय आचार्यजिन दत्तसूरि मन्दिर में विराजते थे तथा दूसरी बार फिर हरिभद्र जैनमन्दिर में आया और जिनेन्द्रदेव के गुणों की स्तुति की उस समय भी आचार्यश्री जिनमन्दिर में ही ठहरे हुए थे और हरिभद्र को उपदेश भी वही दिया था इससे पाया जाता है कि हरिभद्रसूरि के गुरु चैत्यवासी थे तब हरिभद्रसूरि भी चैत्यवासी हो तो असंभव जैसी कोई बात नहीं है पर हरिभद्रसूरि ने अपने ग्रन्थो में चैत्यवासियों के शिथिलाचार के लिये फटकार कर लिखा भी है इससे कहा जा सकता है कि हरिभद्रसूरि सुविहित थे चैत्यवासी नहीं। हरिभद्रसूरि ने चैत्य के लिये विरोध नहीं किया था पर शिथिलाचार का ही विरोध किया था यह बात में पहले लिख आया हू' कि चैत्य में ठहरने वाले सब शिथिलाचारी नहीं थे पर कइ सुविहित भी थे और उनमें कइ चैत्य में ठहरते थे तब कइ उपाश्रय में भी ठहरते थे पर चैत्य में ठहरने का विरोध कोइ नहीं करते थे विक्रम की ग्यारवी शताब्दी के पूर्व चैत्य में ठहरने का किसी ने भी विरोध किया हो मेरी जान में नहीं है। हरिभद्रसूरि ने समरादित्य की कथा में उनके पूर्व भावों का वर्णन में लिखा है कि साध्वियों के उपाश्रय में जिन प्रतिमाएं थी और उस मकान में ठहरी हुइ साध्वी को कैवल्य ज्ञान हुआ था यदि चैत्यवास ही अकल्पनिक होता तो उसमें ठहरने वाली साध्वी को केवल ज्ञान कैसे हो जाता ? जबकि भावनिक्षेप रूप स्वयं तीर्थङ्करों की मौजुदगी में मुनि उनके पास रहते आहार पानी क्रियाकाण्ड सब कुच्छ करते थे तब स्थापना निक्षेप रूप जिन प्रतिमा के पास मुनि ठहरते हो तो इसमें विरोध जैसी कोइ बात ही नहीं है। आज हमारी चैत्यवास से अरूची है इसका कारण चैत्यवासियों के आचार शिथिलता ही है इसके विषय मैंने एक "चैत्यवास" प्रकरण ही अलग लिखने का निश्चय किया है।

हरिभद्रसूरि का समय हरिभद्रसूरि का समय के लिये पट्टावलियांदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है कि—

पंचसए पणसीए विक्कम कालो उत्ततिा अत्थमिओ।
हरिभद्दसूरिसूरो, भवियाणं दिस्तु कल्लाणं ॥"

अर्थात् विक्रम सम्वत् ५८५ में हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास हुआ था—वर्तमान में विद्वानों की शोध

खोजने हरिभद्रसूरि का सत्ता समय विक्रम की आठवो एवं नौवी शताब्दी के बिच का समय ठहराया है इस विषय पूज्य पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी म. ने प्रभाविक चरित्र की पर्यालोचना में विविध प्रमाणों द्वारा चर्चा करते हुए पूर्वोक्त समय निश्चव किया है जिज्ञासुओं को वहां से जानकारी करनी चाहिये तथा हरिभद्र सूरि समय निर्णय नामक ट्रेक्ट से अवगत होना चाहिये—

"दिवसगणमनर्थकं स पूर्वं स्वकममिमान कदर्थ्यमान मूर्त्तिः ।
अमनुत स ततश्च मण्डपस्थं, जिनभटसूरि मुनीश्वरं ददर्श ॥ ३० ॥
अथ सुगतपुरं प्रतस्थतुस्ताव गणित सद्गुरु गौरवोपदेशौ ।
अतिशय परि गुप्त जैनलिङ्गो न चलति खलु भवितव्यतानियोगः ॥ ६० ॥
कतिपय दिवसैरे वा पतुस्तां सुगतमत्तप्रतिवद्धराजधानीम् ।
परिकलित कलावधूत वेपावतिपठनाथितया मठं तमाप्तो ॥ ६१ ॥
जिनपतिमत संस्थिताभिसंधि प्रति विहितानि च यानि दूषणा नि ।
निहतमतितयायतेर्निरीक्षातिशयवशेन निजागमप्रमाणैः ॥ ६४ ॥
दृढमिह परिहृत्य तानि हेतून् विशदतरान् जिनतर्क कौशलेन ।
सुगतमत निपेधाठ्यपुक्तान् समलिखताम परेपु पत्रकेपु ॥ ६५ ॥
इति रहसि च यावदाददाते गुरुपवमानविलोडित हि तावन् ।
अपगतममुतः परैश्च लब्धं गुरु पुरतः समनायि पत्र युग्मम् ॥ ६६ ॥
उदमिपदथ बुद्धिरस्य मिथ्याग्रहमकरा कर पूर्णचन्द्ररोचिः ।
अवददथ निजान् जिनेश बिम्बं वलजपुरोनिदधध्वमध्वनीह ॥ ७० ॥
नरक फल मिदं न कर्व हे श्रीजिनपति मुर्द्धनि पादयोनिवेशः ।
परिशटित तेरौ वरं विभिन्नौ निज चरणौ नतु जिन देहलग्नौ ॥ ७२ ॥
तदनु च खटिनी कृतोपवीतौ जिनपति बिम्ब हृदिप्रकाशनन्तौ ।
शिरसि च चरणौ निधाय या तौ प्रपत तमैं स्व लक्षितो च रौद्रौः ॥८८॥
हत हत परिभाषिणस्त्व योस्तेऽनुपद मिमे प्रयपुर्भटास्त्व दीपाः ।
अतिसविधमुपागतेपु हंसोऽवादिति तत्र कनिष्टमात्मबन्धुम् ॥९०॥
व्रज झगिति गुरोः प्रणाम पूर्वं प्रकथय मानक दुष्कृतं हि मिथ्या।
अभणित करणान्न मापराध. कृ जिनपतोविहितः समर्पणीयः ॥ ९१ ॥
इह निवसति सूरपाल नामा नरप समागत वत्सलः क्षितीशः ।
नगरमिदमिहास्य चतुरीस्पं निकटतरं नत सन्निधौ ततोऽस्य ॥ ९३ ॥
अथ महदिन वादतो विपन्नः न परमहंस हतो विपद मारात ।

विभ्रवति गुरुसंकटे विचिंत्य निजगण शासनदवता किलाम्बा ॥१०५॥
रजक इह स तेन दर्शितोऽस्य त्वरिततरः स च शीघ्रमेव तेन ।
निज भटनिवहे समार्पि धृत्वा प्रतिववले चवलं तदीव वाक्यात् ॥११७॥
इति जिनपति शासनेऽपि सूक्तं गुरुतर दोप मनुद्धृतं हि शल्यम् ।
सुगतमत भृतोनिवर्हणीयाः स्वसृसुत निर्मथनोत्थ रोष पोषात् ॥१३३॥
वचनमिति निशम्प तस्य भूपः सुगतपुरे प्रजिघाय दूतमेषः ।
अपि स लघु जगाम तत्र दूतो वचन विचक्षण अद्दत प्रपञ्च ॥१४२॥
लिखत वच इदंपणे जितो यः स विशतु तप्त वरिष्ट तैलकुण्डे ।
इति भवतु स्ववीप्सया प्रशंसामिह विदधेऽस्य गुरुर्विचार हृष्टः ॥१५०॥
इति वचननिरूत्तरी कृतोऽसौ सुगतमत्त प्रभुरचचार मौनम् ।
जित इति विदिते जनैर्निपेते द्रूततरमेष सुतप्ततैलकुण्डे ॥ १६६ ॥
दृढ़मिह निरपत्यता हि दुःखं गुरुकुल मापमलं मयिक्षतं किम् ।
इति गदति जगाद तत्र देवीश्रृणु वचनं मम सुनृवतं त्वमेकम् ॥२०२॥
नहि तव कुल वृद्धिपुण्य मास्ते ननु तव शास्त्रसमूह सन्ततिस्त्वम् ।
इति गदितवती तिरोदधे सा श्रमणपतिः स च शोक मुत्स सर्जं ॥२०३॥
चिर लिखित विशीर्ण वर्णभग्न प्रविदरपत्र समुह पुस्तक स्थम् ।
कुशलमतिरिहोद्धधार जैनोपनिपदिकं स महानिशीथ शास्त्रम् ॥२१९॥ प्र० च

वादिवैताल आचार्य श्री शान्तिसूरि

गुर्जरप्रान्त में अणहिल्लपुर नाम का धन्य धान्य से समृद्धि शाली एक प्रख्यात नगर था। यहाँ पर कनक के समान कान्तिवाला महान् पराक्रमी भीम नामाङ्कित राजा राज्य करता था।

चंद्रगच्छ रूप सीप के लिये मुक्ता फल समान थारापद्र नाम का प्रख्यात गच्छ था। उस गच्छ में विजय सिंहसूरि इति नामालकृत प्रतिभाशाली आचार्य वर्तमान थे। वे सम्पक चैत्य के समीप वर्ती स्थानों में रहते हुए भव्य अमृतोपदेश से सदैव भव्य कमल को विकसित करते थे।

पाटण के पश्चिम में उन्नायु नाम का एक ग्राम था। वहाँ श्रीमालवंशीय धनदेव नामक श्रेष्टी रहता था। धनश्री नाम की आपके धर्मपत्नी व भीम नाम का एक पुत्र था। इधर आचार्य श्रीउन्नायु ग्राम में पधारे। भीम बालक के शुभ लक्षणों को देखकर आचार्यश्री ने अपने ज्ञान से यह, जान लिया कि—यह बालक यदि दीक्षित होगा तो निश्चय ही शासनोद्धारक होगा। बस, आदिनाथ भगवान् के चैत्य में चैत्यवंदन करके वे तत्काल धनदेव सेठ के यहां गये और भीम बालक की याचना की। माता पिता ने आचार्यश्री के वचनों का सन्मान करते हुए कहा—पूज्यवर ! यदि भीम, आपके कार्य में सायक हो तो गुरु देव ! मैं निश्चय ही कृत कृत्य हूँ। इस प्रकार इनकी अनुज्ञा से सूरिजी ने बालक भीम को दीक्षित कर गुणानुरूप उसका श्रीशान्ति

नाम रख दिया। कुछ ही समय में मुनि शान्ति शास्त्रों का पारगामी होगया। आचार्यश्री ने भी अनुक्रम से उन्हें सूरिपद प्रदान कर आप अनशनाराधन में संलग्न होगये। श्रीशान्तिसूरि भी अणहिल्लपुर नरेश भीम राजा की राज-सभा मे कवीन्द्र और वादि चक्री रूप में प्रसिद्ध हुए। अर्थात् राजा ने सूरिजी को दो पद्वियों एक ही साथ प्रदान कर दी।

सिद्धसारस्वत तरीके प्रसिद्ध, अवंतिका देशवासी धनपाल नाम का एक प्रख्यात कवि था। दो दिन उपरान्त के दहि में जीव बता कर श्री महेन्द्रसूरि गुरु ने उसको प्रतिबोध दिया था। उसने तिलक मञ्जरी नामक कथा बनाकर पूज्यगुरुदेव से प्रार्थना की कि इस कथा का संशोधन कौन करेगा? इस पर आचार्यश्री ने कहा—शान्तिसूरि तुम्हारी इस कथा का संशोधन करेगा। बस, धनपाल कवि तत्काल चलकर पाटण आया। उस समय सूरिजी उपाश्रय में सूरि मंत्र का स्मरण करते हुए ध्यान संलग्न बैठे थे। उनकी प्रतिक्षा में बाहिर बैठे हुए धनपाल कवीश्वर ने नूतन अभ्यासी शिष्य के सम्मुख एक अद्भुत श्लोक बोला—

खचरागमने खचरोहृष्टः खचरेणांकित पत्र धरः। खचरवरं खचरश्चरति खचरमुखि! खचरं पश्य॥

हे मुनि! आप इसका अर्थ बतला सकते हो तो बतलाओ। इस पर नूतन मुनि ने बिना किसी कष्ट के सुंदर अर्थ कह दिया धन पाल एक दम आश्चर्य विमुढ़ होगया। पश्चात् धनपालने मेघ समान प्रचार ध्वनि से यहा पर सर्वज्ञ और जीव की स्थापना रूप उपन्यास रचा। इतने में गुरु महाराज सिंहासन पर विराजमान हुए और एक प्राथमिक पाठ के पढ़ने वाले शिष्य को कहा कि हे वत्स! स्तम्भ के आधार पर बैठकर तुमने क्या किया? उस शिष्य ने कहा—गुरुदेव! कवि ने जो कुछ कहा, उसको मैंने धारण कर लिया है। गुरु ने कहा—तो सब कह कर सुना दे। आचार्यश्री के आदेश से उसने कवि कथित वचनों को कह सुनाये इस पर कवि के आश्चर्य का पारा वार नहीं रहा। कवि ने साक्षात् सरस्वती स्वरूप शिष्य को उसके साथ भेजने के लिये आचार्यश्री से प्रार्थना की पर वाचना स्खलना के भय से उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब आचार्यश्री को ही मालव देश में पधारने की विनती की। संघ एवं राजा की अनुमति से नीगमाता के प्रधानों सहित आचार्यश्री ने मालव देश की ओर पदार्पण किया। मार्ग में सरस्वती देवी ने प्रसन्नता पूर्वक आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर कहा—चतुरंग सभा समक्ष जब आप अपने हाथ ऊंचे करोगे तब दर्शन निष्णात सब वादी पराजित हो जावेंगे। आचार्यश्री ने भी देवी के वचनों को सहर्ष स्वीकार कर लिये। आगे जाते हुए धारानगरी का राजा भोज सूरिजी के सम्मानार्थ पाच कोस सन्मुख आया। उसने यह घोषणा की कि हमारे वादियों को जो कोई जीतेगा उसको प्रत्येक के बदले में एक लाख द्रव्य इनाम में दिया जावेगा। मुझे गुजरात के श्वेताम्बर साधुओं के बल को देखना है।

पश्चात् वहां राजसभा में प्रत्येक दर्शन के पृथक् ८४ वादीन्द्रों को क्रमशः रूप कर २ के आचार्यश्री ने जीत लिया। राजाने ८४ लक्षद्रव्य देकर तुरंत सिद्ध सारस्वत कवि को बुलाया। इसके बाद भी बहुत से वादी आये और पांच सौ वादियों की जीत में ५ करोड़ द्रव्य व्यय होने से राजा सचिन्त हुआ। अब वाद विवाद के कार्य को बंद करके राजाने सूरिजी को वादीवैताल का विरद दिया। पश्चात् तिलक मञ्जरी कथा का संशोधन करके उसे शुद्ध किया।

इधर गुर्जरेश्वर का विशेषाग्रह होने से कवीश्वर सहित सूरिजी पुनः पाटन में पधारे। वहां पर कुछ दिन-

देव सेठ के पुत्र पद्म को सर्प ने काट खाया था। सविशेष मन्त्रोपचार करने पर भी स्वस्थ न होने से स्वजनों ने भविष्य की आशा पर एक खड्डे में उसे रख दिया। कुछ समय के पश्चात् अपने शिष्यों के द्वारा सूरिजी को मालूम होने पर वे स्वयं जिनदेव के घर गये और उसको वतलाने के लिये कहा। जिनदेव भी प्रसन्न हो गुरुदेव के साथ स्मशान में गया और उसे वाहिर निकाला। आचार्य ने अमृत तत्त्व का स्मरण कर उस पर हाथ फेरा जिससे वह जीवित होगया। इससे उन लोगों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा और वे सब गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। कृतज्ञता सूचक शब्दों से आचार्यदेव की स्तुति कर उनका बहुत आभार माना।

वादीवेताल शान्तिसूरि धुरंधर विद्वान्, महान् कवि, चमत्कारी, विद्या से विभूषित जैनशासन की प्रभावना करनेवाले आचार्य थे। आपने अपने शिष्यों को स्व पर मत की वाचना देकर विद्वान बनाये थे। वाद विवाद करने में वे सिद्धहस्त या पूर्ण कुशल थे। धर्म नाम के उद्भट् विद्वान वादी को तो लीलामात्र में ही परास्त कर दिया जिससे वह तत्काल ही सूरिजी के चरण कमलों में नतमस्तक होगया।

एक समय आचार्यश्री के पास द्राविड़ देश का वादी आया पर वह वादमें पशु की भांति निरुत्तर हुआ। एक दिन अव्यक्तवादी सूरिजी के पास आया परन्तु वह भी सूरिजी के असाधारण पाण्डित्य के सम्मुख लज्जित हो वापिस चला गया इससे प्रभावित हो जन-समाज कहने लगा—जब तक शान्तिसूरि रूप सहस्र-रश्मि धारक सूर्य प्रकाशित है तब तक वादी रूप खद्योत निस्तेज ही रहेंगे।

एक समय शान्तिसूरिजी थरापद्र नगर में पधारे। वहां नागिन देवी व्याख्यान के समय नृत्य करने को आई। सूरिजी ने उसके पट्टपर वैठने के लिये वासक्षेप डाला। इस प्रकार के प्रतिदिन के क्रम से आचार्यश्री और देवी के वासक्षेप डालने, लेने की एक प्रवृत्ति पड़ गई। किसी एक दिन सूरिजी वास-क्षेप डालना भूल गये अतः पट्ट पर न वैठ कर देवी आकाश में ही स्थित रही। जब रात्रि को शयन करने का समय आया तो देवी उपालम्भ देने के लिये सूरिजी के स्थान पर आई। देवी के दिव्य रूप को देख कर सूरिजी ने अपने शिष्य से कहा हे मुने! क्या यहां कोई स्त्री आई है? शिष्य ने कहा—गुरुदेव! मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ इतने ही में देवी ने आकर कहा—प्रभो! आपके वासक्षेप के अभाव में मैं खड़ी रहीतो मेरे पैरों में पीड़ा होगई है। आप जैसे प्रज्ञावानों को भी इतनी सी बात विस्मृत हो जाय यह आश्चर्य की बात है। अब आपका आयुष्य केवल ६ मास का ही रहा है अतः परलोक की आराधना और गच्छ की व्यवस्था शीघ्र कीजिये। इतना कह कर देवी अदृश्य होगई।

प्रातःकाल होते ही सूरिजी ने गच्छ एवं संघ की अनुमति लेकर अपने ३२—शिष्यों में से तीन मुनियों को आचार्य पद अर्पण किया जिनके नाम वीरसूरि, शालीभद्रसूरि और सर्वदेवसूरि हैं। ये तीनों आचार्य मानों ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्रति मूर्ति ही हैं। इनमें वीरसूरि की सन्तान अभी नहीं है पर दोनों सूरियों की सन्तान आद्यावधि विद्यमान है।

आचार्य वादीवेताल शान्तिसूरीश्वर यश श्रावक के पुत्र सोढ़ के साथ चल कर रेवताचल आये और निनेनाथ भगवान् के ध्यान में संलग्न हो २५ दिन का अनशन स्वीकार कर समाधि के साथ वि० सं० १०९६ ज्येष्ठ शुक्ला नौमि मंगलवार कार्तिका नक्षत्र में आचार्य वादीवेताल शान्तिसूरि स्वर्ग के अतिथि हुए। आचार्य शान्तिसूरि चैत्यवासियों में अग्रगण्य नेताओं की गनती में महान् प्रभाविक जैन धर्म का उद्योत करने वाले वादीवेताल बिरुद धारक महा प्रभाविक आचार्य हुए। ॐ

आचार्य सिद्धर्षि सूरि

मरुधर की मनोहर भूमि पर श्रीमालनगर जिनचैत्यों से सुशोभित था। ऐतिहासिक क्षेत्रों में इस नगर का आसन सर्वोपरि है। यहां पर वर्मलात नामक राजा राज्य करता था। चार बुद्धि का निधान रूप राज्य नीति परायण सुप्रभ नाम का राजा के प्रधान मन्त्री था जो राज तन्त्र चलाने में सर्व प्रकार से समर्थ था। स्कंध के समान सर्वभार को वहन करने वाले उस मंत्री के दत्त और शुभंकर नाम के दो पुत्र थे। इन में दत्त कोट्याधीश था और उसके माघ नामक पुत्र था। वह प्रसिद्ध पण्डित और विद्वद्जनो की सभा को रंजन करने वाला था। राजा भोज की ओर से उसका अच्छा सत्कार हुआ करता था। दूसरे शुभंकर श्रेष्ठी के लक्ष्मी नाम की प्रिया थी। इनकी उदारता और दानशीलता की प्रशंसा स्वयं इन्द्र महाराज अपने मुंह से करते थे। इच्छित फल को देने में कल्पवृक्ष के समान इनके एक पुत्र था जिसका नाम सिद्ध था। जब सिद्ध कुमार ने युवावस्था में पदार्पण किया तो उसके माता पिता ने उसकी शादी एक सुशीला, सदाचारिणी, सर्वकला कोविदा, सर्वाङ्ग सुंदरी श्रेष्टि पुत्री के साथ कर दी। कर्मों की विचित्र गति के कारण सिद्ध कुमार के घर में अपार लक्ष्मी के होने पर भी कुसगति के फल-स्वरूप वह जुआरी होगया। यहां तक कि केवल क्षुधाशांति की गर्ज से ही वह घर का मुंह देखता था। रात्रि की परवाह किये बिना आधी रात तक भी कभी घर आने का नाम नहीं लेता था। जब आता भी था तो वैरागी योगी की भांति रहता था इससे सिद्ध की स्त्री महान् दुःखी होगई। बिना रोग के ही उसका शरीर कृष होने लगा। एक दिन सासु ने कहा वहू ! क्या तेरे शरीर में कोई गुप्त रोग है ? जिसके विषय में लज्जा के मारे अभी तक तू कुछ भी नहीं कह सकी है। तू स्पष्ट शब्दों में तेरे दिल में जो कुछ भी दर्द हो कह दे, मैं उसका उचित उपाय करूंगी। सासुजी के अत्याग्रह करने पर उसने कहा—पूज्य सासुजी ! मुझे और तो कुछ भी दुख नहीं है पर आपके पुत्र रात्रि में बहुत देर करके आते है और आने पर भी योगी की तरह बिना अपराध ही मेरी उपेक्षा करते रहते हैं अतः मारे चिन्ता एवं उद्विग्नता से मेरी यह हालत हो रही है। इस पर सासु ने कहा—वहु ! तू इस बात का तनिक भी रंज मत कर। मैं पुत्र को अच्छी तरह से समझादूंगी। आज तू निश्चय होकर सो जा। उसके आने पर द्वार मैं खोल दूंगी। बस, सासु के वचनों के आधार पर बहु तो सो गई और माता जागृत रही। जब बहुत रात्रि व्यतीत हो गई तो सिद्ध ने आकर किवाड़ खट खटाये और किवाड़ खोलने के लिये आवाज दी। इस पर माता ने कृत्रिम कोप बतला कर कहा—बेटा ! इतनी देरी से आता है तो क्या तेरे लिये सारी रात्रि भी जागृत ही रहा करें। इस समय जहाँ द्वार खुला हुआ हो वहां चले जाओ, यहां द्वार नहीं खोला जायगा। माता के सरल किन्तु व्यङ्ग पूर्ण वचनो को सुन कर सिद्ध चला गया। इतनी रात्रि के चले जाने पर सिवाय [illegible]

* पपि सञ्चरतांतेषा निशि सद्गत्य [illegible] आदेश ददद्वाचा [illegible] ॥४१
रसवदर्शन निष्णाता ऊर्ध्वहस्तेऽव्ययाहुते। चतुरङ्ग सभा[illegible] सिद्ध [illegible] ॥४२
सर्वोर्व्वीयोजन धारानगरीत समागत्। तस्य तत्र गतस्य श्रीभोजो दर्शनं [illegible] ॥४४
पृष्टेऽथ वादि विजये पणसविदधे तदा। नदीया वादिन [illegible] ॥४५
एकोनकस्य प्रदास्यामि विजये वादिन प्रति। [illegible] ॥४६
शान्ति नहा प्रविष्टोऽस्ति वेतालो वादिदर्पो द्रुतः। [illegible] ॥४९
सुप सुस्वपवत्स्निग्ध दर्शिते गुरवोऽस्वदन्। [illegible] ॥५५

यतियों के अपना द्वार कौन खुला रक्खे ? बस, सिद्ध भी एक जैनसाधुओं के उपाश्रय के द्वार को खुला हुआ देख कर उसके अन्दर गया तो ज्ञान ध्यान में संलग्न बैठे हुए एक आचार्य को देखा। आचार्यश्री की दृष्टि भी सिद्ध के ऊपर पड़ी। उन्होंने सिद्ध को उपदेश देना प्रारम्भ किया — महानुभाव ! संसार असार है, लक्ष्मी चञ्चल है, कौटुम्बिक सब स्वार्थ मय सम्बन्ध हैं, शरीर अनित्य है और आयुष्य अस्थिर है अतः मनुष्य भव योग्य प्राप्त उत्तम सामग्री का सदुपयोग कर आत्म-कल्याण करना ही बुद्धिमता है। सूरिजी के उपदेश ने सिद्ध की भव्यात्मा पर इस कदर प्रभाव डाला कि उसकी इच्छा संसार का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने की होगई, इस पर गर्गर्षि ने कहा हम जैन श्रमण हैं। बिना माता पिता की आज्ञा दीक्षा दे नहीं सकते हैं। क्योंकि—इससे हमारा तीसराव्रत खण्डित हो हमें अदत्ता दान दोष का भागी होना पड़ता है।

इधर प्रभात में सिद्ध के नहीं आने से उसके घर में बड़ी हलचल मच गई। श्रेष्ठी शुभंकरने स्वयं पुत्र की शोध में समस्त नगर को शोध डाला। इतने में उपशम अमृत की उर्मिराशि में ओत-प्रोत विचित्र स्थिति युक्त पुत्र को साधुओं के उपाश्रय से आते हुए देखकर पिता ने कहा—पुत्र साधुओं की सत्संग से मुझे बहुत संतोष है पर व्यसनी पुरुषों की कुसंगति तो केतुग्रह के समान निश्चित ही दुःखोत्पादक थी। वत्स ! अब घर चलो, तुम्हारी माता उत्कंठित हो, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारे बिना वह हर तरह से सन्तापित है।

सिद्ध ने विनय पूर्वक कहा—तात ! मेरा हृदय गुरु चरण कमल में भ्रमरवत् लीन हो गया है, अब किसी भी प्रकार की अन्य अभिलाषा न कर जैन दीक्षा स्वीकार करने की मेरी इच्छा है अतः आप सहर्ष आज्ञा प्रदान करें। 'जहां द्वार खुले हों वहां चला जा' माता के इन वचनों का पालन भी तभी हो सकता है। पिताजी ! इन वचनों के सत्य सिद्ध करूंगा तभी मेरी अखण्ड कुलीनता गिनी जायगी।

पुत्र के वचनों को सुन शुभंकर असमंजस में पड़ गया। वह बोला —बेटा ! अपने अपार धन राशि है। दान पुण्य के कार्यों में उसका सदुपयोग कर अपने जीवन को गृहस्थावस्था में रह कर ही सफल बना। तेरी माता के तू इकलौती संतान है और तेरी बहू भी संतान रहित है अतः हम सब का तू ही एक आधार है। वत्स ! मेरे वचनों की अवगणना मत कर !

सिद्ध बोला—पिताजी ! इन लोभ के वचनों से मेरे ऊपर असर होने वाला नहीं है। मेरा मन तो ब्रह्मचर्य में लीन हो गया है अतः गुरु के पैरों में पड़ कर ऐसा कहो कि—गुरुवर्य ! मेरे पुत्र को दीक्षा दो। इसी में मुझेसंतोष एवं आनन्द हो।

सिद्धपुत्र का अत्याग्रह देख, शुभंकर सेठ को उसी प्रकार करना पड़ा। पवित्र मुहूर्त में गुरु महाराजने उसको दीक्षा दे दी। पश्चात् मास० प्रमाण तपस्या करवा कर शुभ लग्न में पञ्च महाव्रत के आरोपण के समय में गुरु महाराज ने अपनी पूर्व गच्छ परम्परा सुनाते हुए कहा—वत्स ! सुन—पहिले श्री वज्रस्वामी थे। उनके शिष्य श्रीवज्रसेन हुए। वज्रसेनसूरि के निनामेन्द्र, वृत्ति, चंद्र और विद्याधर ये चार शिष्य हुए। निवृत्त गच्छ में बुद्धि निधान सूराचार्य हुए। उन्हीं का शिष्य गर्गर्षि मैं तेरा दीक्षा गुरु हूँ। तुझे निरन्तर अठारह हजार शीलांग धारण करने का है, कारण चारित्र की उज्वलता का यही फल है।

गुरु की शिक्षा को स्वीकार कर सिद्धर्षि ने उग्रतप प्रारम्भ किया। और वर्तमान साहित्य का अभ्यास कर उन्होंने उपदेशमाला की बालावबोधिनी वृत्ति बनाई। इस पर कुवलयमाला नामक कथा के रचयिता इनके गुरुभाई दाक्षिण्य—चन्द्रसूरि ने समरादित्य कथा की विशेषता बताते हुए कहा कि—तुम्हारे जैसे इधर उधर के मंत्रो

से लेकर के लिख देने से कोई लेखक नहीं गिना जाता है। लेखक तो समरादित्य कथाकार जैसे होने चाहिये।

इस पर सिद्धर्षि ने विद्वानो के मस्तक को कम्पाने वाली उपमतिभवप्रपञ्च नामक स्वतंत्र महाकथा की रचना की जिसे प्रसन्न हो संघ ने व्याख्यान योग्य कथा होने से व्याख्यानकार विरुद्व दिया। स्वय दाक्षिण्यचंन्द्रसूरि भी मुग्ध हो गये।

अब तो इनकी इच्छा और भी अधिक अभ्यास करने की हुई। उन्होने विचार किया कि मैंने स्व-पर अनेक मत के तर्क ग्रंथों का अभ्यास कर लिया है पर बौद्ध ग्रंथों के लिये तो उनके देश में गये विना अभ्यास हो नहीं सकता है अतः आतुर बने हुए सिद्धर्षि ने गुरु से निवेदन किया—गुरुदेव! आज्ञा दीजिये, मैं बौद्ध शास्त्रों का अभ्यास करने कोजाऊं। श्रुतज्ञान व निमित्त को देख कर गुरु ने कहा—वत्स! तेरा उत्साह स्तुत्य है पर उनके हेत्वाभासों से तेरा चित्त कदाचित् भ्रमित् हो जाय तो उपार्जित किये हुए पुण्य को ही खो बैठेगा। यह बात मै मेरे निमित्त ज्ञान से जानता हूँ अतः तू तेरे विचारो को बदल दे। इस पर भी तेरी जाने की इच्छा हो और वहां हेत्वाभासों से प्रेरित हो चलित हो जाय तो भी एक बार मेरे पास आना और व्रत के अंगरूप रजोहरण वगैरह मुझे दे देना।

सिद्धर्षि ने कहा—गुरुदेव! मैं कृतघ्न कभी नही होंऊंगा फिर भी धतूरे के भ्रम से मन व्यक्षिप्त हो जायगा तो भी आपके आदेश का तो अवश्य ही पालन करूंगा। ऐसा कह कर गुरु को प्रणाम किया और अव्यक्त वेष में महाबोध नगर को चला गया। वहां पर सिद्धर्षि ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से सब को चकित कर दिया। बौद्धाचार्यों ने अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बहुत प्रयत्न किया पर सब निष्फल हुआ। अन्त में चन प्रपंच द्वारा प्रलोभनों से उन्हे फुसलाने का प्रयत्न किया और अतिसंसर्ग-परिचय से वे जैन आचार विचार में शिथिल हो गये। कालान्तर में सिद्धर्षि ने बौद्ध दीक्षा भी ग्रहण कर ली। बस! सिद्धर्षि की सविशेष योग्यता से आकर्षित हो उनको गुरु पद पर बौद्ध लोग स्थापित करने लगे तो सिद्धर्षि ने कहा—आते हुए मैंने प्रतिज्ञा ली थी इससे मुझे मेरे पूर्व गुरु के दर्शन, प्रतिज्ञा निर्वाहार्थ अवश्य करना है। बौद्धों ने भी उनको उनके पूर्व गुरु के दर्शनार्थ भेज दिया। क्रमशः उपाश्रय में गर्गर्षि जो सिंहासन पर बैठे हुए थे। सिद्धर्षि ने कहा—आप उर्ध्वस्थान पर शोभित होते हों। ऐसा कह कर मौन होगये।

गुरु ने भावी समझ कर सिद्धर्षि को आसन देते हुए कहा—हम चैत्यवदन करके आते हैं जितने तुम जरा चैत्यवदन सूत्र की ललितविस्तार वृत्ति देखो।

उक्तग्रथ को देख कर महामति सिद्धर्षि को अपने किये अकार्य पर रहर कर पश्चाताप होने लगा। वह विचार ने लगा कि हरिभद्रसूरि ने मुझ पातकी को तारने के लिये ही इस ग्रथ का निर्माण किया है। धन्य है, मेरे गुरु को जिसने मुझे उक्त प्रतिज्ञा देकर स्खलित होते हुए की रक्षा की है। इस प्रकार गुरु की स्तुति और अपनी आत्मा की गर्हणा करते हुए पुस्तक वाचन में संलग्न थे कि गुरु ने [illegible] में प्रवेश किया। सिद्धर्षि ने गुरु चरण में मस्तक नमा कर अपराध के लिए बारम्बार [illegible]। प्रायश्चित के लिये आग्रह किया व गुरु के उचित वचनो को न मानने का पश्चाताप किया।

गुरुने, सिद्धर्षि को सान्त्वना प्रदान कर सन्तुष्ट किया और प्रायश्चित देकर शुद्ध किया। [illegible] में गच्छ का भार सिद्धर्षि को सौंप कर गर्गर्षि आत्म-निवृत्ति के परम मार्ग में संलग्न होगये। [illegible] सिद्धर्षि ने भी अपने पाण्डित्य से जैन शासन की खूब प्रभावना की। आप भी चैत्यवासी ही थे

बौद्धों के शास्त्राभ्यास के लिये

आचार्य महेन्द्र सूरि

अवन्तिका प्रदेश में स्वर्ग सदृश धारानगरी एक समृद्धशाली नगरी थी यहां पर नीतिनिपुण पण्डितजन आश्रयदाता राजाभोजराज्यकरता था। मध्य-प्रान्तीय संकाश्यनगर निवासी देवर्षि नामकब्राह्मणकापुत्र सर्वदेवविप्र भी धारानगरी में ही रहता था। वह ब्राह्मणों के आचार विचार में निपुण व वेदवेदांगपुराणादिवैदिकधर्म शास्त्रोंमें पारंगत था। उस सर्वदेव के जय विजय की भांति धनपाल और शोभन नाम के दो पुत्र थे।

चन्द्रकुल रूप आकाश में सूर्यवत् वर्चस्वी आचार्यश्री महेन्द्रसूरि भू भ्रमन करते हुए एक समय धारा नगरी में पधारे। जब सर्वदेव विप्र ने आचार्यश्री का आगमन सुना तो वह चल कर सूरिजी के पास आया और बहुमान भक्ति पूर्वक वंदन कर तीन दिन रात्रि पर्यन्त सूरिजी की सेवा में रहा! तीसरे दिन आचार्यश्री ने पूछा हे द्विजोत्तम! बोल तेरे कुछ काम है? सर्वदेव ने कहा—भगवन्! मेरे पिताजी राज्यमान थे। उन्होंने लाखों रुपये एकत्रित किये और वह निधान अद्यावधि मेरे घर में है पर, अज्ञात है। प्रभो! आप ज्ञानी हैं अतः कृपाकर हमें किसी तरह सुखी बनावें। आचार्यश्री ने कहा—यदि हम द्रव्य बतलादें तो तू मुझे क्या देगा? विप्र ने कहा—भगवन्! जितना द्रव्य मुझको मिलेगा उसका आधा द्रव्य में आपको दूंगा सूरिजी ने कहा—केवल द्रव्य ही क्या? तेरे घर में जो कुछ भी अच्छी वस्तु हो उसका आधा भाग हमको देना। सर्वदेव विप्रने सूरिजी के उक्त वचन को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथापि इस बात को विशेष दृढ़ करने के लिये कुछ मनुष्यों को साक्षी बना लिये जिससे भविष्य में कोई भी अपने भावों में परिवर्तन कर नहीं सके।

आचार्य श्रीसर्वदेव के वहां गये और अपने ज्ञान एवं स्वरोदय के बल से उसको निर्दिष्ट स्थान बतादिया जिसको खोदने से तत्काल चालीस लक्ष स्वर्ण मुद्राएं भूमि से निकल आई। विप्रदेव स्व प्रतिज्ञानुसार बीस लक्ष स्वर्ण मुद्राएं आचार्यश्री को देने लगा पर सूरिजी ने स्वर्ण मुद्राओं के लिये सर्वथा इन्कार करदिया और कहा—मैं तेरे घर से मेरी इच्छा होगी वही आधी वस्तु ले लूंगा। इस तरह एक वर्ष व्यतीत हो गया। आखिर सर्वदेव ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मैं सूरिजी के ऋण से मुक्त न होऊंगा तब तक, घर पर नहीं जाऊंगा। इस पर सूरिजी ने कहा—तेरे दो पुत्र हैं उसमें से एक पुत्र मुझे दे दे। सूरिजी के उक्त वचन सुन सर्वदेव विचार मग्न होगया और चिन्तातुर बनकर एक खाट पर जा पड़ा। इतने में धनपाल वहां आगया और अपने पिता को चिन्तातुर देखकर कहने लगा पिताजी! आपके पास पुष्कल द्रव्य है और हम दोनों भाइयों जैसे आपके पुत्र हैं फिर आपको चिन्ता किस बात की? पिता ने अपनी चिन्ता का सब हाल कह

द्रव्यमुत्तेजित स्वान्त स्तेनासौ निर्ममे बुद्ध। अत्र दुर्बोध सम्बन्धों प्रस्तावाष्टक सम्भृताम् ॥ ९५ ॥
रम्यानुत्तनितिनवरसव्याप्तां महाकथम्। सुबोध कविता विद्वदुत्तमाङ्ग विधूनर्नीम् ॥ ९६ ॥
आन्तचित्ता कदापि स्याद् हेत्वाभासैस्तदोपकैः। अर्थी तदागम श्रेणः स्वासिद्धान्त पाङ्मुखा ॥ १०४ ॥
उपार्जितस्य पुण्यान्य नातत्त्व प्रारयसि ध्रुवम्। निमित्तत इदंमन्ये तस्मान्मऽश्रोयभी भव ॥ १०५ ॥
अथचेद्दृढटेस्ते गन्ने न निवर्तते। तथापि मम पार्श्वंचमागा वाचा मर्मकदा ॥ १०६ ॥
रक्षोद्दता स्नाक अवाप्ता समर्प्य वे। इत्युक्त्वा मौनमाविशेद् गुरुश्चित्तन्माथा परः ॥ • ॥
आचार्य हरिनद्रो मे धर्म बोध करो गुरुः प्रस्तावे भावतो हन्त स पुत्रार्थे निवेदिता ॥ १२०
भगवन्तं परिज्ञाय चैत्यवन्दन संश्रया। मदार्थ निर्मिता। येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥ १२१

कर कहा—पुत्र ! तू महेन्द्रसूरि के पास दीक्षाले तब ही मैं चिन्ता मुक्त हो सकता हूँ। पिता के वचन सुन कर धनपाल के क्रोध का पारावार नहीं रहा। उसने कहा—पिताजी ! शूद्रो से निन्दित्त प्रतिज्ञा को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। वेद वेदांग को जानने वाला ब्राह्मण नास्तिक जेन धर्म को स्वीकार करने मात्र से ही अपने पूर्वजो सहित नरक में गिर कर दुःखी होजाता है अतः मैं किसी भी हालत में आपका कहना स्वीकार नहीं कर सकता हूँ फिर आप अपनी इच्छा हो सो करें, इतना कह कर धनपाल चला गया।

थोड़ी देर के बाद शोभन आया। उसने पिताजी को चिन्तातुर देख कर पिताश्री को चिन्ता का कारण पूछा तो सर्वदेवविप्र ने उसको भी सर्व हाल सुना दिया। अपने दीक्षा के समाचारों को सुन कर शोभान को बहुत खुशी हुई। उसने कहा—पिताजी ! मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करता हूं कारण, एक तो पवित्र जैनधर्म जिससे की आराधना से ही आत्म-कल्याण है और दूसरा पिताश्री का सहर्ष आदेश, भला इससे बढ़ कर और क्या सुअवसर हाथ लग सकता है ?

पुत्र के वचनो को सुन कर सर्वदेव को बड़ा हर्ष हुआ। वह अपने कार्य से निवृत्त हो शोभन को साथ लेकर आचार्यश्री के पास गया। और शोभन को सामने रख कर सूरिजी से प्रार्थना की—दयानिधान ! मेरे दो पुत्रों में से यह शोभन हाजिर है। इसको दीक्षा देकर मुझे ऋण से उऋण करें। सूरिजी ने शोभन को परीक्षा कर उसी समय स्थिर लग्न में उसे दीक्षा दे दी। बाद में धनपाल के भय से वे वहां से विहार कर क्रमशः पाटण पहुँच गये।

जब धनपाल को खबर हुई कि पिताजी ने शोभन को जैनदीक्षा दिला दी है तो उसके कोप का पारावार नहीं रहा। उसने अपने पिताजी को यहां तक कह दिया कि पिताजी ने द्रव्य के लोभ से ही अपने पुत्र को नास्तिक एवं शूद्र जैनों को अर्पण कर दिया है। पश्चात् धनपाल ने सर्वदेव को पृथक् भी कर दिया पर उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने राजा भोज को उलट पुलट समझा कर मालवा एवं धारानगरी में जैनसाधुओं के आवागमन को ही बंद करवा दिया।

इधर गुरु कृपा से मुनि शोभन ज्ञानभ्यास कर धुरंधर विद्वान बन गये। कालान्तर में मालव प्रान्तीय संघ पाटण में आया और उसने महेन्द्रसूरि से प्रार्थना की—भगवन् ! मालवाप्रान्त से जैनश्रमणों के निर्वासित हो जाने के कारण पाखण्डियो का जोर बहुत ही बढ़ गया है अतः कृपा कर या तो आप स्वयं पधारें या विद्वान् मुनि को हमारे यहां भेजने की कृपा करें जिससे क्षेत्र पुनः जैनधर्ममय हो जाय। सूरिजीने मालवसंघ का कहना ठीक समझ कर अपने समीपस्थ मुनियो की ओर देखा तब मुनि शोभन ने कहा गुरुदेव ! मालवाप्रान्त में धर्म प्रचारार्थ जाने का आदेश मुझे मिलना चाहिये मैं धारा नगरी जाकर मेरे [illegible] धनपाल को प्रतिबोध करूगा। शोभन के उत्साह पूर्ण वचनों को सुन कर सूरिजी ने कई [illegible] मुनियोंके साथ मुनि शोभन को मालव प्रान्त की ओर विहार करवा दिया। क्रमशः मुनि शोभन [illegible] धारा नगरी में [illegible]।

शोभन मुनि ने अपने दो मुनियों को धनपाल के यहां भिक्षा के लिये भेजे। जिस समय मुनि, भिक्षार्थ धनपाल के घर गये उस समय धनपाल स्नान करने को बैठा था। साधुओंने धर्मलाभ दिया तो धनपाल की स्त्री ने कहा यहा क्या है ? इस पर धनपाल ने कहा-[illegible] अपने घर में [illegible] नहीं अतः जो कुछ भी हो मुनियो की सेवा में हाजिर कर दो। धनपाल की स्त्री ने [illegible] मुनियों ने ग्रहण कर लिया। बाद में दही के लिये कहा तो मुनिने [illegible] दिन का है ? धनपाल की स्त्री

ने कहा—क्या दही में भी जीव होते हैं ? तुम लोग तो दया का ढ़ोंग करते हो। लेना हो तो लेलो वरन शीघ्र चले जाओ। इस पर धनपाल ने कहा यदि ऐसा ही हो तो आप प्रत्यक्ष में बतलाइये। मुनियों ने उसी दही में अलतो डलवाया कि सब जीव ऊपर आ गये। कई जीव तो उसको दृष्टीगोचर भी होने लगे अतः इसको देख कर धनपाल के दिल ने पलटा खाया। वह सोचने लगा कि जैनधर्म के ज्ञानियों का ज्ञान बहुत सूक्ष्म एवं विशाल है। दही जैसे पदार्थ में गुप्त जीवों की दया निमित्त भी पहीले से ही नियम बना लेनाकी तीन दिन उपरान्त का दही अभक्ष्य है; कितनी दूर दर्शिता है ? कहां दयामय पवित्र जैनधर्म और कहा पशुहिंसामय वैदिक धर्म।

कुछ हीं क्षणों के पश्चात् धनपालने मुनियों से पूछा-आप कहा से आये और आपके गुरु कौन हैं ? मुनियों ने कहा-हम गुर्जर प्रान्त से आये हैं और आचार्य महेन्द्र सूरि के शिष्य धुरंधर विद्वान् शोभनमुनि हमारे गुरु हैं। हम चैत्य के पास ही ठहरे हुए हैं, इतना कह कर मुनि चले गये भोजनादि से निवृत्त हो धनपाल शोभन मुनि के यहां गया। अपने ज्येष्ठ भ्राता को आता देख शोभनमुनिने सामने जाकर उनका सत्कार किया और आधे आसन पर उनको बैठाया। धनपाल ने कहा-आप धन्य हैं कि पवित्र जैनधर्म के आश्रय से आत्म कल्याण कर रहे हैं। मैंने तो राजाभोज द्वारा मालवा प्रान्त में जैनश्रमणों का विहार बंद करवा कर महान् अन्तराय कर्मोपार्जन किया है। न मालूम मैं उस पाप से कैसे मुक्त होऊंगा ? पिताश्री सर्वदेव और आप ने हमारे कुल रूप समुद्र में उत्पन्न हो कर हमारे कुल की कीर्ति को उज्वल बनाई है। व अपने कुल में केवल मैं ही ऐसा पापी जन्मा की पशुहिंसा रूप अधर्म में भी धर्म मान कर सत्यधर्म की अवगणना की है। हे महा भाग्यवान् मुनि ! अब आप मुझे ऐसा मार्ग बतलाइये कि मैं कृत पाप से मुक्त हो कुछ आत्म-कल्याण कर सकूं।

शोभन मुनिने धनपाल को अहिंसाधर्म तथा देव गुरु धर्म के विषय में उपदेश दिया जि°का धनपाल की आत्मा पर गहरा प्रभाव पड़ा। बाद में भगवान् महावीर के चैत्य में जाकर धनपाल ने मनोहर शब्दों से भगवान् की स्तुति की तत्पश्चात् धनपाल अपने मकान पर गया।

एक समय राजाभोज के साथ धनपाल महाकाल महादेव के मन्दिर में गया। महादेव को देखते ही वह नमस्कार नहीं करता हुआ एक गवाक्ष में जाकर बैठ गया। राजा भोज ने बुलाया तो वह द्वार के पास बैठ गया। राजा ने सविस्मय इसका कारण पूछा तो धनपाल ने कहा कि—महादेव के पास पार्वतीजी बैठी है अतः शर्म के मारे मैं वहां आ नहीं सका। जहां दम्पति एकान्त में बैठे हों वहां तीसरे का जाना अच्छा नहीं पर लज्जा ही का कार्य है।

राजा भोज—तो इतने दिन शंकर की पूजा करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ?

धनपाल—बालभाव के कारण लज्जा ज्ञात नहीं हुई। यदि आप अपनी रमणियों के साथ एकान्त में बैठे हों तो क्या हमारे जैसों से वहां आया जा सकता है ? दूसरा अन्य देवों का चरण मस्तक वगैरह पूजा जाता है तब शिवजी का लिंग अतः दोनों तरह से संकोच की ही बात है।

एक भृंगी (शंकर के सेवक) की कृष मूर्ति देखकर राजा ने धनपाल से पूछा कि यह भृंगी की मूर्ति दुर्बल क्यों है ?

                                                        तीन दिन के बाद दहीअभक्ष

धनपाल ने सोचा कि यह सत्य कहने का समय है और ऐसे समय में मुझे सत्य कहना ही चाहिये अतः धनपाल ने कहा—

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा शास्त्रस्य किं भस्मना ?
भस्माप्यस्य किमङ्गना यदि च शा कामं परि द्वेष्टि किम् !
इत्यन्योन्य विरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिन ? भृंगी शुष्कशिरावनद्धमधिकं धत्तेऽस्थि शेषं वपुः?

अर्थात् जहां पर दिशारूप वस्त्र हैं वहां धनुष की क्या आवश्यकता ? और सशस्त्रावस्था हो तो भस्म की क्या आवश्यकता ? यदि भस्म शरीर के लगावें तो स्त्री की क्या जरूरत ? यदि रमणी है तो काम पर द्वेष क्यों ? ऐसे परस्पर विरुद्ध चिन्हों से दुःखी होने के कारण इसका शरीर कृष होगया है।

वहां से निकल कर बाहिर आये तो व्यास याज्ञवल्क्य स्मृति उच्चस्वर से वांच रहा था। राजा स्मृति के सुनने को बैठ गया पर धनपाल को विमुख देख राजा ने कहा-धनपाल ! क्या तेरे दिल में स्मृति के प्रति आदर नहीं है। इस पर धनपाल ने कहा-मै लक्षण रहित अर्थ को समझ नहीं सकता। भला, साक्षात् विरुद्ध बातें सुनने को कौन तैयार है ? मैने तो सुना है कि स्मृतियो में विष्टा खाने वाली गायका स्पर्श करने पर पाप छूट जाता है। रूझा हीन वृक्ष वंदनीय है। बकरे का वध करने से स्वर्ग मिलता है। ब्राह्मणों को दान देने से पूर्वजों को मिलता है, कपटी पुरुष को आप्त देव मानना, अग्नि में होम करने से देवताओं की प्रसन्नता स्वीकार करना इत्यादि श्रुतिस्मृतियों में बतलाई असार लीला को सुनने के लिये कौन बुद्धिमान तैय्यार है ?

एक समय यज्ञ के लिये एकत्रित किये गये पशु पुकार कर रहे थे। उक्त पुकार को राजा भोज ने सुना और धनपाल को पूछा कि ये पशु क्यों पुकार करते हैं ?

पं० धनपाल ने कहा—मै पशुओ की भाषा में समझता हूँ ! पशु कह रहे हैं कि सर्व गुण सम्पन्न ब्रह्मा बकरो को कैसे मार सकता है ? दूसरा वे कहते हैं कि हम को स्वर्ग के सुखों की इच्छा नहीं है और न हम ने प्रार्थना ही की। हम तो तृण भक्षण में ही संतुष्ट हैं यदि स्वर्ग का ही इरादा है तो अपने माता पिता पुत्र स्त्री का बलिदान कर स्वर्ग क्यो नहीं भेजतें ?

धनपाल के विपरीत वचनों को सुनकर राज कोपायमान हुआ और धनपाल को मार डालने का विचार किया। पश्चात् राज भवन की ओर आते हुए मार्ग में एक ओर एक बालिका के साथ वृद्धा [illegible] खड़ी देखी। बालिका के कहने पर उसने नव बार शिर धुनाया यह देख राजा ने धनपाल से पूछा, इस पर धनपाल ने कहा—हे नरेश ! आप को देख बालिका वृद्ध से पूछती है कि क्या [illegible], [illegible], [illegible] कुबेर, विद्याधर चन्द्र, सुरपति या विधाता है ? उक्त नव प्रश्नों के लिये नव बार शिर धुना कर वृद्धा कहती है कि नहीं, ये तो राजा भोज हैं। धनपाल के इस चातुर्य ने राजा का दिल [illegible] और उसने पं० धनपाल को नहीं मारने का निश्चय कर लिया।

एक समय राजा भोज शिकार के लिये जाते हुए पं० धनपाल को साथ में ले गये। [illegible] ने एक बाण सूअर के ऐसा मारा कि वह आक्रन्दन करता हुआ [illegible] गिर पड़ा। इस समय अन्य [illegible] ने राजा को कहा—स्वामी ! स्वय सुन्दर हैं अथवा [illegible] ने सुन्दर न हो। इतने ही में राजा को

दृष्टि धनपाल पर पड़ी और कहा कि तुमको भी कुछ कहना है ? इस पर धनपाल ने कहा—

रसातलं यातुयदत्र पौरुषं क्व नीतिरेषा शरणो ह्यदोषवान् ।
निहन्यते यद्बालिनापि दुर्बलो ह हा ! महाकष्टमराजकं जगत् ॥

ऐसा पौरुष पाताल में जाओ । ऐसा कौन सा न्याय है कि अशरण निर्बल प्राणियों को बिना अप-राध ही मार डालना । मेरी दृष्टि से तो कोई न्यायी राजा हीं नहीं है ।

एक समय नवरात्रि में गौत्रदेव की पूजा के लिये सौ बकरो को एक ही घाव में राजा ने मरवा डाले । पास में रहने वाले लोगों ने राजा की प्रशंसा सुनी पर पं० धनपाल ने स्पष्ट शब्दो में कह दिया कि ऐसे जघन्य कार्य करने वाले अपने लिये नरक के द्वार खुला करते हैं और प्रशंशा करने वाले भी उन्हीं के साथ में ।

एक समय महादेव के मन्दिर मे पवित्रारोह का महोत्सव चलता था । वहां सब के साथ राजा भी आया । राजा ने कहा—धनपाल ! तुम्हारे देव का कभी महोत्सव न होने से वे अपवित्र ही मालूम होते हैं ।

धनपाल ने कहा—पवित्र देव तो अपवित्र को पवित्र बना देता है । फिर पवित्र देव के लिये पवि-त्रता का महोत्सव कैसे ? आपके देव अपवित्र हैं अतः पवित्रता का महोत्सव करके उनको पवित्र बनाया जा रहा है । शिव में अपवित्रता होने के कारण ही उसके लिंग की लोग पूजा करते हैं ।

हास्य वदन, रति युक्त, व ताली बजाने के लिये उध्व हस्त कामदेव की मूर्ति देख राजा ने पं० धन पाल को पूछा कि यह कामदेव क्या कह रहा है ?

सिद्ध सारस्वत पण्डित धनपाल ने कहा—

स एष भुवन त्रय प्रथित सयमः शंकरो, बिभर्ति वपुषाऽधुना विरह कातरः कामिनीम् ।
अनेक किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयन् जयति जातहसः स्मरः ॥

शंकर का संयम तीन भुवन में प्रसिद्ध है पर वे विरह से कातर बन कर स्त्री को साथ में रखते हैं । इससे हास्य संयुक्त प्रिया के साथ में ताली देते हुए कामदेव जयवंत रहे ।

एक समय राजा भोज ने पूछा कि ये चार दरवाजे हैं बतना, मैं इनमें से किस द्वार से निकलूंगा ? धनपाल ने इसका उत्तर एक कागज पर लिख कर बन्द लिफाफा राजा को दे दिया । बाद में जब राजा को जाने का काम पड़ा तो वह ऊपर की छप्पर को तोड़ कर निकल गया दोपहर को जब प० धनपाल आया और कागज को खोल कर पढ़ा तो वही लिखा हुआ निकला कि राजा छप्पर तोड़कर जावेगा । इससे राजा को विश्वास हो गया कि पं० धनपाल अतिशय ज्ञानी है ।

इस प्रकार पं० धनपाल ने राजा भोज के प्रश्नो का तत्काल उत्तर दिया तथा कई समस्याए पूर्ण की । एक दिन राजा भोज ने कहा कि तुम्हारा जैनधर्म तो सत्य पर अवलम्बि है पर जैन साधु जलाशय से उदासीन क्यों रहते हैं ? पं० ने कहा कि जल स्थानों मे अनेक प्राणियों को आराम पहुँचता है पर उसके सूख जाने पर अनन्त जीवों की हानि होती है, इत्यादि । पुनः राजा ने कहा—जैनधर्म अच्छा है पर व्यव-हार मे कई लोगों को रुचि कर नहीं होता । इस पर धनपाल ने कहा—घृत अच्छा है पर संग्रहणी के रोग

वाले को नही रुचता है तो इसमें घृत का क्या दोष है ? इत्यादि वाद विनोद होता रहा।

अब पं० धनपाल ने अपना द्रव्य सात क्षेत्र में लगना प्रारम्भ कर दिया। इनमें मुख्य क्षेत्र जिन चैत्य होने से उसने भगवान् आदिनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर महेन्द्रसूरि से प्रतिष्ठा करवाई और 'जयजंतुकाय' नामक पांच सौ गाथा बना कर प्रभु की स्तुति की।

एक समय राजा भोज ने पं० धनपाल से कहा कि आप मुझे कोई जैनकथा सुनावे। इस पर नव-रस संयुक्त तिलक मञ्जरी नामक बारह हजार श्लोक वाला अपूर्व ग्रन्थ बनाकर उसको वादिवेताल शान्ति सूरि से संशोधन करवाया और राजा भोज को सुनाया। राजा ने भी कथा के नीचे स्वर्ण थाल रख कर कथा को आनन्द पूर्वक सुना और धनपाल को कहा कि इस कथा में कुछ रद्दो बदल करो। जैसे मङ्गलाचरण में आदिनाथ के बदले शिव का नाम, अयोध्या के स्थान पर धारा नगरी, शक्रावतार चैत्य की जगह महा-काल, भगवान् के स्थान शंकर और इन्द्र के स्थान मेरा नाम (भोज) रख दो तो तुम्हारी कथा या चन्द्रदिवाकर अमर बन जायगी।

प० धनपाल ने कहा—हे राजन् ! जैसे ब्राह्मण के हाथ में पय पात्र है और उसमें दारू की एक बूंद पड़ने से वह पय पात्र अपवित्र हो जाता है इसी प्रकार आपके कथनानुसार नाम बदलने से ग्राम नगर देश और राजा को हानि पहुँचती है—पुण्य क्षय हो जाता है।

पण्डित के वचन सुन कर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने कोपावेश में पुस्तक को लेकर अग्नि में डाल दी जिससे वह भस्म हो गई। इससे धनपाल को भी क्रोध आया वह राजा को उपालम्भ देकर अपने घर पर चला आया। देव पूजन व भोजन वगैरह की चिन्ता को छोड़ कर वह एक खाट पर पड़ गया। इतने में उसकी पुत्री ने आकर चिन्ता का कारण पूछा तो पण्डितजी ने सब हाल कह सुनाया। इस पर पण्डित की कन्या ने कहा—इसका आप फिक्र क्यों करते हैं ? आपकी कथा मेरे कण्ठस्थ है। आप देव पूजन व भोजन कर लीजिये मैं आपको कथा सुना दूंगी। कवीश्वर ने सब कार्यों से निवृत्त हो पुत्री से कथा सुनी पर कोई शब्द उसको याद नहीं थे अत. उनके स्थान में नये शब्द लगा कर कवीश्वर ने उस कथा को जैसे तैसे पूर्ण की

धनपाल के न आने से राजाभोज ने उसकी खबर करवाई। अन्त में ज्ञात हुआ कि धनपाल, मेरे अन्याय के कारण चला गया है। इस पर राजा को अपने कार्य का बहुत ही पश्चाताप हुआ पर अब क्या किया जा सकता था ?

भरोच नगर में सूरदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके सावित्री नाम की स्त्री थी तथा धर्म और शर्म नामके दो पुत्र थे और एक पुत्री भी थी। एक समय सूरदेव ने धर्म पुत्र को कहा कि कुछ भी विद्या का साधन कर। इस पर रुष्ट हो धर्म, घर से चला गया। क्रमशः वह जंगल में पहुँचा वहां सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर उसको वरदान दिया। पश्चात् कई वर्षों से वह धारानगरी में आया और राजा को कहा कि—मैंने बहुत से वादियों को पराजित किया है अत. आपकी सभा में भी कोई पण्डित हो तो मेरे सामने लावे मैं उसे वाद में पराजित करूंगा।

राजा भोज की सभा में एक भी ऐसा पण्डित नहीं था जो धर्म पण्डित के साथ वाद करने को तैयार हो। उस समय राजा भोज को धनपाल याद आया। राजा भोजने अपने प्रधान पुरुषों को धनपाल के पास में भेजा और नम्रता पूर्वक कहलाया कि मेरे अपराध को माफ करो राजा भोज और [illegible]

पण्डितों की सभा की इज्जत रखने के लिये आप शीघ्र पधारें इत्यादि। धनपाल ने राजा का इस प्रकार का संदेश सुनकर कहलाया कि मैं तीर्थ सेवा में संलग्न हूँ अतः आने के लिये सर्वथा लाचार हूँ। प्रधान पुरुषों ने राजा भोज को उनके कथित शब्द कह दिये इस पर राजा भोज ने धनपाल को पुनः कहलाया—कवीश्वर! मैं जैसे राजा मुञ्ज का पुत्र हूँ वैसे आप भी हैं कारण, राजा मुंज आप को भी गोद में लेकर बैठता था। उन्होंने आपको कुर्चाल सरस्वती का विरुद्ध दिया इससे आप हमारे वृद्ध भ्राता हैं। धारा की हार तुम्हारी हार और धारा की जीत तुम्हारी जीत है। मेरे लिये न भी आवें तो धारा की इज्जत के लिये ही आवे, अब इससे अधिक और क्या लिख सकता हूँ ? बस, संदेश पहुचते ही धनपाल वहां से रवाना हो धारा नगरी आया। राजा भोज ने भी पैदल चल कर धनपाल का स्वागत किया और बड़े ही आदर के साथ उनका नगर प्रवेश करवाया। इससे राजा भोज की मृत सभा में नव जीवन का सञ्चार हुआ।

दूसरे दिन इधर से तो पण्डित धनपाल का और उधर से पं० धर्म का आपस में वाद विवाद हुआ पर धनपाल के सामने कौन ठहर सकता था ? आखिर पण्डित धर्म ने कहा कि—संसार मात्र में पंडित एक धनपाल ही है। इस पर धनपाल ने कहा बहुरत्नावसुंधरा पाटण में वादिवैताळ शान्तिसूरि महान् पण्डित हैं। आप वहां जाओ और उन से कुछ अध्ययन करो। बस, पं० धर्म को जाने का बहाना मिल गया। जब पण्डित धर्म जाने लगा तो राजा भोजने उन्हें एक लक्ष द्रव्य दिया पर पं० धर्म ने स्वीकार नहीं किया। वह चल कर पाटण आया पर वादीवैताल शान्तिसूरि ने पं० धर्म को एक क्षण में पराजित कर दिया जिससे उसका गर्व गळ कर हेमसा हो गया।

दूसरे दिन राजा भोज ने धर्म को बुलाया पर मालूम हुआ कि वह विना पूछे ही रवाना हो गया तो इस पर धनपाल ने कहा—

धर्मो जयति नाधर्म इत्यली की कृतं वचः। इदं तु सत्यतां नीतं धर्मस्य त्वरीता गतिः॥

धर्म की जय और अधर्म की पराजय यह, दुनियां में कहावत है पर आज यह मिथ्या सिद्ध हुआ कारण आज धर्म का ही पराजय हुआ है। इससे राजा भोज ने धनपाल की बहुत प्रशंसा की और उनको खूब पुरस्कार दिया।

शोभनमुनि महान् पण्डित और जैनागमों के पारङ्गत थे। उन्होंने यमकालंकार संयुक्त भगवान् की स्तुतियां बनाई। वे इस कार्य में इतने संलग्न थे कि एक श्रावक के यहां से तीन बार गोचरी ले आये पर कुछ भी ध्यान न रहा। जब श्रावक ने पूछा तो मुनि ने कहा—मेरा चित्त विक्षिप्त था। गुरु महाराज को मालूम होने पर उन्होंने मुनि शोभन को चित्त विक्षोभ का कारण पूछा तो मुनिजी ने कहा—मैं स्तुतियां बनाने के ध्यान में था। गुरुदेव ने स्तुतियों को पढ़ कर बहुत ही प्रशंसा की पर संघ का दुर्भाग्य था कि शोभन मुनीश्वर व्याधि से पीड़ित हो स्वर्गवासी होगये। बाद में पं० धनपाल ने उन जिनस्तुतियों पर टीका निर्माण की।

पं० धनपाल ने अपना आयुष्य काल नजदीक जानकर गृहस्थावस्था में रहते हुए ही गुरु महाराज के चरणों में संलेखना पूर्वक समाधि मरण के साथ सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए। तत्पश्चात आचार्य महेन्द्रसूरि भी अनशन पूर्वक समाधि पूर्वक देह त्याग कर स्वर्ग के अतिथि बन गये।

इन महापुरुषों के जीवन चरित्र हमारे जैसे प्राणियों के कल्याण साधन के लिये निश्चय ही पथ-प्रदर्शक का कार्य करते हैं।

श्रीमान् सूराचार्य

विश्व—विख्यात और धनधान्य पूर्ण समृद्ध शाली गुर्जरभूमि के अलंकार स्वरूप अणहिल्ल पट्टन नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। वहां भीम भूपति राज्य करता था। उस समय के पाटण में चैत्यबासियों का साम्राज्य वर्त रहा था चैत्यवासियो मे द्रोणाचार्य अग्रगण्य नेता थे और राजा भीम के संसार पक्षमें भी मामा थे।

श्री द्रोणाचार्य के संसार पक्ष में एक संग्रामसिंह नाम का भाई था। संग्रामसिंह के एक पुत्र था जिसका नाम महिपाल था। जब संग्रामसिंह का देहान्त हो गया तब उसकी पत्नी ने अपने पुत्र महिपाल को द्रोणाचार्य के सुपुर्द कर दिया। आचार्यश्री ने भी महिपाल को होनहार व भावी महापुरुष होने वाला समझकर अपने पास में रख लिया और ज्ञानाभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया। महिपाल की बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वह दिये हुए पाठ को लीळामात्र में ही कण्ठस्थकर एवं समझ लेता था। इस तरह अपनी बुद्धि व परिश्रम के प्रभाव से वह व्याकरण, न्याय, तर्क छंद अलकारादि साहित्य में धुरंधर विद्वान बनगया। द्रोणाचार्य ने महिपाल को शुभमुहूर्त में दीक्षा दे दी और स्वल्प समय में सूरि पद अर्पण कर आपका नाम सूराचार्य रख दिया। सूराचार्य एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपकी विद्वत्ता की प्रशंसा सर्वत्र प्रसरित थी। वादी तो आपका नाम सुनकर के घबरा उठते और सुदूर प्रान्तों में पलायन कर जाते थे।

एक समय की बात है कि धारा नगरी का राजा भोज अपनी पण्डित सभा का बड़ा गौरव समझता था। वह अपने राज्य के पण्डितो के सिवाय दूसरे राजाओं के पण्डितों को कुछ चीज ही नहीं समझता था। एकदिन राजा भोज ने अपने प्रधान पुरुष को एक गाथा देकर पाटण के राजा भीम के पास भेजा। प्रधान पुरुष ने भी पाटण की राज सभा में आकर अपने राजा की गुण स्तुति की व एक गाथा राजा की सेवा उपस्थित की।

हेला निद्दलिय गइंदकुंभ-पयडियपयावपसरस्स। सीहस्स मएण समं न विग्गहो नेय संधाणं॥

उक्त गाथा की अवज्ञा करके भी पाटण नरेश ने व्यवहारिक नीत्यनुसार धारा से आये हुए प्रधान पुरुष का उचित सम्मान कर उन्हें राजभवन में ठहरा दिया। और भोजन आदि का सब प्रबन्ध कर दिया।

इधर राजा भीम ने अपने प्रधान पुरुषों को कहा कि अपनी सभा एवं नगर के पण्डितों द्वारा इस गाथा के प्रतिकार में एक गाथा तैय्यार करवावो। प्रधानों ने भी राजा की आज्ञानुसार नगर के सब पण्डितों को इस बात की सूचना करदी। नगरस्थ सकलपण्डित जन समुदाय ने स्व २ मत्यनुकूल गाथाएं उसके अनुसार में बना कर राजा भीम को सुनाई पर राजा का दिल किञ्चित् भी सन्तुष्ट नहीं हुआ असन्तुष्ट मन से राजा ने पूछा—क्या पाटण में और विद्वान कवि नहीं है ? इस पर मंत्री वगैरह नगर में निगाह करने के लिये चले। चलते हुए वे गोवीन्द्राचार्य के चैत्य में आये उस समय चैत्य में महोत्सव हो रहा था जिसमें एक नर्तकी ने भक्ति के बस हो नाच किया पर जब उसको श्रम हुआ तो एक स्तम्भ के पास आकर खड़ी हुई उस समय सूराचार्य ने एक गाथा बनाइ जिसको सुन कर राज पुरुष मंत्रमुग्ध बनकर राजा भीम के पास आकर अर्ज करदी "आचार्यगोविंदसूरि के पास सूराचार्य एक महान् विद्वान मुनि हैं। वे कवित्व शक्ति में अनन्य-धुरंधर हैं। कि धारा की गाथा का उत्तर वे ही आचार्य लिख सकेगा। राजा ने कहा कि वे तो अपने मामागुरु ही है बस" उसी समय मंत्रियों को भेज कर राजा ने उनको बुलवाया। सूराचार्य के राज सभा में आने पर राजा ने वन्दन कर उक्त गाथा के प्रतिकार में इसी के अनुरूप या इससे सवाई गाथा बनाने के लिये प्रार्थना

की। सूराचार्य ने भी तत्काल एक सुन्दर गाथा बना कर राजा को देदी।

अंधय सुयाणकालो भीमो पुहवीइनिम्मिओ विहिणा। जेण सयं पि न गणियं का गणणा तुज्स इकस्स॥

इससे राजा भीम बहुत ही सन्तुष्ट होकर कहने लगा—मेरे राज्य में ऐसे २ विद्वान् कवि विद्यमान हैं तो मेरा कौन पराभव कर सकता है? बस, राजा ने गाथा को एक लिफाफे में बन्द कर राजा भोज के मन्त्री को दे दी और उसे यथोचित सन्मान पूर्वक विदा किया।

गुरु महाराज ने शिष्यों को पढ़ाने के लिये सूराचार्य को नियुक्त किया पर सूराचार्य की प्रकृति बहुत ही तेज थी। वे अध्ययन, अध्यापन के समय ताड़ना तर्जना करने में रजोहरण की एक दण्डी हमेशा तोड़ देते थे। इससे शिष्यों का अभ्यास तो खूब जोरों से चलता था पर मार से बेचारे सब घबरा जाते थे। एक दिन सूराचार्य ने आदेश दिया कि मेरे रजोहरण में लोहे की दंडी बना कर डालो, इससे तो शिष्य-समुदाय और भी अधिक घबरा गया। किसी ने आकर गुरुमहाराज से इस विषय मे निवेदन किया तो गुरु ने सूराचार्य को उपालम्भ दिया। सूराचार्य ने कहा-मेरी नियत शिष्यों का अहित करने की नहीं पर शीघ्र ज्ञान बढ़ाने की है मेरे पढ़ाये हुए शिष्य षट् दर्शन के वाद में विजयी होंगे। गुरुदेव ने कहा तुमको वाद का गर्व है तो राजा भोज की सभा में विजय प्राप्त कर फिर शिष्यों को शिक्षा देना। गुरुदेव के व्यङ्ग पूर्ण वचनों को सुनकर सूराचार्य ने प्रतिज्ञा करली कि जबतक मैं धारानगरी जाकर भोज की सभामें विजय प्राप्त न करलूं तब तक छः ही विगयका त्याग रक्खूंगा। दूसरे दिन शिष्यों की वाचना के लिये अनध्याय (छुट्टी) करदी इससे शिष्य समुदाय में महोत्सव जैसा हर्ष मनाया गया। गोचरी के समय विगय आई पर सूराचार्य ने स्पर्श तक भी नहीं किया इस पर गुरु महाराज ने कहा—मैं तुमको मालवे जाने की आज्ञा न दूंगा पर सूराचार्य ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। इतना ही नहीं सूराचार्य ने तो यहां तक कह दिया कि यदि आप मुझे ज्यादा विवश करेंगे तो मैं मेरी प्रतिज्ञा को छोडूगा नहीं पर अनशन ही स्वीकार कर लूंगा। इस पर आचार्यश्री ने कहा वत्स! तेरी युवावस्था है अतः अपने श्रमण निर्वाहक यमनियम ब्रह्मचर्य की यथावत् रक्षा करते हुए अपनी अभीष्ट सिद्ध हस्तगत करना। सूराचार्य ने गुरुवचन को तथास्तु कह कर राजा भीम के पास गमन किया और उनसे धारानगरी जाने की अनुमति मांगी इस पर राजा ने कहा—पूज्यवर! एक तो आप हमारे धर्माचार्य हैं और दूसरे सांसारिक सम्बन्ध से सम्बन्धी भी हैं अतः मैं विदेश जाने कि आज्ञा कैसे दे सकता हूँ? इधर तो पाटण में इस प्रकार सूरिजी एवं राजा के परस्पर बातें हो रही थी कि उधर धारानगरी से राजा के प्रधान पुरुष आगये। उन्होंने राजा भीम से प्रार्थना की—हे नरेन्द्र! हमारे राजा की गाथा के उत्तर में आपके पंडितों की ओर से जो गाथा भेजी गई थी, उसको पढ़ राजा भोज बहुत ही सन्तुष्ट हुए। राजा भोज उस गाथा रचयिता पण्डितजी के दर्शन करना चाहते हैं अतः कृपा कर पंडितजी को हमारे साथ भेज देवें। राजा भीम ने कहा—ऐसे सुयोग्य विद्वान को विदेश में कैसे भेजा जा सकता है? आप ही स्वयं विचार कीजिये। राजा के निषेधक वचनों को सुनकर के भी धारा के प्रधान पुरुषों ने बहुत ही आग्रह किया तब राजा भीम ने कहा—यदि आप पण्डितजी को ले जाना ही चाहते हैं तो मैं केवल एक शर्त पर भेज सकता हूँ और वह भी यह कि राजा भोज स्वयं हमारे पण्डितजी के सन्मुख आकर स्वागत करे। प्रधानों ने इसबात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इधर पास में बैठे हुए सूराचार्य सोचने लगे कि यह तो बड़ा पुन्योदय है। कारण, मैं स्वयं धारानगरी जाना चाहता था पर राजा भोज के प्रधान पुरुष स्वयं आमन्त्रण करने को आगये। यह तो प्रारम्भ में ही शुभ संकेत रूप मङ्गलाचरण हुआ।

राजा भीम ने एक हस्ति, पांच सौ अश्व और एक हजार पैदल साथ में दिये और सूरिजी ने भी शुभमुहूर्त एवं शुभ शकुनों के साथ पाटण से मालवे की ओर विहार कर दिया। भोज के मन्त्रियो ने आगे जाकर राजा भीम की शर्त राजा भोज को सुनादी। राजा भोज सूराचार्य की प्रतीक्षा कर ही रहा था अतः उसने उनके आने के पूर्व ही स्वागत सम्बन्धी सम्पूर्ण साजो को सजवा लिया।

उधर से तो सूरिजी धारा के नजदीक पधार रहे थे और इधर से राजा भोज और नागरिक लोग बड़े ही उत्साह के साथ गज, अश्व, रथ और असंख्य पैदल सिपाहियों को साथ में लेकर सूरिजी के आगमन की इन्तजारी कर रहे थे। क्रमशः हस्तिपर आरूढ़ होकर पाटण से आते हुए आचार्यश्री एव स्वागत के लिये गज सवारी पूर्वक सन्मुख आते हुए राजा भोज की एक स्थान पर भेंट होगई तब दोनों गज से उतर गये। राजा भोजने सूरिजी का बहुत ही सत्कार किया और नगर में प्रवेश करवा कर एक बहुमूल्य चौकी पर गलीचा बिछवा कर सूरिजी को बैठाया। उस समय सूरिजी का शरीर कम्पने लगा तब राजा ने उसका कारण पूछा। उत्तर में आचार्यश्री ने कहा—राजपत्नी और शस्त्रधारियोंसे हमारा शरीर कम्पता है। इस प्रकार के विनोद के पश्चात् सूरिजी ने राजा को आशीर्वाद रूप धर्मोपदेश दिया। बाद में राजा राजमहल में गये और सूरिजी जिन मन्दिरों के दर्शन कर चूड़ा सरस्वती नामक आचार्य के उपाश्रय में गये। सूरिजी का आचार्यश्री ने सन्मान किया और वे वहा आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक समय राजा भोजने षट् दर्शनों के मुख्य २ नेताओं को बुलाकर कहा कि—तुम सब लोग अपना अलग २ मत एवं आचार रखकर लोगों को भरमाते हो अतः ऐसा न करके तुम सब लोग एक हो जाओ। प्रधानों ने कहा—आपके पूर्व परमारवंश में कई राजा होगये पर ऐसा कार्य करने में कोई भी समर्थ नहीं हुए। राजा ने कहा—पूर्व राजाओं ने गौडदेश सहित दक्षिण का राज्य थोड़ी लिया था ?

राजा ने अपने मन्तव्यानुसार सब दार्शनिकों को एकत्रित करके उनके आहार पानी का निर्बन्धन कर एक मकान में बद कर दिये। तब सबों ने सूराचार्य से प्रार्थना की कि आप गुर्जर देश के विद्वान एवं राजा के मान्य पंडित हैं अतः हम सबको कष्ट से मुक्त करावें। इस पर सूराचार्य ने राज मन्त्रियों के साथ राजा को कहलाया कि—मैं थोड़ी देर के लिये आपसे मिलना चाहता हूँ। राजा ने कहा—आप कृपाकर अवश्य ही पधारें। बस, सूराचार्य राजा के पास में गये और दर्शनों के विषय में कहने लगे—राजन् ! अनादि काल से चले आये दर्शन न कभी एक हुए है और न होने के ही हैं यदि ऐसा ही है तो आपके नगर में ८४ बाजार अलग २ है उनको तो एक कर दीजिये बस राजा के समझ में आगया। उसने सबको मुक्त करके भोजन करवाया।

धारा नगरी के विद्यालयों में राजा भोज का बनाया हुआ व्याकरण पढ़ाया जाता था। एक दिन विद्वद्मण्डली एकत्रित हो रही थी उसमें चूड़ा सरस्वती आचार्यश्री भी जा रहे थे तब सूराचार्य ने कहा—मैं भी चलूंगा आचार्य श्री ने कहा—दर्शन को मुक्त करने के बाद ने अभी तक [illegible] यहीं रहे पर सूराचार्य को धारा के पण्डितों को परिचय करवाना था इसलिये [illegible] हो ही गये। जब सब लोग निश्चित स्थान पर एकत्रित हो गये तब सूराचार्य ने कहा—छात्रों को कौन सा ग्रन्थ पढ़ाया जाता है। अध्यापक ने उत्तर दिया कि राजा भोज का बनाया हुआ व्याकरण पढ़ाया जाता है। पश्चात् अध्यापक एवं छात्रों ने व्याकरण का आद्य मंगलाचरण कहा—

चतुर्मुखमुखाम्भोज-वन हंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं शुद्धवर्णा सरस्वती ॥

सूराचार्य ने मंगलाचरण सुन कर कहा कि इस प्रकार के अद्भुत विद्वान् तो इसी देश में उत्पन्न हुए हैं क्योंकि सब विद्वानो ने तो सरस्वती को कुमारी एवं ब्रह्मचारिणी कहा है पर आपके यहां यह वधु मानी जाती है यह एक आश्चर्य की ही बात है। दूसरा जैसे दक्षिण प्रान्त में मामा की पुत्री और सौराष्ट्र में भ्राता की पत्नी देवर से सम्बन्ध कर सकती है वैसे आपके यहां लघु भ्राता के पुत्र की पत्नी गम्य हो सकती होगी। यही कारण है कि वधु शब्द के समीप 'मानसे रमतां मम' शब्द का प्रयोग किया है। हां, देश २ का व्यवहार भिन्न २ होता है। अतः सम्भव है आपके यहां यही रिवाज हो। वेचारे अध्यापक इस का कुछ भी उत्तर न दे सके।

सायंकाल के समय अध्यापक ने राजा के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। राजा ने अपने सेवकों द्वारा चूड़ा सरस्वती तथा सूराचार्य को बुलवाया। इनके आने के पूर्व एक शिला के बीच छिद्र करवा कर उसको कद्रव से पूर कर राज भवन के आगमन के आंगण में रख दिया।

जब दोनों आचार्य राज सभा में आ रहे थे तो राजा ने धनुष को कान तक; खेंच कर बाण को शिला के छिद्र पर चलाया जिसको देख सूराचार्य ने एक काव्योच्चारण किया।

विद्धाविद्धा शिलेयं भवतु परमतः कार्मुकक्रीड़ितेन। श्रीमन्पाषाण भेद व्यसन रसिकतां मुंच २ प्रसीद ॥
वेधे कौहतूलं चेत् कुलशिखरि कुलं बाणलक्षीकरोषि। ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलकः तदा याति पाताल मूलम् ॥

अहा ! इस शिला को भेद डाली अतः अब धनुष क्रीड़ा हो चुकी। अब प्रसन्न होकर पाषण भेदने की रसिकता को छोड़ दो। जो लक्ष्य भेदन में तुमको कौतूहल है और कुल पर्वत को बाणों के लक्ष बनावे हो तो हे नृप तिलक ! यह निराधार पृथ्वी पाताळ को चली जावेगी।

इस प्रकार के अद्भुत चमत्कार युक्त वर्णन से राजा संतुष्ट होगया। कवि धनपाल तो सूराचार्य की असाधारण विद्वता पर मुग्ध हो विचार करने लगा—जैनाचार्यों को कौन पराजय कर सकता है ? उसमें भी सूराचार्य जैसा प्रखर विद्वान का पराभव तो सम्भव ही नहीं है। राजा भोज ने सूराचार्य का सम्मान कर उपाश्रय पधारने की आज्ञा दी और सूराचार्य भी अपने स्थान पर आगये। बाद में राजा भोज ने अपनी सभा के पांच सौ पण्डितों को कहा कि तुम सब लोग गुर्जर देश के श्वेताम्बर आचार्य के साथ वाद विवाद करने को तैय्यार हो जाओ पर उन ५०० पण्डितों में से एक ने भी ऊंचा मस्तक कर राजा के कथन को स्वीकार नहीं किया पर निम्न मस्तक कर मौनावलम्बन ही किया। इस पर राजा ने कहा पण्डितों ! तुम गृहशूरा—अर्थात् घर में ही गर्जन करने वाले हो और मेरे से द्रव्य लेकर पण्डिताई के नाम पर अपना गुजराना चलाने वाले हो। इस पर एक चतुर पण्डित बोल उठा राजन् ! 'बहुरत्ना वसुंधरा' कहलाती है। अतः इस गुर्जरेश्वर को जीतने का एक ही उपाय है और वह यह कि किसी विज्ञ एवं चतुर विद्यार्थी को न्याय का अभ्यास करवाकर सब तरह से योग्य बनाइये और वादि के सामने खड़ा कर दीजिये। राजा ने कहा तो यह कार्य आपके ही सुपुर्द किया जाता है। बस, पण्डितों ने स्वीकार कर लिया और वे निपुणता पूर्वक अपने कार्य करने में संलग्न होगये।

जब निर्धारित कार्य सम्पन्न हो गया तब शुभमुहूर्त में सूराचार्य को वाद के लिये आमन्त्रित किया

गया। ठीक समय पर आचार्यश्री राज सभा में गये और राजा ने भी सूरिजी का यथा योग्य सत्कार कर उन्हें बढ़िया आसन बैठने के लिये दिया जिसको रजोहरण से प्रमार्जन कर सूरिजी भी यथा स्थान विराजमान हो गये। बाद में जिस विद्यार्थी को तैय्यार किया था उसको रत्न जड़ित बहुमूल्य भूषण और बढ़िया रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित कर राज सभा में लाये। राजा ने उसको अपने उत्संग में बैठा कर सूरिजी से निवेदन किया कि यह आपका प्रतिवादी है। इस पर सूरिजी ने आश्चर्य युक्त शब्दों में कहा—यह बच्चा तो अभी दूध मुंहा है। इसके मुह में दूध की गन्ध आती होगी। युवकों के वाद में यह कैसे खड़ा हो सकता है ? क्या आपकी सभा मे कोई युवक एवं प्रौढ़ पण्डित नहीं है ? इस पर राजाने कहा—आपको भले ही यह बात ऐसी दीखती हो पर यह साक्षात् सरस्वती का प्रतिरूप है। इसके साथ खुशी से वाद कीजिये। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इसकी हार में सभा के पण्डितों की हार स्वीकार करेंगे। आचार्य श्री ने कहा—ठीक है; यह बालक है अतः भले ही पूर्व पक्ष स्वीकार करे ! इसपर विद्यार्थी ने जिस प्रकार घोखन पट्टी करके पाठ कण्ठस्थ किया था उसी प्रकार अस्खलित सभा में बोल दिया। तब सूरिजी ने कहा—अरे बन्धु ! तू अशुद्ध क्यों बोलता है ? फिर से शुद्ध बोल। विद्यार्थी ने उतावल करते हुए कहा कि मेरी पाटी पर ऐसा ही लिखा हुआ है यह मुझे निश्चय है अतः अशुद्ध नहीं। इस पर सूराचार्य ने कहा—आपके देश में पाण्डित नहीं पर शिशुत्व है। अब मुझे अपने स्थान जाने की आज्ञा दीजिये। राजा और राजा की सभा के पण्डितों के चेहरे फीके पड़ गये। वे कुछ भी नहीं बोल सके। अतः सूराचार्य चलकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर आगये।

सूराचार्य राज सभा से चलकर उपाश्रय में आये तो आचार्य चूड़ा सरस्वती ने कहा—सूराचार्य ! आपने जैन शासन का जो उद्योत किया है इसके लिये हमें महान् हर्ष है पर साथ में आपकी मृत्यु का महान् दुःख भी है। राजा भोज अपनी सभा के पण्डितों का पराजय करने वालों को संसार में जीवित नहीं रहने देता है अतः आपकी मृत्यु उक्त नियमानुसार सन्निकट ही है। सूराचार्य ने कहा—आप किसी भी प्रकार का रंज न करें, मेरा रक्षण करने में मैं सर्व प्रकार से समर्थ हूं।

इधर कविचक्रवर्ती पण्डित धनपाल ने अपने अनुचरों के साथ कहलाया कि पूज्यवर ! हमारे महान् भाग्योदय है; इसीसे आप जैसे विद्वानों का सत्संग प्राप्त हुआ है पर इस भावी विकट परिस्थिति का मुझे बड़ा ही दुःख है अतः कृपा कर सत्वर हमारे यहा पधारे जावें। यहां आने पर किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा, मै आपको सकुशल गुर्जर भूमि में पहुंचा दूंगा। इसप्रकार धनपाल के अनुचर सूराचार्य के पास आकर सब निवेदन कर रहे थे कि राजा की ओर से कई घुड़ सवार वहा आ पहुंचे और चैत्य को चारों ओर से घेर लिया। वे कहने लगे कि राजसभा के पण्डितो को परास्त करने वाले आपके अतिथी को राजसभामें भेजिये कि उनका सन्मान किया जाय और जयपत्र दिया जाय। चूड़ा सरस्वती ने कहा— अभी न दरा वे अपने क्रिया काण्ड से निवृत्त होकर आवेंगे। इतने में सूराचार्य जलगार के मलीन एव जीर्ण वस्त्र पहिनकर, वेश परिवर्तित कर पानी लाने को उपाश्रयके बाहिर जारहे थे कि घुड़ सवारों ने उनको रोक दिया और कहा— जब तक गुर्जर पण्डित को हम रे अधीन न करेंगे वहा तक कोई भी भिक्षु बाहिर जा नहीं सकेगा। इस पर भिक्षु ने कहा सूरिजी अन्दर विराजमान हैं, उनको ले जाओ मैं तो यहां रहने वाला हूं। गर्मीके मारे तृषातुर बना हुआ पानी के लिये जा रहा हूं और तुमलोग मुझे रोकते हो यह ठीक नहीं है। भिक्षुके उक्त वचन से एक सवार को दया आगई और उसने उसे जाने दिया, पर वे थे सूराचार्य ही। सूराचार्य बनकर धनपाल

के घरपर आये तो धनपाल बहुत खुश हुआ और अपने विशाल भूमिगृह में छिपा दिया।

ठीक उसी समय तम्बोली लोग पान के टोकरे लेकर गुर्जर प्रान्त में जा रहे थे। धनपाल ने उनको इच्छानुकूल विपुल द्रव्य देकर कहा—मेरे भाई को सकुशल गुर्जरप्रान्त में पहुँचा देना। तम्बोलियों ने स्वीकार कर लिया। धनपाल ने तम्बोलियों को एक सौ स्वर्ण दीनारें इनायत करदी अतः तम्बोलियों ने सूराचार्य को सुरक्षित रख क्रमशः गुर्जर प्रान्त में पहुँचा दिया। जब गुरु द्रोणाचार्य और राजा भीमने सुना कि सूराचार्य भोजराजा की सभा को विजय कर निर्विघ्न तय गुर्जर भूमि में आरहे हैं तो उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ स्वागत करने की तैय्यारियां की।

गज, अश्व, रथ पैदल लेकर राजा भीम तथा असंख्य नागरिक स्त्री पुरुष स्वागतार्थ सूराचार्य के समक्ष गये। नगर को श्रृंगार कर गाजे बाजो की ध्वनि से गगन गुंजादिया। क्रमशः जयध्वनि के साथ सूराचार्य अपने गुरु की सेवा में–चैत्य में आया। राजा और प्रजा ने सूराचार्य के साहस एवं पाण्डित्य की भूरि२ प्रशंसा की और कहा–भोजराजा की सभा को जीतकर जीवित चले आना आप जैसे विचक्षणो का ही काम है, इस प्रकार गुरु महाराज ने भी सूराचार्य की विद्वत्ता एवं चतुर्यता की शोभा की।

पिछे राजा भोजके आदमियोने उपाश्रयमें जाकर निगाह की तो एक आदमी साधु का वेश पहना हुआ उपाश्रय में बैठा था जब राजपुरुषों ने उस साधु को सूराचार्य के विषय में पूछा तो उसने कहा मैं सूराचार्य को नहीं जानता हूँ मैं तो सदैव से यही रहने वाला साधु हूँ इत्यादि उन आदमियों ने सोचा कि इसमें अपनी ही भूल हुई है कि पानी लाने वाले साधु को जाने दिया वास्तव में वही सूराचार्य थे पर अब क्या हो यदि सत्य बात कही तो अपन ही मारे जायगे। तथापि राजा से अर्ज की कि हे धराधिप ! धनपाल की कारवाई से आचार्य उपाश्रय में नही मिला है अतः धनपाल के घर की तपास करना चाहिये। बस। राजा ने धनपाल का तमाम घर, तलघर वगैरह देखा पर धनपाल साफ इन्कार हो गया कि मैंने तो सूराचार्य को राज सभा में ही देखा था न जाने किसके जरिये क्या हुआ हैं। इस बात का राजा भोज ने बड़ा भारी पश्चाताप किया कि गुर्जर के श्वेताम्बर आचार्य धारा के पण्डित और राज सभा की इज्जत ले गया। खैर कुछ अर्सो से राजा ने सुन लिया कि परम पण्डित और धुरंधर विद्वान सूराचार्य गुर्जर भूमि में पहुच गये हैं फिर तो वे कर ही क्या सकते। राजा भोज को इतना तो ज्ञान हो गया कि मैं मेरी राज सभा के पण्डितों का अभिमान रखता हूँ यह व्यर्थ ही है श्वेताम्बर विद्वानों के सामने हमारी राज सभा कुछ भी गिनती में नहीं है इतना ही क्यों बल्कि कई पण्डितपन का ढोंग रख कर व्यर्थ ही मेरे से द्रव्य ले जाते हैं इत्यादि—

द्रोणाचार्य के स्वर्गवास के पश्चात् गच्छ का भार सूराचार्य ने सम्भाला। आप सदाचारी उग्रविहारी और सुविहित शिरोमणि थे। आपने जैन शासन रूप आकाश में सूर्य के भांति सर्वत्र प्रकाश कर धर्म की बहुत ही प्रभावना की। वादीजन तो आपश्री का नाम सुनते ही घबरा जाते थे। आपका शिष्य समुदाय भी बड़ा विद्वान् था। जब सूराचार्य ने अपना आयुष्य समय नजदीक जाना तो अपने पट्ट पर योग्य मुनि गर्गर्षि को आचार्य पद अर्पण कर आपने २५ दिन के अनशन से समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया। इस प्रकार महाप्रभावक सूराचार्य के चरण कमलों में कोटि २ नमस्कार हो।

द्रोणाचार्य उस समय के चैत्यवासियों में अग्रगण्य नेता थे। जिन्हों के पास आचार्य अभयदेव सूरि ने अपने रचित आगमों की टीकाओं का संशोधन करवाया था जिसका समय विक्रम संवत् ११२० से

११२८ के वीच का माना जाता है। इन द्रोणाचार्य के शिष्य सूराचार्य थे जिनकी विद्वत्ता की धाक से वादियों के समूह घबड़ा घबड़ा कर दूर भागते थे।

कई लोग यह भी कहते हैं कि आचार्य जिनेश्वरसूरि ने वि० सं० १०८० में पाटण का राजा दुर्लभ की राज सभा में सूराचार्य को परास्त किया ? पर उपरोक्त घटनाएँ एवं समय का विचार करने पर पाया जाता है कि वि० सं० १०८० में सूराचार्य को आचार्य पद तो क्या पर उनकी दीक्षा भी शायद ही हुई हो। हां राजा भीम के समय सूराचार्य उनकी सभा का एक असाधारण पण्डित था और राजा भीम का राजत्वकाल मि० सं० १०७८ से ११२० का तथा राजा भोज का समय वि० सं० १०७८ से १०९९ का है इससे पाया जाता है कि सं० १०८० में नही पर इस समय के बाद ही सूराचार्य आचार्य पद पर आसढ़ हुआ होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न तो जिनेश्वरसूरि और सूराचार्य का राजादुर्लभ की राज सभा में शास्त्रार्थ हुआ न चैत्यवासीयों का किसे ने पराजय किया और न राजा दुर्लभ ने किसी को खरतर विरुदही दिया था इस विषय का विशेष खुलासा खरतर मतोत्पति प्रकरण में दिया जायगा।

आचार्य श्रीअभयदेवसूरि

मालव प्रान्त में उच्च २ शिखरों व स्वर्णमय दण्ड कलशों से सुशोभित, धन धान्य में समृद्धिशाली स्वर्गपुरी से स्पर्धा करने वाली धारा नाम की एक विख्यात नगरी थी। वहां पर पण्डितों का सहोदर एवं आश्रयदाता राजा भोज राज्य करता था। धारानगरी में यो तो सैकड़ो हजारों कोट्याधीश व्यापारी रहते थे पर उनमें लक्ष्मीपति नामका एक विख्यात व्यापारी था जो धन में कुबेर के समान व याचकों के लिये कल्पवृक्ष वत् आधारभूत तथा धर्म में सदा तत्पर रहने वाला था।

एक समय मध्यप्रान्त की ओर से दो ब्राह्मण जो वेद वेदाङ्ग, श्रुति, स्मृति, पुराण, एवं चौदह विद्याओं में निपुण थे धारानगरी में आये। उन दोनों के नाम क्रमशः श्रीधर और श्रीपति थे। क्रमशः चलते हुए वे लक्ष्मीपति सेठ के यहां भिक्षा के लिये आये और सेठजी ने उनकी भव्याकृति को देखकर सम्मान पूर्वक उन्हें भिक्षा प्रदान की। उस समय लक्ष्मीपति सेठ के यहा एक भीत पर बीस लक्ष टकाओं वाला एक लेख लिखा जारहा था। अस्तु, वे दोनों ब्राह्मण सेठजी के यहां हमेशा भिक्षार्थ आते और अपनी बुद्धि प्रबलता के कारण उस लेख को पढ़ पढ़ कर याद कर लिया करते।

एक समय धारानगरी जल जाने से सेठजी के घर के साथ लेख भी जल गया जिससे सेठजी को बहुत ही दुख हुआ। जब प्रतिदिन के क्रमानुसार वे दोनो ब्राह्मण सेठजी के घर भिक्षार्थ आये तो सेठजी ने उनको अपने दुःख की सारी बात कह सुनाई। इस पर उन ब्राह्मणों ने उस लेख को ज्यों का त्यों लिख दिया इससे सेठजी बहुत सतुष्ट हुए और उन दोनों विप्रो को भी खुब प्रीतिदान देकर संतुष्ट किया। उनकी बुद्धि एवं कुशलता देख कर सेठजी विचारने लगे कि ये दोनो मेरे गुरु के शिष्य हो जावें तो अवश्य ही [illegible] का उद्योत करने वाले होंगे।

मरुधर के सपादलक्ष प्रान्त में कुर्चपुर नामका नगर है। वहा पर [illegible] राजा का पुत्र [illegible] राजा राज्य करता था। वहा पर चौरासी चैत्यो के अधिपति श्री वर्द्धमान सूरि नाम के आचार्य थे। वे [illegible] का अध्ययन कर चैत्यवासत्याग कर विहार करते हुए धारानगरी में पधारे। सेठ लक्ष्मीपति ने सूरिजी का आग-

मन सुन कर श्रीधर व श्रीपति नामक दोनों ब्राह्मणों को साथ में ले सूरिजी के पास आये। सूरिजी ने उन ब्राह्मणों को योग्य समझ कर जैन दीक्षा दी और क्रमशः उनको सूरिपद से विभूषित कर जिनेश्वर सूरि और बुद्धिसागरसूरि नाम प्रतिष्ठित कर दिये। बाद में, वर्द्धमान सूरिने उन दोनों सूरियों को विहार की आज्ञा देते हुए कहा कि पाटण नगर में चैत्यवासी आचार्य सुविहितों को पाटण में रहने नहीं देते हैं किन्तु विघ्न करते हैं अतः तुम वहां जाकर सुविहितों के लिये द्वारोद्धारन करो कारण तुम्हारे जैसे और कोई इस समय प्रज्ञ नहीं हैं।

जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि ने गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर तत्काल ही गुर्जर प्रान्त की ओर विहार कर दिया। क्रमशः शनै २ सूरि द्वय विहार करते हुए अणहिल्लपुर पट्टण पधार गये। स्थान के लिये घर २ पर याचना की पर पाटण जैसे लाखों की आबादी वाले विशाल शहर में ठहरने के लिये किसी ने भी मकान नहीं दिया। उभय आचार्यों को अपने गुरु वर्द्धमान सूरि के उक्त वचन सत्य प्रतीत होने लगे कि पाटण में सर्वत्र चैत्यवासियों का ही साम्राज्य है अतः सुविहितो की दाल नहीं गलती है।

उस समय पाटण में राजा दुर्लभ राज्य करता था। वह नीति और पराक्रम शिक्षा में बृहस्पति के उपाध्याय समान सर्व कला कुशल था। उस राजा के सोमेश्वर नाम का पुरोहित था। जिनेश्वर सूरि नगर में परिभ्रमन करते हुए पुरोहित के मकान पर आये और वेदवेदांग का उच्चारण करने लगे। वेदोच्चारण सुनकर उस पुरोहित ने उन सूरियों को अपने पास में बुलाया। जब सूरिजी पुरोहित के पास में आये तो पुरोहित ने उनका बहुत ही सम्मान किया। सूरिजी भी भूमि प्रमार्जन कर अपना आसन बिछाकर बैठ गये। पुरोहित को धर्मलाभ देते हुए वे कहने लगे कि वेदों और जैनागमों के अर्थ को सम्यक् प्रकार से समझ करके ही हमने अहिंसा मय जैन धर्म को स्वीकार किया है। इस पर पुरोहित ने पूछा—महात्मन्! आप लोग यहां कहां ठहरे हुए हैं?

जिनेश्वरसूरि—यहां चैत्यवासियों का प्राधान्य होने से हमें कहीं भी रहने को स्थान नहीं मिलता है।

इस पर पुरोहित ने अपने मकान के ऊपर के भाग में एक चंद्रशाला खोल दी। श्रीजिनेश्वर सूरि भी सपरिवार वहां ठहर गये और शुद्ध आहार पानी लाकर गौचरी करने लगे।

तदनन्तर पुरोहित अपने छात्रों को सूरिजी के पास में लाया और सूरिजी ने उनकी परीक्षा ली। इतने ही में चैत्यवासियों के आदमियों ने आकर जिनेश्वरसूरि को कहा कि तुम इस नगर को छोड़ कर चले जाओ कारण, इस नगर में चैत्यवासियों की सम्मति बिना किसी भी श्वेताम्बर साधु को ठहर ने का अधिकार नहीं है। इस पर पुरोहित ने कहा कि इसका निर्णय राजा की सभा में राजा के समक्ष कर लिया जायगा। बस उन लोगों ने जाकर चैत्यवासियों से कह दिया तब चैत्यवासी मिल कर राजसभा में आये और इधर से पुरोहित* भी राजा के पास आया।

पुरोहित ने राजा से कहा कि मेरे घर पर दो मुनि आये, उनको ठहरने के लिये मैंने स्थान दिया है, इसमें यदि मेरा कुछ अपराध हुआ हो तो आप मुझे इच्छानुकूल दण्ड प्रदान करें। इस पर हंस कर राजा ने चैत्यवासियों के सामने देख कर पूछा कि देशान्तर से कोई साधु आवे और उसको रहने के लिये स्थान मिले तो इसमें आप क्या दोष देखते हैं?

* कई पट्टावली कारों का कहना है कि सोमेश्वर पुरोहित संसार सम्बन्ध में जिनेश्वर सूरि के मामा लगता था।

चैत्यवासी बोले—हे नरेन्द्र ! आप पूर्व कालीन इतिहास को ध्यान पूर्वक सुनें पूर्व जमाने में वनराज चावड़ा नामक पाटण का एक विख्यात राजा हो गया है। उसको नागेन्द्र गच्छ के आचार्य देवचंद्रसूरि ने बाल्यावस्था से ही सहायता पहुँचाई तथा पंचासरा के चैत्य में रहते हुए उन्होंने इस नगर की स्थापना करवाइ और वनराज चावड़ा को राजा बनाया। वनराजने वनराजविहार-मन्दिर बनवाया और आचार्यश्री को कृतज्ञता पूर्वक असाधारण सम्मान से सम्मानित किया। उस ही समय श्रीसंघ ने राजा के समक्ष ऐसी व्यवस्था की थी कि समुदायों के भेद से समाज में बहुत लघुताआती है अतः इस पाटण नगर में चैत्यवासियों की बिनासम्मति लिये कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सके, इसमें राजा की भी सम्मति थी अस्तु।

पूर्व कालीन नरेश होगये हैं वे राजाके साथ श्रीसंघ की की हुई उक्त मर्यादा का बराबर पालन करते आरहे हैं अतः अपको भी अपने पूर्वजों की मर्यादा का दृढ़तासे पालन करना चाहिये। फिर तो जैसी आपकी इच्छा।

राजाने कहा—पूर्व नृप कृत नियमो का हम दृढ़ता पूर्वक पालन कर सकते हैं। पर गुणी जनों की पूजा का हम उल्लंघन भी नहीं कर सकते हैं। हां, आप जैसे सदाचार निष्ट महापुरुषो के शुभाशीर्वाद से ही राजा अपने राज्य को आबाद बनाते हैं इसमे किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है पर मेरी नम्र प्रार्थनानुसार भी आप इन साधुओं को नगर में रहने देना स्वीकार करलें। राजा के अत्याग्रह को भावी भाव समझ कर चैत्यवासियों ने स्वीकार कर लिया।

सोमेश्वर पुरोहित ने तत्काल राजा से प्रार्थना की कि इन साधुओं के रहने के लिये भूमि प्रदान करें। इतने ही में ज्ञानदेव नामक शिवाचार्य राजसभा में आया। राजाने उसका सत्कार कर उसे आसन पर बैठाया। कुछ समय के पश्चात् शिवाचार्य ने कहा राजन्! आज मैं आपसे कुछ कहने के लिये आया हूँ और वह यह है कि यहां दो जैनमुनि आये हैं उनको ठहरने के लिये स्थान दो और निष्पाप गुणीजनों की पूजा करो। मेरे उपदेश का सार भी यही है कि बाल भाव का त्याग कर परम पद में स्थिर रहने वाला शिव ही जिन है। दर्शन में भेद डालना मिथ्यात्व का लक्षण है इस पर राजा ने बाजार में दो दुकानों के बीच में भूसा डालने के स्थान को साधुओ के लिये पुरोहित को दे दिया। उसी भूमिपर पुरोहित ने जिनेश्वर सूरिके लिये उपाश्रय बनाया और उसी मकान में जिनेश्वरसूरि ने चतुर्मास किया। बस, उसी दिन से वसतिवास की स्थापना हुई। बुद्धिसागरसूरिने पाटण में ही रहकर आठ हजार श्लोक वाले बुद्धिसागर नामके व्याकरण का निर्माण किया। बाद जिनेश्वरसूरि धारा नगरी की ओर विहार कर दिया।

कइ लोग यह भी कहते है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे वहां राजा दुर्लभ की राज सभा में चैत्यावासियो के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ जिसमे जिनेश्वरसूरि की विजय हुई उसमें राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को 'खरतर' विरुद दिया परन्तु उपरोक्त लेख से वह बात कल्पित एवं मिथ्या ठहरती है कारण इस लेख में न तो जिनेश्वरसूरि राज सभा में गए थे न किसी चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ ही हुआ। और न राजा दुर्लभ ने किसी को विरुद ही दिया। इस लेख में तो स्पष्ट लिखा है कि राजसभा में पुरोहित सोमेश्वर गया था और राजा दुर्लभने चैत्यवासियों को अच्छे एवं सदाचार निष्ट कह कर आये हुए साधुओं को नगर में ठहरने देने की सम्मति मांगी थी और पुरोहित के कहने पर राजा ने बाजार में भूसा डालने की बेकार भूमि पड़ी थी जिसको ज्ञानदेव शिवाचार्य के उपदेश से भूमिदान दिया जिस पर जिनेश्वरसूरि के ठहरने के लिये पुरोहितने मकान बनाया और जिनेश्वरसूरिने उसी मकान में चतुर्मास कर पाटण में वसतिवास नाम के

नये मत्त की नींव डारी जिसकी पहलेसे ही नगर निवासियों को शंका थी और इस कारण ही पाटण की जनता ने घरघर पर याचना करने पर भी जिनेश्वर को मकान नहीं दिया था। उपरोक्त लेख राजगच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने अपने प्रभाविक चरित्र में लिखा है पर खास जिनेश्वरसूरि के संतान परम्परा में हुए आचार्य ने अपने ग्रन्थ में भी इस विषय में लेख लिखा है जिसका भावार्थ निम्न दिया जाता है।

× इतः सपादलक्षेऽस्ति नाम्ना कूर्च्चपुरं पुरम्। मषीकूर्चकमाधातुं मदलं शात्रवानने॥
मल्लभूपाल पौत्रोऽस्ति प्राक्पोत्रीव धोराधरः। श्रीमान् भुवनपालाख्यो विख्यातः सान्वयाभिधः॥
तत्रासीत् प्रशम श्रीभिर्वर्द्धमान गुणोदधिः। श्रीवर्द्धमान इत्याख्यः सूरिः संसारपारभूः॥
चतुर्भिरधिकाशीतिश्चैत्यानां येन तत्यजे। सिद्धान्ताभ्यासतः सत्यतत्त्वं विज्ञाय संसृतेः॥
अन्यदा विहरन् धारापुर्यां धाराधरोपमः। आगाद् वाग्ब्रह्मधाराभिर्जनं मुज्जीवयन्नयम्॥
लक्ष्मीपतिस्तदाभ्योकर्ण्य श्रद्धालक्ष्मीपतिस्ततः। ययौप्रद्युम्न—शाम्बाभ्यामिव ताभ्यां गुरोर्नतौ॥
सर्वाभिगम पूर्वं स प्रणम्योपाविशत् प्रभुम्। तौ विधाय निविष्टौ च करसम्पुटयोजनम्॥
पर्यंकलक्षणवर्यां च दध्यौ विश्व तनुं तयोः। गुरुराह्वानयोर्मूर्तिः सम्यक् स्वपरजित्वरी॥
तौ च प्राग्भव सम्बद्धाविवानिमिषलोचनौ। वीक्षमाणौ गुरोरास्यं व्रतयोग्यौ च तेर्मतौ॥
देशनाभीशुभिध्वंस्ततामसौ बोधरङ्गिणौ। लक्ष्मीपत्यनुमत्या च दीक्षितौ शिक्षितौ तथा॥
महाव्रतभरोद्धारधुरीणौ तपसां निधी। अध्यापितौ च सिद्धान्तं योगोद्वहन पूर्वकम्॥
ज्ञात्वौचित्यं च सूरित्वे, स्थापितौ गुरुभिश्च तौ। शुद्धवासो हि सौरभ्यवासंसमनुगच्छति॥ ४२॥
जिनेश्वरस्ततःसूरिरपरोबुद्धिसागरः। नामभ्यांविश्रुतौपूज्यैर्विहारेऽनुमतौ तदा॥ ४३॥
ददे शिक्षेति तैः, श्रीमत्पत्तने चैत्यसूरिभिः। विघ्नं सुविहितानां, स्यात्तत्रावस्थानवारणात्॥ ४४॥
युवाभ्यामपनेतव्यं, शक्त्या बुद्ध्याच तत्किल। यदिदानींतने काले, नास्ति प्राज्ञोऽभवत्समः॥ ४५॥
अनुशास्ति प्रतीच्छाव, इत्युक्त्वा गूर्जरावनौ। विहरन्तौ शनैः, श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा॥ ४६॥
सद्गीतार्थ परीवारौ, तत्रभ्रान्तौगृहे गृहे। विशुद्धोपाश्रयालाभाद्वाचं, सस्मरतुर्गुरोः॥ ४७॥
श्रीमान् दुर्लभराजाख्यस्तत्र चासीद्विशांपति। गीष्पतेरप्युपाध्यायो, नीति विक्रमशिक्षणे (णात्)॥ ४८॥
श्री सोमेश्वरदेवाख्यस्तत्र, चासीत्पुरोहितः। तद्गेहे जग्मतुर्युग्मरूपौ, सूर्यसुताविव॥ ४९॥
तद्द्वारेचक्रतुर्वेदोच्चारं, संकेतसंयुतम्। तीर्थं सत्यापयन्तौ च, ब्राह्मं पैत्र्यंच दैवतम्॥ ५०॥
चतुर्वेदीरहस्यानि, सारिणी शुद्धिपूर्वकम्। व्याकुर्वन्तौसशुश्राव, देवतावसरेततः॥ ५१॥
तद्ध्यानध्याननिर्मग्नचेता. स्तम्भितवत्तदा। समग्रेन्द्रियचैतन्यं, श्रुत्योरेवसनीतवान्॥ ५२॥
ततोभक्त्याभिजं, बन्धुमाप्यायवचनामृतैः। आह्वानायतयोः, प्रैषीत्प्रेक्षाप्रेक्षीद्विजेश्वरः॥ ५३॥
तौ च दृष्ट्वान्तराय तौ, दध्यावम्भोजभूः किमु?। द्विधाभूयाद(?)भाद्दच, दर्शनंशस्यदर्शनम्॥ ५४॥
दिष्टमन्द्रासनादीनि. तद्दत्तान्यासनानि तौ। समुपाविशतांशुद्धस्वकम्बलनिषद्ययोः॥ ५५॥
वेदोपनिषदाजैन, वत्त्वश्रुतगिरौतथा। वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावन्ययचां तदाशिषम्॥ ५६॥

तथाहि—"अपाणिपादो ह्यमनोग्रहीता। पश्यत्यचक्षु स्शृणोत्यकर्णः॥
सर्वेत्तिविश्वं, नहितस्यास्तिवेत्ता। शिवोह्यरूपीसजिनोऽवताद्वः॥ ५७॥
इत्यनुश्रावको रम्यगवगत्यार्थसंग्रहम्। दययाऽन्यविकर्जनं, तत्रावामाद्रियाद्वहे॥ ५८॥
पुरान्तवस्थितौ कुत्रेत्युक्ते, तेनोचतुश्च तौ। न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः॥ ५९॥
चन्द्रशालां निजां चन्द्रज्योत्स्नानिर्मलमानसः। सतयोरार्प्यंयत्तत्र, तस्थतुस्सपरिच्छदौ॥ ६०॥

 पाटण में वसति वास मत्त का प्रादुर्भाव—

भावार्थ—वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते है अतः तुम जा कर सुविहितो के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरु आज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहां प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये स्थान नहीं मिला उस समय उन्होंने गुरु के वचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे पाटण में चैत्यवासियों का ऐसा ही जोर है खैर उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनके पुरोहित सोमेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि चल कर पुरोहित के वहाँ गये परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें ? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह वितीकार चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (प्र० च० उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ कारण यहां चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जा कर इस बात का निर्णय कर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जा कर सब हाल कह दिया। उधर से सब चैत्य वासी भी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। आखिर राजा से पुरोहित ने वसति प्राप्त कर वहाँ उपाश्रय बनाया उसमें ही जिनेश्वरसूरि ने चतुर्मास किया उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे। इसमें भी राजसभा में जिनेश्वरसूरि नहीं पर पुरोहित ही गया था।

जिनेश्वरसूरि धारानगरी में पधारे। वहां पर महीधर सेठ रहता था। उसके धनदेवी नाम की स्त्री और अभयकुंवर नामका पुत्र था। अभयकुमार सूरिजी के उपदेश को श्रवण कर संसार से विरक्त हो गया क्रमशः आचार्यश्री के पास में ही उन्होंने भगवती दीक्षा ग्रहण करली। सर्वगुण सम्पन्न होने पर वर्द्धमान सूरि की आज्ञा से जिनेश्वरसूरि ने अभयमुनि को सूरिपद अर्पण कर आपका नाम अभयदेवसूरि रख दिया।

तत्थ य दुल्लहराओ राया रज्जं सव्व कलंकिओ। तत्थ (रस) पुरोहिअसारो सोमेसरनामओ आसी ॥ ५ ॥
तस्स घरे संपत्ता (ते पत्ता) सोऽविहु तणयाण वेअअज्झयणं। कारेमाणोदिट्ठोसिट्ठो सूरिप्पहाणेहिं ॥ ६ ॥
सुणु वक्खाणं वेअस्स एरिसं सारणीइ परिसुद्धं सोऽवि सुणंतो उप्फुल्लओअण्णे विम्हिओ जाओ ॥ ७ ॥
किं बम्हा रूवजुयं काऊणं अत्तणा इसउहण्णो। इहंचिंतंतो विप्पो पयपउमं वंदई तेसिं ॥ ८ ॥
सिवसामण्णस्स जिणसासनस्स सारक्खरे गहेऊण। इअ आसीसा दिन्ना सूरीहिं सकज्जसिद्धिकए ॥ ९ ॥
"अपाणि पादो ह्यमनो ग्रहीता, पश्यत्य चक्षुः स श्रृणोत्य कर्णाः।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता, शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्व" ॥ १० ॥
तो विप्पो ते जंपइ चिट्ठइ गुट्ठी तुमेहिं सह होइ। तुम्ह पसाया वेअत्थपारगा हुंति मे अ सुआ ॥ ११ ॥
ठाणाभावमो आहे चिट्ठामो कत्थ इत्थ तुह नयरे ?। चेइअवासि अमुणिणो न दिंति सुविहिअजणे वसिउं ॥ १२ ॥
तेणवि सचंदसालो उवरिं ठाविउं सुद्ध भत्तपाणेणं। पडिलाभिअ मज्झण्हे परिक्खिआ सव्वसत्थेसु ॥ १३ ॥
तत्तो चेइअवासी अमुंऽा तत्थागया भणंति इमं। नीसरह नयरमज्झा चेइअबज्झा न इह ठंति ॥ १४ ॥
इअ वुत्तंतं सोउं रण्णो पुरओ पुरोहिओ भणइ। तापावि सयलचेइअवासीणं साहए पुरओ ॥ १५ ॥
जइ कोऽवि गुणट्ठाणं इमाण पुरओ विरूवयं भणिहि। तं निअरज्जाउ फुडंनासेमि गहिअमियमसणुअ ॥ १६ ॥
रण्णो आएसेण वसहिं लहिउं ठिआ चउम्मासिं। तत्तो सुविहिअमुणिणो विहरंति जहिच्छिअं तत्थ ॥ १७ ॥
" इत्यादि ह्दपल्लीय संवतिटक सूरिकृत दर्शनसत्तरि" प्रवचन परीक्षा पृ० १४२

बाद में बिहार करते हुए वे आप थरापद्रनगर में आये और वहां पर वर्धमानसूरि का अनशन एवं समाधि-पूर्वक स्वर्गवास होगया ।

एक समय ऐसा दुष्काल पड़ा कि जिससे ज्ञान ध्यान में स्खलना होने लगी । जैनागमों तथा उसपर की गई वृत्तियों का भी उच्छेद हो गया । इसको देख शासन देवीने रात्री के समय अभयदेवसूरि को कहा कि दुर्भिक्ष के कारण श्रीशीलाङ्गाचार्य रचित टीकाओं में केवल दो अंग की टीका ही अवशिष्ट रह गई हैं और बाकी सब विच्छेद हो गयी हैं अतः आप अवशिष्ट नव अङ्गो की टीका बनाकर साधु समाज पर उपकार और शासन की अमूल्य सेवा करें । इस पर सूरिजी ने नौ अंगों पर टीका रचकर विद्वान् आचार्यों से उनका संशोधन करवाया श्रीभगवतीजीसूत्र की टीकामें स्वयं आचार्यश्री लिखते है कि टीकाओं का संशोधन मैंने द्रोणाचार्य से करवाया जो चैत्यवासियो के अग्रगण्य नेता थे । इनके अलावा सूरिजीने अपनी टीका में यह भी सूचित किया है कि पूर्वाचार्य रचित टीका चूर्णियों के आधार से मैंने टीका की रचना की है । देवी के कहने से प्रथम प्रति देवी के भूषण से लिखवाई और बादमें कई भावुक श्रावकों ने अपने द्रव्य से आगम लिखवा कर आचार्यश्री को अर्पण किये तथा भण्डारों में स्थापित किये ।

एक समय अभयदेवसूरि विहार करके धोलका नगर में पधारे । वहां अशुभकर्मोदय से आपके शरीर में कुष्टरोगोत्पन्न हो गया । इससे कई इर्ष्यालु लोग कहने लगे कि टीका बनाने में उत्सूत्र भाषण एवं लेखन से ही अभयदेवसूरि के शरीर में रोग हुआ है । लोगों के मुख से उक्त अपवाद को सुनकर आचार्य अभयदेव सूरि को बड़ी चिन्ता होने लगी । पुण्योदय से एक दिन की रात्री में धरणेन्द्र ने आकर सूरीश्वरजी के शरीर का अपनी जिभ्या से स्पर्श किया इसपर अज्ञात सूरिजी ने सोचाकि मेरा आयुष्य नजदीक आगया है पर दूसरे ही दिन धरणेन्द्र ने प्रगट हो कर कहा कि आपके शरीर का स्पर्श करने वाला मैं हूँ । रोगापहरण के लिए ही मैंने ऐसा किया था अतः एतद्विषयक किञ्चित् भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये सूरिजीने कहा—धरणेन्द्र ! रोग और मरण का तो मुझे तनिक भी भय नहीं है पर इसके लिये इर्ष्यालु लोग शासन की हीनता करें यह जरा विचारणीय या भयोत्पादक है । धरणेन्द्र ने कहा—इस बात का आप तनिक भी खेद न करें । जिन बिम्बके प्रभाव से आपके शरीर का यह रोग निश्चय ही चला जायगा । अब एतदर्थ मेरी बात जरा ध्यान पूर्वक सुनिये । श्रीकान्त नगरी का निवासी धनेश नामका एक धनाढ्य श्रावक जहाजों में माल भर कर समुद्र मार्गसे जारहा था । मार्ग में वाणव्यन्तर देवता ने किसी कारण वश उन जहाजों को स्थम्भित कर दिया और उपदेश दिया । इससे धनेश श्रावकने भूमिसे तीन प्रतिमाएं निकाली एवं घरपर ले आया उक्त तीनों प्रतिमाओं में एक की स्थापना चारूप नगरमें की जिससे वह चारूप तीर्थ कहलाया और दूसरी की स्थापना अणहिलपुर पट्टनमें की । बची हुई तीसरी प्रतिमा को स्तम्भन ग्राम की सेढिका नदी के तट स्थित भूगर्भ में स्थापन की है जिसको आपश्री जाकरके प्रगट करें । पूर्व नागार्जुन ने भी वहां रस सिद्धि प्राप्त कर स्तम्भनपुर नगर को प्रसिद्ध किया । जिन बिम्ब के प्रगट होने से आपके कुष्ट रोग का क्षय होगा और आपकी कीर्ति भी बहुत फैलेगी ।

इतना कह कर धरणेन्द्र देव तो अदृश्य हो गया । प्रातःकाल होते ही सूरिजी ने सब हाल धोलका नगर-निवासी श्रीसंघ को कहा । धरणेन्द्र देवागमन और रोगापहरण का कथन श्रवण सुनकर श्रीसंघ के हर्ष का पारावार नहीं रहा । बस, ९०० गाडी के साथ श्रीसंघ व सूरिजी सेढिका नदी के किनारे पर आये । गोपाल को पूछने पर ज्ञात हुआ कि यहां गाय का दूध स्वयं झरित होता है । फलतः दोनों ने उक्त भूमि को

खोदना प्रारम्भ किया तो अन्दर से पार्श्वनाथ भगवान् की मनोहर मूर्ति प्रगट हो गई। आचार्य अभयदेव सूरि ने 'जयतिहुअण' स्तुति बनाकर प्रभुस्तुति की और श्रीसंघ ने मूर्ति का विधि पूर्वक प्रक्षालन किया जिसको शरीर पर लगाने से आचार्यश्री का रोग चलागया। और स्तम्भन तीर्थ की स्थापना हुई।

श्री मल्लवादी के शिष्य के उपदेश से श्रावकों ने चतुर एवं शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलवाकर जिनेश्वर का विशाल एवं सुंदर मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरजी की देख रेख के लिये अम्रेश्वर की ओर से उसको प्रतिदिन एक द्रम्म के रोजगार से रक्खा। उन्होंने उस द्रव्य को अपने कार्यों में खर्च करने से बचाकर उसी मन्दिर में एक देहरी करवाई वह अद्यावधि विद्यमान है जब मन्दिर तैय्यार होगया तो आचार्य श्री अभयदेव सूरि से उसकी प्रतिष्ठा करवाकर जैनधर्म की प्रभावना की।

तदन्तर धरणेन्द्र ने सूरिजी को कहा—प्रभो! आपने जो ३२ काव्य का स्त्रोत्र बनाया है उसमें से दो काव्य निकाल दीजिये। कारण, दो काव्यों के रहने से कोई भी व्यक्ति इन काव्यों को पढ़ेगा तो तत्काल मुझे आकर हाजिर होना पड़ेगा इससे मुझे कष्ट होगा। सूरिजी ने भी भविष्य को सोचकर धरणेन्द्र के कथनानुसार दो काव्य निकाल दिये पर अब भी इस स्त्रोत का पाठ करने वालों का संकट दूर हो सकता है।

इस तीर्थ के प्रथम स्नात्र का सौभाग्य धवलका के श्रीसंघ को मिला। इस स्तभन पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्राचीनता के लिये मूर्ति के पृष्ठ भाग पर शिलालेख खुदा हुआ है जिसमें लिखा है कि इक्कवीसवें नमिनाथ के शासन के २२२२ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् गौड़ देश के आसाढ़ नामक श्रावक ने तीन प्रतिमाएं बनाई उसके अन्दर की एक यह प्रतिमा है।

आचार्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् शासन प्रभावक श्री अभयदेव सूरि ने पाटण के कर्ण राजा के राज्यत्व काल में सं० ११३५ स्वर्गवास किया। आचार्य अभयदेवसूरि ने हर तरह से शासन की बहुत ही प्रभावना की। ऐसे परम प्रभावक आचार्यश्री के गुण, श्लाघनीय एवं आदरणीय हैं। सकल जैन समाज पर आपका महान् उपकार हुआ है।

आचार्य वादीदेवसूरि

स्वर्ग सदृश गुर्जर देश के अष्टादशशति प्रान्त में मदुहृत (मदुआ) नामका एक अत्यन्त रमणीय ग्राम था। यहां पर प्राग्वटवंशावतंस श्री वीरनाग नाम के एक कुलसम्पन्न घराने के गृहस्थ रहते थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम जिनदेवी था। एक दिन रात्रि में जिनदेवी चन्द्र का स्वप्न देख कर जागृत हुई। प्रातःकाल होते ही उसने अपने गुरुदेव आचार्य चन्द्रसूरिजी को अपने स्वप्न का हाल सुनाया। स्वप्न को सुन कर सूरिजी ने कहा—बहिन! यह स्वप्न अत्यन्त शुभ एवं भावी अभ्युदय का सूचक है। तेरे भाग्योदय से देव-चन्द्र के समान कोई पुण्यशाली जीव अवतरित हुआ होगा। जिनदेवी ने सूरिजी के वचनों को शुभ एव आशीर्वाद रूप समझ कर खूब ही हर्ष मनाया। वास्तव में भाग्योदय का हर्ष किस प्राणी को न हो?

समयानन्तर माता जिनदेवी ने एक मनोहर पुत्र रत्न को जन्म दिया जिस का नाम पूर्णचन्द्र रक्खा। क्रमशः जब पूर्णचंद्र आठ वर्ष का हुआ तो एक दिन ग्राम में उपद्रव ने अपना पैर पसार लिया। अनन्योपाय न होने से वीरनाग मदुहृत ग्राम को छोड़ कर लाट देश के भूषण स्वरूप भरोंच पत्तन में चलागया।

भाग्यवशात् चन्द्रसूरि का भी वहां पर पदार्पण हो गया। वीरनाग को भरोंच आया हुआ देख कर

सूरिजीने भरोंच निवासियों को इशारा किया जिससे सकल श्रीसंघने मिल कर वीरनाग का पर्याप्त सन्मान किया एवं उन्हे सर्व प्रकार सहायता पहुँचाकर स्वधर्मी वत्सलता का परिचय दिया। एक समय पूर्णचन्द्र कुछ नमक आदि पदार्थ लेकर नगर मे वेचने को गया। मार्ग मे उसे एक ऐसे श्रेष्टिवर्य का घर मिला जिसके वहां पूर्वजों द्वारा सञ्चित सौनैया कोलसे के रूप में बन गया था। उस श्रेष्टि ने उक्त द्रव्य को कोयला समझ कर बाहर डालना प्रारम्भ किया इतने ही में बालक पूर्णचन्द्र भाग्यवशात् वहां पहुँच गया। यद्यपि वह सौनैया श्रेष्टि को कोयले के रूप में दीखता था पर पूर्णचन्द्र को वह स्वर्ण रूप ज्ञात होने लगा। वह तत्काल बोल उठा—श्रेष्टि-वर्य ! आप सौनैयाँ को बाहिर क्यों कर फेंक रहे हैं। सेठ समझ गया कि निश्चित् ही यह कोई भाग्यशाली पुरुष है। कारण, मेरे भाग्य में न होने के कारण मुझे यह कोलसों के रूपमें मालूम होता है पर वास्तव में यह है सौनया ही। अतः स्वर्णावसर का सदुपयोग कर सेठ ने कहा—वत्स ! इस पात्र में डालकर यह सब मेरे घर में रखदो। पूर्णचन्द्र ने भी उनको एक पात्र में इकट्ठा कर निर्दिष्ट स्थान पर रखदिया जिसके उपलक्ष में सेठने बच्चे को सौ सौनैया दिया।

पूर्णचन्द्र सहर्ष अपने घर पर आया और अपने पिताश्री को सब हाल कह सुनाया। वीरनाग ने भी दूसरे दिन प्रसन्न चित्त होकर आचार्य चन्द्रसूरि को पुत्र कथित सब वृत्तान्त कहा, इस पर सूरिजीने कहा—वीरनाग ! तुम्हारा पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली है। यदि यह दीक्षा ले तो अपनी आत्मा के साथ ही जगत के जीवों का उद्धार कर सकेगा।

वीरनाग ने कहा—पूज्यवर ! यह मेरे एक ही पुत्र है पर आपश्री के आदेश की उपेक्षा भी नहीं कर सकता हूँ। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

इसपर आचार्य चन्द्रसूरि ने भरोच के श्रावको को सूचित कर दिया जिससे उन्होंने वीरनाग को आजी-वन के लिये आवश्यकता से अधिक पर्याप्त सहायता पहुँचादी। इधर शुभमुहूर्त में बालक पूर्णचन्द्र को शिक्षा दीक्षा देकर उसका नाम मुनि रामचन्द्र रख दिया। मुनि रामचन्द्र पुण्यशाली एवं कुशाग्र मतिवन्त थे अतः थोड़े ही समय में उन्होंने स्वपर मत के शास्त्रों का गम्भीर मनन पूर्वक अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर मुनि रामचन्द्र पर सरस्वती देवी की भी पूर्ण कृपा थी एवं उसने मुनि रामचन्द्र को वरदान भी दिया था यही कारण है कि आप सर्वत्र विजय पताका फहरा रहे थे। क्रमशः वे इतने प्रवीण हो गये कि—

१—धोलका में अद्वैतवादी ब्राह्मणो को परास्त किया।
२—काश्मीर के वादी सागर को पराजित किया।
३—सत्यपुर के वादियो से विजय प्राप्त की।
४—नागपुर के गुणचन्द्र दिगम्बर को शास्त्रार्थ में हराया।
५—चित्रकूट में भगवत शिवभूति को ,, ,,
६—गोपगिरि में गङ्गधर वादी को परास्त किया।
७—धारा में धरणीधर वादी को ,, ,,
८—पुष्करणी में वादी प्रभाकर ब्राह्मण का पराजय किया।
९—भृगुक्षेत्र में कृष्ण नामके ब्राह्मण को हराया।

इस प्रकार मुनि रामचन्द्र ने वाद विजय में बड़ी ही ख्याती प्राप्त करली। अब तो आपके अनुयाय

ाण्डित्य, तर्क शक्ति के वैचित्र्य एवं विषय प्रतिपादन शैली की अपूर्वता से सकल जन समाज आपकी ओर प्रभावित हो गया। वादी लोग तो आपके नाम श्रवण मात्र से ही घबराने लगे।

पं० मुनि विमलचन्द्र प्रभानिधान, हरिश्चन्द्र, सोमचन्द्र, कुलभूषण, पार्श्वचंद्र, शान्तिचन्द्र, तथा अशोकचन्द्र आपके सहपाठी—विद्या, मन्त्र का अभ्यास करने वाले साथी थे।

आचार्यश्री ने मुनि रामचन्द्र को सूरिपद योग्य सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न एवं पट्ट का निर्वाह करने में सब तरह से समर्थ जान कर सकल श्रीसंघ की अनुमति से आपको सूरिपद विभूषित कर दिया। सूरिपद अर्पणानंतर आपका नाम देवसूरि स्थापित किया।

आचार्य देवसूरि ने वीरनाग की बहिन को दीक्षा देकर उसका नाम चन्दनबाला रक्खा। चन्दनबाला साध्वी भी दीक्षानन्तर तप संयम में संलग्न हो गई।

एक समय आचार्य देवसूरि ने धोलका की ओर विहार किया। उस समय वहां के एक श्रद्धासम्पन्न, धर्मनिष्ठ श्रावक ने श्री सीमंधर स्वामी का एक विशाल मन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा के लिये उसने सूरिजी से प्रार्थना की। सूरिजी ने भी उक्त प्रार्थना को मान देकर श्रीसीमंधर स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम पूर्वक करवाई। तदनन्तर सूरिजी ने वहां से सपाद लक्ष प्रान्त की ओर विहार किया। क्रमशः आचार्य श्री आबूपर आये तब आपके साथ आये हुए अम्ब-प्रसादजी मन्त्री को सर्प ने काट खाया। इस पर वादी देवसूरि के चरणोदक छांटनेसे मन्त्री तत्काल ही विष मुक्त हो गया। पश्चात् युगादीश्वर की यात्रा कर अनन्त पुण्योपार्जन किया।

उसी दिन रात्रि में अम्बादेवी ने प्रगट होकर देवसूरि को कहा कि—सपादलक्ष प्रान्त का विहार बन्द करके वापिस आप शीघ्र ही पाटण पधार जाइये कारण आपके गुरुदेवश्री का आयुष्य केवल आठ मास का ही अवशिष्ट रहा है। सूरिजी ने भी देवी के कथन को स्वीकार कर तत्काल ही पाटण की ओर विहार कर दिया। क्रमशः पाटण पहुँच कर गुरुदेव को वंदन किया व अम्बादेवी कथित वचन आचार्यश्री को कह सुनाये। आचार्यश्री चन्द्रसूरि अपने आयुष्य काल को नजदीक जानकर अन्तिम संलेखना में संलग्न होगये।

पाटण में एक भागवत् वादी देवबोध नामका पण्डित आया। उसने अपने पाण्डित्य के गर्व में एक श्लोक लिखकर द्वार पर लटका दिया कि जो कोई पण्डित हो वह मेरे उक्त श्लोक का अर्थ करे—

एक द्वि त्रि चतुःपंच षण्मेनकमनेनकाः देवबोधे मयि क्रुद्धे षण्मेनक मनेनकः ॥ १ ॥

छः मास व्यतीत होगये पर कोई भी उस श्लोक का अर्थ न बतला सका। इस बात का पाटण नरेश को बहुत ही दुःख हुआ कि आज तक मैंने इतने पण्डितों का सत्कार कर राज सभा में रक्खा पर आज एक विदेश का पण्डित इस प्रकार पाटण की राजसभा के पण्डितों का पराजय कर चला जायगा।

रात्रि के समय अम्बिकादेवी ने राजा को कहा कि हे राजन्। "तू इतनी चिन्ता क्यों करता है? इस श्लोक का अर्थ करने में तो आचार्यश्री देवसूरि समर्थ हैं।' इतना कह कर देवी अदृश्य होगई। देवी के कथनानुसार राजा ने दूसरे ही दिन देवसूरि को बड़े ही सत्कार के साथ राजसभा में बुलाया। देवसूरि ने भी राजसभा में उपस्थित होकर वादी के श्लोक का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार किया कि—

एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानने वाला चार्वाक, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों को स्वीकार करने वाले बौद्ध व वैशेषिक, प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण को मानने वाला सांख्य, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम,

और उपमान प्रमाण को मानने वाले नैयायिक, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव रूप ६ प्रमाण को मानने वाले मीमांसक। इन छ प्रमाण वादियों को चाहने वाले मुझ देवबोध के कोपायमान होने पर ब्रह्मा विष्णु और सूर्य भी मेरे बनजाते हैं अर्थात् सामने कुछ भी नहीं बोल सकते हैं तो फिर विद्वान मनुष्य जैसे सामान्य तो मेरे सामने वाद करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं ? इसप्रकार श्लोकार्थ को कह सुनाने से राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। वह देवसूरि को सभाकी लाज रखने वाला परम निष्णात, मेधावी व गुरु समझ कर बहुत ही आदर सत्कार करने लगा और वादिका गर्भ गल जाने से नतमस्त होचला गया।

पाटण निवासी एक बहड नाम के धनी भक्त ने सूरिजी से पूछा कि—भगवन् मुझे कुछ धन-व्यय करने का है सो वह किस कार्य में किया जाय ? इस पर सूरिजी ने उसे जिन मन्दिर बनाने की सलाह दी। बहड ने भी गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। चतुर, शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलाकर एक विशाल मन्दिर बनवाया। मन्दिर में स्थापन करने के लिये चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी की मूर्ति बनवाई। प्रतिमाजी के नेत्रों के स्थान ऐसी मणियें लगवाई कि वे रात्रि में भी सूर्य की भांति सदा प्रकाश करती रहती थी। वि० सं० ११७८ में मुनिचन्द्रसूरि का स्वर्गवास हुआ उसके एक वर्ष पश्चात् ही देवसूरि ने बहड के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

आचार्य देवसूरि पाटण से विहार कर नागपुर पधारे तो वहां का राजा आल्हादन सूरिजी के स्वागत के लिये स्वयं सन्मुख आया। अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यश्री का नगर प्रवेश महोत्सव करके उन्हें उचित सम्मान से सन्मानित किया। वहां पर देवबोध नामका वादी आया और उसने देवसूरि को प्रणाम कर एक श्लोक बोला—

यो वादिनो द्विजिह्वान् साटोपं विषय मान मुद्गिरतः शमयति सदेवसूरि–र्नरेन्द्रवंद्यः कथं न स्यात् ॥३६॥

एक समय सिद्धराज ने अपनी सेना के साथ नागपुर पर चढ़ाई करके उसको चारों ओर से घेर लिया। कुछ समय के पश्चात् जब उसने सुना कि यहां देवसूरि विराजमान हैं तो यह सोचकर उसने अपना पड़ाव हटालिया कि जहां हमारे गुरुदेव सूरि विराजमान हैं; मैं उस राजा के दुर्ग को कैसे ले सकता हूं। बस, उक्त विचारानुसार वह पाटण लौट गया पाटण पहुँचने पर सिद्धराज ने देवसूरि को आमन्त्रित कर पाटण में ही चतुर्मास करवा दिया। चतुर्मास के दीर्घ अवसर को प्राप्त करके सिद्धराज ने व [illegible] नागपुर पर चढ़ाई की और वहां के किले पर अपना अधिकार कर लिया।

एक समय करणावती श्रीसंघ ने भक्ति पूर्वक देवसूरि से प्रार्थना कर अपने यहां चतुर्मास करवाया। आचार्यश्री ने भी अरिष्टनेमि के चैत्य में व्याख्यान देकर के अनेक भव्यों को प्रतिबोध देकर उनका उद्धार किया।

करणाटक देश के राजा और सिद्धसेन की माता का पिता जयकेशी राजा का गुरु [illegible] मे रहने वाला, वादियों में चक्रवर्ती, जयपत्रिका पद्धति को हाथे पैर पर लगाने वाला, अभिमान रूपी गज और गर्व रूपी पर्वत पर आरूढ़ हुआ, जैन होने पर भी जैन मतद्वेषी, वर्धमान [illegible] करने के लिये [illegible] चैत्य मे ठहरा हुआ, श्रीदेवसूरि के व्याख्यान से ईर्षा करने वाला, कुमुदचन्द्र नाम के दिगम्बर वादी ने चारणों को वाचाल बनाकर देवसूरि के पास भेजा। वे चारण भी कुमुदचन्द्र की [illegible] करते हुए व श्वेताम्बरों को अपमान सूचक शब्द बोलते हुए कहने लगे कि—"हे श्वेताम्बरो! [illegible] दिगम्बराचार्य श्री कुमुदचन्द्र के चरण युगलों की सेवा करके अपना कल्याण करो" इत्यादि।

चारण के आडम्बर पूर्ण मिथ्याप्रलाप सूचक शब्दों को सुनकरके देवसूरि के मुख्य शिष्य माणक्य ने कहा कि हे चारण ! सिंह के कण्ठ पर रहे हुए केसरा को अपने पैरों से कौन स्पर्श कर सकता है ? तीक्ष्ण भाले को आंखों में कौन फेर सकता है, शेषनाग के मस्तक की मणि लेने में कौन समर्थ है उसी प्रकार श्वेताम्बराचार्यों के साथ वाद विवाद करने में कौन शक्तिशाली है । शिष्य के उक्त शब्द सुनकरके देव सूरि ने कहा—हे शिष्य ! कर्कश बोलने वाले दुर्जन पर क्रोध करने का अवकाश नहीं है । अर्थात् दुर्जन पर क्रोध नहीं पर दयाभाव ही करना चाहिये ।

देवसूरि की समताने वादी के अभिमान को द्विगुणित कर दिया । वादी ने एक वृद्धासाध्वी पर उप-द्रव कर उसकी बड़ी विडम्बना की । जब साध्वी उपद्रव से मुक्त हुई तो देवसूरि के पास में आकर उपालम्भ पूर्ण शब्दों में कहने लगी—आपका ज्ञान, आपकी विद्वत्ता और आपका वादजय किस काम का है ? जब कि वादी के सामने आप समता पकड़ कर बैठ गये, इत्यादि । आचार्यश्री देवसूरि ने साध्वी को सन्तोष पूर्ण वचन कह कर पाटण के श्रीसंघ पर एक पत्र लिखा कि यहां दिगम्बर वादी कुमुदचन्द्र आया है अतः हम चाहते हैं कि पाटण में इनके साथ वाद विवाद हो । पाटण के संघने इस पत्र का जवाब लिखा कि:— आप कृपा करके अवश्य ही पाटण पधारें । राजा सिद्धराज की राजसभा में आप दोनों का वाद विवाद करवाया जायगा आपकी विजय के लिये ३०७ श्रावक श्राविकाएं आयम्बिल कर रहे हैं ।

देवसूरि को पाटण के श्रीसंघ का पत्र पढ़ कर बहुत ही प्रसन्नता हुई । उन्होंने चारण के साथ वादी को कहला दिया कि हम पाटण जाते हैं, अतः आप लोग भी पाटण पधार जावें । राजा सिद्ध राज की राज सभा में अपना परस्पर वाद विवाद होगा । इस बात को मुकुदचन्द्र ने सहर्ष स्वीकार करली । जिस शुभ दिन सूर्य मेषलग्न में चन्द्रमा सातवें और रिपुद्रोही राहु छटे लग्न स्थित रहते तथा और भी शुभ शकुन होते हुए आचार्यश्री देवसूरिने करणावती से पाटण के लिये प्रस्थान कर दिया रास्ते में भी बहुत अच्छे शकुन और शुभ निमित कारण मिलते गये ।

इधर दिगम्बरचार्य भी पाटण की ओर बिहार करने लगे तो उस समय एक व्यक्ति को छींक हो आई जो प्रस्थान के लिये अशुभ थी पर विजयकांक्षी दिगम्बरों ने उस पर थोड़ा भी विचार नहीं किया ।

आचार्य देवसूरि क्रमशः विहार करते हुए पाटण पधारे तो मार्ग मे उन्हें अच्छे शकुन हुए । पाटण पहुँचने पर पाटण श्रीसंघ ने नगर प्रवेश का बड़ा भारी महोत्सव किया । सूरिजी ने संघ को धर्म देशना दी पश्चात् राजा सिद्धराज से मिले ।

इधर दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र ने करणावती से विहार किया तो मार्ग में उन्हें बहुत ही अपशकुन हुए पर विजयाकांक्षी की भांति किसी की भी परवाह नहीं करते हुए वे पाटण चले आये । दोनों के वाद के लिये राजा ने मन्त्री गगिल को कह कर यह शर्त करवा ली कि यदि दिगम्बर हार जायं तो देश से चोरों के भांति बाहिर निकाल दिये जांय और श्वेताम्बर हार जावें तो पाटण में श्वेताम्बरों की सत्ता के स्थान पर दिगम्बरों की सत्ता स्थापित कर दी जाय ।

बाद में राजा जयसिंह सिद्धराज ने अपने पण्डित कवि श्रीपाल को देवसूरि के पास भेज कर कह-लाया कि स्वदेशी हो या परदेशी, सब ही पण्डितों के लिये सरीखा मान है तथापि आप ऐसा वाद करें कि हमारे सभा की शोभा बनी रहे । देवसूरि ने कहा—आप विश्वास रक्खें, गुरु महाराज के दिये हुए ज्ञान में

मैं दृढ़ता पूर्वक वादी को परास्त कर दूंगा ।

वि० सं० ११८१ के वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन वाद प्रारम्भ हुआ । राजानीतिज्ञ राजाने निर्दिष्ट स्थान व समय पर दोनो वादियो को आमन्त्रित किया । दि० कुमुदचन्द्राचार्य छत्र, चंवर आदि आडम्बर के साथ सुख पालकी में बैठ कर वादस्थल में आये । आचार्य देवसूरिको न देख करके वे कहने लगे कि क्या श्वेताम्बराचार्य पहिले ही से डर गया जो सभा में हाजिर न हुआ । इतने में देवसूरि भी आ गये । देवसूरि को देखकर दिगम्बराचार्य बोला कि बेचारे श्वेताम्बर मेरे सामने कितनी देर तक ठहर सकेंगे । देवसूरि ने कहा-वाग्युद्ध मे तो श्वान भी विजय प्राप्त कर सकता है ।

इतने थाहड़ और नागदेव नाम के दो श्रावक आये । वे कहने लगे पूज्य आचार्य देव ! मैंने आपसे प्रार्थना की थी उससे भी दुगुना द्रव्य व्यय करने को तैयार हूँ । सूरिजीने कहा—अभी द्रव्य व्यय की आवश्यकता नहीं है कारण, आज रात्रि में ही गुरुवर्य आचार्यश्री चन्द्रसूरिजी ने स्वप्न में मुझे कहा है कि वाद में स्त्री निर्वाण का विषय लेना और वादी वैताल शांतिसूरि ने उत्तराध्ययन की टीका में जैसा वर्णन किया है उसके अनुसार ही वाद करना सो तुम्हारी विजय होगी ।

महर्षि उत्साहसागर और प्रज्ञावन्त राम राजा की ओर से सभासद ।

भानु और कवि श्रीपाल देवसूरि के पक्षकार ।

तीन केशव नाम के गृहस्थ दिगम्बरों के पक्षकार ।

सर्व प्रकार से वाद विवाद योग्य विषयो का निर्णय हो जाने के पश्चात् देवसूरि ने कहा—कुछ प्रयोग कीजिये ।

दिगम्बराचार्य बोले—स्त्री-भव में मुक्ति नही होती है । कारण अल्पसत्व स्त्रिया मोक्ष जाने लायक पुरुषार्थ कर नहीं सकती हैं ।

देवसूरि—सभी पुरुष या सभी स्त्रिया एक सी नही होती हैं । कई स्त्रिया महासत्व वाली भी होती हैं । माता मरुदेवी मोक्ष गई, सती मदन रेखा आदि सत्व शील महिलाओ ने पुरुषों से भी विशेष कार्य करके बतलाया है । अतः उक्त हेतु स्त्री निर्वाण का बाधक नहीं हो सकता है ।

इस प्रकार के लम्बे-चौड़े वाद विवादानन्तर सभ्यस्यों ने स्वीकार कर लिया कि देवसूरि का कहना न्यायानुकूल एवं पूर्ण सत्य है । राजा की ओर से मन्जूर किया गया कि देवसूरि [illegible] अतः राजा प्रजा ने वाद्यन्त्रो के साथ देवसूरि का स्वागत करके अपने स्थान पर पहुँचे ।

सिद्धहैमशब्दानु शासन के कर्ता कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सूरि [illegible] कि यदि देवसूरि रूप सूर्य कुमुदचन्द्र रूप अधकार को हटाने में समर्थ नहीं होते तो क्या श्वेताम्बर मुनि [illegible] कर सकते ?

दिगम्बर वादी इस प्रकार हार खाकर वहा से चला गया । [illegible] देवसूरि को तुष्टिदान देने लगा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया । अन्त में [illegible] का निश्चय हुआ । द्रव्य की [illegible] के कारण उसने कुछ और द्रव्य [illegible] सुन्दर मन्दिर बनवाया जिसके लिये स्वर्ण कलश एव दण्ड ध्वजा [illegible] मूर्ति स्थापन करवाई । इस मन्दिर की प्रतिष्ठा देवसूरि आदि चार आचार्यों ने की । [illegible]

हुई। इस प्रकार अनेक वादों को जीत करके देवसूरि ने शासन के गौरव को अक्षुण्ण रक्खा।

देवसूरि वाद विवाद में सिद्ध हस्त थे। चौरासी वादों में विजय प्राप्त करने से आप वादी देव सूरि के नाम से विख्यात हुए। आप विद्या मन्त्र एवं कई प्रकार की लब्धियों में निपुण थे। जैनधर्म के उत्कर्ष के लिये आप कमर कस करके तैय्यार रहते थे। आपश्री ने स्याद्वाद रत्नाकर नामक महान् ग्रन्थ का निर्माण कर अखिल विश्व पर महान् उपकार किया। अन्त में आप अपने पट्टपर भद्रेश्वर सूरि को स्थापित करके वि० सं० १२२६ श्रावण कृष्णा सप्तमी के दिन स्वर्ग वासी हो गये।

आपका जन्म ११४३ में हुआ दीक्षा ११५२ में अङ्गीकार की, सूरिपद ११७४ में प्राप्त हुआ और स्वर्गवास १२२६ में हुआ। सवार्युः ८३ वर्ष का पूर्ण किया।

आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरि

क्लेश के आवेश से रहित गुर्जर प्रान्तमें अणहिल्लपुर नाम के एक विख्यात नगर है जिसके अन्तर्गत धुंधका नाम का एक अत्यन्त रमणीय ग्राम था जहां पर मोढ़ वंशीय चाच नामके सेठ निवास करते थे। आप श्री की परम सुशीला धर्मपरायणा धर्मपत्नी का नाम पाहिनी था। एकदा माता पाहिनी ने स्वप्न में चिन्ता मणि रत्न देखा और भक्ति के आवेश में उसने वह रत्न अपने गुरु को दे दिया। इस प्रकार का स्वप्न देख सेठानी हर्ष के मारे फूल्ल गई।

वहां पर चन्द्रगच्छ रूप सरोवर में पद्मसमान अनेक गुणों से सुशोभित श्रीदेवचन्द्रसूरि विराजमान थे जो प्रद्युम्नसूरि के शिष्य थे। प्रातःकाल होते ही पाहिनी ने उस दिव्य स्वप्न को अपने गुरु की सेवा में निवेदन किया तब गुरु ने शास्त्र विहित अर्थ बताते हुए कहा—'हे भद्रे! जिन शासन रूप महासागर में कौस्तुभमणि के समान तुम्हे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी जिसके सुचरित्र से आकर्षित हो देवता भी उसका गुण-गान करेंगे।"

कालान्तर में पाहिनी को श्री वीतराग बिम्बों की प्रतिष्ठा करवाने को दोहला उत्पन्न हुआ जिसको सुनकर श्रेष्ठी ने प्रमोद पूर्वक पूरा किया। समय के पूरे होने पर माता पाहिनीने शुभनक्षत्र में रत्नवत् अलौकिक पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसके कई महोत्सव मनाये गये और कुटुम्बों की सलाह के अनुसार बारहवें दिन सान्वय 'चंगदेव' नाम स्थापित किया गया। क्रमशः द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ते हुए चङ्गदेव को पांचवे वर्ष में ही सद्गुरु की सेवा करने की; इच्छा उत्पन्न हुई। परिणामतः एक दिन मोढ़ चैत्य में देव चन्द्रसूरि चैत्यवंदन कर रहे थे कि उसी समय माता पाहिनी पुत्र सहित मंदिर में आई। वह प्रदक्षिणा देकर भगवान् की स्तुति कर रही थी कि चंगदेव गुरुके आसन पर जा बैठा। इस कौतूहल को देख कर गुरु ने कहा—भद्रे! वह महा स्वप्न, तुम्हे याद है या नहीं? देख यह निशानी उस स्वप्न के फल की भावी सूचिका है। इस प्रकार कहने के पश्चात् गुरु ने माता के पास से पुत्र की याचना की तब पाहिनी ने कहा—प्रभो! आप इसके पिता के पास से याचना करें यह युक्त है। इस पर गुरु कुछ नहीं बोले तब पाहिनी ने उस स्वप्न का स्मरण करके गुरु के वचनों को अनुलंघनीय समझ स्नेहसे दुःखित हृदय वाली भी उसने अपने प्यारे पुत्र को गुरु महाराज के चरणों में अर्पण कर दिया। गुरुदेव भी चंगदेव को लेकर के स्तम्भन तीर्थ पर आये। वहां पार्श्वनाथ मन्दिर में माघमास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन ब्राह्ममुहूर्त में और शनिवार के दिन आठवें विष्णु

धर्म स्थित और वृषभ के साथ चन्द्रमा का योग होने पर बृहस्पति लग्न में सूर्य और भौम के शत्रु स्थित रहते हुए अर्थात् सर्वांग शुद्ध शुभ मुहूर्त में श्रीमान् श्रेष्ठि उदय के महामहोत्सव पूर्वक गुरुमहाराज ने चंगदेव को दीक्षा दी और उसका सोमचन्द्र नाम रक्खा।

क्रमशः यह बात चाच श्रेष्ठी को ज्ञात हुई तो वह तत्काल कुपित होकर स्तम्भन तीर्थ आया और कर्कश वचन बोलने लगा तब उदय श्रावक ने उनको आचार्यश्री के पास मे लेजाकर मधुर वचनो से शान्त किया।

इधर मुनि सोमचंद्र ने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा सम्पन्न शक्ति द्वारा शीघ्र ही तर्क शास्त्र, व्याकरण और साहित्य विद्या का अध्ययन कर लिया। इतने में एक दिन एक पद से लक्षपद की अपेक्षा भी अधिक पूर्व का चिन्तवन करते हुए उन्हे खेद हुआ कि—अहो ! मुझ अल्प बुद्धि को धिक्कार है। मुझे अवश्य ही काश्मीर वासी देवी का आराधन करना चाहिये। उक्त विचार से प्रेरित हो उन्होंने गुरु महाराज से प्रार्थना की तो देवी का सन्मुख आना जानकरके उन्होंने (गुरु ने) यह प्रार्थना मान्य की। पश्चात् गीतार्थ साधुओं के साथ मुनि सोमचंद्र ने ताम्रलिप्ति से काश्मीर की ओर प्रयाण किया। मार्ग में आये हुए नेमिनाथ के नाम से प्रसिद्ध ऐसे रैवतावतार चैत्य में ठहरकर गीतार्थों की अनुमति से सोमचद्र मुनि ने एकाग्र ध्यान किया। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थापन करके ध्यान करते हुए मुनि सोमचन्द्र को आधीरात में सरस्वती देवी ने साक्षात् प्रगट होकर के कहा—'हे निर्मल मति वत्स ! तू देशान्तर में मत जा। तेरी भक्ति से सन्तुष्ट हुई मै यहां पर ही तेरी इप्सितेच्छा पूर्ति कर दूगी।' इतना कह कर देवी भारती अदृश्य होगई। इस प्रकार सरस्वती के प्रसाद से मुनि सोमचद्र सिद्ध सारस्वत व विद्वानों में अग्रसर हुए।

श्रीदेवचन्द्र सूरि ने अपने अन्तिम समय में मुनिसोमचन्द्र को सूरिपदयोग्य जानकरके श्रीसंघ के समक्ष कुशल नैमित्तिको से निकाले हुए शुभ मुहूर्त में सूरिपद अर्पण कर दिया। तभी से मुनिसोमचन्द्र हेमचन्द्र सूरि के नाम से विख्यात हुए। सूरि पदारूढानंतर आपकी मातुश्री ने भी चारित्र पानि दीक्षा अङ्गीकार की और उन्हे श्रीसघ की अनुमति से प्रवर्तनी पद व सिंहासन बैठने की आज्ञा प्रदान की।

एकदा आचार्य हेमचन्द्रसूरि विहार करके अणहिल्लपुर नगरमें पधारे। किसी दिन रथवाड़ी से निकला हुआ सिद्धराज राजा बाजार में एक बाजू खड़े हुए सूरिजी के पास अंकुश से हाथी को रोककर कहने लगा—आपको कुछ कहना है ? तब आचार्य बोले—हे सिद्धराज ! शंका बिना गजराज को आगे चलाओ। दिग्गज भले ही त्रास को प्राप्त हो पर इससे क्या ? कारण पृथ्वी को तो तुमने ही धारण कर रक्खा है यह सुनकर राजा बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और दोपहर को हमेशा राजसभा में आने की प्रार्थना की। आचार्यश्री के दर्शन दर्शन से ही उसको आनंद हुआ व दिग्यात्रा में उसकी जय हुई।

एक दिन मालव प्रान्त को जीत करके राजा सिद्धराज आया तो सब दर्शनियों ने उसको आशीर्वाद दिया। इस पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि एक अवर्णीय काव्य से आशीर्वाद देते हुए बोले—हे कामधेनु ! तू तेरे गोमय-रस से भूमि को लीप दे हे रत्नाकर ! तू मोतियों से स्वस्तिक पूर दे, हे चन्द्रमा ! तू पूर्ण कुम्भ बन जा, हे दिग्गजो ! तुम अपनी सूंड को सीधी करके कल्पवृक्ष के पत्तों से तोरण बनाओ क्योंकि, सिद्धराज पृथ्वी को जीत करके आता है। इससे तो राजा की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। वह [illegible] राजसभा में धर्मोपदेशार्थ पधारने के लिए प्रार्थना करने लगा।

एक दिन अवन्तिका के भण्डार की पुस्तकों को देखते हुए राजा की दृष्टि में एक लक्षणशास्त्र आया

जिसको लेकर गुरु से पूछा-भगवन् ! यह क्या है ? आचार्य श्री ने कहा—यह भोज व्याकरण तरीके प्रसिद्ध है। विद्वानों में शिरोमणि मालवपति ने सब विषयों में अनेकों ग्रंथ बनाये हैं। यह सुनकर राजा ने आचार्य श्री से जगज्जीवोपकारार्थ नवीन व्याकरण बनाने की प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा—राजन् काश्मीर में भारतीदेवी के भण्डार में व्याकरण की आठ पुस्तकें हैं उनको आप अपने आदमी भेज करके मंगवाओ जिससे व्याकरण शास्त्र रचने में सहूलियत हो।

गुरु के वचनो को सुन करके राजा ने अपने आदमियों को काश्मीर देश में भेजे। प्रवरा नाम के ग्राम में सरस्वती देवी की चंदनादिक से पूजा करने लगे। इससे संतुष्ट होकर देवी ने अपने अधिष्ठायक को आदेश किया कि—मेरेप्रसाद पात्र श्री हेमचन्द्रसूरि मेरे ही अनुरूप हैं अतः उनके लिये व्याकरण की आठों पुस्तकें देकर के उनको सम्मान पूर्वक विदा करो।

आठों पुस्तकों को लेकर के जब वे अणहिल्लपुर आये और राजा के सम्मुख उक्त चमत्कार पूर्ण घटना का वर्णन करने लगे तो राजा को आश्चर्य के साथ ही हर्ष एवं अपने राज्य में वर्तमान ऐसे गुरु के लिये गौरव पैदा हुआ।

आचा र्श्री हेमचन्द्रसूरि ने आठों व्याकरण का अवलोकन करके "श्रीसिद्धहेम" नामका नवीन एवं अद्भुत व्याकरण बनाया जिसको लिखवा २ कर राजा ने बहुत दूर तक फैलाया। काकल नाम के आठ व्याकरण के ज्ञाता विद्वान् को उक्त व्याकरण का अध्यापन कराने के लिये नियुक्त किया।

एक दिन पण्डितों से शोभायमान् राजा की राजसभा में एक चारण आया। उसने अपभ्रंशभाषा में एक गाथा बोली।

हेमसूरि अच्छाणिते ईसरजे पण्डिआ। लच्छिवाणि महुकाणि सांपइ भागी मुहमरुम ॥

इस गाथा को तीन बार बोलनेसे सूरिजीने उसको सभ्यों के पाससे ३० हजार रुपया इनाम दिलवाया।

एक दिन राजा सिद्धराज ने गुरु महाराज से पूछा—अहो भगवन् ! आपके पट्ट योग्य अधिक गुणवान् शिष्य कौन है ? आचार्यश्री ने कहा—सुज्ञशिरोमणि रामचन्द्र नामका मेरा शिष्य है जो समस्त कलाओं में पारंगत एवं श्रीसंघ से सम्मानित है। उसी समय आचार्य ने राजा को उक्त शिष्य बताया तो शिष्य ने राजा की स्तुति करते हुए कहा—

मात्रायाप्यधिकं किञ्चिन न सहन्ते जिगरिषवः। इतीव त्व धरानाथ ? धारानाथ ममाकृथाः ॥

इससे राजा सन्तुष्ट हुआ और आचार्यश्री के समान ही शासन प्रभावक होने की भावना प्रगट की

इधर ईर्ष्यालु ब्राह्मणलोग सूरिजी के तपस्तेज व अलौकिक पाण्डित्य जन्य प्रतिभा से असूया को धारण करके राजा को उनके विपरीत अनेक तरह से भ्रम में डालने का प्रयत्न करने लगे पर सुज्ञ राजा उनकी ओर उपेक्षा ही करता रहा। एक दिन प्रसङ्गोपात आचार्यश्री के व्याख्यान में नेमिनाथ चरित्रान्तर्गत पाण्डवों का चरित्र चल रहा था। उसमें पाण्डवों के शत्रुञ्जय पर सिद्ध होने का वर्णन आया तो ब्राह्मण लोग वेदव्यास विरचित महाभारत से विपरीत प्रसङ्ग को सुनकर राजा से कहने लगे कि अहो स्वामिन् ! वेदव्यास ने अपने भविष्य ज्ञान से युधिष्ठिरादिक का अद्भुत वृत्तांत कहा है उसमें अन्तिम समय में हिमालय पर्वत पर जाने व केदार में रहे हुए शंकर आदि के अर्चन पूजन से अन्तिम आराधना करने का उल्लेख है। पर ये श्वेताम्बर मुनि विपरीत भ्रम फैलाकर जन समाज को धोखे में डाल रहे हैं अतः इनकी रुकावट होनी

कश्मीर की ८ पुस्तकें का व्याकरण

चाहिये। इर्ष्यालु ब्राह्मणो के मुख से उक्त बात सुन कर राजा ने उचित विचार करने का आश्वासन देकर उन्हे विदा किया।

इधर राजा ने हेमचन्द्राचार्य को बुला कर पूछा—अहो भगवन्! क्या पाण्डवों ने जैन दीक्षा ली, और शत्रुँजय पर परमपद प्राप्त किया ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है ?

आचार्य ने कहा—हाँ, उल्लेख तो है पर यह नहीं कहा जा सकता कि वेदव्यास रचित महाभारत में वर्णित हिमालय पर गये हुए ही ये पाण्डव हैं या अन्य हैं।

राजा ने पुनः प्रश्न किया—आचार्यदेव! क्या पाण्डव भी पहिले बहुत से हो गये हैं? सूरि-बोले— राजन्! मैं कहता हूँ सो ध्यान पूर्वक सुनिये। व्यास रचित महाभारत में गांगेय पितामह का वर्णन आता है। उन्होंने युद्ध में प्रवेश करते हुए अपने परिवार को कहा था कि—जहा अबतक किसी का अग्नि संस्कार न हुआ हो वहां मेरा अग्नि संस्कार करना" पश्चात समाम में भीष्म पितामह प्राण मुक्त हुए तो उनके वचनानुसार उनके शव को पर्वताग्रभाग पर कुटुम्ब के लोग अग्नि सस्कार के लिये ले गये जहांपर कि मनुष्यों का सञ्चार भी नहीं होता था पर वहांभी दिव्य वाणी हुई कि—

अत्र भीष्म शतं दग्धं पाण्डवानां शतत्रयम्। द्रोणाचार्य सहस्रं तु कर्णसंख्या न विद्यते ॥

अर्थात्—यहां सौ भीष्म जलाने में आये हैं, तीन सौ पाण्डव और हजार द्रोणाचार्य जलाने मे आये हैं। उसी प्रकार कर्ण की संख्या तो हो ही नहीं सकती है।

उक्त प्रमाणानुसार उस समय जैन पाण्डव भी हो सकते हैं कारण, शत्रुञ्जय पर उनकी प्रतिमाएं है। नासिक के चंद्रप्रभ मन्दिर में व केदार महातीर्थ में भी पाण्डवों की प्रतिमाए हैं।

हेमचन्द्राचार्य के शास्त्रसम्मत युक्ति पूर्ण समाधान से राजा बहुत प्रसन्न हुआ उसके मन में सूरिजी के प्रति अधिकाधिक श्रद्धा एव स्नेह पूर्ण सद्भावनाएं पैदा होने लगी।

एक समय आमिग नामका राजपुरोहित क्रोध व इर्ष्या के वश राजसभा में विराजमान आचार्यश्री को कहने लगा कि—तुम्हारा धर्म शम और कारुण्य से सुशोभित है पर उसमे एक न्यूनता है कि आप लोगो के व्याख्यान में स्त्रियां सर्वदा शृंगार सजकर के आती हैं और तुम्हारे निमित्त [illegible] और प्रासुक आहार बनाकर आपको देती हैं तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य किस तरह से स्थिर रह सकता है? [illegible]—

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो ये चाम्बुपत्राशना स्तेऽपि। स्त्रीमुख पङ्कजं [illegible] मोहंगताः ॥
आहारं सुदृढ़ (सुघृतं) पयोदधियुतं ये भुंजते मानवा।
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यःप्लवेत्सागरे ॥

जल फल और पत्र का आहार करने वाले विश्वामित्र और पराशर मुनि [illegible] को देख करके मोह मूढ बन गये तो दूध दधि रूप स्निग्ध आहार [illegible] मनुष्यों [illegible] समुद्र में विन्ध्याचल पर्वत के तैरने जैसा है।

आचार्यश्री ने कहा—हे पुरोहित! तुम्हारा यह वचन युक्त नहीं है [illegible] की होती हैं जब पशुओं में भी विचित्रता (भिन्नता) दृष्टिगोचर होती है [illegible] बात? कारण—

सिंहोबली हरिणशूकरमांस भोजी , संवत्सरेण रतिमेतिकिलैकवारम् ।
पारापतः खर शिलाकण भोजनोऽपि कामी भवत्यनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः ॥

अर्थात् बलिष्ठ सिंह हरिण और शूकर के मांस को खाता हुआ भी वर्ष में एक बार रति सुख को भोगता है और कबूतर शुष्क धान्य खाने वाला होने पर भी प्रतिदिन कामी होता है; इसमें क्या कारण है ?

इस उत्तर का राजा व राजसभा के पण्डितों पर बहुत ही प्रभाव पड़ा । "आचार्य हेमचन्द्रसूरि और पाटण का राजा सिद्धराज जयसिंह का चरित्र बड़ा ही चमत्कारी है साथ में एक देवबोध भागवताचार्य का विस्तार से वर्णन किया है पर हमारा संक्षिप्त उद्देश्य के अनुसार हमने यहाँ साररूप ही लिखा है चाहे जैन धर्म के कितने ही द्वेषी क्यों न हो पर उनके मुह से भी साहस निकल ही जाता है जैसे कि

पातु वो हेमगोपालः कंबलं दंडमुद्वहन । पट्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैनगोचरे ॥ ९० ॥

राजा सिद्धराज के सन्तान नहीं थी अतः वह उदासीनता धारण कर आचार्य हेमचन्द्रसूरि के साथ तीर्थ यात्रार्थ निकल गया पर राजा पैदल चलता था एक समय राजा नें सूरिजी से प्रार्थना की कि आप वाहन पर सवारी करावें ? सूरिजी ने इस बात को स्वीकार नहीं करके अपना साधु धर्म का परिचय करवाया इस पर राजा ने भक्ति के वस होकर कहा कि आप जड़ हो सूरिजी ने कहा हम निजड़ हैं । इस पर राजा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ । पर उस दिन से सूरिजी का और राजा का ३ दिन तक मिलाप नहीं हुआ तब राजा ने सोचा कि सूरिजी गुस्से हो गये होंगे राजा चल कर सूरिजी के तंबु में आये वहां सूरिजी आंबिल कर रहे थे जो पानी में लुखी रोटी डालकर खा रहे थे जिसको राजा ने देखा तो उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा राजा ने सूरिजी से प्रार्थना की भगवान् मेरे अपराध की क्षमा बक्सीस करो इस पर सूरिजी ने कहा कि ।

'भुंजी महीवय' भैक्ष्य' जीर्ण वासो वसी महि शयी महि पृष्ठे कुर्वी महि किमीश्वरैः ।'

हम भिक्षालाकर भोजन करते हैं जीर्ण वस्त्र पहनते हैं और भूमि पर शयन करते हैं फिर हमें रांक और राजा से क्या प्रयोजन है । सूरिजी की निस्पृहता देख राजा को बड़ी श्रद्धा हो गई । राजा ने सूरिजी का बड़ा भारी सत्कार किया बाद राजा सूरिजी के साथ शत्रु'जय पर चढ़े और राजाने भाव सहित युगादीश्वर की पूजा कर बारह ग्राम भेंट (अर्पण) किये और अपने जन्म को कृतार्थ माना । बाद गिरनारतीर्थ जाकर भगवान् नेमिनाथ के चरण युगल की पूजा की राजाने नेमिनाथ का प्रसाद देखकर खुशी मनाइ इसपर सज्जन मंत्री ने कहा नरेश ! इसका पुन्य आपने ही उपार्जन किया है कारण नौ वर्ष पूर्व में यहां का सूबा था और राज्य की आमन्द से सवाबीस लक्ष द्रव्य लगा कर तीर्थ का उद्धार करवाया था आपकी स्मृति में न हो तो मेरे से अभी द्रव्य ले लिरावे ? राजा ने उसका बड़ा भारी अनुमोदन किया और रत्न सुवर्ण पुष्पादि से पूजा कर कई मर्यादाएं स्वयं राजा ने बांधी वह अभी तक चलती हैं बाद सूरिजी के साथ राजा प्रभासपट्टन शिव दर्शनार्थ गये और सूरिजी भी साथ में थे सूरिजी ने शिवजी की स्तुति की ।

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्य भिधाय यया तया ।
वीत दोष कलुषः स चेद् भवानेक एव भगवान्नमोस्तु ते ॥ १ ॥

किसी भी समय किसी भी तरह किसी भी नाम से क्यों न हो पर जो आप दोष कलुष से रहित हो तो हे भगवान् ! आप और जिन एक ही हो आपको मेरा नमस्कार हो । वहां से व्याकुल चित एवं संतान

की चिन्ता सहित अंबा देवी के दर्शन पूजन किया उस समय आचार्यश्री ने अष्टम तप कर देवी की आराधना की जिससे देवी आई और कहा कि राजा के भाग्य में संतान नहीं है राजा के भ्राता का पुत्र कुमारपाल है वह पुन्य प्रतापी और राज्य के योग्य है और भी नये राजाओं को जीतकर नाम कमावेगा इत्यादि। बाद सूरिजी से राजा ने सब हाल सुन कर वहां से पाटण आ गये।

क्षत्रियों में शिरोमणि देवप्रसाद जो राजा करण का भाइ था उसका पुत्र त्रिभुवनपाल और उसका पुत्र कुमारपाल जो राज लक्षण कर संयुक्त था देवी ने भी उसके लिये ही कहा था पर फिर भी राजा ने निमितादि शास्त्रों से निर्णय किया तो उन्होंने भी यही बतलाया। भवितव्यता बलवान होती है। सिद्धराज का कुमारपाल पर द्वेष था और उसको मरवा डालने का निश्चय किया था पर कुमारपाल को खबर होने से वह शरीर के भस्म लगा जटा बढ़ा कर एवं शिव भक्त होकर निकल गया। एक समय किसी ने आकर राजा को कहा कि यहाँ ३०० तापस आये हैं। जिसमें कुमारपाल भी है आप सबको भोजन के लिए आमन्त्रण करके देखें जिसके पैरों के चैत्य पद्म चक्र ध्वजादि चिन्ह हो वही तुमारा वैरी कुमारपाल है ऐसा समझ लेना। ठीक राजा ने सब तापसों को भोजन का आमन्त्रण दिया और उनके पैर भी धोये जब कुमारपाल का बारा आया तो उसके पैरों में पद्मादि शुभ चिन्ह देख कर राजा जाण गया की यही मेरा दुश्मन है कुमारपाल भी समझ गया अतः वह अकस्मात् कमंडल लेकर चला तो वहाँ से हेमचन्द्रसूरि के उपाश्रय गया वहाँ बाड़ पत्तों का ढेर लगा हुआ था उसमें उसको छिपा दिया राजा के आदमी आये देखा पर नहीं मिला अतः चले गये। बाद किसी समय कुमारपाल जारहा था तो राजा के सवारों ने उसका पिछा किया इतने में एक कुम्हार का घर आया कुमारपाल के कहने से उसने अपने निवाड़ा में छिपा लिया। जब सवार निराश होकर चले गये तब कुम्हार के यहाँ से निकल कर कुमारपाल चल धरे और वह खम्भात नगर में आया वहाँ एक उदायन नाम का बड़ा ही धनाढय मंत्री राज्य के काम करता हुआ रहता था उसके पास एक ब्रह्मचारी लड़का रहता था उसने मंत्री के पास जाकर कुमारपाल से सुना हुआ सब हाल कह सुनाया और कहा कि कुमारपाल भूखा प्यासा है कुछ खाने को दें ? पर उदायन ने राज भय से कुछ भी नहीं दिया और कहा कि उसको कह दें कि शीघ्र ही चला जावे। ठीक कुमारपाल चार दिनो का भुखा प्यासा था फिर भी वह चल कर हेमाचार्य के उपाश्रय में आया हेमाचार्य वहाँ चातुर्मास किया था कुमारपाल का आदर कर कहा कि हे भवी नरेश। तुमको सातवें वर्ष में राज की प्राप्ति होगी। इस पर कुमारपाल ने गुरु का परम उपकार माना और उनके मांगने पर गुरु ने श्रावक को कह कर ३२ (चलनी रुपये) दिलाया और कहा कि अब तुम्हारे पास दरिद्र नहीं आवेगा। बस कुमारपाल गुरु को नमस्कार कर वहा से देशान्तर चला गया कभी कापड़िया के रूप में कभी पति कल्याणी के रूप में कभी अवधूत के रूप में भ्रमन करता था कुमारपाल की रानी भोपाल देवी भी पति का पिच्छा करती थी वह भी प्रच्छन्नपण उनके पिच्छे पिच्छे भ्रमन किया करती थी इस प्रकार कुमारपाल ने कुछ दुःख का अनुभव करते हुए सात वर्ष ज्यो त्यो कर निकाल दिये।

संवत् ११९९ में सिद्धराज का देहान्त हो गया। न जाने कुमारपाल के भाग्य ने ही उसको खबर दी हो वह नगर के बाहर बीजवृक्ष के नीचे आकर बैठ गया ठीक उस समय दुर्गादेवी ने मधुर स्वर में कुमारपाल को गाना सुनाया कुमारपाल ने कहा हे ज्ञाननिधान देवी! यदि मुझे राज मिलने का हो तो तू मेरे मस्तक पर बैठकर मधुर गाना सुना। ठीक देवी ने ऐसा किया और कहा कि निश्चय ही तुमको राज मिलेगा बाद

तथाऽस्तु कहकर कुमारपाल नगर में गया । श्रीमान् संबसे मिला और हेमाचार्य के उपाश्रय गया कुमारपाल गुरु को नमस्कार कर उनके आसन पर बैठ गया इससे पुनः गुरु ने कहा इस निमित्त से तुम निश्चय ही राजा होगे कुमारपाल ने सूरिजी का उपकार मानता हुआ वहाँ से उठकर नगर में जा रहा था । कि दशहजार अश्व का मालिक कृष्णदेव जो आपका बेनोइ लगता था रात्रि में मिला ।

इधर पाटण के राजधूरा चलाने वालों की सिद्धराज के शिव मन्दिर में सभा हो रही थी कि पाटण का राजा किसको बनाया जाय इस विषय का बिचार करते थे वहां पर दो राजपुत्र आये वे ठीक स्थान पर वेठ गये । इतने में कृष्णदेव कुमारपाल को भी सभा में लाये वे अपने वस्त्र को संकलित कर योग्यासन पर बैठ गये इस पर राज शुभचिंतकों ने भविष्य का विचार कर सबकी सम्मति से पाटण के राज सिंहासन पर कुमारपाल का राज्याभिषेक करवाया तत्पश्चात् कुमारपाल के दुःखमय भ्रमन के समय जितने लोगों ने सहायता दी थी उन सबकों बुलवा कर सबका यथाशक्ति सम्मान किया भोपालदेवी को पट्टराणी पद दिया और भी यथासंभव मंत्री महामंत्री वगैरह पद पर नियुक्त किये । गुरु हेमचन्द्रसूरि के लिये तो कहना ही क्या था जो आगे लिखा जायगा ।

राजा कुमारपाल के राजसिंहासन पर बैठते ही सपादलक्ष के चौहान राजा अर्णोराज के साथ विग्रह हुआ जिससे सैना लेकर चढ़ाई की पर सफलता नहीं मिली अतः लौटकर वापिस आया इस प्रकार कई बक्त सैना लेकर गया इसमें कई ११ वर्ष खतम हो गया पर अर्णोराज को पराजय नहीं कर सका तब कुमारपाल ने अपने मंत्री वाग्भट्ट से जो मंत्री उदायण का पुत्र था उपाय पूंछा उसने उत्तर दिया कि हे नरेश ! जबकि आपकी आज्ञा से आपके भाई कीर्तिपाल ने सोराष्ट्र के राव नोघण पर चढ़ाई की उसमें मेरा पिता उदायण भी था उसने जाते समय शत्रुंजय युगादिनाथ का दर्शन पूजन किया और युद्ध विजय के लिये भी प्रार्थना की बाद वहाँ का जीर्ण मन्दिर देख उद्धार करवाने की प्रतिज्ञा की बाद नोंघण से युद्ध किया । जिसमें कीर्तिपाल के पास में रह कर मंत्री उदायण वीरता से युद्ध करता था और विजय भी मिली पर उदायण के चोट न लगने पर भी वह भूमि पर गिर पड़ा कीर्तिपाळ ने उदायण के पास जाकर अन्तिम वात करी उदायण ने कहा कि मेरी अन्तिमावस्था है पर आप मेरे पुत्र वाग्भट्ट को कहना कि मेरी प्रतिज्ञा (तीर्थोद्धार) को वह पूर्ण करे इत्यादि हे राजन ! यदि आप भी बिजय की इच्छा रखो तो अजितनाथ का इष्ट एवं मान्यता रखो इत्यादि । राजा ने कहा ठीक है वाग्भट्ट अब मुझे याद आ गया है कि मैं मेरी मुसाफरी में भ्रमन करता खम्मात गया था वोसिरि द्वारा मैं उदयन से कुच्छ याचना की पर वह निविज्ञ एवं राजभक्त उस समय वे मेरी कुच्छ भी सहायता नहीं कर सके पर मैंने उस पर गुस्सा न कर उसकी राजभक्ति की सराहना की बाद हेमाचार्य के पास गया उसने मेरी सहायता कर राज मिलने का विश्वास दिलाया इत्यादि राजा ने मंत्री की प्रशंसा की बाद में राजा ने वाग्भट्ट को कहा कि राज खजाना से धन लेकर पहले शत्रुंजय का उद्वार करवा कर मंत्री की प्रतिज्ञा को सफल करो । बाद मंत्री वाग्भट्ट के साथ राजा कुमारपाल पार्श्वनाथ के मन्दिर में जाकर के दर्शन पूजन वगैरह भक्ति कर युद्ध विजय की योजना की जिसमें मंत्री वाग्भट्ट को साक्षि रूप में रखा । बाद प्रभु को नमस्कार करके अजित मन्दिर हो कर अपने स्थान आये और शीघ्र ही सेना को सजधज कर विजय की आकांक्षा करते हुये पाटण से प्रस्थान कर दिया और क्रमशः चंद्रावती के पास आकर डेरा डाल दिया वहां के सामंत राजा ने भी अच्छा स्वागत किया ।

किसी विक्रमसिंह ने राजा कुमारपाल को जान से मार डालने के लिये षड्यंत्र रचा पर राजा के प्रबल पुन्य प्रताप के सामने दुश्मनों की क्या चलने वाली थी उस षड्यंत्र से राजा बाल बाल बच गया और सेना लेकर अजयपुर के किल्ला पर धावा बोल दिया खूब जोरदार युद्ध हुआ आखिर इष्ट के प्रभाव से अर्णोराज को पकड़ कर कैद कर लिया और नगर खजाना वगैरह खूब लूटा राजा कुमारपाल बड़ा ही उदार था जो लूट में जिसको माल मिला वह उसको दे दिया कि कई पुश्तों तक भी खाया हुआ नहीं खूटे। तत्पश्चात् विजय के नकारे बजाते हुये राजा ने पट्टन में बड़े ही महोत्सव के साथ प्रवेश किया जनता सिद्धराज की अपेक्षा कुमारपाल की अधिक प्रशंसा करने लगी।

राजा नगर प्रवेश के समय जब भगवान् अजितनाथ का मन्दिर आया तो वहां जाकर सुगंधी धूप पुष्पादि से भगवान् का पूजन किया बाद पार्श्वनाथ के मन्दिर में पूजन की तत्पश्चात् राज महिलों मे प्रवेश किया याचकों को पुष्कल दान दिया और जिन लोगों ने युद्ध में काम दिया उन सब की कदर की एवं पुष्कल पारितोषक दिया।

षड्यंत्र रचने वाले विक्रम को बुला कर उसके कुकृत्य याद दिला कर कैद किया और उसके भाई रामदेव के पुत्र यशोधवल को चंद्रावती का सामंत राज बनाया।

एक समय राजा कुमारपालने वाग्भट्ट मन्त्री को कहा कि धर्मके लिये कौनसे गुरु ठीक है कि अपनेको सदुपदेश दे सकें? मन्त्रीने भगवान् हेमचद्रसूरि का नाम बतलाया राजाने पूर्व स्मृति हो आने से मन्त्रीसे कहा कि शीघ्र गुरुजी को बुलाओ अतः मन्त्री गुरुजी को लेकर राजभुवनमें आया राजा खड़े होकर सूरिजी का सत्कार किया और प्रार्थना की भगवान् मुझे जैनधर्म का उपदेश दें। सूरिजीने अहिंसापरमोधर्म. के विषयमें खूब जोरों से उपदेश दिया मांसादि अभक्ष पदार्थों का विवेचन किया जिसका त्याग करना राजा ने स्वीकार किया बाद राजाने चैत्यवन्दन सामयिक पौषध प्रतिक्रमणादि धर्म क्रिया का एवं तात्विक ज्ञान सम्पादन किया जिससे जैनधर्म पर राजा की अटल श्रद्धा हो गई एक दिन राजनेगुरुजी से कहा भगवान् मैंने इन दांतों से मांस खाया है अतः इनको गिरा देना चाहता हूँ सूरिजीने कहा हे राजन् इस प्रकार अज्ञान कष्ट से पाप से छुट नहीं सकता है अतः ३२ दांतों के स्थान उपवन में ३२ जिन मन्दिर बना कर दनावें दो राजा ने ऐसा ही किया। जो ३२ सुन्दर जिनमन्दिर बना कर सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई।

राजा के नैपाल देशसे २१ अंगुल की चन्द्रकान्त मणि भेटमें आई थी अतः राजाने वाग्भट्ट को कहा कि तेरा बनाया मन्दिर मुझे दे दे कि मैं इस मूर्ति को स्थापन करूं उत्तर में मन्त्री ने बड़ी खुशी मनाते हुए कहा कि जरूर मेरा मन्दिर लिरावें।

मन्त्री ने राजा को याद दिलाई कि मेरा पिता अन्त समय [illegible] में [illegible] के उद्धार के लिये कह गये थे और आपने भी फरमाया था कि हमारे खजाने से द्रव्य [illegible] करवादो। इस [illegible] आपको पुनः स्मरण करवाया है। राजा ने बड़ी खुशी के साथ मन्त्री को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बहुतसे धर्म भावना वाले बड़े बड़े सेठिये चलकर श्रीशत्रुञ्जय पर गये वहां का मन्दिर [illegible] [illegible] को भी दिखाया नकशा भी तैयार करवाया। सब लोग [illegible] [illegible] कर वहां [illegible] [illegible] की पूजा भक्ति करते हुवे जीर्णोद्धार का काम चालू कर दिया।

पालीताना के पास में एक गामड़ा था वहां एक दरिद्र [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

केवल ६ द्रम्भ (टका) थे जिससे घृत लाकर संघ के पड़ाव में बेचता था जिससे उसको एक रुपया एक द्रम्भ पैदास हुई उनमें एक रुपया का केसर धूप पुष्प वगैरह लेकर प्रभु की उत्साहपूर्वक पूजा की शेष १ द्रम्भ बचा वह पहले ६ के साथ मिला कर सात द्रम्म बड़े ही जाबता से बांध लिये वे उनके लिये सात लाख जितने थे दालिद्र के तो ऐसा ही होता है ।

मन्त्री को देखने के लिये वह दालिद्र वणक उनके तंबू के दरवाजा पर आकर खड़ा हुआ छेन्द्रों से अन्दर बैठा हुआ मन्त्री उसके देखने में आया तो उसने पूर्व संचित पुण्य पाप के फलों पर विचार किया कि कहां तो मेरे पाप जो कि पूरी रोटी भी नहीं और कहां इसका पुन्य कि राज साही ठाठ साधारण राजा जागीरदार भी इसकी सेवा में खड़े रहते हैं फिर भी यह दादा के मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पुण्य का संचय करते हैं इत्यादि विचार करता था इतने में चपड़ासी आकर उस मैले कपड़े वाले को वहां से हटा दिया जिसको मंत्री देखता था उसने बाद मंत्री अपने पास बुला कर उस दालिद्रसे सब हाल पूछा उसने एक रुपया के पुष्पादि से पूजा करने का हाल सुनाया अतः मन्त्री ने अपना साधर्मी भाई समझ कर आसन पर बैठाया इतने में जीर्णोद्धार की टीप लेकर कई सेठिये आये और सलाह करने लगे मन्त्री दालिद्रको पूछा कि तुम्हारे भी कुछ कहने का है । उसने कहा कि ७ द्रम्म मेरा लगादो तो मैं कृतार्थ हो सकूं । इसको देख मन्त्री ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि इसने बड़ी उदारता की अपने पास का सब का सब द्रव्य दे दिया यह तो मेरा साधर्मी भाई है अतः आदमी को कह कर भंडार से तीन बढ़िया रेशमी वस्त्र और ५०० द्रव्य मंगा कर उसको इनाम में देने लगे । इस पर वह गरीब श्रावक गुस्सा कर बोला कि क्या आप धनवान इसलिये हुये हैं कि गरीबों के पुण्य को मूल्य दे खरीद कर उनको परभव में भी गरीब ही रखना ।

मन्त्री सुन कर आश्चर्य में डूब गया और उसको अपने से भी अधिक धर्मज्ञ समझ कर धन्यवाद दिया जब वह गरीब अपने घर पर गया और औरत को सब हाल कहा पर औरत थी क्लेश प्रिय किन्तु न जाने उसको उसदिन सद्बुद्धि कहांसे आई कि पतिसे सहमत होकर सुकृत का अनुमोदन किया बाद पतिसे कहा कि अपनी गाय बार बार खूटा उखेड़ कर भाग जाती है अतः खूटा को भूमि में कोसदो ? बस पति ने हाथ में कुदाळी लेकर भूमि खोदने लगा कि अंदर से ४००० सुवर्ण मुद्रिकाए निकली गरीब वणिक ने अपनी स्त्री को ले जा कर द्रव्य बताया तो उसने भी खुश होकर कहा कि यह आदीश्वर बाबा की पूजा का फल है अतः यह द्रव्य अपने नहीं रखना तब वणिकने मंत्री को अपने घर पर लेजा कर कहा कि इस द्रव्य को ग्रहण करो ? मन्त्री ने कहा हमारे काम का नहीं तेरे भाग्य का है अतः तूही काम में ले पर वणिक तो मंत्री को कहता ही रहा इसमें दिन पुरा हो गया रात्रि में कर्पिद यक्ष ने आकर वणिक को कहा मैंने तेरी भक्ति से प्रसन्न होकर यह द्रव्य दिखाया है यह तेरे ही तकदीर का है दूसरे दिन दम्पति ने तीर्थ पर आकर खूब उत्साह से प्रभु पूजा की इत्यादि खैर ।

मन्त्री का कार्य सम्पूर्ण हुआ कि सं० १२११ में आचार्य हेमचन्द्रसूरि के हाथों से प्रतिष्ठा करवा कर पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण की । राजाकुमारपाल ने कुमार विहार बना कर चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति की तथा ३२ अन्य मन्दिरों की हेमाचार्य से प्रतिष्ठा करवाई राजा ने अपने राज में सात दुर्व्यसन को दूर किया अपुत्रियों का द्रव्य नहीं लेने की प्रतिज्ञा की ।

कल्याण कटक के राजा की गुजरात पर चढ़ाई करने की खबर कुमारपाल को मिली तो गुरु को

पूछा, आचार्यश्री ने कहा कि शासनदेवी आपकी रक्षा करेगी। सूरिजी ने सूरि मंत्र का जाप किया अधिष्टायक आया और कहा बिना उद्यम ही स्वयं संकट दूर होगा। चार दिनों में ही सुना कि राजा मृत्यु शरण हो गया है। राजा को गुरु के ज्ञान पर आश्चर्य हुआ।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपनी जिन्दगी में बहुत ग्रन्थों का निर्माण किया था जिसको लिखाने के लिये राजाकुमारपाल ने प्रयत्न किया पर ताड़ के वृक्ष अग्नि से दग्ध हो गये थे प्रदेश से मंगाये वह भी नष्ट हो गये व इस पर राजा को विचार हुआ कि अहो मैं कैसा हतभाग्य हूँ कि गुरु महाराज ने तो इतने ग्रन्थ बनाये तब मैं लिखाने में भी असमर्थ इत्यादि शासनदेवी से प्रार्थना करने से सब वृक्ष पत्र सहित हो गये जिस पर शास्त्र लिखवावे। गुरु उपदेश से राजा ने तारंगा पहाड़ पर भगवान् अजितनाथ का उतंग मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई।

मन्त्री उदायण का बड़ा पुत्र अवंड बड़ा ही पराक्रमी था जिसने कुंकण के राजा माल्लकार्जुन का शिर छेद कर डाला और भी कई स्थान पर दुश्मन का दमन कर पाटण की प्रभुता स्थापन कर राजभक्ति का परिचय दिया।

भरोंच के मुनिसुव्रत मन्दिर जीर्ण हो गया था जिसका उद्धार अवंड की ओर से हुआ बत्तीस लक्षण पुरुष के लिये योगनियें अवंड को कष्ट देने लगी इससे अवंड ने गुरु महाराज को कहा। गुरु महाराज ने देवी देवतों को संतुष्ट कर अंबड़ को कष्ट मुक्त किया भरोंच का जीर्णोद्धार करवा कर प्रतिष्ठा कराई। राजा ने गुरू महाराज से सम्वक्त्व धारण किया उस समय राजा ने कहा कि—

तुह्माण किं करोहं तुम्हो नाहा भवो यदि गयस्य सयल धणाइं समेउ मइ तुम स माण्पिउ आप्पा।

मैं आपका दास हूँ और भवसागर में आप ही एक मेरे नाथ हो भले धन राज भी मुझे सब मिला है तथापि मैंने मेरी आत्मा तो आपको ही अर्पण की है अतः राजा ने अपना राज सूरिजी को अर्पण कर दिया पर सूरिजी ने कहा हे राजन्! हम निर्ग्रन्थ निःसगी को राज से क्या प्रयोजन है फिर भी राजा ने नहीं मानी तब मन्त्रियों ने बीच में पड़ कर यह निर्णय किया कि आज से राजा राज सम्बन्धी कोई भी विशेष कार्य करेगा वह आपको पूछ कर ही करेगा।

एक समय राजा हस्ती पर आरूढ हो बाजार से जा रहा था एक पतित साधु वैश्या के कन्धे पर हाथ रख कर घर से निकला जिसको राजा हस्तीपर रहा हुआ नमन किया इस बात को सूरिजी को खबर हुई तो आपने व्याख्यान में कहा कि—

पासत्थाइं वंदमाणस्स नेव कित्ती निज्जरा होइ कापा किलेसे एमेव कुणइ तह कम्म बंध॥।

इधर राजा के नमस्कार से उस साधु को बड़ी भारी लज्जा आई कि वह दुराचार को छोड़ मार्ग पर आया अन्त में अनशन किया जिसकी खबर राजा को मिली तो राजा हर्ष [illegible] उस मुनि को वन्दन करने को आया मुनि ने कहा राजन्! आप मेरे गुरु हो कि मुझे दुर्गति में गिरते को मार्ग पर लाये हो इत्यादि।

आचार्यश्रीने राजा को विशेष तत्त्व बोध के लिये योगशास्त्र, त्रिषष्ठि शिलाका पुरुष चरित्र, [illegible] वीतराग स्तोत्रादि की रचना की जिसको पढ़ कर राजाने अच्छा बोध प्राप्त किया राजा ने जैनधर्म की [illegible]

एवं प्रचार करने में कुच्छ भी उठा नहीं रखा हेमाचार्य जैसे गुरु और कुमारपाल जैसे भक्त फिर कमी ही क्या १८ देशों में राजा कुमारपाल की आज्ञा वर्त रही थी तलाव कुवापर गरणीयो बंधा दी थी की कई मनुष्य तो क्या पर पशु भी विना खाणा पाणी नहीं पी सके तथा राजा ने उदघोषणा करवा दी थी कि मेरे राज्य में कोई भी हलता चलता जीव को मार नहीं सकेगा पर एक समय एक बुढिया ने अपनी पुत्री के बाल समारते समय एक जूं को हाथ से मार डाली जिसको प्राण दंड देने का हुक्म हो गया पर पुनः उस पर दया आने से एक जिन मन्दिर उसने बनाया जिसका नाम युक् प्रसाद रखा ।

पूर्व जमाने में वीतभय पट्टन के राजा उदायन के प्रभावती रांणी थी उसके वहाँ भगवान् महावीर की मूर्ति थी पर देवयोग से पट्टन दट्टन होने से मूर्ति भूमि में दब गई सूरिजी के व्याख्यान से अवगत होकर राजा ने अपने आदमियों को भेज कर वहाँ की भूमि खुदवाई जिससे मूर्ति भूमि से निकली जिसको पट्टण में बड़े ही महोत्सव से लाये राजा ने अपने अन्तेवर गृह में रत्न का मन्दिर बनाना चाहा पर सूरिजी ने मनाई कर दी की अन्तेवर घर में इतना बड़ा मन्दिर न हो। राजाने दूसरी जगह मन्दिर बनाया। और उस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुरुजी से करवाइ ।

जैसे सम्राट् सम्प्रति ने जिन मन्दिरों से मेदनि मंडित करवादी थी वैसे कुमारपाल ने भी पाट्टण तारंगा जालोर वगैरह सर्वत्र हजारों मन्दिर वना कर जैन धर्म की महान् प्रभावना की थी।

पूज्याचार्य देव के उपदेश से परमार्हत राजा कुमारपाल ने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुँजय गिरनारादि की यात्रार्थ बड़ाभारी विराट् संघ निकाला जिसमें राजा की चतुरंगनी सैना एवं सर्व लवाजमा तो था ही साथ राजान्तेवर भी था तथा पूज्याचार्यदेवादि श्वेताम्बर दिगम्बर साधु साध्वियाँ और अन्य साधु एवं लाखो नर नारियाँ थे कारण उस समय पाटण में १८०० करोड़ पति थे और लक्षाधिशों की तो गिनती भी नहीं थी जब हेमचन्द्राचार्य जैसे गुरु कुमारपाल जैसे भक्त राजा फिर उस संघ में जाने से कौन वंचित रहे केवल पाटण का संघ ही नहीं पर और भी अनेक ग्राम नगरों के श्रीसंघ भी इस यात्रा में शामिल हुए थे संघ का ठाठ दर्शनीय था बहुत से भावुक तो छ री पाल नियमों का पालन करते थे तब राजा कुमारपाल गुरु महाराज की सेवा में पैदल चलता था क्रमशः चलते हुए जब तीर्थ का दूरसे दर्शन हुआ तो मुक्ताफल से वधाया तत्पश्चात् चतुर्विध श्रीसंघ ने युगादीश्वर भगवान का दर्शन स्पर्शन सेवा पूजा कर अपने कर्मों का प्रक्षालन कर अपने को अहो भाग्य समझे। तीर्थ पर अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण स्वामिवात्स ल्यादि शुभ कार्य कर संघ पुनः पाटण आया वहां भी मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव स्वामिवात्सल्य पूजा प्रभावना और साधर्मी भाइयों को पहरावनी दे कर राजा ने अपनी भक्ति का यथार्थ परिचय दिया। धन्य है भगवान् हेमचन्द्रसूरि को और धन्य है जैन धर्म का उद्योत करने वाले राजा कुमारपाल को सम्राट सम्प्रति के पश्चात् जैनधर्म का उद्योत करने वाला एक राजा कुमारपाल ही हुआ था इनको अन्तिम राजा कह दिया जाय तो भी अत्युक्ति नहीं है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि के पुनीत जीवन के विषय में बड़े आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है पर मैंने यहां प्रभाविक चरित्र के अनुसार संक्षिप्त से ही केवल दिग्दर्शन मात्र ही करवाया है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि का जन्म वि० सं० ११४५ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के शुभ लग्न में हुआ था सं० ११५० वर्ष पांच वर्ष की बाल्यावस्था में दीक्षाली और सं० ११५६ वर्ष गुरु ने सर्व गुण सम्पन्न जान कर आचार्य पद

पर अलंकृत किये और ७१ वर्ष जिन शासन की बड़ी २ सेवायें की सं० १२२९ में आप स्वर्गवासी हुए। जैन संसार में आप साढ़ तीन करोड़ो ग्रन्थ के निर्माण कर्ता कालिकाल सर्वज्ञ के नाम से बहुत प्रसिद्ध हैं।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि का समय चैत्यवासियों का समय था उस समय कई चैत्यवासी शिथिलाचारी थे और कई चैत्यवासी सुविहित उग्रविहारी भी थे आचार्य हेमचन्द्रसूरि के चरित्र से पाया जाता है कि आप मध्यम स्थिति के आचार्य थे आप जैसे उपाश्रय में ठहरते थे वैसे कभी २ चैत्य में भी ठहरते थे जैसे कि—

श्रीरैवतावतारे, च तीर्थे श्रीनेमिनामतः। सार्थे माधुमतेतत्रावात्सीद वहित स्थितिः ॥ २४ ॥

अर्थात् आचार्य श्री खम्भात से विहार कर पहले मकाम नेमि चैत्य में किया था इससे स्पष्ट पाया जाता है कि हेमचन्द्राचार्य चैत्यवास के विरुद्ध नहीं पर सहमत्त ही थे यही कारण है कि हेमचन्द्रसूरि ने चैत्यवास के विरोध मे कही पर उल्लेख नहीं किया हाँ जिस किसी ने शिथिलाचार का ही विरोध किया है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि च० चन्द्रगच्छ (कुल) की शाखारूप पूर्णतालगच्छ के आचार्य थे आपके गुरु का नाम देवचन्द्रसूरि तथा आप प्रद्यम्नसूरि के पट्टधर थे तथा हेमचन्द्रसूरि के पट्टपर रामचन्द्रसूरि आचार्य हुए थे।

प्रभाविक चरित्र के अलावा भी कहा कहीं पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि और कुमारपाल के चमत्कारी जीवन के विषय उल्लेख मिलते हैं पर यहाँ पर वो संक्षिप्त ही लिखा गया है।

७४॥ शाह की पुरांणी ख्यातें

जैन संसार इस बात से तो पूर्णतया परिचित है कि प्राचीन समय में ७४॥ शाह हो गये हैं और इनके लिये यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि बन्ध लिफाफे पर ७४॥ का अंक अङ्कित किया जाता है जिसका मतलब यह है कि जिसका नाम लीफाफे पर है उसके अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति उस लिफाफे को खोल नहीं सके यदि खोल लेगा तो ७४॥ शाहाओं की आज्ञा का भग करने वाला समझा जायगा।

कई लोग यह भी कहा करते है कि चित्तोड़ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया था और आपस में युद्ध हुआ जिसमें मरने वालो की जनेऊ ७४॥ मण उतरी थी इससे बन्द लिफाफे पर ७४॥ का अङ्क लिखा जाता है कि बिना मालिक के लिफाफे खोलने वाले को ७४॥ मण जनेऊ के मरने वालों का पाप लगेगा। पर यह कथन केवल कल्पना मात्र ही है कारण अव्वल तो जनेऊ प्रायः ब्राह्मण ही धारण करते हैं वे प्रायः युद्ध में नहीं जाया करते है यदि कभी गये भी हो तो इतने नहीं; कारण ७४॥ मण जनेऊ को करीब [illegible] मनुष्य धारण कर सकते है अतः इतने जनेऊ धारण करने वाले युद्ध में पहुँच ही नहीं पे तो मरना तो सर्वथा असंभव ही है दूसरा जब कि उस युद्ध में मरने वालों की ही ठीक गिनती नहीं [illegible] [illegible] मृत्यु व्यक्तियों की जनेऊ का तोल माप कौन लगाने को निठोल बैठा था इत्यादि कारणों से यह किंवदन्ति मात्र कल्पना रूप ही है।

प्रस्तुत ख्यात का नाम ७४॥ शाह लिखा हुआ मिलता है और इस नाम पर ही दीर्घदृष्टि से विचार किया जाय तो स्वयं ज्ञात हो सकता है कि शाह शब्द खास और महाजन संघ में ही प्रचलित हुआ है और उस समय महाजन संघ का इतना ही प्रभाव था कि उनकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता था। दूसरा शाह एक महाजन संघ के लिये गौरवपूर्ण पदवी थी और इन लोगों ने देश समाज एवं धर्म

की बड़ी २ सेवायें की जिसमें लाखों करोड़ों नहीं पर अरबों खरबों द्रव्य व्यय कर के सुयश कमाया था इससे ही वे शाह कहलाये थे।

उस समय महाजनों को अपनी शाह पदवी का बड़ा ही गर्व था और वे इसमें अपना गौरव अनुभव करते थे। इस पदवी को पाने के निमित्त शाहों ने कई एक महान कार्य किये हैं जिनमें से कतिपय उदाहरण यहां दिये जाते हैं:—

एक समय गुर्जर भूमि (गुजरात) में महा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा उस समय चांपानेर में बादशाह की ओर से एक सूबा (हाकिम) रहता था उसने एक बार महाजनसंघ के अग्रेश्वरों को बुलवा कर कहा कि बादशाह के नाम के पीछे शाह आता है परन्तु तुम्हारे नामों के पहले शाह शब्द क्यों लगाया जाता है ? उत्तर में महाजन संघ के अग्रेश्वरों ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने देश और देशवासी भ्राताओं की बड़ी २ सेवायें की हैं उन्हीं से हमें शाह पदवी राजा बादशाहो ने प्रदान की है। सूबाने तर्क करके फिर कहा कि तुम्हारे पूर्वजों ने जैसे महत् कार्य किये हैं वैसे कार्य क्या आप लोग भी कर सकते हैं महाजनसंघ ने आज्ञा चाही। सूबा ने देश की दुर्दशा बतला कर अकाल पीड़ित व्यक्तियों और पशुओं की अन्न वस्त्र और घास से सहायता करने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि मैं तभी समझूंगा कि आप सचमुच ही शाह कहलाने के योग्य हैं। वरन् आपकी शाह पदवी छीन ली जायगी। इस पर महाजनसंघ अपनी स्वाभाविक उदार वृत्ति से अकाल पीड़ितों की सहायता का वचन देकर अपने स्थान पर आये और एक वर्ष के ३६० दिन होते हैं जिसके लिये एक २ दिन के लिये मितियों का लिखना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन तो चांपानेर में लिखे गये। पश्चात वे पाटण गये वहां भी कुछ दिन लिखवाये गये वहां से आगे धोळके की ओर जाते हुए रास्ते में एक हाडोला नाम का एक छोटासा ग्राम आया वहां एक ही घर महाजन का था अतः वहां ठहरना उचित न समझ कर ग्राम के बाहर शौचादि से निवृत होकर संघ के लोग ग्राम के बाहर से ही निकल जाना ठीक समझ कर आगे चलने लगे। जब इस बात की सूचना वहां के रहने वाले शाह खेमा को लगी तो वह उनके पीछे जाकर संघनायकों को अपने घर पर लाया। पर उसका साधारण मकान एवं घर का व्यवसाय देख कर उन संघ के अग्रेश्वरों ने सोचा कि इस निर्धन व्यक्ति को एक दिन के लिये भी क्यों कष्ट दिया जाय कारण एक दिन का व्यय भी तो लाखों रुपयों का होता है।

खैर शाह खेमा के आग्रह से वे संघ के लोग वहीं बाजरी की रोटी और भैंस का दही भोजन कर प्रस्थान करने लगे तो उनसे इस प्रकार गमन करने का कारण शाह खेमा ने पूछा इस पर संघनायकों ने सारा हाल कह सुनाया और चंदा की टीप सामने रख कर कहा कि आप भी यदि चाहे तो इसमें एक दिन लिखवादें। इस पर शाह खेमा ने कहा कि मेरे पिता शाहदेदा वृद्धावस्था के कारण दूसरे मकान पर हैं मैं उन्हें पूछ कर आता हूं। टीप की चोपड़ी लेकर खेमा अपने पिता के पास आया और सब हाल कह कर पूछा कि इसमें अपनी ओर से कितने दिन लिखाये जायं। शाह देदा ने विचार विनिमय के पश्चात् कहा कि खेमा ! ऐसा सुअवसर तुम्हें कब मिल सकता है ? और तेरे घर पर चांपानेर का संघ कब आएगा ? तथा तेरे द्रव्य के सदुपयोग का अन्य क्या अच्छा साधन होगा ? मेरी राय यह है कि तुम सारा ही वर्ष लिखादो। पिता का कथन खेमा ने बड़े ही हर्ष के साथ शिरोधार्य कर शाह खेमा संघ के पास आया और एक वर्ष अपनी ओर से कह दिया। इस पर संघ वालों को ज्ञात हुआ कि यह कोई पागल मनुष्य है कारण

कि चांपानेर और पाटण के अरबपति और कई करोड़पतियों में से किसी ने भी एक पूरा वर्ष नहीं लिखाया हैं तब वह बाजरे की रोटी खाने वाला साधारण व्यक्ति कैसे एक वर्ष लिख सकता है ! संघ के लोगों ने खेमा के सम्मुख देखा तब खेमा ने कहा कि आप तो भाग्यशाली हैं और आपको तो सदैव लाभ मिलता ही है । मैं एक छोटे से ग्राम का रहने वाला मुझे तो यह प्रथम ही अवसर मिला है कि आज श्रीसंघ ने मेरे घर को पवित्र बनाया है । आप प्रसन्नतापूर्वक इस वर्ष का लाभ मुझे दिलवाइये परन्तु बही चोपड़े में मेरा नाम न लिखें । पश्चात् शाह खेमा ने अपने घास के झोंपड़े में संघ वालों को लेजा कर अपना सारा खजाना, जेवरात आदि बतलाया । संघ वाले जेवरात देख कर चकित रह गये । खेमा का खजाना देख कर उसको शालिभद्र सेठ की स्मृति हो आई । बस । शाह खेमा को साथ लेकर सब लोग वापिस चांपानेर आये और कई लोगों ने सूबा के पास जाकर कहा कि आपने जो आज्ञा दी उसमें कई लोगों ने भाग लेना चाहा किन्तु हमारे महाजनसंघ में एक ही शाह ने समग्र सम्पूर्ण वर्ष का व्यय अपनी ओर से देना स्वीकार कर लिया है । सूबा ने संघ की बात पर विश्वास नहीं किया और कहा कि उस शाह को मेरे निकट लाओ अतः शाह खेमा को कीमती बढ़िया वस्त्राभूषणों से सुशोभित कर एक पालकी में बिठा बड़े ही समारोह से सूबा के पास लाये और संघनायकों ने सूबा से निवेदन किया कि एक वर्ष के लिये हमारी जाति का एक शाह ही सम्पूर्ण वर्ष में जितना नाज और घास चाहियेगा अकेला ही दे सकेगा जो आपकी सेवा में उपस्थित है । आपका नाम शाह खेमा है इत्यादि महाजनों में बोलने एवं बात बनाने का चातुर्य तो स्वाभाविक होता ही है । सूबा ने संघ वालों के मुंह से सारा हाल सुना और शाह खेमा को देखा तो उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा । सूबा ने शाह खेमा से वार्तालाप किया और तत्पश्चात् शाह खेमा की प्रशंसा की एवं सत्कार तथा सम्मान किया और कहा कि शाहजी आपको किसी वस्तु की एवं प्रबन्ध की आवश्यकता हो तो फरमाइयेगा । आपने बड़ा भारी कार्य करने का निश्चय किया है । इस पर शाह खेमा ने बड़ा अच्छा अवसर देख कर सूबा से निवेदन किया कि आपकी कृपा से सब काम हो जायगा । यदि आप मुझे कुछ देना चाहें तो मेरे ग्राम के आस पास बारह ग्राम हैं वहां जीवहिंसा का निषेध कर देने का फरमान करदें सूबा ने सोचा कि शाह खेमा कितना परोपकारी है करोड़ों रुपये अपने गृह से व्यय करने को उत्साहित हुए हैं फिर भी अपने स्वार्थ के निमित्त कुछ न मांग कर जीव हिंसा का निषेध चाहते हैं यह भी परोपकार का ही कार्य है अतएव सूबा ने उसी समय सत्वर फरमान लिख दिया और शाह खेमा को सिरोपाव (वस्त्र विशेष) के साथ फरमान प्रदान कर के अपने प्रधान पुरुषों को संग भेज कर शाह खेमा को विदा किया । जैनसाहित्य में शाह खेमा का चरित्र अति विस्तार से लिखा है किन्तु स्थानाभाव के कारण मैंने यहां संक्षेप में ही अंकित किया है ।

इसी प्रकार एक बार देहली के बादशाह ने महाजन लोगों को बुलवा कर कहा कि हमें सोने के पाट (स्तम्भ) की आवश्यकता है अतः एक शाह में पाट लाकर उपस्थित करो अन्यथा [illegible] की शाह पदवी छीन ली जायगी "आज भले इस शाह पदवी का मूल्य एवं गौरव नहीं रहा हो [illegible] जिस के चित्त में आया वही अपने नाम के पूर्व शाह शब्द लगा देते हों परन्तु उस समय में इस पदवी का बड़ा भारी गौरव समझा जाता था ।"

और इसके लिये महाजन बादशाह का वचन स्वीकार करके अपने स्थान पर आये और विचार करने लगे कि सोने के पाटों की रकम का तो कमी नहीं [illegible] ही है पर [illegible] [illegible] हो इसके

भी अधिक देदी जाती परन्तु सोना इतना कहाँ से लायें । दूसरे, बादशाह ने पाटों की संख्या भी तो नहीं बतलाई न जाने कितने पाट माँगेंगे । खैर ! महाजनों ने अत्यन्त गहन विचार करके निश्चय किया कि यह कार्य तो इष्ट बली मनुष्य ही पूर्ण कर सकेगा । अतः देहली से पाँच अग्रेश्वर निकल गये और ग्रामोंग्राम इष्टबली व्यक्ति की शोध करते जा रहे थे राह में एक स्थान पर पता चला कि गुढ़ नगर में आर्य जाति का शाह लूना बड़ा ही इष्टबली है और चारणी देवी का उन्हें इष्ट है । बस ! वे पाँचों अग्रेश्वर चल कर शाह लूना के पास आये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इस पर शाह लूना ने कहा ठीक है । इसमें ऐसी कौनसी बड़ी बात है जब तक महाजन का एक बच्चा रहेगा तब तक तो महाजनों की शाह पदवी को कोई नहीं छीन सकेगा । पदवी की रक्षा माताजी करेंगी । आप पूर्ण विश्वास रखें—

उसी दिवस रात्रि में शाह लूना ने अपनी इष्टदेवी का स्मरण किया अतः तत्क्षण देवी आकर उपस्थित हुई और लूना से कहा कि कल पार्श्वनाथ प्रक्षालन करवा कर तुम्हारे मकान के पृष्ठ भाग में जितने काष्ठके पाटादि लकड़े रक्खे हैं उन पर प्रक्षालन का जल छिड़कवा देना तुम्हारा मनोरथ सफल हो जायगा बस ! इतना कह कर देवी तो अदृश्य हो गई और शाह लूना ने प्रातः होते ही देवी के कथनानुसार प्रभु प्रतिमा का प्रक्षालन करवा कर उस प्रक्षालन के जल को देवीके बतलाये हुए काष्टादि पाटों पर छिड़का बस ! फिर तो था ही था । देवी के कथनानुसार सब लकड़ स्वर्णमय बन गये । अतः शाह लूनाने संघ नायकों को ले जाकर बतलाया कि आपको कितने पाटों की आवश्यकता है ? आवश्यकीय पाट इन स्वर्णमय पाटों में से ले लीजिये । संघ नायकों ने सोचा कि अभी महाजन संघ के पुण्य प्रबल हैं । भाग्य रवि मध्याह्न में तप रहा है । उन्होंने शाह लूना की भूरिर प्रशंसा की और कहा कि अपने पूर्वजों ने जो शाह पदवी प्राप्त की थी उसकी रक्षा का सारा श्रेय आप ही को है शाह लूना ने कहा कि मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ परन्तु आप लोग धन्यवाद के पात्र हैं कि आपने इस पदवी के गौरव को स्थाई रखने और उसकी रक्षा के निमित्त घर का सारा कार्य त्याग कर सफल प्रयत्न करने को कमर कसी हैं यह जो कार्य सफल हुआ है यह भी श्रीसंघ के ही पुण्य बल से बना है । इसमें मेरी थोड़ी भी प्रशंसा का स्थान नहीं है । अहा ! हा ! वह कितनी निरभिमानता का समय था कि दोनों ओरसे मान न करते हुए श्रीसंघ के पून्यों का ही अनुमोदन करते रहे । खैर । देहली के अग्रेश्वर सत्वर चल कर देहली आये और बादशाह के पास उपस्थित होकर निवेदन किया कि सोने के पाट मौजुद-तैयार हैं । आपको कितने पाट किस नमूने के चाहिये । ताकि उतने ही पाट मँगवा दिये जाय । इत्यादि । बादशाह ने सोचा कि महाजन लोगो में बुद्धि विशेष होती है केवल बनावटी बाते ही बनाते होंगे क्या यह भी कभी संभव है कि सोने के पाट किसी के यहाँ जमा रक्खे हों अतएव बादशाह स्वयं ही पाटों को देखने के लिये तत्पर हो गया । बादशाह खूब सजधज कर उन संघ नायकों के साथर चलकर शाह लूनाके गृह पर आये । जब शाह लूना की सूरत देखी तो बादशाह को संघ की बात पर विश्वास नहीं आया और समझा कि यह क्या स्वर्ण के पाट दे सकेगा ? परन्तु जब मकान के पीछे लेजाकर बादशाह को उन पड़े हुए स्वर्णमय पाटों को दिखलाया गया तो बादशाह देख कर मन्त्र मुग्ध सा बन गया और सोचने लगा की वास्तव में महाजन लोग ही इस पदवी के योग्य हैं जो कार्य बादशाह नहीं कर सकते वे कार्य भी शाह कर सकते हैं शाह लूना और देहली के महाजनों की प्रतिष्ठा बढ़ाई, खूब सम्मान किया । शाह लूना ने बादशाह को भोजन करवाया बादशाह प्रसन्न होकर शाह लूना को कहा शाहजी आप

शाह लूनाशा के चारणी देवी का इष्ट

को किसी बात की जरूरत हो तो कहिये ? शाहने १२ ग्रामों में जीव नहीं मरने का फरमान मांगा बादशाह ने उसी समय हुकम निकाल दिया पश्चात् सभी व्यक्ति अपने २ स्थान को गये। इस प्रकार प्राचीन वंशावलियों आदि में कई कथाएँ लिखी मिलती हैं। इसमें सत्यता का अंश कितना है इसके लिये निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है किन्तु महाजन संघने इष्ट बलसे ऐसे २ अनेक कार्य किये हैं। अतः उपर्युक्त कथन यदि सत्य भी हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। शाह खेमा और लूना ये दोनों ७४॥ शाह में सम्मलित हैं।

उस समय महाजनसंघ की सख्या करोड़ों की थी। जिनमें ७४॥ विशेष कार्य करने वाले भाग्यशाली शाह हुए हों तो यह असंभव नहीं है। प्राचीन पट्टावलियों आदि जैनसाहित्य का अवलोकन करने से यह पाया जाता है कि उस समय महाजनसंघ में अनेकाऽनेक दानवीर तथा उदार नर रत्न विद्यमान थे जिन्होंने देश, समाज एवं धर्म के कार्यों में लाखों करोड़ों तो क्या परन्तु कई अरबों द्रव्य व्यय करके यश कमाया था। एक २ ने तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालने में सहस्रों, लक्षों नर नारियों को सुवर्णमुद्राएं एवं स्वर्णाभूषण प्रभावना के तौर पर वितरण किये थे। एकेक ने मन्दिर बनवाने में करोड़ों रुपयों का द्रव्य बात की बात में व्यय कर दिया था तथा एक-एक व्यक्ति दुष्काल के समय में सर्वस्व अर्पण कर देते थे। इस प्रकार जनोपयोगी कार्य करने से ही महाजन मां बाप कहलाते हैं और राजा, महाराजा, बादशाह और नागरिकों की ओर से महाजनों को जगतसेठ, नगरसेठ, टीकायत चोवटिये, पंच, चोद्दरा, साहुकार और शाह जैसे गौरवपूर्ण पद प्रदान किये गये थे। अतः इतनी बड़ी समाज में ७४॥ शाह विशेष जनोपयोगी कार्य करने वाले हुए हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस समय ७४॥ शाह की पाँच प्रतियाँ मेरे पास प्रस्तुत हैं उन पाँचों प्रतियों में लिखे हुए शाह के नाम या काम कुछ शाहाओं को छोड़ के मिलते हुए नहीं हैं इससे पाया जाता है कि ७४॥ शाह [illegible] प्रान्त मे ही नहीं पर प्रान्त-प्रान्त में भिन्न २ शाह हुए हैं। जब हम इन पांचों प्रतियों को इतिहास की कसौटी पर कस कर देखते है तब स्थूल दृष्टि से तो हमारे संकीर्ण हृदयमें अनेक शंकाएँ [illegible] हो जाती हैं कि एक-एक शाह ने एक-एक धर्म एवं जन कल्याणार्थ इतनी बड़ी रकम [illegible] होगी? [illegible] संघ में लाखो नर नारियों को स्वर्ण मुद्राएँ एव स्वर्णाभूषण कहाँ से दिये होंगे? [illegible] पच्चीस एव सौ पचास रुपये मासिक नौकरी करने वाले तथा तैल, नमक, मिर्च का व्यापार करने [illegible] कमीशन एव सट्टे से आजीविका चलाने वाले कि जिन्होंने अपने जीवन में [illegible] धर्म के नाम पर व्यय किया हो उन लोगो को उपर्युक्त शंका होना स्वाभाविक ही है इतना ही [illegible] कानोमें सुनने जितनी भी उन लोगो में उदारता कदाचित ही हो। कारण जैसे [illegible] विशालता की बात की जाय तो वह [illegible] मान लेगा कि समुद्र इतना [illegible] के अलावा कोई विशाल स्थान जिन्दगी भर में देखा ही नहीं। इस प्रकार [illegible] हुए अपनी जिन्दगी के अन्त तक वही हाल देखा है कि नौकरी के [illegible] निर्वाह करना उसी प्रकार तांबे पर सोने का पानी चढ़ा कर [illegible] सकती है कि प्राचीन काल में महाजनसंघ के पास इतना [illegible] पर बने हुए विमलशाह तथा वस्तुपाल के मन्दिर तथा [illegible] के बने हुए [illegible] के मन्दिर [illegible] शत्रुंजय के मन्दिर देखते हैं तब कुछ [illegible] में उनकी शंका निवारण हो जाती है!

आप इतिहास के कुछ पृष्ठों को खोल कर देखिये कि अत्याचारी व विदेशियों ने भारत के जवाहिरात और स्वर्ण आदि द्रव्य को किस निर्दयता से लूटा है वह भी एक दो दिन या एक दो वर्ष ही नहीं प्रत्युत सातसौ आठसौ वर्षों तक लूटते ही रहे जो जवाहिरात एवं स्वर्ण से ऊँट ही नहीं पर ऊँटो की कतारे भर-भर कर ले गये थे। एक नादिरशाह बादशाह चन्द घंटों में देहली के जौहरी बाजार से जवाहिरात के ऊँट के ऊँट भरवा कर ले गया था तब सातसौ आठसौ वर्षों का तो हिसाब ही क्या ? अस्तु

जब अंग्रेजों का नम्बर आता है तो अंग्रेज भी भारत से कम जवाहिरात तथा कम स्वर्ण नहीं लेगये हैं। भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व उनका इतिहास देखने से पता चल जायगा कि युरोप में उस समय कितना सोना था और आज कितना है। वह द्रव्य कहाँ से आया जो आज पाश्चात्य लोग करोड़ो पौण्ड विद्या प्रचार में तथा नये-नये आविष्कारों में व्यय कर रहे हैं इत्यादि। विचार करने पर यही कहा जा सकता है कि भारतवर्ष धन की खान है और वह द्रव्य विशेष कर महाजनों के ही पास था। अनुमानतः एकसौ वर्ष पूर्व टॉड साहब ने भारत का भ्रमण करने पर लिखा था कि भारत का आधा द्रव्य जैनियों के पास है। अर्वाचीन काल की यह बात है तब प्राचीन काल की सत्यता में क्या शंका की जा सकती है।

महाजन लोगों को अपने देव गुरु धर्म पर पूर्ण इष्ट था कि इष्ट के बल से वे मनुष्यो से तो क्या पर देवताओं से भी काम निकलवा लेते थे और ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं।

"जैसे कइयो को पारस मिला, कइयों को सुवर्णसिद्धि रसायण, कइयो को तेजमतुरी मिली, कइयों को चित्रावल्ली, तब कइयों को स्वर्णमय पुरुष मिला, एक को जड़ी बूटी मिली जिससे स्वर्ण बनवा लिया, एक को देवीने अक्षय थैली दी तो कइयों को अक्षय निधान बतला दिया। इनके अलावा बहुत से लोग विदेशों में व्यापार कर समुद्रोसे प्राप्त हुई बहुतसे जवाहिरात भी ले आये थे। अतः उन महाजनोंके घरके द्रव्य का कौन पता लगा सकता था। दूसरा उस जमाने के महाजनों की यह एक बड़ी भारी विशेपता थी कि वे प्राप्त लक्ष्मी को संचय नहीं कर धर्म कार्य एवं जनोपयोगी कार्यों में लगा देने में अपना कल्याण एवं लक्ष्मी का सदुपयोग समझते थे और ज्यों-ज्यों वे लक्ष्मी सद्कार्यों में व्यय करते थे त्यों त्यों लक्ष्मी उनके वहाँ बिना बुलाये ही आकर स्थिरवास कर दिया करती थी। अतः उन शाहाओं के किये हुए कार्यों में समझदारों को शंका करने की जरूरत नहीं है।

अस्तु, उन शाहाओं का समय तो बहुत प्राचीन काल से प्रारम्भ होता है और उस समय की अपेक्षा से आज बीसवीं शताब्दी सब तरह से गई गुजरी है धन में और संख्या में इसका पतन अपनी सीमा तक पहुँच गया है। तथापि महाजन संघ एकेक धर्म कार्य में दश दश, बीस-बीस लक्ष रुपये खर्च कर देना तो एक बॉया हाथ का खेल ही समझते हैं। जिसके लिये कदम्बगिरी के मन्दिर तथा पालीताणे का आगम मन्दिर प्रत्यक्ष उदाहरणरूप हैं तथा मुट्ठी भर मूर्त्तिपूजक समाज के केवल मन्दिरों का खर्चा प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का हो रहा है। तब आज से १४००-१५०० वर्ष पूर्व का महाजनसंघ जो उन्नति के ऊँचे शिखर पर था उस समय में पूर्वोक्त कार्य किया हो तो इसमें शंका करने जैसा कोई भी कारण नहीं हो सकता है।

कदाचित पचीस, पचास एवं सौ रुपये मासिक नोकरी करने वालों की समझ में एकदम यह बात नहीं आवे तो बालों पर सुगंधी तैल लगाकर किसी सौरभयुक्त वाटिका में बैठकर शान्त चित से विचार करें कि इस बीसवीं शताब्दी के पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी महाजनों के लिये कैसी थी और उन्नीसवीं के पूर्व

अठारहवीं तथा अठारहवीं के पूर्व सतरहवीं और सतरहवीं के पूर्व सोलहवीं शताब्दी महाजनों के लिये तन, जन तथा धन के लिये कैसी थी। इसी प्रकार एक-एक शताब्दी पूर्व का इतिहास देखते जाइये। आपको महाजनों की ऋद्धि एवं समृद्धि का पता लग जायगा। इतने पर भी दरिद्रता के साम्राज्य मे फँसे हुए व्यक्तियों की समझ में नहीं आए तो कर्मों की गहन गति पर ही संतोष करना पड़ता है।

महाजन संघ का समय विक्रम पूर्व कई शताब्दियों से ही प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् भगवान् महावीर के समय के आस पास का ही समय महाजन संघ का समय था और उस समय के आस पास में भारत कैसा समृद्धिशाली था जिसके लिये कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं।

(१) भगवान् महावीर के समय राजा श्रेणिक की रानी धारणी जो मेघकुंवर की माता थी जिसका शयनगृह का तला पांच प्रकार के रत्नो से जड़ा हुआ था।

(२) राजा श्रेणिक ने कलिंग की खण्डगिरी पहाड़ी पर जैन मन्दिर बनवा कर सुवर्णमय मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी तथा सदा १०८ सुवर्ण के चावलों का स्वस्तिक करता था उनके पास कितना सुवर्ण होगा।

(३) सेठ शालिभद्र के घर की जवाहिरात मनुष्य गिन नहीं सकता था। एक समय तो उसने यहाँ तक भी कह दिया था कि राजा श्रेणिक अपने घर पर आया है तो उसको सस्ता या महँगा खरीद कर भंडार में डाल दो। अर्थात् सुख साहिबी में उसे यह भी पता नहीं कि राजा क्या वस्तु है ?

(४) नंदराजाओं ने अपने द्रव्य को भूमि में दबवा कर उनके ऊपर पांच स्तूप बनवाये थे। जिसको शुंगवंशी राजा पुष्पमित्र ने खुदवा कर द्रव्य निकाल लिया था। वह अपार द्रव्य था।

(५) चंद्रगुप्त मौर्य ने पीत सुवर्ण नहीं पर श्वेत सुवर्ण की मूर्ति बनवाई थी जिसकी सम्राट सम्प्रति ने अर्जुनपुरी (गंगाणीग्राम) के मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई थी।

(६) महाजन संघ को देवी ने वरदान दिया था कि "उपकेशे बहुल्य द्रव्यम्";

(७) सम्राट सम्प्रति ने सवालक्ष नये मन्दिर और सवा करोड़ मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई थी।

(८) महाजन संघ का इतिहास बतला रही है कि इन महाजनो ने सुवर्णमय बड़ी २ मूर्तियों को बना कर प्रतिष्ठा करवाई थी तब कई एकों ने हीरा पन्ना माणक स्फटिक रत्नों की मूर्तियां बनवाई थी — और कई स्थानों पर अद्यावधि विद्यमान भी है जो विधर्मियों की लूट से बच गई थी।

(९) महाजन संघ के पास के द्रव्य का हिसाब तो बृहस्पति भी नहीं लगा सकता था [illegible] ख्याति मे लिखे हुये कार्य किये हो उसमें शंका करना महाजनसंघ के इस समय के इतिहास के [illegible] लोगों का ही कार्य है।

इतना विवेचन करने के पश्चात् अब हम प्रस्तुत शाह [illegible] पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश [illegible] करेंगे कि इसमें थोड़ा बहुत ऐतिहासिक तथ्य है या नहीं ? ऐतिहासिक दृष्टि से [illegible] शाह के लिये कम से कम पाँच पाँच बातों पर विचार किया [illegible] २ शाह के नगर ४ समय और उनके किये हुये ५ शुभ कार्य। जिसमें [illegible] ऐतिहासिक जैसे:—शाहसोना, शाहसारंग, शाहदेशल, शाह[illegible], शाह[illegible], [illegible], शाहसमरा, शाहपेथा, शाहधंधक, शाहजुनक, शाहपासा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], शाहसोना, शाहसीना, शाहमैना, शाहनथा, शाहहूना, शाहदेदक, [illegible], [illegible], [illegible],

शाहनारायण, नेतासीशाह, खेतमीशाह राजसी, शाहजावड़, शाहजगडू, शाहरांका, शाहपद्मा, इत्यादि पूर्वोक्त शाहों के नाम अन्य स्थानों पर भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई नामख्याति में हैं उनके लिये भी हम शंका नहीं कर सकते क्योंकि करोड़ों की संख्या में उस समय महाजनसंघ थे तब उनके नाम भी कुछ न कुछ होंगे ही। जब हमें अपने पूर्वजों की पांच सात पीढ़ियों के सिवाय नाम भी स्मरण नहीं हैं तो शाहों के नामों के विषय की शंका करना तो निर्मूल ही है। हां अर्वाचीन लेखकों ने नामों के अन्त में मल चन्द राजादि शब्द जोड़ दिये हों इसको अर्वाचीन लेखन पद्धति ही समझना चाहिये। दूसरी बात जाति की है उस समय महाजनसंघ में जातियों की सृष्टि हो गई थी उस की गिनती भी नहीं थी और जो जातियां ख्याति में लिखी हैं वे जातियां ठीक हों तो भी कुछ कहा नहीं जा सकता। अतएव यह शंका भी निर्विवाद अस्थान है। तृतीय बात है शाहों के निवास नगरों की। इसके लिये इतना विचार हमें अवश्य करना पड़ेगा कि कई प्राचीन नगर तो विधर्मियो के आक्रमण से नष्ट हो चुके हैं और कई एक नगरों के नाम अपभ्रंश होकर बिल्कुल ही बदल गये। और कई प्राचीन नामों के स्थान नये नगर बस गये और उनके नाम भी वही रक्खे गये हैं जो प्राचीन थे। अतएव नगरों के विषय में ऐसी कोई बाधक शंका नहीं उठती है। चतुर्थ बात है उनके समय की यह बात अवश्य विचारणीय है क्योंकि ख्याति में जो समय अंकित है वह कुछ थोड़े नामों को छोड़ कर प्रायः सब काल्पनिक हैं। एक यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि एक ही जाति में एक नाम के अनेक महाजन हो जाने से भी समय लिखने में गड़बड़ी हो जाती है। और ऐसी गड़बड़ केवल इन शाहाओं की ख्यात के लिये ही नहीं किन्तु अन्य भी ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी दृष्टिगोचर होती है जैसे कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्रसूरि रचित परिशिष्ट पर्व ग्रन्थ, आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि का प्रभाविक चरित्र, आचार्य मेरुतुंग सूरि रचित प्रबन्ध चिन्तामणि, आचार्य जिनप्रभ सूरि रचित विविध तीर्थ कल्पादि प्रमाणिक ग्रन्थों में भी समय के विषय कई स्थानों पर त्रुटियां मालूम होती है इसका मुख्य कारण घटना समय के सैकड़ों वर्ष पश्चात् ग्रन्थ लिखे गये हैं इस हालत में ख्याति में समय की त्रुटियां रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पर समय के रद्दोबदल हो जाने पर भी वह घटना कल्पित नहीं कही जा सकती है हां अन्य साधनों द्वारा संशोधन कर उनको ठीक व्यवस्थित बनाना हमारा कर्तव्य है और हमने इस विषय में कुछ प्रयत्न भी किया है जैसे बहुत से आचार्यों ने सांवत्सरी पांचवीं के स्थान में चतुर्थी को करने वाले कालकाचार्य को वीर की दशवीं शताब्दी में होना लिखा है वास्तव में वे कालकाचार्य वीर की पांचवीं शताब्दी में हुये थे इसी प्रकार एक नाम के एक नहीं पर अनेक शाह हो जाने से समय का रद्दोबदल हो ही जाता है। एक समय को ठीक संशोधन कर लिया जाय तो शाहका नाम तथा जातिका भी पता लग जायगा कि उस समय वे जातियाँ अस्तित्व में आ गई थी ? या नहीं ? तथा नगर का भी पता लग जायगा कि उस समय यह नगर था या नहीं ? अर्थात् इन शाहाओं की ख्यातों का ऐतिहासिक तथ्य केवल एक समय पर ही निर्भर है अतः सब से पहले हमको समय की ओर लक्ष देना चाहिये। अर्थात सब से पहले समय की शोध करनी चाहिये इसके पश्चात् पांचवीं बात है शाहओं के कार्यों की। इसके हेतु यह समझना कठिन नहीं है कि उस समय जैन समाज में जैनमन्दिर बनाना तीर्थों के संघ निकालना, संघ पूजा करना, न्याति जाति को अपने घर आमन्त्रित करना इन कार्यों में संघ को पहरावनी (प्रभावना) देना जिसमें अपनी शक्ति के अनुसार कोई भी कमी नहीं रखते थे क्योंकि उस समय इन कार्यों का बड़ा भारी गौरव समझा जाता था। शक्ति के होते हुये पूर्वोक्त कार्य में

से कोई भी कार्य कर अपने आपको वे कृतार्थ समझते थे। ख्याति का समय तो बहुत प्राचीन कालसे प्रारम्भ होता है परन्तु गोड़वाड़ प्रान्त में तो इस बीसवीं शताब्दी तक भी अपने घर पर प्रसग आने पर ५२ ग्राम ६४, ७२, ८४ तथा १२८ ग्रामोंके महाजनों को आमन्त्रित किये जाते थे और प्रभावना-लहण-पहरावणी में लड्डुओ के साथ पीतल के बर्तन तथा वस्त्रादि दिये जाते थे कई २ चांदी के बरतन भी देते थे तब उस प्राचीनकाल में सुवर्ण दिया जाता हो तो आश्चर्य की कौनसी बात है ? क्योंकि उस समय लोगों के पास नीति न्याय और सत्यतासे उपार्जित द्रव्य ही आया करता था और वह ऐसे ही शुभ कार्यों में लगता था। कई लोगों ने मन्दिर के लिये भूमि पर रुपये बिछवा कर रुपयों के बराबर भूमि ली थी तब कई एकों ने एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक रुपयों के छकड़े के छकड़े जोड़ देने की उदारता दिखलाई थी। सब से उत्तम बात तो यह थी कि उस समय के लोगों के चित्त में पुण्य नाश का कारण माया कपट और तृष्णा बहुत कम थी और देव गुरु धर्म पर उनकी अटल एवं पूर्ण श्रद्धा थी। वे यही समझते थे कि लक्ष्मी स्थिर नहीं पर चंचल है इसे जितनी शुभ कार्यों में व्यय की जाय वही अपने सग चलेगी अतः वे लोग येनकेनप्रकारेण जहां सुअवसर देखा लाखों करोड़ों द्रव्य शुभ कार्यों में व्यय कर दिया करते थे फिर भी समय २ की रुचि और प्रवृत्ति भिन्न२ होती हैं, जैसे वर्तमान में विद्यालय तथा औषधालय आदि प्रचार को अधिक महत्व दिया जाता है और इन कार्यों के लिये आज भी लाखों करोड़ों का व्यय किया जाता है। (अवशेष) वैसे ही उस समय मन्दिर बनाने यात्रार्थ सघ निकालने स्वाति जाति के लोगों को अपने घर पर बुलवा कर उनका सत्कार सन्मान एवं पूजा कर लहण एवं पहरावणी देना तथा याचकों को पुष्कल दान देने में ही वे लोग अपना गौरव समझते थे। वास्तवमें वे लोग अपने कल्याणके साथ दूसरो का भला भी करते थे अत. इनके [illegible] गौरव की बात ही क्या हो सकती है।

वर्तमान में हमारी समाज में ऐसे विद्वानो (!) की भी कमी नहीं है कि प्राचीन ग्रन्थ पट्टावलियों वंशावलियों की बातों को ऐतिहासिक साधनों की आड़ लेकर कल्पित ठहरा देते हैं। यदि वे विद्वान थोड़ा सा कष्ट उठा कर ठीक शोध खोज करे तो उनको पता मिल जायगा कि हमारे पूर्वाचार्यों ने लिखा है वह ठीक यथार्थ ही है और विशेष सोध खोज करने पर उन बातों के लिये इतिहास का भी [illegible] मिल जायगा पर परिश्रम करने वाला होना चाहिये। इतिहास के विषय इन अन्यत्र लिखेंगे।

इस समय ७०॥ शाहाओ की मेरे पास पाच प्रतिया विद्यमान है उनको [illegible] ही साथ नम्बरवार छपा देना उचित समझा है कारण ऐसा करने से एक तो [illegible] पाचों प्रतिया पढ़ने की सुविधा मिल जायगी दूसरा एक ही समय में किस [illegible], तीसरा कौन शाह कैसा मान्य हुआ और किस शाह का नाम सब [illegible] या २ सामान एव विशेष काम किया इत्यादि।

अन्त में मैं यह आशा करता हूं कि इन ख्यातो द्वारा प्राचीन समाज के [illegible] पना तथा उनकी उदार भावना देख कर उनकी सन्तान को गौरव रखना चाहिये कि [illegible] किस मौलिक गुणो से धन राशि सम्पादन की थी और परोपकार के लिये [illegible] योग किया था। उन गुणो के अभाव हमारी कैसी पतित दशा हुई है ? [illegible] को हासिल कर हमारे पूर्वजो के पद के [illegible] ? [illegible] की ख्यातो को पढ़ कर सद्भावना से अनुमोदन करेंगे तो मैं मेरे [illegible]

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
१	१	शाह श्रीपाल	हाप्पासा	आदित्यनाग	उपकेशपुर	वि० सं० १११	१
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, धन्नो	गिरधरसा	श्रेष्ठिगोत्र	सत्यपुरी	,, ११५	२
	५	,, पर्वत	वीरमसा	सुचंतिगो०	माडव्यपुर	,, १२७	३
२	१	,, जालो	करथासा	बप्पनाग।	डिडूनगर	,, १३३	४
	२	,, बरधो	धोरासा	तप्तभट्टगो०	भीन्नमाल	,, १३५	५
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, राघो	वासासा	मोरक्षगो०	नागपुर	,, १४१	६
	५	,, नोंधण	रावलसा	वलाहगो०	आभापुरी	,, १४२	७
३	१	,, पातो	देवासा	प्राग्वट	पद्मावती	,, १४९	८
	२	,, सावंत	पातासा	,,	,,	,, १५६	९
	३	,, नरथद	जैतासा	श्री श्रीमाल	कोरंटपुर	,, १५९	१०
	४	,, गोदो	जोधासा	चरडगो०	आघाटनगर	,, १६२	११
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, १६७	
४	१	,, आसो	दासासा	विरहट	खटकूपनगर	,, १७४	१२
	२	,, दुर्गो	जोगासा	भद्रगो०	मेदिनीपुर	,, १७८	१३
	३	,, निंबो	थोभणसा	चिंचटगो०	चन्द्रावती	,, १९१	१४
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५	१	,, धरण	नागासा	श्रेष्टिगो०	भद्रावती	,, १९८	१५
	२	,, लाखण	सारंगसा	कुजहटगो०	नारदपुरी	,, २०३	१६
	३	,, भैंसो	खहरथासा	आदित्यनाग	डिडूनगर	,, २०९	१७
	४	,, ,,	,,	,,	,,		
	५	,, ,,	,,	प्राग्वट	,,	,, २२१	१८
६	१	,, सांगो	आदूसा	कुम्मटगो०	पल्हिका	,, २२९	१९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, [illegible]	[illegible]सा	सुचंति	सत्यपुरी	,, ,,	२०
	४	,,	[illegible]मा	कनोजिया	उपकेशपुर	,, २४४	२१
	५	,,		लघुश्रेष्टि	,,	,, २४८	२२

शाहाओं ख्याति का नम्बरवार नाम

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	काव्य
१३	१	शाह अचलो	गोविन्दसा	चोरड़िया	देवपाटण	वि० सं० ३९१	४२
	२	,, ,,	,,	,,	,,		
	३	,, ,,	,,	,,	,,		
	४	,, ठाकुर	जगासा	मोरक्ष	जावलीपुर	,, ३९७	४३
	५	,, वालो	जैसिंहसा	देसरड़ा	भीन्नमाल	,, ४०३	४४
१४	१	,, लालो	पैथासा	श्रेष्ठिगो०	शिवगढ़	,, ४१५	४५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, भीमदेव	धन्नासा	तप्तभट्ट	शंखपुर	,, ,,	४६
	४	,, धरमो	केसासा	विरहटगो०	उपकेशपुर	,, ४३०	४७
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
१५	१	,, भाजो	करणासा	नाहटा	धोलागढ़	,, ४३५	४८
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, रावल	जैतासा	भुरंट	माडव्यपुर	,, ४४४	४९
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, वालकिस०	हापुसा	कुम्मट	राजपुर	,, ४५९	५०
१६	१	,, हीरो	मुकनासा	तातेड	विजयपुर	,, ४६०	५१
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, देदो	रावलसा	कनोजिया	कनौज	,, ४६७	५२
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, सोमो	गोकलसा	चोरड़िया	मारोटकोट	,, ४७०	५३
१७	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, भूतो	लाधासा	करणावट	कीराटकूंप	,, ४८३	५४
	४	,, ,,	,,	,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
१८	१	,, निरमल	सदासुख	गुलच्छा	नागपुर	,, ४९९	५५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, नाथो	गमनासा	प्राग्वट	चन्द्रावती	,, ५०३	५६
	५	,, भैसो	रोड़ासा	आदित्यनाग	भवानीपुर	,, ५०८	५७

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय		कार्य
२५	१	शाह भारमल	देदासा	जंघड़ा	मालपुरो	,,	६६२	७३
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, चान्दो	घीरा सा	कुलहट	मालपुरा	,,	६६३	७४
	४	,, पोमा	पद्मा सा	नाहटा	अघाटनार	,,	६६७	७५
	५	,, सलखण	हीरा सा	तातेड़	पद्मावती	,,	६७३	७६
२६	१	,, मामण	पोखर सा	पारख	उपकेशपुर	,,	६८५	७७
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, दाखो	दीपा सा	कनोजिया	माडव्यपुर	,,	६९०	७८
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
२७	१	,, अज्जड	चोखा सा	प्राग्वट	नाणापुर	,,	६९९	७९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, तिलोक	करमा सा	कंकरिया	ब्रह्मपुरी	,,	७०३	८०
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	५	,, अजरो	खेतसी	भुरंट	लोद्रवापुर	,,	७११	८१
२८	१	,, विजो	साहरण सा	चोरलिया	नारदपुरी	,,	७१४	८२
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, विमल	दोला सा	गोखरू	आयोध्या०	,,	,,	८३
	५	,, वागो	जैवा सा	ढेलीवाल	जावलीपुर	,,	७२३	८४
२९	१	,, अखो	मोजा सा	तोडियाणी	अजयपुर	,,	७३१	८५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, आसो	चतरा सा	संचेती	चित्रकोट	,,	७३९	८६
	५	,, धरमो	,, नवला सा	पोकरणा	सत्यपुरी	,,	७४२	८७
३०	१	,, रामो	जोगा सा	केसरिया	उज्जैन	,,	७५४	८८
	२	,, भोमो	भारमल सा	श्रेष्टि	चंदेरी	,,	७६०	८९
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	
	४	,, खेमो	खीवसी सा	कुम्मट	माडवगढ	,,	७६७	९०
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,,	,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
३१	१	शाह अर्जुन	कालासा	सुंचंति	उपकेशपुर	वि. सं. ७८३	९१
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, तोलो	चैनासा	श्री श्रीमाल	शीतलपुर	,, ८०२	९२
३२	१	,, कांनड़	भावुजीसा	आर्य गोत्र	गोसलपुर	,, ८११	९३
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, थोभण	कर्मासा	चंडालिया	अर्जुनपुरी	,, ८१९	९४
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
३३	१	,, नरसिंह	दीपासा	सुघड़	पुरनगर	,, ८३८	९५
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, सोमो	कानड़सा	छाजेड़	भीन्नमाल	,, ८५२	९६
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
३४	१	शाह राणो	खेतासा	चोरड़िया	पाल्हिका	,, ८६२	९७
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह रासो	जोरासा	आर्य	देवपट्टन	,, ८७१	९८
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
३५	१	शाह शंकर	कानासा	धाकड़	नागपुर	,, ८८२	९९
	२	,,	,,		,,	,, ,,	
	३	शाह आसो	सागासा	देसरड़ा	चन्देरीपुर	,, ८९२	१००
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	शाह कल्याण	एकलिंगसा	डाकरिया	चम्पापुरी	,, ९०५	१०१
३६	१	शाह लालो	लालासा	घटालिया	रत्नपुर	,, ९११	१०२
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह नन्दो	हरदुसा	श्रेष्टि गो०	चन्देरी	,, ९१५	१०३
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
३७	१	शाह दामोदर	कोलासा	सुघड़	उज्जैन	वि. सं. ९१९	१०४
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, धरमशी	मांडासा	गुलच्छा	लोद्रवा	,, ९३२	१०५
३८	१	,, मूलो	खूबासा	भटेवरा	जैतलपुर	,, ९५०	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, नातुं	मोकमसा	रांणावत	बुन्दी पटण	,, ९५४	१०६
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, भोमो	सेरासा	तातेड़	नागपुर	,, ९५७	१०७
३९	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, देदो	भादासा	बाफणा	पाली	,, ९५९	१०८
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
४०	१	,, कल्यण	देदासा	आर्य्य	वीरपुर	,, ९७४	१०९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, पेथड़	आसासा	प्राग्वट	करणावती	,, ९८५	११०
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
४१	१	,, मालो	सहजासा	छाजेड़	माडव्यपुर	,, १००२	१११
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, राजसी	देपालसा	श्रीमाल	कुन्तीनगरी	,, १०२२	११२
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, भैरो	हंसासा	ढेलड़िया	देवपटण	,, १०३०	११३
४२	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, फूआ	मंनगसा	पारख	अणहल पटण	,, १०३६	११४
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	का
४९	१	शाह मोडीराम	भावजीसा	सालेचा	नाणपुर	वि. . ११२२	१२
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, भैरू	हरजीसा	लोढ़ा	विजयपुर	,, ११३४	१२
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५०	१	,, खूबो	पांचासा	हरणा	शिवपुरी	,, ११४५	१२९
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, चोखो	नाथासा	वागड़िया	भवानीपुर	,, ,,	१३०
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, मोभण	कानासा	छावत	पाली	,, ११६४	१३१
५१	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, भीम	मेकरणसा	सुरवा	पाटण	,, ११७२	१३२
	३	,, कुम्भो	धवलसा	चोरलिया	नागपुर	,, ११७८	१३३
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५२	१	,, पारस	सांगासा	गुरुड	फलवृद्धि	,, ११८१	१३४
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, रूमो	गोकलसा	कंकरिया	शिवगढ़	,, ११९४	१३५
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, धन्नो	सेगासा	नेपाला	राजपुर	,, १.९९	१३६
५३	१	,, बोरीदास	गुमनसा	गन्धी	डामरेलपुर	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, चतरो	सेमासा	सुरांणा	आघाटनगर	,, १२२१	१३७
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
५४	१	,, सारो	हुचासा	बोत्थरा	पद्मावती	,, १२४१	१३८
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
६१	१	शाह खेमो	देदासा	हडाणा श्रीमाल	होडला	वि सं० १३१५	१५०
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	शाह लुणासा	टोटासा	आर्य	गुढ़नगर	,, १३५०	१५१
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६२	१	शाह देशल	गोशलसा	वेदमहता	पालनपुर	,, १३६	१५२
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,		,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	१५३
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६३	१	शाह समरो	देशलशा	वैदमहता	पाटण	,, १३७	
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
६४	१	शाह रतनो	कुशालासा	भंडारी	नागपुर	,, १४००	१५४
	२	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	शाह तेजपाल	ऊकारसा	प्राग्वट	पाली	,, १४३२	१५५
	४	,, हरखो	चन्द्रभाणसा	सुरांण	नागपुर	,, १४६५	१५६
	५	,, सुगाल	सार्वंवसा	नक्षत्रगो०	उज्जैन	,, १४८६	१५७
६५	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	३	,, खेतो	जैतसीसा	सालेचा	मथुरापुरी	,, १५०४	१५८
	४	,, ,,	,,	,,	,,		
	५	,, टीबो	नाथासा	कटारिया	विराटपुर	,, १५३०	१५९
६६	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, डावर	धानासा	वरडिया	सिरोही	,, १५४३	१६०
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
६७	१	शाह दलपत	देशलसा	संखलेचा	मालपुर	वि. सं. १५६३	१६१
	२	,, कल्याण	जीतमलसा	कोचर	मांडव्यपुर	,, १५६६	१६२
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,, चांपक	नेणासा	भंशाली	मंगलपुर	,, १५७०	१६३
६८	१	,, साचू	गोरखसा	पामेचा	देहली	,, १५८२	१६४
	२	,, राणू	धनासा	कटारिया	सत्यपुरी	,, १५९१	१६५
	३	,, पातो	जैतासा	वैदमहता	शुभटपुर	,, १६०१	१६६
	४	,, ,,	,,	,,	,,	,, १६०७	
	५	,, कर्मो	गुमानसा	पोकरणा	पद्मावती	,, ,,	१६७
६९	१	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	,, आदू	समरथसा	गुलच्छा	फलवृद्धि	,, ,,	
	३	,, ,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,, भैरू	मालासा	भंडारी	पाली	,, १६०८	१६८
	५	,, सुखो	भैरूसा	मुनोयत	लोद्रवा	,, १६०५	१६९
७०	१	,, पृथ्वीराज	मोखमसिंह सा	चंडालिया	धारानगरी	,, १६१४	१७०
	२	,, ,,	,,	,,	,,		
	३	शाह हाथी	लुंबासा	लोढ़ा	सिरोही	,, १६१६	१७१
	४	शाह करमचन्द	समानसा	बच्छावत	बीकानेर	,, १६२५	१७२
	५	,,	,,	,,	,,		
७१	१	शाह भीमो	भारमलसा	कावड़िया	उदयपुर	,, १६३२	१७३
	२	,,	,,	,,	,,		
	३	,,	,,	,,	,,		
	४	,,	,,	,,	,,		
	५	शाह सूरा	सेराजः	सुरपुरिया	मेवाड़	,, १६३३	१७४
७२	१	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	२	शाह देदू	,,	भंडशाली	जैसलमेर	,, १६३५	१७५
	३	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	४	,,	,,	,,	,,	,, ,,	
	५	,,	,,	,,	,,	,,	

शाह नंबर	प्रति नंबर	शाह नाम	पिता का नाम	जाति का नाम	नगर का नाम	समय	कार्य
७३	१	शाह हेमराज	गोकुलशाह	सुराणा	देहली	वि० सं० १६७०	१७६
	२	" "	"	"	"	" "	
	३	" पर्वत	केसाशाह	गादइया	घूनाड़ा	" १६७२	१७७
	४	" "	"	"	"	" "	
	५	" वासा	हरखाशाह	हथुडिया	जाबलीपुर	" १६७९	१७८
७४	१	" हंसराज	भीमाशाह	वैदमहता	अलवर	" १६८९	१७९
	२	" "	"	"	"	" "	
	३	" कालु	सांगाशाह	प्राग्वट	पाली	" १७०१	१८०
	४	" जीतो	पद्मशाह	मांडोत	उज्जैन	" १७१६	१८१
	५	" "	"	"	"	" "	
७५	१	" नरसिंह	खेताशाह	गेललाडा	मुर्शदाबाद	" १७३२	१८२
	२	" "	"	"	"	" "	
	३	" "	"	"	"	" "	
	४	" "	"	"	"	" "	
	५	" "	"	"	"	" "	

कोष्टक में अन्तिम कोष्टक कार्य का है और उसके नीचे जो अंक रक्खे गये है वे फूटनोट के है और तदनुसार शाहाओं के किये हुए कार्य क्रमशः अंकानुसार फूटनोट के तौर पर लिख दिया जाता है।

१—दुष्काल में अन्न वस्त्र घास देकर देश सेवा की तथा तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला और संघ पूजा कर सार्धमी भाइयों को एक-एक सुवर्ण मुहर की लहण दी।

२—चौरासी देहरिया वाला मन्दिर बनाकर सुवर्ण कलश चढ़ाया प्रतिष्ठा में सकल श्रीसंघ को बुलाकर तीन बड़े यज्ञ (जीमणवार) कर संघ पूजा कर पहरामणी दी।

३—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला। चतुर्विधश्रीसंघ के साथ यात्रा की। तीर्थ पर ध्वजारोहण कर बहुत्तर लक्ष द्रव्य में संघमाला पहरी। संघ पूजा कर एक-एक मुहर दी।

४—आपको चित्रावल्ली मिली थी। जिसके प्रभाव से ८४ मन्दिर प्रथक् २ स्थानों में बनाकर प्रतिष्ठा करवाई। सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला। संघ पूजा में एक-एक सुवर्ण थाली में रख लहण दी।

५—पांचवार यात्रार्थ संघ निकाला पृथ्वी प्रदक्षिणा दी। समुद्र तक सर्वत्र साधर्मी भाइयों को वस्त्र तथा थाल में एक-एक सुवर्ण लेहण में प्रदान कर नाम कमाया।

६—नरेश मे केसर की बालद आई थी जिसको मुँह मांगा मूल्य देकर सर्व मन्दिरों में अर्पण करदी तथा बार बार संघ को घर पर बुलवाकर पूजा कर पहरामणी दी।

७—श्री शत्रुँजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला । तीर्थ पर दो मन्दिर बनाये । संघ को स्वामिवात्सल्य जीमाकर सात सात सुवर्ण सोपारियाँ प्रभावना के तौर दीं ।

८—भ० महावीर की १०८ अंगुल सुवर्णमय मूर्ति बनाकर नये मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई । दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय किया । सघपूजा में वस्त्र भूषण पहरामणी में दिये ।

९—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विधश्रीसंघ को पूर्व देश की सर्व यात्रा करवाई वापिस आकर संघ पूजा कर एक-एक सुवर्ण मुद्रा लड्डू में डाल गुप्तपने लहण दी ।

१०—आपको देवी की कृपा से पारस मिला था । लोहे का सुवर्ण बनाकर धार्मिक एवं जनोपयोगी कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया । संघपूजा कर साधर्मी भाइयों को सोने की कठियाँ तथा बहिनों को सोने के चूड़े पहरामणी में देकर शासन की खूब प्रभावना की ।

११—दुष्काल में मनुष्यों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास दिया जिसमें सात करोड़ द्रव्य खर्च किया तथा चार बड़े तालाब, चार बावड़ियाँ और सात मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई ।

१२—श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला । संघपूजा कर सोने की सोपारियों की लहण दी ।

१३—सात बार श्रीसंघ को घर पर बुलाया भोजन करवाकर एक-एक मुहर की लाहणी दी ।

१४—सात आचार्यों को सूरिपद दिराया । श्री भगवतीजी सूत्र का महोत्सव पूजा करके व्याख्यान में वँचाया जिसमे पांच करोड़ द्रव्य व्यय कर शासन का बड़ा भारी उद्योत किया । ज्ञान भण्डार [illegible] ।

१५—सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विधश्रीसंघ को यात्रा कराई तथा आते जाते समय पृथक् मार्ग में समुद्र तक साधर्मियो को एक-एक सुवर्ण मुद्रा की लहण दी ।

१६—केशर, कस्तूरी, धूप, कर्पूर की पुष्कल बालदो को खरीद कर मन्दिरों में अर्पण कर दिया ।

१७—शत्रुँजयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर भ० आदिनाथ को चन्दन हार अर्पण किया ।

१८—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की तमाम यात्रायें श्रीसंघ को कराई । वापिस आकर स्वामिवात्सल्य कर श्रीसंघ को वस्त्राभूषण पहरावणी में दिये ।

१९—सात बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये संघ को घर पर बुलवा कर पूजा की एक एक मुहर दी

२०—आपको गुरु कृपा से तेजमतुरी प्राप्त हुई थी जिससे पुष्कल सुवर्ण बनाकर तीर्थों का [illegible] । नये मन्दिर बनाये जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया निराधारों को आधार दिया [illegible] करोड़ो का द्रव्य व्यय किया । सघपूजा कर सेर भर की थाली लहण में दी ।

२१—शत्रुँजयादि तीर्थों का संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई । तीर्थ पर [illegible] चढ़ाया । बावन जिनालय का मन्दिर बनवाया । संघ पूजा कर पांच पांच मुहरें लहण में दी ।

२२—दुकाल में चौरासी देहरी का मन्दिर बनाया । [illegible] किया । और सात यज्ञ करवा कर श्रीसंघ की पूजा कर पहरावणी दी ।

२३—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला आते जाते सर्वत्र एक एक सुवर्ण मुद्रा की लहण दी ।

२४—सात आचार्यों को सूरिपद दिलाया जिसका महोत्सव व [illegible] ।

२५—सम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की यात्रा की [illegible] द्रव्य व्यय किया ।

२६—शत्रुंजय गिरनारादि की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई [illegible] दी ।

२७—तीन वर्ष तक निरन्तर दुष्काल में आपने खुले दिल से मनुष्य और पशुओं को अन्न वस्त्र एवं घास देकर अनेको के प्राण बचाये जिसमें बीस करोड़ द्रव्य खर्चा और संघपूजा कर लाहणी दी।

२८—आपको एक महात्मा से स्वर्णरस मिला जिससे पुष्कल सुवर्ण बनाया अपने घर में सुवर्ण मन्दिर एवं रत्नमय मूर्ति स्थापन की सात तालाव सात वापि सात मंदिर सात वर संघ निकाले तथा साधर्मी भाइयों को सातवार घर पर बुला कर संघ पूजा कर सुवर्ण थाल प्याला पहरावणी में दिये

२९—सम्मेतशिखरादि तीर्थों का संघ निकाला यात्रा की। संघ पूजा—सोने के प्याले पहरामणीमें दिये।

३०—चौरासी देहरी का विशाल मंदिर बनाया सोने की ९६ अंगुल की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवा संघ पूजा की। जिसमें बढ़िया वस्त्र तथा एक एक सुवर्ण मुद्रा लहण में दी।

३१—दो दुकाल में अन्न वस्त्र घास दिया तथा चार तालाब चार कुवें चार मंदिर बनाये। संघ पूजा की।

३२—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाल तीर्थ पर ध्वजारोहण बहुतर लक्ष द्रव्य में माला पहरी घर पर आकर स्वामिवात्सल्य कर संघपूजा पुरुषों को सुवर्ण कड़े स्त्रियों को सुवर्ण हार पहिनाये।

३३—एकादश आचार्यों के सूरिपद के समय महोत्सव—वीस करोड़ द्रव्य जैनधर्म के प्रचार में दिया।

३४—आपका व्यापार विदेशों में था एक नीलमणि लाये जिसकी मूर्ति बनाकर घर देरासर में स्थापना की

३५—दुष्काल में देशवासी भाइयों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास देकर उनके प्राण बचाये पुष्कल द्रव्य खर्चा।

३६—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल सकल तीर्थों की यात्रा की आते जाते समुद्र के अन्त तक साधर्मी भाइयों को एक एक सुवर्ण मुद्रिका लहण में देकर जैनधर्म का बड़ा ही उद्योत किया।

२७—सात बार बड़े यज्ञ किये शिखरवन्ध मंदिर बना कर प्रतिष्ठाकरवाई बावन मण केशर की बालद भ० ऋषभदेव को चढ़ाई संघ पूजा कर पाँच पाँच मोहरें लहण में दी।

२८—आशापुरी माता तुष्टमान हुई संघ निकाल यात्रा की समुद्रतक सब साधर्मियों को एक एक मोहर दी।

२९—गुरु कृपा से चित्रावल्ली मिली बावनतसु सोने की मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा करवाई पराहवणी में मोहरें दी।

३०—सात बड़े यज्ञ किये ८४ न्याति घर पर बुला कर भोजन पहरामणी दी। तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला पुष्कल द्रव्य व्यय किया। संघ पूजा करके पहरामणी दी।

३१—सकल तीर्थों की यात्रा कर संघमाला पहरी समुद्र तक एक एक सुवर्ण मुद्रिका लहण में दीनी म्लेच्छों के बंध में पड़े गरीब लोगों को करोड़ों द्रव्य देकर मुक्त कराये। संघ पूजा, तीन यज्ञ किये।

३२—चार बार चौरासी आँगणे बुलाई ५ यज्ञ किये संघ पूजा कर एक एक मुहर लहण में दी।

३३—आपके पास पारस मणि थी लोहे का सोना बनाकर १०८ अंगुल सुवर्ण की मूर्ति बना कर प्रतिष्ठा करवाई सब तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला संघ को सोने मुहरों की पहरावणी दी।

३४—सकल तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला संघपूजा कर छः छः सोना मुहरें लहण में दी।

३५—चार बड़ चार बार चौरासी आंगणे बुलाई पुरुषों को सोने की कंठियां बहिनों को सोने के चुड़े दिये।

३६—सर्व तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तीर्थ पर माला पहरी संघ को पांच २ मुहर प्र० में दी।

३७—चौरासी तालाब खुदवाये चौरासी मंदिर बनवाये राजा को प्रसन्न कर सर्वत्र जीव दया पलाई।

३८—दुष्काल में अपना करोड़ों का द्रव्य देशहित अर्पण कर दिया सात बार संघ पूजा भी की।

३९—दुष्काल में अन्न वस्त्र व घास दिया चौरासी देहरी का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

४०—शत्रुंजय तीर्थ के लिये संघ निकाला बहुत्तर लक्ष में ध्वजा चढ़ाई पाँच २ मुहरे पहरावणी मे दी।
४१—सातवार चौरासी को आगणे बुलाय भोजन करवा सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला समुद्र तक साधर्मी भाइयों को एक २ मुहर पहिरावणी में दी।
४२—संघ निकाला मंदिर बनाये ८४०० मूर्तियों की अंजन सलाका करवा कर प्रतिष्ठा करवाई।
४३—पांच वार दुकाल को सुकाल बनाया सातबार तीर्थ का संघ निकाला सात सात मुहरों की लहण की।
४४—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला चार बार चौरासी घर पर बुलाइ एक एक मुहर लहण में दी।
४५—पाँच वार दुकाल को सुकाल बनाया यात्रार्थ संघ निकाला। संघ पूजा कर पहरामणी दी।
४६—आपको पारस मिल जाने से घर सोने से भर गया १०८ सुवर्ण की मूर्ति सोने के थाल प्र० में दी।
४७—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला ध्वजा चढ़ाई माला पहरी सघ पूजा मोतियों की कंठिया पहरामणी में देकर जैन शासन को प्रभावना की।
४८—राजा को खुश कर हिंसा बंद करवाई दुकाळ में अन्न दिया धर्म प्रचार में बीस करोड़ धन व्यय किया सिंध के जैनों को म्लच्छों ने पकड़ कैद कर दिया तब आपने १८ पाट सोने के देकर छुड़ाया। देवी की कृपा से अक्षय निधान मिला—संघ पूजा की।
४९—शत्रुंजय तीर्थका सङ्घ तीर्थ पर माला की बोली एक करोड़ द्रव्य खर्च कर माला पहरी सङ्घपूजादि कार्य।
५०—आठ आचार्यों को पदवी दिलाई संघपूजा की जिसमें दश करोड़ द्रव्य व्यय किया।
५१—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला म्लेच्छ के बंदी को छुड़ाया तीन करोड़ द्रव्य—संघ पूजा की।
५२—चारबार चौरासी बुलाई शत्रुंजय का संघ निकाला आठ आठ सोना मुहरें खर्च। पहरावणी में दी।
५३—आपके पास रसकुपिका थी जिससे पुष्कल सोना बनाया। सोने का घर देरासर का की मूर्ति संघ पूजा। सिवाय गुरु के शिर न झुकाने से राजा ने बेड़ियां डाल कारागृह में बन्द कर दिया पर गुरु कृपा से बेड़िया स्वयं टूट पड़ीं। मन्दिर बनाया साधर्मियों को पहरामणी दी।
५४—तीन दुकाल में अन्नदान चौरासी देहरी वाला मन्दिर बनाकर प्र० कराई [illegible] में पांच २ मुहरें दी।
५५—सर्व तीर्थों की यात्रा तीनवार पृथ्वी प्रदक्षिणा दी संघ पूजा कर समुद्र तक [illegible] दी।
५६—सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की सब यात्रायें की [illegible] माला अर्पण की। संघ पूजा करके पहरामणी दी।
५७—गिरनार पर श्वे० दि० के चार संघ आवे एक करोड़ द्रव्य व्यय कर [illegible] में करोड़ द्रव्य व्यय किया।
५८—सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला संघपूजा [illegible] कर दो दो मुहरें पहरामणी में दी।
५९—चार बड़े यज्ञ किये चौरासी मंदिर बनाकर १०००० मूर्तियों की अंजनशलाका [illegible] करोड़ द्रव्य व्यय किया। संघ पूजा कर पहरावणी भी दी।
६०—चौरासी न्यात को घर घर बुलाकर भोजन [illegible] पाँच पाँच मुहरें [illegible] में दी।
६१—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की यात्रा [illegible]।
६२—जैन मन्दिर बनाकर सुवर्ण के [illegible]।
६३—पूर्व के सब तीर्थों की यात्रार्थ संघ। [illegible] के मन्दिर में सुवर्ण मूर्ति [illegible]।

६४—तीनदुकाल में अन्न घास दिया ८४ देहरी का मंदिर मूलनायक की सुवर्णमय मूर्ति बनाकर प्र० करवाई।

६५—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला मार्ग में ८४ मंदिरों की नींव डलवाई वापिस आकर संघ भोज देकर संघपूजा की। लड्डू के अन्दर एक एक स्वर्ण मुहर प्रभावना में दी।

६६—दुष्काल में गरीबों को ही नहीं पर राजा महाराजाओं को अन्न वस्त्र पशुओं को घास दी विशाल मंदिर बनाकर सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई संघ को पहरामणी दी।

६७—आचार्यों को सूरिपद दिलाया ४५ आगम लिखा कर अर्पण किये संघपूजा की पहरामणी दी।

६८—तीर्थों का संघ निकाल सर्वत्र यात्रा की तीर्थ पर नौलक्ष मूल्य का हार अर्पण किया संघपूजा।

६९—वीस बार यात्रा कर बीस मंदिर करवाया संघ को घर आंगण बुलाकर पूजाकर लहण दी।

७०—यात्रा करते हुये पृथ्वी प्रदक्षिणा दी सर्वत्र साधर्मियों के घर प्रति एकेक मुहर की लहण दी।

७१—सात बड़े यज्ञ किये सात मंदिर बनाये सात बार संघ निकाल यात्रा की पहरामणीभी दी।

७२—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ निकाल चतुर्विधश्रीसंघ को पूर्व की यात्रा करवाई समुद्र तक एक एक मुहर की लहण दी संघपूजा कर पाँच २ मुहरों की पहरामणी दी।

७३—म्लेच्छों ने गरीबों को कारागृह कर दिये करोड़ों द्रव्य देकर मुक्त करवाये बावन जिनालय का मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई संघ पूजा कर पाँच २ मुहरें प्रभावना में दीं।

७४—आपके पास चित्रावल्ली थी जिससे आपका घर द्रव्य से भर गया आपने जनोपयोगी कार्यों में एवं धार्मिक कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय कर पुन्योपार्जन किया ७ वार संघपूजा की।

७५—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला संघ पूजा एक एक मुहर पहरावणी में दी।

७६—बावन मंदिर बावन तालाब कुए बावन मुसाफिरगृह बनाये सात बार संघ निकाले संघ पूजा में वस्त्राभूषण और पाँच ५ सुवर्ण मुद्रिकाएं पहरामणी में दीं।

७७—ग्यारह आचार्यों को सूरिपद दिराया जिसका महोत्सव एवं साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी तथा प्रत्येक आचार्य को ४५-४५ आगम लिखवा कर भेंट किये।

७८—सम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाले पूर्व के तमाम तीर्थों की यात्रा की वापिस आकर स्वामिवात्सल्य कर संघ पूजा कर एक एक मुहर पहरामणी में दी।

७९—जनसंहारक भयंकर दुष्काल में बिना भेदभाव खुले दिल से सर्वत्र दानशालाएं खुलवाकर अन्नवस्त्र घास दी। सात मन्दिर सात तालाब बनाये प्रतिष्ठा में संघ पूजा कर सात २ सुवर्ण सोपारियां संघ को पहरामणी में दीं।

८०—यात्रार्थ संघ निकाल कर सर्वत्र पृथ्वी प्रदक्षिणा देकर साधर्मी भाइयों को एक एक मुहर प्रभावना के तौर पर दी और स्वामिवात्सल्य कर संघ पूजा की।

८१—बावन जिनालय बनाकर मूलनायक भ० महावीर की ९६ अंगुल सुवर्णमय मूर्ति बनाई जिसके नेत्रों के स्थान दो मणि लगाई जो रात्रि को दिन बना देती थीं संघ पूजा भी की।

८२—पांच बार तीर्थों का संघ, ८४ मंदिर प्रतिष्ठा में पांच २ मुहरें पहरामणी में।

८३—[illegible] को एक एक पेटी प्रत्येक आचार्य को दी संघ पूजा और पहरामणी दी।

८४—[illegible] में [illegible] दिये सात यज्ञ किये। संघ पूजा कर पहरामणी दी।

८५—चार चौरासी सात यज्ञ ११ बार संघ निकाल संघ पूज कर पहरामणी दी।
८६—संघ निकाला सर्व यात्रा की सोने की सुपारियां पहरामणी में दी।
८७—चौरासी ज्ञानभण्डार स्थापना करके सर्व आगमों की पेटियां दीं।
८८—सात बार तीर्थों के संघ, संघ पूजा एक एक मुद्रिका दी।
८९—शत्रुंजयतीर्थ के मंदिरों का उद्धार पुनः प्रतिष्ठा करना सोने की ध्वजा चढ़ाई।
९०—केशर और कस्तूरी की बालद मंदिरों में चढ़ाई।
९१—सात बार चौरासी तीन बार संघ, मंदिर पर स्वर्ण कलश चढ़ाये।
९२—एक शत्रुँजय एक गिरनार पर सोने का तोरण चढ़ाया माला पहराई।
९३—सम्मेतशिखरजी का संघ समुद्र तक सोना मुद्रा की पहरामणी दी।
९४—चौरासी देहरी का मंदिर संघ पूजा, पांच-पांच मुहरें पहरामणी में दी।
९५—दुष्काल में अन्नघास दिया, संघ पूजा स्वर्ण मुद्रिका दी।
९६—आपके पास पारसमणि थी, लोहे का सोना बनाकर संघ पूजा की सेर की थाली पहरामणी में दी।
९७—सकल तीर्थों की यात्रा की संघ पूजा कर एक एक मुहर पहरामणी में दी।
९८—चौरासी देहरी का मंदिर बनवा कर स्वर्ण प्रतिमा स्थापन कराई संघ पूजा की।
९९—सात बार चौरासी पर आंगण बुलाई वस्त्राभूषणों की पहरामणी दी।
१००—चार यज्ञ किये दुकालों को सुकाल बनाये ४ मंदिरों की प्रतिष्ठा की।
१०१—आबू और गिरनार पर मंदिर बनवा कर स्वर्ण कलश चढ़ाये संघ पूजा की।
१०२—चार बार चौरासी न्याति पर आगन बुलाई एक क्रोड़ द्रव्य व्यय किया।
१०३—केसर की बालद ऋषभदेव के मन्दिर पर चढ़ाई और संघ पूजा की।
१०४—जनसंहार और तीन वर्ष लगातार दुष्काल पड़ा पांच क्रोड़ द्रव्य व्यय किये।
१०५—सात मन्दिर बनवाये स्वर्ण कलश ध्वजा दंड की प्रतिष्ठा और संघपूजा।
१०६—एक बीस आचार्यों को सूरिपद। आगम लिखा कर दिये। संघपूजा की।
१०७—श्रमण सभा करवाई। संघपूजा में सोने की कण्ठियाँ तथा [illegible] दिया।
१०८—सात बार संघ निकाला यात्रा की संघ पूजा और एक मोहर दी।
१०९—चार चौरासी पर बुलाई पहरावणी में सोने की मुद्रिकाएं दी।
११०—सकल तीर्थों की यात्रा मन्दिर बनवा कर यात्रा कराई और संघपूजा की।
१११—दुष्काल में अन्न घास दिया साधर्मियों के [illegible] एक क्रोड़ द्रव्य दिया।
११२—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ और संघ को पांच पांच मुहरें दीं।
११३—केसर धूप कस्तूरी की [illegible] मन्दिरों में चढ़ाई संघपूजा की।
११४—मन्दिर बनवा कर मूर्ति सुवर्ण की [illegible] [illegible] की प्रतिष्ठा कराई।
११५—सर्व तीर्थों का संघ निकाल पृथ्वी [illegible] की एक एक मोहर पहरावणी में दी।
११६—आपके पास चित्रावल्ली थी संघ पूजा और [illegible] के [illegible] दी।
११७—तीन दुष्कालों में तीन क्रोड़, सात क्षेत्र में सात क्रोड़ द्रव्य व्यय किया [illegible] [illegible]

लड्डू के अन्दर पांच पांच मुहरें गुप्त रूप से सब साधर्मियों को दीं।

११८—आप पाटणके राजा भीम के मुख्य सेनापति थे आपने आबूके ब्राह्मणोंसे भूमि पर रुपये एवं सोने के पत्रे बिछवा कर भूमि प्राप्त की और उस पर भ० ऋषभदेव का मन्दिर बनाया जो अद्भुत एवं शिल्प का एक आदर्श ही है आज भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान उन मन्दिरों के दर्शन कर मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे हैं विमलशाह ने कई बार तीर्थों की यात्रा कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी एवं जैन शासन का उद्योत किया। और अनेकों जनोपयोगी कार्य भी किये।

११९—आप पहिले गरीबावस्था में थे पर जैन शासन के पक्के भक्त एवं स्तम्भ थे गुरु कृपा से छाणे (कंडे) स्वर्ण बन गये जिससे गादिया सिक्का चलाया इससे आपकी जाति चोरड़ियासे गादिया बन गई। आपने डीडवाने में एक कुआ तथा नगरप्रकोट बनाया गरीब भाइयों को गुप्त सहायता पहुँचाई। आपकी माता ने शत्रुञ्जय का श्रीसंघ निकाल चतुर्विध संघ को यात्रा कराई पुष्कल द्रव्य शुभ कार्यों में लगाया। संघ पूजा कर संघ को पहरावणी दी। गुजराती लोगों से तैल घृत के व्यापार में कायल बना कर भैसा पर पानी लाना तथा एक लंग छुड़वाई और भी जैनधर्म का बहुत ही उद्योत किया।

१२०—आप भी साधारण गृहस्थ थे पर भैंसाशाह की सहायता से आपके बहुत पुन्य बढ़ गये। आपने सर्व तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई। सातवार संघ को घर आंगणे बुलवा कर भोजन करवा कर पहरावणी दी भ० महावीर का मन्दिर बना कर स्वर्णमूर्ति स्थापन की आचार्य श्री को ४५ आगम लिखा कर अर्पण किये और भी जैनधर्म का काफी प्रचार किया।

१२१—चार यज्ञ किये संघनिकाल यात्रा कर संघ पूजा में पर्य्याप्त द्रव्य दिया।

१२२—शत्रुंजय का मंदिर बनवाकर सुवर्ण कलश चढ़ाया एक एक मुहर पहरामणी दी।

१२३—चार बावनी की चार तालाब खुदाये मंदिर की प्रतिष्ठा करवाकर पहरामणी दी।

१२४—देवी की कृपा से अक्षय निधान मिला जिससे धार्मिक सामाजिक काम किये।

१२५—पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा कर समुद्र तक साधर्मियों को पहरामणी दी।

१२६—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाल कर पहरामणी में स्वर्ण दिया।

१२७—सात वार चौरासी अपने घर आंगन बुलाई वस्त्राभूषणों की पहरामणी दी।

१२८—चार यज्ञ, चार मन्दिर, चार तालाब बनवाये संघ पूजा में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

१२९—सकल तीर्थों की यात्रा करके साधर्मी भाइयों को सुवर्ण मालाओं की पहरामणी दी।

१३०—दो दुष्कालों में करोड़ों रुपयों का नाज घास दिया संघ पूजा की।

१३१—दुष्काल में अन्न वस्त्र और पशुओं को घास देकर देश की सेवा की।

१३२—केशर की बाजद खरीद करके मंदिरों को चढ़ाई और संघ पूजा की।

१३३—चित्रावल्ली से असंख्य द्रव्य पैदा कर धर्म एवं जनोपयोगी कार्य्यों में व्यय किया।

१३४—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल साधर्मी भाइयों को एक-एक मुहर दी।

१३५—चार बावनी बुलाई, घर पर चार वार बड़े समय यज्ञ किया, वस्त्राभूषणों की पहरामणी दी।

१३६—सर्व तीर्थों की यात्रा कर पृथ्वी प्रदक्षिणा दी एक-एक सुवर्ण मुद्रा सर्वत्र प्रभावना दी संघ पूजा की।

१३७—देवी ने प्रसन्न हो अक्षय निधान बतलाया जिससे आपने साधर्मी भाइयों को दी नहीं पर देशवासी

भाइयों को धन से सुखी बनाया । सर्व तीर्थों की यात्राकी सात बार न्याति घर आंगने पर बुलाकर सुवर्ण नारियल की प्रभावना दी ।

१३८—सात यज्ञ किये जिसमें ४९ मन हींग लगी संघपूजा कर एक-एक मुहर पहरामणी में दी ।

१३९—चौरासी तालाब खुदवाये ८४ यात्रीगृह और ८४ मदिर बनवाये संघ पूजा की ।

१४०—दुष्काल में एक करोड़ द्रव्य व्यय किया ७ तालाब खुदवाये सघ पूजा की ।

१४१—सर्व तीर्थों का संघ निकाला, यात्रा की, सात-सात सुवर्ण सुपारियाँ संघ में बांटी ।

१४२—शत्रुंजय की यात्रार्थ संघ निकाला तीर्थ पर सुवर्ण ध्वजा चढ़ाई । इक्कीस आचार्यों को सूरिपद ४५-४५ आगम लिखवाकर अर्पण किये संघ पूजा की ।

१४३—मन्त्री आसपाल ने विधवा कुमारदेवी से पुनर्लग्न किया था जिस कुमारदेवी के चार पुत्र हुये जिसमें वस्तुपाल तेजपाल भी दो पुत्र हैं आपके ही कारण संघ में दो पार्टियां बन गई थीं वे [illegible] बड़े सज्जन के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैनसंसार में धार्मिक कार्यों में जितना द्रव्य वस्तुपाल तेजपाल ने व्यय किया उतना द्रव्य उनके बाद शायद ही किसी ने किया हो । जिस समय संघमें इन युगल बन्धुओं के लिये मतभेद खड़ा हुआ उस समय यदि किसी ने इनका साथ नहीं दिया होता और शायद वे जैनसंघ से खिलाफ हो नुकसान पहुँचाना चाहते तो जितना धर्म का उद्योत किया उससे कई गुना अधिक नुकसान पहुँचा सकते । फिर भी जैनसंघ का अहोभाग्य था कि कई लोगों ने [illegible] उनका साथ देकर जैनधर्म में उनको स्थिर रखे । कलिकाल की कपट्टी में इन युगलवीरों को साथ देने वालो को यह इनाम मिला कि उस समय से आज पर्यन्त उनके साथ रोटी व्यवहार होते हुए भी बेटी व्यवहार नहीं किया जाता है । उस समय के बाद मांस मदिरादि दुर्व्यसन सेवी [illegible] की शुद्धि कर उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार कर लिया पर अपने सदृश आचार व्यवहार वालों से [illegible] परहेज ही रक्खा जाता है । यही कारण है कि इतर लोग कहते हैं कि जैन [illegible] जानते हैं पर [illegible] नहीं जानते हैं। खैर वस्तुपाल तेजपाल ने अपने जीवन में क्या २ काम किया जिसको संक्षिप्त में यहां [illegible]—

५५०४ देवभुवन के सदृश शिखरबन्ध जैनमंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई ।

२०३०० प्राचीन जैनमदिरों का जीर्णोद्धार करवाया जिसमें [illegible] द्रव्य व्यय किया ।

१२५००० नयी जिन प्रतिमाएं बनाई जिसमें [illegible]
इस कार्य में कई १८ करोड़ रुपयों का उस समय खर्चा हुआ था ।

३ नये ज्ञानभंडार स्थापन करवाये जिसमें [illegible] और प्राचीन ग्रन्थों को ताड़पत्र या कागजों पर [illegible] लिखवाये थे ।

७०० शिल्पकला के आदर्श नमूना रूप [illegible] के [illegible] ।

९८८ धर्म साधन करने के लिये धर्मशालाएं [illegible] ।

५०५ समवसरण के [illegible] ।

१८९६००००० तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पर जिन मंदिर एवं [illegible] ।

१८८०००००० तीर्थ श्री गिरनारजी पर भ० नेमिनाथ का मंदिर [illegible] ।

१२८०००००० तीर्थ श्री अर्बुदाचल पर भ० नेमिनाथ का मंदिर बनवाने [illegible]

ललितादेवी और अनुपादेवी ने दो गोक्ष बनाने में अष्टादश लक्ष रुपये खर्च किये जो देराणी जेठाणी के गोखले के नाम से अद्यावधि विद्यमान हैं जिसको भारतीय ही नहीं पर पाश्चात्य भी सैकड़ों विद्वान् देखकर दंग रह जाते हैं।

३००००० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर अर्पण किया
३००००० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीगिरनार पर अर्पण किया
३००००० सोनइयों के खर्च से बनाया हुआ एक तोरण तीर्थ श्रीअर्बुदाचल पर अर्पण किया
२५०० घर देरासर बनाये जिनमें कई देरासरों में रत्नों की मूर्तियां भी स्थापन की
२५०० भगवान की रथयात्रा के लिये सुन्दर कारीगरी के काष्ठ के रथ बनवाये
२४ भगवान की रथयात्रा के लिये सुन्दर कारीगरी के दान्त के रथ बनवाये
१८००००००० रुपये व्यय कर ज्ञान भंडारों के लिये प्राचीन ग्रंथों को लिखवाया
७०० ब्राह्मण धर्म वालो के लिये सुन्दर धर्मशाएं बनवा कर उनके सुपुर्द करदीं
७०० आम जनता की सुविधा के लिये नित्य चलने वाली दानशालाएं बनाई
३००४ वैष्णवों के मन्दिर बनाकर उन लोगों के सुपुर्द कर दिये
७०० तापसों के ठहरने के लिये सर्वानुकूलता सहित आश्रम बनाये
६४ मुसलमानों के लिये मसजिदें बनाकर उनको भी संतुष्ट किया
८४ पक्के घाट बन्ध सरोवर बनाकर आम जनता को आराम पहुँचाया
४८४ साधारण घाट वाले तालाब पृथक् २ स्थानों पर कि जहाँ जरूरत समझी
४६४ जनता के गमनागमन करने के मार्ग पर बावड़िया बनवा दीं
४००० मुसाफिर लोगों के ठहरने के लिये मकान बनवाये जहाँ जरूरत थी
७०० पानी पिलाने के लिये सदैव चलने वाली प्याऊ बनवादीं
७०० पानी के कुवे बनाकर जनता की पानी की तकलीफों को सदैव के लिये मिटा दिया
३६ राजा महाराजाओं को निर्भय बनाने के लिये बड़े २ किले बनवाये
५०० आपकी उदरता के स्वरूप हमेशा ब्राह्मणों को रसोई करवा कर तृप्त किये जाते
१००० तापस सन्यासी एवं आगन्तुक लोगों को भोजन करवाया जाता था
५००० जैन श्रमण श्रमणियाँ आपके रसोड़ा से निर्वद्य आहार पानी वेहरते थे
२१ आचार्यों को महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद दिलाया
२००० सोनाइयों को तावावती नगरी में सुकृत के कार्यों में व्यय किया

इनके अलावा भी अनेक सुकृत के कार्य्य कर अपनी उदारता का परिचय दिया उस समय तथा उसके बाद भी बहुतसों के पास लक्ष्मी आई और गई पर वे लक्ष्मी के सद्भावमें भी लक्ष्मी के प्रमाण में भी सुकृत नहीं कर सके। यह बात तो निश्चित ही है कि संसार में जन्म लेकर अमर कोई नहीं रहा पर जिन लोगों ने इस प्रकार सुकृत का कार्य किया है वह आज भी अमर ही हैं। वस्तुपाल तेजपाल और इनकी पत्नियों ने केवल लक्ष्मी से ही सुकृत किया हो ऐसा नहीं है पर उन्होंने अपने शरीर से भी आचार्योपाध्याय एवं मुनियों की सेवा करने में कमी नहीं रखी थी इन सब बातों को उसी समय के जैनेत्तरों ने भी लिपि बद्ध की थी।

१४४—आप श्रीमान् नारायण सेठ की परम्परा में एक महान् प्रभाविक पुरुष हुये जब आपने मारवाड़ के नागपुर से श्रीशत्रुंजय तीर्थ का विराट संघ लेकर गुर्जर धरा में प्रवेश किया तब वस्तुपाल तेजपाल ने सुना तो वे बहुत दूर से चल संघपति पुनड़ से मिले और आपके इस शुभ कार्य की खूब ही प्रशंसा की। शाह पुनड़ का मान पान केवल जैन समाज में ही नहीं पर देहली पति बादशाह भी आपका आदर करता था और इस आदर से शाह पुनड़ ने जैनधर्म के भी अनेक कार्य किये थे

१४५—शाह करणा चोरड़िया के चार पुत्र थे शाहवालो शाहटीकु शाहभैसो और शाहआसल एवं चारों भाई बड़े ही भाग्यशाली थे प्रत्येक ने एक २ नामवरी का कार्य किया जैसे शाह वाला ने नागपुर में भग० आदीश्वर का मन्दिर बना कर सर्व धातुमय विशाल मूर्ति स्थापन की थी। बादशाह के भय से उस समय मन्दिरों पर शिखर नहीं कराये जाते थे अतः उस समय के बने हुये मन्दिर पर अभी सं० १९९३ में शिखर करवाये गये। शाहटीकुने टीकुनाडो बनाया कहा जाता है कि हिन्दू मुर्दों के जलाने का टैक्स बादशाह दो स्वर्णमुद्रा लेता था जिसको टीकूशाह ने छुड़ा कर नगरवासियों को उस जुल्मी कर से मुक्त किया शाह आसल ने गोचरभूमि के लिये बड़ी रकम देकर कई कोसों तक भूमि छुड़ादी जिसमें आज भी गायादि पशु सुख से चर रहे हैं। शाह भैसा ने तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल साधर्मी भाइयों को एक एक मुहर लहण में दी।

१४६—देवी ने प्रसन्न हो एक अक्षय थैली दी कि जिससे सर्व तीर्थों की यात्रा की चौबीस भगवान का एक मन्दिर शत्रुंजय पर बना कर सुवर्णमय मूर्ति और सोने का कलश चढ़ाया तथा संघ पूजा कर संघ को सुवर्ण जनेऊ की पहरामणी दी।

१४७—दुष्काल मे एक करोड़ द्रव्य व्यय कर मनुष्यों को अन्न वस्त्र पशुओं को घास तथा [illegible] तलाव तीन वापी और एक मन्दिर बनाया प्रतिष्ठा में संघ को [illegible] भोजन [illegible] तथा लड्डू में एक एक स्वर्ण मुद्रिका गुप्त रख पहरावणी दी।

१४८—चार बार सकल संघ को घर आंगणे बुलाया तिलक कर सुवर्ण मुहरें दी।

१४९—आप पर गुरु कृपा थी तेजमतुरी मिली जिससे सुवर्ण बना कर [illegible] पूजा की वि० १३११-१२ में सुवर्ण द्वारा पुष्कल धान का देश देश में संचय किया और [illegible] लिखा कर डाला कि यह धन मैंने रांक गरीबों के लिये संचय किया है वि० सं० १३१[illegible] लगातार तीन दुष्काल पड़े जिससे साधारण जनता ही नहीं पर राजा महाराजा और बादशाह ने भी जगडुशाह का संचा हुआ धान खाकर प्राण बचाये।

राजा महाराजा तथा बादशाह ने जगडु से प्रार्थना की कि [illegible] खाने के लिये धान दो। इस पर जगडु ने कहा कि संचय किया धान मेरा नहीं है [illegible] समय के ताम्रपत्र देखलें यह धान निराधार रांक भिक्षुओं का है यदि आपको [illegible] ले लीजिये। आखिर लाचार हो उस धान को लिया एक कवि ने इस प्रकार [illegible] है—

१—सिन्ध के राव हमीर को　८००० मूंडा धान दिया।　३—[illegible] के राजा को १८००० [illegible]
२—देहली के बादशाह को　२१००० ,, ,,　४—[illegible] को [illegible] ,,

५—कंदहार के राजा को १२००० मुंडा धान दिया। ६—पाटण के राजा को ८००० मुंडा
७—शेष जनता को ८०००० ,, ८—मारवाड़ को १२००० ,,

जगडु ने ११२ दानशालायें खोलीं १०८ मन्दिर बनाये ३ वार यात्रार्थ संघ निकाला दुष्काल में बहुत से तालाव बावड़ियां भी बनाई धन्य है ऐसे नरपुंगवों को

१५०—खेमा देदेणी की उदारता का हाल ऊपर प्रस्तावना में लिखा गया है ऐसे उदार नर रत्नों से ही जैन शासन पूर्ण शोभायमान था। ऐसे तो कइ गुप्त रूप में शाह रहे होंगे ?

१५१—आपके चारणी देवी का इष्ट था। बादशाह के मांगे हुये स्वर्ण पाट देकर शाह पदवी का रक्षण किया लुनाशाह ने और भी धर्म कार्य कर करोड़ द्रव्य व्यय कर नाम कमाया।

१५२—आपने चौदह बार संघ निकाल कर सर्व तीर्थो की कई बार यात्रा की और संघपूजा कर पहरामणी दी जिसमें चौदह करोड़ रुपये व्यय कर यश कमाया।

१५३—आपके समय सं० १३६९ बादशाह अलाउद्दीन ने तीर्थ श्रीशत्रुंजय के सर्व मंदिर मूर्तियां तोड़ फोड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर डाली थी उस समय गुरु चक्रवर्ति आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से उन मुसलमानों के कट्टर शासन में समराशाह ने केवल दो वर्षों में ही शत्रुंजय को पुनः स्वर्ग दृश्य बनाकर आचार्यश्री के करकमलों से १३७१ में पुनः प्रतिष्ठा करवाइ जिस मूर्ति का आज तक असंख्य लोग सेवा पुजाकर लाभ उठा रहे हैं। इस पुनीत कार्य में तथा संघ निकालने में शाह समरा ने करोंड़ों रुपये पानी की तरह बहा दिये सं० १०८ में प्राग्वट जावड़ ने इस तीर्थ का उद्धार करवाया बाद सं० १२२३ में मंत्री उदायन के निश्चयानुसार उसके पुत्र वाग्भट ने भी उद्धार कराया पर ओसवाल जाति में श्रीमान् समरासिंह ही भाग्यशाली हुआ कि जिसने सबसे पहिले इस तीर्थ का उद्धार कर अनन्त पुन्य के साथ सुयश कमाया। इस समरासिंह के उद्धार को अपनी आँखों से देखा है उन्होने उसी समय सब हाल को लिपिबद्ध किया था कि भरतादि महान् शक्तिशालियों ने इस तीर्थ का उद्धार करवाया था पर समरासिंह के उद्धार का महत्त्व सब से बढ़ चढ़ के है कारण भरतादि के उद्धार के समय में तो समय एवं सर्व साधन अनुकूल थे पर समरा के समय में तो मुसलमानों में भी अलाउद्दीन का धर्मान्धशासन उसके क्रूर शासन में केवल दो ही वर्षों में तीर्थोद्धार करवा कर निर्विघ्नतया प्रतिष्ठा करवा देना एक टेढ़ी खीर थी पर समरसिंह ने अपने बुद्धि विवेक-चातुर्य से असाध्य कार्य को भी सुसाध्य बना दिया इसमें खास विशेषता तो गुरु चक्रवर्ति आचार्यसिद्धसूरिके सदुपदेश एवं कृपा की ही थी। उस समय के लोग धनकुबेर राज्यमान्य होते पर भी उन लोगों की धर्म पर कितनी अटूट श्रद्धा और गुरु वचनों पर कितना विश्वास था कि उनके थोड़ेसे उपदेश से बात की बात में वे लोग करोड़ों रुपये व्यय करने को कटिबद्ध हो जाते थे। धन्य है उस समय के आचार्यों एवं उनके भक्त लोगों को। क्यां ऐसा समय हम लोगों के लिये भी आवेगा।

१५४—देवी ने आपको अक्षय निधान बतलाया जिससे आपका घर धन से भर गया। देवी की स्वर्ण मय मूर्ति बनाई बावन जिनालय का मंदिर बनाया सुवर्णमय १०८ अंगुल की मूर्ति बना कर प्रतिष्ठा करवाई पांच बार संघ निकाल के सर्व तीर्थों की यात्रा की। श्री संघ को ११ बार घर अंगणे बुलाया अंतिम

* उस समय का नाप एक मुंडा कई मन धान का होता था।

पहरामणी में पुरुषो के वस्त्रों के साथ पच्चीस पच्चीस तोले की कंठियाँ बहिनों को चूड़े प्रदान किये ।

१५५—सकल तीर्थों की यात्रा की संघपूजा कर पाँच २ मुहरें पहरामणी में दी ।

१५६—चार यज्ञ कर संघ को घर आंगणे बुलाकर तिलक कर पहरामणी दी पुष्कल द्रव्य व्यय किया ।

१५७—दुकाल में आये हुये भूख पीड़ित मनुष्य पशुओं का पालन किया भ० आदीश्वर का विशाल मंदिर बनाया तीर्थों की यात्रा कर संघ पूजा की एक एक मुहर लहण में दी ।

१५८—सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाल पूर्व की सब यात्रा की आवे जाते सर्वत्र लहण दी स्वामि-वात्सल्य कर संघ को पहरामणी में पुष्कल द्रव्य दिया याचकों को भी दान दिया ।

१५९—आपने निराधार साधर्मियों के लिये एवं जैनधर्म के प्रचार के लिये बीस करोड़ द्रव्य व्यय कर जैन-धर्म की सेवा की सात यज्ञ कर संघ पूजा की पुष्कल द्रव्य व्यय किया ।

१६०—सातवार चौरासी घर आंगणे बुलाई सात मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई और संघ पूजा कर एक एक सुवर्ण सुपारी प्रभावना में दी ।

१६१—आपने विदेश से एक पन्ना लाकर ११ अंगुल की मूर्ति बनाकर घर देरासर में प्रतिष्ठा करवाई तथा संघ पूजा कर वस्त्राभूषण वगैरह पहरामणी में दिये ।

१६२—आपको पारस प्राप्त हुआ था । लोहे का सोना बनाकर धर्म कार्य में व्यय किया एवं दुष्कालादि में जनसेवार्थ भी पुष्कल द्रव्य व्यय किया तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाला शत्रुंजय पर नया मंदिर बनाया स्वर्णमय ध्वजा दंड चढ़ाया और संघ पूजा कर पचीस २ मुहरें वस्त्र वगैरह पहरामणी में दिये ।

१६३—तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला संघ को पहरामणी दी जिसमें सोने की [illegible] दी ।

१६४—चौरासी न्याति को अपने घर आंगणे बुलवा कर पाच पकवान भोजन करा कर सुंदर वस्त्र [illegible] की पहरामणी में दी ।

१६५—दुकाल मे बड़ी उदारता से स्थान स्थान पर शत्रुकार मंडाया दिये तथा तीर्थ यात्रा कर संघपूजा की ।

१६६—सात बड़े यज्ञ किये साधर्मियों को पहरामणी दी । याचकों को मनोवांछित दान दिया ।

१६७—आपके विदेश व्यापार से अनायास तेजमतूरी हाथ लग गई जिसने [illegible] सुवर्ण बना कर चार मंदिर चार तालाब चार यज्ञ और चार बार तीर्थों के संघ निकाल कर सर्व तीर्थों की यात्रा की संघ पूजा की पांच २ मुहरें पहरावणी में दीं ।

१६८—श्रीशत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला संघपूजा कर पहरामणी दी ।

१६[illegible]—चार बड़े यज्ञ किये ८४ चार बार घर आंगणे बुलाई पहरामणी दी ।

१७०—सम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ संघ निकाला जाते आते सर्वत्र लहन दी स्वामिवात्सल्य कर [illegible] को पहरामणी दी और याचकों को दान दिया ।

१७२—शत्रुंजय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला दुकाल में उदारता से संघ पूजा कर पहरामणी दी ।

१७१—शत्रुंजय गिरनार का संघ कर [illegible] द्रव्य से [illegible] संघ को पहरामणी दी ।

१७२—सात बार [illegible], २ बार चौरासी बुलवा कर भोजन के साथ पहरामणी दी ।

१७४—सात बड़े यज्ञ किये जैन मंदिर बनवा कर स्वर्ण प्रतिमा [illegible] की ।

१७५—शत्रुंजय गिरनार का संघ निकाल एक एक सुवर्ण मुद्रिका पहरामणी में दी ।

१७६—आपके पास तेजमतुरी थी जिससे सुवर्ण की सुपारियां बना कर संघ को पहरामणी दी।

१७७—आपके पास चित्रावली थी जिससे स्वर्ण के नारियल बनाकर संघपूजा में दिये।

१७८—सम्मेतशिखर की यात्रार्थ संघ निकाल समुद्र तक पहरामणी दी।

१७९—दुर्भिक्ष में पुष्कल द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों के पशुओं के प्राण बचाये।

१८०—श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाल यात्रा की जाते आते सर्वत्र लहण दी स्वामिवात्सल्य कर संघ को पहरामणी में वहुत द्रव्य व्यय किया।

१८१—दुकाल में मनुष्यों को अन्न पशुओं को घास के लिये देश २ स्थान स्थान पर शत्रुकार खोल दिया विना भेद भाव के खुले दिल दान किया चार मंदिर चार तालाब बनाये व संघपूजा पहरामणी दी।

१८२—गरीब निराधारों को गुप्तसहायता दी तीर्थों की यात्रा की घर- पर आने वाले साधर्मी भाइयों का सम्मान कर निराधार को द्रव्य दिया करते आपने अपनी उदारता से राजा महाराजा और बादशाहों के सहकार से जैनधर्म एवं ओसवाल जाति का सुयश बढ़ाया।

जैन संघ ने केवल अपने धर्म के लिये ही नहीं पर जन साधारण के लिये भी कैसी कैसी सेवाए की जिसके लिये कई प्राचीन कवित कविताए मिलती है जिसको भी यहाँ दर्ज करदी जाती है।

॥ वंदिवान छोड़नेवाला भेरुशाह लोडाका छंद ॥

असुर सेन दल संभरि आइ, पंथवि मुगलां वंदि चलाइ।
पहुसम परज करै पुकारं कीधा चरित किसौ करतारं ॥
जगड भीम जगसो नहीं, सारंग सहजा तंन;
वाडर चढि दा[illegible] तणां, महि भेरू महिवंन
मृगनैणी मनि औदकै, परवसि *'पाळां' जाई।
कै उ'लोडा' तुमथी उवरै, कै खुरसाण विकाइ

छंद.

खुरसाण काबिल दिसह संचहि एक रूसन वरसये।
भसवरै यौ मुळितांन कीजै, करब चेडी दलये ॥
खटहडै कोट दुरंग पाडी, धरा अनपति धावये।
पुनिवंत सारंग पछे भेरू, वहुत वंदि छुडावये ॥
भड सुहड ते मै भंति भगा, को न वाहर आवये।
फिरि राज करसी वाट हालै, आहे कोण छुडावये ॥
अहिवात अविचल दिये 'लोडौ,' सोख संचिणां लाइयं।
पुनिवंत सारंग पछे भेरू, वहुत वंदि छुडाइयं ॥
[illegible] दिनाणी पवणी सारी, दे असीसां अति घणी।
[illegible] वरस 'लोडा' [illegible] कायम, [illegible] चहु [illegible] तुम तणी।
[illegible] सुहड [illegible] निरउ, [illegible] सुजस सुणाइयं ॥
पुनिवंत सारंग पछे भेरू, वहुत वंदि छुडाइयं ॥ २ ॥
[illegible] नाम पलै, एक रूपमे रहवै।
पीडिजे लोक प्रभोमि लीजे, डराये दहु दिसि डरे ॥
मेलीया ते ओसवाल उदिवंत, सोख क्षिपणां लाइयं।
पुनिवंत सारंग पछे भेरू वहुत वंदि छुडाइयं ॥

कविता.

छुडाइ सब वंदि, अवनि असीयात उवारी।
अलवरि गढि उवर्या, सिपति सहु करे तुहारी ॥
सो परिभूं भैंसादि, तिपुर सोनया समप्या।
जीवदया जिनधर्म, दांन छह दरसणि [illegible]प्या ॥
डाहाज साह अंगो भमी, भणति भांण जगि जस घणो।
वंदी छोड विरद भेरू सदा दिन दिन दोलति दस गुणो ॥
जुगति जोग रस भोग, अचल आसण मेवातह।
डेड खग खिति मझि वथ मेसलि त्रिगातह ॥
तनु वसुति धन रिधि, वचन बोलीये मुठ जदि।
थवन न द सोवनं मवद सीरी सीगी वजै ॥
आदेश खान सुरतांण नै, भणि सीहू र [illegible] रवि तवै।
भैरवां ध्यान गोरख तु, चहु दिसि चेला चवै ॥
हाटि वसै मेवात भर्यो नवनिधि किराणे।
विणज करे जल काजि, वेमि अलवर गढ धाणे ॥
डोडिय दुरिजन राइ, प.ई पटडा टहतरो।
वाट न को, उवटै खान सोदागर सनरि ॥
भणि सीहू दादासा तन भेरू करी कंचन थवे।

जिणि देस अजियर ऊंट अरोगैर भाहर सदा लोक बसै ॥
जिणि देसि इसा गुण नारी जांग, भील गुंजाहल मांगइ मरे ।
तिणि देस नरेसुरराम तुहारी, कीरति कोटि किलोल करै ।।
जिणि देस सदा प्रति धेन सवारी, सत स्वामण दूध श्रवै ।
जिणि देस पदमणि पीन पयोहर, खोले राखे काय खवै ॥
जिणि देस पिता बीज आपण जोइ, बिरहनि पंच भ्रतार वरे ।
तिणि देस नरे सुर राम तुहारी, कीरति कोटि किलोल करे ॥
जिणि देसि सलोभी मानव जाये, खाड गजां ले मौलि खणै ।
इम जाणि करे नर इसर यांइण, बंभणि एसा मंत्र भणै ।।
हणवंत जीये दिसि मारे हाका, हेक पुरिषां देह हरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ॥
जिणि देस उभै मण पितलि जोडै घाट अजाइब लोक घडै ।
जिणि देसि त्रिपंखी लोहणि ताला, जोनि जितनीं काजि जडै ॥
जिणि देस पदमणि पीता पांणी पावस दीसै पुठि परे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोटि किलोल करे ॥
जिणि देस कलेस न आवे जीवा, इक बांहे इक इस लुणे ।
जिणि देस समुंद्री कांटल जाये, चंदावदनी लाल चुणे ॥
सोवंन जिणे दिसि सीधु साटै, मांनव कोय न भुख मरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोटि किलोल करे ॥
जिणि देस दहुँ जणह कण जीमण, भोजन आयां सीर मिले,
उग देस कहे जगनाथ उडीसा, मांनव कोडि अनेक मिले ॥
समरंगणि ठाइ हणे मिल उपरि, साच पटंतर काज सरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारी कीरति कोडि किलोल करे ॥
जिणि देस महेसन मेछ उहारे जोति अगनि पाषाण जलै ।
बुदि पइ अचंभ त्रिहुणे वाल्हणि बारह मास अखुट वलै ॥
पताार सकति व बुडे पांणि, चावल होम जिगंन जरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ॥
जिणि देस इसा किम जंगम वासे, कान थमारि वि हाथ करे ।
मुख आंखि न दीसे मुठां आगे, मीच घणां दिन जाय मरे ॥
फक फुक अहार करे नरि फेरो, जोग अभ्यासन जिम जरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि, कीरति कोडि किलोल करे ॥
जिणि देस उभै महमास बंधीा सुर न दीसे पंथ सही ।
पावक अडंग महा विंदु पांनै, वाट दियाले तेथि वही ॥
जिणि दीस न दीवे रात्र चलंतो, भुनां दीपक हाथि धरे ।
जिणि देस नरेसुराम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ॥

रवींद्र केशवदे एवं बडे अक्षर.

जिणि देस महोमत्त होई हसती, भ ति अजाइब बंनि भरे ।
नव निधि सिरोमणि तास निमंधि रोस भयंकरि रंग भरे ।
हिब होइ जिये दिसि बांह हसी, झालण देह न मदि झरे ।
तिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ।
जिणि देसि बिह जण जोडी जांमे, एक बिहु घर वास हुवे ।
सुखसेज सदा वृष पुरे संपति, साथ भवासे मांहि सुवै ।
जगदीस इसी किम कीधो जोडी आपण माहि न होइ भरे ।
जिणि देस नरेसुर राम तुहारि कीरति कोडि किलोल करे ।

वंदि छोडानेवाला करमचंद चोपडा.

गढरोहो मंडियो सुभट सावंत रुकाणा ।
पवन छतीसे वंदि हुवा इक अकथ कहाणा ॥
ओसवाळ भूपाळ दाम दे वंदि छुडाइ ।
काणी करतव करन, वदे सहु कोइ वडाई ॥
समधर भणे तालहण सुतन, न्याइ विहु पखि निरमळा ।
चीतोड भिडं ते चौपडे, करमचंद चाडी कला ॥

नेतसी छाजेहड.

पवन जदि न परवरे, वात्र वागो उत्तरधर ।
धर मुरधर मांनवो, भइ भेभंता तासभर ॥
मात तनुज परहरे विम इ मृगनेनी छारे ।
उदर काजि आपने देस परदेस संभारे ॥
खित्त खीन दीन व्यापी खुधा नर नीसत सत छंडीया ।
तिण थोस साह जगमाल के, नेतसीह नर थभीया ॥

अन्नदाता धर्मसी.

दीपक दीदा दिसे, प्रथी पदरा परमांणे ।
कडलनेर कढाड्रि सिपंत साची सुरतांणे ॥
इकतीसे सोझनि, हुला असमे आचारी,
घर गुजर धरमसी, जुगति दे अन्न जिवाडी ॥
सोरहड विरद साटे खरां, अचल गंग सुभ उचरे ।
वर्धमा तणि वसि वाचिये, सु वायाणी सुरतांगरे ॥

लाखों को जीवानेवाला संघवी नरहरदास.

साहिन को साहि पतिसाहि जहां गाजो राजी ।
हुँ के रावरेकु सिरपाव × × दीये हे ॥
जेतेक बिहांन में घवानों खांन सुलितान ।
करव बखांन सनमांन बहु दीये हे ।
कोटि जुग राज कीजे, नारदास सुबः ॥

भवर जवाहर कया सहुँ; जो नजरि दिखाया ॥ ३० ॥
कही देखिये ढेरिया, सोने दी भारी ।
कही देखिये ढेरिया रूपे अधिकारी ॥
कही देखीये ढेरीयां, कोमांच लगाये ।
पेसकसी जहांगीरकुं, हीरानंद ल्याये ॥ ३१ ॥
संवत् सोलहै सतसठे, साका भतिकीया ।
मिहमानी पतिसाहकी करिके जस लीया । × × +
सुनि सुनि चोखी चुंनी; परम पुरांणे पंना ।
कुंदनकु देने करि लाये घन तावकेमंना ॥
काड लाल लाल लागो; कुतुब बस कुसांन ।
बिबधि बरण बने; बहुत बनांउके जान ॥
रुपके अनूप भाठे; भवल के आभारन ।
देखे न सुने न कोइ असे राजा राउके ॥
वाउन गतंग माते नंदजु उचित कीने ।
जरसेती जरि दीने, अंकुस जराबके ॥
दांन के बिधानको बखांन हु लो कौ लू करो ।
वीरानिमें हीरादेत हीरानद जैहरी ॥
पाइये न जेते जवाहर जगमांझ ढूँढे ।
जे तो ढेर जोहरी जवाहरको लायो है ।
कसबी कोमांच मुखमल जरबाफ साफ ।
झरोखा लो मद लग मगमें बिठायो है ।
जंपति जगन विधि आनंन बरणी जात ।
जहांगीर थाये नंद आनंद सवायो है ॥
बरसी टिकी काहु कहुं उवरा उनकी ।
पेसकसी पेखते पसीनां तन आयो है ॥ ६ ॥

कोरपाल सोनपाल लोटा.

सगर भाथ जगि जगड जावड भये ।
[illegible] स रंग सुजस नाम वरणी ॥
[illegible] संघ चडायो सुमन मुदित वायो ।
[illegible] पायो कवि कोटि किति वरणी ॥
[illegible] दान दान टुक भार कहि ।
आनंद नंदउ नरि नरि गावे वरणी ॥
[illegible] रेखचंद नंद ।
[illegible] कीनी बडो करणी ॥ ३
[illegible] दिखाइ देव ।
[illegible] कीजिये ॥
आँन संघपति कोउ संघजोपे कीयो चाहे ।
कोरपाल सोनपाल को सो संघ कीजीये ॥
सवळ राइ बिभार; निवल थापना चार ।
बाधा राइ बंदि छोर अरि उरसालको ॥
अडेराय अवडंभ, खितपती रायखंभ ।
मंत्रीराय भारंभ; प्रगट सुभ साजको ॥
कबि कहि रूप भूप राइन मुकट मंनि
त्यागी राइ तिलक; बिरद गज बाजको ॥
हय गय हेमदांन; भांन मंदको समांन ।
हिंदु सुरतणि सोनपाल रेखराजको ॥४॥
सैन बर आसमके, पैज पर पासनके
निज दल रंजन, भंजन परदलको ॥
मदमतवारे; बिकरारे अति भारे भारे ।
कारे कारे बादर से बास वसु जलके ॥
कबि कहि रुप नृप भुपति निके सिंगार ।
भति बडवार औरापति सम बलके ॥
रेखराजनंद कोरपाल सोनपाल चंद ।
हेलवंनि देत एसे हाथि निके हलके ॥

ठाकुरसी मेहता [श्रेष्टिगौत्र वैद्य साखा]

इला तेगवरिमांडनिति वैद्यवंसि आभरण ।
हुवे रिण ठालुघर लग बलिठो ॥
फोजहा अमरी उपरे फोरवे; नासियो ठाकुरे तुरी नीलो ॥१॥
लीयो आलममु ओझडे लोहडा, खांग मोटी सीरे खाग गाले ।
खेग अमराहरो भेलियो खेरवे; किलम घडसेविचो वडो काळे ॥
बह दांन दीये मिखिया बडपात्रा, अरी हाथळ रहचणा अबीह ।
ठाकुरसीह कहावे ठाकुर; सीह कहावे ठाकुरां ठाकुरसीह ॥३॥
जिणदासोत सुदिन दे जांणी, खगतलये सिर दीये खळ ।
बोलावे रांजिंद तणा अद बोलावे अगि सरस वच ॥४॥
सीमांहरो सुदिन सुरातन मोहतो दहू विधि निरभे मंग ।
अगि भूपाळ लंकाळ कह्यो जिणि बडोसु जोसी ब्राह्मण ॥५॥
बकसी जिण रांग बभीषण लंका बटबीसजीयो न्याय वगा ।
अदे चढे तिणि देत तणे गट, ताइ बकसी जिणदास तणों ॥६॥
राखे रखा दुरग सहु रावळ, हंम उतर नहि होये ।
ठाकुरसी जिता सहु टेळे, दिनहके परसाद दीये ॥७॥
जेसडमेर पयंरे जांनी, काटे लिये न आयो कोय ।
गढा गाढ्रग गिरद मेवासग घर गिणि,

सोजत के वैद मुहता।

रह्यो गढ सोजत त्रिंटी रायमल, कोट अणखोले 'पतो' कहै।
मोटी रीत वरे मुहतोरे, राज मुहर्तो गढ रहे ॥ + + + +
खीवर गढ है कीणी खेतावतो, अजमालौत रहे गढ ओर।
रीत उजालण वल 'राजडो' जगड तणो रह्यो जालोर ॥ + +
सोजत अने सीमियाणी, सोनीगरा जुडता आया।
आद जुगाद मुरधरतणा, मुहतो घर मान सवाया ॥

वीर वैद मुहत्ता पाताजी को गीत.

ठाकुर पांचमो पांच भूतथी तरहे। संकेतन नित राखे।
सहु सारीखो हुवो सीमयाणो। 'पातल' मरू कीरती पाखे ॥
+ + +
माडी नाडी नित मुरजि मुरजि, थुडतो जाय अरियों थाट।
हंस 'पतो' बुगलो नो वायो। देही दुरंग हुवो दह वाट ॥
मोटाइ पीसण तुं हाल 'मुहत्ता' मह कोइ छडेन फोझमझार।
नारायण कन्हे ला नारायण, तु आयो बन्ध तलवार ॥
समे न ताप रहारो दल खल। सनमुख छडे पाखर शेर।
दानो हाथ रायमल दुजा। सूरडा चमक्या देखी समसेर ॥
+ + +
भदिरण रण, सेत हाथोडो अवध सास धमणि तप रोस सहई।
भाठि पोहर अधकित उभो धडदल रयण घडे घण घाई ॥
करीयो रोस कोप्यो दावानल, धडधड छैभड धाइ पडै।
बैनाणो 'पातावत' अरिवद्ध जडा दलेडत त्रिजड जडै ॥

सीवाणा का वैद मुहता राजसी.

गढ सीवाणो गाजियो, राजियों ले तरवार।
प्रग देह पण राखियों, सुखी कीयो संसार ॥
धर्म हेते धन खर्चियों, पोपाशाह प्रधान। + + +
+ + +
वेरी ने वरदान। आगे हो सचायिका तणो।
[illegible] तेरह खान। तपियों मुहतो तेजसीरे ॥
+ + +
[illegible] सुयविधों। होदा उपर हाथ।
[illegible] देखो करे पातसाहा। राजा तो रूजनाथरे ॥
+ + +
[illegible] उजमणा। नोमा हंदी बाड।
[illegible] ते दीधो। रख्यो देश मेवाड ॥

1 [illegible] 2 [illegible] 3 [illegible] 4 [illegible]

लाख लखांरो निपजे। वड पीपल की साख।
नटीयों मुत्तो नेणसी। ताबों देण तलाक ॥
+ + +
जगडू जग जीवाडीयों। दीनों दान प्रमाण।
तेरा सो पन्नडोतरे। अरू विच उगो भांण ॥
+ + +
सौ सौनारो एक ठग। सो ठग ठाकुर एक।
सौ ठाकुर भेला हुवे। जद भक ? मुत्सद्दी एक ॥
× + +
थेरू जैसाणे हुवो। आसकरण मेडते। भरी मेवाडमे शाहा भोम
कच्छरी धरतीमे जगडवो कहिजे। जिम जगमें टोपरेशाहा टाम

एक चारण अपने यजमान कि तारीफ.

वागो जब यज्ञ मांडियों। तव नीवतियो सब मेवाड।
गोलारोठांरी खेंगाली। जदा हुवा धूघला पहाड ॥

इस पर एक जैन कविने कहा कि—

नगरूप जुग जिमाडियों। निवतिया सब नव खण्ड।
सिर तविया वासंग तणा। काजलिया ब्रह्ममंण्ड ॥

आर्य जाति के वीर

शारद मात नमु सरस्वती। कर वीणा पुस्तक बाँचती।
माता वरदो सुधरे मती। करूँ ख्यात आयरिया हुँती ॥ १ ॥
उमयानन्द शरण तो पाउ। भक्ति कर गणपति मनाउ।
मात चारणी शीश नमाउ। कुल अवतंस यादुवंश गाउ ॥ २ ॥
मलेच्छदेश उजाडण आये। शत्रु दलबल सलसांच मचाये।
सुभट भट ले सहस संघाते। सिन्ध धराधर जीव बचाते ॥३॥
मिल्या गुरु वसुदेव सम वाणी। सुण उपदेश आत्म ठराणी।
रिधि सिधि सम धर्म बतायो। अक्षय निधान तसु वयणे पायो ॥
पारसदेवल, नगर वसायो। छुटो राज, राज पुनः पायो।
दिन दिन परगल पुन्य सवायो। कल्पतरू निज अगण आयो ॥
जैनधर्म फलियो तत्काले। गोसल सुकृत कर धर्म संभाले।
पट्टधर आसल नाम कमायो। संघपत कुलधर ओर सवायो ॥
देसल देश देश जुग पायो। सांगण सुभट हजार ही पायो।
मुल्ताण सूर उदयो अवचल। धर्म कर्म देपाल दाता बल ॥
हाम भग हरपाल हुंस भलेरी।
दुर्जण सज्जन समरीव कजेरी ॥
तस निर्दद मण्डण सुमंडण।
स्वदग मोग रिपु दल खंडण ॥८॥
तस सुत गोसल राज राज तज।

मारायण कन्हडो सजधजे तु आयो बान्ध तलवार ॥
खमे न ताप तुहारो खलद्रल श्रीमुख छाड़े पाखर सैर ।
दोनी हाथ रायमञ्ज दूजा सुरड़ा वातों तीका सम सैर ॥
कबिलातों ते खाय किलेवर भारथ भाजे लख भट्ट ।
रावण कंस स्मरियों रूठे तुठे दिन्हो भी जट्ट ॥
सु सिलहा सिन्धुडा सहित भाजे अरिया चसे भारथी ।
पृथ्वी तणे सरदार पाताउत हाथ तणो खग दोनों हाथे ॥

× × ×

कवित

गले ज रह मेखली, डंड कर गृह बीजु जोगाती ।
टोप पत्र शिर छत्र, अंग वभूत परमल ॥
योग वहे जर कमर, जुडवड़ ठल जमातो ।
ध्यान ज्ञान गज तुरी, त्रिखड़ वंचेकटि ताती ॥
तिडिसिघ सुयण लेवानो गति सत्र सहि करी जोड़े ।
क्षत्री जोगेन्द रयण पालालरे खड़गसिंह मोटो खत्ती ॥

× × ×

भारण ते आहट अगनि से भातस ।
अति गारो घाट अनूप, घावडियों आरेण त्रिविध पड़े ।
भाजे घड़े घड़ि भाजे भूप गलणी छाडो वाड़ा म्रह गाले ॥
गजसु दगर करी तेग म्रही सारधार लोहार असंकित ।
सत्र दांके लै किया सही ॥

मोरच्च पोकरणानाथा का कवित

कांते आयो रे दुकाल नाथा के दरबार में ।
मान न पावेगा तु तो जा जा देशपार में ॥
कुत कौरा दौरा लगत हू न विछोरा तेरा वौर में ।
अनाथ को सनाथ भयो नाथो उगत ही भौर में ॥

सचेतीयो का कवित

सायर अहदसिंह भडे रंग रंग भणिजे ।
डाबर दिल दिल दरियाव, कथन ताइ वडो कहिजे ।
रसाय कु भावन वगत मोटो वखाणे ।
सुरमकमा रूपमी इन्द्र सातिो अडी नाणे ॥
हर राज अने टाडो हुओ जोर नाच किया जिया ।
नामक मत्रो नव सरमो बिरहर भाज संचेती ॥

× × ×

सोजत के वैद महता

[illegible] पातो कहे ।

मोटी रीत घरे मुहतो रे राज महतो गढ़ रहे ॥ १ ॥
रवीवरगढ़ है कोली खेमावती अजमालौत रहे गढ़ सिवाणे ।
रीत उजालण वले राजड़ो जगदुतण रहयो गढ़ जालौर ॥ २ ॥

+ + +

कोट मीठो मित्र चन्द कीलाधर निसल हरे कियो जागीर नाम
ढाहा हरा सोनीगरा चूटा कुल तहारा सरीसो काम ॥ १ ॥

+ + +

सोजत अणे सीमी पाणे सोनीगरा जुड़ता आपा
आद जुगादी सुरधर तणा मुहता मरण तणी मोतादि

+ + +

जोधपुर के मूता पाताजी का गीत

परगटेक मस्तक कइ हाथ पग । नजा सखण के नयन तीम ।
भजण तणामृत हुआ जाण खोलो । जीव परो वय हुओ जिम ॥
नमी माथो वल पमणन हाले बीथका अंगसहु वरियाम ।
खेत्र कलो घर हंस खेलीया काडी शरीर सरे कोई काम ॥

खीवसर के वैदमुहता.

धरम हित धन खरचियो पोपाशाह रहवास ।
खीवसर में शत्रुकार दिया गयो काल जट नास ॥

संचेतियों का कवित.

दीपक यडा दरियाव चतुर अवसर नहीं चूके ।
संचेती सर्व जाण मान मन हू नहीं मुके ॥
दुर्ग वडो दरियाव भाव जस वास वाणिजे ।
साच वाच सुरगण सुजस संसार सुणिजे ॥
मंगियोमोल सपजे समद कवियो कुरद जकावणे ।
रापवे हरख चकतल आदू सुसंवद आपणे ॥

+ + +

संचेति सर्वजाण मभरी आच्छा मोंडे ।
आदू को अनाथह कवियो दर्द तोड़े ॥
कवियां करण कुबेर मेर पटवर जिसो मन ।
ओसवा उद्योत दिये दिन मान वडा दान ॥
पाथा अमट कवेरा पट समपै रोतसा जको ।
पत्वरो सुजसपुर पहुच यह जेता महार जको ॥

+ + +

गीत तेजपाल संचेतीरो

सयल मूल सोलाग पति परगट प्रदेशो ।
ग्रान्त सकल संतोष सात फल यह यशः कैसो ?

खंडेलवाल बहुवै मस खाटै, सगली विधि ठठवाल सहे ॥
वडवनात बखणे अेम बेरसल, खरी न्याति हीरा खांणे ।
अेती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखाणे ॥
भायचणां, सातहड भूरा आखीये, करणांटा बाफणा कहे ।
चोचड भरामेठ फूकड़ा, चावा लहुडीडू कुभटा लहे ॥
सेठीया भिरह मोर सुसंचीती श्री श्रीमाली सुरतांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
रांका भर लिंगा वैद कहि रूपक सलहां लोढा सूरांणा ।
नाहर बोथरा चोपड़ा निरमल घण दांनी पारिख घणा ॥
सांढि सीखा गोलेछा बहु विधि, जगपुर चोरडया जाणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
गादहीया चंद्र चौधरी दूगड विनाइकाया वंभ भणे ।
दरड़ा ग्रामेचा संबक दाखा, भुत सखवाला सुजस सुणे ॥
भंडसाली अधिक छाजहड भल्ल पण इल कांकरिया अहिनाणे
येती ओसवाल न्याति उज्जालं बधौ वढ़ि महथ वाखाणे ॥
बागरेचा बोहरा मीठडिया वलि, छजलांणी डागा छाजे ।
डाकलिया सांड सांखला डाही, कावेडिया कयावर काजे ॥
लुणिया सीसोदिया वांगाणी, पूरे वगड़ परियांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
कलोया केलांणी भेलडीया वलि, ललवाणी लोकड़ लेखे ।
सीरोहिआ मालू सौ विधि सुंदर, दीपक मालवीया देखे ॥
गगभर चोपड़ा देसलहर गाजै, विधि कहि फोफलीया भांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखाणे ॥
दूकड लुणावत खोवसरा कहि सहसगुणा माहे सोद ।
बावेल लुणावत फलोधीआ बहु, मतिसागर जोगड मोदे ॥
कुकड़ माहटा भंडारी कहीये, वले वांठिया निधि वाणे ।
येतो ओसवाल न्याति उज्जालं, बधोवढि महथ वाखांणें ॥
मुहणोत अने भंडसाली मोटिम, बरहडिया विधि विधि वाया ।
संखुल ग्रामेचा सोनी सफला, सहु विधि मोहांणी साचा ॥
मणकोया कोठारी पोकरणा भणि, येम गहलडा आपांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौवढि महथ वाखांणे ॥
बोसी बरडिया पालावत सनदडीया गिडीया साचा ।
[illegible] बाबरेचा बंसि रूपक, सिहु डोहुडीया नहु वाचा ॥
[illegible] बोसमा [illegible], टगति नाग गोत्रा जाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौवढि महथ वाखाणे ॥
[illegible] [illegible] [illegible] गोत्रा बहुडा वाईवाहा वसलवरे ।

खटवड़ असौचीया डांगी हीगंड, खित पगारिया सांभरा कहे ॥
खीचो अघरी कुहाड़ गोखरू, घीया भरगं गवाल घणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
टोटखाल टिकुलिया तखिजे, करूद बीरोलिया कहीये ।
नादेचा रातडीया ढाबरीया नखे, निकलंक नाखरीया महीये ॥
मगदीया अचलिया छोहरीया महि, हीरण घमारी दलिद हणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ बढ़ि महथ वाखांणे ॥
वडहरा भांगरीया जोधपुरा वलि, नागौरी वधवाल नर ।
नरवै मीठडीया नलवाया नीधननर, हित जालोरी दखिहरं ॥
चिंडालीया परद पालेरचा चावचि, डूगरिया जडीया हाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
रूणवाल भटेवरा जांगड़ा राजे, घुपीया खांटहड कहा घने ।
पीपाड़ा बोरोदीया चतुर पणि मेड़तवाला कहे मने ॥
असुभ गोत्र रोटागिण आखा, बुरड़ घांव बहु विधि वाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ बढ़ि महथ वाखांणे ॥
भड़कतीया मंडोरा भणीये, मंडलेचा अघीका मुणीये ।
वलि वीरोला डुगरवाला वाचीजै थंभ महेवचा जस थुणिये ॥
दिल्लीवाल महमवाल दूधेडीया, प्रगट वोपमा परमांणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधो वढ़ि महथ वाखांणे ॥
सोजतीया मडोवरा सुणि जे माणंहडिया रेहड मंडे ।
गजदाता सुर हुवो गुण हडीयो, वदपात्रा दालिद विहडे ॥
अमराव तेज तूज हो अविचल, सुवनंतर उगे भांणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥

॥ जुदां जुदां गोत्रना प्रसिद्ध श्रीमालीओ ॥

आगे अधिकारी थे अनंत तिस नाम कहूँ श्रीमालका,
इस कलि में सांडा कोठिया दे कनक टका कलिकालका,
इस परि भीम तंबोल त्यागी, हेम मुकत अरू ढालका,
उदेसी वीधू टाक दांनि, जासा अरू देपाल का,
उद दिली गोपा बदलीया जेजिया लुटया दर हाल का,
रतनागर त्नाहा माडिया ढिली ढिग असरवालका,
राय सवारह सीरी बढ भंडारी सेर संभालका,
ढिली सतीदास चिंडालिया, जो देसक नांने चालका,
लालन नरसीं रेपती करी नर बोहरा नरपालका,
इस जुग में येगो महाराज थे, त्रिभुवन अमिट भटाकिका,
इण काव्योवन विरिया जुनिवाल, हरपारद हरपालका,
वो कीरतिमल कुलदी आंदरीम करनाल का,

गो जौनपुर मरहा ढोर जानि पाँगी पथ वाघ मुछाळका,
अरधान मान रुस्तगि हूये, मोठीया कहूँ महिपाळका,
अधिकारी टाळन धांधीया, जस पल्हवड राजपाळ का,
खिती भैरू रांमा परगटे, मेवात बहतरि पाळका,
गोल्हा सारग समरथ साह, तांबी मेघ प्रनाळ का,
घणां विरद अब रांकियाण तिस ऊपरि हठी हठाळ था,
नखित्रज तेरा भारमल अभीच जनम अरिसाळ का,
नळि मैवासी कीये जेर चढि गिर खुंदा खुरताळ का,
नगि उपरि बळि विकम जिसा, दाळिद्र कस्या जञ्जाळ का,
राजा टोडरमल शुं प्रीति, ज्यों सरवर मान मराळ का,

\+ \+ \+ \+

साचा गुन खेते कह्या, संवत सोळासै तेताळका ।
हुकमज अकबर पातिसाह परताप जो भारहमाळका ॥

ओसवाल भोपालों का रासा

(चाल चौपाई)

शारद मात नमूं शिरनामी । कवियों की तूं अतर्जामी
विणा पुस्तक धारणी माता । हंस वाहनि वयण वर दाता ॥ १ ॥
बारह न्यात बली चौरासी । ओसवाळ सब मे गुण रासी ।
रास भणु मन धरी उल्लास । जाति नामक करहूँ प्रकाश ॥ २ ॥
पार्श्वनाथ पर उट्टे पट्टाम्बर । रत्नप्रभसूरि सूरिवर ।
आये मरधर देश मझारो । उएश नगरे उग्र विहारो ॥ ३ ॥
अमर यश सूरीश्वर लिनो । धर्म कळि में स्थिरकर दिनो ॥ ११ ॥
आर्य लाजेड़ राखेचा काग । गहड़ सालेचा करी जिन माग ।
बाघरेचा कुंकुंम ने सफळा । नक्षत्र आभड़ बहुरी कका ॥ १२ ॥
छावत बाघमार चिरडोळिया । हथुण्डियों ने शुभ कार्य किया ।
मंडोवरा मल गु देचा जाग । गच्छ उपशा ऐते पहचान ॥ १३ ॥
वड़ जिम शाखा विस्तरी । गणती तेनी को नहीं करी ।
भानु ताप प्रचण्डमध्यान्ह । महाजन संघ को वढियो मान १४
तप्तभट्ट तातेड़ कहलाया । तोडियाणी आदि मन भाया ॥
बावीस शाखा विस्तरी । भाग्य रवि ने उन्नति करी ॥ १५ ॥
वाप्पनाग प्रसिद्ध बाफणा । नाहटा जांघड़ा वेताला घणा ॥
पटवा बाठिया ने दफ्तरी । बावन शाखा विस्तरी ॥ १६ ॥
करणावट की सुनिये बात । जिनसे निकली चोदह जात ॥
[illegible] करे । [illegible] राजा से भेंटे ॥ १७ ॥
चोरड़ीया ने उन्नत मचायो । [illegible] को भंग करायो ॥
[illegible] ॥ १८ ॥
छयास शाखा पृथक करी । [illegible] उन्नति को मानो [illegible] ॥
[illegible] ॥ १९ ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥ २० ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥ २१ ॥

कनोजिया की उन्नति कही । उन्नीस शाखा मानो सही ॥२९॥
लघु श्रेष्टि फिर इनकी जात । वर्धमानादि सोलह विख्यात ।
वरड गोत कांकरिया जाणो । नव शाखा के काम पहचाणो ॥
सुंघड़ दूघड़ के संडासियासात । लुंग-चण्डालिया चार हुई जात ।
गदिया-गोत टीबांणी तीन । धर्म कर्म में रहते लीन ॥
अठारह चार सब बावीस मूल । पांच सौ पन्द्रह जाति हुई कूल ।
उन्नति के यह हनाण । नामी पुरुष हुए प्रमाण ॥
जन्होंने धार्मिक कार्य किये । धर्म काम में बहु द्रव्य दिया ।
राज काज व्यापार से कही । कई हाँसो से जातियें बन गई ॥
दोय हजार वर्ष निरान्तर । उपकेश—सूरियों ने बराबर ।
अजैनों को जैन बनाते रहे । उनकी जाति की गिनती कोन कहे ॥
अन्याचार्यों ने जैन बनाये । महाजन संघ के साथ मिलाये ।
जिसमे संगठन बढ़ता गया । अलग रखने का नाम न लिया ॥
महाजन (संघ) समृद्धशाली भया । तन धन मन उतंग नभ गया ।
क्रिया भेद गच्छ पृथक हुआ तब श्रीगणेश पतन का हुआ ॥
चैत्य निश्रय अनिश्रय कृतदोष । गोष्टिक बनाये सुयोग्य को जोष
इसने गड़बड़ मचाइ पुरी । ममत्व भाव नहीं रही अधूरी ॥३७॥
हाल इसका है विस्तार । केता लिखू नहीं आवे पार ।
वर्तमान जो प्र लीत है वात । जिसका ही लिख दू अवदाता ॥३८॥
मतमन्तिर निकले मही मान । ले ले जातियां मांडी दुकान ।
जातियों ने उनका साथ दिया । उनके ही इतिहास का खून किया ॥
तोड़ संगठन अपनों को थाप । कृतघ्नी बन किया बत्र पाप ।
पतन दशा का कारण यही । अनुभव से सब जाणी सही ॥
भवितव्यता टारी नहीं टरे । होन हार अन्यथा कोन करे ।
[illegible] गच्छ के कहलावे गोत्र । वंशावलियों से पाई जोत ॥
[illegible] मुनेचा उने रानडिया । बोरधरा बठावत व फोफलिया ।
कोठारी [illegible] कपुरिया । घाड़ीवाल धाकड़ा सेठिया ॥
भूरगोता नागगोता बडा नाहर । धाकड़ और खीवसरा सार ।
[illegible] मिन्नी सोनेचा सुजान । मकवाणा छिनुरिया को जाण ॥
[illegible] मुलिया ने सचलेचा । डाकलिया पाड़ुगोता पोकरलेचा ।
[illegible] नागणा । खीवाणदिया बडेरा वडगणा ॥
[illegible] के ये श्रावक जाण । वंशावलियों में है प्रमाण ।
[illegible] आदि प्रभाविक । जिन्होंने बनाये जैनी मानिक ॥
[illegible] । [illegible] ये एक ही प्रमाण ।
[illegible] । [illegible] है इसमें बड़ा ॥४५॥
[illegible] । [illegible] ने [illegible] ॥

सामड़ श्रावक दूधेडिया कही । छजलाणी छलाणी सही ॥४६॥
घोडावत हरिया कल्हाणी । गोखरू चोधरी नागड जाणी ॥
छोरिया सामड़ा छोडावड वीर । सूरिया मीठा नाहर गंभीर ॥४७॥
जड़िया आदि और विवेक । नागपुरिया तपा सूरि नेक ॥
दुर्व्यसन छोडाइ जैन बनाया । उनका उपकार सदा सवाया ॥४८॥
वरदिया-बरडिया वंश जतावे । वरहुदियां शिलालेख बतावे ॥
बांठिया कवाड़ ये बड़े ही वीर । शाह-हरखावत साहस व धीर ॥४९॥
छत्रिया लालाणी ने रणधीर । लखवाणी हुए वडे गंभीर ॥
गान्धीराज वैदबलगान्धी । जिन्होंने प्रीत प्रभु से साधी ॥५०॥
खजानची और डफरिया जाण । बुरड संघी मुनौत परवाण ।
पगारिया चौधरी व सोलंकी । गुजरांणी कच्छोला जिनकी ॥५१॥
मरडेचा सोलेचा और खटोल । विनायकिया लुंकड सराफ अमोल
अंचलिया मिन्नी ने गोलिया, ओस्तवाल गोठी डोलिया ॥५२॥
मादरेचा छोलेचा व भाला । गुरु प्याला पी को मतवाला ॥
बृहद् तपागच्छ के सूरि सधीर । जैन बनाये क्षत्री वीर ॥५३॥
गिरते नरक से स्वर्ग बताया । परम्परा हम चलते आवे ॥
उपकार तणो नहीं आवे पार । प्रतिदिन वन्दन वार हजार ॥५४॥
गालहा आथ गोता बुरड जाणा । सुभद्रा बोहरा व सियाळ ॥
कटारिया कोटेचा रत्नपुरा । नागदगोत मिटड़िया वडगूरा ॥५५॥
घर गान्धी देवानन्द धरा । गोतम गोत डोसी सोनागरा ॥
कांटिया हरिया देड़िया वीर । बोरेचा और श्रीमाळ वडधीर ५६
अंचल गच्छ सूरीश्वर राया । अजैनों को जैन बनाया ॥
उपकार आपका अपरम्पार । स्मरण करिये प्रत्युपकार ॥५७॥
पगारिया यंत्र गंग कोठारी । गिरिआ गहलड़ा और है भारी ॥
मलधार गच्छ के सूरि जाण । श्रावक बनाये जाति प्रमाण ॥५८॥
सांड सियाल पुनमियाधार । सालेचा मेघाणी धनेरा सार ॥
पूनमिया गच्छ के सूरिराय श्रावक बनाये करुणा लाय ॥५९॥
रणधीरा कावडिया सुजाण, । दहाश्रीपति तेलेरा मान ॥
कोठारी नाणावाल गच्छ सार । सूरि कितो जबर उपकार ॥६०॥
सुरांगा सांखला सोनी तिसा । मणवट मिटड़िया है किसा ॥
ओस्तवाल राठोड और नाहर । सुरांणा गच्छ का परिवार ॥६१॥
धर्मघोष सूरि का उपकार । नहीं भूले एक क्षण [illegible] ॥
बोत्था-बोहरा दुगरवाड कही । पल्लीवाल गच्छ की हुई [illegible]
दूधेड़िया क्षोलिया गंग जाति । चंद और खारड़िया [illegible] ॥
कदरसा गच्छ के सूरि महन्त । हम पर किया उपकार अनन्त
भंडारी गुगलिया बरांला । चूतर दूधेडिया बोहरा [illegible] ॥

एक एक नाम की जातियाँ सही । मूल गोत्र से निकली कही ॥
जिगसु नाम आवे वारम्वार । शंका छोड करजो विचार ॥
वंशावलियों से एक ही करी । चौवाइ संघ समे धरी ॥
और जातियों कितनी रही । जिसकों कैसे जावे कही ॥
जब था समय उन्नति करी । वड़ जिम शाखा विस्तरी ॥
पतन चक्र का उलटा काम । अब रह गये पुस्तक में नाम ॥
फिर भी है गौरव की बात । अतित संभालो सुप्रभात ॥
ज्ञानसुन्दर सेवा दिल बसी । भुल देख मत करजो हंसी ॥
दो हजार भाद्रपदमास । कृष्ण एकादसी पुरी आस ॥
गुरुवार भलोसुखवास । अजयगढ़ में रहे चौमास ॥१॥

पूज्य मुनिराजश्री दर्शन विजयजी महाराज को नारायणगढ़ के गुरांसाहब गणपतरावजी से प्राप्त हुये कुछ त्रुटक पन्ने मिले जिसको आपश्री ने ताः २६ जौलाई १९४१ के ओसवाल अखबार में मुद्रित करवाया था यद्यपि इन कवितों में वे ही भाटों की बहियों के अनुसार कुछ कुछ गड़बड़ अवश्य हुई है फिर भी ये बात निश्चित है कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाराज ने उपकेशपुर नगर के राव उत्पलदेवजी आदि पार्श्वो वीर क्षत्रियों नागरिक लोगों को मांस मदिरा आदि दुर्व्यसन छुड़ाकर जैन बनाये इसी बात को लक्ष में रखकर वे कवित ज्यों के त्यों यहाँ पर दर्ज कर दिया जाता है ।

राजा उपलदेव पंवार नगर ओसियो नरेश्वर ।
राज रीत भोगवे सक्ता (देवी) सचिया दीनहुवर ॥
नव सौ बरू निधान दिया सोनइया देवी ।
इंबा उपरो अंगज किया सुपा मामा देवी ॥
इमकरी राज भोगवे अदल बहुत खलक वदीत होय।
नहीं राजपूत चितानिरट सगत प्रगट कही कथा सोय ॥
हे राज ! किम काज करो चिंता मन माहीं ।
सुत न उदरत य लिख्यो देउ किम अंक बनाई ॥
नृपत होम दीलगोर दीन वायक इम मुख माखे ।
पुत्र बिना मुर राय राज मारो कुण राखें ॥
देवो दया विचार वचन दिनो निरदोषी ।
[illegible] रायनिबक पुत्र निश्चय एक होसी ॥
[illegible] बस पुर मुख [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] भई [illegible] गढ़ [illegible] ॥
देवी के [illegible] [illegible] राजा फल पायो ।
[illegible] दियो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

पुत्र पिता भीड़ पास महल सहर्षा सुख माणे ।
तीण अवसर रिषीराज रत्नप्रभु मास खामणे ॥
शिष्य चौरासी साथ व्रत संयम तप साधे ।
धरे ध्यान एकतार देव जिनराज आराधे ।
शहर में गये शिष्यवहरवा धर्म लाभ करता फिरे ॥
इण नगर माहि दाता न को वसे सुम सारा शीरे ।
घर घर सब फिर गये पवित्र आहार न पायो ॥
विप्र एक तीणवार वचन ऐसो बतलायो ॥
इम गृह पावन करो धन धनभाग हमारो ।
आज हुओ आवणो मुनि यह देश तुमारो ॥
सुझतो आहार दोषण बिनो खीर खांड बहेराविया।
उजले चित दोऊ जण ते गुरू के पास आविया ॥
देख गुरू गोचरी ध्यान धर ने आरोहण किया ।
सबद तणो पाषण तोय ब्राह्मण घर लिया ॥
नगर मही नर लाख बसे घर एक सरीखा ।
शक्त पन्थ मत्त वाद शीश संदूरी टीका ॥
समस्त हुआ थिर मन ध्यान अन्तर सू खोले ।
शिष्य प्रति महाराज मुसक मुख वायक बोले ॥
गुरू कहे वार लागो गणीत कहो शिष्य कीण कारणे ।
शिष्य कहे आहार मिल्यो नही मैं फिरीयो घर२ बारणे ॥
शिष्य मुख से सुन वैण आहार परथवी परठायो ।
पीवण सर्प हुअ गयो महल नृप सुत के आयो ॥
पीवण सांप पी गयो कुवर ने चैन न ताई ।
नहीं आशा विश्वास सोग हुगयो सताई ॥
हाहाकार हुओ शहर में दाग देणे चली दुनि ।
रत्नप्रभ सांभळ रुदन दया देख बोले मुनि ॥
मुनि वायक सुणी वैन भ्रम राजन टाणों ।
कौन नाम गुरू कहे सांच देखाने टीकाणो ॥
नृपत वचन जो सुन कहे मुनि उत्तर इम धारो ।
उस लेगड़े प्रस्थान कुंवर ने लेइ पधारो ॥
साचो सरणे आय नृपत विनती करावे ।
निश्चय है त्रास हरो मुकट ऋषि चरण धरावे ॥
माफ करो तकसीर अब आप चूक बगसाई ।
ये मो वृद्ध काठ की लाज है गुरु कुँवरजीवाड़ये ॥
करुणासिन्धु दयाळ नृपत है इसो वर दियो ।
गयो रोस [illegible] मृतक सुत तत्क्षीण जियो ॥

धरियो खास विसवास नैन खुलिया मुख वाचा ।
रोग सोग सब दूर शब्द सतगुरु का साचा ॥
आलस मोड उठियो कहे निंद आइ भलो ।
किस काज मनें ल्याया अठे दूरस कहो साचो गलो ॥
खमा खमा सब कहे उठ गुरु चरणे लागा ।
मंगल धवल अपार बधावा आणदवागा ॥
तोरणछत्र निशाण कलस सोवन वधावा ।
भर मोतियन का थाल सखियन मिल मंगल गावे ॥
ओछाडिया महल बजार घर रतनो चोक पुराविया ।
जदी खीन खाप पग पातिया रतनप्रभ पधराविया ॥
नृपत करे विनती जोड कर हाजर ठाडो ।
कृपा करो महाराज धरममें रह सु गाढो ॥
पटा परवाना गाम खजाना खास खुलावुं ।
कबहु न लोपु कार हुकम श्रवण सुन पाउ ॥
गुरु कियो त्याग धन वैकार एक वचन मोय दीजिये ।
मिथ्या त्याग जैनधर्म ग्रहो दान शील तप कीजिये ॥
तहत वचन उर धार नृपत श्रावक मत लिया ।
पुर दुदि फरवाय नार नर भेला किया ॥
भिन्न भिन्न वख्यान सुणे गुरु के वायक ।
खट काया प्रति पाल शील संयम सुख दायक ॥
कर मनसो यों सकल मिल मौढ कर जोडिया ।
सिद्धान्त जान जिन धर्म को शक्त पन्थ मुख मोडिया ॥
शील धर दृढ साच करे पौषाद पडीकरमा ।
सामायिक सम भाव समस्त पे दिन दिन दुणा ॥
हिंषा कहु नही लेस देश में आण फीराई ।
धर्म तण फल मिष्ट सबे सानक ओ नाई ॥
इह भांत जैन धर्म धारियो शक्त पंथ मुख मोडके
गुरु वचन शिरधरी नृप मान मोद कर जोडके
इए मिलियो मन मिल गयो, मिल मिल मिल्यो मेल
फूल वास एत दुध जिय, ज्यो, तिलपन माही तेल
सहस चौरासी एक काल घर गजता पुर माह
एकण थाल आरोगिया, मिल भाव [illegible] माह
मोटी जगह्या थापिया, गह गह धम उछाह ।

नोट —इसके आगे का कवित किसी सज्जन के पास होवे इसको प्रकाशित करावें या मेरे पास भेज देवें कि इस अपुरा कवित को पुरा कर दिया जाय ।

निर हिंसक निर कपट है, चलत जैन की राह ॥

पट्टावली आदि प्राचीन ग्रन्थो मे और उपरोक्त कविता मे क्या २ फरक है वो नीचे लिखा जाता है—

(१) राव उत्पलदेव पंमारवशी नहीं पर सूर्यवंशी था।

(२) सूरिजी के साथ ८४ नही पर ५०० साधु थे

(३) राजा के पुत्र नहीं होना और बाद में देवी ने पुत्र दिया सो बात नही है पर राजा के पाँच पुत्र थे।

(४) मुनि भिक्षा के लिये नगर में गये थे पर शुद्ध आहार न मिलने से ज्यों के त्यों लौट आये पर ब्राह्मण के घर की भिक्षा और उसको पाठ देना तथा परठा हुआ आहार सर्प बन जाना और राज पुत्र को काटना ये सब कल्पना मात्र है। सांपकाटा था मंत्री के पुत्र को जो राजा के जमाई

(५) नूतन श्रावकों की संख्या के विषय सबका मत एक नही है। कारण कोई सवालाख १२५००० कोई १८०००० तथा कोई १८४००० और कोई १८८००० भी लिखते हैं इसका मुख्य कारण ये है कि पहले पहल तो १२५००० सवालाख को ही जैन बनाये बाद सूरिजी वहाँ रह कर समय समय उपदेश देते गये और जैन बनाते गये इस प्रकार संख्या बढ़ती गई और [illegible] की संख्या [illegible] १८४००० घरों की बन गई हो तो ये [illegible] हो सकता है।

ओसवाल जाति का कवित

"श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर के [illegible] किये लेख संग्रहावली नामक पुस्तक [illegible] है जिसके अन्दर से यह उद्धृत किये—

दोहा।

श्री गुरुदत्ता [illegible] [illegible] ।
न लै सब [illegible] [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

छप्पय।

पुर सुन्दर [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।

अलका नगरी जिह रीत खरी, अठवीस बत्ताकरीसोभ धरी ।
तस नारी वसै बहु सुख करी दुःख जावै न.पासै सुदूर टरी ॥
त्रिम सुन्दर ओपम कूल कली, कनआ मयसुं उतरी बिजली ।
मुगतारवर जेम चलै, पधरं, बहुरूप मलो मनुकांम हरं ॥
सुर सुन्दर जेठ सहोदर छै, लघु ऊपल राव जोधार अछै ।
सुरसुन्दर लोक में भीम गया पधरा,
भीन्नमाल को राज बडो जुकरा ॥
पुन दोव सहोदर मित्र भला, सम रूप मयंक सुधार कला ।
नलराजमनमथ रूप जिसा, मह्यिरंग अथग्ग सोभाय इसा ॥
किरणाल तपै पुन भाग भलं, अरिदूर भजै इक आप चलं ।
नगराज उदार दीपंति खरा, किल छात पँवार मुगट धरा ॥

दोहा ।

द्रग मांहि मंत्री तणा बेटा दोय सरूप ।
वहो दुरग मांहि रहै रुपिया कोड अनूप ॥१॥
सहर मांहि छोटो वसै लाख घाट छै कोड ।
वडै भ्रात नै इम कहै करु कोडरी जोड ॥२॥
एक लाख देवे खरा दुरग वसूं हूं आय ।
बलती भोजाई कहै वचन सुनो चित लाय ॥३॥
देवरजी सुणज्यो तुम्हें किसो कोट छै सून ।
या बिण आयां ही मरे, रखो ये अत्र मून ॥४॥
बडऊ धरण बखाणिये छोटो ऊहड जांण ।
उठीयो बचन सुणी करी, लघु बंधव हरिरांण ॥५॥
कोप अंग तिण वेळ घण कह्यो वसाउं द्रंग ।
पुन कह्यो आयो सहर बहुळो पोरस अंग ॥
उपडने वासै जइ वदै पाछली बात ।
भोजाई मोसो दियो सुवाळो मुज तात ॥७॥

ओसवालों में दातार हुआ तिणारा नाम

१ जगडू सोलावत, पार राखा २ सारंग, वास सौरठ ३ करनचन्द मुहतो बछावत, छागेरो ४ भोनो का नडियो, वास [illegible] ५ [illegible] हडियो नग्नवत. वास आकोडे ६ जगडूळ- [illegible], [illegible] ७ [illegible] वाळे चौ, जोधपुर ८ डोडा [illegible] ९ [illegible], [illegible] गढ, (मेवाड़ में) इव आगरे, [illegible] १० [illegible] [illegible]चन्द ११ [illegible] हवो नेमुनराळ (?) [illegible] बादशाह [illegible] १२ [illegible] [illegible] १३ [illegible], [illegible] १४ भीनमाळ, [illegible] १५ [illegible],

वाहड़मेर १७ जेठू, दीपनगर १८ हरचन्द नाहटो, [illegible] १९ नरहर सिंघवी, नागोर २० डूंगरसी, मांडवनगर, [illegible] फोफलीया २१ डोसी सूजो पोरवाल, जावलवास २२ कोठारी रिणधीर, मेडते २३ राजसी लोढो मेडतै २४ अमेचो [illegible], मेडते २५ तेजपाल वस्तपाल, जात पोरवाल २६ बिमळशाह आबू ऊपर कमठांणा कराया २७ गाधइयो भैर [illegible] वास, पाटण २८ वधमान, वास नवै नगर २९ लालण, [illegible] ३० श्रीमाल आसकरण, नाथावत ३१ बांठियो तेजपाल, वास भुजनगर ३२ श्रीमाळ दिल्ली में ३३ शिरदारमल [illegible] नै रत्नौ ३४ भारमल, वास वैराट देश ३५ सांमीदास रेवंतजी रो, वास तिजारै ३६ अपो चोपड़ो, वास संत्रावै ३७ आस करण मेडतै ३८ होको धनावत, थाप वागरेचा ३९ [illegible] मौवास चौकड़ो, थांप पोहकरणो ४० आसकरन, नवैनगर ४१ नालसा, मेवाड़ ४२ करमो डोसी सात बीसी [illegible] सेत्रुन्जे चाढ़ी ४३ पासवीर नाहटो ४४ लोढ़ो गोसळ [illegible] डोवरे काल म अन्न दियौ ४५ टागौ रतनसो [illegible] डिगती प्रजा थांभी ४६ साडूगढ़, सांड कोडियो भौर [illegible] मुल्क में दीवी ४७ सोनी भीमवास, पाटण ४८ [illegible], भूमोसाह पौल पखाह म्हौर दीनी ४९ पावहो; [illegible] ५० मेडतै, मेघराज ५१ हेमराज, नागोर ५२ [illegible] अजमेर ५३ गोपचन्द, दिल्ली जे जियो छुडायो ५४ [illegible] तालो पीपाड़ ५५ हेमीलाखहारो, पीपाड़ ५६ सिरदारमल सुराणो. वास जयतारण ५७ केलराज चौहोत्तरे अन्न दे प्रजा थांभी ५८ बहुत्तर पाल. मेवात मे अन दियौ ५९ ठाकुरसी ६० भरंमळ वैराट हुवो घोड़ा दोयसौ इकीस दिया ६१ केसव धांधियो ६२ वसवपाल वास दादरी ६३ गंग[illegible] गेलडो, आगरे ६४ राममल हरपारो अकबर कने ६५ [illegible] अचळदास, वास अमरसा ६६ वीहरो बपती, देवारो ६७ वेवरो सोह माळ (श्रीमाळ) ? वांस चाटसू ६८ हीराचन्द साहरे, पातसाह जहाँगीर घरे आयो ६९ हुवा आगरे, [illegible] हुवा दूजंण चंदू नेमिदास नाण जी ७० राजसी, [illegible], सेत्रुजे [illegible] दियौ ७१ [illegible]आसकरन अमीपाळ, चोरड़ा ७२ पेतसी, ओजावत, [illegible] श्रीमाळ ७३ साह हरषी [illegible] ७४ नागजी पूरत में हुवो हाथी दान दिया ७५ [illegible] चापसीदास, वास पट्टणे ७६ श्रीमाळ [illegible] ७७ [illegible] [illegible], वास [illegible] ।

चांदी उस काल के व्यापारियों की मुख्य वस्तुएं थी। यह व्यापार पूरेजोश मे होने के साथ ही साथ व्यवस्थित रूपेण चलता था। उपर्युक्त यादी की पीतल, सीसा, कलाई, सोना, चाँदी आदि खनिज वस्तुएं दाखादि, लीला मेवा, सूखामेवा आदि खेती से पैदा हुए पदार्थ, धातु के खिलौने, वर्तन, रेशम, कीमती पत्थर, मोती, कांच, और चीनी मिट्टी के वर्तन आदि मोज शोख की वस्तुएं, जानवरो मे घोड़े आदि हिन्द की आयात वस्तुएं थी। इसके विपरीत जानवरों में बन्दर, मयूर, कुत्ता, हाथी आदि, कीमती पत्थर, सोना और धातु के बर्तन और उसी प्रकार सामान आदि खनिज वस्तुएं, पोलाद, लोखंड, कटलरी, वख्तर, हथियार, सूती कपड़े, मलमल, रेशम, रेशमी कपड़े, वाहन, मिट्टी और पॉलिस के वर्तन, आदि तैयार माल, रुई, सुखड, साग आदि खेती के पदार्थ, हाथीदांत, रंग, गली, तेल, अत्तर आदि मोज शोख की वस्तुएं, मरी, सूंठ सौपारी, लविंग, तज ऐलची आदि, तेजाना चोखा वगैरह अनाज और कपूर आदि वस्तुओं का निकास था।

पहिले के जमाने मे हिन्द के कच्चे माल को तैय्यार करके पर-देश भेजते थे। जिसमें सूती कपड़ा तो चीन से लगाकर कॅप ऑफ गुड हूपो पर्यन्त हमारे देश का ही काम मे लेते थे। रंग गुली वगैरह का तो कंट्राक्ट (इजारा) ही था। इनके सिवाय रंग बेरंगी छींटें और सोने, रूपों की छापो का वस्त्र भी काफी तादाद में विदेशों मे जाता था। इसकी विशेषोत्पत्ति शौर्य्यपुर आदि नगरो मे थी। लोहे का शुद्ध पोलाद बना कर भाति २ के पदार्थों के रूप में परदेश खाते भेजा जाता था। कई विदेशी व्यापारी लोग भारत मे आकर भारतीय व्यापारिक केन्द्रों का निरीक्षण कर आश्चर्यान्वित हो जाते थे और भारतीय कलाकौशल एवं हुन्नर उद्योग की शिक्षा पाकर अपने देश में उसका विस्तृत प्रचार करते थे।

उपरोक्त व्यापार के सिवाय भारतीय व्यापारीवर्ग अपनी करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति लगाकर आड़त का व्यापार भी किया करते थे। वे पूर्व के देशों का माल खरीद कर पश्चिमीय देशों मे वेचते। भारतीय साहसी व्यापारी जापान, लङ्का, चीन, मलाया, आदि देशों का माल खरीद कर अरबस्थान, इरान, इजिप्ट, ग्रीस, इटली आदि देशो में विक्रयार्थ भेजते थे। इस विषय का विस्तृत वर्णन व्यापारिक प्रकरण मे कर आये हैं अतः यहां ज्यादा नहीं लिखा जा रहा है।

तदनुसार शाह राणा का व्यापारिक क्षेत्र भी बहुत विस्तृत था। शुभ कर्मों के उदय से आपने व्यापार मे पुष्कल द्रव्योपार्जन किया था। आपका अधिक लक्ष्य स्वधर्मीभाइयों की सेवा की ओर रहता था। हर एक प्रकार से स्वधर्मी भाई को सहयोग देकर उसको उन्नत अवस्था मे लाने के लिये आप तन, मन एवं धन से प्रयत्नशील रहते थे। तात्पर्य यह कि परोपकार को अपने जीवन कर्तव्य का एक अङ्ग ही बना लिया था। शाह राणा जैसे द्रव्योपार्जन करने में कुशल थे वैसे उस न्यायोपार्जित द्रव्य का व्यय करने में भी कुशल थे। तीर्थ यात्रा जन्य अतुल पुण्य राशि को सम्पादन करने के लिये आपने तीन बार तीर्थयात्रार्थ संघ निकाले। स्वधर्मी भाईयो को स्वर्णमुद्रिकाओं की पहिरावणी देकर अपने आप को कृतार्थ किया। पट्टावली कर्ताओं ने लिखा है कि—इस शुभ कार्य में, शाह राणा ने पांच करोड़ रुपयों का द्रव्य व्यय किया था। पाल्हिकादि कई स्थानों मे सात मन्दिर बनवाकर दर्शनपद की आराधना की। एक दुष्काल में लाखों करोड़ों रुपयों का अन्न, घास देकर देशवासी भाइयों एवं पशुओं के प्राण बचाये। शाह राणा इतना उदार वृत्तिवाला व्यक्ति था कि— इसके घर पर या घर के पास से यदि कोई याचक निकल जाता तो उसकी आशा को बिना किसी भेद भाव के पूर्ण की जाती थी। इसी औदार्य एवं गाम्भीर्य गुण से राणा की शुभ्रकीर्ति चतुर्दिक मे विस्तृत थी।

शाह राणा के ११ पुत्र ७ पुत्रियां और अन्य बहुत विशाल परिवार था परन्तु इतना बड़ा व्यापारी एवं विशाल कुटुम्ब का स्वामी होने पर भी शाह राणा की यह विशिष्ट विशेषता थी कि वह अपने षट्कर्म— प्रभुपूजा, सामायिकक्रिया, व्याख्यानश्रवण, पर्वादितिथि मे पौषधव्रत, प्रतिक्रमण चतुर्दशी के व्रत वगैरह नित्य नियम में कभी त्रुटि नहीं आने देता था। देव गुरु धर्म पर अटूट श्रद्धा सम्पन्न, श्रावक गुणव्रत, नियम नित्य

परमधार्मिक श्रावक था। नित्य नियम तथा पवित्र श्रद्धा से शाह राणा को देव दानव आदि कोई भी स्खलित करने मे समर्थ नहीं था। 'यतोधर्मस्ततोजयः' इस अटल सिद्धान्त पर पूर्वकालीन जन समुदाय का गहरा विश्वास था। इसी कारण से उस समय के लोग धन, जन, कुटुम्ब परिवार आदि सम्पूर्ण सुखो से सम्पन्न थे। शाह राणा जैसे धर्मज्ञ एव कर्मठ था वैसे ही उनकी धर्मपत्नी एव पुत्रादि कुटुम्ब परिवार भी धर्म कार्य मे तत्पर थे।

एक समय पुण्यानुयोग से जगविश्रुत, शान्तिनिकेतन, परम व्याख्याता आचार्य श्री कक्कसूरिजी म० पाल्हिका नगरी को पधारे। श्रीसंघ ने सूरिजी का बडा ही शानदार महोत्सव किया। श्रेष्ठिगौत्रीय शाह दयाल ने तीन लक्ष द्रव्य शुभक्षेत्रों में व्यय किया। आचार्यश्री ने भी स्थानीय मन्दिरो के दर्शन कर आगतजन मण्डलीको संक्षिप्त किन्तु हृदयग्राहिणी देशना दी। इस प्रकार के अपूर्वोपदेश को श्रवण कर जनता भी मन्त्र मुग्ध बन गई। आचार्यश्री ने भी अपना व्याख्यानक्रम नित्यनियम की भांति प्रारम्भ ही रक्खा।

सूरिजी पट् दर्शन के परमज्ञाता थे अत जिस समय तुलनात्मक दृष्टि से एक २ दर्शन का [illegible] करते थे—तब जनता सुनकर दांतो तले अगुली लगाने लगती। पक्षपात की ज्वाजल्यमान अग्नि में प्रज्वलित [illegible] भी आचार्यश्री के व्याख्यान से प्रभावित हो नत मस्तक हो जाता। उनके [illegible] मे भी सूरीश्वरजी के समागम से जैन धर्म रूप श्रद्धा के अकुर अंकुरित होने लगते। जिस समय सूरिजी संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कौटम्बिक व्यक्तियों का स्वार्थजन्य प्रेम शरीर की क्षणभंगुरता, आयुष्य की अस्थिरता के विषयों का वर्णन करते—जनता योगियो की भांति संसार से विरक्त हो जाती।

शाह राणा और आपका सब कुटुम्ब भी सूरिजी का व्याख्यान हमेशा सुनते थे। सूरीश्वरजी के व्याख्यान से ससारोद्विग्न हो शाह राणा का एक पुत्र मल्ल, सांसारिक मोह पाश से विमुक्त होने के लिए, आचार्यश्री की सेवा मे दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गया। उसने [illegible] माता पिता ओ से एतद्विषयक निवृत्यर्थ आज्ञा मागी किन्तु माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्ब [illegible] सम्पूर्ण भार को वहन करने वाला प्राणप्रिय मल्ल इसको घरो हो वालो ने [illegible] प्रलोभनादि अनुकूल उपसर्गों एव परिषहादि प्रतिकूल भय [illegible] किन्तु उक्त सर्व प्रयत्न पानी मे लकीर खींचने के समान निष्फल ही सिद्ध हुए। [illegible] रग लग गया है, जिसने ससार को कारागृह समझ लिया है वह [illegible] मे नहीं रह सकता है। विवश हो परिवार वालो को आज्ञा देना [illegible] कर मल्ल का दीक्षा महोत्सव किया। मल्ल ने भी साथ पुरुष [illegible] फाल्गुन शुक्ला तृतीया के शुभ दिन सूरीश्वरजी के कर कमलो से [illegible] मल्ल का नाम श्री ध्यानसुन्दर मुनि रख दिया गया। मुनि ध्यानसुन्दरजी ने [illegible] शास्त्रों मे असाधारण पाण्डित्य एव सूरिपदयोग्य सम्पूर्ण गुण [illegible] सूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था मे उपकेशपुर के [illegible] मन्दिर मे [illegible] उ० ध्यानसुन्दर को सूरिपद प्रदान कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया

आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी महान प्रतिभाशाली आचार्य [illegible] श्री कक्कसूरिजी की सेवा मे रहे। [illegible] किया। आचार्यश्री कक्कसूरि के समय मे ही [illegible] शिथिलता का और दूसरा वादियों के [illegible] सुन्दरजी का [illegible] प्रश्न [illegible]

दोनों की प्रबलता को निर्बल बना दिया था तथापि इनका समूल नाश नहीं हुआ था। जैसे ग्यारहवे गुण स्थान में मोह उपशान्त हो जाता है पर उसकी सत्ता नष्ट न होने से नीचे गिरने पर वह पुनः बलवान बन जाता है यही हाल हमारे सूरिजी के सामने पूर्वोक्त दोनों प्रश्नों का था। यद्यपि वादियों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी अतः उनका सामना करना साधारण बात थी किन्तु घर की बिगड़ी हुई हालत को सुधारना टेढ़ी खीर थी। आचार्यश्री के सहवास से देवगुप्तसूरिजी ने यह अनुभव कर लिया था कि-दूषित पक्ष की निंदा करना, उनको हलका बताना या अपने आप उनसे पृथक होकर अपनी उच्चता की डींग हांकना-समाज में सुधार करने की अपेक्षा बिगाड़ ही करता है। अपने से विलग हुए भाइयो को शान्ति, प्रेम और एकता से अपनी ओर जितना प्रभावित कर सकते हैं उतना उनको ठुकरा करके या अवहेलना करने से नहीं। प्रेम पूर्वक उपालम्भ देकर उनमें आई हुई शिथिलता को दूर करने से उन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। शर्म व संकोचवश वे अपने दूषणों को त्यागने का प्रयत्न करते हैं किन्तु इसके विपरीत जब दूषित पक्ष की निःशंकतया निन्दा की जाती है तब सम्मुख पक्षीय व्यक्ति भी बेधड़क निर्भय हो जाता है। फिर क्रमशः कुछ मनुष्य उनको भी सहायता देने वाले मिल जाते हैं और इस तरह दो पार्टियां हो समाज की केन्द्रित-संगठित शक्ति नष्ट हो जाती है। परिणाम स्वरूप उन्नति कोसों दूर भाग जाती है और अवनति का भीषण ताण्डव नृत्य नयनों के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने लगता है। कालान्तर में उन्नति का, उत्कृष्ट आचार का दम भरने वाली श्रमण मण्डली भी शिथिल हो पूर्व दूषित पक्ष से भी जघन्य श्रेणी की हो जाती है और इस तरह क्रियोद्धारकों के रूप में नवीनतर शाखा प्रशाखाओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। क्रमशः संघ मे कलह, फूट, ईर्ष्या द्वेष का ही नवीन रूप देखने को मिलता है; प्रेम और सद् भावना तो डरके मारे भग ही जाती है। सूरिजी इस बात के पक्के अनुभवी थे अतः आपने भी आचार्य श्री कक्कसूरिजी म० के मार्ग का अनुकरण करना ही शिथिलाचार निवारण के लिये श्रेयस्कर समझा। शान्ति एवं प्रेम को अपनाकर पूर्वाचार्यों के आदर्श-आदर्श का अनुसरण करने से शिथिलाचारियों के बजाय सुविहितों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़नी ही गई।

एक समय आचार्यश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ सिन्ध धरा में परिभ्रमण कर रहे थे। आप श्री के विहार की यह पद्धति थी कि मार्ग के छोटे २ ग्रामों मे सर्व साधुओं का यथोचित निर्वाह न होने के कारण थोड़े २ मुनियों को इधर उधर आस पास के क्षेत्रों में प्रचारार्थ भेज देते और बड़े शहर में पुनः सकल शिष्य समुदाय के साथ एकत्रित हो जाते। उक्त पद्धत्यनुसार एक समय ऐसा मौका आया कि आप सौ साधुओं के साथ विहार कर रहे थे और शेष साधुओं को आपने ग्राम की लघुता के कारण इतर क्षेत्र में भेज दिये थे। मार्ग में सूर्यास्त हो जाने के कारण आचार्यश्री अवशिष्ट शिष्य वर्ग के साथ एक दीर्घकाय वटवृक्ष के नीचे शास्त्रीय नियमानुसार ठहर गये। मार्ग जन्य श्रम से श्रमित मुनि समुदाय संथारा पौरसी कर सोगये। कुछ ही क्षणों के पश्चात् थकावट की अधिकता के कारण उन्हें निद्रा आ गई पर आचार्यश्री तो अभी तक भी बैठे ही थे। यहाँ पर गच्छ मुनि वर्ग का सकल उत्तरदायित्व रहता है अतः आचार्यश्री भी अपने कर्तव्यानुसार बैठे २ संग्रहणी शास्त्र का स्वाध्याय करने लगे। थोड़े ही समय के पश्चात वट वृक्षाधिष्ठायक देवता वहाँ आया तो वृक्ष के पृष्ठ भाग पर मुनि समुदाय को निद्रित अवस्था मे सोता हुआ देखकर क्रोध से लाल पीला हो गया। क्रोध के क्रूर आवेग में अपने कर्तव्याकर्तव्य का भान भूल कर सोते हुए साधुओं को दण्ड देने के लिए उद्यत हुआ वह नीचे की ओर आया और तत्काल उसके कानों में सूरिजी की स्वाध्याय के कर्णप्रिय शब्द पड़े। वे शब्द यक्ष को इतने रुचिकर प्रतीत हुए कि वह अपने क्रोध को भूलकर उन्हीं शब्दों को सुनने में तन्मय हो गया। क्रमशः एकाग्रचित्त से जब सुना तब तो यक्ष के आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह सोचने लगा कि— यह मुनि हमारे देव भवन की ही संख्या, लम्बाई, चौड़ाई, हमारे सामानिक देवों की परिषदा का वर्णन करके ही गिनते हैं। क्या ये मुनि हमारे देव भवन को देख के आये हैं ? यदि ऐसा न हो तो इनको ठीक २

इस विषय की माहिती कैसे है ? इत्यादि शंकाओं के उलझनपाश में वह उलझ गया।

अब तो देव से रहा नहीं गया। उसने पूछा—आप कौन हैं ? आप जो हमारे देव भवन का वर्णन कर रहे हैं वह आप कैसे जान सके हैं ?

सूरिजी ने कहा—हम जैन श्रमण हैं। हमारे तीर्थङ्कर देव सर्वज्ञ थे। उन्होंने केवल एक आपके ही नहीं पर तीनों लोक के चराचर प्राणियों के भावों का वर्णन किया है। उसी सर्वज्ञ प्रणीत ग्रन्थ का ही मैं स्वाध्याय कर रहा हूँ। यह सुनकर यक्ष बड़ा ही प्रसन्न हुआ और अपने किये हुए कुभावों का पश्चाताप कर कहने लगा—भगवन्! मैंने तो अज्ञानता से सबको मार डालने का विचार किया था। अहो! मैं कितना पापी एवं जघन्य जीव हूँ। प्रभो! क्या मैं इस संकल्प जन्य पाप से बच सकता हूँ ?

सूरिजी ने कहा—महानुभावो! आपको जो देवयोनि मिली है वह पूर्व जन्म की सुकृत राशि का ही फल है। इस देव जैसी उत्कृष्ट योनि में ऐसे दुष्ट संकल्पों से निकाचित कर्मों का बन्धन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। ये तो साधु हैं; इनकी हत्या का विचार करना तो उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पाप का फल नरकादि दुर्गति रूप ही है। अतः पाप से सर्वथा बच कर ही रहना चाहिये। भव भवान्तर में भी कृतकर्मों का शुभाशुभ फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है। अभी तो पूर्वोपार्जित पुण्य राशी की अधिकता के कारण इसकी कटुता का अनुभव नहीं होने पाता है किन्तु पापोदय के समय ऐसी दारुण यातना का उपभोग करना पड़ता है कि—जिसका वर्णन शब्दों से सर्वथा अगम्य ही है।

सूरिजी के उक्त उपदेश का यक्ष पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह तत्काल सूरीश्वरजी के चरण कमलों पर गिर पड़ा। अत्यन्त कृतज्ञता सूचक शब्दों में निवेदन करने लगा—गुरुवर! आपश्री ने मुझ पामर प्राणी पर महान् उपकार किया है। यदि आपश्री के शब्द मेरे कानों में न पड़े होते तो न [illegible] पाप से अवश्य ही नरक का पात्र बनता किन्तु आपश्री ने जो मेरे पर [illegible] आपका जन्म भर आभारी रहूँगा। प्रभो! आपके इस उपकार ऋण से [illegible] हो सकूँगा ?

सूरिजी—महानुभाव! अज्ञानता के वशीभूत जीव किन [illegible] धन्यवाद ही देता हूँ कि आप अपने किये हुए संकल्प जन्य [illegible] उपकार के लिये आपको इतना विचार करने की आवश्यकता नहीं [illegible] अज्ञानता जो मार्ग से स्खलित हुए व्यक्ति को पुनः [illegible] धर्म का ही पालन किया है फिर भी यदि आपको परमात्मा का [illegible] आप अपनी इस दिव्य देव ऋद्धि का सदुपयोग जिन शासन [illegible] करने में भाग्यशाली बनें।

यक्ष—पूज्य गुरुदेव! हम पामर, अधम, जघन्य प्राणी [illegible] जीवन तो नाटक, तमाशा, खेल, कौतूहल, दूसरों को कष्ट पहुँचाकर [illegible] व्यतीत होता है। प्रभो! [illegible] में रहने का परम सौभाग्य प्रदान करने की कृपा करें [illegible] जा सकता है।

सूरिजी—[illegible] की सेवा में [illegible] जिनन की सेवा में [illegible]

यक्ष—पूज्य गुरुदेव! [illegible]

सूरिजी—[illegible] सदुपयोग प्रदान [illegible]

यक्ष—ठीक है पूज्यवर ! आपको मैं वचन देता हूँ कि आप जब मुझे याद करेंगे आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा।

इस प्रकार वचन देकर देव तो अदृश्य होगया। इधर प्रतिक्रमण का समय होने से सकल साधु समुदाय भी निद्रा से निवृत्त हो क्रमशः प्रतिक्रमण प्रतिलेखनादि क्रियाओं को कर प्रातःकाल सूरीश्वरजी के साथ ही रवाना हो गये। मार्ग से कुछ ही दूर वीरपुर नामक नगर था अतः आचार्यश्री को भी वहीं पर पदार्पण करना था। आचार्यश्री मार्ग को अतिक्रमण कर चल रहे थे कि मार्ग के एक मठाधीश सन्यासी ने अपनी मन्त्र शक्ति के जरिये मार्ग में सर्प ही सर्प कर डाले। चारों तरफ सर्प ही सर्प दीखने लगे। एक पैर रखने जितना स्थान भी साधुओं को दृष्टिगोचर नहीं होने लगा। इधर आचार्यश्री का आगमन सुनकर जो भक्त लोग सामने आये थे वे भी सर्पों की भयङ्करता के कारण वहीं पर रुक गये। इससे आचार्यश्री ने जान लिया कि निश्चित ही यह सन्यासी के मन्त्र की ही करतूत है अतः सूरिजी ने भी स्वाधीष्ठित यक्ष का स्मरण किया। स्मरण करते के साथ ही यक्ष तत्काल अपने वचनानुसार सूरिजी की सेवा मे उपस्थित होगया और सर्पों के जितने ही मयूर के रूप बनाकर सर्पों को लेकर आकाश में उड़ गये। इससे सन्यासी को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह आचार्यश्री के पैरों में नत मस्तक हो कहने लगा—भगवन् ! मैं भी आपका शिष्य हूँ। प्रभो ! मुझे यह विश्वास नहीं था कि जैन श्रमण इतने करामाती होंगे अतः आप जैसों के सामने मैंने मेरी अज्ञानता का परिचय दिया। क्षमा कीजिये दयानिधान ! आपको मुझ पापी के द्वारा बहुत ही कष्ट पहुँचा है। कृपा कर आज का दिन तो आश्रम मे ही विराजें जिससे मैं अपने पाप का कुछ प्रक्षालन कर सकूं। आपकी थोड़ी बहुत सेवा का लाभ लेकर कृतार्थ हो सकूं।

सूरिजी भी सन्यासी के आग्रह से वहीं पर ठहर गये। नागरिक लोग आचार्यश्री का प्रभाव देख मन्त्र मुग्ध बन गये। सब लोग एक स्वर से सूरीश्वरजी की प्रशंसा करने लगे कि सूरीश्वरजी बड़े ही चमत्कारी एवं प्रभावक पुरुष हैं।

दिन भर दर्शनार्थियों के आवागमन की अधिकता के कारण सन्यासी सूरीश्वरजी के सत्सङ्ग का लाभ नहीं उठा सका पर रात्रि में जब एकान्त स्थल में सूरिजी के साथ आत्म कल्याण विषयक जिज्ञासा दृष्टि से सन्यासी ने प्रश्न किया तब सूरिजी ने स्पष्ट समझाया—सन्यासी जी ! आत्म कल्याण न तो यन्त्रों में मन्त्रों मे है और न चमत्कार दिखाने मे ही हैं। ये तो सब बाह्य क्रियाएं है जो समय २ पर अहमत्व को बढ़ाने वाली व आत्मा के उत्कृष्ट ध्येय से आत्मा को पतित करने वाली होती है। आत्म कल्याण तो आत्माराम में परम निवृत्ति पूर्वक विचरण करने से ही होता है। सन्यासी जी ! हमारे साधु सन्यासी हैं और आप भी सन्यासी हो किन्तु आपके और इनके त्याग मे कितना अन्तर है ! आप जल, अग्नि, कन्द, मूल, फल, वनस्पति आदि सब का उपभोग करते हैं और आरम्भ समारम्भ भी करते हैं पर हमारे श्रमणों के इन सब बातों का तात्जीवन त्याग होता है। यदि आपकी भी आन्तरिक अभिलाषा त्याग वृत्ति स्वीकार करने की है तो आप भी ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करें।

सूरिजी का कहना सन्यासी को बड़ा ही रुचिकर ज्ञात हुआ। उसने कहा पूज्य गुरुदेव ! आपका कहना सत्य है पर हम लोग अभी तक सभी तरह से आजाद रहे हुए हैं अतः इतने कठिन नियम हमारे से पाले जाने जरा दुष्कर हैं। दूसरा हमने इतने वर्षों तक इसी वेष मे पूजा, प्रतिष्ठा पाई है अतः अब इसका एकदम त्याग करना जरा अशक्य है। इस पर सूरिजी ने कहा—सन्यासीजी ! मैंने तो आपको सलाह के तौर पर कहा है। चारित्र वृत्ति लेना न लेना तो आपकी इच्छा पर निर्भर है पर पूर्व काल में भी अम्बड परिव्राजक वगैरह ने इसी वेश में रह कर परम पवित्र जैनधर्म की आराधना की है। जैनधर्म के प्रताप से वे बारहवें देवलोक की दिव्य ऋद्धि के स्वामी हुए और एक भव करके मोक्ष के आराधक भी हो जावेंगे।

सन्यासी—मैं आपके इन वचनो को स्वीकार करता हूँ और मेरे हृदय की एक शका को भी आपकी सेवा मे अर्ज कर देता हूँ। मेरी शंका यह है कि—जैसे वैदान्तिक, बौद्ध, चार्वाकादि नाम है वैसे जैन भी एक नाम है अतः यह तो दुनियाँ मे अपने २ नाम की बाड़ाबन्दी ही है। मेरा वेश परिवर्तन करना भी इस वाड़े से छूट कर दूसरे वाड़े मे जाने रूप ही है। अतः एतद् विषयक वाड़ाबन्दी से क्या लाभ है।

सूरिजी—धर्म की पहिचान के लिये व एक नाम से दूसरे मे भिन्नत्व का ज्ञात कराने के लिए ही वस्तु स्वरूप को नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब दूसरे धर्म वालो ने अपने २ धर्म के नाम रखे तो इस धर्म की पहिचान के लिये भी किसी न किसी नाम करण की आवश्यकता थी ही अत. जैन धर्म यह विशिष्ट अर्थ का बोधक है। उदाहरणार्थ—दस पाच वस्तुओ का एक स्थान पर एकीकरण होने के पश्चात् यदि उनके नामो मे पारस्परिक भिन्नत्व न होगा तो वे वस्तुए कैसे पहिचानी जा सकेगी ? दूसरा एक दुर्गन्धयुक्त स्वास्थ्यगुण नाशक मकान को छोड़कर यदि स्वास्थ्यप्रद रमणीय, मनमोहक प्रसाद का आश्रय ले तो उसमे हानि नही पर लाभ ही है। इसी प्रकार सारम्भी, सपरिग्रही धर्म को छोड़कर त्याग, वैराग्य और आत्म शान्ति रूप परम धर्म की आराधना करना कौन सी वाड़ाबन्दी है ?

सूरीश्वरजी के उक्त स्पष्टीकरण से सन्यासीजी को जैन धर्म की विशेषता का ज्ञान हो गया। उन्होंने तत्काल मिथ्यात्व का वमनकर सम्यक्त्व के साथ श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये। इधर वीरपुर नगर में सर्वत्र सूरिजी और सन्यासी जी के चमत्कार की बातें होने लगी। जैनियों के हर्ष का पार नहीं रहा। आचार्यश्री के इस अपूर्व प्रभाव ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। वे लोग बड़े ही समारोह के साथ स्वागत की तैयारियां करने लगे। इधर वीरपुर नरेश सोनग को आचार्यश्री के चमत्कार का मालूम हुआ तो वह भी आचार्यश्री के दर्शन एवं स्वागत के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गया। [illegible] सम्मुख जाने के लिये अपनी चतुरङ्गिनी सेना को खूब सजधज कर तैय्यार करवाई। नगर में [illegible] यथा समय निर्दिष्ट स्थान पर उपस्थित रहने लिये घोषणा करवादी। बस, फिर तो था ही क्या ! [illegible] सहस्रकिरणों से उदयाचल पर उदय होते ही नर नारियों एक झुण्डझुण्ड [illegible] की ओर [illegible] प्रोत्साहित होगया। राव सोनग भी अपने राव उमरावों के साथ सूरिजी की सेवा में [illegible] हुआ। सूरीश्वरजी ने भी अपनी शिष्य मण्डली एवं सन्यासी के साथ नगर में प्रवेश किया। [illegible] सभा में, सारगर्भित धर्मोपदेश दिया जनता पर आचार्यश्री के उपदेश का [illegible] प्रभाव पड़ा। राव सोनग के पूर्वजों ने जैनाचार्यों के पास दीक्षा ली थी अतः उनका घराना कई [illegible] जैनधर्मोपासक था। जैनाचार्य भी समय २ वीरपुर पधार कर राजा प्रजा को उपदेश दिया करते थे [illegible] पर जैनधर्म के स्थायी संस्कार जमे हुए थे।

दार व्यक्तियों को चाहिये कि धर्म की करनी केवल मोक्ष प्राप्ति की आशा से ही करें। सांसारिक तुच्छ पौद्गलिक आशाओं में करणी के अमूल्य-मूल्य को हार जाना अदूरदर्शिता है। यह याद रखने की बात है कि—धर्माराधन के लिये शुद्धोपयोग और शुद्ध योग्य की आवश्यकता है। शुद्ध उपयोग को निवृत्ति और शुभयोग को प्रवृत्ति कहते हैं। निवृत्ति से कर्म निर्जरा होती है और प्रवृत्ति से शुभ पुन्य संचय होता है। आपको भी मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्माराधन मे दत्त चित्त रहना चाहिये। अपने पुण्यों पर सन्तोष करके परम निवृत्ति पूर्वक धर्म ध्यान करना चाहिये।

सूरिजी के उपदेश से राजा की आत्मा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उनकी पुत्राभावरूप मानसिक चिन्ता भी सर्वदा के लिये विलीन हो गई। वे बिना किसी पौद्गलिक सांसारिक आशा के धर्म ध्यान में संलग्न हो गये। इस प्रकार सूरिजी के व्याख्यान ने कई लोगों पर कई तरह का प्रभाव डाला। चातुर्मास का समय नजदीक आने से व श्रीसंघ तथा राजा सोनग के अत्याग्रह से आचार्य श्री ने वह चातुर्मास भी वीरपुर में ही कर दिया।

आचार्य श्री के चातुर्मास से वीरपुर की जनता को बड़ा ही हर्ष हुआ। सब लोग अपनी २ रुचि के अनुकूल कल्याण मार्ग की आराधना करने में संलग्न हो गये। इस चातुर्मास के विशेषानन्द का अनुभव तो सन्यासी एवं राव सोनग को हुआ। वे आचार्यश्री के प्रदत्त चातुर्मास के अपूर्व लाभ से अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे। राव सोनग ने तो आचार्यश्री के उपदेश से शासनाधीश भगवान् महावीर का नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा भक्ति कर ज्ञान ध्यान पढ़ने सुनने में सलग्न हो गये। जैन शास्त्रों का अभ्यास चिन्तवन एव मनन करने के पश्चात् उनके हृदय में एक बात खटकने लग गई। वे सोचने लगे—मैंने साधु होकर के गृहस्थ के व्रत लिये अतः मेरा दर्जा हल्का हो गया है। मुझे गृहस्थों की श्रेणी में बैठना पड़ता है। मैं जैन साधुओं के आचार विचार से अवगत हो चुका हूं अतः मुझे भी साधुत्व वृत्ति स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है। उक्त संकल्प को सुदृढ़ बना सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा में आये और अपने मनः संकल्प को शब्दों के रूप में प्रगट करने लगे। सूरिजी ने भी 'जहा सुहं' शब्द से उन्हें सन्तोष दिया।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे अतः दूसरे ही दिन आपश्री ने अपने व्याख्यान में प्रसङ्गोपात साधु के आचार के विषय में स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया कि—जैन श्रमण दो प्रकार के होते हैं— १—जिनकल्पी २—स्थविर कल्पी। इनमें जिनकल्पी साधु तो पाणि पात्र अर्थात् कुछ भी उपाधि नहीं रखते हैं। क्षुधादि परिषहों से सन्तापित होने पर गृहस्थो के यहाँ भिक्षार्थ जाकर जो कुछ समय पर मिलता है; हाथ में लेकर भिक्षा कर लेते हैं। कई २ जिनकल्पी कुछ उपकरण विशेष भी रखते हैं। वे कम से कम रजोहरण और मुख वस्त्रिका और अधिक से अधिक बारह उपकरण रख सकते हैं—तथाहि

> पत्तं[१] पत्ताबंधो[२] पायट्ठवणं[३] च पायकेसरिया[४] ।
> पडलाइं[५] रयत्ताणं[६] गुच्छओ पायनिज्जोगो ॥
> तिन्नेव य पच्छागा[१०] रयहरणं[११] चेव होइ मुहपत्ति ।
> एसो दुवालस विहो उवहि जिणकप्पियाणं तुः ॥

उक्त बारह और दो के बीच की संख्या में उपकरण रखना जिनकल्पी के मध्यम उपकरण कहे जाते हैं।

> एतोचेव दुवालस्स मत्तग[१] अइरेग चोलपट्टो य ।
> एसो चउदस विहो उवहि पुण थेरकप्पंमि ॥

उक्त बारह उपकरण तथा मात्रक (घड़ा या तृपणी विशेष) और चोलपट्टा ये चौदह उपकरण स्थविर कल्पी साधु रख सकते हैं। साध्वी इनकी अपेक्षा कुछ अधिक उपकरण रख सकती है। कारण स्त्री-पर्याय होने से उन्हे ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये अधिक भण्डोपकरण रखना अनिवार्य हो जाता है। उक्त १४ स्थविर कल्पियो के उपकरणो के सिवाय साध्वी ११ उपकरण और रख सकती है तथाहि

उग्गहणतग[१५] पट्टो[१६] उड्ढोरु[१७] चलणिया[१८] य बोद्धव्वा।
आब्भितर[१९] बाहरि[२०] नियसणीय[२१] तह कंचुएचेव[२२]॥
उगच्छिय[२३] वेगच्छिय[२४] संघाडी[२५] चेव खंधकरणीय।
ओहोवहिम्मि एए अज्जाणं पन्नवीसं तुं॥

ऊपर बतलाये हुए उपकरणो का परिमाण एव प्रयोजन निम्न प्रकारेण है—

(१) पात्र—भिक्षा ग्रहण करने के लिये—इसका परिमाण—

"तिन्नी विहत्थी चउरंगुल च भाणस्स मज्झिमप्पमाणं। इत्तो हीण जहन्न अइरेगयर तु उक्कोस॥

अर्थात्—चालीस अंगुल प्रमाण परधीवाला पात्र मध्यम श्रेणी का गिना जाता है। इससे कम [illegible] और अधिक उत्कृष्ट पात्र समझा जाता है। पात्र रखने का प्रयोजन—

छकाय रक्खणट्ठा पायग्गहण जिणेहिं पन्नत्त। जे य गुणा संभोए हवंति ते पायगहणे॥
अतरंत बालवुड्ढासेहाएसा गुरु असहुवग्गे। साहारणुग्गहा अद्धिकारणा पायगहण तु॥

अर्थात्—छकाय जीवों की रक्षा के लिये और बाल वृद्ध [illegible] के [illegible] पात्र ग्रहण एव धारण करना फरमाया है।

(२) पात्रबधन (झोली)—जिसके अन्दर पात्र रख कर [illegible] इसका परिमाण—

पयाबन्धप्पमाण भाणप्पमाणेण होइ नायव्वं। जह गंठिमि कयंमि [illegible] चउरंगुला हुंति॥

अर्थात्—पात्रो को बांध देने के पश्चात् किनारा चार अंगुल [illegible] होना चाहिये।

दार व्यक्तियों को चाहिये कि धर्म की करनी केवल मोक्ष प्राप्ति की आशा से ही करें। सांसारिक तुच्छ पौद्गलिक आशाओं में करणी के अमूल्य-मूल्य को हार जाना अदूरदर्शिता है। यह याद रखने की बात है कि—धर्माराधन के लिये शुद्धोपयोग और शुद्ध योग्य की आवश्यकता है। शुद्ध उपयोग को निवृत्ति और शुभयोग को प्रवृति कहते हैं। निवृत्ति से कर्म निर्जरा होती है और प्रवृत्ति से शुभ पुन्य संचय होता है। आपको भी मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्माराधन मे दत्त चित्त रहना चाहिये। अपने पुण्यों पर सन्तोष करके परम निवृत्ति पूर्वक धर्म ध्यान करना चाहिये।

सूरिजी के उपदेश से राजा की आत्मा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उनकी पुत्राभावरूप मानसिक चिन्ता भी सर्वदा के लिये विलीन हो गई। वे बिना किसी पौद्गलिक सांसारिक आशा के धर्म ध्यान में संलग्न हो गये। इस प्रकार सूरिजी के व्याख्यान ने कई लोगों पर कई तरह का प्रभाव डाला। चातुर्मास का समय नजदीक आने से व श्रीसंघ तथा राजा सोनग के अत्याग्रह से आचार्य श्री ने वह चातुर्मास भी वीरपुर में ही कर दिया।

आचार्य श्री के चातुर्मास से वीरपुर की जनता को बड़ा ही हर्ष हुआ। सब लोग अपनी २ रुचि के अनुकूल कल्याण मार्ग की आराधना करने में संलग्न हो गये। इस चातुर्मास के विशेषानन्द का अनुभव तो सन्यासी एवं राव सोनग को हुआ। वे आचार्यश्री के प्रदत्त चातुर्मास के अपूर्व लाभ से अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे। राव सोनग ने तो आचार्यश्री के उपदेश से शासनाधीश भगवान् महावीर का नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा भक्ति कर ज्ञान ध्यान पढ़ने सुनने में सलग्न हो गये। जैन शास्त्रों का अभ्यास चिन्तवन एव मनन करने के पश्चात् उनके हृदय में एक बात खटकने लग गई। वे सोचने लगे—मैंने साधु होकर के गृहस्थ के व्रत लिये अतः मेरा दर्जा हल्का हो गया है। मुझे गृहस्थों की श्रेणी में बैठना पड़ता है। मैं जैन साधुओं के आचार विचार से अवगत हो चुका हूं अतः मुझे भी साधुत्व वृत्ति स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है। उक्त संकल्प को सुदृढ़ बना सन्यासीजी सूरीश्वरजी की सेवा में आये और अपने मनः संकल्प को शब्दों के रूप में प्रगट करने लगे। सूरिजी ने भी 'जहा सुहं' शब्द ने उन्हें सन्तोष दिया।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे अतः दूसरे ही दिन आपश्री ने अपने व्याख्यान में प्रसङ्गोपात साधु के आचार के विषय मे स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया कि—जैन श्रमण दो प्रकार के होते हैं— १—जिनकल्पी २—स्थविर कल्पी। इनमें जिनकल्पी साधु तो पाणि पात्र अर्थात् कुछ भी उपाधि नहीं रखते हैं। क्षुधादि परिषहों से सन्तापित होने पर गृहस्थों के यहाँ भिक्षार्थ जाकर जो कुछ समय पर मिलता है; हाथ में लेकर भिक्षा कर लेते हैं। कई २ जिनकल्पी कुछ उपकरण विशेष भी रखते हैं। वे कम से कम रजोहरण और मुखवस्त्रिका और अधिक से अधिक बारह उपकरण रख सकते हैं—तथाहि

पत्तं[१] पत्ताबंधो[२] पायट्ठवणं[३] च पायकेसरिया[४] ।
पडलाइं[५] रयत्ताणं[६] गुच्छओ पायनिओगो ॥
तिन्नेव य पच्छागा[१०] रयहरणं[११] चेव होइ मुहपत्ति ।
एसो दुवालस विहो उवहि जिणकप्पियाणं तुः ॥

उक्त बारह और दो के बीच की संख्या में उपकरण रखना जिनकल्पी के मध्यम उपकरण कहे जाते हैं।

एतोचेव दुवालस मत्तग[१] अइरेग चोलपट्टो य ।
एसो चउदस विहो उवहि पुण थेरकप्पंमि ॥

(१२) मुखवस्त्रिका—इसका परिमाण—

चउरंगुलं विहत्थि एवं मुहणंतगस्सउप्पमाणं । बीयं मुहप्पमाणा गणण पमाणेणं इक्किकं ॥

अर्थात्—१६ अगुल प्रमाण अपने अगुल से तथा मुखप्रमाण मुख वस्त्रिका एक ही रखे। प्रयोजन

संपाइमरयरेणु पमज्जणट्ठावंयति मुहपति । नासं मुह च बंधइ तीए वसहिं पमंज्जतो ॥

अर्थात्—मक्खी, मच्छर, पतगिये वगैरह जीवो की रक्षा के लिये व रजरेणु पमार्जन के लिये मुख-वस्त्रिका का विधान है तथा वसति प्रमार्जन के समय व अशुचिस्थान के कारण के समय य दोनों किनारे कान में डाल कर नाक पर्यन्त आच्छादन कर सकते हैं।

(उक्त १२ उपकरण जिनकल्पी मुनियो के लिये कहे गये है)

(१३)—मात्रक—(घड़ा या तृपणी विशेष) इस का परिमाण

जो मागहओ पत्थो सविसेसयर तु मत्तगपमाणं । दोसुवि दव्वगहणं वासावासासु अहिगारो ॥

भावार्थ—मागधदेश के परिमाण विशेष का पात्र बतलाया है। इसका पयोजन—

आयरिए य गिलाणे पाहुणए दुल्लह सहसदाणे । संसत्तए भत्तपाणे मत्तगपरिभोगणुन्नाउ ॥

संसत्तभत्तपाणेसु वा वि देसेसु मत्तए गहणं । पुव्वंतु भत्त पाणं सोहेउ छुहति इयरेसु ॥

अर्थ—आचार्य, गलानि, अतिथि वगैरह साधुओ के [illegible] ।

(१४)—चोलपट्टा—ये कटि भाग मे पहिनने के काम में आता है—इसका परिमाण—

दुगुणो चउगुणोवा हत्थो चउरंस चोलपट्टोय । थेर जुवाणाणट्ठा [illegible] ॥

अर्थात्—यह वस्त्र एक हाथ के पने का होता है। स्थविर और युवक [illegible] और चार हाथ का होता है। स्थविर के [illegible] ।

वेउव्ववाउडे वाइसे हीए खद्ध पजणणे चेव । तेसिं [illegible] ॥

अर्थात—शीतोष्ण से रक्षा करने के लिये, तथा लज्जा [illegible] चोलपट की आवश्यकता रहती है।

अर्थात्—पात्र स्थापन, गोच्छक और पात्र प्रति लेखनी; इन तीनो का परिमाण १६ अंगुल का है। पडिला—अढ़ाई हाथ लम्बा और छतीस अंगुल चौड़ा होना चाहिये। रजस्त्राण—वर्तन के प्रमाण से चार अंगुल बढ़ता हुआ होना चाहिये।

प्रयोजन—संयमाराधना और जीव रक्षा—तथाहि

रयमाइरक्खणट्ठा पत्तग ठवणं वि उवइस्संति, होइ पमज्जण हेउ गुच्छओ भाणवत्थाणं ॥
पायपमज्जण हेउं केसरिया पाए २ इक्किक्का, गुच्छ पत्तगठवणं इक्किक्कं गणणमाणेणं ॥
पुप्फफलोदयरयरेणु सउण परिहार पायरक्खणट्ठा, लिंगस्स य संवरणे वेओदय रक्खणे पडला ॥
मूसगरयउक्केरे वासे सिन्हारएयरक्खाणट्टा, हुंति गुणा रयत्ताणे पाए २ य इक्केक्कं ॥

अर्थात्—गोचरी लाते समय पात्रों के नीचे घृतादिक का लेप लग जाने से भूमि पर रखने में जीवों की विराधना होती है उसकी रक्षा के लिये अथवा रजसे सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक पात्र के नीचे ऊन का खंड रखना बतलाया है। प्रमार्जन एवं जीव रक्षा के लिये पात्र केसरिया—चरवाली का उल्लेख किया है। पुष्प, फल, रज, रेणु, शकुन के परिहार के लिये व वेदोदय के रक्षण के लिये पडिले का उल्लेख किया है। मूषकोपद्रव व रज वगैरह से सुरक्षित रखने के लिये तथा वर्षा ऋतु में अपकाय के जीवों की रक्षा के लिये एक २ पात्र में एक २ रजताण तथा पात्र बन्धन पर गुच्छा रखने का कहा है।

८-९-१०—चादर—इसका परिमाण—

कप्पा आयपमाणा अड्ढाइज्जायवित्थरा हत्था । दो चेव सुत्तिया उ उन्निय तइओ मुणेयव्वो ॥

अर्थात्—अपने शरीर के प्रमाण लम्बी और अढ़ाई हाथ चौड़ी दो सूत की और एक ऊन की एवं तीन चादर रखना—कहा गया है। इसका प्रयोजन—

तणगहणानलसेवा निवारणा, धम्म सुक्कज्झाणट्ठा । दिट्ठं कप्पग्गहणं गिलाण मरणट्ठया चेव ॥

अर्थात्—तृण ग्रहण एवं अनल सेवन से निवारण करने के लिये व धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान को ध्याने के लिये तथा ग्लान एवं मरणार्थ के लिये तीर्थंकरों ने वस्त्रग्रहण फरमाया है।

(११) रजोहरण—जीवरक्षार्थ एवं प्रमार्जनार्थ—

बत्तीसंगुलदीहं चउवीसंगुलाइं दण्डो से अट्ठंगुला दसाओ एगतर हीणमहियं वा ॥

अर्थात्—बत्तीस अंगुल के रजोहरण में चौवीस अंगुल प्रमाण दण्डी और आठ अंगुल की दसियां (फलियाँ) होनी चाहिये। कदाचित् दण्डी लम्बी हो तो दसियां कम और दसियां लम्बी हो तो दण्डी कम, परन्तु रजोहरण बत्तीस अंगुल का होना चाहिये। प्रयोजन—

उन्निहं उट्टियं वा विकंबलं पाय पुच्छणं । तिपरीयल्लमणिस्सिट्ठं रजहरणं धारए इक्कं ।

अर्थात्—ऊन का, व ऊट के बालों का व कम्बल इन तीनों में से किसी एक तरह के रजोहरण को धारण कर सकते हैं। किसी स्थान पर पाँच प्रकार के रजोहरण लिखे हैं जिसमें अम्बाडी व मूज का भी रजोहरण रख सकते हैं।

आयाणे निक्खेवे ठाण निसीयण तुयट्ट संकोए पुव्वंपमज्जणट्ठा लिंगट्ठा चेव रयहरणे ॥

अर्थात्—वस्तुओं को ग्रहण करते हुए, रखते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, सोते हुए, संकुचित होते हुए पूर्व प्रमार्जनार्थ व जैन धर्म का चिन्ह स्वरूप रजोहरण का कथन किया गया है। अन्यत्र इसको धर्म ध्वज भी कहा गया है।

वाला। ये तीनो जड़ दीक्षा ले लिये अयोग्य हैं।

६—रोगी—जिसके शरीर में खास करके श्वास, जलदर, भगंदर कुष्टादि रोग हो।

७—अप्रतीत—ससार मे चोरी जारी आदि कुकृत्य किये हो। जिसकी किसी भी तरह से प्रतीति-विश्वास नही होता हो ऐसा भी अयोग्य ही है।

८—कृतघ्नी—राजद्रोही, सेठ द्रोही, मित्र द्रोही आदि घृणित कार्य किये हो।

९—पागल—बेभान-परवश हो। जिसको भूत प्रेत शरीर मे आता हो।

१०—हीनांग—अन्धा, बहरा, मूक, लूला, लगड़ा हो।

११—स्त्यानगृद्धि—निद्रा वाला हो। जो निद्रा मे सग्राम तक भी कर आवे।

१२—दुष्ट परिणामी—दुष्ट विचार या प्रतिकार की बुरी भावना रखने वाला हो। (जैसे कषाय दुष्ट साधु ने क्रोधावेश मे अपने गुरु के दाँत तोड़ डाले।) विषय दुष्ट स्त्रियो को देख दुष्टता, कुचेष्टा करने वाला हो।

१३—मूढ़—विवेक हीन, जो समझाने पर भी न समझे।

१४—ऋणी—कर्जदार हो।

१५—दोषी—जातिकर्म से दूषित हो, जिसके हाथ का पानी मालूम, लोग नहीं पीते हों।

१६—धनार्थी—रुपये की प्राप्ति या धनाशा से मन्त्रादि विद्या का साधन करने वाला हो।

१७—मुद्दती देवाला—किसी साहुकार के कर्ज की किस्तें करदी हो पर बीच में ही दीक्षा लेना चाहता हो।

१८—आज्ञा—माता, पिता, कुटुम्ब वगैरह की आज्ञा न हो।

उक्त १८ दोष वाला पुरुष और गर्भवती व छोटे बच्चे की [illegible] २० दोष वाली स्त्रियाँ दीक्षा के लिये सर्वथा अयोग्य होती हैं। इन दोषो से दूषित व्यक्तियो को दीक्षा नहीं दी जाती है।

जातिवान, कुलवान, बलवान, रूपवान, लज्जावान, विनयवान, ज्ञानवान, श्रद्धावान, [illegible], वैराग्यवान, उदारचित्त, यत्नावान, शासन पर प्रेम रखने वाला व [illegible], अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ व [illegible] मोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, सर्व १५ प्रकृतियो का [illegible] दीक्षा देनी चाहिये। ऐसा योग्य पुरुष ही वैराग्य की भावनाओं [illegible] और [illegible] की आत्मा का कल्याण करने मे समर्थ होता है।

(२१)—कंचुक—अपने शरीर के प्रमाण कसो से बांधे जाने वाला। स्तनों पर कंचूकाकार।

(२२)—उपकक्षिका—डेड़ हाथ समचोर से दाहिनी काख (कक्षभाग) ढके उतना वस्त्र।

(२३)—वैकक्षिका—यह पट्टे के आकार की होती है। बायीं बाजू पहिनी जाती है। यह उपकक्षिका और कंचुक को ढकती है।

(२४)—संघाटी—अर्थात् साध्वियें चार चादर रख सकती हैं। ये चारों ३॥ से चार हाथ लम्बी चदर निम्न प्रकार के काम की होती है:—

[१]—दो हाथ चोड़ी चादर उपाश्रय में ओढ़ने के काम में आती है।

[२]—तीन हाथ चोड़ी चद्दर गोचरी के लिये जाते समय काम में आती है।

[३]—तीन हाथ चौड़ी चद्दर स्थण्डिल भूमिका जाते हुए ओढ़ने के काम में आती है।

[४]—चार हाथ के पने की चादर मुनियों के व्याख्यान मे या स्नात्रादि धर्म महोत्सव मे जाने के समय काम में आती है क्योकि, वहां अनेक प्रकार के मनुष्य एकत्रित होते हैं अतः साध्वी को अपने अङ्गोपाङ्ग इस तरह से आच्छादित करने पड़ते है कि नाक की अणी और पग की एड़ी भी पुरुष नही देख सकते हैं।

(२५)—स्कंधकारिणी—ऊन का चार हाथ समचोरंस वस्त्र जो स्कंध पर डाला जाता है। इत्यादि

यह तो ओघिक उपकरण का उल्लेख हुआ है पर इनके अलावा औपग्रहिक उपकरणों का भी शास्त्रों मे उल्लेख मिलता है। इन औपग्राहिक उपकरणो में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट उपकरणों के नाम हैं। जैसे उत्तरपट्ट, दण्डपञ्चक, पुस्तकपञ्चक वगैरह। इन सबका प्रयोजन ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना मे सहायक होने का ही है। जैन धर्म एक ऐसा विशाल धर्म है कि इसमें अनेकान्त दृष्टि से सब बातों का समावेश अत्यन्त सुगमता पूर्वक हो सकता है। जैन धर्म का हृदय समुद्र के समान गम्भीर है यही कारण है कि इधर पाणिपात्र जिनकल्पी और उधर ओघिक औपग्रहिक उपकरणों को रखने वाले साधु को भी मोक्ष मार्ग की आराधना के लिये स्थान दिया गया है। उपकरण—उपाधि रक्खे या न रक्खे—यह अपनी रुचि एवं दैहिक सामर्थ्य—संहनन शक्ति पर निर्भर है पर परिणामों में विशुद्धता एवं विकास किसी भी अवस्था में होना आत्मोन्नति के लिये आवश्यक ही है।

आगे चल कर सूरिजी ने कहा—सज्जनो! आप जानते हैं कि भूमि शुद्ध होने से उसमें बोया हुआ बीज भी यथानुकूल फल को देने वाला होता है अतः प्रसङ्गोपात दीक्षा लेने वाले मुमुक्षुओं का हाल जान लेना भी आवश्यक है कारण धर्म बीज बोने के लिये भी उचित क्षेत्र, गुण, व्यवसाय, पराक्रमादि की नितान्त आवश्यकता रहती है। दीक्षा लेने वाला सब प्रकार से योग्य एवं निर्दोष होना चाहिये। जैसे:—

१—बाल न हो—बाल दो प्रकार के होते हैं, एक वय बाल—जो छोटी अवस्था के कारण दीक्षा के महत्व को समझता नहीं हो और दूसरा ज्ञान बाल जो वय में अधिक होने पर भी दीक्षा के स्वरूप एवं ज्ञान से अनभिज्ञ हो। ये दोनों ही बाल, दीक्षा के लिये सर्वथा अयोग्य हैं।

२—वृद्ध—जिसका शरीर एवं इन्द्रिय बल क्षीण हो चुका है जो दीक्षा रूप भार को वहन करने में असमर्थ है। ऐसा वृद्ध भी दीक्षा के लिये अयोग्य है।

३—नपुंसक—स्त्री और पुरुष दोनों की अभिलाषा रखता हो कई प्रकार की कुचेष्टाएं कर अपना व पर का अहित करने वाला हो वह भी दीक्षा के लिये अयोग्य है।

४—कृत नपुंसक—जिसके मोहनीय कर्म का प्रबल उदय हो, स्त्रियों को देखने मात्र से काम विकार पैदा हो जाता हो।

५—जड़—जड़ तीन प्रकार के होते हैं? भाषा जड़ अस्पष्ट भाषी, क्रोधी या बहुत वाचाल हो। २-शरीर जड़—[illegible]—शरीर स्थूल, [illegible] प्रमाद परिपूर्ण हो ३—करण जड़—कर्तव्य मूढ़-हिताहित को नहीं जानने

वाला। ये तीनो जड़ दीक्षा के लिये अयोग्य हैं।

६—रोगी—जिसके शरीर मे खास करके श्वास, जलंदर, भगदर कुष्टादि रोग हो।

७—अप्रतीत—ससार मे चोरी जारी आदि कुकृत्य किये हो। जिसकी किसी भी तरह से प्रतीति-विश्वास नही होता हो ऐसा भी अयोग्य ही है।

८—कृतघ्नी—राजद्रोही, सेठ द्रोही, मित्र द्रोही आदि घृणित कार्य किये हो।

९—पागल—बेभान-परवश हो। जिसको भूत प्रेत शरीर मे आता हो।

१०—हीनांग—अन्धा, बहरा, मूक, लूला, लगड़ा हो।

११—स्त्यानगृद्धि—निद्रा वाला हो। जो निद्रा मे सग्राम तक भी कर आवे।

१२—दुष्ट परिणामी—दुष्ट विचार या प्रतिकार की बुरी भावना रखने वाला हो। (जैसे कषाय दुष्ट साधु ने क्रोधावेश मे अपने गुरु के दाँत तोड़ डाले।) विषय दुष्ट स्त्रियो को देख दुष्टता, कुचेष्टा करने वाला हो।

१३—मूढ़—विवेक हीन, जो समझाने पर भी न समझे।

१४—ऋणी—कर्जदार हो।

१५—दोषी—जातिकर्म से दूषित हो, जिसके हाथ का पानी ब्राह्मण, वैश्य नहीं पीते हो।

१६—धनार्थी—रुपये की प्राप्ति या धनाशा से मन्त्रादि विद्या का साधन करने वाला हो।

१७—मुद्दती देवाला—किसी साहुकार के कर्ज की किश्तें करदी हो पर बीच मे ही दीक्षा लेना चाहता हो।

१८—आज्ञा—माता, पिता, कुटुम्ब वगैरह की आज्ञा न हो।

उक्त १८ दोष वाला पुरुष और गर्भवती व छोटे बच्चे की माता आदि २० दोष वाली स्त्रियाँ दीक्षा के लिये सर्वथा अयोग्य होती है। इन दोषो से दूषित व्यक्तियो को दीक्षा नहीं दी जाती है।

जातिवान, कुलवान, बलवान्, रूपवान, लज्जावान, विनयवान, ज्ञानवान, [illegible], जितेन्द्रिय, वैराग्यवान्, उदारचित्त, यत्नावान्, शासन पर प्रेम रखने वाला व [illegible], अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं १२ प्रकृतियाँ तथा [illegible] मोहनीय, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, सर्व १५ प्रकृतियो का क्षय अथवा क्षयोपशम पाने वाले [illegible] दीक्षा देनी चाहिये। ऐसा योग्य पुरुष ही वैराग्य की भावनाओं से ओत प्रोत होता है और वही पुरुष [illegible] की आत्मा का कल्याण करने मे समर्थ होता है।

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् एक कोड़ी—अर्थात् २० मुमुक्षु दीक्षा के लिये सन्यासीजी के साथ और तैयार होगये। बस फिर तो देरी ही क्या थी ? ठीक समय में राव सोनग ने बड़े ही समारोह पूर्वक दीक्षा का महोत्सव किया। सूरीश्वरजी ने भी चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष सन्यासी प्रभृति २० भावुकों को शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में भगवती दीक्षा देकर उनकी आत्मा का कल्याण किया। दीक्षानन्तर सन्यासी का नाम मुनि ज्ञानानन्द रख दिया। दीक्षा वगैरह माङ्गलिक कार्यों के सानन्द सम्पन्न होने पर आचार्यश्री ने शीघ्र ही वहां से विहार कर दिया। इधर राव सोनग के द्वारा बनवाये जाने वाले मन्दिर का काम भी बड़े ही जोरों से व शीघ्रता से प्रारम्भ कर दिया गया। आचार्यश्री ने भी सिन्ध प्रान्तीय उच्चकोट, मारोटकोट, रेणुकोट, मालपुर, कपाली, धारु, जाकोली, डामरेलपुर, देवपुर, सीलार, धारकोट, नागरकोट, खीणी, वेलाव रुदरी, गोसलपुर, आवली, दीवकोट वगैरह ग्राम नगरो में फिर कर खूब ही धार्मिक क्रान्ति मचाई। चातुर्मास के समय में डामरेल नगर के श्रीसंघ के अत्याग्रह से डामरेलपुर मे ही सूरिजी ने चातुर्मास कर दिया।

वीरपुरा के रावसोनग ने जिस दिन भगवान्महावीर के मन्दिर की नीव डाली उसी दिन आपकी रानी के गर्भ रह गया। क्रमशः नव मासानन्तर आपके पुत्ररत्न का जन्म हुआ अतः जैनधर्म पर व सूरिजी पर रावजी की श्रद्धा बहुत ही बढ़ गई। जब रावजी ने सुना कि सूरिजी का चातुर्मास डामरेल नगर में हो चुका है तो दर्शनार्थ आप स्वयं जाने को तैय्यार हो गये। सारे नगर में अपने जाने के साथ ही साथ यह घोषणा करवादी कि जिस किसी को आचार्यश्री के दर्शन के लिये डामरेलपुर चलना हो वह सहर्ष मेरे साथ चल सकता है। उसके सम्पूर्ण खर्चे का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर रहेगा। राव सोनग की उक्त घोषणा को सुन बहुत से दर्शनेच्छुक भावुक डामरेल, आचार्यश्री के दर्शनार्थ जाने को तैय्यार हो गये। क्रमशः राव सोनग ने भी अपनी रानी, नवजात शिशु एवं दर्शनाभिलाषी भावुकों के साथ डामरेलपुर की ओर प्रस्थान कर दिया डामरेल पहुंच कर सबने खुशी एवं भक्ति के साथ आचार्यश्री को वन्दन किया महात्मा ज्ञानानन्दजी मुनि भी उस समय सूरिजी के ही साथ थे। राव सोनग ने कृतज्ञता सूचक प्रसन्नता प्रकट करते हुए नवजात बालक पर आचार्यश्री के कर कमलो से वासक्षेप डलवाया। साथ ही वीरपुर पधार कर मन्दिर की प्रतिष्ठा करने के लिये विनय पूर्ण शब्दो में आग्रह भरी प्रार्थना की। सूरिजी ने-वर्तमान योग—कह कर संतोष दिया। राव सोनग ने भी आठ दिवस पर्यन्त स्थिरता कर पूजा, प्रभावना स्वामीवात्सल्य, अष्टान्हिका महोत्सव, और सूरिजी के पीयूषरस प्लावित उपदेश श्रवण का लाभ उठाया। पश्चात् पुनः संघ सहित अपने नगर को लौट आये।

सूरिजी की सेवा में ऐसे ही एक तो यक्ष था और दूसरे मंत्र यंत्रादि नाना विद्या परायण ज्ञानसुन्दर नाम के सन्यासी शिष्य थे अतः आपने सिन्धधरा मे सर्वत्र परिभ्रमनकर धर्म का खूब ही प्रचार किया। समय पर वीरपुर पधार कर शुभमुहूर्त में राव सोनग के बनवाये हुए महावीर मन्दिर की बड़ी धाम धूम से प्रतिष्ठा करवाई। रावजी ने जिनालय प्रतिष्ठा की खुशाली में आगत संघ-समुदाय को भी सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना दी इससे अन्य लोगो पर जैनधर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। क्रमशः इधर उधर परिभ्रमन एवं धर्म प्रचार करते हुए आचार्यश्री ने तीसरा चातुर्मास गोसलपुर में किया। गोसलपुर के चातुर्मास के सानन्द सम्पन्न होने पर आपश्री ने पंजाब प्रान्त में पदार्पण किया। पंजाब प्रान्तीय इतर श्रमण मण्डली को धर्म प्रचार के मार्ग में सविशेष प्रोत्साहित एवं अग्रसर करते हुए आप श्री ने दो चातुर्मास पंजाब प्रान्त में भी कर दिये। पंजाब प्रान्त में आपश्री के आज्ञानुयायी बहुत से मुनि वर्तमान थे अतः मुनि विहीन क्षेत्र में धर्म प्रचारार्थ जाना आप को विशेष श्रेयस्कर एवं हितकर ज्ञात हुआ इसी कारण से आपने पंजाब प्रान्त में ज्यादा स्थिरता न कर पूर्व की ओर पदार्पण कर दिया। क्रमशः पूर्व प्रान्तीय तीर्थों के दर्शन करते हुए व ग्राम नगरों में धर्मोद्योत करते हुए आचार्यश्री ने पाटलीपुत्र में चातुर्मास कर दिया। वहां का चातुर्मास सानन्द समाप्त करके आचार्यश्री ने कलिङ्ग की ओर पदार्पण किया। कलिङ्ग प्रान्तीय शत्रुञ्जय, गिरनार अवतार तीर्थ की यात्रा

श्वर मुनियो के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। उनके उत्साह से विशेष वृद्धि करने के लिये आगत श्रमण मण्डली मे से पद योग्य मुनियो को उपाध्याय, गणि, गणावच्छेदक आदि पद से विभूषित किये। पश्चात् सूरीश्वरजी के आदेशानुसार विभिन्न २ क्षेत्रों के विभिन्न २ मुनियो ने विभिन्न २ क्षेत्रों मे विहार किया। आचार्य श्री भी विदर्भ देश को पावन करते हुए कोकण पधार गये। क्रमशः सौपार पट्टन के सफल चातुर्मासानन्तर आपश्री ने क्रमशः सौराष्ट्रप्रान्त की ओर पदार्पण किया। सौराष्ट्रप्रान्तीय तीर्थाधिराज शत्रुंजय गिरनार आदि पवित्र तीर्थक्षेत्रों की यात्रा कर आत्म शान्ति या अनुपम निवृत्ति आनन्दानुभव करने के लिये आपश्री ने कुछ समय पर्यन्त वहाँ पर स्थिरता की। तत्पश्चात् क्रमशः विहार करते हुए लाट, आवन्तिका और मेदपाट प्रान्त के ग्राम नगरों में बहुत समय तक धर्म प्रचार किया। बाद में आपने मरुधर भूमि को पावन करने का निश्चय किया। जब मरुधर वासियो ने आचार्य श्री के आगमन के शुभ समाचार सुने तो उनकी प्रसन्नता का पारवार नहीं रहा दिग्विजय करके आये हुए चक्रवर्ती के समान ग्राम २ एवं नगरों २ मे आपका समारोह पूर्वक स्वागत होने लगा।

आचार्यश्री ने मरुभूमि मे परिभ्रमन करते हुए एक चातुर्मास डिड्डू नगर मे दूसरा नागपुर में और तीसरा उपकेशपुर मे किया। उपकेशपुरीय चातुर्मास मे देवी सच्चायिका ने आकर परोक्ष रूप मे सूरीश्वरजी को एकदिन सविनय वन्दन किया। सूरीश्वरजी ने भी देवी को उच्चस्वर से धर्मलाभ दिया। तत्पश्चात् देवी ने कहा पूज्य गुरुदेव ! आपश्री ने इत उत परिभ्रमन करते हुए सारे आर्यावर्त की ही प्रदक्षिणा दे डाली। धन्य है दयानिधान ! आपकी उत्कृष्ट धर्म प्रचार की पवित्र भावनाओं को और धन्य है आपश्री के उत्कृष्टतम त्याग वैराग्य को। प्रभो ! आपका धर्म स्नेह, पुरुषार्थ, एवं पराक्रम स्तुत्य तथा आदरणीय है। इसपर सूरीश्वरजी ने कहा देवीजी ! इसमे धन्यवाद की क्या बात है ? देवीजी ! परिभ्रमन करते हुए स्वशक्त्यनुकूल जन समाज को धर्म मार्ग की ओर प्रेरित करते रहना तो हमारा परम कर्तव्य ही है। धन्यवाद तो है हमारे परमाराध्य पूज्यपाद, प्रातः स्मरणीय आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी प्रभृति पूर्वाचार्यों को कि जिन्होने, ताड़ना, तर्जना, मानावहिलना रूप असंख्य परिषहो को सहन करके भी सर्वत्र महाजन संघ की स्थापना कर कण्टकीर्ण मार्ग को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बना दिया है। हमारे लिये तो कोई ऐसा क्षेत्र ही अवशिष्ट नहीं रक्खा कि जहां हमें धर्म प्रचार करने मे किञ्चित् भी कष्ट सहन करना पड़े। उनके मार्ग का अनुसरण करके हम सुखी अवश्य है पर कर्तव्य के सिवाय धन्यवाद योग्य और कोई किया ही नहीं है। हमारे पूर्वाचार्यों इन सब क्षेत्रों मे जैन धर्म की नींव डालकर शासन की बहुत ही प्रभावना की है किन्तु हमारे से तो उनके द्वारा किये गये कार्यों का एक शतांश होना भी अशक्य है देवी जी ! जनता हमेशा भद्रिक एवं सरल परिणामो वाली होती है। यदि उनको साधुओं के आवागमन से बराबर उपदेश मिलता रहे तो वे धर्म मे स्थिर रहते हैं अन्यथा मिथ्यात्व का आश्रय ले शिथिल हो किञ्चित् काल मे धर्म से पराङ्मुख बन जाते है। इन्हीं सभी उत्तम, धर्मोत्प्रेरित भावनाओ से प्रेरित हो हमारे पूर्वाचार्यों ने आर्यावर्तीय सकल प्रान्तो मे मुनि समाज को भेज कर जैन धर्म का विस्तृत प्रचार किया व करवाया। आज जिन मधुर फलो का हम आस्वादन कर रहे है वह सभी पूर्वाचार्यों की ही कृपा दृष्टि का ही परिणाम है आज भी उन्हीं के आदर्शानुसार प्रत्येक प्रान्त मे साधुओं का विहार होता रहता है अतः मेरा भी सब प्रान्तों में परिभ्रमन कर उत्साह वर्धन करते रहना एक कर्तव्य हो जाता है। इससे कई तरह के लाभ होते हैं—एक तो जन समाज को साधारण तया उपदेश मिलते रहने से जन जागृति होती है दूसरा-प्रान्तीय मुनियो के आचार विचार व्यवहार एवं धर्म के प्रचार का निरीक्षण हो जाता है। तीसरा—तीर्थों की यात्रा का अपूर्व लाभ प्राप्त होता है और चौथा चारित्र की निर्मलता यथावत् बनी रहती है अस्तु,

देवी—गुरुदेव ! इन सबों का विचार तो वही कर सकता है—जिसके हृदय मे धर्म प्रचार की उत्कट

अभिलाषा एवं कार्य करने का अदम्य उत्साह हो। वास्तव मे आपको शासन के प्रति अपूर्व गौरव एव सम्मान है अतः आपको बारम्बार धन्यवाद है। प्रभो ! अब आपकी वृद्धावस्था हो चुकी है अत आप मरुभूमि मे ही विराजकर हम अज्ञानियो पर कृपा करें; यही मेरी प्रार्थना है। सूरिजी ने 'क्षेत्र स्पर्शना' के रूप मे उत्तर दिया और देवी भी सूरिजी को वदन कर क्रमशः स्वस्थान को चली गई।

इतने समय पर्यन्त इतर प्रान्तो मे दीर्घ परिभ्रमन करने के कारण मरुधर प्रान्तीय श्रमणवर्ग मे कुछ शिथिलता आ गई ऐसे समाचार यत्र तत्र कर्णगोचर होने लगे। उक्त समाचारो ने आचार्यश्री के हृदय मे पर्याप्त चिन्ता एव दु ख का प्रादुर्भाव कर दिया। शिथिलता निवारण के लिये श्रमण सभा योजना का निश्चय किया और उक्त निश्चयानुसार अपनी मनोगत भावना को दूसरे दिन व्याख्यान मे श्रीसघ के समक्ष प्रगट करदी। आचार्यश्री की उक्त योजना को श्रवण कर श्रीसघ ने प्रसन्नता पूर्वक इसका उत्तरदायित्व अपने सिर पर ले लिया। उपकेशपुरीय श्री सघ ने तो शासन के इस महत्व पूर्ण कार्य का लाभ प्राप्त करने के लिये अपने को परम भाग्यशाली समझा। वास्तव मे इससे अधिक शासन प्रभावना का कार्य हो ही क्या सकता था ? शासन की बड़ी से बड़ी या कीमती सेवा तो यही थी अतः श्री सघ ने विनय पूर्वक प्रार्थना की-भगवन् ! इस सभा का निश्चित दिन निर्धारित कर दिया जाय तब तो हमे हमारे सब कार्य करने मे सुविधा रहे। सूरिजी ने कहा—आप लोगो का कहना यथार्थ है पर सभा का समय कुछ दूर रक्खा जायगा तो आसपास के क्षेत्रो के साधु व सुदूर प्रान्तीय साधु भी यथा समय सम्मिलित हो सकेंगे अत मेरे मन्तव्यानुसार कुछ दूर का ही शुभ दिन मुकर्रर करना चाहिये—श्रीसघ ने कहा—[illegible] आप [illegible]। [illegible] को एक स्थान पर एकत्रित होने मे तो अवकाश चाहिये ही अत दूर का मुहूर्त [illegible] रहेगा। सूरिजी ने फरमाया—माघ शुक्ला पूर्णिमा का दिन निश्चित किया जाता है जिससे [illegible] तीन मास में श्रमण वर्ग अनुकूलता पूर्वक सम्मिलित हो सके। दूसरा—गुरु महाराज [illegible] है [illegible] सर्व कार्य गुरुदेव की कृपा से निर्विघ्न तथा सानन्द सम्पन्न हो सके। [illegible] की प्रशसा करते हुए सूरीश्वरजी के कथन को सहर्ष स्वीकार कर लिया। [illegible] अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यत्र तत्र सर्वत्र अपने योग्य [illegible] पुरुषो [illegible] भिजवा दी। श्रमणवर्ग की प्रार्थना के लिये उचित पुरुषो को भेज दिये [illegible] उत्साह की उर्मिया उछलने लगी। बहुत समय बीत गया। ज्यो ज्यो [illegible] आता गया त्यो त्यो उनके हृदय मे नवीन २ आशाओ—[illegible] लोग माघ शुक्ला पूर्णिमा के परम पावन दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

ठीक समय पर चारो ओर से श्रमण सघ का शुभागमन हुआ। [illegible] भाव के सबका यथोचित सम्मान किया गया। [illegible] अधिकता के कारण उपकेशपुर तीर्थ धाम [illegible] करने की [illegible] वीर परम्परागत मुनियो को [illegible] सूरिजी के [illegible] मे आरम्भ हुआ। [illegible] के मुख्य उद्देश्यो [illegible] आवश्यकता [illegible] किया तत्पश्चात् आचार्य श्री ने [illegible] इस [illegible] अनुसार किसी विषय का [illegible] हमारे [illegible]

कारण आगत श्रमण समुदाय व सकल संघ आचार्यश्री की अमृतवाणी का ही श्रवणेच्छुक था। दूसरा वह जमाना ही विनय व्यवहार का था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता को देखकर ही आगे कदम बढ़ाता था। अतः किसी ने भी बोलने का तो साहस नहीं किया पर आचार्यश्री की इस अनुपम उदारता के लिये सब ने प्रसन्नता प्रगट की। तत्पश्चात् सूरिजी म० ने अपना प्रभावोत्पादक, हृदयस्पर्शी वक्तृत्व प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर प्रभृति प्रभावक आचार्यों के आदर्श इतिहास को बड़े जोशीले शब्दों में सुनाया! उन महापुरुषों ने धर्म प्रचार के लिये जिन २ कष्टों को सहन किया है। उनमें से एक सहस्रांश कष्ट भी हमको धर्मोद्योत के कार्यों मे प्राप्त नहीं होता है। उन आचार्य देवो ने जिन २ प्रान्तों मे धर्म के बीज बोये वे आज फले फूले, फलकुसुमादि ऋद्धि समृद्धि समन्वित चतुर्दिक मे लहराते हुए दीखते हैं। इसका एक मात्र कारण श्रमण वर्ग का तत्तत् प्रान्त में -परिभ्रमन कर धर्मोपदेश रूप जल का सींचन करना ही है। विधर्मियों के अनेक आक्रमणों के सामने हमारे श्रमण वर्ग खूब दट कर रहे हैं और उनकी कहीं पर भी दाल नहीं गलने दी इसका मुझे बहुत हर्ष है। इतना ही क्यो पर मैं स्वयं प्रान्तो २ मे परिभ्रमन कर मुनियों के प्रचार कार्य को अपनी आंखो से देखकर आया हूँ अतः श्रमणसंघ के लिये मेरे हृदय में बड़ा भारी गौरव है किन्तु रंज इस बात का है कि कुछ श्रमणों ने सिंह के रूप में भी शृङ्गाल के समान चैत्यों मे स्थिरवास कर अपने आचार व्यवहार को एक दम कुत्सित बना दिया है। इससे वे अपनी आत्मा के अहित के साथ ही साथ इतर अनेकों आत्माओं का भी अहित कर रहे हैं। श्रमणों! भगवान् महावीर ने आप पर विश्वास कर शासन को आपके तावे में दिया है। यदि, आप सच्चे वीरपुत्र हैं, अपने वीरत्व का आपको वास्तविक गौरव है आपकी धमणियों मे वीरत्व का उष्ण रुधिर प्रवाहित हो रहा हो तो कटिबद्ध होकर शासन प्रभावना एवं प्रचार के समराङ्गण मे कूद पड़िये। आज सौगतानुयायियों की तो इतनी प्रबलता रही भी नहीं है। वह तो मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ चरम श्वास ले रहा है पर वैदान्तियो के अपने ऊपर सफल आक्रमण हो रहे हैं अतः अपने को भी कमर कस कर यत्र तत्र सर्वत्र उनकी दाल नही गलने देने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि इस भयानक संघर्ष के समय में हम यो ही गफलत में रह गये तो शासनोत्कर्ष के बजाय शासनापकर्ष ही है। पूर्वाचार्यों के पवित्र कुल के लिये शिथिलता कलंक रूप ही है अतः अपने कर्तव्यो का विचार अपने को अपने आप ही कर लेना चाहिये। अभी तो सावधान होने का समय है अन्यथा कुछ समय के पश्चात् अपनी ही शिथिलता वा अपने को रह २ कर पश्चाताप करना पड़ेगा। जन समाज अपने को अकर्मण्य, प्रमादी, निरुत्साही, निस्तेज समझेगा अतः धर्म प्रचार के कार्यों में चैत्यवास की स्थिरता व आचार व्यवहार की शिथिलता को तिलाञ्जली देकर अपने को अपने आप अपने कर्तव्य मार्ग की ओर अग्रसर हो जाना चाहिये। इस प्रकार यानि श्रमण वर्ग के लिये मार्मिक उपदेश देने पर आचार्यश्री ने दो शब्द श्राद्ध समुदाय के लिये भी कहे—महानुभावों! जैन शासन की रक्षा के लिये चतुर्विध संघ की स्थापना कर आधी जुम्मेवारी श्राद्ध वर्ग पर भी रक्खी है। साधुओं के जीवन व आचार व्यवहार विषयक पवित्रता श्रावकों पर भी निर्भर है। यदि श्रावक वर्ग अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देता रहे तो श्रमण समुदाय में उतनी शिथिलता आ ही नहीं सकती। ठाणांग सूत्र में श्रावकों को साधुओं के माता पिता कहा है इसका कारण भी यही है कि कोई साधु अपने पवित्र मार्ग से च्युत हो जावे तो माता पिता के भांति हर एक उपायों से श्रावक च्युत हुए साधु को सन्मार्ग पर ला सकते हैं।

सूरीश्वरजी के उक्त मार्मिक, हृदयग्राही उपदेश का प्रभाव उपस्थित चतुर्विध संघ पर इस कदर पड़ा कि—उनके हृदय मे बिजली की भांति नूतन ज्योति चमक उठी। वे अपने कर्तव्य धर्म का गहरा विचार करने लगे तो आचार्यश्री के उपदेश का एक २ शब्द उन्हें महत्वपूर्ण तथा आदरणीय ज्ञात होने लगा। सूरीश्वरजी का [illegible] मौलिक आना सत्य प्रतीत हुआ। वे सूरीश्वरजी की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—अहो! वृद्धावस्था [illegible] शक्तियों की निर्बलता होने पर भी आपश्री ने सारे आर्यावर्त की प्रदक्षिणा कर डाली तो क्या

की मशीन खूब रफ्तर से चलाई थी नमूना के तौर देखिये।

आचार्य श्री देवगुप्तसूरि एक समय लोद्रवा पाट्टन की ओर पधार रहे थे। मार्ग में कालेर नाम का एक ग्राम आया। ग्राम से एक कोस के फांसले पर एक देवी का मन्दिर था। मन्दिर के समीप ही एक ओर हजारों स्त्री पुरुष 'जय हो देवीजी की' बोलते हुए खड़े थे और दूसरी ओर देवी को बलि देने के लिये स्त्री पुरुषों की संख्या के अनुरूप ही हजारो भैंसे व बकरे व करुणा जनक शब्दो में आर्तक्रन्दन करते हुए बन्धे हुए खड़े थे। आचार्यश्री का मार्ग मन्दिर क्षेत्र से बहुत दूर था तथापि वहुत मनुष्यो के समुदाय को एकत्रित हुआ देख विशेष लाभ की आशा से या अज्ञानियो के इस बाल कौतूहल को धर्म रूप में परिणत करने की प्रबल इच्छा से आचार्यश्री ने भी उधर ही पदार्पण करना समुचित समझा। क्रमशः वहाँ पहुँचने पर पशुओं की करुणा जनक स्थिति को देखकर आचार्यश्री के दुःख का पार नहीं रहा। वे इस विभत्स करुणाजनक दृश्य को देखकर मौन न रह सके। उपस्थित जन समुदाय के मुख्य २ पुरुषों को बुलाकर आचार्यश्री समझाने लगे—महानुभाव! आप यह क्या कर रहे हैं? उन लोगो ने कहा—महात्माजी! हमारे ग्राम मे कई दिनों से मारि रोग प्रचलित है अतः कई जवान २ व्यक्ति भी रोग की करालता के कारण कराल काल के कवल बन चुके हैं। अब आज हम सब मिलकर देवी की पूजा करेंगे व भविष्य के लिये शान्ति की प्रार्थना करेंगे।

सूरिजी—महानुभावो! यह आपका सोचा हुआ उपाय तो शान्ति के लिए नहीं प्रत्युत् अशान्ति का ही वर्धक है। आप स्वयं गम्भीरता पूर्वक विचार कीजिये कि—रुधिर से भीना हुआ कपड़ा भी कभी रुधिर से साफ किया जा सकता है? अरे आप लोगो के पापो की प्रबलता के कारण तो यह रोग ग्राम भर में फैला और फिर इसकी शांति के लिये धर्म नहीं किन्तु पाप का ही भयङ्कर कार्य कर शान्ति की आशा कर रहे हो—यह कैसे सम्भव है? इस तरह के हिंसात्मक क्रूर कर्मों से शान्ति एवं आनन्द की आशा रखना दुराशा मात्र है। महानुभावों! जैसे आपके शरीर में आत्मा है उसी तरह इन पशुओं के देह में भी हैं। जैसे आपको दुःख प्रतिकूल है और सुख की अभिलाषा प्रिय है वैसे इन पशुओ को भी दुःख प्रतिकूल सुख की इच्छा अनुकूल है। आपने किञ्चित् जीवन के लिये इन मूक पशुओं की जान लेना कहाँ तक समीचीत है। मरते हुए ये जीव आपको किस तरह का दुराशीष देते होंगे; इसके लिये आप स्वयं ही विचार करलें।

आचार्यश्री के उक्त गम्भीर एवं सार गर्भित शब्दों के बीच ही में समीपस्थ जटाधारी बोल उठे—आप लोग तो जैन नास्तिक हैं। आप इन विषयों के विशेष अनुभवी भी नहीं है। देवी की पूजा करने पर देवी संतुष्ट हो हमारे रोग को शीघ्र ही शान्त कर देगी। यह बलि देने का विधान तो वेद विहित एवं अनादि है। यह कोई आज का नया विधान नहीं है। इससे तो हमारी हर एक अभिलाषाओं की पूर्ति बहुत ही शीघ्र हो जाती है। जब २ रोगोपद्रव होता है तब २ इस प्रकार से देवी का पूजन करने पर शान्ति का साम्राज्य हो जाता है।

सूरिजी—यह तो आप लोगों का अज्ञानता परिपूर्ण भ्रम मात्र है। देवी तो जगत् के चराचर जीवों की माता है। देवी के लिये जैसे आप पुत्र स्वरूप प्रिय हैं वैसे ये मारने के लिये बांधे हुए पशु भी हैं। क्या माता को एक पुत्र को मरवा कर दूसरे पुत्र की शान्ति देखना इष्ट है? दूसरे इन जीवों को मारकर इनके मांस भक्षण का उपयोग भी आप लोग ही करोगे न कि देवी फिर; अपने क्षणिक स्वार्थ के लिये देवी के मिस देवी को बदनाम करना आप लोगों को शोभा नहीं देता। यदि इन जीवों को देवी के ही अपर्ण करना है तो रात्रि पर्यन्त इन सबको यहीं रहने दीजिये। देवी को इनके प्राणों की बलि लेना ही इष्ट होगा तो वह स्वयं रात्रि के समय इन पशुओं को भक्षण कर लेगी।

ग्राम के कालेर ग्राम के राव रामेवा[1] बैठे हुए थे। उनको सूरिजी का कहना बहुत ही युक्तियुक्त और

[1] १—[illegible] के [illegible] में रामेवा भी एक था। इसको कालेर ग्राम जागीरी में मिला था।

हैं। उनके तप तेज का अतिशय प्रभाव मेरे ऊपर पड़ चुका है। मेरे स्थान पर आज से कोई भी किसी भी जीव का वध नहीं कर सकेगा। मेरे मन्दिर के पीछे पश्चिम दिशा मे नव हाथ दूर एक निधान भू भाग में स्थित है उसे निकाल कर धर्म कार्य में सदुपयोग करना। वह तुम्हारे ही भाग्य का है अतः कल ही खोद कर निकाल लेना। इतना सुनते ही रावजी एक दम चोंक बैठे। वे एक दम आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे कि ये देवी के ही वाक्य है या स्वप्न है ? सारी रात इस ही प्रकार की विचित्र २ विचार धारा में व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हो वंदन करके स्वप्न का सारा वृत्तान्त अथ से इति पर्यन्त उन्हें कह सुनाया तब आचार्यश्री ने कहा—रावजी ! आप परम भाग्यशाली हैं आपने जो कुछ देखा एवं सुना वह स्वप्न नहीं किन्तु देवी भगवती की ही साक्षात् सूचना है। अतः अब तो देवी के नाम पर होने वाली जीव हिंसा को रोकने के लिये ग्राम भर में अमारी घोषणा हो जानी चाहिये। साथ ही निधान के बल पर धार्मिक कार्यों के आधारानुसार जैनधर्म की प्रभावना एवं उन्नति भी करनी चाहिये। आचार्यश्री के उक्त कथन को हृदयङ्गम कर रावजी अपने घर आये और मंत्री शाह मुदा को हुक्म दिया कि—"ग्राम भर में देवी के नाम पर कोई किसी भी जीव की बलि नहीं चढ़ावे" इस प्रकार की उद्घोषणा करवादो। मंत्री ने भी रावजी के आदेशानुसार ग्राम के चतुर्दिक में अमारी पडहा उक्त घोषणा के साथ बजवा दिया। इस विचित्र एवं नवीन घोषणा को सुन पाखण्डियों के हृदय में खलबली मचगई। वे लोग आचार्यश्री पर दोषारोपण करने लगे की यह सेवड़ा ग्राम भर को मरवा डालेगा। इस प्रकार की ईर्ष्याग्नि के प्रज्वलित होने पर भी राज सभा के सामने उन बेचारों की कुछ भी दाल नहीं गल सकी। जब नवरात्रि के नव ही दिन आनन्द मंगल से निकल गये और किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ तब जाकर सूरिजी का जनता पर पूरा २ विश्वास हुआ।

रावजी भी देवी के बताये हुए निर्दिष्ट स्थान से दूसरे दिन निधान निकाल कर ले आये। सूरिजी से उसका सदुपयोग करने के लिये परामर्श किया तो आचार्यश्री ने कहा—रावजी। गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में जिन मन्दिर का निर्माण करना, तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना, स्वधर्मी बन्धुओं की हर एक तरह से सहायता करना व अहिंसा धर्म का विस्तृत प्रचार करना इत्यादि मुख्य २ कार्य हैं।

राव राखेचा ने भी सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने ग्राम मे एक विशाल मन्दिर व भगवान् महावीर की मूर्ति बनवाना प्रारम्भ किया। तीन बार तीर्थों का संघ निकाल कर यात्रा जन्य पुण्य सम्पादन किया। जैन मुनियों के चातुर्मास करवा कर परम प्रभावक श्री भगवती सूत्र का महोत्सव कर संघ को सूत्र सुनवाया। स्वधर्मी बन्धुओं को सहायता प्रदान कर सेवा का सच्चा व आदर्श लाभ लिया। जीव दया के लिये अपूर्व उद्यम कर अनेकों मूक जीवों को अभय दान दिया। जिन शासन मे आप भी प्रभावक पुरुषों की गिनती में जैन धर्म के प्रचारक पुरुष हुए।

जिस समय जैनाचार्यों का अहिंसा परमोधर्म के विषय खूब जोरों से प्रचार हो रहा था ग्राम नगरों में सर्वत्र अहिंसा भगवती का झंडा फहरा रहा था तब पाखण्डियों ने जंगलों में पहाड़ों के बीच देव देवियों के बड़े बड़े मन्दिर बना कर वहाँ निःशंकपने जीवों की हिंसा कर मांस मदिरा को खाते पीते एवं व्यभिचार करने लग गये थे फिर भी भाग्यवशात् कहीं-कहीं उन जंगलों में भी उन आचार्यों का पदार्पण हो ही जाता था और वे अपने अतिशय प्रभाव एवं सदुपदेश द्वारा उन जघन्य कर्म का त्याग करवा कर सद्धर्म की राह पर लाकर उन जीवों का उद्धार कर ही डालते थे अतः उन पूज्याचार्य का समाज पर कितना उपकार हुआ वह हम जबान द्वारा कह नहीं सकते हैं।

राव राखेचा की सन्तान राखेचा कहलाई। आपके चार पुत्र व तीन पुत्रियें व और भी बहुत सा परिवार था। वंशावलियों में लिखा है—

हैं। उनके तप तेज का अतिशय प्रभाव मेरे ऊपर पड़ चुका है। मेरे स्थान पर आज से कोई भी किसी जीव का वध नहीं कर सकेगा। मेरे मन्दिर के पीछे पश्चिम दिशा में नव हाथ दूर एक निधान भू भाग स्थित है उसे निकाल कर धर्म कार्य में सदुपयोग करना। वह तुम्हारे ही भाग्य का है अतः कल ही खोद कर निकाल लेना। इतना सुनते ही रावजी एक दम चोंक वैठे। वे एक दम आश्चर्य सागर में गोते खाने लगे कि ये देवी के ही वाक्य है या स्वप्न है? सारी रात इस ही प्रकार की विचित्र २ विचार धारा में व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही सूरीश्वरजी की सेवा में उपस्थित हो वंदन करके स्वप्न का सारा वृत्तान्त अथ से इति पर्यन्त उन्हें कह सुनाया तव आचार्यश्री ने कहा—रावजी! आप परम भाग्यशाली हैं आपने जो कुछ देखा एवं सुना वह स्वप्न नहीं किन्तु देवी भगवती की ही साक्षात् सूचना है। अतः अब तो देवी के नाम पर होने वाली जीव हिंसा को रोकने के लिये ग्राम भर में अमारी घोषणा हो जानी चाहिये। साथ ही निधान के बल पर धार्मिक कार्यों के आधारानुसार जैनधर्म की प्रभावना एवं उन्नति भी करनी चाहिये। आचार्यश्री के उक्त कथन को हृदयङ्गम कर रावजी अपने घर आये और मंत्री शाह मुदा को हुक्म दिया कि—"ग्राम भर में देवी के नाम पर कोई किसी भी जीव की बलि नहीं चढ़ावे" इस प्रकार की उद्घोषणा करवादो। मंत्री ने भी रावजी के आदेशानुसार ग्राम के चतुर्दिक में अमारी पडहा उक्त घोषणा के साथ बजवा दिया। इस विचित्र एवं नवीन घोषणा को सुन पाखण्डियों के हृदय में खलबली मचगई। वे लोग आचार्यश्री पर दोषारोपण करने लगे की यह सेवड़ा ग्राम भर को मरवा डालेगा। इस प्रकार की ईर्ष्याग्नि के प्रज्वलित होने पर भी राज सभा के सामने उन बेचारों की कुछ भी दाल नहीं गल सकी। जब नवरात्रि के नव ही दिन आनन्द मंगल से निकल गये और किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ तब जाकर सूरिजी का जनता पर पूरा २ विश्वास हुआ।

रावजी भी देवी के बताये हुए निर्दिष्ट स्थान से दूसरे दिन निधान निकाल कर ले आये। सूरिजी से उसका सदुपयोग करने के लिये परामर्श किया तो आचार्यश्री ने कहा—रावजी। गृहस्थों के करने योग्य कार्यों में जिन मन्दिर का निर्माण करना, तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना, स्वधर्मी बन्धुओं की हर एक तरह से सहायता करना व अहिंसा धर्म का विस्तृत प्रचार करना इत्यादि मुख्य २ कार्य हैं।

राव राखेचा ने भी सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने ग्राम में एक विशाल मन्दिर व भगवान महावीर की मूर्ति बनवाना प्रारम्भ किया। तीन बार तीर्थों का संघ निकाल कर यात्रा जन्य पुण्य सम्पादन किया। जैन मुनियों के चातुर्मास करवा कर परम प्रभावक श्री भगवती सूत्र का महोत्सव कर संघ को सूत्र सुनवाया। स्वधर्मी बन्धुओं को सहायता प्रदान कर सेवा का सच्चा व आदर्श लाभ लिया। जीव दया के लिये अपूर्व उद्यम कर अनेकों मूक जीवों को अभय दान दिया। जिन शासन में आप भी प्रभावक पुरुषों की गिनती में जैन धर्म के प्रचारक पुरुष हुए।

जिस समय जैनाचार्यों का अहिंसा परमोधर्म के विषय खूब जोरों से प्रचार हो रहा था ग्राम नगरों में सर्वत्र अहिंसा भगवती का झंडा फहरा रहा था तब पाखण्डियों ने जंगलों में पहाड़ों के बीच देव देवियों के छोटे बड़े मन्दिर बना कर वहाँ निःशंकपने जीवों की हिंसा कर मांस मदिरा को खाते पीते एवं व्यभिचार करने लग गये थे फिर भी भाग्यवशात् कहीं-कहीं उन जंगलों में भी उन आचार्यों का पदार्पण हो ही जाता था और वे अपने अतिशय प्रभाव एवं सदुपदेश द्वारा उन जघन्य कर्म का त्याग करवा कर सद्धर्म की राह पर लाकर उन जीवों का उद्धार कर ही डालते थे अतः उन पूज्याचार्य का समाज पर कितना उपकार हुआ वह हम जबान द्वारा कह नहीं सकते हैं।

राव राखेचा की सन्तान राखेचा कहलाई। आपके चार पुत्र व तीन पुत्रियें व और भी बहुत सा परिवार था। वंशावलियों में लिखा है—

इस प्रकार आपकी वंशावली बहुत ही विस्तार से लिखी है। इन्होंने अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार पुगल पर्यंत कर दिया था। वि० सं० १०१२ में पुगल के राखेचा गोपाल ने तीर्थ श्री शत्रुंजय का संघ निकाला तथा दुष्काल में मनुष्यों व पशुओं को खूब ही सहायता दी [illegible] लिया कहलाई। इन राखेचा गौत्र की वंशावलियों में वि० सं० [illegible] हैं। उक्त नामावली में १२६ मन्दिर बनवाने [illegible] ४२ [illegible] महानुभावों से जन, पशु रक्षणार्थ पुष्कल द्रव्य के दान देने का [illegible] गनाओं का अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उनके साथ सती होने का उल्लेख मिलता है। [illegible] पश्चात् भी वीर राखेचा एवं पुगलियों ने स्व–पर कल्याणार्थ किये हुए कार्यों [illegible] पता सहज में ही लगाया जा सकता है। इनकी परम्पराओं के द्वारा निर्मित [illegible] भी हस्तगत हुए हैं, वे यथा स्थान दे दिये जावेंगे।

२–राठोड़ अड़कमल कितने ही सरदारों को साथ में लेकर [illegible] से तो अड़कमल अपने साथियों के साथ जंगल में जा रहे थे [illegible] देवगुप्त सूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ [illegible] रहे थे। [illegible] मुनियों (भिक्षुओं) को देख कर सवारों [illegible] हुए हैं। अत शुकन ही अपशुकन है। आज [illegible] लिये भोजन मिलना भी दुष्कर है। किसी ने कहा—[illegible] तो शुभ फल ही सकते हैं। इत्यादि

सूरिजी के निस्पृह, स्पष्ट वचनों को सुनकर रुधिरेच्छुक सवार का मन लज्जा से अवनत होगया। मारे लज्जा के मुंह को नीचा कर वह कहने लगा—महात्मन्! आप आपने सीधे रास्ते पधार जाइये। आपके सूत को हमें किञ्चित् भी दरकार नहीं यदि आपको कुछ देने की इच्छा हो तो आप हमें ऐसा शुभाशीर्वाद दीजिये कि हमारे मन की अभीप्सित अभिलाषाएं शीघ्र ही सफलीभूत हो जाँय। आचार्यश्री ने मनोऽभिलाषा पूरक सर्वदुःख विनाशक परम पवित्र धर्मोपदेश दिया। जिससे उन्होंने भी भविष्य के अभ्युदय की आशा पर सूरिजी के चरणों में नत मस्तक हो जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सूर्यास्त हो जाने से सूरीश्वरजी वृक्ष के एक भाग पर अपना आसन जमा कर प्रतिक्रमणादि मुनीत्व जीवन के नित्य नैमेत्तिक कार्यों में संलग्न हो गये और इधर अड़कमलादि राठोड़ सवार भी वहीं पर स्थित हो गये।

रात्रि में कुंकुम[1] देवी ने अड़कमल को स्वप्न मे कहा कि इस जगह भूमि के अन्दर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा है अतः प्रतिमाजी को निकाल कर यहां पर शीघ्र ही मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर देना। देवी के उक्त कथन को सुन अड़कमल ने पूछा—आपके कथनानुसार मन्दिर तो बनवा दू पर मेरे पास तदनुकूल द्रव्य नहीं हैं अतः उसके लिये भी तो कोई सुलभ साध्योपाय होना चाहिये। देवी ने कहा—इस विषय की जरा भी चिन्ता न करो—प्रतिमाजी के पास ही अक्षय निधान भूगर्भ मे-स्थित है उसे निकाल कर अविलम्ब यह शुभ कार्य प्रारम्भ कर देना। अड़कमल ने देवी के वचनो को 'तथास्तु' कह कर स्वीकार किया। देवी भी अदृश्य हो पुनः स्वनिर्दिष्ट स्थान पर लौट आई। इस स्वप्न के समाप्त होते ही अड़कमल की आंखें खुल गई। वह प्रातःकाल शीघ्र ही उठकर आचार्यश्री के पास आया और परम कृतज्ञता पूर्वक रात्रि मे आये हुए स्वप्न का हाल निवेदन किया। आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर मे फरमाया—अड़कमल। आप परम भाग्यशाली हैं। देवी की आप पर पूर्ण कृपा है। इस कार्य को करके तो अवश्य ही पुण्योपार्जन करना पर देवी का नाम भी साथ ही मे सदा के लिये भू-मण्डल में अमर कर देना। इस पर अड़कमल ने अत्यन्त दीनता पूर्वक कहा—पूज्य गुरुदेव! मैं तो एक पामर-अधर्म-जघन्य जीव हूँ। यह सब तो आपकी ही उदार कृपा का परिमाण है!

तत्क्षण ही आचार्यश्री को साथ में लेकर अड़कमल देवी के किये हुए संकेत स्थान पर गया। भूमि को खोदी तो देवी के कहे हुए वचनानुसार एक भव्य पार्श्वनाथ प्रतिमा दीख पड़ी। दूसरे ही क्षण प्रतिमाजी के वाम पार्श्व को खोदा तो एक निधान भी निकल गया। बस, फिर तो था ही क्या? अड़कमल की सकल हृदयान्तर्हित अभिलाषाएं पूर्ण हो गई। अब तो चतुर शिल्पज्ञों को बुलवाकर एक ओर तो मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया और दूसरी ओर नया नगर बसाने का कार्य। कुंकुम देवी के दर्शन व स्वप्न के कारण मन्दिर का नाम कुंकुम विहार व नगर का नाम देवीपुरी रखने का निर्णय किया गया।

आचार्यश्री ने उक्त घटना के पश्चात् शीघ्र ही अन्य प्रान्तों की ओर विहार करना प्रारम्भ कर दिया जब तीन वर्षों के पश्चात् मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न होगया तो अड़कमल ने आचार्यश्री को बुलवाकर बड़े धूम धाम से—महोत्सव पूर्वक मन्दिर व नगर की प्रतिष्ठा करवाई। कुंकुम देवी की कुलदेवी स्थापित की अतः देव गुरु कृपा से देवीपुरी भी थोड़े ही समय में अच्छा आबाद हो गयी। राव अड़कमल के एक पुत्र हुआ जिस का नाम कुंकुम कुंवर रक्खा। बाद में अड़कमल के क्रमशः पांच पुत्र व तीन पुत्रियें हुई।

इनका समय पट्टावली निर्माताओं ने वि० सं० ८८८ का लिखा। अड़कमल का मूल स्थान कन्नौज था।

अड़कमल के पुत्र कुंकुम ने श्रीशत्रुञ्जय का बड़ा भारी संघ निकाला। स्वधर्मी बन्धुओं की लाखों मुद्रिकाओं की पहिरावणी दी तथा और भी कई शुभ कार्य किये जिससे कुंकुम की धवल कीर्ति दूर २ के प्रदेशों में फैल गई। इन की सन्तान परम्परा भी क्रमशः कुंकुम जाति के नाम से पहिचानी जाने लगी। वंशावलियों में इनका विस्तार इस प्रकार लिखा है—

१—मनुष्य के पुण्य प्रबल होते हैं तब बिना प्रयत्न ही देव देवी सहायक बन जाते हैं।

९—जावलिया—यह नाम हंसी मस्करी या उपहास मे पड़ा है।

इस जाति में मुत्सद्दी एवं व्यापारी बड़े २ नामी नररत्न हुए हैं। मेरे पास जो वंशावलियें वर्तमान उनका टोटल लगाकर देखा गया तो—

३९१—जैन मन्दिर बनाये जीर्णोद्धार कराये। ८१—धर्मशालाएं बनवाई।

८५—बार संघों को निकाल कर तीर्थ यात्रा की। १०१—बार श्रीसंघ की पूजा कर पहिरावणी दी।

६—आचार्यों के पट्ट महोत्सव किये। ३—बार दुष्काल में शत्रुकार खुलवाये।

इस जाति की वंशावलियो मे वि० सं० १९०५ तक के नाम लिखे हुए हैं। ऊपर जिन सत्कार्यों एवं धर्मकार्यों का उल्लेख किया गया है वह एक ग्राम या कुटुम्ब के लिये नहीं अपितु इस जाति के तमाम धर्मवीरों के लिये जो मेरे पास की वंशावलियों में हैं लिखे गये हैं।

एक समय आचार्यश्री अर्बुदाचल की ओर विहार कर रहे थे तो एक गिरिकन्द्रा के पास देवी के मन्दिर में बड़ा ही रव शब्द हो रहा था उन्होने सुनकर अपने कतिपय शिष्यो के साथ वहाँ गये तो कई बकरों को काट रहे और बहुत से बकरे भैंसे थर थर काम्प रहे थे। सूरीजी ने उस करुणाजनक दृश्य को देखकर बड़ी ही निर्डरता पूर्वक उन लोगों को उपदेश दिया। बहुत तर्क वितर्क के पश्चात् राव विनायक पर सूरीजी के उपदेश का कुछ प्रभाव पड़ा और उसने हुक्म देकर शेप बकरे भैंसो को अभयदान पूर्वक छोड़ दिये। जब एक मुख्य सरदार पर असर हुआ तो शेप तो बिचारे कर ही क्या सके? राव विनायक सूरिजी से प्रार्थना कर अपने ग्राम भंभोरिया में ले गये। सूरिजी ने भी लाभालाभ का कारण जान वहाँ पर एक मास की स्थिरता करदी और अहिंसामय उपदेश देकर राव विनायक के साथ हजारो क्षत्रियों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बना लिये। राव विनायक ने अपनी जागीरी के २४ ग्रामो में उद्घोपणा करवादी कि कोई भी लोग विना अपराध किसी जीव को नहीं मारे इत्यादि।

राव विनायक ने अपने ग्राम में भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाकर समयान्तर आचार्य देव के करकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। पट्टावलीकारो ने इस घटना का समय वि० सं० ९३३ का लिखा है तथा आपकी वंशावली भी लिखी है।

आचार्य देव के ५५ वर्षों के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ

१—पीलाडी के सुघड़ जाति के शाह गोमा ने भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर करवाया
२—नागोली के श्रेष्ठि " " रामा ने भ० पार्श्वनाथ का " "
३—देवजग्राम के मल्ल " " शोभा ने भ० महावीर " " "
४—नागपुर के कुम्मट " " शादुल ने " " "
५—पद्मावती के प्राग्वट " " संगण ने " " "
६—माण्डवपुर के " " " भीमा ने भ० शान्तिनाथ " "
७—उंसाणी ग्राम के " " " भोमा ने " " "
८—राजलपुर के श्रीमाल " " चोखाने भ० पद्मप्रभु " "
९—सोहागाटी के सुचंति " " चतरा ने भ० अजितनाथ " "
१०—थानपुर के गुलेचा " " छाजू ने भ० पार्श्वनाथ " "
११—जावलीपुर के दाखा " " छहाड़ ने " " "
१२—ब्रह्मपुरी के मोसाला " " नोढ़ा ने " " "
१३—शिवपुरी के लघुश्रेष्ठि " " गुणाढ़ ने भ० महावीर " "
१४—हालण ग्राम के देसरड़ा " " पुरा ने " " "
१५—मुरकी ग्राम के श्रीमाल " " नोधण ने " " "
१६—आनन्दपुर के " " " नागड़ ने " " "
१७—डामरेलपुर के " " " देपल्ल ने वीसविहरमान " "
१८—नरवार के पल्लीवाल " " धरमण ने अष्टपद " "
१९—रणथंभोर के पोकरणा " " जेहल ने भ० महावीर " "
२०—चत्रीपुर के रावल " " देशल ने " " "
२१—बीजोड़ीग्राम के अग्रवाल " " मेंकरण ने भ० शान्तिनाथ " "
२२—आघाट नगर के कुलहट " " नांनग ने भ० नेमिनाथ " "
२३—रत्नपुरा के कोपरा " " गोसल ने भ० आदीश्वर " "
२४—पल्हिकापुरी के नाहटा " " अजड़ ने भ० धर्मनाथ " "
२५—भृगुपुर के भुतेड़ा " " आखा ने भ० मल्लिनाथ " "
२६—सोपार पट्टन के बलहारांका " " राखेचा ने भ० शान्तिनाथ " "
२७—पद्मपुर के करणावट " " मोकल ने भ० महावीर " "
२८—रूणावती के चिचट " " सांगा ने " " "
२९—कुन्तीनगरी के भुंरट " " चांपा ने " " "
३०—दर्पपुर के तोडियाणी " " पेथा ने भ० पार्श्वनाथ " "
३१—बेनातट के भटेवरा " " संकला ने " " "

आचार्यश्री के ५५ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—चन्द्रावती के प्राग्वट लाखा ने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला
२—उपकेशपुर के श्रेष्ठिवर्य दाना ने " " "
३—नागपुर के चोरडिया जैमिग ने " " "

४—सोपार पट्टन से श्रीमाल सागा ने ,, ,, ,,
५—ताम्बावती से राका नरसिंग ने ,, ,, ,,
६—चदेरी से करणावट लाधासोभा ने ,, ,, ,,
७—आघाट नगर से पारख आल्हण ने ,, ,, ,,
८—भवानीपुर से नाहटा जोगड ने ,, ,, ,,
९—खटकूप नगर से कनोजिया हरपाल ने ,, ,, ,,
१०—मथुरापुरी से सुरट देदा काना ने ,, ,, ,,
११—मालपुर से सुचेति कुम्भा रामा ने ,, ,, ,,
१२—भद्रावती से प्राग्वट नाथा ठाकुरसी ने ,, ,, ,,
१३—शिवनगर से मंत्री कोरपाल ने ,, ,, ,,
१४—बनारसी से समदड़िया गजा ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला
१५—खडेला नगर से श्रीमाल सूरजन ने श्री शत्रुंजय ,, ,,
१६—पाल्हिका से भटेवरावाना ने ,, ,, ,,
१७—कोरंटपुर से प्राग्वट राजा ने ,, ,, ,,
१८—पद्मावती से प्राग्वट कुपा ने ,, ,, ,,
१९—नागपुर के तातेड गोमा ने सं० ८४७ में दुष्काल पड़ा जिसमें [illegible] भाइयों एवं निराधार पशुओं के प्राण बचाये।
२०—पाल्हिका के प्राग्वट रामाने सं० ८५२ मे बड़ा भारी दुष्काल पड़ा जिसमें [illegible]
२१—उपकेशपुर के श्रेष्ठि गोपाल ने सं० ८६४ में भयंकर दुष्काल पड़ा जिसमें [illegible] पशुओं को घास दिया।
२२—मेदनिपुर के जापड़ा रावल ने एक वापी बनाई जिसने [illegible]।
२३—ब्रह्मपुरी के श्रीमाल कर्मा की विधवा पुत्री रानी ने एक तलाव [illegible]।
२४—जोगणीपुर के चंडालिया नेणसी की माता ने एक तलाव [illegible] द्रव्य व्यय किया।
२५—उपकेशपुर के देवरड़ा भीमसिंह युद्ध में काम आया उनकी [illegible]
२६—चन्द्रावती राणा जिस युद्ध में काम आया उनकी स्त्री [illegible]
२७—राजपुरा का मंत्री राणक युद्धमें काम आया उनकी स्त्री [illegible]
इत्यादि वंशावलियों से संक्षिप्त से नामावली मात्र लिखी गई है।

सचेती कुल तिलक आप थे, पट्ट तेत्तालीसवां पाना था।
देव गुप्त सूरीश्वर जिन का, देशों में [illegible]।
नृपति भ्रमर चरण कमलों में, [illegible]।
विद्वता की धाक सुनकर, [illegible]।

॥ इति भगवान पार्श्वनाथ के पट्ट [illegible] आचार्य देवगुप्त सूरि [illegible]

४४-आचार्य-श्रीसिद्धसूरि (९वें)

वीर श्रेष्ठिकुले तु हीरकसमः सिद्धाख्यसूरिर्महान् ।
दक्षो वादि समूहमानगजतानाशे सुतीक्ष्णाङ्कुशः ॥
नित्यश्चैव तु राजमण्डलगतः कृत्वा परास्तान् परान् ।
लब्धाऽलभ्ययशश्च धर्मविजयं सम्पाद्य पूज्योऽभवत् ॥

परम पूज्य आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी म० जैन धर्म रूप शुभ्र गमन में सूर्य की भांति प्रकाश करने वाले, प्रखर विद्वान्, अतिशय प्रभावशाली, जिनधर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपश्री ने विद्या सम्पादन करने में जितनी निपुणता, दक्षता एवं कार्य कुशलता से काम लिया वैसे ही ज्ञान दान करने में, शास्त्राध्ययन करवाने में एवं तात्विक सिद्धान्तों के मर्म को समझाने में चातुर्यकला परिपूर्ण पाण्डित्य का परिचय दिया। ज्ञान दान की अत्यन्त उदारवृत्ति के साथ ही साथ तपश्चर्या रूप कठोर तपश्चरण को अङ्गीकार करने में भी आप कर्मठ महात्मा थे। तपस्तेजपुञ्ज के अतिशय अवर्णनीय प्रभाव से प्रभावित हुए सुरासुरदैत्यदानवेन्द्र आदि से आप पूजित पादपद्म थे। आपश्री के चरणारविन्द मकरन्द के अभिलाषी मिलिन्द आपश्री की ज्ञान, तप रूप सौरभ से आकर्षित हो सदैव सेवा के लिये पिपासुओं की भांति उत्कण्ठित एवं लालायित रहते थे। तपश्चर्यादि संयमित जीवन की कठोरता के कारण कई विद्याओं को आप सिद्ध कर चुके थे। सारांश आपके पावन जीवन का अवतरण भी लोक कल्याणार्थ ही हुआ। पट्टावली निर्माताओं ने आपके जीवन के विषय में विशद् प्रकाश डाला है किन्तु ग्रन्थ विस्तार भय से मैं यहाँ संक्षेप से ही लिख देता हूँ।

मरुधर भूमि के अलंकार और स्वर्ग के सदृश डिड्डपुर नाम का एक अत्यन्त रमणीय नगर था। वहाँ के निवासी धनधान्य से बड़े ही समृद्धिशाली और इष्टबली थे। व्यापार में तो वे इतने अग्रसर थे कि देश विदेश आदि में उनका व्यापार प्रबल परिमाण में चलता था। व्यापारिक उन्नति के मुख्यतया न्याय, सत्य और पुरुषार्थ रूप तीन साधन हैं व्यापारिक अवस्था की प्रबलवृद्धि के साथ ही साथ उक्त तीनों ही साधन प्रचूर परिमाण में वृद्धि गत हो रहे थे। अतः वहाँ के सब लोग सब तरह से सुखी एवं आनंदित थे। नगर के अन्दर व बाहिर कई जिन मन्दिर थे जिनके उच्च शिखरों के स्वर्णमय कलश मध्यान्ह में सहस्र राशि की प्रखर रश्मियों से प्रदर्शित हो चमकते थे। पवन की तीव्रता के साथ ही साथ मन्दिर की उत्तम पताकाएं फहराती हुई जैन धर्म के भावी अभ्युदय का सूचन कर रही थीं। उस नगर के प्रमुख व्यापारियों में अधिक लोग उपकेशवंश के ही थे। इन्हीं में श्रेष्ठि गोत्रीय शाह लिम्बा नामक एक सेठ बड़ा ही विख्यात था। आपकी गृहदेवी का नाम रोली था। आप अपने न्यायोपार्जित शुभ द्रव्य का शुभ स्थानों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल किया करते थे। तदनुसार आपने तीन बार तीर्थों की यात्रार्थ वृहत् संघ निकाल कर अक्षय पुण्यराशि का सम्पादन किया। आगत स्वधर्मी भाइयों को स्वर्णमुद्रिकाएं एवं अमूल्य वस्त्रों की पहिरावणी दी साथ ही बड़े बड़े (जीर्णोद्धार) किये। याचकों को पुष्कल दान दिया। इस प्रकार और भी अनेक धर्म कार्य कर पुण्य सम्पादन किये। स्वधर्मी भाइयों की ओर तो आपका सदैव लक्ष्य ही रहता था अतः जब कभी किसी स्वधर्मी बन्धु को विशेष परिस्थिति में आप अवगत होते उसे हर तरह से सहायता पहुँचाने का प्रयत्न

समझदारो का तो सर्वप्रथम यही कर्तव्य हो जाता है कि वे मोक्षमार्ग की सुष्ठुप्रकारेण आराधना करे। मोक्षमार्ग की आराधना या चारित्रवृत्ति की उत्कृष्टता कोई असाध्य वस्तु नही हैं। इसमे तो केवल भावो को ही मुख्यता है। सांसारिक विषय कषायो की ओर से मुंह मोड़कर आत्मोन्नति की ओर लक्ष्य दौड़ाने से आत्म श्रेय का अनुपमानन्द सम्पादन किया जा सकता है। आप लोग जितना कष्ट धनोपार्जन एवं कौटुम्बिक पालन पोषण व रक्षण के लिये उठाते है उसमे से एक अंश जितना कष्ट आत्मोन्नति के कार्य मे उठाया करें तो मोक्षमार्ग की आराधना बहुत ही सुगमता पूर्वक की जा सकती है। शास्त्रकारों ने फरमाया है—

णाणं च दंसणं चेव चारित्तं च तवोतहा। एय मग्गमणुपत्ता जीवा गच्छन्ति सोग्गइं॥

अर्थात—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारो की आराधना करने से मोक्षमार्ग की आराधना होती है। यदि मोक्ष के उक्त चार अङ्गो की जघन्य आराधना भी की जाय तो आराधक जीव १५ भवों मे तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने उपस्थित जन समाज को वैराग्यमय एवं मार्मिक उपदेश दिया कि सभा में आये हुए सभी लोगों के हृदय मे वैराग्य की लहरें हिलोरें खाने लग गई। उन्हे संसार अरुचिकर एवं घृणास्पद ज्ञात होने लगा। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से सब लोगों के विचार तो विचारों में ही विलीन होगये पर शा० लिम्बा के पुत्र पूनड़ के हृदय पर उसका गम्भीर असर हुआ। उसे क्षण मात्र भी संसार मे रहना भयानक ज्ञात होने लगा। वह सोचने लगा—सूरिजी का कहना अक्षरशः सत्य है। यदि प्राप्त स्वर्णावसर का सदुपयोग मोक्ष मार्ग की आराधना मे न किया जाय तो जीवन की सार्थकता या विशेषता ही क्या है? ऐसे अवसर पुण्य की प्राप्ति प्रबलता से ही सम्भव है अतः समय को सांसारिक विषय कषायों मे खो देना अयुक्त है। इस प्रकार के वैराग्य की उन्नत भावनाओं मे आचार्यश्री का व्याख्यान समाप्त होगया। सब लोगों ने वीर जयध्वनि के साथ अपने २ घरो की ओर प्रस्थान किया। पुनड़ भी विचारों के प्रवाह में बहता हुआ अपने घर गया पर उसके मुख पर प्रत्यक्ष झलकती हुई वैराग्य की स्पष्ट रेखा छिपी नहीं सकी। उसने जाते ही माता पिताओ से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी। पर वे कब चाहते थे कि गार्हस्थ्य जीवन का सकल भार वहन करने वाला पूनड़ उन सबों को छोड़ कर बातों ही बातो में दीक्षा लेले। उन्होने पूनड़ को मोह जनक विलापों मे संसार में रखने का बहुत प्रयत्न किया पर जिसको आत्मस्वरूप का सद्ज्ञान हो गया वह किसी भी प्रकार प्रलोभन मे भी संसार रूप कारागृह में नहीं रह सकता है। पुनड़ का भी यही हाल हुआ। पानी में लकीर खेंचने के समान माता-पिताओंके समझाने के सकल प्रयत्न निष्फल हुए। पुनड़ के वैराग्य की बात सारे नगर भर मे फैल गई। कई महानुभाव तो पूनड़ के साथ दीक्षा लेने को भी उद्यत हो गये। सूरिजी के त्याग वैराग्यमय व्याख्यान जल ने वैरागियों के वैराग्यांकुर को और प्रस्फुरित एवं विकसित कर दिया। आखिर वि० सं० ८५० माघ शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन शा० लिम्बा के महामहोत्सव पूर्वक वैरागी पूनड़ आदि १६ नरनारियों को सूरिजी ने भगवती जैन दीक्षा दे पूनड़ का नाम कल्याणकुम्भ रख दिया। मुनि कल्याणकुम्भ ने भी २२ वर्ष पर्यन्त गुरुकुलवास में रह कर वर्तमान साहित्य का गहरा अध्ययन किया। आचार्य पद योग्य सर्वगुण आचार्यश्री की सेवा मे रहकर सम्पादित कर लिये। अतः श्रीदेवगुप्तसूरि ने अपने अन्तिम समय में कल्याणकुम्भ मुनि को उपकेशपुर मे श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरि पदार्पण कर आपका नाम परम्परानुसार सिद्धसूरि रख दिया। पट्टावलीकारों ने आपके सूरिपद का समय वि० सं० ८९२ माघ शुक्ला पूर्णिमा लिखा है।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महान प्रतिभाशाली उग्रविहारी, धर्मप्रचारक आचार्य हुए। आपके त्याग, वैराग्य की उत्कृष्टता एवं भावों की उच्चता का जन समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता था। आपके शासन समय में [illegible] ने उग्र रूप धारण कर लिया था पर आपके हितकारी उपदेश से [illegible] क्रियाओं

आपने अपने व्याख्यान मे ध्येय व ध्यान के विषय मे जो कुछ फरमाया था उसे मैं अच्छी तरह से समझना चाहता हूँ। सूरिजी ने भी ईश्वर के सत् स्वरूप को समझाते हुए कहा रावजी !

प्रत्यक्षतो न भगवान् ऋषभो न विष्णु रालोक्यत न च हरो न हिरण्य गर्भः
तेषां स्वरूप गुणमागम सम्प्रभावात। ज्ञात्वा विचार मत कोऽत्र परापवादः॥

अर्थात्—इस समय प्रत्यक्ष मे न तो भगवान् ऋषभ आदि देव हैं और न भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ही हैं, पर उनके जीवन के विषय को आगमो से तथा उनकी आकृति (मूर्ति) से उनकी पहिचान की जा सकती है कि ईश्वरत्व गुण किस देव मे है ? जिस देव में राग, द्वेष, मोह प्रेम, क्रीड़ा, इत्यादि कोई भी विकार नहीं वही सच्चा देव है। उनकी ही भक्ति, भजन, उपासना करने से जीवों का कल्याण होता है। इस तरह ईश्वर के सकल गुणों का आचार्यश्री ने खूब ही स्पष्टीकरण किया।

आचार्यश्री का कहना राव सालू के समझ मे आगया। उसने अपने कुटुम्ब सहित जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। अतः प्रभृति वह वीतराग देव का अनन्य भक्त व परमोपासक बन गया। राव सालू जैसे द्रव्य सम्पन्न था वैसे पुत्रादि विशाल परिवार का स्वामी भी था। उसके पाँच सुयोग्य, वीर पुत्र थे। राव सालू को आचार्यश्री के व्याख्यान मे इतना रस आता था कि वह आचार्यश्री के साथ धर्मालाप करने में अपने बहुत से समय को लगा देता था। धर्म प्रेम के पवित्र रंग से वह रंगा गया। जैन धर्म के प्रति उसकी अपूर्व श्रद्धा एवं दृढ़ अनुराग हो गया। धर्म का प्रभाव तो उस पर इतना पड़ा कि-राव सालू ने भगवान ऋषभदेव का एक मन्दिर बनवाया। शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा के लिये संघ निकाल कर स्वधर्मी भाइयों को पहिरावणी दे अपने जीवन को कृतार्थ किया। क्रमशः सब तीर्थों की यात्रा कर अतुल पुण्य सम्पादन किया। इस तरह राव सालू ने अपने जीवन मे अनेक धर्म कार्य किये। राव सालू की सन्तान सालेचा जाति के नाम से पुकारी जाने लगी। इस घटना का समय वंशावलियों में वि० सं० ६१२ का लिखा है। सालेचा जाति का वंशावली बहुत ही विस्तार पूर्वक मिलती है—तथाहि—

राव सालू वि० सं० ६१२

- माधू (पार्श्वमन्दिर) (शत्रुञ्जय संघ)
  - [illegible] [illegible] अन्नो मानो जैतो खेतो गोकल (शत्रुञ्जय संघ)
- सांगण (व्यापार)
  - वीरम गगो देवो नारायण भीमो
- रावल (व्यापार)
  - दारो झालो जोगड़ (महावीर का मन्दिर)
- नोंधण
  - अरसी आदू [illegible]
- मुरारी
  - कोक [illegible]

(आगे बहुत विस्तार से है)

इनके वैवाहिक सम्बन्ध के लिये वंशावलीकार कहते हैं कि राजपूतो और उपकेशवंशियों दोनों के ही साथ इनका विवाह सम्बन्ध था।

मेरे पास जो वंशावलियें वर्तमान हैं उनसे पाया जाता है कि सालेचा जाति के लोग व्यापारादि के कारण बहुत से ग्रामों मे फैल गये थे। बोहरगतें करने से इनको सालेचा बोहरा भी कहते है। इस जाति के उदार नररत्नो ने अनेक ग्रामो मे मन्दिर बनवाये। कई बार तीर्थ यात्रार्थ सघ निकाले। स्वधर्मी भाइयो को पहिरावणी मे पुष्कल द्रव्य देकर वात्सल्य भाव प्रकट किया। याचको को तो इतना दान दिया कि उन लोगों ने आपके यशोगान के कई कवित्त एव गीत बनाकर आपकी धवल कीर्ति को अमर बना दिया।

तुगड गौत्र—बाघमार—बाघचार जाति—तुगी नगरी मे सुहड़ राजा राज्य करता था। वह ब्राह्मण धर्म का कट्टर उपासक था। उसने ब्राह्मणो के उपदेश से एक यज्ञ करने का निश्चय किया था, और शुभ मुहूर्त में यज्ञ का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उस यज्ञ के निमित्त हजारो मूक पशु एकत्रित किये गये थे। पुण्यानुयोग से उसी समय आचार्यश्री सिद्धसूरिजी भू-भ्रमण करते हुए तुगी नगरी मे पधार गये। जब आपको मालूम हुआ कि यहाँ यज्ञ मे हजारो जीवो की बलि दी जावेगी तब तो आपका हृदय पशुओं की करुणा [illegible] स्थिति से भर गया। आप बिना किसी सकोच के राजा को अहिंसा धर्म का उपदेश देने के लिये राज सभा में पधार गये। राज सिहासन से उठ कर वन्दन किया सूरिजी ने धर्म लाभ आशीर्वाद देकर फरमाया कि—राजन्! महान पवित्र दया के सागर स्वरूप अनेक महापुरुषो का स्थान—इक्ष्वाकु (सूर्य) वंश मे उत्पन्न होकर भी अनर्थ परिपूर्ण यह क्या अपन्य कार्य कर रहे है?

राजा—महात्मन्! वर्षा के अभाव से गत वर्ष दुर्भिक्ष पड़ा था और इस वर्ष भी [illegible] दिखलाई पड रहे है अत ब्राह्मणो के कहने से देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये [illegible] किया जा रहा है। देवी देवताओ के सन्तुष्ट होने पर [illegible] शान्ति एव आनन्द का नवीन सौरभ लहराने लगेगा।

दे दिया। वे बेचारे निरपराधी मूक जीव भी आचार्यश्री का उपकार मानते हुए व तुङ्गीपुर नरेश को सहृदयता पूर्वक आशीर्वाद देते हुए चले गये और अपने २ बाल बच्चों से उत्सुकता पूर्वक मिले।

जब यह सम्वाद स्वार्थलोलुपी ब्राह्मणों को मिला तो वे एक दम निस्तेज हो गये। उनके होश हवास उड़ गये। उनकी लम्बी चौड़ी सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फिर गया। वे सबके सब उद्विग्न चित्त हो राजा के पास आये और कहने लगे—नरेश! आपने नास्तिकों के कहने में आकर यह क्या अनर्थ कर डाला? गत वर्ष तो दुष्काल पड़ा ही था किन्तु इस वर्ष जो दुष्काल पड़ गया तो सब दुनियाँ ही यम का कवल बन जायगी। देवी देवताओं को रुष्ट होने पर तो न मालूम क्या २ दुःख सहन करने पड़ेंगे। राजन्! किसी क्षुधातुर व्यक्ति के सामने पट्रस संयुक्त भोजन का थाल रखकर पुनः खेंच लेना कितना अयुक्त एवं भयङ्कर है? आपने भी तो यही कार्य यज्ञ को प्रारम्भ कर देवी देवताओं के लिये किया है। प्रभो! अभी तक तो कुछ भी नहीं बिगड़ा है। अभी भी आप पशुओं को मंगवा कर देवताओं को यज्ञ विहित बली देकर जन समाज को सुखी बना सकते हैं। यह नृपोचित परमपरागत धर्म भी है। राजन्! आपके पूर्वजों ने भी ऐसा ही किया व आपको भी ऐसा ही करना चाहिये।

ब्राह्मणों ने हर एक प्रकार से राजा को समझाने में कमी नहीं रक्खी। भावी भय व यज्ञ से होने वाले सुख रूप प्रलोभन पाश में बद्धकर स्वस्वार्थ साधना का उन्होंने सफल प्रयोग किया पर अहिंसा के रङ्ग में रंगे हुए राजा पर उनके वचनों का किञ्चित भी असर नहीं हुआ। राजा के हृदय मे तो अहिंसा भगवती ने अपना अडिग आसन जमा लिया था अतः उसने साफ शब्दों मे कह दिया—पशुवध रूप यज्ञ करवा कर भयङ्कर पाप राशि का उपार्जन करना मुझे इष्ट नहीं है। कुछ भी हो ऐसा हेय-निन्दनीय कार्य अब मेरे से नहीं किया जा सकेगा। राजा का इस प्रकार एक दम निराशाजनक प्रत्युत्तर सुनकर उद्विग्न मन हो ब्राह्मण स्व-स्थान चले गये।

इधर राजा ने सूरिजी को बुलाकर कहा—पूज्य महात्मन्! ब्राह्मण अप्रसन्न हो चले गये—इसकी तो मुझे किञ्चित् भी चिन्ता नहीं पर वर्षा जल्दी होनी चाहिये अन्यथा ब्राह्मण लोग मेरे विरुद्ध बहका कर कहीं नया उपद्रव राज्य मे नहीं खड़ा करदें? भगवन्! दया धर्म के प्रताप से राज्य भर में वर्षा वगैरह के कारण प्रजा को हर तरह से सुख चैन रहा तो मैं आपका शिष्य बनकर तन, मन, धन से पवित्र जैन धर्म की आराधना करूंगा। इस पर सूरिजी ने कहा-राजन्! धर्म एक तरह का कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न है। विशुद्ध श्रद्धा पूर्वक धर्म की आराधना करने से वह हर एक अभिप्सित अभिलाषा को पूर्ण करने वाला व जन्म, मरण के भयंकर चक्र को मिटाकर मोक्ष के शाश्वत् सुख को देने वाला है। इस प्रकार धर्म के महत्व को बहुत ही गम्भीरता पूर्वक राजा को समझाते रहे। राजा भी आचार्यश्री के वचनो पर विश्वास कर वंदन कर स्वस्थान चला आया।

रात्रि मे जब संस्तारा पौरसी भणाकर आचार्यश्री ने शयन किया तो विविध प्रकार के तर्क वितर्कों की उलझन में उलझे हुए सूरिजी को निद्रा नहीं आई। आप सोते सोते ही विचार करने लगे-राजा इस सिद्धान्त से सर्वथा अनभिज्ञ है। अतः इसका निर्णय स्वयं देवी के द्वारा ही करना चाहिये। बस सूरिजी एकाग्र चित्त से देवी का ध्यान करने लगे। देवी सच्चायिका ने भी अवधिज्ञान से आचार्यश्री के मनोगत भावों को देखा तो तत्काल परोक्ष रूप से आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित हो वंदन किया। आचार्यश्री ने भी [illegible] देते हुए उनसे मनोगत भाव पूछे तो देवी ने कहा—पूज्य गुरुदेव! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। आप ही [illegible] बड़ा [illegible] है। वर्षा तो आज से आठवें दिन होने वाली है और इस का यश [illegible] भी आप को ही [illegible] है। देवी के इन वचनों से आचार्यश्री को पूर्ण सन्तोष होगया। देवी भी आचार्यश्री को [illegible]

इधर राज्य द्वार से लौटे हुए निराश ब्राह्मणों ने जनता को बहकाने व भ्रम में डालने का प्रपञ्च प्रारम्भ किया। नगरी में सर्वत्र इस बात का शोर गुल मच गया। हर जगह ये ही चर्चाएं होने लगी। जब क्रमश यह चर्चा राजा के कर्णगोचर हुई तब तो वह एक दम विचार मग्न हो गया। उद्विग्न मन हो वह पुन चलकर सूरिजी के पास आया और बोला—प्रभो! मेरी लज्जा रखना आपके हाथ है। दयानिधान! सारे शहर में ब्राह्मणों ने मेरे विरुद्ध उग्र आन्दोलन मचा दिया है।

सूरिजी—राजन्! आप निश्चिन्त रहें। जो होने का है वह होकर ही रहेगा। आप तो जैन धर्म पर अचल श्रद्धा बनाये रक्खें। धर्म के प्रभाव से सदा आनन्द ही रहेगा। लोग अपनी स्वार्थ साधना के लिये मिथ्या अफवाहें फैला रहे हैं उन्हें उनका प्रयत्न करने दीजिये। हम लोग भी अभी तो यहीं पर ठहरेंगे। आप तो धर्माराधन में दृढ़ चित्त रहिये।

सूरिजी के इस कथन ने राजा के हृदय को कुछ शान्ति का अनुभव करवाया पर ब्राह्मणों के उस प्रपञ्च ने राजा के संकल्प विकल्प की ओर भी वृद्धि कर दिया। क्रमश [illegible] राजा के [illegible] रात्रों में सात दिन निकल गये। पर वर्षा के कुछ भी चिन्ह नजर [illegible] और भी अपाधिक व्याकुलता सताने लगी। इधर आठवें दिन वर्षा के [illegible] जलवृष्टि हुई जिससे राजा ही क्या पर, ब्राह्मणों के सिवाय [illegible] निवासी सूरिजी व सूरिजी के धर्म और राजा की भूरि २ प्रशंसा [illegible] व अहिंसा धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर [illegible]।

सूर्यमल्ल—वि० सं० ६३३ में जैन बना था
|
सलखण—इनके समय से बाघमार गौत्र प्रचलित हुई (भियाणीपुर में)
|
पुहड़—इन्होने सम्मेत सिखरजी की यात्रा के लिये संघ निकाला।
|
भाणु—इन्होने श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर बनवाया।
|
टीवा—इनके दो स्त्रियें थी। (व्यापार करने लगा)

- रुक्मणि (उपकेशवंशीय)
  - कर्मो (महावीर मन्दिर)
    - डावर
    - पोमो
      - खेतो (आगरे गये)
      - जीवो (मथुरा-मन्दिर)
  - मूलो
    - जावड़
  - जोगड़ (मन्दिर)
- सोनल (क्षत्रिय पुत्री)
  - वारीशाल (शत्रुञ्जय संघ)
    - अजित
    - शम्भू
    - दुर्जनशाला (दुष्काल में)

(बहुत विस्तार पूर्वक वंशावली है)

ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से सबकी सब वंशावलियाँ यहाँ उद्धृत नहीं की गई हैं।

इसी बाघमार जाति से कई कारण पाकर फलोदिया, हरसोणा, मिखरणोया, तेलोरा, संघवी, लटबाया, सूरवा, साचा, गोदा, खजाञ्ची आदि कई शाखाएं निकली जिनकी महत्व पूर्ण घटनाओं का उल्लेख वंशावलियों में उपलब्ध हैं। इस जाति के वीर, उदार, दानीश्वरों ने देश, समाज एवं धर्म की बड़ी २ सेवाएं की हैं। मेरे पास वर्तमान वंशावलियों के टोटल के अनुसार बाघमार जाति के श्रीमन्तों ने

२७३ जिन मन्दिर बनवाये तथा कई मन्दिरों के जीर्णोद्धार करवाये।
८७ बार यात्रार्थ तीर्थों के संघ निकाले।
१०४ बार श्रीसंघ को अपने यहां बुला कर श्रीसंघ की पूजा की।
५२२ सप्त धातु की मूर्तियां बनवाई।
२६ मन्दिरों पर सोने के कलश चढ़ाये।
२३ तीन बावड़ियें १६ कूए और सात तालाब खुदवाये।
१४३ वीर पुरुष १३२ युद्ध में काम आये और १८ वीरांगनाएं सतियां हुई।
१७ आचार्यों का पट्ट महोत्सव किया तथा कई बार महोत्सव कर महा प्रभाविक श्री भगवती सूत्र बंचवाया। सात बड़े ज्ञान भण्डार स्थापन करवाये।
७ बार दुष्कालों में करोड़ों का द्रव्य व्ययकर देश बन्धुओं की सेवा की।
इन ऐतिहासिक घटनाओं के सिवाय भी वंशावलियों में इनके कार्यक्रम का विस्तार से उल्लेख मिलता

है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से विशद विवेचन नहीं किया गया है। इस जाति के लोगों को चाहिये कि वे अपनी जाति के महापुरुषों के इतिहास का संग्रह करें।

मंडोवरा जाति—प्रतिहार देवा वगैरह क्षत्रियों को वि० स० ९३५ मे आचार्यश्री सिद्धसूरिजी ने मास मदिरा का त्याग करवा कर जैन बनाये। आपका मूल स्थान माण्डव्यपुर होने से आप मण्डोवरा के नाम से प्रख्यात हुए। इस जाति की एक समय बहुत ही उन्नत अवस्था थी। मण्डोवरा जात्युत्पन्न महापुरुषों ने देश, समाज एवं धर्म के हित करोडो का द्रव्य व्ययकर अपनी उज्वल सुयश ज्योत्स्ना को चतुर्दिक् मे विस्तृत की। इस जाति के वीरो के नाम से रत्नपुर, बोहरा, कोठारी, लाला, पातावत आदि कई शाखाएं निकली। इन शाखाओ के निकलने के कारण एवं समय का विस्तृतोल्लेख वंशावलियो मे मिलता है पर ग्रन्थ बढ जाने के भय से केवल नामावली मात्र लिख दी जाती है। मेरे पास जितनी वंशावलियें है उनके आधार पर मण्डोवरा जाति के श्रीमन्तो ने—

१३६—जिन मन्दिर एव धर्मशालाए बनवाई।
१३—बार तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाले।
७—कूए, तालाब एव बावडी खुदवाई।
१७६—सर्वधातु एव पाषाण की मूर्तियां बनवाई।
२९—बार सघ को अपने यहां बुला, [illegible]।
५—बार पैंतालीस २ आगम लिखवा [illegible]।
१—एक उजमणी मे [illegible]।

इत्यादि, कई महापुरुषों ने अनेक शुभ कार्य कर [illegible]।

मल्ल जाति—खेड़ीपुर के राठौड़ [illegible] को वि० [illegible] देकर जैन धर्म मे दीक्षित किया। आपकी सन्तान [illegible] जाति का इतना अभ्युदय हुआ कि [illegible], कीडेचा, सोनी, सुखिया, मेहता [illegible] दानवीरो ने निम्नलिखित शुभ कार्य किये—

ने शिकार के लिये वाण फेंका। भाग्यवशात् वह वाण स्थण्डिल भूमिकार्थ बैठा हुआ साधु की जंघा में आर पार निकल गया। साधु भी तीर की भयङ्कर पीड़ा से अभिभूत हुआ वहीं पर मूर्छित हो गिर पड़ा। जब दूसरे साधु ने आकर मूर्छित साधु को देखा तो वाण फेकने वाले असावधान शिकारी राजपूत पर उसे बहुत ही क्रोध आया। क्रोधावेश मे मुनि ने दो चार शब्द अत्यन्त ही कठोर कह दिये। अब तो क्षत्रिय का चेहरा भी तमतमा उठा। अपराध स्वीकार करने के बदले उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—जाओ तुम चाहो सो कर सकते हो। यह मुनि यहां क्यों बैठा था। मैं कुछ भी नहीं जानता। यदि तुमने भी ज्यादा किया तो दूसरे वाण से तुमको भी घायल कर दूंगा। इत्यादि—

साधु सीधा वहां से रवाना हो आचार्यश्री के पास आ गया और मूर्छित साधु के विषय का सब हाल कह सुनाया। सूरिजी ने कहा मुनियों ! जैन धर्म के स्वरूप को ठीक समझो। इस साधु के असातावेदनीय कर्म का उदय था। वाण वाला तो केवल निमित्त कारण ही था। मुनि ने कहा-पूज्य गुरुदेव। आपका कहना तो सर्वथा सत्य है पर क्षत्रिय लोग उद्दंडता से अत्याचार कर रहे हैं उनको भी तो किसी न किसी तरह रोकना चाहिये। भगवन् ! यदि क्षत्रियो को इस निष्ठुरता या नृशंसता पूर्ण क्रूरता के लिये कुछ भी हितशिक्षा न दी जायगी तो दूसरे साधु साध्वियो का इधर विचरना भी कठिन हो जायगा। वे हर एक मुनि के प्रति इस तरह का दुष्ट व्यवहार करने मे नहीं हिचकिचावेंगे। आचार्यश्री को भी मुनि का उक्त कथन अक्षरशः वास्तविक ज्ञात हुआ। वे भी इसका सफल उपाय सोचने मे संलग्न होगये।

इधर शिवगढ़ निवासी महाजनसंघ को मुनिराज की मूर्छितावस्था का सब हाल कर्णगोचर हुआ तो उन लोगो के क्रोध एवं दुःख का पार नहीं रहा। शिवगढ़ के जैन अशक्त किंवा वणिकोचित संग्राम भीरु नहीं थे। वे क्षत्रियो का सामना करने में बड़े ही बहादुर एव शूरवीर थे। उनकी संख्या भी शिवगढ़ में कम नहीं थी। श्रेष्ठि कहलाने वाले वे धर्मानुयायी ओसवाल जैसे संख्या मे अधिक थे वैसे वीरता में भी वे प्रसिद्ध थे। उनकी तीक्ष्ण तलवार चलाने की दक्षता ने बड़े २ युद्धविजयी योद्धाओ को घबरा दिया था। क्षत्रियत्व का अभिमान रखने वाले राजा लोग भी उन्हें लोहा मानते थे। अतः धर्मावहेलना से दुःखित हृदय वाले महाजनसंघ की कोपान्वित अति भयङ्कर स्थिति होगई। दोनों ओर दो पार्टियें बन गई एक ओर अहिंसाधर्मोपासक जैन महाजनसघ था तो दूसरी ओर क्षत्रिय वर्ग। इस साधारण वार्ता के इस भीषण स्थिति मे पहुंच जाने पर भी महाजनो ने क्षत्रियो से कहा—आप लोग, आप लोगो के द्वारा किये गये अपराध के लिये आचार्यश्री से क्षमायाचना कर लेवें तो इसका निपटारा शान्ति से हो जायगा पर वीरत्व का अभिमान रखने वाले क्षत्रियों को यह स्वीकार करना रुचिकर नहीं ज्ञात हुआ अतः वे तो संग्राम के लिये ही उद्यत होगये। परिणाम स्वरूप इसका निपटारा तलवार की तीक्ष्ण धार पर आपड़ा।

आचार्यश्री के सामने तो दोनो ओर की विकट समस्या आ पड़ी। इधर एक मुनि के लिये पारस्परिक रक्तपिपासु होना उन्हें उचित ज्ञात न हुआ तो उधर शासन की लघुता व जैनियों की अकर्मण्यता भी शासन के लिये घातक ज्ञात हुई। इस विकट उलझन में उलझे हुए आचार्यश्री ने रात्रि में देवी सच्चायिका का स्मरण किया और देवी भी अपने कर्त्तव्यानुसार तत्काल आचार्यश्री की सेवा में उपस्थित होगई। देवी ने वंदन किया और सूरिजी ने धर्मलाभ देते हुए कहा—देवीजी ! यहां बड़ी ही विकट समस्या खड़ी हुई है अब इसका निपटारा किस तरह किया जाय। देवी ने उपयोग लगा कर कहा—गुरुदेव ! इस विषय में आपको किसी तरह से चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। यह मामला तो प्रातःकाल ही शान्ति पूर्वक समाप्त हो जायगा और इतना ही क्यों पर आपको तो इस मामले में सुयश-लाभ ही मिलेगा। इतना कह कर देवी तो वहां से स्वस्थान चली गई। इधर क्षत्रियों ने रात्रि में मांस पकाया। अकस्मात उसमें किसी [illegible] का [illegible] गिर गया। रात्रि में आमन्त्रण, कुमार प्रभृति सकल क्षत्रिय समुदाय ने उस [illegible]

भोज्य का भोजन किया अतः वे सबके सब विष व्यापी शरीर वाले होगये। प्रात काल होते ही लोगो ने उन्हे अचैतन्यावस्था मे देखा तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। कोई कहने लगे-निरपराधी साधु के बाण मारने का यह कटुफल मिला है तो कोई—मन्त्र तन्त्र विशारद साधु समुदाय ने ही कुछ कर दिया है। कोई जैन मुनियो की करामात है। इस प्रकार जन समाज मे विविध प्रकार की कल्पनाओं ने स्थान कर लिया। जब यह बात ओसवालो को ज्ञात हुई तो उन्होने सोचा कि यह तो एक अपने ऊपर कलक की ही बात है अत. शेष बचे हुए मांस की परीक्षा करवानी चाहिये। मांस की परीक्षा करने पर स्पष्ट ज्ञात होगया कि मांस मे विषैला पदार्थ मिला हुआ है।

इतने मे ही किसी ने कहा जैन महात्मा बड़े करामाती होते हैं। उनके पास जाकर प्रार्थना करने से वे सबको निर्विष बना देवेंगे। बस, सब लोग आचार्यश्री के पास आकर करुणाजनक स्वर में प्रार्थना करने लगे। सूरिजी ने भी हस्तागत स्वर्णावसर का विशेषोपयोग करते हुए उन लोगों को धर्मोपदेश दिया तथा देव, गुरु, धर्म की आशातना के कटुफलों को स्पष्ट समझाया इस पर उन लोगों ने अपना २ अपराध स्वीकार करते हुए आचार्यश्री से क्षमा याचना की और कहा-महात्मन् ! यदि आप इन सबों को निर्विष कर देंगे तो हम सब लोग आपश्री का अत्यन्त उपकार मानेंगें। जैसे महाजन लोग आपके भक्त हैं वैसे हम और हमारी सन्तान परम्परा भी आपके चरण किङ्कर होकर रहेंगे। इत्यादि।

महाजनो ने आचार्यश्री के चरणों का प्रक्षालन कर [illegible] सूरीश्वरजी के पुन्य प्रताप से व देवी सच्चायिका की सहायता से वे सब [illegible] बैठ गये। [illegible] के साथ सब ही क्षत्रियो ने आचार्यश्री के चरणो मे नमस्कार किया। सूरिजी ने कहा [illegible] मे साधु तो क्या पर किसी भी निरापराधी जीवों को कष्ट [illegible] परात्मा की रक्षा करना चाहिये। इत्यादि तदानन्तर सूरिजी ने [illegible] केवल चमत्कार देखकर अज्ञातपने से धर्म स्वीकार करने वालों का [illegible] यह सूरिजी ने उन लोगों को इस प्रकार समझाया कि वे [illegible] पवित्र अहिंसामय धर्म एव निस्पृही त्यागी गुरु की ओर आकर्षित होकर [illegible] जैन धर्म स्वीकार कर लिया। इससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। [illegible] का अच्छा प्रभाव पड़ा।

६१—बार तीर्थ यात्रार्थ संघ निकाल संघ को पहिरावणी दी।
११४—बार संघ को घर बुलाकर श्रीसंघ की पूजा की।
७—आचार्यों के पद महोत्सव किये।
१६—ज्ञान भण्डारों में आगम पुस्तकादि लिखवाकर रक्खीं।
११—कूए, तालाब, बावड़ियाँ बनवाई।
८—बार दुष्काल में करोड़ों का द्रव्य व्यय कर शत्रुकार दिये।
४६—वीर पुरुष युद्ध में काम आये और १४ स्त्रियां सती हुईं।

इसके सिवाय भी इस जाति के बहुत से वीरों ने राजाओं के मन्त्री, महामन्त्री, सेनापति आदि पदों पर रह कर प्रजाजनों की अमूल्य सेवा की। कई नरेशों की ओर से दिये हुए पट्टे परवाने अब भी इस जाति की सन्तान परम्परा के पास विद्यमान है।

छाजेड़ जाति का वंश वृक्ष

राव आसल (सोमदेव)
|
कज्जल (महावीर का मन्दिर बनाया)
|
धवल
|
तीर्थों का संघ यात्रार्थ] छाजू [छाजेड़ कहलाये

शाखा १: उदो — कुलधर — अजित (अजितनाथ का मन्दिर) — सावंत — सोढ़ (तीर्थों की यात्रार्थ संघ) — लालो (पार्श्वनाथ का मन्दिर) — तुंगो — माडण — रूपो (घर बुलाकर संघ पूजा) — जावड़ — भामशी (दुकाल में द्रव्य) — सोढो (महावीर का मन्दिर)

शाखा २: धरण — सीमधर — साहरण (पार्श्वनाथ का मन्दिर) — भाणो (शत्रुंजय का संघ) — भोपाल (यहाँ तक राज किया) — धोकल (व्यापार में) — देवो (महावीर मन्दिर) — तारो (यात्रार्थ संघ) — रामसिंह (महामंत्री) — नाहरसिंह — जैतसिंह (यात्रार्थ संघ) — हरिसिंह (दुकाल में दान)

शाखा ३: खूमाण — लालण — भीमसिंह — सज्जनसिंह — शार्दूल — पातो — रांणो — कानो — हामो — मानो — चन्द्रभान — रामचन्द

राव खंगार की—सन्तान परम्परा की सातवीं पुश्त में राव कल्हण हुआ। आपके नौ पुत्रो मे एक सारंग नाम के पुत्र ने केसर कस्तूरी कर्पूर धूप इत्र सुगन्धी तैलादि का व्यापार करने से लोग उनको गान्धी कहने लग गये तब से वे उपकेशवंश मे गान्धी नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे चल कर शाह वस्तुपाल तेजपाल के कारण जाति मे दो पार्टियाँ होगई जैसे छोटाधड़ा बड़ाधड़ा अर्थात् ल्होड़ा साजन और बड़ा साजन, गान्धी जाति मे भी दोनो तरह के गान्धी आज विद्यमान है।

२—दूसरा राव चूड़ा की—सन्तान परम्परा मे राव खेता बड़ा नामी पुरुष हुआ उस पर देवी चक्रेश्वरी की पूर्ण कृपा थी जिससे उसने भंभोर मे भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया तीर्थों का संघ निकाल सब यात्रा की साधर्मी भाइयों को पहरावणी दी तब से खेता की संतान उपकेशवंश में खेतसरा कहलाई। आगे चलकर खेता की परम्रा में शाह नारा ने चन्द्रावती दरबार के भण्डार का काम करने से वे खरभंडारी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

३—तीसरा राव अजड़ की—सन्तान परम्परा में शाह लाधा ने वोरगत जागीरदारों को करज में रकम देन लेन का धंधा करने से वे वोहरा के नाम से मशहूर हुए।

४ चोथा रावकुम्भा की—सन्तान परम्परा की आठवीं पुश्त में शाह सवलो हुआ आपने शत्रुञ्जय गिरनार की यात्रार्थ संघ निकाला। भ० आदीश्वरजी का मन्दिर बनाया। और १४५२ गणधरों की स्थापना करवा कर संघ को वस्त्र सहित एक एक सुवर्ण मुद्रिका पहरावणी दी। उस दिन से लोग आपको गणधर नाम से पुकारने लगे। अतः आपकी सन्तान की जाति गणधर कहलाई। इत्यादि आपका वंशवृक्ष विस्तार से लिखा हुआ है।

ढेलडिया वोहरा—आचार्य सिद्धसूरि के आज्ञावर्ती पं० राजकुशल बहुत मुनियों के परिवार से विहार करते हुए चन्द्रावती नगरी पधार रहे थे। उधर से जंगल से कई घुड़सवार आ रहे थे उन्होंने बड़ वृक्ष के पास भाखरी पर विश्राम लिया। भाग्यवशात् पण्डित राजकुशल भी अपने मुनियो के साथ वटवृक्ष के नीचे विश्राम लिया। उन राजपूतों में से एक आदमी पण्डितजी के पास आकर पूछा आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं? पं० जी ने कहा हम जैन श्रमण हैं और हमारे जाने का निश्चय स्थान मुकर्रर नहीं है। हम धर्म का उपदेश देते हैं जहाँ धर्म का लाभ हो वहीं चले जाते हैं आदमी ने पूछा कि आप भूत भविष्य को या निमित शास्त्र को भी जानते हैं। यदि जानते हैं तो बतलाइये हमारे रावजी के संतान नहीं है आप ऐसा उपाय बतलावे कि हम सब लोगों की मनोकामना पूर्ण हो जाय? पण्डितजी ने अपना निमित ज्ञान एवं स्वरोदय बल से जान गये कि रावजी के पुत्र तो होने वाला है। अतः आपने कहा कि यदि आपके रावजी के पुत्र हो जाय तो आप क्या करेंगे? आदमी ने कहा कि आप जो मुँह से मांगें वही हम कर सकेंगे। जो ग्राम परगना मांगें या धन मांगें? पण्डितजी ने कहा कि हम निस्पृही निर्ग्रन्थो को न तो राज की जरूरत है और न धन की यदि आप के मनोरथ सफल हो जाय तो आप अपने रावजी के साथ सवतारक परम पुनीत जैनधर्म को स्वीकार करें कि जिससे आपका शीघ्र कल्याण हो। आदमी ने जाकर रावजी को सब हाल कहा अतः रावजी भी पण्डितजी के पास आये और पण्डितजी ने रावजी को वासक्षेप दिया और रावजी प्रार्थना कर पण्डितजी को [illegible] नगर [illegible] में ले आये पण्डितजी एक मास वहाँ स्थिरता की हमेशा व्याख्यान होता था रावजी [illegible] [illegible] एवं राज कर्मचारी व्याख्यान का लाभ लिया करते थे। इतना ही नहीं पर [illegible] [illegible] जैन धर्म की ओर झुक गई पर जब तक रावजी जैन धर्म स्वीकार न करें [illegible] [illegible] दूसरे [illegible] [illegible]। खैर एक मास के बाद पण्डितजी वहाँ से विहार कर दिया।

पीछे राव माधवजी की राणी ने गर्भ धारण किया जिससे रावजी वगैरह को मुनिजी के वचन स्मरण मे आने लगे क्रमश. गर्भ स्थिति पूर्ण होने से रावजी के देव कुँवर जैसा पुत्र का जन्म हुआ जिसके खुशी और आनन्द मंगल का तो कहना ही क्या था अब तो रावजी को रह रह कर पण्डितजी की याद आने लगे महाजनो को बुलाकर कहा कि पण्डितजी कहाँ पर हैं तथा उन महात्माओ को जल्दी से अपने यहाँ बुलाना चाहिये ? महाजनो ने कहा उनका चातुर्मास सिन्ध धरा मे सुना था पर वे चातुर्मास मे कही पर भ्रमन नहीं करते है। तथापि रावजी ने अपने प्रधान पुरुषों को सिन्ध मे भेजकर खबर मगवाई वे प्रधान पुरुष खबर लेकर आये कि पण्डितजी का चातुर्मास मालपुर मे है। खैर चातुर्मास के बाद रावजी की अति आग्रह होने से पण्डितजी सोनगढ पधारे रावजी ने नगर प्रवेश का बड़ा ही सानदार महोत्सव किया और रावजी अपने परिवार अन्तेवर और कर्मचर्य के साथ पण्डितजी से जैन धर्म स्वीकार कर लिया इससे जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। रावजी ने अपने नगर मे भ० महावीर का सुन्दर मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सिद्ध सूरिजी ने करवाई। रावजी ने शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ भी निकाला और [illegible] भाइयो को लहणी एवं पहरावणी भी दी उनका रोटी बेटी व्यवहार जैसे राजपूतों के साथ [illegible] महाजन सघ के साथ भी शुरु हो गया इत्यादि—

राव मावोजी की ग्यारवीं पुश्त में शाह [illegible] बड़े ही नामी [illegible] इन्होंने [illegible] में बोरगत (लेनदेन) का धधा किया जिससे लोग [illegible] वीर उदार नर रत्नों ने देश समाज एवं धर्म की [illegible] व्यय किया जिसका उल्लेख वंशावलियों में विस्तार से लिखा है।

ढेलड़िया जाति के कई लोग व्यापार करते [illegible] पर नियुक्त हो राजतन्त्र भी चलाते रहे। इस जाति की [illegible] शाखाएँ भी फेल गई जिसमे एक शाखा के [illegible]।

प्रकार का समाज था पर आप उनको एक रथ के दो पहिये समझ कर शासन रथ को चलाने में बड़ी ही कुशलता से काम लेते थे। अतः आपका प्रभाव दोनों पर समान रूप से था। आप श्री का शिष्य समुदाय भी बहुत विशाल था व उग्रविहारी सुविहित मुनियों की भी कमी नहीं थी। अतः कोई भी प्रान्त उपकेश-गच्छीय मुनियों के विहार से रिक्त नहीं रहता। स्वयं आचार्यश्री भी प्रत्येक प्रान्त मे विहार कर धर्म प्रचारार्थ प्रेषित जन मण्डली को धर्म प्रचार के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। आचार्यश्री इस छोर से उस छोर तक भारत की प्रदक्षिणा कर मुनियों के कार्यों का निरीक्षण करते थे। आपने अपने ६० वर्ष के शासन मे अनेक मुमुक्षुभावुकों को दीक्षा दी। अनेकों अजैनों को जैन बनाये। अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा कर जैन शासन की ऐतिहासिक नींव को दृढ़ की। श्रीसंघ के साथ कई बार तीर्थों की यात्रा कर पुण्य सम्पादन किया। वादियो के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजयपताका को फहरायी।

इस प्रकार आचार्यश्री का जैन समाज पर बहुत ही उपकार है। इस अवर्णनीय उपकार को जैन संघ का प्रत्येक व्यक्ति स्मृति से विस्मृत नहीं कर सकता है। यदि हम ऐसे उपकारियों के उपकार को भूल जावें तो जैन संसार मे हमारे जैसे कृतघ्नी और होंगे ही कौन ? शास्त्रकारो ने तो कृतघ्नता को महान् पाप बतलाया है। इतना ही क्या पर जिस समाज में उपकारी के उपकार को भूला जाता है उस समाज का पतन करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं रुक सकता है। हमारी समाज के पतन का मुख्य कारण भी कृतघ्नत्व ही है।

आचार्यश्री सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में नागपुर के आदित्यनाग गौत्रीय चोरलिया शाखा के परम भक्त श्रद्धा सम्पन्न शाह मलुक के नव लक्ष द्रव्य व्यय से किये हुए महा महोत्सव पूर्वक आदिनाथ भगवान् के चैत्य में चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय मुक्तिसुन्दर को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम परम्परानुसार कक्कसूरि रख दिया। इस शुभ अवसर पर योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान की गई। अन्त में आप अपनी अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये। क्रमशः २४ दिन के अनशन के साथ समाधि पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

पूज्याचार्य देव के ६० वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएँ।

१—चन्द्रपुर	के	प्राग्वटवंशी	जाति के	शाह	मुंजलने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
२—भद्रावती	के	,, ,,	,,	,,	देवाने	,,	,,
३—नरवर	के	श्रेष्ठिगौत्र	,,	,,	कुम्भाने	,,	,,
४—उबकोट	के	चोरड़िया	,,	,,	आसलने	,,	,,
५—त्रिभुवनगढ़	के	नाहटा	,,	,,	हाकाने	,,	,,
६—मानकोट	के	चरड	,,	,,	मोकमने	,,	,,
७—वीरपुर	के	मल	,,	,,	रूपाने	,,	,,
८—[illegible]	के	चंडालिया	,,	,,	धनाने	,,	,,
९—[illegible]	के	कुबेरा	,,	,,	फूआने	,,	,,
१०—दुर्गा	के	पोकरणा	,,	,,	दुर्गाने	,,	,,
११—[illegible]	के	रांका	,,	,,	जाल्हाने	,,	,,
१२—[illegible]	के	डिगड़	,,	,,	पोमाने	,,	,,
१३—[illegible]	के	गुलेच्छा	,,	,,	मानाने	,,	,,
१४—[illegible]	के	मोडियाणी	,,	,,	कुशलाने	,,	,,
१५—[illegible]	के	भूरिया	,,	,,	राजसीने	,,	,,

१६—चाकोली	के	धावड़ा	जाति	के शाह	नेतसीने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
१७—विजापुर	के	आच्छा	,,	,,	रत्नसीने	,,	,,
१८—हथुड़ी	के	भाभू	,,	,,	भीमाने	,,	,,
१९—गुढ़नगर	के	पारख	,,	,,	रणधीराने	,,	,,
२०—नाणापुर	के	सुरवा	,,	,,	पारसने	,,	,,
२१—ब्राह्मणपुर	के	राजसरा	,,	,,	हरखाने	,,	,,
२२—श्रीपुर	के	भावाणी	,,	,,	पुनडने	,,	,,
२३—वीसलपुर	के	भाला	,,	,,	चमनाने	,,	,,
२४—नैवर	के	पोकरण	,,	,,	चतराने	,,	,,
२५—हालोर	के	विंबा	,,	,,	दलपतने	,,	,,
२६—ब्रह्मी	के	चोसरिया	,,	,,	कानड़ने	,,	,,
२७—सारंगपुर	के	मोलागोत्र	,,	,,	मेघाने	,,	,,
२८—वरखेरी	के	उड़कगोत्र	,,	,,	नोढ़ाने	,,	,,
२९—नदपुर	के	दुघड़	,,	,	[illegible]	,,	,,
३०—सारणी	के	वर्धमाना	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३१—भवानीपुर	के	केसरिया	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३२—आघाट	के	श्रीमाल	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३३—वीरपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३४—मालपुर	के	प्राग्वट	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३५—मोकाणी	के	,,	,,	,,	[illegible]	,,	,,
३६—धनपुर	के	,,	,,	,,	[illegible]	,	,,
३७—पल्हिका	के	,,	,,	,	[illegible]	,	,,

इनके अलावा भी वंशावलियों में दीक्षा लेने वाले नर [illegible] है पर मैंने मेरे उद्देश्यानुसार केवल थोड़े से नाम नमूने के तौर पर लिख दिये हैं [illegible] का पता लग जाय कि आपश्री का विहार क्षेत्र कितना [illegible] था।

११—खेरीपुर	के	श्रीमाल	जाति के	शाह	माल्ला ने	भ० शान्तिनाथ का	म० प्र०
१२—सोतलपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	मेराज ने	,, विमलनाथ	,,
१३—पद्मावती	के	प्राग्वटा	,,	,,	सज्जन ने	,, धर्मनाथ	,,
१४—रातगढ़	के	प्राग्वटा	,,	,,	वासा ने	,, अजितनाथ	,,
१५—मालगढ़	के	प्राग्वटा	,,	,,	ईसर ने	,, आदिनाथ	,,
१६—आरडी	के	तातेड़	,,	,,	पासु ने	,, भ० आदिनाथ का	,,
१७—मोटा गांव	के	देसरड़ा	,,	,,	जैता ने	,, महावीर	,,
१८—चत्रीपुरा	के	श्रेष्टि	,,	,,	रामा ने	,, ,,	,,
१९—लुद्रवा	के	चोरलिया	,,	,,	वाला ने	,, ,,	,,
२०—कानोड़ी	के	कोठारी	,,	,,	पैरू ने	,, पार्श्वनाथ	,,
२१—काकपुर	के	सेठ	,,	,,	रूघा ने	,, ,,	,,
२२—खारोली	के	सेठिया	,,	,,	जाला ने	,, ,,	,,
२३—पाटली	के	पल्लीवाल	,,	,,	करण ने	,, नेमिनाथ	,,
२४—गोदाणी	के	पांमेचा	,,	,,	डुगा ने	,, सीमंधर	,,
२५—हंसावली	के	अग्रवाल	,,	,,	भोला ने	,, अष्टापद	,,
२६—मेदनीपुर	के	चौहाना	,,	,,	साहरण ने	,, महावीर	,,
२७—फलवृद्धि	के	बोहरा	,,	,,	सन्तु ने	,, ,,	,,
२८—महमापुर	के	गुदगुड़ा	,,	,,	देदा ने	,, ,,	,,
२९—देवपटण	के	भूरंट	,,	,,	पांचा ने	,, ,,	,,
३०—सोपारपटण	के	कनोजिया	,,	,,	सेला ने	,, पार्श्वनाथ	,,
३१—मुग्धा पाटण	के	डिड्डू	,,	,,	धरण ने	,, शान्तिनाथ	,,
३२—करोली	के	महासेणा	,,	,,	देसलने	,, ,,	,,
३३—भंजाणी	के	टाकलिया	,,	,,	अजड़ ने	,, मल्लीनाथ	,,
३४—मोहलीगाव	के	डांगीवाल	,,	,,	नोंधण ने	,, नेमिनाथ	,,
३५—सुरपुर	के	हिंगड़	,,	,,	अर्जुन ने	,, चौमुखजी	,,

पूज्याचार्य देव के ६० वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—नागपुर	के	चोरड़िया	शाह	सिंहाने	शत्रुंजय	का संघ निकाल	यात्रा की
२—मुग्धपुर	के	श्रेष्टि जाति	,,	भोजाने	,,	,,	,,
३—हनुमानपुर	के	भटेवरा	,,	करमणने	,,	,,	,,
४—[illegible]कापुरी	के	राका-सेठ	,,	नरसिंगने	,,	,,	,,
५—नारदपुरी	के	जाघड़ा	,,	हाल्लाने	,,	,,	,,
६—शिवपुरी	के	संचेती	,,	कैसाने	,,	,,	,,
७—[illegible]	के	कनोजिया	,,	लाखाने	,,	,,	,,
८—भरोंच	के	प्राग्वट	,,	रत्नाने	,,	,,	,,
९—सोपार	के	पोकरणा	,,	सूजाने	,,	,,	,,
१०—[illegible]पुर	के	[illegible]	,,	राणाने	,,	,,	,,

११—उपकेशपुर	के	डागरेचा	,,	आसलने	,,	,,	,,
१२—रत्नपुर	के	वागड़िया	,,	भीमाने	,,	,,	,,
१३—पद्मावती	के	पल्लीवाल	,,	रोडाने	,,	,,	,,
१४—चित्रकूट	के	प्राग्वट	,,	वालाने	,,	,,	,,
१५—डिडूपुर	के	प्राग्वट	,,	धन्नाने	,,	,,	,,

१६—मदनपुर के विरहटगौत्री शाखला की विधवा पुत्री ने एकलक्ष द्रव्य से वापी करवाई।
१७—मालपुर के प्राग्वट जाजा की धर्म पत्नी ने तीन लक्ष मे एक तलाव वनाया।
१८—उपकेशपुर के तातेड़ दाना ने अपने पिता के श्रेयार्थ शत्रुञ्जय पर वावड़ी वन्धाई।
१९—नागपुर के पारख रघुवीर ने गायो चरने की भूमि खरीद् कर गोचर बनाया।
२०—धर्मपुर के डिडू मैकरण ने सदैव के लिये शत्रुकार खोल दिया।
२१—पल्हिकापुरी के मंत्री गुणाकार ने दुकाल में एक करोड़ द्रव्य व्ययकर लोगों को प्राणदान दिया।
२२—हसावली का संचेती लाढूक ने दुकाल मे सर्व [illegible] किया कुलदेवी ने [illegible]।
२३—चन्द्रावती के प्राग्वट भैराको पारस प्राप्त हुआ जिसने जनसंहार काल मे [illegible]।
२४—शिवगढ़ का श्रेष्टि०—सारंगा युद्ध मे काम आया उसकी दो स्त्रियाँ सती हुई [illegible]।
२५—डमरेल का भाद्र गो०—मत्री सल्ह युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२६—उपकेशपुर का चिचट—गणपत युद्ध मे काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—चन्द्रावती का प्राग्वट—मोकल युद्ध मे काम आया [illegible]।
२८—कोरटपुर का श्रीमाल—लाखण युद्ध मे काम आया [illegible]।

चउ चालीसवें सिद्ध सूरीश्वर श्रेष्टि कुल दिवाकर थे,
दर्शन ज्ञान चरित्र धारधि, गुण [illegible] थे।
थे वे पयनिधि करुणा रसके, पतित पावन [illegible] थे,
ऐसे महापुरुषों के सुन्दर, [illegible] थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौवालीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि [illegible] हुए।

४५-आचार्यश्री कक्कसूरि (१०वें)

मूषार्यान्विगस्तु कक्क इति यो सूरिर्मनः सत्कृती ।
सम्मेते शिखरेतु कोटि गणना संख्यात्म वित्तं ददौ ॥
संघायैव च नित्यमुन्नति करो जैनस्य धर्मस्य वै ।
येनाद्यापि तदीय शक्ति ज रविर्देदीप्यतेऽस्मैनमः ॥

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रतापी, प्रखर विद्वान् कठोर तप करने वाले धर्म प्रचारक एवं युग प्रवर्तक आचार्य हुए। आपश्री के जीवन का अधिकांश भाग आत्म-कल्याण या जन कल्याण के काम में ही व्यतीत हुआ। सूरिजी ने विविध प्रान्तों एवं देशों में परिभ्रमण कर जैन धर्म का खूब ही उद्योत किया। पट्टावली निर्माताओं ने आपके पवित्र जीवन का बहुत ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया है पर यहां पर मुख्य २ घटनाओं को लेकर आपके जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाल दिया जाता है।

पाठकवृन्द पिछले प्रकरणों में पढ़ आये हैं कि आचार्यश्री देवगुप्त सूरि के उपदेश से राव गोशल ने जैन धर्म की दीक्षा लेकर सिन्ध धरा पर एक गोसलपुर नाम का नगर बसाया था। आपके जितने उत्तराधिकारी हुए वे सब के सब जैनधर्म के प्रतिपालक एवं प्रचारक हुए। आपकी सन्तान आर्यों के नाम से मशहूर हुई थी। आर्य गौत्रीय बहुत से व्यक्ति व्यापारिक धन्धों में भी पड़ गये थे। उक्त व्यापारी आर्यों में शाह जगमल्ल नाम का एक धनी सेठ भी गोसलपुर में रहता था। आपका व्यापार क्षेत्र बहुत विशाल था। आपने न्याय नीति पूर्वक व्यापार मे पुष्कल द्रव्योपार्जन किया तथा उस द्रव्य को आत्म कल्याणार्थ खूब ही खुले दिल से (उदारवृत्ति से) शुभ कार्यों में व्यय कर अतुल पुण्य राशि को सम्पादन किया। शाह जगमल ने अपने जीवन काल में तीन बार तीर्थो की यात्रार्थ संघ निकाले, कई बार स्वधर्मी बन्धुओं को पहिरावणी में स्वर्ण मुद्रिकादि पुष्कल द्रव्य दिया। दीन, अनाथों को एवं याचकों को तन, मन, धन से सहायता कर शुभ पुण्य राशि के साथ ही साथ सुयश राशि को भी एकत्रित किया। याचकों ने तो कवित्त, सवैयादि छन्दों के द्वारा आपके यशोगान को जग जाहिर कर दिया। पूर्वोपार्जित पुण्योदय की प्रबलता से शाह जगमल द्रव्य में दूसरे धन वैश्रमण थे वैसे कौटम्बिक परिवार की विशालता में भी अग्रगण्य ही थे। आपकी गृहदेवी भी आपके अनुरूप रूप गुण वाली, पातिव्रत नियमनिष्ठ, धर्मप्रिय थी। आपकी धर्मपत्नी का नाम सोनी था। माता सोनी ने अपनी पवित्र कुक्षि से सात पुत्र व चार पुत्रियों को जन्म दे जीवन को सार्थक किया था। उक्त सातों पुत्रों में एक मोहन नाम का पुत्र अत्यन्त भाग्यशाली, तेजस्वी एवं बड़ा भारी होनहार था।

एक बार पुण्यानुयोग से लब्धप्रतिष्ठित श्रद्धेय आचार्यश्री सिद्धसूरिजी म० का आगमन क्रमशः गोसलपुर में हुआ। आपश्री के उपदेश से प्रभावित हो शाह जगमल्ल ने सम्मेत शिखरजी की यात्रा के लिये एक विराट् संघ निकाला। 'छ री' पाली संघ के साथ शाह जगमल्ल का आत्मज मोहन भी था। मोहन की बाल्य वय में ही धर्म की ओर अभिरुचि थी। उसे धार्मिक प्रश्नोत्तरों एवं चर्चाओं में बहुत ही आनंद आता था। अतः वह आचार्यश्री के साथ पैदल ही धर्म चर्चा एवं मनोद्भव शंकाओं का समाधान करता हुआ सब के साथ सम्मेतशिखरजी की यात्रा के लिये चलने लगा। जब उसने पाद विहार के कष्टों का अनुभव किया तो

गोसलपुर का राव जगमल

उन्हें संकल्प विकल्प जन्य नाना तरह का परिताप होता है पर दूसरे ही दिन इस प्रकार की सुख सामिग्री का त्याग कर दीक्षा अङ्गीकार करके अनेक कष्टों को सहन करते हुए भी उन्हें आत्मिकानन्द का वास्तविक अनुभव होता है। पुण्यवंत योग्य सुख शैया पर शयन करने वाले चक्रवर्तियों को पशुओं के ठहरने योग्य कण्टकाकीर्ण स्थान में भी पारमार्थिक सौख्य का भान होता है। वास्तव में परिणामों की उत्कर्षापकर्षता का तारतम्य ही जीवन में सुख दुःख का उत्पादक है। उसी जीव और शरीर के एक होने पर भी विचार श्रेणी की निम्नोन्नतावस्था जीवन की वास्तविक कार्य को विचारों की निम्नोन्नतानुसार परिवर्धित एवं परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार वह भावनाओं में बढ़ता ही गया।

मोहन का वयक्रम अभीतक १८ वर्ष का ही था फिर भी उसका दिल संसार से एक दम विरक्त हो गया। जब क्रमशः श्रीसंघ सम्मेत शिखर तीर्थ के पवित्र स्थान पर पहुंचा तब मोहन ने अपने माता पिता से स्पष्ट शब्दों में कहा—पूज्यवर ! मेरी इच्छा आचार्यश्री के चरण कमलो मे भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करने को है। वज्र प्रहारवत् पुत्र के दारुण शब्दों को सुनकर माता पिताओं के आश्चर्य व दुःख का पार नहीं रहा। माता सोनी ने मोहन के विचारों को अन्यथा करने का प्रयत्न किया पर मोहन के अचल निश्चय को अनुकूल प्रतिकूल अनेक आशाजनक उपायों से भी चलायमान करने में माता सोनी समर्थ नहीं हुई। आखिर मोहन को दीक्षा का आदेश देना ही पड़ा। मोहन ने भी अपने कई साथियों के साथ बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि पर बड़े ही समारोह-महोत्सव पूर्वक आचार्यश्री के हाथों से दीक्षा स्वीकार की। सूरीश्वरजी ने भी १३ नर नारियों को दीक्षा दे मोहन का नाम मुनिसुन्दर रख दिया। मुनि-मुनिसुन्दर ने २४ वर्ष पर्यन्त गुरुकुल में रह कर जैनागम-न्याय-व्याकरण-काव्य-साहित्य-ज्योतिष-तर्क-अलङ्कार-गणित-मंत्र यंत्रादि अनेक विद्याओं एवं सामयिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। आचार्यश्री ने भी मुनि मुनिसुन्दर को सर्वगुण सम्पन्न जानकर वि० सं० ९५२ मे नागपुर मे चोरलिया गौत्रीय शाह मलूक के महा महोत्सवपूर्वक आदिनाथ भगवान् के चैत्य में चतुर्विध श्री संघ की मौजूदगी मे सूरि पद दे दिया। आचार्य पदवी के साथ ही परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया गया।

आचार्यश्री कक्कसूरिश्वरजी महाराज महा प्रभाविक आचार्य हुए। आपश्री जैसे आगमों के ज्ञाता थे वैसे मंत्र यंत्र विद्याओं मे भी सिद्धहस्त थे। एक बार आप पांचसौ साधुओं के साथ विहार करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त मे पधारे। क्रमशः सौराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की पवित्र यात्रा करनेके पश्चात् सौराष्ट्र प्रान्त मे परिभ्रमण कर धर्म प्रचार करते हुए आपश्री ने कच्छ प्रदेश को पावन किया। जब आपश्री अपनी शिष्य मण्डली के सहित भद्रेश्वर मे पधारे तब कच्छ प्रान्तीय आपके आज्ञानुयायी अन्य श्रमण गण भी आचार्यश्री के दर्शनों के लिये भद्रेश्वर नगर में उपस्थित हुए। आगत श्रमण समुदाय को उचित सन्मान से सन्मानित कर आचार्यश्री ने उनके धर्म प्रचार के श्लाघनीय कार्य पर प्रसन्नता प्रगट की। उनका समुचित स्वागत करते हुए योग्य मुनियों को यथायोग्य पदवियां भी प्रदान की। ऐसा करने से मुनियों को अपने सिर के उत्तरदायित्व का स्मरण हुआ और वे पूर्वापेक्षा भी अधिक उत्साह पूर्वक धर्म प्रचार के कार्य में कटिबद्ध हो गये। एक चातुर्मास कच्छ प्रान्त मे कर आपश्री ने सिन्ध प्रान्त की ओर पदार्पण किया। सिन्ध प्रान्त मे जैसे उपकेशवंशीय श्रावकों की संख्या अधिक थी वैसे आचार्यश्री के आज्ञानुवर्ती श्रमण समुदाय का भी वहां पर विहार था। [illegible], वीरपुर, उचकोट, मारोटकोट, डामरेल, [illegible], शिवनगर वगैरह ग्राम नगरों में विहार करते हुए सूरिजी ने डामरेल में चातुर्मास कर दिया। आपश्री के डामरेल के चातुर्मास में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री ने विहार कर अपनी जननी जन्मभूमि गोसलपुर की ओर पदार्पण किया। आचार्य के पधारने से गोसलपुर निवासियों के हृदय में धर्म [illegible] आया। यह [illegible] जिस नगर ने [illegible] कर अपने कुल गौत्र के साथ ही साथ अपनी जन्म भूमि को भी

अमर बना दी तथा आचार्य पद से विभूषित हो चातुर्दिक में जन कल्याण करते हुए अपने वर्चस्व से सबको नतमस्तक बनाते हुए पुनः उसी नगर को पावन करे तो कौन ऐसा कमनसीब होगा कि उसको इस विषय में आनंद न हो ? किस हतभागी को अपने देश कुल एवं नगर के नाम को उज्वल करने वाले के प्रति गौरव न हो ! वास्तव में ऐसा समय तो नगर निवासियों के लिये बहुत ही दर्प एवं अभिमान का है। अतः गोसलपुर का सकलजन समुदाय (राजा और प्रजा) आचार्यश्री के पदार्पण के समाचारों को श्रवण करते ही आनन्द सागर में गोते लगाने लग गया। क्रमशः अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यश्री का नगर प्रवेश [illegible] महोत्सव किया। सूरिजी ने भी स्वागतार्थ आगत जन मण्डली को प्रारम्भिक माङ्गलिक धर्म देशना दी। आचार्यश्री की पीयूष वर्षिणी मधुर, ओजस्वी व्याख्यान धारा को श्रवण कर गोसलपुर निवासी आनन्दोद्रेक में ओत पोत हो गये। किसी की भी इच्छा आचार्यश्री के व्याख्यान को छोड़ कर जाने की नहीं हुई। वे सब सूरिजी के वचनामृत का पिपासुओं की भांति अनवरत गतिपूर्वक पान करने के लिये उत्कण्ठित हो गये। कालान्तर में सबने मिलकर चातुर्मास का लाभ देने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी धर्मलाभ [illegible] गोसलपुर श्रीसंघ की प्रार्थना को सहर्ष स्वीकृत करली। क्रमशः आचार्यश्री के त्याग वैराग्यादि [illegible] त्पादक, स्याद्वाद, कर्मवादादि तत्त्व प्रतिपादक, सामाजिक [illegible] व्याख्यान प्रारम्भ हो गये। सूरिजी के वैराग्यमय व्याख्यानों से जन समुदाय के हृदय में [illegible] अन्य लोगों को भी संसार से उद्विग्न कर [illegible] मनुष्य ऐसे ही मर जाते हैं। ऐसा कौन भाग्यशाली है कि [illegible] जलि दे विशुद्ध चारित्र वृत्ति का निर्वाह कर आत्मा [illegible] मोहन ने दीक्षा ली तो क्या बुरा किया ? अपने [illegible] गोसलपुर के नाम को उज्वल बना दिया। धन्य है [illegible] आचार्यश्री की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

जाने वालों का ताँता बंध गया। श्रावक लोग अपने २ नगर को पावन करने के लिये आचार्यश्री से आग्रह पूर्ण प्रार्थना करने लगे। सूरिजी ने भी अजयगढ़ के चातुर्मासानन्तर १२ पुरुष, महिलाओं को दीक्षित कर मारवाड़ प्रदेश की ओर पदार्पण कर दिया। क्रमशः पद्मावती, शाकम्भरी, डिड्डपुर, हंसावली, पद्मावती मेदिनीपुर, मुग्धपुर, होते हुए नागपुर पधारे। श्रीसंघ के आग्रह से वह चातुर्मास भी नागपुर में ही आचार्य श्री ने कर दिया।

मुग्धपुर में एक प्रभूत धन का स्वामी, विशाल कुटुम्ब वाला सदाशंकर नामका ब्राह्मण रहता था। उसके हृदय की यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि मैं किसी भी मंत्र तंत्रादि के प्रयोग से किसी नगर के राजा प्रजा को अपनी ओर आकर्षित कर अपना परम भक्त बनालूं जिससे मेरा जीवन निर्वाह शान्ति एवं सम्मान पूर्वक किया जासके। उक्त भावना से प्रेरित हो किसी विशेष आशा से एक समय वह ब्राह्मण किन्हीं चैत्यवासियों के उपाश्रय में गया और चैत्यवासी आचार्यों की विनय, भक्ति, वैयावच्च कर प्रार्थना करने लगा—पूज्येश्वर ! कृपा कर मुझे कोई ऐसे मंत्र की साधना करवावें कि मेरा मनोरथ शीघ्र सफल हो जाय। पहले तो आचार्यश्री ने कई बहाने बना कर उदासीनता प्रगट की पर जब भूदेव ने अत्याग्रह किया तो आचार्यश्री ने उसके ऊपर दया लाकर एक नक्षत्र की साधना बतलादी। छः मास की साधना विधि बतलाने पर ब्राह्मण ने भी आचार्यश्री के कथनानुकूल मंत्र साधन प्रारम्भ कर दिया। जब मन्त्र साधन के केवल तीन दिन ही अवशिष्ट रहे तब वह अन्तिम दिनों में मंत्र की साधना के लिये शमशान में जाकर ध्यान करने लगा। अन्तिम दिन में रात्रि को देवोपसर्ग हुआ जिससे वह चलायमान हो पागलों की तरह नक्षत्र नक्षत्र करने लग गया। सदाशंकर पागल होजाने के कारण उसके कौटम्बिक पारिवारिक बड़े ही दुःखी होगये। उन लोगों ने सदाशंकर के पागलपन नाशक बहुत ही उपाय किये पर दैविक कोप के आगे वे सब के सब उपचार निष्फल होगये। इस प्रकार कई अर्सा व्यतीत होगया। भूदेव के उठने, बैठने, खाने, पीने, हलने, चलने में सिवाय नक्षत्र २ चिल्लाने के कोई दूसरी बात नहीं थी। चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री ककसूरिजी म० मुग्धपुर पधारे। ब्राह्मण लोग आचार्यश्री के प्रभाव व तपस्तेज से पहिले से ही प्रभावित थे अतः आचार्य पदार्पण करते ही वे सदाशंकर को सूरिजी के पास लाकर प्रार्थना करने लगे—पूज्य महात्मन् ! हम लोग बड़े ही दुःखी हैं। आप तो परोपकारी महात्मा हैं अतः हमारे इस संकट को शीघ्र ही मिटाने की कृपा कीजिये ! दयानिधान ! हम आपके उपकार को कभी नहीं भूलेंगे।

सूरिजी—यदि यह ठीक हो जाय तो आप लोग इसके बदले में क्या करेंगे ?

ब्राह्मणवर्ग—आपको मनोऽभिलषित अभिलाषा की पूर्ति करेंगे। आप जो कहेंगे उसी आदेश के अनुसार करेंगे।

सूरिजी—हमें तो किसी वस्तु या पौद्गलिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं है ! हां; आप लोगों को अपने आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म अवश्य स्वीकृत करना होगा। इसमें हमारा तो किञ्चित् भी स्वार्थ नहीं है।

आचार्यश्री के इन वचनों से वे लोग विचार विमुग्ध बन गये। किसी के भी मुंह से हां या ना का कोई स्पष्ट प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुआ तब, आचार्यश्री ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—ब्राह्मणों ! जैनधर्म किसी व्यक्ति या जाति विशेष का धर्म नहीं। इसको पालन करने में सकल जन समुदाय जातीय जनों से विमुक्त [illegible] है। [illegible] ब्राह्मण लोगों के लिये तो जैनधर्म ही आदि धर्म है। सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेव की शिक्षा से [illegible] वेद बनाकर भरतेश्वर चक्रवर्ती ने आपके पूर्वजों को दिये। आपके पूर्वजों ने वेदों के द्वारा विश्व में सद्धर्म [illegible] किन्तु पर स्वार्थ लोलुपी ब्राह्मण कालान्तर में धर्मभ्रष्ट हो वेदों के यथार्थ तत्त्व को ही परिवर्तित कर [illegible] भगवान् महावीर ने पुनः ब्राह्मणों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जिससे इन्द्रभूति [illegible] [illegible] जैन दीक्षा की स्वीकार स्वात्मा के साथ अनेक भव्यों का उद्धार किया। क्रमशः गणधर्म [illegible]

मुग्धपुर के ब्राह्मण सदाशंकर

यशोभद्र, भद्रबाहु, मुकुन्द, रक्षित, सिद्धसेन और हरिभद्रादि अनेक वेद निष्णात, अष्टादशपुराण स्मृतिपारङ्गत विद्वान ब्राह्मणो ने अपने मूलधर्म को स्वीकार कर उसकी आराधना की। आपको भी स्वार्थ के लिये नहीं किन्तु आत्म कल्याण के लिये ऐसा करना ही चाहिये। हां, यदि जैनधर्म के सिद्धान्तो के विषय मे आपको किसी भी तरह की शंका हो तो आप लोग मुझे पूछकर निश्शंक तथा उसका निर्णय कर सकते हैं। इत्यादि—

ब्राह्मणों को आचार्यश्री का उक्त कथन सर्वथा सत्य एव युक्तियुक्त ज्ञात हुआ। उन्होंने आचार्यश्री के वचनों को हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लिया। तब सूरिजी ने कहा—सदाशङ्कर को रात्रि पर्यन्त हमारे मकान मे रहने दो और आप सब लोग अपना अवसर देखले (पधार जावे)। आचार्यश्री के वचनानुसार सब लोग वहां से चले गये। रात्रि में आचार्यश्री ने न मालूम क्या किया कि प्रात काल होते ही सदाशंकर सर्वथा निरोग होगया। ब्राह्मणो ने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार जैनधर्म को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस दिन से [illegible] नाम से कहलाने लगे। इतना ही क्यों पर नक्षत्र नाम तो उनकी सन्तान के [illegible] इस प्रकार [illegible] गया कि इनकी सन्तान परम्परा ही नक्षत्र के नाम से पहिचानी जाने [illegible]। क्रमशः [illegible] मे परिणित होगई।

इस घटना का समय पट्टावली निर्माताओं ने वि० सं० [illegible] लिखा है।

किसी व्यक्ति, जाति एवं धर्म का [illegible] होता है। यही बात पुनीत जैनधर्म के लिये भी [illegible] उस समय जैनियो की सुसगठित शक्ति ने [illegible] चार्यो का अच्छा प्रभाव था। [illegible] श्रमणिया एक आचार्य की आज्ञा के अनुयायी थे। [illegible] संघ मे शामिल करते। जैन [illegible] जिस किसी ने जिस दिन से जैनधर्म [illegible] साथ रोटी बेटी व्यवहार करने में भी किसी भी तरह का [illegible] पुरानो के बीच मतभेद के [illegible] स्वधर्मी बन्धु [illegible] वालो का [illegible] बिल्कुल [illegible] ने लगा देते। नवीन जैन बने हुए [illegible] आर्थिक [illegible] प्रसन्न चित्त [illegible]

इसी नक्षत्र जाति से वि० सं० ११२३ में घीया शाखा निकली। घीया शाखा के लिये लिखा है कि व्यापारार्थ गये हुए नक्षत्र जाति वाले कई लोगों ने लाट प्रदेश खम्भात में अपना निवास स्थान बना लिया था। उक्त प्रान्त में उन्हें व्यापारिक क्षेत्र में बहुत ही लाभ पहुँचा। उन्होंने व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया। कालान्तर में नक्षत्र जात्युद्भूत शाह दलपत ने एक विशाल मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया। एक दिन वह भोजन करने के निमित्त थाली पर बैठा ही था कि घृत में एक मक्षिका पड़कर मर गई। दलपत ने घृत में मृत मक्षिका को अपने पैर पर रखदी। उसी समय किसी विशेष कार्य के लिये एक कारीगर भी वहां आगया। उसने भी सेठजी की उक्त करतूत देखली अतः उसके हृदय में शंका होने लगी कि ऐसा कृपण व्यक्ति भी कहीं मन्दिर बनवा सकता है ? सेठजी की उदारता की परीक्षा के लिये कारीगर ने कहा—सेठ साहब ! मन्दिर की नींव खुद गई है। प्रातःकाल ही १०० ऊंट घृत की जरूरत है अतः इसका शीघ्र ही प्रबन्ध होना चाहिये। सेठ ने कहा—इसकी चिन्ता मत करो, कल आ जायगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही १०० ऊंट घृत के यथा समय आ गये। कारीगरों ने सेठजी के सामने ही घृत को नींव में डालना प्रारम्भ किया तब सेठजी ने कहा—कारीगरो ! मन्दिरजी का कार्य है। काम कच्चा नहीं रह जाय, घृत की और आवश्यकता हो तो और मंगवा लेना पर मन्दिर का कार्य सुचारु रूप से मजबूत करना। सेठजी की इस उदारता पर गत कल चतुष्ट बात की स्मृति से कारीगर को हंसी आ गई। सेठजी ने हंसी का कारण पूछा तो कारीगर ने कहा—सेठजी ! कल घृत में एक मक्खी गिर गई जिसको तो आपने पैरों पर रगड़ी और यहां ऊंट के ऊंट घृत के भरे हुए डालने को तैयार होगये अतः मुझे कल की बात याद आ कर हंसी आगई। सेठजी ने कहा—कारीगरों ! हम महाजन हैं। बेकार तो एक रत्ती भी नहीं जाने देते और आवश्यकता पड़ने पर करोड़ों रुपयों की भी परवाह नहीं करते। भला—तुम ही सोचो, यदि मक्खी को यों ही डाल देता तो कितनी चींटियें आ जाती ? पैरों पर रख देने से तो चर्म नरम होगया और कीड़ियों की हिंसा भी बच गई। कारीगर ने कहा—सेठजी ! धन्य है आपकी महाजन बुद्धि को और धन्य है आपकी दया के साथ उदारता को !!!

शा० दलपत ने ५२ देहरीवाला विशाल मन्दिर बनवाया व आचार्यश्री के कर कमलों से बड़े ही समारोह पूर्वक मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवाई। जिसमें आगत साधर्मियों को पांच पांच मुहरें लड्डू में गुप्त डाल कर पहरावणी दी। दलपत की सन्तान ही भविष्य में 'घीया' शब्द से सम्बोधित की जाने लगी।

संघवी—नक्षत्र गौत्रीय शा माला ने वि० सं० ११५२ में नागपुर से विराट् संघ निकाला अतः माला की सन्तान संघवी कहलाई।

गरिया—नक्षत्र जाति के शा० मक्खा की गरिया ग्राम के जागीरदार के साथ अनबन होने के कारण

वे पाटण में चले गये। वहा उनको गरिया २ कहने लगे अत. इनकी सन्तान गरिया कहलाने लगी।

खजाञ्ची—वि० सं० १२४२ में गरिया गौत्रीय रूपणसी ने धारा नगरी के राजा के खजाने का काम किया जिससे रूपणसी की सन्तान खजाञ्ची कहलाई। रूपणसी के पुत्र उदयभाण ने धारा मे भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १२८२ मे माघ शु० ५ को सूरिजी ने करवाई।

मूल नक्षत्र जाति और उनकी शाखाएं—वशावलिये जो मेरे पास हैं उनमे इस जाति के कुछ धर्म कार्य निम्नलिखित मिले है—

८७—जैन मन्दिर, धर्मशालाएं और जीर्णोद्धार।
२३—वार यात्रार्थ तीर्थों के संघ निकाले।
४२—वार श्रीसंघ को अपने घर बुलाकर संघ पूजा की।
४—वार सूत्र महोत्सव कर ज्ञानार्चना की।
३—आचार्यों के पद महोत्सव किये।
१—मुग्धपुर मे बड़ी वापिका बनवाई।
१३—इस जाति के वीर योद्धा युद्ध मे काम आये और ७ स्त्रियां सती हुई।
२—दुष्काल मे अन्न और घास देने का भी उल्लेख है।

इस प्रकार नक्षत्र जाति के वीरों ने अनेक प्रकार से देश, [illegible] की। इस समय नक्षत्र जाति के ओसवालों के घर [illegible] नहीं—यह भी समय की बलिहारि ही कही जा सकती है।

फागजाति—आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज [illegible] मार्ग मे एक फाग नामक नदी आई। नदी के तट पर [illegible] लगाकर तपस्या कर रहा था। उक्त तापस [illegible] पर तापस के लिये भोजन लेकर आये हुए खड़े थे। [illegible] आसन से उठकर सूरिजी का अच्छा सत्कार—सन्मान किया। [illegible] तापस ने कहा—महात्मन ! विराजिये। पर सूरिजी [illegible] आचार्यश्री वहीं पर विराज गये। पास [illegible] तापस ने पूछा—क्या आप हमारे आसन पर [illegible]

सूरिजी—हम तो आपके सन्निधि हैं किन्तु [illegible] [illegible]

तापस भद्रिक परिणामी और सरल स्वभावी था अतः उसने कहा महात्मन् ! हमारे गुरुओं ने जो हमें मार्ग बतलाया है उसी का अनुसरण करते हुए हम परम्परा से चलते आरहे हैं। कृपाकर अब आप ही आन्तरिक शुद्धि का विस्तृत स्वरूप समझाने का कष्ट करें। आचार्यश्री ने भी तापस के आत्म कल्याणार्थ आत्म-स्वरूप, आत्मा के साथ अनादि काल से लगे हुए कर्मों का सम्बन्ध स्वरूप कर्म आदान व मिथ्यात्व के कारण और कर्मों से मुक्त होने के लिये सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र और तप का विस्तृत स्वरूप कह सुनाया। अन्त मे आचार्यश्री ने तपस्वीजी को सम्बोधित करते हुए कहा—तपस्वी जी ! गृहस्थ लोग अपने खजाने के ताला लगाया करते हैं। उसको खोलने वाली चाबी छोटी सी होती है पर विना चाबी के ताले को कितना ही पीटो पर वह खुल नहीं सकता। घृत, दधि में प्रत्यक्ष स्थित होता है उसको कितनो ही बार इधर उधर कर लीजिये पर विना यंत्र (बिलोने) के घृत नहीं निकलता है। इसी प्रकार आत्म स्वरूप को भी समझ लीजिये। आत्मा स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा स्वरूप है पर वह विना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, एवं तप के विशुद्ध नहीं होता। जैसे ताला चावियो के द्वारा सहज ही में खोला जा सकता है। घृत-यन्त्र द्वारा बहुत ही सुगमता पूर्वक निकाला जा सकता है वैसे ही उक्त साधनों के द्वारा आत्ममल को दूर कर परम निर्मल सच्चिदानन्दमय ईश्वरीय स्वरूप आत्मा बनाया जा सकता है।

तापस—तो हमें भी कृपा कर आत्मा से परमात्मा बनने के विशुद्ध स्वरूप को बतलाइये।

सूरिजी—आप इस हिंसा मय बाह्य क्रियाकाण्ड को त्याग कर अहिंसा भगवती की पवित्र दीक्षा से दीक्षित होजाइये। आपको अपने आप आत्मा से परमात्मा बनने का उपाय व सन्मार्ग का चारु मार्ग ज्ञात हो जायगा।

सूरिजी और तापस की पारस्परिक चर्चा को पास ही मे बैठे हुए रोली ग्राम के जागीरदार पृथ्वीधर बहुत ही ध्यान पूर्वक सुन रहे थे। उनके साथ आये हुए अन्य क्षत्रियो की आकांक्षा वृत्ति भी धर्म के विशिष्ट स्वरूप को जानने के लिये जागृत हो उठी। वे सब के सब उत्कण्ठित हो देखने लगे कि अब तापसजी क्या करते हैं ?

तापस ने थोड़े समय मौन रह कर गम्भीरता पूर्वक विचार किया, पश्चात् निवृति को भङ्ग करते हुए आचार्यश्री के सामने मस्तक झुका कर कहने लगा—प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिये तैय्यार हूँ। बतलाइये मैं क्या करूं ? सूरिजी ने भी उनको जैन दीक्षा का स्वरूप समझा कर अपना शिष्य बना लिया। तपस्वीजी का नाम गुणानुरूप तपोमूर्त्ति रख दिया। पृथ्वीधर आदि उपस्थित क्षत्रिय समुदाय को वासक्षेप पूर्वक शुद्ध कर उपकेश वंश में सम्मिलित कर दिया। कागर्षि की स्मृति के लिये सूरिजी ने कहा—आज से आप उपकेश वंश मे काग जाति के नाम से पहिचाने जावेंगे। पृथ्वीधर प्रभृति क्षत्रिय वर्ग ने सूरिजी का कहना स्वीकार कर लिया। इसके साथ मे ही प्रार्थना की कि गुरुदेव ! आप हमारे ग्राम में पधार कर हमें आपश्री की सेवा का लाभ दें व मार्ग स्खलित बन्धुओं को जैनधर्म की दीक्षा देकर हमारे समान उनका भी कल्याण करें। सूरिजी ने लाभ का कारण सोचकर अपने शिष्य समुदाय के साथ रोली ग्राम में पदार्पण किया। वहां की जनता को सदुपदेश दे जैनधर्म में उन्हें दीक्षित किया।

इस घटना का समय पट्टावली निर्माताओं ने वि० सं० १०११ के वैशाख सुद पूर्णिमा का बताया है। इस जाति में भी बहुत से दानी, मानी, नामी नर रत्न पैदा हुए जिन्होंने अपने कार्यों से संसार में बहुत ही नाम कमाया। इस जाति का मूल पुरुष पृथ्वीधर—भाटी राजपूत था। इनकी वंश परम्परा निम्न है—

बना लूँगी। देवी के कोप मिश्रित कठोर वचनों को सुनकर आचार्यश्री ने कहा—देवीजी ! जरा शान्ति रक्खें। जंगल के बहुत से निरपराध मूक पशुओं के मारने पर भी आपकी क्षुधातृप्ति नहीं हुई हो और निर्मल चारित्र वृत्ति के निर्वाहक सुसंयमी साधुओं को भी मारना चाहती हो तो मार सकती हो पर मुनियों के प्राण लेने के पश्चात् तो आपश्री की क्षुधा शान्त हो जयागी न। खैर ! आज से ही इस बात की प्रतिज्ञा कर लेवें कि मुनियों के प्राण हरण करने के पश्चात् मैं किसी भी जीव का अपघात नहीं करूंगी। इस प्रकार की भविष्य के लिये प्रतिज्ञा कर आप अपना ग्रास पहिले मुझे ही बनावें। आचार्यश्री के निडरता पूर्ण, उपदेशप्रद स्पष्ट वचनों को श्रवण कर देवी एक दम निस्तब्ध होगई। कुछ क्षणों के लिये वह आश्चर्य विमुग्ध हो विचार संलग्न होगई। पश्चात् धीमे स्वर से बोली—आप लोग हमारे इस मकान मे क्यो व किस की आज्ञा से ठहरे ! कल मेरी यहां पूजा होने वाली है अतः आप लोग यहां से शीघ्र प्रस्थान कर देवें।

सूरिजी—ठीक है कल आपकी पूजा होगी तो हम भी आपकी पूजा करेंगे।

देवी—नहीं, मैं आप लोगों की पूजा नही चाहती हूँ; आप लोग यहाँ से चले जावें।

सूरिजी—देवीजी ! हम जैननिर्ग्रन्थ (मुनि) हैं। रात्रि मे गमनागमन करना हमारे लिये शास्त्रीय व्यवहार मे एकदम विपरीत है। अतः शास्त्रीय आज्ञा का लोपकर किञ्चित् भय या दबाव से ऐसा करना सर्वथा अयुक्त है। इस पर आप तो जगदम्बा माता कहलाती हो। जब पुत्र माता के यहां आवे तब पुत्रों के आगमन से माता को इस प्रकार कोप करना व क्रोधावेश मे अपने प्रिय लाड़िले पुत्रों का अपमान करना क्या माता के लिये शोभास्पद है ? देवीजी ! जरा ज्ञानदृष्टि से भी विचार कीजिये कि पूर्व जन्म के सुकृतोदय से तो आप को इस प्रकार दिव्य देवर्द्धि प्राप्त हुई है पर इन निन्दनीय, घृणास्पद क्रूर, निष्ठुर, राक्षसीय जघन्य अकरणीय कार्यों को करके भविष्य मे कैसी गति प्राप्त करेंगे ? पूर्व जन्म मे तो आप बहुत से जीव सत्वों के रक्षक प्रति पालक थे अतः सुरलोक के सुख के पात्र हुए पर इन सब पुण्योत्पादक कार्यों के विपरीत इस देव योनि मे जगत् की माता के रूप मे भी जीव भक्षक बनकर अपना न मालूम कितना अधःपतन करोगी। देवीजी ! मेरे इन वचनों को आप किञ्चिन्मात्र भी बुरा मत मानियेगा। मैं आपसे जिज्ञासा वृत्ति पूर्वक पूछना चाहता हूँ कि इस प्रकार के पापाचार या जीव भक्षक कार्यों मे आपका क्या स्वार्थ साधन होता है ? निरपराध मूक पशुओं की अमर्याद बलि लेकर अपने आपको कृतकृत्य मानना कहां तक समुचित है ? देवीजी ! बिना स्वार्थ के या किसी विशेष प्रयोजन के अभाव में तो मन्द मनुष्य भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता फिर आप तो ज्ञानवान देव हैं। आपको ऐसा कौन गुरु मिला कि पापाचार का उपदेश देकर सीधा नरक का भयङ्कर रास्ता बतलाया। देवीजी ! सच्चा सपूत तो वही हो सकता है, जो अपनी माता का हित करके ही उसके भावी जीवन को निर्माण करने के सुखमय साधनों को उपलब्ध करे। उसके भविष्य के कण्टकाकीर्ण मार्ग को सतत प्रयत्नों द्वारा स्वच्छ कर चारु रमणीय बना दे। उसकी गति को सुधारे। अतः मैं भी पुत्र के रूप में आप से यही निवेदन करूंगा कि आप इस जघन्य निकृष्टतम पापाचार को सर्वथा त्याग दें। भविष्य के लिये भी सुदृढ़ प्रतिज्ञा करलें कि—मैं किसी भी जीव का किसी भी प्रकार से वध नहीं करूंगी। इत्यादि।

देवी ने आचार्यश्री के एक २ शब्द को बहुत ही ध्यान पूर्वक सुना। आचार्यश्री के परमार्थ प्रदर्शक हितप्रद वक्तव्य के समाप्त होने पर देवी ने उन वचनों पर गहरा विचार किया तो सूरिजी का एक २ शब्द सत्य एवं युक्तियुक्त ज्ञात हुआ। वह स्थिर चित्त से विचार करने लगी—जीवों का बदला तो मुझे भवान्तर में देना ही पड़ेगा। फिर भी इन जीववध में मेरा तो किञ्चित् भी स्वार्थ नहीं है। केवल मेरा नाम के बहाने से [illegible] लोग इन [illegible] जीवों को अपना स्वार्थ साधन करने के लिये मार डालते हैं। [illegible] जाते हैं, जिसकी दुर्गन्ध का अनुभव मुझे [illegible] करना पड़ता है। [illegible] हिंसा में [illegible] के किञ्चित् भी लाभ तो है नहीं

देवी ने बोध दिया [illegible]

अत: विचार कर देवी बोली—भगवन् ! अज्ञानता के कारण मार्गस्खलित हो, सुखावह चारु पथ का त्याग कर अरण्य के भयावह, दुःखप्रद, मार्ग से प्रयाण करती हुई मुझ अभागिनी को आपश्री ने आज सन्मार्ग पर आरूढ़ कर बहुत ही उपकार किया है। मैं आज से ही आपकी चरण किङ्करी-सेविका होकर आपश्री की सेवा में रहने की प्रतिज्ञा करती हूँ। अब से मेरे नाम पर एक भी प्राणी का आघात नहीं हो सकेगा। प्रभो ! मैं व्याघ्रेश्वरी देवी हूँ। आप जिस समय मुझे याद फरमावेंगे उसी समय मैं आपश्री की सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी। इस पर सूरिजी ने कहा—देवीजी ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि देव योनि में विवेक एवं ज्ञान होता है, यह सत्य है फिर भी मैंने आपको अपनी ओर से [illegible] कठोर शब्द कहे इसके लिये आप क्षमा प्रदान करें। साथ ही आपने जो प्रतिज्ञा की है उसके लिये धन्यवाद भी स्वीकार करें। [illegible] जिनेश्वरदेव की भक्ति-सेवा किया करें जिससे आपके पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का [illegible] होवे और भविष्य के लिये शुभ गति एवं सद्धर्म की प्राप्ति होवे। सूरिजी के उक्त कथन को देवी ने [illegible] कर [illegible] किया। पश्चात् वन्दन करके अदृश्य होगई।

प्रात:काल इधर तो आचार्यश्री अपने शिष्य समुदाय के साथ [illegible] उधर से व्याघ्रपुर नगर के रावगजसी एवं अन्य नागरिक [illegible] बकरे की बलि को लिये हुए मन्दिर के समीप आ पहुँचे। जब [illegible] देखे तो उन लोगों ने कहा—महाराजाजी ! आप [illegible] करेंगे अत: आपको इतना कष्ट देना पड़ता है। [illegible] देवी की पूजा करने आये हैं पर ये ऐसे [illegible]

सरदार—इससे आपको क्या प्रयोजन है [illegible]

सूरिजी—जैसे आप देवी के [illegible] क्या पर कष्ट पहुँचाने तक भी [illegible]

सरदार—महाराज ! [illegible]

रावगजसी के दो रानियें थीं। एक क्षत्रिय वंश की दूसरी उपकेशवंश की।

क्षत्रिय रानी से चार पुत्र हुए—१ दुर्गा २ काल्हण ३ पातो और ४ सांगो रावगजसी का पट्टधर ज्येष्ठ पुत्र दुर्गा था। एक समय दुर्गा और वाघा के परस्पर तकरार होगई। आपसी कलह में दुर्गा ने बाघा को व्यङ्ग किया—तेरे में कुछ पुरुषोचित पुरुषार्थ हो तो नवीन राज्य क्यों नहीं स्थापित कर लेता? इस ताने के मारे अपमानित हो बाघे ने व्याघ्रेश्वरी देवी के मन्दिर में जाकर तीन दिवस पर्यन्त अटल ध्यान जमाया। तीसरे दिन देवी ने प्रत्यक्ष कहा—बाघा! राज्य तो तेरे तकदीर में नहीं लिखा है, पर मैं तुझको सोने से भरे हुए सोलह चरु बतला देती हूँ। उस धन को प्राप्त करके तो तू राजा से भी अधिक नाम कर सकेगा। बाघा ने भी देवी के कथन को सहर्ष शिरोधार्य कर लिया। देवी ने भी अपने मन्दिर के पीछे भूमिस्थित १६ चरु स्वर्ण से परिपूर्ण बतला दिये। बस फिर तो था ही क्या? बाघा ने भी रात्रि के समय उन १६ चरुओं को लाकर अपने कब्जे में कर लिया। देवी की कृपा से प्राप्त द्रव्य का सदुपयोग करने के निमित्त सब से पहिले बाघा ने अपने नगर के बाहिर भगवान् महावीर स्वामी का ८४ देहरियों वाला एक विशाल मन्दिर बनवाया। मन्दिर के समक्ष ही धर्म ध्यान करने के लिये दो धर्मशालाएं बनवाई। इस प्रकार वह देवी से प्राप्त द्रव्य से पुण्योपार्जन करता हुआ सुख पूर्वक विचरने लगा। उसी समय प्रकृति के भीषण प्रकोप से एक महा-जन संहारक भीषण दुष्काल पड़ा। दया से परिपूर्ण उदार हृदयी बाघा ने देश भाइयों की सेवा के निमित्त करोड़ों रुपयों का दान कर स्थान २ पर मनुष्यों एवं पशुओं के लिये अन्न एवं घास की दानशालाएं उद्घाटित की। एक बड़ा तालाब खुदवा कर जल कष्ट को निवारित किया। जब पांच वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया तब आचार्यश्री देवगुप्तसूरि को बुलवा कर अत्यन्त समारोह पूर्वक मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करवाई। आचार्यश्री का चातुर्मास करवाकर नव लक्ष द्रव्य व्यय किया। भगवती सूत्र का महोत्सव कर ज्ञानार्चना की। चातुर्मास के बाद संघ सभा कर जिन शासन की प्रभावना की व योग्य मुनियों को योग्य पदवियां प्रदान करवाई। उसी समय पवित्र तीर्थ श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा के लिये एक विराट् संघ निकाला। संघ में सम्मिलित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओं को पहिरावणी प्रदान करने में ही करोड़ों रुपयों का द्रव्य-व्यय किया। देवी के वरदानानुसार शा० बाघा ने केवल जैन संसार के हित के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये अनेक जनोपयोगी कार्य किये। अपना नाम इन शुभ कार्यों से राजाओं की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत किया। शाह बाघा की उदारवृत्ति की धवल ज्योत्स्ना इत उत चतुर्दिक में प्रकाशित होगई। यही कारण है कि शा० बाघा की सन्तान भी भविष्य में बाघा के नाम से बाघरेचा शब्द से सम्बोधित की जाने लगी। वंशावलियों में बाघ की सन्तान परम्परा का विस्तृतोल्लेख है पर नमूने के तौर पर यहां साधार रूप से लिख दी जाती है तथाहि—

उपकेशवंश की रानी से पांच पुत्र पैदा हुए तथाहि—(१) रावल (२) मालदात (३) हर्षण (४) नरपत (५) बानो।

शा० घाघो
कानो
मानो
धनो
नुम्बो
करमो
सावन
सरवण
(मन्दिर बनवाया)
(संघनिकाला)
गोपाल-मन्दिर
रावल
देयाल
लाग्नो
(सघ नि० यात्रा)
भोजो
पद्मो
फूलो
रोतो
जैतो
जैमल
भाणो
(महोत्सव)
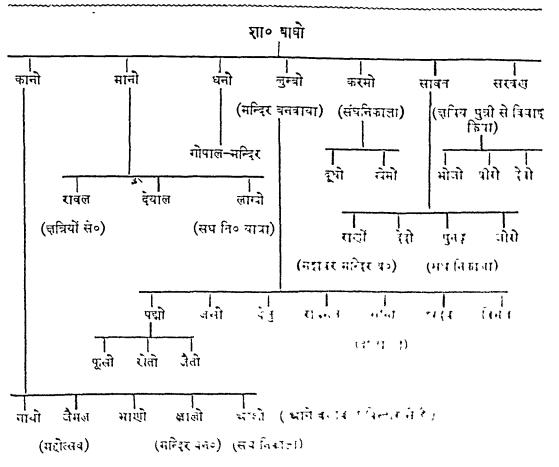
ने अपनी उज्वल कीर्ति को सर्वत्र अमर बना दी। एक समय तो इस जाति की इतनी संख्या बढ़ गई थी कि कालान्तर में कई नामी पुरुषों के नाम से कई शाखाएं प्रतिशाखाएं चल निकली। जैसे-सोनी, संघवी, जालोरी, सोडा, आकूना, लेरियादि ये सब बाघरेचा जाति की ही शाखाएं हैं। वर्तमान में तो किन्हीं २ स्थानों पर इस जाति के घर दृष्टिगोचर होते हैं पर जिस समय जैनियों की संख्या करोड़ों की थी उस समय इस जाति की भी विस्तृत-संख्या थी। चढ़ती पड़ती का चक्र संसार में चलता ही रहता है। समय तेरी भी अजब गति है। आज तो इस जाति के सपूत अपने पूर्वजों के गौरव को भी भूल बैठे हैं वही पतन का कारण है।

इस प्रकार आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अनेक क्षत्रियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर महाजन संघ की अभिवृद्धि की। उस समय के आचार्यों का-जिसमे भी उपकेश गच्छाचार्यों का तो यह मुख्य ध्येय ही था। जिन २ नवीन क्षेत्रों में पदार्पण करना उन २ क्षेत्र निवासियों को जैनत्व के संस्कार से संस्कारित कर महाजन संघ में सम्मिलित करना तो उन्होने अपना कर्तव्य ही बना लिया था। यही कारण था कि उस समय का जैन समाज धन, जन, कुटुम्ब परिवार, संख्यादि सब में बढ़ता हुआ था।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० के चमत्कार के विषय में कई उदारण मिलते हैं पर स्थानाभाव से उन सबको यहां पर स्थान नहीं दिया जा सकता है। उपरोक्त थोड़े बहुत उदाहरणों से ही पाठक वृन्द समझ सकेंगे कि उस समय के आचार्यों का विहार क्षेत्र बहुत विशाल था। आचार्य बनने के पूर्व आचार्य पद योग्य उन्हें कितनी योग्यताएं हांसिल करनी पड़ती इसका अनुमान भी सूरीश्वरो की कार्यशैली से सहज ही लगाया जा सकता है। उनकी उपदेश शैली का जन समाज पर कितना प्रभाव पड़ता था, वे देवी देवताओं को भी कितनी निर्भीकता पूर्वक प्रतिबोध देते थे, नये जैनों को बनाकर उनके साथ किस तरह का व्यवहार रखते, सर्व साधारण जनता के लिये भी उनका हृदय कितना विशाल एवं गम्भीर था इत्यादि अनेक बातों का स्पष्टीकरण आचार्यश्री के जीवन वृत्त को पढ़ने से किया जा सकता है। उनके जीवन की मुख्य विशेषता तो यह थी कि उस समय मे भी आज के समान कई गच्छ, समुदाय एवं शाखाओं के वर्तमान होने पर भी उनमें परस्पर क्लेश, कदाग्रह नहीं था। वे एक दूसरे को अपने से जघन्य सिद्ध कर जिन शासन की लघुता नहीं प्रदर्शित करते। वे तो अपने कर्तव्य-धर्म की ओर लक्ष्य कर जिन शासन की प्रभावना मे ही अपने मुनित्व जीवन की सार्थकता समझते। तब ही तो वे पारस्परिक प्रेम एवं स्नेह के बल पर शासन का इतना अभ्युदय कर सके थे।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने अपने ५९ वर्ष के शासन में दक्षिण महाराष्ट्र से पूर्व दिशा के प्रान्तों पर्यन्त विहार करके लाखों मनुष्यों को मांस मदिरा का त्याग करवाया। उन्हें जैन दीक्षा से दीक्षित कर पूर्वाचार्यों के समान उपकेश वंश की वृद्धि की। अनेक तापस, सन्यासी एवं गृहस्थों को जैन दीक्षा देकर उन्हें मोक्षमार्ग के आराधक बनाये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाई। देवी देवताओं के बहाने बलि दिये जाते वाले मूक पशुओं को अभयदान दिया। कई योग्य मुनियों को पद प्रतिष्ठित कर विविध २ प्रान्तों में विहार करवाया और स्वयं ने सब प्रान्तों मे परिभ्रमन कर मुनियों के उत्साह को वृद्धि गत किया। इस प्रकार आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने जैन धर्म की अमूल्य सेवा की जिसको जैन समाज एक क्षण भर भी नहीं भूल सकता है।

अन्त में देवी सच्चायिका के परामर्शानुसार अपनी आयु अल्प जान कर आचार्यश्री ने [illegible] शा० धाना के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय पद्मप्रभ को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया। अन्त में १५ दिन के अनशन समाधि पूर्वक आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० स्वर्ग पधार गये।

आपके मृत शरीर के निर्वाण महोत्सव में शा० धाना ने नव लक्ष द्रव्य व्यय किया। केवल चन्दन के काष्ठ से ही आपका अग्नि संस्कार किया गया। आपश्री की अग्नि संस्कार की रक्षा पर भी लोग इस प्रकार टूट पड़े कि रक्षा के अलावा भूमि में खाडी खड़ पड़ गई। अहा! हा!! उस समय उन चमत्कारी, आचार्य

२५—कोरंटपुर	के	प्राग्वट	जाति के	नारा ने	दीक्षा ली
२६—वीरपुर	के	,,	,,	झाला ने	,,
२७—कीराटपुर	के	,,	,,	वरधा ने	,,
२८—प्रल्हादनपुर	के	,,	,,	अमारा ने	,,
२९—डेलडिया	के	,,	,,	नागजी ने	,,
३०—पुनासरी	के	श्रीमाल	,,	सहजा ने	,,
३१—चोकड़ी	के	,,	,,	तोड़ा ने	,,
३२—मादलपुर	के	,,	,,	गुणाढ़ ने	,,
३३—तीवरी	के	पारख	,,	भीमा ने	,,
३४—डामरेल	के	काग	,,	मेथा ने	,,
३५—गोसलपुर	के	बोगड़ा	,,	रूपा ने	,,
३६—भरोंच	के	गांधी	,,	गोरा ने	,,
३७—सोपार	के	वोहरा	,,	माना ने	,,
३८—कांकाणी	के	कुम्मट	,,	दुर्गा	,,
३९—झमाग्राम	के	चोरड़िया	,,	परमा ने	,,

इनके अलावा अन्य प्रान्तों में तथा पुरुषों के साथ बहिनों ने भी बड़ी संख्या में सूरिजी के शासन में आत्म कल्याण के उद्देश्य से भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की थी जब कि आचार्य देव ने ५९ वर्ष जितना दीर्घ समय सर्वत्र भ्रमन किया आपका उपदेश भी प्रायः त्याग वैराग्य और आत्म कल्याण को लक्ष में रख कर ही हुआ करता था दूसरे उस जमाने के जीव भी हलुकर्मी होते थे कि उनको उपदेश भी शीघ्र लग जाता था।

आचार्य श्री के ५९ वर्षों के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—नंदपुर	के	श्रेष्ठि	जाति के	सहदेव ने	भगवान	पार्श्वनाथ	का मन्दिर की	प्र
२—रत्नपुर	के	राखेचा	,,	पुरा ने	,,	,,	,,	,,
३—राजपुर	के	मंत्री	,,	लाला ने	,,	महावीर	,,	,,
४—शान्तिपुर	के	आर्य	,,	जोधा ने	,,	,,	,,	,,
५—[illegible]	के	श्रीश्रीमाल	,,	जमा ने	,,	,,	,,	,,
६—[illegible]पुर	के	गांधी	,,	जेहल ने	,,	आदीश्वर	,,	,,
७—[illegible]पुर	के	दूगड़	,,	डुगर ने	,,	,,	,,	,,
८—[illegible]	के	अग्रवाल	,,	पोमा ने	,,	,,	,,	,,
९—[illegible]	के	रांका	,,	कल्हण ने	,,	नेमिनाथ	,,	,,
१०—[illegible]	के	करणावट	,,	मोपाल ने	,,	शान्तिनाथ	,,	,,
११—[illegible]	के	[illegible]	,,	मन्नल ने	,,	महावीर	,,	,,
१२—[illegible]पुर	के	[illegible]	,,	मुंजल ने	,,	,,	,,	,,
१३—[illegible]	के	[illegible]	,,	रामपाल ने	,,	,,	,,	,,
१४—[illegible]	के	[illegible]	,,	गणपत ने	,,	,,	,,	,,
१५—[illegible]	के	,,	,,	[illegible] ने	,,	पार्श्वनाथ	,,	,,
१६—[illegible]	के	प्राग्वट	,,	[illegible]	,,	,,	,,	,,

१७—जुरोरी	के	प्राग्वट जाति के	चणोट ने	भगवान्	पार्श्वनाथ	मन्दिर की प्र०
१८—वर्धमानपुर	के	,, ,,	कूपा ने	,,	,,	,, ,,
१९—खेटकपुर	के	,, ,,	हडाऊ ने	,,	,,	,, ,,
२०—करणावती	के	,, ,,	जावड ने	,,	,,	,, ,,
२१—चन्द्रावती	के	गुणधर ,,	अजित ने	,,	धर्मनाथ	,, ,,
२२—कुन्तिनगरी	के	नक्षत्र ,,	साढा ने	,,	विमलनाथ	,, ,,
२३—चदेरी	के	गुरुड ,,	लाखा ने	,,	पार्श्वनाथ	,, ,,
२४—हर्षपुर	के	चोरड़िया ,,	समधर ने	,,	,,	,, ,,
२५—भवानीपुर	के	पोकरणा ,,	भाला ने	,,	सीमधर	,, ,,
२६—नागपुर	के	प्राग्वट ,,	भोपाल ने	,,	पद्मनाथ	,, ,,
२७—उपकेशपुर	के	,, ,,	[illegible] ने	,,	आदिनाथ	,, ,,
२८—नारदपुरी	के	,, ,,	माला ने	,,	,,	,, ,,
२९—सीतलपुर	के	,, ,,	रूघा ने	,,	नेमिनाथ	,, ,,
३०—सोजलपुर	के	,, ,,	जावड़ ने	,,	[illegible]नाथ	,, ,,
३१—तीतरी	के	श्रीमाल ,,	माटा ने	,,	पार्श्वनाथ	,, ,,
३२—चुडी	के	,, ,,	सावत ने	,,	,,	,, ,,
३३—धोलपुर	के	,, ,,	नाहरसी ने	,,	महावीर	,, ,,

पूज्याचार्य श्री के ५६ वर्षों के शासन में तीर्थ यात्रार्थ आदि शुभ कार्य

१९—पाल्हिका	के	बाफणा जाति के	शाह	नागदेव ने दुकाल में अन्न वस्त्र घास दिया
२०—शाकम्भरी	के	राका ,,	,,	देवपाल ने ,, ,, ,, ,,
२१—नारदपुरी	के	प्राग्वट ,,	,,	पोमल ने ,, ,, ,, ,,
२२—विजयपट्टन	के	पोकरण ,,	,,	लाखण की पत्नी जैती ने तालाव खुदवाया।
२३—त्रिपुर	के	छाजेड़ ,,	,,	लुंबाकी विधवा पुत्री सुन्दर ने एक वापि बंधाई।
२४—चर्पटनगर	के	भटेवड़ा ,,	,,	लाला की ,, ,, रामी ने तालाव बनवाया।
२५—पद्मावती	के	प्राग्वटवंश के ,,	,,	कोला की माता ने घाट बन्ध तालाव बंधाया।
२६—नागपुर	के	कनोजिया वीर वीरम युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।		
२७—गोदाणी	के	कामदार वीर रणजीत		,, ,, ,, ,,
२८—उपकेशपुर	के	श्रेष्ठि वीर समरथ		,, ,, ,, ,,
२९—कलिरा	के	राखेचा वीर ठाकुरसी		,, ,, ,, ,,
३०—लोद्रवा	के	समदड़िया वीर रूघवीर		,, ,, ,, ,,
३१—चन्द्रावती	के	प्राग्वट वीर रोड़ा		,, ,, ,, ,,

इनके अलावा भी सूरीश्वरजी के शासन में अनेक महानुभावो ने अपनी न्यायोपार्जित चंचल लक्ष्मी को देश समाज एवं धर्म के हित व्यय करके कल्याणकारी पुन्य जमा किया उसमे जैसे आचार्यों का उपदेश था वैसे ही भावुक लोग सरल हृदय और भव भीरू थे कि ऐसे पुनीत कार्य में पीछे नहीं पर सदैव आगे पैर बढ़ाते ही रहते थे।

पट्ट पैंतालीस ककसूरीन्द्र आर्य्यगौत्र ऊजागर थे,
चन्द्र समान शीतलता जिनकी जैनधर्म प्रचारक थे।
वीर वाणि उपदेशामृत से भव्यों का उद्धार किया,
प्रतिष्ठा औ दीक्षा देकर शासन का उद्योत किया॥

इतिश्री भगवान् पार्श्वनाथ के पैंतालीसवें पट्टधर कक्कसूरि नाम के महा प्रतिभाशाली आचार्य हुए॥

४६-आचार्यश्री देवगुप्तसूरि (१०वाँ)

सूरिश्चोरड़िया प्रधान पुरुषो गुप्तोत्तरो देवभाक् ।
शिष्यान् स्वान् स विहार माज्ञपितवान् प्रान्तेषु सर्वेषु च ॥
जित्वा वादिजनामनेक गणना संख्यापितान् सुज्ञी ।
शिष्याँस्ताँश्च विधाय कीर्ति ततिकानात्मानेशान् भूतले ॥

वधू को गृहागत देखने के लिये तीव्र उत्कण्ठित एवं लालायित थी। आखिर माता के अत्याग्रह से चन्द का विवाह २१ वर्ष की वय मे श्रेष्टिकुलोत्पन्न शाह देवा की पुत्री मालती से होगया। जैसे चंद सब विद्याओं का निधान था वैसे मालती भी स्त्रियोचित सब कार्यों मे प्रवीण थी। दोनों पति पत्नियों में परस्पर रूप एवं गुणों की अनुकूलता होने के कारण उनका दाम्पत्य जीवन बहुत ही प्रेम एवं शान्ति पूर्वक व्यतीत हो रहा था। चन्द अपने माता पिताओ की सेवा चाकरी विनय करने में अग्रेश्वर था वैसे मालती भी विनयशील लज्जाशील एवं गृहकार्य में कुशल थी। चंद और मालती के गार्हस्थ्य सुख के सामने स्वर्ग के अनुपम सुख भी नहीं के वरावर थे, ऐसा लिखना भी कोई अत्युक्तिपूर्ण न होगा।

मन्त्री सारङ्ग का घराना शुरु से ही जैनधर्मोपासक था। माता रत्नी नित्य नियम और षट्कर्म करने में सदैव तत्पर रहती थी। सारङ्ग के पिता अर्जुन ने भी दशपुर मे एक मन्दिर बनवाया था। सारङ्ग ने तो अपने घर देरासर वनवा कर स्फटिक की प्रतिमा स्थापन करवाई थी। शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाले थे। स्वधर्मी वन्धुओं को स्वामीवात्सल्य के साथ एक २ स्वर्ण मुद्रिका व बढ़िया वस्त्रों की प्रभावना दी। इस प्रकार अन्य बहुत से शुभकार्यों में खूब उदारवृत्ति से द्रव्य व्यय कर अनन्त पुण्योपार्जन किया।

सारङ्ग के बाद मन्त्री पद चंद को मिला। चंद अमात्यावस्था में चंद्रसेन के नाम से प्रसिद्ध हुए। जमाने की गति विधि को देख मन्त्री चन्द्रसेन ने अपने लघु भ्राताओं को व्यापार में जोड़ दिये जिससे अन्य भाई स्वरुचि के अनुकूल व्यापारिक क्षेत्र में लग गये। मन्त्री सारङ्ग का परिवार वंशावली रचयिताओं ने इस प्रकार लिखा है—
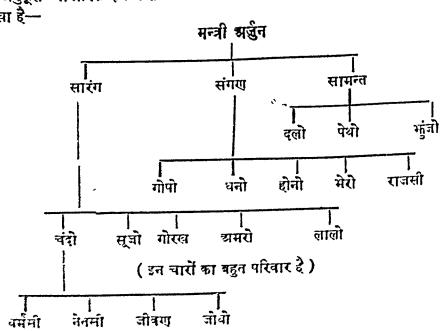
मन्त्री चंद्रसेन जैसे पारिवारिक सुख मे सम्पन्न थे वैसे लक्ष्मीदेवी के भी कृपा पात्र थे। चंद्रसेन ने भी शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाल कर स्वधर्मी भाइयों को खूब उदार वृत्ति से प्रभावना दी। याचकों को भी पुष्कल (मन-इच्छित) द्रव्य प्रदान कर सन्तुष्ट किया जिससे आपकी सुयश ज्योत्स्ना चारों ओर छिटकने लगी।

एक समय आचार्यश्री कक्कसूरिजी महा० क्रमशः विहार करते हुए दशपुर में पधारे श्रीसंघ ने आपका शानदार स्वागत किया। मन्त्री चन्द्रसेन ने नगर प्रवेश महोत्सव एवं प्रभावना में सवालक्ष द्रव्य व्यय किया।

कीर्ति की कुत्सित, भविष्य के हित की घातक आंकांक्षा से गुरुकुल वास से दूर नहीं रहना चाहते थे। वे तो गुरुकुल मे रह कर आत्मिक गुणों की उन्नति करने में ही अपने को भाग्यशाली एवं गौरवशील समझते थे। इसके विपरीत आज का शिष्य समुदाय साधारण मारवाड़ी जनता या शास्त्रानभिज्ञ मनुष्यों का मनरंजित करने के लिये कल्पसूत्र (इसका भी साङ्गोपाङ्ग पूर्ण मर्मज्ञता के साथ अध्ययन नहीं) एवं श्रीपाल चरित्र पढ़ कर व्याख्यान बांचने में ही आपने ज्ञान ध्यान की इतिश्री समझ लेता है या अपने आपको इतने में ही कृत-कृत्य बना लेता है। इतने से अध्ययन के पश्चात् तो गुरु से अलग रह कर अलग विचरने मे ही अपने को सौभाग्यलाशी समझता है। इसी अविवेकता एवं मिथ्याभिमान के कारण योग्यता उनसे हजार हाथ दूर भागती है। इससे न तो वे अपना भलाकर सकते हैं और न किसी दूसरे का कल्याण ही। इतना ही क्या पर, यह देखादेखी रूप चेपी रोग के सर्वत्र फैल जाने के कारण वर्तमान मे हमारे आचार्य नाम धराने वाले कई डजन आचार्यों के विद्यमान होने पर भी शत्रुञ्जय जैसे पवित्र तीर्थ के साठ हजार रुपये प्रति वर्ष करके देने पड़ते हैं, कारण आज के आचार्य केवल नाममात्र के ही हैं। उनमें कोई विशेष चमत्कार या दूसरों पर स्थायी प्रभाव डालने वाली अलौकिक शक्ति नहीं है।

हमारे चरित्र नायक मुनि पद्मप्रभ को सूरिजी ने उनकी योग्यतानुसार पण्डित, वाचनाचार्य और उपाध्याय पद से भूषित किया और अन्तिम समय मे तो आचार्य कक्कसूरि ने व्याघ्रपुर नगर के शाह श्राद्ध के महा महोत्सव पूर्वक सूरि पद प्रदान कर आपका नाम आचार्य देवगुप्त सूरि रख दिया।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैन संसार में एक महा प्रभावक आचार्य हुए। आपकी विद्वत्ता के सामने कई वादी सदा ही नत मस्तक रहते थे। आप अपने पूर्वजों के आदर्शानुसार प्रत्येक प्रान्त मे विहार कर धर्मोद्योत करने में संलग्न थे। आपके आदेशानुसार विविध २ प्रान्तों में विचरण करने वाले आपके आज्ञानुगामी हजारों साधु साध्वियों की समुचित व्यवस्था का सम्पूर्ण भार आपश्री पर था। यही कारण था कि, उस समय आचार्य पद एक उत्तरदायित्व पूर्ण एवं महत्व पूर्ण पद समझा जाता था। वर्तमान कालानुसार हर एक को (चाहे वह सूरि पद के योग्य न भी हो) सूरि नहीं बना दिया जाता था।

आचार्यश्री के विहार क्षेत्र की विशालता के लिये पट्टावलियों एवं वंशावलियों में बहुत ही विस्तारपूर्वक उल्लेख है। मरुधर, लाट, कोकन, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पञ्जाब, कुरु, कुणाल, विहार, पूर्वकलिङ्ग, शूरसेन, मत्स्य, बुन्देलखण्ड, चेदी आवन्तिका, मेदपाट और महाराष्ट्रादि विविध २ प्रदेशों मे आपका सतत विहार होता ही रहता था। आपने इन क्षेत्रों मे परिभ्रमन कर धर्म प्रचार भी खूब बढ़ाया।

आचार्य देव गुप्त सूरि विहार करके एक समय पारागढ़ की ओर पधार रहे थे। इधर प्रतिहार राव लाखा अपने साथियों के साथ मृगया यानि जीव वध रूप शिकार करने को जा रहा था। मार्ग में आचार्य श्री एवं राव लाखा दोनों की परस्पर भेट हो गई। सूरिजी ने उनको अहिंसाधर्म का तात्विक उपदेश देकर जैन-धर्मानुयायी बना लिया। परम्परानुसार उनको उपकेशवंश में सम्मिलित कर उपकेशवंश का गौरव बढ़ाया। इस घटना का समय पट्टावलीकारों ने विक्रमी सं० १०२६ का लिखा है। राव लाखा की वंश-परम्परा-वंशावली के आधार पर निम्न प्रकारेण है।

राव लाधो
चूंडा
चापो
रोडो
राखो
हारो
पुरो
नोड़ो
गोपो
(म० म०)
(इन सबो का परिवार वंशावली मे बहुत विस्तृत है)
देदो
आखो
तेजो
(शत्रुञ्जय का संघ)
करमण
(पावा मे मंदिर)
दुल्लो
दुर्गो
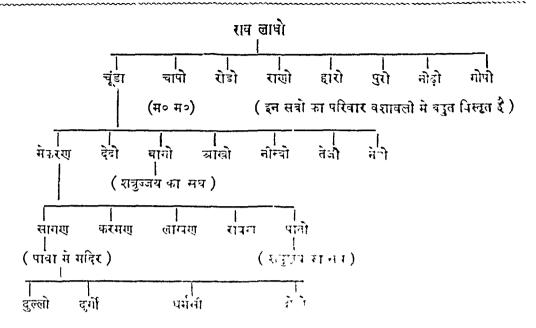
बोध देकर अहिंसाधर्मोपासक—जिनधर्मानुयायी बनाये। उन्हें उपकेश वंश मे सम्मिलित कर पूर्वाचार्यों के आदर्शानुसार उपकेश वंश की वृद्धि की। यह कार्य तो आपके पूर्वजों से अनवरत गति पूर्वक चलता ही आ रहा था।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि का शिष्य समुदाय भी खूब विशाल संख्या मे था। वे जिस किसी क्षेत्र में जाते; नये जैन बनाकर अपनी चमत्कार पूर्ण शक्ति का एवं प्रभाविकता का परिचय दे ही देते थे। एक समय आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी म० शिवगढ़, जाबलीपुर, भिन्नमाल, सत्यपुर, कोरंटपुर, शिवपुरी इत्यादि नगरों में धर्म प्रचार करते हुए चंद्रावती पधारे। तत्रस्थ श्रीसंघ ने आपका बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी ने अपनी वैराग्योत्पादि का व्याख्यान धारा चन्द्रावती में भी नित्य नियमानुसार प्रारम्भ रक्खी। त्याग, वैराग्य एवं आत्म कल्याण विषयक प्रभावोत्पादक व्याख्यानो को श्रवण कर संसारोद्विग्न कई भावुक संसार से विरक्त हो गये। प्राग्वट वंशीय शाह भूता ने जो अपार सम्पत्ति का स्वामी था; जिसके भाणा, राणा, खेमा और नेमा नाम के चार पुत्रादि विशाल परिवार था—स्त्री के देहान्त हो जाने से आत्म कल्याण करना ही अपना ध्येय बना लिया था। श्रीशत्रुञ्जय का एक विराट् संघ निकाल कर पवित्र तीर्थाधिराज की शीतल छाया में दीक्षित होने का उसने मनोगत दृढ़ संकल्प कर लिया। अपने साथ ही अपने आत्म-कल्याण की उत्कट भावना वाले भावुक व्यक्तियों को भी दीक्षा के लिये तैयार कर लिये। उक्त मनोगत विचारों की दृढ़ता होने पर श्री संघ के शाह भूता ने सूरिजी से चातुर्मास की प्रार्थना की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण जान चातुर्मास चन्द्रावती में ही कर दिया। बस फिर तो था ही क्या ? नगर निवासियों का उत्साह खूब ही बढ़ गया। शाह भूता ने भी आचार्यश्री एवं चतुर्विध श्रीसंघ का आदेश लेकर सब के लिये आवश्यक तैय्यारियाँ करना प्रारम्भ कर दी। समयानुसार खूब दूर २ आमन्त्रण पत्रिकाएँ एवं मुनियों की प्रार्थना के लिये योग्य मनुष्यों को भेज दिये। उनको अपने द्रव्य का शुभ कार्यों में सदुपयोग कर दीक्षा द्वारा आत्म कल्याण करना था अतः किसी भी तरह के शुभ कार्य में विलम्ब करना उचित न समझा। शाह भूता के पुत्र भी इतने विनयवान एवं आज्ञा पालक थे कि उन्होंने अपने पिताश्री के इस कार्य मे किञ्चिन्मात्र भी विघ्न उपस्थित नहीं किया। वे सब एकमत सेठजी के इस कार्य में सहमत थे। वे इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि जनकोपार्जित द्रव्य पर किञ्चित् भी हमारा अधिकार नहीं; फिर इस धर्म कार्य मे द्रव्य का सदुपयोग तो मानव जीवन के लिये उभयतः श्रेयस्कर ही है। अहा ! वह कैसा स्वावलम्बन का पवित्र समय था कि सब लोग अपने भाग्य पर विश्वास रखते थे। वे दूसरे की आशा पर जीना (चाहे अपना पिता ही क्यों न हो) कृतघ्नता समझते थे।

चातुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी के शुभ दिवस आचार्यश्री ने शाह भूता को संघपति पद अर्पण कर संघ को शत्रुञ्जय यात्रार्थ प्रस्थान करवा दिया। चार दिवस पर्यन्त नगर के बाहिर ठहर कर मौन एकादशी की आराधना चन्द्रावती में ही अत्यन्त समारोह पूर्वक की। बाद शुभ शकुनों से रवाना हो मार्ग के मन्दिरों के दर्शन करते हुए पवित्र तीर्थराज की स्पर्शना की। आठ दिवस पर्यन्त अष्टाह्निका-महोत्सव, पूजा, प्रभावना, स्वधर्मी वात्सल्यादि धार्मिक कृत्य कर संघपति भूता ने संघ में आगत स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिका के साथ मोदक एवं अमूल्य वस्त्रादि वस्तुओं की प्रभावना दी। अपने पुत्रों की अनुमति से अपने १० साथियों के साथ सूरिजी के कर कमलों से दीक्षा स्वीकार की। सूरिजी ने भूता का नाम विनय रुचि रख दिया। दीक्षा के माङ्गलिक कार्य के पश्चात् आचार्यश्री वहां से विहार कर कच्छ, सिन्ध, आदि प्रान्तों में परिभ्रमन करते हुए पञ्जाब प्रदेश में पधार गये।

इस तरह दीक्षित मुनि विनयरुचि को ज्ञानावरणीय कर्म के प्रगाढ़ोदय से बहुत परिश्रम करने पर भी ज्ञान नहीं आ सका। उनकी बुद्धि इतनी कुण्ठित थी कि वे जिस पाठ को दिन को रट रट कर कण्ठस्थ करते वे रात्रि

ओर आकर्षित हुए। तदनन्तर आप सीधे आचार्यश्री की सेवा में पधारे। आचार्यश्री ने भी देवी प्रदत्त वरदान के वृत्तान्त को श्रवण कर खूब सन्तोष प्रगट किया।

इस तरह पञ्जाब प्रान्त मे धर्म जागृति की नवीन क्रान्ति मचाते हुए आचार्यश्री ने भगवान् पार्श्वनाथ की कल्याण भूमि स्पर्शनार्थ काशी की ओर विहार किया। श्रीसंघ ने आपश्री का बहुत ही समारोह पूर्वक स्वागत किया। आचार्यश्री ने भी जन समाज मे धर्मोद्योत करने के लिये अपना व्याख्यान क्रम प्रारम्भ ही रक्खा। उस समय काशी के ब्राह्मण जैनियों से बहुत ही द्वेष रखते थे। उन्हे जैनियों का अभ्युदय, मान, प्रतिष्ठा किञ्चित् भी सहन नहीं हो सकती थी। वे लोग यदा कदा अपनी काली करतूतो का परिचय दे दिया करते थे। तदनुसार एक दिन आचार्यश्री के आदेश से काशी क्षेत्र मे मुनि विनयरुचि ने व्याख्यान दिया। आपश्री ने अपने व्याख्यान मे षट्दर्शन के स्वरूप को तुलनात्मक दृष्टि से प्रतिपादन करते हुए जैन दर्शन को सर्वोत्कृष्ट सकल साध्य बतलाया। भला-मुनिवर्य्य की यह सत्य किन्तु ब्राह्मणों को अरुचिकर ज्ञात होने वाली बात काशी नगरी के विप्र समुदाय को कैसे सहन हो सकती थी? बस, पूर्वापर का विचार किये बिना ही उन्होंने जैनो को अह्लान कर दिया कि जैन श्रमणो ने जो मुँह से कहा—वही प्रमाणों से सिद्ध करने को तैय्यार हो जांय तो हम उनके साथ शास्त्रार्थ करने को तैय्यार है।

उस समय काशीपुरी में उपकेशवंशियो की घनी आबादी थी। वे सबके सब बड़े व्यापारी एवं लक्षाधीश-कोट्याधीश धर्म प्रिय श्रावक थे। वे लोग आचार्यश्री के परम भक्त, देव, गुरु, धर्म के अनुरागी थे। उन लोगो ने ब्राह्मणो की जाहिर घोषणा के लिये आचार्यश्री से शास्त्रार्थ करने के बारे मे परामर्श किया तो सूरिजी ने सहर्ष उत्तर दिया इसमें आनाकानी की बात ही क्या है? शास्त्रार्थ करके धर्म की वास्तविकता को जगजाहिर करना तो हमारा परम कर्तव्य ही है। काशी के ब्राह्मणों से धर्म चर्चा करने में मैं क्या? मेरे शिष्य ही पर्याप्त हैं। बस, फिर तो था ही क्या? ब्राह्मणो के आह्वान को जैनियों ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। ठीक समय में मध्यस्थों के अध्यक्षत्व मे शास्त्रार्थ विषयक निर्णय के लिये एक सभा हुई। इधर से मुनि विनयरुचि और उधर से ब्राह्मण समाज। दोनों के शास्त्रार्थ का विषय था—वेदविहित हिंसा, हिंसा न भवति। ब्राह्मणों ने अपने पक्ष की प्रमाणिकता के विषय मे जो प्रमाण पेश किये थे, मुनिजी ने उन्हीं प्रमाणों को युक्ति पुरस्सर खण्डित कर अहिंसा भगवती का इस प्रकार प्रतिपादन किया कि वादियो को अपने आप मस्तक झुकाना पड़ा। इससे जैनधर्म की बहुत ही प्रभावना हुई। काशी के सकल संघ की अनुमति से मुनि विनयरुचि को पण्डित पद से विभूषित किया तथा श्रीसंघ के अत्याग्रह से आचार्यश्री ने वह चातुर्मास वहीं पर कर दिया। इस चातुर्मास कालीन दीर्घ अवधि में जैनधर्म के उद्योत के साथ ही साथ बहुत सा ब्राह्मण समाज भी सूरिजी का भक्त एवं अनुरागी बन गया।

चातुर्मासानन्तर आचार्यश्री ने वहां से प्रस्थान कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मथुरा नगरी में पदार्पण किया। वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी का सुन्दर सत्कार किया। आचार्यश्री का व्याख्यान तो हमेशा होता ही था अतः जैन, जैनेतर सकल जन समाज गहरी तादाद मे आचार्यश्री के व्याख्यान का लाभ उठाने लग गये। मथुरा में उस समय बौद्धों का बहुत कम प्रभाव था पर ब्राह्मणों का पर्याप्त प्रचार था। सूरिजी के अनिवार्य प्रभाव के सामने तो वे कुछ नहीं कर सके कारण, उन्होंने पहिले से ही काशी के शास्त्रार्थ का पराजय को सुन रक्खा था। श्रीसंघ के अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चातुर्मास मथुरा में ही कर दिया। श्रेष्ठि गोत्रीय शाह शाखा के शा० मादा, लाव दोनों भ्राताओं ने श्रुतज्ञान की भक्ति निमित्त सवा लक्ष रुपये आगम लिखवाने में व्यय किये। इनके सिवाय भी कई प्रकार के उपकार हुए। चार बहिनें व २ पुरुष आचार्यश्री के त्याग वैराग्य से प्रभावित हो, सब (६) व्यक्ति दीक्षा लेने को उद्यत होगये। चातुर्मास समाप्त होते ही उन भव्यात्माओं को दीक्षा देकर सूरिजी ने वहां से विहार कर दिया।

पारणाल्प तप कर के सम्यग्दृष्टि देव की आराधना की जिससे आपके पूर्व भव का गरीब सार्धमी भाई जो पूर्वभव में आपकी सहायता से धर्म से चलचित्त होता हुआ स्थिर मन होकर अन्त में समाधि पूर्वक मर कर देव हुआ था, उसका उपयोग मुनि सोमसुन्दर की भावना की ओर लगा कि यह अपने पूर्वभव का महान् उपकारी समझ कर मुनि की सेवा में उपस्थित होकर वंदन किया। और अपने अवधिज्ञान से पूर्वभव में किया हुआ उपकार का हाल सुना कर बोला कि पूज्य गुरु महाराज ! मुझे जो देव ऋद्धि प्राप्त हुई है वह आपकी पूर्ण कृपा का ही फल है अब आप कृपा कर मेरे लायक कार्य हो वह फरमाकर मुझे कृतार्थ बनावें ! मुनिजी को तो इतना ही चाहता था मुनि ने कहा -महानुभाव ! मुझे नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की यात्रा करने की उत्कृष्ट इच्छा है। इस देव ने कहा कि आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये मैं आपको नंदीश्वर द्वीप में लेजा कर उतार दूंगा। आप यात्रा करलें, पुनः यहां पर लेआऊंगा पर स्मरण रखें कि आप वहां अधिक नहीं ठहर सकोगे। बस यात्रा की उत्कठ भावना वाले मुनि देव की पीठ पर सवार होगये देव चलता हुआ मुनिजी से कह रहा था कि अब जम्बुद्वीप का उल्लंघन कर लवण समुद्र पर आये हैं अब धातकी खण्ड पर आये एवं कालोदधि समुद्र पर। पुष्करार्द्ध के यहां तक मनुष्य बसते हैं और सूर्यचन्द्र का चराचर भी यहीं तक है आगे पुनः पुष्करार्द्ध तदन्तर पुष्कर समुद्र। बाद वारुणी द्वीप, वारुणी समुद्र, क्षीर द्वीप, घृत समुद्र, इक्षु द्वीप, इक्षु समुद्र इनका लम्बा चौड़ा लक्ष योजन जम्बुद्वीप है बाद स्थान दुगुणा करने से इक्षु समुद्र ८१९२००००० अर्थात् इक्यासी करोड़ बानवे लाख योजन का लबा चौड़ा है इसके नदीश्वर द्वीप आता है वह १६३८५००००० योजन का लम्बा है। जब मित्र देव ने मुनिजी को नन्दीश्वर द्वीप के मध्य भाग में आया हुआ पूर्व के अञ्जनगिरी पर्वत पर उतार दिये।

मुनिजी वहां के रत्नमय मन्दिर की रचनादि को देख आंखों में चकाचौंध हो गये पुनः देव के साथ ही साथ मन्दिर का सर्वत्र अवलोकन कर मूल गभारा में आकर चौमुख भगवान् के दर्शन चैत्यवन्दन स्तुति कर अपने जीवन को कृतार्थ बनाया मुनि के हर्ष का पारावार नहीं रहा ऐसा मुनि के कहने से प्रतीत हुआ। अस्तु मुनिजी ने वहां पर जितने पदार्थ एवं मन्दिरों की ऊंचाई चौड़ाई वगैरह देखी वह अपनी शीघ्र ग्राहिणी प्रज्ञा से याद रख वहां की यात्रा कर पुनः देव की पीठ पर सवार हो शीघ्र ही स्वस्थान आगये साथ में वहाँ के देवताओं की की हुई पूजा से एक सुगन्धी पुष्प देवता देश से ले आए थे। देवताने मुनि को अपने स्थान पर उतार कर वन्दन किया और पुनः प्रार्थना की कि हे परोपकारी गुरु महाराज ! आपका तो मेरे ऊपर असीम उपकार हुआ है अतः भविष्य में मेरे लायक सेवा हो तो स्मरण कीजिए कि आपके ऋण से किंचित उऋण होऊं इत्यादि कह कर स्वस्थान चला गया। बाद आचार्यश्री तथा अन्य साधु निद्रा मुक्त हो अपने स्वाध्याय एवं ध्यान में लग गये पर मकान अनुपम पुष्प की सौरभ से एक दम सुवासित होने से वे सोचने लगे कि आज इतनी सुवास कहां से आरही है, क्या आस पास में ऐसे पदार्थ का प्रादुर्भाव हुआ है ? इतने में तो मुनि सोमसुन्दर ने आकर आचार्यश्री के चरणारविंद में वन्दन करके हस्तबद्ध और पूर्ण हर्ष के साथ निवेदन किया कि कृपासिन्धु ! आपकी अतुल कृपा से मेरा चिरकाल का मनोरथ सफल होगया है। आचार्यश्री के स्मृतिज्ञान में आ गया कि मुनि की भावना नंदीश्वर की यात्रा की थी शायद किसी देव की सहायता से इसके मनोरथ सफल हो गये हों अतः आचार्यश्री ने सब हाल पूछा और मुनि ने आद्य से इति तक सब हाल कह सुना [illegible] वहां से लाए हुए पुष्प के भी समाचार कह कर वह पुष्प सूरिजी के सामने रख दिया [illegible] न केवल एक उपाश्रय ही नहीं बल्कि आस पास का प्रदेश भी सुगन्ध युक्त बन गया। देवताओं [illegible] पुष्प वनस्पति का नहीं था कि जिसकी सुगन्ध स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाय पर यह पुष्प तो [illegible] [illegible] और स्वर्ग के अर्थ [illegible] ही नहीं सके।

[illegible] मन्दिर वालों ने इस बात की चर्चा होने लगी पर किसी को पता भी नहीं [illegible]।

दरवाजों के चारों तरफ के पदार्थ हैं उनको देख मैं मूल मन्दिर में गया वहां सोहल योजन का मणिपीठ है उसके ऊपर एक देवच्छन्दा जो सोलह योजन लम्बा चौड़ा और साधिक सोलह योजन ऊंचा है जिसके अन्दर शांतमुद्रा पद्मासन एवं वीतराग भाव को प्रदर्शित करने वाली १०८ जिन प्रतिमाएं विराजमान है जिनके दर्शन करते ही मै तो आनंद सागर में मग्न हो गया। मेरे आत्मा के एक-एक प्रदेश में वीतराग भावना का प्रादुर्भाव हुआ। और वीतराग वर्णीत आगमो के लिये मै बार-बार विस्मित चित्त होने लगा। खैर, जब मैं देव के साथ दूसरे अंजनगिरी पर जाकर दर्शन किया तो जो रचना पहले अंजनगिरी पर है वह दूसरे और बाद में तीसरे और चौथे अंजनगिरी पर देखी। दर्शन चैत्यवन्दन स्तुति कर अपने जीवन को कृतार्थ बनाया।

प्रत्येक अंजनगिरी पर्वत के चारों ओर चार-चार बावड़ियां हैं जो एक लक्ष योजना लंबी पचास हजार योजन चौड़ी और एक हजार गहरी तोरण दरवाजा ध्वजा चामर छत्र अष्ठाष्ट मंगलीक से सुशोभित है प्रत्येक वापि के मध्य भाग में एक एक दधि मुखा पर्वत है एक हजार योजन भूमि मे और ६४००० योजन भूमि से ऊंचा दस हजार योजन का मूल मे चौड़ा तथा इतना ही ऊपर के तला में चौड़ा है सफेद दही के समान रत्नों के वे पर्वत हैं अर्थात् चार अंजनगिरी के चारो तरफ १६ बावड़ियां और सोलह बावड़ियों में सोलह दधिमुखा पर्वत हैं और उन १६ पर्वतो पर १६ सिद्धायतान सब चार-चार दरवाजे वाले जैसे अंजनगिरी के मंदिर का मैंने पूर्व में वर्णन किया है उसी प्रकार के ही ये मंदिर हैं।

पूर्व कथित १६ बावड़ियो के अन्तर में दो-दो कनकगिरी पर्वत आये हैं और ऐसे ३२ कनकगिरी पर्वत है। ये एक-एक हजार योजन के ऊंचे हैं और उतने ही चौड़े पलकाकार सर्व कनकमय है और उन ३२ कनकगिरी पर ३२ जिन मन्दिर हैं जो पहले कहे प्रमाण वहां भी जाकर मैंने बड़े ही हर्ष के साथ दर्शन चैत्यवन्दन स्तुतियें की जिसका आनन्द या तो उस समय मेरी आत्मा ही अनुभव कर रही थी सो जानती है या परमात्मा जानते हैं इन ५२ पर्वतो के अलावा चार रति करे पर्वत जो रत्नोमय हैं उन चारो पर्वतों के चारों ओर सोलह राजधानिया हैं जिनमें आठ तो शक्रेन्द्र की अग्रम हेषियों और आठ ईशानेन्द्र की अग्रम हेषियो की है जब भगवान् के कल्याणक दिनो मे तथा अन्य पर्वादिक मे वे देवांगना नन्दीश्वर मे जाती है तब ये देव देवियां अपनी राजधानियो में विश्राम लेती है वनखण्डो मे आराम करती हैं इत्यादि उन नन्दीश्वर द्वीप के महात्म्य का कहां तक वर्णन किया जा सकता है यदि देवता के लौट कर वापस आने की अवधि नहीं होती तो मैं वहां से वापिस आने की इच्छा तक भी नहीं करता पर क्या किया जाय देव के साथ मुझे वापिस आना पड़ा मैंने वहां से रवाना होते २ देखा कि आकाश के अन्दर कई चारण मुनि भी शायद वहां यात्रार्थ आये थे मैंने वहाँ की स्मृति के लिये एक पुष्प लाया हूँ जो इस मकान को ही नहीं पर मोहल्ले तक को सौरभमय बना रहा है। मुनि सोमसुन्दर ने ऊपर बतलाया हुआ नन्दीश्वर द्वीप के पदार्थों को एकेन्द्र गिनती निम्न लिखित है—

१—चार अंजनगिरी पर्वत ऊंचा ८४००० योजन प्रमाण।
२—सोलह वापियों-लाख योजन लंबी पचास हजार योजन चौड़ी।
३—सोलह दधिमुख पर्वत ऊंचा ६४००० योजन।
४—बत्तीस कनकगिरी पर्वत ऊंचा एक हजार योजन।
५—पूर्वोक्त बावन पर्वतों पर बावन जैन मंदिर १००-५०-७२ योजन।
६—पूर्वोक्त बावन जैन मन्दिर चौमुख चार द्वार वाले हैं।
७—पूर्वोक्त बावन मन्दिरों में ५६१६ जिन प्रतिमाएं हैं वे जघन्य सात हाथ उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की सर्वरत्नोंमय पद्मासन पर विराजमान है।
८—सब मन्दिरों के [illegible] मुख मंडप हैं।
९—मुख मंडप के आगे [illegible] पर [illegible] है।

दोनों अध्यापक के पास गये उन्होंने भी समझाया पर ब्राह्मण बालक ने अपना हठ नहीं छोड़ा इतना ही क्यों पर उसने क्रोध में आकर एक प्रतिज्ञा भी करली।

विप्र पुत्र धुरि दई गाली, क्रूर करंबु तुझ कपाली। जु थउ तुं बांमण सही, नहीं तरी मरइड भणिजे भई॥

इस पर सौधर्म ने भी गुस्सा कर के कहा कि—

तव ते घइ बोलिउ सुधर्म, जो जे बांमण माहरु कर्म। मूओ न मारुं तुझ प्राणिउ, नहीं तर नहीं सुधइ वणियो।

(लवण्य समगकृत यशोभद्रसूरि रास)

देवी कहती है कि उस सौधर्म को लाकर दीक्षा दो वह आपके गच्छ का भार वहन करेगा। देवी अदृश्य होगई। बाद में आचार्य ने संघ से कहा और संघ के साथ चलकर आचार्य पलासी आए और गुणसुन्दरी के पास जाकर पुत्र की याचना की पर यह कब बन सकता था कि माता अपना इकलौता पुत्र वह भी बालभाव वाले को मांगा हुआ दे दे पहले तो गुणसुन्दरी खूब गुस्से हुई पर बाद में श्रीसंघ ने उसको खूब समझाई और उसको सौधर्म की दीक्षा के भावी लाभ तथा इसमें तुम्हारा ही गौरव है इत्यादि उपदेश से प्रभावित होकर गुणसुन्दरी ने अपने एकमात्र इकलौता सा पुत्र को गुरु चरणों में अर्पण कर दिया। बाद में ईश्वरसूरि ने उस पांच छः वर्ष के होनहार बालक को दीक्षा दे दी। बाद दीक्षा के छः मास में ही वह शास्त्रों का पारंगत पंडित हो गया। इतना ही क्यों पर वे सूरिपद के योग्य सर्वगुण भी सम्पादित कर लिये।

तत्पश्चात् ईश्वरसूरि पुनः मुंडारा में आये बारह गौत्र के साथ बदरीदेवी की आराधना की। देवी स्वयं आकर संघ समीक्षा सौधर्म मुनि के तिलक कर गले में पुष्पों की माला डाल कर सूरिपद अर्पण कर आपका नाम यशोभद्रसूरि रख कर अदृश्य हो गई। यशोभद्रसूरि विकार का पराजय करने के लिये छः विगई का त्याग रूप अविल करना प्रारम्भ कर दिया।

यशोभद्रसूरि विहार कर पाली आए श्रीसंघ ने अपूर्व महोत्सव कर नगर प्रवेश करवाया सूरिजी की अमृतमय देशना श्रवण कर श्रीसंघ ने अपने जीवन को कृतार्थ किया। एक दिन सूरिजी सूर्य के मन्दिर के पास निर्वद्य भूमि देख थडिले बैठे सूर्य ने सूरिजी की व्यय के अनुसार विकट तपस्या जान:कर हीरा, पन्ना, मणि, मुक्ताफल डाल दिये पर सूरिजी ने तो उनके सामने देखा तक नहीं इस पर सूर्य ने सोचा कि ऐसा पवित्र सूरि मेरे मन्दिर में आवे तो मैं कृतार्थ बनूं। सूर्य ने वरमान वरमाई जिसमें सूरिजी सूर्य के मन्दिर में चले गये सूर्य ने कपाट बन्द कर कहा कि आप कुछ मांगो ? सूरिजी ने कहा हम निर्ग्रन्थ हैं हमको कुछ भी नहीं चाहिये। सूर्य बहुत आग्रह किया तो सूरिजी ने सूक्ष्म (बहुत छोटे) जीव देखने का चूर्ण दीरावें। सूर्य ने कहा कि कल मैं चूर्ण लेकर आपके मकान पर आऊंगा। इत्यादि वार्तालाप कर सूरिजी अपने स्थान पर आ गये।

सूर्य ने सुवर्णाक्षरों में अनेक विद्याओं के यंत्र एक पुस्तक में लिख कर तथा एक अंजन कुपिका के विप्रवेश धारण कर सूरिजी के पास आया और दोनों वस्तु सूरिजी के आगे रख कर सूर्य अदृश्य होगया सूरिजी ने अंजन आंखों में लगा कर देखा तो सब जीवों की राशी (छोटा से छोटा) भी दीखने लगा। तथा पुस्तक से विद्याएं भी सिद्ध करली। बाद में विचार किया कि पीछे के लोग ऐसी विद्याओं का दुरुपयोग न कर डाले अतः अपने शिष्य मुनि बलभद्र से कहा कि जाओ इस पुस्तक को सूर्य के मन्दिर में रख आओ। रास्ते मार्ग में पुस्तक खोलकर पढ़ना नहीं। मुनि बलभद्र पुस्तक लेकर जा रहा था उसके दिल में आई कि इसमें कौनसी विद्या है। अतः मार्ग में पुस्तक खोल तीन पन्ने निकाल लिये। बाद में पुस्तक को सूर्य के मन्दिर में [illegible] कर मुनि जोर से रोने लगा इस पर सूर्य ने कहा कि हे भद्र ! रोता क्यों है ? जा मैंने तुझे तीन पत्रं दिये [illegible] भद्र मुनि स्वस्थान आगये।

[illegible] इन विद्याओं से नव कोटि अष्टसिद्धि तथा आकाशगामिनी वगैरह कई विद्याओं को सिद्ध

आचार्य यशोभद्रसूरि के चमत्कार

करली थी जिससे प्रतिदिन शत्रुञ्जय, गिरनार, सम्मेतशिखर, अष्टापद चम्पा-पावापुरी तीर्थों की यात्रा करके ही भोजन करते थे। सूरिजी पाली से विहार करके सादेराव आये वहा मन्दिर की प्रतिष्ठा पर धारणा से अधिक लोग बाहर से आये उनके लिये भोजन बनाने मे घृत कम होगया इस बात की खबर सूरिजी को पड़ते ही पाली का एक जैनेतर धनिक के यहा से घी मगवा दिया, जब कार्य समाप्त हुआ तो सूरिजी ने कहा कि पाली के व्यापारी के घी के दाम चुकादो। जब सादेराव वाले पाली जाकर उन सेठ को घृत के दाम देने लगे तो उसने कहा मैंने घृत ही नहीं दिया तो दाम किस बात के लेऊ। पर जब उसने अपने घृत की कोठिया देखी तो उसको सूरिजी के चमत्कार पर महान् आश्चर्य हुआ उसने कहा कि संसार मे राजदंड, यमदंड, चोरदंड, अग्निदड और जलदड हम सहन कर लेते हैं पर मेरी दुकान से एक महात्मा ने घृत मंगाया था और भी [illegible] के काम के लिये इसके दाम यदि मैं न लेऊ तो मन्दिर प्रतिष्ठा जैसे पुण्य कार्य में मेरा हिस्सा शामिल हो जायगा। इस बात की खबर जब सूरिजी को मालूम हुई तो उस भक्त को सुकर्मी जान, और [illegible] पर प्रति बोध देकर जैन धर्मी बनाया।

आचार्य नहीं इससे सूरिजी के चमत्कार से राजा बड़ा ही आश्चर्यान्वित हुआ। संघ मार्ग में आगे चल कर पानी के अभाव से दुःखी हुआ। एक सूखे तालाब को सूरिजी ने विद्यावल से भर दिया। इत्यादि बहुत चमत्कारों के साथ संघ तीर्थ पर पहुँचा। शत्रुञ्जय की यात्रा कर गिरनार गये वहां प्रभो को रत्नजड़ित भूषण धारण करवाये। सब लोग नीचे आये संघपति प्रभु दर्शनार्थ गये तो प्रतिमा पर एक भी भूषण नहीं देखा सूरिजी के पास आकर प्रार्थना करी कि प्रभो! यह आक्षेप संघ पर आवेगा। सूरिजी ने कहा कि एक मनुष्य आभूषण लेकर आभाट गया है वीसवें दिन पकड़ा जायगा। ऐसा ही हुआ भूषण वापिस लाकर प्रभो को धारण करवाये।

सूरिजी वल्लभपुर में पधार कर चातुर्मास किया और वहाँ पर एक अवधूत योगी आया जो कि दुवातिया वाला ब्राह्मण ही था उसने व्याख्यान की सभा में अपनी दाड़ी के बालो के दो सर्प बना कर छोड़े पर सूरिजी ने दो नौकुल बना कर छोड़े कि सर्प को पकड़ पछाड़े। एक समय एक साध्वी सूरिजी को वन्दन करने को आती थी अवधूत ने उसे पागल बना दी। जब सूरिजी को ज्ञात हुआ तो आपने घास का एक पुतला बना कर संघ को दिया कि यदि अवधूत न माने तो एक अंगुली काट देना।—श्रावक पुतला लेकर अवधूत के पास गये और उसको बहुत समझाया कि साध्वी को अच्छी कर दो पर उसने एक भी नहीं सुनी तो फिर श्रावक ने पुतले की एक अंगुली काटी तत्काल अवधूत की अंगुली कट गई फिर कहा अभी भी समझ जा वरना सिर काट दिया जायगा। तब अवधूत ने कहा कि १०८ पानी के घड़ों से इसको स्नान करा दो ताकि यह ठीक हो जायगी। इस प्रकार करने से साध्वी ठीक हो गई। इसी प्रकार अवधूत ने कई प्रपंच किये पर सूरिजी के सामने उसकी कुछ भी नहीं चल सकी आखिर राज सभा मे ८४ वाद हुए उनमें अवधूत ही पराजय हुआ।

सोमकुल रत्न पट्टावली मे कवि दीपविजय ने यह भी लिखा है कि सं० १०१० में यशोभद्रसूरि और एक शिव भक्त के आपस मे विद्यावाद हुआ इसमें दोनों ने एक-एक मन्दिर उड़ाकर नाडोलाई में ले आये वे दोनों मन्दिर अद्यावधि वहाँ विद्यमान हैं इत्यादि सूरिजी के चमत्कार अपार हैं और इन विद्या चमत्कारों से एक तो जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना की और दूसरा अवधूत योगियों के, जैनधर्म पर बहुत घातिक आक्रमणों से जैनधर्म एवं जैन संघ की रक्षा भी की।

आचार्य यशोभद्रसूरि अपने सदुपदेश एवं आत्मीय चमत्कारों से कई राजाओं एवं साधारण जनता को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की खूब वृद्धि की। एक समय आप नारदपुरी में पधार कर राव लाखण के लघु भ्राता रावदूधा को उपदेश देकर जैनी बनाया। रावदूधा की सतान आशापुरी माता के भंडार का काम करने से वे आगे चल कर भंडारी कहलाये। इसी प्रकार गुगलिया, धारोला, कांकरिया दुधेड़िया, बोहरा, चतुर, शिशोदियादि १२ जातियों के आदि पुरुषों को आचार्य यशोभद्रसूरि ने उपदेश देकर जैनधर्मी श्रावक बनाये थे।

जब सूरिजी ने अपने ज्ञान द्वारा अपनी आयुष्य शेष छः मास का रहा जाना तब श्रीसंघ के समीप आलोचना, निंदना कर शुद्ध भावों से निशल्य हो गये तथा श्रीसंघ को कहा कि मेरे मरने के बाद मेरे मस्तक की खोपड़ी फोड़ तोड़ के चूर चूर कर डालना नहीं तो कहीं मेरी खोपरी अवधूत के हाथ लग गई तो जैनधर्म का खासा नुकसान होगा। इत्यादि कह कर आचार्य यशोभद्रसूरि ने समाधि पूर्वक स्वर्ग के अतिथि बन गये। बाद में श्रावक ने गुरु आज्ञा का पालन किया बाद में अवधूत आया पर उसके मनोरथ सफल हो नहीं सके। कारण उसके आने के पूर्व ही गुरु आज्ञा का पालन श्रीसंघ ने कर दिया था।

* यशोभद्रसूरि जैन समाज में एक महान प्रतिभाशाली एवं चमत्कारी आचार्य हुए हैं आपके कई भक्तजनों ने भिन्न भिन्न संख्या में ग्रन्थों का निर्माण किया था पर अभी तक ४६

भंडारी जाति की उत्पत्ति

साहित्य प्रकाश मे नहीं आया है केवल आपका ही क्यो पर अभी तो ऐसे बहुत महापुरुषो का जीवन अन्धेरे मे ही पडा है फिर भी जमाना स्वयं प्रेरणा कर रहा है। अत. जितना मसाला मिला है उसके आधार पर मुनिवर्य श्री विद्याविजयजी महाराज ने आचार्य यशोभद्रसूरि के जीवन के विषय मे एक विस्तृत लेख लिख कर जैन श्वे० कान्फ्रेन्स का मासिक पत्र हेरल्ड मे मुद्रित करवाया था उसके आधार या कुछ अन्यत्र देखकर मैंने पूज्याचार्य देव का सक्षिप्त से जीवन लिखा है आचार्यश्री के लिये दो प्रमाण उपलब्ध हुए है।

(१)

सोहम कुलरत्न पट्टावली मे कवि दीपविजयजी लिखते हैं —

साडेरा गच्छ मे हुआ जसोभद्र सूरिराय। नवसे हे सतावन समे जन्म [illegible] ॥ १ ॥
सवत नवसै हे अडसठें सूरि पदवी जोय। बदरी सूरी हाजर रहे पुन्य [illegible] ॥ २ ॥
सवत नव अगण्योतरे नगर मुडाडा माहे। साडेरा नगरें [illegible] ॥ ३ ॥
बुहा किन्न रसी वली खीम रोषि मुनिराज। जसोभद्र [illegible] गुरु भाई [illegible] ॥ ४ ॥
बुहाथी गच्छ निकल्यो मलधारा नम नाम। किन्न रसीथी [illegible] ॥ ५ ॥
खीम रसीथीय निपनो कोर वट वालन गच्छ [illegible] ॥ ६ ॥
आबु रोहाडे विचे गाम पलासी माह। [illegible] ॥ ७ ॥
खडिओ भाणो विप्रनो करे प्रतिज्ञा एम। [illegible] ॥ ८ ॥
ते ब्रांह्मण जोगी थई विद्या सिखी आप। [illegible] ॥ ९ ॥
तिया आयो तिहिज जटिल पूरव द्वेष विचार। [illegible] ॥ १० ॥
सवत [illegible] दाढोतरें किया जोगानी वाद। [illegible] ॥ ११ ॥
ते जोगीपण लाविओ सिव देहरो मन भाव। [illegible] ॥ १२ ॥
ते हमणां प्रासाद छे नडलाई सेहेर मन्झार। [illegible] ॥ १३ ॥

तत्पुत्राभ्यॉं मं० सीहा-समदाभ्यां सद्बांधव मं० कर्मसीधारा लाखादि सुकुटम्ब युताभ्यां श्रीनन्दकुलवत्यां पुर्यां सं० ९६४ श्रीयशोभद्रसूरिमंत्रशक्तिसमानीतायां मं० सायर कारित देवकुलिकायुद्धारितः सायर नाम श्रीजिन वसत्यां श्रीआदीश्वरस्य स्थापना कारिता कृताश्रीशान्तिसूरि पट्टे देवसुन्दर इत्यपरशिष्यनामभिः आ० श्रीईश्वर सूरिभिः इति लघुप्रशस्तिरिथ लि० आचार्य श्रीईश्वरसूरिणा उत्कीर्णा सूत्रधार सोमाकेन ॥ शुभम् ॥

(श्री नाडोलाई ग्राम के मन्दिर में वर्तमान है)

"इति महाप्रभाविक आचार्य यशोभद्रसूरि का संक्षिप्त जीवन"

जैसे मुनि सोमसुन्दर ने आत्मीय चमत्कार से देव के जरिये श्री नन्दीश्वरद्वीप के ५२ जिनालय की यात्रा खूब आनन्द के साथ की इसी प्रकार आचार्य यशोभद्रसूरि भी अपने आत्मीय चमत्कारों से प्रतिदिन पंच महातीर्थों की यात्रा किया करते थे इन महा पुरुषों के अलावा भी बहुत से प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं कि जिन्होंने अपने सत्यशील एवं ब्रह्मचर्य के प्रकाण्ड प्रभाव से नरनरेन्द्र तो क्या पर सुरसुरेन्द्र को पायनमी बना कर शासन की प्रभावना के कई कार्य किये थे। आचार्य वीरसूरि का चरित्र हम ऊपर लिख आये हैं कि आपने भी देवता की सहायता से अष्टापद तीर्थ की यात्रा की थी और वहाँ से वापिस लौटते समय देवताओं के प्रभु को चढ़ाये चावल ले आये थे जैसे सोमसुन्दर मुनि पुष्प लाया था अस्तु।

आचार्य देवगुप्तसूरि के शासन में ऐसे ऐसे कई प्रतिभाशाली मुनि हुए थे और ऐसे चमत्कारी मुनियों के प्रभाव से ही शासन की सर्वत्र विजय विजयनी फहरा रही थी सूरिजी की आज्ञावर्ती अन्योन्य मुनिराज आदेशानुसार अन्य प्रान्तों में विहार करते हुए जैन शासन का उद्योत करते थे अनेक मांस मदिरा सेवियों को प्रतिबोध देकर महाजनसंघ के शामिल कर उसकी संख्या में खूब वृद्धि कर रहे थे। एक समय सूरिजी महाराज विहार करते हुए नागपुर पधारे। तथा अन्यत्र विहार करने वाले मुनिराज भी सूरिजी के दर्शनार्थ नागपुर में आकर सूरिजी के दर्शन किये—

उस समय का नागपुर अच्छा नगर था। उपकेशवंशियों की आबादी का तो वह एक केन्द्र स्थान ही था। धन, जन एवं व्यापारिक स्थिति में सब से सिरताज था। श्रीसंघ के अत्याग्रह से वह चातुर्मास तो सूरीश्वरजी ने नागपुर में ही कर दिया। आदित्य नाग गौत्रीय गुलेच्छा शाखा के शा० देदा ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर श्री श्रुतज्ञान की आराधना की। महाप्रभावक भगवती सूत्र को बाँचकर आचार्यश्री ने संघ को सुनाया। इसके सिवाय भी कई भावुकों ने अनेक प्रकार से तन, मन एवं धन से लाभ उठाया। विशेष में आचार्यश्री का प्रभावोत्पादक व्याख्यान श्रवण कर भद्र गौत्रीय मन्त्री करमण के पुत्र सज्जन ने छ मास की विवाहित पत्नी को त्याग कर दोनों ने सूरिजी की सेवा में भगवती, भव विध्वंसिकी दीक्षा लेने का निश्चय किया। चातुर्मासानन्तर उन भावुकों का अनुकरण कर करीब १६ स्त्री पुरुष दीक्षा के लिये और भी तैय्यार हो गये। शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में सूरिजी ने सज्जन प्रभृति १६ वैरागियों को दीक्षा देकर उनका आत्म कल्याण किया। उसी शुभ मुहूर्त में बप्पनाग गौत्रीय नाहटा शाखा के धर्मवीर शा० दुर्गा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिनसे जैन धर्म की आशातीत प्रभावना हुई। तत्पश्चात् सूरिजी ने मुग्धपुर, कुर्चपुर, मेदिनीपुर, फलवृद्धि, हंसपुर, [illegible], शाकम्भरी, आशिकादुर्ग, माण्डव्यपुर होते हुए उपकेशपुर की ओर पधारे। उपकेशपुर निवासियों को इस बात की खबर पड़ते ही उनके धर्मोत्साह का पारावार नहीं रहा। [illegible] गौत्रीय शा० [illegible] ने [illegible] द्रव्य व्यय कर सूरिजी के नगर प्रवेश का शानदार महोत्सव किया। सूरिजी ने भी [illegible] के साथ भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर [illegible] [illegible] [illegible] दिया। सूरिजी म० का इस समय उपकेशपुर में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

* [illegible] का नागपुर में [illegible]

९—रूणावती	के	गुलेच्छा	जाति के	शाह	गोधा ने	सूरीजी के पास	दीक्षा
१०—फलवृद्धि	के	श्रीश्रीमाल	,,	,,	गोवीन्द ने	,,	,,
११—कर्चुपुर	के	संचेती	,,	,,	राव गोल्हा ने	,,	,,
१२—दासोडी	के	सुखा	,,	,,	गोशल ने	,,	,,
१३—पद्मावती	के	साचा	,,	,,	नाथा ने	,,	,,
१४—सोनगढ़	के	घुघुरा	,,	,,	न्यरावण ने	,,	,,
१५—डागीपुर	के	कंकरिया	,,	,,	नरसिंह ने	,,	,,
१६—राजपुर	के	सुघड़	,,	,,	नोधण ने	,,	,,
१७—हापडी	के	चंडालिया	,,	,,	नवल ने	,,	,,
१८—चर्पट	के	वापणा	,,	,,	नंदा ने	,,	,,
१९—छत्रीपुर	के	तानेड़	,,	,,	दैपाल ने	,,	,,
२०—मानपुर	के	गान्धी	,,	,,	चतुरा ने	,,	,,
२१—पाली	के	चंडालिया	,,	,,	जीवण ने	,,	,,
२२—पालड़ी	के	ढेलडिया	,,	,,	जोधा ने	,,	,,
२३—मूलीग्राम	के	देरिया	,,	,,	लाधा ने	,,	,,
२४—राटपुर	के	सुघड़	,,	,,	छाजू ने	,,	,,
२५—वनपुर	के	कनोजिया	,,	,,	डुगरे ने	,,	,,
२६—सरोली	के	प्राग्वट	,,	,,	रूपा ने	,,	,,
२७—गोगनीपुर	के	,,	,,	,,	सुजल ने	,,	,,
२८—रामपुर	के	,,	,,	,,	वस्तपाल ने	,,	,,
२९—वीरपुर	के	,,	,,	,,	कुंपा ने	,,	,,
३०—त्रीभुवन	के	,,	,,	,,	सारंग ने	,,	,,
३१—डामरेल	के	,,	,,	,,	सेहारण ने	,,	,,
३२—मालपुरा	के	श्रीमाल	,,	,,	सेजपाल ने	,,	,,
३३—नीमोड़ी	के	,,	,,	,,	धोकल ने	,,	,,
३४—उच्चकोट	के	,,	,,	,,	पूर्णाज ने	,,	,,
३५—वेणुकोट	के	,,	,,	,,	पद्मा ने	,,	,,

आचार्यश्री के २२ के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—[illegible]	के	मुरवा	जाति के	शाह	शूरा ने	भ० महावीर के म०	प्रतिष्ठा करवाई
२—[illegible]	के	नाबा	,,	,,	आमल ने	,,	,,
३—[illegible]	के	श्रेष्ठि	,,	,,	नोला ने	,,	,,
४—आघाट	के	पारख	,,	,,	छुटाड ने	,,	,,
५—[illegible]	के	नाहटा	,,	,,	वेना ने	,,	,,
६—चित्रकोट	के	आर्य	,,	,,	भोजा ने	भ० पार्श्वनाथ	,,
७—[illegible]	के	[illegible]	,,	,,	कुमार ने	,,	,,
८—[illegible]	के	[illegible]	,,	,,	माल्हा ने	,,	,,

सूरिजी के शासन में प्रतिष्ठाएं

९—चन्द्रावती	के	छाजेड़	जाति के	शाह	जीवा ने	शत्रुञ्जय का संघ	निकाला
१०—कोरंटपुर	के	आर्य	„	„	भोला ने	„	„
११—वीरपुर	के	विनायकिया	„	„	विजा ने	„	„
१२—मुजपुर	के	सुघड़	„	„	मापत ने	„	„
१३—वर्धमानपुर	के	चंडालिया	„	„	सलखण ने	„	„
१४—धोलागढ़	के	कांकरिया	„	„	चौखा ने	„	„
१५—वैराटनगर	के	सुखा	„	„	अज्जड़ ने	„	„
१६—चन्देरी	के	भटेवर	„	„	अजरा ने	„	„
१७—मथुरा	के	रांका	„	„	अगारा ने	„	„
१८—शालीपुर	के	गान्धी	„	„	मथुरा ने	„	„
१९—नारदपुरी	के	परमार	„	„	विमाला ने	„	„
२०—आघाटनगर	के	कोठारी	„	„	वीरम ने	„	„
२१—पाटण	के	पल्लीवाल	„	„	वीरदेव ने	„	„
२२—रत्नपुर	के	बोहरा	„	„	आसल ने	„	„
२३—श्रीनगर	के	वर्धमाना	„	„	कुम्भा ने	सम्मेत शिखर का	„
२४—तीतरपुर	के	अग्रवाल	„	„	भीमदेव ने	„	„
२५—नरवर	के	चोरड़िया	„	„	भारमल ने	„	„
२६—मालगढ़	के	भटेवर	„	„	खीवसी ने	„	„
२७—रांणकदुर्ग	के	समदड़िया	„	„	नोधण ने	तालाब खुदवाया	
२८—चित्रकोट	के	प्राग्वट	„	„	देदा ने	बावड़ी बनाई	
२९—रणथंभोर	के	„	„	„	साहरण ने	तालाब खुदाया	
३०—बाराकर	के	„	„	„	पोखर ने	कुँवा बनाया	
३१—भगापद्र	के	„	„	„	लोढण ने	„	„
३२—राजपुर	के	„	„	„	रोड़ो युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई		
३३—नागपुर	के	श्रीमाल	„	„	मण्डण	„ „	„
३४—शिवपुरी	के	„	„	„	यशोवीर	„ „	„
३५—अर्जुनपुरी	के	„	„	„	दुर्गा	„ „	„

४० चालीस पट्ट पर शोभे, देवगुप्त सूरीश्वर थे,
अवतंस थे चोरड़िया जाति के, ज्ञान के दिनेश्वर थे।
देश विदेश में धर्म प्रचार की, आज्ञा शिष्यों को करदी थी,
नूतन जैन बनाये लाखों को, जैन ज्योति चमकादी थी॥

इति भगवान पार्श्वनाथ के चालीसवें पट्टपर महान प्रतिभाशाली देवगुप्तसूरीश्वर नामक आचार्य हुए

पुत्र—पूज्य पिताजी ! आपश्री का कहना किसी अंश मे ठीक अवश्य कहा जा सकता है पर धर्म रूप अमूल्य रत्न का सर्वदा के लिये विक्रय कर नारकीय यातनाओं का कारण भूत हिंसा धर्म का अनुगामी होना और वह भी नगण्य द्रव्य के प्रलोभन से—क्या श्रेयस्कर कहा जासकता है ? पिताजी सा० हम तो आपके अनुभव एवं ज्ञान के सम्मुख एक दम अल्पज्ञ हैं, पर आप ही गम्भीरता पूर्वक विचार करिये कि यदि गोगो की किञ्चित् बाह्य कृपादृष्टि से अपने को अक्षय द्रव्य की प्राप्ति भी होगई तो क्या वह परलोक के लिये श्रेयस्कर हो सकेगी ? लक्ष्मी तो प्रायः पापका ही हेतु है धार्मिक भावों की प्रबलता मे दारिद्रय जन्य दारुण दुःख भी सुख रूप है और धन्य वैश्रमण की अनुपमावस्था मे अधार्मिक वृत्ति रूप सुख भी दुःख रूप है कुछ भी हो पिताजी सा० ! हम तो ऐसा करने के लिये सर्वथा तैय्यार नहीं ।

दैन्यवृत्तिप्रादुर्भूत विषय विषमावस्था में भी पुत्रों के सराहनीय सहन शक्ति एवं प्रशंसनीय धर्मानुराग को देख लाडुक, गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी प्रापञ्चिक जटिलता को स्मृति विस्मृत कर हर्षाभिभूत हो गया। कुछ क्षणों के लिए उसे पारिवारिक धार्मिक भावनाओं के आधिक्य से स्वर्ग से भी ज्यादा सुख का अनुभव होने लगा । वह अपने आपको इस विषम दशा में भी भाग्यशाली एवं सुखी समझने लग गया ।

इस तरह के दीर्घ विचार विनिमय के पश्चात् [illegible] गोगो से कहने लगा—महाभाग ! आपकी इस उदार कृपा दृष्टि के लिये मैं आप का सहर्ष आभारी हूँ। मुझे [illegible] इस [illegible] के लिए हार्दिक प्रसन्नता है । इसके लिये मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता तथा कृतज्ञता पूर्ण आभार मानता हूँ, पर मैं पवित्र जिनधर्मोपासक हूँ । इस प्रकार [illegible] नहीं करता । धर्म रूप अक्षय निधि के बलिदान [illegible] अक्षय कोष को प्राप्त करना मुझे मनसे भी स्वीकार नहीं । [illegible] जीवन को मिट्टी मे मिलाना निरी अज्ञानता है । [illegible] तो संसार में कई लोग इस [illegible] निर्निमेष दृष्टि पूर्वक [illegible] मुझे तो मेरे धर्म एवं कर्म पर पूर्ण विश्वास है ।

यदि मैं सद्धर्म का बलिदान कर धन के किञ्चित् प्रलोभन से उस योगी की जाल में फंस जाता तो भविष्य में मेरी क्या दशा होती ? पवित्र और आत्मकल्याणकारी धर्म के मुकाबले धन की क्या कीमत ? वास्तव में धन के व्यामोह में धर्म का त्याग करना निश्चित ही अदूर दर्शिता है। जैन दर्शन के कर्म सिद्धान्त ने तो मुझे इस अवस्था में अपनी सम्पूर्ण दशाओं का सक्रिय अनुभव करवा कर कर्मवाद पर अटूट श्रद्धाशील बना दिया है। जैन धर्म के सर्वज्ञ गदित अनुभवात्मक सिद्धान्तो के समक्ष अन्य दर्शनीय सिद्धान्त क्षणभर भी नही स्थिर रह सकते हैं। धन्य है परम-पवित्र, पाप भञ्जक, मङ्गल कारी जिनधर्म को और धन्य है दृढ़ धर्म प्रेम में रंगे हुए निश्चल जिनधर्मानुयायियो को इस प्रकार भक्ति भावना में डूबे हुए भव्य भावना भूषित लाडूक ने इस निधान को भी संसार-बन्धन और भव वृद्धि का कारण समझ अनन्त पुण्योपार्जन के साधन रूप सप्तक्षेत्रों में लगाना प्रारम्भ कर दिया। गार्हस्थ्य जीवन की असह्य यातनाओं को दैन्यवृत्ति से सहन करने वाले स्वधर्मी बन्धुओं को प्रचूर परिमाण मे आर्थिक सहायता कर अपने जीवन को सार्थक करने लगा। आशा पूरक दान वृत्ति से याचकों के द्वारा यशः सम्पादन करने मे अपने आपको सौभाग्यशील समझने लग गया। संघ निस्सारण, स्वामीवात्सल्य संघ पूजा एवं ज्ञानार्चनादि धार्मिक अङ्गों की आराधना करने मे उदार वृत्ति से द्रव्य का सदुपयोग कर जैन धर्म के बढ़ते हुये प्रभाव को प्रभावना के द्वारा बढ़ाने लग गया। योगी को उसकी गजब की दान शक्ति जब किसी तरह मालूम हुई कि मैं जिसे साधारण स्थिति का मनुष्य समझता था वह इस कदर दान पुण्य कर रहा है, तो बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी इस आशाजनक, सन्तोष पूर्ण स्थिति को देख कर तो योगी का रहा सहा उत्साह भी धराशायी (नष्ट) होगया। वह जिस कार्य के लिये आया था, उसमे अपने आपको पूर्ण निष्फल समझ अपना शाम मुह लेकर बैठ गया।

एकदा पुण्यानुयोग से पार्श्व कुलकमल दिवाकर, भव्यपुण्डरीक-विबोधक, प्रत्यूपप्राघ्र्य परम पूज्य आराध्य देव आचार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी का पदार्पण ग्रामानुग्राम लोद्रवपट्टन नगर मे होगया। संसार जलनिधितरूप, पुरुषवरपुण्डरीक आचार्यश्री के शुभ शुभागमन से देवपट्टनपुर निवासियों के हर्ष का पारावार नहीं रहा। भव्य लाडूक ने भक्तिरस से ओतप्रोत हृदय मे सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर श्रीमंत के साथ सूरीश्वरजी का प्रवेश महोत्सव बड़े शान और समारोह के साथ किया। जब उस कृत्रिम योगी को खबर लगी कि महादानी लाडूक के गुरु का पदार्पण इस नगर मे होगया है तब वह लाडुक को साथ लेकर परम-हितैषी सूरिजी के पास गया और अपने मन मे जो इस प्रकार की शंकाएं थी कि आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध कैसे, क्योंकर होता है ? और उनका फल किस प्रकार मिलता है ? स्याद्वाद का वास्तविक रहस्य क्या है ? जैन दर्शन के मुख्य २ सिद्धान्त क्या हैं ? आदि सूरिजी के सामने उपस्थित की। सूरिजी [illegible] योगी को ऐसे उत्तम ढंग से समझाया कि लाडुक और योगी के विचारो में एकदम विरक्ति पैदा होगई। [illegible] उन्हें अरुचिकर कारागृह रूप लगने लग गया। जीवन के महत्व को समझ कर वे सूरिजी के पास ही दीक्षा लेने के इच्छुक बन गये। सूरीश्वरजी को विरक्ति का कारण बतला कर अनुमति प्राप्त्यर्थ वे [illegible] स्वस्थान लौट गये।

जब लाडुक ने अपने कौटुम्बिक लोगों को एकत्रित कर अपने वैराग्य के कारण का स्पष्टीकरण किया तो उनका रहा सहा शान्ति सुख भी हवा होगया। वे लोग आश्चर्य के साथ ही साथ बहुत दुःखी होगये। घर के आधारभूत लाडुक के वियोग को वे क्षण भर भी सहन करने में समर्थ नहीं हुए।

धना कर देवी से द्रव्य याचना करना मुनासिब नही समझा। लाडुक, ने तो धर्म कार्य मे संलग्न रह कर भविष्य को सुधारना ही स्वकर्तव्य बना लिया।

एक समय योग विद्या निष्णात एक योगी देवपट्टन नगर में आया। उसने अपने नाना प्रकार के भौतिक चमत्कारों से उक्त नगर निवासियो को अपनी ओर सहसा आकर्षित कर लिया। अन्य श्रद्धालु जन-समाज उसका परम भक्त बन गया। क्रमशः कई दिनो के पश्चात् यकायक किसी प्रसङ्ग पर किसी विशेष व्यक्ति के द्वारा लाडुक की गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी चिन्तनीय स्थिति विषयक सच्ची हकीकत योगी को ज्ञात हुई। उक्त वार्ता के मालूम होने पर योगी को लाडूक की निस्पृहता एवं निरीहतापर परम विस्मय हुआ। कारण, अधिकांश नगर निवासी; चमत्कार प्रिय जन समुदाय उसकी ओर आकर्षित एवं आश्चर्यान्वित था पर लाडुक विचारणीय स्थिति का साधारण गृहस्थ होने पर भी मंत्र यंत्रादि की विशेष आशाओं से विलग-योगी के आश्चर्य का कारण ही था। बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् भी लाडुक द्रव्य के लोभ से योगी के पास न आया तब योगी ने स्वयं उसको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, जाने का निश्चय किया। क्रमशः लाडुक के पास आकर योगी कहने लगा—लाडुक! किन्हीं हितैषी व्यक्तियो के द्वारा तुम्हारी वास्तविक गृहस्थिति का पता चलने पर तुम्हारी निस्पृहता पर आश्चर्य तथा अज्ञानता पर दुःख हुआ अतः मैं स्वयं ही (मेरे यहां तुम्हारे नहीं आने के कारण) उपस्थित हुआ। लाडुक। तुम किसी तरह की चिन्ता मत करो। मै तुम्हे एक शर्त पर एक ऐसा दरिद्रय विनाशक मंत्र बतलाऊंगा कि जिसके द्वारा तुम्हारा कोष ही सर्वदा के लिये अक्षय हो जायगा। पर तुम्हे इस उपकार के बदले जैनधर्म को छोड़ कर हमारा धर्म स्वीकार करना होगा। योगी के उक्त सर्व वचनों को शान्ति पूर्वक श्रवण करते हुए मननशील लाडुक सोचने लगा—क्या मैं इस तुच्छ, क्षण विनाशी, चञ्चलचपला व चपललक्ष्मी के नगण्य प्रलोभन से अपने अमूल्य-आत्मीय धर्म का त्याग कर आत्म-प्रतारण के दोष से दूषित होऊ ? नहीं, यह तो कभी हो ही नहीं सकता। जैन दर्शन मे दुःख और सुख धन और निर्धनता को कर्मों का परिणाम कहा है। कर्म की मेख पर रेख मारने मे तो अनन्त शक्तिशाली तीर्थङ्कर, चतुर्दिक विजयी चक्रवर्ती भी समर्थ नही। कर्मों के शुभाशुभ विपाकोदय को न्यूनाधिक करने मे या रद्दोबदल करने मे शक्तिशालियो का शक्ति शस्त्र भी कुण्ठित हो जाता है तो मिथ्यात्व क्रूर परिणामो वाले कुत्सित [illegible] में एक योगी मेरे कर्मों को अन्यथा करने में कैसे समर्थ हो सकता है ? फिर भी लाडुक अपनी गृहभार्या की कसौटी या धर्म परीक्षा के लिये योगी कथित सफल मंत्र प्रयोगी एवं धर्म बलिदान रूप वार्ता को कहकर अपने उचित परामर्श पाने के निमित्त पूछने लगा—भद्रे ! आर्थिक सकट निवारक योगी का आज स्वर्णोपम सयोग हुआ है। यदि कहो तो उनके धर्म को अपनाकर अक्षयनिधि रूप मन्त्र प्राप्त कर लिया जाय।

पत्नी—क्या पैसे जैसे क्षणिक द्रव्य के लिये भी आप धर्म को तिलाञ्जली देने के लिये उद्यत होगये ? मैं तो ऐसे पातक प्रयोगो का अनुमोदन करने मात्र के लिये तत्पर नहीं हूँ। ये सब भौतिक साधन भौतिक सुख के साधन अवश्य है तथापि धर्म रूप कल्पवृक्षवत् अक्षय सुख के दातार नहीं। कङ्कर तुल्य द्रव्य निमित्त चिन्तामणि रत्न रूप धर्म का त्याग करना मेरी दृष्टि मे समीचीन नहीं।

अपने ही विचारों के अनुरूप दृढ़ धर्म विचार या अपने से भी दो कदम आगे बढ़े हुए भार्यानुराग को देख लाडुक को बहुत ही सन्तोष एवं आत्मिकानन्द का अनुभव होने लगा। वह रह २ कर [illegible] [illegible] पत्नी के गुणों पर अपने आपको गौरवशील समझने लग गया। पत्नी की दृढ़ता को देख पुत्रों की [illegible] निमित्त लाडुक पुत्रों को समझाने लगा—प्रिय पुत्रो ! गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी अनेक [illegible] [illegible] को सुलझाने के लिये आज स्वर्णोपम योगी प्रदत्त अक्षय कोष प्राप्ति का अनुपम सयोग प्राप्त हुआ है। यदि तुम [illegible] की इच्छा हो तो केवल धर्म परिवर्तन रूप साधारण कार्य से ही उक्त कार्य साध्य किया जा सकता है।

योगी के साथ स्वय सपत्नी सूरिजी के पदाम्बुजो मे भव विनाशिनी दीक्षा परम वैराग्य पूर्वक ग्रहण करली। आचार्यश्री ने भी लाडुक को "सोम-सुन्दर" अभिधान से अलकृत किया।

मुनिश्री सोम सुन्दर गुरु चरणो की भक्ति मे अनुरक्त रह तत्कालीन एकादशाङ्गादि जितने आगम थे-सबका सम्यक् रीत्या अभ्यास कर लिया। इसके सिवाय अध्यात्मवाद, नयवाद, परमाणुवाद, ज्योतिष, मन्त्र यन्त्र विद्याओ मे भी अनन्यता प्राप्त करली। अन्य दर्शनो का अभ्यास करने मे तो किसी भी तरह की कमी नहीं रक्खी, क्योकि उस जमाने मे इसकी परम आवश्यकता थी। राजा महाराजाओ की राजसभा मे उस जमाने मे खूब शास्त्रार्थ हुआ करते थे और वादियो के शास्त्रो से ही वादियों को पराजित करने मे बड़ा गौरव समझा जाता था और यह तब ही हो सकता था जब उनके शास्त्रो का अभ्यास किया गया हो। इस तरह अपने दर्शन के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन के साथ ही साथ मुनि सोमसुन्दर ने अन्य दर्शनो मे भी [illegible] प्राप्त करली। कुशाग्र बुद्धि मुनि सोमसुन्दर ने गुरुदेव कृपा से किसी भी तरह की कमी नहीं रहने दी। उन्होंने तो स्थविरो की वैयावच्च कर मुनि जीवन योग्य सब गुणों को प्राप्त करने मे किसी भी तरह की [illegible] नहीं रहने दी।

इधर मुनि सोमसुन्दर (लाडुक) के साथ [illegible] दीक्षा ली थी, [illegible] नाम [illegible] मुनि धर्मरत्न रख दिया था। मुनि धर्मरत्न ने भी जैन धर्म [illegible] आगमों का [illegible] मन्थन कर जैन दर्शन मे [illegible] की दक्षता प्राप्त कर ली। [illegible] श्लाघनीय पटुता के कारण मुनि धर्मरत्न ने [illegible] की। कालान्तर मे अलग विचरने योग्य [illegible] कर मुनि धर्मरत्न को १०० मुनियों के साथ [illegible] मुनि धर्मरत्न ने भी गुर्वाज्ञा को शिरोधार्य कर [illegible] बना दी।

पर्यन्त मौन व स्थिरता न रह सकी। शीघ्र ही देवी के मन्दिर के पास स्थित जन समुदाय के सन्मुख जाकर कहा–महानुभावों ! आप दीखने में तो उच्च खान दान एवं कुलीन घराने के मालूम होते हैं। मुख पर क्षत्रियोचित स्वाभाविक जन रक्षक प्रतिभा गुण की झलक झलक रही है, फिर भी न मालूम आप लोग ऐसे जघन्य कुत्सित एवं हेय कार्य में प्रवृत्त क्यो हो रहे है ? मैं यह बात अच्छी तरह से समझता हूँ कि इसमें आप लोगों का किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है। यह तो किसी आमिष भक्षी नरपिशाच की कुसंगत एवं मिथ्या उपदेश के कुसंस्कारो का ही परिणाम है। उन्हीं की जाल मे फंस कर ही आप लोगों ने ऐसे अनुपादेय कार्य को कर्तव्यरूप समझा है। इसको धर्म एवं सौख्य का कारण समझने वाले केवल आप ही नहीं पर बहुत से क्षत्रिय है जो मांस भक्षियों की कुसंगति से अपना अधःपतन करते ही जा रहे हैं। क्षत्रिय वीरों का परमधर्म तो दुःखी जीवों के रक्षक बन कर अपने जातीय कर्तव्य को अदा करने रूप था पर मिथ्या उपदेशकों के वाग्जाल रूप औपदेशिक प्रपञ्च के भ्रम में फंसे हुए उन लोगों ने अपने परम पवित्र कर्तव्य व परम्परागत जातीय व्यवहार की स्मृति विस्मृति कर रक्षक रूप पवित्र एवं आदरणीय धर्म को छोड़ दिया। आज तो वे रक्षक होने के बजाय निरपराधु मूक पशुओं को यमवत् निष्ठुर हृदय से आहत कर भक्षक बन गये हैं। इसी से अपने शौर्य, पराक्रम, कर्तव्य एवं धर्म की इति श्री समझली है।

इतना सब कुछ होते हुए भी अहिंसा भगवती के उपासक आचार्यों के सदुपदेश श्रवण से व उनकी अलौकिक चमत्कार पूर्ण शक्तियों की अलौकिकता से बहुत से क्षत्रियों ने, अपने पूर्वजों का पवित्र, गौरव वर्धक धर्ममार्ग प्रवर्तक इतिहास श्रवण कर इस क्रूर कर्म का त्याग कर दिया है उन्होंने उन महापुरुषों की सत्संग मे अपने जीवन को अहिंसा धर्म से ओतप्रोत बना लिया है। अब तो केवल इस प्रकार लुक छिप कर जगलों मे अपनी पापवृत्ति का पोषण करने वाले थोड़े बहुत लोग ही रह गये हैं। इस समय आप स्वयं गम्भीरता पूर्वक विचार कर इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि यदि यह कार्य शास्त्र विहित व जनकल्याणार्थ ही होता तो इस प्रकार छिप कर क्यों किया जाता ? अच्छा कार्य तो पब्लिक मे सर्व समक्ष किया जाता है, इत्यादि।

सूरिजी के इस परमार्थिक एवं निस्पृह उपदेश को श्रवण कर बहुत से लोग लज्जाशील बनगये। पर इस कार्य के करने मे जो अग्रेश्वर या प्रमुख व्यक्ति थे वे बीच ही बोल उठे–महात्मन् ! आपको किसने आमन्त्रित किया कि आप आकर इस प्रकार हमें उपदेश देने लगे। यह तो हमारी वंश परम्परा से चला आया आदरणीय, पुण्य, हित, सुख एवं कल्याण का कारण है। शास्त्र या वेद विहित होने से सब प्रकार से करणीय है। बलिदान से देवी प्रसन्न होगी व बलि दिये जाने वाले पशु को भी स्वर्ग की प्राप्ति होगी। इसमे उभय पक्ष के क्षेम एवं कल्याण का ही कारण होगा। आप इस बात को अच्छी तरह से नहीं समझते हैं अतः आप यहाँ से पधार जाइये। हमारे परम्परागत कार्य को बीच में आपको बकवाद करने की आवश्यकता नहीं।

सूरिजी–देवानुप्रिय ! यदि इन मूक प्राणियों को आप स्वर्ग में भेजकर देवी को प्रसन्न करना चाहते हो तो आप स्वयं या आपके कौटम्बिक लोग देवी को प्रसन्न करने के साथ स्वर्ग के सुख का अनुभव क्यों नहीं करते।

इस प्रकार सूरिजी ने अकाट्य प्रमाणों, प्रबल युक्तियों एवं उदाहरणों से इस प्रकार समझाया कि उन लोगों में [illegible] महाराव आदि को उन पशुओं पर दया भाव पैदा होगया। सूरिजी के उपदेशानुसार उन्होंने हुक्म दे दिया कि इन सब पशुओं को शीघ्र ही बन्धन मुक्त अमर कर दिये जांय। बस, फिर तो देर ही क्या थी ? अनुचरों ने सब पशुओं को छोड़ दिये। वे मूक प्राणी भी अपनी अन्तरात्मा से सूरिजी को आशीर्वाद देते हुए मनिदिष्ट स्थान की ओर भाग छूटे। मानो उन्होंने नूतन जन्म को ही प्राप्त किया हो इस [illegible] अत्यन्त उत्सुकता के साथ अपने बाल बच्चों से जा मिले।

तत्पश्चात् सूरिजी ने राव महाराव आदि वीर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किये। सत्यपुर से तीन कोस की दूरी पर मालपुरा नामका रावजी की जागीरी का ग्राम था अत रावजी ने अपने ग्राम को पावन बनाने के लिये व अपने समान अन्य बन्धुओं का उद्धार करने के लिये सूरीश्वरजी से अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे। रावजी की प्रार्थनानुसार उपकार का कारण जान कर सूरिजी थोड़े साधुओं के साथ वहाँ गये एवं वहीं ठहर गये। उस ग्राम के लोगों को धर्मोपदेश देकर के श्रावकों के करने योग्य कार्यों का बोध करवाया। जैनधर्म के तत्वज्ञान एव शिक्षा दीक्षा से परिचित किया। उस समय के जैनाचार्यों की दूरदर्शिता तो यह थी कि वे जहां नये जैन बनाते वहा सब से पहिले धर्म के भावों को [illegible] स्थायी रखने के लिये जिन मन्दिर निर्माण का उपदेश देते। कारण, प्रभु प्रतिमा धर्म की नींव को मजबूत बनाने के लिये व धार्मिक भावनाओं की स्थिरता के लिये प्रमुख साधन हैं। तदनुसार सूरिजी ने रावजी को उपदेश दिया और रावजी ने सूरिजी के कहने को स्वीकार कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया। [illegible] सूरिजी ने वहां स्थिरता की पश्चात अपने कई साधुओं को वहा [illegible] अन्यत्र विहार कर [illegible]। इस घटना का समय पट्टावली कारों ने वि० सं० १०३३ का लिखा है।

जब राव महाराव का बनवाया हुआ मन्दिर तैयार होगया तो प्रतिष्ठा के लिये [illegible] को आमन्त्रित कर सम्मान पूर्वक बुलवाया। श्रीसूरिजी [illegible] सं० १०३४ [illegible] पूर्णिमा के दिन बड़े ही धूमधाम से प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म [illegible] हुई। अहा! [illegible] का हम लोगो पर कितना उपकार है? प्राणियों [illegible] का तिरस्कार करने वाले आज जैनधर्म को [illegible] है।

अस्तु वंशावलियों में राव महाराव [illegible] है—
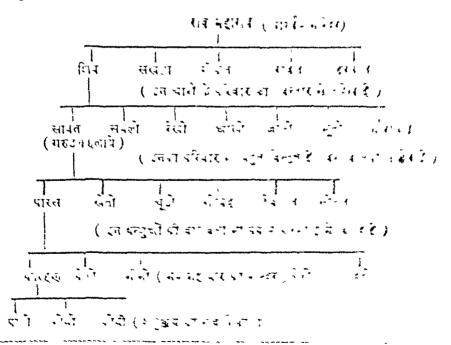
इत्यादि, वि० सं० १८४२ तक की वंशावलियां लिखी मिलती हैं।

राव महाराव का पुत्र शिव और शिव का पुत्र सांवत था। सांवत ने सत्यपुर को अपना निवास स्थान बना लिया था। सांवत की साङ्गोपाङ्ग भक्ति से प्रेरित हो देवी ने गरुड़ पर सवार हो रात्रि के समय स्वप्न में सांवत को दर्शन दिये। उस समय सांवत अर्धनिद्रा निद्रित था। अतः सवार को न देख गरुड़ को ही देख सका। इतने मे यकायक आवाज हुई भक्त! तेरे गायें बान्धने के स्थान की भूमि मे एक गुप्त निधान है। वह निधान तेरी भक्ति से प्रसन्न हो मैं तुझे अर्पण करती हूं। इस द्रव्य को धर्म कार्य में लगाकर अपने जीवन को सफल बनाना, इतना कह कर देवी अदृश्य होगई। सांवत जागृत होकर चारो ओर देखने लगा तो न दीखा गरुड़ और न दीखा कहने वाला ही। तथापि सांवत ने इसको शुभ स्वप्न समझ शेष रात्रि को धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही उसने सीधे मन्दिर मे जाकर भगवान् के दर्शन किये। पास ही में स्थित पौषधशाला मे विराजित गुरु महाराज के दर्शन कर उनकी सेवा में रात्रि को आये हुए स्वप्न का सारा वृतान्त कह सुनाया। सांवत के मुख से स्वप्न वृत्त को श्रवण कर गुरु महाराज ने कहा—सांवत! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। तेरे पर भगवती देवी की पूर्ण कृपा हुई। पर ध्यान रखते हुए इसका सदुपयोग सदा धर्म कार्यों में या शासनोत्कर्ष में ही करना। गुरुदेव के शुभ वचनों को शिरोधार्य कर गुरु प्रदत्त धर्मलाभ रूप शुभाशीर्वाद को प्राप्त कर सांवत अपने घर पर चला आया।

जिस रात्रि में सांवत ने देवी कथित निधान का स्वप्न देखा, उसी रात्रि में सांवत की स्त्री शान्ता—जो क्षत्रिय वंश की थी—स्वप्न मे पार्श्व प्रभु की प्रतिमा को देखकर जागृत हुई। जब उसने अपने पतिदेव से अपने स्वप्न की सारी हकीकत कही तो सावत के हर्ष का पारावार नहीं रहा। हर्षोन्मत्त सांवत ने अपनी पत्नी को कहा—प्रिय! तू भाग्यशालिनी है। तेरी कुक्षि मे अवश्य ही कोई भाग्यशील जीव अवतरित हुआ है; जिसके प्रभाव से जैसा तुझे स्वप्न आया है वैसे मुझे भी निधान प्राप्त होने रूप एक महा स्वप्न आया है। समयज्ञ सावंत देवी के बताये हुए स्थान की भूमि को खोदकर निधान निकाल लाया बस, अक्षयनिधि की प्राप्ति के साथ ही साथ जनोपयोगी, पुण्य सम्पादन करने योग्य कार्य भी प्रारम्भ कर दिये। सांवत को कोई इस स्थिति के सम्बन्ध में पूछता तो वह कहता था कि यह सब गरुड़ का प्रताप है। अतः कालान्तर में लोग उन्हें गरुड़ नाम से सम्बोधित करने लग गये। आगे चलकर तो आपकी सन्तान भी गरुड़ जाति के नाम से मशहूर हो गई। इस प्रकार ओसवालों में हसा, मच्छा, काग, चील, मन्नी, सांड, सियाल आदि कई जातियां बन गई।

इधर सांवत के प्रबल पुन्योदय मे आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का पधारना सत्यपुर में होगया। सांवत ने सवालक्ष द्रव्य व्यय कर सूरिजी :का बड़े ही समारोह पूर्वक पुर-प्रवेश करवाया। आचार्यश्री के उपदेश मे शत्रुञ्जय की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला जिसमे नव लक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्ण मुद्रिकाओं की प्रभावना दी। इस तरह के अनेक कार्यों से जैनधर्म की प्रभावना के साथ ही साथ स्वयं ने अक्षय पुण्य सम्पादन किया। इसके विषय मे कई कवित्त भी मिलते हैं जिसमें इनको नारायण गरुड़ नाथ श्रीकृष्ण की उपमा दी है।

सांवत की स्त्री शान्ता ने शुभ समय मे एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पारस रक्खा गया। जब पारस क्रमशः आठ वर्ष का हुआ तब सत्यपुर के राजा के अनबन के कारण सांवत ने रात्रि समय सत्यपुर का त्याग कर नागपुर की ओर पदार्पण किया। जब सत्यपुर नरेश को इस बात की खबर हुई तो उसने चार सशस्त्र सवारों को सांवत का पीछा करने के लिये भेजा। सांवत को मार्ग मे ही सवार मिल गये अतः उन्होंने नृपादेशानुसार उनको पुनः सत्यपुर की ओर चलने के लिये जबरन प्रेरित किया। सवारों की उक्त बात को सांवत ने स्वीकार नहीं किया तब परस्पर दोनों में मुठभेड़ होगई। सांवत भी वीर तथ [illegible]

प्रतिमा निकल आई। प्रतिमाजी के बाहिर निकलते ही अष्ट द्रव्य से पूजन कर, जयध्वनि से गगनाङ्गण गुञ्जाते हुए समारोह पूर्वक वधाया। पश्चात् कई लोगो ने मूर्ति को उठाने का प्रयत्न किया पर वह इतनी भारी बनगई कि किसी के उठाये न उठाई जासकी। जब पारस स्वयं उठाने गया तो प्रतिमाजी पुष्पवत् कोमल या भार विहीन हो गई। पारस ने अपने सिर पर भगवान् पार्श्व-प्रतिमा को उठाई व गाजे बाजे के साथ बड़े ही उत्साह पूर्वक अपने घर पर लाया। सकल श्रीसंघ एवं नागरिक लोग इस चमत्कार पूर्ण घटना से प्रभावित हो पारस की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। वे आपस में वार्तालाप करने लगे—पारस बड़ा ही भाग्यशाली है पारस के घर को आज पार्श्व प्रभु ने स्वयं पावन किया है। बस, पारस ने भी चतुर, शिल्पकला निष्णात शिल्पज्ञों को बुलवा कर बावन देहरी वाला विशाल मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन देवी के वचनानुसार एक छाब जव निर्दिष्ट स्थान पर रख आता और प्रातःकाल वापिस स्वर्ण जव ले आता। इस प्रकार देवी की कृपा से प्राप्त द्रव्य की पुष्कलता के कारण मन्दिर शीघ्र ही तैयार होने लगा।

भवितव्यता किसी के द्वारा मिटाये मिट नहीं सकती है। यही कारण था कि एक दिन किसी ने पारस से द्रव्य आदान का कारण पूछा तो उसने देवी के बचन को विस्मृत कर सहसा स्वर्ण जव के भेद को बतला दिया। फिर तो था ही क्या ? देवी का कहना अन्यथा कैसे हो सकता ? दूसरे दिन जव स्वर्ण न होकर जव ही रह गये। पारस को इसका बहुत ही पश्चाताप एवं अपनी भूल का दुःख हुआ पर अब उससे होना आना क्या था ? मन्दिरजी का मूल गुम्भारा, रंग मण्डप शिखर आदि बना पर शेष काम यों ही अधूरा रह गया। पारस की माता ने कहा-बेटा चिन्ता करने का कोई कारण ही नहीं है। जितना काम होने का था उतना ही हुआ, अब इसके लिये व्यर्थ ही पश्चाताप न करो। अब तो इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाकर भाग्यशाली बनो। तीर्थङ्करों की इतनी बड़ी मूर्ति जो अतिथि के रूप मे अपने घर पर विराजमान है, गृहस्थ के घर में रह नहीं सकती। इसकी प्रतिष्ठा जल्दी करवाने में ही श्रेय है क्योंकि भविष्य न मालूम क्या कहेगा ? पारसने भी माता के उक्त हितकर कथन को सहर्ष स्वीकार कर लिया और वह प्रतिष्ठाकी सामग्री का संग्रह करनेमें संलग्न होगया।

उस समय आचार्य धर्मघोषसूरि ने पांच सौ शिष्यों के साथ फल वृद्धि नगर में चातुर्मास किया था। अतः पारस ने जाकर सूरिजी से प्रार्थना की-प्रभो ! मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर हमको कृतार्थ कीजिये। सूरिजी ने कहा—पारस ! प्रतिष्ठा करवाने के लिये मैं इन्कार नहीं करता हूँ पर नागपुर विराजित आचार्यश्री सिद्धदेवगुप्तसूरि को भी प्रार्थना पूर्वक ले आवो—हम सब मिल करके ही प्रतिष्ठा करवावेंगे। अहा ! हा ! कैसी उदारता ? कैसी विशाल भावना ? कितना प्रेम व कैसा उत्तम आदर्श ? सूरिजी जानते थे कि पारस, उपकेशगच्छीय आचार्यों का प्रतिबोधित श्रावक है। अतः ऐसे स्वर्णोपम समय में उन आचार्यों का होना जरूरी है। शासन मर्यादा व व्यवहार उपादेयता भी यही है। सूरिजी के उक्त कथन को लक्ष्य में रख पारस ने नागपुर जाकर आचार्यश्री देवगुप्तसूरि से प्रतिष्ठार्थ पधारने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा—वहां आचार्यश्री धर्मघोषसूरिजी विराजते है, वे भी तो प्रतिष्ठा करवा सकते थे।

पारस—पूज्य गुरुदेव ! मुझे स्वयं आपकी प्रार्थना के लिये आचार्यश्री ने ही भेजा है।

यह सुनकर सूरिजी बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रार्थना को स्वीकृत कर नागपुर से तत्काल फलवृद्धि की ओर विहार कर दिया। क्रमशः फलवृद्धि के समीप पहुँचने पर वहां के श्रीसंघ एवं आचार्यश्री धर्मघोषसूरि ने अपने शिष्यों के साथ सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। इस प्रकार आचार्य द्वय के पारस्परिक अपूर्व वात्सल्य भाव से श्रावकों में भी आशातीत अनुराग मिश्रित सद्भाव का सञ्चार हुआ। इन दोनों आचार्यों के सिवाय फलवृद्धि में और भी बहुत से साधु साध्वी विराजमान थे। अतः उन सब के अध्यक्षत्व में फलवृद्धि नगर में वि० सं० [illegible] माघ शुक्ला पूर्णिमा को भगवान पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से करवाई।

पुरुषों के नाम पर अनेक शाखा, प्रशाखाएँ प्रचलित हुई। जैसे कि-गरुड़, बोडावत, सोनी, भूतड़ा, संघी लजाश्री, पटवा, फलोदिया आदि।

भूरा जाति—पँवर सरदार भूरसिंह अपने साथी सरदारों के साथ ग्रामान्तर जा रहे थे इधर विहार करते हुए आचार्य परमानन्द सूरि अपने शिष्यों के साथ जंगल में आरहे थे जिन्हों को देखकर एक सरदार अपशुकन की भावना कर दो चार शब्द साधुओं से कहे इतने में पीछे से आचार्यश्री भी पधार गये और उन सरदारों को जैन मुनियों के आचार विचार के विषय में उपदेश दिया तथा अपने रजोहरण के अन्दर रहा हुआ अष्ट मंगलरूप पाटा दिखाया सूरिजी का उपदेश सुन राव भूरसिंह ने जैन मुनियों के त्याग वैराग्य और शुभभावना पर प्रसन्न होकर धर्म का स्वरूप समझने की जिज्ञासा प्रकट की फिर तो था ही क्या सूरिजी ने क्षत्रियों का धर्म के विषय युक्ति पुरस्सर समझाया कि भूरसिंह पहले शिव भक्त था और भजन खूब करता था उसके हृदय में यह बात ठीक जच गई कि आत्म कल्याण के लिये तो विश्व में एक जैनधर्म ही उपादेय है सूरिजी से प्रार्थना की कि यहां से चार कोस हमारा नारपुर ग्राम है वहाँ पर आप पधारे हम आपका धर्म सुनेंगे क्योंकि मेरी रुचि जैनधर्म की ओर बढ़ी है इत्यादि। सूरिजी भूरसिंह का कहना स्वीकार कर नारपुर की ओर चल दिये। भूरसिंह ने सूरिजी की खूब भक्ति की और हमेशा सूरिजी का व्याख्यान सुन गहरी दृष्टि से विचार किया और आखिर कई लोगों के साथ उसने जैनधर्म को स्वीकार कर उसका ही पालन किया। भूरसिंह ने नारपुर में भ० पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया भूरसिंह के सात पुत्र थे वे भी सबके सब जैन धर्म की आराधना करते थे उन्होंने भी अनेक कार्य जैनधर्म की प्रभावना के किये इससे भूरसिंह की सन्तान को भूरा भूरा कहने लगे आगे चलकर भूरा शब्द जाति के नाम से शुरु होगया इस जाति की उत्पति के अलावा वंशावलियाँ मुझे नहीं मिली अतः यहाँ नहीं लिखी गई हैं।

छावत गौत्र—आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज परिभ्रमन करते हुए मालवा प्रदेश में पधारे। मालवा निवासी परमार वंशीय आमिषाहारी, हिंसानुगामी क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उन्हें अहिंसा भगवती एवं जैन धर्म के उपासक बनाये। उक्त समुदाय में मुख्य राव छाहड़ था। छाहड़ का पुत्र मल बड़ा ही धर्मात्मा था। उसने अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर जिनशासन की प्रभावना की थी। धारानगरी के बाहिर भगवान् महावीर का मन्दिर बनवाकर आपने प्रतिष्ठा करवाई थी। इस तरह दर्शन पद की आराधना के साथ ही साथ अनेक शासन-अभ्युदय के कार्य किये। आपका समय पट्टावलीकारों ने वि० सं० १०३४ का लिखा है। आपकी संतान छावत के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपकी वंशावली इस प्रकार मिलती है।
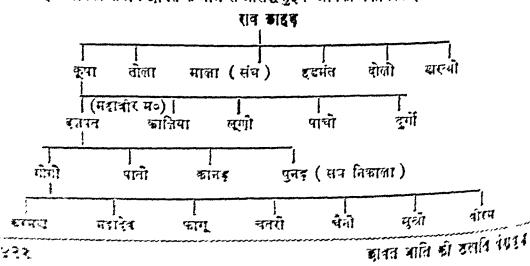
परमाराध्य, प्रत्यक्ष प्रार्थ्य, परमपिता परमात्मा श्री जिनदेव के मन्दिर निर्माण रूप परम पावन कार्य
लोग विघ्न रूप अन्तराय कर्मोपार्जन क्यों कर रहे हैं ? यदि आपके हृदय में धार्मिक ईर्ष्या की ज
नाम ज्वाला ही प्रज्वलित हो रही हो या आपको अपने शास्त्र पाण्डित्य के मिथ्याभिमान का जोशील
ही इस प्रकार के अनुचित कार्य में प्रवृत्ति करवा रहा हो तो आपके इप्सित विषय के पारस्परिक शा
आपका नशा मिटाया जा सकता है। मेरे साथ मनोऽनुकूल विषय पर शास्त्रार्थ कर आप लोग निर्णय
कि आपका अहमत्व कहां तक ठीक है ?

मुनि जम्बुनाग के सचोट शब्दों से ब्राह्मणों के हृदय में अपमान का अनुभव होने लगा उन्होंने
व्याकरण, व दार्शनिक विषयो को छोड़कर अपने सर्व प्रिय ज्योतिष विषय मे शास्त्रार्थ करना निश्चित कि
वे लोग इस बात को समझ रहे थे कि जैन श्रमण धर्मोपदेश देने में या दार्शनिक तत्वों का प्रतिपादन
में ही कुशल होते हैं, ज्योतिष विषय में नहीं। अतः ज्योतिष निर्णय में वे लोग हमारी समानता करने में
हम तक पहुँचने में सर्वथा असमर्थ हैं। इस विषय में वे हमको कभी पराजित कर ही नहीं सकेंगे इस मि
भिमान के कारण ज्योतिष के विषय को ही शास्त्रार्थ का मुख्य विषय बना लिया।

मुनि जम्बुनाग ने भी सर्वतोमुखी विद्वत्तासम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ब्राह्मणों के उक्त शास्त्रा
विषय को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके लिये मध्यस्थ वृति पूर्वक जजमेन्ट प्राप्त करने लिये दोनों प
महानुभावो ने लुद्रवा नरेश को ही मध्यस्थ निर्वाचित किया। राजा ने जज चुन लिये जाने पर उन्होंने दोनों
की परीक्षार्थ (मुनि जम्बुनाग एवं ब्राह्मणों को) अपना (राजा का) अलग २ वर्षफल लिख लाने का
आदेश किया। साथ ही यह घोषणा की कि-मेरा गत भाव विभावक वर्ष फल जिसका अधिक होगा वही
विजयी समझा जायगा। इस पर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणों ने राजा के दिन २ का भावी फल लिखा त
जम्बुनाग ने घड़ी २ का भावी फल लिखा। क्रमशः वर्ष फल के लेखन कार्य के समाप्त हो जाने पर दोनों प
के महानुभावों ने अपने अपने लेख राजा को सौंप दिये। राजा ने उनको पढ़कर (बन्धी खामण) खजा
को सौम्पते हुए कहा—"इनको सर्वथा सुरक्षित रखदो, जिसका लिखना सत्य होगा वही विजयश्री प्र
किया जायगा"। अस्तु,

जम्बुनाग ने अपने भावीफल में लिखा था कि, अमुक दिन में इतनी घड़ी होने पर शत्रु यवन म
मुम्मुचि पचास हजार घोड़ों के साथ सुसनद्ध हो तेरे राज्य को लेने की इच्छा से आवेगा। यदि प
करने के समय आप यवनों पर आक्रमण करोगे तो यवन आपके हस्तगत हो जावेंगे। हे राजन् ! उस स
आप यह विचार मत करना कि मेरे पास फौज कम है और शत्रु के पास फौज विशेष है फिर मैं इसको कै
जीत सकूंगा। देखो, यवन सम्राट को आप जीत सकोगे, विश्वास कराने वाला तुझे यही संकेत जान
चाहिये कि—जब आप यवनों को जीतने को जाओगे, तब मार्ग में आप एक पाषाण के दो टुकड़े होते—
विश्वास कर लेना कि मैं अवश्य जीतूंगा।

इस प्रकार जम्बुनाग मुनि के द्वारा लिखे हुए समय में ही यवनों ने अचानक आकर पड़ाव डाल दिया
राजा भी उन लिखित संवाद के विश्वास पर अपने हृदय में धैर्य धारण कर चंचल घोड़ों को एवं अपनी फौज
को साथ में ले पृथ्वीतल को कम्पाता हुआ यवनों की ओर चल पड़ा। अपने नगर के उद्यान के निकट
मन्दिर में स्थित मुन्वान नाम की अपनी गोत्र देवी को जीतने की इच्छा से नमस्कार करने के लिये गया।

[illegible] लिखा हुआ मुनि जम्बुनाग से [illegible] पद्मप्रभ [illegible] का [illegible] उपकेश गच्छ चरित्र श्लोक [illegible]
[illegible] का श्लोक [illegible] तक का अनुवाद कर दी है [illegible] मूल श्लोक यहाँ इसलिये नहीं दिये गये हैं कि इस ग्रन्थ
[illegible] में उपकेश गच्छ चरित्र भी मुद्रित करवा दिया जावेगा—

ले लिया ! माता ने भी उसके बढ़ते हुए वैराग्य को एवं जिनभद्र मुनीश्वर के वचनों को लक्ष्य में रख उसे दीक्षा लेने की सहर्ष आज्ञा प्रदान करदी। उपाध्यायजी ने भी भावी प्रभावक, तेजस्वी क्षत्रिय-कुमार को दीक्षित कर, मुनि पद्मप्रभ नाम रख दिया। मुनि पद्मप्रभ को सर्व गुणों का आधार व शासन की उन्नति करने का प्रधान हेतु समझ, शास्त्राभ्यास करवाना प्रारम्भ करवा दिया। नवदीक्षित मुनि ने पूर्व जन्म में ज्ञानार्चना, भक्ति, एवं ज्ञानाराधना को सविशेष परिमाण में की थी। अतः वे कुछ ही समय में शास्त्रमर्मज्ञ व अपने समय के अनन्य विद्वान हो गये। वीणावाद में मस्त बनी सरस्वती की आप पर इतनी कृपा थी कि संगीत एवं वक्तृत्व कला मे तो आप असाधारण पाण्डित्य हस्तगत कर लिया कि आप जिस समय व्याख्यान देना प्रारम्भ करते थे तब मानव देहधारी तो क्या पर देव देवांगना भी स्तंभित हो जाते थे। जब समय हो जाने पर आप व्याख्यान समाप्त कर देते थे तो श्रोताजन को बड़ा ही आघात पहुँचता था और वे पुनः व्याख्यान के लिये लालायित रहते थे इत्यादि। आप इस प्रकार व्याख्यान के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। मुनि पद्मप्रभ की योग्यता पर प्रसन्न होकर श्री उपाध्यायजी महाराज ने मुनि पद्मप्रभ को वाचक पद से विभूषित कर उसका सम्मान किया।

एक समय आप पुनः इत उत परिभ्रमन करते हुए पाटण पधारे। नित्य नियम क्रमानुसार वाचकजी के कई व्याख्यान (पब्लिक) हुए। मुनि पद्मप्रभ की प्रतिपादन शैली की अलौकिकता से आकर्षित हो जन समाज नित्य नूतनोत्साह से विशाल संख्या मे व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लग गया। तात्विक विषयों के स्पष्टी करण की असाधारणता के कारण नगर भर मे आपका सुयश ज्योत्स्ना विस्तृत होगई। अनन्तर श्री हेमचंद्रसूरि ने उस नवदीक्षित पद्मप्रभ को जनोत्तर (अति अलौकिक-सर्वश्रेष्ठ) वाचक गुण सम्पन्न प्रखर व्याख्याता, जानकर व्याख्यान के समय (प्रातःकाल) उस पद्मप्रभ को कौतुक से बुलाया। आचार्यश्री स्वयं प्रच्छन्न स्थान पर बैठ कर बहुत ही ध्यानपूर्वक मुनि पद्मप्रभ के व्याख्यान-विवेचन शक्ति व तत्व प्रतिपादन को श्रवण करने लगे। राजा कुमारपाल भी मुनि श्री के आश्चर्योत्पादक व्याख्यान सभा में उत्कण्ठित हो सम्मिलित हुआ। नव मुनिजी विवेचन एवं स्पष्टीकरण करने की अलौकिकता बोलने की मधुरता, श्रोताओं को चुम्बकवत् आकर्षित करने की विचित्रता ने सभासीन जन समाज, राजा कुमारपाल एवं आचार्यश्री हेमचद्रसूरि को भी आश्चर्य विमुग्ध बना दिया। इस व्याख्यान ने सूरिजी के हृदय मे मुनि पद्मप्रभ के प्रति अगाध स्नेह पैदा कर दिया। उनकी इच्छा वाचकजी को अपने पास रखकर अपने युग के असाधारण महाप्रभावक बनाने की होगई। अतः उक्त इप्सित अभिलाषा से प्रेरित हो उन्होंने उपाध्यायजी से वाचक मुनि पद्मप्रभ की याचना की। इसमे सूरिजी का—वाचकजी के द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करवाने का ही प्रशस्तुत्य, आदरणीय ध्येय होगा पर यह बात उपा० ने स्वीकृत नहीं की। अब तो हेमचन्द्रसूरिजी जबरन भी उसको लेने का प्रयत्न करने लगे अतः उपाध्यायजी को बहुत ही चिन्ता हो गई। वे सोचने लगे कि—यहां का राजा कुमारपाल हेमचन्द्राचार्य का भक्त है। अतः यहां पर ऐसी स्थिति में रहना भयावह है। बस, दोनों गुरु शिष्य रात ही में ऐसे विषम मार्ग से विहार कर सिनपल्ली (सिनवली) नामक एकान्त व विशाल स्थान में पहुँच गये कि जहां राजाओं की सेना या गुप्तचरों से भेद लगना भी दुःसाध्य था। जब हेमचन्द्राचार्य को इस बात की खबर लगी कि उपाध्यायजी म० रात्रि मे ही चले गये हैं तो उन्होंने राजा कुमारपाल को पता लगाने की प्रेरणा की। राजा ने भी योग्य पुरुषों को उपाध्यायजी को ढूंढने के लिये भेजा पर विषम मार्ग का अनुसरण करने वाले उपाध्यायजी का पता वे न लगा सके। अन्त में हताश हो वे जैसे के तैसे पुनः लौट आये।

उपाध्यायजी व वाचक पद्मप्रभ मुनि जिस स्थान पर ठहरे थे उसके नजदीक ही एक ग्राम था। वहां की किसी नाम की देवी किसी पात्र के शरीर में अवतीर्ण हो कहने लगी—हे भद्रपुरुषों ! तुम्हारे यहां जो दो श्वे० साधु ठहरे हैं उनको शीघ्र ही जाकर इस बात की सूचना करो कि वाचक पद्मप्रभ मुनि को देवी ने

बुलवाया है। अतः शीघ्र ही देवी के निर्दिष्ट स्थान पर चलो। उस ग्राम के भद्रिक पुरुषों ने देवी प्रोक्त वचनों को ग्राम स्थित मुनियों को वंदन कर कह सुनाये। उपाध्यायजी म० ने भी वाचक पद्मप्रभ को देवी के पास भेज दिया। जब वाचकजी विसोई देवी के स्थान पर गये तो देवी ने कहा--"हे भाग्यशाली ! मैं त्रिपुरा देवी को नमन करने गई थी। उन्होंने मुझे कहा था कि-तुम्हारे वहां पद्मप्रभ नामक श्वे० साधु आवेगा उसको मेरी ओर से कह देना कि तुमने तीन भव तक मेरी आराधना की पर स्वल्प आयुष्य होने के कारण मैं सिद्ध न हो सकी। अब तुम हमारी आराधना करो मैं तुम्हारे लिये वरदाई (सिद्ध) हो जाऊंगी।" ऐसा कह कर त्रिपुरादेवी ने मुझे विसर्जित की और मैं आपको सूचना देने के लिये यहां आई। आपको देवी कथित सकल वृतान्त कह दिया अब आप इस बात को नहीं भूलें। आप त्रिपुरादेवी का स्मरण कीजिये कि आपको पूर्व साधित मन्त्र भी स्मृति रूप हो जाय। वाचक पद्मप्रभ ने देवी विसोई की बात को सुनकर त्रिपुरादेवी का ध्यान लगा लिया। बस देवी के प्रभाव से पूर्व जन्म पठित देवी साधक मन्त्र की ताजा स्मृति हो आई। मन्त्र-स्मरण के साथ ही वाचकजी अपने गुरु उपाध्यायजी के पास आये और उन्हें विनय पूर्वक सब हाल सुना दिया। उपाध्यायजी को देवी की अनुपम कृपा के लिये अत्यन्त प्रसन्नता हुई और ऐसा होना सम्भव भी था। अपने या अपने शिष्य के अनुपम [illegible] में किसी को [illegible] आनन्द का [illegible]

अब उपाध्यायजी की यह इच्छा हुई कि किसी [illegible] के [illegible] को मन्त्र साधन की अनुष्ठान किया करवाई जाय। [illegible] से परिभ्रमन करते हुए नागपुर शहर में पधारे। [illegible] नागरिक-श्रावकों को अनुष्ठान के लिये कहा परन्तु [illegible] तक़दीर ही इस काम के योग्य नहीं थे। [illegible] वहां गच्छ में पूर्ण भक्ति रखने वाला [illegible] हमेशा प्रातःकाल उठकर सवा करोड़ स्वर्ण मुद्रा का दान [illegible]

श्री उपाध्यायजी म० के वहां पधार जाने पर [illegible] नरेश को भी आमन्त्रित किया। भक्ति [illegible] [illegible]

की साङ्गोपाङ्ग साधना की। त्रिपुरादेवी भी उक्त साधना से प्रसन्न हो प्रत्यक्ष आकर वाचकजी से कहने लगी- प्रभो ! आपकी आराधन भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ। अतः आपको जो कुछ इष्ट हो मांगो—मैं प्रसन्नता पूर्वक आपकी मनोकामना को पूर्ण करने के लिये तैय्यार हूं। इस पर वाचकजी ने वचन सिद्धि रूप सफल वर मांगा। स्पष्टवादी, कुशाग्रमति वाचकजी को 'तथास्तु' कह कर देवी अन्तरध्यान होगई। इधर वाचकजी का भी वाक्य सिद्ध हो गया। वे जैसा अपने मुख से बोलते ठीक वैसा ही होने लगा।

एक दिन उपाध्यायजी कहीं बाहिर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हे कोई उपासक बैल की पीठ पर बोझा लादे विदेश से आता हुआ मिला। श्रीवाचकजी से भेंट कर उस उपासक ने उनको वदना की तब वाचकजी ने उससे पूंछा—तुम्हारे पास क्या माल है ? यह सुन उपासक ने, शायद उपाध्यायजी को कुछ देना पड़े इस भय से, काली मिर्च को भी उड़द बताया। वाकचजी के "ऐसा ही हो' कहने पर सचमुच वे मिरचें भी उड़द हो गई। अब तो वह घबराता हुआ इनका कारण खोजने लगा। जब उसे पता चला कि ये वाक्य सिद्ध हैं, तो उनकी वचन महिमा को जानकर बड़े ही विस्मय के साथ अपने असत्य भाषण के लिये वह पश्चात्ताप करने लगा। वह वाचकजी के सम्मुख अपने अपराध की क्षमा याचना करता हुआ गिड़गिड़ाने लगा। वाचकजी ने भी सहज दयाभाव से प्रेरित हो कहा—"यदि तेरे उड़द वास्तव मे काली मिर्च थे तो अब भी वही हो जॉय" उनके ऐसा कहने पर तत्क्षण वे उड़द काली मिर्च बन गये।

एक ऐसा ही उदाहरण और बना। तदनुसार एक ब्राह्मण भिक्षा मे मिले हुए चॉवल धान्य (चौलों) को सिर पर उठाये जाते हुए वाचकजी को मिला। वाचकजी ने उससे सहज ही पूछा—हे ब्राह्मण ! तुम्हारी गांठ में क्या चॉवल है ? उसने कहा—नहीं, ये तो चौले हैं। मुनि ने कहा—ये चौलें नहीं चॉवल हैं। ब्राह्मण ने अपनी गांठ खोल कर देखा तो उसे चावल ही नजर आये।

इस तरह वाचक मुनि पद्मप्रभ, त्रिपुरादेवी के वरदान से वाक्य सिद्ध गुण-सम्पन्न हो गये तब उनके गुरु ने उन्हे वाचनाचार्य नाम वाले योग्य पट्टपर उन्हे स्थापित कर दिया। वाचनाचार्य पट्ट पर विभूषित होने के पश्चात् दोनों गुरु शिष्यों ने क्रमशः गुर्जर प्रान्त की ओर विहार कर दिया। उस समय किसी भीम देव की प्रधान रानी अहंकार मे मस्त हो किसी दार्शनिक साधु सन्यासी या विद्वान के सामने बैठ जाने पर भी अपना आसन नहीं छोड़ती थी : उसके इस जघन्य अहंकार को मिटाने के लिये एक दिन वाचनाचार्य मुनि पद्मप्रभ उसके घर गये। रानी ने मुनिजी का न सत्कार किया और न वह आसन छोड़ करके ही मुनि जी के सन्मानार्थ दो कदम आगे आई।

वाचनाचार्यजी—बहिन ! आपको यह गौरव (अभिमान) किस निमित्त है, ? क्या व्याकरण, काव्य, तर्क, छंद आदि की परीक्षा करना चाहती हो ?

रानी—इन तत्त्वों से हमें क्या प्रयोजन है ? मैं तो अध्यात्म योग विद्या के अभिज्ञ साधु समझती हूँ। इनके सिवाय केवल मस्तक मुण्डाने मे क्या होना है ? जब अध्यात्म योग विद्या मे निपुणता ही किसी साधु में दृष्टिगोचर नहीं होती तब किसको नमन व किसका पूजन किया जाय ?

यह सुनकर जरा मुस्कान के साथ पद्मप्रभ ने उत्तर दिया—श्रीमतीजी ! क्या आप तर्क, व्याकरण, साहित्य, निमित्त (शकुन—ज्योतिष) गणित आदि के ज्ञान को प्रत्यक्ष देखनी हो ?

रानी—इन निःसार वस्तुओं में क्या ? मैं तो अध्यात्म विद्या में स्थित हूँ और समस्त तत्त्वों को भले रूप में जानती हूँ। मुझसे पृथक् मैं किसी को नहीं देखती जिसको कि मैं नमस्कार करूं।

वाचनाचार्य—रानीजी ! मैं अष्टांग योग और कुम्भक पूरक तथा रेचक इन विविध प्राणायामों का जानता हूँ। इस पर रानी ने आश्चर्यान्वित हो कहा—पूरक तथा रेचक प्राणायाम के कुछ चमत्कार बताओ। सुन के उत्तर में कहे मुताबिक कहा—जब मैं पूरक प्राणायाम को श्वास वायु द्वारा पूर्ण करके लिया तो

१०—जाजोरी	के	अग्रवाल	जाति के	शाह	मुंजल ने	सूरिजी के पास दीक्षा
११—राणकपुर	के	ब्राह्मण	”	”	भाखर ने	”
१२—जावलीपुर	के	क्षत्रीवीर	”	”	साहू ने	”
१३—पावगढ़	के	काग	”	”	हाप्पा ने	”
१४—उपकेशपुर	के	श्रेष्ठि	”	”	पर्वत ने	”
१५—माडव्यपुर	के	रांका	”	”	दुर्गा ने	”
१६—क्षत्रीपुरा	के	कांकरिया	”	”	करण ने	”
१७—विजयपुर	के	चंडालिया	”	”	जगमाल ने	”
१८—विलासपुर	के	सुघड़	”	”	धन्ना ने	”
१९—शंखपुर	के	डिड्डू	”	”	धोकल ने	”
२०—कुर्मापुर	के	देसरडा	”	”	डूगर ने	”
२१—नागपुर	के	कुम्मट	”	”	राजसी ने	”
२२—भवानीपुर	के	सालेचा	”	”	पुनडे ने	”
२३—मोदनीपुर	के	मल्ल	”	”	गुणाढ़ ने	”
२४—आघाटपुर	के	मंडोवरा	”	”	लाडुक ने	”
२५—चित्रकोट	के	चोरड़िया	”	”	मेहराव ने	”
२६—दशपुर	के	मुरेठा	”	”	मोकल ने	”
२७—चन्देरी	के	सुखा	”	”	भोला ने	”
२८—रायपुर	के	भट्टेश्वर	”	”	वीरा ने	”
२९—मथुरा	के	प्राग्वट	”	”	नोढ़ा ने	”

आचार्यश्री के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—देवपट्टन	के	बापणा	जाति के	शाह	रूपणसी ने	भ०	महा०	प्र०
२—मादलपुर	के	पोकरणा	”	”	तोला ने	”	”	”
३—रत्नपुर	के	खजांची	”	”	गौरा ने	”	”	”
४—हर्षपुर	के	गातावत	”	”	नागजी ने	”	”	”
५—अजयगढ़	के	आर्य	”	”	पेथा ने	”	पार्श्व०	”
६—शाकम्भरी	के	काग	”	”	धीरा ने	”	”	”
७—पद्मावती	के	गुलेच्छा	”	”	जीवण ने	”	”	”
८—ओशाम	के	नाहटा	”	”	वरधा ने	”	”	”
९—इन्द्रोडी	के	गुरुड	”	”	नारायण ने	”	आदि०	”
१०—आनन्दपुर	के	सुरवा	”	”	सुगाल ने	”	”	”
११—वीरपुर	के	कुम्मट	”	”	माहरण ने	”	”	”
१२—मालपुर	के	कनोनिया	”	”	मैरु ने	”	शान्ति०	”
१३—[illegible]	के	वर्धमाना	”	”	रामाने	”	”	”
१४—[illegible]	के	श्रेष्ठि	”	”	आजू ने	”	”	”
१५—[illegible]	के	मंत्री	”	”	धनदू ने	”	”	”

२३—पद्मावती के प्राग्वट हरपाल की पत्नी ने तलाव खुदाया।
२४—राणकपुर के संचेती नाथा ने दुकाल मे करोड़ों का दान दिया।
२५—पाली का पल्लीवाल सांगा ने दुकाल में अन्न वस्त्र दान में दिये।
२६—वीरपुर का आर्य नानग युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२७—उपकेशपुर का चोरड़िया भारमल युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
२८—चन्द्रावती का प्राग्वट कल्हण युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।

सेंतालीसवें पट्ट प्रभाकर, सिद्ध सूरीश्वर नामी थे।
दृढ़ थे दर्शन ज्ञान चरण में, शिव सुन्दरी के कामी थे॥
ग्रन्थ निर्माण किये अपूर्व, कई ग्रन्थ कोष थपाये थे।
उन्नति शासन की करके, मन्दिरों पे कलश चढ़ाये थे॥
जम्बुनाग ज्योतिष विद्या में, सफल निपुणता पाई थी।
खोद्रवा में जाकर, विप्रों से, विजय भेरी बजवाई थी॥
जो नहीं करने देते थे वहाँ पर, मन्दिर प्रतिष्ठा करवाई थी।
ग्रन्थ किया निर्माण आपने, विद्वता की छटा दिखाई थी॥

इति श्रीभगवान् पार्श्वनाथ के सेंतालीसवें पट्टधर आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वर महाप्रभाविक आचार्य हुए

कारण है ? सूरिजी के उक्त सरल एवं शान्तिप्रद वचनों को सुनकर उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । व्रतपित श्वासोच्छ्वास की प्रबलता से यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि वह किसी महान् दुःख से दुखित थी वह बोलने व अपने भावों को यथावत् व्यक्त करने मे हिचकिचा रही थी पर सूरीश्वरजी ने सहायक आश्वासन सूचक शब्दों मे पूछा तब उस बहिन ने अपना हाल निम्न प्रकारेण सुनाया ।

महात्मन् ! मेरा नाम रूपसुन्दरी है । एक दिन मै राज-महलों में रहने वाली मोतियों से भी मंहगी थी पर दुर्दैव वशात् आज मेरी यह दशा हुई है कि इस भयावह अरण्य मे भी मुझे अकेली को ही रहना पड़ा है । अभी ही पुत्र को जन्म दिया है और येनकेन प्रकारेण फल फूलों के आधार पर मैं अपना जीवन यापन कर रही हूँ । प्रभो ! मेरी कष्टजनक हालत का दुःखानुभव मुझे ही है शत्रु को भी परमात्मा यकायक ऐसा दुःख प्रदान न करे । सूरिजी ने रानी का हाल सुनकर उसको धैर्य्य दिलाते हुए कहा—माता उद्विग्न एवं खिन्न होने का समय नहीं है । कर्मों की करालता के सन्मुख तुम हम जैसे साधारण पुरुष को तो क्या ? पर तीर्थङ्कर चक्रवर्ती जैसे अनन्त शक्ति के धारक पदवी धरों का भी वश नहीं चलता है कर्मों की स्वाभाविक गति ही अत्यन्त विचत्र है अतः स्वोपार्जित पुरातन पापकर्मों का इस प्रकार कठोर उदय समझ करके ही सर्व प्रकारेण शान्ति पूर्वक सहन करते रहना चाहिये । अब किञ्चिन्मात्र भी मत घबराओ सब तरह से आनन्द एवं कल्याण ही होगा । इस तरह रूपसुन्दरी को कर्म-महात्म्य बताते हुए शांत्वना प्रदान कर आचार्यश्री स्वयं पञ्चासरा मे आये और योग्य श्रावकों को एतद्विषयक सर्वप्रकारेण अनुकूल सूचना दी । आचार्यश्री के उक्त उचित परामर्श को पाकर श्रीसंघ के प्रतिष्ठित श्रावक सूरिजी कथित निर्दिष्ट स्थान पर गये और रूपसुन्दरी व उनके नवजात शिशु को बड़े ही सन्मान पूर्वक अपने घर पर ले आये, उनकी अच्छी तरह से हिफाजित कर उन्हें हर तरह से अपनाने का श्रेय सम्पादन किया ।

रानी रूपसुन्दरी भी आचार्यश्री शीलगुण सूरि का महान उपकार समझ कर उनकी परम भक्तिमान श्राविका बनगई और सूरीश्वरजी के नित्यप्रति अनुपम उपदेशों को सुनकर अपने दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगी । उसका बच्चा जो वन मे जन्मा था और वन में जन्मने के कारण वनराज नामाङ्कित था द्वितीया के चन्द्र के समान नित्यप्रति हर एकबातों मे बढ़ रहा था । धार्मिक पवित्र संस्कारों से ओतप्रोत अपनी माता के साथ में वनराज भी प्रतिदिन सूरीश्वरजी के आश्रय मे आया जाया करता था । इससे उसके कोमल हृदय स्थल पर धार्मिक संस्कारों का आश्चर्यकारी प्रभाव पड़ा जब वनराज क्रमशः शिक्षा प्राप्त करने योग्य हुआ तो धार्मिक शिक्षा के साथ ही साथ राजकीय एवं व्यापारिक शिक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया । वनराज भी कुशाग्रमति एवं व्यवहार कुशल था । अतः उसने कुछ ही समय मे हर एक विषयों मे आशातीत प्रगति करली ।

एक समय वनराज हवाखोरी के लिये जंगल मे गया था । वहाँ उसने कई गवालों को गायें चराते हुए देखा । किन्हीं बातों के स्वाभाविक प्रसङ्ग से वनराज ने अपने हृदयान्तर्हित उद्गारों को व्यक्त करते हुए गोपालों से नये राज्य—स्थापन करने के विषय में कहा । इस पर एक प्रतिष्ठित गोपाल ने कहा—यदि आप मेरे नाम से नया नगर व नया राज्य आबाद करना चाहें तो मैं आपको एक ऐसा उत्तम स्थान बताऊँ कि जिसके आधार पर नव कार्य सुगमता पूर्वक किये जासकें । वनराज ने गोपाल की उक्त हितकर बात को सहर्ष स्वीकार करली और गोपाल ने भी पूर्व दर्शित एक सिंह के सामने बकरे के द्वारा बतलाई गई वीरता के अद्भुत स्थान को नवराज्य स्थापना के लिये बतला दिया । गवाल का नाम 'अणहिल' था अतः वनराज ने अणहिलपुर पट्टन नाम से बसाने का निश्चय कर लिया । सायंकाल के समय जब वनराज वापिस आया तब [illegible] के साथ हुए अखिल वृत्त को सूरीश्वरजी की सेवा में कह सुनाया । सूरिजी ने भी [illegible] निमित्त ज्ञान से भविष्य के लाभ को जान कर वनराज के इस अनुपम उत्साह को [illegible]

है। इत्यादि संगठन विषयक हृदयग्राही उपदेश दिया जिसका राजा प्रजा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। धार्मिक संगठन शक्ति को यथावत् बनाये रखने के लिये आचार्यश्री के उक्त उपदेशानुसार राजा वनराज चावड़ ने चतुर्विध श्री संघ को एकत्रित कर पाटण-शहर के लिये सबके परामर्शानुसार यह मर्यादा बांधदी कि पाटण में सिवाय चैत्यवासियो के कोई भी श्वेताम्बर साधु नहीं ठहर सकता है। यदि अन्य साधुओं को ठहरना ही होवे तो वे चैत्यवासियो के परामर्शानुसार ही ठहर सकते हैं।

उक्त प्रस्ताव में आचार्यश्री शीलगुणसूरिजी को न तो कोई निजी स्वार्थ था और न किन्हीं भावनाओं से एतद्विपयक परिवर्तन ही करना था। शीलगुणसूरि तो निवृत्ति कुल के आचार्य थे पर उस समय पाटण में अनेक गच्छ के चैत्यवासियो का ही आना जाना और चैत्यवासियो के ठहरने योग्य ही चैत्य, उपाश्रय थे। अतः किसी को भी इस विषय की रोक टोक नहीं थी। केवल पाटण के राजा प्रजा को यही भय था कि चैत्यवासियो के अलावा दूसरे साधु क्रिया उद्धारक एवं सुविहितों के बहाने से हमारी संगठित शक्ति को छिन्न विछिन्न न कर डालें। वास्तव मे उनका उक्त विचार भी था यथार्थ एवं दूरदर्शितापूर्ण ही था।

पाटण के श्रीसंघ का किया हुआ ठहराव करीब पौने तीन सौ वर्ष पर्यन्त धारा प्रवाहिक रूप में चलता रहा। यही कारण था कि आचार्यश्री सिद्धसूरि के शासन में पाटण सर्व प्रकारेण उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ था। जैनसंघ की पर्याप्त आबादी थी। जैन समाज तन, धन, कुटुम्ब परिवार से पूर्ण सुखी था। उस समय पाटण में कई अरबपति और करीब ढाई हजार कोट्याधीश रहते थे। उस समय लक्षाधीश तो साधारण गृहस्थों की संख्या मे गिने जाते थे। अतः उनकी तो संख्या ही नहीं थी। इन सबों में परस्पर भ्रातृभावजन्य प्रेम एवं धर्म स्नेह का नाता था। सर्वत्र स्नेह का ही साम्राज्य था। कलह कदाग्रह, ईर्षा, फूट ने अपनी अवहेलना का स्थान देख कर पाटण को दूर से ही त्याग दिया था।

पाटण नगर में वाप्पनाग गौत्रीय नाहटा जाति का श्रीचंद नामक कोट्याधीश व्यापारी रहता था। आपका व्यापार भारत पर्यन्त ही परिमित नहीं था किन्तु पाश्चात्य प्रदेशों पर्यन्त उग्र रूप से था। जल एवं स्थल दोनों ही मार्ग से व्यापार प्रबल रूप मे चलता था। आपके पिताश्री पुनड़ शाह व्यापारार्थ विदेशों में गये थे। वहां से वे एक बहुमूल्य माणक लाये थे। उसकी सात अंगुल प्रमाण की भगवान् महावीर की मूर्ति बनवा कर घर में देरासर स्थापित किया था। उस प्रतिमा की सेवा पूजा का लाभ सेठ श्रीचंद के सब कुटुम्ब वाले परम श्रद्धापूर्वक किया करते थे। शाह श्रीचन्द के पूर्वज व्यापारार्थ मरुधर के उपकेशपुर से आये थे। वंशावलियों से पता मिलता है कि श्रीचंद की पांचवी पीढ़ी के पूर्व शाह वरदेव उपकेशपुर से पाटण आये थे, उस समय पाटण नया ही बसा था। पाटण आने के बाद वरदेव का वंश वटवृक्ष की भांति फलता फूलता रहा।

शाह श्रीचन्द्र के पांच पुत्रों में सबसे लघु भोजा था। वह भी अपने पिता के समान ही कोट्याधीश एवं प्रबल व्यापारी था। भोजा ने कई बार व्यापारार्थ विदेश की यात्रा की थी। और वहां से कई प्रकार के जवाहरात भी लाते थे। भोजा की धर्मपत्नी का नाम मोहिनी था। भोजा के लाये हुए रत्नादि जवाहिरात में से बढ़िया २ नग चुनकर भगवान् की प्रतिमा के कण्ठ में धारण करवाने के लिये परम भक्तिवान्, दृढ़ श्रद्धालु श्राविका मोहिनी ने एक सुन्दर हार बनवाया। इस सुन्दर हार के चातुर्य एवं कला को देखकर शिल्पकला निष्णात मनुष्य भी आश्चर्य विमुग्ध हो जाते। पतिव्रत धर्म परायणा मोहिनी ने हार को सुन्दर ढंग से तैयार कर अपने परमाराध्य पति देव को कहा-पूज्यवर! कृपया इस हार को प्रभु-प्रतिमा के कण्ठ में पहिनाकर चैत्य वन्दन कीजिये, मैं भी अभी ही आती हूँ। शा० भोजा हार की रचना देख बहुत खुश हुआ और अपनी पत्नी की भूरि भूरि प्रशंसा की। बाद में आप आदीश्वर के मंदिर में जाकर द्रव्य पूजा की और प्रभु के कण्ठ में हार पहिनाकर परम भक्ति पूर्वक चैत्यवंदन किया। जब चैत्यवंदन करके भोजा बाहिर आया उसी समय श्राविका मोहिनी मन्दिर में गई पर मूर्ति के कण्ठ में हार नहीं देखा। प्रभु प्रतिमा के कण्ठ में हार नहीं देख

उसके दिल में विचार हुआ कि हार, बहुमूल्य होने से शायद पतिदेव ही अपने साथ ले गये होंगे। इस तरह उसका मानसिक निश्चय होजाने पर भी उसने शान्ति-पूर्वक चैत्य वन्दन किया और अपने मकान पर आकर मानसिक भ्रम के कारण अपने पतिदेव को मधुर उपालम्भ दिया। उसने कहा—देव ! आप भाग्य शाली है कि विदेश मे जाकर इस तरह के अमूल्य रत्न, जवाहरात लाये और उसका हार प्रभु के कोमल कण्ठ मे स्थापन कर भक्ति का खूब ही लाभ लूटा पर मैं कैसी अभागिनी हूँ मुझे हार सहित प्रभु प्रतिमा की भक्ति का लाभ ही नहीं मिला। पतिदेव ! इतनी तो मेरे ऊपर भी कृपा रखनी थी। मैंने कोई ऐसा भयङ्कर अपराध भी नहीं किया कि जिसके आधार पर मैं इतना अधिकार प्राप्त करने से वञ्चित रहूँ। प्रभो ! हार भी मैंने ही तैय्यार किया था तो क्या मुझे इतना अधिकार भी नहीं कि मैं चैत्य वन्दन करूं वहां तक प्रभु के कण्ठ मे हार देख सकूं।

अपनी धर्मपत्नी के मधुर किन्तु उपालम्भ सहित वचनों को सुनकर भोजा ने अफसोस के साथ कहा—मैंने खास आपके लिये ही हार भगवान के कण्ठ में रख छोड़ा था फिर यह उपालम्भ कैसे ?

श्राविका मोहिनी—तो क्या मैं असत्य कहती हूँ, प्रभो।

भोजा—नहीं आप सांसारिक कार्यों में भी असत्य का आचरण नहीं करती तो फिर इस पवित्र धर्म के कार्य मे तो झूठ बोल ही कैसे सकती हो ? पर मै भी झूठ नहीं कहता हूँ। मैं भी बराबर भगवान् के कण्ठ में हार रखकर बाहिर आया था। उसके बाद सिवाय आपके और कोई आया भी तो नहीं फिर यह सम्भव ही कैसे ?

श्राविका—फिर हार कहाँ गया, आप जाकर भी तो जरा निगाह कीजिये।

भोजा—मेरे जाने की क्या जरुरत है; मैंने तो भगवान् को चढ़ा दिया अब उसकी जुम्मेवारी अधिष्ठायिक के ऊपर है।

श्राविका—आपने हार भगवान् को अर्पण कर दिया यह तो अच्छा किया और इसमें मेरी भी सम्मति थी पर हार की निगाह तो अवश्य ही करनी चाहिये। यदि आपने उसकी सारी जुम्मेवारी अधिष्ठायिक के ऊपर रक्खी है और उसके अनुसार यदि अधिष्ठायिक उस ओर लक्ष्य देता तो हार कैसे चला जाता ? हार का सुष्टु-प्रकारेण पता लगने पर ही मुझे सन्तोष होगा।

इस प्रकार यकायक हार के लापता हो जाने के विषय में परस्पर दम्पत्ति के हमेशा वार्तालाप हुआ करता था।

इधर जिन शासन शृंगार, परमोपकारी, महा-प्रभावक आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज विहार करते पाटण की ओर पदार्पण कर रहे थे। इसकी खबर वहाँ के श्री संघ को हुई तो पाटण वासी जन-समाज के हर्ष का पारावार नहीं रहा। श्रीसंघ ने सूरीश्वरजी का बहुत ही ठाट पूर्वक नगर-प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री ने भी समयानुकूल माङ्गलिक धर्म देशना दी जिसका जन-समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस प्रकार आचार्यश्री का व्याख्यान प्रतिदिन होता था ! प्रसङ्गोपात एक दिन सूरिजी ने मनुष्य जन्म योग्य सामग्री की दुर्लभता और संसार की असारता पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। उक्त वैराग्य पूर्ण व्याख्यान को श्रवण कर कई मुमुक्षु संसार से विरक्त हो गये उनमे शाह भोजा भी एक था।

व्याख्यान श्रवणानंतर भोजा जब अपने निर्दिष्ट स्थान पर आया तो आपकी धर्मपत्नी ने कहा—आज सूरिजी ने कैसा रोचक एवं हृदयग्राही व्याख्यान दिया है।

भोजा—तो क्या तुमको भी उस विषय का कुछ रङ्ग लगा है ?

मोहिनी—रङ्ग तो लगता है पर यकायक संसार छूटता कहाँ है ?

भोजा—तो फिर तुम उस बन्दर वाली ही बात करते हो।

मोहिनी—सो कैसे।

भोजा—एक छोटे मुँह का घड़ा था। उसमें चने भरे हुए थे। एक बन्दर ने अपने दोनों [illegible] के प्रलोभन से घड़े में डा[illegible] और दोनों हाथों में चने भर लिये पर अब मुट्ठी भरी होने से हाथ घड़े से बाहर नहीं निकल सके। अतः वह निरुपाय हो चिल्लाने लगा कि—चने ने मुझे पकड़ लिया है, पर [illegible] बन्दर को पकड़ रक्खा है या बन्दर ने चने को पकड़ रक्खा है ? इस पर मोहिनी ने [illegible]—[illegible] [illegible] पकड़ा है [illegible] बन्दर ने चने को पकड़ा है। बस यही बात आप अपने [illegible] [illegible] पकड़ा है पर आपने संसार को मजबूती से पकड़ रक्खा है। [illegible] आत्म कल्याण कर सकते हो। पतिदेव के उक्त वचनों [illegible] क्या आप मुझे संसार छोड़ने का उपदेश दे रहे हैं ?

भोजा—[illegible] मैं [illegible] भी संसार को छोड़ना चाहता हूं।

[illegible]—तो फिर दिल की [illegible] में विलम्ब है ? यदि आप

भोजा—अब दीक्षा लेने के बाद तो हार का झगड़ा तो नहीं रहेगा न ?

मोहिनी—यद्यपि हार से मेरा ममत्व नहीं है पर 'किम् जात' यह खटका तो रह ही जायगा। जैसे एक गृहस्थ ने अपनी गर्भवती स्त्री का त्याग कर किसी सन्यासी के पास दीक्षाली पर जब ध्यान करने बैठा तो उसके मन मे रह २ कर यह विचार आने लगा कि मेरी स्त्री के लड़का हुआ या लड़की ? इन्हीं विचारों में दिन व्यतीत होने लगे पर प्रभु—ध्यान मे उक्त विचारों का मन स्थिर न हो सका। इस प्रकार जब [illegible] मास व्यतीत हो गये तब उसके गुरु ने कहा–वत्स ! तेरा चित्त ध्यान मे क्यों नहीं लगता है ? क्या 'किम् जात' का रोग तो नहीं लग गया है ? शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरे हृदय में यह 'कि जात' का रोग ही नहीं निकलता है और इसी कारण से ध्यान मे भी मन स्थिर नहीं रहता है। गुरु ने कहा तो आज तुम घर २ पर भिक्षा के लिये जाओ शिष्य गुर्वादेशानुसार भिक्षा के लिये नगर मे गया तो [illegible] अपने घर पर गौचरी के लिये गया। वहा नवजात शिशु को बालोचित क्रीड़ा करते हुए देखा तो [illegible] 'कि जात' का रोग मिट गया। बस, तत्काल ही भिक्षा लेकर अपने गुरु के पास आया और [illegible] ध्यान मे सलग्न हो गया। उसके हृदय ने पुत्र को देख कर 'कि जात' का रोग [illegible] और [illegible] हो गया कि मेरी औरत के पुत्र हुआ है।

दैवयोग से उसी रात्रि को अधिष्ठायिका ने वह हार [illegible] भोजा को [illegible] अपनी धर्मपत्नी को हार दिखलाते हुए भोजा ने कहा–[illegible] ने मुझे [illegible] दिया है। बोलो अब इस हार के लिये क्या [illegible] को दे दीजिये और जल्दी से ही दीक्षा [illegible] के उक्त वचनों के बल पर भोजा ने अधिष्ठायिका [illegible] अधिष्ठायिक ने भी ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि [illegible] होता और पश्चात् अदृश्य हो जाता। [illegible]

भोजा—नहीं आप सांसारिक कार्यों में भी असत्य का आचरण नहीं करती तो फिर इस पवित्र धर्म के कार्य मे तो झूठ बोल ही कैसे सकती हो ? पर मै भी झूठ नहो कहता हूँ। मैं भी बराबर भगवान् के कण्ठ में हार रखकर बाहिर आया था। उसके बाद सिवाय आपके और कोई आया भी तो नहीं फिर यह सम्भव ही कैसे ?

श्राविका—फिर हार कहाँ गया, आप जाकर भी तो जरा निगाह कीजिये।

भोजा—मेरे जाने की क्या जरुरत है; मैंने तो भगवान् को चढ़ा दिया अब उसकी जुम्मेवारी अधिष्ठायिक के ऊपर है।

श्राविका—आपने हार भगवान् को अर्पण कर दिया यह तो अच्छा किया और इसमें मेरी भी सम्मति थी पर हार की निगाह तो अवश्य ही करनी चाहिये। यदि आपने उसकी सारी जुम्मेवारी अधिष्ठायिक के ऊपर रक्खी है और उसके अनुसार यदि अधिष्ठायिक उस ओर लक्ष्य देता तो हार कैसे चला जाता ? हार का सुष्ठु-प्रकारेण पता लगने पर ही मुझे सन्तोष होगा।

इस प्रकार यकायक हार के लापता हो जाने के विषय में परस्पर दम्पत्ति के हमेशा वार्तालाप हुआ करता था।

इधर जिन शासन शृंगार, परमोपकारी, महा-प्रभावक आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज विहार करके पाटण की ओर पदार्पण कर रहे थे। इसकी खबर वहाँ के श्री संघ को हुई तो पाटण वासी जन-समाज के हर्ष का पारावार नहीं रहा। श्रीसंघ ने सूरीश्वरजी का बहुत ही ठाट पूर्वक नगर-प्रवेश महोत्सव किया। आचार्यश्री ने भी समयानुकूल माङ्गलिक धर्म देशना दी जिसका जन-समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस प्रकार आचार्यश्री का व्याख्यान प्रतिदिन होता था ! प्रसङ्गोपात एक दिन सूरिजी ने मनुष्य जन्म योग्य सामग्री की दुर्लभता और संसार की असारता पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिया। उक्त वैराग्य पूर्ण व्याख्यान को श्रवण कर कई मुमुक्षु संसार से विरक्त हो गये उनमें शाह भोजा भी एक था।

व्याख्यान श्रवणानंतर भोजा जब अपने निर्दिष्ट स्थान पर आया तो आपकी धर्मपत्नी ने कहा—अहा ! आज सूरिजी ने कैसा रोचक एवं हृदयग्राही व्याख्यान दिया है।

भोजा—तो क्या तुमको भी उस विषय का कुछ रङ्ग लगा है ?

मोहिनी—रङ्ग तो लगता है पर यकायक संसार छूटता कहाँ है ?

भोजा—तो फिर तुम उस बन्दर वाली ही बात करते हो।

मोहिनी—सो कैसे।

भोजा—एक छोटे मुँह का घड़ा था। उसमें चने भरे हुए थे। एक बन्दर ने अपने दोनों हाथ चने के प्रलोभन से घड़े में डाले और दोनों हाथों में चने भर लिये पर अब मुट्ठी भरी होने से हाथ घड़े से बाहर नहीं निकल सके। अतः वह निरुपाय हो चिल्लाने लगा कि—चने ने मुझे पकड़ लिया है, पर बतलाइये चने ने बन्दर को पकड़ रक्खा है या बन्दर ने चने को पकड़ रक्खा है ? इस पर मोहिनी ने कहा—चने ने बन्दर को नहीं पकड़ा है पर बन्दर ने चने को पकड़ा है। बस यही बात आप अपने लिये भी समझ लीजिये। संसार ने आपको नहीं पकड़ा है पर आपने संसार को मजबूती से पकड़ रक्खा है। यदि आप चाहें तो आप भी संसार का त्याग कर आत्म कल्याण कर सकती हो। पतिदेव के उक्त वचनों को श्रवण कर मोहिनी ने कहा—क्या आप मुझे संसार छोड़ने का उपदेश दे रहे हैं ?

भोजा—हाँ, मैं स्वयं तो संसार को छोड़ना चाहता हूँ।

मोहिनी—तो फिर किस की ओर से विलम्ब है ? यदि आप संसार को छोड़ दें तो मैं आपके साथ

भोजा—अब दीक्षा लेने के बाद तो हार का झगड़ा तो नहीं रहेगा न ?

मोहिनी—यद्यपि हार से मेरा ममत्व नहीं है पर 'किम् जात' यह खटका तो रह ही जायगा। जैसे एक गृहस्थ ने अपनी गर्भवती स्त्री का त्याग कर किसी सन्यासी के पास दीक्षाली पर जब ध्यान करने बैठा तो उसके मन मे रह २ कर यह विचार आने लगा कि मेरी स्त्री के लड़का हुआ या लड़की ? इन्हीं विचारो मे दिन व्यतीत होने लगे पर प्रभु—ध्यान मे उक्त विचारो का मन स्थिर न हो सका। इस प्रकार जब नौ मास व्यतीत हो गये तब उसके गुरु ने कहा-वत्स ! तेरा चित्त ध्यान मे क्यों नहीं लगता है ? क्या 'किम् जात' का रोग तो नहीं लग गया है ? शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरे हृदय मे यह 'कि जात' का रोग ही नहीं निकलता है और इसी कारण से ध्यान मे भी मन स्थिर नहीं रहता है। गुरु ने कहा तो आज तुम घर घर पर भिक्षा के लिये जाओ शिष्य गुर्वादेशानुसार भिक्षा के लिये नगर मे गया तो [illegible] अपने घर पर गौचरी के लिये गया। वहा नवजात शिशु को बालोचित क्रीडा करता हुए देखा तो [illegible] 'कि जातं' का रोग मिट गया। बस, तत्काल ही भिक्षा लेकर अपने गुरु के पास आया और [illegible] ध्यान मे सलग्न हो गया। उसके हृदय मे पुत्र को देख कर 'कि जात' का रोग [illegible] और [illegible] हो गया कि मेरी औरत के पुत्र हुआ है।

दैवयोग से उसी रात्रि को अधिष्ठायिका ने वह हार [illegible] अपनी धर्मपत्नी को हार दिखलाते हुए भोजा ने कहा—[illegible] दिया है। बोलो अब इस हार के लिये क्या [illegible] को दे दीजिये और जल्दी से ही [illegible] के उक्त वचनो के बल पर भोजा ने [illegible] अधिष्ठायिक ने भी ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि [illegible] होता और पश्चात् अदृश्य हो जाता। [illegible]

लब्धियां एवं चमत्कार पूर्ण शक्तियां प्राप्त होगई थीं। देवियां आपके चरणों की सेविकाएं बनगई थीं। आपकी व्याख्यान शैली इतनी मधुर, रोचक, पाचक एवं हृदयग्राहिणी थी कि बड़े २ राजा महाराजा भी सुनने के लिये लालायित रहते आपश्री की तत्व समझाने की शैली इतनी सरस, सरल एवं रोचक थी कि श्रवण करने वाले श्रोताओं का मन सूरिजी की सेवा से विलग रहना नहीं चाहता था। आपश्री क्रमशः विहार करते हुए नागपुर (नागौर) पधारे। वहां के श्रीसंघ ने अत्यन्त समारोह पूर्वक आचार्यश्री का स्वागत किया और चातुर्मास के लिये अत्यन्त आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। निदान १०७५ का वह चातुर्मास आपने नागपुर में ही किया। आपश्री का व्याख्यान हमेशा धाराप्रवाहिक न्याय से होता था। एक दिन आपने परमपावन तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय का महात्म्य बतलाते हुए उक्त तीर्थ का इतना रोचक वर्णन किया कि व्याख्यान सभा स्थित सकल जन-समाज का मन सहसा ही तीर्थ यात्रा करने के लिये आकर्षित होगया। तत्काल ही आदित्यनाग गौत्रीय चोरलिया शाखा के धन वेश्रमण शा० करमण की इच्छा संघ निकालने की होगई। शत्रुञ्जय तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने की उन्होंने उसी व्याख्यान में खड़े होकर आज्ञा मांगी और श्रीसंघ ने धन्यवाद के साथ सहर्ष आदेश भी दे दिया। बस फिर तो था ही क्या ? शा० करमण ने अपने आठों पुत्रों को बुला कर संघ सामग्री तैय्यार करने की आज्ञा देदी। शा० करमण ने सुदूर प्रदेशों में अपने आदमियों को भेजकर साधु, साध्वियों को विनती करवाई और श्राद्धवर्ग के लिये स्थान २ पर आमन्त्रण पत्रिकाएं भिजवाई। मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन सूरिजी की नायकता और संघपति करमण के अध्यक्षत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। पट्टावलीकार लिखते हैं कि इस संघ में ३००० साधु साध्वियां और एक लक्ष से अधिक श्रावक थे। जब संघ क्रमशः खटकुम्प नगर पहुँचा तो वहा के संघ ने उक्त संघ का अच्छा स्वागत किया। परस्पर प्रेम भावना को बढ़ाने के लिये दोनों की ओर से एक २ दिन स्वामीवात्सल्य हुआ। मन्दिरों में ध्वजा महोत्सव आदि हुआ। बाद वहां से रवाना हो संघ, उपकेशपुर नगर आया। वहां भी पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, अष्टाह्निका महोत्सव एवं ध्वजा महोत्सव किया। वहां से ग्रामों एवं नगरों के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ संघ ने तीर्थाधिराज का दूर से दर्शन कर मोतियों से बधाया और तीर्थ पर जाकर सेवा पूजा भक्ति कर अपने जन्म को पवित्र बनाया जिस समय नागपुर का संघ शत्रुञ्जय पर आया था उस समय करीब पांच ग्राम नगरों के संघ और भी वहां उपस्थित थे। सबका समागम परस्पर प्रेम में एवं आनन्द में वृद्धि कर रहा था। पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य, अष्टाह्निका महोत्सव एवं ध्वजारोहण में संघपति करमण ने अत्यन्त उदारतापूर्वक द्रव्य व्यय किया। जब माला का समय आया तो साढ़े सात लाख की बोली से माला मरुधर के आदित्यनाग गौत्रावतंस संघपति करमण के कण्ठ में सुशोभित हुई।

मरुधर वासियों में धर्म का बड़ा भारी गौरव था। वे धार्मिक क्षेत्रों में तन मन और धन से द्रव्य व्यय करते थे; यही कारण था कि शा० करमण माला के लिये साढ़े सात लाख का द्रव्य बोलने में नहीं हिचकिचाया। सम्पूर्ण कार्यों के सानन्द सम्पन्न होने पर संघ वापिस लौटते समय पाटण नगर में आया [illegible] सूरिजी की जन्मभूमि थी। पाटण के संघ ने आगत संघ का अच्छा सत्कार किया। शा० [illegible] ने संघ को [illegible] और [illegible] दी। संघपति करमण ने पाटण के मन्दिरों के दर्शन कर [illegible] चढ़ाया। तत्पश्चात् संघ रवाना होकर नागपुर आया। श्रीसंघ ने आगत संघ का समारोह पूर्वक स्वागत कर [illegible] महोत्सव के साथ बधाया। तत्पश्चात् करमण ने संघ को स्वामीवात्सल्य, और साथ में स्वर्ण मुद्रिका [illegible] [illegible] की प्रभावना देकर विसर्जित किया। अहा ! उस समय जैन समाज की धर्म पर कितनी श्रद्धा थी ! [illegible] धार्मिक कार्यों में लाखों रुपये व्यय कर वे महापुरुष भावी मनुष्यों के [illegible] [illegible] [illegible]।

इधर आचार्यश्री भी संघ के साथ नागपुर पधारे और वहां से उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया।

आचार्यश्री का विहार

सं० १०७६ का चातुर्मास उपकेशपुर श्रीसंघ के आग्रह से उपकेशपुर में ही किया। चातुर्मास [illegible] आपके विराजने से धर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना हुई। आपके त्याग वैराग्य मय उपदेश से सात पुरुष और तीन स्त्रियों ने वैराग्य पूर्वक दीक्षा ली। वहां से विहार कर सूरिजी मरुभूमि के छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए पाली नगर में पधारे। १०७७ का चातुर्मास पाली में किया। वहां पर बप्पनाग गोत्रीय शा० मूला ने आगम भक्ति कर भगवती सूत्र बचवाया। तप्त भट्ट गौत्रीय शा० बाला नेहराज ने [illegible] महोत्सव करवाया जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वधर्मी बन्धुओं को [illegible]

चातुर्मास के पश्चात् श्रेष्टिगौत्रीय शा० भाणा के सुपुत्र उदा ने ६ मास की विवाहित पत्नी का त्याग कर सजोडे आचार्यश्री के चरण कमलों में भगवती दीक्षा स्वीकार की। इन दीक्षा महोत्सव समारोह में [illegible] नादि पुन्योपार्जिक कार्यों में सवालक्ष द्रव्य व्यय कर जैन-शासन की महत्ता बढ़ाई। इस तरह पाली का चातुर्मास के सम्पन्न होने पर भिन्नमाल, सत्यपुर, शिवगढ़, [illegible] आदि नगरों में [illegible] धर्मोपदेश देते हुए चन्द्रावती पधारे। श्रीसंघ के अत्याग्रह से १०७८ का चातुर्मास वहां किया। आचार्यश्री के विराजने से उक्त नगर में जैन-धर्म का पर्याप्त उद्योत हुआ। [illegible] प्राग्वट वंश सम्मिलित कर दिया।

के उपदेश से सुचंति गौत्रीय शाह फागु ने भगवान् महावीर का मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया और मन्दिरजी के समीप ही पौषध, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक कृत्यों के लिये पौषधशाला भी डिड्डु गौत्रीय शा० अर्जुन ने वीतराग प्रणीत आगम-ज्ञान की भक्ति कर महा प्रभाविक श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में वंचवाया। उक्त शास्त्रोत्सव में एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। इस तरह उक्त चतुर्मास में आचार्यश्री के विराजने से जैनधर्म की महती प्रभावना हुई।

एक समय आचार्यश्री स्थण्डिल भूमि को पधार कर वापिस लौट रहे थे। इधर एक ओर से बहुत से अश्वारोही किसी अनिश्चित स्थान की ओर जारहे थे। मार्ग में परस्पर दोनों का समागम (मिलन) होगया। विचक्षण आचार्यश्री ने उन सैनिकों के बाह्य चिन्हों को देख कर ही यह अनुमान कर लिया कि ये अवश्य ही क्षत्रिय वंशोत्पन्न व्यक्ति हैं और आखेट (शिकार) के लिये वन की ओर जारहे है। सूरिजी का प्रभाव उनकी विद्वत्ता एवं आचार विचारों की निर्मलता के कारण पहिले से ही इत उत सर्वत्र प्रसरित था अतः आचार्यश्री के तपस्तेज का प्रभाव उन अश्वरोही सैनिकों पर भी तत्काल पड़ा। उन घुड़ सवारों में से प्रमुख व्यक्ति चौहान राव आभड़ ने घोड़े पर बैठे हुए सूरिजी को वंदन किया। सूरिजी ने धर्म लाभ देते हुए पूछा-रावजी! आज किधर जाना हो रहा है? रावजी ने कहा—महाराज! हम लोग तो सांसारिक मायाजाल एवं प्रपञ्चों में फंसे हुए पातकी जीव हैं और पाप के कार्य को ही लक्ष्यीभूत बना अपने मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

सूरिजी-रावजी! पाप का कटुफल भी तो आपको ही भोगना पड़ेगा न?

रा० आभड—हाँ, यह तो निश्चित एवं सर्वधर्म सम्मत निर्विवाद कथन है महात्मन्! पर किया ही क्या जाय? हम लोगों के लिये तो यह एक व्यसन ही होगया।

सूरिजी—यदि किसी सिंह को मनुष्य मारने का व्यसन पड़ जाय तो?

रा० आभड—तो क्या तत्काल ही उसे मौत के घाट उतारना चाहिये।

सूरिजी—तो उसी तरह फिर आपके लिये.................... ?

आचार्य देव के उक्त कथन का उत्तर देते न बना। रावजी ने एकदम मौनावलम्बन ले लिया। अतः सूरिजी ने पुनः अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया—

महानुभावो! जैसे आपको अपना जीवन प्यारा है वैसे ही सकल चराचर प्राणियों को अपने २ प्राण प्रिय हैं। भगवान् ने आचाराङ्ग सूत्र में कहा है कि—

"सव्वे सुह साया, दुह पडिकूला, अप्पिय वहा पिय जीविणो तम्हा णातिवाएज्ज किंचण" अर्थात् सुखेच्छा व सुख प्राप्ति जगज्जीवों के लिये अनुकूल है और दुःख सर्वथा प्रतिकूल है। जीवन सब को प्रिय है मरना सब को अप्रिय है अतः किसी भी जीव को मन, वचन काया से तकलीफ-यातना नहीं पहुँचानी चाहिये। क्योंकि—"सव्वे जीवावि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं" अर्थात् संसार के सकल प्राणी जीने की इच्छा करते हैं मरने की नहीं। अतः किसी भी प्राणी का वध करके पाप का भागी होना निश्चय ही दुःखप्रद है। दूसरी बात किसी मृत कलेवर का स्पर्श हो जाने पर तो आप लोग स्नान वगैरह से शुद्धि करते हो पर जीते हुए जीवों की घात करके उसका मांस भक्षण करने से आप लोगों की क्या गति होगी? आप जैसे वीर क्षत्रियों को यह शोभा नहीं देता है। भगवान रामचन्द्र, श्रीकृष्ण तथा महाबली पाण्डवों का रक्त आपकी नसों में निकल रहा है इसी वास्ते आप ऐसे जन-गर्हित कार्य को करने में भी अपनी बहादुरी समझते हो। अरे! आप लोगों के स्वास्थ्य के लिये तो कुदरती गुड़, शक्कर, घृत, मेवादि असंख्य पदार्थ वर्तमान हैं फिर बेचारे निरपराध मूक प्राणियों का वध करके पलभर के लिये पाप का भार क्यों लाद रहे हो?

इस प्रकार अहिंसा विषयक सूरिजी के लम्बे चौड़े वक्तव्य ने उन लोगों के ऊपर इतना प्रभाव डाला कि सब सवारों का हृदय दया से लबालब भर आया। आखिर क्षत्रिय तो क्षत्रिय ही थे। क्या उनके लिये कोई

बाहिर की वस्तु नहीं थी। केवल बुरी संगति के कारण दया पर पर्दा पड गया था सो आचार्य श्री के उपदेश से वह भी दूर होगया। उन सैनिकों के प्रमुख राव आभड़ ने कहा–गुरुदेव! आपका कहना अक्षरशः सत्य है और हम भी आज से ही शिकार और मांस, मदिरा का त्याग करते हैं। हम ही क्या ? पर हमारी संतान परम्परा भी अद्य-प्रभृति कभी भी मांस मदिरा का स्पर्श नहीं करेगी। राव आभड के सुदृढ़ वचनों को सुन कर सूरिजी ने कहा–रावजी! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे इतनी उम्मेद नहीं थी कि आप मेरा थोड़ा सा उपदेश श्रवण करके ही इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेंगे। खैर इस प्रतिज्ञा पालन के लिये कुसंगति का त्याग कर सुसंगति में रहना चाहिये।

रावजी! आप जानते हो कि यह मानव जन्म बड़ी ही कठिनाइयों से मिलता है। आत्म-कल्याण के लिये खास कर यह ही उपयोगी है। सिवाय मनुष्य-भव के अन्य भवों में [illegible] । अतः आपका भी कर्तव्य है कि आप लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्ति कर [illegible] करें।

रावजी की सूरिजी पर इतनी श्रद्धा होगई कि वे [illegible] थे। उनके हृदय में यह बात अच्छी तरह से जम गई कि सूरिजी निस्पृह और परोपकारी [illegible]। उनका कहना निस्वार्थ भाव से हमारे हित के लिये [illegible] कहा–गुरुदेव! [illegible] आत्म-कल्याण के कार्यों में समझते [illegible] करने को हम तैय्यार हैं। सूरिजी ने कहा– [illegible] करें जिससे आप लोगों का [illegible] और नगर से आकर करीब तीन सौ [illegible] उसी दिन से राव आभड़ आदि क्षत्रियों [illegible] सम्बन्ध प्रारम्भ होगया। रावजी [illegible] लघन के लाभ लेते थे और धर्म [illegible]

मन्दिर बनकर तैय्यार हो गया तब सूरिजी को बुलवाकर रावजी ने बड़े ही समारोह के साथ प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा के समारोह से इतर धर्मानुयायियों पर पवित्र जैन धर्म के संस्कारों का ऐसा सुदृढ़ प्रभाव पड़ा कि उन लोगों ने कई समय के मिथ्यात्व का वमन कर परम पावन जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया।

राव आभड़ की संतान ओसवंश मे आभड़ जाति के नाम से विख्यात हुई। इस जाति का वंशावलियों में बहुत विस्तार मिलता है पर मैं इनकी वंशावली संक्षिप्त रूप में ही उद्धृत करता हूँ-तथापि—
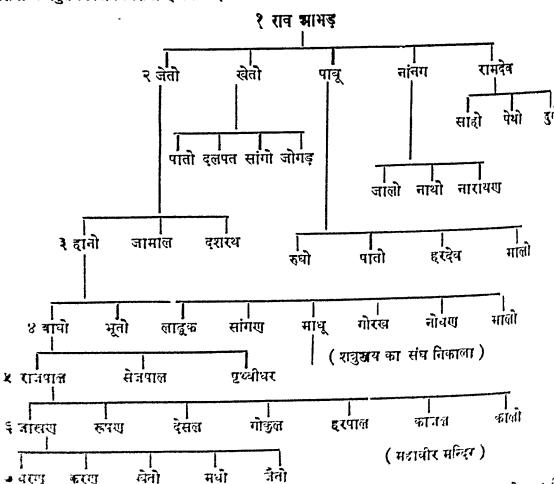
इसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति की वंश परम्परा की रूपरेखा पृथक् २ बतलाई जाय तब तो बहुत ही विस्तार हो जाता है। अतः ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से इसको इतना विशद रूप न देकर सामान्य रूप में नमूना के तौर ही लिखना हमारा ध्येय है। अपनी २ जाति के उत्कर्ष को चाहने वाले उत्साही व्यक्ति अपनी परम्परा का विशद इतिहास जन-समाज के सन्मुख प्रस्तुत रखकर जातीय उन्नति में हाथ बटावें। इस आभड़ जाति के उदार दानवीरों ने अनेक स्थानों पर जैन मन्दिर बनवाये। कई स्थानों में तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाले, कई दुष्कालों में स्थल २ पर दानशालाएं उद्घाटित की इत्यादि अनेक शासन-प्रभावक कार्य किये जिनका [illegible] लिखा जाय तो निश्चित ही एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जाता है। मैं केवल मेरे पास आई हुई [illegible] के [illegible] कार्यों की नोंध लगाकर यहां [illegible] लिख देता हूँ।

न्त्रित किया पर मथुरा के जैन भी इतने कमजोर नहीं थे जो उनकी शृगाल भभकियों से सहज ही में डर जावें। आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज का विराजना तो निश्चित ही उनके उत्साह का वर्धक था। अतः उन्होंने निशंक उनके आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। बेचारे वादियों के पास जैन ईश्वर एवं वेद को नहीं मानने वाला एक नास्तिक मत है। परम्परागत इस मिथ्या प्रलाप के सिवाय और बोलने का ही क्या था? पर आचार्य कक्कसूरि ने सभा के बीच प्रबल प्रमाणों और अकाट्य युक्तियों द्वारा यह साबित कर बतलाया कि जैन कट्टर आस्तिक एवं सच्चिदानंद वीतराग सर्वज्ञ को मानने वाले ईश्वर भक्त हैं। पर सृष्टि का कर्ता, हर्ता एवं जीवों के पाप पुण्य के फल को देने दिलाने वाला नहीं मानते हैं। इस प्रकार न मानना भी युक्ति सङ्गत एवं प्रमाणोपेत है। असली वेदों को मानने के लिये तो जैन इन्कार करते ही नहीं हैं और पशु हिंसा रूप वेदों को मानने के लिये जैन तो क्या पर समझदार अजैन भी तैय्यार नहीं है। आचार्यश्री के प्रमाणों से सकल जनता हर्षित हो जय ध्वनि बोलती हुई विसर्जित होगई। इस तरह शास्त्रार्थ में विजयमाला जैनियों के कण्ठ में ही शोभायमान हुई। जैनधर्म का तो इतना प्रभाव बढ़ा कि कई अजैन व्यक्तियों ने आचार्यश्री की सेवा में जैनधर्म को स्वीकार कर परम्परा के मिथ्यात्व का त्याग किया।

एक दिन सूरिजी ने तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि का महत्व बतलाते हुए पूर्व-प्रान्त स्थित सम्मेतशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी के रूप २२ तीर्थंकरों की निर्वाण भूमिका प्रभावोत्पादक वर्णन किया। जन समुदाय पर आपके ओजस्वी व्याख्यान का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। परिणाम-स्वरूप बप्पनाग गौत्रीय नाहटा शाखा के सुश्रावक श्री आसल ने आचार्यश्री के उपदेश से प्रभावित हो चतुर्विध संघ के सम्मुख प्रार्थना की कि मेरी इच्छा पूर्व प्रान्तीय तीर्थों के यात्रार्थ संघ निकालने की है। यदि श्रीसंघ मुझे आदेश प्रदान करे तो मैं अत्यन्त कृतार्थ होऊंगा। श्रीसंघ ने भी सहर्ष धन्यवाद के साथ आसल को संघ निकालने के लिये आज्ञा प्रदान करदी। श्रीसंघ के आदेश को प्राप्तकर आसल ने सब तरह की तैय्यारियां करना प्रारम्भ कर दिया। सुदूर प्रान्तों में आमंत्रण पत्रिकाएं भेजी व मुनिराजों की प्रार्थना के लिये स्थान २ पर मनुष्यों को भेजा। निर्दिष्ट तिथि पर संघ में जाने के इच्छुक व्यक्ति निर्दिष्ट स्थान पर एकत्रित हो गये। वि० सं० १०८६ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन सूरिजी की नायकता और आसल के संघपतित्व में संघ ने तीर्थयात्रार्थ प्रस्थान किया। मार्ग के तीर्थस्थानों की यात्रा करता हुआ संघ क्रमशः सम्मेतशिखर पहुँचा। बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों की सेवा पूजा यात्रा कर सब ने अपना अहोभाग्य समझा। वहां पर पूजा, प्रभावना, स्वामीवात्सल्य अष्टान्हिका महोत्सव एवं ध्वजारोहण आदि प्रभावनावर्धक, सुकृतोपार्जक कार्य कर अक्षय पुण्य राशि का अर्जन किया। पश्चात् वहां से विहार कर संघने चम्पापुरी और पावापुरी की यात्रा की। राजगृह आदि विशाल क्षेत्रों का स्पर्शन कर संघ ने कलिंग की ओर प्रस्थान किया। वहां कुमार, कुमरी (शत्रुञ्जय, गिरनार) अवतार की यात्रा की। इस प्रकार अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा के पश्चात् आचार्य कक्कसूरि ने अपने मुनियों के साथ पूर्व की ओर विहार किया। आचार्य सर्वदेवसूरि के अध्यक्षत्व में संघ पुनः मथुरा पहुँच गया। इधर सूरिजी का पूर्वीय प्रान्तों की ओर परिभ्रमन होने से जैनधर्म का काफी उद्योत एवं प्रचार हुआ। आचार्यश्री का एक चतुर्मास पाटलीपुत्र में हुआ पश्चात् सम्मेत शिखरजी की यात्रा कर आप आस पास के प्रदेशों में धर्मोपदेश करते हुए वहीं पर पांच

१ इस लेख से पाया जाता है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी पर्यन्त तो पूर्व की ओर व कलिंग प्रान्त में जैनों का सर्वत्र प्रचार था। कलिंग देश की उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ियों पर प्राप्त विक्रम की दसवीं शताब्दी व ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेखों से पाया जाता है कि विक्रम की दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी पर्यन्त जैनियों का अस्तित्व रहा है। [illegible] शताब्दी में कलिंग देश पर सूर्यवंशीय [illegible] नामक जैन राजा का शासन था। [illegible] जैन हो, यह तो प्रकृति सिद्ध स्वाभाविक ही है।

कर अत्याग्रह से उपकेशपुर में स्थिरवास करने की प्रार्थना की। सूरिजी ने अपने शरीर की हालत देख तथा लाभालाभ का विचार वि० सं० ११०५ का चातुर्मास उपकेशपुर में वहीं स्थिरवास कर दिया। आपके पास यों तो बहुत से मुनि रहते थे पर उनमें देवचन्द्रोपाध्याय नामक एक शिष्य सर्वगुण सम्पन्न, स्वतंत्र शासन चलाने में समर्थ था। सूरिजी का उस पर पहले ही विश्वास था फिर भी विशेष निश्चय के लिये देवी सचायिका की सम्मति ले ली। उचित परामर्शानन्तर सूरिजी ने अन्तिम समय में चिंचट गौत्रीय देसरड़ा शाखा के शा० जैकरण के द्वारा सत्त लक्ष द्रव्य व्यय कर किये गये अष्टान्हिका महोत्सव के साथ भगवान् महावीर के मन्दिर मे चतुर्विध श्री संघ के समक्ष उपाध्याय देवचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया। बस, आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० गच्छ चिन्ता से विमुक्त हो अन्तिम संलेखना में संलग्न हो गये अन्त में २१ दिन के अनशन पूर्वक समाधि के साथ आपश्री ने देह त्याग कर सुरलोक में पदार्पण किया।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी म० महान प्रभावक आचार्य हुए। आप २१ वर्ष पर्यन्त गृहवास में रहे ३४ वर्ष सामान्य व्रत और ३४ वर्ष तक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो ८९ वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया। वि० सं० ११०८ के चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य कक्कसूरिजी के पूर्व क्या वीर सन्तानिये और क्या पार्श्वनाथ सन्तानिये, क्या चैत्यवासी सुविहित और क्या शिथिलाचारी अनेक गच्छों के होने पर भी सब एक रूप हो शासन की सेवा करते थे। सिद्धान्त भेद, क्रिया भेद, विचार भेदादि का विविध २ गच्छों में विभिन्नत्व नहीं था। एक दूसरे को नीचा दिखलाने रूप नीच कार्य ने किसी के हृदय में जन्म नहीं लिया। यही कारण था कि उस समय पर्यन्त जैनियों की संगठित शक्ति सुदृढ़ थी।

धर्मवीर भैंसाशाह और गदइया जाति—डिड्डूपुर-डिडवाना नामक एक अच्छा आबाद नगर था। वहाँ पर महाजनों की घनी आबादी थी डिडवाना निवासी अच्छे धनाढ्य एवं व्यापारी थे। उक्त व्यापारी समाज में आदित्यनाग गौत्रिय चोरड़िया जाति के प्रसिद्ध व्यापारी एवं प्रतिष्ठित साहूकार श्री भैंसाशाह के नाम के धन वैश्रमण भी निवास करते थे। आप जैसे सम्पत्तिशाली थे वैसे उदारता में भी अनन्य थे। आपने धर्म एवं पुण्यों के कार्य में लाखों ही नहीं पर करोड़ों रुपयों का सदुपयोग कर कल्याणकारी पुण्योपार्जन किया। स्वधर्मी बन्धुओं की ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता था। जहाँ कहीं उन्हें किसी जैन बन्धुओं की दयनीय स्थिति के विषय में ज्ञात हुआ वहीं तत्काल समयोपयोगी सहायता पहुँचाकर उसकी दैन्य स्थिति का अपहरण किया। इस प्रकार के धार्मिक कार्यों मे आपको विशेष दिलचस्पी थी और इसीमे आप धर्म सम्बन्धी प्रत्येक कार्य मे अग्रगण्य व्यक्तित्व लाखों रुपया व्यय कर परमोत्साह पूर्वक भाग लिया करते थे। तीर्थयात्रार्थ पांच बार संघ निकाल कर आपने संघ मे आगत स्वधर्मी बन्धुओं को स्वर्णमुद्रिकाओं की प्रभावना दी। कई बार संघ को अपने घर पर आमन्त्रित कर तन, मन, धन से संघ पूजा की। यों तो आप प्रकृति के परम भद्रिक एवं सबके साथ स्नेह पूर्ण वात्सल्यभाव रखने वाले सज्जन एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे पर वप्पनाग गौत्री श्रीश्वर गधाशाह के साथ आपका विशेष धर्मानुराग था। धर्म कार्य एवं अन्य सर्व सामान्य कार्यों में दोनों का सहकार एक दूसरे को सविशेष सहयोगप्रद था। किसी समय दुर्दैव वशात् गधाशाह की स्थिति अत्यन्त नरम हो गई उस समय भैंसाशाह ने आपको अच्छी सहायता प्रदान कर अपनी समानता सा बना लिया। वि० सम्वत् [illegible] में जब एक भीषण जन संहारक दुष्काल पड़ा था—भैंसाशाह ने लाखों रुपये व्यय कर दुष्काल को सुकाल बना दिया। भैंसाशाह और गधाशाह के नाम भले ही पशुओं जैसे हों पर इन दोनों महापुरुषों के [illegible] में भी प्रसिद्ध थे।

[illegible] है। ज्ञानियों ने बारम्बार फरमाया है कि संसार असार है, [illegible]

भैंसाशाह—यदि जमा होगी तो भी उस जमा को उठाना मेरा कर्तव्य नहीं है। पूर्व की जमा बची होगी तो उसे यों ही रहने दीजिये।

गधाशाह ने कई प्रकार से प्रयत्न किया पर भैंसाशाह ने उनकी एक भी बात को स्वीकार नहीं की। उन्होंने तो स्वोपार्जित कर्मों को इसी तरह भोगकर उनसे मुक्त होना ही समुचित समझा। एक गधाशाह ही नहीं पर बहुत से व्यक्ति भैंसाशाह की मेहरवानी से सम्पत्तिशाली बने थे अतः अपने कर्तव्य ऋण को अदा करने के लिये उन सबो ने उनसे प्रार्थना की व भैंसाशाह के सुसुराल वालो ने भी भिन्नमाल पधार जाने के लिये प्रयत्न किया पर भैंसाशाह ने किसी की भी नहीं सुनी।

एक समय गधाशाह भैंसाशाह के मकान पर गया। समय रात्रि का था। जब भैंसाशाह किसी भी तरह सहायता लेने को बाध्य न हुए तब गधाशाह ने गुप्त रीति से भैंसाशाह के घर पर एक बहुमूल्य गहना छोड़ दिया। प्रातःकाल होते ही गहने को अपने घर में पड़ा हुआ देख भैंसाशाह के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वे सोचने लगे कि यह आभूषण मेरा तो नहीं है। शायद किसी सज्जन पुरुष ने मेरी हालत को देखकर मेरी सहायतार्थ डाला है पर विना अधिकार का द्रव्य मैं काम मे कैसे ले सकता हूँ। बस, उन्होंने नगर भर में उद्घोषणा करवादी कि जिसका गहना हो वह ले जावे अन्यथा मैं मन्दिरजी में अर्पण कर दूंगा। गधाशाह जानते थे कि जेवर मेरा है। पर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। गधाशाह के सिवाय उस गहने का कोई दूसरा मालिक तो था ही नहीं तब दूसरा बोल भी कौन सकता था? उद्घोषणानन्तर भी उसकी मालकियत ज्ञात न हुई तो भैंसाशाह ने अधिकार विना के द्रव्य का उपभोग करना अनुचित समझ कर उसे मन्दिरजी में अर्पित कर दिया।

हम पूर्व लिख आये हैं कि जैन धर्म की मुख्य मान्यता निश्चय पर थी। निश्चय को आधार बना लेने वाले व्यक्ति के हृदय में चिन्ता व आर्त-ध्यान स्थान कर ही नहीं सकता है। धर्मवीर भैंसाशाह भी निश्चय पर अडिग थे और उन्होंने उत्कृष्ट परिणामों की तीव्र धारा में अपने पूर्वोपार्जित निकाचित कर्मों की इस प्रकार निर्जरा कर डाली कि अब उनके कोई अशुभ कर्मोदय अवशिष्ट रहा ही नहीं। अब तो पुण्य की प्रबलता किसी शुभ निमित्त की राह देख रही थी।

इधर परमोपकारी, लब्धिपात्र, करुणासागर आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज ने भूभ्रमन करते हुए डिड्वाना की ओर पदार्पण किया। जब आचार्यश्री के पदार्पण के समाचार श्रीसंघ को ज्ञात हुए तो उनके हृदय में सूरीश्वरजी के पदार्पण के समाचारों से अभूत पूर्व हर्ष का सञ्चार हुआ। श्रीसंघ ने क्रमशः सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह पूर्वक किया। गधाशाह ने सवालक्ष रुपये व्यय कर सूरिजी की उत्साहपूर्वक भक्ति की। पर भैंसाशाह की निर्मल अन्तःकरण पूर्वक कीगई परम श्रद्धापूर्ण भक्ति से आचार्यश्री बड़े प्रसन्न थे। सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर डिडवाने में मासकल्प पर्यन्त स्थिरता की। [illegible] की शुभंकर अवधि में सूरीश्वरजी का शिष्य समुदाय भिक्षार्थ हमेशा नगर में जाता था पर भैंसाशाह के [illegible] अन्तराय थी कि उनके यहां एक दिन भी भिक्षार्थ मुनिराजों का शुभागमन न हो सका। शाह को इस बात का बड़ा रंज था पर वे क्या कर सकते थे? अन्यथा कहा मासकल्प के अन्तिम दिन दैवानुयोग [illegible] के लिये स्वयं सूरिजी पधारे। भैंसाशाह ने अपने यहां आने के लिये आचार्यश्री को बहुत ही आग्रह किया [illegible] सूरिजी भी [illegible] गये। सुपात्र का अनुकूल संयोग मिलने पर भी भैंसाशाह के पास [illegible] भैंसाशाह [illegible] के पात्रों में डालने के लिये क्या था? केवल बाजरी के सोगरे और गवार की फली। भैंसाशाह [illegible] वस्तुओं को देने में [illegible] तो बहुत ही सङ्कुचित हुए फिर भी अन्य योग्य वस्तु के अभाव [illegible] [illegible] उत्कृष्ट भावना से पात्र में अर्पित किया। यद्यपि आहार सामान्य था पर [illegible] [illegible] ने उसमें किञ्चित् भी सामान्यता या न्यूनता नहीं आने दी सूरिजी भी उनकी [illegible]

मुनियों को योग्य पदवियाँ प्रदान की। मुनि देवभद्र को सूरि योग्य सकल गुणों से सुशोभित देखकर उन्हें सूरि पदार्पण किया। परम्परागत नामावली के अनुसार आपका नाम श्री देवगुप्तसूरि रख दिया। इसके सिवाय-ज्ञान कल्लोलादि सात मुनियों को उपाध्याय पद, हर्षवर्द्धनादि ७ मुनियों को गणिपद, देवसुन्दरादि नवमुनियों को वाचनाचार्य, शांति कुशलादि ग्यारह मुनियों को पण्डित पद से विभूषित किया। इस शुभ कार्य में भैंसाशाह ने ग्यारह लक्ष द्रव्य व्यय कर कल्याणकारी पुण्योपार्जन किया।

पूज्याचार्य देव के ३४ वर्षों के शासन में मुमुक्षुओं की दीक्षाएँ

१—क्षत्रीपुर	के	डिड्डूगौत्र	जाति के	शाह	कल्हण ने	सूरिजी की सेवा में दीक्षाली
२—राजपुर	के	देसरड़ा	”	”	डूगर ने	”
३—मेदिनीपुर	के	नक्षत्र	”	”	पद्मा ने	”
४—कुर्चूरपुर	के	सिंघवी	”	”	देवा ने	”
५—भोभारी	के	बोहरा	”	”	कुम्भा ने	”
६—ब्रह्मपुरी	के	पोकरणा	”	”	रोड़ा ने	”
७—कांतिपुर	के	रांका	”	”	भाखर ने	”
८—उपकेशपुर	के	चीला	”	”	वरधा ने	”
९—नागपुर	के	गुलेच्छा	”	”	चपसी ने	”
१०—शंखपुर	के	जांघडा	”	”	दूधा ने	”
११—कोरंटपुर	के	सुरवा	”	”	धन्ना ने	”
१२—पाल्हिका	के	भुरंट	”	”	भाला ने	”
१३—डांगीपुर	के	संचेती	”	”	नारायण ने	”
१४—पासोली	के	मादलिया	”	”	जैता ने	”
१५—भानापुर	के	चंडालिया	”	”	करमण ने	”
१६—आघाट नगर	के	चौमुहला	”	”	साहरण ने	”
१७—मोकलपुर	के	काजलिया	”	”	छाजू ने	”
१८—जाबलीपुर	के	तोडियाणी	”	”	मल्हा ने	”
१९—पद्मावती	के	श्रेष्टि	”	”	गुणाढ़ ने	”
२०—दशपुर	के	वाफणा	”	”	खेमा ने	”
२१—चित्रकोट	के	संखाणी	”	”	चेला ने	”
२२—माडवगढ़	के	पाल्लीवाल	”	”	जोगड़ ने	”
२३—उज्जैन	के	प्राग्वट वंश	”	”	मल्ला ने	”
२४—भरोंच	के	” ”	”	”	माना ने	”
२५—लखनपुर	के	” ”	”	”	हाप्पा ने	”
२६—सोपार	के	” ”	”	”	हरपाल ने	”
२७—[illegible]	के	” ”	”	”	भादू ने	”
२८—दान्तापुर	के	श्रीमाल वंश	”	”	पोमा ने	”
२९—चन्दनपुर	के	” ”	”	”	अर्जुन ने	”
३०—[illegible]	के	” ”	”	”	नागदेव ने	”
३१—ईडर	के	” ”	”	”	वीरम ने	”

४—जावलीपुर के भूरंट कर्मा ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला
५—चन्द्रावती के संचेती हरपाल ने " "
६—चित्रकोट के प्राग्वट माला ने " "
७—सोपरपट्टन के श्रीमाल खंगार ने " "
८—मथुरा के सालेचा नापा ने " "
९—धौलागढ़ के छाजेड़ दुल्ला ने " "
१०—पाल्हिका के श्रीश्रीमाल पोकर ने " "
११—वीरपुर के आर्य्य साहूने " "
१२—कोरंटपुर के कुम्भट पन्ना ने " "
१३—उज्जैन के रांका सुखा ने " "
१४—दांतीपुर के श्रीश्रीमाल नाथा ने दुकाल में करोड़ों द्रव्य व्यय कर अन्न घास दिया।
१५—विणापुर के पोकरणा वखता ने दुकाल में पुष्कल द्रव्य व्यय कर भाईयों के प्राण बचाये।
१६—खेड़ीपुर के महता नहारसिंह युद्ध में काम आया उसकी पत्नी सती हुई छत्री कराई।
१७—चन्द्रावती के प्राग्वट दूधो युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई।
१८—राजपुर के श्रीश्रीमाल मालदेव " " "
१९—नागपुर के गुलेच्छा समरथ " " "
२०—पलासी के प्राग्वट रामो " " "
२१—भलासणी के आर्य घरमा की पुत्री मारी ने तालाव खुदाया जिण में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।
२२—चंदपुर के छाजेड़ मैरा की माता ने वावड़ी बनाई " " "।
२३—अर्जनपुरी के समदड़िया गौरा ने एक तालाव एक कुआ बनाया " " "।

इनके अलावा भी सूरिजी के शासन में अनेक शुभ कार्य हुए जिनके विस्तृत उल्लेख वंशावलियों में मिलते हैं। पर स्थानाभाव यहाँ नमूना मात्र बतलाया है।

बप्पनाग नाहटा जाति, जिनके वीर शिरोमणि थे।
आठ चालीस वे पट्ट विराजे, कक्कसूरीश सुरमणि थे॥
भैंसाशाह का कष्ट मिटाया, कंडा सुवर्ण बनाया था।
सिक्का चलाया वीर भैंसा ने, जिससे गदिया पद पाया था॥

इति भगवान पार्श्वनाथ के अडचालीसवें पट्टपर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए।

भाग्यशाली था पद्मा शाह का चोखा पर अत्यन्त अनुराग था। पितृ भक्त चोखा भी अपने पिताजी के हरएक कार्य में सहयोग प्रदान कर उनकी हर तरह से सेवा किया करता था। जब चोखा की वय क्रमशः बीस वर्ष की हुई तो उसी नगर के भाद्र गौत्रीय समदड़िया शाखा के शाह गोसल की सुपुत्री, सर्व कलाकोविद रूपगुण सम्पन्ना 'रोली' के साथ सम्बन्ध (सगपण) हो गया था अब तो वय की अनुकूलता के कारण विवाह की भी समारोह पूर्वक तैय्यारियाँ होने लगी।

इधर परम प्रभावक, शासन उद्योतक आचार्यश्री ककसूरिजी महाराजने भी अपने शिष्य समुदाय के साथ डामरेलपुर की ओर पदार्पण किया। जब ये शुभ समाचार वहां के श्रीसंघ को मिले तो उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उन्होंने बड़े ही समारोह पूर्वक सूरिजी के नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी ने भी स्वागतार्थ आगत जन मण्डली को धर्मोपदेश देकर उन्हें कृतकृत्य किया जिससे उपस्थित जन-समुदाय पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। व्याख्यान क्रम तो आचार्य देव का नित्य नियम की भांति सर्वदा प्रारम्भ ही था। प्रसङ्गोपात एक दिन के व्याख्यान मे नरक निगोदो का वर्णन चल पड़ा। उनके दुःखो का वर्णन करते हुए नारकीय जीवन का शास्त्र वर्णित ऐसा वास्तविक चित्र खेंचा कि श्रोता वर्ग एक दम वैराग्य की अपूर्व धारा में बहने लगे। संसार भय से उद्विग्न मनुष्यो का हृदय व्याख्यान श्रवण से भयभीत एवं कम्पित होने लग गया। वे लोग भविष्य कालीन इस प्रकार के दुःखों से विमुक्त होने के लिगे प्रयत्न करने लगे। संविग्न जन मण्डली को एक क्षण भी संसार में रहना अच्छा नहीं लगने लगा।

पुण्यानुयोग से उस दिन शाह पद्मा का सारा कुटुम्ब भी व्याख्यान में उपस्थित था। परम श्रद्धालु धर्म प्रेमी पद्मात्मज चोखा ने भी आचार्यश्री का व्याख्यान बहुत ध्यान लगाकर सुना था। उसके हृदय में तो सूरिजी के शास्त्रीय वर्णन से आत्म-कल्याण की उत्कट भावनाएं जागृत होगई। वह रह रह कर सोचने लगा कि इस जीव ने पुराकृत पापपुञ्ज के आधिक्य से अनन्तवार नरक निगोद के असह्य दुःखों को भी सहन किया है। वर्तमान समय मे एतन् सम्बन्धी दुःख राशि से विमुक्त होने के लिये हमें सब साधन भी यथावत उपलब्ध हैं। केवल विषय कषाय की प्रबलता के कारण ही इसका दुरुपयोग किया जारहा है। अरे! नरक निगोद के असह्य दुःखो से स्वतत्र होने के लिये तो हमे यह स्वर्णोपम समय मिला है और उसमें भी यदि दुःखों की वृद्धि के ही विषम कार्य किये जॉय तो दुःख से मुक्त होने के सफल उपाय ही क्या है? आचार्य देव का कथन तो सर्वथा सत्य है कि दुःखो से विमुक्त होने की इच्छा रखने वाले भव्यों को दुःख मय असार संसार का त्याग कर दीक्षा स्वीकृत करलेनी चाहिये। बस, कुमार चोखा की भावना सूरिजी के पास दीक्षा लेने की होगई। व्याख्यान समाप्त्यनंतर वह तत्काल ही अपने घर गया और अपने माता पिता से कहने लगा कि यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं दीक्षा स्वीकार करना चाहता हूँ। प्यारे पुत्र के संसार से विरक्त दु [illegible] को सुनकर माता [illegible] को मूर्छितावस्था प्राप्त होगई। जब जलवायु के उपचार से उसे सावधान किया गया तो वह नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित करने लगी। वह रोती हुई ही बोली—बेटा! तेरा यह शब्द मुझे [illegible] हृदय विदारक मालूम होता है। यदि तू मुझे जीवित अवस्था में ही देखना चाहता है तो [illegible] कभी भी अब से ऐसे शब्द मत निकालना। शाह पद्मा ने कहा बेटा! यह तो तुम्हें अच्छी तरह से मालूम है कि तुम्हारी सगाई कब से ही करदी गई है। दो मास के पश्चात् तो तेरी शादी का शुभ मुहूर्त है अतः [illegible] व्यर्थ ही में हंसी हो, ऐसे अप्रासङ्गिक शब्दों को निकालना तुम्हें उचित नहीं है। बेटा! तेरी सास ([illegible] साथ वाग्दान-सम्बन्ध हुआ उसको) दूसरा कोई परणे यह हमारी प्रतिष्ठा से विरुद्ध [illegible] [illegible] है अतः तुमको अपनी इज्जत एवं खानदान का भी विचार करना चाहिये। [illegible] मे तुम्हें [illegible] स्वीकार करने की आज्ञा कभी भी प्रदान नहीं करूंगा। इस तरह चोखा एवं [illegible] के [illegible] उसको पुन [illegible] का अनुकूल [illegible] प्रयत्नों से पर्याप्त परिश्रम किया

गया पर वैराग्य रञ्जित स्वान्त चोखा पर ससार वर्धक, मोहोत्पादक वचनों का किञ्चित् भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इधर जमाई चोखा के वैराग्य के समाचारों को चोखा के श्वसुर शा० गोसल ने सुना तो वे आश्चर्य चकित हो गये। वे नाना प्रकार के विचारसागर मे गोते खाने लगे और रह रह कर उनको [illegible] भावनाएं सताने लगी कि जमाई चोखा यदि दीक्षा के लिये उद्यत है तो मैं मेरी प्रिय पुत्री का विवाह इस हालत में उनके साथ कैसे कर सकता हू ? असमंजस मे पड़े हुए शा० गोसल ने उक्त सकल समाचार अपनी [illegible] से कहे, इस पर सकल कुटुम्ब परिवार मे बड़ी भारी हलचल मच गई। जब श्रेष्ठि सुता [illegible] ने सुना कि जिसके [illegible] मेरा भावी सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है, वे असार ससार से विरक्त हो दीक्षा लेने को तैयार हो गये हैं तो उसके आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वह चिन्तामग्न हो विचारने लगी कि [illegible] चाहिए। निदान अनेक तर्क वितर्कों के पश्चात् उसने यह निश्चय किया कि [illegible] से अपना जीवन अर्पण कर चुकी हूँ तो इस भव मे वे ही मेरे जीवनाधार [illegible] भावना से दीक्षा स्वीकार करेंगे तो मैं भी [illegible] आत्म कल्याण के मार्ग मे सलग्न हो जाऊंगी। [illegible] नहीं की थी ? दीक्षा तो निश्चित [illegible] व्यक्तियों से प्राप्त भी है। इस प्रकार [illegible] होने लग गया।

दूसरा पति कदापि नहीं करूंगी।" गोशल शाह अपनी पुत्री के उक्त दृढ़ संकल्प को सुन कर पुत्री का लग्न शाह पद्मा के आत्मज कुंवर चोखा के साथ मे जल्दी से ही करने को तैय्यार होगये। उन्होंने शा० पद्मा के यहां कहला दिया कि मैं आपके आदेशानुसार जल्दी ही लग्न करने को तैय्यार हूँ और आप भी अपनी ओर से जल्दी ही तैय्यारी कीजिये। बस, दोनों ओर से विवाह की जोरदार तैय्यारियां होने लगी। चोखा की आन्तरिक इच्छा विवाह करने की नहीं थी पर माता पिता के दबाव एवं लिहाज से ही उसने ऐसा करना स्वीकार किया। क्रमशः शुभ तिथि मुहूर्त मे विवाह का कार्य भी सानंद सम्पन्न होगया। जब प्रथम रात्रि में कुंवर चोखा अपनी पत्नी के महल मे गया तो वहां योगीश्वर की भांति परमनिवृत्ति पूर्वक ही बैठ गया। राग, रंग एवं भोग-विलास सम्बन्धी साधनों के पूर्ण अभाव को देख कर कुंवरी रोली ने लज्जा त्याग कहा—

पूज्यवर! मैंने सुना है कि आप दीक्षा लेने वाले हैं।

चोखा—हां, मेरी इच्छा दीक्षा लेने की थी और अब भी उसी रूप मे है।

रोली—तो फिर आपने विवाह ही क्यों किया?

चोखा—विवाह करने की आन्तरिक इच्छा के न होने पर भी माता पिता के लिहाज के कारण विवश, मुझे ऐसा करना पड़ा।

रोली—यह सत्य है कि आप माता पिता के लिहाज मात्र से ही इस ओर प्रेरित हुए होंगे पर इस मिथ्या लिहाज के वशीभूत हो एक बाला के जीवन को धोखे मे डालना आपको शोभा देता है? यदि आपका दृष्ट किसी के लिहाज से बिना इच्छा के ही कार्य करने का है तो थोड़ी लिहाज मेरी भी रखिये मैं आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि आप कुछ अर्से तक संसार में रह कर मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये। कुछ अर्से के पश्चात् मैं भी आपके साथ दीक्षा स्वीकार कर लूंगी।

चोखा—जब आपकी अन्तिम इच्छा भी दीक्षा लेने की है तब फिर थोड़े दिनों पर्यन्त संसार में रहने से क्या फायदा है? संसार तो महान् दुःखो की खान है। सिवाय कर्म बंध के इसमें कुछ लाभ तो है ही नहीं। दूसरा थोड़े दिनों का विश्वास भी तो नहीं किया जासकता है कारण न मालूम कालचक्र किस दिन, किस समय कण्ठ पकड़ कर अपने घर ले जायगा। अतः मेरी सलाह है कि आप भी जल्दी कीजिये जैसा कि शालिभद्रजी के बहनोई और बहिन ने किया था।

रोली अपने मन में अच्छी तरह से समझ गई कि आपके हृदय मे दीक्षा का पक्का रंग लगा हुआ है। किसी भी तरह वे अपने कृत निश्चय से चलविचल नहीं हो सकते हैं अतः उसने भी उनके निश्चय में सहर्ष अपनी सम्मति देदी और उनके साथ ही दीक्षा के लिये तैयार हो कहने लगी-आप अब निश्चिन्त हो दीक्षा स्वीकार कर सकते हैं। मैं भी आपके ही पथ का अनुसरण कर अपने आपको सौभाग्यशाली बनाऊंगी। आप मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें।

चोखा—धन्य है आपको और आपकी माता की कुक्षि को। आपका निश्चय निश्चित ही सराहनीय एवं अनुकरणीय है। मुझे यह आशा नहीं थी कि आप सहज ही में मेरे निर्दिष्ट निश्चय मे सहयोग प्रदान कर इस तरह आत्मकल्याण के मार्ग में सहसा उद्यत हो जावेंगे। मैं, आपके द्वारा कृत निश्चय का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

इस प्रकार दम्पति का एक दिल से दीक्षा लेने का निश्चय होगया। फिर तो था ही क्या? अभी लग्न ही स्वर किया तो देने की ही थी पर प्रातःकाल में सर्वत्र नगर में यह बात बिजली की भांति फैल गई कि कुंवर चोखा ने एक ही रात्रि में अपनी पत्नी को उपदेश देकर दीक्षा के लिये तैय्यार करदी। अब तो वे निकट भविष्य में ही दीक्षा स्वीकार कर लेंगे। जिन्होंने यह बात सुनी उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। ठीक है बात भी आश्चर्य करने काबिल थी कारण, यह तो एक दूसरा ही जम्बुकुमार निकला।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने भैंसाशाह के अत्याग्रह से वह चातुर्मास भिन्नमाल नगर में कर दिया। शाह भैंसा ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर आगम-महोत्सव किया और व्याख्यान में महाप्रभावक श्रीभगवतीसूत्र वचवाया। शाह की माता ने गुरु गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गये ३६००० प्रश्नों की ३६००० स्वर्ण मुद्रिकाओं से परम श्रद्धापूर्वक अर्चना की। इस प्रकार आपके चातुर्मास में धर्म का बहुत ही उद्योत हुआ।

धर्मवीर भैंसाशाह की धर्मनिष्ठा माता की कई दिनों से यह भावना थी कि यदि गुरु महाराज का शुभ संयोग मिल जाय तो परम पावन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा के लिये संघ निकाल कर यात्रा की जाय, क्योंकि अब उनकी अत्यन्त वृद्धावस्था हो चुकी थी और काल का क्या पता कि वह किस वक्त आकर के अचानक हमला करदे। वे अपने मनोरथसिद्धि की इन्तजारी कर रही थी कि उनके प्रबल भाग्योदय से सूरिजी का चातुर्मास वहीं होगया। हस्तागत इस अमूल्य स्वर्णावसर का सविशेष सदुपयोग करने के लिये धर्मिष्ठा माता ने अपने परमप्रिय पुत्र भैंसाशाह से एतद्विषयक परामर्श किया। भैंसाशाह जैसे धर्मानुरागी पुरुष ऐसे पुण्योपार्जक कार्यों के लिये इन्कार हो ही कैसे सकते थे ? अपने मातेश्वरीजी के इन परमादेय वचनों को सहर्ष स्वीकार करते हुए उनकी इस उत्तम भावना के लिये भैंसाशाह ने हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की और समारोह पूर्वक शत्रुञ्जय की यात्रा के लिये विशाल संघ निकालने की अनुमति देदी। अब भैंसाशाह की ओर से संघ के लिये विपुल तैय्यारियां होने लगी। निर्दिष्ट समय पर चतुर्विध संघ विशाल संख्या में निर्दिष्ट स्थान पर एकत्रित होगया। आचार्यश्री के द्वारा बतलाये हुए शुभ मुहूर्त में संघ ने तीर्थाधिराज की ओर प्रस्थान कर दिया परन्तु किन्हीं खास कारणों से भैंसाशाह का संघ में जाना न होसका। माता ने पूछा-परम प्रिय वत्स! यदि मार्ग में कहीं खर्च के लिये रकम की आवश्यकता पड़ जाय तो उसके लिये कोई ऐसा समुचित उपाय तो होना ही चाहिये जिससे कठिनाई का सामना न करना पड़े। यद्यपि मार्ग व्यय के लिये मेरे पास रकम कम नहीं है पर प्रसङ्गतः किसी कारण विशेष से हमें विशेष जरुरत ज्ञात पड़े तो क्या किया जायगा ? पुत्र ने उत्तर दिया—माताजी जहाँ आपको आवश्यकता दृष्टिगोचर हो वहां मेरे नाम से रकम ले सकती हो, मेरे नाम से रकम देने में कोई भी आपको इन्कार नहीं करेगा। फिर भी कर्तव्यशील भैंसाशाह ने अपनी मां को विश्वास दिलाने के लिये एक डिबिया में अपनी मूछ का बाल डालकर उसे भली प्रकार से पेकिंग कर अपनी माताजी को दिया और कहा—यदि आपको आवश्यकता पड़े तो इस डिबिया को गिरवे (बंधक) रख कर, जितनी आवश्यकता हो उतनी रकम ले लेना परन्तु मार्ग में किसी भी तरह से खर्च करने में संकीर्णता-कृपणता न करना। उदार हृदय से इच्छानुकूल द्रव्य का सदुपयोग कर खूब लाभ लेना। इतना कह कर भैंसाशाह ने अपनी माता और संघ को तीर्थयात्रा के लिये विदा किया।

माता, आचार्यश्री के नेतृत्व में संघ को लेकर क्रमशः छोटे बड़े तीर्थों की यात्रा करती हुई सिद्धाचल पर पहुँची। परमपावन तीर्थ की यात्रा कर अपने मानसिक तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालने की पवित्र भावनाओं के सफलीभूत हो जाने से भैंसाशाह की माता ने खूब ही उदार हृदय से द्रव्य का व्यय किया अष्टाह्निका महोत्सव, पूजा, प्रभावनादि कार्यों को सानन्द सम्पन्न कर माता ने खूब ही लाभ लिया। लाभ भी क्यों नहीं लेती जिनके भैंसाशाह जैसे धर्मनिष्ठ सुपुत्र फिर खर्च करने में कमी ही किस बात की होती ? शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा कर संघ पुनः स्वस्थान की ओर लौट रहा था तब मार्ग में पाटण नामक एक विशाल नगर आया। संघ ने वहां की भी यात्रा की। उस समय पाटण में सैकड़ों कोटिध्वज थे। उनके ऊंचे [illegible] महलों पर उन्नत पताकाएं फहरा रही थीं। लक्षाधीशों की तो वणिक वर्ग में गिनती ही नहीं गिनी जाती थी ? ऐसे पाटण में भैंसाशाह की माता ने भी उनकी मर्यादा से खूब ही द्रव्य व्यय किया। यही कारण था कि माता का [illegible] होगया। भैंसाशाह के पूर्वोक्त कथनानुसार भैंसाशाह की माता अपने कार्यकर्ता व्यक्तियों को [illegible] पाटण में ईश्वरदास नामक एक श्रेष्ठी के यहां गई। माता के कार्यकर्ताओं ने श्रेष्ठी से कहा —

ग्रामों के आधार पर जो माल देना किया था, उसकी भी पाटण निवासियों को सप्लाई करना कठिन मालूम पड़ने लगा कारण, पाटण के व्यापारियों को पहिले रुपये देकर फिर ग्रामो से माल खरीदना प्रारम्भ कर दिया अतः पाटण के व्यापरियों को ग्रामों का माल भी नहीं मिल सका। अब निश्चित मुद्दत पर पहिले लिये हुए रुपयों का घृत तेल देना भी उनके लिये विकट समस्या होगई।

इधर माल तोलने की मुद्दत भी निकट थी। उस समय रेलवे आदि का कोई साधन तो था ही नहीं कि जिसके आधार पर मुद्दत पर दूर देशो से माल मंगवा कर तोंल देते। जब भैंसाशाह के व्यापारी माल तुलवाने के लिये आये तो पाटण के व्यापरियों ने जो थोड़ा बहुत माल इधर उधर से मंगवा कर इकट्ठा किया था सो ही फिलहाल तोलने के लिये तैय्यार होगये। इधर भैंसा शाह के व्यापारियों ने ग्राम के बाहिर नदी के अन्दर दो खड्डे तैय्यार करवाये और एक खड्डे में खरीद किया हुआ घृत और दूसरे खड्डे मे तेल तोल २ कर डालने के लिये पाटण के व्यापारियों को कह दिया। यह देखकर पाटण के व्यापारीगण अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए कि लाखो करोड़ों रुपयो का घृत तेल इस प्रकार मिट्टी में डलवाने वाले ये समर्थ व्यापारी कौन है ? कारण, यह तो उनके लिये एक दम नूतन एवं आश्चर्योत्पादक ही था। आज तक उन लोगों ने लाखों करोड़ों के माल को इतने तेज भाव मे खरीद कर के उपेक्षादृष्टि से इस प्रकार मिट्टी में डालने वाले निश्चिन्त एवं शक्तिमन्त व्यापारी को नहीं देखा था। खैर, जो माल उन व्यापारियो के पास हाजिर था उसे तोल, तोल कर नदी के किनारे कृत खड्डों मे भर दिया। शेप बहुतसा माल लेना रह गया पर पाटण के व्यापारियों के पास अब अवशिष्ट रुपयों के देने का माल कहां था ? बेचारे सब व्यापारी बड़ी आफत मे फँस गये।

अपने पास किसी भी प्रकार से अवशिष्ट रुपयो का माल देने का समर्थ साधन न होने के कारण पाटण का व्यापारी-समाज हताश एवं निरुत्साही हो भैंसाशाह के व्यापारियो के पास गया और उनसे पूछने लगे कि-आप लोगों का मूल निवास स्थान कहां का है ? आपने यह माल किसके लिये खरीदा है। रुपये देकर या लाखों करोड़ों के द्रव्य को व्यय करके आप लोग माल की खरीदी कर रहे हैं और उसे इस कदर नदी की मिट्टी में क्यों डलवाया जारहा है ?

व्यापारियों ने उत्तर दिया—हम लोग स्वनाम धन्य, वीररत्न, व्यापारी समाज के अधिनायक, धन वैश्रमण श्रीमान् भैंसाशाह के व्यापारी एवं मुनीम गुमास्ते हैं, और उनकी आज्ञा से ही सब माल की खरीदी की गई है। उनका पुण्य इतना प्रबल है कि नदी की बालुका में डाला हुआ घृत और तेल, उनकी दुकान में, जो माण्डवगढ़ मे है वहां पहुँच जाता है। जितना आप लोगों ने माल तोला है, उतना ही वहां पहुँच जावेगा। शेष जो माल तोलना है वह जल्दी मे ही तोल दीजिये जिससे हम शीघ्र ही हमारे निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जावें। पाटण निवासी आश्चर्य विमूढ हो विचार करने लगे कि न मालूम ऐसा कौनसा व्यापारी है जो इस तरह व्यापारिक कुशलता बतलाते हुए व माल खरीदी करते हुए किञ्चित भी नहीं हिचकिचाता है। मुनीमों ने नागरिकों को आश्चर्य विमुग्ध देख कर स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि-शायद आप लोग जानते होंगे कि एक समय हमारे सेठजी की माता श्रीशत्रुञ्जय की यात्रार्थ सघ लेकर गई थी और पुनः लौटते हुए पाटण में भी एक दो दिन की स्थिरता की थी। खर्चे के लिये द्रव्य समाप्त हो जाने से आपके यहां के किसी प्रतिष्ठित सेठ से कर्ज मांगा था, इस पर कहा गया था कि-भैंसा तो हमारे यहां पानी भरता है, उसी नरपुङ्गव भैंसाशाह के हम मुनीम हैं। अब आप देर न कीजिये और शीघ्र शेष माल तोल दीजिये कि हम को रुकना न पड़े।

अब तो पाटण के गुर्जर व्यापारियों की आंखें खुल गई। उन व्यापारियों में प्रतिष्ठित [illegible] भी शामिल थे, उन्हें अपनी भूल स्पष्ट नजर आने लग गई। अब उनके पास कोई दूसरा साधन न होने से उन व्यापारियों ने नम्रता धारण कर हुए निवेदन किया कि-हमने आसपास के ग्रामों से भी माल लाने के लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माल खरीद लिया अतः हम सब लाचार हैं। आप अपनी [illegible]

आचार्यश्री कक्कसूरि की महती कृपा से एक दिन का दुःखी भैंसाशाह परम ऋद्धि को प्राप्त हुआ और उस ऋद्धि बल से अनेक पुण्योपार्जक कार्य किये। वीर भैंसाशाह ने जिस लग्न और जोश के साथ धर्म प्रचार कर शासन की प्रभावना की वह निश्चित ही वर्णनातीत है !

पट्टावलीकार लिखते है कि श्रीमान् भैंसाशाह की माता संघ लेकर वापिस भीनमाल आई उस समय भैंसाशाह ने स्वामिवात्सल्य करके संघ को एकादश एकादश सुवर्ण मुद्रिकाएं रख कर बढ़िया वस्त्र युक्त पहरावनी दी थी। याचकों को तो इतना दान दिया कि उन्होंने आपकी शुभ कविता से ब्रह्माण्ड गुंजा दिया था।

मात चली जत जात, बेटा जब बाल समर पे । कत पड़त तोय काम, धन नाम मम लेत करपे ॥
परगल बहे वित्त खीत खजाना सुकृत भरपे । चलत पाटण आय ईश घर मात पर्य पे ॥
बाल ग्रहो मम पुत के आपो ग्रन्थ उद्दीन मोपे। घर घर भैंसा पानी भरे, कित भैंसा मात छै तो पे ।
पुत पुच्छे निज मात को, कुशल जात की बात । कित केता तुम पुत्र का, नाम चलत सु प्रभात ॥
उत्तर माता नें दिया, नगर दुवार तुझ नाम । ठगी बाल दे मात को, भैंसा रुड़ोज कियो काम ॥
व्यापारी पठाय के खरीद किया घी तेल । धन देइ सोदा किया, प्रबल बुद्धि का खेल ।
छोटा मोटा गांव में, दइ गोल अण तौल। हारिया गुजर वाणिया पोलयो न पाले बोल ॥
भैंने नीर छुड़ावियो लाग खुड़ाइ एक । खरहत्थ सुत भैंसो भलो, राखी मरुधर टेक ॥
छप्पन कोटि गुजरात बात जग सकल प्रसिद्धि । सच्चायिका प्रसिद्ध रहे शिर पै रिद्धि सिद्धि ॥
नव खण्ड हुओज नाम राव राणा सब जाणे । ग्यारह सो आठ हल्ल कवि कीर्ति बखाणे ॥
अहब गोत मण्डण मुकुट, सुवन मुखते बोइयो । भैंसाज सेठ खरहत्थ तणो, अपणा बोल निभाइयो ॥

इत्यादि वंशावलियों में बहुत से कवित्त मिलते हैं पर स्थानाभाव से सब के सब यहां दिया नहीं जाता है। किन्तु उपरोक्त नमूना से ही पाठक अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

आचार्य देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली युग प्रवर्तक आचार्य हुए हैं आपका विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत था। [illegible] आचार्य देवगुप्तसूरि [illegible] धर्मोपदेश तथा [illegible] जैन बनाये [illegible] जैनधर्म की नींव मजबूत [illegible] तीर्थों की यात्रा भी की थी। आपका [illegible] स्थानाभाव [illegible] है।

[illegible]

[illegible] सूरि के व्याख्यान की [illegible]

इस पर सूरीश्वरजी महाराज ने फरमाया कि महानुभाव ! आपका भाव कितने ही भक्ति का हो पर कोई भी बात अपनी मर्यादा मे होती है तबतक ही शोभा देती है मर्यादा का उल्लघन करने पर गुण भी अवगुण एवं प्रशसा भी निंदा का रूप धारण कर लेती है क्योंकि कहा तो सर्वज्ञ तीर्थङ्कर भगवान् और कहां मेरे जैसा अल्पज्ञ ? तीर्थङ्कर भगवान् केवलज्ञान केवलदर्शन से लोकालोक के चराचर पदार्थों के भाव एक ही समय मे हस्तामल की तरह देखते है तब मेरे जैसे अल्पज्ञ को प्रायः कल की बात भी याद नहीं रहती है। अतः आपने मेरी प्रशसा नहीं बडी भारी निन्दा की है और मै इससे सख्त नाराज भी हूं। भविष्य मे सब लोगों को खयाल रखना चाहिये कि कोई भी शब्द निकालने पर पहले उनको खूब सोचे समझे बाद ही मुँह से निकाले। प्रसंगोत्पात मै आज थोडासा तीर्थङ्कर देवो के व्याख्यान का हाल आपको सुना देता हूँ।

तीर्थङ्कर भगवान् अपने कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन द्वारा सम्पूर्ण लोकालोक के सकल पदार्थ को पदार्थ हस्तामल की माफिक जाना देखा है उन तीर्थङ्करो की विभूतिरूप समवसरण अर्थात् जिस पवित्र भूमि पर तीर्थङ्करो को कैवल्य ज्ञानोत्पन्न होता है वहाँ पर देवता समवसरण की रचना करते है। जैसे वायुकुमार के देवता अपनी दिव्य वैक्रिय शक्ति द्वारा एक योजन प्रमाण भूमि [illegible] कांटे कंकर धूल मिट्टी वगैरह अशुभ पदार्थो को दूर कर उस भूमि को शुद्ध स्वच्छ और [illegible] करते है।

मेघकुमार के देवता एक योजन परिमित भूमि मे [illegible] और सुगन्धित जल की वृष्टि करते है जिससे [illegible] जाती है। और ऋतु देवता अर्थात् [illegible] से पैदा हुवे उत्पलादि कमल और [illegible] और ढीचण (जानु) प्रमाण एक योजन के [illegible] सुन्दर और मनोहर रचना करते है। यथा [illegible] —

"जलथलय भासुर पभूतेण विउव्विय [illegible] किज्जई" प्रभु के चौतीस अतिसय मे [illegible]

वाजे के पास ५० धनुष का परतर (सम जगह) एवं १३०० धनुष का अन्तर है। तथा स्वर्ण प्रकोट और रत्न प्रकोट के बीच में पूर्वोक्त १३०० धनुष का अन्तर है। मध्य भाग में २६०० धनुष का मणि पीठ है। दूसरी ओर १३००-१३०० का अन्तर एवं २००-२६००। २६००। २६०० कुल ८००० धनुष अर्थात् एक योजन हुआ, और चांदी का प्रकोट के बाहर जो १०००० पगोतिये हैं वे एक योजन से अलग समझना। प्रत्येक गढ़ के रत्नमय चार २ दरवाजे होते हैं। तथा भगवान के सिंहासन के भी १०००० पगोतिये होते हैं। भगवान् के सिंहासन के मध्य भाग से पूर्वादि चारों दिशाओं में दो दो कोस का अन्तर है वह चांदी का प्रकोटे के बाहर का प्रदेश तक समझना। वृत (गोल) समवसरण की परिधी तीन योजन १३३३ धनुष एक हाथ और आठ अंगुल की होती है। इस प्रकार वृत समवसरण का प्रमाण कहा अब चौरस का प्रमाण कहते हैं।

दूसरा चौरंस समवसरण की भींतें १००-१०० धनुष की होती है, और चांदी सुवर्ण के अन्तर १५०० धनुष का तथा स्वर्ण व रत्नों के प्रकोट का अन्तर १००० धनुष का। एवं २५०० धनुष। दूसरी तरफ भी २५०० ध० तथा मध्य पीठिका २६०० ध० और ४०० धनुष की चारों दिवारें। २५००। २५००। २६००। ४००। कुल आठ हजार धनुष अर्थात् एक योजन समझना। शेष प्रकोट दरवाजे, पगोतिये वगैरह सर्वाधिकार वृत समवसरण के माफिक समझना।

अब प्रकोट (गढ़) पर चढ़ने के पगोथियों का वर्णन करते हैं। पहिले गढ़ में जाने को सागवरती से चांदी के गढ़ के दरवाजे तक दश हजार पगोथिए हैं, और दरवाजे के पास जाने से ५० धनुष का सम परतर आता है। दूसरे प्रकोट पर जाने के लिए ५००० पांच हजार पगोथिये हैं। दरवाजे के पास ५० धनुष का सम परतर आता है और तीसरे गढ़ पर जाने के लिये ५००० पगोथिये हैं। और उस जगह २६०० धनुष का मणिपीठ चौतरा है। उस मणिपीठ से भगवान् के सिंहासन तक जाने में दश हजार पगोथिए हैं।

समवसरण के प्रत्येक गढ़ के चार २ दरवाजे हैं। और दरवाजे के आगे तीन २ सोवाण प्रति रूपक (पगोथिये) हैं समवसरण के मध्य भाग मे जो २६०० धनुष का मणिपीठ पूर्व कहा है उसके ऊपर दो हजार धनुष का लम्बा, चौड़ा और तीर्थङ्करों के शरीर प्रमाण ऊंचा एक मणिपीठ नामक चौंतरा होता है कि जिस पर धर्मनायक तीर्थङ्कर भगवान् का सिंहासन रहता है। तथा धरती के तल से उस मणिपीठका के ऊपर का तला ढाई कोस का अर्थात् धरती से सिंहासन ढाई कोस ऊंचा रहता है। कारण ५०००। ५०००। १०००० एवं बीस हजार सोपान हैं प्रत्येक एक २ हाथ के ऊंचे होने से ५००० धनुष का ढाई कोस होता है।

अब अशोक वृक्ष का वर्णन करते हैं। वर्तमान तीर्थङ्करों के शरीर से बारह गुणा ऊंचा और साधिक योजन का लम्बा पहुला जिस अशोक वृक्ष की सघन शीतल और सुगंधित छाया है तथा फल फूल पत्रादि लक्ष्मी से सुशोभित है। पूर्वोक्त अशोक वृक्ष के नीचे बड़ा ही मनोहर रत्नमय एक देवछंदा है, उस पर चारों दिशा में स पाद पीठ चार रत्नमय सिंहासन हुआ करते हैं।

इन चारों सिंहासन अर्थात् प्रत्येक सिंहासन पर तीन २ छत्र हुआ करते हैं, पूर्व सन्मुख सिंहासन पर वे तीर्थनाथ तीर्थङ्कर भगवान् विराजते हैं, शेष दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर दिशा में देवता तीर्थङ्करों के प्रतिबिम्ब (जिन प्रतिमा) विराजमान करते हैं। कारण चारों ओर रही हुई परिषदा जाने २ दिल में यह समझती है कि भगवान् हमारी ओर विराजमान हैं; अर्थात् किसी को भी निराश होना नहीं पड़ता है। तात्पर्य्य जिन मत [illegible] यही मानते हैं कि भगवान् चतुर्मुखी अर्थात् पूर्व सन्मुख आप खुद विराजते हैं शेष तीन दिशाओं में देवता, भगवान के प्रतिबिम्ब अर्थात् जिन प्रतिमा स्थापन करते हैं और यह बहुत [illegible] की [illegible] पूर्वोक्त भी है।

समवसरण के प्रत्येक दरवाजे पर आकाश में लहरें खाती हुई ध्वजाएं [illegible] सुन्दर [illegible] [illegible] तोरण और अष्टमङ्गलिक यानी स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमान, भद्रासन, कुंभ [illegible]

मच्छयुगल, और दर्पण एवं अष्टमंगलिक तथा सुन्दर मनोहर विलास संयुक्त पूतलियो पुष्पो की सुगन्धित मालायें, वेदिका और प्रधान कलश मणिमय तोरण वह भी अनेक प्रकार के चित्रो से सुशोभित है और कृष्णागार धूप घटीए करके सम्पूर्ण मण्डल सुगन्धिमय होते है। यह सब उत्तम सामग्री व्यन्तर देवताओं की बनाई हुई होती है।

एक हजार योजन के उत्तुंग दंड और अनेक लघु ध्वजा पताकाओं से मण्डित महेन्द्रध्वज जिसके नाम धर्मध्वज, मणिध्वज, गजध्वज, और सिंहध्वज गगन के तला को उल्लांघती हुई प्रत्येक दरवाजे स्थित रहे। कुंकुमादि शुभ और सुगन्धी पदार्थों के भी ढेर लगे हुए रहते है। विशेष समझने का यही है कि जो मान कहा है, वह सब आत्म अङ्गुल अर्थात् जिस जिस तीर्थङ्करों का शासन हो उनके हाथों से ही समझना।

समवरसण के पूर्व दरवाजे से तीर्थंकर भगवान् समवसरण मे प्रवेश करते है, प्रदक्षिणा पूर्वक पादपीठ पर पाँव रखते हुए पूर्व सन्मुख सिंहासन पर विराजमान हो सबसे पहिले "नमो तित्थस्स" अर्थात् तीर्थ को नमस्कार करके धर्मदेशना देते हैं ? अगर कोई सवाल करे कि तीर्थङ्कर तीर्थ को नमस्कार क्यों करते हैं ? उत्तर मे ज्ञान हो कि—

(१) जिस तीर्थ से आप तीर्थंकर हुए इसलिए [illegible] करते हैं। (२) आप इस तीर्थ में स्थित रह कर बीसस्थानक की सेवा भक्ति आराधन करके तीर्थंकर नामकर्म [illegible] तीर्थ को नमस्कार करते है। (३) इस तीर्थ के अन्दर अनेक [illegible] होने से तीर्थंकर तीर्थ को नमस्कार करके बाद धर्मदेशना प्रारम्भ करते हैं। (४) [illegible] धर्म का प्रचार करने के लिये इत्यादि कारणों से तीर्थंकर [illegible] को नमस्कार करते हैं।

देशना सुनने वाली बारह परिषदा का वर्णन करते हैं, जो मुनि, वैमानिकदेवी, आर्या [illegible] परिषदा अग्निकोण मे—भवनपति, ज्योतिषी व्यन्तर इनकी देवियों [illegible] ये तीनो देवता वायव्य कौणमे, वैमानिकदेव, मनुष्य, मनुष्य स्त्रियों [illegible] बारह परिषदा चार विदिशा मे स्थित रह कर धर्मदेशना सुनती हैं।

शान्त चित्त से जिन देशना सुनते हैं। तथा ईशान कौन में देवरचित देवछंदा है। जब तीर्थंकर पहिले पहर में अपनी देशना समाप्त करने के बाद उत्तर के दरवाजे से उस देवछन्दे में पधारते हैं, तब दूसरे पहर मे राजादि रचित सिंहासन पर विराजके तथा पादपीठ पर विराजमान हो गणधर महाराज देशना देते हैं।

तीसरे प्रकोट में हस्ती अश्व सुखपाल जाण रथ वगैरह सवारियो रखी जाती हैं, चौरस समवसरण में दो २ और वृतुल में एकेक सुन्दर वापियों हुआ करती हैं, जिसमें स्वछ और निर्मल जल रहता है।

प्रथम रत्नों के गढ़ के दरवाजे पर एकेक देवता हाथमे अवध लिए प्रतिहार के रूप में खड़े रहते हैं।

(१) पूर्व दिशा के दरवाजे पर सुवर्ण क्रान्ति शरीर वाला सोमनामक वैमानिक देवता, हाथ में धनुष लेकर खड़ा रहता हैं।

(२) दक्षिण के दरवाजे पर श्वेत वर्णमय यम नामक व्यन्तर देव हाथ में दण्ड लेकर दरवाजे पर खड़ा रहता है।

(३) पश्चिम के दरवाजे पर रक्तवर्ण शरीर वाला वारुण नामक ज्योतिषी देव हाथ में पास लेकर खड़ा रहता है।

(४) उत्तर के दरवाजे पर श्यामवर्णमय कुबेर (धनद) नामक भुवनपति देव हाथ में गदा लेकर खड़ा रहता है। ये चारों देव समवसरण के रक्षार्थ खड़े रहते हैं।

दूसरे सुवर्ण प्रकोट के प्रत्येक दरवाजे पर देवी युगल प्रतिहार के रूप में स्थित है, जिनके नाम जया, विजया, अजिता, अपराजिता, क्रमशः उनके शरीर का वर्ण श्वेत, अरुण, (लाल) पीत, (पीला) और नीला हाथ में अभय अंकुश पास और मकरध्वज, नाम के अवध (शस्त्र) हैं।

तीसरे चान्दी के प्रकोट के प्रत्येक दरवाजे पर प्रतिहार देवता होते हैं जिनके नाम तुम्बरू, अपूर्व कपालिक, और जटमुकुटधारी, इन चारो देवताओं के हाथ में छड़ी रहती है, और शासन रक्षा करना इनका कर्तव्य है।

तीर्थंकरों के समवसरण का शास्त्रों में बहुत विस्तार से वर्णन है, पर बालबोध के लिये ज्ञानियों ने अनुग्रन्थ में सामान्य, (संक्षिप्त) वर्णन किया है। इस समवसरण की देवताओं का समूह अर्थात् इन्द्र के आदेश से चार प्रकार के देवता एकत्र होकर रचना करते हैं। अगर महाऋद्धि सम्पन्न एक भी देवता चाहे तो पूर्वोक्त समवसरण की रचना कर सकता है फिर अधिक का तो कहना ही क्या? पर अल्पऋद्धिक देव के लिए भजना है—वह करे या न भी कर सके।

समवसरण की रचना किस स्थान पर होती है? वह कहते हैं कि जहां तीर्थंकरों को केवलज्ञानोत्पन्न होता है वहां निश्चयात्मक समवसरण होता ही है और शेष पहिले जहां पर समवसरण की रचना नहीं हुई हो अर्थात् जहां पर मिथ्यात्व का जोर हो अधर्म का साम्राज्य वर्त रहा हो, पाखण्डियों की प्रबलता हो, वह क्षेत्र में भी देवता समवसरण की रचना अवश्य करते हैं। और जहां पर महाऋद्धिक देव और इन्द्रादि भगवान् को वन्दन करने को आते हैं, वे देवता भी आवश्यकता समझें तो समवसरण की रचना करते हैं जिससे शासन का उद्योत, धर्म प्रचार और मिथ्यात्व का नाश होता है। शेष समय पृथ्वी पीठ और सुवर्णकमल की रचना अवश्य हुआ करती है जिस पर विराजमान हो प्रभु देशना देते हैं—

इस प्रकार के समवसरण प्रत्येक तीर्थंकरों के एक केवलज्ञान उत्पन्न हो वहां और एक अन्य जगह [illegible] के समवसरण [illegible] होते हैं पर इस अवसर्पिणी काल में भ० महावीर के आठ समवसरण हुए कारण [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] को [illegible] समय में ही [illegible] था अतः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] समवसरण हुए कारण उस समय मिथ्यात्व का जोर बहुत [illegible] [illegible] [illegible] की बहुत आवश्यकता थी। अतः आठ समवसरण हुए शेष २३ तीर्थंकरों के [illegible]

२३—राणकपुर	के	प्राग्वट	जाति के	शाह	पाता ने	सूरिजी के पास दीक्षाली	
२४—सादड़ी	के	,,	,,	,,	रामा ने	,,	,,
२५—चंद्रपुर	के	,,	,,	,,	राजा ने	,,	,,
२६—पद्मावती	के	श्रीमाल	,,	,,	दुर्गा ने	,,	,,
२७—भगवानपुर	के	,,	,,	,,	हीदू ने	,,	,,

आचार्यश्री के २० शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—भादली	के	समदड़िया	जाति के	शाह	चोखाने	भ०	महा०	के मन्दिर	की प्र०
२—नादुरकुली	के	आर्य	,,	,,	अर्जुन ने	,,	,,	,,	,,
३—खीखोड़ी	के	श्रेष्टि	,,	,,	वीरा ने	,,	,,	,,	,,
४—नागपुर	के	मंत्री	,,	,,	सारंग ने	,,	पार्श्व०	,,	,,
५—चाचाड़ी	के	पारख	,,	,,	मेघा ने	,,	,,	,,	,,
६—रत्नपुर	के	तातेड़	,,	,,	नागदेव ने	,,	,,	,,	,,
७—गाजु	के	बाफणा	,,	,,	भोजा ने	,,	,,	,,	,,
८—गोलु	के	छाजेड़	,,	,,	कुम्भा ने	,,	महा०	,,	,,
९—दोगण	के	सालेचा	,,	,,	समर्थ ने	,,	,,	,,	,,
१०—डेडियाग्राम	के	बोहरा	,,	,,	नाथा ने	,,	,,	,,	,,
११—डागीपुर	के	भटेवरा	,,	,,	गणधर ने	,,	,,	,,	,,
१२—खेतड़ी	के	बेसरड़ा	,,	,,	मोहण ने	,,	आदीश्वर	,,	,,
१३—छत्रीपुरा	के	मडोवरा	,,	,,	देसल ने	,,	,,	,,	,,
१४—चंद्रावती	के	प्राग्वट	,,	,,	रोड़ा ने	,,	,,	,,	,,
१५—पुनिनगरी	के	श्रीमाल	,,	,,	देपाल ने	,,	शान्ति०	,,	,,
१६—करणावती	के	शीशोदिया	,,	,,	रांणा ने	,,	शान्ति०	,,	,,
१७—भवानीपुर	के	करणावट	,,	,,	कोला ने	,,	,,	,,	,,
१८—[illegible]	के	नाहटा	,,	,,	धनरा ने	,,	नेमीनाथ	,,	,,
१९—[illegible]	के	काग	,,	,,	हरपाल ने	,,	महा०	,,	,,
२०—[illegible]	के	खजानची	,,	,,	द्वारका ने	,,	,,	,,	,,
२१—[illegible]	के	प्राग्वट	,,	,,	नगसी ने	,,	,,	,,	,,
२२—[illegible]	के	,,	,,	,,	भुत्ता ने	,,	पार्श्व०	,,	,,
२३—[illegible]	के	,,	,,	,,	गोमा ने	,,	,,	,,	,,
२४—मदनपुर	के	श्रीमाल	,,	,,	नेना ने	,,	,,	,,	,,
२५—[illegible]	के	,,	,,	,,	रामा ने	,,	महावीर	,,	,,

आचार्यश्री के २० वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—[illegible]पुर	के	श्रेष्टि	जाति के	शाह माना ने	श्री शत्रुंजय का	संघ निकाला
२—[illegible]पुर	के	मन्त्री	,,	मन्त्री रघुवीर ने	,,	,,
३—[illegible]पुर	के	[illegible]	,,	केशवा ने	,,	,,
४—[illegible]	के	[illegible]	,,	शाह [illegible] ने	,,	,,

५—चित्रकोट	के	तोडियाणी	,,	भोपा ने	,,	,,
६—उज्जैन	के	समदड़िया	,,	भोमा ने	,,	,,
७—चदेरी	के	पोकरण	,,	दुर्जण ने	,,	,,
८—मथुरा	के	आर्य्य	,,	कचरा ने	,,	,,
९—चन्द्रावती	के	प्राग्वट	,,	लुबा ने	,,	,,
१०—लाछवपुर	के	मत्री	जाति के	जुजार ने	सम्मेत शिखर का	
११—बनारसी	के	श्रेष्टि	,,	कुमार ने	,,	,,
१२—पद्मावती	के	श्रीमाल	,,	रावण ने	शत्रुंजय का संघ निकाला	
१३—रत्नपुर	के	छाजेड	,,	भोमा ने	,,	,,
१४—राजपुर	के	चोरडिया	,,	धरण ने	,,	,,
१५—नागपुर	के	समदड़िया	,,	जैतसी ने	,,	,,

१६—नारायणगढ़ के डिडु जाति के शाह रत्नसी ने स० ११११ का दुकाल में करोड़ द्रव्य [illegible]।
१७—चन्द्रावती के प्राग्वट जाति के भाण ने स० ११२२ का दुकाल में ,, ,,
१८—देवकीपाटण के श्रीमाल जाति के शाह भूता की पुत्री [illegible]।
१९—बेनातट के सचेती नरसी की माता रुकमणी ने एक [illegible]।
२०—वीरपुर का श्रेष्टि जाति के मंत्री रापो युद्ध में काम आया [illegible] सती हुई।
२१—उच्चकोट का आर्य्य वीरम युद्ध में ,, ,, ,,
२२—उपकेशपुर का लघु श्रेष्टि धिरो ,, ,, ,, ,,
२३—नागपुर का चोरडिया पेथो ,, ,, ,, ,,
२४—नारदपुरी का प्राग्वट अमरो चार चौरासी पर आमंत्रण बुलाकर [illegible]।
२५—शिवपुर श्रीमाल शूरा ने सात बड यज्ञ (जीमनवार) [illegible]।
२६—चित्रकोट पोकरणा कुम्मा ने चौरासी न्याति को अपने वहाँ बुलाकर [illegible]।

उनपचासवें पट्ट धारकवर, देवगुप्त सूरीश्वर थे।
सिद्धगिरी का संघ साथ में, [illegible]।
अपमान किया माता का गुर्जर, बदला [illegible]।
उद्योत किया सूरि शासन का, [illegible]।

इति भगवान् पार्श्वनाथ के उनपचासवें पट्ट पर [illegible]

श्रीउपकेश गच्छ में पट्टकूंप शाखा—आचार्यश्री कक्कसूरि के अनन्तर श्रीसिद्धसूरि नाम के आचार्य हुए। आप सूरि पद के योग्य सर्वगुण सम्पन्न शक्तिशाली आचार्य थे, पर खटकूंप नगर के भक्त श्रावकों के अत्याग्रह से आप खटकूंप नगर में कई अर्से तक स्थिरवास करके रह गये। इस पर गच्छ के शुभचिन्तक श्रमणों ने विचार किया कि बिना ही कारण गच्छनायक आचार्य श्रीसिद्धसूरि एक नगर में स्थिरवास कर बैठ गये यह ठीक नहीं किया। इसका प्रभाव अन्य श्रमण समुदाय पर बहुत बुरा पड़ेगा कारण आज तक उपकेशगच्छाचार्यों ने अति विकट एवं दीर्घ विहार करके महाजन संघ का रक्षण, पोषण एवं वर्धन किया है। अब इस प्रकार आचार्यश्री का एक नगर में स्थिर वास कर बैठ जाना उपकेशगच्छ के सञ्चालन में शिथिलता का द्योतक है अतः अवश्य ही आचार्यश्री को भी प्रान्तीय व्यामोह छोड़ कर अपना विहार क्षेत्र विशाल बनाना चाहिये। उक्त आदर्श विचार श्रेणी से प्रेरित हो अग्रगण्य मुनियों ने आचार्यश्री सिद्धसूरि से नम्रता पूर्वक प्रार्थना की-"प्रभो ! क्षमा कीजियेगा, हमें विवश हो आपश्री को एक स्थान पर स्थिरवास को देख कर कहना पड़ता है कि—आप सब तरह से समर्थ शक्तिवंत हैं। अतः पूर्वाचार्यों के अनुपम आदर्श को अभिमुख होकर आपश्री को भी जिनधर्म की प्रभावनार्थ एवं मुनिसमुदाय पर आदर्श प्रभाव डालने के लिये अवश्य ही दीर्घ विहार रखना चाहिये"। इस विनम्र प्रार्थना पर सूरिजी ने न तो लक्ष दिया और न विहार ही किया। इस हालत में श्रमणों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया -"आपको हर एक दृष्टि से विहार के लिये और कदम बढ़ाना चाहिये अन्यथा हमें आपश्री के स्थान पर दूसरा आचार्य निर्वाचित करना पड़ेगा।" इस पर भी सूरिजी ने किञ्चित् भी लक्ष्य नहीं दिया अतः श्रमण संघ ने परस्पर परामर्श कर देवविमल नाम सुयोग्य मुनि को सूरिपद से अलंकृत कर आपका नाम श्रीसिद्धसूरि रख दिया। खटकूंप नगर में रहने वाले सिद्धसूरि और उनके शिष्य गण के सिवाय अखिल गच्छ का सञ्चालन कार्य नूतन सिद्धसूरि करने लगे—जो गच्छ का भार वहन करने में सर्वथा समर्थ थे।

खटकूंप नगर में रहने वाले सिद्धसूरि की आज्ञा में भी बहुत से साधु साध्वी थे पर वे अपने अन्तिम समय में किसी को भी अपना पट्टधर नहीं बना सके अर्थात् बिना सूरि पद अर्पण किये ही आप अकस्मात् स्वर्गवासी होगये। अतः आपके विद्वान् शिष्य 'यक्षमहत्तर' ने स्वर्गीय सिद्धसूरि के गच्छ का सब भार अपने ऊपर लेकर उसका यथानुकूल सञ्चालन करने लगे।

यह तो आप अच्छी तरह पढ़ते आ रहे हैं कि अब तक उपकेश गच्छ में जितने मत, पंथ गच्छादि पृथक् २ हुए हैं इनमें (समुदाय विभिन्नत्व में) अधिक सहायता श्रावक लोगों की ही है। खटकूंप नगर के श्रावक यदि सिद्धसूरि का पक्ष नहीं करते तो इस शाखा का प्रादुर्भाव ही नहीं होता पर काल को ऐसा ही अभीष्ट था। जैसे भिन्नमाल के संघ ने मुनि कुकुंद का पक्ष कर उनको आचार्य बना दिया तो उपकेश गच्छ में दो शाखाएं होगईं। इसी प्रकार खटकूंप नगर के श्रावकों ने सिद्धसूरि का पक्ष किया तो कुकुंद शाखा के भी दो टुकड़े होगये। एक भिन्नमाल की शाखा दूसरी खटकूंप की शाखा। इतना सब कुछ होने पर भी गच्छ की इतनी मर्यादा तो अवश्य ही थी कि बिना किसी अनुष्ठान और बिना किसी योग्य पुरुष द्वारा पद दिए कोई भी आचार्य नहीं बन सकता था। यही कारण था कि सिद्धसूरि के पट्ट पर कोई योग्य आचार्य नहीं बना। केवल यक्षमहत्तर मुनि ने ही इस गच्छ का सब उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

एक समय यक्षमहत्तर भ्रमण करते हुए मथुरा नगरी की ओर पधारे। वहां किसी नगरसेठ [illegible] ने आचरक (दिगम्बर) मुनि के पास दीक्षा ली और नगर के बाहर [illegible] था जिसको मुनि यक्षमहत्तर ने देखा। उस नग्न मुनि को होनहार समझ कर यक्षमहत्तर ने [illegible] में दीक्षित कर लिया। [illegible] में नग्नमुनि को सर्वगुण सम्पन्न, [illegible] सिद्धसूरि के पट्ट पर सूरि बनाकर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। [illegible]

कुकुंदाचार्य की शाखा में एक और शाखा

गृहस्थों को श्रमण दीक्षा देकर अपने गच्छ मे श्रमण समुदाय की पर्याप्त वृद्धि की। दीक्षा के इच्छुक उक्त भावुकों मे कृष्णार्षि नामका एक प्रज्ञाशील, तप शूरा विप्रश्रमण भी था। कृष्णार्षि तेजस्वी एव सर्व कला कुशल था पर दुर्भाग्य वशात् आपकी दीक्षानन्तर कुछ ही समय मे आचार्य श्री कक्कसूरि का स्वर्गवास होगया। अत आप उनकी सेवा का ज्यादा लाभ न उठा सके। उस समय यक्षमहत्तर मुनि मानो वृद्धावस्था के कारण खटकुंपनगर मे ही स्थिरवास कर रहते थे। अत कृष्णर्षि आचार्य श्री के देहावसानानन्तर शीघ्र ही चल कर यक्षमहत्तर मुनि के पास आगये। थोड़े समय पर्यन्त वीर मन्दिरस्थ यक्षमहत्तर मुनि की सेवा मे रहते हुए कृष्णार्षि ने उपसम्पदादि करणीय क्रियाओं का अनुष्ठान किया पर कुछ ही काल के पश्चात् यक्षमहत्तर मुनि अपने गच्छ का सम्पूर्ण भार कृष्णार्षि को सौप कर अनशन पूर्वक स्वर्ग पधार गये।

कृष्णार्षि ने देवी चक्रेश्वरी के आदेशानुसार चित्रकूट मे जाकर किसी [illegible] के पास पढ़ाने एक शिष्य को पढाया। उसको सब तरह से योग्य व सर्वगुण सम्पन्न बनाकर [illegible] पद पर स्थापित कर दिया। परम्परानुसार आपका नाम देवगुप्त सूरि निष्पन्न किया। जब गच्छ का सम्पूर्ण भार देवगुप्तसूरि ने सम्भाल लिया तो कृष्णार्षि स्वतत्र होकर विहार करने लगे। [illegible] ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक समय नागपुर मे पधारे नागपुर निवासियों ने आपका बहुत ही शानदार स्वागत किया। [illegible] प्रारम्भ रक्खा। जन समाज बड़े ही उत्साह से प्रतिदिन व्याख्यान का [illegible] होने लगा। आप बड़े ही विद्याबली एव चमत्कारी महात्मा थे। [illegible] नागपुर निवासी सेठ नारायण को जैनधर्म की ओर आकर्षित करके [illegible] वर्यश्रीनारायण तो कृष्णार्षि का पूर्ण भक्त बन गया। [illegible] जाता है। कृष्णार्षि के अनुपम उपदेश को श्रवण करने से [illegible] एव नवीन भावना ने जन्म ले लिया। [illegible] को ही उन्होंने सर्वोत्तम साधन समझा। बस, इस भावना ने [illegible] करने लगा—गुरुदेव! मेरी भावना एक जिन मन्दिर बनवाने [illegible]

गया तो प्रतिष्ठा भी जल्दी ही होनी चाहिये पर श्रेष्ठिवर्य ! हमारे पूज्य आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी अभी गुजरात में विचरते हैं अतः प्रतिष्ठा भी उन्हीं पूज्य पुरुषों के हाथ से होना अच्छा है। तुम आचार्यश्री को आमन्त्रणपत्र भेज कर यहां बुलाने का प्रयत्न करो। गुरु के वचनों को विनयपूर्वक स्वीकृत कर सेठ नारायण ने अपने पुत्रों को प्रार्थना पत्र के साथ आचार्यश्री के सेवा में गुर्जर प्रान्त की ओर भेजा। उन्होंने आचार्यश्री के निर्दिष्टस्थान पर जाकर सूरिजी को प्रार्थना पत्र दिया व नागपुर पधारने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की। सूरिजी ने भी लाभ का कारण सोचकर प्रार्थना को स्वीकार करली। आचार्यश्री जब क्रमशः विहार करते हुए नागपुर पधारे तो तत्रस्थ श्रीसंघ एवं * नारायण सेठ ने आपका भव्य स्वागत समारोह किया। तत्पश्चात् शुभ मुहूर्तकाल में सूरिजी एव कृष्णर्षि ने सेठ के मन के मनोरथ को पूरी करने वाली महामाङ्गलिक प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना हुई। श्रेष्ठिवर्य नारायण का बनवाया हुआ मन्दिर इतना विशाल था कि उस मन्दिर की व्यवस्था के लिये ७२ पुरुष व ७२ स्त्रियां सभासद निर्वाचित किये गये। इससे यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उस समय स्त्रियां भी मन्दिरों की सार सम्भाल में सभासद के रूप चुनी जाती थी।

मुनि कृष्णर्षि जैसे उत्कृष्ट तपस्वी थे वैसे विद्यामन्त्र में भी परम निपुण थे। आपने सपादलक्ष प्रान्त में परिभ्रमन करके जैन धर्म का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित कर दिया। क्या राजा और क्या प्रजा ? सब ही आपकी ओर आकर्षित थे।

मुनि कृष्णर्षि ने कठोर तप के प्रभाव से बहुत सी लब्धियां प्राप्त करली थी। आपने अपने लब्धि प्रयोग से गिरनार मण्डन भगवान नेमिनाथ के दर्शन कर गुडाग्राम होते हुए मथुरा नगरी के पार्श्वनाथ के दर्शन किये। पश्चात् क्षीर समुद्र के जल सदृश दुग्ध क्षीर से पारणा किया।

एकदा कृष्णर्षि ने आचार्यश्री देवगुप्तसूरि से प्रार्थना की—पूज्यवर ! आप, अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को सूरिमन्त्र की आराधना करवा कर पट्टधर बना दीजिये। इससे गच्छ परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहेगी। कारण, आचार्यश्री कक्कसूरि के स्वर्गवास के पश्चात भी कई वर्षों तक पट्ट खाली रहा फिर तीन [illegible] से आपको सूरिपदारोपन करवाया अतः आप अपनी मौजूदगी में ही योग्य मुनि को सूरिपद [illegible] करदें तो भविष्य के लिये हितकर होगा। आचार्यश्री देवगुप्तसूरि ने कृष्णर्षि की बात को यथार्थ समझ कर अपने पट्टधर मुनि [illegible] को सूरि मन्त्र की आराधना करवा कर अपना पट्टधर बना लिया। परम्परा [illegible] आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया। सिद्धसूरि ने भू भ्रमन कर कई नर नारियों को दीक्षा देकर गच्छ [illegible] की। श्री सिद्धसूरि ने भी अपने [illegible] नाम के शिष्य को सूरि बना कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। कक्कसूरि ने अपने शिष्य वासुदेव को सूरि बनवा कर उनका नाम श्रीदेवगुप्तसूरि [illegible] किया। इस प्रकार इन [illegible] में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई पर कलिकाल के इस क्रूर साम्राज्य में एक [illegible] वृद्धि होना [illegible] था। परिणाम स्वरूप आचार्यश्री देवगुप्त सूरि के स्थान पर सिद्धसूरि हुए [illegible] समय अमरपुरी सदृश समृद्धिशाली चन्द्रावती नगरी में पधारे। श्रीसंघ ने आपका बहुत ही [illegible] [illegible] किया। आपका व्याख्यान हमेशा होता था जिसका जन समाज पर अच्छा [illegible] था। [illegible] सिद्धसूरि के शरीर में [illegible] वेदना उत्पन्न होगई। आपश्री के [illegible] श्रीसंघ ने आग्रह किया—पूज्यवर ! आप चिरकाल तक शासन की [illegible] [illegible] किसी योग्य मुनि को पट्टधर बनादें तो अच्छा है। [illegible] श्रीसंघ की ऐसी आग्रह [illegible] है ? [illegible]

* [illegible]

[illegible]

[illegible]

नागपुर के नारायण सेठ के मन्दिर की प्रतिष्ठा

है तो मेरा भी कर्तव्य है कि मैं अपने पट्टधर किसी योग्य मुनि को पट्टधर बना दूं। बस, श्रीसंघ की समुचित प्रार्थना को मान देकर शुभ मुहूर्त में अपने सुयोग्य शिष्य हर्षविमल को सूरिजी ने सूरि पदारूढ कर दिया। परम्परानुसार आपका नाम कक्कसूरि रख दिया। अपने पास में साधुओं की अधिकता होने से कक्कसूरि को आसपास में विहार करने की आज्ञा दे दी। सूरिजी के आदेशानुसार नूतनाचार्य भी कई मुनियों के साथ विहार कर गये। कालान्तर में श्रीसिद्धसूरिजी पुण्य कर्मोदय से सर्वथा रोग विमुक्त होगये पर नूतनाचार्य कक्कसूरि वापिस आकर आचार्यश्री से न मिले इससे सिद्धसूरिजी ने अपने पास के साधुओं को भेजकर कक्कसूरि को बुलवाये पर वे गच्छ नायकजी के बुलवाने जाने पर भी सेवा में उपस्थित न हुए। इस हालत में सूरिजी के हृदय में शंका पैदा हुई कि—मेरी मौजूदगी में भी इनकी यह प्रवृत्ति है तो मेरे बाद ये गच्छ का निर्वाह कैसे करेंगे? अब पुनः गच्छ के समुचित रक्षण के लिये नूतन आचार्य बनाना चाहिये। बस, श्रीसंघ के परामर्शानुसार आपश्री ने अपने विद्वान एवं योग्य शिष्य श्रीमेरुविमलोपाध्याय को सूरि पद प्रदान कर उनका नाम कक्कसूरि रख दिया। तत् पश्चात् आचार्यश्री सिद्धसूरि अनशन पूर्वक चन्द्रावती में स्वर्गवास होगये।

इस समय सिद्धसूरि के दो पट्टधर होगये थे। उन दोनों का ही नाम कक्कसूरि था। [illegible] गये कक्कसूरि की शाखा चंद्रावती की शाखा और बाद में बनाये कक्कसूरि [illegible]। इन दोनो शाखाओं के आचार्यों की पट्टपरम्परा कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि के नाम [illegible] है। चन्द्रावती की शाखा कहां तक चली—इसका पता नहीं पर [illegible] नाम से बीसवीं शताब्दी में भी विद्यमान है। खेतसीजी [illegible] इस शाखा में थे। आपकी गादी पर एक यति इस समय [illegible] कई आचार्यों ने मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई [illegible]।

की ओर से भगवान् की भक्ति के लिये परिकर व पूजा की अत्युत्तम सामग्री का यथोचित प्रबन्ध कर दिया गया। उस समय मारकोट में श्रावकों के चार सौ घर तथा पांच पौषधशालाएं थी। इससे अनुमान किया जाता है कि मारोटकोट एक समय जैनियों का केन्द्र स्थान था। जैनियों की इतनी विशाल आबादी के अनुसार मारोटकोट में इसके पूर्व भी कई मन्दिर * होंगे ऐसा अनुमान किया जाता है।

मारोटकोट के राजा के बनवाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाने से राजा प्रजा पर जैनधर्म का बहुत ही प्रभाव पड़ा। यथा राजा तथा प्रजा की लोकोक्त्यानुसार राजा ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो प्रजा के लिये कहना ही क्या था?

सूरिजी मारोटकोट की प्रतिष्ठा के पश्चात् भ्रमन करते हुए राणकदुर्ग में पधारे। वहां भी आपका व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। वहां के राजा सुरदेव भी हमेशा आपके व्याख्यान में आया करते थे। सूरिजी ने एकदा मन्दिर बनवाने के कल्याणकारी पुण्य एवं भविष्य के लाभ को बतलाते हुए फरमाया कि—जहांतक मन्दिर यथावत् बना रहता है वहां तक श्रावक समुदाय उनकी सेवा पूजा किया करता है। उनके इस लाभ का यत्किञ्चित भाग मन्दिर बनाने वाले को भी मिलता है। इसके स्पष्टीकरण के लिये मारकोट के राजा का ताजा उदाहरण सुनाया जिससे राजा सुरदेव की इच्छा भी अपनी ओर से मन्दिर बनवाने की होगई। उसने श्रावकों को बुलवा कर अपने निजके द्रव्य से भगवान् शान्तिनाथ के मन्दिर को बनाने की आज्ञा प्रदान करदी। बस, फिर तो देर ही क्या थी? श्रावकों ने यथा क्रमः शीघ्र ही मन्दिर तैय्यार करा दिया। जब मन्दिर अच्छी तरह से तैय्यार होगया तो राजा ने सूरिजी को बुलवा कर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। इस शुभ कार्य में राजा ने स्वराजकीय प्रभावनानुसार पुष्कल द्रव्य व्यय किया और आने वाले स्वधर्मी बन्धुओं को अच्छी प्रभावना दी।

सूरिजी बड़े ही दीर्घदर्शी थे। अतः आपश्री ने पूर्वोक्त दोनों मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाकर उन भूपतियों को ऐसा उपदेश दिया कि प्रति वर्ष उन दोनों की ओर से अपने २ मन्दिर में अष्टाह्निका महोत्सव होने लगा। राजा ने सूरिजी के सर्व अनुकूल वचनों का देव वाणी के अनुसार सादर स्वीकार कर लिया।

आचार्यश्री कक्कसूरि के पास एक शान्ति नामका मुनि था। वह जैसे विद्वान एवं वक्तृत्व कला में निपुण था वैसे गर्वाभिमानी भी था। कभी २ सूरिजी के साथ भी वाद करता था पर वह वाद केवल शुष्कवाद नहीं था अपितु परमार्थिक रहस्य को लिये हुए रहता था। एक दिन गुरु शिष्य मन्दिर के विषय में बातें कर रहे थे, इतने में सूरिजी ने पूछा—शान्ति! तू भी किसी राजा को प्रतिबोध देकर मन्दिर बनवावेगा? इसके उत्तर में शान्ति ने तुरन्त उत्तर दिया—पूज्यवर! यदि मैं किसी राजा को प्रतिबोध देकर मन्दिर बनवाऊंगा तो प्रतिष्ठा करने को तो आप पधारोगे न? सूरिजी ने कहा—बेशक! बस, फिर तो था ही क्या, शान्ति मुनि ने सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार कर दिया। क्रमशः त्रिभुवनदुर्ग में जाकर वहां के राजा को प्रतिबोध दिया [illegible] धर्मोपदेश देते हुए मन्दिर के विषय को मुख्य रक्खा। जैन मन्दिर बनवाने के अनन्त पुण्योपार्जन [illegible]

---

* किले के खोद काम से भूगर्भ से नेमिनाथ भगवान की जैन प्रतिमा मिली इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि एक समय सिन्ध प्रांत में जैनधर्म राजाओं का धर्म रहा था। आचार्यश्री यक्षदेवसूरि और कक्कसूरि के [illegible] [illegible] है कि—सिन्ध प्रान्त में प्रायः राजा प्रजा का धर्म जैनधर्म रहा था। [illegible]

दृष्टान्त, उदाहरण बतलाये। राजा ने मुनि शान्ति के उपदेश को हृदयङ्गम कर अपने दुर्ग में एक मन्दिर बनवाया। जब मन्दिर तैयार होगया तो राजा ने शान्ति मुनि को बुलवाकर कहा—गुरुदेव ! मन्दिर तैय्यार है इसकी प्रतिष्ठा करवाइये। मुनि ने कहा—राजन ! प्रतिष्ठा तो हमारे आचार्य ही करवा सकते हैं। आप आचार्यश्री कक्कसूरि को बुलवाइये। इस पर राजा ने अपने प्रधान पुरुषों को भेजकर सूरिजी को बुलवाया। जब सूरिजी त्रिभुवनदुर्ग में पधारे तो राजा, प्रजा एवं शान्ति मुनि ने गुरुदेव का भव्य स्वागत किया। शान्तिमुनि ने सूरिजी से अर्ज की, आचार्य देव ! मन्दिर तैय्यार है, प्रतिष्ठा करावें। सूरिजी ने धर्म स्नेह से कहा—शान्ति ! तू भाग्यशाली है।

सूरिजी ने शुभ मुहूर्त एवं स्थिर लग्न में प्रतिष्ठा करवाकर जैनधर्म की पर्याप्त प्रभावना की। सूरिजी के प्रखर प्रभाववर्धक उपदेश से राजा ने अपने राज्य में सर्वत्र अहिंसा की उद्घोषणा कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया।

अहा—ताना-माना हो तो भी ऐसा हो कि जिससे जैन धर्म की प्रभावना हो। आचार्यश्री ने तो केवल ताने में ही शान्ति मुनि को कहा था पर शान्ति मुनि ने तो [illegible] करके बता दिया, क्या यह कम महत्व की बात है।

उस समय के आचार्य चाहे चैत्य में ठहरते हो पर जैन[illegible] भरा हुआ था। वे जहां जाते वहां ही नये जैन बना देते। [illegible] उग्रविहारी, उत्कृष्टाचारी थे तभी तो राजा महाराजाओं पर [illegible] था।

आचार्य कक्कसूरिजी म० युगप्रवर्तक, [illegible] उपकार है वह भूला नहीं जा सकता है।

पद का त्याग करना ही श्रेयस्कर है। इस पर खूब दीर्घ दृष्टि से विचार कर सूरिजी ने संघ के समक्ष गद्गद् स्वर से कहा—महानुभावो मैं यह जानता हूँ कि मेरी यह प्रवृत्ति सर्वथा अनुपादेय है पर अब मैं मेरी आत्मा पर विजय प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा तो मेरे पद पर अन्य किसी योग्य मुनि को सूरि बना कर अन्य प्रदेश में चले जाने की है जिससे आप (सकल श्रीसंघ) को सन्तोष हो और मेरी जिनभक्ति में भी किञ्चित् बाधा उपस्थित न हो। आचार्यश्री के एकदम ममत्व रहित वचनों को सुनकर श्रीसंघ को आश्चर्य एवं दुःख हुआ कारण, एक सुयोग्य आचार्य बिलकुल निर्जीव कारण के लिये पद त्याग करें यह सर्वथा विचारणीय था। श्रीसंघ ने सूरिजी को बहुत ही समझाने का प्रयत्न किया पर परिणाम सन्तोषजनक न निकला। लाचार संघ को आचार्यश्री का कहना स्वीकार करना पड़ा। सूरिजी ने भी अपने योग्य शिष्य गुणभद्र मुनि को सूरि पद प्रदान कर परम्परानुसार आपका नाम श्रीसिद्धसूरि रख दिया। आप पदत्याग कर सिद्धाचल पर चले गये और अपनी जिन्दगी शत्रुञ्जय गिरनारादि पवित्र तीर्थों पर तीर्थङ्करों की भक्ति में ही व्यतीत की।

कर्म के अकाट्य सिद्धान्तानुसार जिस जिस जीव के जिन २ कर्मों का क्षयोपशम एवं उदय होता है, तदनुसार ही जीव की प्रवृत्तियां होजाती हैं फिर भी जाति एवं कुलका यथोचित प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। श्रीसंघ के उपालम्भ एवं शास्त्र मर्य्यादा एवं जिन शासन की भावी क्षति को लक्ष्य में रख सूरिजी ने अपना पद त्याग करने में भी विलम्ब नहीं किया। केवल पदत्याग ही नहीं अपितु अपने वेश में भी यथानुकूल परिवर्तन कर डाला। यद्यपि भक्ति करना बुरा नहीं था तथापि साधु कर्त्तव्य के प्रतिकूल होने से आपने साधु वेश का भी त्याग कर दिया। इस घटना का समय पट्टावली में वि० सं० ९९५ का बतलाया है। ये भिन्नमाल शाखा के आचार्य थे ऐसा पट्टावलियों में उल्लेख है।

आचार्य कक्कसूरिजी जिस समय डामरेल नगर में जैनधर्म का प्रचार खूब जोरों से बढ़ा रहे थे उस समय वहां कई स्वार्थी लोगों से सहन नहीं हुई अतः उन लोगों ने किसी विद्यामन्त्र वादी को डामरेल नगर में बुलाकर अपना प्रचार-कार्य बढ़ाने का प्रयत्न शुरु किया और भद्रिक जनता को भौतिक चमत्कारों से अपनी ओर आकर्षित भी करने लगा। ठीक है परमार्थ के अज्ञात लोग इस लोक के स्वार्थ में अन्ध बन कर अपने धर्म में शंका करने लग गये साधारण जनता ही क्यों पर वहाँ के राव हमीर भी उन मन्त्र वादियों के भ्रम जाल में प्रविष्ट हो गया अतः धर्मेश्वर लोगों ने सूरिजी से प्रार्थना की। इस पर सूरिजी के पास गुणसुन्दर मुनि जो विद्यामन्त्रों का पारगामी था उस को आदेश दे दिया। अतः मुनि गुणसुन्दर राज सभा में गया और राव हमीर को कहा कि आप परम्परा से जैनधर्म के उपासक हैं और आत्म कल्याण के लिये जैनधर्म ही श्रेष्ठ धर्म है पर इसके साथ जैनधर्म में विद्यामन्त्र की भी कमी नहीं है यदि आप को परीक्षा करनी हो तो [illegible] [illegible] शब्दों से रावजी को उत्साहित बनाया इस पर रावजी ने [illegible] [illegible] और [illegible] परीक्षा देने की [illegible] उन लोगों का [illegible] था कि [illegible] [illegible] [illegible] जैन [illegible] [illegible] [illegible] दिन दोनों पक्ष के साधु व उनके भक्त लोग राज सभा में उपस्थित हुए और [illegible] [illegible] की। [illegible] लिखते हैं कि विविध प्रकार से प्रयोग किया [illegible] [illegible] हुए। यही कारण था कि दूसरे दिन [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] शिष्यों के परिवार से [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] विद्यामन्त्र वाद में [illegible]

५०-आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज (११ वाँ)

सिद्धसूरि रयाज निष्ठ गदई शाखा सुरत्न महत्,
विद्या लब्धि गणेषु लब्ध महिमो वापाख्य नागान्वये ।
कंदर्पेण च निर्मिते सुभवने गच्छीय सूरेस्वम्,
लोके भाव हरेति नामक तया ख्यातस्त्र चोपद्रवम् ।
शान्त्वानेक जनांश्च जैन मतकान् कृत्वा सुधर्मा व्रती,
जातोऽनेक जनादृतः शुभ गुणो धर्म प्रभा वर्धकः
साहित्यैक सुसेवया च सनय नीत्या व्यय प्रत्ययम्
दृष्ट्वा ज्ञान मयेन शुद्ध नयन द्वन्द्वेन प्रामोत्सवम् ॥

किया था। मारवाड़ प्रान्तीय श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर में आपने सब से पहिले जैनधर्म के बीजारोपण किये। राजा जयसेनादि ९०००० घरों को परम पवित्र जैनधर्म की दीक्षा से दीक्षित कर उन्हे सत्पथानुगामी बनाया। इस तरह आचार्यश्री के कठोर प्रयत्न से रक्तामिषाहारी भिन्नमाल नगर धर्मपुर बनगया। सर्वत्र जैन धर्म की अहिंसा-पताकाएं दृष्टिगोचर होने लगी। पर काल की कुटिल गति एवं भयानक चक्र से कोई भी सुरक्षित न रह सका। यही कारण था कि कालान्तर में राजपुत्र भीमसेन और चंद्रसेन के परस्पर मनो मालिन्य होगया। बस चन्द्रसेन ने आबू के पास चंद्रावती नगरी बसाई जिससे भीमसेन की धर्मान्धता से पीड़ित जैन जनता नूतन नगरी चंद्रावती मे जाबसी। अब तो श्रीमाल नगर में शिवधर्मोपासक ही रह गये। इस हालत में राजा भीमसेन ने अपने भीमाल नगर के तीन प्रकोट बनवाये, जिसमे प्रथम परकोट में कोट्याधीश एवं अर्बपति, दूसरे में लक्षाधीश एवं तीसरे परकोट मे सर्व साधारण जनता। इस प्रकार नगर की व्यवस्था कर आपने अपने नाम पर नगर का नाम भिन्नमाल रख दिया।

जिस समय का हम इतिहास लिख रहे हैं उस समय भिन्नमाल मे पोरवालों श्रीमालों के सिवाय प्राग्वट वंशीय लोग भी सुविशाल संख्या मे आबाद थे और वे जैसे व्यापारी थे वैसे राज्य के उच्च पदाधिकारों पर भी प्रतिष्ठित थे। ये लोग धनाढ्य एवं व्यापार कला पटु थे। इनमें जगत्प्रसिद्ध, नरपुङ्गव भैंसाशाह भी एक थे।

पाठक वर्ग भैंसाशाह की जीवन घटनाओं, व्यापारिक कुशलताओं एवं आपकी माता के द्वारा निकाले गये संघ के वृत्तान्त को तो पूर्व प्रकरणों मे पढ़ ही आये हैं। जैन समाज के लिये ही नहीं अपितु समस्त व्यापारी एवं जन साधारण समाज के लिये आप गौरव के विषय थे। आप पर आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज एवं आपके पट्टधर श्रीमान् देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज की परम कृपा थी। देवी सच्चायिका का आपको इष्ट था और उसी प्रबल इष्ट के आधार पर आपने कई असाधारण कार्य कर दिखलाये थे। आपने अपने जीवन [illegible] पर कर्म सूत्रधरों का विचित्र २ नाटक देखा उनके भीषण यातनाओं एवं दारिद्र्य जन्य असह्य दुःखों को सहन किया पर अपने कर्तव्य मार्ग से किञ्चित् भी स्खलित नहीं हुए। आप ही क्या नहीं पर आपकी [illegible] पत्नी श्रीमती मुगनीबाई का भी उस भयंकर अवस्था में इतना उत्कृष्ट का धैर्य गुण था कि वे दुःखित होने के बजाय समय २ पर अपने पति देव प्रोत्साहन एवं सहायता दिया करती थी। [illegible] के [illegible] के गुण बन गये थे सब गुण माता मुगनी में विद्यमान थे। माता मुगनी उदार [illegible] धर्म कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लिया करती थी। आपका जीवन बड़ा ही शान्तिमय एवं [illegible] धर्म भावनाओं से ओतप्रोत था।

है। धन्य है आप जैसे त्यागी वैरागी श्रमण निर्ग्रन्थो को जिन्होने सासारिक जीवन सम्बन्धी सम्पूर्ण उपाधियों एव प्रपञ्चो का त्याग कर मोक्षमार्ग जैसे उत्कृष्टतम मार्ग आराधन मे संलग्न होगये। गुरुदेव! दीक्षा, कोई साधारण कार्य नही है। यह हस्तिओ का भार हम जैसे गीदड़ कैसे सहन कर सकते है ?

सूरिजी—धवल ! तेरा कहना कुछ अशो मे ठीक है कि ससारी जीवो के अनेक उपाधियां लगी रहती है और उन उपाधियो से मुक्त होकर सर्वथा स्वतत्र होने के लिये ही तीर्थंकर देवो ने उपदेश दिया है उनके उपदेश से केवल साधारण व्यक्तियो ने ही नहीं अपितु बडे २ राजा महाराजा एव चक्रवर्तियो ने भी सब उपाधियो का त्याग कर दीक्षा स्वीकर की है। हमारे पास मे जितने साधु वर्तमान हैं उनके पीछे भी थोड़ी बहुत उपाधियां तो अवश्य थी पर ससार भ्रमन से भयभ्रान्त हो सर्पकंचुलवत् उसका त्याग कर आज [illegible] मोक्ष मार्ग की आराधना कर रहे हैं। दूसरा दीक्षा का पालन करना कठिन है, यह बात तो [illegible] ही है पर जब नरक निगोद के दुखों का श्रवण करेगा तो ज्ञात होगा कि दीक्षा का दुःख उन दुःख के सामने नगण्य ही है। तुम तो क्या ? पर सेठ शालीभद्र को तो देखो कि वे कितने सुकुमाल और कितने [illegible] पर जब उन्होने भी ज्ञान एव अनुभव दृष्टि से ससार के दुःखो का अनुभव किया [illegible] कठिनाई के सहसा ही संसार सम्बन्धी सम्पूर्ण सुख साधनो का त्याग कर दीक्षा स्वीकार [illegible] आत्म कल्याण की भावना वालो के लिये दीक्षा जैसा कोई सुख ही नहीं है। शास्त्रों मे तो यहां तक बतलाया है कि पन्द्रह दिन की दीक्षा वालो को जितना सुख है उतना व्यन्तर देवताओ को [illegible]। इस तरह क्रमशः एक वर्ष के दीक्षित व्यक्ति के सुखों की बराबरी सर्वार्थ सिद्ध महाविमान के [illegible] भी नहीं कर सकते है। धवल ! जरा गम्भीरता पूर्वक आन्तरिक [illegible] तो कर ! अरे ये पौद्गलिक सुख साधन तो अपनी [illegible] समर्थ साधनो के होते हुए हमे मोक्ष के अक्षय सुखो की प्राप्ति [illegible] हमे सासारिक जन्म जरा मरण रूप दुःखो का अनुभव [illegible]।

धवल—गुरुदेव ! आपका कहना तो सत्य है, पर यदि मैं दीक्षा [illegible] मेरे मात पिता मुझे कब दीक्षा लेने देवेंगे।

सूरिजी—धवल ! तू दीक्षा ले या मत ले, इसके लिये हमारा कोई [illegible] भी भव्यात्मा का कल्याण करना हमारा परम कर्तव्य है [illegible] दिया है। यदि तेरी आन्तरिक इच्छा दीक्षा लेने की हो तो मेरे अनुमान से [illegible] कार्य मे अन्तराय नहीं डालेगे। पहिले तो तू तेरी आत्मा का [illegible] स्थिरता के बिना सयम साधक मुनियो का निर्वाह सर्वथा दुष्कर है। [illegible] के पक्के रग से रगना अनिवार्य है।

को वंदन किया और तत्काल अपने कार्य में लग गया। इधर सूरिजी के सम्पर्क से धवल की वैराग्य भावना द्विगुणित होने लग गई।

जब संघ यात्रा कर पुनः भिन्नमाल आया तब धवल ने अपने माता पिता से कहा—पूज्यवर! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मेरी इच्छा सूरिजी के पास दीक्षा लेने की है। पुत्र के इस प्रकार वैराग्यमय वचनों को श्रवण कर धवल की माता को दुःख हुआ पर भैंसाशाह ने तनिक भी रंज नहीं किया। वे तो प्रसन्न चित्त होकर कहने लगे बेटा! तू भाग्यशाली है। मेरे दिल में केवल एक यही बात थी कि मेरे घर से कोई एक भावुक दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करे तो मैं सर्वथा कृत्यकृत्य होजाऊं कारण अब मेरे यही कार्य शेष रहा है। देव, मन्दिर मैंने बना लिया, और संघ माताजी ने निकाल दिया। सूरिपद का महोत्सव, चातुर्मास एवं आगम भक्ति भी कर चुका हूँ। बस अब यही एक कार्य अवशिष्ट रहा है जिसकी पूर्ति तेरे द्वारा हो रही है। बेटा मेरा कर्तव्य तो यह है कि मैं भी तेरे साथ दीक्षा लूं और दीक्षा अङ्गीकार करना मैं अच्छा भी समझता हूँ पर क्या करूं अन्तराय एवं चारित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदय से दीक्षा के लिये मेरा उत्साह नहीं बढ़ता है। दूसरी मेरी वृद्धावस्था आचुकी है और वृद्धा माता की सेवा करना मेरा परम कर्तव्य भी है। अतः इनके होते हुए मैं दीक्षा के लिये सब प्रकार से लाचार हूँ।

अपने पतिदेव के उक्त समर्थक एवं वैराग्यवर्धक वचनों को सुनकर धवल की माता को अतिशय दुःख हुआ। उसने कोप के साथ कहा—आप भले ही धवल को दीक्षा दिलाने का प्रयत्न करें पर मैं धवल को कभी भी दीक्षा नहीं लेने दूंगी। भैंसाशाह ने कहा—मैं धवल की दीक्षा के लिये प्रयत्न नहीं करता हूँ पर धवल का निश्चित विचार दीक्षा लेने का होगा तो मैं अनुमोदन अवश्य करूंगा। आपको भी मोह जन्य प्रेम का त्याग कर मेरी बात का समर्थन करना चाहिये क्योंकि संसार में जन्म लेकर मरने वाले तो बहुत हैं पर अपने माता पिता एवं कुल के नाम को उज्ज्वल करने वाले विरले ही हैं—

"स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥"

भगवान श्री कृष्णचन्द्र एवं राजा श्रेणिक ने अपने कुटुम्ब को आदेश दे दिया था कि हमारे से तो अन्तराय कर्मोदय के कारण दीक्षा ली नहीं जाती है पर जो कोई दीक्षा लेना चाहता हो उसके लिये हमारी सदैव आज्ञा है। दीक्षा का महोत्सव भी हम लोग करने को तैय्यार हैं। भला अपने [illegible] दीक्षा जैसे महत्व पूर्ण कार्य में अन्तराय देना कितनी भूल है? अब तो आपको प्रसन्न चित्त होकर धवल को दीक्षा की आज्ञा प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार भैंसाशाह ने अपनी धर्मपत्नी को समझाया कि वह भी सहर्ष धवल को दीक्षा के लिये आज्ञा प्रदान करने को उद्यत होगई।

विकराल-क्रूरदृष्टि के कारण उपकेशवंश में पारस्परिक मनोमालिन्य एवं क्लेश कदाग्रह ने अपना आसन जमा लिया था। गृह क्लेश की इस असामयिक जटिलता के कारण कितने ही आत्मार्थी सज्जनों ने—

"संकिलेसकरं ठाणं दूरओ परिवज्जए"

इस शास्त्रीय वाक्यानुसार अपना मूल निवास स्थान एवं गृह का त्याग कर निर्विघ्न स्थान पर अपना निवास स्थायी बना लिया था। वास्तव में जिस स्थान पर रहने से क्लेश कदाग्रह वर्धित हो और निकाचित कर्म बन्धन के कारण अपना उभयतः अहित हो ऐसे स्थान को दूर से छोड़ देना ही भविष्य के लिये हितकर है। अहा! वह कैसा पवित्र समय था? जन समाज कर्म बन्धन की कुटिलता से कितना भीरु एवं धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था? इस कर्म बंध से डरकर हजारों लाखों की आयदात का त्याग कर देना, तृणवत् मातृभूमि का निर्मोही के समान मोह छोड़ देना, बड़े २ व्यवसाय वाले लक्षाधीश एवं कोट्याधीशों का हजारों वर्षों के निवास स्थान को त्याग कर अपरिचित क्षेत्र में चले जाना—साधारण बात नहीं थी। यह तो उन्हीं महानुभावों से बन सकता है जो पाप भीरु एवं धर्मानुरागी हों। उपकेशपुर का त्याग करने वालों में कोट्याधीश श्रीमान् ससट श्रेष्ठिवर्य भी एक थे। आप कौटम्बिक क्लेश से उद्विग्न हो कोरंटपुर नगर में आ बसे थे। वैसे ही सुचति कुल दिवाकर शा० कर्पी सेठ भी अपने कुल-क्लेश के कारण उपकेशपुर का त्याग कर निकल गये थे। आपने क्रमशः अणहिल्लपुर पट्टन तक पहुंचे जब वहां के साधर्मियों को इस बात की खबर मिली तो उन लोगों ने अपने साधर्मी भाई समझ कर सब तरह की सुविधा के लिए आमन्त्रण किया सेठजी ने उन साधर्मियों का सहर्ष उपकार माने और उनके आमन्त्रण को स्वीकार भी किया तत्पश्चात् उन स्थानीय साधर्मी भाइयों की सलाह लेकर आप बहुमूल्य भेट के साथ वहां के धर्म प्रेमी नरेश महाराजा सिद्धराज जयसिंह के दरबार में हाजिर होकर भेट अर्पण की इस पर राजा ने प्रसन्न हो सेठजी को आपके आगमन का कारण पूछा तो सेठजी ने कहा—राजन्! मैंने आपकी बहुत ही समय से कीर्ति सुनी है। अतः मेरी इच्छा आपकी छत्रछाया में रह कर निर्विघ्न समय यापन करने की है। इस समय मैं सकुटुम्ब आपश्री के सुन्दर राज्य में रहने के लिये ही आया हूँ।

उस समय के नरेश इस बात को भली भांति जानते थे कि उपकेशवंशी लोग बड़े ही [illegible] एवं जबरदस्त व्यापारी होते हैं। व्यापार ही राज्य की आमदनी एवं उत्कर्ष का मुख्य जरिया है। इसीमें राज की मान प्रतिष्ठा है। यही कारण था कि राजा ने सेठ कर्पी का बहुत ही आदर सत्कार किया। [illegible] वस्तुओं को स्वीकार कर उन्हें सन्तुष्ट किया बस फिर तो था ही क्या? सेठ कर्पी ने अणहिल्ल पट्टन को ही अपना निवास स्थान बना लिया। पूर्ववत् अपना व्यापार क्रम आरम्भ कर दिया। पुण्योदय से सेठ कर्पी ने व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया।

[illegible] आचार्यश्री सिद्धसूरिजी का चातुर्मास पाटण में होगया। सेठ कर्पी सूरिजी का [illegible] आचार्यश्री के व्याख्यान-श्रवण का लाभ उठाया एवं तन, मन, धन से [illegible] क्रमानुसार जिनालय निर्माण का विषय [illegible] वर्णन करते हुए सूरिजी ने फरमाया—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अपनी ओर से मन्दिर के लिये आवश्यक भूमि को प्रदान कर सेठ के गौरव को बढ़ाया। क्रमशः राजा का आभार स्वीकार करता हुआ सेठ कदर्पी गुरुदेव के पास आकर अपने व नृप के पारस्परिक वार्तालाप को सुनाने लगा। वृत्तांत श्रवण के पश्चात् आचार्यश्री ने कहा—कदर्पी ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है। कदर्पी ने भी सूरिजी के वचन को आशीर्वाद रूप में समझ कर शुभ शकुन के भांति गांठ लगादी। साथ ही अविलम्ब चतुर शिल्पज्ञ कारीगरों को बुलाकर मन्दिर कार्य प्रारम्भ कर दिया।

जब मन्दिर के लिये कुछ मुख्य वगैरह सामान अन्य प्रदेशों से मंगवाया तो चुङ्गी महकमा के अधिकारियों ने उस माल का टेक्स मांगा। कदर्पी ने कहा—महानुभाव ! यह सामान मन्दिर के लिये आया है अतः इसका हांसिल आपको नहीं लेना चाहिये। धर्म के कार्य निमित्त आने जाने वाली वस्तुओं का टेक्स राजनीति विरुद्ध है, पर महकमा वालों ने हांसिल छोड़ना नहीं चाहा। जहां मन्दिर के लिये लाखों का खर्च करना स्वीकार किया वहां चुङ्गी का थोड़ासा द्रव्य भारी नहीं था पर कदर्पी ने इससे होने वाले भविष्य के परिणाम को सोचा कि—इस प्रकार हांसिल लेना और देना अच्छा नहीं है। यदि कोई साधारण व्यक्ति ऐसा कार्य करे तो उनके लिये कितना मुश्किल है। बस कदर्पी तत्काल पाटण नरेश के पास गया और चुङ्गी महकमे की आय की रकम में कुछ विशेष वृद्धि कर दाण महकमा अपने हस्तगत कर लिया। इस कार्य को हाथ में लेने के साथ ही साथ यह उद्घोषणा करवादी कि मन्दिर या परमार्थ के कार्य के लिये आने जाने वाली वस्तुओं का अब से हासिल नहीं लिया जायगा।

कदर्पी का प्रारम्भ किया हुआ मन्दिर बहुत ही तेजी के साथ हो रहा था। जब मन्दिर का मूल गम्भारा एवं रंगमण्डपादि तैय्यार होगये तो कदर्पी की इच्छा भगवान की अलौकिक प्रतिमा तैय्यार करवाने की हुई। मूर्ति मुख्यतः स्वर्णमय एवं कुछ अंश में पीतल आदि दूसरी धातुओं के मिश्रण से बनवाने का निश्चय किया गया। इसके लिये इस कार्य के सविशेष मर्मज्ञों को बुलवाया गया।

जिस स्थान पर कदर्पी ने मन्दिर बनवाया था उसके पास ही भावडा गच्छ का प्राचीन मन्दिर था उस समय उस मन्दिर में भावडा गच्छीय वीरसूरि नाम के आचार्य रहते थे। शायद उनको यों हुई होगी कि कदर्पी का विशाल मन्दिर बन जाने से हमारे मन्दिर की कान्ति एक दम फीकी पड़ जायगी अतः इस नूतन मन्दिर का बनना उनको खटकने लगा। श्रीवीरसूरिजी बड़े ही चमत्कारी एवं विद्यावली आचार्य थे। [illegible] इस मन्दिर के कार्य में विघ्न करना चाहा अतः इधर तो ४२ अंगुल की मूर्ति बनाकर उस पर [illegible] [illegible] सब प्रकार की तैयारी करली और उधर सुवर्णादि सर्व धातुओं का इस अग्नि प्रयोग से तैय्यार होना [illegible] आकाश में बादल बनाकर केवल उसी स्थान पर जहां मूर्ति बन रही थी वर्षा [illegible] [illegible] अतः इस दुर्घटना से मूर्ति [illegible] [illegible] [illegible] दूसरी बार रस तैय्यार करवाया पर दूसरी बार भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उद्विग्न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] —गुरुदेव ! [illegible] दुर्भाग्य है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] मूर्ति बनाने में [illegible]

की बागडोर प्रायः जैनाचार्य्यों के ही हाथ में थी वे लोग जो कुछ करते उसको महाजन संघ शिरोधार्य कर लेता था तथा इस उदारवृत्ति का प्रभाव अन्य लोगों पर काफी पड़ा था जिन जैनेतरों ने जैन धर्म स्वीकार किया था वे केवल धर्म को अपनाके ही नहीं पर कई लोग अपनी व्यवहारिक सुविधाएं को भी साथ में लेते थी और जैन लोग भी नये जैन बनने वालों को सब तरह की सुविधाएं कर देते थे। कारण उस समय के महाजन संघ के हाथ में एक तो व्यापार और दूसरा राज तंत्र ये दो शक्तिये महान् थी कि नये जैन बनने वालों को उनकी योग्यतानुसार किसी भी कार्य में लगा कर उनको सहायता पहुँचा सकते थे। और यह क्रम विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक थोड़ा बहुत प्रमाण रूप में चला ही आरहा था, जिन मांस मदिरा सेवी क्षत्रियों को आचार्यों ने प्रतिबोध देकर जैन बनाये उसी समय उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार बड़े ही उत्साह के साथ चालू कर देते थे इसकी सात्रूती के लिये भिन्न-भिन्न जाति के राजपूत पृथक २ समय में जैनधर्म स्वीकार किया था पर उन सबका रोटी बेटी व्यवहार अद्यावधि शामिल चला आरहा है।

प्रसंगोपात इतना लिखने के पश्चात् अब हम कोरंटगच्छाचार्यों के बनाये श्रावकों की जातियों की उत्पत्ति का हाल संक्षेप से लिख देते हैं।

पहले तो मुझे इस बात का खुलासा कर देना जरूरी है कि उपकेशवंशादि वंश की जितनी जातियों पूर्व जमाने में थी एवं वर्त्तमान में है वे किसी आचार्य्यों ने स्थापन नहीं की थी न उन जातियों के नाम कारण होने का निश्चय समय ही है और न अजैनों से जैन बनते ही वे जातियां बन गई थी परन्तु पूर्वाचार्यों ने तो अजैन लोगों का अभक्ष खान पान एवं अत्याचार और अधर्म एवं हिंसादि छुड़ा कर जैन श्रावक बनाये थे बाद समयान्तर में कई-कई कारणों से जातियों के नामकरण होते गये। जिन कारणों को इसी ग्रन्थ के भिन्न पृष्ठों पर हम लिख आये हैं जिज्ञासु महानुभाव पृष्ठ पलट कर देख लें।

यह बात भी हम ऊपर लिख आए हैं कि पूर्व जमाने में किसी गच्छ समुदाय के आचार्यों ने अजैनों को जैन बनाये वे पूर्व बनाये हुए वंशों में शामिल कर दिये थे पर अपनी वाड़ा बन्दी के लिये अपने श्रावकों को पृथक् २ नहीं रखे थे। पर विक्रम की नवमी दसवीं शताब्दी के आचार्यों के हृदय ने पलटा खाया और वे अपने बनाये श्रावकों को अपने गच्छ के उपासक बनाये रखने को उन नूतन श्रावकों की जातियों को अपने गच्छ के नाम से ओलखाने लगे जिसमें कोरंटगच्छ के आचार्य भी शामिल आजाते हैं।

कोरंटगच्छ के आचार्यों के लिये मैं ऊपर लिख आया हूँ कि पहले पांच नामों में और बाद में तीन नामों में ही इनकी पट्ट परम्परा चली आई थी। जैसे उपकेशगच्छ की परम्परा पाठकों को सुविधा के लिये यहां दोनों गच्छ के आचार्यों की नामावली लिखदी जाती है इसका एक कारण यह भी है कि जैसे उपकेश गच्छाचार्यों का समय लिखा मिलता है वैसे कोरंटगच्छ के सब आचार्यों का समय लिखा हुआ नहीं मिलता है। अतः उपकेश गच्छाचार्यों की नामावली साथ में देने से कोरंटगच्छाचार्यों के समय का भी अनुमान लगाया जा सकेगा।

अब हम पाठकों की सुविधा के लिये यहां पर दोनों गच्छों के आचार्यों की पाट-वार नामों के क्रमानुसार ... नाम से जिनकी नामावली यह दे दी जाती है।

भगवान् पार्श्वनाथ

४—आचार्य केशीश्रमणाचार्य
५—आचार्य स्वयं प्रभसूरि

६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (१)
७—आचार्य यक्षदेवसूरि
८—आचार्य कक्कसूरि
९—आचार्य देवगुप्तसूरि
१०—आचार्य सिद्धसूरि
११—आचार्य रत्नप्रभसूरि (२)
१२—आचार्य यक्षदेवसूरि
१३—आचार्य कक्कसूरि
१४—आचार्य देवगुप्तसूरि
१५—आचार्य सिद्धसूरि
१६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (३)
१७—आचार्य यक्षदेवसूरि　११५
१८—आचार्य कक्कसूरि　१५७
१९—आचार्य देव गुप्तसूरि　१७४
२०—आचार्य सिद्धसूरि　१७७
२१—आचार्य रत्नप्रभसूरि (४)　१९९
२२—आचार्य यक्षदेवसूरि　२१८
२३—आचार्य कक्कसूरि　२३५
२४—आचार्य देवगुप्तसूरि　२६०
२५—आचार्य सिद्धसूरि　२८२
२६—आचार्य रत्नप्रभसूरि (५)　२९८
२७—आचार्य यक्षदेवसूरि　३१०
२८—आचार्य कक्कसूरि　३३६
२९—आचार्य देवगुप्तसूरि　३५७
३०—आचार्य सिद्धसूरि　३७०
३१—आचार्य रत्नप्रभसूरि (६)　४००
३२—आचार्य यक्षदेवसूरि　४२४
३३—आचार्य कक्कसूरि　४५०
३४—आचार्य देवगुप्तसूरि　४८०
३५—आचार्य सिद्धसूरि　५२०

१—आचार्य कनकप्रभसूरि (१)
२—आचार्य सोम प्रभसूरि
३—आचार्य नन्नसूरि
४—आचार्य कक्कसूरि
५—आचार्य सर्व देवसूरि
६—आचार्य कनकप्रभसूरि (२)
७—आचार्य सोमप्रभसूरि
८—आचार्य नन्नप्रभसूरि
९—आचार्य कक्कसूरि
१०—आचार्य [illegible]
११—आचार्य [illegible] (३)
१२—आचार्य सोम [illegible]
१३—आचार्य [illegible]
[illegible]

इस समय दोनों शाखाओं में आचार्य के दो [illegible]
तीन-तीन नामों से पट्ट क्रम चला जैसे—

३६—आचार्य कक्कसूरि　५५८　　[illegible]

कोरंटगच्छ के पट्ट क्रम में ४५ वें पट्ट पर आचार्य नन्नप्रभसूरि एक महान् प्रतिभाशाली आचार्य थे आपकी कठोर तपश्चर्या से कई विद्या एवं लब्धियों आपको स्वय वरदाई थी। आपकी व्याख्यानशैली तो इतनी आकर्षित थी कि मनुष्य तो क्या पर कभी कीभी देव देविया भी आपकी अमृतमय व्याख्या देशना सुनने को ललायित रहते थे। एक समय आचार्यश्री विहार करने जा रहे थे कि जंगल मे आपको कई घुड़ सवार तथा अनेक सरदार मिले—

क्षत्रियो ने सूरिजी महाराज को नमस्कार किया।

सूरिजी ने उच्च स्वर से धर्म लाभ दिया।

क्षत्रियों ने—महात्माजी केवल धर्म लाभ से क्या होने वाला है कुछ चमत्कार हो तो बतलाओ।

सूरिजी—आप लोग क्या चमत्कार देखना चाहते हैं ?

क्षत्रिय—महात्माजी। हम निर्भय स्थान चाहते हैं ?

सूरिजी—आप अकृत्य कार्यों को छोड़ कर जैन धर्म की शरण ग्रहण करलें और इस लोक में [illegible] भवोभव में निर्भय एवं सुखी बन जाओगे ?

क्षत्रिय—महात्माजी ! आपके सामने हम सत्य बात कहते हैं कि हम लूट, [illegible] कर, धाड़ा डालने का धंधा करते हैं यद्यपि हम इस धधे को अच्छा नहीं समझते हैं तथापि हमारा [illegible] यही एक साधन है।

सूरिजी—महानुभावों ! इस धधे से इस भव मे तो [illegible] हैं तब परभव मे तो निश्चय ही दु.ख सहन करना पड़ेगा। यदि आप इस भव में और परभव में सुखी होना चाहते है तो जैन धर्म की शरण लें।

क्षत्री—महात्माजी ! हम जैन धर्म स्वीकार कर भी लें तो क्या आप हमारा [illegible]।

सूरिजी—धर्म के प्रभाव में मै ही क्यों पर महाजन संघ [illegible] से सखी बना देगा।

मेला मनावेंगे। इत्यादि राव धुवड़ के शब्द सुन कर दया के दरियाव आचार्य नन्नप्रभसूरि धुवड़ादि को भक्त लोगों को साथ लेकर पहाड़ों के बीच रातड़िया भैरूं के स्थान पर आये वहां पर देखा तो चारों ओर मानव मेदिनी मिली हुई है बहुत से भैरूं भक्त वाममार्गियो के नेता लोग गेरु रंगीन लाल वस्त्र पहिने हुए कमर में बड़े बड़े घूगरे लगाये हुए और मदिरा पान में मस्त बने हुए तीक्ष्ण छुरे हाथों में लिये हुए भैरूं के मन्दिर के बाहर खड़े थे। भैंसो और बकरों के गले में पुष्पों की माला डाली हुई थी और भैरूं पूजा की तय्यारी होरही थी कि सूरिजी वहां पहुँच गये। बस सूरिजी को देखते ही उन पाखण्डियों का क्रोध के मारे शरीर लाल बंबुल होकर काम्पने लगा। राव धुवड़ ने आकर सूरिजी से कहा प्रभो ! मामला बड़ा विकट है मुझे भय है कि पाखण्डी लोग मदिर में मस्त बने हुए कहीं आपकी आशातना न कर बैठे। अतः यहाँ से चल कर अपने स्थान पर पहुँच जाना चाहिये। सूरिजी ने कहा धुवड़ घबराते क्यों हो मनुष्य को मरना एकबार ही है आप जरा धैर्य रखो। बस ! अहिंसा के उपासक सूरिजी के पास आकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। सूरिजी ने अम्बा देवी का मन से स्मरण किया तत्काल देवी आदर्शत्व सूरिजी की सेवा में आ उपस्थित हुई। सूरिजी ने कहा-तुम्हारे जैसी समग्दृष्टि देवियों के होते हुए भी इस प्रकार के घोर अत्याचार होते हैं। क्या ऐसे निर्दयी मनुष्यों को तुम शिक्षा नहीं दे सकती हो ? देवी ने कहा हे प्रभो ! इन लोगों के आधीन नीच हलके देव देवी रहते है उन हलके देवों का सामना करने से देव समुह हमारी इज्जत हलकी समझते हैं। अतः इनकी उपेक्षा ही की जाती है। सूरिजी ने कहा कि खैर, इस विषय में तो फिर कुछ कहेंगे पर यह जो मेरे सामने अत्याचार हो रहा है इसका तो निवारण हो ही जाना चाहिये। देवी ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य करली। जब वे लोग भैरू के सामने भैंसे बकरे लेजाकर मारने के लिये तलवारें, छुरे और भाले हाथों में लेकर हाथ ऊंचे उठाये तो हाथ ऊंचे के ऊंचे रह गये और भैरूं की स्थापन (मूर्ति) से आवाज निकली कि मैं इस बलि को नहीं चाहता हूँ इन सब पशुओं को यहाँ से शीघ्र छोड़ कर मुक्त करदो वरन मैं तुम्हारा ही भोग लूंगा। सब उपस्थित लोग विचार करने लगे कि अपनी वंश परम्परा से वर्ष में इसी दिन भैरूं की पूजा की जाती है, बलि दिया जाता है [illegible] आज यह क्या चमत्कार है कि एक तरफ हाथ ऊंचे रह गये और दूसरी ओर स्वयं भैरू बोल कर कहता है कि इन पशुओं को छोड़ दो इत्यादि। पर कई लोगों ने कहा कि अरे एक जैन सेवड़ा यहाँ आकर बैठा है यह सब उसी की तो करामात न हो ? बस, जितने लोग वहां थे [illegible] कि दूसरा कारण हो ही नहीं सकता है। अतः कुछ आगेवान चलकर सूरिजी के पास आये और प्रार्थना की कि आपने यह क्या किया है ? आपने हमारे वंश परम्परा से चले आये हुए मेले का बन्द कर दिया ? सूरिजी ने कहा कि सब लोगों को यहां बुलाओ फिर मैं उत्तर दूंगा। बस सब लोग सूरिजी के पास आगये। तब सूरिजी ने [illegible] को उपदेश दिया कि महानुभावो ! आपके लिये संसार में बहुत से पदार्थ है। गुड़, खांड, घृत, दूध, मेवा [illegible] में नहीं आता कि आप लोगों की अमूल्य सेवा करने वाले अबोल पशुओं के [illegible] क्यों मारते हो ? क्या इस अनर्थ का भवान्तर में आपको [illegible] भवान्तर में आपके गले पर इसी प्रकार का छुरा चलेगा तब आपको [illegible] इत्यादि। ऐसा उपदेश दिया कि सुनने वालों को [illegible] वे लोग बोले कि महात्माजी ! हम लोग तो हमारी जिन्दगी में [illegible] जो बलि दी है क्या [illegible] बाजार में व्यापारी की दुकान से [illegible] कर आप ने [illegible] तो [illegible] है [illegible] है [illegible] मनुष्य को [illegible]

होती नजर आई हिंसा के पक्ष में पृथ्वीपुर का राव सांखला अमेश्वर था उसकी समझ में आया कि हिंसा कभी धर्म का कारण हो ही नहीं सकता है दूसरा जैन निर्ग्रन्थों का आचार विचार परोपकार की तीव्र भावना और उनकी निस्पृहता ने रावजी पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। रावजी ने सूरिजी से आत्मकल्याणार्थ धर्म स्वरूप पूछा उत्तर में सूरिजी ने अहिंसा परमोधर्मः का विस्तृत विवरण के साथ स्वरूप बतलाया और साथ में देवगुरु धर्म का भी ठीक २ विवेचन किया और कहा रावजी आत्म कल्याण के लिये सबसे पहले तो देव गुरु पर श्रद्धा होनी चाहिये तब जाकर धर्म के ऊपर निश्चय परिणाम स्थिर हो सकता है। अब आप स्वयं प्रज्ञावान् हैं विचार करलो कि कौन से देवगुरूजी की उपासना करें कि जिससे आत्मा का कल्याण हो सके! रावजी ने ठीक समझ लिया कि सिवाय परोपकार के सूरिजी ने अभी तक तो कोई भी बात स्वार्थ की नहीं कही है इनका आचार तो वहाँ तक है कि इनके लिये बनाई गई रसोई या इनके लिए सामान लेकर आवे तो वह भी इनके काम की नहीं। इससे अधिक त्याग क्या हो सकता है। इनकी तपश्चर्या भी बड़ी कठोर है कि अन्य किसी के मत में देखने मे नहीं आती है इत्यादि विचार कर रावजी अपने सकुटुम्ब एवं अपने बहुत से साथियों के साथ सूरिजी के चरण कमलों मे श्रद्धापूर्वक जैन धर्म को अङ्गीकार कर लिया।

राव सांखला ने अपने वहां भगवान् पार्श्वनाथ का उतंग मन्दिर बनवाया जिस पर सुवर्ण कलस चढ़ा कर प्रतिष्ठा करवाई। रावजी ज्यों ज्यों धर्म कार्य में आगे बढ़ते गये त्यों त्यों उनके पूर्व सञ्चित पुण्य भी उदय होते गये। रावजी को प्रत्येक कार्य मे अधिक से अधिक लाभ मिलता गया साथ मे आचार्यों का उपदेश भी मिलता गया इधर महाजनसंघ के साथ भी रावजी का सब तरह का व्यवहार होने लगा। एक बार राव सांखला ने सूरिजी को बुला कर प्रार्थना की कि प्रभो! मेरा विचार तीर्थ यात्रा करने का है। अतः संघ निकाला जाय तो और भी हमारे हजारों भाइयों को तीर्थयात्रा का लाभ मिल सकता है। अतः आपकी इसमें क्या सम्मति है। सूरिजी ने कहा रावजी! आप बड़े ही भाग्यशाली हैं, गृहस्थ का तो यह खास कर्तव्य ही है कि सामग्री के होते हुए तीर्थयात्रा अवश्य करे और अपने साधर्मी भाइयों को भी यात्रा करावें। बस, फिर तो था ही क्या रावजी ने बड़े ही पैमाने पर संघ निकालने की तैयारियां शुरू करवा दी और सर्वत्र आमन्त्रण भी भिजवा दिये। ठीक समय पर सूरिजी ने वासक्षेप के विधि विधान से राव सांखला को संघपति पद प्रदान कर संघ निकाला। सर्व तीर्थों की यात्रा कर, संघ के वापिस आने पर स्वामीवात्सल्य कर साधर्मी भाइयों को पहरावणी देकर विसर्जन किये। उसी दिन से ही राव सांखला की सन्तान सांखेचा के नाम से प्रसिद्ध हुई और आगे चल कर उनकी जाति ही सांखेचा हो गई।

इस सांखेचा जाति का भाग्यरवि उन्नति पथ में तपने लगा कि उनकी सन्तान की बहुत वृद्धि हुई और [illegible] राजस्थान के अनेक स्थानों में [illegible] की तरह फैल गई। इस जाति में बहुत से नामी नामी [illegible] हुए कि देश समाज एवं धर्म की बड़ी सेवाएं कर अपनी उज्ज्वल कीर्ति को अमर [illegible] बनाने के [illegible] का काम किया वे [illegible] कहलाये। [illegible] कहलाये। कई [illegible] आने से [illegible] कहलाये। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

५—खींवसर, मूल चौहान राजपूत थे कोरंटगच्छीय आचार्य ककसूरि ने वि० सं० १०१६ में प्रतिबोध देकर जैन बनाये और खींवसर ग्राम के नाम पर वे लोग खींवसरे कहलाए हैं। इनके पूर्वजों ने अनेकों मंदिर बनवाये कई बार तीर्थों के संघ निकाले कई बार दुष्कालों में देशवासी भाइयों एवं पशुओं के प्राण बचाए इत्यादि।

६—मिन्नी यह भी चौहान राजपूत थे इनके पूर्वजों ने भी जैनधर्म स्वीकार करके जैन धर्म की बड़ी २ सेवाएं की हैं। इस जाति के नामकरण के लिये वन्शावलियों मे ऐसी कथा लिखी है कि इस जाति में एक सहजपाल नाम का धनी पुरुष हुआ। वह किसी व्यापारार्थ द्रव्य लेकर जा रहा था कि रास्ते में कई हथियार बन्द लुटेरे मिल गये। जब सहजपाल को लूटने लगे तो सहजपाल पागलसा बन गया था पर उसकी बुद्धि ने सिखाया और बोला ठाकुरों! आप लोग बिना हिसाब धन क्यों ले रहे हैं। हां, आपको धन की जरूरत है तो खत तो मंडवालो, सरदारों ने कहा कि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम अपना खत मांडलो। इस हालत मे शाह ने कागद बही निकाल कर ठाकुरों के नाम खत लिख लिया और कहा कि ठाकुरों इस खत मे किसी की साख उलवाने की सख्त जरूरी है। ठाकुर ने कहा इस जंगल में किस की साख दिलवाई जाय? शाह ने कहा कि साख बिना तो खत किस काम का? ठाकुरों ने कहा इस लुंकड़ी की साख डालदें। ठीक शाह ने ऐसा ही किया। ठाकुर माल ले गये। शाह ने सबकी जोड़ लगाई तो करीब ५०००) रु० का माल था सेठजी अपने मकान पर आगये। कोई दो चार वर्ष गुजर गये। बाद मे एक समय वे ही ठाकुर ग्राम में आये। शाह ने पल्ला पकड़ कर कहा ठाकुरों अभी तक मेरे खत के रुपये वसूल नहीं हुए ठाकुर ने कहा—कौनसे रुपये? शाह ने कहा—क्या आप भूल गये इत्यादि। आपस मे तकरार होगई तब दोनों राज में गये। शाह ने जोर-जोर से कहा कि देख लीजिये इन ठाकुरों ने हमसे द्रव्य लेकर खत लिख दिया और इस खत में मिन्नी की साख भी उलवाई है इस पर ठाकुर बोले—शाहजी आप राज कचहरी मे भी झूठ बोलते हैं। मिन्नी की साख कब उलवाई थी? साख तो उलवाई था लुकड़ी की इस पर न्यायाधीश ने समझ लिया कि ठाकुरों ने रकम जरूर ली है और शाह ने भी बड़ी बुद्धिमत्ता की है कि लुकड़ी के स्थान पर मिन्नी का नाम लेकर ठाकुरों से सच बोला ही लिया। न्यायाधीश ने कहा ठाकुरों आपने लुकड़ी की साख उलवाई तो भी सेठजी से रुपये तो जरूर लिये थे इस पर ठाकुरों को सेठजी की रकम का फैसला करना पड़ा उसी दिन से सेठजी की सन्तान मिन्नी नाम से प्रसिद्ध हुई। समयान्तर तो सेठजी की जाति ही मन्नी होगई है।

इसी मिन्नी जाति में भी बहुतसे दानी मानी नररत्न होकर कई मंदिर बनाये कई संघ निकाल कर यात्रा की और स्वामी भाइयों की मुक्त [illegible] की। कइयों ने दुष्कालों में लाखों करोड़ों का द्रव्य [illegible] कीर्ति उपार्जन की। [illegible], कसाणी, लाडुआ, मंत्री आदि कई जातियां भी इसी मिन्नी [illegible] से निकली।

[illegible] आदि को [illegible] आदि व्यसन छुड़ाकर जैन बनाया। [illegible]

[illegible]

दुष्कालादि में देश सेवा तथा जनोपयोगी तालाब कुवे वगैरह् करवाने का और इन जातियों के वीर पुरुषों ने अपने देश वासियों के तन मन धन एवं बहिन बेटियों के सतीत्व धर्म की रक्षा के लिये युद्ध कर म्लेन्छों को परास्त किये तथा अपने प्राणों की आहुती देकर बड़ी बडी सेवाए की तथा उन युद्ध मे काम आने वालों की धर्मपत्नियाँ जो अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा एव पति के अनुराग से उनके पीछे उनकी धकधक करती हुई चिता की अग्नि मे सती होगई इन सब बातों का उल्लेख वंशावलियों मे किया गया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां पर इतना ही लिखा है। हाँ, कभी समय मिला तो एक अलग पुस्तक रूप मे छपवा कर पाठकों के कर कमलो में रख दिया जायगा।

बाठिया जाति को वि० सं० ६१२ मे आचार्य भावदेवसूरि ने आबू के पास पास परमार राव के गांव के राव माधुदेवादि को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। उन्होंने तीर्थ श्री शत्रुंजय का विराट संघ निकाला जिसमें इतने मनुष्य थे कि जगल मे बाठ-बाठ पर आदमी दीखने लगे और संघपति ने उदारता से बाठ बाठ पर रहे हुए प्रत्येक नर नारी को पहरावणी दी जिसमे जनता कहने लग गई कि संघपतिजी का क्या कहना है आपने बाठ बाठ पर पहरावणी दी है बस उसी दिन से आपकी सन्तान बाठिया नाम से प्रसिद्ध हुई। [illegible] में बहुतने ऐसे नामांकित पुरुष हुए कि वि० स० १३४० के आस पास मे बाठिया [illegible] की कावड़ें ही चल रही थी। इसमे वे कवाड़ के नाम से मशहूर हुए। वि० स० [illegible] मे [illegible] की जरुरत पडी, जोधपुर दरबार को कहा तो आपने मेड़ता के बाठियों [illegible] पर [illegible] रकम न होने से कुछ चिंता होने लगी एक दिन शाहजी व्याख्यान में [illegible] के बाद आचार्य ने शाहजी को उदासी का कारण पूछा तो शाहजी ने कहा कि [illegible] बादशाह के बोहरे तो बन गये हैं पर हमारे पास इतनी रकम नहीं है [illegible] रकम माँग बैठे। इस पर आचार्यश्री ने कहा कि आपके घर में [illegible] सिक्के डाल कर रख देना। शाहजी ने ऐसा ही किया जब समय पाकर [illegible] उन सिक्के वाली थैलियों पर वासक्षेप डाल कर कहा कि इन थैलियों में से [illegible] चाहे द्रव्य निकालते ही रहना बस, फिर तो था ही क्या। शाहजी [illegible] निकाले कि शाहजी के घर मे ऐसा कोई स्थान ही नहीं कि [illegible] पीछे एक पशु बांधने का नोहरा था उसके अन्दर [illegible]

एवं दरबार देख कर आश्चर्यान्वित बन गये कि सच शाह तो शाह ही है इन महाजनों की बराबरी संसार में क्या राजा और क्या बादशाह कोई नहीं कर सकते हैं ? उस दिन से इन बांठियो की जाति शाह हो गई। इनके भाई हरखाजी थे उनकी संतान हरखावतो के नाम से प्रसिद्ध हुई इस प्रकार बांठियों जाति की शाखाएं प्रसिद्धि मे आई। बाठियों जाति का शुरू से आज तक का कुर्सीनामा श्रीमान् धनरुपमलजी शाह अजमेर वालों के पास विद्यमान है जिज्ञासुओं को मंगवाकर पढ़ लेना चाहिये।

२—बरड़िया-आचार्य कृष्णर्षि एक समय विहार करते हुए नागपुर में पधारे वहां पर एक नारायण नाम का सेठ रहता था उसका धर्म तो ब्राह्मण धर्म था पर उसके दिल मे कुछ अर्से से शंका थी जब कृष्णर्षि नागपुर में आये तो नारायण ने गुरुजी के पास जाकर धर्म के विषय मे प्रश्न किया तो गुरुजी ने अहिंसा परमोधर्म के विषय में बड़ा ही रोचक और प्रभावपूर्ण जोरदार उपदेश दिया जिसको सुन कर नारायण ने अपने ५०० साथियों के साथ जैन धर्म को स्वीकार कर लिया।

श्री कृष्णर्षि के उपदेश से श्रेष्ठि नारायण ने एक मन्दिर बनाने का निश्चय किया। अतः वहाँ बहुमूल्य भेट लेकर राजा के पास गया नजराना करके भूमि की याचना की। इस पर धर्मात्मा नरेश ने कहा सेठजी देव मन्दिर के लिये भूमि निमित भेट की क्या जरूरत है ? आप भाग्यशाली हैं कि अपने पास से द्रव्य व्यय कर सर्व साधारण के हितार्थ मन्दिर बनाते हैं तब भूमि जितना लाभ तो मुझे भी लेने दीजिये। अतः आपको जहाँ पसन्द हो भूमि ले लीजिये इत्यादि। सेठ नारायण ने किले के अन्दर ही भूमि पसन्द की। राजा ने आदेश दे दिया बस सेठ ने बहुत जल्दी से जैन मन्दिर बनवा दिया। अधिक कारीगर एवं मजदूर लगाने से मन्दिर जल्दी में तैयार होगया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य देवगुप्तसूरि के कर कमलों से करवाई और उस मन्दिर की सार संभार के लिये एक संस्था कायम की जिसमें ७२ पुरुष एवं ७२ स्त्रियाँ सभासद बनाये गये इसमें पाया जाता है कि एक समय मन्दिरों की सार संभार में स्त्रियाँ भी अच्छा भाग लिया करती थी।

इनकी सन्तान परम्परा मे पुनड़ नाम का एक नामाकिंत श्रेष्ठि हुआ। देहलीपति बादशाह का [illegible] हुआ पात्र था अर्थात् बादशाह पुनड़ का बड़ा ही मान सन्मान रखता था एक समय पुनड़ ने नागपुर से एक [illegible] गिरनार का बड़ा भारी संघ निकाला जब गुर्जर भूमि में पदार्पण किया तो वस्तुपाल तेजपाल ने उस संघ पति एवं संघ का बड़ा भारी सम्मान किया। वस्तुपाल तेजपाल के गुरु आचार्य [illegible]चन्द्रसूरि वगैरह संघ में शामिल हुए। और अधिक परिचय के कारण श्रीमान पुनड़ शाह उन आचार्यों की उपासना एवं समाचारी करने लगा वे अद्यावधि तपागच्छ के ही उपासक बने हुए हैं।

३—[illegible] जैन जातियों में यों तो संघी प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं कारण जिस किसी ने तीर्थों की [illegible] संघ निकाल कर [illegible] दे देता है वे ही संघी कहलाते हैं पर इस यहाँ पर उस संघी जाति की [illegible] है कि जो अजैनों से जैन बनते ही वे संघी कहलाए।

[illegible] ने आचार्य सर्वदेवसूरि विहार करते हुए आबू के आस-पास पधारे वहाँ एक [illegible] राजा राज करता था जब आचार्य [illegible] [illegible] दर्शनार्थ आये। सूरिजी ने [illegible] [illegible] सूरिजी ने प्रार्थना की कि भगवान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

भी तो भोजन करेगा। बस, वह बनाया हुआ मांस का भोजन ज्यों का त्यों पड़ा रहा। अब तो यह बात अन्तेवरादि सर्वत्र फैल गई। दूसरे दिन कुछ समय के बाद सूरिजी राज सभा में पधारे। राजा ने सिंहासन से उतर कर सूरिजी का सम्मान किया और उच्चासन पर विराजने की प्रार्थना की। सूरिजी भूमि प्रमार्जन कर अपनी कम्बली बिछा कर योग्य स्थान पर बैठ गये। सूरिजी को आया देख बहुत से दूसरे लोग भी सभा में आगए। कुछ अन्तर में जनाना सरदार भी बैठ गये। तत्पश्चात् सूरिजी ने अपना उपदेश देना प्रारम्भ किया जिसमे पहले हिंसा के कटु फल का बयान किया। बाद मे अहिंसा से होने वाले फायदों का सविस्तार विवेचन किया। तत्पश्चात् जैन तीर्थंकर क्षत्रिय कुल मे अवतार लेकर अहिंसा का खूब जोरों से उपदेश दिया इत्यादि सूरिजी ने ऐसा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया कि राजा के एक-एक प्रदेश मे सूरिजी का उपदेश क्षीर नीर की तरह निवास कर दिया। बस क्षत्रिय जैसी वीर जाति के समक्ष मे आजाने के बाद तो कहना ही क्या? राजा और राणी व पुत्रादि सब लोगो ने मास मदिरादि बुरे कर्मों को त्याग कर जैनधर्म अर्थात् 'अहिंसा परमोधर्मः' को स्वीकार कर लिया फिर तो 'यथा राजास्तथा प्रजा' वाली युक्ति से और भी बहुत से लोगो ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया।

राव जगमाल ने अपने नगरी में भ० महावीर का मंदिर बनवाया, राव जगमल के बड़े पुत्र झामड़ ने तीर्थों की यात्रार्थ बड़ा भारी संघ निकाला। श्री शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा कर वापिस आया और स्वामी वात्सल्य कर संघ पूजा कर पहरावणी दी। आगे चल कर राव झामड़ की संतान झामड़ नाम से मशहूर हुई। यथा कई स्थानों पर यह भी लिखा मिलता है कि झामड़ के वृक्ष के नीचे शुभ लग्न में सूरिजी ने वासक्षेप दिया था जिससे वे खूब ही फूले फले। इससे वे झामड़ की सन्तान झामड़ कहलाने लगे तथा आज तक वगैरह इस झामड़ जाति की शाखाएं है फिर तो उस खानदान की झामड़ जाति बन गई। झामड़ झाड़ के नीचे झामड़ कहलाये और इस जाति की उत्तरोत्तर इतनी वृद्धि हुई कि सर्वत्र प्रसरित होगई और कई उदार एवं वीर नररत्नों ने देश समाज एवं धर्म की बड़ी-बड़ी सेवाए की और कई कारणों से इस जाति की कई शाखाएँ रूप जातियें बन गई। इस जाति की वंशावलियों तपागच्छ के कुलगुरु लिखते हैं।

४—सुराणा जाति-वि० सं० ११३२ मे आचार्य धर्मघोषसूरि विहार करते हुए अजयगढ़ के आसपास मे ठेडापुर नगर में पधारे वहा के पवार रावसूर को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। राव सूर की संतान सुराणा

कारण एक गच्छ के श्रावकों की वंशावलियों दूसरे गच्छ वाले मांडने लग गये हैं।

२—अंचल गच्छाचार्य्यों में आचार्य जयसिंहसूरि, धर्मघोषसूरि, महेन्द्रसूरि, सिंहप्रभसूरि, अजित देवसूरि, आदि बहुत प्रभाविक आचार्य हो गये हैं उन्होंने भी हजारों अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ की खूब उन्नति की थी। आगे चल कर उन नूतन श्रावको की भी कई जातियाँ बन गई जैसे कि १—गाला, २—आयगोता, ३—बुड्ड, ४—सुभद्रा, ५—बोहरा, ६—सियाल, ७—कटारिया, कोटेचा, रजपुरा बोहरा, ८—नागड़गोता, ९—मिटडिया बोहरा, १०—घरवेला, ११—वडेर, १२—गोंधी, १३—देवानन्दा, १४—गोतमगोता, १५—डोसी, १६—सोनीगरा, १७—कोटिया, १८—हरिया, १९—देढिया, २०—बोरेचा। इन जातियो की उत्पत्ति वगैरह का सब हाल पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वालों के पास है। इनमें कितनेक हालात तो आंचलगच्छ की बड़ी पट्टावली मे छप भी गये हैं। संक्षिप्त जैन गोत्र संग्रह नामक पुस्तक में भी छपा है।

३—मलधारगच्छ-इस गच्छ में भी पूर्णचन्द्रसूरि, देवानंदसूरि, नारचन्द्रसूरि, देवानंदसूरि, [illegible] सूरि, तिलकसूरि आदि महान् प्रतापी आचार्य हुए हैं। इन महापुरुषों ने भू भ्रमन कर हजारों जैनेतरों को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाए और उस समय से ही उनको महाजन संघ में शामिल मिला लिए तथा उनके साथ रोटी बेटी का व्यवहार चालु कर दिया। आगे चल कर कोई-कोई कारणों से उन की जातियाँ बन गई उनके नाम निम्नलिखित हैं:—

१—पगारिया, (गोलिया कोठारी संघी), २ कोठारी, गीरिया; ४ बबल, ५ गंग, ६ गेहलड़ा, ७ खाटमरा, आदि कई जातियो की वंशावलीयों को मलधार गच्छ के कुलगुरु लिखा करते हैं।

४—पूर्णिमियागच्छ—इस गच्छ मे भी महान विद्वान् एवं प्रभाविक आचार्य हुए जिसमें चन्द्रप्रभसूरि, धर्मघोष सूरि, मुनिरत्नसूरि, सोमतिलक सूरि आदि कई आचार्य हुए। उन्होंने भी हजारों जैनेतरों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मी बना कर महाजन संघ की खूब ही वृद्धि की। आगे चल कर कई-कई कारणों से उन नूतन जैनों की जातियां बनगई जिनके नाम ये हैं:—

१—साढ़, २—सियाल, ३—मानेचा, ४—पूनमिया ५—मेघाणी, ६—धनेरा इत्यादि। इन जातियों की वंशावलियें पुनमिया गच्छ की पोसालों वाले लिखा करते हैं।

५—आगमिया गच्छ—इस गच्छ में भी कई प्रभाविक आचार्य हुए हैं। जिसमें आचार्य शीलगुणसूरि, सिंहसूरि, देवरत्नसूरि वगैरह कई आचार्य हुए जिन्होंने अपने विहार के अन्दर बहुत से अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ की बड़ी वृद्धि की थी। आगे चल कर कई-कई कारणों से उन नूतन जैनों की भी कई जातियें बन गई जिनके नाम ये हैं:—

१—[illegible], २—[illegible] ३—[illegible], श्रीपति—तलेरा, ४—कोठारी। इनकी भी कई शाखाएँ [illegible] इन जातियों की वंशावलीयें [illegible] आगमिया गच्छ की पोसालों के कुल गुरु लिखा करते हैं।

६—[illegible]—इस गच्छ में आचार्य [illegible] हुए [illegible] आदि [illegible] ने अपने विहार के अन्दर कई अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ [illegible] की बाद में कई कारणों से अलग-अलग जातियां बन गई जैसे १—[illegible] २—[illegible], ३—[illegible], ४—[illegible], ५—[illegible] [illegible] जैन जातियों में [illegible]।

[illegible]

१९—लालपुर	के	चोरड़िया	जाति के	शाह	धर्मा ने	भ० महावीर के मन्दिर की प्र०
२०—मथुरापुरी	के	करणावट	,,	,,	गोरा ने	,, ,, ,, ,,
२१—रणथंभोर	के	संचेती	,,	,,	थेरु ने	,, ,, ,, ,,
२२—हंसावली	के	श्रेष्ठि	,,	,,	दुर्गा ने	,, ,, ,, ,,
२३—अजयगढ	के	पोकरणा	,,	,,	पेथा ने	,, सीमंधर ,, ,,
२४—शंकम्भरी	के	चौहान	,,	,,	वखता ने	,, भवि तीर्थङ्कर ,, ,,
२५—पद्मावती	के	प्राग्वट	,,	,,	वीरम ने	,, महावीर ,, ,,

आचार्यश्री के ४६ वर्षों के शासन में संघादि शुभ कार्य

१—सोपारपटण	से	श्रेष्ठि	जाति के	मोकल ने	श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला
२—अणहिल्ल पटण	से	चोरड़िया	,,	जिनदास ने	,, ,,
३—देवपटण	से	सचेती	,,	मालदेव ने	,, ,,
४—चन्द्रावती	से	चंडालिया	,,	छाजू ने	,, ,,
५—कोरंटपुर	से	भाला	,,	पोकर ने	,, ,,
६—भीनमाल	से	मल्ल	,,	याहड़ार ने	,, ,,
७—सत्यपुरी	से	घटिया	,,	नेणसी ने	,, ,,
८—नारदपुरी	से	छाजेड़	,,	लाखण ने	,, ,,
९—कीराटकुम्प	से	कनोजिया	,,	अज्जड़ ने	,, ,,
१०—डमरेलनगर	से	आर्य्य	,,	गोपाल ने	,, ,,
११—मालपुर	से	कुम्मट	,,	सुजाण ने	,, ,,
१२—उपकेशपुर	से	जांघड़ा	,,	करमण ने	,, ,,
१३—नागपुर	से	रांका	,,	धोकल ने	,, ,,
१४—खटकूप	से	तातेड़	,,	लाखा ने	,, ,,
१५—विजयपट्टण	से	भुरट	,,	गोरखन ने सं० ११४४ के दुष्काल में लाखों के प्राण बचाये।	
१६—उज्जैन	से	डेडिया	,,	धन्ना ने सं० ११५६ के दुकाल में करोड़ों द्रव्य व्यय किया।	
१७—माडवगढ़	से	मनदड़िया	,,	सांखला की माता ने एक बावड़ी बनाई लाखों का व्यय किया।	
१८—चित्रकोट	से	पोकरणा	,,	राजा की पुत्री मानी ने शत्रुञ्जय किया एक कुआ बनाया।	
१९—वाटिका	से	प्राग्वट	,,	मंत्री रणधीर युद्ध में काम आया आपकी स्त्री सती हुई।	
२०—मेदिनीपुर	से	श्री श्रीमाल	,,	हर्षण ,, ,,	,, ,,
२१—नागपुर	के	प्राग्वट	,,	पद्मो ,, ,,	,, ,,
२२—हांसीपुर	के	श्रीमाल	,,	नारायण ,, ,,	,, ,,

पट्ट पचासवें सिद्ध सूरीश्वर, गदइया जाति के वीर थे।
भारत भर विद्यागुण पूर्ण, सागर जैसे गंभीर थे॥
वीर सुत नरहद गन्ध के, जिनका द्रव्य लुटाया था।
उन्होंने मन्दिर बनाया प्रतिष्ठा कर यशः पाया था॥

श्री भगवान पार्श्वनाथ के पचासवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि महान् अतिशय धारी आचार्य हुए।

भगवान् महावीर की परम्परा के २७ पट्टधरों का हाल तो हम ऊपर लिख आये हैं शेष यहाँ लिखा जाता है। सतावीसवें मानदेवसूरि के समय वीरात् १००० वर्ष सत्य मित्राचार्य के साथ पूर्वो का ज्ञानविच्छेद हुआ। तथा आर्य्य नागहस्ति १ रेवतीमित्र २ ब्रह्मद्वीप ३ नागार्जुन ४ भूतदिन्न ५ और कालिकसूरि ६ एव छः युग प्रधान यथाक्रमः से वज्रसेनसूरि और सत्यमित्र के बीच के अन्तर मे हुए।

२८—आचार्य विबुधप्रभसूरि, आप आचार्य मानदेवसूरि के पट्टधर आचार्य हुए।

२९—आचार्य जयानन्दसूरि, आप आचार्य विबुधप्रभसूरि के पट्टधर हुए।

३०—आचार्य रविप्रभसूरि, आप आचार्य जयानन्दसूरि के पट्टधर हुए। आप श्री ने वीरात ११७० अर्थात् विक्रम सं० ७०० वर्ष नारदपुरी नगरी में, भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। तथा वीरात् ११९० वर्ष पीछे आचार्य उमास्वाति यु० प्र० आचार्य हुए।

३१—आचार्य यशोदेवसूरि—आप आचार्य रविप्रभसूरि के पट्टधर आचार्य हुए आपके शासन समय मे चैत्यवासी शीलगुणसूरि देवचन्द्रसूरि आचार्य हुए जिन्होंने वनराज चावड़ा की सहायता की और वनराज चावड़ा ने वि० सं० ८०२ मे अणहिल्ल पाटण की स्थापना की तथा राजा वनराज चावड़ा ने आचार्य शील गुणसूरि देवचन्द्रसूरि का महान उपकार समझकर तथा श्रीसंघ का संगठन बना रहने की गर्ज से श्रीसंघ के समक्ष एवं सम्मति पूर्वक यह मर्यादा बान्ध दी कि पाटण मे चैत्यवासी आचार्यों की सम्मति [illegible] कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नही सकेगा इत्यादि। तथा इसी समय में [illegible] गच्छ के आचार्य [illegible] हुए जिन्होने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध कर जैन बनाया। [illegible] जिसकी सन्तान विशाद ओसवंश मे शामिल करदी ये लोग राजा के कोठार का काम करने से कोठारी कह लाये। उनकी परम्परा मे कर्माशाह चितौड़ मे हुआ जिसने पुनीत तीर्थ [illegible] करवाया। आचार्य श्री का समय चैत्यवास का समय था और उस समय [illegible] मध्यान्ह में तपता था अर्थात् सब तरह से जैनसमाज उन्नति पर था।

३२—आचार्य प्रद्युम्नसूरि—आप आचार्य यशोदेवसूरि के पट्टधर थे। [illegible] आचार्य हुए।

३३—आचार्य मानदेवसूरि—आप आचार्य प्रद्युम्नसूरि के पट्टधर हुए। [illegible] रचना की।

३४—आचार्य विमलचन्द्रसूरि—आप आचार्य मानदेवसूरि के पट्टधर थे।

३५—आचार्य उद्योतनसूरि—आप आचार्य विमलचन्द्रसूरि के पट्टधर [illegible] मे प्रतिभाशाली आचार्य हुए। आप एक समय अर्बुदाचल की यात्रार्थ [illegible] एक विशाल वटवृक्ष आया आपश्री ने वहीं पर निवास कर दिया [illegible] रक्षण करने योग्य विद्वान का विचार कर रहे थे [illegible] कारण जान कर वि० स० ९९४ मे मुनिवर्य्य सर्वदेव [illegible] सर्वदेवादि ८ मुनियों को आचार्य पद प्रदान किया [illegible] दिया हुआ आचार्य पद शासन के लिये हितकारी हुआ [illegible] गच्छ था पर सूरिजी ने वटवृक्ष के नीचे ठहर कर सूरि पद देने से [illegible]

"प्रधान शिष्य सन्तत्या, ज्ञानादि गुणै, प्रधान [illegible]

३६—आचार्य सर्वदेवसूरि आप आचार्य उद्योतनसूरि के पट्टधर [illegible] सूरि तथा मानदेवसूरि को पट्टधर नामावली मे [illegible] जाता है। आचार्य सर्वदेवसूरि [illegible]

वि० सं० १०१० में श्री ऋषभदेव प्रभु के चैत्य तथा चन्द्रप्रभ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाकर धर्म का उद्योत किया। और चन्द्रावती नगरी के मंत्री कुंकुण के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा कर मंत्री को प्रतिबोध कर उसको भगवती जैन दीक्षा से दीक्षित किया इत्यादि।

"चरित्र शुद्धि विधिवज्जि नागमा, द्विधाय भव्यान भितः प्रबोधयन्।
चकर जैनेश्वर शासनोन्नतिं, यः शिष्य लब्ध्या भिनवो नु गौतमः ॥
नृपाद् शामे शरदां सहस्रे १०१०, यो राम सैन्य ह पुरे चकार।
नाभेय चैत्येऽष्टम तीर्थराज—बिंबं प्रतिष्ठितां विधिवत् सदनयेः ॥
चंद्रावती भूपति नेत्र कल्पं, श्रीकुंकुणं मंत्रिण मुख ऋद्धिं।
निर्मापितो तुंग विशाल चैत्य, योऽदीक्षयत् बुद्धि गिराप्रबोध्यः ॥

वि० सं० १०२९ में धारानगरी में प्रखर पण्डित धनपाल नामका कवि जो जैनधर्म का परमोपासक था जिसने देशी नाम माला का निर्वाण किया था आपके लघु भ्राता शोभन ने आचार्य महेन्द्रसूरि के पास दीक्षा ली। आप बड़े ही ज्ञानी एवं कवि हुए थे आपने ही धनपाल को जैनधर्म में श्रद्धा सम्पन्न बनाया। आपके बनाये चौवीस तीर्थङ्कर के चैत्यवन्दन स्तुतियां वर्तमान में विद्यमान हैं। वि० सं० १०६६ थिरापद्र गच्छीय वादी वैताल शान्तिसूरि जिन्होंने धारानगरी के राजा भोज की सभा के पण्डितों को पराजय किया था जिसके उपहार में राजा ने सवालक्ष मुद्राएँ प्रदान की पर आप तो थे निर्ग्रन्थ। अतः उस द्रव्य को देव मन्दिर में लगाया पं० धनपाल की तिलक मञ्जरी का संशोधन आपने ही किया था तथा उत्तराध्ययन पर टीका रची और १०९६ में स्वर्ग पधारे।

३७—आचार्य देवसूरि—आप आचार्य सर्वदेव सूरि के पट्टधर थे "रूपश्री रिति भूपमदत्त विरुदं" अर्थात् राजाने आपको रूपश्री विरुद दिया था आपश्री बड़े ही चमत्कारी जैन शासनमें प्रभाविक आचार्य हुए।

३८—आचार्य सर्वदेवसूरि—आप देवसूरि के पट्टधर आचार्य हुए आपश्री ने जैनशासन का उद्योत किया आपके शिष्य समुदाय भी गहरी तादाद में थे उन्हीं के अन्दर से मुनि यशोभद्र और नेमिचन्द्रादि आठ योग्य मुनियों को आचार्य पदार्पण कर शासन के उत्कर्ष को बढ़ाया।

३९—आचार्य यशोभद्रसूरि और नेमिचन्द्रसूरि एवं दोनों आचार्य सर्वदेवसूरि के पट्टधर हुए आप दोनों आचार्य महान प्रतिभाशाली थे आपके शासन समय नौ अंग वृत्तिकार आचार्य अभयदेवसूरि हुए आचार्य अभयदेवसूरि महा प्रभाविक आचार्य हुए आपने नौ अङ्गों पर टीका रचने के अलावा स्तम्भन तीर्थ भी प्रकट किया था आपश्री का जीवन चरित्र प्रभाविक चरित्र के अनुसार पूर्व लिख आये हैं।

भगवान महावीर की परम्परा के उपरोक्त ३९ पट्टधर आचार्यों की नामावली तो हम क्रमशः लिख आये हैं जो कि एक चन्द्रकुल की परम्परा कही जा सकती है। इनके अलावा नागेन्द्रकुल विद्याधर कुल और निवृत्ति कुल के परम्परा के आचार्य तथा इन आचार्यों की शाखा के रूप में कई गच्छ पृथक निकले हैं जैसे वड़गच्छ, कोरंटगच्छ, हर्षपुरीयगच्छ, पूर्णतल्लगच्छ, नाणकगच्छ, राजगच्छादि कई गच्छों में भी महान् प्रभाविक आचार्य हुए और उन्होंने शासन के उद्योत एवं प्रभावना के प्रभावशाली कार्य किये हैं तथा जैनधर्म के [illegible] की रचना भी की है। उन सबका विवरण लिखना मुझे आवश्यक हुआ है [illegible] आगे के पृष्ठों में यथाक्रमशः दिये जायेंगे। यह बात मैं प्रस्तावना में लिख आया हूँ कि [illegible] [illegible] लिख दिया है फिर भी पाठकों को [illegible] [illegible] बहुत कुछ [illegible] हो रहे हैं।

पहले यथा स्थान लिखना रह गया था वह यहाँ पर लिख दिया जाता है।

"मण १ परमोहि २ पुलाए ३ आहार ४ खवग ५ उवसम ६ कप्पे ७ सयम तिग ८ केवल ९ सिज्झणा १० य, जंबुम्मि बुच्छिण्णा ॥१॥"

मनपर्यव ज्ञान, परमावधि ज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारिक लब्धि, खपकश्रेणी, उपशमश्रेणी, तीन सयम (प्रतिहार विशुद्ध सुक्षमसंपराय, यथाख्यात) केवल ज्ञान, और सिद्ध होना अर्थात् मोक्ष एव दश बोल भ० जम्भुस्वामि के पश्चात् विच्छेद हो गये।

एकं समयं भगवा सक्केसु विहरंति सामगामे तेन खोपन समयेन निगन्त्थो नायपुत्तो पावाय अधुना काल कतो होति तस्स काल किरियाय भिन्न निगन्था द्विधिकजाता भंडनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मण्णा मुख सतोहिं वितुदेत्ता विहरति"

"मज्झिम निकाय बौद्ध ग्रन्थ से"

उपरोक्त पाठ का सारांश मैंने पहले महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में जो इस पुस्तक में लिख दिया था जो मुझे मुख जबानी याद था पर अब उसका मूल पाठ भी मिल गया। उसको यहाँ लिख दिया जाता है। इस भ्राति पूर्ण पाठ का समाधान उसी स्थान पर कर दिया है कि जहाँ इस की चर्चा की गई है यहाँ तो केवल उस ग्रन्थ का मूल पाठ ही लिखा है।

मन्दिर मूर्तियों पर खुदे हुए शिलालेख

श्रीमद् उपकेशगच्छाचार्य विक्रम पूर्व ४०० अर्थात् वीराब्द ७० वर्ष से जैन भावुक भक्तों के बनाये मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाते आये है उसमें कई शताब्दियों तक तो ऐसा जमाना गुजर गया था कि उस समय के लोग आत्मश्लाघा व नामवरी के भय से शिलालेख खुदाते ही नहीं थे। उस समय के राजा महाराजाओं ने भी बहुत से मन्दिर एवं मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाई थी पर वे अपना नाम नहीं खुदाते थे जैसे सम्राट् सम्प्रति ने सवालक्ष नये मन्दिर और सवा करोड़ मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाई थी पर उन्होंने किसी एक मूर्त्ति पर भी अपना नामांकित नहीं करवाया था जब एक सम्राट् का ही यह हाल है तो साधारण मनुष्य तो अपना नाम कैसे खुदा सकता था अर्थात् शायद वे इस बात को शरम की बात ही समझते होंगे।

खैर ! जब मूर्त्तियों पर नाम खुदाना शुरु हुआ तब उन मन्दिर मूर्त्तियों पर नाम खुदाया भी होगा पर उस समय की मन्दिर मूर्त्तियाँ बहुत कम रह गई इस का कारण शायद विधर्मियों की धर्मान्धता ही कि जिन्होंने बहुत से मन्दिर मूर्त्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दिये हों उदाहरण के तौर पर हमारा पवित्र तीर्थ श्रीशत्रुंजय है उस पर बहुत प्राचीन समय से ही मन्दिर थे और समय समय इसके उद्धार भी हुए और नये नये मन्दिर भी बनगये पर आज इतनी प्राचीन मन्दिर मूर्त्तियाँ वहाँ नहीं मिलती हैं। जैसा हाल मन्दिरों का हुआ वैसा ही शास्त्रों का हुआ।

प्राचीन समय में जैन श्रमण सब ज्ञान मुख जबानी ही याद रखते थे। अतः उनको ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता ही नहीं थी इतना ही क्यों पर लिखित पुस्तक अपने पास में रखने की भी मना थी और कोई रखता था तो उसके लिये प्रायश्चित का भी विधान किया है अतः जैन श्रमण सब ज्ञान कण्ठस्थ ही रखते थे और अपने शिष्यों को आगमादि का ज्ञान भी मुख जबानी ही करवाते थे पर जब काल के दुष्प्रभाव से मनुष्यों की याद शक्ति कम होने लगी और केवल ज्ञान कण्ठस्थ ही रखने का आग्रह किया गया तो आगम विच्छेद होने के भय से आचार्यों ने पुस्तक पर लिखने की प्रवृत्ति शुरु की। यह बात जैन शासन में खूब ही प्रसिद्ध है कि आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में संघ सभा कर आगमों को पुस्तकारूढ़ करवाया। यद्यपि श्रीक्षमाश्रमणजी के पूर्व भी पुस्तक के लिखे जाने के प्रमाण मिलते हैं पर क्षमाश्रमणजी के समय से तो जैन श्रमणों में आम तौर से पुस्तकें लिखना लिखवाना प्रारम्भ हो गया था और प्राचीनाचार्यों ने ज्ञान भण्डार की स्थापना भी करवादी थी पर आज हम ज्ञान भण्डारों को देखते हैं तो पूर्व [illegible] कई शताब्दियों का लिखा हुआ एक ग्रन्थ तो क्या पर एक पन्ना भी [illegible] मिलता है। इसका कारण भी जैसे विधर्मियों ने मन्दिर मूर्त्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर दिये [illegible] जला कर पानी में बहा कर नष्ट कर डाले। यही कारण है कि प्राचीन [illegible] मूर्तियों और प्राचीन ग्रन्थ [illegible] नहीं मिलते हैं। तथापि हमारे आचार्यों का [illegible]

[illegible]

मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ करवाई इत्यादि और विक्रम सं० ७६५ से तो प्रत्येक आचार्य अपने शासन काल मे हुए कार्य की नोध कर ही लेते थे इतना ही क्यों पर श्रावकों की वशावलियां भी लिखना प्रारम्भ हो गया था। इस प्रकार दीर्घ दृष्टि से प्रारम्भ किया हुआ कार्य का फल यह हुआ कि मन्दिर मूर्तिया और ज्ञान भण्डारों के नष्ट भ्रष्ट होजाने पर भी हमारे आचार्य एवं श्राद्ध वर्ग का कितना ही इतिहास सुरक्षित रह सका। और उस साहित्य के आधार पर आज हम जैनाचार्य एवं उनके भक्त श्रावकों का इतिहास तैय्यार कर सकते हैं। इतना ही क्यों पर मैंने इस ग्रन्थ में प्रत्येक आचार्य के जीवन के अन्त में भावुकों की दीक्षाएँ, श्रावकों के बनाये मन्दिर एवं मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएँ, तीर्थों के सघ, वीरों की वीरता, दुष्काल मे करोड़ों का द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों एव पशुओ के प्राण बचाने वालो की नामावली तथा कई जनोपयोगी कार्य जैसे-तालाब, कुँए, वापियां, धर्मशालाएँ वगैरह बनाने वालों की शुभ नामावली दे आये हैं। उक्त साहित्य के अलावा वर्तमान पुरातत्व की शोध खोज से तथा वर्तमान मे विद्यमान मन्दिर मूर्त्तियो के शिलालेख मिले हैं जिनको ज्ञान प्रेमियों ने मुद्रित भी करवा दिये हैं। उन मुद्रित पुस्तकों मे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्यों के करकमलों से करवाई प्रतिष्ठाओ के शिलालेख यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं। पाठक पढ़कर कम से कम अनुमोदन तो अवश्य करें—

१—"वरिस सएसु अ णवसु, अठारह समग्गलेसु चेतम्मि। [illegible] ॥१॥"

× × × ×

तेस सिरि कक्कुएण जिणस्स, देवस्स दुरियाणिदलणं। कराविअं अचलमिम [illegible] ॥२॥

× × × ×

अप्पि अमेअ भवण सिद्धस्स धणेसरस्य गच्छमि०। [illegible]

मारवाड में यह शिलालेख सबसे प्राचीन है पटियाला ग्राम से मिला है। [illegible] कक्क ने जिनराज की भक्ति से प्रेरित हो मन्दिर बनाकर धनेश्वर गच्छवालों को [illegible] है।

२—मारवाड के गोडवाड़ प्रान्त मे हथुडी नाम की एक प्राचीन नगरी थी। [illegible] (राठौर) राजाओ का राज्य था और वे राजा प्राय सब जैन धर्म के उपासक थे [illegible] विदग्धराज ने आचार्य केशवसूरि की सन्तान मे वासुदेवाचार्य के उपदेश से [illegible] मन्दिर बनवाया था जिसका बड़ा शिलालेख बीजापुर के पास मे मिला था [illegible] मे विदग्धराज के अलावा आपके उत्तराधिकारी मम्मट वि० स० ९९६ मे [illegible] है। वह भी शिलालेख मे लिखा है। तथा मम्मट का पुत्र धवल ने वि० सं० [illegible] मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था जिसका उल्लेख भी प्रस्तुत [illegible] यहाँ दे दिया जाता है।

"रिपु वधु वदनेन्दु हृतद्युति समुदपादि विदग्धनृप [illegible] ×

स्वाचार्यैर्यो रुचिरवाच (नैर्वा) सुदेवाभिधानै बोधं [illegible]

पूर्व्वं जैनं निजमिव यशोऽकारयद्धस्तिकुण्ड्या। [illegible]

× × × ×

रात गिरिनन्द कलिते विक्रम काले गतेतु शुचिमासे [illegible]

नवसुशतेषु गतेषु तु पण्णवतीसमधिकेषु माघस्य [illegible]

इत्यादि लेख बहुत बड़ा है। [illegible] में मुद्रित हो चुका है।

३—ॐ संवत् १०११ चैत्र सुदि ६ श्री कक्काचार्य शिष्यदेवदत्त गुरुणा उपकेशीय चैत्यगृह अश्वयुज् नैत्रपष्ठायां शान्ति प्रतिमा स्थापनीया गन्धोदकन् दिवालिका भासुल प्रतिमा इति।

बाबू पूरणचन्द लेखांक १३५

इस मूर्ति के लिये श्रीमान् पूर्णचन्दजी नाहर लिखते है कि—"४८ नं० इण्डियन मिरर स्ट्रीट-परमतश्च × × श्रीरत्नप्रभसूरी प्रतिष्ठित-मारवाड़ के प्रसिद्ध उपकेश (ओसियां) नगरी के श्रीमहावीरस्वामी के मन्दिर के पार्श्व में धर्मशाला की नींव खोदते समय मिली श्रीपार्श्वनाथजी के मूर्ति पर के पश्चात का लेख।

मन्दिर की प्रशस्ति

४—निम्न लेख ओसिया के किसी एक मन्दिर के भग्न खण्डहरों मे मिला था जिसको सुरक्षित रखने की गर्ज मे ओसियां के महावीर मन्दिर के ऊपर के मण्डप मे लगा दिया जिस की प्रतिलिपि निम्नलिखित है।

॥ ॐ ॥ जयति जनन मृत्यु व्याधि सम्बन्ध शून्यः परम पुरुष सञ्ज्ञः सर्व नित्सर्व दर्शी समुर मनुज राजा मोक्षगोनोक्षगोपि, प्रणिहित मतिभिर्य्यः स्मर्य्यते योगिवर्य्यैः ॥ १ ॥ मिथ्या ज्ञान घनान्धकार निकराक्रान्त सद्योत दृग्दृष्टया निष्पमुद्राद् घनगुणः प्राणभृतां सर्वदा कृत्वा नीति मरीचिभिः कृ। युगस्यादौ सत्सां शुभस्यातः प्राप्ततमाम्तनोतु भवता भद्रंम **नाभेः सुतः** ॥ २ ॥ यो गीर्वाण सर्ग-भिद विहितो शक्ति मन्दस्या नः क्रूरः क्रीडा चिकीर्षा कृत······ वृद्ध········ मुष्ट्या यस्याहतो सौ मृति मित इयता नागरत्नं यतो मुख्यो सत्पुरुष वृद्धि विनतु भगवान्वस्स **सिद्धार्थ सुनुः** ॥ ३ ॥ स्वामिन्कि स्वर्निवासाजय वन समयोस्मा [illegible] ······ ······नस्य.वमाने······उत महती काचिदन्याय देषा दत्युद्भ्रान्तरातमा हरि मति भयतः [illegible] [illegible] पार्श्वगुष्ठ [illegible] नगपतो प्रेरितो **वर्द्धमानवीरः** ॥ ४ ॥ श्रीमानासीन्मुनिह मुनि········ [illegible] [illegible] पकट महिमा राम नामाभयेन चक्रे शाकं दक्षनरपुरो निर्गालि[illegible] [illegible] [illegible] ॥५॥ तस्मा कायस्थिता प्रेम्णानन्तमगुः प्रतिहारताम् ततोऽभवत् प्रतीहार वंशोयम् [illegible] ॥ ६ ॥ तद्वंशे सवशी वशी कृ। रिपु. **श्री वत्स राजोऽभवत्कीर्त्तिर्यस्य** तुषार हार [illegible] [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] मदना चमू. पुरा पराजिता येन ········ [illegible] ॥ ८ ॥ ········ [illegible] **मद्ब्राह्मण क्षत्रिय वंश जन्मः** । [illegible] [illegible] श्री मत्पार्श्वजिन [illegible] [illegible]

२६—स० १३१५ (।) वर्ष वैशाख वदि ७ गुरौ (।) श्रीमदुपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रीवर-देवसुत शुभचन्द्रेण श्रीसिद्ध सूरीणां मूर्त्तिः कारिता श्रीकक्कसूरि (भि) प्रतिष्ठिता। पालनपुर

२७—स० १३२३ माघशुदि ६············श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारित प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्त सूरिभि. ॥ शत्रुञ्जय—

२८—(१) ॐ स० १३३७ फा० २ श्री मामा मणोरथ मदिर योगे श्रीदेव (२) गुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्ठिवचनेन पं० पद्मचंद्रेण (३) अजमेरु दुर्गे गत्वा द्विपचासत जिन बिंबानि सच्चिकादेविग (४) (ण) पति सहितानिकारितानि प्रतिष्ठतानि······सूरिणा ॥ लोद्रवा लेखांक २५६५

२९—सं० १३३७ कार्तिक सुदि २ श्री मामा मणोरथ मन्दिर योगे श्री देवगुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्ठि वचनेन प० पद्मचन्द्रेण अजमेरु दुर्गे गत्व द्विपचाशत जिन बिंबानि सच्चिकादेविगणपति सहितानि कारितानि प्रतिष्ठितानि सूरिणा (क्या यह लेख दुबारा लि०)

३०—सं० १३४५ श्री उपकेच्छे श्री ककुन्दाचार्य सताने नाहड़ सु० अरसिंह श्रेयसे पुत्र। उपाराम (?) पंचभिः श्रीशान्तिनाथ का० प्र० श्रीसिद्धसूरिभिः (जैसलमेरजी) न० २२२६

३१—सं० १३४६ वर्षे पोरवाड पहुदेव भार्य देवसिरि श्रेयसोर्थ पुत्री सुन्दर [illegible] आदिनाथ बिंबं कारित प्रतिष्ठितं श्री उव० श्रीसिद्धसूरिभिः जैसलमेर न० २२२[illegible]

३२—स० १३४७ वर्षे वैशाख सुदि १५ रवौ श्रीउपकेशगोत्रे श्रीसिद्धाचार्य सताने [illegible] देसला तत्पुत्र श्रे जनसोहेन सकुटम्बेन आत्मश्रेयंसे पार्श्वनाथ बिंब कारितं प्र० [illegible] (मारवाड़) न० [illegible]

३३—सं० १३४९ वर्षे माघ शुक्ला ५ उकेशज्ञातौ धापनागगोत्रे स० [illegible] चीणी तत्पुत्र सल्हाकेन श्रीमहावीर बिंबं कारिता कक्कसूरि पट्टे देवगुप्तसूरि प्रतिष्ठित। [illegible]

३४—स० १३५६ ज्येष्ट बद ८ श्रीउपकेशगच्छ श्रीकक्कसूरि सताने सा० [illegible] काल्हणेन श्रीशान्तिनाथ बिंब कारित पित्रो श्रे० प्रति० श्रीसिद्धसूरि [illegible]

३५—स० १३५६ श्रीशान्तिनाथ बिंब करित श्रीकक्कसूरि प्रतिष्ठित [illegible]

३६—सं० १३६२ वर्षे वैशाखमासे शुक्लपक्षे ५ पचम्या [illegible] सुहगदव्या पु० तोलकेन श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा करिता प्र० [illegible]

३७—स० १३६८ वर्षे ज्येष्ट वदि १३ शनौ श्री श्रीमाल [illegible] अबड़ आर्य पेमल श्रेय से श्रीआदिनाथ बिंब पु० देवजेन का० प्र० [illegible]

३८—स० १३७३ वर्षे श्रीउपकेशगच्छ श्रीककुन्दाचार्य सताने [illegible] श्रेयसे हसल पुत्र जवात भा० वामादेवान्वा श्रीशान्तिनाथ बिंब कारित [illegible]

३९—सं० १३७२ हरपाल नगपाल पूतानिमित [illegible] (उपकेशगच्छीय) देवेन्द्रसूरिभि ॥ [illegible]

४०—स० १३७८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ६ सोमे श्री उपकेशगच्छे [illegible] सा० लाहडान्वये धांधल पुत्र सा० [illegible]

उपकेशगच्छाचार्यों द्वारा मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा

४१—सं० १३७६ वर्षे आषाढ़ वदि ८ श्री उपकेशगच्छे व्य० जगपाल भा० जासलदे पु० भीम भा० माणल पु० जाला जगसीह जयतापुत्रेन कुटम्ब श्रेयंसे चतुर्विंशतिपट्टः कारितः ॥ प्र० श्री ककुदाचार्य संताने श्री कक्कसूरिभिः ॥ पाटण

४२—सं० १३८० वर्षे माह सुदि ६ सोमे श्री उपकेशगच्छे वेसट गोत्रे सा० गोसलव्य० जेसंग सा० आसधर श्रे० भ्रातृमय० श्रा० देसलतत्पुत्र सा० सहजपाल सा० साहण सा० समरसिंह पितृव्य सा० ठकुर तत्पुत्र सा० सागन साँगण प्रमुखै चतुर्विंशतिपट्टः का० प्र० श्रीककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥ खंभात चिन्तामणी पार्श्व० जिना०

४३—सं० १३८० मघा सुदि ६ भौमे उपकेशगच्छे आदित्यनाग गोत्रे सा० विरदेवात्मज सा० मदुन भा० मोपाहि पुत्र रुद्रपाल भा० लक्ष्मणा भ्रातृघणसिंह देवसिंह पासचन्द्र पूनसिंह सहिताभ्यां कटुम्ब श्रेयार्थं श्री शान्तिनाथ बिंबं का० ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु नं० ७११ पेथापुर

४४—सं० १३८० ज्येष्ठ सुदी १४ श्री उपकेशगच्छे श्रे० म……लाभा० मोपलदे पु० देहा कमा पितृमातृ श्रेयं से श्रीआदिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री ककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ।

बा० ले० १३५८ चुरु (बीकानेर) शान्ति

४५—सं० १३८५ वर्षे फागुण सुदि……श्रीपार्श्वनाथ बिम्बं कारिता प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभिः ।

उदयपुर मेवाड़ शिलालेख १०४१

४६—सं० १३८६ वर्षे ज्येष्ठ वदि ५ सोमे श्रीऊएसगच्छे बप्पनाग गोत्रे गोल्हा भार्या गुणादे पुत्र भीमटेन मातृपित्रोः श्रेयं से सुमतिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥

जैसलमेर—चंद्रप्रभ—२२४१

४७—सं० १३८७ वर्षे माघ सुदि १० शनौ श्रीउपकेशगच्छ सुरियागोत्रे सा० धीरात्मज सा० आल्हा भार्या जयतलदे सुत छाड़ आसाभ्यां मातृपित्रोः श्रे० श्री अजितनाथ बिंबं का० प्र० श्रीककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु—बड़ोदरा—जानिशेरी चन्द्रप्रभ—नं० १४१

४८—सं० १३८८ वर्षे माघ सुदि ६ सोमे उकेशगच्छे आदित्यनागगोत्रे सा० वीरदेवात्मज सा० मदुन भा० मुन्नादि पुत्र रुद्रपाल लक्ष्मणाभ्याम् भ्रातृ धनसिंह देवसिंह पासचन्द्र पुनसी सहिताभ्यां कटुम्ब श्रे० शान्तिनाथ बिंबं का० प्र० ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥ धातु नं० ७०६ पेथापुर

४९—सं० १३९१ श्री ऊकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य संताने सोमदेव भार्या लोहिणा आत्मनः श्रेयसे [illegible] कारित श्रीकक्कसूरिभिः ॥ २२९१ जैसलमेर—चन्द्रप्रभ

५०—सं० १३९२ वैशाख सुदि ३ उपकेशगच्छे [illegible] शाखायां सा० [illegible] भा० [illegible] पु० [illegible] श्री[illegible]नाथ बिंबं का० प्र० कक्कसूरिभिः ॥ जैसलमेर

५१—सं० १३[illegible] वर्षे वैशाख सुदि [illegible] उपकेशगच्छे [illegible] गोत्रे [illegible] भा० [illegible] भा० [illegible] [illegible]……सिंह प्र० मूल सं० [illegible] आत्मश्रेयसे [illegible] सं० [illegible]…… [illegible] श्रीकक्कसूरिभिः ॥ [illegible]

५२—सं० १३[illegible] वैशाख सुदि [illegible] श्री उपकेशगच्छे [illegible] गोत्रे [illegible] भा० [illegible] [illegible] श्री[illegible] बिंबं का० प्र० श्रीककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥

धातु—[illegible]

९३—संवत् १५०२ वर्षे वैशाख वदि ४ शुक्रे उपकेशगच्छे श्रेयसे धर्मसिंह भार्या धर्मादे पुत्र पूनाकेन भार्या सांवलदेयुतेन स्वमातृ पित्रादिश्रेयोऽर्थं श्री शीतलनाथ बिंबं का० प्र० उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने भ० श्रीकक्कसूरिभिः । धातु लेखांक ८३२

९४—संवत् १५०२ वर्षे माघ सुदि ३ शुक्रे श्रीउकेशज्ञातीय श्रेयसे चांपा भार्या चांपलदे पुत्र वीराधा नाम श्रे० स्वामीकेन भा० रही प्रमुख पुत्रकेन पितु निर्मित्तं श्रीचंद्रप्रभ बिंबं का० ऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने प्र० श्री कक्कसूरिभिः । धातु लेखांक ६८५

९५—संवत् १५०३ वर्षे माघ सुदि ३ शुक्रे ऊ० श्रे० चांदण भार्या चांदणदे पुत्र लाखा भार्या लखमादे पुत्र गोईदेन पितृव्य गोघा भार्या गंगादे पितृ धर्मसी भार्या धर्मादे प्रभृति मातृ पितृ श्रेयोऽर्थं श्री कुंथुनाथ बिंबं का० उ० सिद्धाचार्य सन्ताने प्र० भ० श्री कक्कसूरि पट्टे श्री देवगुप्तसूरिभिः ॥ धातु लेखांक १०११

९६—संवत् १५०३ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ शु० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने सिपद गोत्रे साह जीकण पुत्र राना भार्या जीवदही पुत्र मिलाकेन पत्नी पुत्र स्वश्रेयोऽर्थं श्री श्रेयांस बिंबं का०..........॥ धातु लेखांक १४३४

९७—संवत् १५०४ वर्षे अम्बिका देवी प्र० श्री कक्कसूरिभिः धातु लेखांक

९८—संवत् १५०४ वर्षे फागुन शुक्ला १३ शनौ प्रा० श्रे० गोपल भार्या करमादे तयोः पुत्र पांचा भार्या [illegible] मातृ पितृः श्री पद्मप्रभु बिंबं कारापित प्रति० ऊके० सिद्धा० भट्टारिक श्री कक्कसूरिभिः धातु लेखांक १०२४

९९—संवत् १५०४ वर्षे माघ शुक्ला ६ शुक्रे श्रीउपकेश ज्ञातौ कुकट गोत्रे साह गेला भार्या देगाई पुत्र साह [illegible] भार्या [illegible] पुत्रेन पित्रोः पितृव्य श्रे० श्री सुमतिनाथ बिंब का० प्र० श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरिभिः जि० ध० नं० ७०१

१००—संवत् १५०४ वर्षे ज्येष्ठ वदि ११ सोमे प्रा० ज्ञातीय महगोला भार्या देमाई पुत्र [illegible] [illegible] श्री पार्श्वनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठित उपकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्ताने देवगुप्तसूरिभिः धातु लेखांक ८०४

१०१—संवत् १५०५ वर्षे माघ वदि ७ गुरौ उपकेश ज्ञातौ साह [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] श्रेयसे श्री [illegible] बिंब का० उपकेशगच्छे श्री सिद्धाचार्य सन्ताने प्र० श्री कक्कसूरिभिः

१०२—संवत् १५०५ आषाढ़ सुदि ८ श्री उपकेश सुचिंतित गोत्रे साह पीथा भार्या [illegible] पुत्र साह [illegible] [illegible] श्री चंद्रप्रभ बिंब का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे श्रीकक्कसूरिभिः । [illegible] धातु लेखांक [illegible]

१०३—संवत् १५०५ वर्षे वैशाख सुदि ६ श्रीउपकेशज्ञातीय आदित्यनाग गोत्रे साह [illegible] पुत्र साह [illegible] [illegible] भार्या [illegible] श्री पुत्र [illegible] निजपूर्वजः पित्रोः श्रेयसे श्री [illegible] [illegible] श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य संताने प्रतिष्ठितः । भट्टारिक श्री सिद्ध [illegible] श्री कक्कसूरिभिः । धातु लेखांक [illegible]

[illegible] श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य....... गोत्रे साह [illegible] [illegible] श्री [illegible] बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं [illegible] [illegible]

[illegible]

१६६—संवत् १५२६ वर्षे वैशाख वदि ५ दिने उपकेश ज्ञातो वालत्य गोत्रे सा······ ···दे पुत्र राज पुत्र सुरजण सींग्रा··········मातृ पितृ पुण्यार्थं आत्म श्रेयसे श्रीवास पूज्य बिंबं करापितं प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्र० श्रीकक्कसूरिभिः। बाबू लेखांक ६६

१६७—संवत् १५२७ वर्षे पौष वदि ५ शुक्रे प्राग्वट श्रे० हरराज भार्या अमरी पुत्र समधरेण भार्या ना प्रमुख कुटुम्ब सहितेन स्वश्रेयसे श्रीकुन्थुनाथ बिंबं कारितं प्रति० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य सन्ताने श्री देवगुप्तसूरि पट्टे श्रीसिद्धसूरिभिः। धातु लेखांक

१६८—संवत् १५२८ वर्षे वैशाख वदि ६ चंद्रे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे साह तेजा पुत्र आसा भार्या जगसिरि पुत्र सायर भार्या मेहिणि नाम्न्या पुत्र गुणा पूना सहज सहितया स्वपुण्यार्थं श्रीसंभवनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छ ककुदाचार्य सन्ताने श्रीदेवगुप्तसूरिभिः। बाबू लेखांक १२४

१६९—सम्वत् १५२८ वर्षे वैशाख वदि ६ चन्द्रे दिने। उपकेश ज्ञातौ वल ही गोत्रे रांका साखा गोत्रे पुत्र साजिग भार्या वालहदे दोल्ह नाम्ना भार्या ललतादे पुत्रादि युतेन] पित्रोः पुण्यार्थ स्वश्रेयसे व श्रीनमिनाथ बिंबं का० प्र० उपकेशगच्छीय श्रीककुदाचार्य सं० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः॥ बाबू लेखांक १४०१

१७०—संवत् १५३० वर्षे माघ शुदि १३ सोमे प्राग्वट ज्ञातौ श्रेष्ठ खीमा भार्या अरघू पुत्र पेथा गिरुआ भार्या मोही पुत्र वच्छादि कुटुम्ब सहितेन श्री श्रेयांसनाथ बिंबं कारितं। उपकेश गच्छे सिद्धाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठितं श्री सिद्धसूरिभिः। (पचतीर्थी) धातु नंबर २२८

१७१—संवत् १५३० वर्षे वैशाख सुदी २ उपकेशज्ञातीय गोवर्द्धन गोत्रे साहसा मूला भार्या मूली पुत्र राजा प्रथम भार्या सोनलदे निमित्त तत्पुत्र देवा अपर भार्या कुँअरि पुत्र नगराज पौत्र छाजू युतेन श्री अभिनन्दन बिंबं कारित प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीदेवगुप्तसूरिभिः श्रीपत्तने। धातु नंबर २४०

१७२—संवत् १५३३ वर्षे पौष वदि १० गुरौ ओसवाल ज्ञातीय वाफणा गोत्रे व० नरसिंह भार्या नल्हादे पुत्र देवा व० श्रीपाल भार्या सिरीयादे पुत्र श्रीवत्स युतेन व० श्रीपालेन आत्मश्रेयसे श्री [illegible] बिंबं कारितं प्र० उ० ककुदाचार्य श्रीदेवगुप्तसूरिभिः॥ धातु नंबर २४४

१७३—संवत् १५३३ वर्षे आषाढ सुदि २ रवौ प्राग्वाट ज्ञा० पा० तेजा भार्या मनी पुत्र कुरा भार्या [illegible] पुत्र हरिसुरा स्वश्रेयसे श्री शान्तिनाथ बिंबं का० उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य सन्तानीय श्रीदेवगुप्तसूरिभिः। धातु नंबर [illegible]

१७४—संवत् १५३४ वर्षे माघ शुक्ला ६ उपकेशगच्छे ज्ञातीय [illegible] गोत्रे साह कोहा भार्या [illegible] पुत्र आल्हा भार्या [illegible]दे पुत्र [illegible] मेरादि सहितेन श्रीवासुपूज्य बिंबं कारितं श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्र० देवगुप्तसूरिभिः।

१७५—संवत् १५३४ वर्षे आषाढ सुदि १ गुरौ उकेश ज्ञातौ श्रेष्ठि गोत्रे म० सिवा भार्या [illegible] पुत्र [illegible] स्वश्रेयसे श्री[illegible] बिंबं कारितं श्री ककुदाचार्य सन्ताने प्रतिष्ठित श्रीदेवगुप्तसूरिभिः। धातु लेखांक [illegible]

१७६—संवत् १५३४ वर्षे आषाढ [illegible] दिन उपकेशज्ञातीय [illegible] गोत्रे [illegible] [illegible] पुत्र [illegible] आत्मश्रेयसे श्री पद्मप्रभु बिंबं कारितं ककुदाचार्य [illegible] श्री देवगुप्तसूरिभिः धातु [illegible]

१७७—संवत् १५३६ वर्षे [illegible] सुदि [illegible] श्री [illegible] ज्ञातीय श्रे० [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible]

२०२—सवत् १५६६ वर्षे फाल्गुन सुदी ३ सोमवासरे उपकेशवशे राका गोत्रे शाह श्रीरंग भार्या देऊ पुत्र करमा भार्या रूपा रे स्वश्रेयसे आत्म-पुण्यार्थं नमिनाथ बिंब कारित प्र० उपकेशगच्छे भ० श्रीसिद्धसूरिभि.।

२०३—सवत् १५६७ वर्षे वैशाख सुदि १० बु० श्री उपकेश ज्ञातौ सं० साहिल सुद्दी स० हासा भार्या छाजी नाम्नया स्व पुण्यार्थं श्रीपार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य सताने भ० श्रीसिद्धसूरिभिः। बाबु-लेखाङ्क १६५६

२०४—सवत् १५६८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ८ रवौ उपकेश ज्ञाता चीचट गोत्रे देसल शाखाया सा[illegible] सूरपाल भार्या रामति पुत्र साह सधारणेन भार्या पदमाई पुत्र सहसकिरण समरसी सहितेन नाई पारवती पुण्यार्थं श्रीअरनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरि पट्टे भ० श्रीसिद्धसूरिभि। बाबु लेखाङ्क ५३४

२०५—सवत् १५७१ वर्षे फागुण सुदि ३ शुक्रे उसवाल ज्ञातीय आदित्यनाग गोत्रे साह [illegible] साह नयणाकेन कलत्र पुत्रादि परिवार युतेन पुण्यार्थं श्रीमुनि सुव्रत स्वामि बिंब कारितं प्रतिष्ठित श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने भट्टारक श्री श्रीसिद्धसूरिभि. ॥ अलावलपुरे ॥ श्रीरस्तु ॥ १५५४

२०६—सं०…७२ वर्षे चैत्र वदि ३ बुधे उसवाल ज्ञातीय चोरवेड़िया गोत्रे सन्ताने [illegible] सघव सिधराज तस्य पुण्यार्थं सताने सिद्धपालेन श्री शान्तिनाथ बिंबं कारापित श्री उपकेशगच्छे [illegible] सिद्धसूरि प्रतिष्ठित। पूजक श्रेयसे ॥ श्रीः ॥ १५५१

२०७—संवत् १५७४ वर्षे वैशाख सुदी दशमी शुक्र ओसवाल ज्ञातीय [illegible] रत्नापुत्र स० राजा पुत्र सं० नाथू भार्या वल्हा पुत्र सन्ताने [illegible] भार्या [illegible] पुत्र सोहिल लघुभ्रातृ महिपति भार्या माणिकदे सु० भरहपाल भार्या [illegible] उदयराजी पुत्र सघा गोराज भ्रातृ सेन्य रत्न भार्या धीरासी पुत्र [illegible] हेमराजेन श्रीधर्मनाथ बिंब कारापित श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने प्रतिष्ठित भ० [illegible] ॥ श्रीरस्तु ॥ [illegible]

२०८—सवत १५७६ वर्षे वैशाख शुदि ६ सोमे उपकेश ज्ञातौ [illegible] सज्ञाया स० नामण भार्या कल्ली पुत्र ४ संताने असरसी भार्या [illegible] युतेन स्वपुण्यार्थं श्रीवासुपूज्य बिंब का० प्र० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने भ० [illegible] भवतु पूजकस्य पत्तन वास्तव्य ॥ [illegible]

२१३—संवत् १५९२ वर्षे आषाढ़ सुदि ९ दिने आदित्यनाग गोत्रे तेजाणी शाखायां शाह मुहता पुत्र द्वाना पुत्र सखारण दा० नरपाल सवारण भार्या सूहवदे ४ श्री करण रंगा समरथ अमीपाला सखारण श्रेयसे कारितं। श्रीउपकेशगच्छे भट्टारक श्री सिद्धसूरिभिः श्री अभिनन्दन बिंबं प्रतिष्ठितं। स्वपुत्र पौत्र श्रेये मातुः।

लेखांक नं० ११-५

२१४—संवत् १५९६ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमवारे श्री आदित्यनाग गोत्रे चोरवेड्या शाखायां साह पारा पुत्र ऊदा भार्या पऊमादे पुत्र कामा रायमल देवदत्त ऊदा पुण्यार्थं शान्तिनाथ बिंबं कारापितं उपकेश० सिद्धसूरिभिः प्रति ········।

धातु नम्बर १२५०

२१५—१६३४ संवत् वर्षे माघ सुदि ६ उप० ज्ञाती गादहीया गोत्रे साह कोहा भार्या रतनादे पुत्र भाका भार्या दस्मीदे पुत्र हरा जावड़ मेरादिसाढि तिथि सति मतं श्रीवासपूज्य बिंबं कारितं श्री ककु श्री कक्कुदाचार्य संताने प्र० देवगुप्तसूरिभिः॥ श्री॥

बाबू लेखांक १२८

२१६—॥ ॐ॥ अथ संवत्सरे नृप विक्रमादित समयात संवत् १६५६ भाद्रपद मासा शुक्लपक्षे सातमी तिथौ शनिवारे श्री वैद गोत्रे। श्री सविया किरणोत्रजा। मंत्रीश्वर त्रिभुवन तत्पुत्र पूना० तत्पुत्र मुहता चांदा तत्पुत्र मुहता रोासी तत्पुत्र मुहता नीसल १ चाइमल २ बीसन पुत्र मुहता श्री उरजन तत्पुत्र मुहता प॥ गई निवाणे सा को करो मूउ। पितापुत्र मुहता श्री नाराइण १ सादूल २ सूजा ३ सिंघा ४ महसा ५ मुहता श्री नारायणनु राणा श्री अमरसिंघजी मया करेने गाँव नाणो दीयो मुहतो नाराइण अरहट १ भाइसेल देव श्रीमहावीरनु सतर भेद पूजा मारु केसर दीवेल सारु दीधो हीदूनुं बरोस। उत्थापे तिणेनुं गाई रो····· मु स। तुरक उत्थापे तिणेनुं सुयर रो सुं सवले··············को उथापजो··············गांव नाणा रो। बहिशी गांव तीर गाऊं·····यो · सि · ए। इजाफन—गाँव—दम १ चेटियो··········तको उथापजो। बांधी आ उथापजो तिणनु गद्धउ गांव मुहता श्रीनारायण भार्या नवरंगदे तत्पुत्र मु० श्री राज·····जगमा····· पुत्री ज (प) रमो ········नारायण विजी भार्या नवलादे पुत्र जसवंत १ सहित श्री····· गच्छे भट्टारक श्री सिद्धसूरि विद्यमाने · ······।० श्री·····चंद्र शिष्य चांपा लिखित ए············न को······ लिपु·· ···· ।

बाबू लेखांक ८८०

२१७—संवत् १७८? तिथौ आषाढ़ सुदि १३ हाकिम चोरवेड़िया साह सांवल पदिना। प्रतिष्ठितं श्री श्री कक्कसूरि जिन सहितैः।

बाबू लेखांक [illegible]

२१८—संवत् १६८८ शाके १५५३ नि० माघ सुदि १३ गुरौ श्री [illegible] मूर्ति प्रतिष्ठित गुरु [illegible]

२१९—॥ ॐ॥ संवत् १५३० वर्षे वैशाख सुदी ५ भृगुवारे [illegible] श्रीम

२२०—संवत् [illegible] ज्येष्ठ सुदि १० श्रीमदुपकेशगच्छे श्रीमहाराज श्रे० सहित तर्यो० [illegible] [illegible] श्री सिद्धसूरिभिः।

बाबू प्र० नं० [illegible]

२२१—संवत् [illegible] वर्षे कक्कसूरि····· गच्छे श्रेष्ठि [illegible] पार्श्वनाथ बिंबं का०।

बाबू प्र० नं० [illegible]

२२२—संवत् [illegible] ·······श्रीपार्श्वनाथ बिंब हाकिम प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरिभिः।

बाबू प्र० नम्बर [illegible]

२२३—संवत् [illegible] वर्षे ज्येष्ठ सुदि [illegible] श्री उपकेशगच्छे [illegible] सन्ताने [illegible] भार्या [illegible] [illegible] श्री [illegible] बिंब का० प्र० कक्कसूरिभिः ([illegible])

बाबू प्र० नम्बर [illegible]

२२४—सवत् १४४३ वर्षे वैशाख सुदि ७ उकेस० साह खीमा भार्या खीमई पुत्र रणमल पुत्र भीमाकेन मातृ पितृ श्रेयोऽर्थं श्रीचन्द्रप्रभ बिंबं का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य सताने श्रीककसूरिभिः।

धातु प्र० नम्बर

२२५—संवत् १४८५ वर्षे आसाढ़ सुदि ३ रवौ उकेशज्ञा० चिचट गोत्रे साह् श्रीसोनपाल पुत्र सारंगधरा भार्या विमलादे पुत्र साह् शुभकरण मातु श्रेयसे श्रीआदिनाथ चतुर्विंशति पट्ट का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्य संताने श्रीसिद्धसूरिभिः।

धातु प० नम्बर ११७५

२२६—स० १४६४ वर्षे माघ सुदि १० शनौ उपकेश ज्ञातो चिचट गोत्रे वेसटान्वय साह मोकल भार्या पद्माइदे पुत्र सोमदत्त भैरव संसार चान्गी पित्रो श्रेयसे श्रीशीतलनाथ बिंब का० प० उपकेशगच्छे सिद्धसूरिभि।

धातु प० नं० १०१२

२२७—सं० १५०४ वर्षे फागुन सुदि ५ बुधे उप० ज्ञातो आदित्यनाग गोत्रे साह डुगर भार्या [illegible] पुत्र साह साल्हा भार्या सरसती पुत्र सलखाभ्या आत्म श्रेयोर्थं श्रीकुंथुनाथ बिंब का० उपकेशगच्छे ककुदाचार्य पं० स० प्र० श्रीकक्कसूरिभि'।

धातु प्रथम नम्बर १११

२२८—सवत् १५०६ वर्षे आसाढ़ सुदि ५ बुधे उपकेश ज्ञातौ सं० ठाकुरसी भार्या [illegible] पुत्र [illegible] पितृ ठाकुरसी श्रेयोर्थ भ० श्रीदेवगुप्तसूरि उपदेशेन श्रीसुमतिनाथ बिंबं का० प्रति०... सूरिभि।

धातु प्र० नम्बर ११५५

२२९—सम्वत् १५११ वर्षे माघ सुदि ५ सोमे उपकेश ज्ञाति [illegible] गोत्रे [illegible] भार्या... पुत्र कर्म्मा केन भार्या कसीरादे पुत्र हेमा सतार चान्दा [illegible] कारित श्री उपकेशगच्छे श्री ककुदाचार्य सताने प्र० श्री ककसूरिभि।

धातु नम्बर ११

२३०—स० १५१२ वर्षे वैशाख सुदि ५ ओसवाल गोत्रे साह [illegible] सुनेसरि प्रमुख कुटुम्बयुतेन श्री आदिनाथ बिंब का० प्र० श्रीककसूरिभि।

[illegible]

२३१—सं० १५१५ फागण सुदि ११ भौमे श्री उपकेश ज्ञातो आदित्यनाग [illegible] साह देपाल० भार्या देवाई पुत्र गुणधर भार्या नानादे पुत्र [illegible] मेकरणादि सयुक्तेन मातृ पितृ श्रेयोसार्थं नेमिनाथ प्रतिमा का० प्र० श्रीउप० सिद्धसूरिभि। [illegible]

२३२—सवत् १५२२ वर्षे वैशाख सुदि १५ उपकेश ज्ञातौ [illegible] साल्हाकेन श्री आदिनाथ बिंब का० प्र० भट्टारक श्री देवगुप्तसूरिभि।

[illegible]

२३३—सं० १५३१ वर्षे ज्येष्ट सुदि ३ उपकेश ज्ञातौ श्रेष्टि धनपाल भार्या मेनी सुत लखमसी भार्या फदू सुत वानर देवर धर्म्मा मांडण भ्रातृ हेमाकेन भार्या वर्जू प्रमुख कुटम्बयुक्तेन स्वश्रेयसे श्रीअजितनाथ बिंबं का० प्र० श्रीककसूरिभिः (त्राम्रामामे) धातु नम्बर १२६०

२३४—संवत् १५३७ वर्षे पौष वदी १० बुधे उपकेश श्रेष्टि धर्म्मा भार्या मेतु पुत्र रतना भार्या हुषी पुत्र नाथाकेन भार्या.........पुत्र हरसा पद्मा कीकादि सहितेन स्वश्रेयसे भार्या वर्धन निमित मूल नायक श्रेयसे प्रमुख चतुर्विंशति पट्ट कारिवितः उकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रीककसूरिभिः आचार्य श्री धनवर्धनसूरि प्रमुख परिवार सहितेन प्रतिष्ठितं धातु नम्बर ४२

२३५—संवत् १५३६......वै........ उकेशज्ञा० चो.........साह गोगा भार्या गोगाई पुत्र.........देवा हरपाल.........आदि.........का० प्र० ....देवगुप्त............

२३६—संवत् १५४२ वर्षे माघ सुदि १३ उपकेशज्ञातौ भद्रगोत्रे समदड़िया शाखायां साह काला भार्या केली पुत्र लाला वाला रामा जइता सहितेन स्व मातृ पितृ श्रेयसार्थं श्री विमलनाथ बिंबं का० प्र० श्री सिद्धाचार्य संताने भ० देवगुप्तसूरिभिः । धातु नम्बर

२३७—सं० १५.........वै०............प्राग्वटगो....................रांणा केन श्री.........................
प्र० .... सिद्धसूरिभिः ।

२३८—स० १४४३ वर्षे वैशाख सुदि ७ उपकेश ज्ञातौ साह खीमा भार्या खेमाई पुत्र रणमल पुत्र सोमाकेन मातृ पितृ श्रेयसार्थं श्रीचन्द्रप्रभ बिंबं का० प्र० श्रीउपकेशगच्छे सिद्धाचार्य संताने श्री ककसूरिभिः । श्री

२३६—स० १३७१ वर्षे माघ सुदि १४ सोमे उपकेशवंशे वेसट गोत्रीय साह सलखण पुत्र साह आजड़ तनोज साह गोसल भार्या गुणमति कुक्षि सम्भवेन संघपति आशाधरानुजेन साह लूणसाहाग्रजेन [illegible] साह श्री देसलेन पुत्र साह सहजपाल साह सहणपाल साह सांमत साह समर साह सांगण प्रमुख कुटम्ब समुदायोपेतेन निज कुलदेवी श्रीसच्चिका मूर्तिः कारिता यावद् व्योम्नि चन्द्रार्कौ यावन्मेरुमहीधरौ तावत् [illegible] [illegible] मूर्तिः ।

२४०—सं० १३८१ वर्षे माघ सुदि १४ सोमे श्रीमदुपकेशवंशे वेसट गोत्रे साह सलखण पुत्र साह आजड़ तनय साह गोसल भार्या गुणमती कुक्षि समुत्पन्न संघपति साह आशाधरानुजेन साह लूणसीहाग्रजेन [illegible] साह देसलेन साह सहजपाल साह साहणपाल साह सामंत साह समरसिंह साह सांगण साह [illegible] [illegible] कुटम्ब समुदायोपेतेन वृद्ध भ्रातृ संघपति आशाधर मूर्त्ति श्रेष्टि [illegible] पुत्री संघपति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] .... पुगदिव्य प्रणमति ।

२४१—सं० १३८१ वर्षे माघ सुदि १४ सोमे ....[illegible] पतिपालदेव मूर्ति संघपति श्रीदेसल [illegible] [illegible] ।   ×   ×

[illegible] [illegible] द्वितीय भाग ४४-४५ लेखाङ्क ४४-४५-४६ मुद्रित हुए हैं।

श्रीमद् उपकेशगच्छ की द्विवन्दनीक शाखा के आचार्यों के करकमलों से करवाई हुई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के शिलालेख

१—सवत १५२७ वर्षे वैसाख वदि ११ बुधे लावडी वास्तव्व उकेश ज्ञातीय व्य० पीमसी भार्या [illegible] पुत्र व्य० गणमा भार्या चाबू पुत्र व्य० केल्हाकेन भार्या मामू वृद्ध भा० धूरा पुत्र मेगादि कुटुम्ब युतेन श्री मुनिसुव्रत स्वामी चतुर्विंशति पट्ट कारित. प्रतिष्टित ॥ * वम्रगन चाइसगीया सोमर्तसूरि श्री उकेश [illegible] गच्छे प्रतिष्ठा कारिता । * (अक्षर अस्पष्ट है) जैन लेख सग्रह प्रथम भाग लेखांक [illegible]

२—संवत् १५६६ वर्षे माह वदि ६ दिने प्राग्वट ई ज्ञातीय पार [illegible] भार्या [illegible] भार्या देवलदे सहितेन श्री चन्द्रप्रभस्वामि बिंब कारित प्रतिष्ठित द्विवंदनीक गच्छे भ० [illegible] श्री श्री कक्कसूरिभि कालू···र ग्रामे ॥ जैन लेख संग्रह [illegible]

३—१५८३ वर्षे वैशाख सुदि दिने उसवाल ज्ञाति म० पानर भार्या [illegible] पु० म० [illegible] म० [illegible] म० ना० भार्या हर्षादे पुत्र पघु वनु भोजा भार्या [illegible] प्रतिष्ठित विवंदणीक ग० भ० श्री देवगुप्तसूरिभि । नारदा ग्रामे । जैन लेख संग्रह [illegible]

४—सवत् १६०३ वर्षे वैशाख सुदि ११ गुरो दिने [illegible] सहिता यात्रा सफली कृता श्री कवलगच्छे लि० प० शिवसुन्दर [illegible] ॥ [illegible]

२०—सवत् १५२१ वर्षे माघ वदि ५ गुरौ उप० आववाण गोत्रे लघु० पारेख नाथा भार्या माहू पुत्र कडुआ भार्या रांणी पुत्र सहदे आत्म श्रे० श्रीनेमिनाथ बिंब का० द्विवन्दनीकगच्छे प्र० सिद्धसूरिभि उनाउ।

धातु—प्रथम भाग नम्बर १८८

२१—संवत् १५१७ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञातीय लघु सन्तानीय दोसी मदिराज भार्या रूपिणी तया स्वभर्त्रऽऽत्म श्रेयसे श्री शान्तिनाथ बिंबं का० द्विवन्दनीकगच्छे भ० श्री सिद्धसूरिभि । प्रतिष्ठितं दानकोड़ी ग्राम (पंचतीर्थी)

धातु—प्रथम भाग नम्बर २३५

२२—सम्वत् १५१४ माह सुदि ६ बुधे उपकेश ज्ञाती लघु सन्तानीय मं० सामल भार्या आजो पुत्र कल्हाकेन भार्या कल्हणदे पुत्र धीरा सहितेन आत्म श्रेयसे श्री नेमीनाथ बिंबं का० प० श्रीउप० द्विवन्दनीक गच्छे श्री सिद्धसूरिभिः डाभी ग्रामे।

धातु—प्रथम भाग नम्बर ५५३

२३—सम्वत् १५२१ वर्षे पोष सुदी ११ शनै उपकेश ज्ञातीय लघुसन्तानीय मं० भोजा भार्या [illegible] पुत्र नागा धर्मसी खीमा भार्या भेली पुत्र रतनासहितेन खेमाकेन पितृ मातृ श्रेयोऽर्थं श्रीनेमिनाथ [illegible] कारित श्रीद्विवन्दनीकगच्छे वृद्ध शाखाया प्रतिष्ठित श्री सिद्धसूरिभिः उनाउ ग्रामे।

धातु—प्रथम भाग नम्बर ५[illegible]

२४—सम्वत् १५०८ वर्षे वैशाख सुदी ५ शनौ प्राग्वट ज्ञा० [illegible] करणा भार्या [illegible] सुत लाडा भार्या भोतमा श्री शान्तिनाथ बिंब का० प्र० द्विवन्दनीक [illegible] श्री देवगुप्तसूरिभिः।

धातु—प्रथम भाग नम्बर [illegible]

२५—संवत १४७६ वर्षे पौष वदी ५ शुक्रे ओसवाल ज्ञातौ० [illegible] भार्या [illegible] भार्या बिल्हणदे सुत चुडा कुटम्ब सहितेन उ० बिमलनाथ बिंब कारित प्रति [illegible] द्विवन्दनीकगच्छे देवगुप्त[illegible]।

धातु—प्रथम भाग नम्बर [illegible]

२६—संवत् १५३७ वर्षे वैशाख सुदि १० सोमे प्राग्वट ज्ञातौ [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible] भार्या कपुरी सुत कूरा सहितेन श्री वासपूज्य बिम्ब का० प्र० द्विवन्दनीकगच्छे भ० [illegible]।

धातु—[illegible]

२७—सवत् १५७३ वर्षे वैशाख वदि ५ दिने श्री ओसवंशे साह [illegible] भार्या [illegible] भार्या टबकू पुत्र साह समरा भार्या श्रीयादे साह परवत भार्या [illegible] साह [illegible] परवतेन स्वभ्रातृतान्य श्रेयोऽर्थं श्री सनवनाथ बिंबं का० श्री द्विवन्दनीकगच्छे [illegible]।

[illegible]

२८—सवत् १५६६ वर्षे शाके १४५५ प्रथम ज्येष्ठ वदि २ रवौ उपकेश० [illegible] नीसल भार्या पुगी पुत्र देवराज युक्तेन श्री चन्द्रप्रभ बिम्ब का० उपकेशगच्छे [illegible] पक्षे भ० श्री देवगुप्तसूरिभि. प्र० ओईडर वास्तव्य।

[illegible]

२९—सवत् १३३४ वर्षे ज्येष्ठ वदि २ सोमे प्राग्वट ज्ञातौ [illegible] सुत देवराजकेन भार्या रला[illegible] भ्रातृ धानर अनरसिंह प्रमुख कुटुम्बयुक्तेन [illegible] न्दनीकगच्छे श्रीसिद्धसूरिभिः। विसलनगर वास्तव्य।

[illegible]

११—सवत् १५०६ वैशाख यदी ११ शुक्रे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने। उवएस वशे। सखवालेचा गोत्रे श्रे० लखमसी भार्या सांस्तदे पुत्र रामा भार्या रामदे पुत्र तेजा नाम्ना स्वमाता पित्रोः श्रेयसे श्री वासुपूज्य बिंब का० प्र० श्री सांवदेव सूरिभिः। जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक २०१२

१२—सं० १५१७ वर्षे माह सुदि १० बुधे श्रीकोरटगच्छे उपकेश ज्ञा० काला पमार शाखायां सा० सोना भार्या सहजलदे पुत्र सादाकेन भ्रातृ चउड़ा भादा नेमा सादा पुत्र रणवीर वणवीर सहितेन स्वश्रेयसे श्रीचन्द्रप्रभ बिंबं कारितं श्री कक्कसूरि पट्टे श्रीपाद...... .... जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक १५०१

१३—सवत् १५१८ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ६ बुधे श्रीकोरटगच्छे। उपकेश [illegible] वा० साह [illegible] भार्या राऊ पुत्र साल्हा भार्या सांपू पुत्र जाजण सहितेन स्वमातृपितृ श्रेयोर्थं श्रीचन्द्रप्रभ बिंबं कारित। प्रतिष्ठितं श्री सांवदेव सूरिभिः। जैन लेख स० भाग दूसरा लेखांक १०८६

१४—सवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदि ६ सोमे श्री कोरटगच्छे श्रीनन्नाचार्य सन्ताने उप० [illegible] गोत्रे साह जगनाथ भार्या जासहदे पुत्र साह सारग भार्या संसारदे पुत्र साह मेहा नरसिं सहितेन [illegible] श्री सुमतिनाथ बिंब प्र० श्री सावदेव सूरिभिः। जैन लेखांक संग्रह भाग दूसरा लेखांक ११२०

१५—संवत् १५३३ वर्षे माह सुदि ५ दिने। वारडेचा गोत्रे साह डोसा भार्या सोनी पुत्र साह [illegible] सहजा सीहा भार्या हीरू श्रेयसे श्री कुन्थुनाथ बिंब कारित प्र० श्री कोरटगच्छे श्री नन्नसूरिभिः।
जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक [illegible]

१६—सवत् १५६७ वर्षे वैसाख सुदि १० उ० सुचिंति गोत्रे साह [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible] भार्या हपु आत्मपुन्यार्थं श्री आदिनाथ बिंब कारित। को० श्री नन्नसूरिभिः प्रतिष्ठितं॥ श्री [illegible]
जैन लेख संग्रह भाग दूसरा [illegible]

१७—सवत् १३८४ वर्षे माघ सुदि ५ श्री कोरटगच्छे [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible] भ्रातृव्य नाग पितृ कर्मणनिमित्तं श्री महावीर बिंब कारापितं प्रतिष्ठितं [illegible] सूरिभिः।
जैन लेख संग्रह [illegible]

१८—सवत् १५६५ वर्षे वैशाख सुदि ७ गुरौ उसवाल ज्ञातीय [illegible] साह [illegible] छोला भार्या हीमादे पुत्र रामा रिणमा पित्रोः पुण्यार्थे श्री अभिनन्दन बिंब कारितं [illegible] श्री कक्कसूरिभिः। जैन [illegible]

१९—सवत् .... अषाढ़ यदी ८ कोरटगच्छे [illegible] भार्या [illegible] पार्श्वनाथ प्रतिमा कारिता प्रतिष्ठिता श्री कक्कसूरिभिः। जैन [illegible]

२०—सवत् १३४० वर्षे उपसवाल ज्ञातीय साह [illegible] श्रेयोऽर्थं श्रीशांतिनाथ बिंब कुमरसिंहेन आत्म पुण्यार्थं [illegible] सुत खेतसिंह पुण्यार्थं श्री नेमीनाथ बिंब कारितं साह [illegible] श्री कक्कसूरि पट्टे श्री सर्वदेवसूरिभिः। जैन [illegible]

२१—सवत् १५६२ वर्षे वैशाख वदि ४ श्री कोरटगच्छे [illegible] साह भार्या लक्ष्मीदे पुत्र २ मेहा [illegible] श्रीसावदेव सूरिभिः। जैन [illegible]

२२—सवत् १५०६ वर्षे वैशाख वदि ११ शुक्रे [illegible]

तिक गोत्रे साह् वना पुत्र स० पासवीर भार्या संपूरदे नाम्न्या निज श्रेयोऽर्थं श्री कुन्थुनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री कक्कसूरि पट्टे सद्गुरु चक्रवर्ति भट्टारक श्री सावदेवसूरिभिः। जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक ४१७

२३—सं० १५५३ वर्षे माह सुदि ६ दिने वारडेचा गोत्रे साह् कोहा भार्या सोनी पुत्र साह सीहा सहजा सीहा भार्या होरूं श्रेयोऽर्थं श्री कुंथुनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री कोरंटगच्छे श्री····· सूरिभिः।

जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक ४७

२४—सं० १५७६ वर्षे वैशाख सुदि ७ बुधे उशवाल ज्ञातीय वृद्धशाषीय पोसालेचा गोत्रे सा० भीमा भार्या अधी–पुत्र साह श्रीवंत भार्या सोनाई पुत्र सकल युतेन स्वश्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री कोरंट गच्छे श्रीकक्कसूरिभिः ॥ श्री ॥ जैन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक ३०३

२५—संवत् १३६३ वर्षे फागु (ल्गु) ण सुदि ८ सोमे श्रीकोरंटकगच्छे श्री नन्नाचार्य सन्ताने श्री नन्नसूरि (री) णां पट्टे श्री कक्कसूरिभिर्निज गुरुमूर्ति [:] कारिता

प्राचीन लेख सॅग्रह भाग पहिला लेखांक ११

२६—संवत् १४६६ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमे प्राग्वट ज्ञातौ मं० सोभित भार्या लाऊलदेवि सुत भाले पित्रोः श्रे० श्री आदिनाथ बिंबं का० प्र० श्री कोर (रं) ट गच्छे नन्नसूरिभिः।

प्राचीन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक १०१

२७—संवत् १५०७ वर्षे मार्ग (र्ग) ० सुद ५ सोमे उप० सुंघा गोत्र मं० तेजा भार्या रूपी पुत्र मं० नरसिंहेन आत्म श्रे० श्री श्रेयांस बिंबं का० प्र० श्री कोरंटगच्छे भ० श्री सावदेवसूरिभिः।

प्राचीन लेख संग्रह भाग पहिला लेखांक २२१

२८—संवत् १५१० वर्षे माघ सुदि १० बुधे श्रीकोरंटगच्छे उपकेश ज्ञातीय काला परमारशाखायां श्राविका रत्नाम्न्या आत्मश्रेयसे श्रीसुमतिनाथ बिंबंकारितं प्रतिष्ठितं (ष्ठि) तं श्री कक्कसूरि पट्टे श्रीसावदेवसूरिभिः॥ [illegible] वास्तव्य ॥ प्रा० ले० सं० भाग पहिला लेखांक २५४

२९—संवत् १५२२ वर्षे वैशा० सुदि ४ बुधे श्री कोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने । उसवंशे [illegible] गोत्र श्रे० सना भार्या [illegible] पुत्र श्रे० नरदेन भार्या वान्हू पुत्र जिणदास युतेन स्वश्रेयसे श्री श्रेयांसजिन बिंबं का० प्र० श्री कक्कसूरि पट्टे श्रीसावदेवसूरिभिः ॥ प्रा० ले० सं० भाग पहिला लेखांक [illegible]

३०—संवत् १५२३ वैशाख शु० ५ बुधे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने श्री उ० ज्ञा० [illegible] [illegible] भा० [illegible] पुत्र श्रे० [illegible] भा० मही (ही) पुत्रान्वया [illegible] श्रेयसे श्रीश्रेयांसनाथ [illegible] (ष्ठि) तं श्री कक्कसूरि पट्टे पूज्य श्रीसा (वा) वदेवसूरि (भिः) श्रीः ॥ (सावदेव सूरि)

प्रा० ले० सं० भाग पहिला लेखांक [illegible]

३१—संवत् १५२८ माघ सुदि १२ गुरौ श्रीउपकेश ज्ञातीय वृद्धशाखीय साह [illegible] भार्या [illegible] [illegible] पुत्र साह [illegible] श्री [illegible] बिंब का० श्री कोरंटगच्छे श्रीसावदेवसूरिभिः [illegible]

प्रा० ले० सं० भाग पहिला लेखांक [illegible]

३२—[illegible] वर्षे [illegible] सुदि ५ गुरौ श्री कोरंटकीयगच्छे श्री कक्कसूरिशिष्य [illegible] [illegible] श्री कक्कसूरिभिः प्रतिष्ठिता [illegible]

प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग दूसरा लेखांक [illegible]

३३—संवत् [illegible] वर्षे वैशाख [illegible] [illegible] श्री कोरंटगच्छे [illegible]
[illegible] भार्या [illegible]

पुत्र ऊदाकेन भार्या मीमी सहितेन मातृ पितृ निमित श्री चन्द्रप्रभ विंबं का० प्र० श्री सावदेवसूरिभिः ।
धातु प्रथम भाग नम्बर १२२

६७—संवत१५२१ माघ वदि ८ दिने ऊकेश० साह कल्हा भार्या कपुरादे पु: कुआ सलाभ्यां भ्रा ठाकुर भार्या अमरादे पुराइ प्र० कुटम्ब युक्तेन श्री आदिनाथ विंबं कारितं प्रतिष्ठितं कोरण्टगच्छे श्री सावदेवसूरिभिः
धातु प्रथम भाग नम्बर ८१

६८—संवत् १२२० वर्षे ज्येष्ठ वद ६ श्री कोरण्टकीयगच्छे श्री पद्मसिंह भार्या विल्हू पुत्र पुण्यसिंह विजयसिंह स्व पितृ श्रेयसे·········विंबं का० प्र० सावदेवसूरिभिः धातु प्रथम भाग नम्बर १४१

६९—सं० १५८२ वर्षे मिती मार्गशीर्ष सुद ११············श्रीकोरंटगच्छे श्रीमालवंशे सा० धुरा भार्या रूडमाई पुत्र मोकल नारा नारायणमोकल भार्या मांगी पुत्र सहजाकेन श्री पारर्श्वनाथ बिंब कारितं प्र० श्री नन्नाचार्य संताने श्री कक्कसूरि पट्टे सर्व देवसूरिभिः । भालोड़े वास्तव्यम् ॥

७०—सं० १४८७ वर्षे वैशाख सुदि ११ श्री उसवाल वंशे बाप्पनाग गोत्रे जाषड़ा शाखायां सा० तेजपाल भार्या तेजाई पुत्र केला पौ० जोघड़ केन मातृपितृ श्रेयसे श्री पारर्श्वनाथ प्रतिमा कारितं प्र० श्री कोरंटकिगच्छे श्री नन्नसूरि सन्ताने सर्वदेवसूरि पट्टे नन्नप्रभसूरिभिः ।

७१—सं० १५०६ वर्षे वैशाख सुदि ५ उकेशज्ञातौ चोपड़ा गोत्रे सा० सादाभार्ये रूलमी पुत्र जइता भार्या जेतलदे तत्पुत्र हेमा आदा काना हेमा भार्या हमादे पुत्र सदूलाकेन श्री युगादिदेव बिंबं कारित प्रतिष्ठा श्री देवगुप्तसूरिभिः ।

७२—सं० १५४१ वर्षे माघ सुदि १३ प्राग्वट वंश सा० माला भार्या संसारइ पुत्र रामा नाथ जेमा सह कुटुम्बेन सहित मातृपितृ श्रेयसे श्री मुनिसुव्रत बिंबं कारापितं प्र० श्री उपकेशगच्छे श्री सिद्धसूरिभिः । [illegible] वास्तव्य शुभम् ॥

७३—सं० १३६६ ज्येष्ट सुदी ११ दिने श्री उपकेशज्ञातौ सुचंति गोत्र डिंगल शाखायां सा० तुआ भार्या [illegible] पुत्र नारायण भार्या नोडी पुत्र रांणा सगण सालु पेथा केन स्व मातृपितृ श्रेयसार्थं श्रीअजितनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं श्री उपकेशगच्छीय ककुंदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरि पट्टे श्री देवगुप्तसूरिभिः ।

७४—सं० १३६१ आषाढ़ सुदि १०······दिने श्री उकेशवंशे बोहरा गोत्रे चंडालिया शाखायां [illegible] [illegible] भार्या [illegible] पुत्र [illegible] भार्या कर्मी पुत्र रावल भीमा सहितेन श्री महावीर बिंबं कारितं प्र० श्री [illegible] गच्छे आचार्य सिद्धसूरिभिः ।

इत्यादि इन तीनों शाखाओं के और भी बहुत से शिलालेख हैं पर फिलहाल जो मुद्रित हो चुके हैं उनको यहां उद्धृत किये हैं। इसने जिन शिलालेखों के नीचे जिन जिन पुस्तकों के नम्बर अङ्क दिया है [illegible] समय के अभाव से कहां कहां गलती रह गई है [illegible] [illegible] [illegible] शिलालेख [illegible] में या अन्य स्थानों से भी लिये गये हैं [illegible] [illegible]

जैन जननी जन्म भूमि का त्याग कर लाट गुर्जर की ओर चले गये थे तथा उनके बाद भाग्यनूशिंगों का निर्माण समय में भी मरुधर में जैनधर्म होने के पुष्कल प्रमाण मिल सकते है ।

उपरोक्त प्रमाणों से यह तो स्पष्ट निर्णय हो चुका है कि सम्राट सम्प्रति के समय और आप के बाद में भी किसी समय मारवाड़ जैन धर्म से वञ्चित नहीं था तब आचार्य रत्नप्रभसूरि का मरुधर में पधारना भी सम्प्रति के बाद में तो होना बिलकुल सिद्ध नहीं होता है कारण सम्प्रति के बाद मरुधर ऐसा नहीं था कि मुनियों के विहार में सैकड़ो कठनायाँ उपस्थित हो जिसमे जैन श्रमणो को दो-दो चार-चार मास शुद्ध आहार पानी के अभाव भूखा प्यासा रहना पड़े। इससे यह निश्चय हो जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में सम्राट सम्प्रति के पूर्व ही पधारे थे तब यह देखना होगा कि सम्प्रति के पूर्व पार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभ सूरि कब हुए थे ? बस ! पता लग जायगा कि पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि वीरात् ५२ वर्षे सूरिपद प्राप्त हो वीरात् ७० वर्षे उपकेशनगर मे पधार कर वहां के राजा प्रजादि लाखों क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन धर्म में दीक्षित किये और उन नूतन जैनो का संगठन मजबूत रखने को तथा भविष्य में वाम मार्गी क्षत्रियों के साथ पुनः मिल न जाय इस गर्ज से उन्होंने महाजन संघ नाम की संस्था स्थापना कर दी जो अद्यावधि विद्यमान है।

पाठकों ! अब तो ओसवाल जाति की मूलोत्पत्ति के लिये सूर्य जैसा प्रकाश हो गया कि निःसंशय ओसवाल जाति की मूलोत्पत्ति वीरात् ७० वर्ष में ही हुई थी यदि इस प्रकार सूर्य के प्रकाश में भी किसी ऐतिहासिक को नहीं दीखे तो सिवाय उनके अभिनिवेश का प्रबल उदय के और क्या कहा जा सकता है।

प्राचीन अर्वाचीन ग्रामों की नामावली

यह बात अनुभव सिद्ध है कि बड़े २ नगरों की अपेक्षा ग्रामों में रहने वालों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है यही कारण है कि लोग नगरों की बजाय ग्रामों मे रहना पसन्द करते हैं। जब हम मन्दिर मूर्तियों [illegible] लेखों को देखते हैं तो बहुत से ग्रामों के लोगों ने मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ करवाई थी पर वर्तमान [illegible] ग्रामों में बहुत से ग्रामों का पता नहीं लगता है इसका मुख्य कारण एक तो विधर्मियों के आक्रमण [illegible] [illegible] जहाँ हजारों घर महाजनों के थे वे ग्राम उजाड़ पड़े हैं जिसमें मन्दिर [illegible] [illegible] ग्राम था जैसे [illegible] [illegible] [illegible] दूसरा कई ग्रामों के नाम [illegible] [illegible] के तौर पर यहाँ लिख दिये जाते हैं।

प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम	प्राचीन नाम	अर्वाचीन नाम
मालपुरा	अज्ञात	विक्रमपुर	अज्ञात	जंगालु	अज्ञात
त्रिभुवनगिरि	,,	राणकदुर्ग	,,	आसलपुर	,,
सक्तलगुपुर	,,	सनाइ नागरी	,,	उच्चनगर	,,
केसरिया पट्टण	,,	केसरकोट	,,	घृतघटी	,,
गंधानकपुर	,,	चर्मावती	,,	जंबरी ग्राम	,,
पोलापद्र	,,	राणेप	,,	दाणोती	,,
तकोशी	,,	मुकनपुर	,,	पोतनपुर	,,
जावोसी	,,	जिलाणी	,,	चोणोट	,,
हाप्पा	,,	नेनाड़ी	,,	सीलोटी	,,
नागणा	,,	नजोड़ी	,,	खीसरी	,,
सोवल	सोखरियो	गोवींदपुर	,,	जागोडा	जालोडा
सोहारा	लवेरा	भोजपुर	भोजार	माणकपु	अज्ञात
मोदली	,,	ररखोट	अज्ञात	धनाड़ी	,,
भीनड़ी	अज्ञान	कालोडी	,,	गगनपुर	,,
हाकोडी	,,	सज्जनपुर	,,	मेलसरा	,,
मोनटी	,,	गरगेटी	,,	भालड़ा ग्राम	,,
मातर ग्राम (गु०)	,,	वारिश्रानगर	,,	वेलापली	,,
उमार	,,	दान कोड़ीग्राम	,,	डाभीग्राम	,,
सिरानगर	,,	गुणीवाणाग्राम (गरणीया)	,,	श्रीपत्तन (गु०)	,,
कामानपुर	,,	दन्तराइ	,,	आम्राग्राम	,,
काजुरग्राम	,,	झालोड़ा	,,	उना	,,
वेरग्राम	,,	मदनग्राम	,,	पाररहर	,,
भीमनगर	,,	पुलग्राम	,,	भीणोरा	,,

वहाँ के राजा उदाई को दीक्षा दी

२५ वर्ष भ० बनारस पधार कर कोटाधीश चूलनीपिता और सूरादेव को सत्रियों के गृहस्थ धर्म और आलंभिया नगरी में पोग्गल सन्यासी को जैन दीक्षा दी (पाँचवों ब्रह्मदेव लोक की मान्यता वाला) वहाँ चूलशतक सत्री श्रावक व्रत लिये

२४ ,, भ० राजगृह नगर में पधारे राजा श्रेणिक ने दीक्षा के लिये उद्घोषणा की जिससे राजा श्रेणिक के २३ पुत्र तथा नन्दा सुनन्दादि १३ रानियां और कई राजकुमारों ने दीक्षा ली और आर्द्रक कुमार और गोसाल का सम्बन्ध

२३ ,, आलम्भिया नगरी का ऋषीभद्र पुत्र श्रावक की प्रशंसा तथा मृगावती शिवा राणियों को भगवान ने दीक्षा दी

२२ ,, भ० महावीर ने काकन्दीनगरी के धन्ना सुनक्षत्रादि को दीक्षा दी तथा कुंडकोलीक व शकडाल पुत्र को श्रावक के व्रत दिये

२१ ,, भ० महावीर ने राजगृह के महाशतक को श्रावक के व्रत पार्श्व संतानियों को पांच महाव्रत रोहा मुनि के प्रश्न

२० ,, भ० महावीर ने श्रावस्ति नगरी के नन्दनीपिता शालनीपिता को श्रावक धर्म दिया या रखीत सन्यासी को दीक्षा दी

१९ ,, भ० महावीर का शिष्य जमाली ५०० मुनियों को लेकर अलग विहार किया, कौसम्बी में सूर्य चन्द्र मूलगे रूप आये, और अभय मुनि का अनसन।

१८ ,, भ० महावीर चम्पानगरी पधार कर श्रेणिक के पौत्रे पद्मादि दशों को दीक्षा दी

१७ ,, चेटक कूणिक का भयंकर युद्ध। काली आदि १० रानियों ने भ० के पास दीक्षा ली

१६ ,, हल्ल विहल्ल राजकुमारों की दीक्षा भगवान् गोसाला का मिलाप जमाली का मतभेद

१५ ,, केशी गौतम का सम्वाद शिवराजर्षि के सात द्वीप सात समुद्र का भ० और दीक्षा

१४ ,, गोसाला के १२ श्रावक। भ० श्रावकों के पन्द्रह कर्मादान का वर्णन ४६ भांगा प्रत्या०

१३ ,, भ० महावीर ने शाल महाशाल को दीक्षा, कामदेव का उपसर्ग, सोमल के प्रश्न,

१२ ,, भ० महावीर कपिलपुर पधारे अंबड सन्यासी ने श्रावक व्रत लिया

११ ,, महावीर के पास पार्श्व संतानिया गंगइयाजी ने प्रश्न कर चार के पांच महाव्रत लिये

१० ,, मद्दुक श्रावक व अन्य तीर्थियों से प्रश्नोत्तर हुए

९ ,, [illegible] आदि मुनियों का विपुल गिरि पर अनसन

८ ,, सुदर्शन सेठ का हाल [illegible] आनन्द का अनसन गौतम का आनन्द के पास जाना

७ ,, [illegible] राजा [illegible] का भगवान के पास आना और उनकी दीक्षा

६ ,, [illegible] प्रकाश कर सकते हैं। प्रश्नोत्तर

५ ,, [illegible] महाशतक श्रावक और रेवती का [illegible]

४ ,, भ० महावीर के कई [illegible] का मोक्ष [illegible]

३ ,, भ० महावीर के पास [illegible] काशी कोशल के १८ राजाओं ने पौषध व्रत लिये

२ ,, भ० महावीर की १६ पहर अन्तिम अपूर्व व्याख्यान

१ ,, भ० महावीर ने गौतम को देव शर्मा को प्रतिबोध करने को भेज दिये

[illegible] भ० महावीर कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में निर्वाण—मोक्ष पधार गये

[illegible] [illegible] केवलज्ञान [illegible] की मोक्ष

८६	वर्ष	आचार्य यक्षदेव सूरि का सिन्ध भूमि की तरफ विहार
८६	,,	सिन्ध का शिवनगर में आचार्य यक्षदेव सूरि का व्याख्यान
९१	,,	शिवनगर के राजा सूद्राठ के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा
९१	,,	सिन्ध के राव सूद्राठ राजकुँवर कक्कव की दीक्षा-महामहोत्सव
९१	,,	मुनि कक्कव की प्रतिज्ञा जननी जन्म भूमि का उद्धार करना
९७	,,	शय्यंभवसूरि ने स्वपुत्र मणक को दीक्षा दी और दशवैकालिक सूत्र का निर्माण
९८	,,	आर्य्य शय्यंभवसूरि का स्वर्गवास और यशोभद्रसूरि संघ नायक
१०८	,,	आर्य्य संभूतिविजय की दीक्षा
११६	,,	आर्य्य स्थुलिभद्र की जन्म मत्तान्तर १२० वर्ष
१२८	,,	आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक पद
१३६	,,	आर्य्य भद्रबाहु स्वामि की दीक्षा
१४८	,,	आर्य्य यशोभद्र सूरि का पद त्याग और संभूति विजय और भद्रबाहु पट्टधर
१४९	,,	आठवाँ नन्द राजा की कलिंग पर चढ़ाई और जिन मूर्त्ति ले आना
१४९	,,	आर्य्य महागिरि का जन्म
१५५	,,	मगद की गादी पर मौर्य चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक और जैन मंत्री चाणक्य।
१५०	,,	आर्य्य स्थुलिभद्र की दीक्षा
१५६	,,	आर्य्य संभूतिविजय का पद त्याग और भद्रबाहु संघ नायक
१६०	,,	पूर्व में द्वादशवर्षीय दुष्काल के अन्त में पाटलीपुत्र में संघ सभा
१७०	,,	पूर्व आर्य्य भद्रबाहु ने तीन छेद सूत्र और दश निर्युक्तियों की रचना की
१७०	,,	आर्य्य भद्रबाहु का कुमार पर्वत पर अनसन व्रत
१७०	,,	आर्य्य भद्रबाहु स्वामी का पद त्याग और स्थुलिभद्र संघ नायक
१७६	,,	आर्य्य महागिरी की दीक्षा
१८०	,,	मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का पद त्याग बिन्दुसार मगदेश्वर
१९२	,,	आर्य्य सुहस्ती का जन्म
१८२	,,	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
२०४	,,	मौर्य राजा बिन्दुसार का पद त्याग अशोक का राज्याभिषेक
२१४	,,	जिनशासन में आषाढ़ाचार्य तीसरा निन्हव
२१५	,,	आर्य्य स्थुलिभद्र का पद त्याग और महागिरि संघ नायक
२२०	,,	जिनशासन में अश्वमित्र नामक चतुर्थ निन्हव
[illegible]	,,	आर्य्य सुहस्तीजी की दीक्षा
[illegible]	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
२२८	,,	जिनशासन में गंगाचार्य नामक पांचवा निन्हव
[illegible]	,,	[illegible] के सिंहासन पर [illegible] का राज
[illegible]	,,	सम्राट अशोक की कलिंग पर चढ़ाई मतान्तर...... ......
[illegible]		अशोक का पद त्याग और सम्प्रति का राज्याभिषेक
[illegible]	,,	आर्य्य महागिरिजी का पद त्याग और सुहस्ती सूरि संघ नायक
[illegible]	,,	सम्राट सम्प्रति ने भारत के [illegible]

४७० वर्ष राजा विक्रमादित्य ने अपना संवत् चलाया
४७० ,, आचार्य सिद्धसेनदिवाकर ने राजा विक्रम को जैन धर्मोपासक बनाया
४७० ,, आचार्य सिद्धसेन ने आवंति पार्श्वनाथ की मूर्त्ति प्रकट की (कल्याण मन्दिर)

विक्रम सम्वत प्रारम्भ

१३ ,, राजा विक्रमादित्य ने श्री शत्रुञ्जयादि तीर्थों का विराट संघ निकाला
२६ ,, राजा विक्रम लियामंत्री द्वारा वायट नगर के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।
२२ ,, वज्रसेन सूरि का जन्म
२४ ,, युगप्रधानाचार्य धर्मसूरि
२५ ,, आचार्य जीवदेवसूरि की विद्यमानता आपश्री महान् चमत्कारी विद्यावली
३१ ,, वज्रसेन सूरि की दीक्षा
२६ ,, आर्य्य वज्रसूरि का जन्म
,, राजा विक्रम ने ऊकार नगर में जैन मन्दिर बनाया
३० ,, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का प्रतिष्ठित नगर में स्वर्गवास
५२ ,, आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
५५ ,, तीर्थ श्री शत्रुञ्जय का उच्छेद अर्थात् तीर्थ बौद्धों के हाथ ही जाना
६० ,, आचार्य विमलसूरि ने पद्मचरित्र नामक ग्रन्थ बनाया
६३ ,, युगप्रधानाचार्य भद्रगुप्तसूरि का स्वर्गारोहण
६२ ,, आचार्य रक्षितसूरि ने चार अनुयोग पृथक २ किये
७५ ,, आर्य्य रक्षितसूरि का स्वर्गवास मतान्तर ६३ वर्ष
७८ ,, आचार्य श्री गुप्त का शिष्य ..... त्रिराशी मत्त निन्हव
७८ ,, आचार्य वज्रसूरि को सूरिपद
१०८ ,, प्राग्वटवंशीय जावड़ ने श्री शत्रुञ्जय का उद्धार कराया
१०७ ,, [illegible] में [illegible] राजा का राज जिसके वश में आचार्य मूर्ति आया
[illegible] ,, गोष्ठिक माहिल नामका सातवां निन्हव ।
आर्य सिंहगिरि धनगिरि का समय तथा समित सूरि ने ५०० तापसों को प्रतिबोध
... भारत में भयङ्कर द्वादशवर्षीय दुष्काल
११४ ,, आर्य वज्रसूरि का स्वर्गवास आर्य्य
[illegible] ,, आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
[illegible] ,, आचार्य देवानन्दसूरि ने [illegible] के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
[illegible] ,, [illegible] की प्रतिमा की प्रतिष्ठा [illegible] सूरि ने की
[illegible] आचार्य देवचन्द्र [illegible] के महावीर मन्दिर में [illegible]
[illegible] , [illegible] के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा
[illegible] [illegible] आचार्य [illegible] सूरि का स्वर्गवास मतान्तर [illegible]
[illegible] [illegible] शिवभूति द्वारा दिगम्बर मत की उत्पत्ति
[illegible] , [illegible] सूरि के समय द्वादशवर्षीय दुष्काल

३५७	वर्ष	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
३६०	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
३७५	,,	आचार्य देवानन्दसूरि
३७५	,,	वल्लभी नगरी का भंग–बलाह गौत्र से रांका शाखा जिसमें:कांकसी का कारण
४००	,,	आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और रत्नप्रभसूरि गच्छ नायक
४१२	,,	चैत्यवासियों की प्रबल्य सता का समय
४१४	,,	आचार्य मल्लवादी ने बोद्धों का पराजय कर शत्रुञ्जय पर अधिकार
४२४	,,	आचार्य रत्नप्रभसूरि का पद त्याग और यक्षदेवसूरि गच्छ नायक
४२६	,,	मल्लद्धीरी शाखा का प्रादुर्भाव
......	,,	आचार्य विक्रमसूरि
......	,,	आचार्य नरसिंहसूरि
....	,,	आचार्य सनुद्रसूरि
४३४	,,	युगप्रधानाचार्य नागअर्जुनसूरि
४४०	,,	आचार्य यक्षदेवसूरि का पद त्याग कक्कसूरि गच्छ नायक पद पर
४५०	,,	चन्द्रावती नगरी में संघ सभा
४७७	,,	आचार्य धनेश्वरसूरि ने शिलादित्य के राज मे शत्रुञ्जय महात्म्य ग्रन्थ बनाया
४८०	,,	आचार्य कक्कसूरि का पद त्याग और देवगुप्तसूरि गच्छ नायक
४६२	,,	आर्य्य देवर्द्धिगणि ने आचार्य देवगुप्तसूरि से दो पूर्व के ज्ञान पढ़े
५००	,,	शिवशर्माचार्य ने कर्मप्रकृति नामक ग्रन्थ लिखा
५०७	,,	आचार्य यशोभद्रसूरि ने खम्भात के मन्दिर पर ध्वजारोहण कराई
५०८	,,	भैंसाशाह ने अटरू ग्राम में मन्दिर बनाया जिसका शिलालेख
५०८	,,	भैंसाशाह और रोड़ा बनजारा ने भैंसरोड़ा ग्राम आबाद किया
५१०	,,	आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण जी ने वल्लभी मे आगम पुस्तकारूढ़ किया
५१०	,,	वादी [illegible] वेताल शान्तिसूरि वल्लभी में विद्यमान थे
५१३	,,	युगप्रधानाचार्य भूतदिन
५२३	,,	कालकाचार्य [illegible] में थे उनका [illegible] में १३ वर्ष का फरक
५२३	,,	आनन्दपुर के राजा ध्रुवसेन के शोक निवारणार्थ कल्पसूत्र सभा में बांचना शुरू
५२७	,,	आचार्य देवगुप्तसूरि का पद त्याग और सिद्धसूरि गच्छ नायक
५२८	,,	कालकाचार्य का स्वर्गवास
५३०	,,	आचार्य मानदेवसूरि मतान्तर .. ..समय
५३०	,,	[illegible] युगप्रधानाचार्य के साथ पूर्वज्ञान विच्छेद
.....	,,	आचार्य रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि को ज्ञान भंडार में स्थापन किये
[illegible]		आचार्य सिद्धसूरि का पद त्याग और कक्कसूरि गच्छ नायक
[illegible]		युगप्रधानाचार्य [illegible] का स्वर्गवास
		आचार्य [illegible]सूरि
		आचार्य [illegible]सूरि
[illegible]		[illegible]

मेरी नोटबुक की जानने योग्य बातें

१ माण्डवगढ़ का मन्त्री पेथड़ ने तीर्थ श्रीशत्रुञ्जयादि का संघ निकाला उस समय रास्ते में चलता हुआ जिस ग्राम में जैन मन्दिर की जरूरत थी तथा किसी ग्राम नगर के संघ ने आकर कहा कि हमारे ग्राम में मन्दिर की आवश्यकता है तो मन्त्रीजी ने वहाँ मन्दिर की नींव डलवारी जिसमें कतिपय नाम यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं।

१ शत्रुञ्जय तीर्थ पर
२ गिरनार तीर्थ पर
३ जुनागढ़ शहर में
४ धोलका बंदर में
५ वणथली
६ ऊकारपुर में
७ वर्द्धमानपुर में
८ शरत्नापाटण
९ तारापुर
१० प्रभावती पाटण
११ सोमेशपट्टण
१२ श्रीकानेर में
१३ गन्धार बन्दर
१४ धारा नगरी
१५ नांदुरा नगर
१६ नासिक
१७ नागपुर
१८ वटप्रद
१९ सोपार पट्टण
२० चारोप नगर
२१ रत्नपुर में
२२ कारोड़ नगर
२३ कदहर नगर
२४ चन्द्रावती
२५ चित्रकोट
२६ चिखलपुर
२७ जैतलपुर
२८ विहार नगर
२९ उज्जैन नगरी
३० माण्डवगढ़
३१ जालंधर
३२ [illegible]
३३ दशपुर
३४ पाशुनगर
३५ राठगनर
३६ हस्तनापुर
३७ देपालपुर
३८ गोकलपुर
३९ जयसिंहपुर
३० पाटण
४१ करणावती
४२ खम्भात
४३ वडनगर
४३ रत्नपुर
४४ वीरपुर
४५ मथुरा
४६ जोगनीपुर
४७ शोरीपुर
४८ आघाटपुर
४९ नगरी
५० वागणपुर
५१ शिवपुरी
५२ सोनाई
५३ पद्मावती
५४ चन्द्रावती
५५ आबु [illegible]
५६ केसरियापट्टण
५७ जंगालु
४८ उपकेशपुर
४९ जावलीपुर
५० रुद्रपुर
५१ पालिकापुरी
५२ नारदपुरी
५३ पोतनपुर
५४ मारंगपुर

इसके अलावा भी कई स्थानों में मन्दिर बनाया जिसकी संख्या ८४ का उल्लेख मिलता है [illegible] जमाने के लोगों की धर्म भावना का पता लग सकता है।

२ शाह पेथड़ का पुत्र झांझण ने शत्रुञ्जय पर एक मन्दिर बनाकर उस पर सुवर्ण [illegible] मन्दिर के शिखर तक [illegible] सुवर्ण मन्दिर कहलाता था।

३ [illegible]

[illegible]	[illegible]	संघ	आकर	तीर्थ की	यात्रा की
[illegible]	[illegible]	„	„	„	„
[illegible]	[illegible]	„	„	„	„
[illegible]	[illegible]	„	„	„	„

बन्दर ८ रांदेर बन्दर ९ घणदीव बंदर १० सुरत बन्दर ११ वीसाइ बन्दर १२ ठाणा बन्दर

इन बन्दरों में करोड़ों का माल आता जाता था जैसे एडन, गौवा, जाउल, अबिसिनिया, आफ्रिका, मलबार, पेगू, सिहलद्वीप, ईरान, ईराक, अर्बस्तान, चीन, जापान, सुमित्रा, जावा, काबुल, कंधार इत्यादि।

१५ परमार्हन् राजा कुमारपाल की आज्ञा से १८ देशों में जीवदया पलती थी—

१ गुर्जर २ लाट ३ सौराष्ट्र ४ सिन्ध ५ सौवीर ६ मरुधर ७ मेदपाट ८ मालवा ९ सपादलक्ष १० भंभेरी ११ कच्छ १२ ऊ..…१३ जेलंधर १४ काशी १५ आभीर १६ महाराष्ट्र १७ कोकण १८ करणाटदेश इत्यादि।

१६ बाहाड़ मंत्री ने शत्रुञ्जय के चौदहवें उद्धार में २९७००००० रु० व्यय किये और श्री गिरनार की पाज बनाने में २५०००००० रुपये खर्च किये और राजा कुमारपाल ने ६३०००००० द्रव्य व्यय किया।

१७ नेनो देदाणी हाडाला ग्राम में रहता था जिसने एक दुकाल को सुकाल बनाया जिसके लिये उसको १२ ग्राम और शाहपद बादशाह ने इनायत किया।

१८ कच्छ भद्रेश्वर का जगडुशाह ने सं० १३१२-१३-१४-१५ लगोतर दुकाल पड़ा जिसमें साधारण जनता ही नहीं पर राजा महाराजा और बादशाह भी गरीबों के लिये संचा हुआ धान गरीब जनको दिया।

१९ श्री शत्रुञ्जय तीर्थ के १६ उद्धार—१ भरतचक्रवर्ति २ दंडवीर्य राजा का ३ ईशानेन्द्र ४ महेन्द्र ५ ब्रह्मेन्द्र ६ चमरेन्द्र ७ सागरचक्रवर्ति ८ व्यन्तरेन्द्र ९ चन्द्रयश राजा का १० चक्रधर राजा ११ रामचन्द्र १२ पाण्डव १३ जा १४ मन्त्री बाहड़ १५ समरसिंह १६ कर्म्माशाह यह तो बड़े उद्धार हैं छोटे उद्धार तो असंख्य हुए।

२० श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रार्थ आने वालों के जानमाल की रक्षाणार्थ गोयल राजपुतों को रखे जिनको प्रत्येक यात्री के दो ढाई आने के पैसे दिये जाते थे पर सं० १८७८ में मुकरके ४५००) किये बाद सं० १९१९ में १००००) पालीताना १९४२ में १५०००) बाद सं० १९८३ में यात्रा बन्ध रखी और सं० १९८४ में ६००००) देने का फैसला सरकार ने दिया करार ३५ वर्ष का है।

यह तो एक नोट बुक की बातें हैं शेष १२ नोट बुकों की बातें किसी समय पुनः लिखी जायगी।

नोट—जिन जिन बातें भूल से रह गई थी वे यहाँ पर लिखी जा रही हैं।

१ राजा श्रेणिक ने भगवान के पास जैन धर्म स्वीकार किया
२ मृगावती रानी और [illegible] बाई की दीक्षा तथा आनन्द श्रावक को श्रावक के व्रत दिये
३ राजगृह नगर में धन्ना शालिभद्र सेठ की दीक्षा
४ सिन्ध सौवीर के राजा उदाई को दीक्षा दी
५ [illegible] पूर्णिमा तथा सुदर्शन [illegible] के साथ श्रावक व्रत लिये तथा आलोचना